स्कन्दपुराणान्तर्गतः
मानसखण्डः
परिष्कर्त्ता
आचार्य गोपालदत्त पाण्डेय

सादर व सप्रेम यह ग्रंथ समर्पित श्रीभागवतानन्द
गुरुजी को

9/9/2012
अनंत-चतुर्दशी

॥ श्रीः ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गतः

मानसखण्डः

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासोदीरितः

विवृतिकारः सम्पादकश्च

आचार्य गोपालदत्त पाण्डेयः

एम०ए०, व्याकरणाचार्यः
अवकाशप्राप्त उप-शिक्षानिदेशकः (उ०प्र०) तथा
नैनीतालस्थ-ठाकुरदेवसिंहबिष्ट-राजकीय-स्नातकोत्तर-महाविद्यालयीय-
संस्कृतविभागस्य भूतपूर्व आचार्यः अध्यक्षश्च

समायोजकः

श्री लक्ष्मीचन्द्र जोशी

एम०ए०, एल-एल० बी०
न्यायिक अधिकारी, पिठौरागढ़ (उ०प्र०)

वितरक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

मानसखण्डविस्तारः

नन्दपर्वतमारभ्य यावत्काकगिरिः स्मृतः ।
तावद्वै मानसः खण्डः ख्यायते नृपसत्तम ॥

पर्वतनामानि	पूज्यदेवतानामानि
१. नन्दगिरिः	नन्दा देवी
२. द्रोणगिरिः	महौषधयः
३. दारुकाननम्	यागेश्वरः
४. कूर्माचलः	चम्पावती
५. नागपुरः	वासुकि-प्रभृतयो नागाः
६. दारुगिरिः	भुवनेश्वरः
७. पावनः	पावनदेवः
८. पञ्चशिराः	पञ्चशिरांसि
९. केतुमान्	केतुमान्
१०. मल्लिकार्जुनः	मल्लिकार्जुनः
११. गणनाथः	गणनाथः
१२. दुन्दुकरः	—
१३. चन्द्रमाः	सुषुमा
१४. देवतटः	शतलिङ्गः
१५. मालिका	पञ्चपुरः
१६. काकपर्वतः	विष्णुपदम्
१७. जलाशयः	जालन्धरः
१८. स्कन्दगिरिः	कार्तिकेयः
१९. त्रिपुरः	त्रिपुरा
२०. गौरीगिरिः	गिरिकन्यका (गुहास्था)
२१. नागगिरिः	—
२२. काकगिरिः	भवानी

मानसखण्ड के कुछ प्रसिद्ध स्थल
केदारनाथ
बदरीनाथ
गढ़वाल
अलखनंदा न.
कर्ण प्रयाग
राक्षस ताल
मानसरोवर
मान्धाता पर्वत
लिपि पर्वत
करीए पर्वत
खेचराद्रि
कोचरनाथ
तिब्बत
पंचशिख पर्वत
नन्दा
नन्दा गिरि
पिंडर न.
चतुर्दंष्ट्र पर्वत
काली नदी
कौलेख
काक पर्वत
चक्रपाणि
द्रोणगिरि
नीलगिरि
नाग पर्वत
वैद्यनाथ
बागीश्वर
नागपुर पर्वत
वासुकी नाग
पाताल भुवनेश्वर
भृगुतुंग
शैल पर्वत
दारुकानन
योगीश्वर
कर्णाली नदी
स्याकिल पर्वत
पद्मनाभ पर्वत
कूर्माचल
रामेश्वर
पंचेश्वर
चम्पावत
नेपाल
पूर्णागिरि

मानस॰ भिता गानुडी जलैः॥ स्थितस्सदेवदेवेशो सशूलकरः सएः॥ तमाराध्य पार्वती नाथं पार्वती पर्वतोत्तमः॥ उपपर्कं गृह्य संप्राप्तमर्घ्या
९६ दिभिः समन्वितः॥ अलंकाराणि सर्वाणि वस्त्राणि विविधानि च॥ रत्नानि पर्वतश्रेष्ठ गृहाण परिधाय च॥ अलंकाराणि सर्वाणि
वासांसि विविधानि च॥ गृहीत्वा राजशार्दूल कन्याकामर्वनंप्राप्ति॥ जगाम पर्वतश्रेष्ठो मेनाकेन समन्वितः॥ गत्वा तां कन्यकां
देवी उवाच वदतां वरः॥ पर्वत उवाच॥ अग्र गृह्य महाभाग वासांसि वस्त्राणि च॥ भूषणानि गृहाण त्वं भूषणं खरवकं
तनुं॥ वस्त्राणि नापीयाग्पा नितनुं क्षौममयानि च॥ परिधाय पर्येवेसु भुहृाय त्वादृशाम्पहं॥ संयोगं प्राप्तपातिव्रत्या भवतु मर्हसि
शोभने॥ सूत उवाच इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं सा देवी हृष्टमानसा॥ भूषयामास स्वदेहं मेने यो ग्यं पतिं हृति॥ ततो हिमाद्रिणा
देवी सर्वालंकार संयुता॥ सा तु दिव्य वस्त्राय मनाकेन समान्वितः॥ अग्रघोषदिक्षरणं युक्तानी त्वाकं नाम महामते॥ प्रस्तु तगाम
गिरिश्रेष्ठो गिरिनाराम नामते॥ अथ माव मुनी येवे दत्वा तस्मै रूपात्नम॥ संतर्निवश्या या मास श्री सखीनां शुभासने॥ ऋषि
भिः सह राजेन्द्र वेदवेदान्तपारगै॥ वद मंत्रे श्रीराजन गौरी स्वीनां शुभासने॥ ततश्चेवेशया मास राजन् पर्वतनायकः॥ ततस्ता
उवदने कन्या नसमान्वितौ॥ हरायराजशार्दूल समुत्पन्न रूपं शोगिरि॥ ततस्तुपाणिग्रहणं चकार गिरिजाधिपः॥ रत्नान्हिमाद्रिणा म्म
रत्नत्वेक कर्णशोभितं॥ ततः संरोपयामास वृषलालाकपिता महः॥ मे ह्वाहिकं महत्तिमान् छु मांगल कारकान्॥ ततः सकार ९६

मानसखण्डः

प्रस्तावना

उपक्रम

भारतीय संस्कृति की सार्वजनीनता का विस्तृत परिचय पुराणों में ही विशेषतया मिलता है। सामाजिक परिष्कार को विकसित करने में पुराणों की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है। यद्यपि भारतीय धर्म, दर्शन तथा आचारसंहिता आदि के आधारभूत स्रोत वेद ही हैं, तथापि सामान्य जन वैदिक वाङ्मय की दुरूहता से दूर भागता है। कारण यह है कि कहीं-कहीं वेदों की निर्वचनशैली प्रतीकात्मक होने से दुर्बोध हो जाती है। अत: जनमानस तक भारतीयता को पहुँचाना पुराणों का कार्य रहा है। सरल भाषा एवं रोचक आख्यानों के माध्यम से विषय की गम्भीरता को हृदयङ्गम कराने में पुराणों की शैली ने धर्म एवं दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने में पुराणों का विस्तृत आयाम अपनी सार्थकता को बनाये हुए है। पौराणिक वाङ्मय नि:सन्देह वैदिक सिद्धान्तों के बृहद् व्याख्यान के रूप में मननीय है[1]। महर्षि व्यास ने विशाल वैदिक वाङ्मय को चार रूपों में विभक्त कर स्वयं 'वेदव्यास' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। उन्हें वेदों की दुरूहता का आभास हो चुका था। इस हेतु वे स्वयं उसकी सरलता का उपाय सोचने लगे। उन्होंने रामायण की रचना देखी और आदिकवि वाल्मीकि की रचना को आदर्श मानकर वेदध्वनि को पुराणों में प्रतिध्वनित कर दिया। अत: नि:सन्देह यह कहा जा सकता है कि पुराणों की वाणी में वेद ही बोलते हैं। पुराण के अर्थनिर्णय में वेदार्थ का निर्णय ही प्रतिभासित होता है। 'भक्ति' के माध्यम से प्रतिपादित ज्ञानराशि की व्यापकता ने पुराणों को भारतीय धर्म, संस्कृति एवं साहित्य के प्रत्येक अङ्ग का उपजीव्य बनाने में बड़ा हाथ बटाया है[2]। पुराण की शैली केवल रोचकता तक ही सीमित नहीं है। वह तो वस्तुत: विचक्षणता की कसौटी है। पुराणों के अध्ययन से दृष्टि उन्मीलित होती है। निखिल ब्रह्माण्ड की जिज्ञासा से ओतप्रोत मानवहृदय की अन्त:सलिला सरस्वती पुराणों की धारा में सङ्क्रमित हो अपने अस्तित्व को बनाये रखती है।

पुराणों के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं का अब कोई स्थान नहीं है। इस शताब्दी के आरम्भ में पुराणों के वर्ण्यविषय को केवल कपोल-कल्पित गाथाओं के रूप में समझा जाता था। उनमें इङ्गित ऐतिहासिक अंशों को मान्यता नहीं दी जाती थी। भौगोलिक विस्तार की ओर ध्यान देने की लोगों में क्षमता नहीं थी। पुराणों में विभिन्न देवों के वर्णन होने के फलस्वरूप उन्हें धार्मिक कटुता एवं रागद्वेष का प्रतीक माना जाता रहा है।

इस सन्दर्भ में दूषित अंग्रेजी शिक्षा ने पुराणों के प्रति विद्वेष फैलाने में कोई कसर नहीं उठा रखी। फिर भी इन भ्रान्त धारणाओं के उन्मूलन होने में कुछ समय लगा। वास्तविकता सामने आई। विदेशी विद्वानों की भी आँखें खुलीं और उन्होंने भी पुराणों का अनुशीलन कर उनकी वास्तविकता बतलाई। तब लोगों को विदित हुआ कि पुराणों में वर्णित आख्यान प्रतीकात्मक हैं। उनमें ऐतिहासिक वृत्त इङ्गित हैं। उनसे आध्यात्मिक रहस्य की भी अभिव्यक्ति होती है। वह तत्त्व भले ही निगूढ़ हो किन्तु अभिव्यक्ति का प्रकार अत्यधिक बोधगम्य है। समग्र वसुमती (पृथ्वी) के संश्लिष्ट भूगोल का वर्णन कर पुनः उसे महाद्वीपों एवं द्वीपों में बड़ी सूक्ष्मता के साथ विभाजित करने की पद्धति वर्तमान युग के सर्वेक्षण कार्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वैज्ञानिक एवं यातायात के साधनों के अभाव में पर्वत शृङ्गों तथा नदियों के उद्गम-स्थानों का निर्धारण करना दुःसाध्य होते हुए भी उन पदयात्रियों एवं पर्वतारोहियों का कार्य विशेष रूप से अनुकरणीय है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुराणों में वर्णित विभिन्न देवताओं की उपासना विषमता-परक नहीं है। वह तो समन्वय की भावना से उपासक को अपने मनोनुकूल साधना की ओर प्रवृत्त करने में समाहित हो जाती है। प्रत्येक पुराण में वर्णित प्रमुख देवता अन्य पुराणों में वर्जित देवों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। इस प्रकार तीनों देव—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—एक दूसरे के पूरक माने गए हैं।

रही पौराणिक इतिहास की बात। साधारणतः घटनाचक्र को प्रतिबिम्बित करना ही मुख्यतः इतिहास का विषय माना जाता है। पुराण की दृष्टि कुछ इससे भिन्न है। पुराण के पञ्च लक्षण[1] का महत्त्व इस सम्बन्ध में विचारणीय है। मानव-समाज का इतिहास तभी पूर्ण समझा जाता है, जब उसकी कहानी सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक क्रमबद्ध बतलाई जाय। जब तक मानव-जाति की कथा सृष्टि के आरम्भ से न लिखी जाय तब तक वह अपूर्ण ही समझी जायगी। पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से लेकर प्रलय-पर्यन्त वर्णन मिलता है। इन दोनों किनारों के बीच उत्पन्न होने वाले राजाओं के वंशों तथा उनसे सम्बद्ध प्रमुख राजाओं के चरित्र का वर्णन भी पुराणों में प्रतिपादित है। इस प्रकार की शैली पुराणों की निजी शैली है। फिर भी पाश्चात्य विचारकों ने इस शैली की उपादेयता मानी है। इस सम्बन्ध में एच० जी० वेल्स का मत उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'आउट-लाइन आफ हिस्ट्री' में इस पौराणिक शैली का अनुसरण किया है। उन्होंने इस ग्रन्थ में मानव-समाज का इतिहास लिखने से पहले सृष्टि के आरम्भ से जीव-विकास का इतिहास लिखा है[2]।

पुराणों का लक्ष्य

पुराणों का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिष्कार है। समाज को बुराइयों से कैसे दूर रखा जाय—यही उनका लक्ष्य है। उनके समाज का भवन वर्णाश्रम की दृढ़ भित्ति पर

आधारित है। अतः तदनुकूल सदाचार का वर्णन पुराणों में प्रतिपादित है। वर्णाश्रम धर्म के पालन द्वारा समाज के अभ्युदय की चिन्ता पुराणों में की गई है। वर्णाश्रम धर्म के शुद्ध स्वरूप का निर्वचन करने में पुराणों ने अपनी सार्थकता मानी है। सदाचार का स्वरूप बतलाने से पूर्व पुराणों में कदाचार की विभीषिका प्रस्तुत की गई है। जिसके द्वारा अनाचार से अनास्था प्रकट कर समाज का मन सदाचार की ओर प्रवृत्त किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अर्थवाद का आश्रयण लेने में पुराणकार ने संकोच नहीं किया है। इसके साथ ही उस वर्ण्य-विषय को अतिशयोक्ति अलङ्कार द्वारा बढ़ा चढ़ाकर प्रतिपादित किया जाता है। इस प्रकार की शैली उपासना या वर्ण्य विषय की 'फलश्रुति' बतलाने में प्रयुक्त की गई है। इसका कारण लोगों को सत्कार्य में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित करना है। सत्कर्म द्वारा मानव को सुखी बनाने हेतु पुराणों ने भुक्ति-मुक्ति का आदर्श माना है। वर्तमान में सुख और भावी जीवन में मुक्ति की प्रतिष्ठा द्वारा मानव के कल्याण की कामना इस आदर्श में निहित है। श्रीमद् भागवत में एक प्रभावशाली दृष्टान्त द्वारा इस सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। जैसे पिता की सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र स्वतः होता है, वैसे ही निष्काम हो कर्मों का भोग, ईश्वर की कृपा की प्रतिक्षण प्रतीक्षा तथा सच्चे मन से भगवान् का चिन्तन करने से प्राणी स्वतः मुक्ति की ओर अग्रसर होता है[1]।

पुराणों की अवतारणा

सभी पुराणों में पुराण की अवतारणा समान रूप में ही वर्णित है। ब्रह्मा ही पुराणों के प्रथम प्रवक्ता हैं। वैमत्य इस बारे में है कि पुराण का अस्तित्व वेदों के आविर्भूत होने के पूर्व था अथवा बाद में हुआ। मत्स्यपुराण के अनुसार पुराणों का आविर्भाव सर्वप्रथम हुआ[2]। इसके विपरीत श्रीमद्भागवत 'पुराण-साहित्य' को वेदोत्तरकालीन मानता है। अतः पुराण को पञ्चम वेद की संज्ञा दी गई[3]। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह पौराणिक शब्दराशि आरम्भ में समष्टि रूप से मौखिक संहितात्मक रही। उसे पृथक् विभाजित कर वर्णात्मक रूप देकर वेदव्यास ने परिष्कृत रूप दिया है। लोमहर्षण सूत को उसका अध्यापन करा उसके प्रचार-प्रसार का भार उन पर सौंप दिया। लोमहर्षण ने भी अपनी

एक पुराण-संहिता बनाई और इस संहिता को उन्होंने छह शिष्यों को पढ़ाया। 'वायुपुराण' (६१, ५५–५६) में गोत्रज नामों के साथ उनके वैयक्तिक नामों का उल्लेख मिलता है। उन छह शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—(१) सुमति आत्रेय, (२) अकृतव्रण काश्यप, (३) अग्निवर्चा भारद्वाज, (४) मित्रयु वासिष्ठ, (५) सौमदत्ति सार्वणि तथा (६) सुशमा शांशपायन। इन छहों शिष्यों में से तीन ने अपनी नयी संहितायें बनाई, जिनके नाम हैं—काश्यप, सार्वणि तथा शांशपायन। लोमहर्षण-सहिता के साथ इन तीनों को मिलाकर चार संहितायें निष्पन्न हुई। ये चारों संहितायें प्रायः समान ही थीं, केवल पाठान्तर मात्र ही इनका विभेदक रहा। शांशपायन को छोड़कर अन्य तीन पुराणसंहिताएँ चार हजार श्लोकों के परिमाण में थीं[१]।

शिष्य-परम्परा के अतिरिक्त वेदव्यास की पारिवारिक परम्परा का भी अन्यत्र उल्लेख मिलता है। उस सम्बन्ध में एक पद्य प्रसिद्ध है—

'व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥'

तदनुसार व्यासजी वसिष्ठ के प्रपौत्र, शक्ति के पौत्र तथा पराशर के पुत्र एवं शुकदेव के पिता थे। यह तो वर्तमान युग की पारिवारिक व्यासपरम्परा है। परन्तु इनसे पूर्व २७ व्यास और हो चुके हैं, जिनका निर्देश 'विष्णुपुराण' (३, ३, ७–१८) तथा 'देवीभागवत' (१, ३, २४-३५) में किया गया है। इस प्रकार के व्यास एक प्रकार के पदाधिकारी रहे। यह पदाधिकारी प्रत्येक द्वापर-युग में प्रादुर्भूत होता है और लोकमङ्गल की भावना से वेद-राशि को चार भागों में तथा पुराणसंहिता को १८ भागों में विभक्त (व्यास) कर देता है[२]। २७ व्यासों के नाम भी विष्णुपुराण में इस प्रकार दिये गए हैं—(१) ब्रह्मा, (२) प्रजापति, (३) शुक्राचार्य, (४) बृहस्पति, (५) सूर्य, (६) यम, (७) इन्द्र, (८) वसिष्ठ, (९) सारस्वत, (१०) त्रिधामा, (११) त्रिशिख, (१२) भरद्वाज, (१३) अन्तरिक्ष, (१४) वर्णी, (१५) त्रय्यारुणि, (१६) धनञ्जय, (१७) ऋतुञ्जय, (१८) जय, (१९) भरद्वाज, (२०) गौतम, (२१) हर्यात्मा, (२२) वाजश्रवा, (२३) सोमशुष्मायण तृणबिन्दु, (२४) भार्गव ऋक्ष, (२५) शक्ति, (२६) पराशर तथा (२७) श्रीकृष्णद्वैपायन।

वेदव्यास ने तीन वर्षों तक सतत परिश्रम कर महाभारत जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की[३]। इनके पुत्र शुकदेव थे। इन्होंने राजा परीक्षित को भागवत सुना कर मोक्ष प्राप्त कराया। श्रीमद्भागवत में इन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी बतलाया गया है, किन्तु 'देवीभागवत' (१, १४) में इन्हें गृहस्थ बतलाया गया है। गृहस्थ होने पर भी यह आत्मानन्द में

निमग्न रहते थे। उपर्युक्त सिंहावलोकन से यह विदित होता है कि पराशर, वेदव्यास तथा शुकदेव—इन तीन पीढ़ियों में होने वाले मुनियों ने पुराण के अध्ययन तथा प्रसार में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

पुराणसंहिता के उपादान

इस सम्बन्ध में विष्णुपुराण का कथन मननीय है। 'विष्णुपुराण के अनुसार आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पशुद्धि—ये चार पुराणसंहिता के उपादान हैं'[१]। सामान्यतः आख्यान और उपाख्यान-शब्द कथानक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु अलग-अलग दोनों शब्दों का प्रयोग होने से उनमें कुछ भेद तो होना चाहिये। भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी के मत में (१) 'आख्यान' शब्द स्वयम् दृष्ट अर्थ के कथन में प्रयुक्त होता है और (२) 'उपाख्यान' शब्द श्रुत अर्थ के कथन को सूचित करता है[२]। इसी प्रकार 'गाथा' शब्द का अभिधान अज्ञातकर्तृक लोकप्रख्यात पद्यों के रूप में किया जाता है। प्राचीन वैदिक एवं लौकिक साहित्य में अनेक अज्ञातकर्तृक पद्य उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के पद्य लोक में समय-समय पर अनेक राजाओं की प्रशस्ति में प्रख्यात थे। ये गाथायें लोगों के कण्ठस्थ रहीं। ऐसी गाथा का प्रयोग भी पुराणसंहिता में हुआ है। इन गाथाओं द्वारा पुराणों में किसी महान् व्यक्ति का जीवनदर्शन एक-दो श्लोकों में भी अभिव्यक्त किया जा सका है। (४) 'कल्पशुद्धि' (या 'कल्पजोक्ति') का यह तात्पर्य है कि भिन्न-भिन्न कल्पों (समय-विशेषों) में होने वाले विषयों या पदार्थों का विवरण प्रस्तुत किया जाय।

पुराणसंहिता के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करते हुए पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'पुराणविमर्श' में यह उल्लेख किया है कि 'दक्षिण भारत के एक विद्वान् पौराणिक पण्डित नरसिंह स्वामी ने मूल पुराणसंहिता के पुनः प्रणयन की चेष्टा की है। उनकी पद्धति इस प्रकार है—'वे कतिपय पुराणों के तुलनात्मक अध्ययन करने से इस परिणाम पर पहुँचे कि पुराणों में असंख्य श्लोक, कहीं-कहीं तो पूरा अध्याय पुनरुक्त है। वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य तथा हरिवंश—इन पुराणों में ऐसे श्लोकों की पुनरुक्ति बहुत अधिक है। ऐसे सब श्लोकों अथवा अध्यायों की गम्भीर छानबीन करने के अनन्तर उन्होंने इस कल्पना के अनुसार चार पादों में विभक्त 'पुराणसंहिता' के अध्याय, श्लोक तथा विषय की पूरी सूची दी है'[३]। इस संकलन में नरसिंह स्वामी ने केवल ऐतिहासिक विषयों—'पञ्च लक्षणों'—को ही 'पुराणसंहिता' का अविभाज्य अङ्ग माना है। अन्य प्रासङ्गिक विषयों को उन्होंने 'पुराणसंहिता' से पृथक् कर दिया है'। इस सम्बन्ध में आचार्य उपाध्याय ने अपनी

अरुचि प्रकट करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि पुराणों में वर्णित धर्मशास्त्र तथा अन्य प्रासङ्गिक विषयों का समावेश भी रहा होगा। कारण यह है कि 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' में उद्धृत 'भविष्य-पुराण' तथा अन्य पुराणों के बचनों से यह विदित होता है कि उस युग में धर्मशास्त्रीय विषयों का भी समावेश पुराणों के अन्तर्गत रहा। इसके साथ ही 'स्कन्दपुराण' के एक वचन[1] से भी यह सूचित होता है कि 'पञ्चाङ्गों' (पञ्चलक्षणों) से अतिरिक्त यावद् विवेच्य विषय व्यासजी ने आख्यानों के अन्तर्गत समाविष्ट किए हैं।

पुराणों का स्वरूप एवं संख्या

प्राचीनकाल से ही पुराणों की संख्या १८ मानी चली आ रही है। ये अष्टादश पुराण अब भी किसी न किसी रूप में उपलब्ध हैं। 'देवीभागवत' में प्रत्येक पुराण के प्रथम अक्षर के निर्देश द्वारा १८ पुराणों का नाम एक श्लोक में समाविष्ट किया है—

''म-द्वयं भ-द्वयं चैव 'ब्र'-त्रयं 'व'-चतुष्टयम्।
'अनापल्लिङ्गकूस्कानि' पुराणानि पृथक् पृथक्॥''

तदनुसार दो पुराण 'म' से आरम्भ होने वाले—(१) 'मत्स्य' एवं (२) 'मार्कण्डेय; दो पुराण 'भ' से आरम्भ होने वाले—(३) 'भागवत' तथा (४) 'भविष्य'; तीन पुराण 'ब्र' से आरम्भ होने वाले—(५) 'ब्रह्म', (६) 'ब्रह्मवैवर्त' एवं (७) 'ब्रह्माण्ड'; चार पुराण 'व' से आरम्भ होने वाले—(८) 'वामन', (९) 'विष्णु', (१०) 'वायु' एवं (११) 'वाराह'; 'अ' से आरम्भ होने वाला एक पुराण (१२) 'अग्नि'; 'ना' से आरम्भ होने वाला एक—(१३) नारद; 'पद्' से आरम्भ होने वाला एक—(१४) 'पद्म'; 'लिङ्ग' से आरम्भ होने वाला (१५) 'लिङ्ग' नामक; 'ग' से आरम्भ होने वाला एक—(१६) 'गरुड'; 'कू' से आरम्भ होने वाला (१७) कूर्म, तथा 'स्क' से आरम्भ होने वाला—(१८) 'स्कन्द' नाम से विख्यात हैं।

विषयानुक्रमणिका

पहला अध्याय — **उपक्रम** — १–६

मङ्गलाचरण एवं ग्रन्थोपस्कर्ता द्वारा आह्वान १–२, धरा की स्थिति तथा तीर्थों के निरूपण करने की जिज्ञासा २, उत्तरस्वरूप व्यास द्वारा मधु-कैटभाख्यान का वर्णन ३, पृथ्वी की रचना ४, सृष्टिरचना ४, प्रजापति-परिचय ५, राजा पृथु का वर्णन ६।

दूसरा अध्याय — **पृथ्वी का उभरना** — ७–९

पृथुचरित ७, पृथ्वी का प्रादुर्भाव ८, पृथ्वी का समतल होना ९।

तीसरा अध्याय — **पृथ्वी की स्थिति** — १०–२०

पृथ्वी-दोहन १०, पृथ्वी का सन्ताप ११, पृथ्वी के दुःखनिवृत्यर्थ ब्रह्मा द्वारा विष्णु की प्रार्थना १२, पृथ्वी द्वारा प्रार्थना १२-१३, विष्णु द्वारा धैर्य बँधाना १४, पृथ्वी का अनुगृहीत होना एवं वर माँगना १५, विष्णु द्वारा वरदान दिया जाना १६, शिव के अवतीर्ण होने की घोषणा १७, पर्वतों की विशेषता १८, स्थावर रूप की महिमा १९, पृथुचरित्र की फलश्रुति २०।

चौथा अध्याय — **शिवलिङ्गोत्पत्ति** — २१–३२

शिव के माहात्म्य की जिज्ञासा २१, दक्ष-प्रजापति के यज्ञ का प्रासङ्गिक आख्यान २१, कैलास को छोड़कर शङ्कर का पृथ्वी पर आना २२, शिव का दारुकानन में पहुँचना २३, ऋषि पत्नियों का शिव के प्रति आकृष्ट होना २४, ऋषियों द्वारा शिव को शाप देना २५, शिव द्वारा ऋषियों को शाप दिया जाना २५, तदनुसार शिव का लिङ्गपतन २६, ज्योतिर्लिङ्ग से प्रभावित हो पृथ्वी का गोरूप धारण करना २७, गोरूपा पृथ्वी द्वारा की गई स्तुति २७, देवों का शिव के पास जाना २८, ब्रह्मा के समक्ष पृथ्वी का कोप २८, ब्रह्मा के द्वारा सान्त्वना, कुपित पृथ्वी का ब्रह्मा को शाप, अभिशप्त ब्रह्मा का पृथ्वी को शाप २८, पृथ्वी का विष्णु के पास जाना २९, विष्णु द्वारा शिवकी प्रार्थना २९, पृथ्वी को शिव की सान्त्वना २९, शिव को विष्णु का निवेदन ३०, शिव का उत्तर देना ३०, विष्णु के चक्र द्वारा लिङ्ग-विच्छेदन एवं नौ खण्डों में स्थापन ३१, इस विषय का पर्यवसान ३२।

पाँचवाँ अध्याय — **नवखण्ड-विभाजन** — ३३–३६

नौ खण्डों का परिचय ३३–३६ (हिमाद्रि, मानस, कैलास, केदार, पाताल, काशी, रेवा, ब्रह्मोत्तर, नागर)।

छठा अध्याय **हिमाद्रि-माहात्म्य** ३७–४८

नौ खण्डों में 'हिमाद्रि' का परिचय ३७, पार्वती की भविष्य में उत्पत्ति ३८, तारकासुर से त्रस्त देवों की शिव से प्रार्थना ३९, शिव के द्वारा कामदेव का भस्म किया जाना ४०, दुःखी देवताओं द्वारा तारकासुर के विनाश का उपाय बतलाने को शिव से निवेदन करना ४१, पुनः मदनाविष्ट शिव का पार्वतीपरिणय स्वीकार करना ४२, देवों का हिमालय के पास जाना ४२, पार्वतीविवाह की सम्मति ४२, शिव की स्वीकृति तथा यज्ञ-मण्डपादि के लिए निर्देश ४३, गणेश प्रतिमा बनवाकर बारात का प्रस्थान ४४, गणेश की स्तुति ४४, शिव का विवाहार्थ वैद्यनाथ (बैजनाथ–कत्यूर) पहुँचना ४५, पार्वती का विवाहार्थ सुसज्जित होना एवं विवाह ४६-४७, हिमाद्रि का अपने घर वापस होना ४७, शिव का केदारमण्डल की ओर प्रस्थान ४७, 'गारुडी' और 'गोमती' के सङ्गम में वैद्यनाथ की स्तुति एवं फलश्रुति ४८।

सातवाँ अध्याय **हिमाद्रि-चरित** ४९–५६

हिमाद्रिचरित-जिज्ञासा ४९, व्यास द्वारा उत्तर ५०, दत्तात्रेय द्वारा काशिराज को सुनाये आख्यान की चर्चा ५०, दत्तात्रेय द्वारा निर्वचन ५०, हिमालय द्वारा दत्तात्रेय का हिमालय-दर्शन ५१, दत्तात्रेय की शिवस्तुति ५२–५३, शिव द्वारा वर्णित हिमालय की विशेषता ५४, दत्तात्रेय का मानसरोवर-गमन ५५, तत्रस्थ तीर्थयात्रा कर दत्तात्रेय का काशी वापस होना ५६।

आठवाँ अध्याय **हिमाद्रिस्थ मानस-परिचय** ५७–६३

काशिराज द्वारा दत्तात्रेय का स्वागत ५७, धन्वन्तरि की जिज्ञासा ५८, दत्तात्रेय द्वारा काशी की प्रशंसा ५८, धन्वन्तरि की पुनः तीर्थविषयिणी जिज्ञासा ५९, दत्तात्रेय द्वारा हिमालय के साथ ही गङ्गा एवं मानसरोवर आदि अन्य स्थानों का माहात्म्य-वर्णन ६०–६३।

नवाँ अध्याय **मानसरोवर का प्रादुर्भाव** ६४–६६

दत्तात्रेय द्वारा मानसरोवर का वर्णन, ऋषियों की तपस्या ६४, ऋषियों का जलापूर्ति के लिये ब्रह्मा से निवेदन करना ६५, दत्तात्रेय द्वारा सरोवर-समुत्पत्ति-कथन ६६।

दसवाँ अध्याय **मान्धाता-चरित** ६७–७४

अलङ्घ्य पर्वत पर आरोहण-सम्बन्धी धन्वन्तरि की जिज्ञासा ६७, दत्तात्रेय द्वारा प्रथम पर्वतारोही 'मान्धाता' का आख्यान ६७, प्रसङ्गवश मान्धाता-पृथ्वी संवाद ६८–७१, मान्धाता का क्रोध ७१, मान्धाता का धरा पर प्रहार ७२, मान्धाता का पृथ्वी को खोदवाना, स्वर्णहंस के रूप में शिवदर्शन, वहीं जलपूर्ण सरोवर की उत्पत्ति ७२–७३, मान्धाता का वैकुण्ठ-गमन ७३, आकाशवाणी द्वारा मान्धाता की प्रशंसा ७३–७४।

धन्वन्तरि की पुनः जिज्ञासा ७५, दत्तात्रेय का उत्तर, 'कैलास' आदि की दुर्गमता, उस क्षेत्र का आरोहण-मार्ग—'कूर्माचल' (काली कुमाऊँ) से प्रारम्भ कर गौरी 'गिरि' मानसरोवर पर्यन्त ७६–७८, वापसी यात्रा—'लङ्कासर' से प्रारम्भ कर 'ज्वालामय' तीर्थ पर्यन्त वर्णन ७९–८०, फलश्रुति ८० ।

बारहवाँ अध्याय — **शुकाख्यान** — ८१–८९

धन्वन्वरि की मानसरोवर-सम्बन्धी जिज्ञासा ८१, दत्तात्रेय द्वारा वर्णित शुकाख्यान ८१–८३, शुकों द्वारा हंस से पूछा जाना ८३, हंस द्वारा 'मानसरोवर' का माहात्म्य-कथन ८४, शुकों द्वारा अपनी पापकथा कहना ८५, हंस की यात्रा तक शुकों का रोका जाना ८६–८७, हंस की वापसी तथा उसके पंख में लगे जल से शुकों का उद्धार ८८–८९ ।

तेरहवाँ अध्याय — **मानस-प्रशंसा** — ९०–९५

दत्तात्रेय द्वारा पुनः मानस-सङ्कीर्तन ९०, प्रसङ्गवश नृप केतुमान् का आख्यान ९०–९२, राक्षसयोनि में प्राप्त राजा का ऋषि से उपाय पूछा जाना ९३, ऋषि द्वारा उपाय बतलाना ९४–९५ ।

चौदहवाँ अध्याय — **चाण्डालाख्यान : मानस-प्रशंसा** — ९६–१०१

ऋषि द्वारा वर्णित मानस-प्रशंसात्मक चाण्डालोपाख्यान ९६–१०१ ।

पन्द्रहवाँ अध्याय : — **राक्षसाख्यान : मानस-महिमा** — १०२--१०४

राक्षस की मानसरोवर-यात्रा १०२, राक्षस द्वारा स्तुति १०२–१०३, राक्षस का वर माँगना १०३–१०४, राक्षस की शिव-गण के रूप में हो जाना १०४ ।

सोलहवाँ अध्याय — **परशुरामाख्यान : मानसतीर्थ-माहात्म्य** — १०५--११५

धन्वन्तरि की सरोवरस्थ तीर्थविषयिणी जिज्ञासा १०५, दत्तात्रेय द्वारा मानसरोवर के तीर्थों का कथन १०५, प्रसङ्गवश पार्वती का शङ्कर से पूछना १०६, शङ्कर के माध्यम से वहाँ के तीर्थों की 'स्वर्णहंस' के रूप में अस्तित्व, जल की प्रशंसा, त्रिपथगा कामद-तीर्थ, जामदग्न्य तीर्थ, देवतोर्थादि का निर्वचन १०७-१११, जामदग्न्योपाख्यान ११२–११५ ।

सत्रहवाँ अध्याय — **मानसतीर्थ-माहात्म्य** — ११६--१२६

शिव द्वारा वर्णित मानसखण्ड तीर्थाख्यान ११८–१२६ ।

अठारहवाँ अध्याय — **मानसरोवर-माहात्म्य** — १२७–१४१

पार्वती द्वारा मानसोत्तर-भाग के तीर्थों की जिज्ञासा १२७, शिव द्वारा उन तीर्थों का वर्णन (प्रमुख रूप में 'कैलास' पर्वत, वहाँ ३३०० गुहायें, मन्दाकिनी, भद्रेश्वर आदि का वर्णन) १२८, भगीरथ की तपस्या का स्थान १२८, विष्णु का प्रसन्न हो भगीरथ से वर माँगने को कहना १२८, भगीरथ का गङ्गादर्शन १२९, 'भद्रा' के

पाँच सरोवर १३०, भगीरथ-सर, कैलास पर्वत आदि तीर्थ १३१, 'स्वर्णधारा' नदी १३४, महेन्द्र-पर्वत १३५, पाशुपत आदि तीर्थ १३६, वह्नितीर्थ एवं हंससरोवर आदि तीर्थ १३७, प्रसङ्गवश वेगवान् हंसाख्यान १३८–१३९, सरोवरमाहात्म्य की फलश्रुति १४०–१४१।

उन्नीसवाँ अध्याय पुष्पदन्ताख्यान : शूलगुहा-माहात्म्य १४२–१४४
शूलप्रिया गुहा १४२, पुष्पदन्ताख्यान १४३, शिवस्तुति १४४।

बीसवाँ अध्याय सरोवर-माहात्म्य १४५–१४६
सुरभी देवी, पुष्पदन्तेश्वर आदि १४५, दत्तात्रेय द्वारा 'मानसखण्ड' नाम की सार्थकता १४६।

इक्कीसवाँ अध्याय धन्वन्तरि-स्वर्गारोहण १४७–१५०
धन्वन्तरि द्वारा 'मानसखण्ड' विषयिणी जिज्ञासा १४७, दत्तात्रेय द्वारा वर्णित 'मानसखण्ड' की सीमा १४७, धन्वन्तरि द्वारा पर्वत-नाम-जिज्ञासा १४७, दत्ता-त्रेय द्वारा वर्णित पर्वत-नामावलि १४७–१४९, धन्वन्तरि का यात्रार्थं प्रस्थान १४९–१५०।

बाईसवाँ अध्याय नन्दा-माहात्म्य १५१–१५७
नन्दगिरि (नन्दादेवी) माहात्म्य १५१, प्रसङ्गवश मेनका का आख्यान १५१–१५६, नन्दासरमाहात्म्य १५६, नन्दामाहात्म्य एवं फल श्रुति १५७।

तेईसवाँ अध्याय नन्दपर्वत-माहात्म्य १५८
वसिष्ठ आश्रम, नन्दिकेश महादेव एवं काली का वर्णन १५८।

चौबीसवाँ अध्याय पिण्डारका-माहात्म्य १५९–१६२
पिण्डारका एवं कालीह्लद वर्णन १५९, 'सरस्वती'-'कमठी'-सङ्गम, शेषवती-गुहा, वेण्यासङ्गम, बौद्धनाग आदि वर्णन १६०, विष्णुगङ्गा (अलकनन्दा) सङ्गमस्थ कर्णप्रयाग माहात्म्य १६०–१६२।

पच्चीसवाँ अध्याय चूडेश-माहात्म्य १६३–१६९
वैन्ध्यपर्वत तथा देवतावर्णन १६३, दारक पर्वत, दारका देवी, सुचन्द्रा नदी १६३, दुर्विन्ध्य नाग, पाण्डुगिरि, पाण्डुसर, वेणुपर्वत, चूडेश शिव १६४, चूडामणि नाग आख्यान १६५, वेणुपर्वत-प्रवेश-निर्गम मार्ग एवं फलश्रुति १६६–१६९।

छब्बीसवाँ अध्याय रथवाहिनी-माहात्म्य १७०–१७१
रथवाहिनी (पश्चिमी रामगङ्गा) वर्णन १७०, 'वेणु' पर्वत एवं भगीरथ-प्रसङ्ग १७०–१७१।

सत्ताईसवाँ अध्याय रथवाहिनी-तीर्थसावात्म्य १७२–१७३
उद्गमस्थलस्य विष्णु, सरस्वती-सङ्गम, गौतमी-सङ्गम, देवतट, शकटी-सङ्गम, शूलपाणि, नदीसारा-सङ्गम, कपाली शिव, अर्जुननाग, वेताली-सङ्गम, काली देवी आदि का उल्लेख १७२–१७३।

अठाईसवां अध्याय **विभाण्डेश्वर-माहात्म्य** १७४–१७५

विभाण्डेशप्रशस्ति १७४, शिवशयन के समय दाहिनी भुजा रखने का स्थल १७५।

उन्तीसवां अध्याय **विभाण्डेश-माहात्म्य** १७६–१८०

श्रेष्ठ तीर्थ सम्बन्धी जिज्ञासा १७६, नागार्जुन-पर्वत-वर्णन १७७, विभाण्डेशमाहात्म्य, सुरभी नदी, नन्दिनी नदी, बक-मुक्ति-आख्यान १७७–१८०।

तीसवां अध्याय **विभाण्डेश-माहात्म्य** १८१–१८३

तीर्थ एवं नदियां—सौरभेय ह्रद, सुरभी देवी, वृद्धभाण्डेश, सूर्यतीर्थ, द्रोणतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, वाणीश्वर, त्रिपुरेश्वर, शेषह्रद, शेषनाग, सरस्वती-संगम, बालिह्रद, शीतला, श्मशानवासी शङ्कर, विनता-काश्यपी-संगम, कुमुद्वती देवी, जीवनदा-काश्यपी-कौमोदकी-संगम एवं क्रौञ्चतीर्थ १८१–१८३।

एकतीसवां अध्याय **वृद्धकेदार-माहात्म्य** १८४

वृद्धकेदार की स्थिति एवं माहात्म्य १८४।

बत्तीसवां अध्याय **प्रौढसर-माहात्म्य** १८४–१८६

द्रोणह्रद, ब्रह्मपुर-पर्वत, प्रौढसर, गर्गतपश्चर्या १८५, ब्रह्मतीर्थ, गर्गतीर्थ, शोभन-गण १८६।

तेतीसवां अध्याय **शुकेश्वर-माहात्म्य** १८७–१९२

ब्रह्मपर्वतस्थ तीर्थ एवं नदी-वर्णन, गार्गी नदी एवं देवी, वेणुभद्रा नदी, भद्रेश शिव, शुकवती नदी, शुकेश शिव १८७–१८८, गोमन्त पर्वत १८८, शुकाख्यान एवं शुक-यम-संवाद १८८–१९२।

चौंतीसवां अध्याय **शुकेश्वर-माहात्म्य** १९३

तीर्थवर्णन—शतधारा नदी एवं पांच तीर्थ, गुप्तसरस्वती नदी, दुःशासनेश्वर, शुकवती का तटवर्ती वटेश १९३।

पैंतीसवां अध्याय **रथवाहिनी-माहात्म्य** १९४–१९५

लोध्र तथा ब्रह्मशृङ्ग, गर्गाश्रम, गार्गी नदी, गंगेश्वर, गर्गह्रद, बिल्ववती नदी, मणिकेश, बिल्ववती-गार्गी-संगम वेत्रवती-गार्गी-संगम, सोमेश, भद्रा, भद्रवती-गार्गी-संगम, भद्रेश शिव, शुकवती-गार्गी-संगम १९४, शैलवती-गागी-सङ्गम, शैलवती देवी, चिताभस्मधारी शिव, कर्णाटका देवी, विजया देवी, गार्गी-रथवाहिनी-सङ्गम, पाराह-पर्वत, पारावती देवी १९५।

छत्तीसवां अध्याय **द्रोणाद्रि-माहात्म्य** १९६–१९८

द्रोणपर्वत की स्थिति—कौशिकी-रथनाहिनी के मध्य, ओषधि-उल्लेख, देवतट सरो-वर, महादेवी, द्रोणसरोवर, द्रोणेश्वर, बिल्वेश, हरप्रिया, वरदात्री, शूलहस्ता, महिषासुरमर्दिनी, कालिका, वह्निमती आदि का वर्णन तथा फलश्रुति १९६–१९८।

सैंतीसवाँ अध्याय **कौशिकी-माहात्म्य** १९९–२०१

'पिनाकोश' के प्रसङ्ग में कौशिकीतीर्थ माहात्म्य—ब्रह्मसर, कर्कटी नदी, स्वयम्भू-पर्वत (सिमतोला), शैवी-कौशिकी-संगम, स्वयम्भूनाथ, सत्या-कौशिकी-सङ्गम, काषाय-पर्वत (कलमटिया), काशी-कौशिकी-संगम, वटी-कौशिकी-संगम आदि वर्णन १९९–२०१।

अड़तीसवाँ अध्याय **बडादित्य-माहात्म्य** २०२–२०४

कञ्जार-पर्वत, उसके दक्षिण में बडादित्य (कटारमल का सूर्य मन्दिर) २०२, कालनेमि-आख्यान २०३, सूर्यमाहात्म्य २०३–२०४।

उनतालीसवाँ अध्याय **कौशिकीमाहात्म्य** २०५

कात्यायनी, सूर्यकुण्ड, रम्भा नदी (रम्फा नौली) तथा उसका कौशिकी से संगम, श्याम-पर्वत (स्याही देवी), शक्तिदेवी, शाली-(सुआल)-कौशिकी-संगम, शक्तीश शिव एवं गुहा-देवी, कुम्भवती-शरावती-संगम, शेषवती-संगम, शेषनागेश आदि का उल्लेख २०५।

चालीसवाँ अध्याय **शेषपर्वत-माहात्म्य** २०६–२०९

शेषगिरि-स्थिति, शेषगुहा, महामाया, सीता-कौशिकी-संगम, अशोकवनिका, सीतावनी, राम-सीता-संवाद, सीतेश्वर २०६–२०८, देवकी नदी २०९।

इकतालीसवाँ अध्याय **[1]गर्गाद्रि-माहात्म्य** २१०–२१२

गर्गाचल की स्थिति २१०, कान्ता आदि १३ नदियों का उद्‌गमस्थल २१०, गार्ग्येश शिव, गर्गाश्रम, गार्गी नदी २११, त्रिऋषि-सरोवर (नैनीताल) का निर्देश २१२।

बयालीसवाँ अध्याय **भद्रवट-माहात्म्य** २१३–२१६

भद्रवट क्षेत्र-वर्णन, चित्रशिला-वर्णन २१३, पुष्पभद्रा नदी के साथ सुतपा ऋषि की तपश्चर्या २१४, चित्रशिला-माहात्म्य २१५-२१६।

तेतालीसवाँ अध्याय **भद्रवट-माहात्म्य** २१७–२१९

'खस' देश के व्याघ्र का आख्यान २१७, 'चित्रशिला' का माहात्म्य २१८–२१९।

चवालीसवाँ अध्याय **पुष्पभद्रातीर्थ-माहात्म्य** २२०–२२१

'चित्रह्रद', शेषनागतीर्थ, चन्द्रभद्रा-संगम, वेणुभद्रा-संगम, चण्डिका देवी, कमल-भद्रासंगम, पुष्पभद्रा-गार्गी-संगम आदि का वर्णन २२०–२२१।

पैंतालीसवाँ अध्याय **भीमह्रद (भीमताल) माहात्म्य** २२२–२२४

सप्तह्रद उल्लेख २२२, भीम'ह्रद' का आविर्भाव २२३–२२४।

छियालीसवाँ अध्याय **सनत्कुमार-सर (नौकुचिया ताल) माहात्म्य** २२५–२२६

सनत्कुमारह्रद-वर्णन-सम्बन्धी आख्यान २२५, फलश्रुति २२६।

सैंतालीसवाँ अध्याय **नलह्रद-माहात्म्य** २२६

ह्रदसम्बन्धी आख्यान २२६।

अड़तालीसवाँ अध्याय **दमयन्ती-सर-माहात्म्य** २२७

ह्रदसम्बन्धी कथा २२७।

उनचासवाँ अध्याय **सिद्धसर-माहात्म्य** २२७

तत्सम्बन्धी कथा २२७।

पचासवाँ अध्याय **सप्तह्रद-माहात्म्य (सातताल)** २२८

ह्रदसम्बन्धी कथा २२८।

इक्यावनवाँ अध्याय **गर्गपर्वत-माहात्म्य** २२९

महादेवी, 'तृषि' सरोवर, महेन्द्रपरमेश्वरी २२९, शिखर के ऊपर शङ्कर २२९, मेनका-काली-कौशिकी-सङ्गम, शाकम्भरी देवी २२९।

बावनवाँ अध्याय **रामशिला-माहात्म्य (अल्मोड़ा)** २३०–२३३

काषायपर्वत (कलमटिया) की स्थिति, विष्णुक्षेत्र (अल्मोड़ा नगर की वर्तमान कचहरी का परिसर), रामशिला-माहात्म्य २३१, राम-हनुमान्-संवाद २३२, रम्भासरित् (रम्फानौली) २३३।

तिरपनवाँ अध्याय **काषायपर्वत-माहात्म्य** २३४

काषायदेवी, महामाया (यक्षिणी) तथा 'पत्रेश' शिव का उल्लेख २३४।

चौवनवाँ अध्याय **स्वयम्भूपर्वत-माहात्म्य** २३५

स्वयम्भूपर्वत (सिमतोला) माहात्म्य तथा स्वयम्भूनाथ का उल्लेख २३५।

पचपनवाँ अध्याय **शाली-माहात्म्य** २३५–२३६

टङ्कण पर्वत की स्थिति, 'शाली' (स्वाल गाड़) का उद्गम-स्थान श्वेतकक्ष-पर्वत २३५, गुणवती-शाली-सङ्गम, शाली-पलवती-सङ्गम, मैनवती-पलवती-सङ्गम, शतवती-दिगवती-सङ्गम, दिगवती-देवीपूजन, दिगवती-वटवती-सङ्गम, तिलवती-चित्रवती-सङ्गम, शाली-शालिवहा-सङ्गम, शक्तीश महादेव, त्रिवटी-तुवटी-शाली-सङ्गम, चिताभस्मधारी शिव का वर्णन २३६।

छप्पनवाँ अध्याय **कपिलाश्रम-वर्णन** २३७–२३८

वृन्दगिरि एवं वृन्दादेवी, कपिलक्षेत्र की स्थिति, कपिलेश्वरमाहात्म्य २३७–२३८

सत्तावनवाँ अध्याय **कपिलेश्वर-माहात्म्य** २३८–२४०

नागों द्वारा कपिलेश की स्तुति २३८, कपिल द्वारा कपिलेश-माहात्म्य, कपिलक्षेत्र का प्रवेशद्वार 'ब्रह्मतीर्थ २३९, कपिलेश-प्रार्थना, कपिला देवी, शङ्खवती-स्नान, काली, क्षेत्रपाल, वाणीपूजन २४०।

अठावनवाँ अध्याय **शाल्मलीपर्वत-माहात्म्य ('सालम' नामक क्षेत्र)** २४१–२४२

शाल्मलीपर्वत की स्थिति तथा वर्णन २४१, अणिमादि विभूतियाँ, भवानी, भुवनेश्वरी, तुष्टि प्रभृति देवियों का उल्लेख २४२।

उनसठवाँ अध्याय दारुकानन-माहात्म्य (पट्टी दारुण) २४३

दारुकानन परिचय २४३ ।

साठवाँ अध्याय दारुकानन-माहात्म्य २४४

दारुकानन-सम्बन्धी जिज्ञासा २४४ ।

इकसठवाँ अध्याय यागीश्वर-माहात्म्य (जागेश्वर) २४५–२६५

ऋषियों द्वारा विष्णु की स्तुति २४५, विष्णु द्वारा भूमण्डल का दर्शन कराया जाना, गङ्गा, अलकनन्दा तथा ज्योतिर्मय लिङ्ग का दर्शन कराना, ऋषियों द्वारा तीर्थ-जिज्ञासा, विष्णु द्वारा दारुकानन की स्थिति बतलाना २४५, जटागङ्गा का उद्‌गम २४७, दारुकानन-माहात्म्य २४८, दारुकानन-परिसर २४९, सुवट-पुत्र सुजामलि का आख्यान २४९-२५०, दारुकानन तीर्थ-वर्णन २५०-२५१, प्रसङ्गवश यागेश्वर-माहात्म्य २५२, लिङ्गोत्पत्तिका आदि स्थान २५२, वाणक गन्धर्व का आख्यान २५२-२५३, उसका यागीश्वर-दर्शन २५३, 'नागेश' की विशेषता २५३, मृत्युञ्जय पूजन २५४, वहाँ के अन्य प्रमुख शिवलिङ्ग—विश्वेश्वर, गोकर्णेश, विन्ध्येश्वर, वाणीश्वर, भुवनेश्वर, महाकाल (काली), 'पुष्टि' देवी, सोमेश्वर, सूर्येश, कमलाकान्त, ब्रह्मा, गर्णश्वर, नन्दीश्वर, नन्दा देवी, चण्डीश्वर, शीतला, वारुणीश, महेन्द्रेश, बालीश, धनदेश, यमेश, कपालपाणि, कोटीश्वर, मुक्तीश्वर, मृडानीश्वर, भैरवेश, चण्डिक २५५, पञ्च केदार, हनुमान्, चक्रवाकीश, वाणीश्वर, चक्रेश्वर, ढुण्डीश्वर, वैद्यनाथ, महेश्वर, गौरी आदि सोलह मातृगण, महेन्द्रादि देव, विद्याधर, गन्धर्व, पुष्पदन्त, अप्सरोगण, गुह्य आदि देवयोनि-विशेष, नाग, अष्ट वसु, द्वादशादित्य, मरुद्‌गण, टङ्कणपर्वतस्थ वृद्ध योगीश्वर २५६, परमेश्वरी, भाण्डीश्वर, त्रिनेत्रेश २५७, तीर्थविवरण—कपर्दितीर्थ के मूल में बाहुसर, बाणतीर्थ, शिवातीर्थ ढुण्ढुतीर्थ, माण्डव्य, बालि, जामदग्न्य, वेणु, मौर्व्य, काश्यप, क्रौञ्च, वाराह (वाराहीपूजन), कमलनाथ एवं भूपतितीर्थ (भूतेश-पूजन) २५८, कपाली, कालाप, प्राणद, लोमहन्ता, कालप्रणाशन, हारीतक, रूपप्रद, सूर्य, शशि, ब्रह्मतीर्थ, धर्माधर्म, ऋणमोक्ष, पापनाशन, सौन्दर्य, नरक, शूलगङ्गास्थ-तीर्थ, महेन्द्र-लवण-त्वाष्ट्र-सारमेय-मृत्युञ्जय-तीर्थ, हेतुवृन्दारक, कौशल्य, माहेन्द्र, वरुण, वागीश्वर, कपर्दी २५९, धनद, विद्याप्रद, काय, शुक्र, गणेश, चण्डीश्वर, वानर, सिंह, कपिल, जयन्त, रूपद, धनद, सूर्य, ब्रह्मकपाल, यमविनिर्णय, देवार्णतारक, सर्वपापप्रणाशन तीर्थ २६०, अलकनन्दातीर्थ, मरीचि आदि सात तीर्थ, शेष, तक्षक, बल आदि ग्यारह तीर्थ, ऐरावत ह्रद, वारुणी, पौतुमी, हाटकेश आदि पन्द्रह तीर्थ, वह्नितीथ २६०, गौरी-जटागङ्गा-सङ्गम, गौरीश्वर, जटागङ्गा-सरयू-सङ्गम, फलश्रुति, यागेश्वर पूजाविधि, फलश्रुति २६१-२६३, ब्राह्मण की दारुकानन-यात्रा एवं स्तुति २६३-२६४, ऋषियों का प्रस्थान एवं फलश्रुति २६५ ।

बासठवाँ अध्याय पर्णपत्रा-माहात्म्य २६६–२६७

पद्मगिरि की स्थिति, पद्मनाभ २६६, चक्री-पर्णपत्रा-सङ्गम, चक्रेश शिव, पर्णपत्रा-सरयू-सङ्गम २६७ ।

तिरसठवाँ अध्याय **कूर्माचलाख्यान** २६८–२७३

'कूर्माचल' (काली-कुमायूं) वर्णन २६८, हनुमान् द्वारा कुम्भकर्ण का किरीट फेके जाने का आख्यान २६९-२७०, भीमसेन द्वारा घटोत्कच को स्थान-समर्पण २७०, तत्सम्बन्धी भीम का आख्यान एवं मूर्छा २७२, सरोवर के रूप में कुम्भकर्ण के सिर का वर्णन २७३ ।

चौंसठवाँ अध्याय **कूर्माचलाख्यान** २७३–२७९

कूर्मशिला (कानदेव) का निर्देश, कूर्माचल की नदियों का परिचय—पाण्डवी, एला, एला-सुवेला-सङ्गम, एलातीर्थ, एलेश शिव, सिद्धतीर्थ २७४, कमठ महातीर्थ, एला-सरयू-सङ्गमस्थ जामदग्न्यतीर्थ, सुतटा-सुवटी-संगम, सुतटीश शिव, ब्राह्मतीर्थ, गन्धर्व-विद्याधर-तीर्थ २७५, भीम-शिवयोगी-संवाद, गिरिजासर, क्रान्तेश्वर महादेव, सूर्यनारायण, नागनाथ, अखिलतारिणी, भीमादेवी २७६, भीम द्वारा प्रार्थना, गण्डकी (गिडियो नदी) का प्रादुर्भाव, लोहवती नदी (लधिया नदी), घटोत्कच-प्रतिमा, बालीश्वर, भोगीश्वर २७८, हिडिम्बा, घटोत्कच २७९ ।

पैंसठवाँ अध्याय **मानसेश्वर-माहात्म्य** २८०–२८१

मानसेय पर्वत की स्थिति, मानसरोवर का निम्न सीमासम्बन्धी आख्यान, फल-श्रुति २८०-२८१ ।

छियासठवाँ अध्याय **कूर्माचल-माहात्म्य** २८२

गण्डकी-सोमवती-संगम में सोमेश्वर, गोशृङ्ग २८२ ।

सड़सठवाँ अध्याय **भवानी-माहात्म्य** २८३–२८६

भवानीवल्लभ गुहा २८३, विदूरथाख्यान २८४–२८५, व्याधों द्वारा वर्णित माहात्म्य, सरस्वतीपर्णपत्रा-सङ्गम, भवानी २८६ ।

अड़सठवाँ अध्याय **गणपर्वतारोहण** २८७–२८९

ऋषियों द्वारा गणेश पूजन सम्बन्धी जिज्ञासा २८७, व्यास द्वारा उसका समाधान, तारकासुर द्वारा पराजित देवों का शिव से निवेदन २८८, ब्रह्मा द्वारा उपाय बतलाना, शिव का गणपर्वतारोहण २८९ ।

उनहत्तरवाँ अध्याय **गणाध्यक्ष-माहात्म्य ('गणनाथ'माहात्म्य)** २९०–२९१

गणेश पूजन का हेतु, गणिका नदी २९०, गणिका-गोत्रजा-संगम, गणिकेश शिव, गिरिजा-पूजा २९१ ।

सत्तरवाँ अध्याय **गोमती-माहात्म्य** २९२–२९३

'गोमती' का उद्गमस्थल वेणुपर्वत, गिरि नामक पर्वत, गोमती की विशेषता २९२, सङ्गवाहिनी-संगम, मात्रीश्वर-पूजन, कोलावती-संगम, श्येनका-संगम, अघविनाशिनी-संगम, उसके मध्य वृद्ध केदार का उल्लेख २९३ ।

इकहत्तरवाँ अध्याय — **वैद्यनाथ-माहात्म्य** — २९४–२९८

गोमती-उद्भवस्थान वेणु पर्वत २९४, गोमती-गारुडी-संगम २९४, वैद्यनाथ (बैजनाथ) महादेव २९४-२९५, वैद्यनाथ-माहात्म्य-शिवशयनभूमि तथा तीर्थ २९५, सूर्यतीर्थ २९६, बिन्दुमाधन २९६, ब्रह्मतीर्थ २९७, ऋषितीर्थ, बाणतीर्थ, गुप्तसरस्वती, गारुडी-तीर्थ, श्येनवती-संगम, चण्डीश, गणेश, क्षेत्रपाल, सुतारा-संगम २९७, गौतमी-वेगवती-संगम, कपाली-पूजन, अहीश्वरी-संगम, कालमेना-संगम, अहिवरा-संगम २९८ ।

बहत्तरवाँ अध्याय — **गोमती-माहात्म्य** — २९९

गोमतीनदी-माहात्म्य २९९ ।

तिहत्तरवाँ अध्याय — **शिवशिरो-माहात्म्यः (तुहिनशिखर)** — ३००–३०३

हिमप्रशंसा ३००, नन्दा-कैलास-मध्य हिमशिखरों 'पञ्चचूली' को शिव का तकिया मानना, दारुकानन (जागेश्वर) में चरण, बागीश्वर में नाभि और कटि, जीवार-पर्वत (जोहार) में गर्दन, भुवनेश्वर में बाई-भुजा-'विभाण्डेश्वर' में दाहिनी भुजा, शिवशिरों का दर्शन-माहात्म्य ३०१-३०३ ।

चौहत्तरवाँ अध्याय — **सरयू-माहात्म्य** — ३०४–३१२

ब्रह्मा, गुहायें, एवं विजया देवी ३०४, वसिष्ठ का हिमालय आगमन, विष्णुचरण चिह्न-दर्शन ३०५, आश्रम में तपस्या, वसिष्ठ की स्तुति, विष्णु द्वारा दर्शित गुफा का वर्णन ३०६-३०७, वसिष्ठ को मानसरोवर का दर्शन, आकाशवाणी ३०८, सरयू प्रवाहित करने हेतु शेषनाग की प्रार्थना ३०९, गरुड की स्तुति, नागों का आत्मसमर्पण, पुनः गरुड तथा विष्णु की स्तुति ३१०-३११, विष्णु के चरण से निकल कर सरयू का प्रवाहित होना, फलश्रुति ३१२ ।

पचहत्तरवाँ अध्याय — **सरयू-माहात्म्य** — ३१३–३१५

सरयूमाहात्म्य—जल की विशेषता, वसिष्ठ आश्रम ३१३, सरयू-मूल विष्णुचरण में विश्वम्भर देव, दानव-निवास-भूमि नागपुर ३१४, कोशलवासियों के हेतु सरयू-प्रवाहित ३१५ ।

छिहत्तरवाँ अध्याय — **सरयू-माहात्म्य** — ३१६–३१७

भद्रतुङ्गा का सङ्गम विशेष उल्लेखनीय, मैनकह्लद, कैतवी-संगम, बाला-संगम, कागवती-संगम ३१६, भद्रतुङ्गा का उद्गमस्थल, पञ्चपावन पर्वत, सुभद्रा शिला ३१७,

सतहत्तरवाँ अध्याय — **राक्षसाख्यान (सरयूमाहात्म्य)** — ३१८–३२०

सरयू-भद्रतुङ्गा-संगम की विशेषता, भद्रतन्त्र का आख्यान, राक्षस-संवाद ३१८-३१९, सरयू-स्नान-माहात्म्य ३१९-३२० ।

अठहत्तरवाँ अध्याय — **सरयूक्षेत्राख्यान–नीलपर्वत (कोकस का डांडा) (बागेश्वर)** — ३२१–३५३

भद्रतीर्थ, सरयू-रेवा-संगम, कोका नदी, सरयू-नागनारायणी-संगम, नागेश्वर शिव,

धात्रीश शिव ३२१, दुर्गतिहारिणी दुर्गा, रिष्टवती-संगम, रिष्टक देव, दुर्गा-सङ्गम, गोमती-सरयू-मध्यवर्ती नीलपर्वत ३२२, सूर्य-अग्नि-तीर्थ, 'क्षेत्रराज' की विशेषता ३२३, चण्डीश का उत्तर वाराणसी बनाने के लिये भेजा जाना ३२४, गोमती-सरयू-संगम-मध्य उत्तर वाराणसी की रचना का शुभारम्भ ३२५, आकाशवाणी, शिवलिङ्ग दर्शन ३२६, गालबाख्यान, जानपद-गालब-संवाद ३२७–३२८, बागीश्वर दर्शन ३२९, सनत्कुमारगाथा, नीलपर्वत पर मार्कण्डेय का शुभागमन ३३१, वसिष्ठ द्वारा शिव की स्तुति ३३२, पार्वती का गोरूप एवं शिव का सिंहरूप-धारण, सरयू का प्रकट होना, व्याघ्रेश्वर नाम का कारण ३३३, मार्कण्डेय-शिला ३३४, विष्णु द्वारा सरयू की प्रशस्ति, 'शिवनाभि' के रूप में बागीश, बागीश-माहात्म्य ३३५, आग्नीध्राख्यान ३३६, दुर्वासा द्वारा वर्णित पापनाशक उपाय ३३६–३३८, प्रासङ्गिक सुबलाख्यान ३३८, दुर्वासा के द्वारा बागीश्वर की महिमा ३४०–३४१, प्रवेश-निर्गम मार्ग––'वरुणा' के मध्य वह्नितीर्थ, प्रजापति-पूजन, बाणह्रद, शमद-तीर्थ, ईशानदेव, गोदावरी-कालिन्दी-संगम, पापप्रणाशन तीर्थ, चन्द्रोदयी देवी, बागीश्वर तीर्थ, रुद्रकुण्ड, पुराणतीर्थ, ऋणमोचन तीर्थ, भूकुण्ड, चक्रतीर्थ, चन्द्रभागा-सङ्गम, चन्द्रेश्वर, शेषभागासङ्गम, शेखरेश्वर ३४२, गुन्जन ह्रद, बिन्दुमाधव, भागीरथी, सेतुबन्धेश्वर, ध्रुवक्षेत्र-ध्रुवेश्वर, कर्णाटक क्षेत्र, रामतीर्थ, पुष्कर क्षेत्र, सुरभीसङ्गम—सुरभी देवी, नन्दासङ्गम, कर्णमाटीश्वर, चन्द्रेश्वर, त्रिविक्रम, अत्रि-तीर्थ, कुबेरतीर्थ ३४३, कपालतीर्थ, सूर्यकुण्ड, वाणक्य तीर्थ-वाणक शिव, काश्यप-काश्यपी, अविमुक्ततीर्थ—अविमुक्तेश्वर, हंसतीर्थ, रुद्रतीर्थ, रुद्रद्वार तीर्थ, नन्दिरुद्र, महाकाल, क्षेत्रपाल, काली-कपाली, जह्नुजा, सावित्री, शारदा ३४३, ब्रह्मतीर्थ, शेषतीर्थ, प्रभासतीर्थ, कनखलतीर्थ, सर्वपापप्रमोचन तीर्थ, विमलतीर्थ, हरितीर्थ, विश्वनाथतीर्थ, विश्वनाथपूजन, विद्याधर क्षेत्र—सङ्गमतीर्थ, मार्कण्डेयशिला, त्रिवेणी-महादण्डक्षेत्र, बागीश्वर अन्तर्गृह पूजा प्रकार ३४५–३४६, स्तुति ३४६, नीलकण्ठ-पूजन, फलश्रुति ३४७, गालव द्वारा क्षेत्रप्रशस्ति ३४७, व्यास द्वारा प्रशस्ति ३४८–३४९, वामेश्वर, इन्दुतीर्थ, सत्यक पर्वत, ब्रह्मा, नारदह्रद, ब्रह्म-नारद तीर्थ ३५०, पल्वलगतीर्थ, वह्नितीर्थ, अग्निपर्वत, अग्नितीर्थ, अग्निवती नदी, कालीय ह्रद, गणिकासङ्गम—गणेश्वर, ताला नदी ३५१, निषधा-सङ्गम, कोकिला-सङ्गम, सुग्रीवतीर्थ, भद्रा—भद्रेश्वर ३५२, बागीशक्षेत्र-सीमा ३५३ ।

उनासीवाँ अध्याय भद्रा-माहात्म्य ३५३–३५५

ऋषियों द्वारा नाग-यज्ञ-जिज्ञासा ३५३, वेदव्यास द्वारा उत्तरगिरिवासी नागों को नागपुर का ब्रह्मा द्वारा आवण्टन ३५३, नागपुर (नाकुरी) की स्थिति ('जोहार' के पश्चिम की ओर), 'नाग' शिवपूजक ३५४, मूलनारायण द्वारा जलानयन की प्रार्थना ३५४, फेनिल द्वारा परामृष्ट नागों से की गई गङ्गा की प्रार्थना, 'भद्रा' का आविर्भाव ३५५ ।

अस्सीवाँ अध्याय गोपीश्वर-माहात्म्य ३५६–३६०

गोपीवन की स्थिति, गोपीश्वर महादेव ३५६, नागों द्वारा कामधेनु की सेवा ३५७,

गोचरभूमि (गोपीवन) की रचना, नागकन्याओं द्वारा गोपीश्वर की आराधना, शाण्डिल्यगुहा, सरस्वती-गङ्गा, नागकन्याओं द्वारा गुहा-प्रवेश ३५८-३५९, गोपियों (नागकन्याओं) द्वारा गोपीश्वर की प्रार्थना एवं शिव का प्रकट होना ३५९, गोपीश्वर-माहात्म्य ३६० ।

इक्यासीवाँ अध्याय भद्रा-माहात्म्य ३६१–३६३

गोपीवन-माहात्म्य एवं लिङ्गवर्णन—नागपुर-पर्वत से लेकर 'भद्रपुर' तक का क्षेत्र गोपीवन, भद्रा से दाहिनी ओर भद्रपुर (फेनिल नाग, भद्रनाग का स्थान), भद्रवती देवी ३६१, सुभद्रा, भद्रकाली, काली देवी, भद्रेश, भद्रा के मूल में चटक, श्वेतक तथा कालीय नाग का वास, भद्रा के दाहिनी ओर गोपीश्वर, भद्रा-शेषवती-सङ्गम में रुद्रतीर्थ, सरस्वती-भद्रा-सङ्गम, ब्रह्मतीर्थ, नागतीर्थ, कनखलतीर्थ, वेगवती-भद्रा-सङ्गम ३६२, ढुण्ढुसर एवं ढुण्ढुवती, सरस्वती-भद्रा-सङ्गम, भद्रा-सरयू-सङ्गम, शिवसर ३६३ ।

बयासीवाँ अध्याय : नागपर्वत-माहात्म्य ३६४–३६७

प्रमुख नागों एवं शिवलिङ्गों का आख्यान—'खर' नामक नाग, गोपालक, काली देवी, गुप्तसरस्वती नदी, कोका, कोटीश्वरी, कालिका, भद्रा देवी, कनक पर्वत-शिखर पर शाङ्करी देवी, फेनिल नाग ३६४, त्रैलोक्य नाग, मूलनारायण नाग, उसकी माता पुङ्गवी ३६४–३६५, मूलनारायण की उत्पत्ति का आख्यान ३६६–३६७ ।

तिरासीवाँ अध्याय नागाख्यान ३६८–३७४

नागवंशवर्णन—नागनारायणी नदी के मध्य पुङ्गवी का पूजन, नागनारायणी-चन्द्रिका-सङ्गम, नागनाथ, नागनारायणी-शैवी-सङ्गम, दुर्गा महादेवी, दुर्गा-सोमवती के मध्य सर्वदुर्गप्रणाशन शिव ३६८, शेषनाग-पूजन, त्रिपुरनाग, सुपत्रा देवी, सुचूड़ नाग, धवल नाग, वेलावती, तक्षक, इलावर्त, कर्कोटक, धनञ्जय नाग ३६९, सुराष्ट्र, कालीय नाग, मधु महानाग, वासुकि-नाग, नागह्लद, मधुमती नदी ३७०, नागह्लद एवं मधुमती नदी की कथा, इलावर्त नाग ३७१, कालीय नाग का वर्णन ३७१–३७२, नागवती गुहा, शकटीनदी-संगम, सुनन्दा देवी पूजन ३७२, कुगवती देवी, कुगा-मधुमती-संगम, मधुमती-रामगंगा-संगम, कण्वगिरि, कण्वा देवी, पुण्डरीक नाग, कुण्डली नाग, होमगिरि, पृथुगिरि ३७३, पृथूदक तीर्थ, पृथा नदी, सुनन्दा आदि देवियाँ, वासुकि नाग, बोधन ऋषि, बहुला नदी, शतरूप महानाग, पिङ्गल महानाग एवं भुजङ्गा नदी आदि का वर्णन ३७४ ।

चौरासीवाँ अध्याय नारायणी-माहात्म्य ३७५–३७८

त्रिपुरसुन्दरी-माहात्म्य ३७५, गुहास्थ मूलनारायणी देवी ३७६, सुग्रीवोपाख्यान ३७७–३७८ ।

पचासीवाँ अध्याय नागपर्वत-माहात्म्य ३७९

'बहुला' देवी, फेनिला-संगम, कोटीश्वरी, कोका-बहुला के मध्य 'शिव' ३७९ ।

छियासीवाँ अध्याय वृद्धपूगीश्वर-माहात्म्य ३८०–३८१

गौर नाग-गौरी नदी, बालि-नाग, पिङ्गल-नाग, वृद्धवालीश्वर, गौरी-भुजङ्गा-सङ्गम, भुजङ्गेश, लुम्बकेश शिव, गौरी, लुम्बका-गुहा, लुम्बकेश-ह्रद ३८०–३८१।

सतासीवाँ अध्याय गौरी-माहात्म्य ३८१

गौरी नदी के मध्य बालीसर, गौरी-रामगङ्गा-सङ्गम ३८१।

अठासीवाँ अध्याय पूगीश्वर-माहात्म्य ३८२–३८५

गौरी के दक्षिण भाग में पूगीश्वर की स्थिति, उनका वैशिष्ट्य ३८२, पूगीश्वर-यात्रा-वर्णन, पूगीश्वर नाम का कारण ३८३–३८४, जटागङ्गा–गौरी-सङ्गम, रुद्र-तीर्थ, पूजाप्रकार, फलश्रुति ३८५।

नवासीवाँ अध्याय नागपुर-माहात्म्य ३८६–३८७

फेनिला-सरयूसङ्गम, कुहकह-पूजन, त्रिपुरा सर, त्रिपुरा देवी, कुहकहा-सुमेना-सङ्गम, मेना-सुषवती सङ्गम, शशतीर्थ ३८६–३८७।

नब्बेवाँ अध्याय चण्डिका-माहात्म्य ३८७–३९१

नागगिरि की स्थिति, उसके दक्षिण में गिरिजा, वहीं गुहा में चण्डिका, चण्डिका-माहात्म्य, इक्ष्वाकुवंशी दिलीप का आख्यान, दिलीप-नकुल-संवाद, प्रासङ्गिक पथिक-आख्यान ३८७–३९१।

इक्यानवेवाँ अध्याय नागपर्वत-माहात्म्य ३९२–३९६

धात्री-नदी-माहात्म्य, तुषवती-फेनिला-सङ्गम, तुषेश शिव, शाङ्करी-कुहका-सङ्गम, भीमसेनतीर्थ, माहेश्वरी, विन्ध्येश्वर ३९२, कोकसर, सरयू-फेनिला-सङ्गम ३९३, देवतीर्थ, बोधनतीर्थ, जयन्ती देवी, जयन्ती-कलापा-सङ्गम, कलापीश, होमवती-जयन्ती-सङ्गम, कोकिला देवी, मङ्गला ३९३, शान्तेश्वर, ढुण्ढगिरि, ढुण्ढीश, जयन्ती-सरयू-सङ्गम, जयन्तीश पूजा, चन्द्रभागासङ्गम, पिकवती सङ्गम, पिकेश शिव, चक्रतीर्थ, जामदग्न्य तीर्थ, वेला-सङ्गम, नलतीर्थ, विन्ध्यवती-सरयू-सङ्गम, वरवती-सरयू-सङ्गम, नागतीर्थ, नागवती-सरयू-सङ्गम, छत्रशिला ३९४, छत्रशिला-माहात्म्य, हंसतीर्थ, मार्कण्डेयतीर्थ ३९५–३९६।

बानवेवाँ अध्याय सरयूतीर्थ-माहात्म्य ३९७

दारुगिरि-परिचय, नरकतारिणी, विश्वम्भर, सुषेणा-बाला-जाबाला-नरकतारिणी सङ्गम, कालापी देवी, शेखर महादेव, नरकतारिणी-सरयू-सङ्गम, गौतमतीर्थ ३९७।

तिरानवेवाँ अध्याय जटेश्वर-माहात्म्य ३९८–३९९

जटागङ्गा का उद्गम (दारुकानन), जटेश्वर महादेव, सरयू-जटागङ्गा-सङ्गम, वहाँ का यज्ञ-विधान ३९८–३९९।

चौरानवेवाँ अध्याय सरयू-माहात्म्य ४००–४०१

सप्तर्षितीर्थ, वह्नितीर्थ, योनितीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, गुप्तसरस्वती-सरयू-सङ्गम, यमुना-सरयू-

सङ्गम, प्रजावतीसङ्गम, बौद्धसर, बौद्धशिला, रामगङ्गा-सङ्गम ४००, नारद'भीष्म' समागम का उपक्रम ४०१ ।

पचानवेवाँ अध्याय **रामेश्वर-माहात्म्य** ४०२–४१२

ब्रह्मा द्वारा गौतम को कहा गया आख्यान, प्रसङ्गवश सरयू तथा रामगंङ्गा का उद्गम वर्णन, उनके मध्य 'रामेश्वर क्षेत्र, उस क्षेत्र की विशेषता ४०२–४०३, भगवान् राम का वहाँ आगमन ४०४, प्रसङ्गवश वेदसह का आख्यान ४०५–४०७, रामेश्वर का चमत्कार, प्रवेश-निर्गम-मार्ग, 'पर्णपत्रा' (पनार नदी) 'सरयू' संगम, प्रवेशद्वार, पत्रेश, सुपत्रा देवी, शेषगंगा-संगम, कुशावर्त तीर्थ, बालितीर्थ, जलबालीश्वर ४०८, बौद्धतीर्थ, गुप्तसरस्वती-सरयू'संगम, शाङ्करी, वायुसर, शैलस्थल, शैलजा, भैरवेश, भागीरथी-संगम, दण्डतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, रामतीर्थ, जामदग्न्यतीर्थ, क्षेत्रपाल, रुद्रतीर्थ, बहुलेश्वर, नन्दिकेश सर, नन्दिकेश शिव ४०९, सूर्यतीर्थ (गुप्तकौशिकी संगम), यक्षतीर्थ, विश्वकर्मा-तीर्थ, यक्षवती-सरयू-संगम पातालशिला (स्थाली-संगम) ४१०, रामेश्वरपूजाविधि—प्रथम शैलजा आदि का पूजन कर रामतीर्थ के अन्तर्गत ब्रह्मतीर्थ-स्नान, नन्दिकेश तथा देवीपूजन, रामेश्वर पहुँच कर पूजन, फिर निष्क्रमण ४११, फलश्रुति ४१२ ।

छियानवेवाँ अध्याय **शैलपर्वत-माहात्म्य** ४१३

सरयू'रामगंगा-मध्यवर्ती पर्वत के सम्बन्ध में जिज्ञासा, शैलपर्वत (श्वील) की विशेषता ४१३ ।

सत्तानवेवाँ अध्याय **शैलपर्वत-कालिका-माहात्म्य** ४१४–४१७

शैलपर्वत में कालिका की स्थिति, उनका नामान्तर कौशिकी, उनकी महत्ता, शैल पर्वत पर निवास करने का कारण, देवी द्वारा इन्द्रादि देवों को सान्त्वना देना ४१६, शुम्भादि दैत्यों के वधोपरान्त काली नाम से प्रसिद्धि, फलश्रुति ४१७ ।

अठानवेवाँ अध्याय **शीतला-माहात्म्य** ४१८–४१९

अम्बिका देवी, जयकरी देवी, चामुण्डा, शीतला देवी ४१८, शीतला'स्तोत्र, फलश्रुति ४१९ ।

निन्यानवेवाँ अध्याय **मुक्तेश्वर-माहात्म्य** ४२०

शीतला के पश्चिम में गुफा, मुक्तिनाथ, वाणीश्वर, खगवती-रामगंगा-संगम ४२० ।

सौवाँ अध्याय **भृगुपर्वत-माहात्म्य** ४२१–४२२

भृगुपर्वत की स्थिति, भृगु पुण्याश्रम, भार्गवी गुहा ४२१, भृगु का दारुपर्वत पर निवास करने का हेतु, भार्गवी नदी ४२२ ।

एक सौ एकवाँ अध्याय **भृगुपर्वताख्यान** ४२३–४२४

जलमध्यस्थ देवी का पूजन, महाकाल की पूजा, जयन्ती'पूजन, घण्टाकर्ण की पूजा, स्कन्दि-रिटि-पूजन, सुरभीपूजन ४२३, खगवती के मध्यस्थ शङ्कर पूजन, कदलीवन, हाटकेश्वरपूजन, फलश्रुति ४२४ ।

एक सौ दोवाँ अध्याय भृगुतुङ्ग-माहात्म्य ४२५
शुकतीर्थ, सिद्धतीर्थ, गुहास्थ महेश्वर, केदारी परमेश्वरी, भृगु के उत्तर में विद्याधर नाग आदि का वास ४२५।

एक सौ तीनवाँ अध्याय भुवनेश्वर-माहात्म्य ४२६–४६१
जनमेजय की जिज्ञासा, सूत का उत्तर, पुनः ऋषियों की जिज्ञासा ४२६, पाताल-भुवनेश्वर की स्थिति, माहात्म्य ४२७, पूजाविधि ४२८, पुनः ऋषियों की जिज्ञासा ४२९, व्यासजी द्वारा पाताल का माहात्म्य-वर्णन, भुवनेश्वर के वास का कारण ४३०, ऋषियों द्वारा पाताल को प्रकाश में लाने की जिज्ञासा ४३०, व्यास द्वारा ऋतुपर्णाख्यान का निर्वचन, द्वारस्थित राजा को द्वारपालों द्वारा प्रवेश का मार्ग बताना ४३१, शेष का दर्शन होना ४३२, ऋतुपर्ण द्वारा की गई स्तुति ४३२–४३३, शेषनाग द्वारा राजा की कुल-शील जिज्ञासा ४३३, ऋतुपर्ण का उत्तर ४३३–४३४, शेष द्वारा अभय वरदान ४३४, ऋतुपर्ण का अपने को शैव बतलाना ४३४, शेष द्वारा गुहास्थ परिसर का परिचय दिया जाना तथा ऋतुपर्ण को दिव्य चक्षु प्रदान करना ४३५–४३६, दिव्यदृष्टिसम्पन्न राजा का देवदर्शन तथा पूजन करना ४३७–४३९, गुहास्थ समग्र मार्गों का दर्शन एवं पूजा-पिण्ड-दानादि करना ४३९–४४४, पातालस्थ जल की महिमा ४४५, शेष द्वारा ऋतुपर्ण को देवमण्डल का दर्शन कराना ४४६, भुवनेश्वर का माहात्म्यवर्णन ४४७, भिन्न भिन्न देवों आदि द्वारा विभिन्न तिथियों में पूजा प्रयोग ४४८–४५०, स्मर, स्मेर तथा स्वधामा—गुहाओं का दर्शन ४५१–४५२, परमज्योति एवं महापुरुष का दर्शन ४५३, केदारमार्ग का दर्शन ४५३–४५४, अन्य देवों का दर्शन ४५५–४५८, शेष-नाग द्वारा गोपनीयता की शपथ दिलाना ४५८, ऋतुपर्ण का प्रस्थान ४५९, गृह-प्रत्यागमन ४५९–४६०, पुत्रों को रत्नादि समर्पण ४६०, प्रमादवश अपने पुत्र को वृत्तान्त बतलाना ४६०, ऋतुपर्ण का सदेह सत्यलोकगमन ४६०–४६१।

एक सौ चारवाँ अध्याय भुवनेश्वर-माहात्म्य ४६२–४६३
भृगु द्वारा पातालभुवन-क्षेत्र का वर्णन ४६२, वृद्धभुवनेश्वर की पूजा, कोटरा देवी, शीतला, गणेश्वर, गणवती—भागीरथी-सङ्गम, शिवसर आदि का वर्णन ४६२–४६३।

एक सौ पाँचवाँ अध्याय रामगङ्गा-जामदग्न्यमाहात्म्य ४६४
दारुपर्वत'(द्यारीधुर)'माहात्म्य के प्रसंग में ८६ गुहाओं का संकेत, रामगङ्गा में बाणतीर्थ, प्राणवती-संगम, जयन्त-तीर्थ, दुन्दुवती नदी ४६४, महादेव और कर्णिका देवी ४६४–४६५।

एक सौ छठवाँ अध्याय बालेश्वर-माहात्म्य ४६५–४६९
शिव की महिमा ४६५–४६६, बालेश्वर की स्थापना ४६७, बाली द्वारा शिव की स्तुति ४६७, बालक के रूप में शिव का प्रकट होना ४६८, बालक का शिवलिङ्ग में प्रविष्ट होना ४६९, बाली का वापस होना ४६९।

एक सौ चौबीसवां अध्याय **शमीपर्वत-माहात्म्य** ५०७

श्यामा-चर्मण्वती के मध्यगत 'शमी'पर्वत, शमवती-पूजन, शमी-सुभगा-चर्मण्वती-सङ्गम ५०७।

एक सौ पचीसवाँ अध्याय **मल्लिकार्जुन-माहात्म्य** ५०८–५११

अर्जुन-पर्वत की स्थिति ५०८, अर्जुनेश्वर-माहात्म्य, यौनकाख्यान, भृगुतुङ्गाश्रम, भृगु द्वारा भिल्ल को चर्मण्वती-श्यामा-सङ्गम में जाने के लिए कहा जाना ५०९, चर्मण्वती-श्यामा-जाह्नवी-सङ्गम, धर्मपर्वत, धर्मेश, धर्मशिला, मल्लिका-अर्जुनेश-पूजा ५१०, मल्लिकार्जुन नाम पड़ने का कारण ५११।

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय **पर्वताख्यान** ५११–५१२

धेनुक पर्वत, ढुण्ढुपा देवी, कौशिक पर्वत, कामदादेवी, ज्वालागिरि, ज्वालावती, नवा-चर्मण्वती-सङ्गम ५११, काकपर्वत, शशकदेव, विल्ववतीगुहा, बिल्वेश्वर (शतलिङ्ग), भृङ्गी आदि की पूजा, वृन्दारक पर्वत-वृन्दारकी देवी ५१२।

एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय **चर्मण्वती-माहात्म्य** ५१३–५१४

चर्मण्वती-उद्गम-जिज्ञासा, चर्मवासा आख्यान, सूक्ष्मासर में स्नान एवं तपस्या ५१३, वृन्दार-पर्वत में तपस्या, मुनि के स्नान से उत्पन्न चर्मण्वती का महत्त्व ५१४।

एक सौ अठाईसवाँ अध्याय **चर्मण्वती-माहात्म्य** ५१५–५१७

उद्भव के सम्बन्ध में विवरण—भागीरथी के समान पवित्र, काक-चन्दन पर्वतों के मध्य प्रवाहित, मूलस्थ गुहा में पुरुषोत्तम, सत्यव्रत कुण्ड, विश्वनाथ—पूजन, जलावर्ततीर्थ, बाला-चर्मण्वती-सङ्गम, काक-चर्मण्वती-सङ्गम, मूकपर्वत, महादेव-पूजन, स्फटिकोपम शिव की पूजा, चर्मण्वती-चन्द्रभागा-सङ्गम, चन्द्रेश्वर-पूजा, गण्डकी-चर्मण्वती-सङ्गम, वारिजतीर्थ, चन्द्रवती आदि चार नदियाँ, सत्या-वाटी-तूर्णा-संगम ५१६, शाङ्करी-चर्मण्वती सङ्गम, शङ्करतीर्थ, महेश्वर पूजा, जाह्नवी-चर्मण्वती-संगम, प्लक्षादि नागपूजा ५१७।

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय **चर्मण्वती-माहात्म्य** ५१८–५२०

जाह्नवी-उद्गम-जिज्ञासा—'गण' तथा 'विन्ध' पर्वत के मध्य नदी का निकलना, विश्वरूप पूजन ५१८, तीर्थ-वर्णन—जाह्नवी-धेनुका-सङ्गम, वृश्चिका-सङ्गम, दधिजा देवी, शेषादि तीन सर, भद्रा-सङ्गम, शुकवती-सङ्गम, भ्रामरी-पूजा, नावुक-पूजा, शेषा-वातवती-कुलीरा-जाह्नवी सङ्गम, मन्दिराद्रि-नागपर्वत के मध्य जाह्नवी, शङ्कर महातीर्थ, धीवरी-चर्मवती-सङ्गम ५१९, मेनका-मन्दोदरी-सङ्गम, चर्मण्वती-श्यामा-सङ्गम ५२०।

एच सौ तीसवाँ अध्याय **शाल्मलिपर्वत-माहात्म्य** ५२०–५२१

राजततीर्थ, मलय-पर्वत, मलयवासा देवी, भगवती नदी, शिरीषका-श्यामा-सङ्गम ५२०, शाङ्करी नदी, शङ्करपूजा, मङ्गला तीर्थ, नागतीर्थ, गोमती-सङ्गम, वायुतट,

बोधकारिणी-श्यामासङ्गम, तारिणी-उपकारिणी-सङ्गम, तारकेश हर, भवानी, बोधिनी-सङ्गम, वायुतट, तिमिर पर्वत, बन्धूक पर्वत से मिला शाल्मलि पर्वत ५२१।

एक सौ इकतीसवां अध्याय शाल्मलिपर्वत-माहात्म्य ५२२

शाल्मलाद्रि कथा—शतलिङ्ग द्वारा शक्ति की उपासना, देवाल क्षेत्र में शक्तिपूजा, गुहा में स्थित वाराही, शतलिङ्ग महादेव ५२२।

एक सौ बत्तीसवां अध्याय श्यामा-माहात्म्य ५२३

शारदा-श्यामा-सङ्गम, आसुरी-सङ्गम, शमद सर, बटकतीर्थ, श्यामा-सरयू-सङ्गम ५२३।

एक सौ तेतीसवां अध्याय स्थलकेदार-माहात्म्य ५२४

स्थाकिल पर्वत-जिज्ञासा, सरयू श्यामा के मध्य स्थाकिल पर्वत, शिवस्थल, स्थलकेदार शिव तथा माहात्म्य ५२४।

एक सौ चौंतीसवां अध्याय स्थाकिलपर्वत-माहात्म्य ५२५–५२६

सत्या-बिल्ववती-सङ्गम, ढुण्ढीश्वर-पूजा, अर्जुनपर्वत, सिद्धगुहा, सिद्धेश्वर, सुरपर्वत, सुरभागा-देवभागा सङ्गम, बौद्धेश, बटकेश, कोटवी नदी, गुफा में कोटवी देवी ५२५, देवतीर्थ, शेषेश, शीतला, सुरभागा-श्यामा सङ्गम ५२६।

एक सौ पेंतीसवां अध्याय सरयू-माहात्म्य ५२६–५२९

सरयू जल महिमा, केशवतीर्थ ५२६, काकसर, अनङ्गसर, कन्दर्पसर, कन्दर्पपूजन, कोटवी-सङ्गम-स्नान, हरतीर्थ-स्नान, सुतटी-संगम, गण्डकी-संगम, गणाश्रयह्लद-स्नान, सुराणकतीर्थ, नन्दा-सरयू-संगम, शतरुद्रा-संगम, एला-संगम ५२७, जामदग्न्य-वागीश्वर तीर्थ, जामदग्न्य-ह्लद, एलातीर्थ, एलेश्वर, बटेश्वर, पूतना-सङ्गम एवं पुत्रदतीर्थ ५२८, गोविन्द पूजन, पाण्डवी-सङ्गम ५२९।

एक सौ छत्तीसवां अध्याय पर्वत-माहात्म्य ५२९–५३१

सरयू से सम्बद्ध पर्वत—घण्टागिरि, धुन्धु-पर्वत, धुन्धुवती देवी, धूमवती नदी, धूमकेतु-आश्रम, घण्टाकर्ण एवं भगेश्वर पूजन, शतरुद्रवती नदी तथा सरयू-सङ्गम, शिवगिरि, वैष्णवी, पीलुका-भगवती-शतमूला-सङ्गम ५२९–५३०, कौन्तेयेश ५३१।

एक सौ सेंतीसवां अध्याय केदार-माहात्म्य ५३२–५३६

रावल-पर्वत की जिज्ञासा, केदारमहाक्षेत्र, सुकलोपाख्यान, रावल पर्वत की स्थिति, स्थलकेदार की स्थिति, प्रवेश-मार्ग, वराटी-कोटिली-सङ्गम, वराही-सङ्गम, ह्लद-मध्यवर्ती कोटिलिङ्ग, शिवा-गोदावरी-सङ्गम, सत्यशैल ह्लद-स्नान, हरप्रियापूजन, वराटी नदी, टोपक ह्लद, चन्द्रभागा नदी, वराटी-वराही-सङ्गम तथा चन्द्रेश-पूजा, धर्मशिला, केदारकी देवी देवी-पूजन ५३५, भावन-क्षेत्र ५३६।

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय — **कलावती-माहात्म्य** — ५३७–५४०

चन्दन पर्वत की स्थिति, नन्दासर ५३७, नन्दादेवी, माणवकाख्यान, शाण्डिल्याश्रम की स्थिति, कालिका की स्तुति ५३८, नन्दासर से कलावती का प्रवाहित होना, शाण्डिल्य द्वारा कलावती का माहात्म्य वर्णन ५३९–५४० ।

एक सौ उनचालीसवाँ अध्याय — **कलावती-माहात्म्य** — ५४०–५४१

नन्दासर-स्नान, जयप्रदा देवी, कलावती के मूल में काली-पूजा, चन्द्रोदय तीर्थ, वामनी-संगम, वामनेश, शाङ्करी, माण्डव्याश्रम, माण्डवी तथा माण्डव्येश-पूजन ५४०, मन्दिरा-सङ्गम, मन्दिरेश्वरपूजन, भूतेश्वर-भूतेश्वरी, क्रान्ति-संगम, क्रव्यादनाथ, वाराही-गिरिजा-पूजन कैलासेश तथा ऋष्यश्रृङ्ग-पूजा, वेत्रवती-संगम, वेत्रवती-संगम ह्रदस्थ तारकेश्वर, शाङ्करी-कलावती के मध्य शाण्डिल्याश्रम, माणवक तीर्थ ५४२ ।

एक सौ चालीसवाँ अध्याय — **कलावती-माहात्म्य** — ५४२–५४३

'शाङ्करी'-माहात्म्य-वर्णन, शेषव्रत ब्राह्मणाख्यान, कलभा नदी, ऐरावत का बालक, करालवदना देवी, शाकवती आदि छह नदियों का शाङ्करी के साथ संगम, शृङ्गाल पर्वत, प्रभावती-पूजा, तुषा-संगम ५४३, बाजर-संगम, कलावती-शाङ्करी-संगम ५४३–५४४ ।

एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय — **पर्वताख्यान** — ५४४–५४५

शङ्करतीर्थ, नृगतीर्थ, हिमाद्रि-कलावती-संगम, गोपी-पर्वत, स्वर्णसीमतीर्थ, आधारशक्ति-पूजन, आधारेश शिव, त्रिनदी-संगम, चीरधारिणी महेश्वरी, कलावती-सीता-संगम ।

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय (क) — **ऊरुपर्वत वर्णन** — ५४५–५४६

हंस-बकाख्यान, पुलह ऋषि, धेनुक गण, महेश्वर-पूजन ५४५–५४६ ।

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय (ख) — **सीतानदी-माहात्म्य** — ५४६–५५०

ऊरु पर्वत की महत्ता, धारा-सीता-संगम, धारातीर्थ, कल्पगिरि की विशेषता, नवग्रहा नदी, ईश पर्वत, कन्या पर्वत, कोटीश्वर, ईश्वरी-सीता-संगम, तन्त्रिका गुहा, धवलगण, अम्बिका-सीता-संगम, शेषेश शिव, अम्बिकापुर, धर्मेश्वर, गोमती-सीता-संगम, धूमपर्वत, धूम्राक्षी देवी, विष्णु भगवान्, हरिताचल, धत्तूरा नदी, धेनुकतीर्थ, धूम्रवती-सीता-संगम, धूमकेतु शङ्कर, बाणतीर्थ, काकतीर्थ, लक्ष्मी-सीता-संगम, लक्ष्मीतीर्थ, तीर्यत्रिका-सीता-संगम ५४६–५४९, चन्द्रभागा सीता-संगम, धात्री-सीता-संगम ५५० ।

एक सौ तेतालीसवाँ अध्याय — **वह्नितीर्थ-माहात्म्य** — ५५०–५५२

धराद्रि पर और्व की तपस्या ५५०, वह्नितीर्थ की स्थिति, उसका विस्तार, अग्नीश्वर देव ५५२ ।

एक सौ चवालीसवां अध्याय सीता-माहात्म्य ५५२

कौशिकतीर्थ, सञ्ज्ञातीर्थ, ऋणमोचिनी-सीता-संगम, सूष्मजा-सीता-संगम, बहुला-सीता-संगम ५५२ ।

एक सौ पैंतालीसवां अध्याय सूष्मासरोवर-माहात्म्य ५५३-५६२

जनमेजय की जिज्ञासा ५५३, श्रीकृष्ण-नारद-संवाद ५५४, चन्दन पर्वत की स्थिति, वहाँ सूष्मासरोवर, उसका माहात्म्य ५५५, स्मितहासिनी देवी, अत्रि की तपस्या, सूष्मा देवी की स्थापना ५५६-५५७, प्रासङ्गिक ककुत्स्थाख्यान, राजा और रानी के मध्य संवाद, वाराही देवी का सूष्मा रूप धारण करना ५६८-५६१, श्रीकृष्ण द्वारा नारद को सुनायी गयी कथा का उपसंहार ५६२ ।

एक सौ छियालीसवां अध्याय सूष्मासरोवर-माहात्म्य ५६३-५६४

सूष्मासर-प्रवेश-निर्गम-मार्ग, कालिन्दी-ह्लद ५६३, काकाद्रिह्लद, वीरजल, तुङ्गेश गणनायक, वाराही देवी, जलजा देवी, शिखरवासिनी देवी ५६३, स्वर्गद्वार, सूष्मा-सरोवर स्नान, सूष्मा-सुरभी-पूजन, भगवतीक्षेत्र, देवी-पूजा, फलश्रुति ५६४ ।

एक सौ सैंतालीसवां अध्याय गोमन्त-पर्वत-माहात्म्य ५६५-५६७

गोमन्त पर्वत की स्थिति, वहाँ ६६ गुहायें, गण्डकी आदि अनेक नदियाँ, गण्डकी-कलावती-संगम, खंगेश शिव ५६५, यक्षगा-संगम, दृष्टिकेदार, लवङ्गा, वाराही, खर्जूरक्षेत्र, विश्वेश्वर, शुभा आदि गुहायें, तारिणी-सीता-संगम ५६६-५६७ ।

एक सौ अड़तालीसवां अध्याय सूष्मजा-सरोवर-माहात्म्य ५६७-५६८

दुर्वासा-ह्लद तथा आश्रम, लाङ्गली-तीर्थ, गोदावरी-संगम, गोविन्द-पूजा ५६७-५६८ ।

एक सौ उनचासवां अध्याय ध्रुवेश्वर-माहात्म्य ५६८-५७०

वन, पर्वत, दिलीप-गुहा, ध्रुवेश्वर, दिलीपाख्यान ५६९, दिलीप-ब्राह्मण-संवाद, ऋषिकुण्ड ५६९-५७० ।

एक सौ पचासवां अध्याय ध्रुवेश्वर-माहात्म्य ५७२

सीता-भागीरथी-संगम ५७२ ।

एक सौ इक्यावनवां अध्याय देवतीर्थ-माहात्म्य ५७३-५७४

कचगा-सीता-संगम, यक्षगा-सीता-संगम, तारिणी-संगम, जीवद-तीर्थ, खेचरनाथ (ताकलाकोट से १७ मील दूर), राक्षसी-धारा-संगम, वैजयन्ती तथा माला देवी, यूपा-संगम, दृष्टि-सीता-संगम, शङ्खेश शिव, मालिका नदी ५७३, देवतीर्थ, वेताल-कूष्माण्ड-ग्रहमुख-पूजन, सीता-कलावती-संगम, कालीश शिव ५७४ ।

एक सौ बावनवां अध्याय देवतीर्थ-माहात्म्य ५७४-५७५

हंस-बकाख्यान ५७४-५७५ ।

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय **कलावती-माहात्म्य** ५३७–५४०

चन्दन पर्वत की स्थिति, नन्दासर ५३७, नन्दादेवी, माणवकाख्यान, शाण्डिल्याश्रम की स्थिति, कालिका की स्तुति ५३८, नन्दासर से कलावती का प्रवाहित होना, शाण्डिल्य द्वारा कलावती का माहात्म्य वर्णन ५३९–५४० ।

एक सौ उनचालीसवाँ अध्याय **कलावती-माहात्म्य** ५४०–५४१

नन्दासर-स्नान, जयप्रदा देवी, कलावती के मूल में काली-पूजा, चन्द्रोदय तीर्थ, वामनी-संगम, वामनेश, शाङ्करी, माण्डव्याश्रम, माण्डवी तथा माण्डव्येश-पूजन ५४०, मन्दिरा-सङ्गम, मन्दिरेश्वरपूजन, भूतेश्वर-भूतेश्वरी, क्रान्ति-संगम, क्रव्यादनाथ, वाराही-गिरिजा-पूजन कैलासेश तथा ऋष्यशृङ्ग-पूजा, वेत्रवती-संगम, वेत्रवती-संगम ह्रदस्थ तारकेश्वर, शाङ्करी-कलावती के मध्य शाण्डिल्याश्रम, माणवक तीर्थ ५४२ ।

एक सौ चालीसवाँ अध्याय **कलावती-माहात्म्य** ५४२–५४३

'शाङ्करी'-माहात्म्य-वर्णन, शेषव्रत ब्राह्मणाख्यान, कलभा नदी, ऐरावत का बालक, करालवदना देवी, शाकवती आदि छह नदियों का शाङ्करी के साथ संगम, शृङ्गाल पर्वत, प्रभावती-पूजा, तुषा-संगम ५४३, बाजर-संगम, कलावती-शाङ्करी-संगम ५४३–५४४ ।

एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय **पर्वताख्यान** ५४४–५४५

शङ्करतीर्थ, नृगतीर्थ, हिमाद्रि-कलावती-संगम, गोपी-पर्वत, स्वर्णसीमतीर्थ, आधारशक्ति-पूजन, आधारेश शिव, त्रिनदी-संगम, चीरधारिणी महेश्वरी, कलावती-सीता-संगम ।

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय (क) **ऊरुपर्वत वर्णन** ५४५–५४६

हंस-बकाख्यान, पुलह ऋषि, धैनुक गण, महेश्वर-पूजन ५४५–५४६ ।

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय (ख) **सीतानदी-माहात्म्य** ५४६–५५०

ऊरु पर्वत की महत्ता, धारा-सीता-संगम, धारातीर्थ, कल्पगिरि की विशेषता, नवग्रहा नदी, ईश पर्वत, कन्या पर्वत, कोटीश्वर, ईश्वरी-सीता-संगम, तन्त्रिका गुहा, धवलगण, अम्बिका-सीता-संगम, शेषेश शिव, अम्बिकापुर, धर्मेश्वर, गोमती-सीता-संगम, धूमपर्वत, धूम्राक्षी देवी, विष्णु भगवान्, हरिताचल, धत्तूरा नदी, धेनुकतीर्थ, धूम्रवती-सीता-संगम, धूमकेतु शङ्कर, बाणतीर्थ, काकतीर्थ, लक्ष्मी-सीता-संगम, लक्ष्मीतीर्थ, तौर्यत्रिका-सीता-संगम ५४६–५४९, चन्द्रभागा सीता-संगम, धात्री-सीता-संगम ५५० ।

एक सौ तेतालीसवाँ अध्याय **वह्नितीर्थ-माहात्म्य** ५५०–५५२

धराद्रि पर और्व की तपस्या ५५०, वह्नितीर्थ की स्थिति, उसका विस्तार, अग्नीश्वर देव ५५२ ।

एक सौ चवालीसवां अध्याय **सीता-माहात्म्य** ५५२

कौशिकतीर्थ, सञ्ज्ञातीर्थ, ऋणमोचिनी-सीता-संगम, सूष्मजा-सीता-संगम, बहुला-सीता-संगम ५५२।

एक सौ पैंतालीसवां अध्याय **सूष्मासरोवर-माहात्म्य** ५५३–५६२

जनमेजय की जिज्ञासा ५५३, श्रीकृष्ण-नारद-संवाद ५५४, चन्दन पर्वत की स्थिति, वहाँ सूष्मासरोवर, उसका माहात्म्य ५५५, स्मितहासिनी देवी, अत्रि की तपस्या, सूष्मा देवी की स्थापना ५५६–५५७, प्रासङ्गिक ककुत्स्थाख्यान, राजा और रानी के मध्य संवाद, वाराही देवी का सूष्मा रूप धारण करना ५६८–५६१, श्रीकृष्ण द्वारा नारद को सुनायी गयी कथा का उपसंहार ५६२।

एक सौ छियालीसवां अध्याय **सूष्मासरोवर-माहात्म्य** ५६३–५६४

सूष्मासर-प्रवेश-निर्गम-मार्ग, कालिन्दी-ह्लद ५६३, काकाद्रिह्लद, वीरजल, तुङ्गेश गणनायक, वाराही देवी, जलजा देवी, शिखरवासिनी देवी ५६३, स्वर्गद्वार, सूष्मा-सरोवर स्नान, सूष्मा-सुरभी-पूजन, भगवतीक्षेत्र, देवी-पूजा, फलश्रुति ५६४।

एक सौ सैंतालीसवां अध्याय **गोमन्त-पर्वत-माहात्म्य** ५६५–५६७

गोमन्त पर्वत की स्थिति, वहाँ ६६ गुहायें, गण्डकी आदि अनेक नदियाँ, गण्डकी-कलावती-संगम, खंगेश शिव ५६५, यक्षगा-संगम, दृष्टिकेदार, लवङ्गा, वाराही, खर्जूरक्षेत्र, विश्वेश्वर, शुभा आदि गुहायें, तारिणी-सीता-संगम ५६६–५६७।

एक सौ अड़तालीसवां अध्याय **सूष्मजा-सरोवर-माहात्म्य** ५६७–५६८

दुर्वासा-ह्लद तथा आश्रम, लाङ्गली-तीर्थ, गोदावरी-संगम, गोविन्द-पूजा ५६७–५६८।

एक सौ उनचासवां अध्याय **ध्रुवेश्वर-माहात्म्य** ५६८–५७०

वन, पर्वत, दिलीप-गुहा, ध्रुवेश्वर, दिलीपाख्यान ५६९, दिलीप-ब्राह्मण-संवाद, ऋषिकुण्ड ५६९–५७०।

एक सौ पचासवां अध्याय **ध्रुवेश्वर-माहात्म्य** ५७२

सीता-भागीरथी-संगम ५७२।

एक सौ इक्यावनवां अध्याय **देवतीर्थ-माहात्म्य** ५७३–५७४

कचगा-सीता-संगम, यक्षगा-सीता-संगम, तारिणी-संगम, जीवद-तीर्थ, खेचरनाथ (ताकलाकोट से १७ मील दूर), राक्षसी-धारा-संगम, वैजयन्ती तथा माला देवी, यूपा-संगम, दृष्टि-सीता-संगम, शङ्खेश शिव, मालिका नदी ५७३, देवतीर्थ, वेताल-कूष्माण्ड-ग्रहमुख-पूजन, सीता-कलावती-संगम, कालीश शिव ५७४।

एक सौ बावनवां अध्याय **देवतीर्थ-माहात्म्य** ५७४–५७५

हंस-बकाख्यान ५७४–५७५।

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय शैलवती-माहात्म्य ५७६

हंस-बकतीर्थ, काकोलूकतीर्थ, शैलवती-सीता-संगम, भुवनेश्वरी, मधुगिरि, माण-वेश्वर ५७६।

एक सौ चौवनवाँ अध्याय अर्बुदेश्वर-माहात्म्य ५७७

शैलपर्वत, गुफा में अर्बुदेश्वर, गुफा में अनेक विग्रह, सुरभी का दुग्धवर्षण, सुस्मरा-सुमेधा-सुभगा गुहायें ५७७।

एक सौ पचपनवाँ अध्याय सीता-माहात्म्य ५७८–५७९

शाकल्याश्रम, शाकल्या-सीता-संगम, ब्राणा-सीता-संगम, केशवती-संगम, शेषवती-संगम, गुल्मावती-सीता-संगम ५७८, सत्यतट पर्वत, पिङ्गा तथा सत्या नदियाँ, कल्माषेश शिव, सीता-बाला-संगम, बाला देवी, पणवा-हरीतकी-संगम, ब्रह्मसर, दिननाथ सर, दिलीपेश, सरस्वती-संगम, अन्नपूर्णा, पत्राद्रि, गण्डकी-सीता-संगम, गण्डकीश-पूजन ५७९।

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय सीता-माहात्म्य ५८०–५८१

पत्र-पर्वत, गण्डकी की उत्पति-कथा, क्रान्ति-पुण्यवती-मधुमती नदियाँ, यज्ञ-पर्वत, गोमती नदी, गोमती-सीता-संगम, दक्षशैल, आमर्दकी-सीता-संगम, खुर-पर्वत, सीता-कर्णाली-संगम, यूपकेतु, फलश्रुति ५८०–५८१।

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय फलाद्रि-वर्णन ५८२–५८५

बन्धूक-पर्वत की स्थिति, भार्गवी नदी, सूत्रा-नदी, जलमय-स्थल, फलपर्वत की स्थिति, श्रीकृष्णचरण-चिह्नित-शिला, भीमसेनाख्यान, जरासुर-वध, गोदावरी नदी, स्वर्णा-रौप्या देवियाँ, कालिन्दी ५८२–५८३, श्रीकृष्ण-सिद्ध-संवाद ५८४–५८५।

एक सौ अठावनवाँ अध्याय फल-यज्ञाद्रि-माहात्म्य ५८६

वीर्यवती नदी, यज्ञगा नदी ५८६।

एक सौ उनसठवाँ अध्याय खेचराद्रि-माहात्म्य ५८७–५८८

'खेचर' पर्वत की स्थिति ५८७, ७० नदियों का उद्गम-स्थल, ३६ से अधिक सरोवर, १२ गुफायें, ५ दिव्य स्थल ५८८।

एक सौ साठवाँ अध्याय खेचराद्रि-माहात्म्य ५८९

चन्द्रस्थल, बकसर, सहस्रेश्वर शिव ५८९।

एक सौ इकसठवाँ अध्याय सहस्रेश्वर-माहात्म्य ५९०–५९४

खेचर-पर्वत का विस्तार, सहस्रलिङ्गात्मक शङ्कर-शिला, मध्य में सहस्रेश्वर, मणिग्रीवाख्यान, सिद्ध-विद्याधर-संवाद ५९०-५९३, वेतालतीर्थ, वैताली देवी, चम्पकवन, पञ्च केदार ५९४।

एक सौ बासठवाँ अध्याय शिलावर्णन ५९४-५९५

कालशिला, पञ्चवक्त्रशिला, कैदारी-शिला, कामद-सर, सत्य-सर, पुण्यद-सर, मैनाक-सर, शाङ्करी-शिला ५९४-५९५।

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय सङ्गर-पर्वत-माहात्म्य ५९५

सङ्गर-पर्वत की स्थिति, सङ्गरा नदी, सङ्गरा देवी ५९५।

एक सौ चौंसठवाँ अध्याय वृद्धगङ्गा-माहात्म्य ५९६-५९९

वृद्धशर्माख्यान ५९६, आकाशवाणी, शङ्खाचल, देवतट, शङ्खसरोवर ५९७, वृद्धशर्मा द्वारा की गई स्तुति, वृद्धशर्मा द्वारा पर्वत-सन्धि का भेदन, वृद्धगङ्गा-पयोवती-संगम ५९८-५९९।

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय वृद्धगङ्गा-माहात्म्य ५९९-६०२

तीर्थ-जिज्ञासा ५९९, विश्वम्भर-तीर्थ, विश्वनाथ-तीर्थ, सत्य-शेष-कनखल-कुशावर्त-तीर्थ ६००, गङ्गाद्वार, वृद्धगङ्गा-नन्दा-संगम, हंसतीर्थ, एक गुहा, मन्दोदरी-वृद्धा-संगम, सीमन्तिनी-कान्तिमती-अयोवती-वृद्धा-संगम, वृद्धा-कुन्दवती-संगम, दृष्टिसर, पद्मशिला, पुंसवती आदि पाँच नदियों का वृद्धा के साथ संगम, पुञ्जवती-वृद्धा-संगम, मालिका-पूजन, दोग्ध्री-वृद्धा-संगम, धेनुतीर्थ, मालिका-वृद्धा-संगम, क्रौञ्चवती-वृद्धा संगम, वेत्रवती आदि आठ नदियों का वृद्धा के साथ संगम ६०१-६०२।

एक सौ छियासठवाँ अध्याय वैद्यनाथ-माहात्म्य ६०३-६०७

रोग-निवारण-सम्बन्धी जिज्ञासा, शिवजी द्वारा उत्तर ६०३, वैद्यनाथ-क्षेत्र की स्थिति, वैद्यनाथ-माहात्म्य ६०४, कालिञ्ज नामक गीदड़ का आख्यान, दूसरे जन्म में काम्पिल्य नगर के राजा के रूप में जन्म लेना ६०५-६०७।

एक सौ सड़सठवाँ अध्याय वैद्यनाथ-माहात्म्य ६०७-६०९

वैद्यनाथ-क्षेत्र के प्रमाण आदि की जिज्ञासा ६०७, शिव द्वारा समाधान, सुर-गन्धर्वों से सेवित क्षेत्र, शिव का ओषधिरूप में वास, वृद्धा और सरस्वती के मध्य शिव-क्षेत्र, देवस्थल, वामभाग में पार्वती, दक्षिण में कार्तिकेय, गोदावरी-वृद्धा-पर्णा-त्रिवेणी संगम ६०७-६०८, सूर्यकुण्ड, शाङ्कर तीर्थ, ईशान-पूजा, विमला के मध्य ब्रह्मकुण्ड, बाण एवं गोमध्य तीर्थ, महाह्लद, पद्मजा-स्नान, पद्मनाभ-पूजन, कैलास-गङ्गा, कैलासेश ६०९।

एक सौ अड़सठवाँ अध्याय कैलास-माहात्म्य ६१०-६११

पञ्चपुर पर्वत पर कैलास-गङ्गा का आह्वान, उसके मूल में गिरिजा, साङ्ख्यह्लद, गणेश, सुरभी, रुद्रा, वसुरुद्रा आदि नदियाँ, कैलासगङ्गा-वृद्धा-सङ्गम, कामदा, कामभद्रा, कामदेव का विनाश ६१०, छाया, शेषा आदि नदियाँ, पुंसवन-यज्ञस्थल, पुंसव ह्लद, कनकेश्वर ६११।

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय **वैध्यपर्वत-माहात्म्य** ६११

कैलास क्षेत्र, केदार, केदारी, लोकपर्वत की स्थिति, लवङ्गा तथा शाङ्करी-पूजन।

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय **काकाद्रि-माहात्म्य** ६१२

कर्णाली-मध्यगत काकाद्रि, काकेश्वरी देवी, क्रान्तक्रान्तेश्वर ६१२।

एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय **मालिका-माहात्म्य** ६१२–६१३

मालिका की स्थिति, पञ्चपुर, पर्वतरूप में देवी का वास, देवीमाहात्म्य ६१२-६१३।

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय **मालिका-माहात्म्य** ६१४–६२८

मालिका के सम्बन्ध में ऋषियों की जिज्ञासा, व्यास द्वारा समाधान, देवतट तथा पुरपर्वत की स्थिति, पञ्चपुर-पर्वत, शिखर पर मालिका, भगवती का अधिक प्रिय क्षेत्र, मालिका का प्रभाव ६१५, शालिहोत्राख्यान, सुमति-ब्राह्मण-संवाद, वेदनिधि-सुमति-संवाद, ऋषिद्वारा बेदनिधि को बताया गया उपाय ६१६-६२१, ऋषिद्वारा मार्गनिर्देश, स्थान-माहात्म्य, मालिका की विविध प्रकार से पूजा करने का फल ६२१, महेन्द्रपुर, महेन्द्रसर, भूकुण्ड, मालिका के विविध रूप, राक्षसपुर, वेणु-क्षीरा-सङ्गम, शतरुद्र, रुद्रकुण्ड, वसुधारा, गुहास्थ-महेश्वरी ६२२, विष्णुतीर्थ, वृद्धकन्दरा, ब्रह्मसर, क्रौञ्ची देवी, नागेश्वरी, देवतट पर्वत, क्षीरस्थल, दीपस्थल, वेदनिधि द्वारा सर्वविध-राशि-सम्बन्धी जिज्ञासा ६२३, मुनिद्वारा समाधान, सती का देहत्याग तथा हिमालय में जन्म लेना ६२४, पञ्चपुरी की विशेषता, यज्ञ किया जाना, देवी की प्रसन्नता के लिये सर्वविध राशि-संकलन, वेदनिधि का वहाँ पहुँचकर पिता का उद्धार करना ६२६, देवी का दर्शन कर पिता के हत्यारों का वेदनिधि द्वारा वध किया जाना ६२७, फलश्रुति ६२८।

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय **लङ्कासर-माहात्म्य** ६२८–६२९

'शारदा' नदी का उद्गम, रावणह्रद, लाङ्गलि, शूलगुहा, रावणेश्वर ६२८-६२९।

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय **शारदावर्णन** ६३०

विभीषण-ह्रद, विभीषणेश्वर, शाकुन्तलेश्वर, बिन्दुसर शाकुन्तलसर, लङ्का-मानस-मध्य २६ ह्रद ६३३।

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय **खेचरपुरी-माहात्म्य** ६३४–६३७

चक्रतीर्थ, चक्रेश्वर, दत्तात्रेय-ह्रद, कुमुद्वती नदी, पञ्चपुर पर्वतस्थ ३३ हजार गुफायें, पम्पा-शारदा-संगम, कर्णाली-शारदा-संगम ६३१, [1]मुरु, मुरल, हूण, गौरी-

---

१. श्रीमद्भागवत में पाँच सिरों वाले एक दैत्य का नाम 'मुर' बताया है। वह शङ्खासुर का पुत्र था। उसे श्रीकृष्ण ने मारा था, अत: श्रीकृष्ण (विष्णु)

एक सौ उनासीवाँ अध्याय छायाक्षेत्र-माहात्म्य ६५२–६६०

उद्दालक द्वारा वर्णित माहात्म्य का व्यास द्वारा कहा जाना, पुरुषोत्तम का आगमन, उद्दालक द्वारा विष्णु का स्तवन ६५२, विष्णु द्वारा शिव की प्रशंसा ६५३, 'दाडिम' पर्वत से पूर्व की ओर 'विष्कम्भ' पर्वत (मेरु की तरह), उसकी अधित्यका के पूर्व भाग में 'छायाक्षेत्र' ६५४, छायाक्षेत्रेश्वर, छायाक्षेत्र की विशेषता ६५५, सुबलाश्व-आख्यान, शिवयोगी का वध ६५६, छायाक्षेत्रेश्वर-पूजा, तीन कुण्डों में स्नान करने का आदेश, मुद्गल के आश्रम में राजा का प्रवेश, विष्कम्भ-पर्वत से छायाक्षेत्रेश्वर का दर्शन तथा पापमुक्ति ६५७, फलश्रुति ६५८, उद्दालक का छायाक्षेत्र में आगमन, तपोवास-वर्णन, यज्ञारम्भ, मानसखण्ड[1] की सार्थकता, मानसखण्ड कथाश्रवण-फल ६६०।

परिशिष्ट-सूची

परिशिष्ट (१)	सप्तद्वीपा वसुन्धरा	६६१–६६३
परिशिष्ट (२)	चतुर्द्वीपा वसुन्धरा	६६४–६६५
परिशिष्ट (३)	स्कन्दपुराणस्य स्वरूपम्	६६६–६७२
सहायक-ग्रन्थसूची	अनेके ग्रन्थाः	६७३–६७४

---

१. समग्र 'मानसखण्ड' का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि ग्रन्थकार ने हिमाद्रिस्थ 'मानसखण्ड' (इस नाम से विख्यात भूखण्ड) को एक पृथक् स्वतन्त्र अन्विति ('वर्ष' या 'खण्ड') के रूप में मान कर इसका नव खण्डात्मक विभाग किया है। वह विभाग इस ग्रन्थ के पाँचवें अध्याय में दिखाया है। तदनुसार उन नौ खण्डों के नाम ये हैं—(१) समष्टिरूप में हिमाद्रि-खण्ड (हिमाद्रि के अन्तर्गत 'पञ्चचूली' का वर्णन है), (२) मानस तथा मानसोत्तरखण्ड (मानसरोवर तथा उसके उत्तर भाग का वैशिष्ट्य-निरूपण), (३) कैलास-खण्ड (कैलास पर्वत), (४) केदारखण्ड (इसी नाम से विदित है)। इसके अतिरिक्त 'स्थाकिल' पर्वत वर्णन-प्रसङ्ग में (अध्याय १३३ तथा १३७) 'स्थल-केदार' को भी केदार के रूप में प्रस्तुत किया है (५) पातालखण्ड (सुप्रसिद्ध 'पातालभुवनेश्वर'), (६) काशीखण्ड (उत्तर वाराणसी के रूप में बागेश्वर), (७) रेवा-खण्ड (इस नाम की नदी का वर्णन 'शतलिङ्ग' आदि स्थलों में लिङ्ग बाहुल्य है।) इसके पास रामेश्वर का वर्णन होने से यह स्थान रामगङ्गा-सरयू-संगमस्थ क्षेत्र हो सकता है), (८) ब्रह्मोत्तरखण्ड ('गोकर्ण' से सम्बद्ध स्थान), तथा (९) नागर-खण्ड ('खेचर'-पर्वत, क्योंकि उस स्थल में आन्तरिक्ष-गत-ग्रहों नक्षत्रों का आख्यान है)। सहस्रेश्वर शिव भी हैं। अटकिन्सन ने केवल आरम्भ के पाँच खण्डों को पर्वतों से सम्बद्ध मानने की बात कही है।

पृथक् अन्विति मानने के कारण इस खण्ड के मङ्गलाचरण में वर्णित 'मेरु' को 'हेमकूट' मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। कारण यह है कि 'हेमकूट' की स्थिति 'किम्पुरुषवर्ष' और 'भारतवर्ष' की सीमा पर 'हिमालय' (हिमाद्रि) के उत्तर में मानी गई है। महाभारत के अनुसार अर्जुन ने अपनी सेना का शिविर डाला था और वहाँ से वह हरिवर्ष में गए थे। अन्यत्र भी 'हेमकूट' को नन्दा' नदी के तट पर एक दुर्गम पर्वत के रूप में बताया गया है। राजा युधिष्ठिर भी यहाँ तीर्थ-यात्रार्थ आए थे। इसे ऋक्षकूट भी कहते हैं (भागवत ५-१६-२६)। मङ्गलाचरण-श्लोक में 'मेरु' का विशेषण 'कनकमय' दिया गया है। 'हेमकूट' नाम से उसकी सङ्गति बैठ जाती है। कालिदास ने भी विशेषतया 'हेमकूट' का वर्णन किया है।

प्रकृत ग्रन्थ के १४०वें अध्याय में 'शृङ्गाल' पर्वत का उल्लेख हुआ है। महाभारत में एक स्त्री राज्य के स्वामी का नाम 'शृङ्गाल' कहा गया है। शृङ्गाल-पर्वत की स्थिति 'मेरु' के दक्षिण-भाग में कही गई है। कदाचित् युआन-च्वांग द्वारा वर्णित स्त्री-राज्य का संकेत इससे मिल सकेगा।

॥ श्रीः ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गतः

मानसखण्डः[1]

१

ये देवाः सन्ति मेरौ वरकनकमये मन्दरे ये च यक्षाः[2],
पाताले ये भुजङ्गाः फणिमणिकिरणध्वस्तसर्वान्धकाराः।
कैलासे स्त्रीविलासाः प्रमुदितहृदया ये च विद्याधराद्या-
स्ते मोक्षद्वारभूतं मुनिवरवचनं श्रोतुमायान्तु सर्वे ॥ १ ॥
रुद्राख्यानमिदं पवित्रमतुलं श्रीमन्मृडान्यान्वितं,
कृष्णस्यामितविक्रमस्य च यशः शृण्वन्तु धन्या जनाः।
देवानां भुवि वासिनामपि तथा तीर्थान्वितास्थापनम्,
श्रुत्वा ब्रह्मपदं प्रयान्ति विमलं संसेवितं योगिभिः ॥ २ ॥

॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥

कैलासं रूपमास्थाय राजते परमेश्वरः। तमहं शंकरं वन्दे स्थाणुरूपं हिमात्मकम् ॥१॥
'मानसे' प्रतिबिम्बं च पततीह दिवानिशम्। सोऽयं सदाशिवः साक्षान्मानसे रमतां सदा ॥२॥

सुवर्णमय मेरुपर्वतवासी देवगण, मन्दराचलवासी यक्ष, फणस्थ मणिकिरणों द्वारा समग्र अन्धेकार को दूर करने वाले पातालवासी नागगण, स्त्रियों के साथ विलास-प्रिय कैलासवासी विद्याधर आदि (सभी लोग) मोक्षद्वारस्वरूप मुनिश्रेष्ठ (वेदव्यास) की वाणी को सुनने के लिए आयें। माता-पार्वती-सहित भगवान् शंकर के इस पवित्र आख्यान को तथा अमित पराक्रमी भगवान् कृष्ण की यशोगाथा को पुण्यात्मा लोग श्रवण करें। ऐसे पुण्यात्मा भूलोकस्थ देवताओं तथा तीर्थों के प्रतिष्ठापित होने की कथा को सुन कर योगियों से सेवित विशुद्ध ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं। ऐश्वर्यशाली विष्णु-स्वरूप योगेश्वर

---

१. (क) देवीभागवतमाहात्म्यं 'मानसखण्डाद्' उद्धृतमिति तत्र पञ्चस्वध्यायेषु पुष्पिकायां वर्णितम्।
(ख) स्कन्दपुराणान्तर्गते केदारखण्डे मानसखण्डस्योल्लेखः वर्तते। तथा हि—
'श्रुत्वा वै मानसे खण्डे तीर्थानि सुबहून्यपि। देवागाराणि बहुशः कथाश्च मुनिसत्तमाः' ॥
नारद उवाच—'देव षण्मुख देवेश पार्वतीसुतनायक। मानसादिषु क्षेत्रेषु तीर्थानि प्रवराणि मे।
कथितानि महासेन भवमुक्तिप्रदानि हि' ॥ के० ख० अ० १०१।११-१३
हिमालयस्य खण्डपञ्चात्मको विभागोऽपि केदारखण्डे दर्शितः। तथा च तत्रोक्तम्—
'तीर्थानि प्रवराण्येव श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे। अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुने ॥
काश्मीरे चैव प्रस्तावे, जालन्ध्रे वै तथा पुनः। तथा केदार-प्रस्तावे कथितानि मयाऽद्य ते' ॥
के० ख० अ० २०४।५६-५७ ॥

२. क्वचित् 'वृक्षाः' इति पाठः। श्लोकेऽस्मिन् देव-नाग-विद्याधरादि-योनिविशेषवर्णनेन 'यक्षाः' इत्येव पाठः समीचीनः। यतो मन्दराचले यक्षाणां वसतिरत्र परिकल्पिता।

नमस्कृत्वा[1] महाभागं कृष्णं योगेश्वरं हरिम् । धातारमृषिभिर्युक्तं शिवं देव्या समन्वितम् ॥३॥
जनमेजयो महाप्राज्ञः कुरूणां कीर्तिवर्धनः । श्रुत्वेतिहासयुक्तानि पुण्यानि चरितानि च ॥४॥
कृष्णस्यामितवीर्यस्य शिवस्य पद्मजस्य च । पप्रच्छ सूतं धर्मात्मा शास्त्रतत्त्वार्थकोविदम् ॥५॥

जनमेजय उवाच—

ऋषे ! सुमहदाख्यानं त्वया सर्वं प्रकीर्तितम् । पुराणानां च सर्वेषां मतं सर्वमुदाहृतम् ॥६॥
व्रतानां च फलं पुण्यं तीर्थस्नानफलं तथा । देवानां दानवानां च गन्धर्वाप्सरसामपि ॥७॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम । न तु भूमौ स्थितानां हि तीर्थानां सम्भवं मुने ॥८॥
धरायाः सम्भवं चापि स्थितिं वाऽपि तपोधन । अधुना श्रोतुमिच्छामि कथयस्व कृपानिधे ॥९॥

सूत उवाच—

ऋषिभिश्चापि यः पृष्टो नैमिषारण्यवासिभिः । द्वैपायनो महाभागस्तदहं कथयामि ते ॥१०॥
वसिष्ठो भगवानत्रिर्दुर्वासाश्च तथाङ्गिराः । मनुः पुलस्त्यः पुलहो रैभ्यो द्रोणकृपादयः ॥११॥
राजर्षयोऽपि राजेन्द्र ! देवाः सिद्धगणास्तथा । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं कविम्[2] ॥१२॥

श्रीकृष्ण, ऋषियों के सहित ब्रह्मा एवं पार्वती से युक्त शिव को प्रणाम कर कुरु-वंश के यश को बढ़ाने वाले धर्मात्मा एवं विद्वान् राजा जनमेजय ने अतुलपराक्रमी भगवान् कृष्ण, शिव तथा ब्रह्मा के इतिहास-युक्त पुण्य (पावन) चरित्रों को सुन कर शास्त्र-मर्मज्ञ महर्षि सूत से इस प्रकार जिज्ञासा की ॥ १-५ ॥

जनमेजय ने कहा—ऋषिवर, आपने सम्पूर्ण विशद कथा सुनाई है, सब पुराणों का मत भी प्रतिपादित किया है,. (इसके साथ ही) व्रतों का पुण्यफल, तीर्थों में स्नान करने का फल तथा देव, दानव, गन्धर्व एवम् अप्सराओं के आश्चर्यजनक कार्यकलाप भी, हे विप्रवर, आपने वर्णित किये हैं; किन्तु पृथिवी के तीर्थों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आपने (कुछ) नहीं कहा। (अतः) हे तपोधन ! अब मैं पृथिवी की उत्पत्ति तथा उसकी स्थिति के बारे में सुनना चाहता हूँ। कृपानिधे ! आप (इस विषय में) कहें ॥६-७-८-९ ॥

सूत बोले—नैमिषारण्यवासी ऋषियों ने महामान्य वेदव्यास (द्वैपायन) से जिस प्रकार पूछा, उसे मैं आप से कहता हूँ। वसिष्ठ, अत्रि, दुर्वासा, अङ्गिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, रैम्य, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य प्रभृति महर्षिगण, अनेक रार्जाष, इन्द्रप्रमुख देवगण तथा सिद्धगण—ये सब लोग शास्त्रों के तत्त्वज्ञ पराशर के पुत्र कविश्रेष्ठ द्वैपायन (वेदव्यास)

---

१. पुराणेषु प्रायशो ल्यप्-प्रत्ययान्तरहितः पाठो दृश्यते ।

२. व्यासस्य कवीन्द्रत्वं ब्रह्माण्डपुराणे वर्णितम् । तथा हि—

'व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकं यदा । मौनीभूतः स सस्मार त्वामेव जगदम्बिकाम् ॥
तदा चकार सिद्धान्तं त्वद्वरेण मुनीश्वरः । संप्राप निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्धध्वंसदीपकम् ॥
पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः पद्मकलोद्भवः । त्वां सिषेवे प्रदध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ॥
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह । तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार ह' ॥

ब्र० वै० प्रकृतिखण्ड अध्याय-४ ।

द्वैपायनं महाराज! उपतस्थुर्महर्षयः। ऋषीन्[1] संपूजयामास व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१३॥
ते पूजिता महात्मानः ऋषयो धर्मतत्पराः। नारायणांशसम्भूतं[2] व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥१४॥
द्वैपायनं महाराज! प्रष्टुमारेभिरे तदा ॥१५॥

ऋषय ऊचुः—

कथितानि पुराणानि विचित्रचरितानि च। तत्र व्रतानि चीर्णानि उद्धृतानि त्वयैव हि ॥१६॥
अधुना श्रोतुमिच्छामो धरायाः सम्भवं मुने। तस्याः पुण्यां स्थितिं चाऽपि कथयस्व तपोधन ॥१७॥

सूत उवाच—

सर्वैस्तैः[3] परिपृष्टस्तु स महात्मा तपोनिधिः। विस्तरेण महाप्राज्ञः कथयामास तत्तदा ॥१८॥

व्यास उवाच—

कथां विचित्रां बहुलां सर्वपापप्रणाशिनीम्। शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे कथ्यमानां मयाऽधुना ॥१९॥
अव्यक्तव्यक्तमेकं वै यमाहुः[4] ऋषयः शुभाः। स एव पुरुषो लोके विष्णुरित्यभिधीयते ॥२०॥
तस्य कर्णमलोद्भूतौ दैतेयौ मधुकैटभौ। दृष्ट्वा सुप्तं जले विष्णुं शेषाङ्के संस्थितं प्रभुम् ॥२१॥
असुरौ चातिकोपेन जात्या द्रविणबालिशौ। ब्रह्माणं हन्तुमुत्थितौ नाभिपङ्कजवासिनम् ॥२२॥

के पास, हे महाराज, उपस्थित हुए। सत्यवती के पुत्र वेदव्यास ने समागत ऋषियों का स्वागत-सम्मान किया। राजन्, तब सम्मानित महात्मा तथा धर्मपरायण उन ऋषियों ने नारायण के अंशावतार एवं सत्यवती के पुत्र द्वैपायन व्यास से पूछना आरम्भ किया ॥१०-१५॥

ऋषियों ने पूछा—हे तपोधन, आप ने पुराणों की रचना की तथा अनेक चरित्रों का (विभिन्न प्रकार के लोगों का) संकीर्तन किया। इसके साथ ही पुराणों में संगृहीत (प्रतिपादित) व्रतों का उद्धार भी आप ही ने किया है। अब हम पृथ्वी की उत्पत्ति तथा उसकी पुण्यजनक स्थिति के विषय में अवगत करना चाहते हैं। आप कृपया (हमें) बतलायें ॥ १६-१७ ॥

सूत बोले—उन सब ऋषियों के पूछने पर (उस) तपस्वी, महात्मा एवं मनीषी (व्यास) ने विस्तार के साथ तब कहना आरम्भ किया ॥१८॥

व्यास ने कहा—मेरे द्वारा कही जाती हुई विचित्र, विस्तृत तथा सब पापों को दूर करने वाली इस कथा को अब आप सब ऋषिगण सुनें। कल्याणकारी ऋषिगण जिस एक को अव्यक्त—कारणस्वरूप (निराकार) और व्यक्त—कार्यस्वरूप (साकार) कहते हैं, उन्हीं परमपुरुष को जगत् में विष्णु कहा गया है। उनके कानों के मल से उत्पन्न मधु और कैटभ राक्षसों ने जल में (समुद्र में) विष्णु भगवान् को शेष-शय्या में सोया हुआ देख कर, जन्म से ही धन के मद में गर्वित, वे दोनों क्रुद्ध होकर, विष्णु के नाभिकमल में स्थित ब्रह्मा को, बड़े क्रोध से मारने के लिए उद्यत हो गए। तब ब्रह्मा के द्वारा स्तुति किए जाने पर विष्णु

---

१. "महर्षीन् पूजयामास ऋषिः सत्यवतीसुतः"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः।
२. "नारायणांशसम्भूतं सत्यवत्याः सुतं शुचिम्"—इति 'ख'-पुस्तके।
३. "सक्तैः" इति 'ख' पुस्तके। ४. "यमाहुर्मुनयः"—इति "ख"—पुस्तके।

समुत्तस्थौ तदा विष्णुर्ब्रह्मणा संस्तुतः प्रभुः[1]। दृष्ट्वा हि बलिनौ[2] चोभौ दैतेयौ बलगर्वितौ ॥२३॥
चक्रमुद्धृत्य[3] ताभ्यां वै युयुधे भगवान् हरिः। दिव्यवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणेन वै ॥२४॥
चक्रेणातिक्षुरग्रेण ततस्तौ निहतौ रणे। निःससार च तन्मेदो जले वै जलसन्निभः[4] ॥२५॥
तयोस्तु मेदसा पृथ्वीं कारयामास[5] मेदिनीम्। कल्पयित्वाऽथ वसुधां धराधरसमन्विताम् ॥२६॥
स्वपृष्ठभागे संस्थाप्य वसुधां कमठाकृतिः। ततस्तस्मान्महाभाग प्रधानपुरुषेरितः ॥२७॥
स समाज्ञापयामास यं ब्रह्मेति वदन्ति हि। स सृष्ट्यै सर्वभूतानां प्रभवायाभवाय च ॥२८॥
आज्ञापितो भगवता ससर्ज विविधाः प्रजाः। वारीण्येव ससर्जाप्सु वीर्यं तास्वसृजत् पुनः[6] ॥२९॥
ततोदके[7] स्वयं ब्रह्मा ससर्ज सकलां महीम्। दिवमूर्ध्वं च कृत्वाऽथ तन्मध्ये खमिति स्मृतम्॥ ३०॥
सृष्ट्वाऽवनीं नवविधां दिशश्च दशधाऽसृजत्। मनो वाक्कालकर्मादीन् कामक्रोधादिकानपि ॥३१॥
समस्तसृष्टिकर्त्रांश्च[8] तथा सप्त प्रजापतीन्। मरीचिप्रमुखान् पुण्यान् रोषोद्भूतं शिवं तथा ॥३२॥

जाग उठे। बल से गर्वित शक्तिशाली उन दोनों राक्षसों को देख कर विष्णु भगवान् ने अपना चक्र उठा कर उनके साथ युद्ध करना आरम्भ किया। देवताओं की वर्षगणना के अनुसार हजारों वर्ष बाहुयुद्ध चलता रहा। अत्यधिक तीक्ष्ण सुदर्शन चक्र से वे दोनों राक्षस रण में मारे गए। उनके शरीर से जल के समान (द्रवीभूत) चर्बी जल में ही निकल गई (जम गई)। उन दोनों की चर्बी से पर्वतों सहित (सुशोभित) वसुधा की कल्पना कर विष्णु ने पृथ्वी की रचना की। फिर कच्छपावतार धारण कर अपनी पीठ पर पृथ्वी को स्थापित किया। हे महाभाग! इसलिये यह कार्य प्रधान-पुरुष (प्रकृति-पुरुष) की प्रेरणा से सम्पन्न हुआ। ब्रह्मा नामधेय देवता को विष्णु ने यह आज्ञा दी कि वह (ब्रह्मा) सृष्टि के लिये सब प्राणियों के उत्पादक और विनाशक हैं। भगवान् विष्णु से आज्ञा पाकर ब्रह्मा ने नाना प्रकार की सृष्टि की। सर्वप्रथम जल-रूप में ही उन्होंने सृष्टि आरम्भ की तथा अपना तेज (वीर्य) पुनः जल ही में स्थापित किया। तब ब्रह्मा ने जल ही में स्वयं सम्पूर्ण पृथिवी को उत्पन्न किया। ऊपर की ओर स्वर्गलोक बनाकर, पृथिवी और स्वर्ग के मध्य आकाश का नाम दिया गया। नौ प्रकार की पृथिवी (पृथिवी के नौ खण्डों) को बनाकर दसों दिशाओं की सृष्टि की। मन, वाणी, काल तथा कर्मादि एवं काम-क्रोधादि भी रचे। क्रमशः समस्त प्रजा की सृष्टि करने वाले सात प्रजापति—मरीचि प्रभृति पुण्य-जन (सप्तर्षि) एवं क्रोध

---

१. "ब्रह्मणा संस्तुतोऽपि सः"—इति "ख"—पुस्तके।
२. "चोग्रौ"—इति "ख"—पुस्तके। दुर्गासप्तशत्यामपि अनयोरुत्पत्तिस्तथा मधुकैटभयोर्विनाशश्चेत्येतत् सर्वं प्रथमेऽध्याये सुनिरूपितम् (श्लो० ११६६-६८, १०३)।
३. "चक्रमुद्यम्य"—इति "ख"—पुस्तके।
४. "जले जलजवल्लभाः"—इति "ख"—पुस्तके।
५. "कल्पयामास"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।
६. "वारीण्येव ससर्जादौ वीर्यं तास्वसृजत् पुनः"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।
७. गुणसन्धिः यद्यपि नात्र भवितुमर्हति तथापि छन्दोभङ्गभिया ऋषिणा कृत इति प्रतीयते। आर्षत्वात् समाधेयः।
८. "ससर्ज सृष्टिकर्त्रांश्च"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।

ततो विष्णुश्च ब्रह्मा च शिवश्चैव तपोधनाः। सात्त्विको राजसो चैव तामसो प्रकृतयः स्मृताः[१] ॥३३॥
ततो निजहिते युक्तां[२] सृष्टिसंहारकारिणीम्। दधिरे लोकविभवां[३] ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३४॥
मरीचिरिति यः ख्यातः प्रथमश्च प्रजापतिः[४]। तत्सुतः कश्यपश्चाभूत् गोत्रान्वयविवर्धनः ॥३५॥
पाणिं गृहीत्वा कन्यानां दक्षस्य च प्रजापतेः। देवानां दानवानां च सयक्षोरगरक्षसाम् ॥३६॥
गन्धर्वाप्सरसां चैव नागानां पक्षिणां तथा। वृक्षाणां दनुजानां च तथान्येषां तपोधनाः ॥३७॥
वंशानुत्पादयामास कश्यपश्च[५] प्रजापतिः। तथाऽन्ये ये महाभागाः प्रजानां पतयः स्मृताः ॥३८॥
ऋषीणां मानवानां च नृपाणां च तपोधनाः। वंशानुत्पादयामासुर्मैथुनेनैव भारत ॥३९॥
तत्र पुण्या महात्मानः ऋषयो धर्मतत्पराः। अष्टाविंशत्सहस्राख्या गोत्रान्वयविवर्धनाः ॥४०॥
सम्भूतास्ते महाभागाः सृष्टिनिर्देशकारकाः। तत्सर्वं विदितं विप्रा भवद्भिर्नात्र संशयः ॥४१॥

से शिव (रुद्र) उत्पन्न हुए। हे तपस्वियों, तब तीनों देवता—विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव—क्रमशः सात्त्विक, राजस तथा तामस स्वभाव से युक्त कहे गये। इस तरह सृष्टि (उत्पत्ति), पालन और संहार में लगी हुई लोक की प्रकृति को ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ने अपना आश्रय बनाया। (सात प्रजापतियों में) पहले प्रजापति मरीचि नाम से प्रख्यात थे, उनके कश्यप नामक पुत्र गोत्र और वंश को बढ़ाने वाले हुए। हे तपस्वियों, कश्यप प्रजापति ने दक्ष-प्रजापति की अनेक कन्याओं से विवाह कर देवता, दानव, यक्ष, सर्प, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, पक्षी, वृक्ष, राक्षस आदि तथा इनके अतिरिक्त अन्य जातियों के वंशों को उत्पन्न किया। हे जनमेजय ! जो और दूसरे प्रजापति भाग्यशाली कहलाते थे, उन्होंने ऋषियों, मनुष्यों और राजाओं के वंशों को स्त्री-पुरुष के युग्म से उत्पन्न किया। इस तरह सृष्टिरचना द्वारा—पुण्यशील, महात्मा, एवं धर्मपरायण अठाईस हजार ऋषियों ने गोत्र और वंश का विस्तार किया। वे महाभाग प्रजापतिगण सृष्टि के विषय में आज्ञाकारक थे। हे विप्रगण, आप सब को यह विदित है, इसमें कोई सन्देह नहीं। वहाँ अत्रिगोत्र में उत्पन्न अङ्ग नाम के प्रजापति हुए,

---

१. अन्तिमे चरणे अक्षराधिक्यं वर्तते।

२. "तां तां निजहिते युक्ताम्"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।

३. "लोकविभवा"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।

४. "प्रथमो यः प्रजापतिः" इति "ख" पुस्तके पाठः।

५. "कश्यपाख्यः प्रजापतिः"—इति "ख"—पुस्तके पाठः। अस्य नामनिरुक्तिर्यथा मार्कण्डेयपुराणे—"ब्रह्मणस्तनयो योऽभूत् मरीचिरिति विश्रुतः। कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् कश्यपानात् स कश्यपः॥" 'कश्यं'—सोमरसादिजनितं पेयम् इति पुराणेषु उक्तम्। भागवते कश्यपस्य सप्तदश भार्या आसन्—इति वर्णितम् (भाग० ६-२५।२६)। मार्कण्डेयपुराणमते अस्य त्रयोदश भार्याः (मा० पु० अ० १०४)। महाभारतमते त्रयोदश भार्याः (म० भा० १।६५।११-१२)। अपरं च शतपथब्राह्मणे सृष्टेः आधारभूतत्वेन कश्यपस्य कच्छपेन सह साम्यं निर्दर्शितम्। तथा हि—"स यत्कूर्मो नाम प्रजापतिः प्रजा असृजत। यदसृजताकरोत् तद् यद् अकरोत् तस्मात् कूर्मः कश्यपो वै कूर्मः, तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः"।

तत्रात्रिगोत्रसम्भूतो नाम्ना ह्यङ्गः[1] प्रजापतिः। तस्य वंशे समुत्पन्नः पृथुनामा बभूव ह ॥४२॥
यं वदन्ति महात्मानो वेणुमन्थानसम्भवम्[2]। तं पृथुं[3] हि प्रजाः सर्वा राजानं चारुदर्शनम् ॥४३॥
शरण्यं शरणं जग्मुः पोषयस्वेति वादिनः। ततो जनहितार्थाय गोरूपामवनीं हि सः ॥
दुदोह सकलां पृथ्वीं तेन खिन्नाऽभवन्मही ॥४४॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

उनके वंश में पृथु नाम का एक राजा हुआ। महात्मा लोग उस पृथ को वेणु के शरीर से मथने के कारण उत्पन्न हुआ बतलाते हैं। दर्शनीय तथा शरणागत-प्रतिपालक उस राजा पृथु की शरण में प्रजाजन गए और उनसे यह कहा कि—'आप हमारा पालन करें'। ऐसा कहने पर पृथु ने लोगों के हित में गोरूपधारिणी समग्र पृथ्वी का दोहन किया। इस कार्य से पृथ्वी दुःखी हो गई ॥१९-४४॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानस-खण्ड का पहला अध्याय समाप्त ॥

—:❀:—

---

१. "तुङ्गः" इति "ख" पुस्तके पाठः। मत्स्यपुराणेऽपि 'अङ्ग' इति नाम्ना एव स प्रसिद्धः। तथा हि—

"वंशे स्वायम्भुवे ह्यासीद् अङ्गो नाम प्रजापतिः। मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीताऽति दुर्मुखी ॥
सुतीर्था नाम तस्यास्तु वेणो नाम सुतः पुरा। अधर्मनिरतः कामी बलवान् वसुधाधिपः ॥
शापेन मारयित्वैनम् अराजकभयार्दिताः। ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः ॥
तत्कायात् मथ्यमानात्तु निष्पेतुर्म्लेच्छजातयः। शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः ॥
पितुरङ्गस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः। उत्पन्नो दक्षिणाद् हस्तात् सधनुः सशरो गदी ॥
दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः। पृथुरेवाभवद् यस्मात् ततः पृथुरजायत" ॥
(अध्यायः १०)।

२-३. पृथुः—त्रेतायुगे सूर्यवंश्यः पञ्चमनृपः। प्रजारञ्जनाद् राजोपाधिं प्राप्तवान्। यथा—
"तेनानुरञ्जिताः सर्वाः सुखैर्मुमुदिरे तदा। अनुरागात्तु वीरस्य नाम राजेत्यभाषत ॥
सर्वे सुखेन जीवन्ति लोकधर्मपरायणाः। तस्मिन् शासति दुर्धर्षे राजराजे महात्मनि" ॥
—(पाद्मोत्तरखण्डे २९ अध्यायः)

२

ऋषय ऊचुः—

कथं खिन्नाऽभवत् पृथ्वी दोहिता केन हेतुना। प्रजाः सर्वा महाभाग शरणं केन हेतुना ॥ १ ॥
सम्प्राप्ताश्चापि तत्रैव कथं वै पालिता हि ते। एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथोचितम् ॥ २ ॥

व्यास उवाच—

पृथुर्नामा नरेन्द्रोऽभूद् वेण्वन्वयविवर्धनः[1]। तस्मिन् वै जातमात्रे तु प्रजाः सर्वाः समुत्सुकाः ॥३॥
नृपासनं गतं तं तु हृष्टास्ते जातकौतुकाः। एष नो वृत्तिदो राजा भविष्यति न संशयः ॥४॥
इति मीमांसमाना वै लोकास्तं शरणं ययुः। बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे राजानं चारुदर्शनम् ॥५॥
वाष्पगद्गदया वाचा तुष्टुवुस्ते नराधिपम्। त्राहि त्राहि महाराज वेण्वन्वयविवर्धन[2] ॥६॥
वृत्तिहीनान् महाराज पक्षहीनान् खगानिव। इति सम्भाषमाणान् तान् स्वयमेव जनाधिपः ॥
उवाच वदतां श्रेष्ठो वाचा चामृतपूर्वया ॥७॥

पृथुरुवाच—

सर्वे यूयं महाभागाः प्रार्थयन्तो हि मां पुनः। केनात्महेतुना प्राप्ताः कथ्यतां करवाणि तत् ॥८॥

व्यास उवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा जनास्ते हर्षमानसाः[3]। प्रत्यूचुस्तं महाभागं भूमिपं भूमिवल्लभम् ॥९॥

ऋषियों ने कहा—पृथ्वी क्यों दुःखी हुई ? उसे पृथु ने किस लिये दुहा ? हे महाभाग ! सम्पूर्ण प्रजा किस हेतु पृथु की शरण में गई तथा राजा ने प्रजा का पालन किस प्रकार किया ? ये सब बातें आप यथोचित वर्णन करें ॥१-२॥

व्यास ने उत्तर दिया—वेणु के वंश को आगे बढ़ाने वाला पृथु नाम का राजा था। उसके उत्पन्न होते ही सारी प्रजा हर्ष से उत्कण्ठित हो गई। राजा पृथु के राज्य-सिंहासन पर बैठते ही सब लोग प्रसन्न और उत्कण्ठित हो गए। यह राजा हमें आजीविका देने वाले होंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं है—ऐसा विचार-विमर्श करते हुए सब लोग उनकी शरण में गए। तथा हाथ जोड़कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त हो गद्‌गद वाणी से उस दर्शनीय राजा की (पृथु की) इस प्रकार स्तुति करने लगे—"वेणु के वंश को बढ़ाने वाले महाराज ! आप हमारी रक्षा करें"। इस प्रकार उनके कहे जाने पर, पंखों से रहित पक्षियों के समान आजीविकाविहीन प्रजावर्ग के प्रति, अमृतमयी वाणी से, राजा पृथु स्वयं बोले ॥३-७॥

राजा पृथु ने कहा—आप सब लोग मेरी प्रार्थना करते हुए किस प्रयोजनवश यहाँ आये हैं ? आप लोग विस्तारपूर्वक बतलायें कि मैं क्या करूँ ? ॥८॥

व्यास बोले—इस प्रकार राजा पृथु की वाणी को सुन कर लोग बड़े प्रसन्न हुए तथा पृथ्वीपालक एवं ऐश्वर्यशाली राजा पृथु से इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥९॥

---

१. "वेणान्वयविवर्धनः" इति "ख" पुस्तके। २. "वेणान्वयविवर्धन" इति "ख" पुस्तके।
३. हृष्टमानसाः इत्यर्थः।

जना ऊचुः—

धात्रा विरचितांश्चास्मान्[1] वयं हि पुत्रका यथा। नास्माकं परमा वृत्तिस्तेन निर्देशिता विभो ॥१०॥
त्वं हि पुण्यैश्च ऋषिभिर्मथितः प्रार्थितोऽप्यसि। वृत्तिदः सैव सर्वेषां नान्योऽस्ति भुवनस्थले ॥११॥
तैरेव चोपदिष्टाःस्मो गम्यतां शरणं पृथोः। तेषां हि वचनं प्राप्य देवा गुरुगिरं यथा[2] ॥१२॥
वृत्तिदो भव राजर्षे, त्वां वयं शरणं गताः[3]। वृत्तिहीनैः क्षणमपि न स्थातुमिह शक्यते ॥१३॥
नास्मानवति राजर्षे ! धरा शैलवनान्विता। शासयित्वा[4] धरां पुण्यां रक्षस्व मनुजाधिप ॥१४॥

व्यास उवाच—

इति तेषां रुतं श्रुत्वा पृथुर्वेण्यः प्रतापवान्। उत्थाप्य सकलां पृथ्वीं धनुष्कोट्या प्रतापवान्॥१५॥
उत्खातं भूतलं दृष्ट्वा वसुधा प्राद्रवद्रुषा। ततस्तां निःसृतां ज्ञात्वा चौरानिव गृहेश्वरः ॥१६॥
अवनीं हन्तुमुत्तस्थौ पाकशासनविक्रमः। ततस्तां गोस्वरूपेण धावतीं स ददर्श ह ॥१७॥
तामन्वधावद्राजर्षिः खड्गचर्मधरः स्वयम्। सा गत्वा भुवनान् सर्वानप्राप्य[5] शरणं हि सा ॥१८॥
ततस्तमेव राजानं प्रत्यपद्यत सा मही। तमुवाच तदा देवी न स्त्रीवधमिहार्हसि ॥१९॥

प्रजावर्ग ने निवेदन किया—प्रभुवर ! विधाता ने हम सब को पुत्रों के समान उत्पन्न किया है। किन्तु आजीविका का निर्देश उन्होंने नहीं किया। आप ही पुण्यात्मा ऋषियों के द्वारा (वेणु के शरीर को) मथ कर प्रकट हुए हैं और ऋषियों ने यह प्रार्थना भी की है कि आप ही पृथ्वी पर सब को आजीविका देने वाले हैं। कोई अन्य इस भूमण्डल पर आजीविका देने वाला नहीं है। उन्हीं ऋषियों ने हमें आपकी शरण में जाने का आदेश दिया है। उनकी आज्ञा को प्राप्त कर हम ऐसे हर्षित हुए—जैसे देवगुरु बृहस्पति की वाणी को सुनकर देवता प्रसन्न होते हैं। हे राजर्षे ! हम आप की शरण में आए हैं, अतः आप हमें आजीविका दें। आजीविका से रहित हम लोग क्षण भर भी नहीं रह सकते। यह पृथिवी, पर्वत और वनों से युक्त होने पर भी, हमारी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। अतः हे नरेश्वर, आप पवित्र पृथ्वी को अनुशासित कर हमारी रक्षा करें ॥१०-१४॥

महर्षि व्यास ने कहा—इस प्रकार लोगों की आर्तवाणी सुनकर वेणु के पुत्र प्रतापशाली राजा पृथु ने अपने धनुष की नोंक से सम्पूर्ण पृथ्वी को उठाया। वसुधा, पृथ्वीतल को खोदा हुआ देखकर, क्रोधपूर्वक वहाँ से भाग गई। उसको जाती हुई देखकर इन्द्र के समान पराक्रमी राजा पृथु—गृहस्वामी के समान चोरों की तरह—उस पृथ्वी को मारने के लिये उद्यत हुए। इस प्रकार सन्नद्ध होने पर पृथु ने पृथ्वी को गाय के रूप में भागते हुए देखा। तब राजर्षि स्वयं खड्ग-कवच धारण कर उसके पीछे दौड़े। तब दौड़ते-दौड़ते पृथ्वी सभी लोकों में गई, किन्तु उसे कहीं भी शरण नहीं मिली। तदनन्तर पृथ्वी पुनः उसी पृथु के पास आई और कहने लगी कि "आप" के लिये स्त्री का वध करना उचित

---

१. "धात्रा विरचिताश्चास्मो" इति "ख"—पुस्तके।
२. "इति तस्य वचः प्राप्य वयं शरणमागताः" इति पाठः समीचीनो दृश्यते।
३. "शरणागतवत्सल"—इति पाठः समीचीनो दृश्यते। ४. 'समां कृत्वा' इत्याशयः।
५. "न प्राप्य शरणं हि सा" इति "ख"—पुस्तके पाठः।

उपायं कुरु राजर्षे तेन त्वं सिद्धिमाप्नुहि । मया विना प्रजाः सर्वाः[1] कथं त्वं स्थापयिष्यसि ॥२०॥
उत्सारय गिरीन् सर्वान् त्वदर्थं त्याजयाम्यहम् । दुहितृत्वं गमिष्यामि ततस्ते क्षितिवल्लभ[2] ॥२१॥

व्यास उवाच—

इतीरितां वापि गिरं महात्मा, श्रुत्वा धरायाः सकलां महीपतिः ।
प्रगृह्य पाणौ स शरासनं शुभम्, उत्खातयामास गिरीन् समस्तान् ॥२२॥
ततोऽवनीं तां सकलां क्षितीश्वरश्चकार स्थालीमिव भूतलस्थिताम् ।
समां स चक्रे विषमां महीधरैः, संसाधितं योगिभिरुन्मनो यथा ॥२३॥

कृत्वाऽवनीं समां राजा विन्ध्यहेमाद्रिमध्यमाम्[3]। आज्ञापयामास तदा सर्वांल्लोकान् जनेश्वरः ॥२४॥
क्रियतां हि गृहारम्भः पुरोणामपि मानवाः । स्थोयतां वर्षपर्यन्तं पुष्पमूलफलाशिभिः ॥२५॥
तदोपायं करिष्यामि भवतां नात्र संशयः । येनोपायेन जीव्यन्ते जीवास्तु भुवनस्थले ॥२६॥

व्यास उवाच—

इति राज्ञा समादिष्टा जनाः सर्वे द्विजोत्तमाः । ग्रामाश्च नगराश्चैव चक्रुस्ते वै महोत्सवम् ॥२७॥
निवासभूता सा देवी लोकानां क्षेमकारिणी । कथितं हि महाभागाः पृथोर्वैण्यस्य चानघाः ॥
यथा तेन सुपुण्येन शासिता सा वसुन्धरा ॥ २८ ॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥

नहीं है।" हे राजर्षे, आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे आपको सफलता मिले। मेरे बिना आप प्रजा को कैसे रख सकेंगे ? अतः आप पर्वतों को उखाड़िये, मैं आप के लिए उन्हें छोड़ दूँगी। हे पृथ्वीनाथ ! तब मैं आप की पुत्री का स्थान ग्रहण करूँगी ॥१५-२१॥

व्यास जी ने कहा—महात्मा राजा पृथु ने, इस प्रकार पृथ्वी की समग्र वाणी को सुनकर, हाथ में सुन्दर धनुष ले, सभी पहाड़ों को उखाड़ फेंका। तब भूमिपाल पृथु ने विशाल पृथ्वी को जमीन पर रखी हुई थाली की तरह समतल बना दिया। पर्वतों से ऊबड़-खाबड़ जमीन को उसी प्रकार समतल (चौरस) किया, जिस प्रकार चंचल मन को योगी स्थिर कर देते हैं। विन्ध्य और हिमालय के मध्य-स्थित भूभाग (आर्यावर्त) को समतल बनाकर नरेश्वर पृथु ने सब लोगों को यह आज्ञा दी कि 'सब लोग घरों का निर्माण करें तथा नगरों को बसायें और एक वर्ष तक कन्द-मूल-फलों से ही अपना निर्वाह करें। तब मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे प्राणिवर्ग भूमण्डल पर जीवित रह सके' ॥२२-२६॥

व्यास जी ने पुनः कहा—हे ब्रह्मर्षिवर्ग ! इस प्रकार राजा पृथु की आज्ञा पाकर लोगों ने ग्राम एवं नगरों को बसाया तथा उत्सव मनाया। लोगों का कल्याण करने वाली एवम् आश्रय देनेवाली वह धरा (इस प्रकार) दिव्य (देवी) गुणों से युक्त हो गई। हे महाभाग ! जैसे वेणु के पुत्र पुण्यात्मा पृथु ने वसुन्धरा शासित की, वैसे ही उसका निर्मल चरित्र वर्णन किया गया है ॥२७-२८॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

---

१. "मया विना प्रजान् सर्वान्"—इति "ख"—पुस्तके पाठः । २. "ततस्ते कीर्तिरुत्तमा"—इति पाठः समीचीनः प्रतिभाति । ३. "विन्ध्यहेमाद्रिमध्यमाम्"—इति "ख" पुस्तके पाठः ।

३

सूत उवाच—

पुनरेव महाराज व्यासः सत्यवतीसुतः । तानुवाच स धर्मात्मा प्रणतान् मुनिसत्तमान् ॥ १ ॥

व्यास उवाच—

पुनरेव स राजर्षिः पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् । लोकान् कृच्छ्रगतान् ज्ञात्वा कन्दमूलाशनान् नृपः ॥ २ ॥
पालयन् स्वां प्रतिज्ञां वै चिन्तयन् लोकपोषणम् । वत्सं तु कल्पयित्वा वै मनुं स्वायम्भुवं प्रभो ॥ ३ ॥
दुदोह पृथिवीं वैण्यः स्वैर्बाणैः स्वेन पाणिना । तत्र जातानि शस्यानि बहूनि मुनिसत्तमाः ॥ ४ ॥
तेनान्नेन प्रजाः सर्वाः पुपुषुः स्ववपूंषि हि । तेनैव कल्पयित्वाऽथ बीजं बीजायते द्विजाः ॥ ५ ॥
ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः सा मही सस्यदाऽभवत् । निवासभूता लोकानां कर्मभूरिति सा स्मृता ॥ ६ ॥
तेनोपदिष्टां तां पुण्यां वसुधां वसुधाधिपाः । दुदुहुर्देवताः सर्वास्तथा दैत्या महोरगाः ॥ ७ ॥
यक्षाः पिशाचा नागाश्च सिद्धविद्याधरादयः । पर्वताः पितरश्चैव दुदुहुर्वसुधां नृप ॥ ८ ॥
कल्पयित्वा पृथग्वत्सं जगृहुस्ते पृथग्वसुम् । दुग्धा सा वसुधा देवी खिन्नरूपाऽभवत् प्रभो ॥ ९ ॥
क्वचित् सा पर्वतगणैराक्रान्ता मुनिसत्तमाः । नगानां बहुभारेण पीडिता वरवर्णिनी ॥१०॥
क्वचिद्राजर्षिभिः पुण्यैः पृथग्वंशोदभवैरपि । वीप्सद्भिरवनीभागं क्रान्ता सा कलिकारिभिः ॥११॥
क्वचिद्धि पर्वतगणैश्चारूढा तुङ्गतां गता । क्वचित् समाऽभवद्देवी स्थालीव शिल्पिनिर्मिता ॥१२॥

सूत जी बोले—हे महाराज ! फिर भी सत्यवती के पुत्र धर्मात्मा महर्षि व्यास उन विनीत ऋषियों से इस प्रकार कहने लगे ॥१॥

महर्षि व्यास ने कहा—वेणु के पुत्र प्रतापी राजा पृथु ने सब लोगों को कन्द-मूल-फलाशी तथा कष्ट में पड़ा हुआ जान कर अपनी पूर्वप्रतिज्ञा को पालन करते हुए एवं लोगों के भरण-पोषण की चिन्ता करते हुए (उपायस्वरूप) स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बना कर (कल्पित कर) अपने बाणों से अपने ही हाथों पृथ्वी का दोहन किया। हे मुनिश्रेष्ठों ! तब वहाँ अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न हुए। उस अन्न से प्रजा ने अपना पालन-पोषण किया। हे द्विजवर्ग ! उसी अन्न से आगे बीज बोया जाने लगा। तभी से वह पृथ्वी अन्नदात्री हो गई। इस के साथ ही वह सब जनों को निवास देने वाली 'कर्मभूमि' कहलाई। राजा पृथु की आज्ञा पाई हुई उस पवित्र पृथ्वी को—राजाओं ने, सब देवताओं ने, दैत्यों ने तथा बड़े बड़े नागों ने तक—दुहा। हे राजन् ! यक्ष, पिशाच, नाग, सिद्ध, विद्याधर, पर्वत तथा पितृगण सभी ने, इस पृथ्वी का दोहन किया। इन्होंने भिन्न भिन्न बछड़ों की कल्पना कर (भिन्न भिन्न उपायों से) पृथक् रत्नों को प्राप्त किया। इस प्रकार, हे प्रभो ! इस वसुधा का दोहन किया गया। अतः वह दुःखी हो गई। हे ऋषिगण ! कहीं तो वह पृथ्वी पर्वतों के समूह से आक्रान्त हो गई, तो कहीं पर्वतों के दबाव से वह सुन्दर पृथ्वी पीड़ित हो गई, कहीं पर अनेक वंशों में उत्पन्न पुण्यात्मा राजाओं (राजर्षियों) ने अधिकार की लिप्सा से परस्पर कलह करते हुए उस पर अपना अपना अधिकार जमा लिया। कहीं पर पर्वतों के आरूढ होने के कारण पृथ्वी का धरातल ऊंचा हो गया। कहीं पर कलाकार द्वारा निर्मित थाली की तरह वह पृथ्वी समतल हो गई। किसी

क्वचिन्निम्नाऽभवत् पुण्या पुण्यर्षिगणसेविता। हृतस्वा लोकवशगा खिन्ना खिन्नेव कामिनी ॥१३॥
आत्मभावं परित्यज्य चलमाना[1] इतस्ततः। मज्जयामि जले पुण्ये चिन्त्यमाना मुहुर्मुहुः ॥१४॥
गौर्भूत्वाश्रुमुखी देवी पद्मजस्यान्तिकं ययौ। प्रणम्य सा यथान्यायं स्रष्टारं लोकवन्दितम् ॥१५॥
वाचा मधुरया चैव[2] ब्रह्माणं सा वसुन्धरा। देवदेव! जगद्धातस्त्वामहं शरणं गता ॥१६॥
त्वमेव स्रष्टा लोकानां त्वमेव परमा गतिः। धाता चैव विधाता च त्वमेवासि पितामहः ॥१७॥
त्वया सृष्टाऽस्मि लोकेश प्रजानां हितकाम्यया। त्वयैव स्थापिता चास्मि त्वयैव निश्चला कृता ॥१८॥
अधुना राजशार्दूलैः खेदिता चास्मि वै विभो। तथा देवैश्च दैतेयैर्गन्धर्वोरगराक्षसैः ॥१९॥
हृतस्वा हृतसत्त्वा[3] च कृताऽस्मि परमेश्वर। गिरीणामपि भारेण दुःसहेनैव चैकतः ॥२०॥
नताऽस्मि देवदेवेश! रक्षस्व[4] त्वं जगत्पते। विलेखिताऽस्मि वैण्येन लघ्वीभूताऽस्मि चैकतः ॥२१॥
यद्धि हीना क्षणमपि भवद्भिः परमेश्वर। न शक्नोमि क्षणं स्थातुं रक्ष रक्ष प्रजापते ॥२२॥

व्यास उवाच—

इत्याकर्ण्यं ततो ब्रह्मा धरायाः समुदीरितम्। नोवाच वदतां श्रेष्ठस्तया विज्ञापितोऽपि सः ॥२३॥
ततः स्थित्वा[5] स्वयं ब्रह्मा ब्रह्मर्षिगणसेवितः। जगाम धरया सार्धं यत्र तौ संस्थितौ शिवौ ॥२४॥

स्थान पर यह पुनीत भूमि पुण्यात्मा ऋषिजनों से सेवित हो नीची हो गई। ऐसी दशा को प्राप्त कर यह धरा, परवश तथा सर्वस्व अपहरण की जाने वाली कामिनी के समान, दुःखी हो गई। अपनी स्थिरता को छोड़ कर इतस्ततः विचलित होती हुई धरा बार बार यह सोचने लगी कि 'मैं स्वयं पावन जल में अपने को डुबा दूँ'। आँखों में आँसू भर कर गोरूप धारण किये हुए पृथ्वी ब्रह्मा के निकट गई। लोकमान्य ब्रह्मा को यथोचित प्रणाम कर वसुन्धरा ने मधुर वाणी में ब्रह्मा से यह निवेदन किया—"हे देवादिदेव जगत्स्रष्टा! मैं आपके शरण में आई हूँ। आप संसार के स्रष्टा हैं, आप ही सब की परम गति हैं, आप ही धाता-विधाता हैं तथा पितामह (आदि पुरुष) हैं। हे लोकेश! आपने ही प्रजा की हितकामना से मुझे उत्पन्न किया है। आपने ही मुझे स्थित किया है तथा स्थिरता प्रदान की है। हे विभो! अब बड़े-बड़े राजाओं ने, देव और दानवों ने, गन्धर्व, सर्प तथा राक्षसों ने, मुझे दुःखी कर दिया है। हे परमेश्वर! मेरा धन तथा बल दोनों ही हर लिए गए हैं। एक ओर मैं पर्वतों के असह्य बोझ से दब गई हूँ, अतः हे जगत्पते! आप मेरी रक्षा करें। एक तो मैं वेणु के पुत्र पृथु के द्वारा खनी गई हूँ तथा दूसरी ओर मैं हलकी पड़ गई हूँ। ऐसी हतभागिनी मैं क्षणभर भी आपके बिना स्थित नहीं रह सकती। इसलिए, हे प्रजापते! आप मुझे बचायें" ॥१५-२२॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार धरा से कहे जाने पर सुनते हुए भी वक्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा कुछ न बोले। पुनः पृथ्वी के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मर्षियों से सेवित विधाता कुछ देर रुक कर धरा के साथ, विष्णु और शिव जहाँ विराजमान थे, वहाँ गए। शिव और

---

१. शानच्-प्रयोगः आर्षत्वात् साधुः। २. "उवाच मधुरया वाचा"—इति "ख" पुस्तके पाठः।
३. "हृतसंकल्पा"—इति "ख" पुस्तके पाठः। ४. आत्मनेपदप्रयोगः पौराणिकः।
५. 'ततोत्थित्वा'—इति "ख"—पुस्तके पाठः। सन्धिरल्यंबभावश्चेत्येतत् सर्वं छन्दोभङ्गभिया कथञ्चित् समाधेयम्।

एकासनगतौ तौ तु दृष्ट्वा देवौ शिवाच्युतौ। ननाम स तदा ब्रह्मा चतुर्मुकुटकोटिभिः॥
तुष्टाव स विभुं शान्तं प्रभविष्णुं महेश्वरम्॥ २५॥

ब्रह्मोवाच—

नमो नमस्ते परमेश्वराय, देवाय देवेन्द्रनिषेविताय।
अज्ञातमार्गाय महाभुजाय, नमो नमस्ते धरणीधराय॥२६॥
शिवादिभिर्योगिभिरप्यगम्यो, यो गीयते योगिभिर्योगगम्यः।
तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय, शिवान्वितायामितविक्रमाय॥२७॥
सोऽहं धरा चाऽपि मया सह प्रभो! तवान्तिकं पुण्यतमं सुशोभना।
आज्ञापयैनां कमलापते प्रभो! बिभर्षि लोकानतिपुण्यदान् विभो॥२८॥

व्यास उवाच—

इति धातुर्गिरं श्रुत्वा धरा बाष्पोन्मुखी शुभा। तुष्टाव तं मधुरया गिरा चाऽमृतपूर्वया॥२९॥

धरोवाच—

नमस्ते देवदेवेश! शङ्खचक्रगदाधर। पद्मपाणे! नमस्तेऽस्तु पद्मनाभ! नमोऽस्तु ते॥३०॥
अनादिमध्यनिधनसृष्टिस्थित्यन्तकारिणे। योगीशाय नमस्तेऽस्तु शेषावासाय ते नमः॥३१॥
प्रलयाब्धिनिवासाय मृकण्डुतनयेन च। संस्तुतायादिदेवाय महामत्स्याय ते नमः॥३२॥
दीर्घपृष्ठकठोराय धराभारसहाय च। अनन्ताद्भुतपादाय कमठाय नमो नमः॥३३॥

विष्णु दोनों देवताओं को एक आसन पर बैठे हुए देख कर विधाता ने चारों मुकुटों के शिखर से झुक कर प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने सर्वव्यापी, शान्तात्मा एवं प्रभविष्णु महेश्वर की स्तुति करना आरम्भ किया॥२३-२५॥

ब्रह्मा ने विनति की—देवताओं के राजा इन्द्र से सेवित हे परमेश्वर! आप अगम्य, विशाल-बाहुधारी एवं पृथिवी को धारण करने वाले हैं, आपको बारंबार प्रणाम हैं। शिव आदि योगियों के अगम्य होते हुए भी आप योगियों के योगाभ्यास से साक्षात्कार किये जाते हैं—यह बात जगत्प्रसिद्ध है। ऐसे शिव से संयुक्त एवं अतुल पराक्रमी पुरुषोत्तम को हमारा प्रणाम स्वीकार हो। हे प्रभो! मैं तथा यह शोभनीया पृथ्वी—हम दोनों साथ ही आपके पुण्यशाली सान्निध्य में आए हैं। हे लक्ष्मीपते! प्रभो! पुण्यशील! आप अनेक लोकों को धारण करते हैं। कृपया इस पृथिवी को आज्ञा दें॥२६-२८॥

व्यास जी ने कहा—इस प्रकार ब्रह्मा की वाणी को सुनकर आंसू-भरे नेत्रों से मङ्गलमयी धरा (किसी प्रकार) अपने को सम्हालती हुई सुमधुर वाणी से विष्णु की स्तुति करने लगी॥२९॥

धरा ने कहना प्रारम्भ किया—हे देवताओं के अधीश्वर, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी पद्मनाभ! आपको मेरा नमस्कार स्वीकार हो। आदि, मध्य तथा अन्तहीन एवं सृष्टि, स्थिति और प्रलय के करने वाले योगीश्वर तथा शेषशायी विष्णु भगवान् को मेरा प्रणाम है। प्रलयकाल में समुद्रशायी एवं मार्कण्डेय ऋषि से स्तुति किये जाने वाले महामत्स्यावतारधारी आदिदेव को मेरा नमस्कार है। सुविस्तृत कठोर पीठ वाले, पृथ्वी के भार को सहन करने वाले, असंख्य और अद्भुत चरणों से युक्त कच्छपस्वरूप भगवान् को मेरा नमन

तुण्डेनोद्धृतसत्राय विषाणविभवाय च। धरोद्धरणदेहाय वराहाय नमो नमः ॥३४॥
अत्यद्भुतस्वरूपाय करालवदनाय च। नखैर्दारितदैत्याय नृसिंहाय नमो नमः ॥३५॥
बलेरद्भुतवीर्यस्य यज्ञान्ते द्विजरूपिणे। अत्यद्भुताकृतिकृते वामनाय नमो नमः ॥३६॥
दृप्तक्षत्रविनाशाय द्विजरूपधराय च। जामदग्न्याय रामाय नमस्ते क्षत्रनाशिने ॥३७॥
पौलस्त्यामितवीर्यस्य श्रियोन्मत्तस्य चानघ। कृतकन्धरनाशाय रघूणां पतये नमः ॥३८॥
यमुना कर्षिता येन येन नागाह्वयस्तथा। तस्मै नमोऽस्तु रामाय वसुदेवसुताय च ॥३९॥
निर्जिता येन चैकेन दैत्यदानवमानवाः। तस्मै नमोऽस्तु देवाय वसुदेवसुताय च ॥४०॥
पवित्रीकृतलोकाय दर्शितायाऽवधाय[1] च। निर्दिष्टधर्ममार्गाय[2] बौद्धरूपाय ते नमः ॥४१॥
आत्मरूपं समास्थाय भूत्वा चासिधरं स्वयम्। म्लेच्छहन्त्रे नमस्तुभ्यं कल्किरूपधराय च ॥४२॥

त्वामेव लोकाः किल सृष्टिकाले, धातारमेकं पुरुषं वदन्ति।
स्थितौ हि पुण्या ऋषयः समस्ता वदन्ति सर्वे भुवि विष्णुरूपम् ॥४३॥

त्वमेव चान्ते प्रलयावसाने हरेरितो लोकपथेषु गीयते।
त्रिभिः स्वरूपैस्त्रिभिरेव ज्ञातो मां पाहि देवेश नमामि तुभ्यम् ॥४४॥

स्वीकार हो। मुख से यज्ञ का उद्धार करने वाले, विषाणरूपी निधि से युक्त, पृथ्वी का उद्धार करने के लिये वराहरूपधारी देव को प्रणाम है। अत्यद्भुतदेहधारी, भयंकर मुख वाले, नखों से हिरण्यकशिपु के उरोविदारक नृसिंह भगवान् को अनेक प्रणाम हैं। अद्भुत पराक्रमी राजा बलि के यज्ञान्त में ब्राह्मणरूपधारी तथा अति आश्चर्ययुक्त स्वरूप धारण किये हुए वामनावतार को नमस्कार हैं। अभिमानी क्षत्रियों के संहारक, ब्राह्मणरूपधारी एवं क्षत्रियों के विनाशक जमदग्नि के पुत्र परशुराम को प्रणाम हैं। पुलस्त्य ऋषि के पौत्र अमित बलशाली उन्मत्त रावण के ग्रीवा-भङ्ग करनेवाले रघुवंशियों के स्वामी रामचन्द्र को नमस्कार हैं। जिन्होंने (वृन्दावन के पास) यमुना को आकृष्ट किया, नागादि को भी मथा, ऐसे बलराम-सहित वासुदेव को प्रणाम स्वीकार हो। अकेले ही दैत्य-दानव तथा मानवों पर विजय प्राप्त करने वाले वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण को नमस्कार स्वीकार हो। संसार के पावनकर्ता, अहिंसा के द्रष्टा (उपदेशक) तथा स्वतः अनुभूत धर्म के प्रचारक बौद्धावतारधारी भगवान् को नमस्कार हैं। स्वरूपधारी तथा स्वयं हाथ में खड्ग (असि) धारण करते हुए म्लेच्छों के नाश करने वाले कल्किरूप (आपको) विष्णु को प्रणाम स्वीकार हो। प्रभो! सृष्टि के समय लोग केवल अकेले आपको ही ब्रह्मा के नाम से सम्बोधित करते हैं। संसार की स्थिति में (पालन-काल में) सभी पुण्यात्मा ऋषिगण लोक में आपको विष्णु रूप से कहते हैं। आप ही संसार के विनाश होने पर प्रलय-काल में 'हर' इस नाम से संसार में प्रचारित होते हैं। इस प्रकार स्रष्टा, पालन-कर्ता तथा संहारकर्ता के रूप में तीनों नामों से (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) आप विख्यात हैं। अतः हे देवताओं के स्वामिन्! आप मेरी रक्षा करें। मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥३०-४४॥

---

१. "दर्शितापशुवधाय च"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।

२. "निर्दिष्टोद्धवमार्गाय"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।

व्यास उवाच—

इति तयेरितां[1] वाणीं तथा धातुर्वचः शुभम् । ततः पूर्वं तु संश्रुत्य प्रत्युवाच जगत्पतिः ॥४५॥

विष्णुरुवाच—

किमर्थं खिद्यसे देवि ! केन त्वमिह संस्थिता । वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥४६॥
मयि त्रातरि भूतानां भयं भीरु न विद्यते । भवानपि वद ब्रह्मन्, प्राप्तोऽसि येन हेतुना ॥
स्थित्वाऽस्मिन्नासने शुभ्रे कथयस्व ममाग्रतः[2] ॥४७॥
सहानया च धरया शक्त्या ब्रह्मपदं महत् । तत् सर्वं कथयाशु त्वं करिष्यामि हितं तव ॥४८॥

ब्रह्मोवाच—

भगवन् देव देवेश शङ्खचक्रगदाधर । त्वयि त्रातरि देवेश नास्ति ब्रह्मपदे भयम् ॥४९॥
तथापि कथयिष्यामि[3] पृच्छति त्वयि वै विभो । सृष्टा त्वेषा मया विष्णो सृष्टयुद्दिष्टेन कर्मणा ॥५०॥
अवनी वनशोभाढ्या खेदिता राजभिः प्रभो । [4]पृच्छस्वैनां महाभाग कल्याणीं शुभभाषिणीम् ॥५१॥
यदर्थमागता पुण्या पृच्छयतां वै स्वयं प्रभो । तत्सर्वं क्रियतामाशु यद् ब्रूते चारुभाषिणी ॥५२॥

व्यास उवाच—

इति विज्ञापितो देवो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना । पुनरेव महाभागां धरां गोरूपधारिणीम् ॥
प्रत्युवाच तदा देवीं गिरा सूनृतया तदा ॥५३॥

व्यास जी ने कहा—इस प्रकार धरा के कथन को सुन कर एवं इसके पूर्व ब्रह्मा की बात को भी सुन संसार के स्वामी विष्णु भगवान् ने उत्तर दिया ॥४५॥

विष्णु भगवान् बोले—हे पृथ्वि ! तुम क्यों दुःखी हो ? किस कारण तुम यहाँ तक आई हो ? जो कुछ तुम्हारे मन में है—वह वर मुझसे माँग लो। हे भीरु ! मेरे रक्षक होते हुए प्राणियों को भय कैसा ? हे ब्रह्मन् ! आप भी अपने आने का प्रयोजन बतलायें। इस सुन्दर आसन पर बैठ कर मेरे सम्मुख निवेदन करें। इस पृथ्वी के साथ आप ने बड़ी दृढ़ता से विशाल ब्रह्मलोक तक धारण किया है। आप सब कुछ शीघ्र ही कहें, मैं आप का हित करूंगा ॥४६-४८॥

ब्रह्मा कहने लगे—हे देवाधिदेव शङ्खचक्रगदाधारी भगवन् ! आपके रक्षक होते हुए मुझे (हे देवेश !) ब्रह्मलोक की चिन्ता नहीं। (तथापि) आप से पूछे जाने पर मैं आप से निवेदन करता हूँ। हे विभो ! मैं ने सृष्टि के उद्देश्य से इस पृथ्वी को रचा है। प्रभुवर ! वन-सम्पदा से युक्त यह पृथ्वी अनेक राजाओं से सताई गई है। अतः मधुरभाषिणी एवं कल्याण-प्रदा पृथ्वी से आप पूछें। साथ ही जिस कार्य के लिए यह पुण्यस्थली पृथ्वी आपके पास आई है, उस बात को भी आप स्वयं इससे पूछें। यह मधुरभाषिणी पृथ्वी जो कुछ कहे तदनुसार आप शीघ्र ही इस का कार्य करें ॥४९-५२॥

व्यास बोले—इस प्रकार ब्रह्मवादी (वेदाध्ययनशील) ब्रह्मा ने विष्णु भगवान् से निवेदन किया। तदनन्तर गोरूपधारिणी एवम् ऐश्वर्यशालिनी पृथ्वी को सुमधुर वाणी से विष्णु ने उत्तर दिया ॥५३॥

---

१. "तस्येरिताम्"—इति "ख"–पुस्तके पाठः। २. "समाहितः"—इति "ख"–पुस्तके पाठः।
३. "तथाप्येकं कथयिष्यामि"—इति "ख"–पुस्तके पाठः। ४. आत्मनेपदप्रयोगः आर्षः।

विष्णुरुवाच—

कथयस्व महभागे ! येन त्वं कुपिता ह्यसि । वरं वरय सुश्रोणि ! ईप्सितं ते ददाम्यहम् ॥५४॥
त्वयाऽहं तोषितश्चापि गीर्भिः पुण्यार्थकारिभिः। तस्माद् दास्यामि ते भद्रे ! वरमेकं न संशयः ॥
मयि प्रसन्नतां याते नास्ति नास्ति भयं शुभे ॥५५॥

धरोवाच—

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि यत् त्वया भाषितास्म्यहम् । विभोऽत्रिगोत्रसम्पन्नः पृथुर्नामा बभूव ह ॥५६॥
तेनाऽहं खनिता चास्मि दुग्धास्मि भुवनेश्वर । हृतालंकरणा चास्मि तथाऽन्यैर्देवतागणैः ॥५७॥
उच्चावचाऽपि भूताऽस्मि हीनाऽहं धातुभिस्तया । क्रान्तास्मि पर्वतगणैस्तथाऽन्यैर्वसुधाधिपैः ॥५८॥
न हि जानन्ति ते मूढास्त्वां वै शिवयुतं विभो[1] । स्रष्टारं लोकस्रष्टारं न जानन्ति नराधिपाः ॥५९॥
नास्ति पुण्यानि वै विष्णो भवद्भिन्नानि वै तथा । धर्मं विना न तिष्ठामि क्षणार्धमपि केशव ॥६०॥
यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि त्वं वरदो ह्यसि । वरमेकमहं याचे[2] यदि दास्यसि वै प्रभो ॥६१॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैर्हीनास्मि त्रिदशेश्वर । न शोभयामि देवेश पतिहीना यथा सती ॥६२॥
क्षणार्धमपि वै तेषां भारं चातीव दुःसहम् । न सहिष्यामि[3] देवेश मज्जयामि शुभे जले ॥६३॥
किन्तु मां स्वपदैः पुण्यैस्तथा पादोद्भवैर्जलैः । पुनीहि देव देवेश लोकांश्चैवेह मद्गतान् ॥६४॥

विष्णु ने कहा—सौभाग्यशालिनि ! जिस कारण तुम कुपित हो, उसे कहो । हे सुश्रोणि ! तुम वर माँगो, मैं तुम्हें मनोवाञ्छित फल दूँगा । तुमने पुनीत वाणी से मुझे सन्तुष्ट किया है। अतः शुभे ! मैं तुमको एक वर अवश्य दूँगा । मेरे प्रसन्न होने पर तुम्हें किसी तरह का भय नहीं है ॥५४-५५॥

पृथ्वी ने कहना आरम्भ किया—विभो ! आपके इस प्रकार संभाषण से मैं अपने को धन्य मानती हूँ और आपकी बहुत अनुगृहीत हूँ । (आप को विदित ही है कि) अत्रि-गोत्र में उत्पन्न पृथु नाम का राजा हुआ है । हे भुवनेश्वर ! उसने मुझे खोद डाला, मेरा दोहन किया तथा अन्य देवगणों ने मेरे रत्नों (अलंकारों) का अपहरण किया है । (इन सब अत्याचारों के फलस्वरूप) मैं ऊबड़-खावड़ हो गई हूँ, खनिजपदार्थों से रहित हो गई हूँ तथा कहीं कहीं पर्वतश्रेणियों से घिर गई हूँ । और क्या कहूँ ? अनेक राजाओं ने मुझ पर अधिकार भी कर लिया है । विभो ! वे मूर्खजन शिव-सहित आप की महिमा को नहीं जानते हैं । संसार के स्रष्टा ब्रह्मा से भी वे नराधम अनभिज्ञ हैं । विष्णो ! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा पुण्यात्मा नहीं है । हे केशव ! मैं न्याय के विना क्षण भर भी नहीं ठहर सकती हूँ । हे देवेश ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तथा वर देने के इच्छुक हैं तो मैं आप से केवल एक वर माँगती हूँ और आप उसे दें । हे देवेश ! मैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश से विहीन उसी प्रकार अवाञ्छनीय लगती हूँ जैसे पतिहीन पतिव्रता शोभित (सम्मानित) नहीं होती । मैं अब आधे क्षण भी उनका दुःसह भार सहन नहीं कर सकती और पवित्र जल में डूब जाऊँगी । अतः हे परमेश्वर ! आप

---

१. "प्रभो" इति "ख"-पुस्तके पाठः ।

२. "वरमेकं प्रयच्छामि"—इति "ख"-पुस्तके पाठः । उपरिस्थः पाठ एव युक्ततरः प्रतिभाति ।

३. परस्मैपदप्रयोगः पौराणिकः ।

किन्तु मां शिवदेहेन भवान्या चान्वितेन वै। तथा ब्रह्मपदैः पुण्यैः पुनीहि परमेश्वर ॥६५॥
इदमेव वरं पुण्यं याचयामि[1] जगत्पते। वरेणानेन मां पुण्यां धारयस्व न संशयः ॥६६॥

व्यास उवाच—

इति विज्ञापितो देवो धरण्या स शिवान्वितः। विचार्य सुचिरं कालं ब्रह्मणा स शिवान्वितः ॥६७॥
मेघगम्भीरया वाचा विकसद्वदनाम्बुजः। उवाच वदतां श्रेष्ठो निर्गुणो गुणिनां गतिः ॥६८॥

विष्णुरुवाच—

धारितासि मया भद्रे! शेषांशेन शुभेन हि। तथा कमठरूपेण धृतासि स्वेन पृष्ठिना ॥६९॥
ततो धृतासि तुण्डेन विरच्य[2] शूकरं वपुः। कालेन त्वां करिष्यामि निजपादाङ्कितां शुभे ॥७०॥
यदा यदा भयं भीरु! प्राप्स्यसि त्वं भुवः स्थले। तदा तदाऽवतीर्याहं भारनिग्रहणाय ते ॥७१॥
श्वेतद्वीपे च[3] मे वासो योगिनां हृदि वा शुभे। योगिनामप्यगम्योऽस्मि काले काले न संशयः ॥७२॥
कालेन महता देवि! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। कपालपतनं पुण्यं भविष्यति न संशयः ॥७३॥
तत्राञ्जलिप्रदानेन शुद्धयन्ति हि पितृद्रुहाः। अथान्यदपि वक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं हि ते ॥७४॥
येन वै त्वद्गता मर्त्या यान्ति ब्रह्मपदं महत्। तेन त्वं निश्चला देवि! भविष्यसि न संशयः ॥७५॥
दिव्यवर्षसहस्रान्ते कृतादौ वरवर्णिनि। आगमिष्यति देवेशो यं शिवेति वदन्ति हि ॥७६॥

पार्वती-समेत शिव के देह से तथा ब्रह्मा के पुनीत चरणों से मुझे पवित्र करें। हे जगत्पते! मैं यही पुनीत वर आपसे माँगती हूँ। इस वर से आप मुझ पुण्यात्मा को ऋणी बनायें। इस में कोई विकल्प न हो ॥५६-६६॥

व्यास जी ने कहा—इस प्रकार पृथ्वी द्वारा शिव के सहित विष्णु की प्रार्थना किये जाने पर शिव तथा विष्णु ने बहुत समय तक ब्रह्मा के साथ विचार-विमर्श कर श्रेष्ठ-वक्ता, गुणवानों की पहुँच वाले, निर्गुण (निरीह) स्वरूप, विष्णु भगवान् ने प्रफुल्लित-मुखकमल से मेघ के समान गम्भीर स्वर में इस प्रकार कहा ॥६७-६८॥

भगवान् विष्णु ने कहना आरम्भ किया—भद्रे! मैंने तुमको सुन्दर शेषनाग के फनों पर उठाकर रख दिया है तथा कच्छपावतार के रूप में अपनी पीठ पर स्थापित किया है। शूकरावतार के रूप में दाँतों के अग्र भाग में तुम्हें स्थित किया है। तथा कुछ समय के बाद मैं तुमको अपने चरणों से अङ्कित कर दूँगा। हे भीरु! जब-जब तुम इस भूमण्डल में भय प्राप्त करोगी तब-तब मैं तुम्हारे भार को दूर करने के लिये मनुष्य रूप में अवतार लूँगा। मेरा निवास श्वेतद्वीप (बदरिकाश्रम) अथवा योगियों के सुन्दर हृदय में है। किसी समय में निःसन्देह योगियों के लिये भी अगम्य हूँ। हे देवि! बहुत समय के बाद पितामह ब्रह्मा के श्रेष्ठ कपाल का अवश्य पतन होगा। वहाँ कपालमोचन तीर्थ में तर्पण करने से पितृद्रोही भी तर जाते हैं। मैं तुमको और भी अधिक रहस्यात्मक बात बतलाता हूँ, जिससे तुम पर स्थित (पृथ्वी पर रहने वाले) लोग ब्रह्मलोक को प्राप्त करें। इससे तुम स्थिर हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। हे सुन्दरि! देवताओं की वर्षगणना के हिसाब से हजारों

---

१. णिजन्त-रहितः पाठः समुपयुक्त इति प्रतीयते।

२. विरचय्येति युक्ततरः। छन्दोभङ्गभिया णिज्-रहितः प्रयुक्त इति प्रतीयते।

३. "हि"—इति "ख"-पुस्तके पाठः।

तपस्तप्तुं महाभागो वियोगाद्दक्षजोद्भवात् । तत्र ते चारुवृक्षाढ्ये कक्षे क्षेत्रमनोहरे ॥७७॥
सुटंकणगिरौ[1] रम्ये[2] दारुकाननशोभिते । तपिष्यति तदा देवः तपः परमदुष्करम् ॥७८॥
तत्रैव तस्य देवस्य मुनीनां शापकारणात् । लिङ्गस्य पतनं पुण्यं भविष्यति न संशयः[3] ॥७९॥
तमाद्यं पुरुषं देवि ! शिवं शान्तं हि शंकरम् । यथा मां वेत्सि वै देवि ! जानीहि त्वं तथैव च[4] ॥८०॥
लिङ्गस्य पतनाद्देवि ! निश्चला त्वं भविष्यसि । दुष्टाश्चौराः शठाश्चैव मानिनो दाम्भिकाश्च ये ॥८१॥
ब्रह्महिंसारता ये वै तथा स्त्रीणां वधे रताः । स्मरणाच्छिवलिङ्गस्य शुद्धिं यान्ति ततो जनाः ॥८२॥
ततः परं महाभागे ! भविष्यति पदे पदे । शिवलिङ्गाङ्किता पुण्या पूजिता मानवैस्तथा ॥८३॥
वैवस्वतकुले जातो नाम्ना राजा भगीरथः । भविष्यति महातेजाः सूर्यान्वयविवर्धनः ॥८४॥
मदर्चनपरो भूत्वा ज्ञात्वा मामेव निश्चलम् । अवतार्य पदोद्भूतां गङ्गां मत्पादसेविनीम् ॥८५॥
युक्तां प्रवाहसाहस्रैर्देवराजनिषेविताम् । करिष्यति महत्पूज्यां[5] राजा त्वां तदनन्तरम् ॥८६॥

वर्ष के बाद सत्ययुग के आरम्भ में साक्षात् शिव पृथ्वी पर आयेंगे। दक्ष-प्रजापति की पुत्री सती के वियोग से खिन्न होकर महादेव तपश्चर्या करने के लिए सुन्दर वन से घिरे हुए तुम्हारे (पृथ्वी के) शोभन प्रदेश से समुद्भूत होंगे। तब भगवान् शिव दारुवन से शोभित सुन्दर टंकणपर्वत पर कठोर तप करेंगे। वहीं पर ऋषियों से अभिशप्त होकर भगवान् शंकर के पुनीत लिङ्ग का पतन अवश्यम्भावी है। (अतः) हे देवि ! शान्तमूर्ति एवं कल्याणकारी आदिपुरुष शिव को तुम वैसा ही समझो जैसा तुम मुझे जानती हो। शिवलिङ्ग के पृथ्वी पर गिरते ही तुम निश्चल हो जाओगी। इसके साथ ही संसार में दुष्टजन, चोर, धूर्त, अभिमानी, पाखण्डी, ब्रह्मघ्न, स्त्रीघाती आदि सभी शिवलिङ्ग के स्मरण करने से पापरहित हो जाएँगे। तदनन्तर, हे महाभागे ! स्थान-स्थान पर पृथ्वी शिव-लिङ्गों से अङ्कित एवं पवित्र हो जायगी तथा मनुष्यों से पूजित होगी (वे स्थान तीर्थ होने के कारण पूज्य होंगे)। वैवस्वत मनु के कुल में उत्पन्न, सूर्यवंश के उन्नायक, परम तेजस्वी, भगीरथ नाम के राजा होंगे। वह मेरी पूजा में तत्पर हो, मुझे ही स्थिर समझते हुए मेरे चरणों से निकली हुई एवं मेरे चरणों की सेवा करने वाली तथा शंकर के जटाजूट में स्थित गङ्गा को पृथ्वी पर उतार कर हजारों धाराओं से युक्त करेंगे। गङ्गा से युक्त होती हुई तुम तब वन्दनीय हो जाओगी। गङ्गा के पृथ्वी पर प्रकट होने पर तुम श्वेतद्वीप के समान पुनीत हो जाओगी। तब मैं विशेष प्रयोजनवश, हे भामिनि !

---

१. जागेश्वर नामक सुप्रसिद्ध स्थान। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में एक ज्योतिर्लिङ्ग—"नागेशो (यागेशो) दारुकावने"। २. "पुण्ये"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।

३. "ततो दारुवनं घोरं मदनाभिसृतो हरः। विवेश ऋषयो यत्र सपत्नीका व्यवस्थिताः"॥
"ततः संक्षुभिताः सर्वा यत्र याति महेश्वरः। तत्र प्रयान्ति कामार्ता मदविह्वलितेन्द्रियाः॥
ततस्तु ऋषयो दृष्ट्वा भार्गवाङ्गिरसा मुने। क्रोधान्विताब्रुवन् सर्वे लिङ्गोऽस्य पततां भुवि"॥
—इत्यादयः श्लोका वर्णनपरा वामनपुराणे ६ अध्याये उपलभ्यन्ते।

४. "तम् तथैव हि"—इति 'ख'—पुस्तके पाठः।

५. 'महत्पूताम्' इति 'ख'—पुस्तके। अयमेव पाठः समीचीनोऽस्ति। यतः पूतत्वेन पूज्यभावः स्वतः समुदेति।

श्वेतद्वीपनिभा पुण्या भविष्यसि ततः परम् । ततोऽहं वामनं रूपमास्थायाद्भुतकारणम् ॥८७॥
बलेरद्भुतवीर्यस्य मानभङ्गाय भामिनि । निजपादाङ्कितां त्वां वै करिष्यामि न संशयः ॥८८॥
ततो भूतलवासिन्यो राजानश्चेतरे जनाः । ज्ञात्वा मामेव लोकेशं करिष्यन्ति महत्तपः ॥८९॥
ततस्त्वं बहुपुण्येन भारहीना भविष्यसि । अथान्यदपि वक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं हि ते ॥९०॥
येन त्वं निश्चला पुण्या गमिष्यसि गृहं शुभे । ये त्वया गिरयः प्रोक्तास्तानहं कथयामि ते ॥९१॥
न ते भारकरा देवि ! तव भारहरा हि ते । हिमालयेति यः ख्यातो हिमसीकरसेवितः ॥९२॥
सोऽहमस्मि महाभागे ! नारदादिभि[1] संस्तुतः । कैलासस्तु शिवो ज्ञेयः पुण्यैः शिवगणैर्युतः ॥९३॥
गणेशादिभिः शिवगणैः[2] स्तूयमानः पुनः पुनः । विन्ध्यं ब्रह्मांशसम्भूतं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥९४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशजान् स्मर भामिनि । तस्माद् गिरीणां वै भारो नास्ति नास्तीह भामिनि॥९५॥
देवान् दैत्यान् पिशाचाँश्च गन्धर्वोरगमानवान् । पतङ्गकृमिजन्त्वादीन् वृक्षादींश्चापि भामिनि ॥९६॥
मदंशसम्भवान् सर्वान् जानीहि वसुधे शुभे । गच्छ त्वं भवनं भीरु पोषयस्व प्रजागणान् ॥
सहायं तव वै शुभ्रे ! करिष्यामि न संशयः ॥९७॥

व्यास उवाच—

श्रुत्वा तस्य विभोर्वाक्यं धरा सा स्वस्थमानसा । पुनरेव विभुं पुण्यं पप्रच्छ चारुभाषिणी ॥९८॥

अद्भुत पराक्रमी राजा बलि का मानभंग करने के लिए वामनरूप धारण कर तुम को अपने चरणों से अवश्य अंकित कर दूँगा। तब भूतल-वासी प्रजा, राजा तथा अन्य लोग मुझे ही परमेश्वर समझ कर तपश्चर्या करने लगेंगे। इस प्रकार अनेक पुण्यों के प्रभाव से तू भार-रहित हो जाएगी (पाप का बोझ दूर हो जाएगा)। और भी गोप्य बात तुझे मैं बतलाता हूँ। जिसके प्रभाव से हे शुभे ! तू स्थिर और पुनीत होकर अपने घर चली जाएगी। जो तू ने (दूसरी बात) पर्वतों को भारस्वरूप कहा हैं, उनके विषय में मैं तुझे बतलाता हूँ। हे देवि ! वे वास्तव में तेरे भारकारी नहीं हैं, किन्तु भार को दूर करने वाले हैं। हिमकणों से पूरित, नारद आदि मुनियों से प्रशंसित, सुप्रसिद्ध विशाल पर्वत हिमालय मेरा ही रूप है। शिवजी के पवित्र गणों से युक्त कैलास-शिखर को साक्षात् शिव ही समझो। गणेश आदि शिव के गणों से बार-बार स्तुति किये जाते हुए एवं ब्रह्मर्षियों से सेव्यमान विन्ध्य-पर्वत को ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न जानो। हे सुन्दरि ! इन पर्वतों को ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंशों से उत्पन्न समझो। अतः किसी तरह पर्वतों का भार नहीं है। शुभे ! देव, दैत्य, पिशाच, गन्धर्व, सर्प, मनुष्य, पतङ्ग, कृमि आदि प्राणिवर्ग तथा वृक्ष आदि स्थावर पदार्थ इन सब को मेरे अंश से ही उत्पन्न जानो। (इस कारण) हे भीरु ! तुम अपने वासस्थान को वापस होओ और प्रजा का पालन करो। शुभे ! मैं तुम्हारी सब तरह सहायता करूँगा ॥६९-९७॥

व्यास जी ने कहा—(इस तरह) सर्वव्यापी विष्णु की वाणी को सुन कर स्वस्थचित्त होती हुई पृथ्वी पुनः मधुर-शब्दों में पुण्यात्मा विष्णु भगवान् से पूछने लगी ॥९८॥

---

१. छन्दोभङ्गभिया विसर्गरहितः पाठोऽत्र दृश्यते । 'नारदादिभिसंस्तुतः' इति पाठः संभाव्यते ।
२. अस्मिन् चरणेऽक्षराधिक्यं वर्तते । 'गणेशादिगणैश्चैव' इति पाठः संभाव्यते ।

धरोवाच[1]—

कथं हि ध्रियते विष्णो ! भवद्भिः स्थावरं वपुः। सुखानि कानि तत्रैव कथ्यतां यदि रोचते ॥९९॥

विष्णुरुवाच—

शृणु भद्रे ! महापुण्यं वचो मे समुदाहृतम्। स्थावरत्वं सुखायैव जङ्गमे यत्र विद्यते[2] ॥१००॥
शीतादितापभीतीनां भीतिस्तत्र न विद्यते। न तु सम्भाषणं तत्र केनापि वरवर्णिनि ॥१०१॥
न तु मित्रकलत्राणां भोगादीनां तथैव[3] हि। सुखदुःखादिकानां च नास्ति तत्र भयं महत् ॥१०२॥
तस्माद्धि मानुषे पूज्यं रूपं स्थावरसंज्ञकम्। स्थावरत्वात् सहिष्णुत्वात् पूजयन्ति शिवादयः॥१०३॥
लोकानां ज्ञापनार्थाय स्थावरत्वं बिभर्म्यहम्[4]। गच्छ भद्रे महाभागे ! पुण्यं स्वभवनं प्रति ॥१०४॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत। शिवः शिवगणैः सार्धं जगाम शिवमन्दिरम् ॥१०५॥
आज्ञापयित्वा[5] तां पुण्यां ब्रह्मा ब्रह्मर्षिसेवितः। जगाम ब्रह्मभवनं सिद्धर्षिगणसेवितम् ॥१०६॥
धरा सा हृष्टवदना[6] पूर्णकामा यशस्विनी। परिक्रम्याभिवाद्याथ ब्रह्माणं सा जगाम ह ॥१०७॥

पृथ्वी ने कहा—हे विष्णो ! आप लोग स्थावर-रूप क्यों धारण करते हैं ? उस रूप में क्या सुख है ? यदि आप उचित समझें तो इसे बतलायें ॥९९॥

विष्णु भगवान् कहने लगे—"भद्रे ! मेरी कही हुई बात सुनो। स्थावर-रूप सुख के लिए है। वह सुख जङ्गमयोनि में कदापि नहीं है। स्थावर-योनि में शीत-ताप आदि भयों के लिये कोई स्थान नहीं है। सुन्दरि ! (और भी) स्थावर-रूप में न तो किसी के साथ संभाषण हो सकता है और मित्र-कलत्रादि का, सांसारिक भोगों का तथा सुख-दुःखादि का विशेष भय भी सम्भव नहीं है। अतः मनुष्य-लोक में स्थावर-रूप पूज्य है। स्थिरता तथा सहिष्णुता होने के कारण शिव आदि देवता भी स्थावर-रूप की पूजा करते हैं। भद्रे ! लोकों को ज्ञापित (प्रकाशित) करने के लिये ही मैं स्थावर-रूप धारण करता हूँ। महाभागे ! अब तुम अपने सुन्दर घर को वापस जाओ ॥१००-१०४॥

वेदव्यास ने कहा—इस प्रकार पृथ्वी से कह कर विष्णु भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गए। शिव जी अपने गणों के साथ अपने स्थान कैलास को चले गए। ब्रह्मा भी पृथ्वी को अपने घर वापस जाने की आज्ञा देकर ब्रह्मर्षियों सहित सिद्धपुरुषों तथा ऋषियों से सेवित ब्रह्मलोक को चले गए। तब प्रसन्नमुखी, पूर्णमनोरथा तथा यशस्विनी पृथ्वी, ब्रह्मा की परिक्रमा करते हुए प्रणाम करने के उपरान्त वहाँ से चली गई। पृथ्वी ने अपने असह्य

---

१. "धरा उवाच"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।
२. "जङ्गमत्वे न विद्यते"—इति "ख"—पुस्तके पाठः।
३. "तयाऽपि"—इति 'ख'—पुस्तके पाठः।
४. "तस्माद् भद्रे महापुण्यं स्थावरत्वं विशिष्यते।
कथितं हि महाभागे ! स्थावरत्वस्य लक्षणम् ॥"—इति श्लोकः 'ख'-पुस्तके अधिकः।
५. ल्यबन्तरहितः पाठः पौराणिकः।
६. "हृष्टमनसा"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः।

दुःसहं[1] स्वस्थभारं सा लघ्वीभूतममन्यत[2]। यश्चैनां श्रावयेत् पुण्यां पृथोर्वैण्यस्य चानघ ॥१०८॥
धरायाश्चरितं पुण्यं तथा ब्रह्मेरितां स्तुतिम्। विष्णोरमितवीर्यस्य चरित्रं पापनाशनम् ॥१०९॥
यः शृणोति महाराज ! पुत्रपौत्रसमन्वितः। [3]सम्प्राप्य विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
दिव्याप्सरोभिः संकीर्णं मोदते देववद् द्विजाः ॥११०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे [4]धराश्वासनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

भार को हलका हुआ सा समझा। (अतः) महाराज ! जो कोई वेण के पुत्र पृथु की इस पवित्र कथा को, पृथ्वी के पावन चरित्र को और ब्रह्मा द्वारा की हुई स्तुति को, अतुल पराक्रमशाली विष्णु भगवान् के पाप-नाशक चरित्र को सुनाये, तथा हे ऋषिगण ! जो कोई पुत्र-पौत्रादि सहित इस कथानक (आख्यान) को सुनता है, वह दिव्य-अप्सराओं से संकुलित, पुनरागमन-रहित हो वैकुण्ठ-लोक को प्राप्त कर देवताओं के समान आनन्द करता है ॥१०५-११०॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड का धराश्वासन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥

—: ❀ :—

---

१. "दुःसहमपि भारं सा लघ्वीभूतं हि मेनिरे"—इति 'ख'-पुस्तके।
२. "लघ्वीभूतं हि मेनिरे"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः।
३. "स प्राप्य"—इति 'ख'-पुस्तके।
४. धरति जीवसङ्घान् इति "धरा"—√धृ + अच् + टाप्। यद्वा ध्रियते शेषेण इति "धरा"—धृ + अप् + टाप्। तथा हि—"धारणाच्च धरा प्रोक्ता पृथ्वी विस्तारयोगतः।" देवीभागवतम्—३-१३-८।

ऋषय ऊचुः—

कथितं भवता ब्रह्मन् धरायाश्चरितं महत् । विष्णोरमितवीर्यस्य पृथोर्वैण्यस्य वै तथा ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामश्चरितं शूलपाणिनः । शापस्य कारणं ब्रूहि ऋषीणामृषिसत्तम ॥२॥
तस्य ध्यानं सचरितं तथा शोकस्य कारणम् । यथा लिङ्गस्य पतने कारणं तद्वदस्व[1] वै ॥३॥

व्यास उवाच—

कथयामि महाभागा एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम् । कथ्यतां शृण्वतां चापि सर्वपापप्रणाशनम् ॥४॥
दक्षप्रजापतेः कन्यां कालीं वै नाम नामतः । उद्वाहकाले स विभुर्जग्राह तत्करं शुभम् ॥५॥
ततः कालेन महता काली कलुषनाशिनी । श्रुत्वा यज्ञं समारब्धं स्वपितुर्भवनं ययौ ॥६॥
अनादराच्च[2] पित्रा सा अर्घ्यादिकरणैः प्रभो । दृष्ट्वा समूहं स्त्रीणां तद् भगिनीनां यशस्विनी ॥७॥
पित्रा सुभूषितानां हि वस्त्रालंकारभूषणैः । पित्रा ह्यनादृता[3] देवी गर्हिता स्त्रीजनैरपि ॥८॥
प्रविवेश चितां राजन्! पितुर्गेहे मनस्विनी । ज्ञात्वा दग्धां हि तां कालीं स विभुर्भूतभावनः ॥९॥

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने पृथ्वी के चरित्र का वर्णन किया तथा अतुल पराक्रमी विष्णु एवं वेणु के पुत्र पृथु का भी चरित्र-चित्रण किया । अब हम लोग त्रिशूल-धारी भगवान् शङ्कर के चरित्र के विषय में जानना चाहते हैं । (अतः) हे ऋषिश्रेष्ठ ! आप अब हमें महादेव जी को ऋषियों के शाप देने का कारण विदित करायें । (साथ ही) उनके चरित्रसहित समाधि लगाने तथा शोक का कारण एवं पृथ्वी पर लिङ्ग के पतन का कारण भी हमें बतलायें ॥१-३॥

व्यास जी ने उत्तर दिया—हे महर्षियों ! मैं इस प्रश्न का उत्तर सुचारु रूप में देता हूँ, जो कहने वाले और सुनने वालों के पापों का विनाशक है । दक्ष-प्रजापति की काली नाम की कन्या के साथ शंकर ने विवाह किया । बहुत समय व्यतीत होने पर पापों को नाश करने वाली काली ने यह सुन कर कि उनके पिता ने यज्ञ आरम्भ किया है—अपने पिता के घर (बिना बुलाये) चली गई । अर्घ्य आदि प्रदान न करने से वह पिता से अनादृत हुई । यशस्विनी काली ने अन्य स्त्रियों तथा अपनी बहनों को पिता के द्वारा वस्त्रा-भूषणादि से अलंकृत किये जाने से अपना अनादर अनुभव किया । अतः अन्य स्त्रियों ने भी उसकी निन्दा की । इस कारण हे जनमेजय ! मानिनी काली ने अपने पिता के घर ही चिता में प्रवेश कर लिया । भूतभावन भगवान् शङ्कर काली को भस्म हुआ जान कर

---

१. आत्मनेपदप्रयोगः बहुशोऽत्र उपलभ्यते । णिचा सहितस्य शतृप्रत्ययान्तस्य षष्ठ्या बहुवचने 'कथयताम्' इति रूपं स्यात् । छन्दोभङ्गभिया अकारस्य लोपः कृतः स्यात् । 'वक्तॄणाम्' इति पाठः समुचितः प्रतिभाति ।

२. "अनादराऽपि"—इति "ख"—पुस्तके पाठः ।

३. "पित्रा चाऽनादृता"—इति "ख"—पुस्तके पाठः ।

जगाम दक्षस्य गृहं ज्वलन्निव हुताशनः । भित्त्वा तन्मखपात्राणि स्तम्भानुत्पाट्य स प्रभुः ॥१०॥
ददाह ऋत्विजान् सर्वान् वह्निना नेत्रजेन हि । तत्रैव ब्रह्मणश्चैकं सकिरीटं सकुण्डलम् ॥११॥
हृत्वा स देवदेवेशो ब्रह्मणा संस्तुतः प्रभुः । ररक्ष दक्षं राजर्षे ब्रह्मवाक्यप्रचोदितः ॥१२॥
तपसे कृतसंकल्पः कपालकरभूषणः । जगाम देवदेवेशो वसुधां वसुधाधिप । ॥१३॥
तत्याज स गिरेः शृङ्गं कैलासस्य द्विजोत्तमाः । तथा पुण्यं शिवगृहं रुद्रकन्याविराजितम् ॥१४॥
नन्दि-स्कन्दि-रिटियुतैः सेवितं गणनायकैः । प्राप्य विन्ध्यं सुपुण्यं वै वर्षमात्रं नरेश्वर ॥
नन्दिना सह देवेशश्चकार विपुलं तपः ॥१५॥

ततो हिमाद्रिं पुरुहूतसेवितं, त्यक्तं हि विन्ध्यस्य वनं पवित्रम् ।
ज्ञात्वा सुपुण्यैर्हिमसीकरैरपि, सम्पूरितं तं स ययौ महेश्वरः ॥१६॥

प्राप्य चाधित्यकां भूमिमृषिपुण्याश्रमैर्वृताम् । टङ्कणाद्रिगिरे राजन् सरयूजलसेविताम् ॥१७॥
ततो जगाम गहनं वृक्षैर्बहुविधैरपि । तुषारस्य कणा यत्र निषेवन्तेऽप्यहर्निशम् ॥१८॥
चकार वासं देवेशस्तत्रैवं दारुकानने । नानाविधैः पक्षिगणैर्मृगयूथैर्निषेविते ॥१९॥
नन्दनोद्भववृक्षाढ्यैर्देवदारुविशोभिते । तथान्यैर्वृक्षराजैश्च मृगराजैश्च शोभिते ॥२०॥
ततस्तु वासुदेवस्य तथ्यं कर्तुं वचो हरः । चकार स्वाश्रमं पुण्यं देवदारुनिषेवितम्[1] ॥२१॥

दक्ष की राजधानी में प्रज्वलित अग्नि की तरह (क्रोधाभिभूत) पहुँच गए। वहाँ आते ही शिव जी ने यज्ञपात्रों को तोड़ कर तथा यज्ञ-मण्डप के खम्भों को उखाड़ कर अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से ऋत्विजों को भस्म कर दिया। वहीं (यज्ञभूमि में) किरीट-कुण्डल सहित अपना एक मुख (सिर) हरण हुआ देखकर स्वयं ब्रह्मा अनुनय-विनय करने लगे। हे राजर्षे ! ब्रह्मा जी की प्रेरणा से ही वहाँ दक्ष की रक्षा हुई। पृथ्वीनाथ ! कपालरूपी हस्ताभूषण से युक्त (खप्पर हाथ में लिये) महादेव जी तपश्चर्या करने की प्रतिज्ञा करते हुए भूलोक में चले आए। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! महादेव जी ने रुद्रकन्याओं से सुशोभित शिव-मन्दिर को एवं कैलास पर्वत के शिखर को इस हेतु छोड़ दिया। हे राजन् ! गणों में अग्रणी नन्दी, स्कन्दी तथा रिटि के सहित भगवान् शंकर (कैलास को छोड़ कर) विन्ध्य पर्वत में आकर एक वर्ष तक रहे। वहाँ नन्दी के साथ शिव जी ने घोर तपस्या की। तदनन्तर विन्ध्याचल के पवित्र वन का परित्याग कर इन्द्र से सेवित हिमालय की ओर चले आए। स्वच्छ हिम-कणों से पूरित हिमाचल को जान कर ही वह वहाँ आए। वहाँ अनेक ऋषियों के सुन्दर आश्रमों तथा सरयू के जल से युक्त टंकण पर्वत की अधित्यका में पहुँच कर, हे राजन् ! शिव जी ऐसे घोर वन में गए, जहाँ हिमपात रात-दिन होता रहता है। उस टंकण पर्वत की अधित्यका के निकट अनेक प्रकार के पक्षियों तथा मृगों से सेवित दारुकानन में भगवान् शंकर ने अपना वासस्थान (आश्रम) चुना तथा नन्दन-वन में उत्पन्न होने वाले श्रेष्ठ देवदारु के वृक्षों एवं अन्य श्रेष्ठ वृक्षों तथा सिंहों से शोभित उस दारुकानन में विष्णु भगवान् की वाणी को सत्य करने के लिये अपना पवित्र आश्रम बनाया। भगवान् शंकर ने जंगली वृक्षों की

---

१. "देवराजनिषेवितम्"—इति "ख"—पुस्तके पाठः ।

वन्यानां पादपानां च छायाभिः परिवेष्टितम् । आस्तीर्यासनमत्युग्रं मृगराजत्वगुद्भवम् ॥
विवेश भगवान् रुद्रो ध्यायन् योगं सनातनः ॥२२॥

ततो भवान्याः स वियोगसम्भवं, प्रातः समुत्थाय कपालपाणिः ।
स्मृत्वा सुदुःखं[1] जनदुःखहन्ता, भिक्षाटनं दारुवने चकार ॥२३॥
तस्थौ स तत्राष्टसहस्रसंख्यैः[2], सम्पूजितः पर्वतनायिकाभिः ।
चकार कान्तं रमणीयरूपं, तदास्पदं योगिभिरप्यगम्यम् ॥२४॥

वसिष्ठाद्या महात्मानस्तत्रैवाश्रमवासिनः । आश्रमं चक्रतुः[3] सर्वे सहशिष्यैर्महर्षयः ॥२५॥
प्रत्यायान्ति स्त्रियस्तेषां नीत्वा नीत्वा समित्कुशान् । एकदा ऋषिपत्न्यो वै वसिष्ठवल्लभां विना ।२६॥
जग्मुस्तं विपिनं पुण्यं यत्रास्ते जगदीश्वरः । दृष्टः कदाचिद्देवेशस्ताभी राजर्षिसत्तम ॥२७॥
अनन्यचित्तास्तं देवं दद्दृशुस्ता न संशयः । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं नागमालाविराजितम् ॥२८॥
शोभितं मृगराजस्य चर्मणा बिन्दुशोभिना । ध्यायन्तमात्मनाऽऽत्मानं योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥२९॥
श्वसन्तं सकलां पृथ्वीं स्वेन श्वासेन वै द्विजाः । कोऽयमत्यद्भुताकारो ध्यानवृत्तिपरायणः ॥३०॥
सञ्चिन्त्य ऋषिपत्न्यो वै मुमुहुस्ताः क्षुधार्दिताः । नेन्धनं जगृहे काचित् न काचिद्वै समित्कुशान् ॥३१॥

छाया से घिरे हुए व्याघ्रचर्म के उग्र आसन पर बैठ कर योग-साधन आरम्भ किया (तपश्चर्या की)। इस तरह सबके दुःखों को हरने वाले भगवान् शिव स्वयं सती के वियोगजन्य दुःख को स्मरण कर प्रातःकाल ही हाथ में कपाल (खप्पड़) लेकर भिक्षा के हेतु दारुकानन में भ्रमण करने लगे। वहाँ पर शिव जी आठ हजार पर्वतनायिकाओं से पूजित होकर रहने लगे। उन्होंने योगियों से भी अगम्य उस स्थान को बहुत ही रमणीक बना दिया। अन्यत्र आश्रमों में रहने वाले वसिष्ठ आदि महर्षियों ने भी अपने शिष्यगणों के साथ वहीं अपने-अपने आश्रम बनाये। उन ऋषियों की पत्नियाँ समिधा और कुशा लेकर वहाँ आती जाती रहीं। एक दिन मुनि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती के अतिरिक्त सभी ऋषिपत्नियाँ उस पवित्र कानन में गईं, जहाँ भगवान् शिव आसन जमाये बैठे थे। हे राजर्षियों में श्रेष्ठ जनमेजय ! उन ऋषिपत्नियों ने एक दिन (अचानक) शिव को देख लिया। निःसन्देह उन्होंने एकाग्रचित्त से शिव को देखा। उस समय शिव जी सम्पूर्ण शरीर में भस्म रमाये हुए सर्पों की माला से सुशोभित एवं धारीदार व्याघ्रचर्म को ओढ़े हुए विराजमान थे। हे ऋषिगण ! भगवान् शङ्कर, जिनके चरणों का ध्यान योगिजन किया करते हैं, स्वयम् अपने ध्यान में स्थित थे तथा अपने श्वास से समग्र पृथ्वी को श्वास से ग्रहण करते हुए दिखाई पड़े। वे मुनिपत्नियाँ शिव जी की इस स्थिति को देखकर कहने लगीं कि इस प्रकार स्वतः अपने ही ध्यान में लीन यह अद्भुत आकारवाला व्यक्ति कौन है ? ऐसा विचार कर भूख से पीड़ित होने पर भी वे ऋषिपत्नियाँ शिव पर मोहित हो गईं। वे इंधन और कुशा लेना भी भूल गईं। संसार के स्वामी शिव जी का ध्यान करते-करते यों ही दिन बीत

---

१. "स्वदुःखम्"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः ।
२. विशेष्यस्य स्त्रीलिङ्गत्वादत्रापि स्त्रीलिङ्ग-प्रयोग एव समुचितः स्यात् ।
३. "चक्रुः"—इति पाठोऽपेक्षितः, कर्तृपदस्य बहुवचनत्वात् ।

तमेव विश्वभर्तारं ध्यायन्तीनां दिनात्ययः। अभवद्राजशार्दूल! निशा समुपपद्यत[1] ॥३२॥
ततस्ते ऋषयः सर्वे तासां मार्गं प्रपेदिरे। निशेयं समनुप्राप्ता न दृश्यन्ते तपोऽङ्गनाः ॥३३॥
समाप्य ते विधि सान्ध्यं वसिष्ठस्य समित्कुशैः। ततस्ते चिन्तयामासुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥
अहो कालो व्यतीतो वै नागता ह्यध्वरप्रियाः। अद्याग्निहोत्रं सर्वेषां नष्टमेतन्न संशयः ॥३५॥
किं नु व्याघ्रेण जग्धा वै मार्गभ्रंशोऽथवा किमु। किं नु पौलस्त्यतनयैर्हृतास्ता यज्ञवल्लभाः ॥३६॥
विचार्य सुचिरं कालम् ऋषयस्ते तपोधनाः। तत ऊचुस्त ऋषयो वचनं सत्यवादिनः ॥३७॥
तासां मार्गं महाभागाः प्रातरेव न संशयः। जुहुयाग्नि[2] गमिष्यामस्तासामन्वेषणं प्रति ॥३८॥

व्यास उवाच—

ततस्तु[3] ऋषयः सर्वे स्थित्वा कृत्वाह्निकीं क्रियाम्। जग्मुर्मार्गं ततः स्त्रीणां वनादुपवनं प्रति ॥३९॥
मार्गमन्वेषमाणा वै गतास्ते दारुकाननम्। तत्र दृष्ट्वा शिवं शान्तं ध्यायमानं परात्परम्[4] ॥४०॥
तत्रोपविष्टास्ताः सर्वास्तद्भवज्ञानमोहिताः। अहोरात्रं गतं सर्वं न जानन्त्यः शुभव्रताः ॥४१॥

व्यास उवाच—

ततस्ते ऋषयः सर्वे शप्तुकामा यतव्रताः। ददुः शापं महाभागा येन ता मोहिताः स्त्रियः ॥४२॥

गया। हे नृपशार्दूल! फिर क्या था? रात हो गई। हे तपोधनों! तब वे ऋषि उनकी बाट देखने लगे और कहने लगे कि रात हो गई है, ऋषिपत्नियाँ कहीं दिखाई नहीं दे रही हैं? महर्षि वसिष्ठ की समिधा और कुशों से सायंकालिक यज्ञ-विधान सम्पन्न कर वे तत्त्वदर्शी मुनि यह सोचने लगे—"बड़ा आश्चर्य है, इतना अधिक समय बीतने पर भी आज ऋषिपत्नियाँ अभी तक नहीं लौटीं। अब निःसन्देह सबका अग्निहोत्र भङ्ग हुआ चाहता है। क्या उनको सिंह ने खा लिया? अथवा वे रास्ता भूल गईं? अथवा यज्ञ पर आस्था रखने वाली उन ऋषिपत्नियों को राक्षस हर ले गये? इस तरह बहुत देर तक वे सत्यवादी तपस्वी विचार करने के बाद यह कहने लगे—हे महाभागों! अब निश्चयपूर्वक प्रातःकाल ही अग्निहोत्र करके उनकी खोज करने के लिये जायेंगे" ॥४-३८॥

व्यास जी ने कहा—इस प्रकार विचार करने पर, रातभर ठहर कर, प्रातः होते ही ऋषियों ने आह्निक-कृत्य समाप्त कर एक वन से दूसरे वन में स्त्रियों की खोज की। ढूँढते-ढूँढते वे ऋषि दारुकानन में पहुँचे। वहाँ शान्त शिव को परब्रह्म का ध्यान करते हुए देख कर, वहीं शिव के रूप में विमुग्ध हुई स्त्रियों को बैठी हुई देखा। उन पतिव्रताओं को दिन और रात बीतने की सुध भी न रही ॥३९-४१॥

व्यास जी फिर कहने लगे—शाप देने के इच्छुक तपस्वी ऋषियों ने तब उस व्यक्ति को, जिसने उन स्त्रियों को मोहित किया था शाप दे ही डाला ॥४२॥

---

१. "निशा समनुपद्यत"—इति "ख"-पुस्तके पाठः।
२. 'जुहुयाग्नीन्'—इति 'ख'-पुस्तके।
३. 'तत्र ते ऋषयः सर्वे स्थिताः कृत्वाह्निकक्रियाम्'—इति 'ख'—पुस्तके।
४. 'ध्यायन्तं परमेश्वरम्' इति पाठः समुचितः प्रतिभाति।

ऋषय ऊचुः—

येन वै भवता योगिन् अस्माकं हि कुलस्त्रियः[1] । तस्मात्लिङ्गस्य पतनं तव भूमौ महेश्वर ॥
भवत्वथ तु बिम्बेव[2] यावदाभूतसम्प्लवम् ॥४३॥
इत्युक्त्वा ऋषयः सर्वे शप्त्वा योगीश्वरं हरम् । सहैव ऋषिपत्नीभिर्गन्तुमावासमुद्यताः ॥४४॥
तावद्ददर्श देवेशो ऋषींस्तान् शापकारकान् । विनाऽपराधं तं शापं श्रुत्वा देवो जगत्पतिः ॥
उवाच तानृषीन् सर्वान् तदा ब्रह्मर्षिसत्तमान् ॥४५॥

महेश उवाच—

यस्माद् भवद्भिः शप्तोऽस्मि धर्मज्ञाः सुकृतेनहि।तस्माद् भवन्तस्तत्त्वज्ञाः शापं ह्येतत् प्रगृह्यताम्॥४६॥
अज्ञातकारणं यन्मां ध्यानेनामितकारणम् । तस्माद्यूयं महाभागाः ! श्रूयतां मदुदाहृतम् ॥४७॥
मद्दर्शनाद्धि लोकानां वैरेणैव हि वै द्विजाः । मुक्तिरेव हि सर्वेषां पुत्रमित्रद्रुहामपि ॥४८॥
मत्तो मुक्ति समालम्य पत्नीभिः सह वै द्विजाः । भोगहीनोत्तरस्यां[3] हि भवध्वं दिवि तारकाः ॥
काले मन्वन्तरं प्राप्य वैवस्वतमनोः शुभम् ॥४९॥

व्यास उवाच—

ऋषीणां हि महच्छापं दत्त्वा देवो महेश्वरः । तत्रैव लिङ्गपतनं चकार मुनिसत्तमाः ॥५०॥

ऋषियों ने इस प्रकार कहा—"योगिन् ! आप ने हमारी कुलवधुओं को मोहित किया है, अतः हे महेश्वर ! आप के लिङ्ग का भूमि पर पतन हो और वह बिम्ब के समान पृथ्वी पर प्रलयकालपर्यन्त बना रहे" ॥४३॥

व्यास जी ने कहा—इस प्रकार कहते हुए सब ऋषि योगीश्वर शिव को शाप देकर अपनी पत्नियों के साथ अपने-अपने आश्रमों की ओर जाने को उद्यत हुए। इतने ही में भगवान् शिव ने शाप देने वाले ऋषियों को देखा। संसार के पालक भगवान् शिव ने निरपराध उस शाप को सुन कर ब्रह्मर्षियों में श्रेष्ठ उन ऋषियों से कहना आरम्भ किया ॥४४-४५॥

महादेव बोले—"हे धर्मज्ञ ऋषियों ! जिन पुण्यों के कारण आपने मुझे शाप दिया है, उसी कारण, हे तत्त्वज्ञानी मुनिजन ! आप लोग भी मेरे शाप को अंगीकार करें। ध्यानयोग में स्थित अव्यक्तकारण-स्वरूप मुझ को बिना किसी कारण जो आपने शाप दिया है, इसके फलस्वरूप (उत्तरस्वरूप) मेरा कथन भी सुन लीजिये। हे विप्रवृन्द ! वैरभाव से भी मेरा दर्शन कर पुत्र-मित्र-द्रोहीजन भी मुक्ति-लाभ करते हैं। हे द्विजवर्ग ! अतः आप सब मुझ से मुक्ति-लाभ कर भोगरहित हो मन्वन्तर बदलने पर वैवस्वत मनु के समय अपनी पत्नियों सहित आकाश में उत्तर की ओर तारे बन जायें" ॥४६-४९॥

---

१. 'कुलस्त्रियः' इत्यस्याग्रे-'मोहिता सान्ध्यहीनाश्च वयं चापि निराकृताः । तस्मात् शापं हि दास्यामो गृहाण यदि मन्यसे । इदानीं ध्यानयुक्तोऽसि रात्रौ वै मोहिताः स्त्रियः' ॥ इत्यधिकः 'ख' पुस्तके पाठः विद्यते । २. बिम्बमिवेति अपेक्ष्यते ।

३. भोगहीनाः + उत्तरस्याम् इति पदच्छेदः । सन्धिः आर्षः । 'भवध्वम्' इति आर्षः प्रयोगः ।

आक्रम्य सप्त-पातालं[1] तथा भूमण्डलं शुभम्। शुशुभे देवदेवेशो देवराजोपमद्युतिः ॥५१॥
तदा देवाः सगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगाः। दर्शनं यज्ञपत्नीनां योगेशं तं च तुष्टुवुः ॥५२॥
ऋषीणां मुक्तिदानाय तथाऽन्येषां महीपते। मुक्तिमण्डलमण्डस्थो मुक्तीशेति च विश्रुतः ॥५३॥
वैवस्वतं मनुं प्राप्य ते सर्वे ऋषयोऽपि[2] हि। महेशान्मुक्तिमालभ्य संभूता दिवि तारकाः ॥५४॥
सप्तर्षयो महाराज! दृश्यन्तेऽद्यापि चोत्तरे ॥५५॥

ऋषय ऊचु—

त्वयोक्तं देवदेवस्य यथा लिङ्गं भुवः स्थले। पतितं चापि विप्रर्षे! सर्वज्ञस्य महात्मनः ॥५६॥
मूर्तिभूतो हि विप्रर्षे! एकस्मिन्नेव मण्डले। स कथं देवदेवेशो बहुत्वमुपलब्धवान् ॥५७॥
तस्य लिङ्गैर्महाराज! छादिता श्रूयते मही। एतत् सर्वमशेषेण कथयस्व यथातथम् ॥५८॥

व्यास उवाच—

अस्त्येवं देवदेवेशः सर्वव्यापी न संशयः। नास्ति नास्तीह वै विप्रास्तेन हीनं भुवस्तलम् ॥५९॥
तथापि कथ्यमानं च कथयामि न संशयः। शिवलिङ्गं महत्पुण्यं श्रुत्वा तत्पतितं भुवि ॥६०॥

व्यास जी ने पुनः कहा—इस प्रकार शिव जी ने ऋषियों को अभिशप्त कर, हे मुनि-श्रेष्ठों! वहीं पर स्वयम् अपना लिङ्ग-पतन किया। सातों पाताल और भूमण्डल को अभिव्याप्त (आक्रान्त) कर उस लिङ्ग-पात के प्रभाव से भगवान् शिव इन्द्र के समान कान्तिमान् हुए। तब देवगण, गन्धर्वों सहित सिद्ध, विद्याधर एवम् नाग, उन ऋषिपत्नियों के दर्शन के लिए वहाँ आए और भगवान् शिव की स्तुति करने लगे। महाराज जनमेजय! ऋषियों को तथा औरों को मुक्तिलाभ कराने के लिये मुक्तिमण्डल के मध्य में सुशोभित शिव 'मुक्तीश' नाम से प्रसिद्ध हुए। वैवस्वत मन्वन्तर में वे ऋषि भी शिव जी से मुक्ति पाकर आकाश में तारे बन गए। अर्थात् सप्तर्षिमण्डल के रूप में आकाश में प्रतिष्ठित हो गये। महाराज! आज भी वह सप्तर्षिमण्डल उत्तर दिशा में दिखाई पड़ता है" ॥५०-५५॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मर्षे! आपने यह कहा कि किस प्रकार सर्वज्ञ महात्मा शिव के लिङ्ग का पृथ्वी पर पतन हुआ, किन्तु यह कैसे सम्भव हुआ कि एक ही मण्डल में मूर्ति-मान् शिव ने अनेक रूप धारण किये? इसके अतिरिक्त, महाराज! यह भी सुना जाता है कि उनके लिङ्ग से पृथ्वी आच्छादित हो गई। इस कथानक का यथार्थ रूप में सम्पूर्णतया वर्णन कीजिये ॥५६-५८॥

व्यास जी ने उत्तर दिया—भगवान् शंकर इसी प्रकार सर्वव्यापी हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। हे विप्रगण! उनसे रहित भूमण्डल में कोई स्थान नहीं है। तो भी मैं वर्णनीय इस विषय का निरूपण कर रहा हूँ। हे राजन्! पुण्यस्वरूप शिवलिङ्ग के पृथ्वी पर पतन होने की वार्ता को सुन कर विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र आदि देवगणों के साथ वहाँ ब्रह्मा

---

१. १अतल, २वितल, ३सुतल, ४तलातल, ५महातल, ६रसातल और ७पाताल।

२. "कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च अरुन्धत्या सहाष्टकाः ॥"

ब्रह्मा विष्णुश्च सोमश्च तथैव च दिवाकरः। इन्द्रादिभिर्देवगणैः सहाजग्मुर्जनाधिप ॥६१॥
गत्वा तत्र यथान्यायं नमश्चक्रुर्महेश्वरम्। तस्थुस्तत्रैव ते सर्वे कौतूहलसमन्विताः ॥६२॥
अहो रुद्रस्य देवस्य लिङ्गं ज्योतिःसमन्वितम्। दृश्यतेऽद्यापि नो दृष्टं भाषमाणा दिवौकसः ॥६३॥
तस्थुस्तत्रैव वै विप्रा निजांशेन समाहिताः। दृश्यन्तेऽद्यापि ऋषिभिर्ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥६४॥
एतस्मिन्नेव समये वसुधा वसुधाधिप। गोरूपधारिणी तत्र विष्ण्वन्तिकमुपागता ॥
तमुवाच वरिष्ठा सा स्तुतिप्रणयवादिनी ॥६५॥

गौरुवाच—

नमो नमस्ते पुरुषोत्तमाय, धराधराधारणकारणाय।
ब्रह्मादिभिर्देवगणैः समस्तैरगम्यरूपाय नमो नमस्ते ॥६६॥
साहं हि लिङ्गेन शिवस्य वै प्रभो, पुण्येन पातालगतेन वै तथा।
धृतास्मि पूतास्मि महाबला तथा, चारुः सुभाग्या शुभदा तथा प्रभो ॥६७॥
तथाप्येकं करिष्यामि यद्यनुग्राह्यसि प्रभो। आक्रम्य सप्त-पातालं शिवेन परमात्मना ॥६८॥
शिवदाऽहं कृता चास्मि धृतास्मि परमेश्वर। धर्तुं त्वां देवदेवेशं न समर्थास्मि वै प्रभो ॥६९॥
एतत् कौतूहलं तत्र पश्यतां यदि रोचते। अहमप्यस्य लिङ्गस्य नान्तं जानामि वै प्रभो ॥७०॥

व्यास उवाच—

अथ ब्रह्मादयो देवा धराया वचनं शुभम्। श्रुत्वा कौतूहलं सर्वं ययुस्ते देवतागणाः ॥७१॥
उपदिष्टा महेशेन विष्णुना प्रभविष्णुना। तलातलं विष्णुगृहं यत्रास्ते शेषसंज्ञकः ॥७२॥

आये। वहाँ जाकर सबने यथायोग्य शिव को प्रणाम किया और वहीं पर वे सब बड़े कुतूहल के साथ बैठ गए। वहाँ पर देवता यह कहते हुए सुनाई पड़ रहे थे कि ज्योतिःसम्पन्न शिव लिङ्ग जो आज दिखाई पड़ रहा है, हम ने उसे पहले कभी नहीं देखा था। वहीं पर अपने अंशों से युक्त होकर देवता तथा सप्तर्षिगण भी रहने लगे। आज भी ब्रह्मादि देवता ऋषियों के साथ वहाँ दिखाई देते हैं। हे राजन्! इसी समय पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भगवान् विष्णु के समीप पहुँची। उस श्रेष्ठ पृथ्वी ने बड़े प्रेम के साथ स्तुति करते हुए विष्णु से कहा ॥५९-६५॥

गाय स्तुति करने लगी—पृथ्वी और पर्वतों को धारण करने वाले पुरुषोत्तम को नमस्कार है। ब्रह्मादि देवगणों के सहित अगम्य-स्वरूप आप को मेरा नमस्कार है। हे प्रभो! मैं पाताल तक पहुँचे हुए पुण्यात्मा शिवलिङ्ग से धारण की गई हूँ। इसके साथ ही मुझे पवित्र बना दिया है। अब मैं सुन्दर, सौभाग्यशालिनी, बलशालिनी तथा कल्याणकारिणी हो गई हूँ। यदि आप का मुझ पर अनुग्रह हो तो मैं एक कार्य करूँगी। प्रभो! सातों पातालों को आक्रान्त कर भगवान् शिव ने यद्यपि मुझे धारण कर रखा है तथा मुझे कल्याणकारिणी बना दिया है। तथापि मैं शिव को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। यदि आप को अच्छा लगे तो इस कुतूहल पर सोचें, क्योंकि मैं भी इस लिङ्ग के अन्त को नहीं जानती हूँ ॥६६-७०॥

व्यास जी ने कहा—इस प्रकार गोरूपधारिणी पृथ्वी के शुभ वचन सुन कर देवगण आश्चर्यचकित हो गए। महादेव तथा समर्घशील विष्णु ने उन्हें पाताल में विष्णु के घर में उपदेश दिया, जहाँ शेषनाग विद्यमान रहता है। हे प्रभो! उन्होंने शेषनाग को प्रणाम कर,

नत्वा शेषं महाभागा ददृशुस्ते शिवं प्रभो। पातालादप्यधोभागे गतं ज्योतिःसमन्वितम् ॥७३॥
नान्तं प्राप्याथ ते सर्वे देवा ब्रह्मर्षिभिः सह। प्रत्याजग्मुश्च ते सर्वे यत्रास्ते स शिवोऽव्ययः ॥७४॥
तत्रोवाच तदा देवी ब्रह्माणं चारुभाषिणी। दृष्टं त्वया शिवस्यान्तं ब्रह्मन् मां कथयस्व वै ॥७५॥
तत्रोवाच स्वयं ब्रह्मा तां शुभां चारुभाषिणीम्। कर्तुं त्वां निश्चलां भूमिं धराधरसमन्विताम् ॥७६॥
दृष्टोऽस्माभिः शिवस्यान्तं मा खिद्यस्व वरानने। ततोवाच[1] विधातारं कुपिता वसुधा तदा ॥७७॥
यस्मात् त्वयाऽतथ्यगिरा सृष्टिसंहारकारिणा। तस्मादपूज्यो लोकेश भव भूमण्डले शुभे ॥७८॥
ततस्तां स च देवेशः स्रष्टा देवर्षिपूजितः। यतो मामाद्यपुरुषं शपसि त्वं वरानने ॥७९॥
तस्मान्म्लेच्छगणैः सर्वैर्युगान्ते पूरिता भव ॥८०॥

व्यास उवाच—

तदा शप्त्वैव तेऽन्योन्यं देवानामग्रतः स्थिता। तानपृच्छद्धरा देवी शिवान्तं राजसत्तम ॥८१॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरान्विताः। ऊचुः सर्वे गुरुयुता वसुधां वसुधारिणीम् ॥८२॥
यस्यान्तमाद्या हरिसंमितास्तु ते, ब्रह्मादयो ब्रह्मसुतादयस्तथा।
योगैः ससाङ्ख्यैः कपिलादयस्तथा, शेषादयो यं न विदुर्वयं कुतः ॥८३॥

व्यास उवाच—

इति तेषां वचः सत्यं ज्ञात्वा क्षोणी हरिं ययौ। ततो विज्ञापयामास वासुदेवं सतां गतिम् ॥८४॥

शिव को देखा। उनका ज्योतिर्मय लिङ्ग पाताल से भी नीचे पहुँचा हुआ था। उस लिङ्ग के अन्त को न पाकर ब्रह्मर्षियों सहित देवगण वहीं वापस आ गए, जहाँ अविनाशी शिव विद्यमान थे। तब सुभाषिणी धरा ने ब्रह्मा से शिव के अन्त को देखने की बात के विषय में जिज्ञासा करते हुए बतलाने के लिये निवेदन किया। तब ब्रह्मा ने चारुभाषिणी पृथ्वी से यह कहा कि 'हमने लिङ्ग के अन्त को पर्वतों सहित भूमि को निश्चल बनाने के लिए देखा है। अतः हे सुमुखि ! तुम दुःखी न हो।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर पृथ्वी ने कुपित होकर यह कहा—'हे ब्रह्मन् ! सृष्टि और संहार करने वाले तुम्हारे सदृश लोग भी यदि असत्य भाषण करें तो मेरा यह शाप है कि संसार में तुम्हारी पूजा नहीं होगी'। इस प्रकार अभिशप्त होने पर देवर्षियों से पूजित ब्रह्मा ने पृथ्वी से कहा 'हे सुमुखि ! संसार के आदिम पुरुष को तुमने शाप दिया है, अतः तुम युग के अन्त में म्लेच्छों से परिपूर्ण हो जाओगी' ॥७१-८०॥

व्यास जी ने कहा—हे श्रेष्ठ राजन्, इस प्रकार पृथिवी और ब्रह्मा के परस्पर शाप देने के बाद पृथिवी देवताओं के सामने उपस्थित हुई और उन देवों से शिव के अन्त के विषय में पूछने लगी। इस पर सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरों समेत सभी देवता बृहस्पति के साथ रत्नगर्भा पृथ्वी से कहने लगे कि 'जिस शिव के अन्त को विष्णु-समेत ब्रह्मादि देवता, ब्रह्मा के पुत्र तथा कपिल आदि महर्षि—साङ्ख्य एवं योग दर्शन के द्वारा—तथा शेषनाग भी नहीं जान सके, उसे हम लोग कैसे जान सकते हैं ?' ॥८१-८३॥

इस पर पुनः व्यास बोले—उन देवों के वचन को सत्य समझ कर पृथ्वी विष्णु के पास गई। सज्जनों के एक मात्र शरण्य विष्णु के समक्ष वह निवेदन करने लगी—"हे देवेश !

---

१. गुणसन्धिः आर्षत्वात्।

देवैः समस्तैर्देवेश गत्वा वै शेषमन्दिरम् । न प्राप्तं हि शिवस्यान्तं दुष्प्राप्यं योगिनामपि ॥८५॥
ते सर्वेऽपि महाभागाः प्रभविष्णो इहागताः । महेन्द्रेणान्विताः सर्वे देव ! देवगणैर्वृताः ॥८६॥
तदत्रोपायकरणं चिन्त्यतां परमेश्वर । [1]नास्त्यन्योपायकरणे त्वां विना परमेश्वर ॥८७॥
दुःसहं शिवजं तेजः कालेषु त्रिष्वपि प्रभो । पातालगेन लिङ्गेन तथा ज्योतिर्युतेन च ॥
सुदुःसहतरं विष्णो ! जानामि[2]न हि संशयः ॥८८॥

व्यास उवाच—

ज्ञात्वा मतमवन्यास्तु हरिर्योगेश्वरेश्वरः । तल्लिङ्गभागकरणे मतमास्थाय स प्रभुः ॥८९॥
तमेवं देवदेवेशं ब्रह्मणा स समन्वितः । तुष्टाव प्रयतो भूत्वा विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥९०॥

विष्णुरुवाच—

नमस्ते शितिकण्ठाय वृषवाहाय ते नमः । भवाय भवबीजाय शिवाय शिवदाय च ॥९१॥
हराय नागहाराय विषनाशाय ते नमः । त्रिनेत्रायादिदेवाय दक्षयज्ञविनाशिने ॥९२॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गमौलिमालाधराय च । कामघ्नायादिदेवाय प्रलयान्तकराय च ॥९३॥
नमो नमस्ते वागीश कालान्तक नमोऽस्तु ते । एवं स्तुतो भगवता हरिणा लोकधारिणा ॥९४॥
उवाच स तदा देवो ध्यायन् मीलितलोचनः । संस्तुतोऽस्मि त्वया विष्णो हेतुना केन चात्मनः ॥९५॥

पाताल-पर्यन्त जाने पर भी देवों ने शिव का अन्त नहीं पाया। वह योगियों के लिए भी अगम्य हैं। अतः हे देव ! वे सब देवता इन्द्र-सहित आपके पास आये हैं। इस विषय में क्या उपाय करना है, उसे आप सोचें। हे परमेश्वर ! आपके विना दूसरा कोई उपाय बतलाने में समर्थ नहीं है। भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्—इन तीनों कालों में शिव का तेज दुःसह है। हे विष्णो, इस के साथ ही पातालपर्यन्त पहुँचा हुआ तेजोमय शिव-लिङ्ग तो और भी अधिक दुःसह है—इसमें कोई संशय नहीं है। इस बात को मैं अच्छी तरह समझती हूँ' ॥८४-८८॥

इस पर व्यास ने इस प्रकार कहा—परम योगी विष्णु भगवान् ने उपर्युक्त धरा की व्यथा को जान कर शिवलिङ्ग का विभाजन निश्चित करते हुए ब्रह्मा के साथ उपस्थित हो देवाधिदेव शिव की प्रार्थना की ॥८९-९०॥

विष्णु ने प्रार्थना आरम्भ की—'नीलकण्ठ एवं वृषभारूढ़ शिव को हमारा नमस्कार स्वीकार हो। प्रकट होने वाले, संसार के बीजभूत, कल्याण-मय, कल्याणप्रद हर एवं नागहार से सुशोभित तथा विषविनाशक भगवान् शिव को नमस्कार स्वीकार हो। त्रिनेत्र, आदिदेव, दक्ष-प्रजापति के यज्ञ को नाश करने वाले, भस्म से लिपटे हुए समग्र शरीर से युक्त तथा जटाओं को शिर पर धारण करने वाले, कामदेव के भस्मकर्ता, देवादिदेव, प्रलय काल में सर्वान्तक, वाणी के अधिष्ठाता एवं मृत्यु के संहारक शिव को हमारे कोटिशः प्रणाम'। इस प्रकार सृष्टि के पालनकर्ता भगवान् विष्णु के द्वारा स्तुति किए जाने पर ध्यानावस्थित शंकर नेत्रों को बन्द किये हुए यह कहने लगे कि विष्णु ने किस कारण मेरी स्तुति की है ? पुनः पृथ्वी से इस प्रकार कहने लगे—'मेरी ओर ध्यानस्थित, अत्यधिक प्रसन्न रहने वाली-

---

१. छन्दःपूर्त्यर्थं गुणसन्धिः । २. छन्दोभङ्गभिया सन्धिः कृतः ।

तत्त्वं कथय सुप्रीते मयि ध्यानपरायणे। वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥९६॥
ददामि नात्र सन्देहो दुष्प्राप्यममरैरपि ॥९७॥

विष्णुरुवाच—

विज्ञापयति देवेश ! धरेयं समुपस्थिता। तव लिङ्गस्य भारेण पीडिता त्वां न संशयः ॥९८॥
दीप्ता हि तव लिङ्गेन सप्तपातालगामिना। नराणां पर्वतानां च लघ्वीभूताऽभवन् महत् ॥९९॥
तथापि तव लिङ्गस्य चैकत्र कीलितस्य च। न सहामि[1] महद्भारं ब्रूते पुञ्जीभवं हि सा ॥१००॥
कुरुष्वैनां महाभाग ! भारहीनां न संशयः। यथा हि तव लिङ्गं वै धरिष्यति वसुन्धरा ॥१०१॥
तत्तथा क्रियतामाशु सुविचार्य महेश्वर। एषा मे वीप्सिता वाञ्छा वरपूर्वा न संशयः॥
पूरणीया त्वयैवेह न चान्येन महात्मना ॥१०२॥

शिव उवाच—

मया पूर्वं प्रतिज्ञातं तं करोमि न चान्यथा। तथापि वचनं तेऽद्य करिष्यामि न संशयः ॥१०३॥
अदेयमपि दास्यामि भक्तेषु च सुरेषु च। त्वया विज्ञापितः सोऽहं लिङ्गनिग्रहणं प्रति ॥१०४॥
ऋषीणां वचनं सत्यं नास्त्यसत्यं जनार्दन। संहरिष्याम्यहं लिङ्गं तवैव पश्यतोऽव्ययम् ॥१०५॥
क्रियतां तज्जगन्नाथ छित्त्वा चक्रेण कोटिधा। कृत्वा त्वं स्थापय स्वाग्रे वसुधायां न संशयः ॥१०६॥
तत्र वै रेणवः पुण्याः पतिष्यन्ति भुवस्तले। ते सर्वे लिङ्गतां यान्ति लिङ्गोद्भूता न संशयः ॥१०७॥

पृथ्वि ! तुम्हारे मन में जो कुछ है, उसे कहो, और श्रेष्ठ वर माँगो। देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने वाला वरदान मैं तुम्हें दूँगा' ॥९१-९७॥

शिव के ऐसा कहने पर विष्णु ने उत्तर दिया—"हे देवेश ! आपके समक्ष विद्यमान पृथ्वी यह निवेदन करती है कि आप के लिङ्ग के भार से वह निःसन्देह अत्यधिक दबी जा रही है। सातों पाताल तक प्रविष्ट आप के लिङ्ग से प्रदीप्त तथा मनुष्यों और पर्वतों के भार से यह पृथ्वी बहुत दब गई है। वह कहती है कि एक स्थान पर कीलित तेजःपुञ्ज-स्वरूप आप के लिङ्ग-भार को वहन करने में मैं असमर्थ हूँ। इसलिए, हे महाभाग ! इस पृथ्वी के भार को आप हलका कर दें। जिसके फलस्वरूप यह पृथ्वी आप के लिङ्ग को धारण करने में समर्थ होगी। हे महेश्वर, अतः आप अच्छी तरह विचार कर शीघ्र ऐसी व्यवस्था करें। यही मेरी प्रमुख वर के रूप में इच्छा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप ही इसे पूर्ण कर सकते हैं, दूसरा कोई महात्मा इसे पूरा नहीं कर सकता" ॥९८-१०२॥

इसके अनन्तर शिव जी ने कहा—"मैंने जो पहले प्रतिज्ञा की है उसके विपरीत मैं कुछ नहीं कर सकता, तो भी मैं आपके कथनानुसार कार्य करूँगा। भक्तगण और देवताओं को न देने योग्य वर भी दूँगा। हे विष्णो, आपने लिङ्ग-निग्रह की चर्चा की है। ऋषियों का वचन सत्य होता है न कि असत्य। आपके देखते-देखते मैं अविनाशी लिङ्ग का निग्रह कर देता हूँ। आप इसे अपने चक्र से छिन्न कर दीजिये और अपने समक्ष पृथ्वी पर स्थापित कर दें। जो पवित्र टुकड़े पृथ्वी पर गिरेंगे वे उस महालिङ्ग से उत्पन्न होते हुए शिवत्व को प्राप्त करेंगे। इस तरह जहाँ-जहाँ मैं नन्दी, कार्तिकेय, अन्य नायकगण तथा विष्णु एवं

---

१. आत्मनेपदविधिरनित्यः।

यत्र यत्र गमिष्यामि नन्दिना स्कन्दिना सह। तथान्यैर्नायकगणैर्भवता ब्रह्मणा सह ॥१०८॥
तत्र तत्र हि लिङ्गानि भविष्यन्ति भुवस्तले। तत्र तत्र निजांशेन भवता ब्रह्मणाऽपि हि ॥१०९॥
स्थेयं मद्वचनाद् विष्णो तथान्यैर्देवतागणैः। स्थास्यन्ति दानवास्तत्र तथा नागादयः शुभाः ॥११०॥
मद्भक्तिमुक्ताः सर्वे वै नामलिङ्गसमन्विताः। उपासयन्ति मामेव सर्वे ते नात्र संशयः ॥१११॥
यत्राहं भवता सार्धं वसामि ब्रह्मणा युतः। तत्र तत्र भविष्यामि पूजनोयो न संशयः ॥११२॥
जानन्ति तत्र मनुजा महादेवेति मां शुभाः। तत्रैव पुण्यतीर्थाश्च[1] भवन्ति त्वत्पदोद्भवाः ॥११३॥

व्यास उवाच—

रुद्रस्य वचनं श्रुत्वा स हरिर्लोकपावनः। चक्रमुद्यम्य तल्लिङ्गं रुद्रेण च समाहृतम् ॥११४॥
चिच्छेद भगवान् कृष्णः कोटिधा कोटि-कोटिधा। छित्वा तान् स्थापयामास नवखण्डेषु भूतले ॥११५॥
तत्र तत्र निजांशेन ब्रह्मणा चापि वै द्विजाः ॥११६॥
पूजितं तं विभुं चक्रे तथान्यैर्देवतागणैः। तदा लिङ्गमयीं पृथ्वीं चकार जनमेजय ॥११७॥
कृत्वा भूमण्डलं पुण्यं पदात्पदतरं प्रभो। स्थापयामास स विभुस्ताँल्लिङ्गान्नात्र[2] संशयः ॥११८॥
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि जानन्ति भुवि मानवाः। तथा देवगणाः सर्वे सिद्धदैत्यमहोरगाः ॥११९॥
प्रतिष्ठितेषु स्थानेषु तथा खण्डेषु वै द्विजाः। सन्त्येव शिवलिङ्गानि त्यक्त्वा भूमिं पदात्पदम् ॥१२०॥
यत्र यत्र गतः शम्भुर्नन्दिना सह भारत। तत्र तत्र महेशस्य सन्ति लिङ्गान्यनेकशः ॥१२१॥

ब्रह्मा के साथ जाऊँगा वहीं भूमण्डल पर लिङ्ग स्थापित हो जायेंगे। अतः हे विष्णो, उन स्थानों पर आप तथा ब्रह्मा अपने-अपने अंशों से युक्त होते हुए अन्य देवताओं के साथ मेरे कहने से विराजमान रहें। ऐसे स्थानों पर दानव तथा नाग आदि यथानाम और लिङ्गों से युक्त हो मेरी भक्ति करते हुए विद्यमान रहेंगे। उन स्थानों पर ब्रह्मा और आप के सहित मैं भी स्थित रहूँगा। वहाँ सर्वत्र निःसन्देह मेरी पूजा होगी और मुझे लोग महादेव समझेंगे। वहीं आपके चरणों से उत्पन्न पावन तीर्थ भी होंगे" ॥१०३-११३॥

वेदव्यास ने कहा—भगवान् शंकर की वाणी को सुनकर लोकपावन विष्णु भगवान् ने शिव के द्वारा समाहृत लिङ्ग को अपने चक्र से काट दिया तथा उन्हें पृथ्वी पर नौ खण्डों में स्थापित कर दिया। जहाँ जहाँ विष्णु भगवान् ने उन लिङ्गों को स्थापित किया, उन स्थानों पर हे ब्राह्मणों, विष्णु ने अपने अंश, ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के साथ शिव को पूजित किया। हे जनमेजय! इस प्रकार पृथ्वी शिवलिङ्गों से परिपूर्ण हो गई और पद पद पर पृथ्वी पवित्र हो गई। विष्णु द्वारा अनेक स्थानों पर शिवलिङ्गों की स्थापना किये जाने से यह बात मनुष्यों को विदित हो गई। हे ब्राह्मणों! तदनन्तर देवगण, सिद्धगण, दैत्य, नाग आदि ने यह जाना कि उन खण्डों में तथा प्रतिष्ठित स्थानों में ही शिवलिङ्ग हैं। अतः पद पद पर अन्य स्थानों को छोड़ कर, हे जनमेजय! वे उन स्थानों को ही गए जहाँ भगवान् शंकर नन्दिकेश्वर के साथ गए थे। उन्हीं स्थानों पर अनेक शिवलिङ्ग हैं और उन्हीं का पूजन देव, दैत्य, दानव

१.–२. पुंस्त्वप्रयोगः पौराणिकः।

तान् सर्वान् देवताः सर्वे दैत्यदानवमानवाः । पूजयन्ति महाभागास्तथा सिद्धमहोरगाः ॥१२२॥
दृश्यन्तेऽद्यापि भूलोके खण्डे खण्डे न संशयः । महादेवस्य लिङ्गानि धरणीमध्यगानि च ॥१२३॥

सूत उवाच—

इत्येतत्कथितं राजन् धरायाश्चरितं महत् । तथा लिङ्गस्य पतनं विभागं तस्य चैव हि ॥१२४॥
व्यासेन वेदविदुषा यथा तत्समुदाहृतम् ॥१२५॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे धरावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

तथा मानव भी करते हैं। इसके साथ ही ऐश्वर्यशाली महानुभाव, सिद्धगण तथा नाग आदि भी अद्यावधि भूमण्डल के खण्डों में पृथ्वी पर विद्यमान शिवलिङ्गों की पूजा करते हुए दिखाई पड़ते हैं ॥११४-१२३॥

अनन्तर सूत जी ने कहा—हे राजन्, इस प्रकार वेदव्यास के द्वारा कथित पृथ्वी का चरित्र, शिवलिङ्ग का पतन, उसके विभाग आदि का यथास्थित वर्णन किया गया है ॥ १२४-१२५॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में धरावर्णन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

—:❀:—

५

जनमेजय उवाच—

कथितं हि त्वया ब्रह्मन् धरायाश्चरितं महत्। तस्या वदस्व खण्डानां नामधेयं तपोधन ! ॥१॥

सूत उवाच—

कथयामि महाराज व्यासेन समुदाहृतम्। ऋषीणामग्रतः पुण्यं सत्यवत्याः सुतेन यत् ॥२॥

ऋषय ऊचुः—

कथितं च महाभाग लिङ्गानां कारणं महत्। यथा बहुत्वमापन्नास्तथा तत् समुदाहृतम् ॥३॥
त्वयेरितं हि खण्डानि नव-संज्ञानि वै तथा। तेषां कथय नामानि यत्रास्ते भगवान् हरः ॥४॥

व्यास उवाच—

श्रूयताम् ऋषिशार्दूला वचो मे समुदाहृतम्। यथापूर्वमनिन्द्यं हि कथयामि न संशयः ॥५॥

वैशम्पायन उवाच—

पृथिव्याः प्रथमश्चैव हिमाद्रिः श्रूयते नृप। यत्र सन्ति सुपुण्यानि महेशस्य शिरांसि वै ॥६॥
सेवितानि महाभाग ! पुष्पैरिव हिमैः शुभैः। यानि दृष्ट्वा महाराज पतङ्गाद्याः शिवादयः ॥७॥
व्रजन्ति ब्रह्मभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्। यत्र पुण्या दक्षसुता अवतीर्णा महामते ॥८॥
हिमजेति च विख्याता तत्रैव गिरिकन्यका। तत्रैवोद्वाहिता देवी शिवेन मनुजोत्तम ॥९॥
विवाहस्तु तयोस्तत्र समुद्गीतो द्विजातिभिः। वदन्ति मुनयः सर्वे तस्य भागचतुष्टयम् ॥१०॥
तस्य वै प्रथमो भागः मानसाख्येति[1] विश्रुतः। यं ससर्ज स्वयं ब्रह्मा शिवलिङ्गसमन्वितम् ॥११॥

जनमेजय ने कहा—आपने विस्तारपूर्वक पृथ्वी का चरित्र वर्णन किया। हे तपोधन ! (अब) उसके खण्डों का नाम बतायें ॥ १ ॥

सूत ने उत्तर दिया—महाराज ! सत्यवती के पुत्र वेदव्यास ने ऋषियों के सम्मुख जैसा परम पवित्र वर्णन किया है, उसे मैं बतला रहा हूँ ॥ २ ॥

ऋषियों ने कहा—आपने लिङ्गों का विशेष कारण भी बताया। (इसके साथ ही) उनके अत्यधिक होने की बात भी कही। आप ने नौ खण्डों के बारे में भी कहा। (अब आप) उन नौ खण्डों का नाम बतायें, जहाँ भगवान् शिव विराजमान हैं ॥ ३-४ ॥

व्यास ने कहा—हे श्रेष्ठ ऋषिवर्ग ! पूर्वोक्त अनिन्द्य वर्णन अब आप मेरे कथनानुसार सुनें, उसे मैं (आपके समक्ष) कहता हूँ ॥ ५ ॥

वैशम्पायन ने कहा—राजन् ! पृथिवी का प्रमुख पर्वत हिमालय है, जहाँ भगवान् शिव के सिर हैं। महाभाग ! (वे सिर) सुन्दर पुष्पों के समान शुभ्र हिम-कणों से शोभित (निर्मित) हैं। जिनका दर्शन कर पक्षी एवं सियार आदि भी ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं, जहाँ से पुनः आगमन नहीं होता। वहीं दक्ष की पुत्री पार्वती ने अवतार ग्रहण किया, तथा हिमालय की कन्या गिरिजा भी वहीं प्रसिद्ध हुई। वहीं शिव के साथ उनका विवाह हुआ। ब्रह्मर्षियों (सप्तर्षियों) ने उनका विवाह सम्पन्न कराया। मुनिवर्ग ने उसी हिमालय के चार भाग किए हैं। उसका प्रथम भाग 'मानस' नाम से प्रसिद्ध है, जिसे स्वयं ब्रह्मा ने शिवलिङ्ग के साथ

---

१. प्रकृतग्रन्थे एव २१ अध्याये मानस-खण्डस्य सीमा निर्धारिता वर्तते। तथा चोक्तम्—
"नन्दपर्वतमारभ्य यावत् काकगिरिः स्मृतः। तावद्वै मानसः खण्डः ख्यायते नृपसत्तम ॥"

तीर्थै-र्बहुभिः संयुक्तं मानसाख्यं सरोवरम् । तमाद्यं मुनयः सर्वे वदन्ति नृपसत्तम ॥१२॥
तं स्मृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः। स्मरणाद्दर्शनाद् ध्यानाद्यस्य [1]श्वानादयोऽपि हि ॥१३॥
व्रजन्ति विष्णुभवनं सेवितं नारदादिभिः। सैव वै प्रथमः खण्डः ख्यातोऽभूद्राजसत्तम ॥१४॥
इन्द्रादिभिर्देवगणैः पूज्यमानो धरान्वितः। ततस्तस्योत्तरो भागो गीयते देवतागणैः ॥१५॥
यत्र पुण्या महाभागा राजानो ऋषयस्तथा। मुक्त्यर्थिनः शिवपुरं प्राप्तास्ते नात्र संशयः ॥१६॥
तत्र वै प्रार्थितं राजन् देहस्य पतनं शुभम्। मृताः शिवपुरं यान्ति भूत्वा लिङ्गमयं वपुः॥१७॥
ततः परं महाभाग खण्डं कैलाससंज्ञकम्[2]। नन्दि-स्कन्दि-रिटिभिर्हि पूजितं सुमनोहरम् ॥१८॥
रुद्रकन्यासमाकीर्णं देवराजनिषेवितम्। तपस्विनो महाभाग! प्रार्थयन्ति यतव्रताः ॥१९॥
यस्य पुण्यासु कान्तासु गुहासु नृपसत्तम। तप्त्वा सुदुर्जयं लोके जयन्ति यमसंज्ञकम् ॥२०॥
ततः परं महाराज शिवलिङ्गसमन्वितम्। केदाराख्यं[3] महत् खण्डं विद्यते लोकपूजितम् ॥२१॥
यत्र वै स शिवो राजन् नाम्ना केदारसंज्ञकः। राजते देवदेवेशो भवान्या चाऽपि सेवितः॥२२॥
यं दृष्ट्वा पाण्डवाः सर्वे सम्बन्धि-श्वशुरोद्भवात्। गुरु-भ्रातृवधोद्भूतात् पातकात् कुलसंभवात् ॥२३॥
मुक्ताः स्वर्गं प्रयातास्ते त्रिदशैः सेवितं प्रभो ॥२४॥

ही बनाया। वह मानसरोवर अनेक तीर्थों से युक्त है और इसी को मुनिगणों ने प्रधान कहा है। उसका स्मरण, दर्शन, एवं ध्यान करने से सभी लोग—यहाँ तक कि कुत्ते आदि भी—निश्चय पापमुक्त हो जाते हैं, एवं नारद-आदि से सेवित वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! उसी को मुनियों ने पहला खण्ड कहा है। इन्द्रादि देवगणों द्वारा वह पृथ्वी के साथ पूजा जाता है। तदनन्तर उसके उत्तरी भाग की देवगणों ने बड़ी प्रशंसा की है। वहाँ पुण्यात्माओं, भाग्यशाली राजाओं एवं मुमुक्षुओं ने निःसदेह शिवलोक प्राप्त किया है। जिन्हों ने वहाँ देहत्याग को प्रार्थना कर शरीर त्यागा, वे लिङ्गमय शरीर को प्राप्त कर शिवलोक चले जाते हैं। महाभाग! इसके अनन्तर कैलास-नामक खण्ड है, जो नन्दी, स्कन्दी, रिटि आदि से पूजित होता हुआ बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। रुद्रकन्याओं से संकुलित तथा देवराज (इन्द्र) से सेवित वह स्थान व्रतपरायण मुनियों से भी सम्प्रार्थित है। हे राजर्षे! जिसकी रमणीय तथा पवित्र कन्दराओं में लोग तप कर अजेय हो, यम (मृत्यु) को भी जीत लेते हैं। इसके अनन्तर लोक-पूजित केदार नामक विस्तृत खण्ड है, वह भी शिव-लिङ्ग से समायुक्त है। हे राजन्! वहाँ पर देवाधिदेव भगवान् शिव 'केदार' नाम से विराजमान होते हुए पार्वती से सेवित हैं। जिनका दर्शन कर सभी पाण्डव अपने कुल से सम्बद्ध निकट-सम्बन्धी, श्वशुर, गुरु एवं भ्रातृ-वध-जन्य

---

१. अकारान्तोऽपि श्वानशब्दः वाचस्पतिकोषे उल्लिखितः। तथा हि—
"मुकुरस्तु शुनि श्वानः कपिलो मण्डलः शुनः"। इति।

२. तस्य परिमाणं यथा श्रीमद्भागवते—"जठरदेवकूटौ मेरोः पूर्वेण अष्टादशयोजनसहस्रम् उदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः। एवम् अपरेण पवनपारिपात्रौ, दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतौ"।

३. अस्य सीमा स्कन्दपुराणान्तर्गते केदारखण्डे अनया रीत्या वर्णिता—
"नन्दापर्वतमारभ्य यावत् काष्ठगिरिर्यतः। तावत् केदारकं खण्ड शिवमन्दिरमुत्तमम् ॥"
—(अ० १०१।३०)

पातालखण्डं[1] हि ततः परं स्मृतं, संसेवितं नागवरैः सुशोभनैः ।
शिवस्य लिङ्गैः परमाद्भुतैरपि नागादिभिर्नागसुतादिसेवितैः ॥२५॥
ततः परं महाराज काशीखण्डं[2] वदन्ति हि । विश्वेश्वरस्य देवस्य लिङ्गेन च विराजितम् ॥२६॥
यत्र कीटपतङ्गाद्या मृताः शिवपुरं प्रति । प्रयान्ति राजशार्दूल ! शिवकन्यानिषेविताः ॥२७॥
ततः परं हि वै विप्रा रेवाखण्डमितीरितम्[3] । रेवाजलैर्बहुविधैः सेवितं सुमनोहरम् ॥२८॥
यत्र वै प्रस्तराः सर्वे लिङ्गरूपधराः प्रभो । पूज्यन्ते देवप्रवरैर्नार्मदीया इति प्रभो ॥२९॥
नास्त्यन्यत्र महाबुद्धे ! नार्मदीयशिला समा । लिङ्गरूपधरा देवा इन्द्रेणापि निषेविताः ॥३०॥
तत्रैव रघुनाथस्य तथा रामेश्वरस्य च । शोणिताख्यपुरस्यापि माहात्म्यमनुवर्णितम् ॥३१॥
ततः परं महाभाग नाम्ना ब्रह्मोत्तरं[4] शुभम् । यत्र सन्ति कथाः पुण्याः गोकर्णेशस्य वै प्रभो ॥३२॥
तथा हि शिवलिङ्गानाम् आख्यानं विधिविस्तरम् । माहात्म्यं शिवभक्तानां यत्र संश्रूयते महत् ॥३३॥

पाप से मुक्त होकर स्वर्ग को गए । वह देवों से सुसेवित है । इसके पश्चात् पाताल-खण्ड है, जो श्रेष्ठ एवं वरेण्य नागों से सुसेवित है । (इसके अतिरिक्त) वह परम आश्चर्यकारी शिवलिङ्गों से समायुक्त एवं नागकन्याओं आदि से भी सेवित है । तदनन्तर काशीखण्ड वर्णित है, जहाँ विश्वेश्वर का लिङ्ग विराजमान है । हे नृपशार्दूल ! वहाँ कीड़े-पक्षी आदि भी मर कर रुद्रकन्याओं द्वारा सेवित शिवलोक को जाते हैं । हे मुनिगण ! तदनन्तर रेवाखण्ड है, जो नर्मदा की विभिन्न धाराओं से सम्पृक्त हो बड़ा सुन्दर लगता है । जहाँ के सब पाषाण शिव-लिङ्ग-स्वरूप हैं, जो देवों द्वारा नार्मदेश्वर नाम से पूजित हैं । हे बुद्धिसागर ! इन्द्र से पूजित नार्मदीय शिलाओं के समान किसी दूसरे स्थान पर शिवलिङ्ग-रूपधारी शिला नहीं है । वहीं रघुनाथ, रामेश्वर तथा शोणितपुर का माहात्म्य भी वर्णित है । हे महाभाग ! तत्पश्चात् शुभ ब्रह्मोत्तर खण्ड है, जहाँ गोकर्णेश की पावन कथायें विद्यमान हैं । उसी तरह शिव-लिङ्गों का विधान, विस्तार के साथ उनका आख्यान तथा शिवभक्तों की चर्चा आदि भी वहाँ

---

१. पर्वताधित्यकाया अधोभागः अत्र 'पातालखण्ड' इति नाम्ना निगदितः । सप्तसु पातालेषु 'पातालस्य' च पृथक् नाम-निर्देशेन तस्य महत्त्वं पाद्मे पातालखण्डे वर्णितम्—
"पाताले तु ततोऽधस्ताद् योजनानां द्विजायुते । नागलोकेश्वराः शूरा निवसन्ति महाबलाः ॥"
—(१-२-३ अध्यायाः)

२. नारदपुराणे १०४ अध्याये स्कन्दपुराणस्य विभागनिरूपणे काशीखण्डस्य स्वरूपम् एवं वर्णितम्—
"अतः परं चतुर्थं तु काशीखण्डमनुत्तमम् । विन्ध्यनारदयोर्यत्र संवादः परिकीर्तितः ॥
क्षेत्रतीर्थकदम्बश्च मुक्तिमण्डपसत्कथा । विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रापरिक्रमः ॥" इति ।

३. वाराहे सोमेश्वरादिलिङ्गमहिमाध्याये रेवाखण्डस्य माहात्म्यम् एवं वर्णितम्—
"रेवया च कृतं पूर्वं तपः शिवसुतुष्टिदम् । मम त्वत्सदृशः पुत्रो भूयादिति विधस्तथा ॥"
"मम त्वमपरा मूर्तिः ख्याता जलमयी शिवा । शिवशक्तिविभेदेन चावामेकत्र संस्थितौ ॥
एवं लब्धवरा रेवा मत्सान्निध्यमिहागता । रेवाखण्डमिति ख्यातं ततः प्रभृति गोपते ॥"

४. अत्र नव खण्डानि दर्शितानि । प्रचलिते स्कान्दे सप्त-खण्डानां नामानि एवम् प्रदर्शितानि—
माहेश्वरखण्डम्, वैष्णव-खण्डम्, काशीखण्डम्, ब्राह्मखण्डम्, अवन्तिखण्डम्, नागरखण्डम्, प्रभासखण्डम् चेति ।

ततस्तु राजशार्दूल नागरं[1] खण्डमुच्यते । यमुपास्य जनाः सर्वे प्रयान्ति शिवमन्दिरम् ॥३४॥
यत्र वै शिवपूजाया माहात्म्यमनुवर्णितम् । उज्जयिन्याश्च माहात्म्यं तत्रैव समुदाहृतम् ॥३५॥
तथा च शिवलिङ्गानामाख्यानं कथितं प्रभो । अन्तरिक्षगतानां च माहात्म्यं हि प्रकीर्तितम् ॥३६॥
खण्डानां नामधेयं वै मयैतत् समुदाहृतम् । विभागं शिवलिङ्गानां व्यासदेवेन कीर्तितम् ॥३७॥
यः शृणोति महाराज श्रावयेद्वा समाहितः । दिव्यं विमानमारुह्य सेवितश्चाप्सरोगणैः ॥३८॥
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके वसेच्चिरम् ॥३९॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे [2]नवखण्डवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

सुनी जाती है। इसके उपरान्त नागर-खण्ड कहा जाता है। जिसकी उपासना कर सब लोग शिव-लोक प्राप्त करते हैं। यहाँ शिव-पूजा का माहात्म्य अनेकशः वर्णित है और वहीं (उसी में) उज्जयिनी नगरी का माहात्म्य भी अच्छी तरह उद्धृत किया गया है। (इसके साथ ही) अनेक शिवलिङ्गों का आख्यान तथा आकाशीय पिण्डों का माहात्म्य भी विस्तार के साथ वर्णित है। मैंने इस तरह खण्डों का नाम-निर्देश कर दिया है और महर्षि व्यास ने शिवलिङ्गों का विभाग बतलाया है। हे महाराज ! जो इस आख्यान को सावधानी के साथ सुनता है, वह दिव्य विमान में आरूढ़ हो अप्सराओं से सेवित अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर चिरकाल पर्यन्त शिवलोक में निवास करता है ॥ ६-३९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड का [3]नवखण्डवर्णनात्मक पाचवाँ अध्याय समाप्त ॥

—: ❀ :—

---

१. नारदीयपुराणानुसारं स्कन्दपुराणान्तर्गतस्य तृतीयस्य ब्रह्मखण्डस्य द्वौ भागौ वर्तेते। उत्तरभागे तस्य स्वरूपम् अनया रीत्या वर्णितम्—
"ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुतः । पञ्चाक्षरस्य महिमा गोकर्णमहिमा ततः ॥
शिवरात्रेश्च महिमा प्रदोषव्रतकीर्तनम् । सोमवारव्रतञ्चापि सीमन्तिन्याः कथानकम् ॥
भद्रायूत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम् । शिववर्मसमुद्देशो भद्रायूद्वाहवर्णनम् ॥
भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्यकीर्तनम् । शबराख्यानकं चैव उमामाहेश्वरव्रतम् ॥
रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यकम् । श्रवणादिकपुण्यं च ब्रह्मखण्डोऽयमीरितः ॥"
—(१०४ अध्यायः)

२. नारदीयपुराणे १०४ अध्याये तु उपर्युक्तवर्णनं पञ्चमे अवन्तिखण्डे विद्यते। तथा हि—
"कुशस्थल्या अवन्त्याश्चोज्जयिन्या अभिधानकम् । पद्मावती-कुमुद्वत्यमरावतीति नामकम् ॥
कपालमोचनाख्यानं महाकाल-वन-स्थितिः । तीर्थं कनखलेशस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥"
—इत्यादयः श्लोका उपलभ्यन्ते ।

३. प्रचलित स्कन्दपुराण में सप्तखण्डात्मक विभाजन मिलता है—(१) माहेश्वरखण्ड, (२) वैष्णव-खण्ड, (३) काशीखण्ड, (४) ब्राह्मखण्ड, (५) अवन्तीखण्ड, (६) नागरखण्ड, तथा (७) प्रभास खण्ड ।

६

जनमेजय उवाच—

नामधेयं हि खण्डानां भवता परिकीर्तितम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि विवाहं शूलपाणिनः ॥ १ ॥
कथं सा पार्वती देवी हिमकन्यात्वतां गता । विसृज्य पूर्वदेहं वै सर्वदेवांशसम्भवा ॥ २ ॥
कथं सा देवदेवेन प्रतिज्ञाता समाधिना । उद्वाहश्चाभवत् तस्याः संयोगश्च कथं द्विज ॥ ३ ॥
एतद् सर्वमशेषं वै कथयस्व तपोधन । त्वत्समो नास्ति वै लोके सर्वं ते विदितं यतः ॥ ४ ॥

सूत उवाच—

शृणुष्व त्वं महाराज ! कथ्यमानं मयाऽधुना । यदुक्तं व्यासदेवेन ऋषीणामग्रतः पुरा ॥ ५ ॥
एवमेव पुरा पृष्टः सत्यवत्याः सुतः सुधीः । धर्मार्थसङ्गतैश्चैवम् ऋषिभिः पुण्यकारिभिः ॥ ६ ॥
स तानुवाच धर्मात्मा बृहस्पतिरिव स्वयम् । तदिदं श्रूयतां राजन् कथयामि नरेश्वर ॥ ७ ॥
भूमौ हिमाद्रिप्रवरो हिमसीकरसेवितः । स चिरं हि तपस्तेपे मिथुनेन समन्वितः ॥ ८ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तोषितास्तेन वै तदा । ते तस्मै चातिसुप्रीता ददुः पुण्यतमं वरम् ॥ ९ ॥
ततो वव्रे स हिमवान् वरमेकं मनोहरम् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां तेजःसंभवसंभवम् ॥१०॥
तथा देवमनुष्याणां नागानामपि वै प्रभो । अंशसम्भवदेहं वै मम पुत्रत्वतां प्रभो ॥११॥
ददध्वं परमप्रीतास्तव पूज्यो भवाम्यहम् । प्राप्य पुत्रं च पुत्रीं च प्रापयिष्यति तद्वपुः ॥१२॥
इत्युक्त्वा देवदेवेशा अन्तर्धाता हि वै प्रभो । ततः कालेन महता मेनकायां सुतोत्तमम् ॥१३॥

जनमेजय ने कहा—आपने नौ खण्डों का नाम-निर्देश तो किया, (किन्तु) अब मैं भगवान् शूलपाणि का वैवाहिक प्रसंग सुनना चाहता हूँ । पार्वती ने अपने पूर्व शरीर को कैसे छोड़ा ? सब देवताओं के अंश से प्रकट होने वाली पार्वती किस प्रकार हिमाचल-सुता कहलाईं ? समाधिस्थ भगवान् शंकर ने उन्हें कैसे पहचाना ? (किस कारण) उनके साथ शिव का विवाह हुआ और वे एक सूत्र में कैसे बँधे (परस्पर संयुक्त हुए) ? हे तपोधन ! यह सब आप विस्तार के साथ कहें । आप के समान इस लोक में दूसरा (कोई बतलाने वाला) व्यक्ति नहीं है, क्योंकि यह सब आपको विदित है ॥ १-४ ॥

सूत बोले—महाराज ! पहले ऋषियों के समक्ष महर्षि व्यास ने जो बातें कही हैं, उन्हीं बातों को मेरे द्वारा कहे जाते हुए आप सुनें । यही जिज्ञासा धर्मपरायण ऋषियों ने सत्यवती के पुत्र व्यास से की थी । तब स्वयं सुरगुरु के समान धर्मात्मा वेदव्यास ने उन्हे उत्तर दिया था । हे राजन् ! मैं उसे कहता हूँ, आप सुनें । "पृथ्वी पर हिमकणों से पूरित महान् हिमालय पर्वत है । उसने अपनी भार्या के साथ घोर तपश्चर्या की । अपनी तपश्चर्या से ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं को सन्तुष्ट किया । देवताओं ने प्रसन्न हो उसे सुन्दर वर दिया । इस पर हिमाचल ने एक महत्त्वपूर्ण वर और माँगा—वह यह कि परम सन्तुष्ट देवगण—ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव के तेज से समुद्भूत, एवं देव-मनुष्य तथा नागों के अंश से समन्वित शरीरधारी—सन्तति भी कृपया मुझे दें । इससे मैं आप द्वारा सम्मानित हो जाऊँगा" । "उपर्युक्त अंशधारी शरीर तुम्हारे पुत्र और पुत्री का रूप प्राप्त करेगा"—यह कहते हुए, हे प्रभो ! देवगण अन्तर्धान हो गए । तदनन्तर समय बीतने पर मेनका में उत्तम पुत्र को प्राप्त कर,

प्राप्य कन्यां च सुश्रोणीं कालान्तं ददृशे तदा। ततः काले व्यतीते तु देवी देवांशसम्भवम् ॥१४॥
देहं हि मेनका गर्भे वेशयामास वै प्रभो। प्रसुष्वापाथ तं गर्भं कन्यारूपं गणान्वितम् ॥१५॥
सर्वदेवांशसम्भूतं मायाशतसमन्वितम्। दृष्ट्वा कन्यां महाभागां मेने पूर्णमनोरथः ॥१६॥
हिमाद्रिः स सुतैर्मित्रैः कलत्रेण तथा विभो। वर्धमाना पितुर्गेहे सा देवी वरवर्णिनी ॥१७॥
चकार पूजां देवस्य निराहारा यतव्रता। उ मेति मात्रा तपसा निषिद्धा वरवर्णिनी ॥१८॥
उमाख्यामाप सा देवी लोकेषु नृपसत्तम। ततो देवैः स गन्धर्वैः स्तुता सा वरवर्णिनी ॥१९॥
बहुनाम्ना निकेतेषु बहुनाम्नी बभूव ह। गौरी दुर्गेति भद्रेति कालिकेति च विश्रुता ॥२०॥
विजयेति हरिद्रेति महादुर्गेति वै नृप। तस्मिन्नवसरे राजन् संग्रामे तारकामये ॥२१॥
निर्जिता देवताः सर्वे दितिजैर्दनुजैरपि। ततो देवाः सगन्धर्वाः ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥२२॥
निर्जिता दानवगणैः कुण्ठितास्त्रा विशेषतः। तुष्टुवुस्तं विधातारं सृष्टिसंहारकारणम् ॥२३॥
बृहस्पतिं पुरस्कृत्य शक्राद्या देवतागणाः ॥२४॥

देवा ऊचुः—

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये। सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुभूताय ते नमः ॥२५॥

सूत उवाच—

देवानामीरितं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः। उवाच श्लक्ष्णया वाचा स्वयमेव पितामहः ॥२६॥

सुजघना पुत्री को प्राप्त करने के लिये हिमाद्रि समय की प्रतीक्षा करते रहे। कुछ समय बीतने पर देवी ने देवों के अंश से उद्भूत देह को मेनका का गर्भरूप दिया। देवगणों से अन्वित उस गर्भ को मेनका ने कन्यारूप में उत्पन्न किया। सब देवताओं के अंश से उत्पन्न, सैकड़ों मायाओं से युक्त भाग्यशालिनी कन्या को देख कर, पुत्र-मित्र तथा कलत्र-समन्वित हिमालय पूर्णमनोरथ हुए। वह श्रेष्ठ कन्या पिता के घर में बड़ी होती हुई संयम के साथ निराहार रह कर भगवान् शंकर की पूजा करने लगी। माता के द्वारा तपस्या का प्रतिषेध करने पर वही सुन्दर वर्ण वाली पार्वती लोक में 'उमा'[१] नाम से प्रसिद्ध हुई। तब गन्धर्वों सहित देवों ने वरवर्णिनी उमा की स्तुति की। अनेक स्थानों में उसके विभिन्न नाम प्रसिद्ध हुए। हे राजन्! गौरी, दुर्गा, भद्रा, कालिका, विजया, हरिद्रा, महादुर्गा आदि नामों से वह विख्यात हुई। इसी अवसर पर तारकामय नामक युद्ध में दैत्य और राक्षसों द्वारा देवगण पराजित हो गए। तत्पश्चात् गन्धर्वों सहित देवगण ब्रह्मा की शरण में गए। दानवों से पराजित उन (देवताओं) के अस्त्र भी विशेषतः कुण्ठित हो गए। (इस पर) देवगुरु बृहस्पति को अग्रसर करते हुए इन्द्र आदि देवगण सृष्टि और संहार के कारण-स्वरूप ब्रह्मा की स्तुति करने लगे ॥५-२४॥

देवताओं ने कहा—सृष्टि-स्थिति तथा संहार के कारणस्वरूप, देवाधिदेव, अनन्तशक्तिसम्पन्न ब्रह्मा को नमस्कार है ॥२५॥

सूत ने कहा—देवताओं की वाणी को सुन कर लोक के पितामह ब्रह्मा ने बड़ी कोमल वाणी से स्वयम् उत्तर दिया ॥२६॥

---

१. अस्या नाम-व्युत्पत्तिः कालिकापुराणे (४२ अध्याये)—"यतो हि तपसे पुत्रि! वनं गन्तुं च मेनका। उ-मेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती" ॥ तथा च उ = भोः, मा तपस्यां कुर्विति फलितोऽर्थः। यद्वा ओः = हरस्य, मा = लक्ष्मीरिव—उमा। अथवा उं = शिवं, माति मिमीते वा—इति उमा।

ब्रह्मोवाच—

किमर्थं देवताः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः । न्यस्तशस्त्रा इहायाता ब्रूत किं करवाण्यहम् ॥२७॥

देवा ऊचुः—

ब्रह्मन् दैत्यकुले जातो नाम्ना वै तारकासुरः । तेन वै निर्जिता देवाः संग्रामे तारकामये ॥२८॥
उपायश्चिन्त्यतां ब्रह्मन् तारकस्य वधं प्रति । त्वमुपायोऽसि लोकानामपायोऽसि त्वमेव हि ॥२९॥

ब्रह्मोवाच—

उपायं कथयिष्यामि तत् करिष्यामि चाचिरम् । मयैतस्मिन् वरो दत्तो ह्यवध्यत्वं भवेदिति ॥३०॥
मया वा विष्णुना वाऽपि मृत्युस्ते न भविष्यति । तस्मादवध्यो दैत्येन्द्रो न मया विष्णुना तथा ॥३१॥
गम्यतां यत्र देवेशो ध्यानमास्थाय पौरुषम् । आस्ते देवगणैः सार्धं नन्दि-भृङ्गि-रिटादिभिः ॥३२॥
हनिष्यति महाभागा ! दैतेयं तत्सुतस्तथा । क्रियतामाशु देवेन्द्र ! ध्यानभङ्गं हरस्य वै ॥३३॥
तत्सुतो गिरिजायां वै भूत्वा तं दानवाधमम् । हनिष्यति न सन्देहो गम्यतामाशु मा चिरम् ॥३४॥

सूत उवाच—

इति धातुर्वचः श्रुत्वा बृहस्पतिपुरोगमाः । देवा हरस्य शरणं ते जग्मुर्नृपसत्तम ॥३५॥
ततः कामं पुरस्कृत्य देवाः सिद्धगणैः सह । तुष्टुवुस्तं मृडानीशं महाकालोपमं प्रभुम् ॥३६॥

देवा ऊचुः—

नमो विशालाय महाप्रभाय, हराय भर्गाय शिवाय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु देवाय रविप्रभाय, रविस्तुतायाऽभव-काम-हन्त्रे ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति प्रमुख आदि देवता यहाँ किस कारण आए हैं ? शस्त्रत्याग कर आप लोग यहाँ क्यों आए हैं ? कहिये, मैं क्या करूँ ॥२७॥

देवताओं ने निवेदन किया—हे ब्रह्मन् ! दैत्यकुल में तारकासुर नामक दैत्य उत्पन्न हुआ है। उसने युद्ध में देवों को पराजित कर दिया हैं। आप तारकासुर के विनाश का उपाय सोचें, क्योंकि आप लोकरक्षा के—उपाय एवम् अपायस्वरूप—दोनों ही हैं ॥२८-२९॥

ब्रह्मा ने उत्तर दिया—मैं उपाय बतलाऊँगा और शीघ्र ही उसे कार्यान्वित करूँगा। मैं ने उसे अवध्य होने का वर दिया है। मैंने ही (उसे) विष्णु या मेरे द्वारा वध न होने की बात भी कही है। इस कारण यह महान् असुर मेरे या विष्णु से नहीं मारा जा सकेगा। (अतः) आप लोग वहाँ जायँ, जहाँ देवगणों—नन्दी, भृङ्गी, रिटि आदि—के साथ शिव ध्यान-मग्न हैं। उनका ऐश्वर्यशाली पुत्र उस दैत्य का नाश करेगा। इस हेतु आप लोग यथाशीघ्र भगवान् शंकर का ध्यान भंग करें। पार्वती के गर्भ से उत्पन्न हो उनका पुत्र उस अधम राक्षस को निःसन्देह मारेगा। अतः आप लोग शीघ्र प्रस्थान करें ॥३०-३४॥

सूत बोले—हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मा के कथन को सुन कर बृहस्पति-प्रमुख देवगण शंकर की शरण में गये। तत्पश्चात् सिद्धगणों सहित कामदेव को अग्रसर करते हुए देवगण महाकाल के समान भगवान् शिव की स्तुति करने लगे ॥३५-३६॥

देवताओं ने प्रार्थना की—विशाल मूर्तिमान्, अत्यधिक तेजस्वी एवं कल्याणकारी—शिव को हमारा प्रणाम स्वीकार हो। सूर्य के समान तेजस्वी, सूर्य से स्तुति किये जाने वाले,

कालस्य कालेऽपि च संस्तुताय, मृत्युञ्जयायाखिलयोगमूर्ते।
देवाय वेदान्तपथाय शम्भो, पाहि त्वमस्मान् वरदोऽसि देव ॥३८॥

सूत उवाच—

देवानां वचनं श्रुत्वा दृष्टिभिस्तान् ददर्श ह। ददाह कामं राजर्षे दृष्टिपातान्महेश्वरः ॥३९॥
दग्ध्वा कामं सकामोऽभूद् देवेशो दैवतेषु सः। भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो नागमालाविराजितः ॥४०॥
[1]ततोवाच स देवेशः सकलान् देवतागणान्। प्राप्ता यूयं महाभागा बृहस्पतिपुरोगमाः॥
केनापि हेतुना सर्वे कथ्यतां मा विलम्ब्यताम् ॥४१॥

सूत उवाच—

रुद्रस्य वचनं श्रुत्वा देवाः सेन्द्रादयो हि ते। सर्वं ते कथयामासुः तारकासुरचेष्टितम् ॥४२॥

देवा ऊचुः—

नमस्ते देवदेवेश! तारकेन जिता वयम्। तस्य नाशाय देवेश! चिन्त्यतां देववल्लभ ॥४३॥
गृहाण कालीं कालीश! सम्भूतां हिमपर्वते। त्वत्पादनिरतां देवीं ह्यवतीर्णां हिमाचले ॥४४॥
समुत्पाद्य सुतं तस्यां नाशस्तस्य विधीयताम् ॥४५॥

सूत उवाच—

तथेत्युक्त्वा स देवेशो मदनाविष्टमानसः। चकार गौरीग्रहणे मतिं स तु महेश्वरः ॥४६॥

अजन्मा कामदेव के नाशक, महाकालस्वरूप, मृत्यु के उपस्थित होने पर भी स्तुति किये जाने वाले मृत्युञ्जय रूपधारी—(आप) शिव को नमस्कार है। हे समग्रयोगमूर्ते! वेदान्त-मार्गरूप! शम्भो! आप को हमारा प्रणाम है। हे देव! आप हमारी रक्षा करें। आप ही हमारे वरदाता हैं ॥३७-३८॥

सूत ने कहा—इस प्रकार देवताओं की प्रार्थना को सुन कर शिव ने अपनी आँखें खोलीं और (अपने नेत्रों से) उन्हें देखा। देवगणों के मध्य स्थित कामदेव पर दृष्टिपात करते हुए शंकर ने उसे भस्म कर दिया। शरीर पर भस्म रमाए हुए तथा सर्पों की माला से शोभित देवेश्वर शिव ने समग्र देवों को सम्बोधित करते हुए कहा—हे महाभाग! देवगुरु बृहस्पति को अग्रसर कर आप सब यहाँ किसी कारण-विशेष से आए हैं, अतः उसे आप अविलम्ब बतलायें ॥३९-४१॥

पुनः सूत कहने लगे—शिव की वाणी को सुन कर इन्द्रादि सहित देवताओं ने तारकासुर के कार्यों (उपद्रवों) को बतलाया ॥४२॥

देवताओं ने निवेदन किया—हे देवेश्वर! आपको प्रणाम हैं। हम तारकासुर से पराजित हुए हैं। हे देववल्लभ! उसके विनाश के लिए आप उपाय सोचें। हे पार्वतीश्वर! हिमालय पर्वत पर हिमाचल के घर काली ने जन्म लिया है, वह आप के चरणों के ध्यान में लीन हैं, अतः आप उन्हें स्वीकार करें। पार्वती में पुत्रोत्पत्ति कर आप तारकासुर का नाश करें ॥४३-४५॥

सूत ने कहा—(ठीक है—यह कह कर) कामाविष्ट मन से गौरी के मिलन में कारण-स्वरूप ब्रह्मा का ध्यान करते हुए शिव ने पार्वती-परिणय करना सोचा। गौर-मुख वाली

---

१. आर्षप्रयोगः। छन्दोभङ्गभिया गुणसन्धिः कृतः पुराणप्रोक्तेन ऋषिणा। तथोवाच इत्यपेक्ष्यते।

ध्यायमानः स धातारं गौर्या मिलनकारणम् । स्मृत्वा स्मृत्वा स देवेशो गौरीं गौरमुखीं तदा ॥४७॥
यावद् ध्यातः स्वयं ब्रह्मा तावत्तस्याग्रतः स्थितः। उवाच किं करिष्यामि कथयस्व महेश्वर ॥४८॥
तत्रोवाच विधातारं स्वयमेव हरः स्वयम् । हिमाद्रिभवनं ब्रह्मन् ! गम्यतां यदि रोचते ॥४९॥
मदर्थे गिरिजां देवीं याचयस्व समाहितः ॥५०॥

सूत उवाच—

ततः शिवस्य वचनात् ब्रह्मा लोकपितामहः । हिमालयं महाराजो जगाम हिमसेवितम् ॥५१॥
ततो हिमाद्रिर्ब्रह्माणं दृष्ट्वा चोत्थाय सत्वरम् । पूजयामास देवेशं तुष्टाव प्रणताञ्जलिः ॥५२॥

हिमालय उवाच—

नमामि पादयुगलं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् । अघघ्नं लोकपालानां शिवदं शिवसेवितम् ॥५३॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि विधे त्वत्पादसेवनात् । अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥
कृतार्थोऽस्म्यद्य देवेश पूज्योऽस्मि तव दर्शनात् । मामाज्ञापय देवेश ! भृशं त्वत्पादसेवकम् ॥५४॥
किं करोमि वद ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥५५॥

ब्रह्मोवाच—

शृणु त्वं गिरिराजेश ! वचनं मदुदाहृतम् । त्वत्समो नास्ति च गिरिर्विन्ध्योऽद्यापि न संशयः ॥५६॥
पूज्यस्त्वं मानुषे लोके गिरीणां नाऽत्र संशयः । तस्माद्विज्ञापयिष्यामि वचनं यदि मन्यसे ॥५७॥
प्रयच्छ गिरिजां देवीमवतीर्णां गृहे तव । महाभागां दक्षसुतां महेशाय महामते ॥५८॥

गौरी का बार-बार स्मरण कर ज्यों ही शिव ने ब्रह्मा का ध्यान किया, तत्काल ब्रह्मा उनके समक्ष खड़े हो गए। वह आकर कहने लगे—हे महेश्वर, मुझे क्या करना है, आप बतलायें। तब शंकर ने स्वयं ब्रह्मा से यह कहा कि 'यदि आप की इच्छा हो तो आप हिमालय के घर जायँ और मेरे लिये सावधानी के साथ पार्वती को माँगें' ॥४६-५०॥

सूत ने कहा—शिव जी के कथनानुसार लोक-पितामह ब्रह्मा हिमपूरित हिमालय की ओर चले। ब्रह्मा को आया हुआ देख कर हिमालय उठ खड़े हुए तथा उनका स्वागत कर हाथ जोड़ स्तुति करना आरम्भ किया ॥५१-५२॥

हिमालय कहने लगे—ब्रह्मर्षियों से पूजित आप के चरण-युगलों में मेरा प्रणाम है। आप लोकपालों के पाप-विनाशक एवं कल्याणकारी तथा शिव से सेवित हैं। आज मेरा जन्म सफल तथा सार्थक हुआ। हे देवेश ! आपके शुभागमन से मैं कृतार्थ हो गया, एवम् आपके दर्शन से पूज्य हो गया हूँ। आपके चरणों के दर्शन से मैं धन्य हूँ तथा आपका अनुगृहीत हूँ। आप अपने इस चरण-सेवक को आज्ञा दें। यदि मुझ पर आपका अनुग्रह है तो मेरे करने योग्य कार्य को अवश्य बतलायें ॥५३-५५॥

ब्रह्मा ने कहा—गिरिराज ! मेरी वाणी को आप सुनें। विन्ध्य-पर्वत आपके समकक्ष अद्यावधि नहीं है—यह बात असन्दिग्ध है। इसमें भी कोई संशय नहीं है कि आप मनुष्य-लोक के पर्वतों में पूजनीय हैं। यदि आप मेरी बात मानें तो मैं आप से निवेदन करता हूँ। आपके घर में ऐश्वर्यशालिनी सती ने पार्वती के रूप में जन्म लिया है, उनका शिव के साथ विवाह कर दें। हे गिरिराज ! और कोई दूसरा पति उनके योग्य नहीं है। शिव के लिये

नान्यं हि वरमेतस्या योग्यमस्ति गिरीश्वर । तस्यापि सदृशी भार्या नान्यास्ति भुवनत्रये ॥५९॥
तस्मात् प्रयच्छ गिरिजां महेशाय महामते । ततस्त्वं प्राप्स्यसे श्रेयो ददस्व वचनान्मम ॥६०॥
सर्वदेवेषु यो देवो योग्योऽस्ति हि गिरीश्वर । मानय त्वं महाभाग ! ददस्व गिरिकन्यकाम् ॥६१॥
यमाद्यं पुरुषं लोके वदन्ति मुनयः शुभाः ॥६२॥

सूत उवाच—

हिमाद्रिर्वचनं[1] श्रुत्वा ब्रह्मणो धैर्यसंयुतः । उवाच वचनं राजन् बृहस्पतिरिव स्वयम् ॥६३॥

हिमाद्रिरुवाच—

धन्योऽस्मि देवदेवेश ! यत्त्वया भाषितोऽस्म्यहम् । दास्यामि गिरिजां ब्रह्मन् महादेवाय शूलिने ॥६४॥
क्रियतां भूषणं सर्वं शाला चैव विरच्यताम् ॥६५॥

सूत उवाच—

हिमाद्रेर्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य सन्निधौ । प्रत्याजगाम राजर्षे ब्रह्मा ब्रह्मर्षिसेवितः ॥६६॥
कथयामास वै ब्रह्मा हिमाद्रेर्वचनं शुभम् । उपविश्यासने शुद्धे देवर्षिगणसेविते ॥६७॥
जगाद वाणीं धर्मात्मा दत्ता कन्येति वै विभो[2] । विवाहो रोचते मह्यं तव तस्यापि शङ्कर ॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सुखिनोऽपि भवन्ति हि ॥६८॥

सूत उवाच—

धातुः समीरितं श्रुत्वा शङ्करो लोकशङ्करः । ऊचे वाणीं सुमधुरां शुद्धदन्ताग्रमध्यगाम् ॥६९॥

भी और कोई दूसरी स्त्री पत्नी के योग्य नहीं है। अतः हे महामते ! शिव के साथ पार्वती का विवाह कर दें। इस कारण मेरे कहने से गिरिजा का परिणय शिव के साथ करें, इससे आपका कल्याण ही होगा। अतः हे महाभाग ! आप इस प्रार्थना को स्वीकार करें और अपनी पुत्री शिव जी को अर्पण करें। मुनिजन उन्हें आदिपुरुष के रूप में मानते हैं ॥५६-६२॥

सूत ने कहा—हिमाद्रि ने धैर्य के साथ यह बात सुनी। हे राजन् ! उन्होंने बृहस्पति के समान (गम्भीर वाणी) वचन इस प्रकार कहे ॥६३॥

हिमाचल कहने लगे—हे देवदेवेश ! मैं अपने को धन्य मानता हूँ, जो कि आपने मुझ से वार्तालाप किया। मैं अवश्य त्रिशूलधारी शिव को अपनी कन्या अर्पित करूँगा। आप भूषणादि की व्यवस्था करें तथा विवाह-मण्डप को बनवायें ॥६४-६५॥

सूत बोले—हिमाचल की वाणी को सुनकर, हे राजर्षे ! वहाँ महादेव के निकट ब्रह्मर्षि-गण-सहित ब्रह्मा पुनः वापस आ गए। ब्रह्मा ने हिमाचल का शुभ वचन (निर्णय) शिव को अवगत कराया। देवर्षिगणों से सेवित ब्रह्मा ने शुद्ध आसन पर बैठ कर यह सन्देश शिव से कहा कि (हिमाचल ने) 'आपको कन्या दे दी है।' आप के साथ उसका विवाह होना मुझे भी अच्छा लग रहा है। इससे गन्धर्वों सहित देवगण सुख का अनुभव करेंगे ॥६६-६८॥

सूत ने पुनः कहा—ब्रह्मा के कथन को सुन कर लोक का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर अपने स्वच्छ दातों के मध्य से मधुर वचन बोले ॥६९॥

---

१. 'हिमाद्रिर्ब्रह्मवचनम्' इति 'ख'-पुस्तके । २. "प्रभो"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः ।

शिव उवाच—

आहूय विश्वकर्माणं शिल्पज्ञं कारुनायकम्। रच्यन्तां यज्ञपात्राणि भूषणानि शुभानि च ॥७०॥
विनायकस्य पूजार्थं विधिश्चायं[1] विरच्यताम्। अमङ्गलविघातार्थं पूजयामि गणेश्वरम् ॥७१॥
अनभ्यर्च्य गणेशानं यथा काली विवाहिता। कालेन कालवशगा जाता साप्यजरामरा ॥७२॥
अस्मिन् हेतौ मया पूर्वं कामदेवो विनाशितः। तस्मात् वैनायकी शान्तिः कर्तव्याऽस्माभिरेतदा ॥
तस्माद्विनायकः पूर्वं कार्यो वै विश्वकर्मणा ॥७३॥

सूत उवाच—

शिवेरितं समाकर्ण्य ब्रह्मा लोकपितामहः। पुनर्विज्ञापयामास शिवं लोकशिवप्रदम् ॥७४॥

ब्रह्मोवाच—

एतद्धि रोचते मह्यं यथोक्तं भवता विभो। नाशोऽयं कामदेवस्य मा भूयात् शङ्कर प्रभो ॥७५॥
प्रनष्टे कामदेवे तु भविष्यन्त्यप्रजा जनाः। तस्मात् काम-समुत्पत्तिं कुरुष्व परमेश्वर ॥७६॥
ततो वैनायकीं शान्तिमृत्विग्भिः ऋषिभिः सह। मया सह महाभाग क्रियतामाशु मा चिरम् ॥७७॥

सूत उवाच—

तथेत्युक्तो भगवता शिवेन करुणात्मना। हृदि स्थापितकामेन ब्रह्मा लोकपितामहः ॥७८॥
आहूय विश्वकर्माणं शिल्पज्ञं शिल्पिनायकम्। प्रतिमां कारयामास गणेशस्य महामते ॥७९॥

शिव ने कहा—शिल्पज्ञ और वास्तुविशारद विश्वकर्मा को बुला कर विवाह-सम्बन्धी यज्ञपात्र तथा भूषण आदि बनवाये जायँ। गणेश-पूजन की सामग्री सम्पादित की जाय। इस हेतु विघ्न-बाधा दूर करने के लिये मैं गणेश का पूजन करता हूँ। मैं ने पहले गणेश-पूजन के बिना काली के साथ विवाह किया था, किन्तु वह अजर और अमर होते हुए भी मृत्यु के वशीभूत हो गई। इसी कारण मैं ने पहले कामदेव को भस्म किया था। अतः हमें वैनायकी शान्ति करनी चाहिये। तदनुसार विश्वकर्मा सर्वप्रथम गणेश की मूर्ति का निर्माण करें ॥७०-७३॥

सूत बोले—शिव के इस कथन को सुन कर लोक के पितामह ब्रह्मा ने लोक-कल्याण-कारी शिव से पुनः इस प्रकार निवेदन किया ॥७४॥

ब्रह्मा ने कहा—हे विभो! आपने जो कुछ कहा, वह मुझे मान्य है। किन्तु (अब) कामदेव का नाश न करें। कामदेव के नष्ट होने पर आगे सन्तति-विच्छेद हो जायगा। इस हेतु, हे परमेश्वर! आप काम को उत्पन्न करें। तब ऋषियों, ऋत्विजों और मेरे साथ आप वैनायकी शान्ति सम्पन्न करें। इस कार्य में अब विलम्ब न हो ॥७५-७७॥

सूत ने कहा—दयालुहृदय शिव ने इसका समर्थन किया। हृदयस्थ कामना से लोक-पितामह ब्रह्मा ने शिल्पज्ञ एवं शिल्पिश्रेष्ठ विश्वकर्मा को बुला कर, हे महामते! गणेश की प्रतिमा बनवाई। यद्यपि गणेश का अभी जन्म नहीं हुआ था तथापि वह गणनायक तो थे।

---

१. "विधिश्चापि"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः।

अप्राप्तजननस्यास्य गणानां नायकस्य च। ततः स कारयामास भूषणानि शुभानि च ॥८०॥
तथैव यज्ञपात्राणि स्तम्भानि विविधानि च। ततो न्यवेदयद्धाता महेशाय महात्मने ॥८१॥
गणेशप्रतिमां दिव्यां स्तम्भानि भूषणानि च। दृष्ट्वा स देवदेवेशः सामग्रीं समुपस्थिताम् ॥८२॥
विलेप्य स चिताभस्म धृत्वा एणाजिनं शुभम्। नागानां वलयं कृत्वा धृत्वा शूलं तदा प्रभुः ॥८३॥
नृकण्ठशतैर्युक्तां ग्रथितां प्राणतन्तुभिः। धृत्वा मालां स देवेश आरुह्य वृषभं स्वकम् ॥८४॥
नन्दि-भृङ्गि-रिटि-युतैः परिवारैर्विराजितः। हिमालयं महाराज ययौ ब्रह्म-सहायवान् ॥८५॥
गत्वा गिरीन्द्रभवनान्नातिदूरे महामते। विवेश ब्रह्मणा सार्धं गोमत्या दक्षिणे गिरौ ॥८६॥
आजुहाव ऋषीन् सर्वान् वसिष्ठादीननन्तरम्। शिवाहूतास्तु ऋषयस्ते जग्मुः शिवसन्निधौ ॥८७॥
ततस्ते ऋषिभिः सार्धं ब्रह्माद्यैर्वेदवल्लभैः। प्रतिमां स्थापयामासुः गणेशस्य तपोधनाः ॥८८॥
धात्रा प्रतिष्ठितां पुण्यां निर्मितां विश्वकर्मणा। स्थापितां तां महाराज पूजयामास शङ्करः ॥८९॥
पञ्चामृतैर्जलैः पुण्यैः कुसुमैः सुमनोहरैः। मोदकैर्घृतयुक्तैश्च तथा दूर्वाङ्कुरैरपि ॥९०॥
ततस्तं प्रार्थयामासुः ऋषिभिर्ब्रह्मणा सह ॥९१॥

महेश उवाच—

नमो नमस्ते गणनायकाय देवैः समस्तैरपि संस्तुताय।
प्रधानरूपाय वरप्रदाय नमो[1] नमस्ते गिरिजासुताय ॥९२॥
कुरुष्व देव्या मम चैव संगमे निर्विघ्नमेकं वरदोऽसि नायकः।
देवीं च सुभ्रूं मम सेविकां ततः कुरुष्व ब्रह्मादिभिः संस्तुतः प्रभो ॥९३॥

इसके बाद माङ्गलिक सुन्दर आभूषण एवं शुभकारक विविध यज्ञपात्र तथा स्तंभ बनवाये। तब ब्रह्मा ने महात्मा शिव से सामग्री-सम्पादित हो जाने के विषय में निवेदन किया। देवदेवेश्वर शिव ने संकलित सामग्री को देख कर चिताभस्म अंग में रमा, हस्ति-चर्म ओढ़, नागों के कंकण धारण कर, त्रिशूल हाथ में ले लिया। प्राणरूपी तन्तुओं से गुथी हुई मुण्डमाला को गले में धारण कर अपने वाहन बैल पर सवार होकर नन्दी-भृङ्गी-रिटि आदि परिवार को साथ ले, ब्रह्मा जी के साथ शिव जी हिमालय की ओर चले। गिरिराज के भवन से कुछ ही दूर, हे महामते! पर्वत तथा गोमती के दक्षिण भाग में, वसिष्ठ आदि ऋषियों को बुलवाया। वे ऋषि शिवजी से बुलाये जाने पर उनके समीप पहुँचे। हे तपस्वियो! तब वेदविद्या में निष्णात ऋषियों के सहित ब्रह्मा आदि देवों ने गणेश की प्रतिमा स्थापित की। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तथा ब्रह्मा द्वारा प्रतिष्ठित गणेश-प्रतिमा की—शिव ने पञ्चामृत, पवित्र जल, सुन्दर पुष्प, घृतपक्व-मोदक तथा दूर्वाङ्कुरों से—पूजा की। फिर ऋषिगणों एवं ब्रह्मा के साथ शिव ने गणेश की प्रार्थना आरम्भ की ॥७८-९१॥

शिव जी बोले—सब देवताओं से संस्तुत एवं गणों में अग्रणी! आपको नमस्कार है। प्रधान रूप, वरदाता तथा पार्वती के पुत्र को हमारा नमस्कार है। हे गणनायक! आप एकमात्र निर्विघ्न वरदाता हैं, अतः मेरा और देवी का समागम करायें। सुन्दर भौं वाली पार्वती को मेरी सेविका बनायें। हे प्रभो! आप की स्तुति ब्रह्मा आदि देवों ने की है ॥९२-९३॥

---

१. "तस्मै"—इति 'ख'—पुस्तके पाठः।

सूत उवाच—

एवं स्तुत्वा भवानीशो गणेशं नृपसत्तम। चक्रे वैनायकीं शान्तिमृत्विग्भिर्वेदवादिभिः ॥८४॥
वेदवेदाङ्गपथगैर्धात्रा[1] चैवोपदेशितैः। समाप्य शान्ति राजर्षे हुत्वा चाग्नि प्रयत्नतः ॥९५॥
गणाध्यक्षाय चेत्युक्त्वा[2] स्तुत्वा चैव पुनः पुनः। जगाम गोमतीतीरे गारुडीसंगशोभिते ॥९६॥
ततः प्रभृति राजेन्द्र गणनाथान्वितं गिरिम्। स्तुवानो[3] मुनयः सर्वे गणाध्यक्षेति तं शुभम्॥९७॥
प्राप्य तद् गोमतीतीरं शिवो ब्रह्माणमब्रवीत्। गम्यतां पर्वतगृहं हिमसीकरसेवितम् ॥९८॥
कथ्यतां मामिह प्राप्तं बद्ध्वा कौतुकमङ्गलम्। ततः शिवस्य वचनात् ब्रह्मा ब्रह्मर्षिसेवितः ॥९९॥
पुनर्जगाम भवनं पर्वतस्य महात्मनः। तदासनं ददौ प्रीतो हिमाद्रिः स सुतान्वितः ॥१००॥
पप्रच्छ च तदा राजन् ब्रह्माणममितौजसम्। ब्रूयतां भगवन् शीघ्रं महेशचरितं शुभम् ॥
ततोवाच जगद्धाता हिमाद्रिं राजसत्तम ॥१०१॥

ब्रह्मोवाच—

शृणुष्व पर्वतश्रेष्ठ ! वचनं मे उदाहृतम् ॥
कृत्वा चौद्वाहिकं सर्वं समग्रमतिशोभनम्। साम्प्रतं गोमतीतीरे बद्ध्वाः कौतुकमङ्गलम् ॥१०२॥
प्राप्य चाधित्यकां[4] तेऽद्य शोभितां [5]गारुडी जलैः। स्थितःसणे देवदेवस्त्रिशूलकरभूषणः ॥१०३॥

सूत जी बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार शिव ने गणेश की स्तुति कर ब्रह्मा से उपदिष्ट वैदिक ऋत्विजों द्वारा वैनायकी शान्ति कराई। शान्ति के पूर्ण होने पर, हे राजर्षे ! 'गणाध्यक्षाय स्वाहा' मन्त्र से अग्नि में हवन करने के पश्चात् बार-बार स्तुति करते हुए, गारुड़ी के साथ संगम करती हुई गोमती के तट पर—शिव पहुँचे। तब से हे राजेन्द्र ! 'गणनाथ' नाम को धारण किये हुए शुभ गणाध्यक्ष के रूप में उस पर्वत की मुनिगण स्तुति करते हैं। गोमती-तट पर पहुँच कर शिव जी ने ब्रह्मा से कहा कि आप हिमसीकर से पूरित हिमाचल के घर जायें और कहें कि मैं यहाँ विवाहार्थं पहुँच गया हूँ। तब ब्रह्मर्षिगणों से सेवित ब्रह्मा महामहिम हिमालय के भवन में पुनः प्रविष्ट हुए। पुत्रसहित हिमाचल ने प्रसन्न हो ब्रह्मा को (बैठने के लिये) आसन दिया। हे राजन् ! अमित-तेजस्वी ब्रह्मा से उन्होंने कहा कि आप भगवान् शंकर के चरित्र का वर्णन करें। तब जगत् के धारक ब्रह्मा ने हिमाचल से कहना आरम्भ किया ॥९४-१०१॥

ब्रह्मा बोले—हे पर्वतराज ! मेरी कही हुई बात आप सुनें। सम्पूर्ण वैवाहिक माङ्गलिक सामग्री से सुसज्जित होकर शिवजी इस समय गोमती के तट पर वैवाहिक मङ्गल कंकण बाँध कर गारुडी[1] के जल से सुशोभित आपकी अधित्यका पर[2] पहुंच उपस्थित हुए हैं। उनके हाथ में त्रिशूल है। इस प्रकार घर आये हुए आदि-पुरुष भगवान् शंकर का अर्घ्यं आदि पूजा

---

१. "देववेदान्तपथगैः"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः।
२. "गणाध्यक्षेति त नत्वा"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः।
३. "स्तुन्वन्ति"—इति 'ख'-पुस्तके पाठः।
४. बैजनाथ (वैद्यनाथ) कत्यूर घाटी में स्थित। प्राचीन काल में 'कर्तृपुर' नाम से प्रसिद्ध।
५. गरुडगङ्गा।

तमाद्यं पार्वतीनाथं पार्वतीं पर्वतोत्तमः। पप्रच्छ गृहसम्प्राप्तमर्घादिभिः समन्वितः ॥१०४॥
अलंकाराणि सर्वाणि त्वष्टुर्विरचितानि च। इमानि पर्वतश्रेष्ठ! गृहाण परिधापय ॥१०५॥
अलंकाराणि सर्वाणि वासांसि विविधानि च। गृहीत्वा राजशार्दूल! कन्यकाभवनं प्रति ॥१०६॥
जगाम पर्वतश्रेष्ठो मैनाकेन समन्वितः। गत्वा तां कन्यकां देवीमुवाच वदतां वरः ॥१०७॥

पर्वत उवाच—

शृणु भद्रे! महाभागे! चार्वास्ये! चारुवर्णिनि। भूषणानि गृहाण त्वं भूषयस्व स्वकां तनुम् ॥१०८॥
[1]भूषणान्यपि योग्यानि तन्तुक्षौममयानि च। परिधापय वै सुभ्रु! हराय त्वां ददाम्यहम् ॥१०९॥
स योग्यस्ते पतिर्नान्यो भवितुमर्हति शोभने। इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं सा देवी हृष्टमानसा ॥११०॥
भूषयामास स्वं देहं मेने योग्यं पतिं हि तम्। ततो हिमाद्रिस्तां देवीं सर्वालङ्कारसंयुताम् ॥१११॥
दातुं हि देवदेवाय मैनाकेन समन्वितः। अर्घादिकरणैर्युक्तां नीत्वा कन्यां महामते[2] ॥११२॥
अर्घमाचमनीयं च दत्त्वा तस्मै नृपोत्तम। स तं निवेशयामास ओषधीनां शुभासने ॥११३॥
ऋषिभिः सह राजर्षे वेदवेदाङ्गपारगैः। वेदमन्त्रैश्च स ददौ तदोषधिशुभासनम् ॥११४॥
तं तत्र वेशयामास राजन् पर्वतनायकः। ततस्तां चारुवदनां कन्यां रत्नसमन्विताम् ॥११५॥
हराय राजशार्दूल! समुत्सृज्य ददौ गिरिः। ततस्तु पाणिग्रहणं चकार गिरिजाधिपः ॥११६॥
देव्या हिमाद्रिणा दत्तं रत्नकङ्कणशोभितम्। तत[3] आरोपयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ॥११७॥

सामग्री से हिमालय ने उनका स्वागत किया। हे पर्वतश्रेष्ठ! इन अलङ्कार एवं माङ्गलिक वस्त्रों को स्वीकार करो और कन्या को इन्हें पहनाओ। आभूषणों और अलंकारों को लेकर मैनाक के साथ हिमालय अपनी कन्या पार्वती के भवन को गए। वहाँ जाकर बोलने में चतुर हिमाचल ने अपनी कन्या से कहा ॥१०२-१०७॥

पर्वतराज ने कहा—"हे सुमुखि! सुवर्णे! भद्रे! महाभागे! सुनो। इन भूषणों को स्वीकार करो तथा अपने शरीर को अलंकृत करो। हे सुभ्रु! ये भूषण एवं सूती तथा रेशमी वस्त्र हैं—इन्हें तुम धारण करो। मैं तुम्हें भगवान् शंकर को अर्पित करता हूँ। वही तुम्हारे योग्य पति हैं, दूसरा कोई और योग्य नहीं है"। पिता के इन वाक्यों को सुन कर प्रसन्न-मन से हिमाचल-कन्या ने अपने अङ्गों को अलंकृत किया तथा शिवजी को अपने योग्य वर मान लिया। तब हिमाचल सब अलंकारों से सुसज्जित उस कन्या को महादेव को समर्पित करने के लिये मैनाक के साथ अर्घ्य आदि पूजा-सामग्री तथा कन्या को लेकर, हे महामते! शिवजी का स्वागत करने आगे बढ़े। हे नृपश्रेष्ठ! उन्हें अर्घ्य एवम् आचमनीय से पूजित कर सुन्दर आसन पर बैठाया। हे राजर्षे! वेद और वेदाङ्गों में पारंगत विद्वानों द्वारा वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हिमाचल ने उन्हें सुन्दर कुशासन दिया। हे राजन्! पर्वतराज ने उन्हें आसन पर बैठा कर रत्नादि से सुभूषित अपनी कन्या शंकर को समर्पित की तथा

---

१. 'वस्त्राणि चातियोग्यानि' इति 'ख'—पुस्तके पाठः।
२. 'प्रत्युज्जगाम गिरिशं गिरिराजो महामते'—इत्यधिकः 'ख'—पुस्तके पाठः।
३. 'ततः सं' इति 'ख'—पुस्तके पाठः।

औद्वाहिकमहातम्भान् शुभान् मङ्गलकारकान्। ततः स कारयामास वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥११८॥
ऋत्विग्भिः ऋषिभिः सार्धं विधिदृष्टेन कर्मणा। दिवि दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥११९॥
जयशब्दं पुरस्कृत्य सर्वे मङ्गलपाणयः। देवास्तयोर्विवाहं वै ददृशुः स्वस्थमानसाः॥१२०॥
जगुर्गन्धर्वपतयो मृदङ्गानकपाणयः। तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१२१॥
ततो हिमाद्रिस्तं देवं प्रार्थयामास भूपते ॥१२२॥

हिमालय उवाच—

त्राहि मां देवदेवेश पुनीहि परमेश्वर। कर्मणोपार्जितं पापं नाशयस्व न संशयः ॥१२३॥

महादेव उवाच—

यथा हि पूजितोऽहं वै तथा पूज्यो भवानिह। भविष्यति महाभाग! मत्प्रसादान्न संशयः ॥१२४॥
स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग गम्यतां भवनं प्रति। पूज्यो भव सदा लोके मत्प्रसादान्न संशयः ॥१२५॥

सूत उवाच—

नत्वा तं पार्वतीनाथं परिक्रम्याभिवाद्य च। जगाम स्वगृहं पुण्यं हिमाद्रिः स सुतान्वितः ॥१२६॥
ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्धं वसिष्ठाद्यैर्नरेश्वर। जगाम ब्रह्मभवनं नत्वा देवेश्वरं हरम् ॥१२७॥
शिवोऽपि राजशार्दूल भवान्या स समन्वितः। निजनामाङ्कितं लिङ्गं देव्या नन्दिसमन्वितम् ॥१२८॥
संस्थाप्य राजशार्दूल ययौ केदारमण्डलम्। नन्दि-स्कन्दि-रिटिभिर्हि देव्या चापि समन्वितः ॥१२९॥
तथाऽन्यैः परिवारैश्च सर्वदा स विराजितः। ततः प्रभृति राजेन्द्र गत्वा केदारमण्डलम् ॥१३०॥

महादेव ने हिमाचल द्वारा समर्पित, रत्नकङ्कण से सुशोभित पार्वती का पाणिग्रहण किया। तब लोक के पितामह ब्रह्मा ने विवाहोपयोगी शुभ एवं कल्याणकारी मङ्गल खम्भों को गढ़वाया एवं वर-वधू का विवाह वहाँ मण्डप में ऋत्विज और ऋषियों के साथ विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया। उस समय स्वर्ग मे दुन्दुभि बजने लगे तथा पुष्पवृष्टि होने लगी। मङ्गलकारी वस्तुओं को हाथ में लिये हुए गौरीशंकर के जयनाद पूर्वक सभी देवताओं ने शिव-पार्वती का विवाह स्वस्थ-चित्त से देखा। मृदङ्ग एवं ढोल हाथ में लेकर श्रेष्ठ गन्धर्वगण गान करने लगे। देवता और गन्धर्वों ने स्तुतियाँ कीं तथा अप्सराओं ने नृत्य किया। हे राजन्! तब हिमाचल शिवजी की प्रार्थना करने लगे ॥१०८-१२२॥

हिमालय ने कहा—हे देवदेवेश! आप मेरी रक्षा करें तथा मुझे पवित्र करें। इसके साथ ही दुष्कर्मों से उपार्जित मेरे पापों को निःसन्देह विनष्ट करें ॥१२३॥

महादेव ने कहा—जिस प्रकार आपने मेरा सम्मान किया है, वैसे ही आप भी, हे महाभाग! मेरी कृपा से निःसन्देह पूज्य हो जाएँगे। आप का कल्याण हो, आप अपने भवन को जायें। मेरी कृपा से आप पूजनीय हों ॥१२३-१२५॥

सूत ने कहा—तदनन्तर हिमालय महादेवजी को प्रणाम कर तथा उनकी परिक्रमा करने के पश्चात् अपने पुत्र मैनाक के साथ अपने घर वापस चले गए। हे राजन्! वसिष्ठ आदि ऋषियों के साथ ब्रह्मा भी देवेश्वर शिव को नमस्कार कर ब्रह्मलोक को चले गए। (तत्पश्चात्) शिवजी भी पार्वती और नन्दिकेश्वर सहित अपने नामाङ्कित लिङ्ग को स्थापित कर, हे राजसिंह, पार्वती समेत वहाँ से केदारमण्डल को गए। तथापि नन्दी, स्कन्दी,

रेमे गिरिजया सार्धं दैवतैरभिपूजितः[1] । ततस्तु गारुडीमध्ये गोमत्याः सङ्गमेन च ॥१३१॥
ऋषीणां वेदपठनादोषधीनां समासनात् । वैद्यनाथेति तं देवं तुष्टुवुर्देवतागणाः ॥१३२॥
इवं पवित्रं परमं रहस्यं देव्या महेशस्य विवाहकीर्तनम् ।
कुर्वन्ति ये भारत ! देवपूज्या भवन्ति संप्राप्य गृहं शिवस्य ॥१३३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गौरी-महेश-विवाह-वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

रिटि तथा पार्वती एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ शिव यहाँ सर्वदा विराजमान हैं। तब केदारमण्डल में जाकर, हे राजेन्द्र ! भगवान् शंकर ने देवताओं से पूजित होकर, वहाँ पार्वती के साथ रमण किया। गारुडी के साथ गोमती के संगम, ऋषियों के वेदपाठ तथा ओषधियों के प्रादुर्भाव से देवगणों ने वहाँ वैद्यनाथ (नामक शिव) की स्तुति की। इस पवित्र एवं रहस्यमय चरित्र तथा शिव-पार्वती के विवाह का जो संकीर्तन करते हैं, हे भारत ! वे देवगणों से पूज्य हो शिवलोक प्राप्त करते हैं ॥१२६-१३३॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में गौरी-महेश्वर-विवाह-वर्णन नामक छठा अध्याय समाप्त ॥

—: ❁ :—

---

१. 'दैवतैरपि पूजितः' इति 'ख'—पुस्तके ।

७

जनमेजय उवाच—

कथितं हि त्वया ब्रह्मन् विवाहचरितं शुभम् । हिमाद्रिचरितं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

सूत उवाच—

धन्योऽसि राजशार्दूल यत्त्वं पृच्छसि शोभनम् । हिमाद्रिचरितं पुण्यं दुष्कृतानां विनाशनम् ॥२॥

कथयामि महाराज कृष्णद्वैपायनेरितम् । पुण्यदं पुण्यकीर्तीनां[1] धर्मकामार्थदं शुभम् ॥३॥

ऋषयो हि महाभागाः कृष्णद्वैपायनं गुरुम् । सम्पूज्य राजशार्दूल ! पप्रच्छुः शुभलक्षणाः ॥४॥

ऋषय ऊचुः—

कथितं भवता ब्रह्मन् पुण्याख्यानं सुविस्तरम् । गौरीविवाहचरितं धरायाश्चरितं महत् ॥५॥

यत्त्वया प्रथमः ख्यातो हिमाद्रिर्द्विजसत्तम । पुण्यैः सुपुण्यैः संयुक्तो[2] गणगन्धर्वसेवितः ॥६॥

यत्र जाता जगद्धात्री चण्डिका चण्डविक्रमा । भवस्य वल्लभा साध्वी पूजिता दैवतैरपि ॥७॥

यत्र वै देवदेवस्य वासः समनुवर्णितः । दैवतैर्गणगन्धर्वैः सेवितस्यार्थदस्य च ॥

हिमालयस्य चाख्यानं[3] श्रोतुमिच्छामहे[4] गुरो ॥८॥

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने शिवजी के विवाह का आख्यान सुनाया, अब मैं हिमालय का पुनीत चरित्र यथार्थ रूप में सुनना चाहता हूँ ॥१॥

सूत ने कहा—हे नृपशार्दूल ! आप धन्य हैं, आपने पापनाशक हिमाद्रिचरित्र के विषय में अच्छा पूछा । अब मैं, हे महाराज ! पुण्यश्लोकजनों के पुण्यप्रद एवं धर्म-काम और अर्थ-प्रद तथा वेदव्यास द्वारा वर्णित कल्याणप्रद हिमालय का चरित्र-चित्रण करता हूँ । (पहले इसी प्रकार) हे नृपशार्दूल ! शुभलक्षणयुक्त महानुभाव ऋषियों ने वेदव्यास की पूजा कर इसी प्रकार जिज्ञासा की थी ॥२-४॥

ऋषि कहने लगे—हे ब्रह्मन् ! आपने गौरी-विवाह-आख्यान तथा पृथ्वी का विस्तृत चरित्र आदि पवित्र कथानकों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया । हे विप्रवर ! आपने पहले पुण्यात्माओं एवं पुनीत जनों से युक्त तथा गन्धर्वगणों से सेवित हिमाद्रि की प्रमुखता बतलाई । वहीं प्रचण्ड पराक्रमी जगन्माता चण्डिका उत्पन्न हुईं, जो भगवान् शंकर की प्रिया, साध्वी तथा देवगणों की पूजनीया रहीं । वहीं पर भगवान् शंकर के वास का भी वर्णन किया, अतः अब हम हे गुरो ! देवगणो एवं गन्धर्वों से सेवित तथा इष्ट वस्तुओं के प्रापक उस हिमालय के आख्यान को सुनना चाहते हैं ॥५-८॥

---

१. 'पुण्यकीर्तानाम्' इति 'ख'—पुस्तके पाठः । २. 'खण्डैः सुपुण्यैः संयुक्तं' इति 'ख'—पुस्तके पाठः ।
३. 'व्याख्यानम्' इति 'ख' पुस्तके पाठः । ४. लोके इष्-धातुः परस्मैपदी ।

व्यास उवाच—

शृणुध्वं हि महाभागा हिमाद्रिचरितं शुभम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुभूतं शिवान्वितम् ॥९॥
देवतागणगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगाः । ऋषयो हि महाभागाः सेवन्ते यं गिरीश्वरम् ॥१०॥
गुहासु चातिपुण्यासु पूजितं शिवकिङ्करैः । तमहं कथयिष्यामि शिवास्पदसमन्वितम् ॥११॥
हिमसीकरसंपृक्तं यं दृष्ट्वा पापकोटयः । दूरादेव विलीयन्ते हिमानीव दिनोदये ॥१२॥
हिमान्वितं हि यन्नाम श्रुत्वा ब्रह्मवधादपि । मुच्यन्ते ऋषिशार्दूलाः कोऽन्यस्तस्माद् गिरीश्वरात् ॥१३॥
अथाहं कथयिष्यामि कथ्यमानां कथां शुभाम् । पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥१४॥
दत्तेन कथितां राजन् काशिराजाय धीमते । हिमाद्रिगुणसंयुक्तां शिवाख्यानसमन्विताम् ॥१५॥
दैवतैरपि संगीतां मानवानां शुभार्थदाम् । दत्तात्रेयेति विख्यातो त्यक्त्वा सह्याचलं द्विजाः ॥१६॥
ज्ञात्वा हिमालयं पुण्यं जगाम हिमसेवितम् । सरोवरजलैः पुण्यं शीतलानिलसेवितम् ॥१७॥
मृगैः शृगालसिंहैश्च[1] मृगनाभिभिरावृतम्[2] । शार्दूलशब्दाभिरुतं पक्षिसङ्घैर्विराजितम् ॥१८॥
भूर्जादिवृक्षसंकीर्णं स्वर्णाकरविराजितम् । रजताकरसंकीर्णं[3] गैरिकादिविराजितम् ॥१९॥
किरातैश्चापि संकीर्णं[4] वनौषधिसमन्वितम् । गत्वा तमृषिशार्दूला ददृशुर्गिरिसत्तमम्[5] ॥२०॥
हिमैर्बहुविधैः कीर्णं गुहाभिश्च विराजितम् । दृष्ट्वा तमागतं दत्तं प्रत्युत्थाय गिरीश्वरः ॥२१॥

व्यास ने कहा—हे महानुभावों! धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के कारणस्वरूप एवं शिव से संयुक्त शुभावह हिमाचल के चरित्र को आप लोग सुनें। उस गिरिराज की सेवा में देव-गन्धर्वगण, सिद्ध, विद्याधर, नाग एवं ऋषिगण, सर्वदा तत्पर रहते हैं। (इसके साथ ही) शिव के सेवकों से पवित्र कन्दराओं में पूजित एवं शिव के नामों से संवलित उस हिमालय का वर्णन मैं करूँगा। हिम-सीकरों से समाश्लिष्ट हिमालय को देखकर, सूर्योदय के समय विलीन हुई हिमानी के समान, पाप भी दूर से ही नष्ट हो जाते हैं। हिम से संयुक्त उसका नाम सुन कर, हे श्रेष्ठ ऋषिगण! ब्रह्महत्यादि पापों से भी लोग मुक्त हो जाते हैं। अतः पर्वतराज के समान दूसरा और कौन हो सकता है? अब मैं उस कथनीय शुभद कथा को आप से कहता हूँ। वह आख्यान पढ़ने और सुननेवालों के सभी पापों का निराकरण करने वाला है। हे राजन्! हिमालय की श्रेष्ठता से समायुक्त, भगवान् शंकर के आख्यान से संयुक्त, देवताओं से भी प्रशंसित तथा मानवों की कल्याणदायिनी यह कथा (पहले) दत्तात्रेय ने विद्वान् काशिराज को सुनाई थी (आप लोग उसे सुनें)। हे विप्रवर्ग! प्रख्यात दत्तात्रेय सह्याद्रि को छोड़ कर पावन हिमालय की महत्ता को जानकर वहाँ चले आए। वह हिमालय सरोवरों के जलों से पवित्र तथा शीतल वायु के बहने से रमणीय लगता है। जहाँ भोजपत्र के वृक्षों की भरमार है तथा सुवर्ण की खानें भी विद्यमान है। वहीं मृग, शृगाल (सियार), सिंह तथा कस्तूरी मृग आदि भी भरे पड़े हैं, तथा सिंह की गर्जना भी सुनाई पड़ती है। पक्षियों से भरे हुए, सोने चाँदी की खानों तथा गेरू आदि से संकुलित, किरातों से आवासित एवं वनौषधियों से समन्वित उस स्थान पर जाकर, हे मुनिश्रेष्ठ! दत्तात्रेय ने अनेक रूपों में हिम से परिपूर्ण तथा गुहाओं से सुशोभित

---

१. 'मृगशृगालसिंहैश्च 'इति' ख–पुस्तके पाठः। २. 'वसामेदांशिभिर्वृतम् 'इति' 'ख' पुस्तके।
३. 'रजताकरसंपूर्णम्' इति 'ख' पुस्तके। ४. 'सम्पूर्णम्' इति 'ख'—पुस्तके।
५. 'गत्वा तम् ऋषिशार्दूला ददर्श गिरिसत्तमम्' इति 'ख'—पुस्तके।

पूजयामास विधिवद्विधिदृष्टेन कर्मणा । अर्घमाचमनीयं वै निवेद्य नृपसत्तम ॥२२॥
पप्रच्छानामयं तस्मै योगीशाय महात्मने । उपवेश्यासने शुभ्रे तमुवाच गिरीश्वरः ॥२३॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि तपोधन । त्वत्पादयुगलेनाद्य पावितं मे गृहम् ऋषे ॥२४॥
भुक्त्वा मदन्नं वै योगिन्[1] भुज्यतामृषिसत्तम । कथ्यतां सुप्रिया वार्ता येन प्राप्तोऽसि मामिह ॥२५॥

व्यास उवाच—

भुक्त्वा तदन्नं सुप्रीतो वचनं तमुवाच ह । प्रीतियुक्तं सुसंपन्नं देवतानां सुपूजितम् ॥२६॥

दत्त उवाच—

त्वत्समा नान्यगिरयो विन्ध्याद्याः शुभलक्षणाः । नदीभिर्बहुभिर्युक्ताः पूजिता दैवतैरपि ॥२७॥
यस्मिन् त्वयि महाभाग शिवावासः शिवार्थदः । वर्तते पर्वतश्रेष्ठ ! कोऽस्ति त्वत्तोऽधिको भुवि ॥२८॥
तव कक्षे गिरिश्रेष्ठ ! लिङ्गस्य पतनं शुभम् । गिरिजाया विवाहं च श्रुत्वा त्वरितमागतः ॥२९॥
द्रष्टुं त्वद्विभवं सर्वं तथा तीर्थानि तेऽधुना । तथाऽऽकराणि सर्वाणि शिवलिङ्गानि वै तथा ॥३०॥
ज्ञात्वा त्वां देवसदृशं देवरूपधरं गिरिम् । नमन्ति गिरयः सर्वे विन्ध्याद्यास्त्वां न संशयः ॥३१॥
अहमप्यमितप्रज्ञं देवरूपधरं गिरिम् । सुधोपमं हिमयुतं नमामि त्वां हिमालयम् ॥३२॥

गिरिराज हिमालय को देखा । (इस प्रकार) दत्तात्रेय को आया हुआ देखकर हिमालय ने उठकर उनका (स्वागत कर) विधिपूर्वक सम्मान किया । हे राजन् ! अर्घ्य-आचमनीय आदि निवेदन कर उनसे कुशल-वार्ता पूछी । (फिर) सुन्दर आसन पर बैठाकर गिरिराज ने उनसे कहा कि आप के समान तपोधन ने आकर आज मुझे बड़ा अनुगृहीत किया । आपके चरणों से हे ऋषिवर ! मेरा घर पवित्र हुआ । हे योगिन् ! आप यथारुचि भोजन करें तथा यहाँ आने का कारण मुझे स्नेहपूर्वक बतलायें ॥९-२५॥

व्यास ने पुनः कहा—भोजन करने के उपरान्त स्वस्थ मन से दत्तात्रेय ने देवताओं को भी मान्य एवं सार्थक वाणी में गिरिराज से कहा ॥ २६ ॥

दत्तात्रेय बोले—विन्ध्य आदि अन्य पर्वत शुभ लक्षणों से युक्त होते हुए भी आप की समता नहीं रखते । यद्यपि वे भी नदियों से परिपूर्ण एवं देवताओं से पूजित हैं, किन्तु हे महाभाग ! जिस हिमालय पर कल्याणदायक शिव का वासस्थान विद्यमान है, उससे बढ़कर अधिक श्रेष्ठ दूसरा कौन हो सकता है ? हे गिरिराज ! आप के प्रदेश में ही लिङ्ग के पतन एवं गिरजा के विवाह की वार्ता को सुनकर मैंने यहाँ आने में शीघ्रता की है । आप के समग्र वैभव, तीर्थ, खानों, एवं शिवलिङ्ग आदि देखने के लिए मैं आया हूँ । देवसदृश तथा देवरूप-धारी आप (हिमालय) को जानकर विन्ध्य आदि पर्वत निःसन्देह आपको प्रणाम करते हैं । मैं भी अपार बुद्धिशाली एवं देवताओं का रूप धारण करने वाले तथा अमृत के समान हिम से

---

१. 'मयोपाहृतमन्नं वै' 'ख'—पुस्तके ।

दर्शयस्व स्वतीर्थानि शिवलिङ्गयुतानि च । हिमसीकरपूतानि[1] स्वशरीराणि वै गिरे ॥३३॥
दर्शयस्व स्वभवने गुहाः कान्ताः सुशोभनाः । शिवलिङ्गयुताः सर्वास्तथा किन्नरशोभिताः ॥३४॥
तथाकराणि[2] सर्वाणि स्वर्णरौप्यान्वितानि च । गैरिकादिभिर्युक्तानि दर्शयस्व गिरीश्वर ॥३५॥

व्यास उवाच—

ततो दत्तस्य वचनात् हिमाद्रिः फुल्ललोचनः ॥३६॥
स तं प्रदर्शयामास मानसाख्यं सरोवरम् । ब्रह्मणा निर्मितं साक्षात् तीर्थैर्बहुभिरन्वितम्[3] ॥३७॥
ऋषीणामाश्रमैर्युक्तं गुहाभिर्बहुभिर्युतम् । तन्मध्ये देवदेवस्य लिङ्गं स्वर्णमयं शुभम् ॥३८॥
राजहंसस्वरूपेण दर्शयन्तं शुभं वपुः । तं दृष्ट्वा देवदेवेशं परिचक्राम मानसम् ॥३९॥
स्नापयामास तीर्थेषु पूतेषु च सरित्सु च । ततस्तं दर्शयामास गुहासु शंकरं प्रभुम् ॥४०॥
रमन्तं गिरिजया सार्धं पूजितं गणनायकैः । ब्रह्मविष्णवादिभिर्देवै रचितं देवनायकैः ॥४१॥
गाङ्गेयजलसंयुक्तं सेवितं चाप्सरोगणैः । ततस्तं दर्शयामास हिमाद्रिः फुल्ललोचनः ॥४२॥
विष्णुपादोद्भवां शुक्लां कैलासभवनात् च्युताम् । पतितां[4] मानसे क्षेत्रे गङ्गासागरगामिनीम्[5] ॥४३
विष्णुपादाङ्कितां भूमिं दर्शयामास तं ततः । ब्रह्मादिभिर्देवगणैः सेवितां पुण्यकाननाम् ॥४४॥
कपालेनाङ्कितां शुद्धां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । सप्तर्षिसेवितां तत्र प्रजापतिविनिर्मिताम् ॥४५॥

परिपूर्ण प्रत्यक्ष हिमालय को प्रणाम करता हूँ। हे गिरिराज ! आप शिवलिङ्ग-सहित तीर्थों तथा हिम-सीकरों से पुनीत किये हुए अपने स्वरूप का दर्शन करायें। इसके अतिरिक्त पहाड़ों पर स्थित किन्नरों एवं शिवलिङ्गों से युक्त सुन्दर गुहाओं, सोने-चाँदी से भरी खानों तथा गेरू आदि से युक्त अन्य स्थानों को, हे गिरीश्वर ! आप मुझे दिखायें ॥२७-३५॥

व्यास ने कहा—दत्तात्रेय की वाणी को सुनकर प्रफुल्लित-नयन हिमाद्रि ने सर्वप्रथम अनेक तीर्थों से संकुलित ब्रह्मा की मानसी सृष्टि के प्रतीक मानसरोवर को दिखाया। वह मानसरोवर अनेक ऋषियों के आश्रमों तथा बहुत-सी गुहाओं से भरा हुआ था। उसके मध्य में भगवान् शिव का सुवर्णमय लिङ्ग, जो राजहंस के रूप में सुन्दर विग्रह धारण किये हुए था, उसे दिखाया। इस प्रकार भगवान् शंकर को देखकर दत्तात्रेय ने मानसरोवर की परिक्रमा की। वहाँ के तीर्थों एवं नदियों में दत्तात्रेय को स्नान कराया। तब अनेक गुहाओं में उन्हें शंकर के दर्शन कराये। तदनन्तर पार्वती के साथ रमण करते हुए, गण-नायकों से पूजित, ब्रह्मा-विष्णु आदि प्रमुख देवो से रचित, गङ्गा-जल से युक्त तथा अप्सराओं से सेवित—उस मानसरोवर को प्रफुल्लित नयनों से हिमाद्रि ने—दत्तात्रेय को दिखाया। इसके पश्चात् मानस-क्षेत्र में विष्णु के चरणों से निकली हुई, कैलास-भवन से गिरी हुई, गंगासागर को जाने वाली गंगा, एवं विष्णु के चरणों से अंकित भूमि, तथा ब्रह्मादि देवों एवं गणों से सेवित धर्मारण्य-युक्त, ब्रह्म-कपाल से अंकित विशुद्ध स्थली तथा सप्तर्षियों से सेवित धाता की अपूर्व सृष्टि को दिखाया। हे राजन् ! सब प्राणियों के सुखदायक एवं गुफाओं तथा तीर्थों से समन्वित मानसरोवर की परिक्रमा

---

१. 'पूतानि' इति 'ख'—पुस्तके। २. आकर-शब्दः पुंलिङ्गवाची। क्लीवत्वम् आर्षत्वात् ज्ञेयम्।
३. 'तीर्थैर्बहुभिः संवृतम्' इति 'ख'—पुस्तके। ४. 'पतन्तीम्' इति 'ख'—पुस्तके।
५. 'गंगां सागरतारिणीम्' इति 'ख'—पुस्तके।

परिक्रम्य मानसं राजन् सर्वभूतसुखावहम् । दर्शितं गिरिराजेन गुहातीर्थ-समन्वितम् ॥४६॥
हिमाद्रिदर्शितं राजन् ततः कैलासपर्वतम् । जगाम दत्तो भगवान् शिवकिङ्करसेवितम् ॥४७॥
ददर्श तत्र देवेशं देवगन्धर्वसेवितम्[1] । रुद्रकन्यासमाकीर्णं देवराजमिव श्रिया ॥४८॥
दीव्यन्तं निजतेजोभिर्हुतमग्निमिवेन्धसा । सेवितं पार्षदगणैः सिद्धविद्याधरोरगैः ॥४९॥
पूजितं गिरिजया सार्धं ब्रह्मविष्ण्वादिभिः सुरैः । पूजयामास गिरिशं दत्तात्रेयो महातपाः ॥५०॥
योगैर्विधानैर्बहुभिः स्तवैर्गीतान्वितैरपि । तुष्टाव तं स्तोत्रवरै राजन् दत्तो महातपाः[2] ॥५१॥
सम्पाद्य[3] वीणां मुरजं मृदङ्गमप्यनेकशः[4] ॥५२॥

दत्त उवाच—

नमो मुण्डितकेशाय[5] शितिकण्ठाय ते नमः । पशूनां पतये तुभ्यं करालास्याय ते नमः ॥५३॥
महाभैरवरूपाय भैरवान्तकराय च । नन्दिस्तुताय देवाय महादेवाय ते नमः ॥५४॥
कपर्दिने नमस्तुभ्यं चोग्ररूपधराय च । कालान्तकाय देवाय नमो विष्णुस्तुताय च ॥५५॥

व्यास उवाच—

दत्तेरितां स्तुतिं श्रुत्वा प्रहसन् पञ्चभिर्मुखैः । वरं वरय वै दत्तमत्रेति तमुवाच ह ॥५६॥

कर, हिमाचल द्वारा दिखाये गए कैलास पर्वत की ओर दत्तात्रेय आगे बढ़े। दत्तात्रेय ने—गणों से सेवित, रुद्रकन्याओं से भरे हुए, इन्द्र के समान शोभित—भगवान् शंकर को देखा। वहाँ पर महातपस्वी दत्तात्रेय ने—ईंधन से प्रज्वलित अग्नि के समान अपने तेजःपुञ्ज से प्रदीप्त, सिद्ध-विद्याधर-नाग आदि सभासदों से सेवित तथा ब्रह्मा-विष्णु आदि देवों से पूजित, गिरिजा के सहित—भगवान् शंकर की अभ्यर्चना की। अनेक प्रकार की ध्यानविधि तथा मृदङ्ग, मुरज, वीणा आदि अनेक वाद्यों के साथ गेय स्तोत्रों से—हे राजन् ! महातपस्वी दत्तात्रेय ने—शिव को प्रसन्न किया ॥३६-५२॥

दत्तात्रेय बोले—घुंघराली जटावाले नीलकण्ठ ! आपको मेरा प्रणाम है। विकराल मुखवाले पशुपति, भैरव के अन्तकर महाभैरव-स्वरूप, नन्दिकेश्वर से स्तूयमान हे महादेव ! आपको नमस्कार है। जटारूपधारी एवं उग्ररूपधर शिव ! तुम्हें मैं नमन करता हूँ। काल के शत्रुरूप (महाकाल) तथा भगवान् विष्णु से वन्दित शिव को मेरा नमस्कार है ॥५३-५५॥

व्यास ने कहा—दत्तात्रेय की स्तुति को सुनकर शिव ने पाँचों मुखों से हँसते हुए—हे दत्त ! मुझ से वर माँगो'—यह कहा। तब दत्त ने वर माँगा कि 'पृथ्वी मेरे लिये अगम्य न रहे'।

---

१. 'गन्धर्वगणसेवितम्' इति 'ख'—पुस्तके।
२. 'तुष्टाव तं शिवं राजन् ! गीर्भिर्दत्तो महातपाः' इति 'ख'—पुस्तके पाठः।
३. 'संवाद्य' इति 'ख'—पुस्तके पाठः। ४. 'मृदङ्गं वाप्यनेकशः' इति 'ख'—पुस्तके।
५. 'नमस्ते व्युप्तकेशाय' इति 'ख'—पुस्तके। 'व्रियति उप्ताः केशा यस्य सः'। "ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्" इति भागवतम् (स्क० २. अध्याय १)।

वव्रे वरं तदा दत्तोऽगम्या माऽस्तु मे मही । प्राप्य योगबलैश्वर्यं दत्तो वै शङ्करं प्रभो[1] ॥५७॥
पप्रच्छ च तदा दत्तो महेशं मुनिसत्तमाः[2] । सन्देहैर्बहुभिर्युक्तो नत्वा देवेश्वरं हरम् ॥५८॥

दत्त उवाच—

सर्वेषां पर्वतानां वै पुण्याः के गिरयः स्मृताः । आवासः कुत्र ते शम्भो लोके समनुवर्णितः ॥५९॥
को हि भूमण्डले पूतः स्थलः समनुवर्णितः । एतन्मे संशयं शम्भो छिन्धि कौतुककारकम् ॥६०॥

महेश उवाच—

अहमत्र च विन्ध्ये च वसामि मुनिसत्तम[3] । तथाऽहं कथयिष्यामि शृणुष्व मुनिसत्तम ॥६१॥
हिमाद्रिभवनं पुण्यं न मया त्याजितं शुभम् । न मया तत्स्थलं शुद्धं त्यक्तं कालेषु त्रिष्वपि ॥६२॥
नेतरे गिरयः पुण्यास्तस्मान्मे मुनिसत्तम[4] । प्रियो हिमाद्रिसदृशो नास्ति नास्ति भुवस्तले ॥६३॥
स्थितोस्मि तस्मिन् सुप्तोस्मि हिमाद्रौ योगिसत्तम । पूज्यन्ते यत्र देवैश्च[5] शिरांसि हिमपर्वते ॥६४॥
मच्छिरोत्तरभागे वै पूज्यन्ते नन्दपर्वते । विष्णुरेव महायोगिन् मया च ब्रह्मणा सह[6] ॥६५॥
तस्मात् हिमाद्रिसदृशा नान्ये च गिरयः शुभाः । लिङ्गैर्बहुभिः संकीर्णा नदीभिः समलंकृताः ॥६६॥
गच्छ पश्य स्वयं योगिन् हिमाद्रिं श्रेय आप्स्यसि[7] ॥६७॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण ! तब योगबल से ऐश्वर्य को प्राप्त कर दत्तात्रेय ने, अनेक सन्देहों से संकुलित मन से, भगवान् शंकर से इस प्रकार पूछा ॥५६-५८॥

दत्त नें कहा—"सब पर्वतों में कौन से पर्वत पुण्यशील हैं ? लोक में आप का वास कहाँ बताया गया है ? कौन सा भाग भू-मण्डल में पवित्र माना गया है ? शम्भो ! कुतूहलयुक्त मेरे इस सन्देह को आप दूर करें ॥५९-६०॥

महेश बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं यहाँ और विन्ध्यपर्वत में रहता हूँ। (तो भी) हे मुनिवर ! मैं (जो इस सम्बन्ध में) बतला रहा हूँ, आप उसे सुनें। "हिमालय बड़ा पुण्यस्थल है, मैं ने उसे कभी नहीं छोड़ा। (अधिक क्या कहूँ) त्रिकाल में भी उसे कभी नहीं छोड़ा है। हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्य पर्वत उससे बढ़कर पुण्यजनक नहीं हैं। हिमाचल के समान पृथ्वीतल पर दूसरा कोई पर्वत नहीं है। योगिवर ! मैं वहीं प्रतिष्ठित हूँ और वहीं सोता भी हूँ। हिमालय में मेरे सिर देवों से पूजित हैं। मेरे सिर के उत्तरभाग में स्थिति नन्द-पर्वत पर मेरे साथ ही ब्रह्मा तथा विष्णु की पूजा होती है। अनेक शिवलिङ्गों से समायुक्त एवं अनेक नदियों से सुशोभित न होने के कारण अन्य पर्वत हिमालय के समान श्रेष्ठ नहीं हैं। हे योगिन् ! आप (वहाँ) स्वयं जायें और दर्शन करें। (इससे) आप का कल्याण होगा" ॥६१-६७॥

---

१. 'त्वत्तो वै शङ्कर प्रभो' इति 'ख'—पुस्तके । २. 'ऋषिसत्तमाः' इति 'ख'—पुस्तके ।
३. 'तथेतरेषु खण्डेषु द्वीपेषु च सरित्सु च । वसामि नाऽत्र सन्देहः समुद्रेषु नदेषु च ॥" इत्यधिकः 'ख' पुस्तके ।
४. 'द्विजसत्तम' इति 'ख'—पुस्तके । ५. 'यत्र मे पूज्यते देवैः शिरांसि' इति 'ख'—पुस्तके ।
६. 'तया' इति 'ख'—पुस्तके पाठः ।
७. 'श्रेयमाप्नुहि'—इति 'ख'—पुस्तके पाठः । मूलस्थः पाठ एव युक्ततरः ।

व्यास उवाच—

ततः शिवस्य वचनात् गत्वा[1] देवेश्वरं हरम्। जगामोत्तरमार्गेण हिमाद्रिदर्शितेन च ॥६८॥
पुण्यं सरोवरं नाम जम्बूवृक्षफलोद्भवम्। सेवितं पुष्पदन्ताद्यैर्गन्धर्वैर्वल्लकीयुतैः ॥६९॥
दृष्ट्वा सरोवरं विप्रास्तथान्याँश्च सरोवरान्। शिवलिंगान्वितान्कांश्चित्कांश्चिद्विष्णुसमन्वितान् ॥७०॥
ततो जगाम स ऋषिः शुद्धं केदारमण्डलम्। गुहाभिश्चातिपुण्याभिः शोभितं सुमनोहरम् ॥७१॥
नरनारायणाभ्यां च गिरिभ्यां समलंकृतम्। पूतं हि विष्णुपादाभ्यां सिक्तं मन्दाकिनीजलैः ॥७२॥
सम्पूज्य बदरीशं तं नारदादिसमन्वितम्। श्रिया जुष्टं मणियुतं पार्षदैश्चापि शोभितम्[2] ॥७३॥
तथा केदारसंज्ञं वै सम्पूज्य च पुनः पुनः। पुनर्जगाम विप्रर्षे[3] हिमाद्रिभवनं प्रति ॥७४॥
ततस्तं दर्शयामास आकराणि बहून्यपि। स्वर्णान्वितानि साराणि गैरिकैः शोभितानि च ॥७५॥
तत्र दृष्ट्वा सुपुण्यानि हिमाद्रिदर्शितानि च। शिरांसि देवदेवस्य सेवितान्यप्सरोगणैः ॥७६॥
सम्पूज्य तानि राजर्षे हिमाद्रिप्रतिपूजितः। दृष्ट्वा सर्वाणि तीर्थानि भुवि पातालगानि च ॥७७॥
इमां गाथामगायद् वै दत्तात्रेयो महातपाः। लोकसम्पूजितो योगी धर्माख्यानसमन्विताम् ॥७८॥

अहो हिमाद्रेर्महिमानमद्भुतं, दृष्टं मया पुण्यगुहासु शोभितम्।
यासु सुपुण्यासु महेन्द्रपूजितो विराजते देवपतिः स शंकरः ॥७९॥

वेदव्यास ने कहा—तब शिव के कहने से देवेश्वर हर के पास जाकर हिमाचल के दिखाये हुए उत्तर मार्ग से वीणा बजाते हुए पुष्पदन्त आदि गन्धर्वों से सेवित, फलों से लदे हुए जामुन के वृक्षों से संकुलित पुण्य सरोवर को गए। हे ब्राह्मणों! उस सरोवर को तथा अन्य सरोवरों को, जिनमें से कुछ तो शिवलिङ्गों से तथा कुछ विष्णु भगवान् से समर्चित हैं, दत्त ने जाकर देखा। तब वह ऋषि (दत्तात्रेय) पुण्यशील गुफाओं से शोभित एवं सुन्दर पवित्र केदार-मण्डल की ओर चले। वह केदारमण्डल नर-नारायण पर्वतों से शोभित एवं विष्णु के चरणों से पवित्र तथा मन्दाकिनी के जल से सिञ्चित है। वहाँ नारद आदि ऋषियों से समन्वित, लक्ष्मी से सेवित, पार्षदों से शोभायमान, हीरा आदि मणियों को धारण किये हुए भगवान् बदरीश की पूजा कर तथा बार-बार केदारनाथ के पूजन करने के पश्चात् दत्तात्रेय फिर हिमाचल के घर को गए। तब (हिमाचल ने) दत्तात्रेय को—सोने की खानों सहित, लोहे तथा गेरू की खानों से शोभित—बहुत सी खानें दिखाईं। वहाँ अप्सराओं से सेवित, हिमाद्रि द्वारा प्रदर्शित, भगवान् शंकर के सिरों को देख कर तथा उनकी पूजा करने के पश्चात्, हे राजर्षे! हिमाचल द्वारा सम्मानित हो, पृथिवी तथा पाताल के सभी तीर्थों को देखा। तब महान् तपस्वी एवं लोक में पूजित दत्तात्रेय ने धर्मोपदेश से परिपूर्ण गाथा द्वारा इस प्रकार प्रशंसा की—"अहो! पवित्र गुफाओं से शोभित हिमाचल की महिमा को मैंने देखा। इन गुफाओं में इन्द्र से सम्पूजित देवाधिदेव भगवान् शंकर विराजमान हैं"। तदनन्तर, हे राजर्षे! महायोगी

---

१. 'नत्वा' इति 'ख'-पुस्तके। २. 'सेवितम्'-इति 'ख' पुस्तके पाठः।
३. 'राजर्षे'-इति 'ख'-पुस्तके पाठः।

प्रत्याजगाम राजर्षे काशीं काशीशशोभिताम्[1] । विश्वेश्वरस्य लिङ्गेन पूतां दुष्कृततारिणीम् ॥८०॥
इदं पवित्रं परमं रहस्यं हिमाद्रिणा दत्तपथे प्रकाशितम् ।
शृण्वन्ति ये शङ्करवाचयुक्तं[2] व्रजन्ति ते ब्रह्मपदं प्रशान्तम् ॥८१॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे हिमाद्रिचरितं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥

दत्तात्रेय—विश्वनाथ के लिङ्ग से पवित्र की हुई, पापियों को तारने वाली तथा काशिराज से सुशोभित—काशी नगरी को लौट आये। परमपवित्र एवं गोपनीय इस रहस्य को हिमाचल ने दत्तात्रेय का मार्गदर्शन करते समय प्रकाशित किया था। (अतः) भगवान् शंकर की वाणी से समन्वित इस कथानक को जो लोग सुनते हैं, वे शान्त-भाव से ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥६८-८१॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में हिमाद्रिचरित नामक सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

—: ❀ :—

---

१. "एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि । तत्र तेन नरा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीडिताः । दयार्द्रहृदयः शक्रो धन्वन्तरिमुवाच ह । तस्मात् त्वं पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव ॥ नाम्ना तु सोऽभवत् ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ । यत्नेन महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोन्नृपम् ॥ ततो धन्वन्तरिर्लोकैः काशीराजोऽभिधीयते । हिताय देहिनां स्वीया संहिता विहितामुना ॥" भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डे एते श्लोकाः सन्ति । तथा च विष्णुपुराणे (४।८।२-५)—"काशस्य काशिराजः । तस्य दीर्घतमाः पुत्रोऽभूत् । धन्वन्तरिस्तु दीर्घतमसोऽभूत् । भगवता नारायणेन च अतीतसम्भूतौ तस्मै वरो दत्तः । काशिराजगोत्रेऽवतीर्य त्वमष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि । यज्ञभाक् त्वं भविष्यसि । तस्य च धन्वन्तरेः पुत्रः केतुमान् । केतुमतो भीमरथः । तस्यापि दिवोदासः ।"

२. 'शंकरवाणियुक्तम्'—इति 'ख'—पुस्तके । मूलपाठे छन्दोभङ्गभिया 'वाचयुक्तम्' इति प्रयोगः आर्षत्वात् समाधेयः ।

व्यास उवाच—

दत्तं समागतं श्रुत्वा काशिराजसुतो बली । प्रत्याजगाम वै विप्रा दृष्टतीर्थं तपोनिधिम् ॥ १ ॥
धन्वन्तरीति विख्यातो देवब्राह्मणपूजकः । पूजयामास तं योगी तीर्थपूतं हरिं प्रभुम् ॥ २ ॥
अभिषिक्तानि राजर्षे काशिराजपदे शुभे । ददौ तमासनं शुभ्रं भोजयामास वै तया ॥ ३ ॥
स तेन पूजितो राजन् चोपविष्टः सुखासने । स तस्मैऽनामयं[1] सर्वमपृच्छद् योगिवल्लभः ॥ ४ ॥
तेन पृष्टः स राजर्षिर्वचनं तमुवाच ह । तव प्रसादाद्योगीश ! भव्यं मे समुपस्थितम् ॥ ५ ॥
वदन्ति मुनयः सर्वे वसिष्ठाद्यास्तपोनिधे । राज्ञां चोत्तमवंश्यानां ब्रह्मायत्ता हि सम्पदः ॥ ६ ॥
त्वयि योगीश्वरे योगिन् ध्यानमार्गगते प्रभो । सम्पदः सुखभोज्या वै न जाता विपदः क्वचित् ॥ ७ ॥
त्वया दृष्टानि वै ब्रह्मन् तीर्थानि विविधानि च । सरित्सरांसि स्थानानि वाराणस्यादिकानि च ॥ ८ ॥
त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि यद्यनुग्राह्यसि प्रभो । ख्यातं योगपथैर्युक्तम् अवतीर्णं दिवादिह ॥ ९ ॥

दत्त उवाच—

पृच्छस्व राजशार्दूल अपि गुह्यं वदामि ते । ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥१०॥

धन्वन्तरिरुवाच—

पृच्छामि ऋषिशार्दूल ! कानि तीर्थानि सन्ति वै । पवित्राणि सुपुण्यानि के दृष्टानि[2] त्वयाधुना ॥११॥

व्यास ने कहा—दत्तात्रेय को वापस आया सुनकर, हे विप्रवर्ग ! काशिराज के पराक्रमी पुत्र ने तीर्थों का दर्शन कर लौटे हुए तपस्वी दत्तात्रेय का स्वागत किया। देव और ब्राह्मणों के पूजक प्रख्यात राजा धन्वन्तरि ने तीर्थों के दर्शन से पवित्र तथा विष्णु के अवतार-स्वरूप महामना दत्तात्रेय की पूजा की। हे राजर्षे ! काशिराज के शुभ स्थान पर उनका अभिषेक किया गया तथा उन्हें शुभ्र आसन पर बैठा कर भोजन कराया। हे राजन् ! धन्वन्तरि से पूजित अच्छे आसन पर बैठ कर योगिश्रेष्ठ दत्तात्रेय ने कुशल-वार्ता पूछी। उनसे इस तरह पूछे जाने पर राजर्षि ने दत्तात्रेय से यह कहा—'हे योगीश ! आपकी कृपा से मेरा कल्याण हुआ है'। हे तपोनिधे ! वसिष्ठ आदि मुनिजनों का यह कथन है कि कुलीन राजाओं की सम्पत्ति देवाधीन हो जाती है। हे योगिन् ! आप के सदृश योगीश्वर के ध्यानस्थ होने पर महात्माओं के दर्शन से संपत्तियाँ सुख से भोगी जाती हैं तथा विपत्तियाँ नहीं आतीं।' हे ब्रह्मन् ! आप ने अनेक तीर्थ, नदियाँ, सरोवर तथा वाराणसी आदि अनेक पुण्यस्थल देखे हैं। यदि आप मुझे पर अनुग्रह करते हैं तो मैं आप से, हे प्रभो ! कुछ पूछना चाहता हूँ, क्यों कि आप यहाँ योगमार्ग द्वारा स्वर्ग से अवतीर्ण हुए हैं ॥१-९॥

दत्तात्रेय ने कहा—हे राजसिंह ! आप पूछें। मैं आप से गोप्य विषय भी कहूँगा, क्यों कि स्नेही शिष्य से गुरुजन रहस्यात्मक बातें भी कह देते हैं ॥१०॥

---

१. पररूपसन्धिः आर्षः ।
२. 'कीदृशानि' इति 'ख'-पुस्तके पाठः । मूलपाठे अक्षराधिक्यं वर्तते ।

केन तीर्थेन वै विप्र सुलभा दैवसम्पदः । कथयस्व महाभाग ! मयि त्वत्पादवर्तिनि ॥१२॥

दत्त उवाच—

साधु साधु महाभाग ! कथयामि न संशयः । त्वत्समा न हि राजानः प्रजाभिस्त्वाप्यलङ्कृताः ॥१३॥
येन त्वया महाराज ! पुण्या वाराणसी पुरी । शासिता नीतियुक्तेन कोऽन्यस्त्वत्तो नरेश्वरः ॥१४॥
किमन्यानीह तीर्थानि प्राप्य वाराणसीं पुरीम् । पृच्छसि त्वं महाराज कायक्लेशकराणि च ॥१५॥
काशीसमानि तीर्थानि कोटि-कोटि-शतानि च । न सन्ति नृपशार्दूल सत्यं सत्यं वदामि ते ॥१६॥
अहं काशीं गमिष्यामि वसामि शिवसन्निधौ । यो ब्रूते स लभेद्राजन् शिवसायुज्यतां शुभाम् ॥१७॥
तस्मात् काशीं परित्यज्य किमन्यत् पृच्छसि प्रभो । यत्र कीटपतङ्गाद्या मृताः शिवपुरं प्रति ॥१८॥
व्रजन्ति राजशार्दूल ! त्यक्त्वा चेन्द्रपदं शुभम् । यत्र विश्वेश्वरो देवो जागर्ति मनुजेश्वर ॥१९॥
तस्मान्नान्यं[1] तथा स्थानं नास्ति लोकेषु त्रिष्वपि । यत्र विष्णुपदोद्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥२०॥
दृश्यते राजशार्दूल ! कालेषु त्रिष्वपि प्रभो[2] । तस्मान्नान्यं परं स्थलं[3] पश्यामि भुवनत्रये ॥२१॥
निश्चलो भव राजर्षे स्थित्वा काशीं शिवप्रियाम् ॥२२॥

धन्वन्तरि बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ ! वे कौन से पवित्र एवं पुण्यजनक तीर्थ हैं, जिन्हें सम्प्रति आपने देखा है, उन्हीं के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा है। हे महाभाग ! आप बतायें कि किस तीर्थ (के दर्शन) से दैवी-सम्पत् सहज सुलभ है ? (इस सम्बन्ध में) आप अपने चरणों पर बैठे हुए मुझसे कहें। ॥११-१२॥

दत्तात्रेय ने कहा—हे महाभाग ! निःसन्देह तुम धन्य हो। मैं तुम्हें बतलाता हूँ। प्रजा-जन से संमानित अन्य राजा तुम्हारी समता नहीं कर सकते। कारण यह है कि, हे महाराज ! आपने इस पवित्र काशी नगरी का नीति के साथ शासन किया है। अतः आप से बढ़कर और कौन हो सकता है ? वाराणसी नगरी को प्राप्त कर इस भूमण्डल में और तीर्थों का क्या प्रयोजन है ? हे महाराज ! (दूसरे तीर्थ) केवल शरीर के कष्टदायक मात्र हैं। अतः उनके बारे में आप क्यों पूछते हैं ? मैं आप से यह कहता हूँ कि काशी की समता में, हे राजन् ! सैकड़ों-करोड़ों तीर्थ, कुछ भी नहीं। मैं काशी जाऊँगा और भगवान् शंकर के निकट वास करूँगा—इस प्रकार जो कहता है, वह शिव-स्वरूप हो जाता है। हे प्रभो ! इसलिये काशी को छोड़कर और किसी के विषय में क्यों पूछते हैं ? वहाँ तो मरने पर कीड़े-मकोड़े आदि भी इन्द्रलोक का परित्याग कर शिवलोक प्राप्त करते हैं। हे नृपते ! वहाँ पर विश्वनाथ सदा जागरूक हैं। अतः तीनों लोकों में वैसा कोई स्थान नहीं है। वहाँ विष्णु के चरणों से उद्भूत तीनों लोकों में बहने वाली गङ्गा तीनों कालों में व्याप्त रहती हैं। इस हेतु तीनों लोकों में काशी के समान दूसरा तीर्थ कोई नहीं है। हे राजन् ! भगवान् शंकर की प्रिय काशी नगरी में तुम स्थित होकर निश्चल रहो ॥१३-२२॥

---

१. 'तस्मान्नान्यतमं स्थानम्' इति 'ख'-पुस्तके पाठः। २. 'तथा' इति 'ख'-पुस्तके।
३. 'तस्मान्नान्यं स्थलं दिव्यम्' इति 'ख'-पुस्तके। अयं पाठः युक्ततरः।

व्यास उवाच—

ऋषेर्वाचं समाकर्ण्य स राजा स्वस्थमानसः। पुनर्योगीश्वरं दत्तम् उवाच वदतांवरः ॥२३॥

धन्वन्तरिरुवाच—

सत्यमुक्तं महायोगिन्! भवता नाऽत्र संशयः। काशीसमानि तीर्थानि नास्त्यन्यानि[1] मया श्रुतम् ॥२४॥
तथापि त्वां च पृच्छामि योगीशं योगिसत्तमम्। काशीसमं तदधिकं कथयस्व द्विजोत्तम ॥२५॥
यत्रेहलोकादमृतं प्राप्यते स्वर्गमेव हि। यं दृष्ट्वा मानुषेणैव देहेन द्विजसत्तम ॥२६॥
प्राप्यते विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्। तमहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो वै नात्र संशयः ॥२७॥
दुर्लभं मानुषं देहं स्मरामि द्विजसत्तम। मानुषेणैव देहेन यथाऽहं स्वर्गमाप्नुयाम् ॥२८॥
वदन्ति पूर्वे राजानो देहेनैवामुना गुरो। प्राप्तास्ते केन मार्गेण कथयस्व न संशयः ॥२९॥

दत्त उवाच—

धन्योऽसि नृपशार्दूल यत्त्वं मुक्तिमिहेच्छसि। दुष्प्राप्याम् ऋषिभिश्चापि तथाऽन्यैर्देवतागणैः ॥३०॥
मुक्तिं सुदुर्लभां मन्ये शृणु राजर्षिसत्तम। अदृष्ट्वा हिमसंसिक्तं हिमाद्रिं गिरिजागुरुम् ॥३१॥
यं स्मृत्वा हिमसंयुक्तं काशीवाससमं फलम्। प्राप्यते राजशार्दूल योजनायुतदूरतः ॥३२॥
हिमाद्रिसदृशं पुण्यं स्थलं भूमण्डले क्वचित्। नास्ति नास्ति महाराज सत्यं सत्यं वदामि ते ॥३३॥
हिमं हिममिति ब्रूयाद् योजनायुतदूरतः[2]। सर्वपापैर्विमुच्येत विष्णुसायुज्यमश्नुते ॥३४॥
अपि कीटपतङ्गाद्या हिमवति म्रियन्ति ये[3]। वसन्ति[4] विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३५॥

व्यास ने कहा—ऋषि (दत्तात्रेय) की वाणी को सुनकर धन्वन्तरि बड़े प्रसन्न हुए तथा योगीश्वर दत्त के प्रति उनकी सुन्दर वाणी पुनः मुखरित हुई ॥२३॥

धन्वन्तरि बोले—हे महायोगिन्! काशी के समान अन्य तीर्थ कोई नहीं है—आपने यह सत्य कहा, इसमें कोई सन्देह नहीं। यह तो मैंने सुना, तथापि मैं आप के समान श्रेष्ठ योगी से यह भी जानना चाहता हूँ कि काशी के समान अथवा उससे अधिक (महत्त्वपूर्ण) क्या कोई दूसरा तीर्थ है, यहाँ से जाने पर जहाँ अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति हो? अथवा जिसका दर्शन मात्र करने से ही, हे विप्रवर! पुनरागमनरहित विष्णुलोक की प्राप्ति हो सके? मैं बस यही सोचता हूँ कि बार-बार मनुष्य-जन्म मिलना तो कठिन है, फिर भी मैं सदेह स्वर्ग कैसे प्राप्त करूँ? हे गुरुवर! पहले के अनेक राजा सदेह स्वर्ग को गए हैं—ऐसा कहा जाता है। उन्होंने किस मार्ग से स्वर्ग प्राप्त किया—इसे आप स्पष्टतया बतलायें ॥२४-२८॥

दत्तात्रेय ने उत्तर दिया—हे नृपशार्दूल! आप धन्य हो, आप ऐसी मुक्ति के इच्छुक हैं, जो ऋषियों और देवगणों को भी कठिनाई से मिलती हैं। तथापि, हे राजर्षे! आप मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनें। "हिमकणों से अभिषिक्त, गिरजा के पिता एवं हिम से परिपूर्ण हिमाचल को विना देखे हुए भी, (अधिक क्या कहें) दस हजार योजनों की दूरी से भी केवल उसका स्मरण करने से, काशीवास के समान फल मिलता है। हे महाराज! यह मैं सत्य कहता हूँ

---

१. 'न सन्तो'त्यपेक्ष्यते।
२. 'योजनायुतदूरगः' इति 'ख'—पुस्तके पाठः।
३. 'हिमं श्रुत्वा म्रियन्ति ये' इति 'ख' पुस्तके।
४. 'व्रजन्ति विष्णुभुवनम्' इति 'ख'—पुस्तके।

तस्माच्च ऋषिशार्दूलाः ! प्राणत्याग उपस्थिते । स्मरणीयं हिममिति हिममेव न संशयः ॥३६॥
यस्मिन् देशे हिमं नास्ति वक्तव्यं हि हिमम् हिमम् । प्राणत्यागे समुत्पन्ने प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥३७॥
दर्शनात् स्मरणाद् ध्यानात् हिमस्य नृपसत्तम । प्राप्यते विष्णुभवनं[१] सेवितं नारदादिभिः ॥३८॥
पुण्यं वक्तुं महाराज ! हिमाद्रिदर्शनोद्भवम् । अहमप्यसमर्थोऽस्मि दिव्यैर्वर्षशतैरपि ॥३९॥
हिमाद्रिपथमालम्ब्य राजानः सत्यसंज्ञके । युगे देहेन पुण्येन गता विष्णुगृहं प्रति ॥४०॥
यत्र वै शिवलिङ्गं वै पतितं नृपसत्तम । यत्र विष्णुपदोद्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥४१॥
मृणालतन्तुसदृशी पतिता सा चतुर्विधा । तस्माद्धिमाद्रिसदृशं स्थलं भूमण्डले क्वचित् ॥४२॥
नास्ति नास्ति महाराज ! तथ्यं ते कथयाम्यहम् । यत्र वै देवदेवस्य शंकरस्य शिरांसि हि ॥४३॥
हिमसीकरसिक्तानि दृश्यन्ते नृपसत्तम । दृश्यन्ते राजशार्दूल ! स्थलेषु च जलेषु च ॥४४॥
गह्वरेषु च पुण्येषु शिवलिङ्गान्वितो गिरिः । हिमाद्रिसदृशाः सर्वे न सन्ति गिरयो नृप ॥४५॥
विन्ध्याद्या मलयाद्याश्च[२] नदीभिश्चापि सेविताः । खण्डैर्बहुविधैर्युक्तो हिमाद्रिः पुण्यलक्षणः ॥४६॥
दृश्यते राजशार्दूल सरोभिः समलंकृतः । तत्राप्येकं गुह्यतमं कथयामि नृपोत्तम ॥४७॥
गिरिणा दर्शितं मह्यं मानसाख्यं सरोवरम् । यत्र हंसस्वरूपेण जागर्ति शङ्करः स्वयम् ॥४८॥
ब्रह्मणा निर्मितेनापि सरसा परिसेवितम् । तस्मादन्यतमं स्थानं त्रिषु लोकेषु वै नृप ॥४९॥
पुण्यं पुण्यजलैर्युक्तं[३] सेवितं शिवकिङ्करैः । यस्मात् पुण्या महानद्यो गङ्गाद्या नृपसत्तम ॥५०॥

कि हिमाचल के समान पवित्र स्थान भूमण्डल में कहीं नहीं है । दस हजार योजनों की दूरी से भी 'हिम' शब्द का उच्चारण करने से प्राणी सब पापों से विमुक्त हो विष्णु-स्वरूप हो जाता है । कीड़े-मकोड़े आदि भी हिमाचल में मरने पर पुनरागमनरहित विष्णु-लोक में वास करते हैं । इसलिए, हे ऋषिगण ! मृत्युकाल उपस्थित होने पर 'हिम' का स्मरण करना चाहिये । जिस स्थान में हिम नहीं है, वहाँ भी प्राणत्याग के समय कण्ठगत प्राणों से 'हिम' का स्मरण (उच्चारण) करना चाहिये । हे राजश्रेष्ठ ! हिम के दर्शन, स्मरण और ध्यान से, नारद आदि ऋषियों से सेवित विष्णुलोक प्राप्त होता है । हिमाचल के दर्शन से उत्पन्न हुए पुण्य का वर्णन, हे महाराज ! मैं देवताओं के सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता ।" सत्ययुग में अनेक राजा हिमालय के मार्ग का अवलम्बन कर पुण्य-शरीर से विष्णुलोक को गए । जिस हिमालय पर विष्णु-चरणों से निकली हुई त्रिपथगा गंगा कमल-नाल के डोरों की तरह (पतली धारा से) चार भागों में विभक्त हुई हैं—अतः उस हिमाचल के समान दूसरा स्थल इस भूमण्डल में नहीं है । हे महाराज ! इस सत्य को मैं आप से कह रहा हूँ । जहाँ पर हिम-कणों से सिक्त देवाधिदेव शंकर के सिर,[४] हे नृपश्रेष्ठ ! स्थल-जल-गह्वर आदि में सर्वत्र दिखाई देते हैं—इस प्रकार शिवलिङ्गों से युक्त हिमालय पर्वत है । हे राजन् ! नदियों से सेवित विन्ध्य-मलय आदि अन्य पर्वत हिमाचल की समता नहीं कर सकते । हे नृपश्रेष्ठ ! पुण्यजनक हिमाचल तो अनेक खण्डों एवं सरोवरों से अलंकृत (सुशोभित) दिखाई देता है । तो भी, हे नृपश्रेष्ठ ! मैं आप से एक रहस्यात्मक बात कहता हूँ । वह रहस्य मुझे हिमाचल ने 'मानस' नामक सरोवर के रूप में प्रकाशित किया है । वहाँ राजहंस के रूप में भगवान् शिव स्वयं विराजमान

---

१. 'विष्णुभुवनम्' इति 'ख'—पुस्तके । २. 'विन्ध्याद्या मलययुता' इति 'ख'—पुस्तके ।
३. 'पुण्यापुण्यजलैर्युक्तम्' इति 'ख'—पुस्तके पाठः । ४. पञ्चचूली—पञ्चूली शिखर ।

सरय्वाद्यास्तथा पुण्याः सम्भूताः[1] सरितां वराः। नदानां च नदोनां च यमाद्यं प्रवदन्ति हि ॥५१॥
तन्मानसं[2] महत्तीर्थं जानीहि नृपसत्तम। यं स्मृत्वा योगिनः सर्वे ध्रुवाद्या नारदादयः ॥५२॥
संप्राप्ता विष्णुभवनं मार्कण्डेयादिसंस्तुतम्। यं दृष्ट्वा ऋषयः सर्वे तथा वेण्यादयो नृपाः ॥५३॥
कलेवरेण स्वेनापि प्राप्ता विष्णुगृहं प्रति। न पश्यामि महाभाग त्रैलोक्ये मानसं समम् ॥५४॥
तीर्थं भवादिसंयुक्तं विष्णुपादाङ्कितं तथा। भवन्ति मानवा राजन्! यत्र मृत्तिकालेपनात्[3] ॥५५॥
देवदेहा देवपूज्याः सेव्यमानाप्सरोगणैः। यत्र स्नात्वा महाराज त्यक्त्वा देहं हि मानुषम् ॥५६॥
भवन्ति ब्रह्मभवने ब्रह्मर्षिगणसेविताः। जलपानान्महाराज प्राप्यते[4] शाङ्करं पदम् ॥५७॥
भवन्ति ते शिवगणाः शिवकन्यानिषेविताः[5]। सरोवरजलं राजन् कणमात्रं स्पृशन्ति ये ॥५८॥
शतजन्मार्जितं पापं नाशयन्ति न संशयः। पुण्यं मानसतीर्थं[6] वै कृमिकीटादयोऽपि हि ॥५९॥
भुक्त्वा[7] ब्रह्मपदं शुद्धं व्रजन्ति नृपसत्तम। प्राप्य वै मानसीं भूमिं मर्तुमिच्छन्ति ये जनाः ॥६०॥
ते वै विमानमारुह्य व्रजन्ति ब्रह्मणः पदम्। हिमसीकरसंसिक्ते जले यः स्नाति मानवः ॥६१॥
स गङ्गास्नानसदृशं फलमाप्नोति मानवः। किमु मानसतीर्थस्य वर्णनं नृपसत्तम ॥६२॥

हैं। (इसके साथ ही) वे वहाँ ब्रह्मा द्वारा निर्मित सरोवर से सेवित भी हैं। अतः तीनों लोकों में, हे राजन्! उससे श्रेष्ठ कोई स्थान नहीं है। वह स्थान स्वयं पावन होते हुए भी पावन-जल-समुदाय तथा शिव के सेवकों से समायुक्त है। जहाँ से, हे राजन्! गंगा, सरयू आदि महानदियाँ तथा अन्य श्रेष्ठ नदियाँ निकली हैं। वही नद और नदियों का प्रमुख उद्गम-स्थल है। हे राजन्! आप उस मानसरोवर को महातीर्थ जानें। जिसका स्मरण कर—बड़े-बड़े योगी तथा ध्रुव-नारद आदि भक्तगणों ने—मार्कण्डेय आदि ऋषियों से संस्तुत—विष्णुलोक प्राप्त किया। जिसका दर्शन कर, ऋषिगण तथा वेण के पुत्र पृथु आदि सशरीर विष्णुलोक पहुँचे। हे महाभाग! मुझे मानसरोवर के समान तीनों लोकों में कोई ऐसा दूसरा तीर्थ नहीं दिखाई पड़ता, जो शिव आदि देवों से संयुक्त तथा विष्णु के चरणों से अङ्कित हो। हे राजन्! जहाँ की मिट्टी (बालू) का शरीर पर लेप करने से (मानव) अप्सराओं से सेवित देवशरीरधारी एवं देवताओं से पूज्य हो जाते हैं। हे महाराज! जहाँ स्नान करने से शरीर त्याग करने पर मानव ब्रह्मर्षिगणों से सेवित ब्रह्मलोक में वास करते हैं। हे महाराज! मानसरोवर का केवल जल पीने से प्राणिवर्ग—शिवलोक प्राप्त कर, शिव-कन्याओं से सेवित शिवगणों का रूप धारण करते हैं। हे राजन्! जो मानसरोवर का जल-कण मात्र स्पर्श कर लेते हैं, वे अपने सैकड़ों जन्मों के पापों से छुटकारा पा जाते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! पावन मानस-तीर्थ के कृमि-कीट आदि भी वहाँ उपभोग करने के उपरान्त विशुद्ध ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। (इसके अतिरिक्त) जो लोग मानसरोवर में पहुँच कर शरीर-त्याग करना चाहते हैं, वे विमान पर चढ़कर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हिमकणों से सिक्त जल में जो मानव स्नान करता है, उसे गङ्गास्नान के समान फल मिलता है। हे नृपश्रेष्ठ! मैं कहाँ तक मानस-तीर्थ का वर्णन करूँ।

---

१. 'पुण्यसंभूताः' इति 'ख'—पुस्तके। २. 'तं मानसम्' इति 'ख'—पुस्तके।
३. 'यस्य मृत्तिकलेपनात्' इति 'ख'—पुस्तके। ४. 'प्राप्य वै' इति 'ख' पुस्तके पाठः।
५. 'शिवकन्याभिसेविताः' इति 'ख' पुस्तके। ६. 'मानसनाम वै' इति 'ख'—पुस्तके।
७. 'श्रुत्वा' इति 'ख' पुस्तके।

वक्तुं वर्षशतैर्वापि न समर्थोऽस्मि नान्यथा। मुक्ताफलसमं तोयं दृश्यते नृपसत्तम ॥६३॥
ताम्रधातुसमं यत्र सिकताकारमुत्तमम्[1]। मानससदृशं क्षेत्रं विष्णुलोकेषु[2] वै नृप ॥६४॥
नासत्यं हि मया प्रोक्तं[3] जानीहि नृपसत्तम। तस्माद् हिमाद्रिसदृशा न सन्ति गिरयो नृप ॥६५॥
यत्र कैलासशिखरं यत्र वै मानसं सरः। स्मृत्वा हिमाद्रिशिखरं राजानस्तु कृते युगे ॥६६॥
गत्वा स्वेनैव देहेन गता ब्रह्मपदं प्रति। हिमाद्रिसदृशा नान्ये गिरयः सन्ति वै नृप ॥६७॥
यत्र वै रुद्रदेवस्य विराजन्ते शिरांसि हि। यस्य कक्षे महाराज शिवलिङ्गं तथाऽच्युतम् ॥६८॥
पूजितं देवगन्धर्वैर्ब्रह्माद्यै ऋषिभिस्तथा। यत्र सुप्तः शिवः साक्षाद् भवान्या सह वै नृप ॥६९॥
घण्टाकर्णादिभिश्चान्यैः पार्षदैः सुविराजितः। यत्र केदारमार्गेण योगभ्रष्टा हि योगिनः ॥७०॥
प्राप्योत्तरगिरिं राजन् शिवलिङ्गत्वतां गताः। हिमदर्शनजं पुण्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥७१॥
न शक्नोमि महाराज ! किमु तत्पूजनं शुभम्। हिमाद्रिमूलं संस्पृश्य पदमात्रादपि प्रभो ॥७२॥
विलीयन्ते हि पापानि हिमवद् भास्करोदये। हिमाधिक्यगतां[4] भूमिं दृष्ट्वा राजर्षिसत्तम ॥७३॥
अपि कीटपतङ्गाद्या व्रजन्ति ब्रह्मणः पदम्। संस्पृश्य नृपशार्दूल हिमाद्रिं पर्वतोत्तमम् ॥७४॥
व्याधाः किराताः पापिष्ठा गता ब्रह्मपदं प्रति। शिखराणां हि माहात्म्यं वक्तुं राजर्षिसत्तम ॥७५॥
स्वयमेव हरः साक्षान्न शक्नोति न संशयः। को हि मानसक्षेत्रस्य ब्रह्मणा रचितस्य च ॥७६॥
शिवलिङ्गान्वितस्यापि गाङ्गेयैः पूरितस्य च। माहात्म्यं कथितुं राजन् स्वयमेव शतक्रतुः ॥७७॥

सैकड़ों वर्षों में भी वह वर्णन सम्भव नहीं, इसे आप सत्य जानें। हे नृपश्रेष्ठ ! वहाँ का जल मोती की तरह चमकता हुआ दिखाई पड़ता है। वहाँ के सिकताकण उत्तम ताँबे के समान चमकीले हैं। हे राजन् ! मानस तीर्थ के समान तीनों लोको में दूसरा तीर्थ कोई नहीं है—यह बात मैंने सत्य कही है—इसे आप समझें। हे राजन् ! जहाँ कैलास-पर्वत तथा मानसरोवर स्थित हैं—उस हिमाचल की समता अन्य पर्वत नहीं कर सकते। सत्ययुग में अनेक राजा उसका स्मरण करते हुए वहाँ जाने पर सदेह ब्रह्मलोक पहुँचे। हे राजन् ! हिमाचल के समान ऐसा कोई अन्य पर्वत नहीं है, जहाँ भगवान् शंकर के सिर विराजमान हों। जिस हिमालय की कोख (कक्ष) में, हे महाराज ! शिव तथा विष्णु—दोनों ही—ब्रह्मा आदि देवगणों, गन्धर्वों तथा ऋषियों से सुपूजित हैं। जहाँ पार्वती-समेत घण्टाकर्ण आदि पार्षदों से समन्वित हो साक्षात् भगवान् शिव शयन करते हैं। जहाँ केदारमार्ग से योगभ्रष्ट योगी लोग, उत्तर-पर्वत को प्राप्त कर, शिवलिङ्गस्वरूप हो गए। हे महाराज ! हिम-दर्शन-जन्य पुण्य को सैकड़ों वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता। हे राजन् ! उसके पूजन के विषय में क्या कहा जाय ? हे महाराज ! हिमाचल के मूल पर पैर पड़ने से ही, सूर्योदय के होते ही हिम के पिघलने के समान, लोगों के पाप विलीन हो जाते हैं। हे नृपश्रेष्ठ ! हिम से परिपूर्ण स्थान को देखकर कीट-पतङ्ग आदि भी ब्रह्म पद प्राप्त करते हैं। हे राजसिंह ! पर्वतश्रेष्ठ हिमाचल का स्पर्श कर, किरात तथा पापाचरणशील व्याध आदि भी ब्रह्मलोक में जाते हैं। हे नृपश्रेष्ठ ! हिमालय

---

१. 'सिकतासारमुत्तमम्' इति 'ख' पुस्तके।
२. 'त्रिषु लोकेषु वै नृप' इति 'ख' पुस्तके। अयमेव पाठः समीचीनः।
३. 'नास्ति सत्यं मया प्रोक्तम्' इति 'ख'—पुस्तके।
४. 'हिमाधित्यगतां भूमिम्' इति 'ख'—पुस्तके पाठः।

बृहस्पतियुतः साक्षात् न शक्नोति न संशयः । यं ब्रह्मा रचयामास मनसा मानसं सरम्[1] ॥७८॥
माहात्म्यं तस्य कथितुं न शक्नोमि नरेश्वर । यस्य पूर्णैर्जलै राजन् जाताः सर्वाः सरिद्वराः ॥७९॥
गङ्गाद्या वेरिकान्ताश्च तथा पूर्णसरोवराः । यत्र पुण्यं तपस्तप्त्वा राजन् राजा भगीरथः ॥८०॥
आनयामास वै गङ्गां रथमार्गे न संशयः । यस्मात् पुण्या सरित् श्रेष्ठा सरयूर्लोकपावनी[2] ॥८१॥
वसिष्ठादिष्टमार्गेण सम्भूता नृपसत्तम । यस्मात् सुपुण्यदा नद्यो जाता वान्या नरोत्तम ॥८२॥
नानाविधैः पक्षिगणैर्मत्स्याद्यैरपि शोभिताः । यस्य नाम्ना च राजर्षे मानसः खण्ड उच्यते ॥८३॥
तावत् खण्डं महाराज पूरितं मानसैर्जलैः । तस्य खण्डस्य मध्ये च मानसाख्यस्य वै तथा ॥८४॥
हिमाद्रिशिखराः पञ्च दृश्यन्ते नृपसत्तम । तेभ्यो भागो हि विज्ञेयः खण्डानां नृपसत्तम ॥८५॥

इति श्री मानसखण्डे स्कन्दपुराणे हिमाद्रौ मानसवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ।

के शिखरों का माहात्म्य वर्णन करने में भगवान् शंकर भी समर्थ नहीं है—इसमें कोई सन्देह नहीं । हे राजन् ! ब्रह्मा-द्वारा रचित, शिवलिङ्गों से समन्वित तथा गङ्गा-जल से पूरित मानस-क्षेत्र का वर्णन करने में सुरगुरु बृहस्पति-सहित देवराज इन्द्र भी असमर्थ हैं । हे राजन् ! वह मानसरोवर, जो ब्रह्मा की मानसी-सृष्टि है, उसके माहात्म्य का वर्णन करने में, मैं असमर्थ हूँ । उसकी जलराशि से ही गङ्गादि श्रेष्ठ नदियाँ एवं बड़े-बड़े सरोवर भरे गए हैं । हे राजन् ! जहाँ तपश्चर्या कर राजा भगीरथ अपने रथ के पीछे-पीछे गङ्गा को पृथ्वी पर लाये । हे नृप-श्रेष्ठ ! जिस मानसरोवर से लोक को पवित्र करने वाली पवित्र सरयू नदी महर्षि वसिष्ठ के निर्दिष्ट मार्ग से प्रादुर्भूत हुई । जिससे पुण्यदायिनी अन्य नदियाँ भी, हे नृपश्रेष्ठ ! अनेक प्रकार के पक्षियों एवं मत्स्य आदि से सुशोभित हो, प्रादुर्भूत हुईं । जिसके नाम से ही, हे राजर्षे ! यह प्रदेश **'मानस-खण्ड'** कहलाया । हे महाराज ! वह खण्ड मानसरोवर की जलराशि से ही पूरित है । उस मानसखण्ड के मध्य, हे नृपश्रेष्ठ ! हिमालय के पाँच शिखर दिखाई देते हैं । हे राजन् ! उन पाँच शिखरों को ही खण्डों का विभाजक समझा जाय ॥३०-८५॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में हिमाचलस्थ मानसरोवरवर्णन नाम का आठवां अध्याय समाप्त ॥

—०: ❀ :०—

---

१. "कैलासश्चापि दुष्कम्पो दानवेन्द्रेण कम्पितः । यक्षराक्षसगन्धर्वैः नित्यं सेवितकन्दरः ।
श्रीमान् मनोहरश्चैव नित्यं पुष्पितपादपः । हेमपुष्करसंछन्नं तेन वैखानसं सरः ॥
कम्पितं मानसं चैवं राजहंसनिषेवितम् ॥" म० भा०, ह० वि०, नर० पु० अ० २२८ ।

२. "कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम् । ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः ।
तस्मात् सुस्राव सरसः साऽयोध्यामुपगूहते । सरःप्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता ॥"
—वा० रा० आदिकाण्डे सर्गः २४ ।

९

व्यास उवाच—

इति दत्तवचः श्रुत्वा धन्वन्तरिर्नृपोत्तमः। सरोवर-समुत्पत्तिं पप्रच्छ ऋषिसत्तमाः ॥ १॥

धन्वन्तरिरुवाच—

कथं हि मनसा ब्रह्मन् ! ब्रह्मा लोकपितामहः। ससर्ज मानसं पुण्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ २॥

दत्त उवाच—

शृणुष्व नृपशार्दूल ! कथ्यमानां मयाधुना। मानसाख्यसमुत्पत्तिं विस्तरेण न संशयः ॥ ३॥
ज्ञात्वा कैलासशिखरे देवदेवं शिवापतिम्। गणैर्बहुभिः संयुक्तं रुद्रकन्याभिषेवितम् ॥ ४॥
तथा हिमालयं पुण्यं देवगन्धर्वसेवितम्। पुण्याश्रमसमायुक्तं हिमसीकरसेवितम् ॥ ५॥
स्मृत्वा ब्रह्मसुताः सर्वे मरीचिप्रमुखादयः। कैलासाधित्यगां भूमिं तपस्तप्तुं प्रजग्मु हि ॥ ६॥
तत्र हंसस्वरूपेण ददृशुः शङ्करं प्रभुम्। सेवितं पार्षदगणैः पार्वत्या च समन्वितम् ॥ ७॥
तं तत्र पूजयामासुर्मरीचिप्रमुखादयः। वैदिकेन विधानेन तान्त्रिकैर्नृपसत्तम ॥ ८॥
तत्र कान्तासु पुण्यासु गुहासु नृपसत्तम। तेपिरे सुमहात्मानस्तपः परमदुष्करम् ॥ ९॥
तेषां तपस्यमानानाम् ऋषीणां नृपसत्तम। ययुर्द्वादशवर्षाणि स्नात्वा मन्दाकिनीजले[1] ॥१०॥
ततः कालेन महता ऋषयः सत्यवादिनः। हिमर्तुं हि महाराज ! प्राप्तं दृष्ट्वा तपोधनाः ॥११॥
तथा पुण्यान् गिरीन् सर्वान् हिमेन परिपूरितान्। बभूवुर्म्लानवदनास्तपसा नृपसत्तम ॥१२॥
गन्तुं मन्दाकिनीं राजन्नशक्ता ब्रह्मणः सुताः। खिद्यमाना महाराज ! दृष्ट्वा तन्निर्जलं स्थलम् ॥१३॥
प्रजग्मुर्ब्रह्मभवनं देवेन्द्रप्रतिपूजितम्। तत्र गत्वा विधातारं महेन्द्र[2]-प्रतिपूजितम् ॥१४॥
तुष्टुवुर्ऋषयः सर्वे मरीचिप्रमुखादयः ॥१५॥

व्यास बोले—हे ऋषिजनों ! दत्तात्रेय की बात सुनकर राजर्षि धन्वन्तरि ने सरोवर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा की ॥१॥

धन्वन्तरि ने कहा—द्विजवर ! लोक-पितामह ब्रह्मा ने ब्रह्मर्षिगणसे सेवित मानसरोवर की मानसी सृष्टि कैसे की ? ॥२॥

दत्तात्रेय ने उत्तर दिया—हे राजसिंह ! मानसरोवर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुझ से आप इस समय विस्तार-पूर्वक सुनें। अनेक गणों एवम् रुद्रकन्याओं से परिसेवित पार्वती-पति शंकर की स्थिति केलास-पर्वत पर जानकर तथा देव-गन्धर्वो से सेवित, अनेक पवित्र आश्रमों एवं हिमकणों से परिपूर्ण पवित्र हिमालय का स्मरण कर मरीचि आदि ब्रह्मा के (मानस) पुत्रों ने कैलास पर्वत की अधित्यका में तपश्चर्या आरम्भ की। वहाँ पर उन्होंने पार्षदों से सेवित एवं पार्वती-सहित हंसरूप में भगवान् शंकर को देखा। हे राजर्षे ! मरीचि आदि ऋषियों ने वैदिक और तान्त्रिक विधि से उनका पूजन किया। तथा वहाँ जाकर सुन्दर एवं पवित्र गुफाओं में उन महात्माओं ने कठोर तप किया। हे नृपराज ! उन महर्षियों द्वारा मन्दाकिनी के जल में स्नान कर तपश्चर्या करते हुए बारह बरस बीत गए। हे महाराज !

---

१. 'मन्दाकिनीजलैः' इति 'ख' पुस्तके। २. 'देवेन्द्र' इति 'ख' पुस्तके पाठः।

ऋषय ऊचुः—

नमो ऋषीणां गुरवे ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये। सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥१६॥

दत्त उवाच—

इति तेषां हि वचनं श्रुत्वा लोकपितामहः। उवाच वचनं राजन्! ऋषीणां हितकारकम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच—

कथयध्वं महाभागा येन यूयमिहागताः। कारणं तवशेषेण भवतां खेदकारकम् ॥१८॥

ऋषय ऊचुः—

त्वत्प्रसादेन वै ब्रह्मन्नास्ति दुःखं हि साम्प्रतम्। दैत्यानां दानवानां च राक्षसानां तथैव च ॥१९॥
कैलासाधित्यगां भूमिं प्राप्य सर्वे तपस्विनः। तपस्तपन्ति वै ब्रह्मन् स्नात्वा मन्दाकिनीजले ॥२०॥
दृष्ट्वा हिमतुं सम्प्राप्तं मत्वा गङ्गां हि दूरगाम्। खिद्यन्ति ऋषयः सर्वे जलहीना न संशयः ॥२१॥
इत्याचारविहीनाः स्मो वादिनो ब्रह्मणो विभो। खिद्यन्त्यहर्निशं सर्वे कुलहीना यथा स्त्रियः ॥२२॥
तेषामुपायो लोकेश चिन्त्यतां यदि रोचते। केनोपायेन[1] ते सर्वे भवन्ति सुखिनो द्विजाः ॥२३॥

उन सत्यवादी ऋषियों को तपश्चर्या करते हुए बहुत समय बीतने पर (एक बार) हेमन्त ऋतु के आने पर सब श्रेष्ठ पर्वतों पर हिमपात होने से उन ऋषियों के मुँह कुम्हला गए। हे राजन्! वे ब्रह्मा के पुत्र मन्दाकिनी तक जाने में असमर्थ हो गए। उस स्थान को जलरहित देखकर खिन्न होते हुए वे ब्रह्मलोक में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देवराज इन्द्र से पूजित ब्रह्मा को देखा। तथा मरीचि आदि ऋषियों ने उनको स्तुति करनी प्रारम्भ की ॥९-१५॥

ऋषियों ने कहा—आप स्वयं, ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव के रूप में स्थित होकर सृष्टि, पालन तथा विनाश करने वाले हैं। ऋषियों के गुरु तथा अनन्तशक्तिशाली हैं। अतः आपको हम नमन करते हैं ॥१६॥

दत्तात्रेय बोले—इस प्रकार उनकी स्तुति को सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने ऋषियों के हितकारी वचन कहे ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—हे महाभागों! आप लोग यहाँ जिस निज दुःख के कारण आए हैं—वह मुझे सब बतलायें ॥१८॥

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन्! इस समय तो आपकी कृपा से दैत्य-दानव एवं राक्षसों द्वारा होने वाला कोई दुःख संभावित नहीं है। अतः कैलास की अधित्यका में पहुँच कर सभी तपस्वी मन्दाकिनी में स्नान कर तपश्चर्या में संलग्न हैं। किन्तु हेमन्त ऋतु में वर्फ जमने के कारण उस स्थान के जलरहित हो जाने से ऋषिगण गङ्गा को दूरस्थ जानकर बड़े दुःखी हो गए हैं। हे विभो! वे यह कहने लगे हैं कि हम ब्रह्मवादी ऋषि भी कुलहीन स्त्रियों की तरह आचार-विहीन हो गए हैं। तथा रातदिन खिन्न रहते है। अतः आप यदि उचित समझें तो उनके कष्टनिवारण हेतु कोई उपाय ढूँढें, जिसके द्वारा वे सब ब्रह्मवादी सुखी हो जायँ ॥१९-२३॥

---

१. 'येनोपायेन' इति 'ख' पुस्तके पाठः।

दत्त उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः। मनसा मानसं क्षेत्रं ससर्ज नृपसत्तम ॥२४॥
लिङ्गं तन्मध्यगं राजन् स्वर्णहंसमयं शुभम्। चकार स स्वयं ब्रह्मा मनसा हंससेवितम् ॥२५॥
गङ्गया पूरितं चक्रे विष्णुपादोपपन्नया। राजन् प्रवाहैर्बहुभिर्युक्तया मनसा प्रभुः ॥२६॥
निवासरहितं[1] राजन् गौरीकैलासमध्यगम्। गाङ्गेयैश्च प्रवाहैर्वै चतुर्दशभिरलंकृतम्[2] ॥२७॥
ससर्ज मनसा ब्रह्मा मानसाख्यं सरोवरम्। ऋषीणामाश्रमैः पुण्यैः सेवितं सुमनोहरैः ॥२८॥
मूलं तमेव राजर्षे सरितां स चकार ह। तथा नदानां शुद्धानां पूज्यानां दैवतैरपि ॥२९॥
तस्य च सेचनाद्राजन् गङ्गा विष्णुपदोद्भवा। आविर्भूता सरिच्छ्रेष्ठा पुण्ये मानसरोवरे ॥३०॥
ततस्तानब्रवीद् ब्रह्मा मरीचिप्रमुखान् द्विजान्। गम्यतामाश्रमं पुण्यं तत्र सुखमवाप्स्यथ ॥३१॥
ततस्तु ब्रह्मवचनान्मरीचिप्रमुखास्तु[3]ते। प्रजग्मुः स्वाश्रमान् राजन् गुहाभिः समलंकृतान् ॥३२॥
ददृशुस्ते तदा राजन् पुण्यं मानसरोवरम्। तन्मध्ये शिवलिङ्गं च स्वर्णहंसमयं शुभम् ॥३३॥
ततस्ते निश्चला राजन् बभूवुर्ब्राह्मणोत्तमाः। पुण्याश्रमसमायुक्ता ऋषिपत्नीभिरन्विताः ॥३४॥
गुहासु चातिपुण्यासु स्नात्वा मानसरोवरे। अर्चन्तः[4] शंकरं राजंस्ततस्ते[5] सह पत्निभिः ॥३५॥
इदं पवित्रं परमं रहस्यं श्रीमानसाख्यस्य च सृष्टियुक्तम्।
शृण्वन्ति ये ब्रह्मपदं प्रयान्ति संसेविताः किन्नरनायिकाभिः ॥३६॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरोवरसमुत्पत्तिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥

दत्तात्रेय ने कहा—लोक-पितामह ब्रह्मा ने ठीक है—यह कह कर मानस-क्षेत्र की मानसी सृष्टि की। हे राजन्! उसके मध्य स्वर्णहंस के रूप में शिवलिङ्ग विराजमान है। ब्रह्मा ने उसे स्वयं हंसों से सेवित बनाया तथा गौरीपर्वत एवं कैलास के मध्यवर्ती स्थान को विष्णु के चरणों से उद्भूत गङ्गाजल से एवम् अनेक धाराओं से युक्त कर उसे जल से भर दिया। हे राजन्! गंगा के चौदह प्रवाहों से सुशोभित मानसरोवर की ब्रह्मा ने मानसी सृष्टि की। ऋषियों के अनेक सुन्दर तथा पवित्र आश्रमों से पूरित उस सरोवर को अनेक नदियों के मूल उद्गम के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके साथ ही देवगणों से पूजित नदों का भी वह मूलस्रोत है। उसके अभिषेक से ही नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा मानसरोवर में प्रकट हुई। तब ब्रह्मा ने मरीचि-प्रमुख ऋषियों से अपने आश्रमों में जाने को कहा तथा सुख-प्राप्ति की कामना की। तत्पश्चात् ब्रह्मा की आज्ञा से मरीचि-प्रभृति ऋषिगण गुहाओं से शोभित अपने-अपने आश्रमों को चले गए। उन्होंने पवित्र मानसरोवर के दर्शन किए। उसके मध्य में स्थित सुवर्ण-हंस के रूप में शिवलिङ्ग को देखा। हे राजन्! पवित्र आश्रमों एवं शान्तिप्रद गुहाओं से समन्वित पुण्यप्रद मानसरोवर में ऋषि-पत्नियों सहित मुनिगण स्नान कर भगवान् शिव की अर्चना करते हुए स्तब्ध रह गये। जो मनुष्य मानसरोवर की रचना से युक्त इस परम गोपनीय रहस्य को श्रवण करते हैं, वे किन्नर-पत्नियों (गन्धर्व-कन्याओं) से सेवित हो ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं ॥२४-३६॥

॥ "स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड" में सरोवर-समुत्पत्ति नाम का नवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'निकायरहितम्' इति 'ख' पुस्तके। २. अक्षराधिक्यं वर्तते। 'चतुर्दशभिरन्वितम्' इत्यपेक्ष्यते।
३. 'मरीचिप्रमुखावयः' इति 'ख' पुस्तके। ४. 'पूजयन्' इति 'ख' पुस्तके पाठः। ५. 'तस्युस्ते' इति 'ख' पुस्तके।

व्यास उवाच—

सरोवरसमुत्पत्तिं श्रुत्वा काशीपतिस्तदा। पूजयित्वा ऋषिश्रेष्ठं पुनः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ १॥

धन्वन्तरिरुवाच—

अगम्यरूपं हि गिरिं हिमालयं वदन्ति सर्वे मुनयः शुभव्रताः।
विलङ्घ्य तं पर्वतनायकं गुरो स केन मर्त्ये प्रकटीकृतं वद[1] ॥ २॥

दत्त उवाच—

शृणु त्वं राजशार्दूल मयोक्तं शुभलक्षणम्। पुराणवचनैर्युक्तं शुभैर्वेदविचारितैः ॥ ३॥
वैवस्वतकुले जातो मान्धाता नाम नामतः। बभूव राजा मतिमान् प्रजापोषणतत्परः ॥ ४॥
धर्मात्मा सत्यवाग् दान्तो धर्मो विग्रहवानिव। स यागविरतो[2] राजा बभूव नृपसत्तम ॥ ५॥
कदाचिन्नृपशार्दूल तस्मै राज्ञे वसुन्धरा। स्त्रीरूपधारिणी देवी भूभुजस्यान्तिकं गता ॥ ६॥
वव्रे सा तं तदा देवी राजानं मनुगोत्रजम्। उपस्थिता महाराज! निशीथे वरवर्णिनी ॥ ७॥
कामयामि न सन्देहोऽहं त्वां कामोपमं नृपम्[3]। दृष्ट्वा तां राजशार्दूल कामतप्तासि साम्प्रतम्[4]॥ ८॥

व्यास ने कहा—काशिराज धन्वन्तरि ने (इस प्रकार) मानसरोवर की उत्पत्ति के आख्यान को सुन कर ऋषिश्रेष्ठ दत्तात्रेय का सम्मान किया। तथा उन्होंने पुनः जिज्ञासा की ॥१॥

धन्वन्तरि ने पूछा—महर्षे! तपश्चर्या में लीन सभी मुनि हिमालय को अलंघ्य बतलाते हैं। गुरुवर! आप यह बतायें कि उस दुर्गम पर्वत को सर्वप्रथम पार कर (आरोहण कर) उसके स्वरूप का परिचय इस भू-मण्डल में किसने कराया? ॥२॥

दत्तात्रेय बोले—हे राजसिंह! वेदों में विचारित एवं पुराणों के वचनों से प्रमाणित तथा शुभ-लक्षण-सम्पन्न आप मेरे कथन को सुनें। वैवस्वत मनु के वंश में उत्पन्न अपने नाम को सार्थक करने वाला 'मान्धाता' नाम का राजा था। वह बुद्धिमान् था तथा प्रजापालन में तत्पर रहता था। हे नृपश्रेष्ठ! धर्मात्मा, सत्यवादी, इन्द्रियों को दमन करने वाला तथा मूर्तिमान् धर्म के समान वह राजा कदाचित् योग (याग) से विरत हो गया। प्रसंगवश स्त्री-रूप धारण कर पृथिवी उस राजा के पास आई। महाराज! मनु के वंश में उत्पन्न हुए उस राजा को उस स्त्री ने वरण करना चाहा। वह सुन्दरी अर्धरात्रि के समय उपस्थित होकर कहने लगी कि "मैं कामदेव के समान तुम पर निःसन्देह आसक्त हूँ। पुनः उसने कहा कि हे राजन्! मैं आपको देखकर काम-सन्तप्त हूँ।" ॥३-८॥

---

१. 'स केन मर्त्येन प्रकाशितं स्यात्—इति वद' इत्यर्थः। २. 'योगविरतः' इति 'ख' पुस्तके पाठः।
३. 'त्वां नु कामोपमं नृपम्' इति 'ख' पुस्तके पाठः।
४. 'दृष्ट्वा त्वां राजशार्दूल! कामतप्तास्मि साम्प्रतम्' इति 'ख' पुस्तके। अयमेव पाठः समीचीनः।

मान्धाता उवाच—

काऽसि त्वं वै वरारोहे कामिनी कामनायिका। देवानां दानवानां वै राक्षसानामुताऽऽसुरी[१]॥९॥
वल्लभा ह्यसि वा भद्रे नागानां तक्षकादिनाम्[२]। किमु त्वं मानुषाणां हि गन्धर्वाणां तथा शुभे॥१०॥
वल्लभा ह्यसि भद्रं ते कथयस्व न संशयः।

धरोवाच[३]—

नास्म्यहं देवदैत्यानां नायिका नृपसत्तम॥११॥
नास्म्यहं मानुषाणां वै गन्धर्वाणां महात्मनाम्। तवास्मि नायिका कान्त! मन्यसे यदि मे वचः॥१२॥
त्वमेव नायको राजन् विधिना चोपदेशितः। स्त्रीरूपधारिणी साऽहं धराऽस्मि नृपसत्तम॥१३॥
दृष्ट्वाऽहं कामसदृशं[४] रन्तुं त्वामहमागता। नान्ये मद्भोगकरणे राजानो नृपसत्तम॥१४॥
शक्तास्त्वमेव शक्तोऽसि सत्यं ते कथयाम्यहम्।

राजोवाच[५]—

मया पूर्वं प्रतिज्ञातमेकपत्नीव्रतं शुभे॥१५॥
नाहं तदन्यथाकर्तुमुत्सहामि[६] न संशयः। गच्छ चान्यान्[७] महाभागे नृपांस्त्वद्भोगसम्मतान्॥१६॥
कान्तारागसमायुक्तान् स्वर्णालङ्कारशोभितान्। प्रार्थ्यतां त्वं महाभागे क्रीडिष्यसि यथासुखम्॥१७॥
किमीदृशानां भूपानां[८] तर्जनं प्रसहिष्यसि।

मान्धाता ने उत्तर दिया—हे वरारोहे! तुम देव, दानव या राक्षसों अथवा असुरों—इनमें से किसकी कामिनी हो? अथवा, हे भद्रे! तक्षक आदि नागों, मनुष्यों या गन्धर्वों में से किसकी प्रिया हो? विना किसी संकोच के मुझे बताओ। "तुम्हारा कल्याण हो" ॥९-१०॥

(यह सुन) पृथ्वी बोली—हे राजश्रेष्ठ! मैं देव अथवा दैत्यों में से किसी की पत्नी नहीं हूँ। न तो मैं मनुष्यों एवं गन्धर्वों की पत्नी हूँ। यदि मेरी बात मानें तो आप मुझे अपनी पत्नी समझें। हे नृपश्रेष्ठ! भाग्य से प्रेरित आप ही मेरे पति हैं। मैं स्त्री रूप-धारिणी पृथिवी हूँ। आपको कामदेव के सदृश देख मैं आपके साथ रमण करने यहाँ आई हूँ। अन्य राजा लोग मेरे भोग करने योग्य नहीं हैं। मैं सच कहतो हूँ कि शक्ति-सम्पन्न होने के कारण आप ही इसके लिये समर्थ हैं॥११-१४॥

राजा ने कहा—हे शुभे! मैंने एक पत्नीव्रत की प्रतिज्ञा की है। निःसन्देह मैं उस प्रतिज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। (अतः) हे महाभागे! तुम भोग करने योग्य अन्य राजाओं की शरण लो। स्त्रियों के अनुरागी एवं सुवर्णादि-अलंकारों से सुशोभित अन्य राजाओं

---

१. 'रक्षसामुत सुन्दरि' इति 'ख' पुस्तके। अयं पाठः समीचीनः।
२. तक्षकादीनामित्यपेक्षितम्। ३. 'धरा उवाच' इति 'ख' पुस्तके।
४. 'दृष्ट्वा त्वां कामसदृशम्' इति 'ख' पुस्तके। ५. 'राजा उवाच' इति 'ख' पुस्तके।
६. पाणिनीयधातुपाठे 'सह' धातुः आत्मनेपदी। ७. 'वाऽन्यान्' इति 'ख' पुस्तके।
८. 'रूपाणाम्' इति 'ख' पुस्तके।

धरोवाच—

मा वद त्वं महाराज कालकूटोपमं वचः। ऋते त्वां नृपशार्दूल न भजामि नराधिपम् ॥१८॥
त्वमेव धर्मं जानासि धर्मत्यागः कथं त्वया। क्रियते राजराजेश कथयस्व न संशयः ॥१९॥
कामं हि याचमानां वै यः स्त्रियं त्यजति प्रभो। स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥२०॥

राजोवाच—

यदि धर्मं विजानासि धर्मज्ञे! धर्मलक्षणम्। तर्हि मे वचनं सत्यं शृणुष्वैकाग्रमानसा[1] ॥२१॥
स्मरसि त्वं महाभागे यद्येवं धर्मलक्षणम्। तर्हि योग्यान् पतीन् त्यज्य[2] किमर्थं संस्थिता ह्यसि[3] ॥२२॥

धरोवाच—

न जीर्णास्मि महाराज! राजभिः पुण्यकारिभिः। भुक्त्वा मां वै गताः स्वर्गं राजानः शुभलक्षणाः ॥२३॥
न जीर्णं वै महाभाग! देहं मे शुभलक्षणम्। तस्मात्तेषां सहगतं मया त्यक्तं न संशयः ॥२४॥
भुङ्क्ष्व मां नृपशार्दूल! न त्वां त्यक्ष्यामि साम्प्रतम्। तव धर्मचरी साऽहं भविष्यामि न संशयः ॥२५॥

राजोवाच—

यदि सत्यं त्वया प्रोक्तं मनो-वाक्-कर्मभिः शुभे। तर्हि त्वं शपथं सत्यं कुरु सत्यं वदाम्यहम् ॥२६॥
वयं हि मानवा भद्रे! मृत्योर्वशंगता भुवि। स्त्रियस्तु सहचारिण्यः सन्त्यस्माकं न संशयः ॥२७॥

की तुम प्रार्थना करो तथा उनके साथ यथेच्छ विहार करो। क्या तुम ऐसे राजाओं का परित्याग (विरह) सहन कर सकोगी? ॥१५-१७॥

पृथ्वी ने कहा—महाराज! विष के समान ऐसे (कठोर) वचन आप न बोलें। आपके अतिरिक्त मैं किसी अन्य राजा को नहीं चाहती। आप ही धर्मज्ञ हैं, (अतः) मुझे बतलायें कि आप धर्म को कैसे छोड़ेंगे? प्रभुवर! जो कामना करती हुई स्त्री का परित्याग करता है वह चन्द्र-सूर्य की स्थिति पर्यन्त घोर नरक में पड़ा रहता है ॥१८-२०॥

राजा ने कहा—हे धर्मज्ञे! यदि तुम वस्तुतः धर्मज्ञ हो तो मेरी बात सच मानो। पुनरपि, हे महाभागे! धर्म के लक्षण को स्मरण कर एकाग्रचित्त हो मेरी बात सुनो। (अनेक) योग्य पतियों को छोड़कर तुम यहाँ क्यों खड़ी हो? ॥२१-२२॥

पृथ्वी ने उत्तर दिया—महाराज! पुण्यशील राजा मुझे जीर्ण नहीं कर सके। शुभ लक्षणों से युक्त अनेक राजा मेरा भोग करने के उपरान्त स्वर्ग को चले गए। हे महाभाग! इतना होते हुए भी मेरा शरीर अभी जीर्ण नहीं हुआ है। इस हेतु मैंने उनका साथ अवश्य छोड़ दिया है। हे राजसिंह! आप मेरा भोग करें, मैं अब आपको छोड़ूँगी नहीं। मैं निःसन्देह आपकी अनुगामिनी होऊँगी ॥२३-२५॥

राजा ने कहा—शुभे! यदि तुम ने मन, वाणी तथा कर्म से यह बात सच कही है तो तुम शपथ लेकर इसे सत्यापित करो। भद्रे! मैं तुमसे सच कहता हूँ कि पृथ्वी पर हम मानव मृत्यु के वशीभूत हैं। (इसके साथ ही) यह भी निर्विवाद है कि स्त्रियाँ हमारी अनुगामिनी होती हैं। किन्तु तुम तो इस भूमण्डल पर अजर और अमर होकर स्थित हो। अतः तुम्हारा

---

१. 'एकाग्रचित्तया' इति 'ख' पुस्तके। २. 'त्यक्त्वा' इत्यर्थे प्रयुक्तः।
३. 'किमिह संस्थिता ह्यसि' इति 'ख' पुस्तके।

स्थित्वा भुवः स्थले देवी त्वमसीत्यजराऽमरा। भोगं न रोचते मह्यं तस्मात्ते मानवैः सह ॥२८॥
यदि सत्यं त्वया प्रोक्तं वचनं वीरवल्लभे। आत्मसत्यं पुरस्कृत्य शपस्व शाङ्करौ पदौ ॥२९॥

धरोवाच—

यदि मां राजशार्दूल भोगजीर्णां करिष्यसि। वचनं ते परित्यज्य न चान्यत्करवाण्यहम् ॥३०॥
सहैवाहं गमिष्यामि सत्यं ते कथितं मया। भूत्वा जीर्णशरीरा वै यदि त्वां हि त्यजाम्यहम् ॥३१॥
तर्हि शपामि राजर्षे पादयोः शङ्करस्य वै। सहधर्मचरी राजन् भविष्यामि न संशयः ॥३२॥
मया सत्यं पुरस्कृत्य वचनं समुदाहृतम्। न चान्यमनुपश्यामि शपामि शिवपादयोः ॥३३॥

दत्त उवाच—

इति तस्याः समाकर्ण्य वचनं मानवेश्वरः। चकार पाणिग्रहणं धराया राजसत्तमः ॥३४॥
तया सह तदा राजा कुञ्जेषु च वनेषु च। रेमे स नृपशार्दूलः शचीपतिरिव स्वयम् ॥३५॥
गृहे कदाचिद् विपिने कदाचिज्जले कदाचित् सखिभिः समन्तात्।
संवेष्टितो भूपतिरेकसंज्ञो, रेमे, धरायाः सहितो नरेन्द्रः ॥३६॥
ततः कालेन राजर्षिः शतक्रतुसमोपमः। राजसूयं महायज्ञं कृत्वा तां समुपाह्वयत् ॥३७॥

राजोवाच—

धरे! भवतु भद्रं ते उत्तिष्ठ गहनं प्रति। तत्र गत्वा तपिष्यामस्तपः परमदुष्करम् ॥३८॥
सर्वेषां गमनं देवि, वार्धके कानन प्रति। अस्माकं तु परो धर्मस्तपसे च न संशयः[1] ॥३९॥

मनुष्य जाति के साथ भोग करना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता। हे वीरवल्लभे! यदि तुमने सच कहा है तो तुम अपने सत्य को प्रमाणित करने के लिए भगवान् शंकर के चरणों की सौगन्ध लो ॥२६-२९॥

पृथ्वी बोली—यदि आप मुझे भोग कर जीर्ण कर सकें, तो मैं सच कहती हूँ "मैं आपके साथ चली जाऊँगी"। यदि मैं जर्जरित होकर आपको छोड़ूँ तो अवश्य शंकर के चरणों की शपथ लेकर कहती हूँ कि मैं निःसन्देह आपकी सहचरी हो आपकी आज्ञा के अतिरिक्त और कुछ नहीं करूँगी। सत्य को आगे रख मैं यह बात भगवान् शंकर के चरणों की शपथ लेती हुई कह रही हूँ कि 'मैं किसी दूसरे की ओर अब नहीं देखूँगी' ॥३०-३३॥

दत्तात्रेय बोले—इस प्रकार पृथ्वी की बात सुनकर राजा ने उसका पाणिग्रहण किया। इन्द्र के समान वह राजा उसके साथ कुञ्जों, वनों आदि में रमण करने लगा। मित्रों से घिरा रहते हुए भी वह राजा कभी घर, कभी वन, कभी जल में अकेले ही पृथ्वी के साथ रमण करने लगा। तत्पश्चात् कुछ समय के बाद इन्द्र के समान उस राजर्षि ने राजसूय यज्ञ करने के अनन्तर पृथ्वी को बुलाया और कहा ॥३४-३७॥

मान्धाता ने कहा—भद्रे! तुम्हारा कल्याण हो। उठो और वन की ओर चलो। वहाँ चलकर कठिन तपश्चर्या करेंगे। हे देवि! वृद्धावस्था में सबको वन में जाना चाहिये। तप

---

१. 'तप एव न संशयः' इति 'ख' पुस्तके।

तेन स्वर्गं गमिष्यामि त्वया सह वसुन्धरे । तेनैव भोगानखिलान् प्रापयामि न संशयः ॥४०॥

दत्त उवाच—

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा धरा सा चारुहासिनी । अट्टाट्टहासमशिवं चकार नृपसत्तम ॥४१॥
उवाच वचनं साध्वी राजानं चारुदर्शनम् । तपःपूतं सुगम्भीरं शचीरिव पुरन्दरम् ॥४२॥

धरोवाच—

नाहं जीर्णास्मि राजर्षे ! जरया देहजीर्णया । त्वया सह कथं यूनी गमिष्यामि यतव्रता ॥४३॥
साम्प्रतं जीर्णदेहस्त्वं किमु मां नहि जीर्यसे । जरयित्वाऽथ मां बालां शोभाढ्यां चारुहासिनीम् ॥४४॥
ततस्त्वं नृपशार्दूल भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् । सम्पूज्य च ऋषीन् सर्वान् मया सह दिवं व्रज ॥४५॥

दत्त उवाच—

तयेरितं समाकर्ण्य कोपाविष्टोऽभवन्नृपः । समुत्थाय महासिं स हन्तुं तामुपचक्रमे ॥४६॥
उवाच वचनं चापि कोपापूर्तं[1] नरेश्वरः । हनिष्यामि दुराचारे पापे सत्यविवर्जिते ॥४७॥
त्वामद्य वेदरहितां सत्यवाणीविवर्जिताम् । दृष्ट्वा मां स्थविरं दान्तं या त्वं भाषसि[2] साम्प्रतम् ॥४८॥
जीर्णयस्वेति तस्मात्त्वां हनिष्यामि न संशयः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा चासिं समुद्यतम् ॥४९॥
नृपस्य भयसंत्रस्ता स्त्रीरूपा प्राद्रवन् मही । तामन्वधावद्राजर्षिर्नीत्वा चासिं समुद्यतम् ॥५०॥
ततो हिमाद्रिभवने प्रविष्टां तां वसुन्धराम् । ददर्श नृपशार्दूलः[3] कुण्डलेन विराजिताम् ॥५१॥

करना हमारा परम कर्तव्य है । अतः हे वसुन्धरे ! मैं तुम्हारे साथ तब स्वर्ग जाऊँगा । उसी से तुम्हारे लिये समग्र भोग उपलब्ध कराऊँगा ॥३८-४०॥

दत्तात्रेय ने कहा—राजा के इस प्रकार कथन को सुन कर सुन्दर हास करने वाली पृथ्वी ने सहसा अशुभ अट्टहास किया । तदनन्तर इन्द्राणी के समान पतिव्रता पृथ्वी तप से पवित्र इन्द्र के सदृश दर्शनीय राजा से इस प्रकार गम्भीर वाणी बोली ॥४१-४२॥

पृथ्वी ने कहा—राजर्षे ! मैं शरीर से अभी वृद्ध नहीं हूँ । पातिव्रत्य धर्म का पालन करते हुए मैं युवती तुम्हारे साथ कैसे (स्वर्ग) जाऊँगी ? आप यदि इस समय शरीर से जीर्ण हो गए हों तो मुझे जीर्ण क्यों नहीं करते ? अतः सुहासिनी एवं सुन्दरी स्त्री को वार्धक्य प्राप्त करा कर, हे राजसिंह ! समग्र ईप्सित भोगों का उपभोग कर तथा ऋषियों का पूजन कर फिर मेरे साथ आप स्वर्ग चलें ॥४३-४५॥

दत्तात्रेय ने कहा—उसकी यह बात सुन राजा (मान्धाता) क्रुद्ध हो गए तथा उठकर (अपनी) तलवार खींच उसे मारने को उद्यत हुए । क्रोध के आवेश में राजा ने कहा हे दुराचारिणि ! पापरूपिणि ! असत्यभाषिणि ! आज तुम ज्ञानशून्य एवं सत्यवाणी से रहित हो गई हो, अतः मैं तुम्हें अवश्य मारूँगा । मुझे वृद्ध, दान्त एवं शान्त जानकर स्वयम् अपने को वार्धक्य प्राप्त कराने की बात जो तुम कह रही हो, उसे सुन मैं तुम्हें अवश्य मार दूंगा । राजा को इस वाणी को सुन तथा हाथ में तलवार उठाई हुई देख, स्त्री-रूप धारण की हुई पृथ्वी भयभीत हो वहाँ से भाग गई । राजा तलवार हाथ में उठाये उसके पीछे दौड़ा । हे राजसिंह ! तब मन्धाता ने हिमाचल के भवन में प्रविष्ट हुई पृथ्वी का कुण्डलों

---

१. 'कोपपूर्वम्' इति 'ख' पुस्तके । २. परस्मैपदप्रयोगः पौराणिकः ।
३. 'ददर्श नृपतिर्दूरात्' इति 'ख' पुस्तके ।

तत्रैव च स राजर्षिर्जगामासिधरः स्वयम् । ब्राह्मणैः क्षत्रियैश्चापि संस्तुतो नृपतिस्तदा ॥५२॥
ततस्तस्माद्विनिष्क्रम्य भीता राज्ञो भयाद्धरा । जगाम मानसं क्षेत्रं यं ब्रह्मा व्यसृजत् पुरा ॥५३॥
तामन्वधावद्राजर्षिश्चक्रासिवरभृत् स्वयम् । स्थविरो बालवद्दान्तः पदातिरपराजितः ॥५४॥
तत्र गत्वा स राजर्षिरसिमुत्पाट्य वेगवान् । वसुधायाः शिरं[1] राजन् संजहार सकुण्डलम् ॥५५॥
अजरामरदेहा सा हतमात्रा वसुन्धरा । विवेश मानसं क्षेत्रं देवर्षिगणसेवितम् ॥५६॥
ततस्तेनैव मार्गेण धराधरगृहं शुभम् । प्रविश्य सा धरा राजन् दधार वसुधातलम् ॥५७॥
ततः प्रभृति राजर्षे दृश्यरूपा वसुन्धरा । बभूव राज्ञां सर्वेषां मानवानां तथैव च ॥५८॥
ततः स राजा राजर्षे मत्वा गूढां वसुन्धराम् । क्षेत्रं तं खनयामास सर्वदेवनमस्कृतम् ॥५९॥
खनित्वा नृपशार्दूलो धनुषा स्वेन वै तदा । न प्राप वसुधां देवीं रत्नाकरसमन्विताम् ॥६०॥
ददर्श शिवलिङ्गं वै स्वर्णहंसमयं ततः । पूजयामास तं राजा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥६१॥
पुनः स चिन्तयामास पूजयित्वा शिवं प्रभुम् । दृष्ट्वा चापि त्रिलोकेशं पूर्वे योगीश्वरं हरम् ॥६२॥
यत्र यत्राखनद्राजा तत्र तत्र सरिद्वरा । धात्रा चाप्युपदिष्टा सा आविर्भूता बभूव ह ॥६३॥
ततः स राजा मतिमान् मानसाख्यं सरोवरम् । मनसा निर्मितं धात्रा ददर्श नृपसत्तमः ॥६४॥
तं दृष्ट्वा मानसं क्षेत्रं ब्रह्मणा निर्मितं प्रभो । ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्थानैर्बहुभिरङ्कितैः ॥६५॥
हर्षेण महता युक्तः स राजा नृपसत्तमः । चकार मानसं क्षेत्रं शतयोजनमायतम् ॥६६॥
षष्टियोजनविस्तीर्णं द्वितीयमिव सागरम् । दशयोजनगम्भीरं स चकार तदा नृपः ॥६७॥
ततो जलैः स गाङ्गेयैर्धनुःक्षतसमुद्भवैः । पूरयामास तं क्षेत्रं सागरं मघवानिव ॥६८॥

से सुशोभित देखा। वह स्वयं तलवार हाथ में लिये वहाँ पहुँचा। ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों ने राजा से प्रार्थना की। राजा को देख पृथ्वी भयभीत हो वहाँ से निकल कर ब्रह्मा द्वारा सर्जित मानस-क्षेत्र में पहुँची। उसका पीछा करते हुए, हाथ में चक्र तथा तलवार लिये हुए, जितेन्द्रिय एवम् अजेय बालक के समान वृद्ध मान्धाता वहाँ पैदल आ पहुँचे। हे राजन्! गतिशील उस राजा ने म्यान से तलवार निकाल कर कुण्डल-सहित पृथ्वी के सिर पर प्रहार किया। प्रहार किये जाते ही अजर-अमर-शरीरधारिणी पृथ्वी, देव तथा ऋषिगणों से सेवित मानस-क्षेत्र में पहुंची। हे राजन्! तत्काल उसी मार्ग से सुन्दर हिमाचल के घर पहुँच कर पृथ्वी ने वसुधातल को धारण किया। राजर्षे! तब से वह पृथ्वी सभी राजाओं और मनुष्यों के दृष्टि-गम्य हुई। हे राजसिंह! तदनन्तर उस राजा (मान्धाता) ने पृथ्वी को गुप्त हुई समझ कर, देवगणों से पूजित उस क्षेत्र को खोदवाया। फिर अपने ही धनुष से उस क्षेत्र के खोदने पर भी वह रत्नगर्भा वसुन्धरा को प्राप्त न कर सका। किन्तु स्वर्णहंस के रूप में उसने शिवलिङ्ग को देखा एवं विधिपूर्वक पूजन किया। तब त्रिलोकीनाथ योगीश्वर शिव को पूर्व की ओर देखकर वह फिर ध्यानस्थ हो गया। उसके खोदने की जगहों पर नदी निकल पड़ी। ब्रह्मा के रचे हुए तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के अनेक स्थानों से अंकित मानस-क्षेत्र को देख, उस श्रेष्ठ राजा ने बड़ी प्रसन्नता से उस मानस-क्षेत्र को दूसरे समुद्र के समान सौ योजन आयाम वाला एवं साठ योजन चौड़ाई तथा दस योजन गहराई वाला बना दिया। समुद्र को भरने वाले इन्द्र की तरह मान्धाता ने, धनुष की चोटों से उत्पन्न हुए (पृथ्वी से निकलते

---

१. "शिरोवाची शिरोऽवन्तो रजोवाची रजस्तया" इति मेदिनीकोषः।

ततो जलाञ्जलीन् दत्त्वा स राजा कुसुमान्वितम् । शिवलिङ्गस्य शिरसि चिक्षेप नृपसत्तमः ॥६९॥
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । राजानं पूजयामासुर्दृष्ट्वा मानसरोवरम् ॥७०॥
ब्रह्मलोकादिह प्राप्तं विमानं सर्वकामदम् । तमारुह्य स राजर्षिर्जगाम हरिमन्दिरम् ॥७१॥
ततस्तु ऋषयः सर्वे कैलासतलवासिनः । ददृशुर्मानसं राजन् द्वितीयमिव सागरम् ॥७२॥
ऊचुः सर्वे महाराज केनायं मानसं सरः । प्रकाशितः प्रकाश्योऽसौ संशयाविष्टमानसाः ॥७३॥
योगिनामप्यगम्योऽसौ देवपूज्यः सरोवरः । प्रकाशरूपः केनाऽयं कृतः संशेरते द्विजाः ॥७४॥
इति प्रशंसमानानां द्विजानां नृपसत्तमः । अशरीरा ततो वाणी अन्तरिक्षादभाषत ॥७५॥
संशयो नास्ति[1] वै विप्राः शृण्वन्तु मम भाषितम् । सत्ययुक्तं शुभमतं संशयच्छेदकारकम् ॥७६॥
वैवस्वतकुले जातो मान्धाता नाम भूपतिः । तेनाऽयं खनितो विप्रा महता कारणेन च ॥७७॥
प्रकाशितोऽयं तेनैव नदीभिश्चापि ह्यन्वितः ॥७८॥

दत्त उवाच—

तदीरितं[2] समाकर्ण्य खेचराया नृपोत्तम । बभूवुः स्वस्थचित्तास्ते ऋषयो नष्टविभ्रमाः ॥७९॥
तमेव नृपतिं राजँस्तुष्टुवुस्ते न संशयः । लोकानां हितकर्तारं मानसाख्य-प्रकाशतः ॥८०॥
धन्योऽस्ति स नृपो राजन् येनायं मानसः सरः । मनसा निर्मितः पुण्यो ब्रह्मणा हितकारिणा ॥८१॥

हुए) गंगा की जल-धाराओं से, उस क्षेत्र को जलपूर्ण कर दिया। तदनन्तर उस महान् राजा ने पुष्पों सहित जलाञ्जलि देकर शिवलिङ्ग पर पुष्प चढ़ाये। तब मानसरोवर का दर्शन कर प्रसन्नमना देवताओं ने मान्धाता का सम्मान किया। (तत्पश्चात्) सब इच्छाओं की पूर्ति करने वाला विमान ब्रह्मलोक से वहाँ आ पहुँचा। उस पर चढ़कर वह राजर्षि विष्णुलोक को गया। तब कैलास-तल-वासी ऋषियों ने उस मानसरोवर को दूसरे समुद्र के समान देखा। हे महाराज ! इस संबंध में आश्चर्य-चकित हो ऋषिगण परस्पर कहने लगे कि 'प्रकट करने योग्य इस सरोवर को किसने विदित कराया है ? योगियों से भी अगम्य एवं देवताओं से भी पूजित इस सरोवर को किसने प्रकट कराया ? इस सम्बन्ध में ब्रह्मर्षियों के मन में भी सन्देह बना रहा'। इस प्रकार विप्रर्षियों द्वारा मान्धाता की प्रशंसा की जाती रही। हे राजन् ! उसी बीच आकाशवाणी हुई। विप्रर्षियों को सम्बोधित करते हुए आकाशवाणी ने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि आप लोग इस श्रेष्ठ कार्य के सन्दर्भ में सन्देह न करें तथा यथार्थ को जानने के लिये मेरी बात सुनें। "वैवस्वत मनु के कुल में उत्पन्न राजा मन्धाता ने विशेष प्रयोजनवश इस सरोवर को खोदा है। इसके साथ ही नदियों से युक्त इस सरोवर को उसने ही लोक में प्रकाशित किया है" ॥ ४६–७८ ॥

दत्तात्रेय ने पुनः कहा—हे राजश्रेष्ठ ! उस आकाशवाणी को सुनकर उन ऋषियों का सन्देह दूर हो गया तथा वे निश्चिन्त हो गये। तब उन ऋषियों ने मानसरोवर के प्रकट होने से लोकहितकारी उस राजा की यथेष्ट प्रशंसा की। हे राजन् ! वह मान्धाता धन्य है,

---

१. 'संशयो मास्तु' इति 'ख' पुस्तके।   २. 'तदेरितम्' इति 'ख' पुस्तके।

प्रकाशितोऽयं राजर्षे शिवलिङ्गसमन्वितः । स राजा भूतले पुण्ये ख्यातव्यो नाऽत्र संशयः ॥८२॥
ततः प्रभृति राजर्षे मानसाख्यसरोवरः । ज्ञातव्यो मानुषाणां वै बभूव शिवसंयुतः ॥८३॥
ततस्तु मानुषे लोके मानसाख्यं सरोवरम् । स्तुवन्ति मानवाः सर्वे राजानश्चापि भूपते ॥८४॥
ततः प्रभृति मर्त्यानां मानसाख्यः सरोवरः । ऋषिगम्यः सुगम्योऽभूत् गिरिराजशिरोपरि ॥८५॥
मान्धातुश्चरितं राजन् यः शृणोति समाहितः । प्राप्नोति विष्णुभवनं यावदाभूतसंप्लवम् ॥८६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मान्धातुश्चरितं नाम दशमोऽध्यायः ॥

जिसने लोककल्याणकारी ब्रह्मा की इस मानसी सृष्टि को शिवलिङ्ग-सहित प्रकाशित किया। वह राजा इस पुनीत भूमण्डल में निःसन्देह प्रशंसनीय है। हे राजर्षे ! तब से शिवलिङ्ग-सहित इस मानसरोवर का मनुष्यों को ज्ञान हुआ। फिर तो मानव-जगत् में जन-साधारण एवं राजा सभी मानसरोवर की स्तुति करने लगे। उसी दिन से, हिमालय के ऊपरी भाग में स्थित, ऋषियों द्वारा प्राप्य यह दुर्गम मानसरोवर, मानवों के लिये भी सुगम्य हो गया। हे नृपवर ! जो मनुष्य मान्धाता[1] के इस महनीय चरित्र को सावधानतया सुनता है, वह प्रलयकालपर्यन्त वैकुण्ठ में वास करता है ॥ ७९-८६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में मान्धाताचरित नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥

—०:※:०—

---

१. सूर्यवंशी राजा। इसका पिता युवनाश्व था। वह प्रसेनजित् का पुत्र था। वह गौरी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, जो शाप के कारण नदी में परिवर्तित हो गई थी—

"तस्याः प्रसेनजिज्जज्ञे लेभे भार्या पतिव्रता। गौरीनामाभिशप्ता सा नदीभूता तरङ्गिणी ॥
तस्यां प्रसेनजिज्जज्ञे युवनाश्वं महीपतिम् ।" —वह्निपुराणे सगरोपाख्यानाध्यायः ।

'मान्धाता' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह पिता के पेट से उत्पन्न हुआ था। मुनियों ने यज्ञ किया। आधी रात में इष्टि समाप्त होने पर पवित्र जल को वेदी के मध्य रखकर वे ऋषि सो गए। प्यासा युवनाश्व वहाँ पहुँचा। उस पवित्र जल को बिना पूछे पी लिया। प्रातः उठने पर ऋषियों ने पूछा कि जल किसने पिया है ? युवनाश्व ने अपनी भूल मान ली। जल के प्रभाव से युवनाश्व ने ही गर्भ धारण किया। उसकी दाहिनी भुजा तोड़कर गर्भ बाहर किया गया। वह मरा नहीं। उसके बाहर निकलते ही ऋषियों ने पूछा 'कम् एषः धास्यति।' इस पर इन्द्र नीचे उतरा और बोला—'मां धास्यति'। अतः इसका नाम 'मान्धाता' हुआ—

"यावत् सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति। सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते" ॥

११

व्यास उवाच—

मान्धातुश्चरितं पुण्यं श्रुत्वा *काशीपतिस्तदा । पप्रच्छ तमृषिं भूपः सम्पूज्य च पुनः पुनः ॥१॥

धन्वन्तरिरुवाच—

यथा प्रकाशितो योगिन् मानसाख्यः सरोवरः । तथा त्वया समुदितं विस्तरेण न संशयः ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि मानसाख्यस्य वर्णनम् । तत्तीर्थानां च माहात्म्यं देवर्षिगणपूजितम् ॥३॥
सरोवरजलस्यापि माहात्म्यं च शृणोम्यहम् । कस्मात् प्रवेशो योगीश ! निर्गमः कुत्र तैः स्मृतः ॥४॥
के तीर्था गमने तत्र निर्गमे वा त्वया स्मृताः । अगम्यख्यो हि गिरिर्हिमेनेति मया श्रुतम् ॥५॥
विलङ्घ्य गिरिराजानं[1] प्राप्यते मानसः कथम् । एतद्धि संशयं योगिन् छिन्धि मे नात्र संशयः ॥६॥

व्यास उवाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा चिरं ध्यात्वा तदा मुनिः । उवाच वचनं श्रेष्ठं पुण्याख्यानसमन्वितम् ॥७॥

व्यास ने कहा—मान्धाता के महनीय चरित्र को सुन धन्वन्तरि ने महर्षि दत्तात्रेय का यथेष्ट सम्मान कर पुनः जिज्ञासा की ॥ १ ॥

धन्वन्तरि बोले—हे योगिराज ! आपने मानसरोवर के प्रकाशित होने की चर्चा बड़े विस्तार के साथ की, इस में कोई सन्देह नहीं। तथापि मैं अब देवर्षि-गणों से पूजित मानसरोवर एवं उसके अन्तर्गत तीर्थों का वर्णन सुनना चाहता हूँ। (इतना ही नहीं) हे योगीश्वर ! सरोवर के जल की विशेषता तथा उसके प्रवेश एवं निर्गम-मार्ग के सम्बन्ध में पुरातन ऋषियों ने क्या कहा है—यह भी मैं आपसे सुनने का इच्छुक हूँ। आप को प्रवेश-मार्ग के कौन से तीर्थ विदित हैं ? "मैंने तो यह सुना है कि हिमालय पर्वत, सर्वदा हिमपात होने के कारण, दुलंघ्य है।" (ऐसी स्थिति में) गिरिराज को लाँघ कर मानसरोवर कैसे पहुँचा जाय ? हे योगिराज मेरे इस सन्देह को आप अवश्य दूर करें" ॥ २–६ ॥

व्यास ने कहा—धन्वन्तरि की बात सुनकर बहुत देर तक ध्यानगम्य होने के पश्चात् योगिराज दत्तात्रेय ने उस पवित्र आख्यान को कहना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

---

* विष्णु के तेरहवें अवतार, दीर्घतमा या दीर्घतपा के पुत्र, आयुर्वेद के प्रवर्तक तथा केतुमान् के पिता एवं देवताओं के वैद्य, जो पुराणानुसार समुद्र-मन्थन के समय चौदह रत्नों के साथ समुद्र से निकले थे। 'हरिवंशानुसार' जब यह समुद्र से निकले तब विष्णु को देख ठिठक गए और विष्णु ने इन्हें 'अब्ज' कहकर पुकारा और वर दिया कि तुम 'जन्मान्तर में सिद्धि प्राप्त करोगे'। द्वापर में काशिराज (दीर्घतपा) 'धन्व' के घर स्वयम् अब्जदेव का अवतार हुआ। इन्द्र ने आयुर्वेद सिखाकर धन्वन्तरि को लोककल्याणार्थ पृथ्वी पर भेजा। धन्वन्तरि ब्रह्मा के वर से काशी के राजा हुए—

"धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥"

(भागवतम् २-७-२१, विष्णु पु० १-९-९८।१०८)

१. 'टच्'—प्रत्ययाभावः पौराणिकः । 'गिरेर्विलङ्घ्य राजानम्' इति संभाव्यते ।

दत्त उवाच—

शृणु राजन् ! मया प्रोक्तं धर्मकामार्थदं शुभम् । आयुरारोग्यदातारं धनधान्यविवर्धनम् ॥८॥
आख्यानं गिरिराजस्य दैवतैरपि पूजितम् । हिमस्य गुणसंयुक्तं पुण्यमूलं तपोनिधिम् ॥९॥
यथोक्तं हि त्वया राजन् ! तत्तथैव न संशयः । अगम्यरूपो हि गिरिर्वर्तते नृपसत्तम ॥१०॥
तथापि मानुषाणां वै धर्ममार्गरतात्मनाम् । कैलासश्चापि दुर्गम्यो गम्यरूपो हि विद्यते ॥११॥
सन्ति सर्वे महाराज ! दुर्विलङ्घ्या हि पर्वताः। हिमाद्रिस्तु स्वभावेन दुर्विलङ्घ्यो न संशयः ॥१२॥
तथापि त्वां वदिष्यामि[1] तस्य मार्गं न संशयः । यं प्राप्य मृगकीटाद्या व्रजन्ति शिवमन्दिरम् ॥१३॥
अस्त्युत्तरपथे राजन् हिमाद्रिः पर्वतोत्तमः । तस्य पादतले रम्ये नाम्ना कूर्माचलो[2] गिरिः ॥१४॥
तीर्थैश्च बहुभिर्युक्तो[3] मृगपक्षिसमन्वितः[4] । गन्तव्यं तत्र राजर्षे ! यत्र कूर्माचलो गिरिः ॥१५॥
मयूरैः सेवितपदस्तथान्यैः पक्षिराजितः । गण्डकी-लोहसरितोर्मध्ये स्नात्वा महेश्वरम् ॥१६॥
सम्पूज्य नृपशार्दूल ! तथाऽन्यान् देवतागणान् । ततस्तु सरयूतीरे दृष्ट्वा तत्र शिलां शुभाम् ॥१७॥
स्नात्वा तत्र महाराज हंसतीर्थजले शुभे । ततः परं महाभाग सुपुण्यं दारुपर्वतम् ॥१८॥
गत्वा सम्पूज्य लोकेशं जम्बुकाख्यं महेश्वरम् । ततः परं महाराज पातालभुवनेश्वरम् ॥१९॥
गत्वा सम्पूज्य विधिना समुपोष्य दिनत्रयम् । ततः परं महाराज ! रामगङ्गासरिज्जले ॥२०॥
स्नात्वा सम्पूज्य बालीशं तथैव शिवकिंकरान् । ततः परं महाराज[5] पावनाख्यं गिरिं व्रजेत् ॥२१॥

दत्तात्रेय बोले—हे राजन् ! धर्म, अर्थ, काम, आयुष्य तथा आरोग्य के देने वाले तथा देवताओं से पूजित, हिम की महत्ता से परिपूर्ण, पुण्य के मूलभूत एवं तपश्चर्या के निधि-स्वरूप, मेरे द्वारा कहे जाते हुए, हिमालय के चरित्र को आप सुनें। हे राजर्षे ! हिमाचल के अगम्य होने की बात जो आपने कही, वह सर्वथा उचित है। तो भी धर्म पर आस्था रखने वालों के लिये अगम्य कैलास पर्वत भी सुगम हो गया है। हे महाराज ! सभी पर्वतों पर चढ़ना कठिन काम है, किन्तु हिमाचल को पार करना बड़ा कठिन है। फिर भी मैं उस पर चढ़ने का मार्ग आपको बताऊँगा। उस पर पहुँच कर मृग-कीट आदि भी शिवलोक प्राप्त कर लेते हैं। "हे राजन् ! उत्तराखण्ड में पर्वतराज हिमाचल है। उसके चरणों पर 'कूर्माचल' नाम की पर्वतश्रेणी है। यह प्रदेश अनेक तीर्थों तथा वन्य पशु-पक्षियों आदि से संकुलित है। राजन् ! यात्री सर्वप्रथम यात्रा का आरम्भ कूर्माचल पर्वत से करे। इसकी उपत्यका मोर तथा अन्य पक्षियों से सुशोभित है। वहाँ गण्डकी और लोहवती नदियों के मध्य स्नान करने के उपरान्त भगवान् शंकर एवम् अन्य देवताओं का दर्शन कर यात्री सरयू नदी के तट पर शुभ कूर्मशिला को पूजते हुए हंसतीर्थ के जल में स्नान करें। हे महाराज ! तदनन्तर दारुपर्वत है। वहाँ पातालभुवनेश्वर का विधिपूर्वक पूजन कर तीन दिन उपवास करे। तत्पश्चात् रामगंगा में स्नान कर बालीश तथा

---

१. 'तथापि त्वां कथयिष्यामि' इति 'ख' पुस्तके पाठः ।

२. मा० ख० अ० ६४।१२ । तथा 'अचल'-पत्रिका में लेख—पं० कृपाल दत्त जोशी (१९३८)—तंगण-परतंगण राजाओं को हटा कर पाञ्चालराज कूर्मदेव ने अपने अधीन किया ।

३. 'तीर्थैर्बहुविधैर्युक्तः' इति 'ख' पुस्तके । ४. 'मृगपक्षिभिः सेवितः' इति 'ख' पुस्तके पाठः ।

५. 'ततः परं महाभाग' इति 'ख' पुस्तके पाठः ।

सम्पूज्य पावनं देवं पताकाख्यं गिरिं व्रजेत् । पताकेशं हरं तत्र सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ॥२२॥
ततः सितासितासङ्गे कालीशाख्यं महेश्वरम् । गत्वा सम्पूज्य विधिवत् चतुर्दंष्ट्रं गिरिं व्रजेत् ॥२३॥
सम्भाव्य गिरिदंष्ट्रान् तान् पुण्यान् हिमालयोद्भवान् । ततो धर्माश्रमं पुण्यं दृष्ट्वा राजर्षिसत्तम ॥२४॥
धर्मादींल्लोकपालान् वै दृष्ट्वा धर्मपदं शुभम् । धर्मद्वारं तु निष्क्रम्य ततो व्यासाश्रमं व्रजेत् ॥२५॥
कृष्णद्वैपायनं व्यासं सम्पूज्य विधिपूर्वकम् । येनेदं परमं पुण्यं स्कन्दोत्पत्तिसमन्वितम् ॥२६॥
स्कान्दं शिवकथायुक्तं शतसाहस्रिकं शुभम् । खण्डाख्यानसमायुक्तं चरितं[1] जनमेजय ॥२७॥
पूजयित्वा गुरुं व्यासं श्यामामूले तपोऽन्वितम् । आचारहीना अपि जनास्तत्रस्था नृपसत्तम ॥२८॥
ते ज्ञेया व्याससदृशा ऋषिपूज्या न संशयः । यो व्रजेन्नृपशार्दूल पुण्यं व्यासाश्रमात् परम् ॥२९॥
स व्याससदृशो ज्ञेयो हीनोऽप्याचारलक्षणैः । आचारकरणं राजन् यावद् व्यासाश्रमं शुभम् ॥३०॥
प्रोक्तं तावद् वसिष्ठाद्यैः ऋषिभिः सत्यवादिभिः[2] । त्याज्यमाचारकरणं गत्वा व्यासाश्रमात् परम् ॥
जातोऽस्मि देवसदृश इति ब्रूयान्न संशयः । ततः परं महाराज ! कैरलाख्यगिरिं व्रजेत् ॥३२॥
सम्पूज्य कैरलां देवीं पुलोमानं गिरिं व्रजेत् । पुलोमेशं हरं तत्र पुलोमसरमध्यगम् ॥३३॥

शिव के गणों का पूजन कर पावनपर्वत की ओर जाय। वहाँ पावनदेव का पूजन कर ध्वज-पर्वत पर जाय। वहाँ ध्वजेश का पूजन कर धौली और काली के संगम-स्थल पर कालीश की विधिवत् पूजा करे। उसके बाद चतुर्दंष्ट्र (चौंदास) पर्वत की ओर जाय। उस पर्वत के आकार को पवित्र हिमालय के निकले हुए दाँतों की कल्पना कर उनकी पूजा करे। हे राजर्षे ! तत्पश्चात् पवित्र धर्माश्रम एवं धर्मादि लोकपालों का दर्शन कर शुभ धर्मस्थान-स्वरूप धर्मद्वार से निकल कर व्यासाश्रम (व्याँस) पहुँचे। वहाँ विधिपूर्वक कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास की पूजा करे, जिन्होंने देवसेनानी कार्तिकेय की उत्पत्ति के आख्यान का समावेश कर भगवान् शंकर की कथा-सहित अनेक खण्डों और आख्यानों को सम्मिलित कर एक लाख श्लोकों में स्कन्दमहापुराण[3] की रचना की है। हे राजश्रेष्ठ ! वहाँ श्यामा (काली) नदी के मूल में स्थित, तपश्चर्या में लीन, गुरु व्यास का पूजन करे। यद्यपि वहाँ के निवासी विशेष नियमादि का पालन नहीं कर पाते तथापि व्यास के समान समझे जायँ। वे निःसन्देह ऋषियों के समान आदरणीय हैं। हे राजसिंह ! जो व्यक्ति व्यासाश्रम से आगे पवित्र स्थल की ओर गया, उसे विशेष नियमादि का पालन न करने पर भी व्यास के सदृश पूज्य माना जाय। राजन् ! व्यासाश्रम-पर्यन्त ही विशेष नियमों का पालन करने के सम्बन्ध में सत्यवादी वसिष्ठ आदि ऋषियों ने कहा है। व्यासाश्रम से आगे जाकर विशेष नियमादि के पालन का आग्रह छोड़ दे। इसके साथ ही 'मैं देवसदृश हूँ' इस प्रकार भावना करे। हे महाभाग ! तदनन्तर कैरल पर्वत पर देवी का पूजन कर पुलोमन् पर्वत की ओर जाय। वहाँ पुलोमा-सरोवर के मध्य में स्थित पुलोमेश का पूजन

---

१. 'रचितं जनमेजय' इति 'ख' पुस्तके। २. 'सत्यकारिभिः' इति 'ख' पुस्तके पाठः।

३. अद्यावधि प्रकाशित स्कन्दपुराण में ८१००० श्लोक-संख्या का निर्देश मिलता है। द्रष्टव्य—
"यत्र माहेश्वरान् धर्मान् अधिकृत्य च षण्मुखः । कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं चरितैरुपबृंहितम् ॥
स्कान्दं नाम पुराणं वै तदेकाशीति गद्यते । सहस्राणि शतं चैकम् इति मर्त्येषु गद्यते ॥"
—मत्स्यपुराणम्, ५३ अध्यायः।

सम्पूज्य नृपशार्दूल तारकाख्यं गिरिं व्रजेत्। तारिण्याः शारदायाश्च सङ्गमे नृपसत्तम ॥३४॥
स्नात्वा सम्पूज्य देवेशं तारकेशं महेश्वरम्। पुण्यसिद्धगणानां वै गुहासु बहुलासु च[1] ॥३५॥
दृष्ट्वा सम्भाव्य सिद्धान् तान् तथान्यान् देवतागणान्। ततः परं महाराज! सीमामायतनीं व्रजेत् ॥३६
मुण्डनं चोपवासं च कृत्वा तत्र प्रयत्नतः। तथा महामहानां च ततो गौरीगिरिं व्रजेत् ॥३७॥
गौर्याः सुगह्वरं पुण्यं दृष्ट्वा तां पूज्य पार्वतीम्[2]। दृष्ट्वा गौरीगिरिं प्राप्तमात्मगोत्रसमुद्भवम्॥३८॥
वदन्ति पितरः सर्वे वैकुण्ठं प्राप्नुमो वयम्। यदि स्नान्ति कुले जाता मदीयेति वदन्ति हि ॥३९॥
व्रजाम तर्हि वैकुण्ठं पुण्ये मानसरोवरे। परस्परमथागत्य वदन्ति पितरः शुभम् ॥४०॥
व्रजामश्चाद्य वैकुण्ठं विमानमधिरुह्य वै। सुहृत्सम्बन्धिभिः सार्धं यमालयगतैरपि ॥४१॥
कुलजस्नानपूता वै तर्पिताः कुलजेन वै। प्राप्स्यामो देवभवनं देवेन्द्रं प्रति मोदितम् ॥४२॥
श्राद्धं कृत्वा च राजर्षे सुपुण्ये गौरिगह्वरे। तर्पयित्वा पितॄन् सर्वान् मृतसम्बन्धिबान्धवान् ॥४३॥
ततो गौरीगिरिं पुण्यं विलङ्घ्य नृपसत्तम। व्रजेत् सरोवरं पुण्यं राजहंसैः सुसेवितम् ॥४४॥
स्नात्वा तत्र यथान्यायम् उपोष्य च दिनत्रयम्। दृष्ट्वा देवं हंसमयं शंकरं नृपसत्तम ॥४५॥
ततस्तु तर्पयेत् सर्वान् पितॄन् स्वान् मानवोत्तमः। अपुत्रान् गोत्रजान् सर्वान् तर्पयेत् सुसमाहितः॥४६॥
आब्रह्मभुवनाल्लोका देवर्षिपितृमानवाः। तृप्यन्ति पितरः सर्वे तर्पिता मानसे जले ॥४७॥
यस्य कस्यापि नाम्ना वै जलं मानसरोवरे। दत्तं स ब्रह्मभुवनं प्राप्नोति मनुजेश्वर ॥४८॥
तावद्यमालये वासो मानुषाणां दुरात्मनाम्। यावन्न मानसक्षेत्रे ददाति कुलजो जलम् ॥४९॥
यस्य वै दर्शनाद् राजन् वाजपेयफलं शुभम्। प्राप्नुवन्ति जनाः सर्वे म्लेच्छाश्चाचारवर्जिताः॥५०॥
तर्पिताः पितरस्तत्र किं न प्राप्स्यन्ति वैष्णवम्। पदं हि नृपशार्दूल मानसे क्षेत्रनायके ॥५१॥
सन्तर्प्य च पितॄन् सर्वान् पूजयित्वाथ शङ्करम्। ततः प्रक्रमणं कार्यं मानसाख्यस्य वै नृप ॥५२॥

कर तारक पर्वत की ओर चले। हे राजर्षे! वहाँ तारिणी और शारदा के संगम में स्नान कर तारकेश शिव की पूजा करे। हे महाराज! तत्पश्चात् अनेक सिद्ध पुरुषों की गुहाओं को देखते हुए उन सिद्ध पुरुषों एवम् अन्य देवताओं का दर्शन कर विस्तृत (चैत्य) सीमा को ओर प्रवेश करे। वहाँ प्रयत्नपूर्वक मुण्डन, उपवास तथा महात्माओं का दर्शन कर गौरीगिरि को जाये। वहाँ गौरी की गुफा को देख पार्वती का पूजन करे। गौरी पर्वत में आए हुए व्यक्ति को देखकर पितृगण इस प्रकार कहते हैं कि "यदि हमारे कुल का कोई व्यक्ति मानसरोवर में जाकर स्नान करे तो हम लोग यमलोक में रहते हुए भी सद्यः स्वर्ग को चले जायेंगे। तथा अपने वंशजों द्वारा किये गए स्नान से पवित्र एवं उनके तर्पण से तृप्त होते हुए हम इन्द्र से सम्मानित होकर वैकुण्ठ प्राप्त करेंगे।" हे राजर्षे! पवित्र गौरीगुहा में समग्र पितरों तथा अन्य मृत सम्बन्धियों का यथाविधि श्राद्ध एवं तर्पण करने के पश्चात् गौरीपर्वत को पार कर राजहंसों से सेवित मानसरोवर की ओर जाये। हे नृपश्रेष्ठ! वहाँ भी विधिपूर्वक स्नान एवं तीन दिन उपवास कर, हंसस्वरूप भगवान् शंकर का दर्शन करे। तब अपने पितरों तथा पुत्र-रहित गोत्रजों का सावधानी के साथ तर्पण करे। मानसरोवर के जल में तर्पण करने से ब्रह्मलोक से लेकर देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य—सभी तृप्त हो जाते हैं। हे नरपते! जिस किसी के नाम से मानसरोवर में जल दिया जाय—वह व्यक्ति ब्रह्मलोक को प्राप्त करता

---

१. "गुहासु बहुला प्रभो" इति 'ख' पुस्तके। २. "दृष्ट्वा सम्पूज्य पार्वतीम्" इति 'ख' पुस्तके।

ततो गङ्गाप्रवाहेषु स्नात्वा चैव पुनः पुनः । विष्णुपादाङ्कितां भूमिं सम्पूज्य च जनेश्वर ।।५३।।
ततो देवप्रयागाख्यं गत्वा सम्पूज्य शङ्करम् । विसृज्य मानसं क्षेत्रं सम्भाव्य च ऋषींस्तथा ।।५४।।
कथितं हि महाभाग ! प्रवेशं मानसःसरे । निर्गमं कथयिष्यामि[1] शृणुष्व सुसमाहितः ।।५५।।
ततो व्रजेन्महापुण्यं नाम्ना लङ्कासरं[2] शुभम् । तत्र स्नात्वा महाराज लङ्केशस्यापितं शिवम् ।।५६।।
दृष्ट्वा सम्पूज्य विधिवत् तत्र निष्क्रमणं शुभम्[3] । ततस्तु शारदामूले स्नात्वा सम्पूज्य शङ्करम् ।।५७।।
उपोष्य च यथान्यायं वरं निष्क्रमणं स्मृतम् । ततः परं महाराज तीर्थं खेचरसंज्ञकम् ।।५८।।
गत्वा सम्भावयेत् सर्वान् खेचरान् देवनायकान् । मुण्डनं चोपवासं च कृत्वा तत्रैव भूपते ।।५९।।
पूजयित्वा यथान्यायं प्रभविष्णुं महेश्वरम् । गत्वा ब्रह्मकपालं वै परं निष्क्रमणं स्मृतम् ।।६०।।
ततश्छायान्वितं क्षेत्रं गत्वा वै नृपसत्तम । छायाक्षेत्रेश्वरं देवं पूजयित्वा प्रयत्नतः ।।६१।।
तत्र रामसरे स्नात्वा तथैव ऋणमोचनम् । तथा ब्रह्मसरे स्नात्वा परं निष्क्रमणं स्मृतम् ।।६२।।
ततः परं शिवयुतं खलमुक्तिकरं शुभम् । गत्वाथ नृपशार्दूल परं निष्क्रमणं स्मृतम् ।।६३।।
ततो नन्दगिरिं पुण्यं स्नात्वा नन्दासरे शुभे । गत्वा सन्तर्पयेद् देवान् पितॄंश्चापि प्रयत्नतः ।।६४।।
ततो व्रजेन्महाराज वैद्यनाथं महेश्वरम् । दृष्ट्वाऽथ मालिकां देवीं वरदां लोकपूजिताम् ।।६५।।
वृद्धगङ्गाजले पुण्ये स्नात्वा सम्पूज्य मालिकाम् । सम्पूज्य वैद्यनाथेशं परं निष्क्रमणं स्मृतम् ।।६६।।

है। दुरात्मा लोग यमलोक में तब तक वास करते हैं जब तक उनका कोई वंशज मानसरोवर में जल नहीं देता। हे राजन् ! जिस मानसरोवर का केवल दर्शन करने से म्लेच्छ तथा आचारहीन लोग भी जब वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं, तो वहाँ तर्पण किये गए पितृगण वैकुण्ठ-लोक को क्यों न प्राप्त करें ? (इस प्रकार) पितृ-तर्पण एवं भगवान् शंकर का पूजन कर मानसरोवर की परिक्रमा आरम्भ करे। हे राजन् ! तब गंगा की धाराओं में पुनः पुनः स्नान तथा भगवान् विष्णु के चरणों से अंकित भूमि का पूजन करते हुए देवप्रयाग नामक शंकर का अर्चन करने के पश्चात् मानस-क्षेत्र को छोड़ ऋषियों का पूजन करे। हे राजन् ! मानसरोवर का प्रवेशमार्ग तो मैं ने इस प्रकार बतलाया। अब मैं निर्गममार्ग बतलाऊँगा, उसे आप सावधानी के साथ सुनें। तब यात्री आगे बढ़कर रावणह्रद की ओर जाय। वहाँ स्नान कर रावणद्वारा स्थापित शंकर का विधिपूर्वक पूजन कर निष्क्रमण करे। वहाँ से चलकर शारदा नदी के उद्गम-स्थान में स्नान एवं भगवान् शंकर का पूजन कर वहाँ आगे से चले। हे महाराज ! वहाँ से आगे खेचर[4] नामका तीर्थ है। वहाँ समग्र खेचर नायकों का पूजन तथा मुण्डन, उपवास आदि विधि-विधान करते हुए भगवान् शंकर की पूजा करने के पश्चात् ब्रह्मकपाल में पहुँच कर वहाँ से निकल जाना कहा है। तत्पश्चात् छायाक्षेत्र में पहुँचकर छायाक्षेत्रेश्वर का पूजन करे। फिर रामसरोवर, ऋणमोचन एवं ब्रह्मसरोवर में स्नान कर वहाँ से प्रस्थान करे। तदनन्तर कल्याणप्रद, खलों के मुक्तिदातातीर्थ में जाकर वहाँ से आगे चलने का उपक्रम करे। तब नन्दपर्वत पर स्थित शुभप्रद नन्दा-सरोवर में स्नान करने के उपरान्त देव-पितृ-तर्पण आदि से निवृत्त हो वैद्यनाथ तथा वरदात्री एवं लोक-पूजनीया मालिका देवी के दर्शनार्थ यात्रा करे। वहाँ वृद्ध-गंगा के पावन जल में स्नान कर मालिका तथा वैद्यनाथ का पूजन कर प्रस्थान करे। फिर वह्निज्वाला-

---

१. "निर्गमं च कथयिष्यामि" इति 'ख' पुस्तके पाठः। २. "लङ्कासरः" इति 'ख' पुस्तके पाठः।
३. "स्मृतम्" इति 'ख' पुस्तके। ४. खेचरनाथ।

ततो ज्वालामयं तीर्थं वह्निज्वालासमन्वितम्। गत्वाऽय नृपशार्दूल स्नात्वा रुद्रावतीजले ॥६७॥
पूजयेत्त्वानलं देवं विधिदृष्टेन कर्मणा। तत्र पद्मावतीं पुण्यां स्नात्वा निष्क्रमणं स्मृतम् ॥६८॥
कथितं हि महाराज परं निर्गमनं यथा। एवं वै कुरुते यस्तु श्रृणु तस्यापि तत्फलम् ॥६९॥
अश्वमेधसहस्रेभ्यस्तस्य पुण्यं शताधिकम्। सहस्रगुणितं तस्य काशीवासान्न संशयः ॥७०॥
एकतः सर्वतीर्थानि दानानि विविधानि च। एकतो मानसं क्षेत्रं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् ॥७१॥
सर्वतीर्थेषु यत् पुण्यं काशीवासेऽपि यत् फलम्। तस्मात् सहस्रगुणितं फलमाप्नोति दर्शनात् ॥७२॥
सहस्रगुणितं पुण्यं वाजपेयान्नरेश्वर। दर्शनात् फलमाप्नोति मानसाख्यस्य वै तथा ॥७३॥
अश्वमेधाल्लक्षगुणं मानसाख्यस्य दर्शनम्। फलमाप्नोति राजर्षे! सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥७४॥
शतवर्षसहस्राणि काशीवासफलं समम्। दर्शनात् मानसाख्यस्य प्राप्नुवन्ति जनाधिप[1] ॥७५॥
तत्र गत्वा महाराज देहेनानेन चारुणा। व्रजिष्यसि विष्णुगृहं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥७६॥
तेन मार्गेण राजानो [2]मरुत्तप्रभृतयोऽपरे। गत्वा[3] स्वेनैव देहेन वैकुण्ठ-भुवनं प्रति ॥७७॥
तीर्थाख्यानसमायुक्तं मानसाख्यापनं शुभम्। यः पठेत् प्रातरुत्थाय श्रृणुयाद्वा समाहितः ॥७८॥
स प्राप्य देवभवनं[4] देववन्मोदते प्रभो ॥७९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मानसयात्रा-प्रवेश-निर्गमनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥

समन्वित ज्वालामय तीर्थ में पहुँच रुद्रावती में स्नान कर विधिपूर्वक अग्निदेव का पूजन करे। पद्मावती में स्नान करने के पश्चात् वहाँ से आगे बढ़े। हे महाराज! मैंने (इसप्रकार) आपको निर्गमन-मार्ग बतलाया। इस प्रकार सम्पन्न होने वाली यात्रा के शुभ फल को भी आप सुनें। निःसन्देह हजारों अश्वमेध यज्ञ करने से सौगुना तथा काशीवास से हजारगुना अधिक इसका फल है। एक ओर तो सब तीर्थ, दान और दूसरी ओर (उनकी तुलना में) सब क्षेत्रों में श्रेष्ठ मानस-क्षेत्र है। सब तीर्थों एवं काशीवास से जो फल मिलता है उससे हजार गुना अधिक फल मानस-क्षेत्र के दर्शन से प्राप्त होता है। हे राजर्षे! (कहाँ तक कहें) वाजपेय यज्ञ से हजार गुना तथा अश्वमेध यज्ञ से लाख गुना अधिक फल मानसक्षेत्र के दर्शन से निःसन्देह प्राप्त होता है। यह मैं आपसे सच कहता हूँ। मानस-क्षेत्र के दर्शन-मात्र से एक लाख वर्ष तक काशीवास का फल प्राप्त होता है। हे राजन्! वहाँ जाकर प्राणी जनन-मरण के बन्धन से छूट जाते हैं तथा शरीर-दुर्लभ वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करेंगे। इसी मार्ग से मरुत्त प्रभृति राजा सदेह वैकुण्ठ गए। तीर्थों की कथा से समन्वित मानसक्षेत्र के आख्यान को जो प्रातः उठकर स्वस्थचित्त हो श्रवण करता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त कर देवताओं के समान प्रमुदित होता है। ८-७९॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में मानस-यात्रा-प्रवेश तथा निर्गमन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. "प्राप्नुवन्ति जना भुवि" इति 'ख' पुस्तके। २. चन्द्रवंशयराजविशेषः। स च अवीक्षिद्राजपुत्रः। यथा—
क्रौष्टुकिरुवाच—अवीक्षितस्य नृपतेर्मरुत्तस्य महात्मनः। श्रोतुमिच्छामि चरितं श्रूयते सोऽतिचेष्टितः॥
चक्रवर्ती महाभागः शूरः क्षान्तो महामतिः। धर्मविद्धर्मकृच्चैव सम्यक् पालयिता भुवः॥
मार्कण्डेय उवाच—स पित्रा समनुज्ञातो राज्यं प्राप्य पितामहात्। धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥
इयाज सुमहायज्ञान् यथावत् प्राज्यदक्षिणान्। ऋत्विक्-पुरोहितादेशाद् अनिर्विण्णो महीपतिः॥
तस्याप्रतिहतं चक्रम् आसीद् द्वीपेषु सप्तसु। गतयश्चाप्यविच्छिन्नाः स्वःपातालजलादिषु॥"
—मार्कण्डेयपुराणे १०३ अध्यायः।

३. "गताः" इति 'ख' पुस्तके पाठः। ४ "ब्रह्मभवनम्" इति 'ख' पुस्तके।

१२

व्यास उवाच—

इति श्रुत्वा स राजर्षिः मार्गं तीर्थ-समन्वितम् । प्रवेशं निर्गमं चैव श्रुत्वा दत्तमथाब्रवीत् ॥१॥

धन्वन्तरिरुवाच—

प्रवेशं निर्गमं चापि श्रुतं योगीन्द्रसत्तम । पुनर्मानसमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २ ॥

दत्त उवाच—

साधु साधु महाराज त्वया पृष्टं हि शोभनम् । तदहं कथयिष्यामि शृणुष्व सुसमाहितः ॥३॥
मानसाख्य-समं तीर्थं त्रैलोक्ये नेक्षितं मया । यत्र स्नानेन राजर्षे विष्णोः सायुज्यमश्नुते ॥४॥
स्पर्शनात् शंकरपदं पानात् ब्रह्मपदं शुभम् । प्राप्यते राजशार्दूल मानसेयजलस्य च ॥ ५ ॥
पूजनाच्छिवलिङ्गस्य स्वर्णहंसमयस्य च । प्राप्येन्द्रपदवीं राजन् मोदते देववद् दिवि ॥ ६ ॥
अत्रैवोदाहरन्तीवमितिहासं पुरातनम् । शुकानामपि संवादं हंसस्य च महामते ॥ ७ ॥
पुरा कृतयुगस्यादौ काम्पिल्ये नगरोत्तमे । बभूवुर्नृपशार्दूल शुका वै नीडवासिनः ॥ ८ ॥
चैत्रको नाम राजर्षे ! शुकाध्यक्षो बभूव ह । नीतिज्ञस्तपशास्त्राणां[1] पक्षिणां हितकारकः ॥९॥
बभूवुस्तत्सुता राजन्दुर्विनीताः कुलाधमाः । पक्षिणां चाहिते युक्ताः पितुर्बलविनाशकाः ॥१०॥
शौनको बलकश्चापि हेमशृङ्गो हयस्तथा । बभूवुस्ते दुराचारा निजस्वसृपरायणाः ॥ ११ ॥
कामदग्धेन मनसा रेमिरे नीडवासिनः । ततः कालेन महता पिता तेषां नरेश्वर ॥ १२ ॥
पञ्चत्वमाप दुःखेन पुत्राणां कामचारिणाम् । [2]पितुर्ध्वदैहिकं राजन्कृत्वा कामपरायणाः ॥१३॥

व्यास ने कहा—तीर्थों के मार्ग तथा मानसरोवर के प्रवेश और निर्गम मार्ग को सुन कर काशिराज ने दत्तात्रेय से इस प्रकार निवेदन किया ॥ १ ॥

धन्वन्तरि बोले—हे योगिश्रेष्ठ ! मैंने अच्छी तरह प्रवेश तथा निर्गम-मार्ग को तो जान लिया । अब मैं मानस के माहात्म्य को वस्तुतः जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥

दत्तात्रेय ने कहा—राजन् ! आप धन्य हैं, आपने प्रश्न भी बड़ा अच्छा किया है । मैं आपको बतलाता हूँ । आप ध्यान-पूर्वक सुनें । मैंने तीनों लोकों में मानस के समान तीर्थ कहीं भी नहीं देखा । वहाँ स्नान करने से विष्णु-लोक प्राप्त होता है । मानस के स्पर्श से शिवपद, जल-पान करने से ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है । सुवर्ण-हंस-युक्त शिवलिङ्ग का पूजन करने से मानव इन्द्रपद प्राप्त कर देवों के समान स्वर्ग में आनन्द पाता है । इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास उद्धृत किया जाता है । पहले सत्ययुग के आरम्भ में काम्पिल्य नाम का नगर था । वहाँ घोसलों में तोते रहा करते थे । हे राजन् ! उनमें से एक चैत्रक नाम का सुग्गों का राजा था । वह नीति एवं शास्त्रों का ज्ञाता था । पक्षियों का हितकारी भी था । किन्तु उसके बच्चे दुराचारी, कुलाधम, पक्षियों के अहितकर्ता एवं अपने पिता की शक्ति के नाशक भी थे । उसकी सन्तति में शौनक, बलक, हेमशृंग तथा हय नामक तोते बड़े दुराचारी, स्वार्थपरायण तथा काम-पीडित हो घोंसले में रमण किया करते थे । कुछ समय बाद उनका पिता अपने सभी पुत्रों के दुःख से मर गया । पिता का और्ध्वदैहिक कृत्य समाप्त कर वे पुनः वन में क्रीडा-

---

१. "नीतिज्ञो नयशास्त्राणाम्" इति 'ख' पुस्तके । अयं पाठः युक्तियुक्तः प्रतीयते ।

२. 'पित्रोर्ध्वदैहिकम्' इत्यपेक्ष्यते ।

वने वने स्वस्वस्त्रा वै सह चिक्रीडिरे[1] हि ते। एकदा ते दुराचारा व्याधेन सह वै नृप ॥१४॥
विचक्रुर्मिलनं सर्वे पक्षिनाशाय चञ्चलाः। मिलित्वा तं महाव्याधमूचुस्ते पापकारिणः ॥१५॥
त्वमस्मभ्यं महाव्याध दद[2] शालीन्यथोचितान्। तुभ्यं पक्षिगणान्सर्वान्दास्यामो नात्र संशयः॥
व्याधस्तद्वचनाद्राराजन्दत्त्वा शालीन्बुभुक्षितान्। शुकान्दुर्वृत्तिसंजातान्तानात्महितकारकान्॥
ततस्तेऽपि पक्षिगणान् प्रतार्य नृपसत्तम। ददुर्व्याधाय मूढाय कुलान्तकारकाय च ॥ १८ ॥
निक्षिप्य व्याधस्तान्सर्वाञ्जाले नीत्वा गृहं ययौ। शब्दश्वासादिरहितान्कृपणान्नृपसत्तम ॥१९॥
भुक्त्वा धान्यान्[3]समादाय पुनस्तेषां गृहं ययौ। तेऽपि सर्वान्पक्षिगणान्प्रतार्य नृपसत्तम ॥२०॥
ऊचुः प्रीतिमतीं वाणीं मन्त्रयित्वा स्वकान्स्वकान्। व्याधोऽस्माकं गृहागत्य जालमाक्षिपति ध्रुवम्।
छेदिष्यामायतं[4] जालं भवद्भ्यो यदि रोचते। भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमग्रे वै यदि रोचते ॥२२॥
वयं तत्रागमिष्यामः पाशच्छेदादनन्तरम्।

दत्त उवाच—

इति तेषां तथ्यमतं ज्ञात्वा ते पक्षिषूत्तमाः ॥ २३ ॥

जालं प्रति महाराज आजग्मुस्ते प्रतारिताः[5]। जालच्छेदे प्रसक्तास्ते न शेकुर्जालच्छेदनम् ॥२४॥
स्थगितास्तत्र ते सर्वे जाले निपतिता भुवि। अथ तान्पतिताञ्ज्ञात्वा नीत्वा व्याधो गृहं ययौ॥
तेषां मांसेन राजर्षे कुटुम्बं स्वमतर्पयत्। अनेनैव विधानेन शुकाः पापपरायणाः ॥ २६ ॥
हत्वा पक्षिगणान्सर्वान् ददुर्व्याधाय वै नृप। अथ कालेन राजर्षे नष्टान्यासन् कुलानि वै ॥२७॥
पक्षिणां सारसादीनां तथा हंसादिनामपि[6]। पक्षिहीनं वनं ज्ञात्वा व्याधस्तान्नृपसत्तम ॥२८॥

सक्त रहते थे। इसी बीच उनकी एक बहेलिये से भेट हो गई। सब ने मिलकर उस दुराचारी व्याध से यह कहा कि 'तुम हमें खाद्यसामग्री दो और (उसके बदले में) हम तुम्हें पक्षियों को देंगे'। यह सुनकर व्याध ने उन—भूखे, दुराचारी एवम् अपने ही अहितकारी—शुकों को खाद्य-सामग्री दी। तब उन्होंने सब पक्षियों को खिला-पिला कर अपने कुल-नाशक व्याध को दे दिया। निःशब्द श्वासरहित एवं कृपण इन पक्षियों को व्याध जाल में रखकर अपने घर ले गया। उन्हें चारा आदि देकर वह पुनः उनके घर गया। वे तोते भी सब पक्षियों को ठग कर आपस में मन्त्रणा कर बड़े प्रेम के साथ कहने लगे कि व्याध हमारे घर आकर अवश्य जाल फैलायेगा। यदि आपको अच्छा लगे तो हम उसके जाल को काट दें, किन्तु उसके लिये आप को अग्रसर होना पड़ेगा। हम सब जाल काटने के बाद यहाँ आ जायेंगे ॥ ३–२२ ॥

दत्तात्रेय ने कहा—इस प्रकार उनकी बातों में आकर वे पक्षी जाल की ओर गए, किन्तु जाल काट न सके। श्रान्त होकर वे सब जाल में फँस गए और व्याध उन सबको अपने घर ले गया। राजर्षे! उनके माँस से अपने कुटुम्बियों को तृप्त किया। इस प्रकार दुराचारी शुकों ने सब पक्षियों का विनाश कर व्याध को अर्पित कर दिया। कुछ समय बीतने पर उनके एवं सारस, हंस आदि पक्षियों के कुल नष्ट हो गये। तब वन को पक्षि-रहित जान कर उस व्याध

---

१. आत्मनेपदप्रयोगः आर्षः। २. 'ददस्व' इति पाणिनि-सम्मतं रूपम्। ३. अत्रापि पुंस्त्वम् आर्षम्।
४. 'छेत्स्याम आयतं जालम्' इत्यर्थे प्रयुक्तः। ५. 'प्रजग्मुस्ते प्रतारिताः' इति पाठोऽपेक्ष्यते।
६. 'हंसादीनाम्' इति सम्भाव्यते। छन्दसो रक्षणे पञ्चमवर्णस्य लघुत्वमपेक्ष्य ह्रस्वो वर्णः प्रयुक्तः।

न ददौ पुण्यभोग्यानि धान्यानि विविधानि च। ततस्ते व्याधमार्गं वै ददृशुः शोककातराः ॥२९॥
क्षुत्क्षामा म्लानवदनाः कुलहीना-भवन्नृप[1]। गन्तुं ग्रामान्तरं राजन्न शक्तात्मकुलं[2] विना ॥३०॥
दुर्धरं मानुषैः सर्वैश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम्। कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहं च पातकम् ॥ ३१ ॥
ततोऽस्माभिः कृतं प्रोचुः शुकास्ते नृपसत्तम। एवं विलप्यमानास्ते क्षुधार्ता नृपसत्तम ॥३२॥
त्यक्त्वा नीडं सुरुचिरं[3] ययुर्ग्रामान्तरं शुभम्। न प्रापुर्भोजनं तत्र क्षुत्क्षामा नृपसत्तम ॥ ३३ ॥
तस्मात्सरं शीतजलं ययुस्ते चैत्रकाङ्गजाः[4]। हन्म्येतानिति संचिन्त्य व्याधस्तदनु वै नृप ॥३४॥
जगाम जालं नीत्वा वै तत्रैव सरसां वरे[5]। शुकाश्च राजशार्दूल सरे हंसं तपस्विनम् ॥ ३५ ॥
ददृशुर्ध्यायमानं तं वृद्धं पक्षविवर्जितम्। ध्यायन्तं मानसं पुण्यं तपोनिश्चलचेतसम् ॥ ३६ ॥
पूजितं गणगन्धर्वैर्हिंसापापादिवर्जितम्। तं दृष्ट्वा तु [6]शुकाः सर्वे क्षुधाखेदादिवर्जिताः ॥३७॥
बभूवुर्नृपशार्दूल चत्वारो भगिनीसुताः। ततस्तं पूजयामासुर्हंसं ते शुकनायकाः ॥ ३८ ॥
ध्यानमार्गरतं शुद्धं देहवन्तं हरिं यथा। पप्रच्छुस्ते सुखासीनं स्मृत्वा पापान्यनेकशः ॥ ३९ ॥
स्वस्वसृगमनाद्यानि जन्मान्तरकृतानि च ॥ ४० ॥

शुका ऊचुः—

पृच्छामो हंसं त्वां शुद्धं[7] ध्यायन्तं लोकपूजितम्। सुपुण्यैः[8] पुण्यदेहं वै देवगन्धर्वपूजितम् ॥४१॥
द्विजराज शृणुष्व त्वं शुकानां पातकं महत्। अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानमार्गविरोधिनाम् ॥४२॥

ने उन्हें अच्छा धान्य देना बन्द कर दिया। इस प्रकार वे शुक दुःखी हो व्याध की बाट देखते रहे। हे राजन्! भूख से पीड़ित मुर्झाये मुँहवाले एवं कुल-विनाशक वे पक्षी दूसरे ग्राम को जाने में भी असमर्थ रहे। वे सब बड़ी चिन्ता में पड़ गए और सोचने लगे कि हम कुल-विनाश के दोषी और मित्रद्रोह करन के पापी हैं। इस तरह क्षुधा से पीडित हो वे परस्पर विलाप करने लगे। अपने सुन्दर घोंसलों को छोड़ कर वे दूसरे स्थान को तो चले गए, किन्तु उन्हें वहाँ भी खाना नहीं मिला। फिर वे वहाँ से शीतल जलवाले सरोवर की ओर चले, किन्तु उनके मारने के विचार से बहेलिये ने भी उनका पीछा किया। उसने सरोवर के किनारे जाल फैला दिया। वहाँ पर शुकों ने पंखों से रहित एक वृद्ध हंस को तपस्या करते हुए ध्यानमग्न देखा। गन्धर्वों से पूजित एवं हिंसा तथा पापकृत्यों से विरत उस हंस को देखकर वे शुक अपनी भूख और दुःख को भूख गए। अपनी भगिनी में अनुरक्त वे चारों शुक उस हंस की पूजा करने लगे। वहाँ ध्यानमग्न तथा विष्णु भगवान् के समान शुद्ध देहधारी उस हंस को देखकर अपनी भगिनी में अनुराग-सम्बन्धी तथा पूर्व जन्म में किये हुए पापों आदि का स्मरण करते हुए उन शुकों ने हंस से उस सम्बन्ध में जिज्ञासा की ॥ २३–४० ॥

शुक बोले—आप लोक में सम्मानित एवं ध्यान परायण हैं। तथा सत्कर्मों से देव-गन्धर्व आदि से पूजित पवित्र शरीर को धारण किये हुए हैं। अतः हम आप से कुछ पूछना चाहते हैं। पहले आप हमारे दुराचरणों को सुनें। ज्ञान के विरोधी अज्ञानान्धकार में पड़े हुए हम

---

१. छन्दोभङ्गभिया अत्रापि सन्धिः आर्षः। 'कुलहीना अभवन्' इत्यपेक्ष्यते। २. अत्रापि सन्धिः आर्षः।
३. 'सुरचितम्' इति 'क' पुस्तके। ४. 'चैत्रकसुताः' इति 'ख' पुस्तके।
५. 'सरसान्तरे' इति 'क' पुस्तके। ६. 'दृष्ट्वाऽऽशु' इति 'क' पुस्तके।
७. 'वृद्धं' इति 'ख' पुस्तके। ८. 'स्वपुण्यैः' इति 'ख' पुस्तके।

दृष्ट्वा त्वद्दर्शनं पुण्यमस्माभिः पातकं स्मृतम्[१] । ऐहिकं प्राक्तनं चापि दुःखदं चान्यजन्मसु ॥४३॥
मानुषाणां दुष्कृतिनां पातकानां क्षयं कथम् । कुलद्वेषकराणां च जायते हंसनायक ॥४४॥

दत्त उवाच—

तेषां हि तन्मतं ज्ञात्वा शुकानां नृपसत्तम । उवाच वचनं हंसः वाचा चामृतपूर्वया ॥ ४५ ॥

हंस उवाच—

सन्ति पापान्यनेकानि मानुषे शुकसत्तमाः ।
तेषां जन्मान्तरे भोगो जायते नात्र संशयः । जन्मान्तरकृतानां हि भोगश्चात्रैव भुज्यते ॥४६॥
जन्मन्यस्मिन् कृतं पुण्यं भुज्यते चान्यजन्मनि । अत्रैवोशनसा गीतं शृण्वतां पक्षिसत्तमाः ॥४७॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः । चक्षुःश्रोत्राणि जीर्यन्ति[२] तृष्णैका तरुणायते॥
कुर्वन्ति तृष्णया पापं मानवा मानवाधमाः । तृष्णया मातृगमनं तृष्णया कलहः स्मृतः ॥४९॥
द्वन्द्वादिकारणं सर्वं तृष्णया एव भूयते[३] । चक्षुर्मार्गं प्राणसुखं श्रोत्राणि[४] मार्गगामिनः ॥५०॥
तृष्णाचौरसमुत्पन्ना मानुषाणां दुरात्मनाम् । भुञ्जन्ति पञ्चभूतानि तत्साक्षी मानवः स्मृतः ॥
ततः सर्वं कर्मफलं जन्मान्ते पापकारिभिः । भुज्यते नात्र सन्देहो जन्मान्तरशतोद्भवम् ॥५२॥
मनसा शाम्यते तृष्णा श्रोत्रैश्चक्षुः प्रशाम्यते । मनो बुद्ध्या प्रशाम्येत देहश्रेयेप्सुभिर्नरैः ॥५३॥
तस्मात्तृष्णा परित्याज्या भवद्भिः शुकसत्तमाः । त्यक्ततृष्णा द्वन्द्वहीनाः प्राप्स्यथ परमां गतिम् ॥
कानि पापानि भवतामिह जन्मकृतानि वै । कानि जन्मान्तरीयानि कथ्यतां शुकसत्तमाः ॥५५॥

सब को आपका पुण्य दर्शन कर अपने पापों का स्मरण हो आया है। हंसश्रेष्ठ ! हम यह जानना चाहते हैं कि 'पूर्व जन्म एवम् इस जन्म के दुराचारों से उत्पन्न होने वाले पापों से मानव का छुटकारा कैसे हो सकता है' ॥ ४१–४४ ॥

दत्तात्रेय ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! शुकों के इस मन्तव्य को जानकर हंस अमृतमयी वाणी में बोला ॥ ४५ ॥

हंस ने कहा—शुकश्रेष्ठो ! सुनो। इस मृत्युलोक में अनेक प्रकार के पाप हैं। उनको जन्मान्तर में भोगना अवश्यम्भावी है। तथा पूर्वजन्म में किये हुए पापों का फल यहाँ भोगना पड़ता है। इस जन्म में किये हुए सत्कर्मों का फल अगले जन्म में भोगा जाता है। इस सम्बन्ध में शुक्राचार्य के उपदेश को आप पक्षिगण सुनें। 'वृद्धावस्था में केश श्वेत हो जाते हैं, दांत गिरने लगते हैं। आँख, कान आदि इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, केवल एक तृष्णा मात्र बढ़ जाती है। निम्नकोटि के मनुष्य तृष्णा से पाप-कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। तृष्णा से ही मातृ-गमन सदृश पाप एवं कलह आदि द्वन्द्व सम्भाव्य हैं। चक्षुरिन्द्रिय के मार्ग से प्राणों के सुख को तृष्णा पैदा कराती है, श्रोत्रेन्द्रिय तो मार्गगामी हैं। तृष्णाजन्य चोर उत्पन्न होकर दुराचारी मनुष्यों को पञ्चभूतों का उपभोग कराते हैं और उनका साक्षी मनुष्य कहा गया है। इस तरह सैकड़ों जन्मों में किये हुए पापों का फल (उस) जन्म के अन्त में पापियों को अवश्य भुगतना पड़ता है। अतः श्रेयोऽभिलाषी जन—मन से तृष्णा, कानों से नेत्रेन्द्रिय तथा मन को बुद्धि से शान्त करें। अतः आप लोग तृष्णा को छोड़ें। तृष्णा का त्याग करने से द्वन्द्वरहित होकर आप लोग सद्गति

---

१. 'स्मृतमस्माभिपातकम्' इति 'ख' पुस्तके । नायं शुद्धः पाठः ।
२. 'जीर्यन्ते' इति 'ख' पुस्तके । ३. 'भुज्यते' इति 'ग' पुस्तके । ४. 'श्रोत्रास्तु' इति 'ख' पुस्तके ।

शुका ऊचुः—

श्रृणुष्व त्वं महाभाग वाणीमस्माभिरीरिताम् ।
कथ्यमानां विचित्रार्थां त्वद्दर्शनसमुद्भवाम् । वयं पापोद्भवाः पापाः पापवृत्तिपरायणाः॥५६॥
पापेनापि विलिप्ताङ्गाः कथं जानीमहे वयम् । त्वद्दर्शनमिह प्राप्य जानीमः स्वं पुरातनम् ॥
पातकं पापदेहा वै जन्मान्तरकृतं द्विज । श्रृणुष्व पक्षिणां श्रेष्ठ देशे तैलङ्गसंज्ञके ॥ ५८ ॥
भारद्वाजकुलोत्पन्ना जाताः स्म ब्राह्मणा वयम् । जन्मनि सप्तमे पुण्याः[1] शुकनाम्नो द्विजस्य च ॥
सुता नीतिरताः शुद्धा वेदस्वाध्यायकारकाः । द्विजवृत्तिरताः शान्ता जाताः स्म द्विजसत्तम ॥
कालेनापि पितास्माकं दैवात्पञ्चत्वतां गतः । ततोऽस्माभिर्द्विजश्रेष्ठ पितुः सद्गतिकारकम् ॥
कर्म समाप्य दाराणां कृतं पाणिग्रहं शुभम् । कृतदारा वयं सर्वे जाताः स्म धनिनां वराः ॥६२॥
धनैर्बहुविधैर्हंस धर्मकामार्थनाशकाः । द्विजानां भागहर्तारो लोलुपाः स्त्रीजनेष्वपि ॥ ६३ ॥
मानिनोऽपि वयं सर्वे ह्यभूम [2]द्विजसत्तम । ततः कालेन महता द्विजानां पश्यतां द्विज ॥६४॥
विहृत्य चरुभागं वै ब्राह्मणस्य तपस्विनः । सह शूद्रैर्बुभुजिरे मोहिता बहुलैर्धनैः ॥ ६५ ॥
ततश्चुकोप स ऋषिर्दृष्ट्वा चोपहृतं चरुम् । शशापास्मान्स शूद्रान्वै पापिष्ठाञ्चरुलोलुपान्॥६६॥

ऋषिरुवाच—

यस्माद्युष्माभिः पापिष्ठैश्चरुभागो हृतो हि मे । तस्माच्छापं मदीयं वै गृह्णन्तु[3] शूद्रकैः सह ॥
यच्छूद्रकैः सह युष्माभिर्भुक्तो मे चरुरुत्तमः । तस्माद्यूयं काकयोनौ भवत पञ्चजन्मसु ॥ ६८ ॥

को प्राप्त कर सकेंगे । आप लोगों ने इस जन्म में तथा पूर्व जन्म में कौन-कौन से पाप किये हैं, उन्हें बतलायें ॥ ४६–५५ ॥

शुकों ने कहा—"महाभाग ! आप हमारी कही हुई बातें सुनें । यद्यपि वह कुछ अटपटी हैं, किन्तु आपके दर्शन से ही मुखरित होने के लिये इच्छुक हैं । पापों से ही हमारी उत्पत्ति हुई है । हम पापकर्मों में लगे हुए हैं । हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग पापों में लिप्त हैं । अतः किस प्रकार हम अपने को जान सकते हैं ? केवल आपका दर्शन करने से ही इस पापी शरीर से भी अपने प्राक्तन पापों को समझ रहे हैं । हे पक्षिश्रेष्ठ ! आप सुनें । हम (पहले) तैलङ्ग देश में भारद्वाज कुल में उत्पन्न ब्राह्मण थे । सातवें जन्म में शुक नामक ब्राह्मण के घर वेदाध्यायी एवम् नीतिनिपुण पुत्रों के रूप में हम ने जन्म लिया । ब्राह्मण-वृत्ति से जीविकोपार्जन करते हुए हम शान्तशील रहे । कुछ समय बाद दुर्भाग्य से हमारे पिता का देहान्त हो गया । फिर हम लोगों ने पिता का अन्तिम संस्कार सम्पन्न कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया । विवाहोपरान्त हम सब बहुत धनवान् हो गए । फिर क्या था ? उसके दुष्प्रभाव से हम लोग धर्म, अर्थ तथा काम के विनाशक होने लगे । यहाँ तक कि ब्राह्मणों के भाग को हरने वाले तथा स्त्री-जनों में आसक्त एवं अहंकारी हो चले । तदनन्तर बहुत दिनों बाद ब्राह्मणों के देखते-देखते एक तपस्वी ब्राह्मण के चरु-भाग को हरण कर शूद्रों के साथ खाने लगे । धन के आधिक्य ने हमें अज्ञानी बना दिया । चरु के अपहरण करने से वह ऋषि हम पर क्रुद्ध हो गए । ऋषि ने, चरु के लोलुप हमें तथा शूद्रों को, शाप दे दिया ॥ ५६–६६ ॥

ऋषि कहने लगे—तुम पापियों ने मेरे चरुभाग को हरण किया है । अतः अपने साथी

---

१. 'पुरा' इति 'घ' पुस्तके । २. 'बभूवुर्द्विजसत्तम' इति 'ख' पुस्तके । ३. 'गृह्णीध्वम्' इति 'ख' पुस्तके ।

शुका ऊचुः—

तदस्माभिर्महाभाग श्रुत्वा शापमृषेः कटुम् ॥ ६९ ॥
प्रार्थितो ब्राह्मणः कश्चित् शापनाशाय भो द्विज । सोवाचास्मान्महाभाग जन्मनि सप्तमे हि वै ॥
जनयित्वा निजं देहं शुकगेहे सुशोभने । शूद्रोऽपि व्याधस्य गृहे भविष्यति न संशयः ॥ ७१ ॥
शूद्रिका भगिनी भूत्वा युष्माकं नायिका भवेत् । व्याधस्य च शुकानां च प्रीतिस्तत्र भविष्यति ॥
ततो हंसान्मुक्तिपथं प्रापयिष्यथ वै द्विजाः । ततस्तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिशापाद् द्विजोत्तम ॥७३॥
त्यक्त्वा कलेवरं सर्वे काकयोनौ बभूविरे । पञ्चजन्मसु काकानां गृहेषु पक्षिनायक ॥ ७४ ॥
भूत्वा शुकस्य गेहे वै जाताः स्मो नात्र संशयः । साम्प्रतं चापि पक्षीश पापान्यस्माभिर्वै द्विज[1]॥
कृतं स्वशुकग्राहं वै तथा गोत्रवधं महत् । कृत्वा व्याधेन मैत्रीं वै स्तोकेनैव च कारणात् ॥७६
कुलक्षयं दोषकरं कृतमस्माभिः साम्प्रतम् । एतस्य पातकस्यापि नास्त्यन्तं द्विजसत्तम ॥७७॥
तव सन्दर्शनाद्धंस स्मृतं प्राक्चरितं महत् । कस्मात्पुण्यतमस्त्वं वै जातोऽसि द्विजसत्तम ॥७८॥
किमिह ध्यायसि हृदा तत् त्वं कथय सुव्रत । केनास्माकं पापनाशो जायते तद् वदस्व वै ॥७९॥

हंस उवाच—

सोऽहं मानसपुण्येन पूतोऽस्मि शुकसत्तमाः । तदहं कथयिष्यामि[2] मानसं ब्रह्मनिर्मितम् ॥८०॥
तत्र मे मज्जनं पुण्यं वर्तते नात्र संशयः । ध्यानेनाहं तस्य पूज्यो[3] देवतानां शुभात्मनाम् ॥८१॥

शूद्रों सहित मेरे शाप को ग्रहण करो, क्योंकि तुमने उन शूद्रों के साथ मेरे श्रेष्ठ चरु को खाया है। उस शाप के कारण पाँच जन्म तक तुम लोग काकयोनि में रहोगे ॥ ६७-६८ ॥

शुकों ने कहा—हमने ऋषि के उस कठोर शाप को सुनकर किसी ब्राह्मण से शाप दूर करने की प्रार्थना की। उसने यह कहा कि सातवें जन्म में तुम लोग शुक-योनि में उत्पन्न होगे और वह शूद्र भी व्याध के रूप में जन्म लेगा। शूद्रिका तुम्हारी भगिनी होकर भी नायिका होगी। इस प्रकार व्याध और शुकों में परस्पर स्नेह होगा। तब तुम पक्षिगण एक हंस के द्वारा मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर होगे। उस ब्राह्मण की वाणी को सुन कर हम काकयोनि में उत्पन्न हुए। इस प्रकार पाँच जन्मों तक हम काकयोनि में पड़े रहे। अब हमने शुकों के घर में जन्म लिया है। पक्षिराज ! क्या कहें ? इस समय भी हम पाप-कर्म में लिप्त हैं। स्वल्प प्रयोजन-वश व्याध के साथ मित्रता कर हमने अपने कुल का नाश तक करा दिया है। ऐसे महान् अनर्थकर कुलक्षय-रूपी पाप का कोई अन्त नहीं है। हे पक्षिराज ! "आपके दर्शन से ही हमें पूर्वजन्म-कृत पापों का स्मरण हुआ है। व्रतपरायण ! आप यह बतलाये कि कौन से पुण्यों से आप ऐसे पुण्यात्मा हुए हैं ? तथा यहाँ आप किसके ध्यान में लीन हैं ? यह तत्त्वतः हमें बतलाइये। इसके साथ ही हमारे पापों का नाश कैसे सम्भव हो सकेगा"—इसे भी कहें ॥ ६९-७९ ॥

हंस ने उत्तर दिया—"शुक-श्रेष्ठो ! मैं इस पवित्र मानसरोवर में रहने से पवित्र हुआ हूँ। मैं तुम लोगों से ब्रह्मा की इस सृष्टि के सम्बन्ध में कहूँगा। इस में स्नान करने से मैंने

---

१. 'पापावस्माभिः पातकम्' इति 'क' पुस्तके।
२. 'वाचयिष्यामि' इति 'ख' पुस्तके। ३. 'तस्य ध्यानेनाहं पूज्यो' इति 'ख' पुस्तके।

गन्धर्वाणां द्विजानां च पूज्योऽस्मि नात्र संशयः। अजरामरतां वापि तस्य ध्यानेन वै खगाः॥
प्राप्तवानस्मि रूपेण चामुना कायशोभिना। अन्तेप्यहं गमिष्यामि देहेनानेन वै खगाः॥८३॥
सुपुण्यं ब्रह्मभुवनं देवर्षिगणसेवितम्। तस्माद्यूयं महाभागा[1] मानसाख्यं सरोवरम्॥ ८४॥
पश्यन्तां शिवलिङ्गेन देवपूज्येन वै सह। तेनैव ब्रह्मभुवनं देवर्षिगणसेवितम्॥८५॥
प्राप्स्यथ कामयानं वै अधिरुह्य न संशयः। साम्प्रतं योगिगम्यो वै वर्तते मानसः सरः॥८६॥
वसन्ते प्रथमे मासि गम्यतां यदि रोचते। तत्र गत्वा महाभागा यूयं ब्रह्मपदं शुभम्॥८७॥
गमिष्यथ न रून्देहः स्वस्वस्रा चानया सह। ब्रह्महत्यादियुक्तोऽपि गोवधादपि वै खगाः॥८८॥
प्राप्स्यते ब्रह्मभुवनं देवदानवपूजितम्। किमनेनापि पापेन शापभारेण वै द्विजाः॥८९॥
भीतिं प्राप्नुथ यद्यूयं त्यज्यतां मानसे सरे[2]। वर्वर्ति मानसक्षेत्रे पातकानां भयं कुतः॥९०॥
योन्यन्तरभयं वापि नास्ति नास्तीह वै खगाः। मातुः संगमनाद्वापि स्वसृसंगात्तथैव[3] हि॥९१॥
शुध्यन्ति मानसे क्षेत्रे[4] तथ्यं वै कथितं मया। तस्माद्यूयं महाभागा मानसाख्यं सरोवरम्॥९२॥
गत्वा पापसमूहं वै क्षाल्यतां नात्र संशयः। किन्तु यूयं महाभागाः तिष्ठतात्र[5] ममाश्रमे॥९३॥
सोऽहं प्रातः समुत्थाय मज्जामि मानसं सरम्। तत्र स्नात्वा हि देहेन[6] पुनः पुण्याश्रमं प्रति॥
आगमिष्यामि दिवसे तृतीये[7] नात्र संशयः। ततो युष्मानिहागत्य स्नापयामि जलैः शुभैः॥९५॥

अवश्य पुण्य अर्जन किया है। इसका ध्यान करने से मैं शुद्धात्मा देवताओं, गन्धर्वों और ब्राह्मणों का पूज्य हो गया हूँ। हे पक्षि-वर्ग! उसी का ध्यान करने से मैं जरारहित तथा अमरत्व की स्थिति में हूँ। इसके साथ ही शरीर के शोभाधायक इस रूप को भी मैंने प्राप्त किया है। अन्त में मैं भी इसी दिव्य शरीर से पुण्यजनक एवं देवर्षियों से सेवित ब्रह्मलोक को प्राप्त करूँगा। इस हेतु तुम लोग भी देवताओं से पूजित शिवलिङ्ग के सहित मानसरोवर का दर्शन करो। उसी से तुम लोग भी विमान पर आरूढ़ होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करोगे। इस (शीतकाल) में तो मानसरोवर केवल योगियों के ही गम्य है। वसन्त ऋतु के पहले मास (चैत्र) में यदि चाहो तो वहाँ जाओ। महानुभावो! वहाँ जाकर भगिनी-सहित तुम सबको निःसन्देह ब्रह्मपद प्राप्त होगा। पक्षियों! (वहाँ के दर्शन से) लोग जब ब्रह्महत्या एवं गोवधादि-जन्य पापों से छुटकारा पाकर देव-दानवों से पूजित ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकते हैं तो शाप के भार से उत्पन्न तुम्हारे पापों की क्या गणना है? तुम लोग अपने इस भय को मानसरोवर में छोड़ दो। मानस-क्षेत्र में पहुँचने पर पातकों का भय कहाँ रहता है? पक्षियों! दूसरी योनि में जन्म लेने का भय एवं मातृगमन तथा भगिनी-गमन सदृश महापातकों का भय भी विलीन हो जाता है। मानस-क्षेत्र में सब पाप धुल जाते हैं—यह वस्तुस्थिति है। इस हेतु तुम लोग मानसरोवर जाओ। वहाँ जाकर निःसन्देह अपने पापों को धो डालो। किन्तु अभी तुम लोग मेरे आश्रम में ही ठहरो। मैं प्रातः उठ कर मानसरोवर में स्नान करूँगा। वहाँ से मैं इसी रूप में तीसरे दिन

---

१. 'महाभाग' इति 'ख' पुस्तके। २. 'भीतिप्राप्ताश्च सन्त्यज्य गम्यतां मानसे सरे' इति 'क' पुस्तके।
३. 'स्वसुः संगात्' इति 'ख' पुस्तके। ४. 'मानसक्षेत्रे' इति 'ख' पुस्तके।
५. 'स्थित्वात्रैव' इति 'ख' पुस्तके। 'स्थिता वैव' इति 'क' पुस्तके।
६. तत्र स्नात्वाद्वेहेन' इति 'ख' पुस्तके। ७. 'द्वितीये' इति 'क' पुस्तके।

पक्षमलग्नैर्हिमयुतैर्मानसेयैः सुशोभनैः । साम्प्रतं भवतां गम्यो नास्ति वै मानसः सरः ॥९६॥
योगिगम्यो हि दुष्प्राप्यो हिमतौ वर्तते सरः । प्राप्तं पश्य सुदुर्धर्षं हिमर्तुं खगसत्तमाः ॥ ९७ ॥
तस्मान्ममाश्रमे यूयं स्थीयध्वमहनि त्रये[1] ।

दत्त उवाच—

हंसस्य वचनं श्रुत्वा शुकाः सर्वे नृपोत्तम ॥९८॥
तस्थुर्हंसाश्रमे पुण्ये हंसश्रेणीविराजिते । हंसोऽपि तान् समाश्वास्य मानसाख्यं सरोवरम्॥९९॥
जगामाकाशमार्गेण सिद्धकिन्नरशोभिना । तत्र गत्वा स विधिवन्मज्जनं विचकार ह ॥१००॥
ध्यात्वा वै स शिवं शान्तं पूजयामास तं नृप । दृष्ट्वा सिद्धगणान् सर्वान् सरोवरजलं शुभम् ॥
नीत्वाऽथ नृपशार्दूल स जगाम गृहं प्रति । तत्र गत्वाथ[2] राजर्षे समाहूय शुकोत्तमान् ॥१०२॥
स्नापयामास विधिवत् पक्षलग्नैर्जलैः शुभैः । स्नापितास्ते शुका राजन्त्यक्त्वा शुककलेवरम् ॥
बभूवुर्देवसदृशा देवदेहाः प्रभावतः । ततस्ते देवलोकाद्वै विमानं देवसेवितम् ॥१०४॥
समानीतं देवगणैर्ददृशुर्नृपसत्तम । तमारुह्याथ ते सर्वे पुरन्दरगृहं शुभम् ॥१०५॥
अप्सरोभिश्च संकीर्णं प्रययुर्नृपसत्तम । तत्र तान् पूजयामासुः पुरन्दरपुरोगमान् ॥१०६॥
मानसीयैर्जलकणैः स्नातान्वै देवनायकान् । व्याधोऽपि हंसवचनं श्रुत्वा राजर्षिसत्तम ॥१०७॥
दृष्ट्वा[3] च मानसं पुण्यं जगाम दिशमुत्तराम् । दृष्ट्वा च मानसं पुण्यं स्नापयित्वा मुहुर्मुहुः[4]॥
जगाम स्वेन देहेन ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । पदं ब्रह्मर्षिभिः सेव्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ १०९ ॥

स्नान कर लौटूँगा । तब मैं अपने पंखों में लगे हुए हिमकणों से युक्त मानसरोवर के पवित्र जल से तुम लोगों को स्नान करा दूँगा । अभी मानसरोवर तुम लोगों के जाने योग्य नहीं है। शीतऋतु में मानसरोवर केवल योगियों के लिये ही गम्य है। पक्षियों ! देखो, शीतऋतु का आगमन हो गया है। इस कारण तुम लोग तीन दिन मेरे आश्रम में ठहरो ॥ ८०-९७ ॥

दत्तात्रेय ने कहा—"राजन् ! हंस की बात सुन वे शुक हंसों के समूह मध्य उस आश्रम में ठहर गए। हंस भी उनको आश्वस्त कर सिद्ध एवं किन्नरों से सुशोभित आकाशमार्ग से मानसरोवर को चला गया। वहाँ जाकर विधि-विधान के साथ हंस ने स्नान किया। इसके साथ ही उसने शान्तरूप शंकर का ध्यान कर पूजन किया। वहाँ के समस्त सिद्धगणों का दर्शन कर साथ में पवित्र जल लेकर अपने घर को वापस हो गया। राजर्षे ! वहाँ पहुँच कर हंस ने उन तोतों को बुलाकर अपने पंख में लगे हुए जल से स्नान कराया। स्नान के उपरान्त उन्होंने शुक-शरीर को छोड़ दिया तथा वे दिव्य-देह-सम्पन्न हो गए। इतने ही में उन्होंने देवलोक से आता हुआ दिव्य विमान देखा। महाराज ! वे उस विमान पर चढ़ कर अप्सराओं से संकुलित इन्द्रपुरी पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर, मानसरोवर के जल से स्नान किए उन दिव्य देहधारी शुकों का इन्द्र आदि देवगणों ने बहुत संमान किया। राजर्षे ! हंस के कथनानुसार वह व्याध भी पुण्यजनक मानसरोवर का दर्शन करने के लिए उत्तर दिशा की ओर चला गया। मानसरोवर का दर्शन कर उस व्याध ने बार-बार उसमें स्नान किया तथा उसी देह से ब्रह्मर्षियों से सेव-

---

१. 'तिष्ठन्त्विह दिनत्रयम्' इत्यपेक्ष्यते ।
२. 'तत्रागत्याथ' इति 'क' पुस्तके । ३. 'गत्वा' इति 'ख' पुस्तके ।
४. 'दृष्ट्वा मानसरं पुण्यं स्नात्वा पीत्वा मुहुर्मुहुः' इति 'ख' पुस्तके ।

बिन्दुमात्रेण संस्नाताः पापाः शुककुलाधमाः । प्राप्य माहेन्द्रपदवीं वसन्ति त्रिदशालये ॥११०॥
किमु तत्र महाराज स्नातकानां शुभावहम् । माहात्म्यं राजशार्दूल वक्तुं वर्षशतैरपि ॥१११॥
न शक्यते देवगणैः सुरश्रेष्ठादिभिः[1]प्रभो । तत्र स्नात्वा[2] देवदेहा जायन्ते मानवाधमाः ॥११२॥
तस्य माहात्म्यकथने देवापि[3] कश्मलं गताः ॥ ११३ ॥
इत्येतत्कथितं राजन् शुकाख्यानं सुशोभनम्[4] । आयुरारोग्यमैश्वर्यं सुखसम्पत्तिदायकम् ॥११४॥
इदं शुकाख्यानसमन्वितं विभो गुणानुवादं सरसो वदन्ति ये ।
ते वै गृहं देवसुपूजितं हरेर्विहाय रुद्रादिपदं व्रजन्ति ते ॥ ११५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शुकाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

नीय एवं देवताओं तथा सिद्धगणों से सेवित ब्रह्मलोक प्राप्त किया । (अधिक क्या कहें) केवल सरोवर-जल की बूँदों से ही स्नान किये हुए पापी एवं कुलविनाशी शुक भी महेन्द्र-पद पाकर स्वर्ग में निवास करते हैं तो जो वहाँ पहुँचकर स्नान करते हैं, उनके पुण्यों को कैसे कहा जाय ? हे राजसिंह ! मानसरोवर के माहात्म्य का वर्णन करने में देवगण सौ वर्ष तक भी असमर्थ रहते हैं । वहाँ स्नान करने से अधम मनुष्य भी दिव्य-देह-सम्पन्न हो जाते हैं । उसके माहात्म्य का वर्णन करने में देवता भी असमर्थ हैं । राजन् ! इस सुन्दर शुकोपाख्यान का मैंने विस्तार के साथ जो वर्णन किया है—वह सुख, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति देने वाला है । इस शुकाख्यानसहित मानसरोवर के माहात्म्य का जो वर्णन करते हैं, वे देवों से पूजित विष्णुलोक को छोड़ कर रुद्रलोक को प्राप्त करते हैं ॥ ९८–११५ ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में शुकाख्यान-नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'सुरज्येष्ठादिभिः प्रभो' इति 'ख' पुस्तके । २. 'यत्र स्नाता' इति 'ख' पुस्तके ।
३. 'देवा हि' इति 'ख' पुस्तके । अयमेव युक्तः पाठः । ४. 'यथातथम्' इत्यर्थः ।

दत्त उवाच—

अथान्यदपि वक्ष्यामि शृणुष्व नृपसत्तम। मानसाख्यगुणैर्युक्ता कथिता मुनिना पुरा ॥१॥
इदमेव परं श्रेयो मानुषे मनुजाधिप। मानसाख्यकथाप्रश्नं भाषणं तद्गुणैः सह ॥२॥
मानुषे मनुजव्याघ्राः सारे संसारसागरे[1]। मानसाख्यगुणं सारं विद्यते नात्र संशयः ॥३॥
दुर्लभं मानुषे लोके मानुष्यं नृपसत्तम। तत्रापि दुर्लभं मन्ये मानसाख्यस्य दर्शनम् ॥ ४ ॥
यं दृष्ट्वा मानवाः सर्वे पापिष्ठा ब्रह्मघातिनः। न मातुर्जठरे वासं पश्यन्ति नृपसत्तम ॥५॥
इतिहासं विचित्रार्थं शृणुष्व नृपसत्तम। माहात्म्यं च क्षणैर्युक्तं सुखदं मुक्तिदायकम् ॥६॥
पुरा कृतयुगस्यादौ मिथिलायां जनाधिपः। जनकस्य कुले जातः केतुमान् नाम विश्रुतः ॥७॥
बभूव राजा मतिमान् भूतानां प्राणकम्पनः। स राजा ब्रह्मवृत्तीनां हर्ताऽभून्नृपसत्तम ॥८॥
वेदमार्गविलोप्ता[2] च यज्ञवृत्तिविलोपकः। सन्नीतिपथगाँल्लोकान् त्यक्त्वा मन्त्रज्ञनामकान्[3] ॥
चौरैः सह महाराज चकार प्रीतिमुत्तमाम्। त्यक्त्वा सर्वाञ्जानपदान्नगरांश्च[4] नृपोत्तम॥१०॥
चकार स वने वासं विरमन् भिल्लपङ्क्तिभिः[5]। स राजा राजशार्दूल मूषयामास नागरान् ॥
दिवा वनान्तरे स्थित्वा रात्रौ चौरसहायवान्। चौरैः सह महाराज ब्राह्मणानां गृहं गतः ॥१२॥
मोषयामास[6] सकलं नारीजनसमन्वितम्। मुष्णन्जानपदानां[7] हि धनानि बहुलानि च ॥१३॥

दत्तात्रेय ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मानस के गुणाख्यान से युक्त वेदव्यास ने जो पहले संकीर्तन किया है, उसे भी मैं कहता हूँ। आप सुनें। राजन्! मनुष्य लोक में मानस के सम्बन्ध में प्रश्न करना तथा उसका गुणानुवाद परम श्रेयस्कर है। हे नृसिंह! इस असार संसारसागर में निःसन्देह मानस के गुण ही सारभूत हैं। इस मृत्युलोक में पहले तो मनुष्यजन्म ही दुर्लभ है, उससे भी बढ़कर दुर्लभ मानसरोवर के दर्शन हैं। जिसके दर्शन-मात्र से पापी एवं ब्रह्मघाती भी पुनः जन्म नहीं लेते। उसके आश्चर्यान्वित आख्यान को आप सुनें। उसका माहात्म्य अनेक विशेषताओं सहित सुखदायक एवं मुक्तिप्रद है। प्राचीन काल में सत्ययुग के आरम्भ में मिथिला में जनकवंश में केतुमान् नामक राजा था। बुद्धिमान् होते हुए भी वह प्राणियों को दुःख देता था। साथ ही ब्राह्मणों की वृत्ति का हरण करने वाला भी था। वेदमार्ग एवं यज्ञ-यागादि का लोप करने वाला तथा कुपथगामी वह राजा नीतिज्ञ मन्त्रियों को छोड़कर चोरों के साथ मैत्री करने लगा। वह अपनी प्रजा और नगरी को छोड़कर भीलों के साथ वन में रहने लगा। हे राजसिंह! उसने नगरवासियों की चोरी करवा दी। दिन में वह जंगलों में रह कर रात को चोरों की सहायता करता था। महाराज! चोरों के साथ ही उसने ब्राह्मणों के घरों में स्त्रियों सहित सब कुछ अपहरण करवा दिया। इस प्रकार नागरिकों की धन-सम्पत्ति को

---

१. 'सरसे सारसागरे' इति 'ग' पुस्तके।
२. 'विलुप्ता च इति 'ख' पुस्तके।
३. 'नायकान्' इति 'ख' पुस्तके।
४. 'जनपदान्' इति 'ग' पुस्तके।
५. 'भिल्लपत्तिभिः' इति 'क' पुस्तके।
६. 'मूषयामास' इति 'ख' पुस्तके।
७. 'स मुष्णन् जानपदानां' इति 'ख' पुस्तके।

निनाय कालं पापात्मा त्यक्त्वा क्षात्रं न संशयः। ततः कालेन महता हृत्वा जानपदं धनम् ।।१४
जहार स्त्रीजनाग्राजेंल्लोकानां स नरेश्वरः। हृतदारधनाः सर्वे लोकास्तेन निराकृताः ।।१५।।
तत्यजुर्नगरान् देशान् ग्रामानपि नरेश्वर। ततः कालेन महता स राजा नृपसत्तम ।।१६।।
जहार ब्राह्मणीं शुद्धां रूपयौवनशालिनीम्। ब्राह्मणीं ह्रियमाणां तां ददर्श ब्राह्मणस्तदा ।।१७।।
सोवाच तं तदा राजन्राजानं पापकारिणम्। मा गृहाण महाराज ब्राह्मणीं चारुलक्षणाम् ।।१८।।
मम व्रतपरां तन्वीं वचसा चातकोपमाम्। इति सम्भाषमाणं तं ब्राह्मणं ब्राह्मणीपतिम् ।।१९।।
त्यक्त्वा[1] स राजा राजर्षे जहार ब्राह्मणीं शुभाम्। ततः स ब्राह्मणो राजन् हृतदारोऽभवत्तदा ।।
रुरोद सुस्वरं दीनं कान्ता कान्तेति ह्यब्रवीत्[2]। त्यजस्व ब्राह्मणीं पूतां मा गृहाणेति चाब्रवीत्[3]।।
पपात पादमूले वै राज्ञस्तस्य दुरात्मनः। ततः स राजा भूपेन्द्र श्रुत्वा तत्करुणं वचः ।।२२।।
रुषितोऽभूद्दुराचारश्चासिमुत्पाट्य वेगवान्। जहार[4] ब्राह्मणशिरस्त्रिपुण्ड्रेण विराजितम् ।।२३।।
कर्णान्तदीर्घनयनं[5] शिखाभिश्चापि शोभितम्। नीत्वा तां ब्राह्मणीं राजन् स राजा विपिनं गतः ।।
जगाम चौरैः सचिवैर्मन्त्रिभिः सपुरोहितैः। ततः स गहनं प्राप्य तया सह नरेश्वर ।। २५ ।।
चकार विपुलां क्रीडां वनेषूपवनेषु च। सरित्सु चापि कुञ्जेषु देशेषु नगरेषु च ।।२६।।
नदीतटेषु पुण्येषु स्थलेषु च जलेषु च। स नृपो नृपशार्दूल विजहार तया सह ।।२७।।
कालेन नृपशार्दूल स राजा ब्राह्मणीपतिः। कालेन स्वेन मन्दात्मा पञ्चत्वमगमत्ततः ।।२८।।
मृतेऽपि राजशार्दूल स राजा चान्यजन्मनि। देहेन पापदेहोऽसौ बभूव ब्रह्मराक्षसः ।।२९।।
स तदा राक्षसो राजन् नाम्ना मलयपर्वते। चकार वासं पापात्मा राक्षसैः सह तत्र वै ।।३०।।

चुराते हुए क्षात्रधर्म का परित्याग कर वह अपना समय बिताने लगा। कुछ समय के उपरान्त प्रजाजन का धन अपहरण कर स्त्रियों का भी अपहरण किया। इस प्रकार धन एवं स्त्रियो का अपहरण कर उसने सब को राज्य से निकाल दिया। तब लोगों ने नगर एवं ग्रामों को छोड़ दिया। बहुत समय बीतने पर वह राजा रूप-यौवन-सम्पन्न एक ब्राह्मणी को हर लाया। ब्राह्मणी का हरण करते हुए देख कर उसके पति ने राजा से कहा कि 'शील एवं गुणवती उस नारी का आप हरण न करें। वह तन्वी पातिव्रत-धर्म में संलग्न है तथा चातक के समान भाषण करने वाली है'। इस तरह ब्राह्मण के कहते हुए भी उसने ब्राह्मण की परवाह न की और ब्राह्मणी को हर कर ले गया। वह ब्राह्मण स्त्रीरहित हो गया। बड़ी दीनता के साथ 'कान्ता कान्ता' कहते हुए जोर से रोने लगा और उस दुष्ट राजा के पैरों पर गिर पड़ा। हे राजेन्द्र! तदनन्तर उसकी करुण वाणी को सुनकर कुपित होते हुए उस राजा ने तलवार खींच कर त्रिपुण्ड्रधारी, कानो तक पहुँचे विशाल नेत्रों तथा दीर्घ शिखा से शोभित उस ब्राह्मण का सिर काट दिया। तब उस ब्राह्मणी को लेकर वह अपने मन्त्रियों एवं पुरोहितों सहित वन में चला गया। वहाँ ब्राह्मणी के साथ वनों, उपवनों, नदीतटों तथा कुँजों में विहार करने लगा। महाराज! उसने पवित्र स्थलों एवं जल में विहार किया। हे राजसिंह! वह मूर्ख ब्राह्मणीपति राजा कुछ दिनों बाद अपनी मौत से मर गया। मरने के बाद भी वह राजा दूसरे जन्म में ब्रह्मराक्षस हुआ।

---

१. 'उक्त्वा' इति 'क' पुस्तके। मूलस्थः पाठ एव समीचीनः।
२. 'कान्ता कान्तेति च ब्रुवन्' इति 'ख' पुस्तके। ३. 'मा गृहाणेति च ब्रुवन्' इति 'ख' पुस्तके।
४. 'ब्राह्मणशिरं' इति 'क' पुस्तके। ५. 'आकर्णदीर्घनयनैः इति 'ग' 'घ' पुस्तकयोः।

ततः स राक्षसो घोरो मनुष्याणां नरेश्वर । चकार कदनं घोरं[1] तथाऽन्यैं राक्षसैः सह ॥३१॥
कदाचिद्विन्ध्यपादाग्रे कदाचिन्मलये गिरौ । कदाचिद्विपिने घोरे कदाचिन्नगरे प्रभो ॥३२॥
जघान मानुषान् सर्वान् घण्टाकर्णेति[2] विश्रुतः । अवध्यो मानुषाणां हि बभूव नृपसत्तम ॥३३॥
हयान् गजान्मनुष्यांश्च सूकरान्महिषानपि । जघान राक्षसो घोरो विकटैं राक्षसैः सह ॥३४॥
ब्राह्मणान् क्षत्रियान्वैश्यांस्तथान्याञ्शूद्रनायकान् । शुनाद्यान् श्वापदाद्यांश्च जघान ब्रह्मराक्षसः॥
ततः स राक्षसो घोरो वसुधां विन्ध्यमध्यगाम् । चकार जनहीनां वै तथा मलयमध्यगाम्[3] ॥३६॥
श्वापदैर्मर्कटैश्चापि सिंहाद्यैश्च मृगैरपि[4] । चकार हीनां वसुधां राक्षसो घोरशंनः ॥३७॥
ततः कालेन महता ऋषिमेकं ददर्श सः । तपस्यन्तं महात्मानम् ऋषिपत्न्या सह प्रभो ॥३८॥
ध्यायन्तं मानसं क्षेत्रं क्षेत्राणां नायकं शुभम् । पत्न्यग्रे भाषमाणं तं सरोवरकथां शुभाम्॥३९॥
ददर्श राक्षसो घोरो राक्षसैः सह नरेश्वर । एनं हन्मीति संचिन्त्य राक्षसो राक्षसैः सह ॥४०॥
जगाम तत्र राजर्षे यत्र वै स ऋषिः स्थितः । तत्र गत्वा ऋषेर्वाणीं मानसाख्यकथान्विताम्॥४१॥
पत्न्यग्रे कथ्यमानां स शुश्राव ब्रह्मराक्षसः । ततः स राक्षसो घोरो त्यक्त्वा हिंसां दुराशयाम् ॥
जगाम स ऋषेरग्रे राक्षसैः सह नरेश्वर । तत्र गत्वा स राजर्षे सरोवरकथां शुभाम् ॥४३॥

तब वह पापी राक्षस अन्य राक्षसो के साथ मलयाचल पर्वत पर रहने लगा । फिर वह दुराचारी राक्षस अन्य राक्षसों के साथ मानव-संहार करता रहा । कभी विन्ध्याचल के पास, कभी मलयाचल में, कभी नगर में नर-संहार करते हुए वह 'घण्टाकर्ण' नाम से प्रसिद्ध हो गया । राजन् ! वह मनुष्यो में अवध्य हो गया । फिर तो वह विकट राक्षसो के साथ हाथी, घोड़े, मनुष्य, सूअर तथा भैंसो को मारने लगा । ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा कुत्तों आदि पशुओं को भी उस ब्रह्मराक्षस ने मार डाला । इस तरह उस दुष्ट राक्षस ने विन्ध्य तथा मलयाचल के मध्य में स्थित प्रदेश को निर्जन बना दिया । यहाँ तक वह क्षेत्र पशुओ, बन्दरो, मृगों तथा सिंहों से भी विरहित हो गया । चिरकाल के बाद उसने एक तपस्वी महात्मा को अपनी पत्नी-सहित तपस्या करते हुए देखा । वह महात्मा सब क्षेत्रो में श्रेष्ठ मानस-क्षेत्र का ध्यान करते हुए मानसरोवर की शुभप्रद कथा सुना रहे थे । राजर्षे ! उस महात्मा को देखकर अन्य राक्षसो के साथ उन्हें मारने के विचार से वह उनके पास गया । अपनी पत्नी को मानस का आख्यान सुनाते हुए ऋषि को उसने वहाँ देखा तथा उनकी वाणी सुनी । उसे सुनकर उसने उन्हें मारने का विचार छोड़ दिया । राक्षसों सहित उनके समक्ष जाकर उसने महात्मा से

---

१. 'घोरैः' इति 'ख' पुस्तके ।

२. (क) शंकर के एक अनुचर का नाम जो मेधा के गर्भ से उत्पन्न मंगल का पुत्र था । शापवश यह उज्जैन में उत्पन्न हुआ था । इसने शिव के नाम के बिना ही बड़े छन्दों में शिव-स्तुति की रचना की थी । प्रसन्न होकर शिव ने इसे शाप-मुक्त किया ।—शिवपुराण । (ख) हरिवंश में भी इस नाम का उल्लेख मिलता है । यह विष्णुद्वेषी था । श्रीकृष्ण के साथ बदरिकाश्रम गया और शिव के आदेशानुसार विष्णु-भक्त हो गया । (ग) एक गणेश्वर (मत्स्य पु० १८३।६५) ।

३. 'चकार हीनां वसुधां राक्षसो घोरदर्शनः' इति 'ख' पुस्तके ।

४. इयं पङ्क्तिः 'ख' पुस्तके न वर्तते ।

पूजितां देवगन्धर्वैः शुश्राव ब्रह्मराक्षसः । धर्माख्यानसमायुक्तां तथा शिवगुणान्विताम् ॥४४॥
सरोवरकथां पुण्यां शुश्राव ब्रह्मराक्षसः । ततस्तं पूजयामास ऋषिं पत्न्या[1] समन्वितम् ॥४५॥
स घोरो राक्षसो राजन्ज्ञात्वा ज्ञानपदं[2] महत् । धर्माख्याञ्च संश्रुत्वा ज्ञात्वा पापान्स्वकार्जितान्[3]।
रुरोद सुस्वरं राजन् स घोरो ब्रह्मराक्षसः । पप्रच्छ च ऋषिं तं वै पापानां निष्कृतिं प्रभो ॥
कथं शुद्धिमवाप्स्यामि संचिन्त्येति स राक्षसः ॥ ४७ ॥

राक्षस उवाच—

पापात्मनां महत्पापं शाम्येत[4] केन वै ऋषे ॥ ४८ ॥
संसारसागरं केन तीर्यंते कथयस्व माम् । जन्मान्तरकृतं पापं ब्रह्महत्यादिकं तथा ॥४९॥
परस्वहरणं ब्रह्मन् ब्राह्मणीगमनादिकम् । पातकं केन वै ब्रह्मन् नश्येत कथयस्व माम् ॥५०॥
त्वामहं हन्तुमायातः सह तै[5] राक्षसैर्मुने । श्रुत्वा पुण्यां सरकथां त्वन्मुखान्निःसृतां शुभाम् ॥५१॥
हिंसा मे चाद्य निष्क्रान्ता पापमार्गप्रदर्शनी । श्रुत्वा धर्मपथं त्वत्तो गतोऽस्मि ज्ञानसागरम् ॥५२॥
[6]अहं पापमतिः पापो ब्रह्महा राक्षसाधमः । क्व ज्ञानदर्शिनी पुण्या कथा वै समुदाहृता ॥५३॥
श्रुत्वा हिंसां परित्यज्य त्वामहं पर्युपस्थितः । लोकोपकरणार्थं हि भवद्भिः क्रियते तपः॥५४॥
नान्तं पश्याम्यहं ब्रह्मन्पातकानां प्रणाशिनाम् । जन्मद्वयार्जितानां च मया पापात्मनाऽपि हि[7]॥

भगवान् शंकर की महत्ता से समन्वित उस धर्माख्यान को पूछकर उसे सुनने लगा। सरोवर की शुभदायिनी कथा को सुनकर उसने सपत्नीक ऋषि का पूजन किया। (इस प्रकार) उस भयानक राक्षस ने ज्ञान प्राप्त किया तथा उस धर्माख्यान के श्रवण करने से अपने पापों को जान लिया। वह महात्मा के समक्ष जोर से रोने लगा और अपने पापों का निराकरण करने के सम्बन्ध में उनसे उपाय पूछने लगा ॥ १–४७ ॥

राक्षस बोला—ऋषिप्रवर ! पापात्माओं के पापों का शमन कैसे सम्भव है ? संसार-सागर को कैसे पार किया जा सकता है ? दूसरे जन्मों में किये हुए पाप, ब्रह्महत्या, पर-द्रव्य-हरण आदि पापों को किस प्रकार निरस्त किया जाय ? ब्रह्मर्षे ! आप कृपया इनके लिये उपाय बतलाये। मैं तो इन राक्षसों के साथ आपको मारने के लिये उद्यत रहा। किन्तु आपकी वाणी से मुखरित सरोवर की शुभ कथा सुनकर पापमार्ग को दिखाने वाली मेरी हिंसावृत्ति दूर हो गई है। आप से धर्ममार्ग का श्रवण कर मैं ज्ञानसागर में पहुँच गया हूँ। कहाँ मैं पापबुद्धि ब्रह्महत्या करने वाला राक्षसाधम ? कहाँ यह ज्ञानप्रद पुण्यदायिनी कथा ? इसे सुन कर मैं हिंसा का त्याग कर आपके समक्ष खड़ा हुआ हूँ। आपने लोकोपकार के लिये ही तप किया है। हे ब्रह्मन्, (तथापि) मैं अपने विनाशक दो जन्मों में किये हुए पापों का अन्त नहीं देख पा रहा हूँ ॥ ४८–५५ ॥

---

१. 'ऋषिपत्न्या समन्वितम्' इति 'क' पुस्तके। २. 'ज्ञानपथम्' इति 'ख' पुस्तके।
३. 'पापानुपार्जितान्' इति 'ख' पुस्तके। ४. 'शाम्यति' इति 'क' पुस्तके।
५. 'सहैतै' इति 'क' पुस्तके। ६. 'क्वाहं पापमतिः पापः' इति 'ख' पुस्तके।
७. 'पापात्मनाऽपि ह' इति 'ख' पुस्तके।

ऋषिरुवाच—

सर्वेषां पातकानां वै निष्कृतिर्वर्तते भुवि । निष्कृतिर्ब्रह्महत्याया नास्ति नास्तीह राक्षस ॥५६॥
अपि मित्रवधं कृत्वा तथैव स्त्रीवधं नृणाम् । दृष्ट्वा तीर्थानि देहं वै शुद्ध्यते ब्रह्मराक्षस॥५७॥
न तु ब्रह्मवधं घोरं कृत्वा राक्षसनायक । शुध्यन्ति मानवाः सर्वे सत्यं ते कथितं मया ॥५८॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा स घोरो ब्रह्मराक्षसः । पुनस्तं प्रार्थयामास देहनिर्मुक्तिहेतवे[1] ॥५९॥

राक्षस उवाच—

नाहं घोरतरं देहं ब्रह्मन् धारयितुं क्षमः । समर्थोऽस्मि क्षणमपि पापपूर्णं दुराशयम् ॥६०॥
उपायं चिन्त्यतां ब्रह्मन् यथा ब्रह्मवधादहम् । मुक्तिं प्राप्स्यामि तत्त्वज्ञ त्यक्त्वा घोरं कलेवरम् ॥
श्रुत्वा ज्ञानामृतं त्वत्तः स्मृत्वा पापानुपार्जितान् । यथा ते नाशमायान्ति तथा त्वं चिन्त्यतां मुने ॥

दत्त उवाच—

तेन संभाषितं सर्वं[2] श्रुत्वा कारुणिको मुनिः । उवाच वचनं राजन्स्मृत्वा ब्रह्मपदं महत् ॥६३॥

ऋषिरुवाच—

हन्त ते[3] कथयिष्यामि शृणुष्व सुसमाहितः । यथा त्वं शुद्धिमाप्नोषि त्यक्त्वा पापानिमान्बहून्[4]॥
क्व भीतिर्मानुषे लोके पापानां दुःखदायिनाम् । जागर्ति मानसे क्षेत्रे[5] शिवलिङ्गसमन्विते॥६५॥
पातकानां महद्भीति त्यजस्व ब्रह्मराक्षस[6] । स्मृत्वैकं मानसं क्षेत्रं दुष्कृतानां भयापहम्[7]॥६६॥

ऋषि ने कहा—संसार में सब पापों का निवारण संभव है, परन्तु ब्रह्महत्या-जन्य पाप का निवारण असम्भव है। हे ब्रह्मराक्षस ! मित्रवध एवं स्त्रीवध-जन्य पापों से संयुक्त देह की शुद्धि तीर्थों के दर्शन से हो जाती है। पुनरपि मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि ब्रह्महत्या किये हुए मनुष्य की देहशुद्धि नहीं होती। इस प्रकार ऋषि-वाणी सुन कर पापी ब्रह्मराक्षस ने फिर अपनी देहशुद्धि के लिये प्रार्थना की ॥ ५६–५९ ॥

राक्षस बोला—अब मैं पापपूर्ण एवं दुर्विचारयुक्त इस शरीर को क्षण भर धारण करना नहीं चाहता। अतः हे ब्रह्मन् ! आप कोई ऐसा उपाय बतायें जिससे मैं शरीर छोड़ते ही ब्रह्म-हत्या से विमुक्त हो जाऊँ। आप से ज्ञानरूप अमृत पाकर अपने उपार्जित पापों का स्मरण कर मेरे पाप जिस प्रकार विनष्ट हो सकें—ऐसे उपाय कृपया मुझे बतलायें ॥६०–६२॥

दत्तात्रेय ने कहा—हे राजन् ! उस ब्रह्मराक्षस की बातें सुन कर परम कारुणिक ऋषि ने ब्रह्मपद का स्मरण कर पुनः कहना आरम्भ किया ॥ ६३ ॥

ऋषि बोले—हे राक्षसाधम ! तुम सावधान होकर सुनो। मैं तुम्हें यह बतलाऊँगा कि तुम किस प्रकार पातकों से रहित होकर शुद्ध हो सकोगे। शिवलिङ्गयुक्त मानसक्षेत्र के होते हुए इस संसार में दुःखदायी पापों का भय कहाँ ? तुम पापजन्य भय को मन से निकाल दो तथा दुराचरण के विनाशक मानसक्षेत्र का स्मरण करो। सब तीर्थ तथा अनेक दानों की महत्ता

---

१. 'सदेहमुक्तिहेतवे' इति 'ख' पुस्तके ।
२. 'हन्त तस्य च कर्माणि' इति 'क' पुस्तके ।
३. 'अहं ते' इति 'क' पुस्तके ।
४. 'त्यक्त्वा पापानि सर्वशः' इत्यपेक्ष्यते ।
५. 'मानसे जाग्रति क्षेत्रे' इत्यपेक्ष्यते ।
६. 'त्यज त्वं ब्रह्मराक्षस' इत्यपेक्षितम् ।
७. 'भयावहम्' इति 'ख' पुस्तके ।

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि दानानि विविधानि च । यावन्न स्मर्यते[1] श्रीमन्मानसः सरनायकः ॥६७॥
तावद्वदन्ति मुनयो धर्माणि विविधानि च । यावन्न मानसक्षेत्रं स्मरन्ति भुवि मानवाः ॥६८॥
तावद्यमालये वासो मर्त्यानां पापकारिणाम् । यावन्न मानसक्षेत्रं पश्यन्ति रक्षसां वर ॥६९॥
तावद् भ्रमन्ति मनुजाः संसारे सागरोपमे । यावन्न मानसं क्षेत्रं पश्यन्ति शङ्करान्वितम्[2] ॥
तावत्काशीं स्तुवन्ति स्म मुनयो राक्षसोत्तम । यावन्न मानसक्षेत्रं जानन्ति भुवि दुर्लभम् ॥७१॥
तावत्सर्वे नृणां श्रेष्ठा राजसूयं वदन्ति वै । यावन्न मानसकथां शृण्वन्ति भुवि दुर्लभाम् ॥७२॥
तावद्धि विष्णुभुवनं मनुष्याणां सुदुर्लभम् । यावन्न मानसजले मज्जन्ति भुवि दुर्लभे ॥७३॥
तावद्योगपथं पुण्यं वदन्ति शिवयोगिनः । तपोध्यानसमायुक्तं दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ॥७४॥
संस्तुतं देवगन्धर्वैर्दैतेयैश्चापि राक्षस । यावन्न मानसे क्षेत्रे पश्यन्ति शंकरं प्रभुम् ॥७५॥
तावत्साङ्गयुतान्वेदान्स्तुवन्ति ब्राह्मणा भुवि । यावन्न मानसक्षेत्रे वेदवादं श्रवन्त[3] हि ॥७६॥
तावत्काश्यां हि मनुजा मर्तुमिच्छन्ति राक्षस । यावन्न मानसक्षेत्रं जानन्ति मुक्तिदायकम् ॥७७॥
तावत्कीटपतङ्गाद्या योनिं पश्यन्ति राक्षस । कूष्माण्डा जृम्भकाश्चैव तथान्ये ब्रह्मराक्षसाः ॥७८॥
श्वानश्च श्वापदाद्याश्च तावद्योनिं व्रजन्ति हि । यावन्मानसखण्डे वै न जाता राक्षसोत्तम ॥७९॥

इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे मानसकीर्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

तभी तक है जब तक सरोवरों में प्रमुख मानसरोवर का स्मरण नहीं किया जाता। मुनिगण भी विविध धार्मिक कृत्यों का वर्णन तब तक करते हैं, जब तक मनुष्य इस लोक में मानसक्षेत्र का स्मरण नहीं कर पाते। हे राक्षसाधम ! पापीजन तभी तक नरक-यातना भुगतते हैं जब तक वे मानसक्षेत्र का दर्शन न कर लें। इस संसार-सागर में वे तभी तक चक्कर काटते रहते हैं, जब तक वे भगवान् शंकर से युक्त मानस-क्षेत्र तक न पहुँच सकें। हे राक्षसवर ! मुनिजन तभी तक काशी की प्रशंसा करते हैं जब तक उन्हें मानस-क्षेत्र विदित न हो। (कहाँ तक कहें) मनुष्य भी तभी तक राजसूय यज्ञ की श्रेष्ठता बतलाते हैं, जब तक वे मानस-क्षेत्र की कथा न सुन ले। जब तक मनुष्य भूलोक में दुर्लभ 'मानसरोवर' में स्नान नहीं करते, तब तक उनके लिये 'विष्णुलोक' भी दुर्लभ है। इसी प्रकार आत्मसाक्षात्कार न करने वाले लोगों से दुर्ज्ञेय किन्तु तपश्चर्या में संलग्न शिव के ध्यान में लगे हुए योगी भी तभी तक योग-मार्ग को श्रेष्ठ बतलाते हैं, जब तक वे देव, गन्धर्व, दैत्यों आदि से संस्तुत मानस-क्षेत्र में विद्यमान भगवान् शंकर का दर्शन नहीं कर लेते। हे राक्षस, जब तक लोगों को मुक्ति-दायक मानस-क्षेत्र विदित नहीं होता है, तभी तक मानव काशी में प्राणत्याग करने के इच्छुक रहते हैं। (इसके अतिरिक्त) कीड़े, पक्षी, कूष्माण्ड, जृम्भक एवम् अन्य ब्रह्मराक्षस, कुत्ते एवं शिकारी जानवर व्याघ्र आदि भी उसी योनि में अथवा भिन्न-भिन्न योनियों में तब तक भटकते हैं, जब तक वे मानस-क्षेत्र में जन्म नहीं लेते ॥ ६४-७९ ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत मानस-खण्ड में मानस-क्षेत्र-कीर्तन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

---

१. 'स्मार्यते' इति 'ख' पुस्तके। २. 'जानन्ति भुवि दुर्लभम्' इति 'क' पुस्तके।

३. 'श्रुवन्ति' इति 'ग' पुस्तके। 'शृण्वन्ति' इत्यपेक्ष्यते। 'श्रुवः शृ च' (३.१.७४) इति 'शृ-' आदेशस्य श्नोश्च विधानात्।

१४

ऋषिरुवाच—

अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। मुक्तिदं स्थिरचित्तानां पापानां नाशकारकम् ॥१॥
पुरा सत्ययुगस्यान्ते त्रेतादौ रक्षनायक। बभूव मागधे रम्ये देशे चाण्डालकाधमः ॥२॥
जात्यन्धः प्राक्तनेनैव पातकेनेह राक्षस। स्नेहेन पितरौ यस्य[1] बालं तं वै पुपोषतुः ॥३॥
कदन्नेनाऽऽमिषेणापि स्तन्येनापि च राक्षस। स पञ्चहायनो बालः प्राक्तनेनैव कर्मणा ॥४॥
जात्यन्धोऽपि महारक्षः[2] कुष्ठरोगमवाप सः। बभूव कीटैः सम्पूर्णः पूयशोणितसम्भवैः ॥५॥
करपादविहीनोऽभूत् स पापो राक्षसोत्तमः। ततः कालेन महता पितरौ जातुनायकौ ॥६॥
कृतान्तवशगौ तस्य जरया सम्बभूवतुः। ततस्तु बान्धवैः सर्वैस्त्यक्तोऽभूत् स कुलाधमः[3] ॥७॥
ययाचे ग्रामनगरान् अशनं रक्षनायकः। तत्रोच्छिष्टेन पिण्डेन शुना पूतेन वाऽपि हि ॥८॥
पुपोष देहं देहिघ्ने देवादृष्टेन[4] कर्मणा। ततः कालेन महता यात्रां भद्रवटस्य हि ॥९॥
ययुर्जानपदाः सर्वे ससैन्यबलवाहनाः। राजानो राजमुख्याश्च राजपत्नीभिरन्विताः ॥१०॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैवेतरे जनाः। वाहनैर्विविधैर्युक्ताः कलत्रैश्च समन्विताः ॥११॥
ययुर्भद्रवटं पुण्यं पुण्याश्रमनिषेवितम्। ततो भेरीमृदङ्गानां श्रुत्वा दुन्दुभिनिःस्वनम् ॥१२॥
चाण्डालोऽपि तदा यात्रां ययौ भद्रवटस्य हि। [5]नागरीयैर्जनैः साधं वसनासनतृष्णया[6] ॥१३॥
तत्र गत्वा जनान् सर्वान् याचयामास चाशनम्। तेनाशनेन वै रक्षः शरीरं स पुपोष ह ॥१४॥

(पुनः) ऋषि ने कहना आरम्भ किया—इस सम्बन्ध में मैं एक प्राचीन आख्यान बतलाना चाहता हूँ, जो कि स्थिरचित्त जनों का पापनाशक एवं मुक्तिदायक है। प्रथम युग—'सत्ययुग'—के अनन्तर त्रेता के प्रारम्भ होने पर सुन्दर मगध देश में एक दुष्ट चाण्डाल हुआ। हे राक्षस! वह पूर्व-जन्मार्जित पापों के कारण इस जन्म में (पैदा होने के साथ ही) अन्धा हो गया। उसके माता-पिता ने बड़े स्नेह से उसका लालन-पालन किया। कुत्सित अन्न, माँस तथा स्तनपान ने उसे पुष्ट किया। जब वह पाँच वर्ष का हुआ तो पूर्वजन्म के कर्मों से वृद्धावस्था में उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई तथा बन्धु-बान्धवों ने भी उस नीच को छोड़ दिया। तब वह गाँवों और नगरों में भीख माँगने को गया तथा अपने पूर्व कर्मों से जूठन एवं कुत्तों के खाये हुए अन्न से शरीर की रक्षा करने लगा। (इसी बीच) सेना, तथा रानियों सहित राज-समुदाय 'भद्रवट' की यात्रा के लिये चल पड़े। (साथ में) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, सभी अपने परिवार एवं वाहनों सहित अनेक आश्रमों से युक्त भद्रवट तीर्थ को गए। तब भेरी तथा मृदङ्ग आदि के शब्दों को सुनकर वह चाण्डाल भी भोजन-वस्त्र की आशा से उन

---

१. 'तस्य' इति 'ख' पुस्तके। २. 'महाराज' इति 'ख' पुस्तके।

३. 'कृमिभिः पूर्णदेहो वै पूयशोणितसम्भवैः। करे यष्टिं समालम्ब्य ततश्चाण्डालकाधमः ॥' इत्यधिकः श्लोकः 'ख' पुस्तके।

४. 'दैवादिष्टेन कर्मणा' इति 'ख' पुस्तके। ५. 'नागरिकैः' इत्यपेक्षितम्।

६. 'वसनाशनतृष्णया' इति 'ख' पुस्तके।

ततः कालेन महता मानसाख्यकथां शुभाम् । शुश्राव ऋषिमुख्यानामग्रतो राक्षसोत्तमः ॥१५॥
सरोवरस्य माहात्म्यं श्रुत्वा राक्षसनायकः । दधार सरनामं वै मानसेति तदाऽनघ[1] ॥१६॥
ततः कालेन महता पुरीं मगधपालिताम् । जपन्मानस-नामं वै स जगाम जनैः सह ॥१७॥
ततः कालेन महता दैवात्पञ्चत्वमीयिवान्[2] । पीडितश्चात्मसम्भूतै[3]रोगै राक्षसनायकः ॥१८॥
ततस्तं ब्रह्मभुवनात् समागत्याथ किङ्कराः । समारोप्य विमानाग्रे कृमिभिः सह राक्षस॥१९॥
यावद् ब्रह्मभुवं पुण्यं नेतुं ते समुपस्थिताः । तावत्तान् यमदूता वै समागत्य यमालयात् ॥२०॥
तानूचुस्ते महाभागा वचनं यमकिङ्कराः । शक्तिशूलगदायुक्ताः पाशमुद्गरपाणयः ॥२१॥

यमदूता ऊचुः—

त्यजन्तु ऋषिशार्दूलाः पापात्मानं नराधमम्।धर्माच्च वर्जितं[4] पापं चाण्डालाधमसंज्ञकम् ॥२२॥
न चानेन तपस्तप्तं न हुतं यज्ञकर्मणि । नानेन तर्पिता विप्रा न हि सम्पूजितः शिवः ॥२३॥
न चायं पुण्यतीर्थे वै मृतोऽस्ति ऋषिसत्तमाः । कथमेनं दुराचारं[5] विमानमधिरोप्य वै ॥२४॥
पूयशोणितदिग्धाङ्गं कृमिभिः परिपूरितम् । भवद्भिर्ब्रह्मभुवनं कथं दर्शयते द्विजाः ॥२५॥
देवर्षिगणगन्धर्वैः दुष्प्राप्यं मानुषैरपि । नैतस्यान्येषु जन्मेषु[6] वर्तते समुपार्जितम् ॥
पुण्यं पुण्यजलस्नानं यज्ञं वापि द्विजोत्तमाः ॥२६॥

यात्रियों के साथ भद्रवट को चल पड़ा । वहाँ जाकर उन यात्रियों से मिले हुए अन्न से अपने शरीर का पोषण करने लगा । वहाँ उसने ऋषियों से मानस-क्षेत्र की कथा सुनी । सरोवर के माहात्म्य को सुनकर उसने मानसरोवर का नाम स्मरण किया । कुछ समय के बाद 'मानस' का नाम जपते हुए वह यात्रियों के साथ मगध देश को वापस आ गया । हे राक्षसश्रेष्ठ ! फिर कुछ समय व्यतीत होने पर अपने शरीर में उत्पन्न रोग से दुःखी हो काल-कवलित हो गया । तभी ब्रह्मलोक से देवताओं के सेवक वहाँ आकर कृमियुक्त-शरीरधारी उसको विमान पर आरूढ कराते हुए ब्रह्मलोक ले जाने के लिए प्रस्तुत हुए । इतने ही में हाथों में शक्ति, शूल, गदा तथा मुगदर धारण किये यमदूत यमलोक से वहाँ आकर देवदूतों से बोले कि 'आप अधर्मी एवं पापी नराधम चाण्डाल को छोड़ दें । इसने न तो तपश्चर्या की है और न यज्ञादि किये है । साथ ही इसने ब्राह्मणों को भोजनादि से सन्तुष्ट भी नहीं किया है । हे श्रेष्ठ-ऋषियों ! इसकी मृत्यु भी किसी पुण्यस्थल में नहीं हुई है । आपने कैसे इस दुराचारी को इस विमान पर चढ़ाया है ? पीप, कीड़े तथा दुर्गन्धयुक्त रक्त से सने हुए इसके शरीर को आप लोग देव और ऋषियों को भी दुर्लभ ब्रह्मलोक में कैसे दिखायेंगे ? तथा पूर्व जन्मों में भी इसने कोई पुण्योपार्जन नहीं किया है । (कहाँ तक कहें) 'इसने तो पवित्र तीर्थ में स्नान एवं यज्ञ-कर्म भी नहीं किया' ॥ १–२६ ॥

---

१. 'दधार नाम सरसो मानसेति तदाऽनघ' इत्यपेक्ष्यते । २. 'पञ्चत्वमेयिवान्' इति 'क' पुस्तके ।
३. 'पीडितः स्वात्मसंभूतैः' इति 'ख' पुस्तके । ४. 'धर्माध्ववर्जितम्' 'क' पुस्तके ।
५. 'कथमेकं दुराचारम्' इति 'ख' पुस्तके । ६. 'जन्म' शब्दः अदन्तोऽपि इति भानुदीक्षितः ।

ऋषय ऊचुः—

शृण्वन्तु तस्य[1] पुण्यं वै जन्मान्तरकृतं महत् ॥ २७ ॥

यं श्रुत्वा पापनिरतो जनो मुक्तिपथं व्रजेत् । एष जन्मान्तरे दूता ब्राह्मणो वेदपारगः ॥२८॥
पराशरकुलोत्पन्नो नाम्ना वेदनिधिः स्मृतः । बभूव कोंकणे देशे सर्वदा रतिलालसः ॥२९॥
तत्र तेन[2] महाभागाः सेविता वारनायिकाः । दिने दिने दश दश पापेनानेन कामिना ॥३०॥
तत्रानेन महाभागा वारस्त्रीपरिचारिणा । कृतं मांसाशनं चापि मदिरा च निषेविता ॥३१॥
बभूव पापनिरतो वेदमार्गविलोपकः । द्विजाचरणविभ्रष्टो लोकद्वेषकरस्तथा ॥३२॥
तत्याज पुत्रदारादीन् तत्रैव स्वजनान् शुभान् । तथैव पोषणं तेषां त्यक्तं चानेन पापिना ॥३३॥
ततः कालेन महता त्यक्त्वा स्वजनबान्धवान् । जगाम स वने दूता नीत्वा वाराङ्गनात्रयम् ॥
विजहार वने रम्ये नायिकाभिस्तदा सह[3] । चकार गीतवाद्यं वै त्यक्त्वा वेदपथं महत्[4] ॥३५॥
ततः कालेन महता स द्विजो यमकिङ्कराः । शुश्राव सरनामं वै मानसेति न संशयः ॥३६॥
तत्रैव सरनामं वै धारयामास किङ्कराः । पापान्तकारकं पुण्यं गणगन्धर्वपूजितम् ॥३७॥
ततस्तद्धारणाद्दूतास्तस्य पातककोटयः । प्रणष्टा वाऽभवन्नूनं[5] वेश्यासेवनसम्भवाः[6] ॥३८॥
कालेन सरनामं वै तत्याज यमकिङ्कराः । बभूवासौ पुनरपि वेश्यासंगरतो द्विजः ॥३९॥
चकार मदिरापानं पलायनपरायणः । तथैवानेन संत्यक्ताः पुत्राः कालवशं ययुः ॥४०॥
पोष्यहीनाः पयोहीना बान्धवैश्च विसर्जिताः । दाराश्चानेन संत्यक्ताः पतिहीनाश्च किङ्कराः ॥
भेजे चान्यं हि भर्तारं कामतप्ता न संशयः । अयमप्यमृतप्रायं त्यक्त्वा धर्मपथं शुभम् ॥४२॥

ऋषियों ने कहा—यमदूतों ! सुनो । इसने पूर्वजन्म में बड़ा पुण्य अर्जित किया है, जिसका श्रवण कर पापी मनुष्य भी मुक्तिमार्ग का अनुगमन करता है । जन्मान्तर में यह भी वेद-पारङ्गत ब्राह्मण रहा । पराशर कुल में उत्पन्न यह वेदनिधि नाम का ब्राह्मण था । कोंकण देश में रहते हुए यह कामासक्त था । वहाँ इस पापी ने प्रतिदिन दस वाराङ्गनाओं का साथ किया । देवदूतों ! वहाँ पर इस वेश्यागामी ने मांसभक्षण तथा मदिरापान भी किया । इस प्रकार पाप में निरत हो वेदमार्ग का परित्याग कर यह द्विजों के आचरण से भ्रष्ट हो गया एवं सब लोगों से द्वेष करने लगा । पत्नी, पुत्र तथा स्वजनों का त्याग कर उनका पालन-पोषण भी बन्द कर दिया । दूतों ! इसके बाद वह तीन वेश्याओं को साथ लेकर वन को चला गया । वहाँ सुरम्य वन में उन नायिकाओं के साथ रमण करता रहा । इस तरह वेदमार्ग से विरत हो गीत-वादित्र में लीन हो गया । यमदूतों ! तदनन्तर बहुत समय बीतने पर निःसन्देह उसने मानसरोवर का नाम सुना । देवगण तथा गन्धर्वों से पूजित एवं पाप के विनाशक तथा पुण्योपार्जक सरोवर के नाम को उसने हृदय में धारण कर लिया, जिसके फलस्वरूप वाराङ्गनाओं के साथ करने से उत्पन्न पापकोटियाँ विनष्ट हो गईं । किन्तु कालान्तर में सरोवर का नामस्मरण छोड़ वह पुनः वेश्या-गामी हो गया एवं घर छोड़ मदिरा का सेवन करने लगा । इसी बीच इसके परित्यक्त पुत्रों की भी मृत्यु हो गई । पोषण एवं जलादि से रहित तथा बन्धु-

---

१. 'शृण्वन्त्वेतस्य' इति 'क-ख' पुस्तकयोः । २. 'तत्रानेन' इति 'क-ख' पुस्तकयोः ।
३. 'रहः' इति 'क' पुस्तके । ४. 'चकार गीतविद्यां वै त्यक्त्वा वेदपथं महत्'—'क' पुस्तके ।
५. 'प्रनष्टा वाऽभवन्नूनम्'—'क' पुस्तके । ६. 'वेश्यासंगमसंभवाः'—'ग' पुस्तके ।

तथा मानसनामं वै वेदाध्ययनकं शुभम् । त्यक्त्वा पञ्चत्वमापन्नो बभूव यमकिङ्कराः ।।४३।।
मृतोऽपि प्राक्तनेनैव पातकेन न संशयः । बभूव चैष[1] चाण्डालो जात्यन्धो यमकिङ्कराः।।४४।।
यदनेन महाभागास्त्यक्त्वा वेदपथं महत् । क्रीडिता वारवनिता जात्यन्धस्तेन चाऽभवत् ।।४५।।
कृतं मांसाशनं चापि तत्रानेन दुरात्मना । तेन पापेन चाण्डालो बभूव यमचारणाः ।।४६।।
त्यक्ताः पुत्रकलत्रा ये यदनेन दुरात्मना । ते मृताश्चाभवन् कीटा देहस्य यमकिङ्कराः ।।४७।।
दिने दिने दश दश यदनेन दुरात्मना । सेविता वारवनितास्तेन कुष्ठमवाप्तवान् ।।४८।।
नानेन तर्पिता विप्रा न स्वाध्यायः कृतश्च यत् । नेष्टापूर्तादिकं वापि तेनासौ क्षुधितोऽभवत् ।।
इहैव मानुषाणां हि दृश्यते नात्र संशयः । स्वर्गापवर्गमार्गं च तथा पापादिलक्षणम् ।।५०।।
शतजन्मार्जितैः पुण्यैः प्राप्यते ब्राह्मणी तनुः । नास्त पुण्यविपाको वै मनुष्याणां शुभात्मनाम् ।।
तस्मादयं महाभागा नीयते ब्रह्ममण्डले । यदनेन कृतं पापं प्राग्जन्मनि दुरात्मना ।। ५२ ।।
फलं तस्य महाभाग भुक्तमत्र न संशयः । भुक्त्वा पापफलं चात्र प्राप्य योनिं निरर्थकाम् ।।
अस्य ब्रह्मगृहे वासो विद्यते नात्र संशयः । यदनेन महाभागा मानसाक्षरसंयुतम् ।।५४।।
नाममुच्चारितं[2] पुण्यं तेन प्राप्नोति शाश्वतम् । मानसोच्चारणेनास्य[3] नष्टाः पातककोटयः ।।
दुःसंसर्गसमारब्धा[4] धर्मकामार्थनाशकाः । यन्नामोच्चारणात् सर्वे यान्ति ब्रह्मपदं महत्।।५६।।
तन्नामोच्चारणादेष मृतो मगधमण्डले । मानसाक्षरयुक्तानां मनुष्याणां दुरात्मनाम् ।।५७।।

बान्धवों से परित्यक्त उसकी पत्नी भी कामसन्तप्त हो दूसरे पति की शरण में चली गई। इसने भी अमृत से परिपूर्ण धर्मपथ तथा वेदाध्ययन को छोड़ एवं मानसरोवर के नामस्मरण को भुलाकर मृत्यु प्राप्त की। यमदूतों! निःसन्देह वह पूर्वजन्म के पापों से ही काल-कवलित हुआ। इसके बाद जन्मान्ध हो चाण्डाल के घर में उसने जन्म लिया। उस जन्म में भी इस दुराचारी ने वेदमार्ग को छोड़ वारांगना के साथ रमण किया। मांसभक्षण एवं मद्य-सेवन किया। उसी पाप से यह चाण्डाल भी हुआ। इसके मृत परिवारजनों ने उसके शरीर में कीड़ों का रूप धारण किया। प्रतिदिन दस वेश्याओं के सेवन करने के फलस्वरूप इसके शरीर में कुष्ठ रोग हो गया। (क्या बतायें) इसने ब्राह्मणों को तृप्त नहीं किया तथा स्वाध्याय से भी यह विमुख रहा। इसने इष्टापूर्त का नाम भी नहीं लिया, अतः यह क्षुधार्त हो गया। (यह सत्य है) इसी संसार में मनुष्यों को स्वर्ग एवं मोक्ष-मार्ग तथा पाप के लक्षण आदि सभी दिखाई पड़ते हैं। सैकड़ों पुण्यों से ब्राह्मण का जन्म प्राप्त होता है। शुभ कार्य करने वाले जीवों का पुण्य व्यर्थ नहीं जाता। इसी कारण इसे ब्रह्मलोक ले जाया जा रहा है। जो पाप इसने पूर्व जन्म में किए हैं, उनका फल यह भुगत चुका है। पापों का फल इसने यहीं भोगकर पूरा कर लिया। अब इसका ब्रह्मलोक में निवास करना निश्चित है। हे ऋषिवरों! इसने 'मानस' का नामोच्चारण कर जो पुण्य अर्जित किया है, उसी से यह मुक्ति प्राप्त कर रहा है तथा इसके करोड़ों पाप—जो धर्म, काम और अर्थ के विघातक थे तथा इसे बुरी संगति से मिले थे—नष्ट हो गए हैं। तथा जिसका नाम लेने से लोग श्रेष्ठ ब्रह्मलोक को

---

१. 'चैव'—'क' पुस्तके। २. 'नाम' उच्चारितम्—'क' पुस्तके।
३. 'मानसोच्चारणादस्य'—'क' पुस्तके। ४. 'दुःसंसर्गात् समारब्धाः'—'क' पुस्तके।

यत्र तत्र मृतिर्भूत्वा वासो ब्रह्मपदे शुभे। तथानेन महाभागाः प्राग्जन्मनि सरोवरम् ॥५८॥
संस्मृतं तेन पुण्येन श्रुत्वा सरकथामिह। प्राप्य भद्रवटं पुण्यं यदेषः श्रुतवान् कथाम् ॥५९॥
यदत्र ब्रह्मभुवने नीयतेऽस्माभिः किङ्कराः। मानसाख्यं समुच्चार्य पशुघ्नोऽपि यमालयम् ॥६०॥
न पश्यति यमं दूताः किमुतान्ये यतव्रताः। मानसोच्चारणात्सद्यः कुलकोटिसमन्विताः ॥६१॥
व्रजन्ति ब्रह्मभुवनं मानवा देवसेवितम्। ब्रह्महत्याशतं वापि कृत्वा मानसरोवरम् ॥६२॥
स्नात्वा संक्षालयन्ति स्म मानवा नात्र संशयः। सम्पर्कादपि लोकानां मानसाख्यसरोवरः।६३।
ददात्यभीष्टं[1] स्मरणात्संस्मृतो यदि किङ्कराः[2]। तद्ध्यानेन मृतानां वै मनुष्याणां महात्मनाम् ॥
विद्यते ब्रह्मभुवने वासो वा शान्तकारकाः[3]। एतस्य देहसंलग्नाः कीटा अपि महात्मनः ॥६५॥
व्रजन्ति ब्रह्मभुवनं संपर्कादस्य शोभनम्। कथं न ज्ञायते पुण्यं मानसस्मरणोद्भवम् ॥६६॥
भवद्भिर्धर्ममर्गज्ञा दुष्प्राप्यं दैवतैरपि। गम्यतां भवनं क्षिप्रं धर्मराजस्य किङ्कराः ॥
त्यज्यतां चात्र सन्देहः क्रियन्तां यमशासनम् ॥६७॥

ऋषिरुवाच—

इति ब्रह्मर्षिभिः प्रोक्तं वचनं यमकिङ्कराः ॥ ६८ ॥
निःसंशया सुमनसा ययुर्यमगृहं प्रति। तेऽपि चाण्डालजं नीत्वा विमानमधिरोप्य वै ॥६९॥
सह तैः कीटकै रक्षोदिव्यदेहधरैः शुभैः। प्रजग्मुर्ब्रह्मभुवनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥७०॥

प्राप्त करते हैं, उसका ही अवलम्बन करते हुए मगध-मण्डल में इसकी मृत्यु हुई है। दुराचारी मनुष्यों की 'मानस' इन तीन अक्षरों का उच्चारण करते हुए जहाँ कहीं भी मृत्यु हो, उनका वास श्रेष्ठ ब्रह्मलोक में निश्चित है। श्रेष्ठ ऋषियों! इसने पूर्वजन्म में मानसरोवर का स्मरण किया था, उसी पुण्य से सरोवर की कथा सुनकर पुनः भद्रवट में सरोवर की कथा सुनी। इसी हेतु यमदूतों! हम इसे ब्रह्मलोक ले जा रहे हैं। पशुघाती भी 'मानस' नाम का उच्चारण कर यम का दर्शन नहीं करते, अन्य व्रतपालकों की तो बात ही क्या है? 'मानस' का उच्चारण करने से मानव कुल-परम्परा-सहित देवों से सेवित ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। सैकड़ों ब्रह्महत्याओं से संयोजित मानव मानसरोवर में स्नान कर अपने पापों का निःसन्देह प्रक्षालन करते हैं। हे यमदूतों! (अवाञ्छनीय) लोगों के सम्पर्क से भी मानसरोवर अपने स्मरण करने वालों को अभीष्ट फल देता है। मानसरोवर का ध्यान करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए मनुष्य ब्रह्मलोक में वास करते हैं तथा उनके देह में लगे हुए विघातक कीड़े भी इसके सम्पर्क से सुन्दर ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। हे धर्ममार्गज्ञों! देवताओं से भी दुष्प्राप्य मानसरोवर के स्मरण-मात्र से उत्पन्न पुण्य को आप कैसे नहीं जानते? हे धर्मराज के दूतों! आप शीघ्र यहाँ से अपने लोक को जायें। इसके सम्बन्ध में आप सन्देह छोड़ दें तथा यमराज की आज्ञा मानें ॥ २६-६७ ॥

ऋषि ने कहा—हे यमदूतों! इस प्रकार ब्रह्मर्षि की कही बातों को सुनकर सन्देह से रहित हो वे सौमनस्य के साथ यमलोक को गए। वे वसिष्ठादि ऋषि भी, हे राक्षस, उस

---

१. 'ददात्यभीष्टं स्मर्तॄणां'—'क' पुस्तके। २. 'यमकिङ्कराः'—'क' पुस्तके।
३. 'विद्यते ब्रह्मभवने वासो वासान्तकारकाः'—'क' पुस्तके।

पूजितं देवगन्धर्ववसिष्ठाद्या महर्षयः[1] । संप्राप्य ब्रह्मभुवनं देवर्षिगणसेवितम् ॥७१॥
मेने सरःप्रभावं वै पूर्णेन मनसाऽपि ह । इत्येतत्कथितं रक्षोमाहात्म्यमनुवर्णितम् ॥७२॥
सरोवराख्यानयुतं समस्ताघप्रणाशनम् । त्वमपि श्रद्धया युक्तो व्रज मानसरोवरम् ॥७३॥
देवर्षिगणगन्धर्वैः पूजितं सुमनोहरम् । तत्र त्वं ब्रह्महत्याया दर्शनान्निष्कृतिं पराम् ॥७४॥
गमिष्यसि महाभाग सत्यं ते व्याहृतं मया ॥ ७५ ॥
आख्यानमेतत्सरनायकस्य महर्षिणा राक्षसनायकाय ।
प्रकाशितं मानसमानयुक्तं शृण्वन्ति ये ब्रह्मपदं प्रयान्ति ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे चाण्डालाख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

चाण्डाल-सुत को विमान पर चढ़ा कर, दिव्य देहधारी कीड़ों के साथ उसे ब्रह्मलोक को ले गए। देव तथा ऋषियों से सेवित ब्रह्मलोक पहुँच कर वे बड़ी प्रसन्नता से सरोवर के प्रभाव को जान पाये। हे राक्षस ! समग्र पापों के नाशक सरोवर के आख्यान-सहित यह इतिहास मैंने बतलाया। तुम भी श्रद्धापूर्वक देव, ऋषि तथा गन्धर्वों से पूजित एवं सुशोभन मानसरोवर को जाओ। वहाँ के दर्शन से तुम्हारा भी ब्रह्महत्या से छुटकारा हो जायगा। मैंने यह बात तुमसे सच कही है। 'मानस' नाम से संयुक्त इस सरोवर का आख्यान ब्रह्मर्षि ने जो राक्षस-श्रेष्ठ को सुनाया है, उसे जो सुनते हैं—वे भी ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥ ६८–७६ ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत मानस-खण्ड में चाण्डालाख्यान नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

---

१. 'वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः'—'ग' पुस्तके। अयमेव पाठः समीचीनः।

दत्त उवाच—

ततः स राक्षसो घोरः सह तै राक्षसैर्नृप । श्रुत्वा तस्य ऋषेर्वाणीं जगाम सरनायकम् ॥१॥
वनादुपवनं राजन्गच्छन् स ब्रह्मराक्षसः । सह तै राक्षसगणैर्ददर्श हिमपर्वतम् ॥२॥
तत्र सम्पूजयामास शिरांसि हिमपर्वते । शङ्करस्य महाराज शोभितानि हिमैः शुभैः ॥३॥
स तदा राक्षसो घोरो घोररक्षोगणैः सह । अवाप देवसदृशं देहं राजर्षिसत्तम ॥४॥
ततो दिव्येन देहेन दिव्यैः सहचरैः सह । जगाम मानसक्षेत्रं कैलासाधिविराजितम् ॥५॥
स तत्र मज्जयामास रक्षोभिर्नृपसत्तम । सह दिव्यैर्देवकान्तैः स्वर्नद्यां सुरराडिव ॥६॥
त्रिभिर्वर्षैर्महाराज सह यातुगणैः शुभैः । स तत्र तपयामास तपः परमदुष्करम् ॥७॥
पूजयन्शङ्करं शान्तं पार्वत्या सह संस्थितम् । निनाय कालं धर्मात्मा साक्षादिव शतक्रतुः ॥८॥
ततः कालेन महता तुषितः पार्वतीपतिः । दर्शनं दर्शयामास सह नन्दादिपार्षदैः ॥९॥
तमाद्यं तोषयामास स तदा राक्षसोत्तमः । गीर्भिः प्रणयपूर्वाभिर्वाष्पपूर्णाभिः शङ्करम्[1] ॥१०॥

राक्षस उवाच—

नमो नमस्ते सरमध्यगाय सुवर्णहंसाय महाप्रभाय ।
नन्दादिभिः पार्षदपूजिताय रविप्रभायामितविक्रमाय ॥११॥
नमो नमस्ते हरिपूजिताय देवीकलत्राय सदाशिवाय ।
कपालमालासुविराजिताय ब्रह्मादिब्रह्मर्षिभिः पूजिताय[2] ॥१२॥

दत्तात्रेय ने कहा—तदनन्तर वह राक्षस ऋषि के वचन सुनकर अन्य राक्षसों सहित मानसरोवर को गया। वन एवम् उपवनों को पार करते हुए उन सब के साथ उस ब्रह्म-राक्षस ने हिमालय पर्वत को देखा। महाराज! वहाँ शुभ्र हिम से मण्डित हिमालय पर्वत पर भगवान् शंकर के शिरों का पूजन किया। हे राजश्रेष्ठ! तब राक्षस ने उन भयङ्कर रासक्षों-सहित दिव्य रूप धारण किया। फिर उन सब के साथ कैलास-अधिष्ठित मानस-क्षेत्र की ओर आगे बढ़ा। हे नृपश्रेष्ठ! वहाँ दिव्यदेहधारी अन्य राक्षसों के साथ जाकर उसने मन्दा-किनी की तरह सुरराज की भाँति मानसरोवर में स्नान किया। उन राक्षसों के साथ तीन वर्ष तक वहाँ निवास कर कठोर तप किया। पार्वती के सहित विराजमान शान्तस्वरूप भगवान् शंकर का पूजन करते हुए उस धर्मात्मा ने साक्षात् इन्द्र की तरह अपना समय-व्यतीत किया। चिरकाल के बाद भगवान् शंकर ने उस पर प्रसन्न होकर नन्द आदि पार्षदों (गणों) सहित दर्शन दिया। तदनन्तर उस राक्षस ने बड़े प्रेम के साथ गद्‌गद हो शिवजी की स्तुति करनी आरम्भ की ॥ १–१० ॥

राक्षस ने कहा—मानसरोवर के मध्य में स्थित ज्योतिःस्वरूप, अत्यधिक तेजस्वी, नन्दादि पार्षदों से पूजित एवं सूर्य की कान्ति के समान अमित पराक्रमी सुवर्णहंस के रूप में स्थित आप को नमस्कार करता हूँ। भगवान् विष्णु से पूजित, देवी पार्वती को साथ लिए,

---

१. 'बाष्पपूर्णाभिरीश्वरम्' इत्यपेक्ष्यते ।
२. 'ब्रह्मर्षिवृन्दैरभिपूजिताय' इति 'फ' पुस्तके । अयं पाठः समीचीनः ।

नमो नमस्ते हरिवल्लभाय करालवक्त्राय शिवप्रदाय।
सुघोरसंसारभयापहाय देवैर्महेन्द्रादिभिः पूजिताय ॥१३॥
नमो नमस्ते ज्वलनप्रभाय जटाभिरामण्डितमस्तकाय।
नागेन्द्रहारेण विराजिताय त्रिशूलखट्वाङ्गधराय तुभ्यम् ॥१४॥
नमो नमस्ते शशिसेविताय सकृच्चिताभस्मविलेपिताय[1]।
वृषध्वजाय त्रिपुरान्तकाय गङ्गाधरायान्धकनाशनाय[2] ॥१५॥
नमो नमः पिङ्गजटाधराय चर्माङ्गवासाय कलाधराय।
कालान्तकायाचलवासिताय लिङ्गस्वरूपाय सरःस्थिताय ॥१६॥

दत्त उवाच—

वचनं तस्य संश्रुत्य स्तुतिप्रणयपूर्वकम्। तुषितः पार्वतीनाथो वचनं समुवाच ह ॥१७॥

शिव उवाच—

वरं वरय वै रक्षस्त्वया सन्तोषितोऽस्म्यहम्। मयि त्रातरि भक्तानां न भयं विद्यते क्वचित् ॥१८॥

राक्षस उवाच—

नाऽहं स्वर्गं शून्यसंज्ञं वृणोमि पदं महेन्द्रस्य तथा समस्तम्।
त्वत्पादकञ्जं त्रिदिवेन्द्रपूज्यं वृणोमि रक्षः सह शङ्कर प्रभो ॥ १९ ॥

कपाल-मालाओं से सुशोभित एवं ब्रह्मर्षियों से पूजित आप सदाशिव को मेरा प्रणाम स्वीकार हो। भगवान् विष्णु के प्रिय, कराल मुख-सम्पन्न, कल्याणकारी, इस घोर संसार के भयनाशक तथा महेन्द्र आदि देवगणों से पूजित, आप शंकर को मेरा नमस्कार है। अग्नि के समान कान्तिधारी, जटाओं से मण्डित सिरवाले, सर्पों की मालाओं को धारण किये हुए एवं त्रिशूलरूपी खाट पर अवस्थित आप को मेरा प्रणाम स्वीकार हो। चन्द्रमा से सुशोभित, चिताभस्मलेपित, वृषध्वज-धारक, त्रिपुरान्तक, गङ्गाधर तथा अन्धकासुर के नाशकर्ता शिव को मेरा प्रणाम है। पीली जटाओं से संयुत हो गजेन्द्र-चर्म को लपेटे हुए, चन्द्रमौलि, मृत्युञ्जय, हिमालयवासी एवम् मानसरोवरस्थ लिङ्गस्वरूप शिव को मेरा बारवार नमस्कार है ॥ ११-१६ ॥

दत्तात्रेय ने पुनः कहना आरम्भ किया—इस प्रकार उस राक्षस की भक्तिसंयुत वाणी को सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर बोले ॥ १७ ॥

शिवजी ने कहा—हे राक्षस ! तुमने मुझे सन्तुष्ट किया है, अतः तुम वर माँगो। मेरे रक्षक होते हुए भक्तों को कोई भय नहीं रहता ॥ १८ ॥

राक्षस ने निवेदन किया—भगवन् ! मैं न तो केवल स्वर्ग का इच्छुक हूँ और न इन्द्रपदवी का अभिलाषी हूँ। हे प्रभो ! मैं तो तीनों कालों में देववृन्द तथा इन्द्र से पूजित आपके चरणों को प्राप्त करने का वर माँगता हूँ। भगवन् ! देवों से सुपूजित आपके चरणों

---

१. 'विलेपनाय' इति 'क' पुस्तके। २. 'गङ्गाधरायान्धकनाशकाय' इति 'ख' पुस्तके।

कालत्रये ते पदपङ्कजं प्रभो त्यक्तुं न शक्नोमि सुरैः सुपूजितम् ।
पुराणशास्त्रैरखिलैः प्रकाशितं ब्रह्मादिभिर्ब्रह्मसुतैः सुपूजितम्[1] ॥ २० ॥

दत्त उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान्सह तेन नराधिप । जगाम कैलासगृहं सुरगन्धर्वपूजितम् ॥२१॥
स तदा राजशार्दूल रुद्रकन्यानिषेवितम् । प्राप्य शिवगृहं कान्तं बभूव गणनायकः ॥२२॥
घण्टाकर्णेति विख्यातः सेवितो जातुनायकैः । संस्तुतः सिद्धगन्धर्वैर्बभूव नृपसत्तम ॥२३॥
यत्र यत्र महादेवः पूज्यते मानवोत्तमैः । तत्र तत्र महाराज घण्टाकर्णोऽपि पूज्यते ॥२४॥
शासकः सैव राजर्षे मनुष्याणां दुरात्मनाम् । सह तै राक्षसगणैर्बभूव शिवमण्डले ॥२५॥
इत्येतत्सर-राजस्य माहात्म्यं कथितं मया । धर्मार्थमोक्षदं पुण्यं पुण्याख्यानसमन्वितम् ॥२६॥
विस्तरेणानुपूर्व्यं च महिमा कथितो मया । सरराजस्य राजर्षे किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥२७॥
ब्रह्महा राक्षसो घोरो घोरैर्यातुगणैः सह । स यत्र नृपशार्दूल गणत्वमुपलब्धवान् ॥२८॥
तस्याख्यानं मया प्रोक्तं सरराजस्य भूपते । यस्य संस्मरणात्सद्यश्चाण्डालोऽपि दिवं गतः ॥२९॥
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं वाचयेद्वा समाहितः । श्रियं च लभते नित्यं स स्वर्गान्न निवर्तते ॥३०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरमाहात्म्ये दत्त-धन्वन्तरिसंवादे राक्षसाख्यानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

को त्रिकाल में भी मैं नहीं छोड़ सकता हूँ । पुराणों एवं शास्त्रों में वर्णित तथा ब्रह्मादि देवों एवं ब्रह्मा के मानस-पुत्रों द्वारा संस्तुत आपके चरणों का परित्याग मैं कदापि नहीं कर सकता ॥ १९-२० ॥

दत्तात्रेय बोले—हे राजन् ! तब भगवान् शंकर 'तथाऽस्तु' कहकर उसके साथ देव एवं गन्धर्वों से पूजित कैलास पर्वत को चले गए। हे राजसिंह ! फिर वह रुद्रकन्याओं से सेवित सुन्दर शिवलोक को प्राप्त कर शिवजी का प्रमुख गण हो गया । इस प्रकार राक्षस-श्रेष्ठों से सेवित तथा सिद्ध-गन्धर्वों से सम्मानित हो वह घण्टाकर्ण नाम से प्रख्यात हो गया । महाराज ! जहाँ भगवान् शिव की पूजा होती है, वहाँ घण्टाकर्ण भी पूजा जाता है । शिवजी के परिसर में राक्षसों से समवेत हो दुराचारी मनुष्यों का वही दण्डधारक है । नृपश्रेष्ठ ! धर्म-काम और मोक्ष को देने वाले तथा पुण्यदायक आख्यानों सहित सरोवर का माहात्म्य मैंने आपसे कहा। इसके साथ ही क्रमशः उसकी विस्तृत महिमा का वर्णन भी किया । राजन् ! अब आप और क्या पूछना चाहते हैं ? जहाँ पर वह घोर ब्रह्मघाती राक्षस घोर राक्षसों के साथ शिव का गण बन गया, उस स्थान का माहात्म्य तो मैंने कहा ही है । उसके स्मरण मात्र से चाण्डाल भी तत्काल स्वर्ग को प्राप्त कर सका । जो कोई इसको प्रतिदिन सुनता है या सावधानी के साथ इसका वाचन करता है, वह सदा श्रीसम्पन्न हो स्वर्ग-स्थित रहता है ॥ २१-३० ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में सरोवर-माहात्म्य से सम्बद्ध दत्तात्रेय-धन्वन्तरि-संवाद के अन्तर्गत राक्षसाख्यान नाम का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

---

१. 'ब्रह्मसुतैरभिष्टुतम्' इति 'क' 'ख' पुस्तकयोः ।

१६

व्यास उवाच—

मानसाख्यानकं श्रुत्वा काशिराजो महामतिः । माहात्म्यं सरतीर्थानां प्रष्टुमारेभिरे ततः ॥१॥

धन्वन्तरिरुवाच—

त्वत्प्रसादान्महाभाग सरोवरकथां शुभाम् । श्रुत्वा मे जायते श्रद्धा पातकानां विनाशिनी ॥२॥
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तीर्थानामृषिसत्तम । सरोवरजले पुण्ये संभवानां विशेषतः ॥३॥
तथा गङ्गाप्रवाहानां स्रोतसां चापि वर्णनम् । तथैव शिवलिङ्गानां संस्थितानां सरोवरे ॥४॥
गुहानां चापि माहात्म्यमाकराणां तथैव च । गुहासु शिवलिङ्गानां पूजितानां द्विजोत्तमैः ॥५॥
ऋषिपुण्याश्रमाणां च संगमानां तथैव च । माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तथा ब्रह्मशिरस्य च ॥६॥
विष्णुपादाङ्किताना च स्थलानामृषिसत्तम । माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ततः स्नानफलं शुभम् ॥

व्यास उवाच—

इति पृष्टः स धर्मात्मा काशिराजेन धीमता । दत्तः संयमिनां श्रेष्ठो वचनं समुवाच ह ॥८॥

दत्त उवाच—

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य ते ईदृशी मतिः । कथया[1] सरराजस्य विद्यते भुवि पूजिता ॥९॥
मानसाख्यस्य तीर्थानां माहात्म्यं कथयामि ते । तदुक्तं देवदेवेन पार्वत्यै कृपया पुरा ॥१०॥
कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगत्पतिम् । प्रणम्य परया भक्त्या पप्रच्छ गिरिकन्यका ॥११॥

व्यासजी बोले—मानसरोवर के आख्यान को सुन कर ज्ञानवान् काशिराज ने पुनः सरोवरस्थ तीर्थों के माहात्म्य को पूछना आरम्भ किया ॥ १ ॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे महाभाग ! आप की कृपा से शुभफलदायक सरोवर की कथा को सुनकर मेरे मन में पापों को नाश करनेवाली श्रद्धा उत्पन्न हो रही है । अतः विशेषतः सरोवर के जल से सम्बद्ध तीर्थों के माहात्म्य को मैं सुनना चाहता हूँ । इसके अतिरिक्त गङ्गा की धाराओं, स्रोतों एवं सरोवर में स्थित शिवलिङ्गों, गुहाओं तथा खानों के साथ ही द्विजों से पूजित गुहाओं में स्थित शिवलिङ्गों को भी जानने का इच्छुक हूँ । पुनरपि ऋषियों के पुण्यप्रद आश्रम, नदी-स्रोतों के सङ्गम तथा ब्रह्मकपाल का माहात्म्य जानने का इच्छुक हूँ । हे ऋषिश्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त विष्णु के चरणों से अङ्कित स्थानों की विशेषता तथा तत्रस्थ तीर्थों में स्नान करने का फल भी सुनने का इच्छुक हूँ ॥ २-७ ॥

यह सुन कर व्यासजी ने कहा—इस प्रकार काशिराज के द्वारा धर्मात्मा व्यास जी से जिज्ञासा किये जाने पर श्रेष्ठ संयमी दत्तात्रेय ने उत्तर दिया ॥ ८ ॥

दत्तात्रेय ने कहना आरम्भ किया—हे राजन् ! आपको सरोवरों में श्रेष्ठ मानसरोवर की पूजनीय कथा के द्वारा जो सद्बुद्धि प्राप्त हुई है, इस हेतु आप धन्य हैं । अब मैं तुम्हें भगवान् शंकर के द्वारा पार्वती को कृपापूर्वक कहे गए मानसरोवर के तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ । एक बार कैलास-शिखर पर आसीन जगत्पति देवाधिदेव भगवान् शंकर को प्रणाम कर भक्ति-पूर्वक पार्वती माता ने पूछना आरम्भ किया ॥ ९-११ ॥

---

१. 'कथायाः' इति 'क' पुस्तके ।

पार्वत्युवाच—

देवदेव महादेव प्रपन्नार्तिहर प्रभो। भवता मानसजले वासो वै केन हेतुना ॥१२॥
क्रियते हंसरूपेण तन्मां कथय वै प्रभो। कथं पुण्यजले[1] तत्र लोकैः समनुवाहृतम्[2] ॥१३॥
स्नात्वा तत्र महाभाग किं फलं लभ्यते ध्रुवम्। कानि तीर्थानि मुख्यानि पवित्राणि शुभानि च ॥
के देवा मानसजले सन्ति देवेश शंस मे। कानि वै तव लिङ्गानि पूजितानि मनीषिभिः ॥१५॥
गुहाः काः शैलराजस्य पूजिता दैवतैरपि। कथं चापोमयं देहं त्यक्त्वा स्वर्णमयं प्रभो ॥१६॥
ध्रियते मानसजले भवता धातुरूपिणा। कथं तत्र प्रवाहाश्च नदीनां समुपस्थिताः ॥१७॥
किं पुण्यं मनुजैस्तत्र प्राप्यते स्नानकारिभिः। किं तत्र शिवलिङ्गानां पूजनैर्लभ्यते फलम् ॥१८॥
तीर्थानां नामधेयानि सन्ति कानि तथा वद[3]। यदि कान्तास्मि देवेश यद्यनुग्राह्यसि प्रभो ॥१९॥
तर्ह्याख्यापय चार्वङ्गीं सुगुह्यमपि तत्त्वतः ॥

दत्त उवाच—

देव्याः समुदितां वाणीमाकर्ण्य नृपसत्तम। आलिङ्ग्य स तदा देवो वचनं समुवाच ह ॥२०॥

शिव उवाच—

साधु साधु महाभागे शोभनं पृच्छसि प्रिये। लोकानां हितकर्तारं वचनं साधु भाषितम् ॥२१॥
अवाच्यमपि वक्ष्यामि हिताय तव भामिनि। महिमानं मानसस्य[4] तीर्थस्य च समन्वितम् ।२२।

पार्वती बोलीं—भक्तों के दुःख को दूर करने वाले देवाधिदेव शंकर! आपने हंसस्वरूप से अपना वास-स्थल मानसरोवर के जल में किस कारण बनाया है? कृपया मुझे बतलायें। लोगों को वहाँ स्नान करने से क्या फल प्राप्त होता है? वहाँ कौन से पवित्र तीर्थ शुभ फल देने वाले हैं? हे देवेश! कौन से देवता वहाँ विद्यमान हैं, आप मुझे बतलायें। साथ ही यह भी कहें कि मनीषियों ने वहां कौन से शिवलिङ्गों का पूजन किया है? कौन सी हिमालय की कन्दरायें वहाँ पर देवों से पूजित रही हैं? आपके जलमय देह को छोड़ने तथा धातुमय स्वर्णरूप शरीर धारण करने का क्या रहस्य है? तथा वहाँ से नदियों का प्रवाह कैसे प्रादुर्भूत हुआ? वहाँ स्नान करने वाले मनुष्यों को क्या पुण्य मिलता है? तथा शिव-लिङ्गों के पूजन से क्या फल प्राप्त होता है? इसके अतिरिक्त कौन कौन से तीर्थ वहाँ हैं? इस सम्बन्ध में भी आप कहें। हे देवेश! यदि में आपकी प्रिय हूँ और आप मुझे अनुगृहीत करने के इच्छुक हैं तो मुझ गौरी को गोपनीय बात बतलाने की भी कृपा करें ॥ १२-१९ ॥

दत्तात्रेय ने कहा—राजन्! पार्वती की वाणी को सुन कर पार्वती का आलिङ्गन करते हुए भगवान् शंकर ने कहना आरम्भ किया ॥ २० ॥

शिवजी ने कहा—महाभागे! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुमने लोगों का हितकारी सुन्दर प्रश्न किया। तुम्हारे हित के लिये मैं गोप्य बात भी कहूँगा। हे वरवर्णिनि! सत्ययुग के प्रारम्भ में तीर्थों सहित मानसरोवर की महिमा के कारण हंसों द्वारा मैं पूजित हुआ। हे

---

१. 'पुण्यजलम्' इति 'क' 'ख' पुस्तकयोः। २. 'समसुदाहृतम्' इति 'क' पुस्तके।
३. 'वदस्व वै' इति 'क' पुस्तके। ४. 'महिम्ना मानसाख्यस्य' इति 'क' पुस्तके।

हंसैश्चाराधितः सोऽहं कृतावो वरवर्णिनि । तपस्विभिः श्रुतयुतैर्मानसाख्यनिवासिभिः ॥२३॥
तेषां प्रत्यक्षतां जातो वरवोऽहं वरेश्वरि । समारुह्य वृषं भद्रं नन्दिकेन सहास्मि वै ॥२४॥
मया सम्भाषिता भद्रे वृण्वन्त्विति यतव्रताः[1] । ऊचुस्ते स्वर्णहंसस्य सुस्वरूपेण रक्ष वै[2]॥२५॥
मयूराणां स्वरूपेण भीतान् योगपथागतान् । रक्ष त्वं चारुरूपेण तर्हि विज्ञापितोऽस्म्यहम्[3] ।२६।
तेषां संरक्षणार्थाय ततो धातुमयं वपुः । कृत्वा हंसस्वरूपेण मानसे क्रीडयाम्यहम्[4] ॥२७॥
तस्मादहं महाभागे भक्तानुग्रहकारणम्[5] । वसामि मानसक्षेत्रे त्वया सह न संशयः ॥२८॥
शृणुष्व स्वर्णहंसस्य दर्शनान्मे फलं हि यत् । प्राप्नुवन्ति जनाः पुण्या देवपूज्या यतव्रताः ॥२९॥
ये मां सुवर्णहंसस्य रूपेण शुभभाषिणि । पश्यन्ति देवसदृशा मानुषा मानुषोत्तमाः ॥३०॥
ते च पुण्या मम गृहे कुलकोटिसमन्विताः । वसन्ति दिननाथाभा यावदाहूतसंप्लवम् ॥३१॥
ते मया सह सायुज्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः । स्वर्णहंसेति मे पूजां सरोवरजले शुभे ॥३२॥
ये कुर्वन्ति महाभागे मया सायुज्यमश्नुते[6] । नाहं प्रत्यक्षतां भद्रे जनानां पापकारिणाम् ॥३३॥
चौराणां च शठानां च व्रजामि व्रजवल्लभे । तावत्पापानि लोकानां सन्ति देहे गतानि वै ।३४।
यावन्मां मानसजले पूजयन्ति न मानिनि । यस्य मे मानसक्षेत्रे पूजनाद्वरवर्णिनि ॥३५॥
वाजिमेधसहस्रस्य प्राप्नुवन्ति महत्फलम् । यत्र वै हंसरूपेण जलरूपधरां प्रियाम् ॥३६॥
आलिङ्गयामि सततं त्वामहं वरवर्णिनि । तस्मान्नान्यं प्रपश्यामि स्थलं भूमण्डले क्वचित् ॥

नरेश्वरि ! मानसरोवर के निवासी वेदसंमित तपस्वियों से भी आराधित होता हुआ वरदानी मैं वृषारुढ हो नन्दिनी के साथ उनके सामने प्रकट हो गया । हे भद्रे ! मेरे द्वारा उपदेश दिये जाते हुए वे सभी तपस्वी अवहित रहे तथा कहने लगे कि स्वर्णहंस के रूप से आप हमारी रक्षा करें । मोरों के सुरूप से भयभीत योगमार्ग से आगत हम सब की आप सुन्दर रूप से रक्षा करें—यह उन्होंने निवेदन किया । उनकी रक्षा करने के लिये मैं यह धातुमय-रूप धारण कर हंस-स्वरूप से मानसरोवर में क्रीड़ा करता हूँ । अतः मैं भक्तों का अनुग्रह करने वाला हूँ । इस हेतु मैं तुम्हारे साथ निःसन्देह मानस-क्षेत्र में निवास करता हूँ । अब तुम स्वर्णहंस के रूप में स्थित मेरे दर्शन करने का फल सुनो । हे शुभवादिनि ! मानव-श्रेष्ठ देवोपम जो जन मुझको सुवर्ण-हंस के रूप में देखते हैं वे शिवलोक में अपने अनेक कुली सहित सूर्य के समान देदीप्यमान होते हुए प्रलय-पर्यन्त निवास करेंगे । जो व्यक्ति स्वर्णहंस के रूप में मेरा ध्यान करते हैं, वे निःसन्देह शिवसायुज्य को प्राप्त होते हैं । इसके साथ ही सरोवर के पवित्र जल को स्वर्णहंस मानकर जो मेरी पूजा करते हैं वे भी मेरा सायुज्य प्राप्त करते हैं । मैं पापी जनों को दर्शन नहीं देता हूँ । चोर, पापी तथा कुल-विनाशकों के समक्ष मैं प्रकट नहीं होता । जब मैं जल में उनसे पूजित होता हूँ, तभी उनके समक्ष प्रकट होता हूँ । हे मानिनि, लोगों के शरीरस्थ पाप तभी तक रहते हैं, जब तक वे मानस-जलस्थ मेरा पूजन नहीं कर लेते । वर-वर्णिनि, इस प्रकार मेरा पूजन करने पर वे लोग सहस्र अश्वमेध करने का फल प्राप्त करते

---

१. 'शृण्वन्ति नियतव्रताः' इति 'क' पुस्तके । २. 'रूपेणास्मान् रक्ष वै' इति 'ख' पुस्तके ।
३. 'तर्हि विज्ञापितोऽस्म्यहं यदि' इति 'क' पुस्तके । ४. 'क्रीडयामीति' स्वार्थे णिच् ।
५. 'भक्तानुग्रहकारकम्' इति 'क' 'ख' पुस्तकयोः । ६. 'ते मे सायुज्यमश्नुते' इति 'क' पुस्तके ।

यत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च विद्यते जलमण्डले[१] । यथा भूमण्डले देवि हरिरेव प्रपूज्यते ॥३८॥
तथेदं मानसक्षेत्रे जलमेव प्रपूज्यते । यस्मिन्क्षेत्रे सुमनसा ब्रह्मणा चोपदेशिता ॥३९॥
मच्छिखामध्यगा गङ्गा विष्णुपादसमुद्भवा । मृणालतन्तुसदृशी सप्तब्रह्माण्डमध्यगा ॥४०॥
अवतीर्णा महाभागे तस्मान्नान्यं वदामि ते । यत्राष्टधातवः पुण्या दृश्यन्ते वरवर्णिनि ॥४१॥
मदंशसम्भवाः शुद्धास्तस्मान्नान्यं वदामि ते । यत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च तथैवाहं त्वया सह ॥४२॥
वसामि मानसक्षेत्रे तस्मात्कोऽन्यतमोऽधिकः । यत्र तीर्थान्यनेकानि लिङ्गानि विविधानि च ॥
सरित्सरांसि स्थानानि दृश्यन्ते हि पदे पदे । महिमानं महाभागे तस्य वर्षशतैरपि ॥४४॥
विस्तरेण महाभागे न याति पूर्णतां शुभाम् ॥ ४५ ॥
तथाप्यहं महाभागे तीर्थानां पुण्यदायिनाम् । माहात्म्यं कथयिष्यामि विस्तरेण न संशयः ।४६।
अथातः संप्रवक्ष्यामि तीर्थाना देवपूजितम् । माहात्म्यं लोकपापघ्नं मुक्तिमार्गप्रदं शुभम् ॥४७॥
देवतीर्थं समारम्य यावद् हंससरोवरम् । तावत् त्वां कथयिष्यामि शृणुष्व सुसमाहितम् ॥४८॥
मानसाद्दक्षिणे भागे नाम्ना शम्भुगिरिः स्मृतः । तत्र लिङ्गान्यनेकानि सन्ति मे गिरिकन्यके ॥
तं दृष्ट्वा चाति[२]शोभाढ्यं शम्भुलिङ्गसमन्वितम् । नराः शिवगृहं पुण्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥
ततः शेषेश्वरो देवो विद्यते वरवर्णिनि । तथा शेषी गुहापुण्या नागमूर्तिसमन्विता ॥५१॥
कपिलाद्यैर्मुनीन्द्रैश्च सेविता सुमनोहरा । त्रयस्त्रिंशत्समाख्यानि लिङ्गानि मम शोभने ॥५२॥
पूजितानि भुजङ्गाद्यैर्धृतराष्ट्रसुतैरपि । तत्रैव शेषचरणाच्छेषीनाम्ना[३] सरिद्वरा ॥५३॥

हैं। वहीं पर मैं जलरूप धारण करने वाली तुम्हारा आलिङ्गन भी करता रहता हूँ। अतः मैं इस भूमण्डल पर और कोई ऐसा स्थान नहीं देख पाता हूँ। जिस प्रकार इस भूमण्डल पर भगवान् विष्णु पूजित होते हैं, उसी तरह मानस-क्षेत्र में यह जल ही पूजित होता है। जिस क्षेत्र में ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट विष्णुचरण से उत्पन्न गङ्गा मेरी जटा के मध्य मृणाल-तन्तु के समान सातों लोकों में अवतीर्ण हुई, अतः मैं कुछ अधिक नहीं कहूँगा। वरवर्णिनि, जहाँ पर मेरे अंश से उत्पन्न सुन्दर एवं शुद्ध आठों धातु दिखाई देते हैं, वहाँ इससे बढ़कर क्या होगा ? जहाँ मैं तुम्हारे सहित ब्रह्मा एवं विष्णु के साथ रहता हूँ, उससे बढ़कर और कौन सा स्थान हो सकता है ? जहाँ पर अनेक तीर्थ, अनेक शिवलिङ्ग, अनेक नदियाँ, अनेक स्रोत तथा पद-पद पर अनेक पूजनीय स्थान दिखाई पड़ते हैं, उसकी महिमा को विस्तारपूर्वक सौ वर्षों तक भी मैं वर्णन नहीं कर सकता। तो भी मैं पुण्य तीर्थों का माहात्म्य विस्तार-पूर्वक अवश्य कहूँगा। अब मैं लोगों के पापनाशक एवं मुक्तिमार्गप्रद तथा देवपूजित तीर्थों का माहात्म्य वर्णन करता हूँ। देवतीर्थ से आरम्भ कर हंससरोवर पर्यन्त जो तीर्थ विद्यमान हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा, उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो। मानस के दक्षिण भाग में शम्भुगिरि नामक पर्वत है। पार्वति ! वहाँ अनेक शिवलिङ्ग हैं। उन लिङ्गों से युक्त पवित्र पर्वत के दर्शन से मानव शिवलोक प्राप्त करते हैं। तदनन्तर नागमूर्ति से युक्त शेषी गुहा के साथ ही शेषेश्वर महादेव विराजमान हैं। वह गुहा कपिल आदि मुनियों से सेवित रही है। वहाँ पर मेरे तेंतीस लिङ्गों का नागों तथा कौरवों ने पूजा की है। उसी गुहा में स्थित शेष के चरणों से त्रिपथगामिनी शेषी नामक गंगा

---

१. अयमंशः 'क' पुस्तके नास्ति। २. 'चापि' इति 'ग' पुस्तके।
३. 'नाम्नी' इति 'ग' पुस्तके।

आविर्भूता सरिच्छ्रेष्ठा गङ्गा त्रिपथगामिनी। कर्कोटकादिभिर्नागैः सेविता सुमनोहरा ॥५४॥
आविर्बभूव वै देवी उत्तरद्वारगामिनी। रजताकरसम्पूर्णा तथा सीसाकरान्विता ॥५५॥
सेविता गणगन्धर्वैर्मूलत्रयसमन्विता। संगमे मानसाख्यस्य संगता सा सरिद्वरा ॥५६॥
बभूव सा सरिच्छ्रेष्ठा पातकानां प्रणाशिनी। शेषीमूले महाभागे शेषीतीर्थमिति स्मृतम् ॥५७॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो विष्णोः सायुज्यमश्नुते। ततः परं महाभागे तीर्थं वरुणसंज्ञकम् ॥५८॥
तथा मूर्तिमयो देवो वरुणस्तत्र दृश्यते। सम्पूज्य वरुणं देवं तत्र स्नात्वा महेश्वरि ॥५९॥
प्राप्नुवन्ति नराः पुण्याः पुरन्दरगृहं शुभम्। शेष्यास्तु दक्षिणे तीरे कामेशाख्यं शुभव्रते ॥६०॥
सम्पूज्य कामदं तीर्थं स्नात्वा ब्रह्मपदं व्रजेत्। ततस्तु सरितां श्रेष्ठा शेषी मोक्षप्रदा शुभा ॥६१॥
संगता मानसक्षेत्रं मान्धातृपथगामिनी[1]। देवतीर्थेति विख्यातं प्रयागेनाप्यलंकृतम्[2] ॥६२॥
सर्वपापप्रशमनं देवगन्धर्वसेवितम्[3]। शेषीमानसयोः सङ्गे देवतीर्थेति विश्रुतः[4] ॥६३॥
यः स्नाति तत्र मनुजो महेन्द्रपदमश्नुते। येन स्नानं महादेवि देवतीर्थे विमुक्तिदे ॥६४॥
तस्य देवाः शरीरस्था ब्रह्मविष्णुशिवादयः। जलमध्ये महादेवो महेन्द्रेशेति विश्रुतः[5] ॥६५॥
तस्य सम्पूजनात्तत्र[6] माहेन्द्रपदमाप्नुयात्। तत्र वै दृश्यते देवि शर्करा ताम्रसंमिता ॥६६॥
मुक्ताफलसमं तोयं तथैव ख्यायते भुवि। सृष्टेरनन्तरं तत्र त्रयस्त्रिंशत्समन्वितैः ॥६७॥
तपस्तप्तं महाभागे दैवतैर्वीतकल्पषैः। पिण्डं दत्त्वा महाभागे त्रयस्त्रिंशत्कुलान्वितः ॥६८॥

नदी निकली है जो कर्कोटक आदि नागों से सेवित रही। उत्तरद्वार की ओर जाती हुई चाँदी और सीसे की खानों सहित शिव के गणों, गन्धर्वों एवं निकुञ्जों से युक्त वह नदी पापियों के पापों का विनाश करती हुई मानस में जाकर मिल जाती है। शेषी के मूल भाग में शेषीतार्थ है, जहाँ पर स्नान कर मनुष्य विष्णु-सायुज्य प्राप्त करते हैं। तदनन्तर वरुणतीर्थ है। वहाँ पर वरुण की मूर्ति विराजमान है।! वहाँ पर स्नान एवं वरुण का पूजन कर मनुष्य इन्द्रलोक प्राप्त करते हैं। शेषी के दक्षिण-तट पर कामेश नामक तीर्थ है। उस कामद तीर्थ में स्नान एवं पूजन करने से मनुष्य ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। तब नदियों में श्रेष्ठ शेषी नामकी मोक्षदा नदी मान्धाता के मार्ग का अनुसरण करती हुई मानस-क्षेत्र में मिल जाती है। इस संगम पर सुशोभित स्थान देवतीर्थ नाम से प्रसिद्ध है। वह तीर्थ पापों का विनाशक, देव-गन्धर्वादि से सेवित एवं शेषी-मानस के संगम के रूप में विद्यमान है। वहाँ स्नान करने से मानव इन्द्रलोक को प्राप्त करता है। हे पार्वति ! जिस व्यक्ति ने मुक्तिप्रद देवतीर्थ में स्नान किया है उसके शरीर में ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवों का वास रहता है। जल में महेन्द्रेश्वर नामक शिव सुविदित हैं, उनका पूजन करने से इन्द्र-पदवी प्राप्त होती है। वहीं पर ताँबे की खानों से युक्त शर्करा नदी दिखाई पड़ती है, जिसका जल मोतियों के समान चमकता दिखाई पड़ता है। वहीं पर सृष्टि के अनन्तर पाप-रहित तेतीस (करोड़) देवताओं ने तपश्चर्या की थी। महाभागे ! वहाँ पर पिण्डदान करने से मानव निःसन्देह तेतीस कुलों सहित देव-

---

१. 'मान्धातुः पथगामिनी' इति 'क' पुस्तके। २. 'प्रयोगेनाप्यलंकृतम्' इति 'क' पुस्तके।
३. 'पूजितम्' इति 'घ' पुस्तके। ४-५. 'विश्रुतम्' इति 'घ' पुस्तके।
६. 'पूजनादेव' इति 'क' पुस्तके।

मानवो देवदेहो वै जायते नात्र संशयः। तर्पयित्वा पितॄंस्तत्र यमशासनसंगतान् ॥६९॥
तारयेन्मानवश्रेष्ठः कुलकोटिसमन्वितान् ।
तत्र वै स्नानमात्रेण नरो नारायणप्रियः। ऋणत्रयविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः ॥७०॥
शृणुष्व मेनकातीर्थं ततो हस्तचतुःशतम्[1] । शिवमार्गप्रदं साक्षात् तीर्थद्वादशवेष्टितम् ॥७१॥
यत्र देवाप्सरा देवी मेनका चारुभाषिणी। स्नाति शुद्धे सरजले नायिकाभिः समन्विता ॥७२॥
तत्र स्नात्वा नरो देवि मातुर्गर्भं न पश्यति । योगिभिश्चापि निस्तीर्णे योगमार्गनिषेविभिः ॥७३॥
यमतीर्थेति विख्यातं ततः किष्कुशतान्तरे[2] । सेवितं चित्रगुप्तेन तथान्यैर्यमनायकैः ॥७४॥
तत्र स्नानं महाभागे कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः। मानुषैः पितृभक्तैश्च यममार्गनिराशिभिः ॥७५॥
कृत्वा श्राद्धं यमसरे पितॄणां दत्तमक्षयम्। याति तावन्महाभागे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥७६॥
ततस्तस्योत्तरे भागे नाम्ना नलगिरिः स्मृतः। तस्योद्भवानां तीर्थानां माहात्म्यं शृणु पार्वति ॥
तस्मान्मानसरे देवी कपिला सरितां वरा। समागता सिद्धगणैः सेविता पापतारिणी ॥७८॥
नलपर्वतसंभूता निःसृता कपिलाश्रमात्। विधात्रा चोपदिष्टा सा स्वर्णपीतजला शुभा ॥७९॥
मान्धातुर्धनुषा देवि दर्शिताध्वा सरिद्वरा। आजगाम सरं शुद्धं जामदग्न्यनिषेवितम् ॥८०॥
मूले तस्याः स्थितो विष्णुर्नारदाद्यैर्महर्षिभिः। तथा देवगणैर्देवि गुहायां जगदीश्वरः ॥८१॥
उपास्यते महादेवि कृष्णं योगीश्वरं[3] हरिम्। सम्पूजयति यो मर्त्यः स याति परमां गतिम् ॥८२॥
ततः परं महाभागे कपिलस्याश्रमं शुभम्। वरुणाद्यैर्देवगणैः पूजितं सुमनोहरः[4] ॥८३॥

शरीर को प्राप्त करता है। वहाँ पर पितृ-तर्पण करने से यमलोक को गए हुए असंख्य कुलों का उद्धार होता हैं। साथ ही वहाँ स्नान करने से मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है। वहाँ से चार सौ हाथ की दूरी पर बारह तीर्थों से परिवेष्टित मेनका नामक तीर्थ है, जो साक्षात् शिवत्व को प्रदान करने वाला है। हे पार्वति ! जहाँ पर मेनका नामक चारुभाषिणी देवों की अप्सरा अपनी सखियों-सहित शुद्ध जल में स्नान करती है। वहाँ स्नान करने से मनुष्य पुनर्जन्म नहीं लेता। वह स्थान योग-क्रियाओं में संलग्न योगियों से घिरा हुआ है। वहाँ से सौ हाथ की दूरी पर चित्रगुप्त एवम् अन्य यमनायकों से सेवित यमतीर्थ है, जहाँ पित्रुद्धारकों तथा यमलोक से दूर कराने वाले पितृभक्तों को स्नान करना चाहिये। इसके साथ ही यम-सरोवर में श्राद्ध करने पर पितरों को दिया हुआ कव्यभाग चौदह इन्द्रों की अवधि तक अक्षय होता है। तदनन्तर इसके उत्तर भाग में नलगिरि नामक स्थान है। हे पार्वति ! उससे संवद्ध तीर्थों का नाम सुनो। उस नलगिरि से निकल कर कपिलाश्रम को छूती हुई मानसरोवर में कपिला नाम की नदी आती है। वह विधाता से उपदिष्ट मान्धाता के धनुष से दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करने वाली जामदग्न्य से सेवित मानसरोवर की ओर आती है। उसके मूल में नारदादि ऋषियों तथा देवगणों के साथ विष्णु का निवास है। तथा वहाँ पर गुहा में जगदीश्वर की पूजा होती है। हे पार्वति ! वहाँ जो व्यक्ति कृष्ण का पूजन करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। वहाँ से आगे वरुणादि देवगणों से पूजित कपिल

---

१. 'हस्तचतुष्टयम्' इति 'क' पुस्तके।
२. 'हस्तशतान्तरे' इति 'क' पुस्तके।
३. 'योगेश्वरम्' इति 'क' पुस्तके।
४. 'सुमनोहरम्' इति 'ग' 'घ' पुस्तकयोः।

कपिलाख्यं महत्तीर्थं तत्रैव वरवर्णिनि। शिलापङ्कजसंयुक्तं द्वात्रिंशत्क्रोशसंयुतम् ॥८४॥
विद्यते मृगशावाक्षि नलपर्वतमध्यगम्। इन्द्रादिभिर्देवगणैः पूजितं सुमनोहरम्[1] ॥८५॥
स्नात्वा कपिलतीर्थे वै नरो ब्रह्मपदं शुभम्। समारुह्यति शक्राभः कुलकोटिसमन्वितः ॥८६॥
महर्षिकपिलं देवि सम्पूज्य विष्णुमन्दिरम्। प्रयाति पातकान्हित्वा कुलकोटिशतान्वितः॥८७॥
ततस्तु दक्षिणे तीरे कपिलायाः शुभव्रते। काञ्चनस्याकरैर्युक्ता स्मराख्या गिरिकन्दरा ॥८८॥
पातालसदृशी पुण्या शिवलिङ्गसमन्विता। विद्यते मृगशावाक्षि बाणेन परिसेविता ॥८९॥
तत्र बाणेश्वरो देवः पूज्यते दितिसूनुभिः। तथैव दानवेशाद्यैर्दितिजैश्चोपदेशितैः ॥९०॥
सम्पूज्य तत्र बाणेशं मानवः शाङ्करं पदम्। प्रयाति नात्र सन्देहः शिवकन्यानिषेवितः ॥९१॥
बाणतीर्थं महादेवि कपिलायास्ततः परम्। विद्यते मृगशावाक्षि तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत्॥९२॥
पदे पदे सुतीर्थानि कपिलायाः शिवप्रिये। सन्ति देवर्षिपूज्यानि मानवैः प्रार्थितानि च ॥९३॥
ततस्तु कपिला देवि शुभं मानसरोवरम्। सम्मिलदृषिपूज्यं वै जामदग्न्याश्रमे शुभे ॥९४॥
जामदग्न्यं महत्तीर्थं तत्र मानसरे शुभे[2]। यः स्नाति मानवः सम्यक् स याति हरिमन्दिरम् ।९५।
जामदग्न्यसमं तीर्थं नास्ति मानसरे क्वचित्। तत्र रामो जामदग्न्यरवाप[3] चिरजीवनम्[4] ।९६।

श्रीदेव्युवाच—

कथं स देवदेवेश जामदग्न्यः प्रतापवान्। अवाप चिरजीवित्वं प्राप्य भूमण्डलं शुभम् ॥९७॥

का आश्रम है। वहीं कपिल नामक तीर्थ भी है, जो पाँच शिलाओं से युक्त एवं बत्तीस कोस की परिधि का मापक होते हुए नल पर्वत के मध्य स्थित है। वह इन्द्रादि देवों से पूजित भी है। कपिलतीर्थ में स्नान कर मानव इन्द्र की आभा से युक्त हो अपने अनेक कुलों सहित ब्रह्मलोक पर आरूढ हो जाता है। महर्षि कपिल का पूजन कर पातकों का नाश करतेहुए पूजक अपने अनेक कुलों सहित विष्णुलोक को प्राप्त करता है। कपिला के दक्षिण तट पर सुवर्ण की खानों से युक्त स्मर-गिरिकन्दरा है, जो कि पाताल की तरह पवित्र एवं शिवलिङ्गों से युक्त वाणासुर से परिसेवित है। वहाँ पर वाणासुर आदि दैत्यों से संमानित दैत्यों द्वारा वाणेश्वर का पूजन होता है। शिवकन्याओं से सेवित मानव बाणेश्वर का पूजन कर निःसन्देह शिवत्व को प्राप्त करता है। तदनन्तर कपिला के आगे वाणतीर्थ है, जहाँ स्नान कर मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है। हे महादेवि ! कपिला में पद पद पर अनेक तीर्थ हैं, जो देवर्षि और मनुष्यों से सम्पूजित एवं मान्य हैं। पार्वति ! तब वह कपिला नदी ऋषिपूज्य परशुराम के आश्रम के समीप मानसरोवर के साथ मिल जाती है। वहाँ मानसवरोवर के पास जामदग्न्यतार्थ है, वहाँ स्नान करने से मनुष्य को विष्णुलोक प्राप्त होता है। सरोवर में परशुरामतीर्थ के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। वहीं परशुराश ने चिरजीवित्व प्राप्त किया था ॥२१-९६॥

तब पार्वती ने पूछा—पृथ्वी पर आकर परशुराम ने चिरजीवित्व कैसे प्राप्त किया ?९७॥

---

१. 'सुमनोहरः' इति 'क' पुस्तके। २. 'शुभम्' इति 'क' पुस्तके।

३ उत्वाभावश्छान्दसः। 'जामदग्न्योऽवाप च चिरजीवनम्' इत्यपेक्ष्यते।

४. 'चिरजीवितम्' इति 'क' पुस्तके।

ईश्वर उवाच—

शृणुष्व त्वं महाभागे जामदग्न्यो यथाऽभवत् । यथा तेन सुपुण्येन संप्राप्तं चिरजीवनम् ॥९८॥
तथा त्वां कथयिष्यामि चरितं विस्मयावहम्[1] । मोक्षमार्गप्रदं पुण्यं विष्णुभक्तिप्रदायकम् ।९९।
कृतान्तरे महादेवि जमदग्निस्तपोनिधिः । विष्णुमाराधयामास खेदितो हैहयैर्नृपैः ॥१००॥
कालेन तं तदा देवो दर्शयामास स्वं वपुः । कलिकल्मषहर्तारं[2] दुर्दर्शं दैवतैरपि ॥१०१॥
ततस्तं कथयामास वरयेति वरं शुभम् । दुष्प्राप्यं देवगन्धर्वैः शिवाद्यैर्मानवैः किल ॥१०२॥
सोवाच तं तदा देवि वरेण्यं वरदं प्रभुम् । वृणोम्यहं त्वत्सदृशं सुतं क्षत्रान्तकारकम् ॥१०३॥
तथेत्युक्त्वा स भगवान् तत्रैवान्तरधीं गतः[3] । ततः स ऋषिमुख्यो वै बभूव स्वस्थमानसः ॥
ततः कालेन महता सुतं क्षत्रान्तकारकम् । पारगं वेदविद्यानां प्राप्य विष्णोरनुग्रहात् ॥१०५॥
ततस्तं लक्षणोपेतं बालं राजीवलोचनम् । आख्यया रामनामं वै चकार स शुभव्रते ॥१०६॥
स रामो मृगशावाक्षि वर्धमानो दिने दिने । चकार विविधं पुण्यं तपोभिः कायशोषिभिः।१०७।
ततः क्षत्रियभूपालान् जामदग्न्यः प्रतापवान् । जघान स परान् बाणैः जमदग्निनियोजितैः[4] ॥
स हत्वा सर्वभूपालान्क्षत्रहीनां वसुन्धराम् । चकार निजबाणौघै रुधिरौघपरिप्लुताम्[5] ॥१०९
एवं त्रिसप्तकं कृत्वा स रामो शिववल्लभे[6] । उत्ससर्ज धरां शुद्धां सशैलवन-काननाम् ॥११०॥
ब्राह्मणेषु महाभागे नदीभिः समलङ्कृताम् । ब्रह्मायत्तां[7] धरां कृत्वा स रामो गिरिकन्यके ॥

शिवजी ने फिर कहा—मैं अब विष्णुभक्ति तथा माक्ष देने वाले एवं आश्चर्यजनक उनके चरित्र को बतलाऊँगा । त्रेतायुग में जमदग्नि ऋषि ने हैहयवंश के नरेशों से कष्ट पाकर विष्णु की आराधना की । समय पाकर भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया, जो कलियुग में उत्पन्न पापों का विनाशक तथा देवों को भी दुर्लभ रहा । तब भगवान् विष्णु ने वर माँगने के लिये कहा, जिसे शिवादि देवों, गन्धर्वों एवं मानवों आदि को प्राप्त करना कठिन था । पार्वति ! इस पर जमदग्नि ने भगवान् से उनके समान क्षत्रियों के विनाशक पुत्र प्राप्त करने का वर माँगा । 'ऐसा ही हो' कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । तब वे ऋषि स्वस्थ-चित्त हुए । अधिक समय व्यतीत होने पर विष्णु की कृपा से उन्हें वेदविद्यापारंगत एवं क्षत्रियों का विनाशक पुत्र प्राप्त हुआ । शुभव्रते ! सुलक्षणों से युक्त राजीवलोचन पुत्र का नाम उन्होंने राम रखा । हे मृगनयने ! वह बालक दिनों दिन बढ़ता हुआ अपने शरीर को कृष करने वाली तपश्चर्या में लगा रहा । तब उस प्रतापी बालक ने जमदग्नि की आज्ञा पाकर शत्रुओं का विनाश किया । उसने सब राजाओं का वध कर पृथ्वी को रुधिर से आप्लावित कर वीर-विहीन कर दिया । हे पार्वति ! उसने इस प्रकार इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कर नदियों तथा वन-पर्वतों से युक्त इस पृथ्वी को ब्राह्मणों के अधीन कर दिया । इस तरह पृथ्वी को ब्राह्मणाधीन कर परशुराम ने समुद्र से निवास करने योग्य स्थान की याचना की ।

---

१. 'विस्मयापहम्' इति 'क' पुस्तके । २. 'कलिकल्मषहन्तारम्' इति 'क' पुस्तके ।
३. 'तत्रैवान्तरधीयत' इति 'क' पुस्तके । ४. 'जमदग्निनियोजितः' इति 'क' पुस्तके ।
५. 'रुधिरौघपरिप्लुतान्' इति 'क' पुस्तके । ६. 'गिरिकन्यके' इति 'क' पुस्तके ।
७. 'ब्रह्मयत्ताम्' इति 'क' पुस्तके ।

समुद्रं याचयामास[1] वासमात्रं नदीपतिम्[2]। रामं न जानयामास[3] समुद्रः सरितां पतिः ।११२।
अवतीर्णं महाबाहुं जमदग्निगृहे प्रभुम्। मरुं कर्तुं सरिन्नाथं स रामस्तदनन्तरम् ।।११३।।
नदीभिः पूरितं क्षारं चकार मतिमुत्तमाम्। समुद्रस्तं तदा देवि कृताञ्जलिपुटः स्वयम् ।।११४।।
प्रार्थयामास क्षत्रारिं कार्यार्थे भुवि संस्थितम्। सोवाच तं [4]तदा देवि गिरा सूनृतया हरिम् ।।
प्रार्थितं देवगन्धर्वैं ऋषिभिश्चापि संस्तुतम् ।। ११६ ।।
वयं हि मन्दमतयो न जानीमः खलाः प्रभुम्। अनुग्रहोऽयं भवता कृतश्चात्र न संशयः ।।११७।।
त्वामहं कथयिष्यामि खलनिग्रहकारकम्। उपायं चिन्तयामास[5] स्ववासार्थं जगत्पते ।।११८।।
शरमेकं समाधाय चापे स्वर्लोकपूजिते। तेन मां कुरु वै राम षष्टियोजनदूरगम् ।।११९।।
तिमिङ्गिलझषाकीर्णं जलजन्तुविराजितम्। तेनोपायेन वासाय दास्यामि वसुधां प्रभो ।।१२०।।
यावच्छरेण संस्पृष्टं स्थलं तावत्त्यजाम्यहम्। समुद्रस्य च तां वाणीं श्रुत्वा रामः प्रतापवान् ।।
चापे शरं समाधाय क्षत्रशोणितपारगः। चकार सरितां नाथं षष्टियोजनदूरगम् ।।१२२।।
तिमिङ्गिलझषाकीर्णं वरुणालयशोभितम्। प्राप्य दिव्यं स्थलं देवि स रामः सरितां पतेः ।१२३।
चकार वासं धर्मात्मा गोत्रजैर्ब्राह्मणैः सह। तत्रारोप्य तदा देवि यज्ञस्तम्भान्सुशोभितान् ।१२४।
उत्सृज्य कोंकणं देशं ब्राह्मणेभ्यो महामनाः। तपसे कृतसंकल्पः पूतं मत्वा भुवस्तलम् ।।१२५।।
तदुत्तरेण मार्गेण जगाम हिमपर्वतम्। तत्र शिरांसि मे देवि पूजयित्वा सरोवरम् ।।१२६।।
आजगाम पूतजलं[6] कपिलासंगमे शुभे। स मामाराधयामास प्राप्य मानसरोवरम् ।।१२७।।

किन्तु समुद्र ने परशुराम को नहीं पहचाना कि वे जमदग्नि के घर में भगवान् के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। इस पर परशुराम ने नदियों से पूरित खारे समुद्र को मरुभूमि में परिवर्तित करने का विचार किया। समुद्र ने तब हाथ जोड़कर पृथ्वी पर क्षत्रियों के संहारक परशुराम की प्रार्थना की। उनसे कहा कि आप देव, गन्धर्व और ऋषियों से संस्तुत हैं। हम मन्दमति एवं खल आपको कैसे जान सकते हैं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपने बड़ा अनुग्रह किया है। दुष्टों के विनाशक आपके लिये मैं निवास का उपाय बतलाता हूँ, उस पर आप विचार करें। स्वर्गलोक में पूजित अपने धनुष में बाणसन्धान कर आप तिमिङ्गल आदि मत्स्यों तथा जल-जन्तुओं से समाकलित मुझे (समुद्र को) यहाँ से साठ योजन दूर कर दीजिये। प्रभो! इसी उपाय से मैं आपको निवास करने हेतु स्थान दूँगा। आपके बाण के पहुँचने की दूरी तक स्थान मैं दे दूँगा। समुद्र के इस कथन से प्रतापी परशुराम ने धनुष में शर-सन्धान कर मत्स्यादि से शोभित समुद्रको साठ योजन दूर कर दिया। इस प्रकार समुद्र से स्थान प्राप्त कर धर्मशील परशुराम ने अपने सगोत्रज ब्राह्मणों के साथ वहाँ निवास किया। हे देवि! वहाँ पर यज्ञस्तम्भों को स्थापित कर कोंकण-देश ब्राह्मणों को दान कर दिया। पृथ्वी को पवित्र जान स्वयं तपश्चर्या का संकल्प लेकर वे उत्तर-मार्ग से हिमालय पर्वत को गये। हे देवि! वहाँ पर मेरे शिखरों तथा सरोवरों का पूजन कर पवित्र जल से युक्त कपिला-सङ्गम आ पहुँचे। वहीं मान-

---

१, ३. छान्दसोऽयं णिच् स्वार्थे बोध्यः। २. स रामस्तदनन्तरम्' इति 'क' पुस्तके।
४. 'महादेवि' इति 'क' पुस्तके। ५. 'चिन्त्यतामाशु' इति 'क' पुस्तके।
६. 'पूतजले' इति 'क' पुस्तके।

द्वादशाब्दानि वै देवि पूजयन्मां वरप्रदम् । तुष्टश्चाहं ततो देवि दर्शयामास दर्शनम् ॥१२८॥
जामदग्न्याय रामाय त्वया सह न संशयः । तुष्टाव मां तदा देवि जामदग्न्यो महातपाः ।१२९।
गिरा सूनृतया चापि वाष्पगद्गदपूर्णया । तुष्टस्तस्मै सुयोग्याय दास्यामीति विचिन्त्य च ॥
वरं देवमनुष्याणां दुष्प्राप्यं शिववल्लभे[1] । वरयेति मया प्रोक्तो वरं वरदपूजिते ॥१३१॥
अजरामरतां लोके ददस्वेति उवाच ह । अंशं वैकुण्ठदेहे वै संन्यस्यावनिमण्डले ॥१३२॥
तपामि नहि सन्देहो ददस्वामरतां प्रभो । इत्युक्तस्तेन रामेण तथेत्युक्त्वाप्यहं तदा ॥१३३॥
प्रत्याजगाम कैलासं रुद्रकन्यानिषेवितम् ॥ १३४ ॥
मत्तः प्राप्य वरं सौम्यं रामोऽपि स्वगृहं शुभम् । जगाम द्विजमुख्यैश्च सेवितं सुमनोहरम् ।१३५।
ततः कालेन महता पुण्ये रघुकुले हरिः । अवततारांशभागेन रक्षःकुलविनाशकृत् ॥१३६॥
श्रुत्वा रामं तदा देवि संभूतं राघवे कुले । सोऽगमद्राजशार्दूल हेतुं दाशरथिं प्रभुम् ॥१३७॥
सोऽवदन्मृगशावाक्षि रामं दाशरथिं ततः । रामोऽहं भूतले ख्यातो नहि रामा अनेकशः॥१३८॥
त्वामहं निहनिष्यामि तस्माच्छब्दविलोपकम् । किन्तु मे क्षत्रहन्तारं चापं समधिरोपय ॥१३९॥
न त्वहं वै शिरोरत्नं भूमौ निष्पातयामि वै । इत्युक्त्वा तं तदा देवि ददौ रत्नविराजितम् ॥
स्वं धनुः श्वाससंयोगैर्मिश्रितं वीरभूषणम् ॥१४०॥
समारोप्य तदा रामो जामदग्न्यमुवाच ह । त्वदंशसंयुतं चापं मयि सम्यगुपस्थितम् ॥१४१॥
मया चारोपितं चापे पश्य त्वं सुसमाहितः । बाणं चापे विधास्यामि तव तेजोऽपनाशकम् ॥
इत्युक्त्वा तं तदा रामो बाणं चापे निधाय च । पुनरन्तान्तरगतं वचनं समुवाच ह ॥१४३॥

सरोवर में उन्होंने १२ वर्षों तक वरदानी शंकर की आराधना की। तब सन्तुष्ट होकर तुम्हारे साथ मैंने उन्हें दर्शन दिये। तब परशुराम का गला भर आया और उन्होंने मधुर वाणी से मुझे प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर मैंने उन्हें वर देने के विचार से देवता और मनुष्यों को दुष्प्राप्य वर माँगने के लिए कहा। तब उन्होंने लोक में अजर-अमर होने के लिये वर माँगा और कहा कि मैं अपने विष्णु-अश को वैकुण्ठ में छोड़कर यहाँ भूमण्डल में तपस्या कर रहा हूँ। इस कारण, हे प्रभो ! आप मुझे अमरत्व दें। परशुराम के ऐसा कहने पर मैंने भी 'तथास्तु' कहा तथा रुद्रकन्याओं से निषेवित कैलास-पर्वत पर वापस आ गया। तब मुझ से वर प्राप्त कर परशुराम भी ब्राह्मणों से युक्त अपने शुभ घर को वापस हो गये। तदनन्तर चिरकालोपरान्त विष्णु भगवान् ने अंशरूप में राक्षसों का विनाश करने के लिए रघुकुल में अवतार लिया। हे देवि ! इस प्रकार रघुकुल में राम के जन्म को सुनकर परशुराम उनको मारने के लिए गए और उनसे कहा कि इस भूमण्डल में अकेला ही मैं राम हूं, अनेक राम नहीं हैं। अतः मैं 'राम' शब्द के विभेदक स्वरूप का नाश कर दूँगा। किन्तु तुम मेरे क्षत्रियों के नाशक इस धनुष पर बाण चढ़ा दो अन्यथा मैं तुम्हारा सिर पृथ्वी पर गिरा दूँगा। पार्वति ! ऐसा कह कर परशुराम ने रत्नजटित वीरों के भूषण एवं टंकार से युक्त उस धनुष को रामचन्द्र को दिया। राम ने धनुप पर बाण चढाते हुए परशुराम से कहा कि तुम्हारे अंश से युक्त यह धनुष मेरे हाथों है और मैं ने प्रत्यंचा चढ़ा भी ली है। अब मैं तुम्हारे तेज का विनाशक बाण इस पर चढ़ा रहा

---

१. 'मम वल्लभे' इति 'क' पुस्तके।

मया सोदाहृतं चापि तथ्यं कर्तुं वचो हरिः । रघूणां न शरा ब्रह्मन् यान्ति चात्र निरर्थकाः ।।
तस्मादेकां गतिं तेद्य नाशयामि न संशयः । तमुवाच तदा दीनो जामदग्न्यो महेश्वरि ।।१४५।।
नाहं स्वर्गगतिं पुण्यां व्रजामि रघुनन्दन । तपामि भूतले पुण्ये गिरिकाननशोभिते ।।१४६।।
तीर्थैश्चापि सुसंकीर्णैर्वृक्षराजिविराजिते । जामदग्न्यवचः श्रुत्वा स रामो दीनवल्लभः ।।१४७
चिच्छेद स्वर्गतिं तस्य प्रार्थितं मानवोत्तमे । तस्य चापस्य मार्गेण तद्देहाद्वैष्णवं ततः ।।१४८।।
तेजो रामशरीरे वै प्रविवेश महेश्वरि । विसृज्य वैष्णवं तेजो जामदग्न्यो यतव्रतः ।।
चचार वसुधां सर्वां सशैलवनकाननाम् ।।१४९।।
इत्येतत्कथितं भद्रे रामाख्यानं सुविस्तरम् । तेन सुचिरजीवित्वं[1] यथा प्राप्तं तथा मया ।।१५०।।

इति श्रीमानसखण्डे स्कन्दपुराणे रामाख्याने मानसतीर्थमाहात्म्यं नाम षोडशोऽध्यायः ।।

हूँ । इस प्रकार कहते हुए राम ने धनुष पर बाण चढ़ाकर हृदयस्थित शब्दों को बाहर प्रकट करते हुए परशुराम से कहा कि मैंने अपने वचन की सत्यता सिद्ध कर दी है । पुनरपि रघुवंशियों के बाण निरर्थक नहीं जाते, अतः मैं तुम्हारी एक ही गति (अर्थात् विनाश को प्राप्त) कराऊँगा । इस बात को सुन कर दीन परशुराम ने कहा कि मैं स्वर्ग जाने का इच्छुक नहीं हूँ । 'मैं तो गिरि-काननों, वृक्षावलि से सुशोभित तथा तीर्थों से समाविष्ट इस पृथ्वी पर तपस्या करूँगा' । परशुराम की वाणी को सुन कर दीनवत्सल राम ने उनका स्वर्ग-गमन निरस्त कर दिया । तथा उस धनुष के माध्यम से राम के शरीर का वैष्णव तेज परशुराम के शरीर में प्रविष्ट हुआ । तब व्रती परशुराम वैष्णव तेज का परित्याग कर गिरि, वन एवं काननों से घिरी पृथ्वी पर विचरण करने लगे । कल्याणि ! मैंने यह परशुराम की विस्तार सहित कथा तथा उनके चिरजीवी होने का आख्यान तुम्हें बतला दिया[2] ।।९०–१५०।।

स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में परशुरामाख्यान मानसतीर्थमाहात्म्यनामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'वै चिरजीवित्वम्' इति 'क' पुस्तके ।

२. जमदग्नि के पुत्र परशुराम विष्णु के षोडश अवतारों में से एक अवतार हैं। इनकी माता का नाम रेणुका था । इनका जन्म वैशाख शुक्ला ३ को रात्रि के प्रथम प्रहर में हुआ था । परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता रेणुका का सिर काट दिया था तथा पुनः उन्हीं की कृपा से वे जीवित हो उठीं । इन्होंने २१ बार क्षत्रियों का संहार किया । एक दिन राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने आश्रमस्थ वृक्षादि को उखाड़ कर फेंक दिया तथा होम-धेनु लेकर चले गए (भाग० ९-१५ । २३-२६) । इस बात को जानकर परशुराम ने कार्तवीर्य के सहस्रबाहु काट डाले । तब कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि को मार डाला । इसी के फलस्वरूप ये क्षत्रियों के संहारक हुए । तब ये महेन्द्र पर्वत पर तपश्चर्या करने लगे । फिर अश्वमेध यज्ञ किया । समग्र पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान दे दी । कश्यप ऋषि ने इन्हें दक्षिण समुद्र की ओर भेज दिया । कहा जाता है कि वरुण ने इन्हें मालवार का देश उपहारस्वरूप दे दिया था, जिसे फिर इन्होंने क्षत्रियों के विनाश-जन्य पापों का प्रायश्चित करने के निमित्त दान दे दिया । वाल्मीकि रामायण के अनुसार जनकपुर में भगवान् राम ने इनके धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी थी ।

दत्त उवाच—

इत्युक्त्वा तां प्रियां राजन् देवदेवो महेश्वरः। माहात्म्यं कथयामास तीर्थानां पुण्यदायिनाम् ॥

शिव उवाच—

पुरा कृतयुगे देवि जामदग्न्यसरोवरे। मृता गृध्रा वरटाश्च गता ब्रह्मपुरं प्रति ॥२॥
तत्रैव जामदग्न्येशं हरं ये पूजयन्ति हि। ते व्रजन्ति महादेवि! गृहं मे देवसेवितम् ॥३॥
ततः परं महातीर्थं काकतीर्थमिति स्मृतम्। यत्र स्नात्वा चतुस्त्रिंशत् काका ब्रह्मपदं गताः ॥
परं शृगालतीर्थं वै संस्मृतं गिरिकन्यके। यत्र सर्वे फेरवकाः स्नात्वा शिवपुरं गताः ॥५॥
भगश्चक्षुःकरं तीर्थं परं ते व्याहृतं मया। यत्रेन्द्रो गौतमीशापाद्विमुक्तो निजमन्दिरम् ॥६॥
समागतः सिद्धगणैस्त्रिदशैश्चापि मोदितः। संप्राप्य शतनेत्राणि बृहस्पतेरनुग्रहात् ॥७॥
ततः पुलोमजातीर्थं विद्यते वरवर्णिनि। यत्र स्नात्वा महेन्द्रं वै पतिं प्राप पुलोमजा ॥८॥
परं हि पुष्पभद्रायाः संगमोऽस्ति वरेश्वरि। यत्र वै रघुनाथस्य तीर्थमस्ति न संशयः ॥९॥
पुष्पभद्रा सरिच्छ्रेष्ठा नलपर्वतसम्भवा। जगाम मानससरं ब्रह्मणा चोपदेशिता ॥१०॥
गौतमस्य ऋषेर्यज्ञे समाहूता महर्षिभिः। पूर्ववाहा सरिच्छ्रेष्ठा भद्रेशपदसम्भवा ॥११॥
मान्धातुर्दर्शिताध्वा सा जगाम मानसं सरम्। मूले तस्याः स्थितो विष्णुर्भद्रया सह वल्लभे ॥
प्लक्षादिभिर्नगैश्चैव सेवितो वरदो विभुः। भद्रया सहितं विष्णुं ये पश्यन्ति यतव्रताः ॥१३॥
ते देवि मानुषे लोके भद्राहीना भवन्ति हि ॥ १४ ॥

दत्तात्रेय ने पुनः कहा—राजन्! भगवान् शंकर के द्वारा पार्वती से इस प्रकार कहे जाने पर पुनः शंकर ने मानसरोवर के पुण्यप्रद तीर्थों का वर्णन करना आरम्भ किया ॥ १ ॥

शिव बोले—देवि! पहले सत्ययुग में जामदग्न्य-सरोवर में गिद्ध और हंस मर कर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए। वहाँ पर जो जामदग्न्येश शिव का पूजन करते हैं, हे पार्वति! वे भी देवों से सेवित शिवलोक को जाते हैं। तदनन्तर 'काकतीर्थ' है, जहाँ पर स्नान करने से ३४ कौए ब्रह्मलोक को गए। तत्पश्चात् 'शृगालतीर्थ' है, जहाँ स्नान कर सब सियारों ने शिवलोक प्राप्त किया। इसके बाद 'भगचक्षुष्कर-तीर्थ' को बतला रहा हूँ। वहाँ इन्द्र गौतमी के शाप से मुक्त होते हुए देवताओं से अभिनन्दित होने पर बृहस्पति की कृपा से सौ नेत्रों को प्राप्त कर सिद्धगणों सहित अपने सदन को वापस आए। हे वरवर्णिनि! उसके बाद वहाँ पर 'पुलोमजातीर्थ' है। वहाँ स्नान कर इन्द्राणी ने इन्द्र को प्राप्त किया था। फिर पुष्पभद्रा के संगम पर 'रघुनाथतीर्थ' है। पुष्पभद्रा नदी नलपर्वत से निकलती हुई ब्रह्मा की आज्ञा से मानसरोवर में संगत हो जाती है। वह गौतम ऋषि के यज्ञ में महर्षियों द्वारा आहूत होने पर भद्रेश के चरणों से निकली हुई पूर्ववाहिनी होकर मान्धाता के पदचिह्नों से अङ्कित मार्ग का अनुगमन कर मानसरोवर में मिलती है। प्रिये! उस भद्रा के मूल में गूलर के पेड़ों से घिरे स्थान पर विष्णु भगवान् स्थित हैं। इस स्थिति में जो लोग विष्णु भगवान् का दर्शन करते हैं, वे इस लोक में 'भद्रा' के दोष से विमुक्त रहते हैं। तदनन्तर पुष्पभद्रा के बाईं ओर पापों के नाश करने

ततस्तु पुष्पभद्राया वामभागे महेश्वरि । देवभद्रा सरिच्छ्रेष्ठा पातकानां विनाशिनी ॥१५॥
जगाम मानसं क्षेत्रं देवगन्धर्वपूजितम् । महेन्द्रस्याश्रमे चैव समाहूता सरिद्वरा ॥१६॥
गुरुणा देवकार्यार्थे तत्रैव नलपर्वते । सेविता सिद्धगन्धर्वैर्विष्णवङ्गुष्ठसमुद्भवा ॥१७॥
मान्धातुर्दर्शितपथा ययौ मानसरोवरम् । तस्या मूले त्रयस्त्रिंशद्देवाः सन्ति महेश्वरि ॥१८॥
लिङ्गरूपधराः सर्वे महेन्द्रेण समन्विताः । पूजनाद्देवलिङ्गानां नराः स्वर्गगतिं प्रति ॥१९॥
व्रजन्ति त्रिकुलैः सार्धं देवकन्यानिषेविताः ॥ २० ॥

ततस्तु देवभद्रायां तीर्थानि शृणु पार्वति । यानि श्रुत्वा महाभागा व्रजन्ति मम मन्दिरम् ।२१।
तीर्थं त्रिभुवने ख्यातं सौरभं नाम विद्यते । यत्र सा सुरभी देवी दृश्यते वरवर्णिनि ॥२२॥
तावद्धि पितरः सर्वे मानवानां दुरात्मनाम् । वसन्ति नरके घोरे यावत् पिण्डं न सौरभे ॥२३॥
तीर्थे ददन्ति कुलजा गोत्राख्यानकसंयुतम्[1] । ततः परं न पश्यन्ति घोरं यमगृहं शुभे ॥२४॥
परं तु देवभद्रायां तुङ्गतीर्थमिति स्मृतम् । स्वमातुर्गमनाद्यत्र मुक्तिं तुङ्ग-प्रजापतिः ॥२५॥
तत्र स्नात्वा महाभागे मानवाः पापकारकाः । अगम्यागमनात्पापान्मुक्ता मुक्तिं व्रजन्ति हि ।२६।
ततस्तु देवभद्रायां मध्ये मानसरोवरे । तथैव पुण्यसरितोर्मध्ये शिवगणप्रिये ॥२७॥
रामतीर्थमिति ख्यातं प्रयागेनाप्यलंकृतम् । शतजन्मार्जितानां हि पातकानां प्रणाशनम् ॥२८॥
सेवितं पुष्पभद्राया जलैः पुण्यैः सुशोभनैः । तथा कारण्डवद्विजैर्हंसैश्चापि निषेवितम् ॥२९॥

वाली देवभद्रा नदी है । देव-गन्धर्वों से पूजित वह भी मानस-क्षेत्र की ओर जाती है । उसे भी देवगुरु बृहस्पति ने नलपर्वत पर इन्द्र के द्वारा सम्पादित अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर आमन्त्रित किया था । इस प्रकार वह भी विष्णु के अँगूठे से निकल कर मान्धाता के मार्ग का अनुसरण करती हुई मानसरोवर में मिल जाती है । इसके मूल में इन्द्रसहित तेंतीस देवता लिङ्गरूप में विद्यमान हैं । वहाँ पूजन करने से मानव अपने तीन पुरुषों सहित देवकन्याओं से निषेवित स्वर्ग को प्राप्त करते हैं । हे पार्वति ! अब तुम देवभद्रा के तीर्थों के विषय में सुनो, जिनका श्रवण करने से प्राणिवर्ग शिवलोक को प्राप्त करते हैं । सर्वप्रथम 'सौरभ' नामक तीर्थ है, जहाँ कामधेनु का दर्शन होता है । जब तक इस तीर्थ में पिण्डदान नहीं किया जाता तभी तक पितरों का नरक में वास सम्भव है । वंशजों के द्वारा नाम-गोत्र लेकर इस तीर्थ में पिण्डदान किये जाने पर पितृगण यमसदन का दर्शन नहीं करते । सौरभ नामक तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है, वहाँ सुरभि दृष्टिगोचर होती है । दुरात्मा मनुष्यों के पितृगण तभी तक यमलोक में वास करते हैं, जब तक वे वहाँ पिण्डदानादि नहीं करते । गोत्रोच्चारण-पूर्वक वहाँ पिण्ड-प्रदान करने से वे यमसदन नहीं जाते । तब देवभद्रा में 'तुङ्गतीर्थ' है । इसमें स्नान कर तुङ्ग नामक राजा मातृगमन-सदृश पाप से मुक्त हुआ । तदनन्तर देवभद्रा, मानसरोवर तथा पुष्पा नदी के संगम में प्रयाग के रूप में सुशोभित 'रामतीर्थ' है । वहाँ सैकड़ों जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं । बत्तख तथा हंसों से सेवित पुष्पभद्रा के पवित्र जल में स्नान करने से तीर्थराज प्रयाग की अपेक्षा लाख गुने से भी अधिक फल मिलता है । उससे अधिक श्रेष्ठ स्थल मुझे नहीं विदित है । यहाँ पर राम ने अपने रथ के घोड़ों को स्वर्ग में जाते

---

१. 'गोत्राख्यापनसंयुतम्' इति 'क' पुस्तके ।

प्रयागाल्लक्षगुणितं फलं तत्र हि विद्यते । तस्मान्नान्यं प्रपश्यामि स्थलं भूमण्डले क्वचित् ।३०।
रथाश्वा यत्र रामेण त्यक्त्वा दिवि गतेन हि । दृश्यन्ते नात्र सन्देहः[1] पुण्ये मानसरोवरे ॥३१॥
तस्मान्नान्यतमं तीर्थं नास्ति मानसरोवरे । यत्र विष्णुमहेशाद्याः स्थापिता राघवेण हि ॥३२॥
पिण्डं दत्वा च मतिमान् रामतीर्थे महेश्वरि । तारयित्वा पितृगणांस्तथा मातामहान्नरः ।३३।
स याति विष्णुभवनं कुलकोटिशतान्वितः । उषित्वा कल्पमेकं वै तत्र भूमण्डलेश्वरि ॥३४॥
पुनर्भूमण्डलं सर्वं प्राप्य राजा भवेदिह । तत्र रामेश्वरं देवि सम्पूज्य मनुजोत्तमाः ॥३५॥
प्रयान्ति ते विष्णुगृहं पुनरावृत्तिदुर्लभम् । रामतीर्थादधोभागे बलितीर्थमिति स्मृम् ॥३६॥
मोक्षदं स्थिरचित्तानां धर्ममार्गप्रदायकम् । तत्रैव बलिना देवि वाजिमेधत्रयं शुभम् ॥३७॥
कृत्वा सम्पूर्णतां नीतं समाप्तं रत्नदक्षिणैः ॥ ३८ ॥
तत्र स्नात्वा नरो देवि वाजिमेधफलं महत् । प्राप्नोति देवगन्धर्वैर्दुष्प्राप्यं मानवैरपि ॥३९॥
बलिना पूजितं तत्र सन्ति विष्णोः पदत्रयम् । पद्माङ्कुशादिरेखाढ्यं सेवितं नारदादिभिः ।४०।
तान्संपूज्य नराः सर्वे तद्विष्णोः परमं पदम् । प्राप्नुवन्ति महाभागे कुलकोटिसमन्विताः ॥४१॥
ततः परं महाभागे कपितीर्थमिति स्मृतम् । गान्धर्वपददं पुण्यं सेवितं सिद्धनायकैः ॥४२॥
यत्र तीर्थे महाभागे हनुमान्नाम वानरः । प्राप्य नागायुतबलं मामाराध्य यतव्रते ॥४३॥
तत्र स्नात्वा नरो देवि बलं प्राप्नोति दुर्जयम् । तथैव चाक्षयं वासो मम लोके न संशयः॥४४॥
ततः परं महातीर्थं बालितीर्थेति विश्रुतम् । मनःशिलाकरैर्युक्तं ताम्र-शर्कर-शोभितम् ॥४५॥
तत्र बालीश्वरं देवं सम्पूज्य मनुजाधमाः । प्राप्नुवन्ति सुशोभाढ्यं गृहं मे वरवर्णिनि ॥४६॥

हुए छोड़ा था । वे आज भी वहाँ दिखाई पड़ते हैं । अतः इससे बढ़कर दूसरा स्थान मानसरोवर में नहीं है । यहीं पर राम ने विष्णु एवं शिव आदि को प्रतिष्ठापित किया हैं । यहाँ पर पिण्डदान करने से पितृगणों का उद्धार करते हुए करोड़ों कुलों सहित मनुष्यों को विष्णुलोक प्राप्त होता है । वहाँ पर कल्पान्तवास करने के पश्चात् इस भूमण्डल में राजत्व प्राप्त होता है । यहाँ पर रामेश्वर का पूजन करने से मानव पुनर्जन्म से रहित हो विष्णुलोक प्राप्त करता है । रामेश्वर के निचले भाग में 'बलि-तीर्थ' है । वह स्थिर चित्तवाले मनुष्यों को मुक्ति देने वाला है । यहीं बलि ने तीन अश्वमेध कर रत्नों की दक्षिणा दी थी । वहाँ स्नान करने से मानव एवं देव-गन्धर्वों को भी दुष्प्राप्य अश्वमेध-यज्ञ करने का फल मिलता है । बलि के द्वारा पूजित विष्णु भगवान् के पद्म-अंकुशादि रेखाओं से चिह्नित तीनों पग विद्यमान हैं । हे महाभागे ! उनका पूजन कर मानव अनेक कुलों सहित विष्णु-लोक को प्राप्त होते हैं । तदनन्तर 'कपि' तीर्थ है । वह सिद्ध नायकों से सेवित होता हुआ गन्धर्व-पद को प्राप्त कराने वाला है । इस तीर्थ में हनुमान् ने मेरी पूजा कर दस हजार हाथियों का बल प्राप्त किया था । यहाँ पर स्नानादि करने से मनुष्य दुर्जय बल प्राप्त कर शिवलोक में पहुँच जाता है । तत्पश्चात् मैंनशिलों की खानों से युक्त 'बालि-तीर्थ' है । वह तांबा और पत्थरों से युक्त है । हे पार्वति ! वहाँ बालीश्वर का पूजन कर नीच मनुष्य भी मेरे लोक को प्राप्त कर लेते हैं । तत्पश्चात् सैंकड़ों तीर्थों से युक्त 'ध्रुव' तीर्थ है । वह सप्तर्षियों से परिवेष्टित एवं मोक्ष-मार्ग का प्रदर्शक है ।

---

१. 'दृश्यतेऽत्र न सन्देहः' इति 'क' पुस्तके ।

परं तीर्थशतैर्युक्तं ध्रुवतीर्थमिति स्मृतम् । सप्तर्षिसेवितं पुण्यं मोक्षमार्गप्रदर्शकम् ॥४७॥
तत्र स्नात्वा ध्रुवो देवि जगाम हरिमन्दिरम् । दुष्प्राप्यं देवगन्धर्वैः किमुतान्यैर्जनै शुभैः॥४८॥
तत्र स्नात्वा नरो देवि ध्रुवस्य पदवीं शुभाम् । प्राप्नोति पितृभिः सार्धं त्यक्त्वा पापान्सरोवरे ॥
ततः परं महातीर्थं वागीशाख्यं महेश्वरि । षोडशाख्याभिः पुण्याभिर्मातृकाभिः सुसेवितम् ॥
ततः षोडशमातृणां तीर्थैश्चापि समन्वितम् । अणिमादिभिः पुण्याभिरष्टसिद्धिभिः सेवितम् ।५१।
पिण्डं दत्त्वा महाभागे तीर्थे वागीश्वराह्वये । नरः पितृन् समुत्तीर्णान् करोति शिववल्लभे ॥
वासमात्रेण वै देवि तीर्थे वागीश्वराह्वये । मया सह नरो देवि ! सायुज्यमिह वाऽश्नुते ॥५३॥
तत्र वागीश्वरं देवं मातृकाभिर्निषेवितम् । सम्पूज्य मानवो लोके पूज्यते चात्र लिङ्गवत्[1] ।५४।
परं भूतान्तकं नाम तीर्थमस्ति वरेश्वरि । तत्र स्नात्वा च मनुजः कुलानां तारयेच्छतम् ॥५५॥
परं गोशतदं नाम तीर्थमस्ति न संशयः । देवर्षिमानवानां च सेवितं सुमनोहरम् ॥५६॥
गोसहस्रप्रदानेन तत्र राजा विदूरथः । मुक्तः पापान्महाभागे दुहितृगमनोद्भवात् ॥५७॥
ततस्तु पश्चिमे भागे नाम्ना गौरीगिरिः स्मृतः । सिद्धाश्रमैर्बहुविधैर्महौषधिसमन्वितः ॥५८॥
तस्योत्तरे महाभागा चन्द्रभागा सरिद्वरा । बभूव राजहंसैः सा सेविता सुमनोहरा ॥५९॥
ययौ सा सरितां श्रेष्ठा मानसाख्यं सरोवरम् । मान्धात्रा दर्शितपथा विधात्रा चोपदेशिता ।६०।
पुरा चन्द्रमसो यज्ञे समाहूता महर्षिभि । सनकाद्यैर्महाभागे ऋत्विजैश्चापि दीक्षितैः ॥६१॥
आविर्भूता सरिच्छ्रेष्ठा मत्कपर्दविनिःसृता । जगाम मानसं क्षेत्रं यत्र सा वसुधा हता ।६२॥

यहीं पर स्नान कर ध्रुव ने देव-गन्धर्व एवं मनुष्यों से दुष्प्राप्य विष्णुलोक प्राप्त किया। वहाँ पर स्नान कर मानव पितृगण-सहित पापों से निरत होते हुए 'ध्रुव' पदवी को प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् 'वागीश' नामक तीर्थ है। वह सोलह मातृकाओं तथा अणिमादि आठ सिद्धियों से भी सेवित है। वागीश-नामक तीर्थ में पिण्डदान करने से मनुष्य अपने पितरों का उद्धार कर देता है। उस तीर्थ में निवास करने मात्र से मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है। मातृकाओं से सुसेवित वागीश्वर का पूजन करने से मनुष्य इस लोक में भी शिवलिङ्ग की तरह पूजित होता है। हे वरेश्वरि ! तदनन्तर 'भूतान्तक' नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करने से सैकड़ों कुलों का उद्धार होता है। इसके बाद देव, ऋषि एवं मानवादि से सेवित 'गोशतद' नामक तीर्थ है। यहीं पर राजा विदूरथ एक सहस्र गोदान करने से दुहितृ-गमन सदृश पाप से मुक्त हुआ था। उसके पश्चिम भाग में 'गौरीपर्वत' है। वह सिद्धाश्रमों तथा अनेक प्रकार की ओषधियों से परिवेष्टित है। इसके उत्तर भाग में राजहंसों से संकुलित 'चन्द्रभागा' नदी विद्यमान है। वह नदी ब्रह्मा से उपदिष्ट हो मान्धाता द्वारा प्रदर्शित मार्ग से मानसरोवर में जा मिली। प्राचीन काल में सनकादि महर्षियों तथा दीक्षित ऋत्वजों द्वारा चन्द्रमा के यज्ञ में उसका आवाहन किया गया था। मेरे जटाजूट से निकली हुई यह नदी वसुधा के रूपान्तर होने वाले स्थान पर मानसक्षेत्र में मिलती है। उसके मूल में स्थित हो गौतमादि ऋषियों से सेवित ब्रह्मा समग्र चराचर विश्व के सम्बन्ध में विचारमग्न रहते हैं। वहाँ पर तर्पण करने से सूर्य के स्वर्गमण्डलस्थ प्रकाशपर्यन्त पितरों की अक्षय तृप्ति होती है। तथा वहाँ पर ब्रह्मा का पूजन

---

१. 'पूज्यते मम लिङ्गवत्' इति 'क' पुस्तके ।

तस्या मूले स्वयं ब्रह्मा ध्याति विश्वं चराचरम् । गौतमाद्यै ऋषिश्रेष्ठैः पूजितो विश्वकृद्विभुः ।
तत्र सन्तर्पितेनैव पितॄणां दत्तमक्षयम् । याति यावद् दिनकरस्तपति स्वर्गमण्डले ।।६४।।
ब्रह्मणः पूजनात् सद्यो नरो ब्रह्मपदं शुभम् । आरुह्यति[1] महाभागे कुलकोटिसमन्वितः ।।६५।।
दक्षिणे चन्द्रभागाया गुहा चन्द्रवती स्मृता । तत्र चन्द्रमसो मूर्तिर्दृश्यते ऋषिभिः सह ।।६६।।
तस्य सम्पूजनात् सद्यो विमानमधिरुह्य वै । प्राप्नोति चन्द्रभवनं नरस्त्रिंशत्कुलान्वितः ।।६७।।
ततस्तु चन्द्रभागायां शशतीर्थमिति स्मृतम् । यत्र स्नात्वा शशः सम्यक् शशिसायुज्यतां गतः ।।
परं वै चन्द्रभागायां बिन्दुमाधवसंज्ञकम् । तीर्थमस्ति महाभागे मुक्तिद्वारमिवापरम् ।।६९।।
बिन्दुमाधवतीर्थे वै स्नात्वा वैकुण्ठमन्दिरम् । प्राप्नोति मानवः सम्यग्यावदाहूतसंप्लवम् ।।७०।।
बिन्दुमाधवसंज्ञं वै सम्पूज्य शिववल्लभे । हरेः सायुज्यतां याति पुत्रदारान्वितो नरः ।।७१।।
परं चापि कुबेराख्यं तीर्थमस्ति वरेश्वरि । तत्र स्नात्वा च मनुजो धनवान् जायते भुवि ।।७२।।
ततः पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा मानसाख्यं सरोवरम् । सम्मिलति मुखैः पुण्यैः सेविता शशकैर्मृगैः ।।
तत्र वै मृगशावाक्षि लिङ्गं चन्द्रेश्वराह्वयम् । पूजयित्वा मम पुरे वसन्ति मनुजोत्तमाः ।।७४।।
ततस्तु चन्द्रभागायाः संगमे त्रिदशेश्वरि । सितातीर्थेति विख्यातं तीर्थसप्तकशोभितम् ।।७५।।
यत्र वै वसुधा देवी सितारूपेण शोभिता[2] । प्रविष्टा मानसक्षेत्रं मान्धात्रा परिसेविता ।।७६।।
तस्मान्नान्यतमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु भामिनि । न पश्यामि मनुष्याणां पातकान्तकरं शुभम् ।।७७।।
तत्र पिण्डप्रदानेन मनुष्याणां शुभात्मनाम् । यमालयगता वाऽपि तथाऽसद्योनिसंगताः ।।७८।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः । तृप्यन्ति पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ।।७९।।
सितातीर्थे महादेवि सितेशाख्यो महेश्वरः । विद्यते देवगन्धर्वैः पूजितः सुमनोहरः ।।८०।।

करने से मनुज अपने करोड़ों कुलों सहित ब्रह्मलोक पर आरूढ़ हो जाता है। चन्द्रभागा के दक्षिण में चन्द्रवती गुहा है। वहाँ पर ऋषियों सहित चन्द्रमा की मूर्ति दिखाई पड़ती है। वहाँ चन्द्रमा का पूजन करने से मनुष्य अपने तीस कुलों सहित विमान पर आरूढ़ हो चन्द्रलोक को प्राप्त करता है। वहीं चन्द्रभागा में 'शश' तीर्थ है। उसमें अवगाहन कर शश भी चन्द्रमा के सायुज्य को प्राप्त हुआ। चन्द्रभागा में ही 'बिन्दुमाधव' नामक तीर्थ है। यह साक्षात् दूसरा मुक्तिमार्ग है। इस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य प्रलयपर्यन्त वैकुण्ठ में बास करता है। एवं बिन्दुमाधव की पूजा से मानव पुत्र-कलत्रादि सहित विष्णु-सायुज्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात् 'कुबेर' नामक तीर्थ है। वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य धनवान् हो जाता है। ये पवित्र नदियाँ शश और मृगों से सेवित होती हुई मानसरोवर में मिल जाती हैं। वहाँ पर 'चण्डेश्चर' नामक शिवलिङ्ग है। इसका पूजन कर मनुष्य शिवलोक में वास करते हैं। हे देवेश्वरि ! चन्द्रभागा के सङ्गम पर सात तीर्थों से सुशोभित सुप्रसिद्ध 'सिता' तीर्थ है। यहीं पर मान्धाता के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से वसुधा ही सिता रूप धारण कर मानस क्षेत्र में प्रविष्ट हुई। इससे बढ़कर मनुष्यों के पापों का विनाशक तीनों लोकों में और तीर्थ नहीं हैं। यहाँ पर पिण्डदान करने से यमलोक को गए हुए पितर भी ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त सृष्टि तथा देव, ऋषि, पिता, माता एवं मातामह आदि पितृगण सभी

---

१. 'श्यन्'-विकरणे आर्षत्वं हेतुः। २. 'शोभना' इति 'क' पुस्तके।

तस्य सम्पूजनात्सद्यो मानुषा मे गृहं शुभम् । प्राप्नुवन्ति न सन्देहो रुद्रकन्यानिषेविताः ॥८१॥
ततः परं तुषाराख्यं[1] तीर्थं त्रिदशसेवितम् । तत्र स्नात्वा नरो देवि महेन्द्रभवनं व्रजेत् ॥८२॥
ततः सारसतीर्थं वै वाग्भूतं नरकान्तकम् । शीतपीतजलैः पुण्यैः शोभितं सुमनोहरम् ॥८३॥
यत्र वै सारसाः सर्वे श्रुत्वा सरकथां शुभाम् । स्नात्वा गन्धर्वभुवनं गता गन्धर्वसेविताः॥८४॥
तत्र स्नात्वा नरो देवि सन्तर्प्य च पितृन्स्वकान् । याति गन्धर्वभुवनं गन्धर्वजनसेवितम् ॥८५॥
परं चन्द्रेश्वरं[2] नाम तीर्थमस्ति सुपुण्यदम् । तत्र स्नात्वा द्विजवधात् पातकाद्वै प्रमुच्यते ॥८६॥
तथा चन्द्रेश्वरो[3] नाम यत्र सम्पूज्यते प्रिये । नरा यमपुरं रम्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥८७॥
ततो गौरीगिरेः पुण्या परभागा यतव्रते । सम्भवा सरितां श्रेष्ठा ब्रह्मणा चोपदेशिता ॥८८॥
सप्तब्रह्माण्डमध्यस्था[4] पतिता गौरिपर्वते । वरुणस्य महायज्ञे समाहूताऽङ्गिरासुतैः ॥८९॥
सूर्यवंशप्रदीपेन दर्शिताध्वसरिद्वरा । जगाम मानसं क्षेत्रं विश्वनाथशिवप्रिये ॥९०॥
हिमजैस्तोयविभवैर्वाहिता मन्दवाहिनी । मूले तस्याः सुशोभाढ्या विश्वनाथशिला स्मृता ॥
स्वर्णादिधातुखचिता हिमसीकरपूरिता । उपपातकसंयुक्ता महापापान्विता अपि ॥९२॥
तां दृष्ट्वा मानवा देवि शिलां वर्णविचित्रिताम् । प्राप्नुवन्ति हि सायुज्यं मया सह न संशयः॥
ततस्तु विश्वनाथायां श्येनतीर्थमिति स्मृतम् । यत्रेन्द्रः श्येनरूपं च शिबिं नेतुं चकार ह ॥९४॥
तत्र श्येनस्वरूपेण मघवान् दृश्यते स्वयम् । तथाग्निना कपोतेन दीनरूपकृतेन च ॥९५॥
तत्र सम्पूज्य देवेन्द्रमग्निना सह मानवः । प्राप्नोति देवभुवनं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥९६॥

तृप्त होते हैं । सिता-तीर्थ में देव एवं गन्धर्वों से पूजित 'सितेश' नामक शिव हैं । उनका पूजन करने से मनुष्य निःसन्देह रुद्रकन्याओं से सेवित हो मेरे लोक को प्राप्त करते हैं । तदनन्तर देवों से सुसेवित 'बाणतीर्थ' है । यहाँ पर स्नान करने से मनुष्य इन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् 'सारस' तीर्थ है । यह नरकान्तक के रूप में प्रसिद्ध है । इसके साथ ही यह ठण्ढी और पीतवर्णाभ धाराओं से सुशोभित है । वहाँ पर स्नान एवं मानसरोवर की कथा श्रवण कर सारसों ने गन्धर्वलोक प्राप्त किया था । मनुष्य भी वहाँ स्नान तथा पितृ-तर्पण कर गन्धर्वों से सेवित हो गन्धर्वलोक प्राप्त करते हैं। उसके पश्चात् 'चण्डेश्वर' नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करने पर ब्रह्महत्या-जनित पाप से भी छुटकारा मिलता है। वहीं पर चण्डेश्वर का पूजन कर मानव शिवलोक को प्राप्त करते हैं। तब गौरीपर्वत से उत्पन्न श्रेष्ठ नदी 'पर-भागा' है। वह ब्रह्मा से उपदिष्ट हो सात ब्रह्माण्डों के मध्य होती हुई गौरीपर्वत पर गिरी। वरुण के महायज्ञ में अङ्गिरा के पुत्रों द्वारा उसे बुलाया गया था। सूर्यवंश के प्रतापी राजा मान्धाता के द्वारा मार्ग दिखाने के कारण हिमजल से पूरित हो वह मन्द गति से मानसक्षेत्र में पहुँची। उसके मूल में 'विश्वनाथ-शिला' है। स्वर्ण आदि धातुओं से खचित एवं हिमकणों से पूरित उस शिला के दर्शन मात्र से मानव शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। तदनन्तर 'श्येन-तीर्थ' हैं। वहीं पर इन्द्र ने राजा शिवि से विजय प्राप्ति हेतु बाज का रूप धारण किया था। वहाँ श्येन के रूप में भगवान् इन्द्र स्वयं दिखाई देते हैं। उनके साथ ही अग्नि और दीन-रूपधारी

---

१. 'बाणाख्यम्' इति 'क' पुस्तके । २. 'चण्डेश्वरम्' इति 'क' पुस्तके ।
३. 'चण्डेश्वरः' इति 'क' पुस्तके । ४. 'मध्योत्था' इति 'क' पुस्तके ।

परं तु विश्वनाथायां तीर्थं नारदसंज्ञकम् । पर्वताद्यै ऋषिवरैः सेवितं सुमनोहरम् ॥९७॥
नारदीयह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा स्वर्णमयं हरम् । प्राप्नोति मम सायुज्यं नरः शिवगणप्रिये ॥९८॥
ज्वालाख्यं वटकाख्यं च देवाख्यं च ततः परम् । तीर्थेष्वेतेषु स स्नात्वा[1] नरो मम पदं व्रजेत् ।
पश्चिमे विश्वनाथाया गुहा काञ्चनशोभिता । विद्यते मृगशावाक्षि दशद्वारैर्विराजिता ॥१००॥
तत्राहं मृगरूपेण त्वया सह वरेश्वरि । वसामि नात्र सन्देहः सत्यं ते व्याहृतं मया ॥१०१॥
तस्मान्नान्यतमं स्थानं प्रियं मे विद्यते क्वचित् । यत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत् मामुपासन्ति संयताः ॥
तत्र मां प्राप्य गिरिजे पूजयन्ति नरा हि ये । कुलकोटिशतैर्युक्ता व्रजन्ति मम मन्दिरे ॥१०३॥
परं हि विश्वनाथाया दक्षिणे वरवर्णिनि । वैद्यनाथेति विख्यातो दिवोदासेन सेवितः ॥१०४॥
तस्य सम्पूजनात् सद्यः क्लेशहीना भवन्ति हि । पुत्रदारान्विताः सर्वे जनाः सत्यं मयेरितम् ॥
विश्वनाथा सरिच्छ्रेष्ठा मानसाख्यं सरोवरम् । संमिलन्मृगशावाक्षि श्वानतीर्थे न संशयः ॥१०६॥
श्वानतीर्थं समासाद्य तिलोदैर्यः प्रतर्पयेत् । पितॄन् वै पितरस्तस्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥१०७॥
यत्र श्वानं पुरस्कृत्य सिंहाद्या मे गृहं शुभम् । स्नात्वा वै दिव्यदेहेन प्राप्ताः पार्षदसेवितम् ॥
तत्रैव विश्वनाथस्य पूजां कृत्वा यतव्रते । व्रजन्ति मानवाः शुद्धं गृहं त्रैलोक्यपूजितम् ॥१०९॥
घण्टाकर्णेन तत्रैव पूजितोऽहं न संशयः । ततो मे पूजनाद्देवि गणत्वमुपलब्धवान् ॥११०॥

कबूतर भी दिखाई पड़ते हैं । वहाँ अग्नि के साथ इन्द्र का पूजन करने से मनुष्य चौदहों इन्द्र-पर्यन्त देवलोक को प्राप्त होता है । विश्वनाथ-शिला के बाद पर्वत[2] आदि ऋषियों से सेवित 'नारदतीर्थ' है । नारदीय ह्रद में स्नान एवं स्वर्णमय शंकर का दर्शन कर मनुष्य शिव-सायुज्य प्राप्त करता है । तदनन्तर 'ज्वाला'तीर्थ, 'वटक'तीर्थ तथा 'देवतीर्थ' हैं । इनमें स्नान कर मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है । विश्वनाथ-शिला के पश्चिम भाग में स्वर्णमण्डित दस द्वारों वाली गुफा है । हे पार्वति ! मैं वहाँ तुम्हारे साथ मृगरूप धारण कर वास करता हूँ । मैं तुम से यह सच कहता हूँ । इस से बढ़कर मुझे दूसरा स्थान प्रिय नहीं है । वहाँ तेतीस (करोड़) देवता मेरी समभ्यर्चना में लीन रहते हैं । वहाँ पहुँच कर मेरे आराधक करोड़ों कुल समेत शिवलोक प्राप्त करते हैं । तदनन्तर विश्वनाथशिला के दक्षिण भाग में 'वैद्यनाथ' हैं । दिवोदास ने इनकी सेवा की थी । मैं यह सत्य कहता हूँ कि इनके पूजन से दुःखी मनुष्य तत्काल पुत्र-कलत्रादि सहित सुखी होजाते हैं । विश्वनाथ नदी मानसरोवर के 'श्वान-तीर्थ' में मिलती है । श्वानतीर्थ में तर्पण करने से पितृगण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं । यहाँ सिंह आदि हिंस्र पशु कुत्ते को आगे करते हुए स्नान के बाद दिव्य देह धारण कर मेरे वासस्थान पर आए थे । वहाँ पर विश्वनाथ का पूजन कर मनुष्य तीनों लोकों में पूजित हो शिवलोक प्राप्त

---

१. 'संस्नात्वा' इति 'क' पुस्तके ।

२. वायुपुराणानुसार एक देवर्षि का नाम जो कश्यप के पुत्र तथा नारदऋषि के घनिष्ठ मित्र थे—"पर्वतो नारदश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ । ऋषन्ति देवान् यस्मात्ते तस्माद्देवर्षयः स्मृताः" ॥ वा० पु० ६१-७५ । अन्यत्र इसी पुराण में प्लक्षद्वीप के नारद पर्वत पर उत्पन्न इन्हें एक ऋषि कहा गया है—"अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपरे । विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारद-पर्वतौ" ॥ वा पु० ३०-८६ ॥

ततः परं महातीर्थं घण्टाकर्णाह्वयं स्मृतम् । तत्र स्नात्वा द्विजवधात् मुच्यते नात्र संशयः ॥
परं वै गणनाथाख्यं तीर्थमस्ति यतव्रते । गणेशं तत्र सम्पूज्य स्नात्वा सरजले शुभे[1] ॥११२॥
सान्निध्यं मम वै नित्यं प्राप्नुवन्ति नराः शुभाः । ततस्तु सरितां श्रेष्ठा शारदा पापनाशिनी ॥
वामाङ्गे संस्थिता देवि ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । एकांशेन समुद्भूता[2] मुनीनां हितकारणात् ॥
ब्रह्मणा चोपदिष्टा सा प्रार्थिता गौतमादिभिः । अवतीर्णा सरिच्छ्रेष्ठा सुपुण्ये गौरिपर्वते ॥
सूर्यान्वयप्रदीपेन दर्शिताध्वा सरिद्वरा । जगाम मानसक्षेत्रे ऋषीणामाश्रमे शुभे ॥११६॥
शारदाया महन्मूले ब्रह्मा सप्तर्षिभिः सह । राजते मृगशावाक्षि तथाऽन्यैर्देवतागणैः ॥११७॥
तत्र सम्पूज्य धातारमृषिभिः सह वै प्रिये । नरो ब्रह्मपदं पुण्यमधिरुह्यति सत्वरम् ॥११८॥
दृश्यते यत्र वै ब्रह्मा ऋषिभिः सह सुव्रते । तत्रैव मानसक्षेत्रे पिण्डं दातुं प्रभुः पुमान्[3] ॥११९॥
मोहाद् गयायां दद्याद्यः स पितॄन् पातयेत्स्वकान् । लभेत च ततः शापं पितॄणां नात्र संशयः ॥
ततः परं महाभागे शारदायां सुशोभनम् । वसिष्ठाख्यं महत्तीर्थमरुन्धत्या निषेवितम् ॥१२१॥
तत्र स्नात्वा महत्तीर्थे वसिष्ठं मुनिसत्तमम् । सम्पूज्य सह पत्न्या वै नरो ब्रह्मपदं शुभम् ॥
प्राप्नोति देवगन्धर्वैः प्रार्थितं सुमनोहरम् । तत्रैव दक्षिणे भागे गुहा सुबहुशोभिता ॥१२३॥
वसिष्ठाश्रमसंयुक्ता ताम्रधातुविराजिता । तपति तत्र वै देवि वसिष्ठः सह भार्यया ॥१२४॥
ऋषिभिश्चोपकर्माभिस्तथा शिष्यैः समन्वितः । यस्य सन्दर्शनात् सद्यो मानवो मानवेश्वरि ॥
प्राप्नोति मम सायुज्यं यावदाहूतसंप्लवम् ॥ १२५ ॥

करते हैं। वहीं पर घण्टाकर्ण ने मेरी पूजा की थी। मेरी पूजा करने से वह मेरा गण हो गया। तत्पश्चात् 'घण्टाकर्ण' नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या-सदृश पापों से रहित हो जाता है। तदनन्तर 'गणनाथ' नामक तीर्थ है। वहाँ गणेश का पूजन कर सरोवर में स्नान कर मनुष्य मेरे निकट आ जाता है। तदनन्तर श्रेष्ठ नदी 'शारदा' आ जाती है। ब्रह्मा के बायीं ओर स्थित ब्रह्माणी ही मुनियों के कल्याण के लिए गौतम आदि ऋषियों से प्रार्थित एवं ब्रह्मा से उपदिष्ट हो पुण्यशील गौरीपर्वत पर ब्रह्मा के अंश से अवतीर्ण हुई। सूर्यवंशी राजा मान्धाता के प्रदर्शित मार्ग से शारदा नदी मानस-क्षेत्र में आई। शारदा के मूल में सप्तर्षियों सहित ब्रह्मा विराजमान हैं। वहाँ ऋषियों सहिअ ब्रह्मा का पूजन करने से मनुष्य ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। वहीं ऋषियों समेत ब्रह्मा के दर्शन भी होते हैं। उस तीर्थ पर मनुष्य को पिण्डदान करना समुचित है। यदि कोई अज्ञानवश गया में पिण्डदान करता है तो वह अपने पितरों को स्वर्ग से नीचे गिराता है एवं पितरों का शाप-भाजन भी बनता है। शारदा में ही अरुन्धती से सेवित 'वसिष्ठतीर्थ' है। उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान कर अरुन्धती-सहित वसिष्ठ का पूजन कर मनुष्य देव-गन्धर्वादि से प्रार्थित हो सुशोभन ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। उसके दक्षिण भाग में ताँबें की खानों से युक्त वसिष्ठाश्रम से मिली हुई सुन्दर गुफा है। वहाँ पर अरुन्धती तथा तपस्वी ऋषियों एवं शिष्यों सहित वसिष्ठ तपश्चर्या में लीन हैं। हे पार्वति ! उनके दर्शन ते मानव तत्काल ही चिरकाल-पर्यन्त शिवसायुज्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात्

---

१. 'शुचौ' इति 'क' पुस्तके।
२. 'सरिद्भूता' इति 'क' पुस्तके।
३. प्रभुर्महान्' इति 'क' पुस्तके।

ततः परं महाभागे शारदायां फलापकम् । तीर्थमस्ति सुशोभाढ्यं ह्रदपञ्चकसंयुतम् ।।१२६।।
मज्जनात् तत्र वै सम्यक् नरो ब्रह्मपदं शुभम् । प्राप्नोति देवगन्धर्वैः पूजितं सुमनोहरम् ।।१२७।।
ततस्तु शारदामध्ये तीर्थमस्ति महेश्वरि । बकतीर्थेति विख्यातं षष्टिक्रोशसमन्वितम् ।।१२८।।
तत्र स्नात्वा पितृणां च श्राद्धं कृत्वा महेश्वरि । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ।।१२९।।
ततस्तु शारदा पुण्या तरङ्गैर्व्याकुलीकृता । जगाम सा सरिच्छ्रेष्ठा पुण्यं मानसरोवरम् ।।
फेनिला फेनबहुला हंसैः कारण्डवैर्बकैः । सेविता सरितां श्रेष्ठा मुखैर्बहुभिः संयुता ।।
संमिलन् मानसक्षेत्रं सेविता चाप्सरोगणैः ।। १३१ ।।
संगमे शारदायास्तु शृणुष्व परमेश्वरि । स्नात्वा नरो विष्णुगृहं प्राप्नोति कुलकोटिभिः ।।१३२।।
शारदेशं हरं तत्र सम्पूज्य मनुजेश्वरि । मानवो मम सायुज्यमायाति नहि संशयः ।।१३३।।
ततस्तु मानसक्षेत्रे प्रभातीर्थमिति स्मृतम् । सेवितं देवगन्धर्वैर्भानुभक्तैस्तथैव च ।।१३४।।
यत्र भानोः प्रभा देवी पतिता पत्निहेतवे । तत्र स्नात्वा च मनुजो भानुना सह मोदते ।।१३५।।
परं पुण्यतमं तीर्थं संज्ञाख्यं वरवर्णिनि । यत्र संज्ञा भानुभयादश्विनीरूपमास्थिता ।।१३६।।
तत्र स्नात्वा महादेवि नरो याति शुभां गतिम् । ततो मानसरे पुण्ये गणगन्धर्वसेविते ।।१३७।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुभूते महेश्वरि । बलतीर्थेति विख्यातं पूजितं द्विजपुङ्गवैः ।।१३८।।

पाँच सरोवरों सहित 'कलापक' नाम का तार्थ है । उसमें स्नान करने से मानव देव-गन्धर्वादि से पूजित हो ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। इसके बाद शारदा के साठ कोस के घेरे में 'बक' नामक तीर्थ है । यहाँ पर स्नान तथा श्राद्ध करने से इक्कीस कुलों का उद्धार करता हुआ मानव विष्णु-लोक प्राप्त करता है। इस तरह तरङ्गों से उद्वेलित शारदा नदी मानसरोवर में जा मिलती है। फेन उगलती हुई वह नदी हंस, बतख, बगुलों और अप्सराओं से सेवित मानसरोवर में संगमन करती है। शारदा-संगम में स्नान करने से मानव करोड़ों कुलों सहित विष्णुलोक प्राप्त करता है। शारदेश महादेव की पूजा कर मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त करता है। तब मानसक्षेत्र में 'प्रभा' तीर्थ है। वह देव, गन्धर्व और सूर्य के भक्तों से सेवित है। यहीं पर प्रभा[1] देवी सपत्नी के कारण गिर पड़ी थी। वहाँ स्नान करने से सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। तदनन्तर 'संज्ञा' तीर्थ है। यहाँ पर सूर्य के भय से संज्ञा ने अश्विनी[2] का रूप धारण

---

१. सूर्य की तीन पत्नियों में से एक पत्नी का नाम। यह प्रभात की माता थी। सूर्य की तीन पत्नियों के नाम है—संज्ञा, राज्ञी और प्रभा। राज्ञी से रैवत हुआ, प्रभा से प्रभात एवं संज्ञा से मनु, यम और यमुना (युग्म) हुए (मत्स्य ११।२-४)। यह प्रभा आठ अन्य देवियों के साथ पति को छोड़ सोम के पास चली गई (मत्स्य २३-२६)।

२. विश्वकर्मा की पुत्री सूर्य की पत्नी। यम तथा यमुना की माता। सूर्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया से एक स्त्री की सृष्टि की और इसे अपने बच्चों को देकर वह अपने पिता के घर चली गई। पिता ने फटकारा। तब वह उत्तरकुरुवर्ष में अश्विनी का रूप धारण कर विचरण करने लगी। भेद खुलने पर सूर्य उसकी खोज में निकले। सूर्य अश्वरूप में उससे मिले। इस समागम से अश्विनी-कुमारों का जन्म हुआ—(मार्कण्डेय पुराण)।

यत्र स्नात्वा बलो देवि मुक्तो द्विजवधात् किल। तत्र स्नात्वा महाभागे कुलकोटिसमन्वितः॥
गो-स्त्री-द्विजवधान्मुक्तः प्राप्नोति हरिमन्दिरम्। तत्र त्वावर्तविपुलैः[1] संक्षोभितजलाशये॥
पुष्करीभूतकल्लोलैः सेविते सुमनोहरैः। सुगम्भीरजले पुण्ये घनगम्भीरनिःस्वनैः॥१४१॥
कैलासगृह उत्तीर्णैः सेविते सिद्धनायकैः। तथा मरीचिप्रमुखैः सेविते ऋषिनायकैः॥१४२॥
सुपुण्ये मानसक्षेत्रे तीर्थं वामनसंज्ञकम्। अस्तीन्द्राद्यादिभिर्देवैः पूजितं हि महेश्वरि[2]॥१४३॥
यत्र वै वामनो भूत्वा कृष्णोपेन्द्रत्वतां[3] पुरा। समुत्ततार लोकेशो भासा भासितभूतलः॥१४४॥
चिकीर्षन्देवताकार्यं जगाम मधुसूदनः। तत्र विष्णोर्महादेवि पद्भिश्चैवाङ्किता मही॥१४५॥
पद्माङ्कुशादिरेखाभिरङ्कितैर्देवपूजितैः। शिलायां बहुविस्तीर्णायां[4] तत्र मह्यां महेश्वरि॥
विराजन्ते सुपुण्याख्याः विष्णोः पादाः सुपूजिताः। तान्वै सम्पूज्य मनुजाः कुलकोटिशतान्विताः।
व्रजन्ति विष्णुभवनं पूजिताः फाल्गुनादिभिः। नान्योपायं प्रपश्यामि मनुष्याणां दुरात्मनाम्॥

किया था। वहाँ स्नान करने से मनुष्य को सद्गति प्राप्त होती है। तब मानसरोवर में गन्धर्वों से सेवित तथा धर्मार्थकाममोक्ष देने वाला एवं ब्राह्मणों से पूजित 'बल'तीर्थ है। वहाँ स्नान कर बल[5] ने ब्रह्महत्या से छुटकारा पाया था। वहाँ स्नान करने से मानव—गौ, स्त्री एवं ब्रह्महत्या से—मुक्त हो कोटि-कुल-सहित विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। तब मानसक्षेत्र में विपुल भौंरियों एवं बड़ी लहरों से थपेड़े मारे जाते हुए क्षुब्ध जलाशय के सुन्दर और गहरे जल में कैलास से उतरे हुए सिद्धों एवं मारीचादि ऋषिश्रेष्ठों से सेवित 'वामन' नामक तीर्थ है। हे पार्वति! यह तीर्थ इन्द्र आदि देवों से संमानित है। वहाँ विष्णु भगवान् ने उपेन्द्र[6] के रूप में अपनी कान्ति से जगत् को आलोकित कर वामन स्वरूप धारण किया था। इस तरह देवकार्य सम्पादित करने पर विष्णु भगवान् वहाँ से चले गए। वहाँ देवों से पूजित विष्णु के पदों पर अङ्कित पद्म-अंकुश आदि से चिह्नित हस्तप्रमाण स्थल (शिला)[7] विद्यमान है। उन चिह्नों का पूजन कर अर्जु-

---

१. 'ततस्त्वावर्तविपुलैः' इति 'क' पुस्तके। २. 'मनुजेश्वरि' इति 'क' पुस्तके।
३. 'कृत्वोपेन्द्रत्वताम्' इति 'क' पुस्तके।
४. 'शिला या बाहुविस्तीर्णा' इति 'क' 'ख'-पुस्तकयोः पाठः।

५. अतल का निवासी, मय का एक पुत्र। ९६ तिलस्मी जादुओं का आविष्कर्ता। जँभाई लेने पर स्वैरिणी, कामिनी तथा पुंश्चली नामक तीन वर्ग की स्त्रियों को अपने मुख से प्रकट करने वाला कहा गया है। देवासुर संग्राम में इन्द्र से यह लड़ा था और मारा गया—(भागवत ५. २४-१६; ८. ११/१-२१)।

६. 'तयोर्वा पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात्। उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः'॥ —भागवत १०।४-४२।

७. महाभारत के अनुसार दूसरे एक तीर्थ का नाम है। इसमें स्नान कर वामन का पूजन करने वालापुरुष विष्णुलोक प्राप्त करता है। यह प्रभासतीर्थ के बाद विपाशा (व्यास) नदी के तट पर स्थित है। —म० भा० वनपर्व—८३।१०३-१०४।

विष्णुपादं विना देवि पातके मज्जितात्मनाम् । सरोवरतटस्थायां शिलायां मनुजेश्वरि ॥१४९॥
यावन्न मानवः सम्यक्पदं विष्णोः प्रपश्यति । तावद् भ्रमति संसारे दारुणो दुःखसंकुलः ॥१५०॥
यावन्न मानसक्षेत्रे दृष्टं विष्णुपदत्रयम् । संसारे भ्राम्यमाणानां बद्धानां कर्मरज्जुभिः ॥१५१॥
मोचनं मानसक्षेत्रे विद्यते तत्पदत्रयम् । विष्णुपादाङ्कितां भूमिं स्पृष्ट्वाऽपि मनुजाधमाः ॥
आरोहन्ति दिवं देवि किमु तान् पूजनादृतः । स्नात्वा तत्र महादेवि तीर्थे वामनसंज्ञके ॥१५३॥
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते । तत्र पिण्डप्रदानेन यावज्जलकणा दिवि ॥१५४॥
तावद्वर्षाणि पितरो मोदन्ते देववद्दिवि । ये पुण्या दक्षिणाशायां सन्ति तीर्थान्यनेकशः ॥१५५॥
वारुण्यां दिशि तीर्थानि तथैव परमेश्वरि । प्राधान्येन सुपुण्यानि मयाख्यातानि साम्प्रतम् ॥
मानसाख्यस्य सरसो नदीभिः सह सुव्रते । प्रधाननामयुक्तानि[1] मम लिङ्गान्वितानि च[2]॥
क्रिमन्यत्पुण्यमाख्यानं प्रष्टुमिच्छसि सुव्रते ॥ १५७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे तीर्थमाहात्म्यं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥

नादि से संमानित कोटि-कुल-सहित मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं । पापियों के उद्धार का विष्णु-चरणाङ्कों के पूजन के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता । सरोवर के तट पर स्थित विष्णुपद को मानव जब तक नहीं देखता, तब तक ही दारुण दुःख में पड़ा हुआ संसार में भटकता है। मानसक्षेत्र में स्थित तीन विष्णुपदों का दर्शन जब तक नहीं होता तब तक संसारी जीव कर्म-रज्जु-पाश से मुक्त नहीं होता । विष्णुचरणाङ्कित भूमि का स्पर्श-मात्र करने से अधम मनुष्य भी ऊर्ध्वगामी हो जाता है। उसके पूजन के विषय में क्या कहा जाय ? वामनतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य इक्कीस कुलों का उद्धार कर विष्णुलोक प्राप्त करता है। वहाँ पिण्डदान करने से जलकण-अवधि-पर्यन्त पितृगण स्वर्ग में हर्षयुक्त वास करते हैं। मानसरोवर के दक्षिण दिशा में विद्यमान तीर्थों की तरह पश्चिम दिशा में भी अनेक तीर्थ हैं। उनमें से प्रमुख तीर्थों का ही नदियों तथा शिवलिङ्गों सहित वर्णन किया गया है। हे पार्वति ! इसके बाद तुम और क्या पूछना चाहती हो ? ॥२–१५७ ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में तीर्थमाहात्म्य नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'प्राधान्यनामयुक्तानि' इति 'क' पुस्तके । २. 'लिङ्गानि तानि' इति 'घ' पुस्तके ।

१८

दत्त उवाच—

इति शिववचः श्रुत्वा गौरी गौरेन्दुसन्निभा। पप्रच्छ देवदेवेशं प्रफुल्लमुखपङ्कजा ॥ १ ॥

देव्युवाच—

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि यत्त्वया भाषिताऽस्म्यहम्। लोकनाथेन देवेश धर्ममार्गप्रदायिना ॥ २ ॥
अथान्यदपि पृच्छामि माहात्म्यं धर्मदर्शकम्। मानसोत्तरभागे वै तीर्थानां परमेश्वर ॥ ३ ॥
तथैव पूर्वभागे वै तीर्थानां वर्णनं प्रभो। नदीनां चैव माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच—

शृणुष्वैकमना देवि कथयामि न संशयः। यथातीर्थं यथालिङ्गं यथाज्ञानतमं शुभम् ॥ ५ ॥
मानसस्योत्तरे भागे कैलासाख्यो महागिरिः। यत्र मे विद्यते वासस्त्वया सह महेश्वरि ॥ ६ ॥
अधित्यकासु पुण्यासु तस्याद्रेर्वरवर्णिनि। सेविता बहवः पुण्या मानसाख्यस्य वीचिभिः ॥७॥
त्रयस्त्रिंशच्छताख्याताः पातालसदृशा गुहाः। तासु मे विद्यते वासस्त्वया सह न संशयः ॥८॥
तासां मध्ये महाभागा निर्झरैर्बहुभिर्युताः। सेविताः सिद्धगन्धर्वैस्तथा विद्याधरोगणैः ॥ ९ ॥
सप्तब्रह्माण्डनिर्भेद्यसगूढा मम मस्तके। स्वधावासा[1] स्वधापूर्णा शिवदा च स्वधाशिनाम् ॥१०॥
पीनकुङ्कुमलिप्ताभिः सुस्तनीभिः सुसेविता। विद्याधराणां पुण्याभिर्मृगनेत्राभिर्नारीभिः ॥११॥
तथैरावतमातङ्ग-कपोलान्निःसृतैर्मदैः। विमिश्रितजला पुण्या विधात्रा चोपदेशिता ॥१२॥
सूर्यवंशप्रदीपेन धनुषाग्रेण वै शुभे। दर्शिताध्वा सरिच्छ्रेष्ठा नाम्ना मन्दाकिनी सरित् ॥१३॥
जगाम सा सरिच्छ्रेष्ठा पुण्यं मानसरोवरम्। सा भद्रे मानवे लोके भद्रेति ख्यायते सदा ॥१४॥

दत्तात्रेय ने कहा—इस प्रकार शिवजी की बात सुनकर चन्द्रमा की तरह गौरवर्ण वाली पार्वती ने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर पुनः पूछा ॥ १ ॥

पार्वती बोलीं—धर्ममार्ग के उपदेष्टा तथा संसार के स्वामी आपके द्वारा यह कहे जाने से मैं धन्य एवम् अनुगृहीत हूँ। हे परमेश्वर ! अब मैं मानसरोवर के उत्तरभाग में स्थित तीर्थों के धर्म-दर्शक माहात्म्य को सुनने की इच्छुक हूँ। इसके साथ ही पूर्व भाग के तीर्थों का वर्णन एवं नदियों का माहात्म्य भी वस्तुतः जानना चाहती हूँ ॥ २-४ ॥

शंकरजी ने कहा—हे देवि ! तीर्थों एवं लिङ्गों के विषय में मुझे जैसा ज्ञात है उसे तुम सावधानी के साथ सुनो। मानसरोवर के उत्तरी भाग में कैलास पर्वत है। वहाँ मैं तुम्हारे साथ निवास करता हूँ। हे पार्वति ! उसकी पवित्र अधित्यकाओं में मानसरोवर की लहरों से टकराती हुई पाताल के समान ३३०० गुफायें हैं। उनमें तुम्हारे साथ मेरा निवास है। वहाँ झरनों सहित एवं सिद्ध, गन्धर्व तथा सर्पों से सेवित, सात ब्रह्माण्डों का भेदन कर मेरे मस्तक में छिपी हुई स्वधावासरूपा, स्वधापूर्णा एवं स्वधाभोजी पितरों का कल्याण करने वाली, गाढे कुंकुम से लिप्त पीन-पयोधर वाली तथा चंचल नेत्रोंवाली विद्याधराङ्गनाओं से सेवित, एवं ऐरावत के कपोलों से निकले हुए मद-वारि से मिश्रित जलवाली, सूर्यवंश के दीपक मान्धाता के धनुष से दिखाये गए मार्ग का अनुसरण करने वाली 'मन्दाकिनी' नदी है। वह पवित्र मानसरोवर

---

१. 'स्वधाभागा' इति 'क' पुस्तके।

जगाम मानसक्षेत्रं दक्षिणाभिमुखी सरित् । निर्झरैर्बहुलैर्युक्तां ये पश्यन्ति यतव्रताः ।।
ते यान्ति ब्रह्मभुवनं पुत्रपौत्रसमन्विताः ।।१५।।
भद्रा-मानसयोर्मध्ये ये मज्जन्ति महेश्वरि । तेषां मे भवनं वासो विद्यते परमेश्वरि ।।१६।।
तत्र भद्रेश्वरं नाम मम लिङ्गं महेश्वरि । सम्पूज्य मानवः सम्यङ् मम लोके महीयते ।।१७।।
तत्र तीर्थे महादेवि नाम्ना राजा भगीरथः । स्वर्गतिं सागराणां वै अन्विच्छन् प्रार्थयन् हरिम् ।।
द्वादशाब्दानि वै देवि तपस्तेपे सुदुष्करम् । द्वादशाब्दे व्यतीते तु ददर्श स हरिं प्रभुम् ।।१९।।
शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-श्रीवत्साङ्कन शोभितम् । वनमालापरीताङ्गं दिव्यकुण्डलशोभितम् ।।
तं दृष्ट्वा स तदा राजा बाष्पव्याकुलितेन्द्रियः । तुष्टाव स विभुं शान्तं दिव्यकौशेयवाससम् ।।

भगीरथ उवाच—

नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । शार्ङ्गपाणे नमस्तेऽस्तु गदाधर नमोऽस्तुते ।।२२।।

ईश्वर उवाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुः प्रीतमनाऽभवत्[1] । वरं वरय प्रोवाच भगवान् केशिसूदनः ।।२३।।
सोवाच तं तदा देवि सागराणां परां गतिम् । ततस्तं दर्शयामास गत्यर्थे सरितां वराम् ।।२४।।
निजपादसमुद्भूतां गङ्गां मन्दाकिनीं शुभाम् । अनया सगराः सर्वे तरिष्यन्ति न संशयः ।।२५।।

में जाकर मिली है । वह इस लोक में 'भद्रा'[2] नाम से प्रसिद्ध है । वह दक्षिणाभिमुखी होती हुई अनेक स्रोतों से युक्त मानस-क्षेत्र में प्रविष्ट हुई है । जो संयमी इसका दर्शन करते हैं वे पुत्र-पौत्रसहित ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं । भद्रा और मानसरोवर के मध्य जो स्नान करते हैं उन्हें शिवलोक प्राप्त होता हैं । वहीं भद्रेश्वर नामक शिवलिङ्ग है । उशका पूजन कर लोग शिवलोक में संमानित होते हैं । उस तीर्थ में राजा भगीरथ ने सगर के पुत्रों के उद्धार के लिए प्रार्थना की थी । वारह वर्षों तक उन्होंने कठोर तप किया । वारह वर्ष बीतने पर उन्होंने शङ्ख, चक्र, गदा एवं धनुर्धारी तथा श्रीवत्स-चिह्न, वनमाला एवं कुण्डलों से अलङ्कृत भगवान् विष्णु को देखा । उनको देख वाष्प-गद्‌गद होते हुए दिव्य-कौशेय-वस्त्रधारी शान्त प्रभु से राजा ने विनती की ।। ५–२१ ।।

भगीरथ ने कहा—हे शङ्ख-चक्र-गदा एवं धनुर्धारी देव-देवेश ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।। २२ ।।

तब शिवजी बोले—भगीरथ की प्रार्थना सुन भगवान् विष्णु सन्तुष्ट हो गए और उनसे वर माँगने को कहा । हे पार्वति ! तब राजा भगीरथ ने सगर के पुत्रों की सद्‌गति के लिए प्रार्थना की । तदनन्तर भगवान् ने अपने चरण से निकली हुई मन्दाकिनी-गङ्गा को

---

१. सन्धिः आर्षः ।

२. भद्राश्ववर्ष की एक नदी का नाम, जो पुराणानुसार गङ्गा की एक शाखा है । यह ब्रह्मा की नगरी से निकल कर शृङ्गवान् पर्वत से होकर उत्तरकुरु आती हुई उत्तर-समुद्र में गिरती है । देखें भागवत—५।१७·८—'भद्रा च उत्तरतो मेरुशिखरात् निपतिता गिरिशिखराद् गिरिशिखरम् अतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गात् अवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ।'

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥२५॥
व्रजस्व त्वां प्रदास्यामि मार्गेणानेन वै नदीम् । तया वै सागराः सर्वे तरिष्यन्ति न संशयः॥२६॥
राजाऽपि तां सरिच्छ्रेष्ठां दृष्ट्वा देवेन दर्शिताम् । निमज्ज्य मानसक्षेत्रे परां प्रीतिमवाप्तवान्।
जगामान्यत्र तं प्रीतो[1] यत्र जम्बुसरोवरम् । सा भद्रा सरितां श्रेष्ठा विष्णुपादसमुद्भवा ॥२८॥
कपर्दिमध्यसम्भूता कैलासात् पतिता भुवि । विमानमध्यगैर्देवैः सेविता भुवनेश्वरि ॥२९॥
संमिलन्मानसक्षेत्रे तोयफेने विवर्धिता[2] । भद्राया महिमानं हि अपि ब्रह्मा शतक्रतुः ॥
वक्तुं वर्षशतैर्देवि किमन्यदितरे जनाः ॥ ३० ॥
भद्रामूले महादेवि ब्रह्मविष्ण्वादिरर्चितम्[3] । जागर्ति मम लिङ्गं वै देवगन्धर्वपूजितम् ॥३१॥
दृष्ट्वा वै मानवः सम्यङ् महापुरुषलक्षणम् । गणेशस्य पदं पुण्यं प्राप्नोति नहि संशयः ॥३२॥
भद्रामध्ये ततो देवि क्रौञ्चतीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नातो महादेवि नरो मम पदं व्रजेत् ॥३३॥
भद्राया निर्झरान्ते वै पुष्करी नाम वै गुहा । स्थानं तत्र महादेवि पद्मनाभस्य शोभनम् ॥३४॥
तत्र सुप्तो जगन्नाथः पुरा कृतयुगे हरिः । बभूव मृगशावाक्षि शेषाङ्के नहि संशयः ॥३५॥
मार्कण्डेयेन मुनिना नारदेन महात्मना । पूजितश्च महादेवि सुष्वाप स श्रिया सह ॥३६॥
तं दृष्ट्वा मानवा देवि अपि पातककोटिभिः । विलिप्ता हि जरां त्यक्त्वा भवन्ति शतजीविनः ।
ततः परं महाभागे भद्रायां योजनान्तरे[4] । अष्टधातुमयं लिङ्गं स्वर्णबिन्दुविशोभितम्[5] ॥३८॥

दिखाया और कहा —यही सगर-पुत्रों का उद्धार करेगी । तुम जाओ । तुम्हारा अनुसरण करने के लिए मैं मन्दाकिनी को प्रेरित करूँगा । तब सगर-पुत्र तर जाएँगे । ऐसा कह कर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गए । भगवान् विष्णु से प्रेरित श्रेष्ठ नदी को देखते हुए राजा ने वहीं मानसक्षेत्र में स्नान कर प्रसन्नता का अनुभव किया । तब वह जम्बुसरोवर को गया । वहाँ पर विष्णु के चरण से निकली भद्रा नदी भगवान् शंकर के जटाजूट से प्रकट होती हुई कैलास पर्वत से पृथ्वी पर उतरी । हे देवि ! विमानचारी देवताओं से सेवित एवं हिम-फेनों को उगलती हुई वह मानसरोवर में आकर मिली । भद्रा की महिमा का वर्णन स्वयं ब्रह्मा एवम् इन्द्र भी सौ वर्ष तक नहीं कर सकते । मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? हे पार्वति ! भद्रा के मूल में ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं से पूजित शिवलिङ्ग है । उसके दर्शन से मानव महान् पुरुषों के लक्षणों से युक्त गणेश के पुण्य पद को प्राप्त करता है । भद्रा के मध्य में 'क्रौञ्च' नामक तीर्थ है । वहाँ स्नान कर मनुष्य शिवत्व को प्राप्त करता है । भद्रा के झरने में 'पुष्करी' नाम की गुफा है । हे पार्वति ! वह पद्मनाभ का स्थान है । सत्ययुग में वहाँ पर भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ शेषनाग के अङ्क में शयन करते थे । मार्कण्डेय ऋषि और नारद ने उनका पूजन किया था । उनका दर्शन कर मनुष्य अनेक पापों से लिप्त होने पर भी वार्धक्य का परित्याग कर चिरजीवी हो जाते हैं । तदनन्तर 'भद्रा' से एक योजन की दूरी पर स्वर्ण बिन्दुओं से सुशोभित अष्टधातुमय शिवलिङ्ग है । वह देव-गन्धर्व

१. 'जगाम न्यस्य तं प्रीतः' इति 'ख' पुस्तके ।
२. 'संमिलन्मानसक्षेत्रं तोयफेनैर्विवर्धिता' इति 'क' पुस्तके ।
३. 'ब्रह्मविष्ण्वादिभिरर्चितम्' इत्यर्थः ।
४. 'योजनात्परे' इति 'क' पुस्तके ।
५. 'बिन्दुभिः शोभितम्' इति 'क' पुस्तके ।

मदीयं देवगन्धर्वैः पूजितं सुमनोहरम् । विद्यते चापि शोभाढ्यं[1] पूजितं सिद्धनायकैः ।।३९।।
तल्लिङ्गस्य चतुर्थे वै भागे त्वमसि शोभने । गौरीश्वरेति तल्लिङ्गं वदन्ति मुनिसत्तमाः।।४०।।
गौरीश्वरं महादेवं सम्पूज्य मनुजेश्वरि । प्राप्नोति विभवं लोके प्रसादान्नात्र संशयः ।।४१।।
ततस्तु दक्षिणे देवि भद्रायाः सुमहागुहा । कलापी-नाम पुण्याख्या हरिमन्दिरसन्निभा ।।४२।।
तत्र त्रिनेत्रसंज्ञं वै लिङ्गं मे वरवर्णिनि । सम्पूज्य मानवः सम्यक् अश्वमेधफलं लभेत् ।।४३।।
ततस्तु वामभागे वै मृत्युञ्जयमहेश्वरम् । सम्पूज्य मृगशावाक्षि मृत्युं जयति दुर्जयम् ।।४४।।
ततस्तु दक्षिणे देवि काली नाम महागुहा । तत्र कालीश्वरं देवं सम्पूज्य मम मन्दिरम् ।।४५।।
प्राप्नोति सुरगन्धर्वैः पूजितं सुमनोहरम् ।। ४६ ।।
ततो वामे महादेवि भवानीशं महेश्वरम् । गत्वा सम्पूज्य मनुजो जायते मम वल्लभः ।।४७।।
ततो भद्राह्वदे पुण्ये कपिलेशं महेश्वरम् । शिलामध्ये नाभिमयं गत्वा सम्पूज्य मानवः ।।
प्राक्तनानि हि पापानि भस्मसात्कुरुते शुभे ।। ४८ ।।
ततो गत्वा महादेवि भद्रायां पश्चिमे दिशि । महेशं कालिकेशाख्यं सम्पूज्य शिवमाप्नुयात् ।।४९।।
ततो भद्राह्वदाः पञ्च ख्यायन्ते भुवि दुर्लभाः । येषु स्नात्वा महामात्रो महेन्द्रस्य महात्मनः ।।५०।।
बभूव सारथिर्देवि मातलिः कमलेक्षणे । तेषां हि नामधेयं वै शृणुष्व सुसमाहिता ।।५१।।
कालीह्रदं कालह्रदं ततः कल्पह्रदं शुभम् । ततः पद्मह्रदं पुण्यं ततो हरिह्रदं स्मृतम् ।।५२।।
तेषु स्नात्वा नरो देवि सन्तर्प्य च पितॄन् स्वकान् । प्रयाति विष्णुभुवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।
ततस्तु सा सरिच्छ्रेष्ठा कैलासगिरिसम्भवा । संमिलन्मानसं क्षेत्रं राजहंसनिषेवितम् ।।५४।।
तत्र स्नात्वा नरो देवि सन्तर्प्य च पितॄन् स्वकान् । कुबेरसदृशीं सम्पत् प्राप्नोति नहि संशयः।

एवं सिद्धजनों से पूजित हो शोभायमान है। हे पार्वति! उस शिवलिङ्ग के चौथाई भाग में तुम्हारी स्थिति है। अतः 'गौरीश्वर' नाम से उस शिवलिङ्ग की प्रसिद्धि है। उसके पूजन एवं प्रसाद से मनुष्य ऐश्वर्यवान् हो जाता है। 'भद्रा' के दाहिनी ओर विष्णुमन्दिर के सदृश गुफा का नाम 'कलापी' है। वहाँ पर 'त्रिनेत्र' नामक शिवलिङ्ग का पूजन करने से मानव को अश्वमेध-यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहीं वामभागस्थ 'मृत्युञ्जय' का पूजन करने से दुर्जेय मृत्यु भी विजित हो जाती है। उसके दक्षिण में 'काली' नाम की गुफा है। वहाँ 'कालीश्वर' का पूजन कर मानव शिवलोक में पहुँच जाता हैं। उनके पूजन से मनुष्य शिव का कृपापात्र हो जाता है। भद्रा-सरोवर के बीच में 'कपिलेश' महादेव हैं। वे शिला के मध्य में नाभिस्वरूप हैं। वहाँ जाकर उनका पूजन करने से मनुष्य के प्राक्तन कर्म-जनित पाप भस्म हो जाते हैं। तत्पश्चात् भद्रा के पश्चिम भाग में जाकर 'कालिकेश' का पूजन कर कल्याण प्राप्त करें। तदनन्तर 'भद्रा' के पाँच सरोवर हैं। वे पृथ्वी में अत्यन्त दुर्लभ हैं। वहीं पर स्नान करने से इन्द्र का महामात्र मातलि सारथि बना। उन पाँचों के नाम ये हैं—(१) कालीह्रद, (२) कालह्रद, (३) कल्पह्रद, (४) पद्मह्रद तथा (५) हरिह्रद। उनमें स्नान एवं पितृ-तर्पण के पश्चात् मनुष्य विष्णुलोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् कैलास-पर्वत से निकलने वाली वह 'भद्रा' नदी राजहंसों से सेवित मानसरोवर में मिल जाती है। उसके संगम पर स्नान एवं

---

१. 'विद्यते चातिशोभाढ्यम्' इति 'क' पुस्तके।

तत्र भद्रेश्वरं नाम लिङ्गं मे वरवर्णिनि । सम्पूज्य मानवः सम्यक् नैवाभद्रं प्रपश्यति ॥५६॥
ततस्तु मानसक्षेत्रे भगीरथसरः स्मृतम् । तत्र स्नात्वा नरो देवि विश्वनाथस्य पूजनात् ॥५७॥
यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं लभते ध्रुवम् । स्थापितं नृपसिंहेन लिङ्गं मे वरवर्णिनि ॥५८॥
भगीरथेशनामं वै सम्पूज्य मनुजाधमाः । प्राप्नुवन्ति गृहं कान्तं नन्दिकेशनिषेवितम् ॥५९॥
ततस्तु मानसक्षेत्रे वज्रतीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा नरो देवि वज्रभीतिं न गच्छति[1] ।६०।
ततो मानसरे पुण्ये यमतीर्थमिति स्मृतम् । यत्र सूर्यस्य तनुजो यमराजो महामतिः ॥६१॥
कालदण्डं च मुद्रां च प्राप विष्णोरनुग्रहात् । तत्र स्नात्वा महादेवि यमलोकं न पश्यति ॥६२॥
ततस्तु चित्रगुप्ताख्यं तीर्थमस्ति महेश्वरि । चित्रगुप्तः स्वयं यत्र धर्माधर्मस्य निर्णयम् ॥६३॥
करोति यतवाङ् नित्यं सुविचार्य पुनः पुनः । तत्र स्नात्वा महादेवि विद्यावान् जायते नरः ॥६४॥
ततो विष्णुप्रयागाख्यं तीर्थमस्ति महेश्वरि । तत्र स्नात्वा नरः सम्यक् विष्णुलोकं प्रपश्यति ॥
परं रामप्रयागाख्यं तीर्थं त्रिदशसेवितम् । तत्र स्नात्वा नरो देवि सप्तविंशत्कुलान्वितः ॥६६॥
प्रयाति विष्णुभवनं सेवितः किन्नरीगणैः । मुचुकुन्दाह्वयं तीर्थं परं त्रिदशसेवितम् ॥६७॥
योजनत्रयगम्भीरं कदुष्णजलसन्निभम्[2] । तत्र स्नात्वा नरो देवि महेन्द्रपदमश्नुते ॥६८॥
कैलासवामभागे हि कलापाख्यो महागिरिः । गुहाभिर्द्वादशैर्युक्तो रजताकरशोभितः ॥६९ ।

पितरों का तर्पण करने से मनुष्य निःसन्देह कुबेर के सदृश सम्पत्तिशाली हो जाता है । वहीं 'भद्रेश्वर' नामक महादेव हैं । जिनका पूजनकर मनुष्य अभद्र नहीं देखता । तब 'भगीरथ-सर' है । वहाँ स्नान करने से विश्वनाथ की पूजा करने के समान फल प्राप्त होता है । उस भगीर-थेश शिवलिङ्ग को राजा भगीरथ ने स्थापित किया था । उसका पूजन कर मनुष्य सुन्दर शिव-लोक को प्राप्त करता है । तदनन्तर वज्रतीर्थ है । वहाँ स्नान कर मनुष्य को वज्रपात का डर नहीं रहता । तदनन्तर मानसक्षेत्र में 'यमतीर्थ' है । यहाँ पर सूर्यपुत्र धर्मराज ने भगवान् विष्णु की कृपा से 'कालदण्ड' व 'मुद्रा' प्राप्त की थी । वहाँ स्नान करने से मनुष्य को यमलोक नहीं जाना पड़ता । इसके बाद 'चित्रगुप्त' तीर्थ है । यहाँ पर स्वयं चित्रगुप्त 'धर्म' और 'अधर्म' का निर्णय करते हैं । वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य विद्यावान् हो जाता है । तत्पश्चात् 'विष्णु-प्रयाग' नामक तीर्थ है । वहाँ स्नान करने से 'विष्णुलोक' का दर्शन होता है । तदनन्तर देव-ताओं से सेवित 'रामप्रयाग' नामक तीर्थ है । वहाँ स्नान करने से मनुष्य सत्ताईस कुलों सहित किन्नरियों से सेवित विष्णुलोक को प्राप्त करता है । तब 'मुचुकुन्द' नामक तीर्थ है । वह तीन योजन गहरे कुनकुने जल से भरा हुआ है । वहाँ स्नान करने से इन्द्रलोक प्राप्त होता है । कैलास के वामभाग में 'कलाप'-पर्वत[3] है । वहाँ बारह गुफायें और चाँदी की खानें भी हैं । वहीं

---

१. अयमर्धश्लोकः 'क' पुस्तके न दृश्यते । २. 'कटूष्णजलसन्निभम्' इति 'क' पुस्तके ।

३. अन्यत्र पुराणों में 'कलाप-नगर' (वायु—१/१८६) 'कलापग्राम' (ब्रह्माण्ड—२-१८-५०) एवं 'कलाप-द्वीप' आदि का वर्णन मिलता है । श्रीमद्भागवत के अनुसार सूर्यवंश के अग्निवर्ण, शीघ्र, मरु आदि राजा तथा चन्द्रवंश के शन्तनु के बड़े भाई देवापि इसी नगर में रहते थे । इनमें मरु और देवापि महान् योगबल से सम्पन्न थे । इन दोनों राजर्षियों के कारण ही कलियुग के बाद सत्ययुग में विलुप्त सूर्य एवं चन्द्रवंश की पुनः स्थापना होती है तथा वर्णाश्रम की रक्षा होगी । देखें—श्रीमद्भागवत—"देवापिः

तत्रोत्तीर्णा सरिच्छ्रेष्ठा सुनन्दा हंससेविता । स्वर्णाभा हिमसम्भूता पूरिता स्वर्णधातुभिः ॥७०॥
नानाविधैर्विहङ्गस्तैः[1] सेविता सरितां वरा । मनसा मानसक्षेत्रे विधात्रा चोपदेशिता ॥७१॥
धनुर्मार्गेण वै राज्ञा दर्शिताध्वा सरिद्वरा । जगाम मानसक्षेत्रे सुनन्दा सरितां वरा ॥७२॥
सुनन्दस्य महायज्ञे समाहूता महर्षिभिः । मूले तस्याः स्थितो यज्ञे सुनन्दः सुमहातपाः ॥७३॥
तस्य सन्दर्शनात् सद्यः प्राप्नुवन्ति नरा हरिम् । सुनन्दायां ततो देवि कालात्मा विश्वभावनः ॥
शिलायां संस्थितः सूर्यो दृश्यते वरवर्णिनि । तं दृष्ट्वा भूतभव्येशं सम्पूज्य विधिपूर्वकम्
रमते सुचिरं कालं सूर्यलोके हि मानवः ॥७५॥

ततो कूर्मह्रदं दिव्यं विद्यते वरवर्णिनि । तत्र स्नात्वा नरो देवि रूपवान् जायते भुवि ॥७६॥
तथैव दक्षिणे तीरे कूर्मधारां सुपूजिताम् । स्नात्वा सायुज्यतां यान्ति वासुदेवस्य सुव्रते ॥७७॥
तथा कूर्मशिलां पूज्य[2] वामे गिरिशवल्लभे । जायते दिव्यदेहो वै मानुषो भुवि संस्थितः ॥७८॥
ततस्तु[3] वासुकीतीर्थं मीनतीर्थमिति स्मृतम्[4] । ततो गौतमतीर्थं वै तीर्थं नारदसंज्ञकम् ॥
तेषु स्नात्वा नरो देवि सहस्राब्दं वसेद्दिवि ॥ ७९ ॥

ततो वामे महाकालीगुहायां वरवर्णिनि । सम्पूज्य मानवः सम्यक् प्रियो मे जायते भुवि ॥८०॥
ततः सा सरितां श्रेष्ठा सुनन्दा मानसं गता । सुनन्दासंगमे देवि सुनन्देशं महेश्वरम् ॥८१॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् मद्भक्ति समवाप्नुयात् ॥ ८२ ॥

हंसों से सेवित 'सुनन्दा' नदी प्रकट होती है। वह स्वर्णकान्ति से युक्त एवं सोने के कणों से भरी हुई है। अनेक पक्षियों के कलरव से निनादित वह नदी ब्रह्मा के द्वारा उपदिष्ट हो मान्धाता के धनुर्मार्ग से अपना पथ प्रशस्त करती हुई मानसक्षेत्र की ओर आगे बढ़ी। महर्षियों ने सुनन्द के महायज्ञ में उसका आह्वान किया था। यज्ञ के समय उसके मूल में महान् तपस्वी सुनन्द उपस्थित हुए थे। उनके दर्शन से मनुष्य भगवान् विष्णु का सामीप्य-लाभ प्राप्त करते हैं। हे पार्वति ! सुनन्दा में ही एक शिला पर कालात्मा विश्वभावन भगवान् सूर्य के दर्शन होते हैं। वहाँ उनका दर्शन एवं विधिपूर्वक पूजन कर मनुष्य चिरकालपर्यन्त सूर्यलोक में रमण करता है। तत्पश्चात् 'कूर्मह्रद' है। हे देवि ! वहाँ स्नान कर मनुष्य रूपसम्पन्न हो जाता है। इसी तरह उसके दाहिनी ओर 'कूर्मधारा' में स्नान कर मानव विष्णु-सायुज्य प्राप्त करता है। 'कूर्मशिला' का पूजन कर मनुष्य दिव्य देहयुक्त हो जाता है। तदनन्तर 'वासुकीतीर्थ' 'मीनतीर्थ', 'गौतमतीर्थ' तथा 'नारदतीर्थ' हैं। इनमें स्नान कर मनुष्य का हजारों वर्ष स्वर्ग में वास होता है। तब बाईं ओर गुफा में 'महाकाल' स्थापित हैं। उनका पूजन कर मनुष्य भूमण्डल में मेरा स्नेहभाजन हो जाता है। तब वह सुनन्दा नदी मानसरोवर में मिल जाती है। सुनन्दा के संगम पर

शान्तनोर्भ्राता: मरुश्चेक्ष्वाकुवंशः। कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ताविहेत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ। वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यतः ॥" १२।२·३७, ३८। हिमालय (कैलास) से सम्बद्ध होने के कारण पर्वतवाची भी हो गया। एक ज्ञान-सम्पन्न महात्मा (शिवपुराण,शतरुद्रसंहिता) भी थे।

१. 'नानाविधैः पक्षिरुतैः' इति 'क' पुस्तके।
२. 'ल्यप्'-आदेश आर्षः।
३. 'तत्रैव' इति 'क' पुस्तके।
४. 'परम्' इति 'क' पुस्तके।

ततस्तु मानसे क्षेत्रे देवगन्धर्वपूजिते। कुबेरतीर्थं विख्यातं पातकान्तकरं शुभे ॥
तत्र स्नात्वा देवपूज्यो मानवो जायते शुभे ॥ ८३ ॥

ततो दिलीपतीर्थं वै विद्यते वरवर्णिनि । यत्र साङ्गाश्वमेधस्य स राजा फलमाप्तवान् ॥८४॥
तत्र स्नात्वा नरो देवि कुबेरपदवीं व्रजेत् । शाकुन्तलेयो भरतो यत्र मज्जितवान् पुरा ॥८५॥
भरतेशं हरं तत्र गुहायां लिङ्गरूपिणम् । सम्पूज्य मृगशावाक्षि भारतश्रवणं फलम् ॥८६॥
प्राप्नोति मानवः सम्यक् प्रसादान्मम वल्लभे । ततो मेरुरिति ख्यातः पर्वतप्रवरः शुभे ॥८७॥
महामरकतप्रख्यो देवगन्धर्वसेवितः । तत्रोत्तीर्णा सरिच्छ्रेष्ठा पुण्यगुप्ता सरस्वती[1] ॥८८॥
वसिष्ठस्य महायज्ञे याऽऽहूता च महर्षिभिः । मनसा मानसक्षेत्रे सा विधात्रा नियोजिता॥८९॥
सूर्यवंशप्रदीपेन गुप्तमार्गं प्रदर्शिता । ययौ सा मानसक्षेत्रे सुशीतविमले जले ॥९०॥
तस्या मूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवर्षयस्तथा । कट्यां वै पद्मनाभस्तु पादौ चाहं प्रतिष्ठितः ।९१।
तस्यां स्नात्वा नरो देवि दिव्यदेहो हि जायते । सरस्वत्या महादेवि संगमे स्नाति यो नरः ।९२।

'सुनन्देश' का पूजन कर मनुष्य मेरा भक्त हो जाता है । उसके बाद मानसक्षेत्र में देव-गन्धर्वों से पूजित एवं पापों का विनाशक प्रसिद्ध 'कुबेरतीर्थ' है । हे पार्वति ! वहाँ स्नान कर मनुष्य देवों की पूजा करने योग्य हो जाता है । तदनन्तर 'दिलीपतीर्थ' है । वहाँ पर दिलीप ने साङ्ग अश्वमेध-यज्ञ का फल प्राप्त किया था । यहाँ पर स्नान करने से मनुष्य कुबेर की पदवी प्राप्त कर लेता है । गुफा में जहाँ शकुन्तला के पुत्र भरत ने स्नान किया था, वहाँ 'भरतेश' शिवलिङ्ग का पूजन करने से मनुष्य को मेरी कृपा से महाभारत के सुनने का फल प्राप्त होता है । उसके बाद 'मेरु' पर्वत है । वह मेरु[2] महामरकतमणि की आभा के सदृश प्रखर तेजस्वी एवं देवों तथा गन्धर्वों से सेवित है । वहाँ से गुप्तरूप में निकलने वाली पवित्र 'सरस्वती' नदी बहती है । वसिष्ठ के महायज्ञ में ऋषियों ने उसका आह्वान किया था । वह ब्रह्मा की आज्ञा एवं मान्धाता के द्वारा प्रदर्शित गुप्त मार्ग से मानसरोवर के शीतजल में समाविष्ट हो गई । उसके मूल में ब्रह्मा, मध्य में देवर्षिगण, कटि में पद्मनाभ और उसके चरणों पर मैं स्वयं प्रतिष्ठित हूँ । हे पार्वति ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य दिव्य-देह-सम्पन्न हो जाते हैं । सरस्वती

---

१. 'पुण्या गुप्तसरस्वती' इति 'क' पुस्तके ।

२. पुराणानुसार एक सुवर्ण-पर्वत का नाम । यह इलावृत के मध्य में स्थित है । इसकी ऊंचाई जम्बूद्वीप की लम्बाई के बराबर है । मन्दराचल, मेरुमन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद से यह घिरा हुआ है । मेरु के पूर्व में जठर और देवकूट हैं; पश्चिम में पवन तथा पारियात्र; दक्षिण में कैलास तथा करवीर और उत्तर में त्रिशृङ्ग तथा मकर । इसकी चोटी पर मध्य में ब्रह्मा की चतुष्कोण सुवर्ण-निर्मित नगरी है, जिसके बाहर तथा चारों ओर आठ दिक्पालों की ८ नगरियाँ हैं (भागवत स्कन्ध ५ अध्याय ६ पूरा) । इन्हीं के मूलभाग में एक वन है, जिसे शिव-पार्वती के क्रीडास्थल होने का गौरव प्राप्त है । यह जम्बूद्वीप के मध्यभाग का पर्वत ६ वर्षपर्वतों में से एक है, जहाँ देवगण निवास करते हैं । इसकी चार दिशाओं में चार देश हैं—भद्राश्व, भारत, केतुमाल तथा उत्तरकुरु (ब्रह्माण्ड—२।१५-१६, ४२-५१) । सावर्णि मनु की यह तपस्या-स्थली रही है (मत्स्य०—११-३८) ।

स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् । ततो मेरुसमुद्भूता सेविता हिमसीकरैः ॥९३॥
स्वर्णधारा सरिच्छ्रेष्ठा सुतोया स्वर्णसन्निभा । मनसा मानसक्षेत्रे विधात्रा चोपदेशिता ॥९४॥
नृपेण दर्शिताऽध्वा सा ययौ मानसरोवरम् । स्वर्णधारेति विख्याता पतिता मेरुमूर्धनि ॥९५॥
पूजिता देवगन्धर्वैर्महर्षिभिरभिष्टुता । देवदुन्दुभिनिर्घोषा जातीकुसुमसन्निभा ॥९६॥
तच्छिरोपरि राजर्षे कमला नाम वै गुहा । तत्र त्वं मृगशावाक्षि महर्षिभिरभिष्टुता ॥९७॥
राजसे बालचरितैर्महामायेति विश्रुता । सम्पूज्य तां महाभागे गुहायां संस्थितां शिवाम् ॥९८॥
[1]ऋद्धिभिर्बहुभिर्युक्ता विराजन्ते नरा भुवि । ततस्तु स्वर्णधारायां दक्षिणे वरवर्णिनि ॥९९॥
वराहाख्यां शिलां पूज्य नरो हरिपुरं व्रजेत् । ततस्तु स्वर्णधारायां नरसिंहह्रदं[2] शुभम् ॥१००॥
तत्र स्नात्वा च मुनयो हरिभक्तिमवाप्नुयुः । परं तु कमला तीर्थं दृश्यते यवरूपिणी ॥१०१॥
देवि विष्णोः प्रिया लक्ष्मी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । तत्र सम्पूज्य कमलामतुलाश्रियमाप्नुयात् ॥
संगमे स्वर्णधारायाः सरराजस्य वै शुभे । स्वर्णधातुमयं लिङ्गं मदीयं ये भजन्ति हि ॥१०३॥
तेषां मम गृहे वासो विद्यते वरवर्णिनि । संगमे स्वर्णधारायाः शृणुष्व परमेश्वरि ॥
श्राद्धं कृत्वा च मतिमान्[3] कुलानां तारयेच्छतम् ॥ १०४ ॥

के संगम में स्नान करने से मनुष्य आवागमन से मुक्त हो विष्णुलोक प्राप्त करता है । तदनन्तर मेरुपर्वत से उद्भूत शीतल एवं सुवर्ण – सदृश जल से पूरित 'स्वर्णधारा' नदी[4] है । वह भी ब्रह्मा से प्रेरित हो मान्धाता के प्रदर्शित मार्ग से मानसरोवर में मिल गई । मेरु पर्वत पर गिरी 'स्वर्णधारा' नदी देव-गन्धर्व आदि से पूजित तथा महर्षियों से प्रार्थित है । उसके ऊपर देव दुन्दुभियों के घोष से युक्त एवं चमेली के फूल के समान 'कमला' नाम की गुफा है । हे मृगशाव के समान नेत्रवाली पार्वति ! वहाँ तुम महर्षियों से स्तुति की जाती हुई बालचरितों से सुशोभित हो । गुहा में तुम्हारी पूजा करने वाले मानव ऋद्धि-सम्पन्न हो पृथ्वी पर सुशोभित होते हैं । तत्पश्चात् दाहिनी ओर स्वर्णधारा में वराह नाम की शिला का पूजन करने से मनुष्य विष्णुलोक प्राप्त करता है । तब स्वर्णधारा में 'नरसिंह' नाम का सर है । इसमें स्नानकर ऋषियों ने हरिभक्ति प्राप्त की । फिर यव-रूप में स्थित 'कमला' तीर्थ है । हे पार्वति ! वहाँ भुक्ति-मुक्ति देने वाली विष्णुप्रिया वास करती हैं । कमला का पूजन करने से अतुल सम्पत्ति प्राप्त होती है । स्वर्णधारा और मानसरोवर के संगम में मेरे स्वर्णमय लिङ्ग का पूजन करने वाले

---

१. 'ऋषिभिः' इति 'क' पुस्तके ।   २. 'नारसिंहह्लदं शुभम्' इति 'घ' पुस्तके ।
३. 'मनुजः' इति 'ग' पुस्तके ।

४. 'अद्भुत-रामायण' के अनुसार पुष्पक-विमान पर बैठकर जाते हुए राम-जानकी की परस्पर वार्ता के समय सहस्रकन्धर रावण के प्रहार करते ही सीता ने क्रुद्ध होकर वध कर किया (२३-२६) । साथ ही यह भी कहा कि मैं मानसरोवर के उत्तर-भाग में रहूँगी तथा आप शिव के रूप में मेरे साथ निवास करेंगे—

"गृहीतं यन्मया रूपं रावणस्य वधाय हि । तेन रूपेण राजेन्द्र वसामि मानसोत्तरे ॥
प्रकृत्या नीलरूपस्त्वं लोहितो रावणार्दितः । नीललोहितरूपेण त्वया सह वसाम्यहम् ॥"

(अ० २६-४०।४१) । अद्भुतरामायण के अन्त में भरद्वाज को सम्बोधित कर वाल्मीकि ने यह कहा है कि 'पहले मैंने इन्द्र के पूछने पर इस कथा को 'स्वर्णदी' के किनारे कहा था' ।

ततस्तु मानसक्षेत्रे तीर्थं त्रिदशसेवितम् । पुण्यं ब्रह्मकपालाख्यं शिलायां चातिशोभितम् ॥१०५॥
तत्र श्राद्धं गयाश्राद्धादनन्तगुणितं स्मृतम्[1] । तत्रैव मुण्डनं कृत्वा चोपवासं विशेषतः ॥१०६॥
निमज्ज्य मानसक्षेत्रे विधिदृष्टेन कर्मणा । सन्तर्प्य च पितॄन् सर्वान् ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥१०७॥
सनत्कुमारनामे वै तीर्थे स्नात्वा यतव्रते । तत्रैव मानसक्षेत्रे नरो हरिपुरं[2] व्रजेत् ॥१०८॥
अश्विनाख्यं महातीर्थं ततो मानसरोवरे । यत्रैव चाश्विनीपुत्रौ कुमारौ ब्रह्मवादिनौ ॥१०९॥
स्नात्वा महेन्द्रभवने संप्राप्तौ लोकपूजितौ[3] । तत्र स्नात्वा नरो देवि महेन्द्रभवनं व्रजेत् ॥११०
ततस्तु मानसक्षेत्रे देवर्षिगणसेविते । धर्माधर्माह्वयं तीर्थमावर्तैर्बहुभिर्युतम् ॥१११॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो मोदते देववद्दिवि । ततो महेन्द्रनामा वै पर्वतः पर्वतेन्द्रजे ॥११२॥
सप्तमो गिरिराट् पुण्यो मया ख्यातो न संशयः । तस्माद्विनिःसृता देवि माहेन्द्री सरितां वरा ।
जयन्तस्य स्वसाभूता या भूता सरितां वरा । महेन्द्रपर्वतोद्देशे पतिता सरितां वरा ॥११४॥
मनसा मानसक्षेत्रे ब्रह्मणा चोपदेशिता । सूर्यवंशप्रदीपेन दर्शिताध्वा सरिद्वरा ॥११५॥
देवेन्द्रेण समाज्ञाता प्रार्थिता सिद्धनायकैः । जगाम मानसक्षेत्रं देवर्षिगणसेवितम् ॥११६॥

लोगों को शिवलोक प्राप्त होता है । हे पार्वति ! सुनो, स्वर्णधारा के संगम में श्राद्ध करने पर मनुष्य अपने सैकड़ों कुलों को तार देता है । तदनन्तर मानसक्षेत्र में शिलारूप में देवों से सेवित 'ब्रह्मकपाल' नामक पवित्र तीर्थ है। वहाँ श्राद्ध करने से गया-श्राद्ध से भी अधिक फल मिलता है। (इसके साथ ही) मुण्डन कर उपवास रखते हुए सविधि स्नान के पश्चात् पितृ-तर्पण करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। हे नियम पालन करने वाली पार्वति ! वहाँ 'सनत्कुमार' तीर्थ में स्नान करने वाला मानव मानसक्षेत्र में ही विष्णुलोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् 'अश्विन' नामक तीर्थ है। यहाँ स्नान करने पर ब्रह्म-वेत्ता दोनों अश्विनी कुमारों ने शुक्राचार्य से सम्मानित किये जाते हुए इन्द्रलोक प्राप्त किया। वहाँ स्नान करने पर मनुष्य को इन्द्रलोक प्राप्त होता है। तत्पश्चात् मानसक्षेत्र में देवों से सुसेवित एवं बहुत भँवरियों से संकुलित 'धर्माधर्म' नाम का तीर्थ है। वहाँ स्नान करने पर मनुष्य स्वर्ग में देवों के समान आनन्द प्राप्त करता है। हे हिमालय की पुत्रि ! तत्पश्चात् 'महेन्द्र' नामक पर्वत[4] है। मैंने उसे सातवाँ श्रेष्ठ पर्वत (कुलपर्वत) कहा है। वहीं से 'माहेन्द्री' नदी निकली हैं। वह जयन्त की बहन के रूप में महेन्द्र पर्वत पर उतरी तथा ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होने पर मान्धाता के प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण कर मानसक्षेत्र की ओर बढ़ी। इन्द्र से

---

१. 'शुभम्' इति 'ङ' पुस्तके । २. 'हरपुरम्' इति 'ग' पुस्तके ।
३. 'कविपूजितौ' इति 'क' पुस्तके ।

४. महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान् , ऋक्षवान् , विन्ध्याचल और पारियात्र—ये सात पुराणोक्त कुलपर्वत हैं (मत्स्य० ११४-१७)। इनमें से 'महेन्द्र' की स्थिति 'उड़ीसा' (कलिङ्ग) में मानी गई है। 'मलय' पश्चिमी घाट का दक्षिणी पर्वत है। 'सह्य' पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग है। 'शुक्तिमान्' सन्देहात्मक है। 'ऋक्ष' गोंडवाना नाम का पहाड़ है। 'विन्ध्याचल' से केवल उसके पूर्वी पहाड़ों का बोध होता है। 'पारियात्र' विन्ध्याचल का उत्तरी और पश्चिमी भाग है।' किन्तु यहाँ पर वर्णित महेन्द्र पर्वत उससे भिन्न है।

तस्या मूले महादेवः सेवितः किन्नरोरगैः । विद्यते मृगशावाक्षि पूजितः सुरनायकैः ॥११७॥
तं दृष्ट्वा मानवः सम्यक् प्रयाति शिवमन्दिरम् । कुलैर्द्वादशभिर्युक्तो विहाय पातकान् स्वकान् ।
ततो माहेन्द्रिमध्यस्थं[1] तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम् । नाम्ना पाशुपतं नाम शिवकिङ्करसेवितम् ।११९।
तत्र स्नात्वा नरो देवि मम सायुज्यमश्नुते । ततो माहेन्द्रिमध्ये वै तीर्थं मकरसंज्ञकम् ॥१२०॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो मातुर्गर्भं न पश्यति । ततः सा सरितां श्रेष्ठा माहेन्द्री[2] मानसं सरम् ॥
जगाम तीर्थबहुला स्वधा फेनमिवापरा । माहेन्द्रीसंगमे देवि महेन्द्रेशं महेश्वरम् ॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् शिवलोके महीयते ॥ १२२ ॥
ततस्तु मानसक्षेत्रे वारुणी सरितां वरा । जगाम मानस-क्षेत्रं द्वितीयमिव सागरम् ॥१२३॥
ब्रह्मणा चोपदिष्टा सा सरितां प्रवरा सरित् । सूर्यवंशप्रदीपेन दर्शिताध्वा महानदी ॥१२४॥
प्रविष्टा मानसं क्षेत्रं शीत-पीत-जलं शुभम् । तस्या मूले च वरुणो वसति त्रिदिवेश्वरि ॥
सम्पूज्य वरुणं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १२५ ॥
ततस्तु वारुणीमध्ये सूर्यकुण्डमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा च मनुजो रवेर्मण्डलमध्यगः ॥
जायते मृगशावाक्षि सत्यं ते व्याहृतं मया ॥१२६॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो विष्णुलोके महीयते । ततस्तु वारुणीमध्ये चक्रतीर्थमिति स्मृतम्[3] ।१२७।
वारुण्या वामभागे वै क्रौञ्चाख्या हि महागुहा । तत्र धूर्जटिनामानं सम्पूज्य मनुजेश्वरि ॥१२८॥
मम लोकमवाप्नोति प्रसादान्नात्र संशयः । ततः सरोवरं पुण्यं वारुणी सरितां वरा ॥१२९॥

आज्ञा प्राप्तकर सिद्धों से प्रार्थित हो वह देवर्षियों से सेवित मानसक्षेत्र में प्रविष्ट हुई । माहेन्द्री के मूलभाग में किन्नरों और नागों से सेवित महादेव प्रतिष्ठित हैं। उनके दर्शन से मानव पातकरहित होकर बारह पूर्व पुरुषों सहित शिवलोक प्राप्त करते हैं। तब माहेन्द्री के मध्य में ब्रह्मर्षियों और शिव-गणों से सेवित 'पाशुपत' नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करने से मनुष्य को शिवसायुज्य लाभ होता है। वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार आगे बढ़ती हुई वह नदी अनेक तीर्थों से संयुक्त होती हुई दूसरी स्वधारूपी हिमानी (फेन) के समान मानसरोवर में मिल गई। माहेन्द्री के संगम में 'महेन्द्रेश' महादेव की पूजा करने से मनुष्य शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् मानसक्षेत्र में वारुणी नदी है। ब्रह्माजी से प्रेरित हो मान्धाता के प्रदर्शित मार्ग से वह ठंडे तथा पीले जल वाली नदी मानसरोवर की ओर गई। हे देवेश्वरि ! उसके मध्य में वरुण का वास है। उसके पूजन करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। वहाँ वारुणी के मध्य में 'सूर्यकुण्ड' है। उसमें स्नान कर मनुष्य सवितृमण्डल मध्यगामी (सूर्य) हो जाता है। मैंने तुम से यह सच कहा है। फिर वहीं वारुणी के मध्यभाग में 'चक्रतीर्थ' है। वहाँ स्नान कर मनुष्य विष्णुलोक में सम्मानित होता है। वारुणी के बाईं ओर 'क्रौञ्च' नामक बड़ी गुफा है। वहाँ 'धूर्जटि' महादेव प्रतिष्ठित हैं। उनकी पूजा कर मनुष्य मेरी कृपा से शिवलोक प्राप्त करता है। तब नदियों में श्रेष्ठ 'वारुणी' नदी भँवरियाँ डालती हुई मानसरोवर में मिल जाती है। वहाँ संगमस्थल पर 'वरुणेश'

---

१. 'ततो माहेन्द्रिमध्ये वै' इति 'घ' पुस्तके । २. 'महेन्द्री' इति 'घ' पुस्तके ।

३. 'ब्रह्मर्षिगणसेवितम्' इति 'क' पुस्तके पाठः । तदनन्तरम् "नाम्ना पाशुपतं नाम शिवकिङ्कर-सेवितम् । तत्र स्नात्वा च मनुजो मम सायुज्यमश्नुते ।" इत्यधिकः श्लोको वर्तते ।

संमिलन्मृगशावाक्षि तोयावर्तसमाकुला। तत्र सम्पूज्य मनुजा वरुणेशं महेश्वरम् ॥
मम सायुज्यतां यान्ति महेन्द्रेण प्रपूजिताः ॥ १३० ॥

ततो मानसरे देवि वह्नितीर्थमिति स्मृतम् । पावनं स्थिरचित्तानां मानवानां दुरात्मनाम् ।१३१।
तत्र स्नात्वा च मनुजो वह्नितीर्थे महेश्वरि । सप्तजन्मार्जितान् पापान् निमज्ज्य क्षालितं जनः ।
करोति मृगशावाक्षि सत्यं सत्यं न संशयः । ततो मानसरे देवि महेन्द्रगिरिसम्भवा ॥ १३३ ॥
स्वातिनाम्ना सरिच्छ्रेष्ठा देवर्षिगणसेविता । मनसा मानसक्षेत्रे ब्रह्मणा चोपदेशिता ।।१३४।।
सूर्यवंशप्रदीपेन दृष्टमार्गा सरिद्वरा । पुलस्त्यस्य महायज्ञे समाहूता महर्षिभिः ।।१३५।।
ययौ मानसरे देवि यत्र हंससरोवरम्[1] । तस्यां निमज्ज्य मनुजो दुष्कृतानां शतं महत् ।।१३६।।
विहाय देवलोके वै सुचिरं वसति ध्रुवम् । तस्या मूले महादेवि त्वमेव पूजिता ह्यसि ।।१३७।।
त्वां दृष्ट्वा मानवः सम्यक् ऋद्धिं विन्दति भूतले । स्वात्यां तीर्थाण्यनेकानि सन्ति वै शिववल्लभे ।
तेषां हि नामसंख्यानं न शक्नोमि यतव्रते । स्वातिमानसयोः सङ्गे पुण्यं हंससरोवरम् ।।१३९।।
निमज्ज्य मानवः सम्यक् पूज्यते देववद् भुवि । यत्र हंसः कलत्रेण सह पुत्रान्वितोऽपि हि ।।१४०
स्मृत्वा वसिष्ठगीतं वै निर्ममो निरहंकृतः । संन्यस्य विधिवद् देवि ! जगाम ब्रह्मणः पदम् ।।

का पूजन कर मनुष्य महेन्द्र से पूजित हो शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। तदनन्तर मानसरोवर में 'वह्नि' तीर्थ है। वह स्थिरचित्त तथा दुरात्माओं को पवित्र कर देता है। वहाँ स्नान करने पर मनुष्य सात जन्मों के पापों से निःसन्देह मुक्त हो जाता है। उसके बाद महेन्द्रगिरि से निकली हुई देवर्षियों से सेवित 'स्वाति' नाम की नदी है। वह ब्रह्मा से प्रेरित होती हुई सूर्यवंश के दीपक मान्धाता के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से बड़े चाव से मानसरोवर में प्रविष्ट हुई है। वह पुलस्त्य[2] के महायज्ञ में बुलाई गई थी। स्वाति में स्नान करने से मनुष्य पाप-विमुक्त हो चिरकालपर्यन्त देवलोक में वास करता है। हे महादेवि ! उसके मूल में तुम पूजित हो। तुम्हारा दर्शन कर मनुष्य इस भूमण्डल पर सम्पन्नता प्राप्त करता है। हे पार्वति ! स्वाती नदी में अनेक तीर्थ हैं। मैं उनके नाम और गणना कराने में असमर्थ हूँ। स्वाति और मानसरोवर के संगम में 'हंससरोवर' है। वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य पृथ्वी पर देवों के समान पूजा जाता है। यहीं

---

१. 'सरोवरः' इति 'क' पुस्तके।

२. यह ऋषि ब्रह्मा के दस मानस-पुत्रों में से एक हैं। इनका जन्म ब्रह्मा के कण्ठदेशस्थ वायु (= उदान) से हुआ था। इनकी गणना सप्त-ऋषियों तथा प्रजापतियों में की गई है। ये विश्रवा के पिता तथा कुबेर एवं रावण के पितामह थे। विष्णुपुराणानुसार ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट आदिपुराण का इन्होंने प्रचार किया था। यह मधु (चैत्र) मास में सौरगणस्थ धाता आदि अन्य छहों के साथ सूर्यरथ पर अधिष्ठित रहते हैं—"मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् कालरूपधृक्। लोकतन्त्राय चरति पृथक् द्वादशभिर्गणैः ॥ धाता, कृतस्थली, हेतिः, वासुकी, रथकृत् मुने। पुलस्त्यः, तुम्बुरुः, इति मधुमासं नयन्त्यमी" ॥ (भागवत १२।३२-३३)। ये देवदारुवन के महर्षि थे। इनके अग्रज पुलह माने गए हैं। किन्तु वायुपुराण (२५-८२) के अनुसार ये अग्रज थे।

श्रीदेव्युवाच—

कथं सरोवरे पुण्ये हंसो वै परमेश्वर। संन्यस्य स कथं धन्यो प्राप ब्रह्मपदं शुभम् ॥१४२॥

ईश्वर उवाच—

द्वापरादौ महादेवि बभूव द्विजनायकः। वेगवान् नाम वै हंसो धर्मात्मा धातृवल्लभः ॥१४३॥
स कदाचिन्महाभागे पुत्रकलत्रपोषकः। जगाम मानसक्षेत्रे[1] पुत्रदारान्वितोऽपि[2] सः ॥१४४॥
तत्र वृद्धमृषिश्रेष्ठं वसिष्ठं शुभलक्षणम्। ददर्श स महाभागं साक्षाद् द्विजकलाधरम् ॥ १४५ ॥
तं नत्वा स तदा पक्षी वाष्पव्याकुलितेन्द्रियः। पप्रच्छ स ऋषिं देवि कथं मुक्तो भवामि वै ॥
तमुवाच तदा विप्रः प्रहृष्टेनान्तरात्मना। असारभूते संसारे नास्ति सारमयं क्वचित् ॥१४७॥
धर्ममार्गं विना हंस! नान्यमार्गं निषेवय। तेन मुक्तिमवाप्नोषि तं वाञ्छन्ति यतव्रताः ॥१४८

कलत्रपुत्रादिभिरन्विता जनाः कथं हि सद्धर्मपथं व्रजन्ति वै।
तस्मात् कुटुम्बं सुविहाय वै खग! व्रजस्व धर्मस्थपथं सुनिर्मलम् ॥ १४९ ॥

पुत्रदारादिभिर्भूतं सागरं ये त्यजन्ति हि। ते यान्ति विष्णुभुवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१५०॥
इति गीतं वसिष्ठस्य श्रुत्वा हंसो महामनाः[3]। विहाय पुत्रदारादीन् तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥१५१
ब्रह्माणं स महादेवि पूजयामास वै तदा। ततो ब्रह्मर्षिभिः सार्धं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१५२॥

पर हंस' अपने स्त्रीकलत्रादि समेत वसिष्ठ-गीत का स्मरण करते हुए माया-मोह रहित हो संन्यास ग्रहण कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ ॥ २३–१४१ ॥

पार्वती ने कहा—हे परमेश्वर! हंस ने उस पवित्र सरोवर में संन्यास ग्रहण कर ब्रह्म-पद कैसे प्राप्त किया? १४२ ॥

शिव ने उत्तर दिया—द्वापर के आदि में धर्मशील एवं विधाता का प्रिय वेगवान् नाम का पक्षियों में श्रेष्ठ एक हंस[4] था। वह अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन-पोषण करता हुआ किसी समय उनके साथ मानसक्षेत्र की ओर गया। वहाँ उसने शुभ-लक्षण-सम्पन्न प्रत्यक्ष वृद्ध ब्रह्मर्षि वसिष्ठ को देखा। हे देवि! आँखों में आँसू भरे हुए उस पक्षी (हंस) ने उन्हें प्रणाम कर उनसे पूछा कि 'मैं कैसे मुक्त होउँगा'? वसिष्ठ ने प्रसन्न होकर उस पक्षी से कहा कि 'इस असार संसार में सारभूत कुछ भी नहीं है। हे हंस! धर्ममार्ग को छोड़कर किसी दूसरे मार्ग का अवलम्ब न लो। उसी से मुक्ति मिलती है। व्रती लोग उसी मुक्ति के इच्छुक रहते हैं। स्त्री-पुत्रों से घिरे हुए लोग मुक्ति कैसे पा सकते हैं? अतः कुटुम्ब से विरत होकर, हे पक्षी! शुद्ध धर्ममार्ग का अनुसरण करो। पुत्र-कलत्रादि से अभिभूत भवसागर को जो लोग छोड़ देते हैं, वे ही बार-बार जन्म लेने से मुक्त होकर विष्णुलोक प्राप्त करते हैं'। वसिष्ठ का यह कथन सुनकर हंस ने पुत्र-कलत्रादि का त्याग कर कठोर तपश्चर्या की। उसने ब्रह्मा की पूजा

---

१. 'मानसक्षेत्रम्' इति 'घ' पुस्तके।

२. 'पुत्रदारान्वितो हि सः' इति 'क' पुस्तके।

३. 'महात्मनः' इति 'ग' पुस्तके।

४. क—भागवत के अनुसार 'हंस' एक द्युतिमान् पक्षी है। इसको ब्रह्मा ने शाश्वत धर्म का उपदेश दिया था। इसने अपने पुत्र शङ्खपद को उक्त धर्म की शिक्षा दी थी।—महाभारत शान्ति ३४८।३६–३७। ख—मेरु के उत्तर में स्थित एक पर्वत का नाम भी 'हंस' है।

तस्मै प्रदर्शयामास दर्शनं लोकनायकः । तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय बाष्पव्याकुलितेन्द्रियः ।।
तुष्टाव प्रणतो[1] भूत्वा ब्रह्माणं देवपूजितम् ।। १५३ ।।

हंस उवाच—

नमो नमस्ते हरिवल्लभाय हरिप्रपूज्याय महाभुजाय ।
चतुर्मुखाय सुमुखष्टुताय तस्मै विधात्रे कमलासनाय ।। १५४ ।।
प्रजापतीनां पतये नमस्ते वेदान्तवेद्याय नमो नमस्ते ।
महेन्द्रसूर्यादिभिस्संस्तुताय तस्मै विधात्रे प्रणमामि तुभ्यम् ।। १५५ ।।

ईश्वर उवाच—

इति हंसेरितं पुण्यं श्रावं श्रुत्वा पितामहः । उवाच वदतां श्रेष्ठश्चातिगम्भीरया गिरा ।।१५६।।

ब्रह्मोवाच—

सुप्रीतोस्म्यद्य ते वत्स तपसा च स्तवेन च । वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ।।१५७।।

ईश्वर उवाच—

ततो वव्रे विधातारं स हंसस्तुष्टमानसः । निवासं ब्रह्मलोके वै पुत्रपौत्रसमन्वितः ।।१५८।।
पुनरेव विधातारं स हंसः शिववल्लभे । मानुषाणामदृश्यत्वं कलौ हंसा भवन्त्विति ।।१५९।।
तथेत्युक्त्वा तदा ब्रह्मा ब्रह्मर्षिगणसेवितः । जगाम ब्रह्मभुवनं[2] सिद्धगन्धर्वसेवितम् ।।१६०।।
स कलत्रान्वितो हंसो विमानमधिरुह्य वै । ब्रह्मलोकं जगामाशु पूजितः सिद्धनायकैः ।।१६१।।
ततः प्रभृति वै देवि हंसान् वै पापकारिणः । न पश्यन्ति महादेवि जना भूमण्डले क्वचित् ।।

की। तब लोकपितामह ब्रह्मा ने ब्रह्मर्षियों सहित उसे दर्शन दिया। फिर सहसा उठते हुए गद्गद होकर प्रसन्नता के साथ उसने ब्रह्मा को प्रणाम किया ।। १४३-१५३ ।।

हंस ने कहा—विष्णु के प्रिय एवं पूज्य, कमल पर विराजमान तथा विशाल भुजा वाले एवं गणेश के स्तुत्य, चतुर्मुख ब्रह्मा को मेरा प्रणाम है। आप प्रजापतियों के अग्रणी तथा वेदान्तज्ञ हैं। आप को मेरा नमस्कार है। महेन्द्र एवं सूर्य आदि देवताओं के स्तुत्य आप विधाता को मैं प्रणाम करता हूँ ।। १५४-१५५ ।।

(तब) शिव बोले—इस प्रकार हंस के द्वारा पुण्यशील स्तुति की जाने पर ब्रह्मा गम्भीर वाणी से बोले ।। १५६ ।।

ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र ! मैं तुम्हारी तपश्चर्या तथा स्तुति से प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो ।। १५७ ।।

(तब) शिव ने (पार्वती से पुनः) कहा—(ब्रह्मा की वाणी को सुनकर) प्रसन्न मन से हंस ने ब्रह्मा से यह वर माँगा कि 'पुत्र-पौत्रों सहित मैं ब्रह्मलोक में निवास करूँ'। हे पार्वति ! तत्पश्चात् दूसरा वर माँगा कि 'कलियुग में हंस मानवों के लिये अदृश्य हो जायँ'। ब्रह्मर्षियों से पूज्य ब्रह्मा 'ऐसा ही हो' कहकर सिद्ध-गन्धर्वादि से सेवित ब्रह्मलोक को प्रस्थित हुए। वह हंस भी सकुटुम्ब श्रेष्ठ सिद्धों से पूजित ब्रह्मलोक को गया। हे पार्वति ! तभी से पापियों को

---

१. 'प्रयतो' इति 'ङ' पुस्तके ।
२. 'ब्रह्मभवनम्' इति 'क' पुस्तके ।

इत्येतत् कथितं देवि हंसाख्यानं सुविस्तरम् । स कलत्रान्वितो हंसो यथा ब्रह्मभुवं गतः ॥१६३॥
तस्मिन् हंससरे स्नात्वा सन्तर्प्य च पितॄन् स्वकान् । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥
ततो ब्रह्मकपालाख्ये तीर्थे पिण्डप्रदानतः । समुद्धरन्ति वै मर्त्याः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥१६५॥
अपि पातकसाहस्रैः संप्लुतोऽपि महेश्वरि । निमज्ज्य हंसतीर्थे वै शुद्धो भवति मानवः ॥१६६॥
तस्मिन् हंससरे स्नात्वा ककुत्स्थो नाम वै नृपः । ममैव पदवीं पुण्यां प्राप्तवान् शंसितव्रते ॥
हंसतीर्थात् परं तीर्थं न पश्यामि महेश्वरि । चत्वारिंशत्सहस्राणि सन्ति तीर्थानि मानसे ॥
प्राधान्येन महादेवि व्याख्यातानि न संशयः । चतुर्दश महानद्यो याभिः सम्पूरितं सरः ॥१६९
पुण्यतीर्थान्विताः सर्वाः सर्वे पुण्यजलाशयाः । कथिता मृगशावाक्षि मूलैर्बहुभिरन्विताः ॥१७०
तथैव गिरयः पुण्याः सप्त सप्तर्षयो यथा । गुहाभिर्बहुभिर्युक्ता यैः पुण्यैः परिवेष्टितः ॥१७१
सरोवरस्य तीर्थानां माहात्म्यं कथितं मया । स्वर्णहंसस्य व्याख्यानं तथा मानसरस्य च ॥१७२
कथितं मृगशावाक्षि किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि । येनेदं मानसो नाम खण्डो वै समुदाहृतः ॥१७३॥
यस्माद्धि सरितः सर्वाः संभूताः शिववल्लभे । पुण्ये मानसखण्डे वै सुरगन्धर्वसेविते ॥१७४॥
मर्यादालङ्घनं यस्य नास्ति कालत्रयेऽपि हि । तस्य माहात्म्यकथने कः समर्थोऽस्ति मानिनि ॥

पृथ्वी पर हंस दृष्टिगोचर नहीं होते। इस प्रकार पुत्र-कलत्रादि सहित ब्रह्मलोक-प्राप्तियुक्त आख्यान विस्तार के साथ मैंने तुमसे कहा। 'हंससरोवर' में स्नान एवं पितृतर्पण करने से मनुष्य अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर ब्रह्मलोक में निवास कर पूजित होते हैं। हे पार्वति ! हजारों पापों से लिप्त हुआ मानव हंसतीर्थ में स्नान कर पवित्र हो जाता है। उस हंससरोवर में स्नान करने से ककुत्स्थ[1] नामक राजा ब्रह्म-पद को प्राप्त कर सका। हंसतीर्थ से बढ़कर मुझे कोई दूसरा तीर्थ दिखाई नहीं पड़ता। मानसरोवर में चालीस हजार तीर्थ हैं। विशेष तीर्थों का ही मैंने वर्णन किया है। चौदह बड़ी-बड़ी नदियों के जल से यह सरोवर भरा जाता है। वे नदियाँ पवित्र तीर्थों से संयुक्त हैं तथा वे जलाशय भी तीर्थों से जुड़े हुए हैं। हे पार्वति ! मैंने उन (जलाशयों एवं तीर्थों) का मूल स्थानों सहित वर्णन किया है। सप्तर्षियों के समान सात प्रमुख पर्वत भी हैं। वे अनेक गुफाओं से घिरे हुए हैं। सरोवर के तीर्थों, स्वर्णहंस तथा मानसरोवर का भी माहात्म्य मैंने तुम्हें बतला दिया है। तुम और क्या पूछना चाहती हो ? हे पार्वति ! मैंने इस मानसक्षेत्र को तुम्हें विदित करा दिया। इसी (सरोवर) से सभी नदियाँ निकली हैं। देव और गन्धर्वों से सेवित हो इस पवित्र 'मानसखण्ड' में प्रवाहित होती हैं। इसकी

---

१. सूर्यवंशी एक प्रसिद्ध राजा। वाल्मीकीय रामायण में इसे कहीं भगीरथ का पुत्र बतलाया है तो कहीं इक्ष्वाकु का और कहीं सोमदत्त का। भागवत में एक आख्यान इस प्रकार दिया है—'मनु के पुत्र इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु के शशाद और इनके पुत्र पुरञ्जय थे। एक समय देव-दानवों के युद्ध होने पर देवों ने पुरञ्जय से सहायता माँगी। उसने यह शर्त लगाई कि देवराज के मेरा वाहन बनने पर सहायता दी जा सकती है। विष्णु के कहने पर इन्द्र ने वृषभ का रूप धारण किया। ककुद पर बैठने के कारण इन्हें ककुत्स्थ कहा गया। देखें—भागवत ९-६-१२—'पुरञ्जयस्तस्य सुत। इन्द्रवाह इतीरितः। ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः'॥

येनेयं साविता भूमिः शतयोजनविस्तृता । येन कैलासशिखरः सेव्यतेऽहर्निशं शुभे ॥१७६॥
प्राप्ते कलियुगे घोरे पुण्यो मानसरोवरः । पर्वतैः सावितो भूत्वा क्षीणत्वमुपयास्यति ॥१७७॥
इत्येतत्सरमाहात्म्यं मया ते व्याहृतं सति । तीर्थैरनेकसाहस्रैरन्वित पातकान्तकम् ॥१७८॥
यः शृणोति महाभागे वाचयेद्वा समाहितः । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥१७९॥

॥इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरोवरमाहात्म्यं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

मर्यादा (सीमा) का उल्लंघन त्रिकाल में भी संभव नहीं। अतः उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? जिसने सौ योजन भूमि को आच्छादित किया है, तथा हे पार्वति ! जो रात-दिन कैलास पर्वत की सेवा करता है, वही मानसरोवर कलियुग के आन पर पर्वतों से आच्छादित होकर क्षीण हो जायगा। अनेक तीर्थों सहित एवं पापों के विनाशक सरोवर का माहात्म्य मैंने तुमसे कह दिया है। जो इसके माहात्म्य को सुनेगा या कहेगा वह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर विष्णुलोक में सम्मानित होगा ॥ १५८-१७९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में मानसरोवरमाहात्म्य नामक
अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

१९

दत्त उवाच—

विकसद्वदनाम्भोजा गौरी गौरीश्वरं प्रभुम्। पुनरेवं महाभागा पप्रच्छातिकुतूहलात् ॥१॥

देव्युवाच—

सरोवरस्य माहात्म्यं त्वत्प्रसादान्मया श्रुतम्। कुत्र ते देव देवेश वासः समनुवर्णितः[1] ॥२॥
एतद्वै श्रोतुमिच्छामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच—

शृणुष्व मम चार्वङ्गि वचनं समुदाहृतम्। स्थानेषु च सुपुण्येषु वसामि वसुधातले ॥४॥
तथाप्येकं महाभागे कथयामि स्थलं महत्। यत्र मे विद्यते वासस्त्वया सह न संशयः ॥५॥
लङ्कामानसयोर्मध्ये गुहा याः समुदाहृताः। तासां मध्ये महाभागे वरिष्ठैका महागुहा ॥६॥
शूलप्रियेति विख्याता सचान्द्रेव कुमुद्वती। तस्यां वसामि वै भद्रे त्वया सह न संशयः ॥७॥
वह्नितेजोपमं मां वै तत्र पश्यन्ति किन्नराः। तस्मान्नान्यस्थले देवि वासो मे विद्यते क्वचित् ॥
तत्र ये मां प्रपश्यन्ति दिव्यशूलधरं हरम्। तेषां मृत्युभयं घोरं नास्ति नास्ति भुवः स्थले ॥९॥
दर्शनादत्र मे देवि वाजिमेधसहस्रजम्। प्राप्नुवन्ति फलं पुण्यं तस्मात् कोऽन्यतमः स्थलः ।१०।
यस्या द्वारं महाभागे एकं कैलासमूर्धनि। सम्प्राप्य कौतुकाविष्टः पुष्पदन्तो महामतिः ॥११॥
प्रविश्य तां गुहां पुण्यां ममाग्रे स ययौ पुरा। स दृष्ट्वा महिमानं मे प्राप भक्तिमनुत्तमाम् ॥

दत्तात्रेय ने कहा—पार्वती ने प्रसन्नमुख हो कुतूहलवश शिवजी से पुनः पूछना आरम्भ किया ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा—आप की कृपा से मैंने सरोवर का माहात्म्य तो जान लिया है। अब हे देवदेवेश ! मैं यह जानना चाहती हूँ कि वहाँ पर आप का वास कहाँ है ? कृपया बतलायें ॥ २-३ ॥

शिवजी ने बोलना प्रारम्भ किया—हे सुन्दराङ्गी पार्वति ! मेरी बात सुनो। मैं भूमण्डल पर पवित्र स्थानों में रहता हूँ। महाभागे ! तो भी मैं एक विशेष स्थान बतलाना चाहता हूँ, जहाँ निश्चयरूप से मैं तुम्हारे साथ रहता हूँ। सुनो। लङ्कासर और मानसरोवर के मध्य एक बड़ी गुफा 'शूलप्रिया' नाम से विख्यात है। मैं तुम्हारे साथ वहीं रहता हूँ। वहाँ मुझे किन्नरगण अग्नि के समान तेजःस्वरूप देखते हैं। इसके अतिरिक्त मेरा वास अन्यत्र नहीं है। जो मुझे वहाँ दिव्यशूलधारी देखते हैं, उन्हें पृथ्वी पर मृत्युभय व्याप्त नहीं होता। मेरे दर्शन से हजारों अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता हैं। इससे बढ़कर और दूसरा स्थल कौन हो सकता है ? उसका एक द्वार कैलास के शिखर पर है। गुफा के उस द्वार से कुतूहलवश महामति पुष्पदन्त[2] प्रविष्ट हो मेरे पास आया। मेरी महत्ता को देख मेरा भक्त हो गया ।४-१२।

---

१. 'समनुवर्णय' इति 'क' पुस्तके।

२. (क) शिव का एक अनुचर गन्धर्व, जिसने 'महिम्नस्तोत्र' लिखा था। एक बार शिव का निर्माल्य लाँघ जाने के कारण शिव ने शाप द्वारा उसका आकाशगमन रोक दिया था। महिम्नस्तोत्र के पाठ से वह शापमुक्त हुआ था। ख—अन्यत्र पार्वती द्वारा कुमार कार्तिकेय को दिये गए ३ अनुचरों में से एक अनुचर का नाम।

देव्युवाच—

स कथं पुष्पदन्तो वै प्राप पुण्यां महागुहाम् । कथं ते महिमानं वै दृष्ट्वा भक्तिमवाप्तवान् ॥
कथं कैलासमध्ये वै गुहाद्वारमभूत् प्रभो । लङ्का-मानसयोर्मध्ये कथं सा वर्ण्यते गुहा ॥१४॥

*ईश्वर उवाच—

शृणुष्व तां गुहां देवि ब्रह्मा लोकपितामहः । विरच्य विविधद्वारैः संवृतां स्फाटिकीं यथा ।१५।
लङ्कामानसयोर्मध्ये द्वारमेकं विरच्य वै । एकं कैलासमध्यं वै विरच्य स प्रजापतिः ॥१६॥
मां वै विज्ञापयामास निवासाय महामतिः । सोऽहं तद्वचनाद्देवि त्वया सह गुहां तदा ॥१७॥
प्राप्तवानस्मि वै सद्यो नन्दिकेन समन्वितः । दृष्ट्वा पुण्यां महाभीमां गुहां चन्द्रनिभां तदा ॥
निवासं रुरुचे तत्र त्वया सह महेश्वरि । ततः कालेन महता पुष्पदन्तो महामनाः ॥१९॥
विजहार तटे रम्ये मन्दाकिन्या महेश्वरि । ततः कैलासशिखरे विचरन् स महामतिः ॥२०॥
ददर्श स गुहाद्वारं रचितं पद्मयोनिना । द्वारे तस्मिन् महादेवि गन्धर्वाधिपतिस्तदा ॥२१॥
प्रविवेश महाभाग कौतुकाविष्टमानसः । परित्यज्य गुहाः सर्वा गुहाद्वारान् विलङ्घ्य सः॥२२
विहायान्यान् शिवगणान्[1] मामेव शरणं गतः । ततो ददर्श मां देवि ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
सहस्रादित्यसंकाशं तुष्टाव प्रणताञ्जलिः ॥ २४ ॥

पुष्पदन्त उवाच—

नमो देवाधिदेवाय विरूपाक्षाय ते नमः । कपर्दिने नमस्तुभ्यं शितिकण्ठाय ते नमः ॥२५॥

पार्वती ने फिर पूछा—वह पुष्पदन्त किस प्रकार गुफा में प्रविष्ट हुआ तथा आपकी महिमा से प्रभावित हो आपका भक्त कैसे हो गया ? तथा हे प्रभो ! कैलास के मध्य गुहा का द्वार कैसे बना ? लंकासर और मानसरोवर के मध्य उस गुफा का वर्णन किस प्रकार किया गया है ? ॥ १३–१४ ॥

शिवजी ने उत्तर दिया—देवि ! सुनो । सब के पितामह ब्रह्मा ने अनेक द्वारों से ढकी हुई स्फटिकमयी इस गुहा को निर्मित कर एक द्वार तो लङ्कासर और मानसरोवर के मध्य बनाया तथा दूसरा द्वार कैलास के शिखर पर बनाया । तत्पश्चात् बुद्धिशाली ब्रह्मा ने वहाँ रहने का मुझसे आग्रह किया । हे पार्वति ! उनके कहने से तत्काल नन्दिकेश्वर के साथ तुम्हें लेकर मैंने वहाँ प्रवेश किया । चन्द्रमा के समान शुभ्र एवं विशाल तथा पवित्र उस गुफा को देखकर तुम्हारे साथ वहाँ रहने की मेरे मन में इच्छा हुई । बहुत समय व्यतीत होने पर महा-मना पुष्पदन्त ने मन्दाकिनी के तट पर विचरण किया । तत्पश्चात् कैलासशिखर पर विचरण करते हुए पुष्पदन्त (महामति) ने ब्रह्मा द्वारा निर्मित उस गुफा का द्वार देखा । महादेवि ! गन्धर्वों का अधिपति पुष्पदन्त आश्चर्यचकित हो उस गुफा के दरवाजे से भीतर गया । वह अन्य सब गुफाओं को छोड़ तथा गुफा के दरवाजों को लाँघकर अन्य शिवगणों को भी छोड़ता हुआ मेरी शरण में आया । सहस्रों सूर्य के समान एवं ऊपर उठती हुई अग्नि की ज्वाला के समान (तेजोमय) मुझे देख वह हाथ जोड़कर मेरी स्तुति करने लगा ॥ १५–२४ ॥

---

* कथानक की दृष्टि से यह अपेक्षित है । कदाचित् लेखक के प्रमादवश छूट गया हो ।

१. 'सुरगणान्' इति 'ग' पुस्तके ।

भवाय भवबीजाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे । भूताय भूतनाथाय नागहाराय ते नमः ।।२६।।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गमौलिमालाधराय च । कालाय कालकल्पाय नमः कालान्तकाय च ।२७।
महाभैरवरूपाय भैरवान्तकराय च । महादेवाय देवाय देवदेवाय ते नमः ।।२८।।
पृथिवी-वायु-राकाश-महिम्ना येन व्यापितम् । तस्मै शिवाय शान्ताय हराय च नमो नमः ।।

ईश्वर उवाच—

इति तेन महादेवि संस्तुतस्तुषितोऽस्म्यहम् । मया तस्मै महापुण्या दर्शिताश्चाष्टसिद्धयः ।।३०।।
वरेण ते तदा देवि भक्तिः समुपदेशिता । बभूव मन्नियुक्तेन पुष्पदन्तस्य सत्कृता ।।३१।।
पुष्पदन्तोऽपि तत्रैव प्रहृष्टेनान्तरात्मना । चिरं निवस्य तां[1] पुण्यां ययौ मानसरोवरम्[2] ।।३२।।
लङ्का-मानसयोर्मध्ये दृष्ट्वा द्वारं सुयन्त्रितम् । तस्मिन् द्वारे स्वनाम्ना वै लिङ्गं संस्थाप्य मे शुभे।
निमज्ज्य मानसक्षेत्रे ययौ निजगृहं प्रति । मत्तः सिद्धिमनुप्राप्य मोदते सुचिरं सति ।।३४।।
पुष्पदन्तस्य चाख्यानं मया ते कथितं सति । यथा सिद्धिमनुप्राप्य मोदते निजमन्दिरे ।।३५।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शूलगुहामाहात्म्ये पुष्पदन्ताख्यानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ।।

पुष्पदन्त ने कहा—हे देवाधिदेव विरूपाक्ष[3] (त्रिनेत्र), जटाजूटधारी (=कपर्दिन्) एवं शितिकण्ठ[4]—आपको मेरा नमस्कार है । हे भव (संसार) के बीजस्वरूप ! सृष्टि, स्थिति तथा उसके अन्तक ! भूतनाथ ! नागमालाधारिन् ! भस्मलगे शरीर वाले, मुण्डमालाधारी, कालस्वरूप, कालकल्प, कालान्तक, महाभैरवरूप, भैरवान्तक, महादेव आदि नामों वाले देवों के भी देव ! आपको मेरा नमस्कार है। पृथ्वी, आकाश और वायु जिसकी महिमा से व्याप्त हैं—ऐसे शिव जो शान्त एवं हर हैं, उनको मेरा बार-बार प्रणाम है ।। २५-२९ ।।

शिवजी ने कहा—हे पार्वति ! इस प्रकार उसकी स्तुति सुनकर मैं प्रसन्न हो गया। मैंने उसे आठों सिद्धियाँ दिखाईं । देवि ! तब तुम्हारे वरदान से मैंने उसे भक्ति का उपदेश दिया । मेरे द्वारा नियोजित उसकी भक्ति सार्थक हुई । पुष्पदन्त भी प्रसन्नचित्त होकर चिरकालपर्यन्त वहाँ रहकर पवित्र मानसरोवर को गया । लङ्कासर और मानसरोवर के बीच सुयन्त्रित द्वार को देख वहीं अपने नाम का शिवलिङ्ग भी स्थापित किया । फिर मानसक्षेत्र में स्नान कर वह अपने घर चला गया । हे पार्वति ! मुझसे सिद्धि प्राप्त कर चिरकाल तक वह सुखी रहा । जिस तरह सिद्धि प्राप्त कर पुष्पदन्त अपने स्थान पर आनन्दित हुआ, उसी आख्यान को मैंने तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया है ।। ३०-३५ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में शूलगुहामाहात्म्यसम्बन्धी
पुष्पदन्ताख्यान नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'चिरं निबद्धताम्' इति 'ग' पुस्तके । 'विनिबद्धस्य ताम्' इति 'क' पुस्तके ।

२. 'मानसरं शुभम्' इति 'ख' पुस्तके ।

३. विषम=तीन संख्या होने के कारण भद्दी आँखों वाला—विरूपे अक्षिणी यस्य । शिवपुराण में शिव की ११ मूर्तियों में से एक मूर्ति ऐसी मानी गई है ।

४. नीला है कण्ठ जिनका—शिति=मेचकः (कृष्णवर्णः) कण्ठः यस्य । विषपान करने से गला काला पड़ गया था ।

२०

[1]ईश्वर उवाच—

अथान्यदपि माहात्म्यं शृणुष्व मम वल्लभे । यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१॥
तादृशं हि स्थलं देवि न पश्यामि भुवः स्थले । यत्र मच्छिरसि पुण्या सुरभी[2] कामरूपिणी ॥२॥
अभिषिञ्चते निजस्तन्यैः कृत्वा धारां सहस्रशः । तत्र तां सुरभीं देवीं सम्पूज्य गिरिकन्यके ।३।
मनोऽभिलषितां सिद्धिं प्राप्नुवन्ति जना भुवि । तत्र मे विद्यते वासो नान्यस्थाने महेश्वरि ॥४॥
तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत् मामेव नहि संशयः । मन्दवारप्रदोषे वै सेवन्ते त्रिदिवेश्वरि ॥५॥
मां पूज्य विधिवत्तत्र त्वया सह महेश्वरि । निष्क्रम्य च गुहाद्वारे पुष्पदन्तेश्वरं व्रजेत् ॥६॥
पुष्पदन्तेश्वरं तत्र सम्पूज्य परमेश्वरि । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७॥
ततो गच्छेन्महादेवि देवीं लोकेश्वरीं शुभाम् । पूजितां देवगन्धर्वैर्मानवैश्च महेश्वरीम् ॥८॥
सम्पूज्य मृगशावाक्षि सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो गच्छेन्महादेवि शूलपाणिं हरं व्रजेत् ॥९॥
शूलपाणिं हरं तत्र पूज्य पापैः प्रमुच्यते । इत्येतत्कथितं देवि गुहाया वर्णनं शुभम् ॥१०॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सुखसम्पद्विवर्धनम् ।

दत्त उवाच—

इति श्रुत्वा महादेवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥११॥
निःश्वासा[3] चाभवद्देवी मेने पूर्णं मनोरथम्[4] । तूष्णीं बभूव प्रणता शिवभक्तिपरायणा ॥१२॥

ईश्वर ने पार्वती से पुनः कहा —प्रिये ! अब और भी माहात्म्य सुनो । जिसके सुनने से प्राणी सब पापों से विमुक्त हो जाते हैं । पृथ्वी पर ऐसा स्थान और नहीं दिखाई देता जहाँ मेरे सिर पर कामरूपिणी सुरभी अपने दूध की हजार धाराओं से अभिषेक करती है । वहाँ उस सुरभि देवी का पूजन कर मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं । पार्वति ! वहीं मेरा वास है, अन्यत्र नहीं । उस स्थान पर तेंतीस देवता विधिपूर्वक भौम-प्रदोष के दिन तुम्हारे साथ मेरी अर्चना करते हैं । वहाँ से निकलकर गुफा द्वार में 'पुष्पदन्तेश्वर' की ओर जाना चाहिये । उनका पूजन करने से मनुष्य वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है । हे महादेवि ! तत्पश्चात् देवों, गन्धर्वों और मानवों से पूजित 'लोकेश्वरी' की ओर जायें । उनका पूजन कर मानव सब पापों से छुटकारा पा लेता है । तदनन्तर 'शूलपाणि' महादेव के पास जाए तथा उनका पूजन कर पापों से मुक्त हो जाये । इस प्रकार मैंने गुफा का माहात्म्य बतलाया । वह आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सुख-सम्पत्ति को बढ़ाने वाली है ॥ १–१० ॥

दत्तात्रेय ने कहा—इस प्रकार शिवजी की बातें सुनकर पार्वती सन्तुष्ट-मन से अपने को पूर्ण-मनोरथ जान स्तब्ध हो चुप हो गईं तथा विनयभाव से शिवभक्ति में लगी रहीं । (धन्य-

---

१. भगवान् शंकर का पर्यायवाची शब्द । कश्यप से सुरभि में उत्पन्न ११ रुद्रों में से एक रुद्र, जिनका वासस्थान ब्रह्मलोक के सामने शिवपुर है । यह त्रिमूर्ति के अधिपति हैं ।

२. समुद्रमन्थन से प्राप्त कामधेनु । इसे दक्ष की पुत्री भी कहा गया है । देवी सुरभि के गर्भ से कश्यप द्वारा नन्दिनी का जन्म हुआ । महर्षि वसिष्ठ ने अपनी होमधेनु के रूप में इसे प्राप्त किया था ।

३. 'निश्वसा' इति 'ल' पुस्तके ।   ४. 'पूर्णमनोरथम्' इति 'ल' पुस्तके ।

शिवेन कथितं पुण्यं मया ते समुदाहृतम् । यथावत् कथितं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१३।।
यस्माद्धि सुमहापुण्याः सरितः सम्भवाः किल । येनेदं मानसं नाम खण्डं तत् समुदाहृतम् ।।१४।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरोवरमाहात्म्यं नाम विंशतितमोऽध्यायः ।।

त्सर्ि से कहते हुए) राजन् ! शिवजी से कही गई पावन एवं पापनाशिनी कथा मैंने तुमसे यथावत् कह दी है। मानसरोवर से पुण्यशीला अनेक महा नदियाँ निकली हैं। उस से संलग्न होने के कारण इस भू-भाग का नाम भी 'मानस-खण्ड' पड़ा है ।। ११-१४ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में सरोवरमाहात्म्य नामक

बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

२१

धन्वन्तरिरुवाच—

सरोवरस्य माहात्म्यं कथितं योगिसत्तम। सर्वपापप्रशमनं सर्वकामार्थदं शुभम् ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि खण्डाख्यानं सुविस्तृतम्। तथा खण्डप्रमाणं च श्रोतुमिच्छामि[1] तत्त्वतः।

दत्त उवाच—

शृणुष्व नृपशार्दूल प्रमाणं चातिविस्तृतम्। यथाप्रमाणं तत्त्वेन कथयामि न संशयः ॥३॥
'नन्द-पर्वतमारभ्य यावत् काकगिरिः स्मृतः। तावद्वै मानसः खण्डः ख्यायते नृपसत्तम' ॥४॥
आकरैर्बहुभिर्युक्तो नदीभिः समलङ्कृतः। तस्मिन् खण्डे महाभाग प्रवाहा बहवः स्मृताः ॥५॥
तस्मिंस्तु बहवो राजन् आकरा बहुशः स्मृताः। तत्र ये मानवाः सन्ति प्राणिनो ये सुसंयताः[2]॥
ते सर्वे मानवानां वै प्रपूज्या नात्र संशयः ॥ ६ ॥

राजोवाच—

गिरीणां नामधेयं वै श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। येषु नद्यः समुद्भूता मानसोत्था न संशयः ॥७॥

दत्त उवाच—

नामधेयं महाराज पर्वतानां शृणुष्व वै। शंकरस्यात्मभूतानां पूजितानां न संशयः ॥८॥
नाम्ना नन्दगिरिः पुण्यो यत्र नन्दा महेश्वरी। ततो मानसखण्डे वै पुण्यो द्रोणगिरिः स्मृतः ॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे योगिश्रेष्ठ ! आप के द्वारा वर्णित पापों के विनाशक तथा मनोरथ के पूर्ण करने वाले सरोवर के माहात्म्य को तो मैंने जान लिया। अब मैं विस्तारपूर्वक 'मानसखण्ड' एवं उसके प्रमाण के विषय में अवगत होना चाहता हूँ ॥ १-२ ॥

दत्तात्रेय ने उत्तर दिया—हे राजसिंह ! सुनो। इसका प्रमाण कितना विस्तृत है, मैं इसे बतलाता हूँ। "'नन्दपर्वत' से आरम्भ होकर 'काकगिरि' पर्यन्त भूभाग 'मानसखण्ड' कहा गया है"। वह बहुत खानों से युक्त है तथा नदियों से अलंकृत है। हे महाभाग ! उस खण्ड में बहुत से जल-स्रोत तथा धातुओं की खानें हैं। वहाँ के निवासी बड़े संयत हैं तथा मानवों से सम्मानित हैं ॥ ३-६ ॥

यह सुन राजा (धन्वन्तरि) बोले—अब मैं उन पर्वतों का नाम सुनना चाहता हूँ, जिनसे अनेक नदियाँ निकली हैं। वे निःसन्देह मानसरोवर से ही उद्गत हुई हैं ॥ ७ ॥

दत्तात्रेय ने उनका समाधान करना प्रारम्भ किया—राजन् ! आप उन पर्वतों का नाम सुनें। वे निःसन्देह भगवान् शङ्कर के आत्मस्वरूप एवं सबसे पूजित हैं। सर्वप्रथम पवित्र 'नन्दगिरि' है[3]। वहाँ महेश्वरी 'नन्दा' विराजमान हैं। तत्पश्चात् मानसखण्ड में पुण्यशील

---

१. 'श्रोतुमिच्छाम्यसंशयम्' इति 'क'। 'ग' पुस्तके तु 'तत्त्वतः' इत्येवम्।

२. 'प्राणिनोऽपि सुसंयताः' इति 'क' पुस्तके। 'ग' पुस्तके —'प्राणिनो ये सुयन्त्रिताः'।

३. सुप्रसिद्ध 'नन्दाघुंटी' (नन्दालाट)—कूर्मांचल एवं गढ़वाल की सीमा का मध्यवर्ती पर्वत। 'नन्दादेवी' कूर्मांचल की राष्ट्रशक्ति के रूप में पूजित हैं। नन्दा के ही चरणों पर अल्मोड़ा नगरी प्रतिष्ठित है।

महौषधिसमाकीर्णः सिद्धगन्धर्वसेवितः। ततः पुण्यो महाभाग विद्यते दारुकाननः॥१०॥
यत्र योगीश्वरो देवो पूज्यते नात्र संशयः। परं कूर्माचलो नाम पर्वतः ख्यायते भुवि॥११॥
यत्र वै मानसस्यान्तं वदन्ति मुनयः शुभाः। ततो नागपुरो नाम पर्वतो नृपसत्तम॥१२॥
यत्र सम्पूज्यते नागा वासुकिप्रमुखादयः। ततो दारुगिरिः पुण्यः पूज्यते नात्र संशयः॥१३॥
यत्र सम्पूज्यते देवः पातालभुवनेश्वरः। ततस्तु पावनो नाम पर्वतः सिद्धसेवितः॥१४॥
यत्र संपूज्यते देवः पावनो लोकपावनः। ततः पञ्चशिरो नाम पर्वतः सुरराडिव॥१५॥
राजते नृपशार्दूल साक्षादिव शतक्रतुः। तस्मिन् शिरांसि देवस्य विराजन्ते न संशयः॥१६॥
ततस्तु केतुमान् नाम पर्वतो नृपसत्तम। यत्र सम्पूज्यते देवः केतुमान् नाम नामतः॥१७॥
मल्लिकार्जुननामा[1] वै पर्वतः सुरसेवितः। मल्लिकार्जुनसंज्ञो वै तत्रैव परिपूज्यते[2]॥१८॥
गणनाथेति विख्यातः पर्वतस्तदनन्तरम्। तत्र सम्पूज्यते राजन् गणनाथो न संशयः॥१९॥
ततो दुन्दुकरो नाम पर्वतः समुदाहृतः। ततस्तु चन्द्रमा नाम पर्वतो नृपसत्तम॥२०॥
तत्र सम्पूज्यते देवी सुषुमा नाम नामतः। ततो देवतटो नाम पर्वतः सिद्धसेवितः॥२१॥
यत्र वै शतलिङ्गाख्यो देवः सम्पूज्यते हरः। ततस्तु सुमहापुण्या मालिकासु[3] सुशोभना॥२२॥
यत्र देव्याः पुरः पञ्च पूज्यन्ते त्रिदशैरपि। ततस्तु काकनामा वै पर्वतः समुदाहृतः॥२३॥

'द्रोणपर्वत'[4] है। वह ओषधियों से युक्त एवं सिद्ध-पुरुषों तथा गन्धर्वों से सेवित है। उसके बाद 'दारुकानन'[5] है। वहाँ भगवान् 'योगीश्वर'[6] की पूजा होती है। तब प्रसिद्ध 'कूर्माचल'[7] नामक सुप्रसिद्ध पर्वत है। वहाँ मानस का पर्यवसान बतलाया गया है। राजन्! तब 'नागपुर' नामक पर्वत है[8]। वहाँ वासुकी आदि नागों की पूजा होती है। तत्पश्चात् पुण्यस्थल 'दारुगिरि'[9] है। वहाँ 'पातालभुवनेश्वर' की पूजा होती है। तत्पश्चात् सिद्धों से सेवित 'पावन पर्वत' है। यहाँ लोकपावन 'पावनदेव'[10] की पूजा की जाती है। तब 'पञ्चशिर'[11] नामक पर्वत है। वह इन्द्र के समान सुशोभित है तथा उसके मस्तक पर भगवान् शिव के सिर सुशोभित हैं। तब 'केतुमान्' पर्वत है[12]। वहाँ 'केतुमान्' नामक देव पूजे जाते हैं। फिर देवों से सेवित 'मल्लिकार्जुन' पर्वत है[13]। वहाँ मल्लिकार्जुन की पूजा होती है। तदनन्तर 'गणनाथ'[14] पर्वत में गणनाथ पूजे जाते हैं। फिर 'दुन्दुकर'[15] नामक पर्वत बतलाया गया है। तब 'चन्द्रमा'[16] नामक पर्वत है। वहाँ 'सुषुमा' देवी पूजित हैं। तब 'देवतट'[17] नामक पर्वत पर 'शतलिङ्ग' महादेव पूजित हैं। तत्पश्चात् 'मालिका देवी' का स्थान है[18]। वहाँ देवी की 'पञ्चपुरी'[19] पूजित हैं। फिर

---

१. 'मालिकार्जुननामा' इति 'ग' 'घ' पुस्तकयोः। २. 'किल पूज्यते' इति 'क' पुस्तके। श्लोकस्य पूर्वभागः 'क' पुस्तके नोपलभ्यते, किन्तु सोऽपेक्षित एव। ३. 'मालिकाख्या' इति 'क' पुस्तके। ४. 'दूनागिरि' नाम से प्रसिद्ध है। ५. पट्टी दारुण। ६. सुप्रसिद्ध जागेश्वर मन्दिर। ७. काली-कुमूँ नाम से प्रसिद्ध भूभाग। ८. नाकुरी नामक स्थान। ९. द्वारीधुर। १०. पापनेश्वर। ११. पञ्चचूली। १२. गोरीफाट में एक चोटी का नाम। १३. अस्कोट। १४. इसी नाम से प्रसिद्ध। १५. चौंदास—डुक्‌कू के समीप इसकी स्थिति का अनुमान लगाया जाता है। १६. चन्द्रगिरि। १७. मालिका के बाईं ओर। १८. पञ्चपुर पर्वत के शिखर पर (डोटी)। कर्णाली-वृद्धा नदियों का मध्यभाग। १९. मालिका के दक्षिण में 'पुर' पर्वत।

चक्रपाणेः पदं यत्र पूज्यते नृपसत्तम। ततो जलाशयो नाम पर्वतः समुदाहृतः ॥२४॥
यत्र सम्पूज्यते राजन् देवो जालन्धराह्वयः। ततः स्कन्दगिरिः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः ॥२५॥
यत्र रुद्रस्य तनयः पूज्यते त्रिदशैरपि। ततस्तु त्रिपुरो नाम गिरिर्वै समुदाहृतः ॥२६॥
तत्र वै पूज्यते देवी त्रिपुरा देवपूजिता। ततो गौरीगिरिः पुण्यः शिवाशतनिनादितः ॥२७॥
यत्र सम्पूज्यते देवी गह्वरे गिरिकन्यका। ततो नागगिरिः पुण्यः ततः काकगिरिः स्मृतः ॥२८॥
तत्र सम्पूज्यते काली भवानी लोकसाक्षिणी। एते वै गिरयः पुण्या मया ते समुदाहृताः ॥२९॥
सुपुण्यैर्यैर्महाभाग हिमाद्रिः परिवेष्टितः। येषां संश्रवणात् सद्यो मुक्तिमार्गः प्रलभ्यते ॥३०॥
तत्र गच्छ महीपाल मृत्युस्ते विनशिष्यति। तत्र गत्वा स्वधाभागं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥३१॥

व्यास उवाच—

इति तस्य ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वा काशीपतिस्तदा। मत्वा[1] देवमयं पुण्यं हिमाद्रिमृषिसत्तमाः ॥३२॥
विहाय राज्यं सकलं सलक्ष्मीं विहाय पुत्रानपि वै कलत्रान्।
ययौ हिमाद्रिप्रमुखे स राजा स्वमुक्तिमीप्संस्त्रिदशाधिपो यथा ॥ ३३ ॥
व्रजन्तं तं तदा विप्रा राजानं दशमे पदे। हिमाद्रिकथया पूतमवतीर्णं भुवःस्थले ॥३४॥
प्रतिजग्मुः सुराः सर्वे विमानमधिरुह्य वै। अधिरोप्य विमानाग्रे राजानं त्रिदशाधिपः ॥३५॥
देवानामग्रतः कृत्वा ययौ स्वर्गं द्विजोत्तमाः। ददौ तस्मै स्वधाभागं देवानामधिपस्तदा ॥३६॥

'काकपर्वत'[2] पर चक्रपाणि (विष्णु) के चरण-कमल पूजे जाते हैं। उसके बाद 'जलाशय'[3] नामक पर्वत है। वहाँ 'जालन्धर' नामक देव की पूजा होती है। तदनन्तर देवों और गन्धर्वों से पूजित 'स्कन्दगिरि'[4] है। वहाँ शिवजी के पुत्र कार्तिकेय देवों से पूजित हैं। उसके बाद 'त्रिपुर' नामक पर्वत है[5]। वहाँ त्रिपुरा देवी की पूजा होती है। फिर सैकड़ों श्रृगालों के शब्दों से निनादित 'गौरीगिरि'[6] है। वहाँ गुफा में पार्वती की पूजा होती है। तब 'नागगिरि'[7] और 'काकगिरि'[8] हैं। वहाँ लोकसाक्षिणी काली की पूजा की जाती है। जिन पुण्य पर्वतों का मैंने उल्लेख किया है, वे सब हिमालय से घिरे हुए हैं। उनका नाम सुनने से ही तत्काल मुक्तिमार्ग प्रशस्त हो जाता है। राजन्! आप वहाँ जायें, आप अमरत्व को प्राप्त करेंगे। वहाँ जाकर आपको स्वधाभाग भी मिल जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८-३१ ॥

तब व्यासजी कहने लगे—दत्तात्रेय की वाणी सुनकर काशिराज धन्वन्तरि ने पुण्यप्रद हिमालय को देवमय जानकर अपना राज्य, सम्पत्ति एवं कलत्र-पुत्र-पौत्रों का परित्याग कर मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्र की तरह महा-हिमालय की ओर चले। हिमालय की कथा को सुनने से पवित्रात्मा एवं पृथ्वी पर अवतीर्ण राजा धन्वन्तरि को हिमालय की ओर जाते हुए दसवें पड़ाव पर मैदान में पहुँचा कर विमान पर चढ़ देवगण वापस हुए। तब इन्द्र वहाँ आए। उन्हें विमान पर आगे चढ़ा तथा देवताओं के आगे करते हुए स्वर्ग पहुँचाया।

---

१. 'नत्वा' इति 'ग' पुस्तके। २. नीलगिरि (बागेश्वर)। ३. माळिका-क्षेत्रका 'क्षीरस्थळ'।
४. इसी नाम से प्रसिद्ध। ५. इसी नाम से ज्ञात। ६. गुर्ला मान्धाता के पास 'डोळमाळा'।
७. इसी नाम से ज्ञात। ८. कडवालेख नाम से प्रसिद्ध।

तुष्टुवुः सिद्धगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः। राजानं पूजयामासुः पुष्पवर्षैश्च वै तदा ॥३७॥
इत्येतत्कथितं विप्रा हिमाचलकथोद्भवम्। पुण्यं धर्मपदं[1] शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३८॥
यां सुपुण्यां कथां दिव्यां श्रुत्वा काशीपतिस्तदा। प्राप्तवान् देवभुवनं[2] देहेनानेन सुव्रतः ।३९।
काशिराजस्य चाख्यानं हिमाचलकथां तथा। यः शृणोति महाभागाः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे धन्वन्तरिस्वर्गारोहणं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥

देवेश इन्द्र ने उन्हें स्वधाभाग दिया। सिद्धगन्धर्वादि ने स्तुति की। एवम् अप्सरायें नृत्य करने लगीं। तब पुष्पवृष्टि द्वारा राजा का सम्मान किया गया। हे ब्राह्मणों! हिमालय की कथा से परिपूर्ण, पुण्यधर्मप्रद, पवित्र एवं सब पापों का नाश करने वाली इस कथा से मैंने आप लोगों को अवगत कराया है। इसे ही सुनकर धन्वन्तरि ने निःसन्देह देवलोक प्राप्त किया। हे ऋषियों! काशिराज धन्वन्तरि तथा हिमालय के आख्यान को जो लोग सुनते हैं वे सब पापों से रहित हो जाते हैं ॥ ३२-४० ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में धन्वन्तरि-स्वर्गारोहण
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'पुण्यधर्मपदं शुद्धम्' इति 'क' पुस्तके।
२. 'देवमवनम्' इति 'क' पुस्तके।

२२

सूत उवाच—

व्यासस्य वचनं श्रुत्वा ऋषयस्ते तपोधनाः । व्यासं धर्मार्थतत्त्वज्ञं पप्रच्छुर्नृपसत्तम ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं मानसमाहात्म्यं त्वत्प्रसादात्तपोधन । अधुना श्रोतुमिच्छामः खण्डाख्यानं सुविस्तरम् ॥२॥

व्यास उवाच—

नन्दपर्वतमारभ्य यावत् काकगिरिः स्मृतः । तावद्वै मानसः खण्डः ख्यायते मुनिभिर्द्विजाः॥३॥
संक्षेपेण महाभागाः कथयामि न संशयः । 'पश्चिमाभिमुखः साक्षात् हिमाद्रिः ख्यायते बुधैः'॥४॥
तस्य दक्षिणभागे वै नाम्ना नन्दगिरिः स्मृतः । तत्र नन्दा महादेवी पूज्यते त्रिदशैरपि ॥५॥
तां दृष्ट्वा हि नरैः[1] सम्यक् ऐश्वर्यमिह लभ्यते । नास्ति नन्दासमा देवी भूतले वरदा शुभा ॥
[2]नन्दगोपगृहे देवी अवतीर्य न संशयः । कंसेन पोथिता पुण्या शिलापृष्ठे[3] यतव्रताः ॥७॥
जगामाकाशमार्गेण पुण्यं[4] सा नन्दपर्वतम् । ततः प्रभृति वै विप्राः पूज्यते त्रिदशैरपि ॥८॥
नन्दां सम्पूज्य मनुजाः[5] पातकान् वितरन्ति हि[6] । नन्दाक्षेत्रसमं क्षेत्रं न पश्यामि द्विजोत्तमाः॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं भवति दर्शनात् । तस्मात् कोऽन्यतमो विप्राः क्षेत्रोऽस्ति भुवमण्डले ॥
यत्रैका ब्राह्मणी काचिन् मेनका नाम नामतः । सम्पूज्य योगमायां तां[7] पुंश्चली सा दिवं गता ॥

सूतजी ने कहना आरम्भ किया—राजन् ! महर्षि व्यास की वाणी सुनकर उन तपस्वी ऋषियों ने धर्म और अर्थ के तत्त्ववेत्ता व्यासजी से पुनः कहा ॥ १ ॥

ऋषियों ने कहा—तपोधन ! आपकी कृपा से 'मानस' का माहात्म्य सुना । अब हम विस्तार-सहित 'मानसखण्ड' का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं ॥ २ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! नन्द पर्वत से आरम्भ कर काकगिरि तक मानसखण्ड का विस्तार बतलाया गया है । उसका मैं संक्षेप से निर्वचन कर रहा हूँ । विद्वानों ने महाहिमालय को पश्चिमाभिमुख बतलाया है । उसके दक्षिण की ओर 'नन्दगिरि' है । वहाँ नन्दादेवी देवों से पूजित हो विराजमान हैं । उनके दर्शन-मात्र से मनुष्य ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं । इस भूमण्डल में नन्दा के सदृश वरदायिनी और कोई नहीं है । हे व्रतपरायण मुनियों ! वह देवी नन्दगोप के घर में जन्म लेकर कंस के द्वारा सौभाग्यशाली शिलापृष्ठ पर पटकी जाती हुई आकाश-मार्ग से पुण्यात्मा नन्दपर्वत पर जा पहुँचीं । तब से, हे ऋषिवरों ! वे देवों से भी पूजित हो रही हैं । नन्दा की पूजा कर मनुष्य अपने पापों से रहित हो जाते हैं । नन्दाक्षेत्र के समान कोई दूसरा क्षेत्र अश्वमेध-यज्ञ की तरह फलदायक नहीं है । हे ब्राह्मणों ! तब आप

---

१. 'मानवैः' इति 'क' 'ख' ।   २. 'पुण्यशिलापृष्ठे' इति 'क' 'ख' ।
३. नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा । ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ (मार्कण्डेयपुराणम्) ४. 'विन्ध्यात्' इत्यर्थः । ५. 'मनसा' इति 'ङ' पुस्तके । ६. 'पातकानि तरन्ति हि' इति 'क' पुस्तके । ७. 'वै' इति 'क' ।

ऋषय ऊचुः—

कथं सा ब्राह्मणी ब्रह्मन् पुंश्चली धर्ममास्थिता । कथं ज्ञातवती नन्दां पूजयामास तां कथम् ।१२।

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ पुलस्त्यस्य कुलोद्भवा । बभूव ब्राह्मणी काचिन्मेनका नाम नामतः ।।१३।।
सुरूपा सुविशालाक्षी रूपेणाप्रतिमा भुवि । पतितां भूतले साक्षात् चन्द्रकान्तिमिवापराम् ।१४।
दृष्ट्वा तां पोषयामास पिता तस्या द्विजोत्तमाः । वर्धमाना पितुर्गेहे स्त्रीचिह्ना यौवने स्थिता ।
रूपलावण्यसंपन्ना बभूव वरवर्णिनी । पिता तस्यास्तदा विप्रास्तां दृष्ट्वा यौवने स्थिताम् ।१६।
ददौ विप्राय चाग्र्याय अत्रिगोत्रोद्भवाय च । सुतृप्ताय[1] सुयोग्याय सन्तनाख्याय वै द्विजाः ।१७।
विवाहविधिना सोऽपि समुद्वाह्य तदा द्विजाः । ययौ सुशिविकारूढस्तया सह यतव्रतः[2] ।।१८।।
तस्यै दायादिकं सर्वं दत्त्वा स द्विजसत्तमः । तयोः प्रास्थानिकं पुण्यं मङ्गलं च चकार ह ।।१९।।
सन्तनोऽपि महाभागाः[3] स्वगृहं प्राप्य सुव्रतः । रेमे स सुचिरं कालं सुन्दर्या प्रियया सह ।२०।
कालेन स द्विजो विप्राः संस्नातुं सरयूं गतः । तां विहायानवद्याङ्गीं स्वाश्रमे सुविसर्जिते ।२१।
निममज्ज ततः पुण्यां सरयूं ब्राह्मणोत्तमः । सुस्नानविधिना विप्रा ऋचाभिश्च समाहितः ।२२।
ततो दैवेन योगेन निमज्जन्तं द्विजं द्विजाः । गृहीत्वा जलमध्यं वै मकरः प्रविवेश ह ।।२३।।
मज्जमानं द्विजं दृष्ट्वा जनानां तत्र वासिनाम् । हा हेति सुमहानासीद् वज्रपातमिवापरम् ।।

ही बतलायें कि इस भूमण्डल में और कौन सा ऐसा स्थान है ? यहाँ पर ही मेनका नाम की एक ब्राह्मणी ने पुंश्चली होते हुए भी योगमाया की कृपा से स्वर्ग प्राप्त किया ।। ३-११ ।।

(इसे सुनकर) ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—ब्रह्मन् ! वह पुश्चली ब्राह्मणी किस प्रकार धर्म में प्रवृत्त हुई एवं नन्दा को किस तरह जान पाई । उसने किस विधि से नन्दा का पूजन किया ? ।। १२ ।।

व्यासजी ने इसका उत्तर दिया—प्राचीन काल में सत्ययुग के आरम्भ में पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न हो वह ब्राह्मणी मेनका नाम से प्रसिद्ध हुई । वह रूपवती एवं विशालाक्षी थी। वह अनवद्य सुन्दरी इस भूमण्डल पर दूसरी चन्द्रकान्ति ही उतरी थी । हे ऋषिश्रेष्ठो ! उस रूपवती को इस प्रकार पाकर (देखकर) उसके पिता ने उसका पालन-पोषण किया । इस तरह पिता के घर में बड़ी होती हुई वह युवती हो चली । रूप और सौन्दर्य से सम्पन्न होते हुए देखकर उसके पिता ने अत्रि-कुल में उत्पन्न सन्तन नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण के साथ सन्तोष पूर्वक उसका विवाह कर दिया । तब उस संयमी ब्राह्मण ने पालकी पर बैठ मेनका के साथ गृह-प्रवेश किया । (इसके पूर्व मेनका के पिता ने) गृहस्थी के उपयुक्त समग्र सामग्री आदि दे उसकी इस मङ्गलमयी यात्रा का प्रबन्ध कर दिया । तदनन्तर, ऋषिवरों ! सदाचारी सन्तन ने भी अपने घर पहुँच कर उस सुन्दरी के साथ रमण किया । कुछ समय उपरान्त वह सरयू तट पर स्नान के लिए गया, किन्तु वह अपनी युवती पत्नी को अकेले घर पर ही छोड़ आया । उसके विधिपूर्वक वैदिक मन्त्रोच्चार के साथ स्नान करते हुए दैववश एक नाके ने जल के

---

१. 'सुतृप्तये' इति 'क' पुस्तके । 'सुतृपाय' इति 'ख' । २. 'यतव्रताः' इति 'क' ।
३. 'महाभागः' इति 'क' ।

ततः सा मेनका साध्वी जनौघैः समुवाहृतम् । तं सरय्वां निपतितं पतिं पञ्चत्वतां गतम् ॥२५॥
शुश्राव वचनं विप्रा वज्रपातमिवापरम् । श्रुत्वा तं सुभृशं दीना बभूव वरवर्णिनी ॥२६॥
मतिं चक्रे तदा विप्रा गन्तुं सा पतिना सह । अन्तर्वत्नीं तु तां ज्ञात्वा निषेधं चक्रिरे जनाः ।२७।
सा निषिद्धा द्विजैर्विप्रा वेदवेदाङ्गपारगैः । वर्जिता सा सुहृन्मित्रैर्न ययौ पतिना[1] सह ॥२८॥
ततस्तस्यानुजो विप्राश्चक्रे तस्यौर्ध्वदैहिकम् । वेदादिष्टेन विधिना ब्राह्मणैः सह सुव्रतः ॥२९॥
वैधव्यं प्राप्य सा विप्रा दैवयोगेन मेनका । सुषुवे दशमे मासि पुत्रं देवसुतोपमम् ॥३०॥
पतिव्रतपरा भूत्वा पुपोष तं सुतं सती । शासिता बन्धुवर्गेण शिक्षिताऽपि महत्तमैः ॥३१॥
कालेन साऽनवद्याङ्गी भिल्लं ब्राह्मणरूपिणम्[2] । ददर्श गृहमायान्तं साक्षात्कल्पतरूपमम् ॥३२॥
तमातिथ्येन विधिना पूजयामास सा सती । तस्यातिथ्यं महाभागाः स वर्णो प्रतिगृह्य वै ॥३३॥
रात्रौ तस्या गृहे पुण्ये उवास स वनेचरः । ततोऽर्धरात्रौ तां साध्वीं जगृहे स वनेचरः ॥३४॥
सुप्तां पर्यङ्कमध्ये वै शिशुना सह शोभनाम् । तां नीत्वा स ययौ विप्रा हिमालयतटे शुभे ॥३५॥
ततो देवर्षिगन्धर्वैः सेविते सुमनोहरे । स तत्र वरवर्णिन्या तया सह द्विजोत्तमाः ॥३६॥
रेमे च सुचिरं कालं स्वर्णभूषणभूषितः । प्रत्यहं पूजयामास स नन्दां ब्राह्मणीपतिः ॥३७॥
तस्मै नन्दा महादेवी स्वर्णभारं दिने दिने । ददौ तुष्टा जगद्धात्री नन्दपर्वतवासिनी ॥३८॥
प्रातोत्थाय[3] व्रजन्तं तं नीत्वा गन्धाक्षतादिकम् । गृहीत्वा स्वर्णभारं वै प्रत्यायान्तं दिने दिने ॥
दृष्ट्वा सा ब्राह्मणी विप्रास्तं पप्रच्छ वनेचरम् ॥३९॥

भीतर उसे खींचा । इस तरह डूबते हुए देख समीपस्थ लोगों में हाहाकार मच गया । वह भी ऐसा कि मानो उन पर वज्रपात ही हुआ हो । पतिव्रता मेनका ने उस कोलाहल को सुनते हुए सरयू तट पर वज्रपात सदृश पति के मरण को ज्ञात कर उस दुःख से कातर होते हुए पति की सहगामिनी (सती) होने का निश्चय किया । किन्तु गर्भवती होने के कारण वैदिक विद्वानों, मित्रों आदि ने उसे ऐसा करने से मना किया । अतः वह पति की सहगामिनी नहीं हुई । तब, हे ऋषिवरों ! उसके सदाचारी छोटे भाई ने सन्तन की वैदिक रीति से और्ध्वदैहिक क्रिया की । वैधव्य प्राप्त कर दसवें महीने उसने देवपुत्र के समान पुत्र को जन्म दिया । पतिपरायणा सती-साध्वी मेनका ने अपने पुत्र का पालन-पोषण किया । बन्धु-बान्धवों से अनुशासित एवं महनीय जनों से अनुशासित होते हुए भी उस सुन्दरी ने एक दिन अपने यहाँ कल्पवृक्ष के समान ब्राह्मणरूपधारी भील को आते हुए देखा । मुनिवरों ! उस साध्वी ने उसका आतिथ्य-सत्कार किया और उस ब्रह्मचारी वेषधारी ने उसे स्वीकार करते हुए वहाँ रात्रिवास किया । तब आधी रात के समय अपने पुत्र के साथ पलंग पर सोई हुई साध्वी को जगाकर वह भील हिमालय-तट पर ले गया । विप्रवरो ! तत्पश्चात् देव-ऋषि-गन्धर्वादि से सेवित उस रमणीय स्थान पर भूषणादि से अलङ्कृत उस वनेचर ने चिरकाल पर्यन्त रमण किया । वह ब्राह्मणी-पति प्रतिदिन नन्दा की पूजा करता था । जिसके फलस्वरूप प्रसन्न होकर पर्वतवासिनी जगन्माता नन्दा उसे प्रतिदिन सोना दिया करती थीं । इस तरह प्रतिदिन पूजासम्भार ले जाते हुए तथा सोना प्राप्त कर वापस आते हुए देख ब्राह्मणी ने उस वनेचर से पूछा ॥१३–३९॥

---

१. नाभाव आर्षः । २. 'ब्राह्मणमायतम्' इति 'क' । ३. 'प्रातरुत्थाय' इत्यपेक्ष्यते ।

मेनका उवाच—

गन्धपुष्पादिकं नीत्वा कुत्र वँ गम्यते त्वया। कस्मादानीयते भारं [1]पूर्णस्वर्णमयं तथा ।।४०।।
यदि ते सुप्रिया चास्मि तर्हि सत्यं वनेचर। कथयस्व विशेषज्ञ त्वामहं प्रणताऽस्मि वै ।।४१।।

व्यास उवाच—

तस्या वचनमाकर्ण्य स भीतो ब्राह्मणीपतिः। उवाच मेनकां पापः स्मरन्तीं पातकं बहु ।।४२।।

भिल्ल उवाच—

इतो यो दृश्यते भद्रे पुण्यो नन्दगिरिः शुभः ।।४३।।
तत्र नन्दा महादेवी जागर्ति भुवनेश्वरी। पूजयामि महाभागां नन्दां पर्वतवासिनीम् ।।४४।।
गन्धपुष्पाक्षतैः शुद्धैर्वस्त्रैश्च विविधैरपि। संप्रसन्ना[2] महाभागा स्वर्णभारं दिने दिने ।।
प्रयच्छति न सन्देहः सत्यं ते व्याहृतं मया ।।४५।।

व्यास उवाच—

इति भिल्लस्य वचनं श्रुत्वा सा मेनका द्विजाः। विस्मयोत्फुल्लनयना पप्रच्छ पुनरेव हि ।।४६।।

मेनका उवाच—

सा केन विधिना भिल्ल पूज्यते परमेश्वरी। कथं तुष्टा मनुष्याणां वरं ते संप्रयच्छति ।।४७।।

व्यास उवाच—

स तया परिपृष्टो वँ यथापूर्वं वनेचरः। जगाद वचनं भूयस्तां प्रियां चारुभाषिणीम् ।।४८।।

मेनका ने कहा—तुम गन्ध-पुष्पादि लेकर प्रतिदिन कहाँ जाते हो तथा यह सोने का ढेर कहाँ से लाते हो ? यदि मैं तुम्हारी प्रिया हूँ तो, हे वनेचर ! तुम सच बतलाओ। मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ ।। ४०–४१ ।।

व्यासजी ने फिर कहा—उस ब्राह्मणी की बातें सुनकर वह ब्राह्मणीपति कुछ भयभीत हुआ। फिर भी उस पापी ने अपने पापों का स्मरण करती हुई मेनका से इस प्रकार कहा ।४२।

भील बोला—भद्रे ! यहाँ से कुछ दूर पुण्यस्थल नन्दगिरि दिखाई पड़ता है। वहाँ महादेवी भुवनेश्वरी नन्दा जागरूक हैं। मैं गन्ध-पुष्प-अक्षत एवं विविध वस्त्रादि पूजा-सामग्री से पर्वतवासिनी नन्दा की पूजा करता हूँ। प्रसन्न होकर वह मुझे प्रतिदिन स्वर्णराशि निःसन्देह देती हैं। यह मैंने तुमसे सच कहा है ।। ४३–४५ ।।

(तब) व्यासजी ने ऋषियों से कहा—भील की इन बातों को सुनकर मेनका ने आश्चर्यचकित हो फिर पूछना आरम्भ किया ।। ४६ ।।

मेनका बोली—हे भील ! उस भगवती की पूजा करने का क्या विधान है ? मनुष्यों पर वे कैसे प्रसन्न होती हैं ? तुमको वर किस प्रकार देती हैं ? ।। ४७ ।।

व्यासजी ने पुनः कहा—मेनका द्वारा पूछे जाने पर उस मृदुभाषिणी को वनेचर ने पहले की तरह उत्तर दिया ।। ४८ ।।

---

१. 'पूर्णम्' इति 'क' पुस्तके। 'भारः पूर्णः स्वर्णमयस्तथा' इत्यपेक्ष्यते।
२. 'सा प्रसन्ना' इति 'क' पुस्तके। 'संपन्ना' इति 'ग' पुस्तके।

भिल्ल उवाच—

योऽसौ नन्दगिरिः साक्षात् मया ख्यातो हि मेनके । तत्र शिखरयोर्मध्ये पुण्यो नन्दासरः स्मृतः।
निमज्ज्य विधिवत्तत्र नन्दिकेशं हरं व्रजेत् । नन्दिकेशं हरं तत्र सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ।।५०।।
ततोऽधिरुह्य शिखरं नन्दां सम्पूज्य मेनके । ऐहिकामुष्मिकं चैव फलं तुष्टा प्रयच्छति ।।५१।।

व्यास उवाच—

श्रुत्वा नन्दाप्रभावं सा मेनका द्विजसत्तमाः । निष्कृतिस्तत्र पापानां भविष्यति न संशयः ।।५२।।
इति संचिन्त्य मनसा ययौ साऽपि दिने दिने । स्नात्वा नन्दासरे पुण्ये सम्पूज्य च महेश्वरम्[1]।५३।
प्रार्थयन्ती महामायामित्युवाच यतव्रता । नारायणि महामाये हिमाद्रितनये शुभे ।।५४।।
पुंश्चल्या धर्महीनायाः पातकान् मे विनाशय । इति देवीं महामायां प्रार्थयन्ती यतव्रता ।।५५।।
निनाय कालं सुचिरं देवीपूजनतत्परा । ततः कालेन सा विप्राः कृतान्तवशगाऽभवत् ।।५६।।
नीता याम्यैर्यमपुरं पुंश्चली पापकारिणी । ततः कालीं महाभागां नन्दपर्वतवासिनीम् ।।५७।।
जगाद [2]नन्दिका वाचं गच्छ देवि यमं प्रति । तत्र विज्ञाप्य राजानं धर्माधर्मविचारकम् ।।५८।।
[3]तामानयाबलां देवीं यमस्य वशवर्तिनीम् । मेनकां मे गृहे चाद्य मम भक्तिपरायणीम्[4]।।५९।।

व्यास उवाच—

ततः काली महामाया[5] भवानीवचनं शुभम् । प्रगृह्य प्रययौ तत्र यत्र वै स महायमः ।।६०।।
तत्र गत्वा महाभीमा सा काली घोरदर्शना । यमं विज्ञापयामास मेनकामुक्तिहेतवे ।।६१।।

भील बोला—मेनके ! मैंने जो तुमसे नन्द-पर्वत का वर्णन किया है, वहाँ पर दो शिखरों के मध्य 'नन्दासर' है । वहाँ विधिपूर्वक स्नान कर 'नन्दिकेश' महादेव की ओर जाना चाहिये । वहाँ शिवजी का पूजन कर शिखर पर चढ़ 'नन्दादेवी' की पूजा करने से देवी प्रसन्न हो जाती हैं तथा वे इस लोक एवं परलोक से सम्बद्ध फल देती हैं ।। ४९-५१ ।।

(तब) व्यासजी बोले—हे ऋषिवरों ! मेनका ने नन्दादेवी का यह प्रभाव जान तथा अपने पापों का निवारण सम्भव होना समझकर वहां प्रतिदिन जाना आरम्भ कर दिया । वह पवित्र नन्दासरोवर में स्नान कर व्रत रखते हुए नन्दिकेश का पूजन करती हुई भगवती की इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—'नारायणि !, महामाये ! हिमालयकन्ये ! शुभे ! मुझ अधर्मी पुंश्चली के पापों को दूर करो' । इस प्रकार महामाया की प्रार्थना करती हुई व्रतपरायणा मेनका बहुत दिनों तक पूजन में तत्पर रही । ऋषिवरों ! फिर वह दैववश कालकवलित हो गई । पापी होने के कारण यमदूत उसे यमराज के पास ले गए । इस पर नन्दिका ने नन्दपर्वत-वासिनी काली को यमराज के पास जाने के लिए कहा कि वह धर्म और अधर्म के विचारक यमराज से निवेदन कर मेरी भक्ति करने वाली मेनका को आज ही बलपूर्वक ले आये ।। ५२-५९ ।।

व्यासजी ने पुनः कहा—नन्दा की बात को सुनकर महामाया काली यमराज के पास

---

१. 'महेश्वरीम्' इति 'क' ।
२. 'चण्डिका' इति 'ग' । 'चन्द्रिका' इति 'घ' ।
३. 'तामानय बलाद् देवीम्' इति 'क' 'ख' ।
४. 'भक्तिपरायणाम्' इति 'क' पुस्तक ।
५. 'महाभागा' इति 'ख' ।

काली उवाच—

धर्मराज महाराज शृणु दौत्ये[1] समागताम् । जानीहि सुविशालाक्षीं भवानीं हितकारिणीम्[2] ॥
यदाह सा जगद्धात्री तत्कुरुष्व न संशयः । त्वद्‌गणैर्मेनका नाम ब्राह्मणी तव शासने ॥६३॥
नीता सा वै कथं राजन् भवानीप्रियकारिणी ॥

यम उवाच—

शृणुष्व वचनं भद्रे मया वै समुदाहृतम् । पतिव्रतानां नारीणां वासो वै देवमण्डले ॥६४॥
पुंश्चलीनां च मे लोके निवासः कल्पितः पुरा । तस्मान्मच्छासने देवि[3] संस्थिता नात्र संशयः ।
यदेषा ब्राह्मणीभूत्वा जाता भिल्लस्य चाङ्गना । तस्मान्मच्छासने योग्या विद्यते नात्र संशयः।
अपि तीर्थशतैर्वापि तथा यज्ञशतैरपि । कायक्लेशादिकैर्वापि पुंश्चली नैव शुध्यति ॥६७॥

काली उवाच—

नन्दासरस्य माहात्म्यं त्वया न ज्ञायते यम । तथैव पर्वते पुण्ये देवीपूजनजं फलम् ॥६८॥
किं न ज्ञातं त्वया पुण्यं देवीपूजनजं फलम् । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते यत्र वै जनः ॥६९॥
तं नन्दपर्वतक्षेत्रं[4] किं न जानाति वै यमः ॥ ७० ॥
यत्र पर्वतरूपेण साक्षाद्देवो जनार्दनः । वर्तते[5] पर्वतक्षेत्रे किं न जानासि त्वं यम ॥७१॥

पहुँची । भयंकर रूप धारण करती हुई काली ने यमराज से मेनका को अपने चंगुल से मुक्त करने के लिए (इस प्रकार) निवेदन किया ॥ ६०–६१ ॥

काली बोलीं—धर्मराज यम ! सुनो । मुझे तुम भक्तों की हितकर्त्री विशालाक्षी भवानी के दूतरूप में आई हुई जानो । जगन्माता की कही गई बातों को तुम निःसन्देह पूरा करोगे । तुम्हारे गण नन्दा की सेविका मेनका ब्राह्मणी को तुम्हारी आज्ञा से यहाँ क्यों ले आए हैं ? ॥ ६२–६३ ॥

(इस पर) यमराज ने उत्तर दिया—भद्रे ! मेरी बात सुनो । मैंने तो यह कहा है कि 'पतिव्रता स्त्रियों के लिए देवलोक में वास नियत है । केवल पुँश्चली स्त्रियों का वास पहले से ही यमलोक नियत है । निःसन्देह इसी लिये मेरे शासन में मेनका को रखा गया है । यह ब्राह्मणी होते हुए (दुराचारवश) भील की स्त्री बन गई । अतः यमलोक में रहने के लिए यह सर्वथा योग्य है । कारण यह है कि सैकड़ों तीर्थ, याग तथा तपश्चर्या करने पर भी पुंश्चली की शुद्धि सम्भव नहीं है' ॥ ६४–६७ ॥

(यम की वाणी को सुनकर) काली पुनः बोलीं—यमराज ! तुम नन्दासरोवर का माहात्म्य तथा नन्दा के पूजन का फल नहीं जानते । उस देवी के पूजन से ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाते हैं । बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हें ऐसे नन्दपर्वत का ज्ञान नहीं है, जहाँ पर्वत के रूप में भगवान् विष्णु प्रतिष्ठित हैं । ऐसे पुण्यक्षेत्र का तुम्हें ज्ञान क्यों नहीं है ? ॥ ६८–७१॥

---

१. 'दंत्ये' इति 'ग' ।

२. 'जानीहि सुविशालाक्षी भवानी हितकारिणी' इति 'घ' पुस्तके ।

३. 'देवी' इति 'ख' । ४. 'नन्दसंज्ञकं क्षेत्रम्' इति 'घ' । ५. 'वर्वति' इति 'क' ।

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा तं तदा काली गृहीत्वा मेनकां ततः। लोहपाशैर्निबद्धां तां विमुच्य प्रययौ गिरिम् ॥
करग्रहणमात्रेण सा काल्या मेनका द्विजाः। दिव्यरूपधरा साक्षाद् विष्णोः श्रीरिव भासिता ॥
ततः काली समुत्पत्य यत्र नन्दा महेश्वरी। ययौ मेनकया सार्धं त्रिशूलवरभूषणा ॥७४॥
ततस्तां मेनकां देवी ददौ स्वर्गगतिं शुभाम्। अधिरुह्य विमानाग्रे सेविता नायिकागणैः[1] ॥
दृश्यतेऽद्यापि वै विप्रा मेनका स्वर्गमण्डले। भिल्लोऽपि कालवशगो भूत्वा कालेन वै द्विजाः ॥
ऐश्वर्यमतुलं चात्र भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्। जगामान्ते शिवपुरं महामायाप्रसादतः ॥७७॥
इत्येतत्कथितं विप्रा नन्दाख्यानं सुविस्तरम्। आयुरारोग्यमैश्वर्यं सुखसम्पद्विवर्धनम् ॥७८॥
य इदं परमं पुण्यं नन्दामाहात्म्यमुत्तमम्। शृणुयाद् वा पठेद्वापि भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥७९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नन्दामाहात्म्यं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने पुनः कहा—तत्पश्चात् जंजीरों से जकड़ी हुई मेनका को काली ने विमुक्त किया तथा उसे पर्वत पर ले गई। हे ऋषिवरों! काली के हाथ का स्पर्श होते ही मेनका दिव्य रूप धारण कर साक्षात् लक्ष्मी के समान शोभित हुई। तब सुन्दर त्रिशूलधारिणी कालिका उस नन्दा को साथ ले महेश्वरी नन्दा के पास गईं और उसे विमान पर चढ़ाकर स्वर्ग प्राप्त कराया। अब भी वह मेनका अप्सराओं से सेवित स्वर्गमण्डल में दिखाई पड़ती है। कुछ समय बाद भील ने भी काल के वशीभूत हो महामाया की कृपा से शिवलोक प्राप्त किया। ऋषिवरों! मैंने आप लोगों से नन्दा का यह आख्यान विस्तार के साथ कहा है। यह श्रोताओं की आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, सुख तथा सम्पत्ति को बढ़ाने वाला है। इस पवित्र एवं श्रेष्ठ नन्दा-माहात्म्य को पढ़ने या सुनने वाला व्यक्ति भुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करता है ॥७२-७९॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में वर्णित 'नन्दा'-माहात्म्य
नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'ह्यप्सरोगणैः' इत्यपेक्ष्यते।

२३

[१]ऋषय ऊचुः—

कथितं भवता ब्रह्मन् नन्दामाहात्म्यमुत्तमम्[२] । तत्रान्येषां सुपुण्यानां माहात्म्यं वद विस्तरम्[३] ॥

व्यास उवाच—

गिरेः शिखरयोर्मध्ये पुण्यो 'नन्दासरः' स्मृतः । तत्र वै स्नानमात्रेण पातकात्प्रविमुच्यते[४] ॥२॥
ततो वामे महापुण्यः वसिष्ठस्याश्रमः शुभः । वसिष्ठं तत्र सम्पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥
नन्दिकेशं हरं तत्र प्रपूज्य मुनिसत्तमाः । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥४॥
तस्य वै शिखरे[५] विप्राः साक्षात् पर्वतरूपिणम् । प्रपूज्य मानवः सम्यक् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५॥
शङ्खचक्रगदापाणिं पद्मनाभं जनार्दनम् । प्रपूज्य सर्वपापेभ्यो मुच्यते द्विजसत्तमाः ॥६॥
वामे कालीं संप्रपूज्य[६] गुहायां संस्थितां शुभाम् । प्रपूज्य यमभीतिं वै नरो नाप्नोति वै द्विजाः ।
सन्ति तीर्थान्यनेकानि तस्मिन् नन्दगिरौ द्विजाः । न शक्यते[७] सुपुण्यानि वक्तुं वर्षशतैरपि ।८।
हिमसीकरमध्यस्थं चक्रपाणिं प्रपूज्य वै । जन्मत्रयार्जितात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नन्दपर्वतमाहात्म्यं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने (व्यासजी से) पुनः जिज्ञासा की—ब्रह्मर्षे ! आपने नन्दा का श्रेष्ठ माहात्म्य हम लोगों को सुनाया । कृपया अब आप उससे सम्बद्ध तीर्थों का वर्णन विस्तार के साथ करें ॥ १ ॥

(तब) व्यासजी ने कहा—पर्वत-शिखर पर वर्णित पवित्र नन्दासरोवर में स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती है । नन्दासरोवर के बाईं ओर शुभप्रद 'वसिष्ठ का आश्रम' है । वहाँ वसिष्ठ का पूजन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं । मुनिवरों ! वहीं पर 'नन्दिकेश' शिव के पूजन से मनुष्य को वाजपेय[८] यज्ञ का फल मिलता है । उसके शिखर पर ही पर्वतरूप में शंखचक्र-गदाधारी पद्मनाभ (विष्णु) का पूजन कर मानव पापों से छुटकारा पा जाता है । ऋषिवरों ! बाईं ओर गुफा में प्रतिष्ठित काली का पूजन कर मनुष्य यम के भय से रहित हो जाता है । उस नन्दगिरि पर अनेक तीर्थ हैं । सैकड़ों वर्षों में भी उन पवित्र तीर्थों का वर्णन नहीं किया जा सकता । हिमकणों के मध्यस्थ चक्रपाणि का पूजन करने से तीन जन्मों में अर्जित पापों से मुक्ति मिल जाती है ॥ २–९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में नन्दपर्वतमाहात्म्य नामक
तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१ 'ऋषिरुवाच' इति 'ग' । २. 'नन्दाख्यानं सुविस्तरम्' इति 'क' ।
३. 'विस्तरात्' इति 'क' । ४. 'विप्रमुच्यते' इति 'क' ।
५. 'शिखरम्' इति 'ख' । ६. 'प्रपूज्याशु' इति 'क' । ७. 'शक्यन्ते' इति 'क' ।
८. सात प्रमुख श्रौत यज्ञों में से पाँचवाँ यज्ञ ।

२४

ऋषय ऊचुः—

कथितं भवता ब्रह्मन् नन्दपर्वतवर्णनम् । तत्रोद्भवा याः सरितस्तान् वै कथय सुव्रत ॥१॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे वचनं समुदाहृतम् । कथाप्रसङ्गबहुलं धर्ममार्गप्रदर्शकम् ॥२॥
हिमाद्रेश्चोत्तरे भागे सिद्धकिन्नरसेविते । नन्दाद्रिकुक्षौ सम्भूता चातिशुद्धजलाशया ॥३॥
पिण्डारकेति विख्याता प्रार्थिता सिद्धनायकैः । विचित्रधातुसंकीर्णा नानावृक्षविराजिता ॥४॥
नानाविधैः पक्षिगणैः सेविता सुमनोहरा । काश्यपप्रमुखाणां हि ऋषीणामाश्रमैर्वृता ॥५॥
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकैश्च सेविता । तीर्थैरनेकसाहस्रैः परिपूर्णमनोजवा ॥६॥
बभूव सा सरिच्छ्रेष्ठा शंकरस्य जटोद्भवा । भित्त्वा पर्वतमुख्यान् वै संगता सरसोद्भवा ॥७॥
संगमे विष्णुगङ्गायाः संगता सरितां वरा । मूले तस्या महादेवं जटीशाख्यं द्विजोत्तमाः[1] ॥८॥
शतरुद्राभिषेकेण योऽभिषिङ्क्ते[2] महेश्वरम् । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य पूज्यते शिवकिङ्करैः[3] ॥९॥
ततः पिण्डारकासङ्गे काली नाम सरिद्वरा । संगता मुनिशार्दूला वीचिविक्षोभसंयुता ॥१०॥
तत्र कालीह्रदं[4] पुण्यं ख्यायते चातिविस्तृतम् । तत्र स्नात्वा च विधिवत् पातकैर्विप्रमुच्यते[5] ॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् ! आपने नन्द-पर्वत का वर्णन अवश्य किया । अब कृपया उस पर्वत से निकलने वाली नदियों के विषय में बतलायें ॥ १ ॥

(इसे सुनकर) व्यासजी ने कहना आरम्भ किया—हे ऋषिश्रेष्ठों ! आप लोग अब अनेक आख्यानों सहित धर्ममार्गप्रदर्शक वचन सुनें । हिमाद्रि के उत्तरभाग में सिद्ध एवं किन्नरों से सेवित नन्द-पर्वत के कोख से निकली हुई विशुद्ध जल-संयुक्त पिण्डारका नदी (पिण्डर नदी) वहती है । वह श्रेष्ठ सिद्धों से प्रार्थित, विचित्र धातुओं से पूर्ण तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से शोभित है । पिण्डारका नदी (अपने तटवर्ती वृक्षों पर संस्थित) पक्षियों से संकुलित तथा काश्यप-प्रमुख ऋषियों के आश्रमों से परिवेष्टित है । (पक्षियों में भी) हंस, बत्तख एवं चकवा प्रभृति पक्षियों से (विशेषतः) अभिव्याप्त तथा अनेक तीर्थों से परिवेष्टित होती हुई मनो-वाञ्छित फलदात्री है । वह शंकरजी की जटा से निकल कर प्रमुख पर्वतशृङ्गों को काटती हुई हिमानी में जाकर मिल गई । पुनः वहाँ से आगे बढ़कर 'विष्णुगङ्गा' (अलकनन्दा की सहायक) के साथ संगमित होती है । हे ऋषिगण ! उसके मूल में जटीश महादेव हैं । रुद्राभिषेक की शतावृत्ति से अर्चना करने वाले व्यक्ति के इक्कीस कुलों का उद्धार होने के साथ ही वह भक्त शिव-गणों से पूजित भी होता है । हे श्रेष्ठ ऋषियों ! तब पिण्डर नदी के साथ हिलोर लेती हुई काली नदी मिल जाती है । तब वहाँ 'कालीह्रद' नामक बड़ा तालाब बन जाता है ।

---

१. 'महेश्वरम्' इति 'ग' । २. 'योभिषिक्ते' इति 'क' 'ग' । 'अभिषिञ्चते' इति पाणिनि-सम्मतं रूपम् ।
३. 'शिवकिन्नरैः' इति 'ग' । ४. 'कालहृदम्' इति 'क' ।
५. 'पातकाद्विप्रमुच्यते' इति 'क' 'घ' 'ङ' ।

पिण्डारकायाः सुजलैस्तपोधना निमज्ज्य सन्तर्प्य पितॄन् स्वकांस्तथा ।
प्राप्नोति पुण्यं त्रिदशेन्द्रसेवितं सुप्रार्थितं नारदफाल्गुनादिभिः ॥ १२ ॥

ततः सरस्वतीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च मनुजः स्त्रीवधाद् विप्रमुच्यते ॥१३॥
दक्षिणे कमठीसङ्गं[1] पुण्यमस्ति न संशयः । तत्र स्नात्वा महाभागो जायते मानवो भुवि ॥१४॥
वामे शेषवती-नामा गुहा सुवरवर्णिनी[2] । तत्र शेषेश्वरं देवं शेषनागं तथैव च ॥
सम्पूज्य पातकान् सर्वान् हित्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥ १५ ॥

वैण्यपर्वतसम्भूता वैण्या[3] नाम महानदी । ययौ पिण्डारकासङ्गे पातकानां विनाशिनी ॥१६॥
तयोः सङ्गे महाभागा नाम्ना विन्ध्यसरः स्मृतः । तत्र स्नात्वा च मनुजः शुद्धदेहो भवेदिह ।१७।
तत्र वैण्यगिरौ पुण्ये बौद्धनागेति[4] विश्रुतः । तस्य पृष्ठे समुद्भूता बोधनी सरितां वरा ॥१८॥
ययौ पिण्डारकासङ्गे देवर्षिगणसेविते । तयोः सङ्गे महाविष्णुं बौद्धरूपधरं[5] प्रभुम् ॥१९॥
पूजयित्वा च मनुजो विष्णुलोके महीयते । ततो मध्ये महादेवं पुण्यं केदारसंज्ञकम् ॥२०॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् शिवभक्तिमवाप्नुयात् । वृश्चिकी कृकलासो च नन्दपर्वतसम्भवा ॥२१॥
सरितौ तां सरिच्छ्रेष्ठां ययतुर्द्विजसत्तमाः । तासु स्नात्वा च मनुजस्तथा तासां च सङ्गमे ॥
दुष्कृतादब्दभूताद्वै तरते नात्र संशयः ॥ २२ ॥

संगमे विष्णुगङ्गायाः पुण्या पिण्डारका सरित् । आवर्तशतसंकीर्णा तरङ्गैर्व्याकुलीकृता ॥२३॥

वहाँ विधिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य पाप-विमुक्त हो जाता है। पिण्डर के जल में स्नान कर पितरों का तर्पण करने वाले मनुष्य को नारद-फालगुन आदि ऋषियों से प्रार्थित एवं देवराज से सेवित पुण्य की प्राप्ति होती है। हे तपस्वियों ! तब सरस्वती-संगम में स्नान करने से मानव स्त्री-हत्या सदृश पाप से छुटकारा पा लेता है। दक्षिण भाग में पवित्र 'कमठी' (कमला) के संगम में स्नान करने से मनुष्य पृथ्वी पर जन्म लेता है। बाई ओर सुन्दर 'शेषवती' नाम की गुहा है, वहाँ 'शेषेश्वर' तथा 'शेषनाग' का पूजन कर मनुष्य पापरहित हो शिवलोक प्राप्त करता है। फिर वैण्यपर्वत से निकली पापों का नाश करने वाली 'वैण्या'-नदी के साथ पिण्डारका मिल जाती है। हे महाभागों ! उन दोनों के संगमस्थल पर 'वैण्य' सरोवर है। उसमें स्नान कर देह शुद्ध हो जाता है। वहीं पवित्र वैण्य-पर्वत पर 'बौद्धनाग' है। उसके पृष्ठ-भाग में उद्भूत बोधिनी नदी देव-ऋषि-गणों से सेवित पिण्डारका के साथ मिल जाती है। उनके संगम स्थल पर बौद्धरूपधारी विष्णु का पूजन करने से मनुष्य विष्णुलोक में सम्मानित होता है। तदनन्तर बीच में ही 'केदार' नामक शिव का पूजन करने से शिवभक्ति प्राप्त होती है। हे ब्रह्मर्षियों ! इसी बीच नन्दपर्वत से निकलने वाली 'वृश्चिकी' तथा 'कृकलासी' नाम की दो नदियाँ भी पिण्डारका के साथ मिल जाती हैं। इन सबमें तथा इनके सङ्गम में स्नान कर मनुष्य निःसन्देह वर्षभर किये पापों से छुटकारा पा जाता है। पुण्यसलिला पिण्डारका

---

१. 'कमलासङ्गम्' इति 'क'। २. 'सुबहुवर्णिता' इति 'क'।
३. 'वैन्ध्या' इति 'ग' 'घ' 'ङ'। ४. 'बोद्धनागेति' इति 'घ'।
५. 'बोद्धरूपधरम्' इति 'ग'।

ययौ पुण्यप्रवा शुद्धा पातकान्तकरी सरित् । विष्णुपादसमुद्भूतां विष्णुगङ्गां महानदीम् ॥२४॥
संमिलन्सा सरिच्छ्रेष्ठा[1] पयःफेननिभा शुभा । तयोर्मध्ये महाभागा दुष्कृतान्तकरं शुभम् ॥२५॥
पुण्यराशिप्रदं तीर्थं प्रयागं कर्णसंज्ञकम् । दुष्कृतानि विलीयन्ते हिमवद्भास्करोदये ॥२६॥
यं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलाः पुण्यराशिमहोदयाः । ये स्मरन्ति महाभागास्ते यान्ति हरिमन्दिरम् ।२७।
कर्णप्रयागं सम्प्राप्य मज्जनं ये चरन्ति हि । तेषां विष्णुगृहे वासो विद्यते नात्र संशयः ॥२८॥
असारभूते संसारे प्रयागं कर्णसंज्ञकम् । प्राप्य वासं न कुर्वन्ति ते मूढा नात्र संशयः ॥२९॥
गङ्गायमुनयोः सङ्गे माघस्नानेन यत् फलम् । तत्फलं स्नानमात्रेण प्रयागे कर्णसंज्ञके ॥३०॥
प्राप्यते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं[2] मयोदितम् । तावद् गर्जन्ति तीर्थानि भूलोके द्विजसत्तमाः ॥
यावन्न कर्णसंज्ञे वै प्रयागे मज्जनं कृतम् । तावद्वसन्ति पितरो नरके द्विजसत्तमाः ॥३२॥
यावन्न तर्पिताः पुण्ये प्रयागे कर्णसंज्ञके । कर्णप्रयागसदृशं नान्यं पश्यामि भूतले ॥३३॥
देवर्षिमानवानां च पुण्यं तुष्टिकरं शुभम् । तत्र चान्नप्रदानेन ब्राह्मणेभ्यो द्विजोत्तमाः ॥३४॥
प्राप्य भूमण्डलं सर्वं[3] साम्राज्ये याति शाश्वतम् । एकतः क्रतवः सर्वे समस्ताध्वरदक्षिणाः ॥
एकतः कर्णसंज्ञे वै प्रयागे मज्जनं स्मृतम् । तत्र कर्णो महाभागाः प्रार्थयन्कश्यपात्मजम् ॥३६॥
पितरं ज्योतिर्मध्यस्थं ददौ दानान्यनेकशः । ततस्तं सविता तुष्टो दत्त्वाभिलषितं वरम् ॥३७॥

और विष्णु के चरणों से निकली हुई विष्णुगङ्गा[4] (अलकनन्दा) के संगम स्थल पर फेनों को उगलती हुई पिण्डारका विष्णुगङ्गा के साथ मिलती है। उनके सङ्गम पर पाप-नाशक 'कर्णप्रयाग' नामक तीर्थ है। हे पुण्यशील मुनिश्रेष्ठों ! वहाँ दर्शन-मात्र से सूर्योदय होने पर हिमद्राव के समान पाप भी विलीन हो जाते हैं। तथा इनका स्मरण करने वालों को विष्णुलोक प्राप्त होता है। इस असार संसार में रहते हुए जो कर्णप्रयाग पहुँचकर निवास नहीं करते वे वस्तुतः मूर्ख हैं। गङ्गा-यमुना के सङ्गम में माघस्नान करने का फल कर्णप्रयाग में स्नानमात्र से निःसन्देह मिल जाता है। यह मैंने सत्य कहा है। इस भूमण्डल में तब तक सब तीर्थ प्रशंसित होते हैं, जब तक कर्णप्रयाग में स्नान न किया जाय। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! कर्ण-प्रयाग में तर्पण करने के पहले तक ही पितर नरक में रहते हैं। कर्णप्रयाग के समान मैं दूसरा तीर्थ नहीं देखता हूँ—जो देव, ऋषि और मानवों को तुष्टि और पुण्य प्रदान कर सकें। वहाँ ब्राह्मणों को अन्नदान करने से भूमण्डल में शाश्वत साम्राज्य प्राप्त होता है। एक ओर सब यज्ञ एवं यज्ञ-दक्षिणादि हैं तो दूसरी ओर (इनसे बढ़कर) कर्णप्रयाग में स्नान करना है। हे महाभाग्यशालियों ! कर्ण ने वहीं ज्योति के मध्य स्थित कश्यप के पुत्र एवं अपने पिता (सूर्य) की प्रार्थना करते हुए अनेक प्रकार के दान दिए थे। तब सूर्य ने सन्तुष्ट होकर उसे

---

१. 'संमिलन्सरिता श्रेष्ठा' इति 'क'। २. 'सत्यसत्यम्' इति 'ग'।

३. 'सर्वे' इति 'घ'।

४. एक दूसरी नदी विष्णुगङ्गा 'अलकनन्दा' और 'पिण्डारका' के मिलने के पहले ही गढ़वाल (केदारखण्ड) मण्डल में 'अलकनन्दा' से पाण्डुकेश्वर के समीप मिल जाती है। इन दोनों के सङ्गमस्थल पर 'विष्णुप्रयाग' नामक तीर्थस्थान है। 'मानसखण्ड' में अलकनन्दा का पृथक् नाम नहीं लिया गया है। अलकनन्दा और पिण्डरका संगम स्थल 'कर्णप्रयाग' है।

तथाऽस्त्राणि च दिव्यानि बाणानि विविधानि च। दिननाथाद्वरं प्राप्य मनोऽभिलषितं शुभम्[1]।
प्रददौ रत्नभारान् वै ब्राह्मणेभ्यो न संशयः। गो-भू-तिल-हिरण्यादीन् तथैव गुडधेनवः ॥३९॥
दत्त्वा विसर्ज्य वै विप्रान् स्वनाम्ना कर्णसंज्ञकम्। [2]पूजिते देवगन्धर्वैः स सूर्यतनयो बली॥४०॥
प्रयागं कल्पयामास प्रयागसदृशं शुभम्। तत्र 'कर्णेश्वरं' नाम देवं संस्थाप्य वै द्विजाः ॥४१॥
सम्पूज्य कमलाकान्तं ययौ स गजसाह्वयम् ॥ ४२ ॥
ततः प्रभृति वै लोके प्रयागः कर्णसंज्ञकः। व्याख्यायते महाभागा ऋषिभिः सत्यवादिभिः॥४३॥
तत्र कर्णेश्वरं नाम देवं यः पूजयेत् सुधीः। संसारसागरं तीर्त्वा स याति शिवमन्दिरम् ॥४४॥
तत्रैव कमलाकान्तं जले यः पूजयेद् धिया। त्रिसप्तकुलभिः सार्धं[3] स विष्णुभवनं व्रजेत् ॥४५॥
इत्येतत् कथितं विप्रा यथा पिण्डारका सरित्। सम्भूत्वा विष्णुगङ्गायां संगमे संगता शुभा॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं सर्वकामदम्। कर्णप्रयागमाहात्म्यं श्रुत्वा पापात् प्रमुच्यते ॥४७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कर्णप्रयागमाहात्म्ये 'पिण्डारका'माहात्म्यं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥

मनोवाञ्छित वर तथा दिव्यास्त्र एवं बाण दिये। सूर्य से मनोवाञ्छित वर प्राप्त कर कर्ण ने ब्राह्मणों को रत्नराशि दान में दी। इसके साथ ही गायें, तिल, सुवर्ण, गुड़ आदि दान कर ब्राह्मणों को विदा किया। तदनन्तर बली कर्ण ने अपने नामसहित उस संगम-स्थल को प्रयाग के समान 'कर्णप्रयाग' नाम दिया, एवं वहाँ 'कर्णेश्वर' की स्थापना की। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु का पूजनकर वह हस्तिनापुर को चला गया। तभी से इस स्थान की व्याख्या सत्यवादी ऋषियों ने 'कर्णप्रयाग' नाम देकर इस प्रकार की है। वहाँ कर्णेश्वर की पूजा करने से संसार-सागर को पार कर शिवलोक की प्राप्ति होती है। वहीं जलस्थ 'कमलाकान्त' का ध्यानसहित पूजन करने से मानव इक्कीस कुलों सहित स्वयं भी विष्णुलोक प्राप्त करता है। हे ब्राह्मणों! जिस प्रकार पिण्डर नदी (नन्दपर्वत के नीचे) हिमानी से निकल कर विष्णुगङ्गा के साथ मिली—उसी का वर्णन हमने किया है। यह कर्णप्रयाग का वर्णित माहात्म्य बहुत ही प्रशस्त है तथा यश, आयुष्य और पुत्र प्राप्त कराने वाला है। इसका श्रवण करने से मनुष्य पाप-रहित हो जाता है॥ २-४७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में वर्णित 'कर्णप्रयाग'माहात्म्य के अन्तर्गत 'पिण्डारका'माहात्म्य नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'वरम्' इति 'ग'। २. 'पूजितम्' इति 'क'।
३. 'त्रिसप्तकुलैः सार्धम्' इति 'क'।

२५

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं पिण्डारकाख्यानं प्रयागस्य तथैव च । त्वत्तो याः[1] सरितः पुण्याः पर्वता ये तपोधन ॥१॥
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामस्तासां तेषां च सुव्रत ॥ २ ॥

व्यास उवाच—

ततस्तु दक्षिणाशायां प्रयागस्य यतव्रताः । वैन्ध्यो नाम गिरिः पुण्यः शिखरैः पञ्चभिर्युतः॥३॥
नानावृक्षलताकीर्णो नानाधातुविराजितः । सिद्धगन्धर्वकन्याभिः सेवितः सुमनोहरः ॥४॥
विद्यते मुनिशार्दूला द्वितीयो हिमवानिव । तमारुह्य महाभागाः पापान्मासक्रताज्जनाः[2] ॥
विमुञ्चन्ति न सन्देहः कृत्स्नादिव[3] महर्षयः ॥ ५ ॥
तस्य वामे महाभागा वैन्ध्या नाम महेश्वरी । पूज्यते सिद्धगन्धर्वैस्तथा षोडशमातृभिः ॥६॥
तां पूज्य मानवानां वै शत्रुतो न भयं भवेत् । तस्य पश्चिमभागे वै[4] दारकाख्यं महागिरिम् ॥
समारुह्य महापुण्यं दारकां प्रतिपूजयेत् । तत्रोद्भवा सरिच्छ्रेष्ठा सुचन्द्रा[5] द्विजसत्तमाः ॥८॥
चन्द्रार्धसदृशी पुण्या गता पिण्डारकां प्रति । निमज्य विधिवत् तस्यां देहं चन्द्रोपमं भवेत् ॥९॥
ततो दुर्विन्ध्यनामा वै पर्वतः समुदाहृतः । तत्र दुर्विन्ध्यसंज्ञं वै नागं सम्पूज्य मानवाः ॥१०॥
सर्पभीतिं न विन्दन्ति दशवर्षाणि पञ्च च । ततः पाण्डुगिरिः पुण्यः ख्यायते ऋषिसत्तमाः ॥११॥

ऋषियों ने कहा—हे तपोधन ! आपके द्वारा पिण्डारका नदी का आख्यान तो सुना, अब कर्णप्रयाग, उस क्षेत्र की नदियाँ तथा पर्वत-शृङ्खलाओं का वर्णन सुनने के लिये हम लोग इच्छुक हैं ॥ १-२ ॥

व्यासजी ने कहना प्रारम्भ किया—व्रती तपस्वियों ! कर्णप्रयाग के दाहिनी ओर पाँच शिखरों से युक्त 'वैन्ध्य' पर्वत है। वह अनेक वृक्षों, लताओं से परिवेष्टित, अनेक धातुओं से शोभित, सिद्ध-गन्धर्व-कन्याओं से संकुलित एवं मनोहारी होते हुए भी दूसरे हिमालय के समान विराजमान है। उस पर चढ़ने से मनुष्य घोर पापों से भी विमुक्त हो जाते हैं। उस पर्वत के बाईं ओर 'वैन्ध्या' देवी हैं। वे सिद्ध-गन्धर्वों तथा सोलह मातृकाओं[6] से पूजित हैं। उनके पूजन से मनुष्यों को शत्रुकृत भय नहीं होता। वैन्ध्य के पश्चिम भाग में 'दारक' पर्वत है। उस पर आरूढ़ हो 'दारका' देवी का पूजन करना चाहिये। हे तपस्वियों ! वहाँ से 'सुचन्द्रा' नाम की नदी निकलती है। वह अर्धचन्द्राकार होती हुई पिण्डारका में मिल जाती है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करने से शरीर कान्तियुक्त हो जाता है। तदनन्तर 'दुर्विन्ध्य' नामक पर्वत

---

१. 'ततो याः' इति 'घ' 'ङ' । २. 'पापान्मासकृताञ्जनाः' इति 'क' ।
३. कृष्णानिह' इति 'क' । ४. 'हि' इति 'ग' । ५. 'चन्द्रार्घा' इति 'क' ।
६. षोडश मातृकाएँ :—
"गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया जया । देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातरो, लोकमातरः ।
धृतिः, पुष्टिः, तथा तुष्टिः, आत्मनः कुलदेवता । गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश ॥"
(छन्दोगपरिशिष्ट) ।

यमारुह्य जनाः सर्वे स्नात्वा पाण्डुह्रदे शुभे। व्रजन्ति देवभुवनं गन्धर्वजनसेवितम् ॥१२॥
पाण्डोः पूर्वे[1] महाभागाः पुण्यो वेणुगिरिः स्मृतः। उच्छ्रितैः शिखरैः क्रान्तो महामेरुरिवापरः।
आकरैर्विविधैर्युक्तो गुहाभिश्च विराजितः। पुण्याभिश्चन्द्रकान्ताभिः शिलाभिः परिवेष्टितः॥
विद्यते नातिदीर्घो वै साक्षात् शिवतनूपमः[2]। शिखरे तस्य वै विप्राश्चूडेशाख्यं महेश्वरम् ।१५।
सम्पूज्य मानवः सम्यक् शिवलोके महीयते[3]। शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाश्चूडेशाख्यं हि वर्णितम्[4]॥
पातकान्तकरं भूरि सत्यमार्गप्रदर्शकम्। पातकानां विनाशाय यत्र देवो महेश्वरः ॥१७॥
वर्तते[5] मुनिशार्दूलास्तस्मात् कोऽन्यतमोऽधिकः। उपपातकलिप्तानां जनानां निष्कृतिर्नहि ।१८।
चूडेश्वरं महादेवमपूज्य[6] मुनिसत्तमाः। यत्र चूडामणिर्नागो मुक्तो ब्रह्मवधात् किल॥
शैवीं भक्ति समारभ्य श्रुत्वा शिवकथां तथा ॥ १९ ॥

ऋषय ऊचुः—

कथं चूडामणिर्नागः किल्विषं कृतवान् पुरा। कथं शैवीं कथां श्रुत्वा मुक्तो द्विजवधाद् गुरो॥

व्यास उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। नागराजस्य संवादं ब्राह्मणस्य तपोधनाः ॥२१॥
कश्यपस्य सुतो विप्राः स कद्रूतनयो बलिः[7]। श्रेष्ठो नागसमाजे वै चूडामणिरितीरितः ॥२२॥

है। वहाँ दुर्विन्ध्य नामक नाग का पूजन करने से मानव पन्द्रह वर्ष पर्यन्त सर्प-भय से रहित हो जाता है। तत्पश्चात् पवित्र 'पाण्डुगिरि' है। उस पर आरूढ़ हो 'पाण्डुसर' में स्नान करने पर मनुष्यों को गन्धर्वजनों से सेवित स्वर्ग-लाभ होता है। हे महर्षियों! तब पाण्डुगिरि के पूर्व की ओर 'वेणुपर्वत' है। वह उन्नत शिखरों से क्रान्त दूसरे महामेरु के सदृश प्रतीत होता है और अनेक खानों तथा गुहाओं से युक्त है। इसके साथ ही वहाँ स्फटिक-मणि की शिलाएँ भी हैं। यद्यपि उसका विस्तार अधिक नहीं है तथापि वह शिवजी के शरीर की तरह गौर है। उसके शिखर पर 'चूडेश' शिव हैं। उनका पूजन करने से मनुष्यों को शिवलोक प्राप्त होता है। मुनिवरों! आप लोग पापों के विनाशक एवं सत्यमार्ग-प्रदर्शक चूडेश महादेव का माहात्म्य सुनें। जिस वेणु-पर्वत पर पातकों का नाश करने के लिए स्वयं शिव विराजमान हैं, उससे बढ़कर और दूसरा कौन स्थान हो सकता है? बिना चूड़ेश्वर का पूजन किये उपपातकों से लिप्त मानवों का उद्धार नहीं हो सकता। वहीं पर शिवभक्ति की कथा सुन कर चूडामणि नाग ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो शिवभक्ति करने लगा था॥ ३-१९॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—गुरुवर! चूड़ामणि नाग ने पहले कौन सा पाप किया था? तथा शिवमाहात्म्य को सुन वह ब्रह्महत्या-जनित पाप से कैसे मुक्त हुआ?॥ २०॥

व्यासजी ने यह उत्तर दिया—हे तपस्वियों! इस सम्बन्ध में मैं एक प्राचीन आख्यान

---

१. 'पूर्वम्' इति 'क'।
२. 'साक्षाच्छीततनूपमः' इति 'क'।
३. 'शिवलोकमवाप्नुयात्' इति 'क' 'ख'।
४. 'वर्णनम्' इति 'क'।
५. 'वर्वत्ति' इति 'क' 'ख'।
६. ल्यबादेश आर्षः।
७. 'बली' इति 'क' 'ख'।

जितेन्द्रियो जितारातिर्निर्ममो निरहंकृतः। बभूव मुनिशार्दूलाः स नागो धर्मतत्परः ॥२३॥
हिंसावृत्तिं परित्यज्य वायुभक्षो जितेन्द्रियः। शीर्णपर्णजलाहारो[1] बभूव मुनिसत्तमाः ॥२४॥
कदाचिद्भूतलं पुण्यं ज्ञात्वा नागो जगाम ह। ददर्श स महीमध्ये तीर्थानि विविधानि च ॥२५॥
यत्र यत्र सुपुण्यं वै तीर्थं स दृष्टवांश्च हि। तत्र तत्र तपस्तेपे पर्णमूलफलाशनः ॥२६॥
कालेन महता विप्रास्तपन्तं[2] तं नदीतटे। नागं सन्ताडयामास यष्टिना ब्राह्मणो गुणी ॥२७॥
ततस्तं दंशयामास रुषितो नागनायकः। स पपात महीपृष्ठे दृष्टो नागेन वै द्विजः ॥२८॥
ततस्तं ब्राह्मणं ज्ञात्वा पतितं धरणीतले। कथं मुक्तो भविष्यामि इति संचिन्त्य वै वने ॥२९॥
स्वकर्म गर्हयन् विप्रा ययौ नागो महामनाः। ददर्श स तपस्यन्तं ब्राह्मणं गहने वने ॥३०॥
अनन्यचेतसं साक्षाद् ध्यायमानं जनार्दनम्। तं ननाम तदा नागः परिपूर्णेन चेतसा ॥३१॥
तस्य वाष्पेण[3] तप्ताङ्गो ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः। कोऽयमित्येव संचिन्त्य ददर्शाजगरं महान्॥३२॥
प्रणतं प्रणतो भूत्वा तमुवाच तदा द्विजः ॥ ३३ ॥

नागराज और ब्राह्मण के संवाद-स्वरूप सुनाता हूँ। वह इस प्रकार है। हे विप्रवरों! कश्यप[4] और कद्रू[5] का बली पुत्र चूड़ामणि नाग समाज में बड़ा श्रेष्ठ था। वह शत्रुजयी, जितेन्द्रिय, वीतराग, निरहंकारी एवं धर्मपरायण था। हे मुनिवरों! उसने हिंसा करनी छोड़ दी तथा इन्द्रियों को वश में कर वायुभक्षी हो गया। (इसके साथ ही) वह सूखे पत्तों का आहार और जल पीकर ही निर्वाह करने लगा। भूतल को पवित्र जान कर वह पर्वत से नीचे उतर आया और उसने अनेक तीर्थ देखे। उन तीर्थों में केवल पत्तों तथा कन्दमूलों को खाते हुए उसने तपश्चर्या की। हे ब्रह्मर्षियों! चिरकाल पर्यन्त नदी के किनारे तपश्चर्या करते हुए गुणवान् ब्राह्मण ने उसे डंडे से पीट दिया। तब क्रुद्ध होकर नाग ने उसे डस लिया। नाग से डसे जाने पर ब्राह्मण जमीन पर गिर पड़ा। उसे गिरा जानकर वह यह सोचने लगा कि मैं इस पातक से कैसे मुक्त होऊँगा? तब वह नाग अपने किये हुए को घृणित जान कर घने वन में चला गया। वहाँ नाग ने एक-मन हो विष्णु का ध्यान करते हुए एक ब्राह्मण को देखा। नाग ने श्रद्धापूर्वक उसे प्रणाम किया। नाग की फुंकार से सन्तप्त होकर वह सोचने लगा कि वह कौन होगा?

---

१. 'शीर्णपत्रजलाधारो' इति 'क'। २. 'तपस्यन्तम्' इति 'क' 'ख'। ३. 'वाक्येन' इति 'क' 'ग'।

४. रामायण और महाभारत के अनुसार 'कश्यप' ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के मानसपुत्र हैं। अन्य मतानुसार ये मरीचि की स्त्री कला के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। दक्ष प्रजापति ने अपनी तेरह कन्याओं के साथ इनका विवाह किया था (भागवत – ३।१४ – ७)। इन्हें ब्रह्मवादिनी या लोकमाता कहा गया है। इनके नाम ये हैं—दिति, अदिति, दनु, विनता, खसा, कद्रू, मुनि, क्रोधा, अरिष्टा, इरा, ताम्रा, इला और प्रधा। कश्यप की वंशावली 'आर्ष रामायण' के आदिकाण्ड में विस्तार के साथ दी हुई है। जब कश्यप अपनी पुत्रियों के कारण क्रुद्ध हो गए थे तब उन्होंने 'कश्य' (एक प्रकार का पेय) पी लिया। तभी से इन्हें कश्यप कहा जाने लगा। देखें—"कन्यानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिताः प्रजाः। अपिबत् स तदा कश्यं, कश्यं मद्यमिहोच्यते॥"

—वायु० ६५–११५।

५. 'कद्रू' नागमाता कही जाती है। इसके गर्भ से १००० सर्प उत्पन्न हुए थे। इसी से यह सर्पों की जननी कही गई है।

ब्राह्मण उवाच—

धृत्वा नागशरीरं वै को भवानसि शंस मे । केन त्वमिह संप्राप्तो भूत्वा म्लानमुखः स्वयम् ।३४।

व्यास उवाच—

सर्पस्तद्वचनं श्रुत्वा वाष्पगद्गदया गिरा । उवाच वचनं सम्यक् यथापूर्वं हि वै द्विजाः ।।३५।।

नाग उवाच—

देहं स्वाभाविकं विप्र विद्यते मे न संशयः । यत्त्वया म्लानवदनं पृष्टो मे कथयामि तत् ।।३६।।
अहं चूडामणिर्नाम नागोऽस्मि द्विजसत्तम । शीर्णपर्णाशनं[1] नाम व्रतमास्थाय संस्थितः ।।३७।।
तीर्थानि भूतले श्रुत्वा सोऽहं भूमौ समागतः । दृष्ट्वा तीर्थान्यनेकानि नीतं वर्षशतं मया ।३८।
साम्प्रतं दैवयोगेन प्राप्तवान् सुजुगुप्सितम् । तेनाऽहं म्लानवदनो जातोऽस्मि द्विजसत्तम ।।३९।।

ऋषिरुवाच—

कथं जुगुप्सितं कर्म कृतवानसि साम्प्रतम् । तत् सर्वं ब्रूहि मे नाग करिष्यामि हितं तव ।।४०।।

नाग उवाच—

तपस्यन्तं हि मां कश्चित् सुपुण्ये सरयूतटे । ब्राह्मणस्ताडयामास यष्टिना द्विजसत्तम[2] ।।४१।।
रुषितेन मया ब्रह्मन्ब्राह्मणो विनिपातितः । पापेन तेन मे चाद्य म्लानं संजायते मुखम् ।।४२।।
नास्य पापस्य निष्कृतिं पश्यामि द्विजसत्तम । अपि तीर्थशतैर्वापि तपोयज्ञैः सुदक्षिणैः[3] ।।४३।।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । यदि जानासि वै ब्रह्मन् उपायं तद् वदस्व मे ।४४।

इतने ही में उसने अजगर को देखा । सामने उसे प्रणाम करते हुए देख ब्राह्मण ने विनय पूर्वक कहना प्रारम्भ किया ।। २१-३३ ।।

ब्राह्मण बोला—नाग का शरीर धारण किये हुए मुझे यह बतायें कि आप कौन हैं ? आप यहाँ किस हेतु आए हैं तथा आप का मुख म्लान क्यों हो गया हैं ? ।। ३४ ।।

(इस बीच) व्यासजी ने कहा—हे विप्रवरों ! नाग ने ब्राह्मण की बातें सुनकर गद्गद होते हुए अपना पूर्व वृत्तान्त कहना आरम्भ किया ।। ३५ ।।

नाग बोला—हे विप्र ! मेरा यह शरीर स्वाभाविक है । म्लान-मुख होने के विषय में मैं आप को बतलाता हूँ । 'हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं चूडामणि नाम का नाग हूँ । सूखे पत्तों को खाने का व्रत धारण किये, पृथ्वी पर अनेक तीर्थ हैं—यह जानता हुआ, मैं भूमण्डल पर चला आया । अनेक तीर्थों का दर्शन करते हुए मैंने सौ वर्ष बिता दिए । इस समय मैंने दुर्भाग्यवश एक निन्दनीय कार्य किया है । अतः मेरा मुख म्लान हो गया है ।। ३६-३९ ।।

(तब) ऋषि ने पूछा—हे नाग ! तुमने यह घृणित कार्य क्यो किया ? मुझे पूरा वृत्तान्त बतलाओ । मैं तुम्हारा हित करूँगा ।। ४० ।।

नाग ने उत्तर दिया—हे द्विजश्रेष्ठ ! सरयू-तट पर मेरे तपश्चर्या करते हुए किसी ब्राह्मण ने मुझ पर लट्ठी से प्रहार किया । रुष्ट होकर मैंने ब्राह्मण को डस लिया । उसी पाप से मेरा मुख म्लान है । सैकड़ों तीर्थों एवं दक्षिणासहित अनेक यज्ञों के करने पर भी इस पाप

---

१. 'शीपत्राशनम्' इति 'ग' ।
२. 'द्विजसत्तमः' इति 'क' 'ख' ।
३. 'सदक्षिणैः' इति 'क' ।

ऋषिरुवाच—

प्रायश्चित्तैस्तपोयज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि । अन्येषां पातकानां च निष्कृतिर्विद्यते भुवि ॥४५॥
निष्कृतिर्ब्रह्महत्याया नास्ति नागपते क्वचित् । तथापि कथयिष्यामि निष्कृतिं ते न संशयः ॥४६॥

अस्त्युत्तरस्यां दिशि पुण्यसंज्ञो हिमालयो नाम सुरेशसेव्यः ।
तस्यैव कक्षे किल वेणुनामा विराजते मेरुसमानकक्षः ॥ ४७ ॥
तस्मिन् महाद्रौ त्रिदशैः सुपूजितश्चूडेश्वरो नाम हरो विराजते ।
मृदङ्गवाद्यैः पणवैश्च गोमुखैः सेवन्ति[1] देवाः सचतुर्मुखं विभुम् ॥ ४८ ॥
त्वं तत्र गत्वा शितिकण्ठदेवं चूडेश्वरं देवपतिं महेशम् ।
आराध्य तं विप्रवधाद्धि नाग ! विमुक्तिमाप्नोषि न संशयोऽस्तु ॥ ४९ ॥

व्यास उवाच—

मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा स नागो हर्षपूरितः । प्रत्युवाच ऋषिं विप्रा वाष्पव्याकुलया गिरा ॥५०॥

नाग उवाच—

कस्मात्प्रवेशः क्षेत्रेऽस्मिन् निर्गमः कुत्रतः स्मृतः । कथं पूजाविधानं वै कथयस्व तपोधन ॥५१॥

व्यास उवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्ध्यानपरायणः । उवाच वचनं विप्रा धर्ममार्गप्रदर्शकम्[2] ॥५२॥

से छुटकारा होता नहीं दिखाई पड़ता । (अतः) मेरा शरीर शिथिल हो रहा है तथा मुँह सूख रहा है । यदि कोई उपाय आप जानते हों तो बतलायें ? ॥ ४१-४४ ॥

ऋषि ने उसका समाधान किया—नागराज ! प्रायश्चित, तपश्चर्या, यज्ञ एवं दानों के करने से दूसरे प्रकार के पापों का निवारण तो सम्भव है, किन्तु ब्रह्महत्या का निवारण सम्भव नहीं । तो भी मैं निःसन्देह कोई न कोई उपाय बतलाऊँगा । (तुम उसे सुनो) उत्तर दिशा में पवित्र हिमालय पर्वत शिवजी का वासस्थान है । उसी के बगल में मेरु के समान 'वेणु' नामक पर्वत सुशोभित है । उसके महनीय शिखर पर देवों से पूजित 'चूडेश' महादेव विराजमान हैं । मृदङ्ग, पणव, गोमुख आदि वाद्यों के निनादपूर्वक देवगण उन चतुर्मुख भगवान् की पूजा करते हैं । तुम वहाँ जाकर नीलकण्ठ चूडेश्वर महादेव की आराधना कर निःसन्देह इस ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाओगे ॥ ४५-४९ ॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार मुनि की वाणी सुन प्रसन्नमना वह नाग गद्गद होकर मुनि से फिर कहने लगा ॥ ५० ॥

नाग बोला—तपोधन ! उस क्षेत्र में जाने और आने का मार्ग कौन सा है ? वहाँ जाने पर पूजा की क्या विधि है ? यह आप बतलायें ॥ ५१ ॥

व्यासजी ने कहा—हे ब्राह्मणों ! नाग की वाणी को सुनकर ऋषि ध्यानमग्न हो गए । फिर उन्होंने धर्ममार्ग-दर्शक वचन बोलने आरम्भ किये ॥ ५२ ॥

---

१. छन्दोभङ्गभिया परस्मैपदप्रयोगः ।

२. अयं श्लोकः 'क' पुस्तके नोपलभ्यते । लेखकस्य प्रमादात् त्रुटितो भवेत् । सन्दर्भदृष्ट्या अपेक्षितः ।

ऋषिरुवाच—

शृणुष्व नागशार्दूल वचनं मे उदाहृतम्। उवाच वचनं विप्रा धर्ममार्गप्रदर्शकम् ॥५३॥
तथा तस्मिन् प्रवेशो वै निर्गमस्तु यथा स्मृतः। उत्तरस्यां दिशि नाग-नाम्ना नागपुरो गिरिः॥
तस्य वामे महापुण्या नदीसारा महानदी। तां निमज्य महाभागाः सुपुण्यां रथवाहिनीम् ॥५५॥
गत्वा निमज्ज्य विधिवत् सन्तर्प्य विधिपूर्वकम्। पितृ-पितामहादींश्च ततो ब्रह्महृदं व्रजेत् ।५६।
स्नात्वा ब्रह्महृदे पुण्ये गौतमाख्यं हृदं व्रजेत्। गौतमी-रथवाहिन्योः सङ्गमे विधिपूर्वकम् ॥५७॥
संस्नाप्य रथवाहिन्या दक्षिणे गीतपर्वतम्[1]। गत्वा सम्पूज्य वै नाग गरुडेशं महेश्वरम् ॥५८॥
तत्र[2] पाण्डुवने गत्वा स्नात्वा पाण्डुसरे तथा। ततो वेणुगिरिं गत्वा चूडेशं प्रणतो व्रजेत् ।५९।
गन्धपुष्पाक्षतैः पुष्पैः सम्पूज्य विधिपूर्वकम्। प्रणम्य च यथान्यायं परिक्रम्य पुनः पुनः ॥६०॥
स्नात्वा च रथवाहिन्या मूले प्रयतमानसः। ततो निष्क्रमणं कृत्वा पुण्यं देवतटं व्रजेत् ॥६१॥
तत्र स्नात्वा च विधिवत् सर्वपापैः प्रमुच्यते। स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग[3] व्रजस्व सुसमाहितः॥

व्यास उवाच—

इति तस्य ऋषेर्वाक्यमाकर्ण्य स महामनाः। जगामोत्तरमार्गेण यत्र सा[4] रथवाहिनी ॥६३॥
तां निमज्य[5] महाभागाः स नागो गौतमे हृदे। गरुडेशं महादेवं वामे सम्पूज्य वै तदा ॥६४॥
चूडेशस्य स्थलं दिव्यं जगाम स महामतिः। तत्र चूडेश्वरं देवं सम्पूज्य स पुनः पुनः ॥६५॥

ऋषि बोले—हे नागशार्दूल! मेरी बात सुनो–वहाँ का प्रवेश और निर्गम-मार्ग बतला रहा हूँ। उत्तर दिशा में 'नागपुर' नामक पर्वत है। उसके बाई ओर 'नदीसारा' एक बड़ी नदी है। हे महाभाग उसमें स्नान कर पवित्र रथवाहिनी की ओर जा कर वहाँ भी स्नान करें। विधिवत् पितृ-तर्पण करने के पश्चात् ब्रह्म'हृद' की तरफ जाना चाहिये। वहाँ भी स्नान कर आगे 'गौतम'-हृद में जाकर 'गौतमी' और 'रथवाहिनी' (रामगङ्गा) के संगम में विधिपूर्वक स्नान करें। हे नाग! तदनन्तर रथवाहिनी के दाहिनी ओर 'गीत'पर्वत पर जाकर 'गरुडेश' महादेव का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'पाण्डुवन' में जाकर 'पाण्डुसर' में स्नान करना विहित है। फिर 'वेणु' गिरि में जाकर 'चूडेश' महादेव को नमन करते हुए गन्ध-अक्षत-पुष्पादि से उनका अर्चन कर परिक्रमा की जाय। फिर रथवाहिनी के उद्गम स्थल पर स्थिरचित्त हो स्नान करने के बाद वहाँ से निकलकर 'देवतट' को जायें। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करने से पापों से छुटकारा मिलता है। महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो। बस अब तुम सुस्थिर होकर वहाँ जाओ॥ ५३–६२॥

व्यासजी ने कहा—उस ऋषि के वचन सुन कर वह महामना नाग उत्तर दिशा का अवलम्बन कर 'रथवाहिनी' नदी की ओर गया। हे महर्षियों! उसमें स्नान कर उस नाग ने गौतम-हृद में गरुडेश शिव का पूजन किया। वहाँ से वह चूडेश के पवित्र धाम की तरफ गया। चूडेश का पूजन करने के पश्चात् भक्तिसहित प्रणाम-पूर्वक परिक्रमा कर रथवाहिनी

---

१. 'गोष्पति शिवम्' इति 'क'। २. 'ततः' इति 'क'। ३. 'महानाग' इति 'क' 'ख'।
४. 'स्यात्' इति 'क'। ५. 'तत्र स्नात्वा' इत्यपेक्ष्यते।

ननाम परया भक्त्या परिक्रम्य तथैव च। ततस्तु रथवाहिन्या मूले संस्नाप्य वै तथा ॥६६॥
स प्राप परमां सिद्धिं मुक्तो द्विजवधाद् द्विजाः। ततः प्रभृति वै विप्राः स नागः परमेश्वरम् ॥
पूजयामास विधिवद् ऋषीणां चोपदेशतः ॥ ६७ ॥
चूडेश्वरस्य माहात्म्यं मयैतत् समुदाहृतम्। यः शृणोति महाभागाः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे चूडेश्वर-माहात्म्यं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥

के मूलस्थान में उसने स्नान किया। हे ब्रह्मर्षियों! इस तरह उस नाग ने ब्रह्महत्या से छुटकारा पाकर सिद्धि प्राप्त की। ऋषि से उपदिष्ट होने पर वह नाग तब से विधिपूर्वक परमेश्वर की पूजा करता रहा। हे महर्षियों! चूडेश्वर का जो माहात्म्य मैंने आप लोगों से कहा है, उसके श्रवण करने वाले भी पापरहित हो जाते हैं ॥ ६३-६८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'चूडेश'-माहात्म्य नामक
पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं चूडेशमाहात्म्यं त्वत्तो हि मुनिसत्तम। माहात्म्यं रथवाहिन्याः श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥१॥

व्यास उवाच—

शृण्वतां मुनिशार्दूला गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥२॥
अणुमात्रमपि स्पृष्ट्वा[1] या पुण्या रथवाहिनी। ददाति ब्रह्मभुवने[2] किमु स्नात्वा द्विजोत्तमाः।
योजनाद् दूरतो दृष्ट्वा यां पुण्यां रथवाहिनीम्। विलीयन्ते हि पापानि हिमवद् भास्करोदये।
गङ्गायाः सप्तमो वाहो विद्यते मुनिसत्तमाः। यां वै भगीरथो राजा रथमार्गेण[3] वाहयत् ॥५॥

ऋषय ऊचुः—

कथं भगीरथो राजा रथमार्गे तपोधन। वाहयामास वै गङ्गाम् सुपुण्यां रथवाहिनीम् ॥६॥

व्यास उवाच—

सगराणां स राजर्षिर्मुक्तिमिच्छन्तपोधनाः। गङ्गां संमानयामास विष्णुपादसमुद्भवाम् ॥७॥
गङ्गां स पतितां दृष्ट्वा सुपुण्ये वेणुपर्वते। रथं संचालयामास रथमार्गेण तां तथा ॥८॥
ततः प्रभृति वै विप्राः ख्याता सा रथवाहिनी। विष्णोश्चरणसम्भूता पतिता वेणुपर्वते ॥९॥
भगीरथेन पुण्येन प्रार्थिता रथवाहिनी। बभूव वेणुसंज्ञे वै पर्वते सरितां वरा ॥१०॥

ऋषियों ने फिर पूछा—हे मुनिवर! आप से हमने 'चूडेश' का माहात्म्य तो सुन लिया। अब हम लोग 'रथवाहिनी' का माहात्म्य सुनने के इच्छुक हैं ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठों! सब पापों एवम् उपद्रवों की शामक रामगङ्गा के श्रेष्ठ माहात्म्य को आप लोग सुनें। जिसके जल की बूंद का स्पर्श करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता हो तो उसमें स्नान करने का कितना फल होगा—यह कहा नहीं जा सकता। एक योजन दूर से ही उसका दर्शन करने से सूर्योदय के होते ही हिम के पिघलने के समान समग्र पापों का विलय हो जाता है। यह गङ्गा की सातवीं धारा है, जिसे भगीरथ ने रथमार्ग से प्रवाहित किया ॥ २-५ ॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—हे तपोधन! कृपया यह बतलायें कि राजा भगीरथ ने किस प्रकार रथवाहिनी (रामगङ्गा) को रथमार्ग से प्रवाहित किया? ॥ ६ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—हे तपोधनों! राजर्षि भगीरथ सगर के पुत्रों की मुक्ति की इच्छा करते हुए भगवान् विष्णु के चरणों से प्रकट हुई गङ्गा को सादर ले आये। पुण्यात्मा राजर्षि से प्रार्थित विष्णुचरणोत्पन्न रथवाहिनी 'वेणु' पर्वत पर गिरीं। मगरों व कछुओं से परिपूर्ण मनोहर दीखती हुई गङ्गा की श्वेत एवं सुनहली मिश्रित बालू से अवभासित एक धारा वेणुपर्वत पर सुशोभित हुई। उसे वहां गिरता हुआ देखकर रथ पर बैठे भगीरथ ने रथ के पीछे पीछे चलाया। हे विप्रवरों! तभी से वह इस नाम से प्रसिद्ध हुई। वह श्रेष्ठ नदी सहस्राधिक

---

१. 'स्पृष्टा' इति 'क'। २. 'विष्णुभुवनम्' इति 'क'। ३. अडभाव आर्षः।

मकरैः कमठैश्चापि परिपूर्णा मनोहरा । नानाविधैः पक्षिगणैः सेविता सुमनोहरा ॥११॥
गाङ्गेयसिकतामिश्रा स्वर्णधातुविराजिता । पातकानां विनाशाय एका[1] या भूतले स्थिता ।१२।
तीर्थैरनेकसाहस्रैः परिपूर्णा महानदी । तस्यां वै स्नानमात्रेण जना दुष्कृतकारिणः ॥१३॥
शुद्धिं यान्ति न सन्देहः[2] सत्यं सत्यं मयोदितम्[3] । ये निमज्जन्ति मनुजाः पुण्यां तां रथवाहिनीम् ।
शतजन्मार्जितं पापं निमज्य क्षालयन्ति ते । नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न हि व्याससमो द्विजः ।१५।
अन्नदानसमं दानं नास्ति नास्ति भुवः स्थले । प्रवाहं मुनिशार्दूला गङ्गायाः सप्तमं शुभम् ।१६।
प्राप्य ये न निमज्जन्ति ते यान्ति नरकं प्रति । तटं वै रथवाहिन्याः प्राप्य ये न वसन्ति हि ।१७।
तेषां यमालये वासो विद्यते नात्र संशयः । रथप्राट्[4] वर्ण्यते पुण्या या वेदे मुनिसत्तमाः ॥१८॥
तस्या माहात्म्यकथने न समर्थोऽस्मि साम्प्रतम् ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे रथवाहिनीमाहात्म्यं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥

तीर्थों से परिपूर्ण है । वह अकेली ही पातकों के विनाश के लिए भूतल पर स्थित है । उस रामगङ्गा में स्नान करने से पातकी शुद्ध हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । मैं यह सत्य कह रहा हूँ कि पवित्र रथवाहिनी में गोता लगाकर स्नान करने वाले लोगों के अनेक जन्मार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं । गङ्गा के समान तीर्थ तथा वेदव्यास के समान ब्राह्मण कोई नहीं है । इसी तरह अन्नदान के समान भूमि पर कोई दूसरा दान नहीं है । हे मुनिवरों ! गङ्गा की सातवीं[5] धारा को प्राप्त कर जो स्नान नहीं करते हैं, वे नरकगामी होते हैं । साथ ही जो रथवाहिनी गङ्गा के तट को प्राप्त कर वहाँ वास नहीं करते उन्हें निःसन्देह यमलोक प्राप्त होता है । हे श्रेष्ठ मुनिवरों ! रथ के साथ चलने वाली गङ्गा का माहात्म्य जो वेद में वर्णित है, मैं उसका वर्णन करने में इस समय असमर्थ हूँ ॥ ७–१९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'रथवाहिनी'-माहात्म्य नामक
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'एव या' इति 'ग' । २. 'न संशयः' इति 'ग' । ३. 'वदाम्यहम्' इति 'क' ।
४. 'रथगा' इति मुद्रिते विभाण्डेश्वरमाहात्म्ये पाठः । अयमेव समीचीनः पाठः ।
५. अन्यत्र पुराणों में भागीरथी गङ्गा को सातवीं धारा माना है । स्कन्दपुराण के केदारखण्ड में गंगा की दस धाराओं का उल्लेख है । इनमें सहायक नदियाँ तथा गंगा नामयुक्त नदियाँ गृहीत हैं । के० ख० अ० ३९–४० ।

२७

ऋषय ऊचुः—

अधुना रथवाहिन्यास्तीर्थानां वर्णनं परम् । विप्रर्षे श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो हि बहुविस्तरम् ॥१॥

व्यास उवाच—

माहात्म्यं हि महाभागास्तीर्थानां विस्तरेण च । अपि वर्षशतैः साग्रैः शक्यते नाधुना कुतः[1] ।२।
संक्षेपेण कथिष्यामि[2] शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । मूले तु रथवाहिन्या जलमध्यगतं हरिम् ॥३॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् गोवधाद्विप्रमुच्यते । ततः सरस्वतीसङ्गे सन्निमज्ज्य द्विजोत्तमाः ॥४॥
महेन्द्रभवनं पुण्यं प्राप्नोति नहि[3] संशयः । ततस्तु गौतमीसङ्गं[4] पुण्यमस्ति तपोधनाः ॥५॥
तत्र स्नात्वा च मनुजः पातकाद्वचसा कृतात् । विमुच्यति महाभागास्तथैव मनसा कृतात् ॥६॥
ततस्तु रथवाहिन्या वामे देवतटं स्मृतम् । तत्र देवतटे स्नात्वा नरो वै मुक्तिभाग्भवेत् ॥७॥
ततस्तु शकटीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः । शकटीरथवाहिन्योः सङ्गे स्नात्वा च शङ्करम् ॥८॥
सम्पूज्य मुक्तिमाप्नोति प्रसादाच्छूलपाणिनः । नदीसारा तु वै विप्राः संगमे संगता शुभा ॥९॥
तयोर्मध्ये महादेवीं कपालीं पूजयेत् ततः ॥ १० ॥
ततो द्रोणाद्रिसम्भूता वैताली सरितां वरा । संगमे रथवाहिन्याः संगता द्विजसत्तमाः ॥११॥

ऋषियों ने कहा—विप्रर्षे ! अब हम रथवाहिनी से सम्बद्ध अनेक तीर्थों का वर्णन विस्तार के साथ सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहना आरम्भ किया—हे महाभागों ! तीर्थों के साथ माहात्म्य का विस्तृत वर्णन करना सैकड़ों वर्षों में भी सम्भव नहीं । तथापि इस समय मैं संक्षेप में कहूँगा । हे मुनिवरों ! आप लोग सुनें । रथवाहिनी के उद्गमस्थल पर जलमध्यस्थ विष्णु का पूजन कर मनुष्य गोवध-सदृश महापातक से मुक्त होता है। तदनन्तर सरस्वती-संगम में स्नान करने से, हे तपोधनों ! मनुष्य को निःसन्देह महनीय इन्द्रलोक प्राप्त होता है। तत्पश्चात् गौतमी का पवित्र सङ्गम है । वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य वाणी से किये हुए पातकों से (मिथ्याभाषणादि से) मुक्त हो जाता है । इस बात में कोई सन्देह न किया जाय । इसके बाद रथवाहिनी के बायें तट पर 'देवतट' है । वहाँ स्नान करने से मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है । हे तपोधनों ! इसके अनन्तर 'शकटी' तथा 'रथवाहिनी' नदियों का पुण्यकारक सङ्गम है । उसमें स्नान कर भगवान् शङ्कर का पूजन किया जाय। हे ब्रह्मर्षियों ! शूलपाणि शङ्कर की पूजा कर उनकी कृपा से मानव मुक्तिलाभ कर सकता है। तदनन्तर नदीसारा रथवाहिनी से मिली है। उन दोनों नदियों (नदीसारा तथा रथवाहिनी) के बीच में 'कपाली' (महादेवी) का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर रथवाहिनी के बाईं ओर 'नागार्जुन' पर्वत है। हे द्विजवरों !

---

१. 'कुतः' इति 'क' । 'ततः' इति मुद्रिते पुस्तके ।
२. 'संक्षेपात् कथयिष्यामि' इति मुद्रितपुस्तके । अयमेव समीचीनः पाठः ।
३. 'नैव' इति मुद्रित पुस्तके । ४. 'सङ्ग'शब्दः पुंल्लिङ्गः । 'सङ्गः सुपुण्योऽस्ति' इत्यपेक्ष्यते ।

तत्र स्नात्वा च मनुजा दुष्कृताद् वितरन्ति हि[1] । ततस्तु रथवाहिन्या वामे नागार्जुनो गिरिः ।
यत्र चैवार्जुनो नाम नागः सम्पूज्यते द्विजाः[2] । तथैव दक्षिणे भागे नाम्ना चासुरपर्वतः ॥१३॥
यत्र सम्पूज्यते काली असुरैर्द्विजसत्तमाः[3] । विभाण्डेशेति विख्यातो देवगन्धर्वपूजितः ॥१४॥
यं सुपूज्य महाभागा नान्यं कृत्यं वदन्ति हि । मुनयो वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः ॥१५॥
ख्यायते यो महाभागा लिङ्गरूपधरः स्वयम् । दक्षिणो बाहुसंज्ञो वै देवर्षिगणसेवितः ॥१६॥
यत्र वै मेनका, रम्भा, हरिणी च तिलोत्तमा । तोषणार्थं हि देवस्य नृत्यन्ति द्विजसत्तमाः ॥१७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे रथवाहिनीतीर्थमाहात्म्यं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥

नागार्जुन पर्वत पर 'अर्जुन' नामक नाग की पूजा होती है। तत्पश्चात् द्रोणपर्वत से निकली श्रेष्ठ नदी 'वेताली' है। वह रथवाहिनी के प्रवाह (संगम) में जा मिली है। उसमें स्नान कर मनुष्य पातकों से रहित हो जाते हैं। उसी तरह रथवाहिनी के दक्षिण भाग में असुर[4] (वासुकि) पर्वत है। हे ब्रह्मर्षियों! वहाँ असुरों से 'काली' देवी पूजित हैं। अभी मैंने नागार्जुन श्रेष्ठ पर्वत के विषय में आप से जो कहा है, उसके दक्षिण कुक्षि (दाहिनी घाटी) में देव-गन्धर्वों से पूजित 'विभाण्डेश्वर' नामक महादेव हैं। उनका पूजन करने पर कुछ करने के लिये शेष नहीं रह जाता। सत्यव्रतपरायण वेद के ज्ञाता मुनिगण इस बात को जानते हैं कि यहाँ पर स्वयं शिवजी ने लिङ्गरूप धारण किया है। ऐसी प्रसिद्धि चली आ रही है कि देव तथा ऋषिगणों से सेवित भगवान् शिव की दाहिनी भुजा के रूप में प्रसिद्ध इस विख्यात पर्वत (नागार्जुन) पर शिवजी के सन्तोषार्थ मेनका, रम्भा, हरिणी और तिलोत्तमा नाम की अप्सरायें नृत्य करती हैं ॥ २-१७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में वर्णित 'रथवाहिनीतीर्थ'-माहात्म्य
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'दुष्कृतानि तरन्ति हि' इति मुद्रितपुस्तके। तदनन्तरं 'तथैव दक्षिणे भागे नाम्ना वासुकिपर्वते' इति पाठक्रमः।

२. मुद्रितपुस्तके अयमंशः नास्ति।

३. मुद्रितपुस्तके उत्तरार्धानन्तरं 'नागार्जुनेति यो ख्यातो मया ते पर्वतोत्तमः। तस्य कुक्षौ महादेवो दक्षिणे द्विजसत्तमाः। विभाण्डेश इति ख्यातो देवगन्धर्वपूजितः। यं सम्पूज्य महाभागा नान्यत्कृत्यं हि निश्चयात्'—इति क्रमो वर्तते। आदर्शपुस्तकस्थः पाठ एव समुचितः प्रतिभाति।

४. पाली के पास तल्ला डोरा।

२८

सूत उवाच—

श्रुत्वा ते ऋषयो राजन् माहात्म्यं चातिविस्तरम्[1] । विभाण्डेशस्य माहात्म्यं पप्रच्छुस्तदनन्तरम्॥

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं हि रथवाहिन्या माहात्म्यं मुनिसत्तम । विभाण्डेशस्य चाख्यानं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२॥

व्यास उवाच—

विभाण्डेशस्य चाख्यानं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । दुष्टोपद्रवरोगाणां हेतुभूतं हि नाशने ॥३॥
यस्यार्चनपराः सर्वे समहेन्द्राः सचतुर्मुखाः[2] । विद्यन्ते देवता विप्रास्तस्मात् कोऽन्यो महेश्वरः॥
यस्य संदर्शनाद् विप्रा वाजिमेधसमं फलम् । प्राप्यते यस्य वै विप्रास्तस्मान्नान्यो भुवः स्थले ।५।
मा यजन्त्वश्वमेधेन मा हरिं परिकीर्तयेत् । विभाण्डेशं हरं लोकाः पश्यन्त्वादरपूर्वकम् ॥६॥
मा स्मरन्त्विह विश्वेशं मा काशीं शिववल्लभाम् । स्मरन्त्वेकं महादेवं विभाण्डेशं तपोधनाः ॥
दशवर्षसहस्राणि उषित्वा काशिमण्डले । विश्वेशपूजनाद् विप्रा यत्पुण्यं समवाप्यते ॥८॥
तत्पुण्यं मुनिशार्दूला विभाण्डेशस्य दर्शनात् । सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं मयैयत् समुदाहृतम् ॥९॥
यत्र संस्थापयामास शङ्करो दक्षिणं करम् । तस्मादन्यतमं क्षेत्रं कथं संकथयाम्यहम् ॥१०॥

ऋषय ऊचुः—

कथं वै दक्षिणं बाहुं शङ्करो मुनिसत्तमाः । तत्र संस्थापयामास एतत्कथय साम्प्रतम् ॥११॥

सूतजी बोले—हे राजन् ! उन ऋषियों ने रथवाहिनी के माहात्म्य को सुन कर महर्षि व्यास से विभाण्डेश के माहात्म्य के सम्बन्ध में पूछा ॥ १ ॥

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! हमलोगों ने रथवाहिनी के माहात्म्य को तो जान लिया, अब हम विभाण्डेश के माहात्म्य को जानने के इच्छुक हैं ॥ २ ॥

व्यासजी ने कहना आरम्भ किया—मुनिवरों ! आप लोग विभाण्डेश के माहात्म्य को सुनें । वे दुष्टजनों, उपद्रवों और रोगों के नाश करने में साधन है । इन्द्र, एवं ब्रह्मासहित सब देवगण जिन शिव की पूजा में तत्पर रहते हैं—ऐसे विभाण्डेश्वर से बढ़ कर कौन बड़े प्रभु हो सकते हैं ? उनके दर्शन-मात्र से ही अश्वमेध यज्ञ के समान अच्छा फल मिलता है । अतः इनसे बढ़ कर दूसरा कौन पृथ्वी पर श्रेष्ठ हो सकता है ? लोग भले ही अश्वमेध यज्ञ न करें, हरिनाम-स्मरण भी न करें; किन्तु विभाण्डेश्वर का दर्शन सादर अवश्य करें । हे तपोधनों ! इस लोक में चाहे भगवान् विश्वनाथ एवं शिव की प्रिय नगरी काशी का भी ध्यान न करें, किन्तु अकेले विभाण्डेश महादेव का स्मरण अवश्य करें । हे ब्रह्मर्षियों ! दस हजार-वर्ष-पर्यन्त काशी-क्षेत्र में रहकर विश्वनाथ की अर्चना से जो पुण्य-लाभ होता है, वह पुण्य केवल विभाण्डेश के दर्शन करने से ही प्राप्त हो जाता है । मेरे द्वारा वर्णित यह क्षेत्र सब क्षेत्रों से बढ़ कर है । इसी क्षेत्र में शिवजी ने अपना दाहिना हाथ रखा है । आप ही बतायें कि मैं इससे बढ़ कर किसी दूसरे क्षेत्र को कैसे कह सकता हूँ ? ॥ ३-१० ॥

---

१. 'माहात्म्यमथ विस्तरात्' इति मुद्रितपुस्तके । २. 'समहेन्द्रचतुर्मुखाः' इति मुद्रितपुस्तके परिष्कृतः पाठः ।

व्यास उवाच—

समुद्वाह्य गिरेः कन्यां पार्वतीं मुनिसत्तमाः । शयनं वाञ्छयामास तया सह महेश्वरः ॥१२॥
स वाञ्छन् शयनं विप्रा हिमाद्रिं प्रययौ स्वयम् । सेवितो रुद्रकन्याभिर्गन्धर्वैस्त्रिदशैरपि ॥१३॥
सम्प्राप्तं शङ्करं दृष्ट्वा सिद्धगन्धर्वसेवितम् । शङ्करं पूजयामास अर्घ्याद्यैः स हिमालयः॥१४॥
प्रणम्य च यथान्यायं सम्पूज्य विधिपूर्वकम् । किं करोमीति तं देवमुवाच हिमपर्वतः ॥१५॥
ततो हिमालयं विप्राः प्रत्युवाच महेश्वरः । शयनाय स्थलं त्वत्तः प्राप्तुमिच्छामि पर्वत ॥१६॥
ततो हिमालयो विप्राः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । प्रत्युवाच महादेवं सृष्टिसंहारकारकम् ॥१७॥
धन्योस्म्यनुगृहीतोऽस्मि ममोपरि महेश्वर । कुरुष्व शयनं भद्रं यावदाहूतसम्प्लवम् ॥१८॥
हिमाद्रिवचनं श्रुत्वा स देवो मुनिसत्तमाः । सुष्वाप शयने दिव्ये हिमसीकरसेविते ॥१९॥
शिखरेषु महाभागाः सन्निधाय शिरांसि वै । कटिं कृत्वा महादेवः सुपुण्ये नीलपर्वते ॥२०॥
भुजं नागार्जुने दक्षं वामकं भुवनेश्वरे । कृत्वा पुण्ये महाभागाश्चरणौ दारुकानने ॥२१॥
सुखं सुष्वाप देवेशो भवान्या सह[1] शंकरः । यथा संस्थापयामास स्वभुजं परमेश्वरः ॥
तथैव कथितं विप्राः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे विभाण्डेश्वरमाहात्म्यं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—मुनिश्रेष्ठ ! अब आप हमें यह बतलायें कि भगवान् शंकर ने अपनी दक्षिण भुजा यहाँ पर क्यों और किस प्रकार स्थापित की है ? ॥ ११ ॥

वेदव्यास फिर कहने लगे—मुनिश्रेष्ठों ! शिवजी ने हिमाचल की कन्या पार्वती के साथ विवाहोपरान्त शयन करने की इच्छा प्रकट की । शयन करने की इच्छा से शिवजी रुद्रकन्याओं, गन्धर्वों और देवों से सेवित हिमालय पर चले गये। शिवजी को आया हुआ देख हिमालय ने अर्घ्य-पाद्य-प्रभृति पूजोपचारों से यथोचित सम्मान-पूर्वक विधि-विधान के साथ उनका पूजन किया। तदनन्तर प्रणाम कर यह पूछा कि मेरे योग्य क्या सेवा है ? इस पर, हे ब्राह्मणों ! शिवजी ने हिमाचल से उस क्षेत्र में शयन करने की इच्छा प्रकट की । तब हिमाचल ने बड़े हर्ष के साथ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय के कारणस्वरूप भगवान् शंकर से कहा कि मैं धन्य हूँ । आपने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है । महाभाग ! आप प्रलयपर्यन्त मेरे क्षेत्र में शयन करें । हिमाचल की बातों को सुन कर, मुनिवरों ! भगवान् शंकर ने हिम-संयुक्त दिव्य शय्या पर शयन किया । उन्होंने हिमालय के शिखरों पर सिरों को रख कर नील-पर्वत[2] पर अपनी कमर, नागार्जुन पर दाहिनी भुजा, भुवनेश्वर पर्वत पर बाईं भुजा, तथा पुण्यकारक दारुकानन[3] में पैरों को फैलाया । इस प्रकार सुख-पूर्वक पार्वती के साथ उन्होंने शयन किया । ब्रह्मर्षियों ! जिस प्रकार शिवजी ने अपनी भुजा यहाँ रखी, उसका यथार्थ वर्णन मैंने किया है । अब आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ १२–२२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'विभाण्डेश्वर-'माहात्म्य-
नामक अठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'भवान्या प्रियया सह' इति 'क' । २. बागेश्वर । ३. जागेश्वर ।

ऋषय ऊचुः—

सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। कथयस्व प्रसादेन इह गोप्यमपि सुव्रत ॥१॥

व्यास उवाच—

विभाण्डेशसमं क्षेत्रं नान्यं पश्यामि भूतले। पातकानां विनाशाय पुरा वै पद्मयोनिना ॥
प्रकाशितं महाभागा नारदाय महात्मने ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः—

कथं हि ब्रह्मणा ब्रह्मन् नारदाय महात्मने। कथितं ब्रह्मभुवने तत्त्वं कथय सुव्रत ॥३॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ ब्रह्मलोकं गतो मुनिः। ददर्श लोकनाथेशं ब्रह्माणं देवपूजितम् ॥४॥
तत्र गत्वा महाभागाः प्रणिपत्य पुनः पुनः। पप्रच्छ तं विधातारं नारदो मुनिसत्तमः ॥५॥

नारद उवाच—

त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि लोकनाथ नमोऽस्तु ते। पातकैर्लिप्तदेहानां मनुष्याणां दुरात्मनाम् ॥६॥
[1]पितृमातृद्रुहाणां च तथा पैशुन्यकारिणाम्। कस्मिन् क्षेत्रे महाभाग विमुक्तिर्जायते नृणाम् ।७।
किं त्वया ज्ञायते ब्रह्मन् सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम्। कुत्र सन्तर्प्य पितरः प्राप्नुवन्ति जलं शुभम् ॥
एतद् वेदितुमिच्छामि त्वत्तो लोकपितामह ॥ ९ ॥

व्यास उवाच—

इति नारदवाक्येन बोधितो द्विजसत्तमाः। उवाच वचनं पुण्यं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१०॥

ऋषियों ने कहा—हे तपस्विन्! कृपया अब आप हमें सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र तथा सर्वप्रमुख तीर्थ के सम्बन्ध में बतलायें, चाहे वह भले ही गोपनीय हो ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—विभाण्डेश के समान भूमण्डल पर कोई दूसरा तीर्थ नहीं है। यह बात ब्रह्मा ने नारद ऋषि को पातकों के विनाशक उपायों के सन्दर्भ में कही थी ॥ २ ॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—ब्रह्मर्षे! ब्रह्माजी ने किस प्रकार महात्मा नारदजी को ब्रह्मलोक में यह बात बतलाई? आप उसे बतलायें ॥ ३ ॥

व्यासजी ने कहा—ऋषियों! सत्ययुग के आदि में नारद ब्रह्मलोक में पहुँचे। वहाँ उन्होंने लोकनाथेश तथा देवों से पूजित ब्रह्माजी को देखा। बार-बार प्रणाम करने के बाद नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा ॥ ४-५ ॥

नारदजी बोले—हे लोकनाथ! आपको प्रणाम हैं। पापकारी, दुरात्मा, पितृ-मातृ-द्रोही तथा छल-प्रपञ्ची मनुष्यों की मुक्ति किस क्षेत्र में सम्भव है? ब्रह्मन्! क्या आप को ऐसा सर्वोत्तम क्षेत्र ज्ञात है? किस तीर्थ में तर्पण किये जाने से पितरों को शुभ जल प्राप्त हो सकता है? हे लोकपितामह! आप से मैं यही जानने का इच्छुक हूँ ॥ ६-९ ॥

(इस पर) व्यासजी ने कहा—हे ऋषियों! इस प्रकार नारदजी के वाक्य से बोधित होकर लोकपितामह ब्रह्माजी ने पवित्र वाणी उच्चरित की ॥ १० ॥

---

१. 'पितृ-मातृ-द्रुहांश्चैव' इति परिष्कृतः पाठः मुद्रिते विभाण्डेश्वरमाहात्म्ये।

ब्रह्मोवाच—

शृणुष्व वत्स भद्रं ते यथावत्कथयाम्यहम्[1] । बोधितोऽस्मि सुपुत्रेण शृणुष्व सुसमाहितः ॥११॥
हिमालयतटे रम्ये देवगन्धर्वपूजिते । तापसानामृषीणां च आश्रमैर्बहुभिर्वृतः ॥१२॥
नागार्जुनेति विख्यातः पर्वतो वर्ण्यते भुवि । वामे वै रथवाहिन्या नागराजनिषेवितः ॥१३॥
तस्य कुक्षौ महादेवो विभाण्डेशेति विश्रुतः । तस्य सन्दर्शनात्पुत्र मनुष्याणां दुरात्मनाम् ॥१४॥
पातकानि विलीयन्ते हिमवद् भास्करोदये । राजसूयस्य यज्ञस्य विभाण्डेशस्य पूजनात् ॥१५॥
प्राप्यते मुनिशार्दूल फलं वै नात्र संशयः । पातकैर्लिप्तदेहानां मानवानां द्विजोत्तम[2] ॥१६॥
पूजाभिस्तुषितः शम्भुः सर्वां मुक्ति प्रयच्छति । विश्वनाथं समभ्यर्च्य उषित्वा परिवत्सरम् ।१७।
यत्फलं प्राप्यते वत्स तद् विभाण्डेशदर्शनात् । तत्रैव सुरभी पुण्या मया संप्रेषिता सुत ॥१८॥
सरिद्रूपेण लोकानां पावनार्थं प्रयाति हि । नागार्जुनगिरेः पुण्याद् विनिःसृत्य सरिद्वरा ॥१९॥
विभाण्डेशस्थलं पुण्यं ययौ पापप्रणाशिनी । द्रोणाद्रिपादसम्भूता नन्दिनी च महानदी ॥२०॥
सुरभीसंगमे पुत्र ययौ तीर्थैर्विराजिता । तयोर्मध्ये विभाण्डेशं जानीहि मुनिसत्तम[3] ॥२१॥
सुरभीसरितोर्मध्ये[4] विभाण्डेशं महेश्वरम् । ये पूजयन्ति मनुजास्ते यान्ति शिवमन्दिरम्[5] ॥२२॥
अज्ञानाद् ज्ञानतो वापि विभाण्डेशं महेश्वरम् । स्पृशन्ति ये महाभागास्ते यान्ति शिवमन्दिरम् ॥
अज्ञानादपि वै वत्स वहवः पापकारिणः । स्पर्शमात्राद् दिवं प्राप्ता बको मत्स्याशनाद् यथा ॥

ब्रह्मा ने कहा—वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारे ऐसे सुपुत्र ने मुझे स्मरण दिलाया है । मैं तुम्हें बतलाता हूँ । शान्तचित्त होकर सुनो । देवों तथा गन्धर्वों से सेवित हिमालय के पुण्य तट पर तपस्वी तथा ऋषियों के आश्रमों से व्याप्त 'नागार्जुन' नामक महनीय पर्वत भूमण्डल में विद्यमान है । वह रथवाहिनी गङ्गा के बाईं ओर है और वह नागों के राजा से सेवित है । उसी पर्वत के नीचे बगल में (कुक्षौ) विभाण्डेश्वर महादेव प्रसिद्ध हैं । जिनके दर्शन से, हे नारद ! दुष्ट मनुष्यों के पातक सूर्योदय होने पर हिम के समान विलय (नष्ट) हो जाते हैं । विभाण्डेश की पूजा से नि सन्देह राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है । पातको से ग्रसित शरीरधारी दुष्ट मनुष्यों की सर्वविध पूजा से सन्तुष्ट हुए भगवान् शंकर की कृपा द्वारा जो उत्तम फल प्राप्त होता है, वही सम्पूर्ण फल विभाण्डेश के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाता है । वहाँ पर मेरे द्वारा भेजी हुई नदी के रूप में 'सुरभी' लोगों को पवित्र करने के निमित्त बहती है । पापों को दूर करने वाली वह पवित्र नदी श्रेष्ठ नागार्जुन पहाड़ से निकल कर विभाण्डेश के पुण्यस्थल पर पहुँचती हैं । (दूसरी ओर) द्रोणपर्वत के निचले भाग से निकलती हुई 'नन्दिनी' नदी यहाँ आकर अनेक तीर्थों से युक्त 'सुरभी' नदी से मिल जाती है । इन दोनों नदियों के बीच में विभाण्डेश महादेव हैं । इसे तुम अच्छी तरह समझो । 'सुरभी' और 'नन्दिनी' के मध्य में स्थित जो लोग 'विभाण्डेश' का दर्शन करते हैं, वे शिवलोक में जाते हैं । तथा ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से जो मनुष्य विभाण्डेश का स्पर्श करते हैं उन्हें भी शिवलोक का लाभ है ।

---

१. 'कथयामि ते' इति 'क' ।
२. 'दुरात्मनाम्' इति मुद्रिते संस्करणे ।
३. 'ऋषिसत्तम' इति 'क' ।
४. 'सुरभी-नन्दिनी-मध्ये' इति परिष्कृतः पाठः ।
५. 'शिवमण्डले' इति 'क' ।

नारद उवाच—

बको मत्स्याशनाद् ब्रह्मन् कथं शिवपुरं गतः। विभाण्डेशं कथं प्राप्तः कथं सन्दृष्टवान् पुरा[1]।

ब्रह्मोवाच—

बकः कश्चिद् महाभाग बभूव हिमपर्वते। मत्स्याशनेन दिवसान् निनायाज्ञानकातरः ॥२६॥
सुरभीसरितोर्मध्ये हत्वा मत्स्यान् महाबकः। विभाण्डेशस्य शिरसि स्थापयित्वा चखाद ह ॥
एवं हि कतिचित्कालं कुर्वंस्तस्य[2] दुरात्मनः। जगाम सुमहान् कालो[3] हत्वा मत्स्यान् दिने दिने॥
ततः कालेन महता तत्रैव स बकाधमः। पञ्चत्वमगमद् ब्रह्मन् तत्रैव सुरभीतटे ॥२९॥
नीतो याम्यैर्यमपुरं ददृशुः शिवकिङ्कराः ॥ ३० ॥
प्रत्यानेतुं शिवपुरं ययुर्याम्यान् प्रति द्विज। ऊचुस्ते तान् महाभाग त्यजन्तु बकनायकम् ॥३१॥
नीयतेऽस्माभिर्देवस्य लोके देवर्षिसेविते। प्रत्यूचुर्यमदूतास्ते तान् वै शङ्करवल्लभान् ॥३२॥

यमदूता ऊचुः—

न त्यजामो महाभागाः पापं मत्स्याशिनं बकम्। धर्ममार्गविहीनं वै पापमार्गरतं जडम् ॥३३॥
नानेनेष्टादिपूर्तं वै नानेनाराधितो हरः। नानेन सरितां श्रेष्ठा स्नाता भागीरथी शुभा ॥३४॥
कथमस्य महाभागा वासः शिवपुरे भवेत्। यमलोके बकस्यास्य वासो धात्रा विकल्पितः॥३५॥

हे पुत्र ! अज्ञानवश पाप करने वाले व्यक्ति भी मत्स्यभक्षी बगुले की तरह स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥ ११-२४ ॥

(बीच ही में) नारदजी ने पुनः जिज्ञासा की—ब्रह्मन् ! मत्स्यभक्षी बगुला किस प्रकार शिवलोक पहुँचा ? वह विभाण्डेश के समीप किस तरह गया ? शिवलोक में वह कैसे स्थित रहा ? ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी ने फिर कहा—महाभाग ! कोई मूर्ख बगुला हिमालय पर्वत पर रहता था। वह सुरभी और नन्दिनी में मछलियों को मार कर विभाण्डेश के मस्तक पर रख उन्हें खाते हुए दिन बिताता था। इस प्रकार उसका बहुत समय बीत गया। कुछ समय के बाद वहीं सुरभी के तट पर उसकी मृत्यु हो गई और यमदूत उसे यमपुर ले चले। इस दृश्य को शिवदूतों ने देखा कि यमदूत उसे पाशों से बाँधकर यमलोक ले जा रहे हैं। हे महाभाग ! इस प्रकार देखते हुए शिवदूतों ने यमदूतों सेउसश्रेष्ठ बगुले को वापस देने के लिए कहा। यह भी बतलाया कि हम इस श्रेष्ठ बगुले को देव और ऋषियों से सेवित शिवलोक में ले जायेंगे। तब यमदूत शिवदूतों से कहने लगे ॥ २६-३२ ॥

यमदूत बोले—हे शिवदूतों ! हम इस मत्स्यभोगी पापी को नहीं छोड़ेंगे। यह धर्ममार्ग रहित, जड़ तथा दुष्कर्म में लगा रहा है। इसने यज्ञ तथा पूर्त कर्म (कूप आदि का निर्माण) नहीं किए हैं। न तो इसने शिव की आराधना की और न भागीरथी आदि नदियों में स्नान ही किया। तब इस बगुले को ब्रह्माजी ने शिवलोक में रहने का अधिकारी कैसे बनाया है ?

---

१. 'संस्पृष्टवान् पुरा' इति 'क'। २. 'कुर्वतोऽस्य दुरात्मना' इति समीचीनः पाठः।
३. 'जगाम मुनिशार्दूल' इति सर्वत्र।

ब्रह्मोवाच—

तच्छ्रुत्वा यमदूतानां वचनं शिवकिङ्कराः। प्रत्युचुस्तान् महाभाग शक्तिशूलधरा हि ते ।३६।
नास्य पुण्यतमं[1] दूता भवद्भिर्ज्ञायते क्वचित्। गोघ्न-ब्रह्मघ्न-बालघ्ना[2] येन संशुध्यते क्षणात् ॥
तन्मतं भवतां दूता न ज्ञातं सत्यमेव हि। कथं न ज्ञायते दूता विभाण्डेशस्य पूजनम् ॥
यं समर्प्य महामत्स्याः खादितानेन चारुणा[3] ॥ ३९ ॥
इत्युक्ता यमदूतैस्तं बकं संमोच्य किङ्कराः। नीत्वा यावच्छिवपुरं गन्तुं ते परिरेभिरे ॥४०॥
तावद्याम्याः शिवगणानूचुर्वै मुनिसत्तम ॥ ४१ ॥
अहत्वाऽस्मान् महाभागा बको नेतुं न शक्यथ। विजित्याऽस्मान् शिवपुरं बकः सन्नीयतां गणाः ॥
इत्युक्त्वा यमदूतास्ते शक्तिशूलपरश्वधैः। युयुधुः शरसंघैश्च[4] ततः शिवगणैः सह ॥४३॥
तेषां सुतुमुलं युद्धं बभूव मुनिसत्तम। नानाप्रहरणोदग्रं भीरूणां भयवर्धनम् ॥४४॥
ततो याम्या महाभागाः क्षीणप्रहरणायुधाः। जिताः शिवगणैः सर्वे ययुर्यमपुरं प्रति ॥४५॥
जित्वा याम्यान्महाभाग ततस्ते शिवकिङ्कराः। अधिरोप्य विमानाग्रे बकं वै द्विजसत्तम ॥४६॥
नीत्वा शिवपुरं पुण्यं ययुः सर्वे समाहिताः। याम्यापि[5] मुनिशार्दूल रोदमाना मुहुर्मुहुः ॥४७॥
यमं विज्ञापयामासुः शिवकिङ्करचेष्टितम्। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजो महामनाः ॥४८॥
चित्रगुप्तं समाहूय बककर्मविनिर्णयम्[6]। न किञ्चिद् दृष्टवान् तस्य सुकृतं मुनिसत्तम ॥४९॥

इस बीच ब्रह्माजी बोले—यमदूतों की बात सुन कर शिवजी के दूतों ने शक्तिशूलधारी यमदूतों से यह कहा कि आप इसके पुण्य से परिचित नहीं हैं। गो-ब्राह्मण तथा बालकों के हत्यारे भी जिन विभाण्डेश के पूजन करने से पाप-विमुक्त हो जाते हैं—उनकी महत्ता को आप लोग वस्तुतः समझ नहीं पाये हैं। हे दूतों! इस बगुले ने तो विभाण्डेश के पूजन करने के पश्चात् उन्हें अर्पित किया हुआ प्रसाद भक्षण किया है। शिवदूतों से उपर्युक्त कहे जाने पर भी जब यमदूत उसे बाँध कर ले जाने को उद्यत हुए तो यमदूत यह कहने लगे कि हे शिवदूतों! हमारे जीवित रहते आप लोग इसे नहीं ले जा सकते। अतः हमें मार कर आप इसे शिवलोक ले जायें। ऐसा कहते हुए यमदूतों ने अपने हथियार निकाले और शिवदूतों के साथ युद्ध करने लगे। हे मुनिवर! अनेक अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से शत्रुओं के भयवर्धक उभयपक्षी युद्ध के अनन्तर यमदूतों के अस्त्र-शस्त्र एवम् आयुध नष्ट हो गए और वे यमपुर को भाग गए। तत्पश्चात्, हे नारद! शिवदूतों ने उस बगुले को अग्रसर कर शान्तचित्त से विमान के आगे के हिस्से में बैठा कर शिवपुर ले गए। यमदूतों ने बारम्बार रोते हुए अपनी गाथा यमराज को सुनाई। उनकी बातें सुनकर महामना यमराज ने चित्रगुप्त को बुला कर इस सम्बन्ध में निर्णय

---

१. 'पुण्यं मतम्' इति 'क'। २. 'गोघ्न-ब्रह्मघ्न-बालघ्नो जनः' इति 'क'।
३. 'तं समर्प्यं महामत्स्याः खादिता येन चारुणा' इति परिष्कृतः पाठः।
४. 'सुरसङ्घैश्च' इति 'क'। ५. 'याम्याश्च' इत्यपेक्ष्यते। मूले सन्धिः आर्षः।
६. 'बकधर्मविनिर्णयम्' इति 'क'। 'घ' पुस्तके अयमधिकः श्लोको वर्तते—
'कारयामास वै विप्र यथावस्तुसमाहितः। विचारं सुचिरं कालं धर्माधर्मविनिर्णयम्' ॥

विभाण्डेश्वरसंस्पर्शमेकमेव ददर्श ह । तथैव सुरभीमध्ये मरणं मुनिसत्तम ।।५०।।
एतद्विचार्य सुचिरं चित्रगुप्तो महायमम् । बोधयामास विधिवद् विभाण्डेशस्य भारतीम् ।।५१।।
बोधितश्चित्रगुप्तेन यमः स्वच्छमना भवत्[1] । बकोऽपि शिवलोकं वै प्राप्य सिद्धनिषेवितम् ।५२।
स रेमे रुद्रकन्याभिः शिववद् द्विजसत्तम[2] । विभाण्डेशं हरं प्राप्य ये सम्यक् प्रणमन्ति च।।५३।।
भुक्तिं मुक्तिं महाभाग विन्दन्ते नात्र संशयः ।। ५४ ।।

व्यास उवाच—

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमाः । परिक्रम्य विधातारं तुष्टः प्रत्याययौ दिवम् ।।५५।।
इत्येतत्कथितं विप्रा माहात्म्यं बहुविस्तरम् । सर्वपापप्रशमनं विभाण्डेशकथान्वितम् ।।५६।।
यः शृणोति हरस्याग्रे पातकैः स प्रमुच्यते ।। ५७ ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे विभाण्डेशमाहात्म्यं
नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।।

करने के लिये कहा । हे नारद ! बहुत देर तक सोचने पर भी चित्रगुप्त ने उस बगुले के किए हुए थोड़े से भी सत्कार्यों पर दृष्टिपात नहीं किया । केवल विभाण्डेश का स्पर्श तथा सुरभी नदी के मध्य उसका मरण—ये दो बातें उसे दिखाई पड़ीं । इन बातों पर विचार कर चित्रगुप्त के द्वारा यमराज को बगुले के विभाण्डेशस्पर्श तथा सुरभीक्षेत्र-सम्बन्धी मरण की बातें बतलाये जाने पर यमराज का चित्त शुद्ध हो गया (शङ्कायें दूर हो गईं) और बगुला भी शिवजी की कृपा से सिद्ध-गणों से सेवित रुद्रलोक को प्राप्त कर सका । वह वहाँ पर रुद्र-कन्याओं के साथ विचरण करने लगा । जो लोग विभाण्डेश के पास जाकर उन्हें सद्भावना से प्रणाम करते हैं, वे निःसन्देह सुखों का उपभोग कर अन्त मेंमोक्ष प्राप्त करते हैं ।३६–५४।

व्यासजी ने ऋषियों से कहा—हे ऋषिवरों ! ब्रह्माजी की बातें सुनकर नारदजी सन्तुष्ट हो गए तथा उनकी परिक्रमा कर स्वर्गलोक को वापस हुए । हे ब्रह्मर्षियों ! यह विस्तृत माहात्म्य मैंने आप लोगों को सुना दिया है । जो मानव पापविनाशक विभाण्डेश के इस माहात्म्य को शिवजी के सम्मुख सुनता है—वह पातकों से विमुक्त हो जाता है ।। ५५–५७।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में वर्णित 'विभाण्डेश'-माहात्म्य
नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'स्वस्थमना अभूत्' इति परिष्कृतः पाठः ।
२. 'शिवस्यास्य प्रसादतः' इति मुद्रिते संस्करणे ।

३०

ऋषय ऊचुः—

सुरभीसरितोर्मध्ये तीर्थानां वर्णनं शुभम् । श्रोतुमिच्छामो विप्रर्षे त्वत्तो ज्ञानसमुच्चयात्[1] ॥१॥

व्यास उवाच—

सम्यग्व्यवसितं विप्रा भवता नात्र संशयः । येषां तीर्थकथायां वै सम्भूता मतिरीदृशी ॥२॥
पुरा देवसमाजे वै ब्रह्मा लोकपितामहः । धेनुमाज्ञापयामास प्रियार्थं शङ्करस्य च ॥३॥

ब्रह्मोवाच—

व्रज भद्रे महादेवं विभाण्डेशं सुपूजितम् । सरिद्रूपेण तं देवं सेवयस्व समाहिता ॥४॥

व्यास उवाच—

विधातुर्वचनं मूर्ध्ना सुरभी प्रतिगृह्य वै । ययौ नागार्जुनगिरिं नन्दिन्या सह सुव्रत ॥५॥
तत्रैकेन स्वरूपेण सुरभी सरितां वरा । पुण्यतोयवहा शुद्धा बभूव मुनिसत्तमाः ॥६॥
तत्रैव सुरभीमूले सौरभेयो महाह्रदः । तत्र स्नात्वा च विधिवत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७॥
ततो वामे महादेवी सुरभी नाम वै द्विजाः । सम्पूज्य मानवः सम्यक् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
दक्षिणे मुनिशार्दूला गुहायां वृद्धसंज्ञकम् । विभाण्डेशं महादेवं सम्पूज्य शिवमाप्नुयात् ॥९॥
ततस्तु सुरभीमध्ये सूर्यतीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा च मनुजः पातकाद्विप्रमुच्यते ॥१०॥
परं हि सुरभीमध्ये द्रोणतीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा महाभागा वसून् संलभ्यते नरः[2] ॥११॥

ऋषियों ने कहा—आप सुरभी और नन्दिनी के मध्यस्थित तीर्थों का वर्णन करें, हे ब्रह्मर्षे ! अब हम लोग उसे सुनने के इच्छुक हैं ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—हे ऋषिवरों ! आप लोगों ने निःसन्देह ठीक ही कहा। इसी से तो आप लोगों की बुद्धि तीर्थकथा सुनने के लिए प्रेरित हुई है। प्राचीन काल में देवताओं के समाज में लोकपितामह ब्रह्माजी ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए धेनु को बुला कर यह आज्ञा दी ॥ २–३ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—कल्याणकारिणि ! सुपूजित विभाण्डेश के पास जाकर तुम नदी का रूप धारण कर उनकी सेवा करो ॥ ४ ॥

व्यासजी बोले—हे व्रती मुनियों ! ब्रह्मा की आज्ञा को शिरोधार्य कर देवधेनु 'सुरभी' 'नन्दिनी' के साथ नागार्जुन पर्वत पर आई। वहाँ पर वह केवल जलरूप में स्थित हो पवित्र पुण्यसलिला बन गई। सुरभी नदी के मूल-स्थल पर 'सौरभेय' नामक बड़ा तालाब है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य पापरहित हो जाते हैं। उसके वामभाग में 'सुरभी' देवी की पूजा से सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। हे मुनिश्रेष्ठों ! वहीं दाहिनी ओर गुफा में 'वृद्ध-विभाण्डेश' का पूजन कर मनुष्य शिवत्व प्राप्त कर लेता है। पश्चात् सुरभी के बीच में 'सूर्यतीर्थ' है। उसमें स्नान कर मनुष्य पापरहित हो जाता है। उसके पश्चात् सुरभी के मध्य

---

१. 'ज्ञानसमुच्चयम्' इति 'क'। २. 'संलभते नरः' इति परिष्कृतः पाठः।

द्रोणाद्रिपादसम्भूता नन्दिनी चापि सुव्रता । सुरभीसंगमं भूता[1] सर्वपापप्रणाशिनी ॥१२॥
नन्दिनीसुरभीमध्ये ब्रह्मतीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा यथान्यायं सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ।१३।
यः पूजयति देवेशं विभाण्डेशं तपोधनाः । त्रिसप्तकुलभिः सर्वैः[2] शिवलोके महीयते ॥१४॥
वामे वाणीश्वरं देवं दक्षिणे त्रिपुरेश्वरम् । सम्पूज्य मानवः सम्यक् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१५॥
ततः शेषह्रदे पुण्ये निमज्य विधिपूर्वकम् । शेषनागं च सम्पूज्य मुक्तिमाप्नोति मानवः ॥१६॥
ततः सरस्वतीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः । निमज्य विधिवत्तत्र ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥
ततो बालिह्रदं नाम तीर्थमस्ति यतव्रताः । तत्र बालिह्रदे स्नात्वा मानवो मुक्तिभाग्भवेत् ।१८।
बालिह्रदस्य वामे वै शीतलां शङ्करप्रियाम् । सम्पूज्य ज्वरभीतिं वै मानवानां प्रणश्यति ॥१९॥
सन्ति तीर्थान्यनेकानि सुरभ्या हि ह्रदे ह्रदे । संक्षेपेण महाभागाः कथितानि न संशयः ॥२०॥
ततः सा सुरभी पुण्या सुपुण्यां रथवाहिनीम् । संमिलन्मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशिनी ॥२१॥
तयोर्मध्ये महादेवं श्मशाननिलयं हरम् । सम्पूज्य मानवः सम्यक् सर्वपापैः प्रमुच्यते[3] ॥२२॥

ही 'द्रोणतीर्थ' है। वहाँ स्नान कर मनुष्य वसुओं को प्राप्त करता है। द्रोणपर्वत के चरण से निकली 'नन्दिनी' नदी वहाँ पर पापों की विनाशिका 'सुरभी' के साथ संगत हो जाती है। नन्दिनी और सुरभी के मध्य 'ब्रह्मतीर्थ' है। वहाँ स्नान और यथाविधि पितृ-तर्पण कर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक विभाण्डेश का पूजन करता है, वह इक्कीस-कुलों (में उत्पन्न जनों) सहित शिवलोक में आनन्द करता है। इनके बाईं ओर 'वाणीश्वर' और दाहिनी ओर 'त्रिपुरेश्वर' हैं। उनका पूजन करने से मनुष्य पाप-रहित हो जाता है। तदनन्तर 'शेषह्रद' में विधिपूर्वक स्नान एवं 'शेषनाग' का पूजन करने से मानव को मुक्ति प्राप्त होती है। हे तपधनों! तव 'सरस्वती'-संगम है। उस पुण्यस्थल पर विधिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मलोक में संमानित होता है। तदनन्तर 'बालिह्रद'-नामक तीर्थ (बालेश्वर तीर्थ) है। वहाँ स्नान कर मानव मुक्ति प्राप्त करता है। 'बालिह्रद' के बाईं ओर शङ्करप्रिया 'शीतला' के पूजन करने से मनुष्यों को ज्वर का भय नहीं रहता। हे महाभागों ! यद्यपि सुरभी के प्रत्येक ह्रद में अनेक तीर्थ है, तथापि मैंने यह संक्षेप में वर्णन किया है। तत्पश्चात् 'सुरभी' नदी 'रथवाहिनी' (रामगङ्गा) में मिल जाती है। उनके मध्य में स्थित 'श्मशानवासी' शंकर की पूजा कर मनुष्य समग्र पापों से मुक्त हो जाता है। तदनन्तर, हे मुनिश्रेष्ठों ! कश्यप ऋषि की आज्ञा प्राप्त कर गरुड़ (सुपर्ण) की माता विनता[4] 'कुमुद' पर्वत पर पापों की विनाशिका 'नदी' के रूप में प्रकट हुई। उसमें

---

१. 'सुरभीसङ्गसम्भूता' इति 'ख' पुस्तके। २. 'कुलैस्त्रिसप्तभिः' इति परिष्कृतः पाठः।

३. तदनन्तरं 'ख' पुस्तके इमौ श्लोकौ उपलभ्येते—"कुमुदपर्वतसम्भूता काश्यपी सरितां वरा। सम्पूज्या रथवाहिन्याः संगमे संगता द्विजाः। काश्यपीवामभागे वै नाम्ना देवी कुमुद्वती।" आदर्शपुस्तके एतयोः निवेशः अग्रे वर्तते।

४. दक्ष-प्रजापति की पुत्री और कश्यप ऋषि की पत्नी विनता पक्षियों की माता कही गयी है। 'अरुण' और 'गरुड' नामक इसके दो पुत्र थे। प्रण में हार जाने के कारण इसको अपनी सौत 'कद्रू' की दासी बनकर ५० वर्षों तक रहना पड़ा। किन्तु गरुड़ ने इस बन्धन से इसे मुक्त कर दिया था।—देखें भागवत—"सुपर्णाऽसूत गरुडं साक्षाद् यज्ञेशवाहनम्। सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः" ॥६-६-२२॥

तदूर्ध्वं मुनिशार्दूलाः विनता सरितां वरा। कश्यपस्य ऋषेः पुण्या अनुज्ञां प्राप्य शोभना ॥२३॥
कुमुदाद्रौ महापुण्या सुपर्णजननी शुभा। बभूव सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ॥२४॥
तस्यां स्नात्वा च मनुजो मोदते स्वर्गवद्दिवि। ततः सा काश्यपीनाम विनतासंगमं ययौ ॥२५॥
तत्र स्नात्वा नरः सम्यक् विशुद्धात्मा[1] भवेदिह। कुमुदपर्वतसम्भूता काश्यपी सरितां वरा।२६।
सुपुण्ये रथवाहिन्याः संगमे सङ्गता द्विजाः। काश्यपीवामभागे वै नाम्ना देवी कुमुद्वती ॥२७॥
पूज्यते देवगन्धर्वैर्दैतेयैश्च तपोधनाः। काश्यपीरथवाहिन्योर्मध्ये संस्नाप्य मानवः ॥२८॥
महर्षि कश्यपं पूज्य देवलोके महीयते। पुण्या जीवनदा नाम दक्षिणद्वारवाहिनी ॥२९॥
काश्यपी संगमे विप्रा यत्र कौमोदकी सरित्। संगता तत्र वै विप्राः सर्वपापप्रणाशिनी[2] ॥३०॥
तत्र स्नात्वा महाभागा देवीं कौमोदकीं शुभाम्। सम्पूज्य मानवः सम्यक् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
काश्यपीरथवाहिन्योः सुपुण्यात् संगमात्परम्। क्रौञ्चतीर्थमिति ख्यातं सत्यधर्मप्रदर्शकम्॥३२॥
तत्र स्नात्वा महाभागा देवलोकमवाप्यते ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे विभाण्डेश्वरमाहात्म्ये त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग के समान पृथ्वी पर आनन्दित होते हैं। तब 'विनता' और 'काश्यपी' का संगम हो जाता है। वहाँ स्नान कर मनुष्य शुद्धात्मा हो जाते हैं। यह 'काश्यपी' कुमुद पर्वत से निकली है तथा रामगङ्गा के साथ मिल जाती है। 'काश्यपी' के बाईं ओर 'कुमुद्वती' देवी हैं। वे देव, गन्धर्व और दैत्यों (असुरों) से पूजित हैं। काश्यपी और रथवाहिनी के मध्य स्नान कर महर्षि कश्यप का पूजन करने से मनुष्य देवलोक प्राप्त करता है। तब दक्षिण द्वार की ओर बहती हुई 'जीवनदा' नदी—जहाँ 'काश्यपी' से मिलती है—वहीं पापप्रणाशिनी 'कौमोदकी' भी आकर मिली है। उस त्रिवेणी में स्नान कर तथा 'कौमोदकी' देवी का दर्शन एवं पूजन करने से मनुष्य पाप-विमुक्त हो जाते हैं। 'काश्यपी' और 'रथवाहिनी' के संगम से कुछ दूर पर सत्यधर्म-प्रदर्शक 'क्रौञ्च' तीर्थ है। वहाँ स्नान कर मनुष्य देवलोक प्राप्त करता है॥ ५-३३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में विभाण्डेश्वर-माहात्म्य
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

1. 'विपापात्मा' इति 'ग'। 'विपाप्मा हि' इति 'घ'।
2. 'संगता तत्र वै विप्राः संगमे मुनिसत्तमाः' इति 'ङ'।

३१

व्यास उवाच—

काश्यपीरथवाहिन्योर्मध्ये वै ऋषिसत्तमाः। वृद्धकेदारसंज्ञं वै देवं सम्पूज्य मानवः ॥१॥
शिवलोकमवाप्नोति यज्ञकोटिफलं लभेत्। काश्यपीवामभागे वै वृद्धकेदारसञ्ज्ञकम् ॥२॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् कुलैस्त्रिदशभिर्युतः। शिवलोकमवाप्नोति रुद्रकन्यानिषेवितः[1] ॥३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वृद्धकेदारमाहात्म्यं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

३२

व्यास उवाच—

वामे वै रथवाहिन्याः पुण्या द्रोणाद्रिसम्भवा। द्रोणी नाम सरिच्छ्रेष्ठा संमिलन्मुनिसत्तमाः ॥
तयोः संगममध्ये वै पुण्ये द्रोणह्रदे शुभे। निमज्य मानवः सम्यक् वसुभिः संप्रसेव्यते ॥२॥
तत्र ब्रह्मपुरो नाम पर्वतः समुदाहृतः। देवर्षिगणगन्धर्वैः सेवितः सुमनोहरः ॥३॥

व्यासजी ने कहा—काश्यपी और रथवाहिनी के मध्य 'वृद्धकेदार' का पूजन करने से कोटियज्ञ का फल मिलता है एवं शिवलोक प्राप्त होता है। काश्यपी नदी के बायीं ओर 'वृद्ध-केदार' नामक शिव प्रतिष्ठित हैं। उनका विधिपूर्वक पूजन करने से मनुष्य तीस कुलों के साथ रुद्रकन्याओं से सेवित शिवलोक प्राप्त करता है॥ १-३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में वृद्धकेदार-माहात्म्य
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने पुनः कहा—रथवाहिनी के बाईं ओर पवित्र 'द्रोणपर्वत' (दूनागिरि) से उत्पन्न 'द्रोणी' नदी आकर मिलती है। वहाँ संगम पर 'द्रोणह्रद' है। उसमें स्नान कर मनुष्य वसुओं[2] से सेवित होता है। वहाँ पर 'ब्रह्मपुर' नामक पर्वत देवर्षि तथा गन्धर्वों से पूजित है।

---

१. 'निषेवितम्' इति 'ग' पुस्तके। अयमेव पाठः युक्ततरः।

२. वसु—देवताओं का एक गण, जिसके अन्तर्गत आठ देवता माने गए हैं। महाभारत के अनुसार ८ वसु ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। श्रीमद्भागवत के अनुसार द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु—ये नाम हैं। भागवत के अनुसार दक्ष-प्रजापति की पुत्री तथा धर्म की पत्नी 'वसु' के गर्भ से ही सब वसु उत्पन्न हुए थे। देखें भागवत—६-६-१०—"वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु। द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः" ॥ देवीभागवत के अनुसार अपनी गाय नन्दिनी को चुरा लेने के कारण वसिष्ठ ने वसुओं को मनुष्य योनि में उत्पन्न होने का शाप दिया था। वसुओं के अनुनय-विनय करने पर सात वसुओं के शाप की अवधि केवल एक वर्ष की कर

तस्य कक्षे महाभागाः प्रौढाख्यो हि महासरः । शोभनाद्यैः सिद्धगणैः सेवितः सुमनोहरः ।।४।।
यं ब्रह्मा रचयामास प्रौढाख्यं हि महासरम् । मन्दाकिन्या जलैः पूर्णं देवर्षिगणसेवितम् ।।५।।
तत्र स्नात्वा च मनुजो दश पूर्वान् दशोत्तरान् । सन्तर्प्य[1] ब्रह्मभुवने[2] वासं प्राप्नोति वै द्विजाः ।।

ऋषय ऊचुः—

प्रौढाख्यं हि सरो ब्रह्मन् रचितं केन हेतुना । केन वै देवगन्धर्वाः सेवयन्ति महासरम् ।।७।।

व्यास उवाच—

तस्मिन् ब्रह्मगिरौ पुण्ये गर्गो नाम महातपाः । समाश्रित्य तपस्तेपे तोषयन् कमलासनम् ।।८।।
ततः कालेन वै विप्रास्तस्मै तुष्टः प्रजापतिः । हंसमारुह्य वेगेन दर्शयामास दर्शनम् ।।९।।
स दृष्ट्वा लोकनाथेशं हंसारूढं प्रजापतिम् । ननाम परया भक्त्या प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।।
तस्मै सन्तोषितो ब्रह्मा वरं वरय सुव्रत । इत्युवाच महाभागाः सुपूर्णेनान्तरात्मना ।।११।।
ततोवाच[3] विधातारं गर्गो सुप्रीतमानसः । प्रौढसम्पूरणार्थं वै जलं वव्रे तपोनिधिः ।।१२।।
तथेत्युक्त्वा महाभागा ब्रह्मा लोकपितामहः । मन्दाकिन्या जलैः पुण्यैः प्रौढाख्यं समपूरयत्[4] ।१३।
प्रौढाख्यं पूरयित्वा सा गङ्गा मन्दाकिनी द्विजाः । शेषा गर्गाश्रमं प्राप्ता स्वर्गे तीर्था[5] सरिद्वरा ।।

उसके बगल में 'प्रौढ'-सरोवर है। वह बहुत ही सुन्दर तथा 'शोभन' आदि सिद्ध गणों से सेवित है। इस प्रौढ़सर का सर्जन ब्रह्मा ने किया है। वह मन्दाकिनी के जल से पूरित और देवर्षियों से सेवित है। वहाँ स्नान एवं तर्पण कर मनुष्य अपने दस पूर्वजों और दस भावी सन्ततियों का उद्धार करता हुआ ब्रह्मलोक प्राप्त करता है ।। १ – ६ ।।

ऋषियों ने फिर पूछा—इस प्रौढ़सर को ब्रह्माजी ने किस कारण वनाया ? इसकी सेवा में देवर्षि क्यों लगे रहते हैं ? ।। ७ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—उस पवित्र [6]'गर्ग' पर्वत पर तपस्वी गर्ग ऋषि ने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए तप किया। हे ऋषियों ! कुछ समय बीतने पर ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर हंस पर आरुढ हो वहाँ आए। गर्ग ऋषि ने उन्हें प्रणाम किया। सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने वर माँगने के लिए कहा। इस पर महर्षि गर्ग ने 'प्रौढ़सर' को जल से भर देने की प्रार्थना की। महर्षियों ! इस पर ब्रह्मा ने अपनी सहमति प्रकट की। 'प्रौढ़सर' को मन्दाकिनी के जल से भर दिया। स्वर्ग की तीर्थस्वरूप मन्दाकिनी का शेष भाग गर्गाश्रम की ओर चला गया। इस

दी। 'द्यो' नामक वसु ने अपनी पत्नी के बहकावे में आकर उनकी धेनु का अपहरण किया था। अतः उन्हें दीर्घकाल तक मनुष्य योनि में रहने एवं सन्तान उत्पन्न न करने, महान् विद्वान् बनने, वीर होने तथा स्त्री परित्यागी होने को कहा। इसी शाप के अनुसार इनका जन्म शन्तनु की पत्नी गङ्गा के गर्भ से हुआ। सातों को गङ्गा ने जल में फेंक दिया, आठवें भीष्म थे। उन्हें बचा लिया।—देवीभागवत–२-४।३९–४३—"वसवस्तु पुरा शप्ता वसिष्ठेन महात्मना । व्रजन्तु मानुषीं योनिं स्थिता चिन्तातुरास्तु माम् ।। सप्त ते वसवः पुत्रा मुक्ताः शापाद्दयेस्तु ते । कियन्तं कालमेकोऽयं तव पुत्रो भविष्यति ।। गङ्गादत्तमिमं पुत्रं गृहाण शन्तनो स्वयम् । वसुं देयं विदित्वैनं सुखं भुङ्क्ष्व सुतोद्भवम्" ।।

१. 'सन्तार्प्यं' इति 'ग'। २. 'ब्रह्मभवने' इति 'ख'। ३. सन्धिः आर्षः।
४. 'सम्प्रपूरयत्' इति 'क'। ५. 'स्वर्गतीर्था' इति 'क'। ६. स्थानीय नाम 'गागर पहाड़'।

तस्मै[1] चाभीप्सितं कामं दत्वा लोकपितामहः । जगाम ब्रह्मभुवनं पुलस्त्याद्यैर्महर्षिभिः ॥१५॥
गर्गोऽपि तत्सरः पूर्णं दृष्ट्वा वै मुनिसत्तमाः । सन्तोषं परमं लेभे निःस्वः प्राप्य यथा धनम् ॥
येन वै रचयामास हेतुना तन्मयोदितम् । मज्जनं तर्पणं श्राद्धं ये कुर्वन्ति तपोधनाः ॥१७॥
ते यान्ति ब्रह्मभुवनं प्रौढाख्याख्ये[2] सरोवरे । पुण्ये प्रौढाख्यमध्ये वै ब्रह्मतीर्थेति विश्रुतम् ।१८।
तत्र पिण्डप्रदानेन कुलानां तारयेच्छतम् । दक्षिणे गर्गतीर्थेति विश्रुतं मुनिसत्तमाः ॥१९॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो विष्णुलोके महीयते । तत्रैव ह्रदमध्ये वै देवं केदारसंज्ञकम् ॥२०॥
सम्पूज्य मुनिशार्दूलाः शोभनाख्यगणान्वितम् । शिवलोकमवाप्नोति कुलत्रयसमन्वितः ॥२१॥
इत्येतत्कथितं विप्रा यथा सृष्टं महासरः । ब्रह्मणा लोकनाथेन गर्गस्य हितकारिणा ॥२२॥
प्राढाख्यस्यास्य[3] माहात्म्यं यः शृणोति समाहितः । स याति देवभुवनमप्सरोभिः समन्वितः ।२३।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'प्रौढाख्यसरो'माहात्म्यं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

प्रकार ब्रह्माजी गर्ग की इच्छा को पूरा कर पुलस्यादि ऋषियों के साथ ब्रह्मलोक चले गए। महर्षि गर्ग भी प्रौढ़सर को जलपूर्ण देख, निर्धन को धन-प्राप्ति के समान प्रमुदित हुए। हे तपस्वियों ! मैंने आप लोगों को इस प्रौढसर की रचना का उद्देश्य बतला दिया है। जो लोग इसमें स्नान-तर्पणादि करते हैं उन्हें ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। प्रौढ़सर के मध्य 'ब्रह्मतीर्थ' प्रतिष्ठित है। वहाँ पिण्डदान करने से सौ कुलों का उद्धार होता है। उस सरोवर के दक्षिण में 'गर्गतीर्थ' है। वहाँ स्नान करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है। वहीं पर 'ह्रद' के मध्य में 'शोभन'-गणों के साथ भगवान् केदार[4] पूजित हैं। उनका पूजन करने से तीन कुलों सहित शिवकोक की प्राप्ति होती है। हे ब्रह्मर्षियों ! महर्षि गर्ग के हितार्थ ब्रह्मा के द्वारा यथोक्त 'प्रौढसर' की उत्पत्ति बतला दी है। जो इसका माहात्म्य सुनता है, वह अप्सराओं से सेवित स्वर्गलोक प्राप्त करता है ॥ ८ – २३ ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'प्रौढसर'-माहात्म्य नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'रेमे' इति 'क'। २. 'प्रौढाख्ये च' इति 'क'।
३. 'प्रौढाख्यस्य च' इति 'क'। ४. स्थानीय नाम 'गागर पहाड़'।

३३

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं प्रौढासरमाहात्म्यं त्वत्तो हि मुनिसत्तम । याः पुण्याः सरितः सन्ति सुपुण्ये ब्रह्मपर्वते ॥
ये देवा ये च वै तीर्थास्तान् व्याख्यापय सुव्रत ॥१॥

व्यास उवाच—

तत्रैव पर्वतोद्देशे गर्गाश्रमसमुद्भवा । गार्गी नाम सरिच्छ्रेष्ठा संगता रथवाहिनीम् ॥२॥
मूले तस्या ऋषिश्रेष्ठं गर्गं सम्भाव्य वै द्विजाः । प्राप्नोति मानवः सम्यक् [1]शिवलोकं स गच्छति ॥
वामे गार्गीं महादेवीं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः । प्राप्नोति मानवः सम्यङ्मनोऽभिलषितं फलम् ॥४॥
दक्षिणे वेणुभद्रायाः सङ्गमे मुनिसत्तमाः । निमज्य मानवः सम्यक् पातकाद् विप्रमुच्यते ॥५॥
भद्रेशं तत्र सम्पूज्य शिवलोके महीयते ॥ ६ ॥
ततः शुकवतीनाम सुपुण्ये गर्गपर्वते[2] । ययौ सा मुनिशार्दूलाः पुण्यतोया[3] महानदी ॥७॥
तयोर्मध्ये महादेवं शुकेशं पूज्य वै द्विजाः । प्राप्नोति मानवः सम्यक् शिवलोकं सुदुर्लभम् ॥८॥
समाराध्य शुकाः सर्वे यमेन परिबोधिताः । प्रापुः शिवपुरं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥९॥

ऋषियों ने कहा महर्षे ! आप से प्रौढ़सर का माहात्म्य सुना । अब आप कृपया 'ब्रह्म' पर्वत की पवित्र नदियों, देवों, तीर्थों आदि का वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहा –वहीं पहाड़ के ऊपरी भाग में प्रतिष्ठित 'गर्गाश्रम' से निकलती हुई 'गार्गी'[4] नदी 'रथवाहिनी' (रामगङ्गा) में मिल जाती है। गार्गी के उद्गम-स्थल पर स्थित गर्गाचार्य[5] का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है। वहीं पर वामभाग में महादेवी गार्गी का का पूजन करने से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। वहीं दक्षिण की ओर 'वेणुभद्रा' के संगम में स्नान करने से मनुष्य अपने पापों को धो डालता है। वहाँ पर 'भद्रेश' का पूजन कर शिवलोक में सम्मानित होता है । तब एक बड़ी नदी 'शुकवती' 'गर्ग' पर्वत में आती है।

---

१. 'शिवलोकं स गच्छति' इत्यारभ्य 'मानवः सम्यक्' इति पर्यन्तो भागः 'क' पुस्तके नास्ति ।

२. 'गार्गिसंगमे' इति 'क' । अयं पाठः समीचीनः प्रतिभाति । ३. 'पुण्यतोयवहा' इति 'क' ।

४. स्थानीय नाम 'गगास' ।

५. पुराणों में इस नाम से अनेक व्यक्ति प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक गर्ग तो वैदिक ऋषि थे, जो आङ्गिरस भरद्वाज के वंशज ३३ मन्त्रद्रष्टाओं में श्रेष्ठ थे। ऋग्वेद के छठे मण्डल के ४७ वें सूक्त के यही मन्त्रद्रष्टा रहे (ब्रह्माण्ड २·३२–१०७) । (२) दूसरे एक प्राचीन ज्योतिर्वेत्ता, जिनके पुत्र का नाम गार्ग्य तथा पुत्री का नाम गार्गी था। ये स्वयम् उतथ्य के पुत्र थे। यादवों के पुरोहित थे। भागवतानुसार बलराम और श्रीकृष्ण का नामकरण इन्होंने किया था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी ये आमन्त्रित थे।—देखें भागवत १०–७४–७५—"विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः । पतः पराशरो 'गर्गो' वैशम्पायन एव च ॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः । राजसूयं समीयुःस्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै" ॥ महाभारत में (१३-१८-३८) इन्होंने शिव को प्रसन्न कर ६४ अंगों सहित ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था—"चतुःषष्ट्यङ्गमददत् कलाज्ञानं महाद्भुतम् । सरस्वत्यास्तटे तुष्टः शिवो गर्गाय पाण्डव" ॥

ऋषय ऊचुः—

कथं ते पक्षिणो विप्र यमेन परिबोधिताः । कथमाराध्य तं देवं गताः शिवपुरं प्रति ॥१०॥

व्यास उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । शुकानां चैव संवादं यमस्य च महात्मनः ॥११॥
पुरा कृतयुगे विप्राः पुण्ये गोमन्तपर्वते । बभूव चन्द्रको नाम शुकः परमधार्मिकः ॥१२॥
बभूवुस्तस्य वै विप्रास्त्रयः परमधार्मिकाः । सुता देवसुतप्रायाः शालीनामन्तकारकाः ॥१३॥
कदाचिद् विपिने गत्वा पितरं वनवासिनम् । पप्रच्छुस्ते स्वसन्देहं सुविनीतास्तपोधनाः[1] ॥१४॥

शुका ऊचुः—

भूत्वा भूत्वा महाभाग घोरे संसारसागरे । प्राणिनो देवकल्पं वै देहं सन्त्यज्य कां गतिम् ॥१५॥
यान्ति सम्यग् ब्रूहि तात केनायान्ति तथैव हि ॥ १६ ॥

शुक उवाच—

कर्मणः परिपाकेन प्राणिनो योनिसंकटे । निमज्य भूतले पुत्राः सम्भवन्ति प्रयान्ति च ॥१७॥
पुनः कर्मविपाकेन मृता यमपुरं प्रति । यान्ति वै नात्र सन्देहो नारकैः परिसेवितम् ॥१८॥
सैवाधिष्ठापितः पुत्रा ब्रह्मणा पद्मयोनिना । सैव धर्मविचारान् वै कुरुते पातकस्य च ॥१९॥

उसके संगम में 'शुकेश' का पूजन कर शिवलोक प्राप्त होता है। इनकी अराधना करने से यमराज द्वारा बोधित सुग्गों ने भी सिद्ध-गन्धर्वादि से सेवित शिवलोक प्राप्त किया॥ २-९ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—उन पक्षियों को यमराज ने कैसे ज्ञान प्राप्त कराया ? भद्रेश की अराधना कर उन्हें शिवलोक कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ १० ॥

महर्षि व्यास ने उत्तर दिया—इस सन्दर्भ में यम और शुकों के मध्य संवाद-स्वरूप एक प्राचीन आख्यान प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि सत्य-युग में 'गोमन्त' पर्वत[2] पर 'चन्द्रक' नाम का बड़ा धार्मिक सुग्गा रहता था। देवपुत्रों के सदृश उसके तीन पुत्र धार्मिक किन्तु धानों के नाशक थे। उन तीन विनीत पुत्रों ने अपने वनवासी पिता से सन्देह-निवारणार्थं कुछ जिज्ञासा की ॥११-१४॥

सुग्गे कहने लगे—हे महाभाग ! इस घोर संसार-सागर में प्राणी बार-बार जन्म लेने पर देहत्याग करने के पश्चात् किस गति को प्राप्त होते हैं ? ॥ १५-१६ ॥

(पिता) सुग्गे ने उत्तर दिया—हे पुत्रों ! प्राणी कर्म-विपाक से अनेक देह-रूपी संकट में पड़कर पृथ्वी पर जन्म लेते हैं और मरते हैं। इस कर्मविपाक के ही कारण प्राणी मर कर नरकगामियों से सेवित यमलोक जाते हैं। हे पुत्रों ! इसमें कोई सन्देह नहीं है। लोक-पितामह ब्रह्मा की आज्ञा से यमराज इस अधिकार को प्राप्त कर प्रतिष्ठापित हैं। वे ही धर्म और अधर्म का निर्णय करते हैं॥ १७-१९ ॥

---

१. अयमर्धश्लोकः 'क' पुस्तके नास्ति । वस्तुतोऽपेक्षित एव ।

२. एक पहाड़ी जहां गोमती देवी का स्थान तथा एक दुर्ग है—'गोमन्ते गोमती नाम' मत्स्य—१३-२८। यह सिद्धपीठ माना जाता है। इसे सह्याद्रि के अन्तर्गत बतलाया गया है। इसी के नीचे करवीर-पुर है और प्रवर्षण इसकी चोटी है। हरिवंश के अनुसार बलराम तथा श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को एक बार यहाँ परास्त किया था। देखें—भागवत—"प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तो तुङ्गमारुहतां गिरिम्। प्रवर्षणाख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १०-५२-१० ॥

व्यास उवाच—

शुकास्ते मुनिशार्दूलाः शुकेन परिबोधिताः। स्वर्गापवर्गदातारं यमं वै परिमेनिरे ॥२०॥
ततो वैवस्वतं देवं पित्रा तेन निबोधिताः[1]। स्वर्गापवर्गदातारं मत्वा तं समपूजयन्[2] ॥२१॥
ततः कालेन महता तुष्टो वैवस्वतो यमः। तेषां सन्दर्शनार्थाय ययौ दण्डधरः स्वयम् ॥२२॥
तत्र तान् द्विजरूपेण चोपविश्य यमः स्वयम्। उवाच वचनं विप्रास्तेषां समनुकम्पया ॥२३॥

यम उवाच—

कोऽयमाराध्यते देवो भवद्भिश्चित्रनन्दनाः। कायक्लेशकरं पुण्यं तप्यते केन हेतुना ॥२४॥

शुका ऊचुः—

ऊचुर्वैवस्वतोऽस्माकं पूज्योऽस्ति द्विजसत्तम[3]। स्वर्गापवर्गयोर्दाता सैव प्रोक्तो मनीषिभिः॥
स्वर्गाय यमराजानं प्रार्थयामो न संशयः॥ २५ ॥

व्यास उवाच—

शुकानां वचनं श्रुत्वा स्मयं कृत्वा महायमः। प्रत्युवाच महातेजाः स्फुरद्दशनमण्डलः ॥२६॥

यम उवाच—

वृथाऽयं[4] तप्यते मूढाः कामक्लेशकरं तपः। स्वर्गप्रदाता न यमो विद्यते नात्र संशयः ॥२७॥
धर्माधर्मं विनिर्णेतुं विधात्रा प्रेषितः किल। न तमाराध्य वै मूढाः प्राप्यते देवमण्डलम् ॥२८॥

व्यास उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शुकाः संकुपिता भवन्[5]। विमृश्य सुचिरं कालं तमेव परिपृच्छ्यन्[6] ॥२९॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार अपने पिता के द्वारा बतलाये जाने पर उन तोतों ने यमराज को स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाला जाना। तदनन्तर पिता के द्वारा परिबोधित वे सुग्गे यमराज की आराधना में लग गए। कुछ समय व्यतीत होने पर यमराज उनसे प्रसन्न हो गए। स्वयं यमराज (दण्डधर) पक्षी का रूप धारणकर उनसे मिलने के लिये गए। हे ऋषिवरों ! तब उन पर कृपा करते हुए यमराज ने कहना आरम्भ किया॥ २०-२३ ॥

यमराज बोले—हे शुकों ! तुम लोग किस देव की आराधना कर रहे हो ? शरीर को कष्ट देने वाली तपश्चर्या किस कारण करते हो ? ॥ २४ ॥

इस पर सुग्गों ने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ ! हम लोगों के द्वारा यमराज का पूजन किया जाता है। विद्वानों ने उन्हें ही स्वर्ग और अपवर्ग का देने वाला बतलाया है। अतः हम लोग स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यमराज की प्रार्थना कर रहे हैं॥ २५ ॥

व्यासजी ने (ऋषियों से) कहा—उन शुकों की बातें सुनकर आश्चर्य-चकित यमराज ने हँसते हुए इस प्रकार उन्हें उत्तर दिया॥ २६ ॥

यमराज ने कहा—अरे मूर्खो ! इस प्रकार शरीर के कष्टदायक तप को तुम लोग व्यर्थ ही कर रहे हो। यम स्वर्ग प्राप्त नहीं कराता है। ब्रह्मा ने केवल धर्माधर्म का निर्णय करने के लिए ही यम को नियुक्त किया है। उसकी आराधना से स्वर्ग नहीं मिल सकता ॥२७-२८॥

---

१. 'विबोधिताः' इति 'ग'। २. 'यमं ते समपूजयन्' इति 'क'।
३. 'ऊचुर्वैवस्वतोऽस्माभिः पूज्यते द्विजसत्तम' इति 'क'। ४. 'वृथेदम्' इति सम्भाव्यते।
५. सन्धिः आर्षः छन्दोभङ्गभिया। ६. 'तमेव हि पर्यपृच्छन्' इति सम्भाव्यते।

शुका ऊचुः—

यदि नास्ति यमो राजा स्वर्गमार्गप्रदर्शकः। तर्हि कोऽन्यतमो भूमौ विद्यते द्विजसत्तम ॥३०॥

व्यास उवाच—

ततस्तान् स यमो विप्रा निजभक्तिपरायणान्। उवाच वचनं पुण्यं बृहस्पतिरिवापरः[१] ॥३१॥

यम उवाच—

यं यमेति महाभागाः पूज्यं सम्प्रार्थयन्ति हि। सोऽहमस्मि त्विहायातो[२]नास्ति मुक्तिप्रदो ह्यहम्॥

धर्माधर्मविनिर्णेता[३] कृतोऽस्मि विधिना खगाः। मत्तोपदेशं[४] सम्प्राप्य क्रियतां मे उदाहृतम्॥

दिव्यं हिमालयं प्राप्य क्रियतां[५] शिवपूजनम्। येनोपायेन मे मार्गं हित्वा स्वर्गं व्रजिष्यथ।३४।

व्यास उवाच—

यमोदाहृतमाकर्ण्य जातहर्षाः खगोत्तमाः। प्रणिपत्य महाभागं यमं पप्रच्छुर्वै द्विजाः ॥३५॥

शुका ऊचुः—

कुत्र संपूजयिष्यामः शिवलोकं शिवप्रदम्[६]। कुत्र जागर्ति देवेशः स्थले भूतगणाधिपः ॥३६॥

यम उवाच—

हिमालयतटे रम्ये सम्भूता रथवाहिनी। जागर्ति यत्र पुण्या सा वामे तस्या महागिरिः ॥३७॥

गार्गीशुकवतीमध्ये ब्रह्मणा सुविनिर्मितः। पर्वतो 'ब्रह्म'नामा वै सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥३८॥

व्यासजी ने पुनः कहा—यमराज की वाणी को सुनकर सुग्गे क्रुद्ध हो गए। इस सम्बन्ध में चिरकाल तक विचार करने के पश्चात् उनसे कहने लगे ॥ २९ ॥

सुग्गों ने कहा –यम के अतिरिक्त दूसरा कौन स्वर्ग-प्रदाता है ? आप बतलायें ॥३०॥

व्यासजी ने कहा – हे ब्रह्मर्षियों ! उन सुग्गों की बातें सुन कर बृहस्पति-सदृश यमराज ने अपने भक्तिपरायण सुग्गों को समुचित उत्तर दिया ॥ ३१ ॥

यमराज बोले—जिसको यम कह कर आप लोग उपासना कर रहे हैं। वह मैं ही आपके सम्मुख आया हूँ। मैं मोक्षप्रदाता नहीं हूँ। हे पक्षियों ! मुझे ब्रह्मा ने केवल धर्माधर्म का निर्णायक नियुक्त किया है। अतः मेरे कहने के अनुसार कार्य करें। दिव्य हिमालय में जाकर आप लोग शिवजी का पूजन करें। इससे आप यमलोक छोड़ कर स्वर्ग प्राप्त करेंगे ॥ ३२–३४ ॥

व्यासजी ने कहा—हे ऋषिवरों ! यम की बातें सुन पक्षियों ने हर्षित होकर यम को प्रणाम कर फिर पूछा ॥ ३५ ॥

सुग्गों ने पूछा—यमराज ! कल्याणप्रद भगवान् शंकर की पूजा कहाँ करें ? किस स्थान पर भूतगणाधिप शिव जागरूक हैं ? ॥ ३६ ॥

यमराज ने उत्तर दिया –हिमालय के सुरम्य तट पर रामगङ्गा के प्रवाहित होते हुए उसके बायें तरफ 'गार्गी' तथा 'शुकवती' नदियों के मध्य सिद्ध एवं गन्धर्वों से सेवित 'ब्रह्म-

---

१. 'बृहस्पतिरिवामरान्' इति 'क'। २. 'सोहमस्मिन्निहायातो' इति 'क'।
३. 'धर्माधर्मविवर्णितुम्' इति 'क'। ४. छन्दोभङ्गभिया सन्धिः आर्षः। 'ममोपदेशम्' इति 'क'।
५. 'कुर्वन्तु' इति 'क'। ६. 'शिवलोकप्रदं शिवम्' इति 'क'।

तस्मिन् प्रौढाख्यनामा वै विद्यते सरनायकः। निमज्य तत्र देवेशं पूजयन्तु खगोत्तमाः ॥३९॥
तत्र गार्गीसरिन्मध्ये निमज्य शुकसत्तमाः। सम्पूज्य देवदेवेशं कालेनाल्पेन वै खगाः ॥४०॥
प्रसादाद्देवदेवस्य स्वर्गं प्राप्स्यथ मा चिरम् ॥४१॥

व्यास उवाच—

यमस्य वचनं श्रुत्वा पक्षिणस्ते द्विजोत्तमाः। यम सम्पूज्य सुप्रीताः परिक्रम्य प्रणम्य च ॥४२॥
प्रजग्मुः सरमार्गेण[1] पुण्यं प्रौढाख्यशङ्करम्। निमज्याधित्यगां भूमिं ययुस्ते मुनिसत्तमाः ॥४३॥
तत्र वै शतधारायाः[2]जले संस्नाप्य वै खगाः। निमज्य शङ्करं देवं तोषयामासुः सुव्रताः ॥४४॥
स्वनाम्ना चाङ्कितं लिङ्गं स्थापयित्वा खगोत्तमाः। शीर्णपर्णानिलाहारा दशवर्षाणि पञ्च च ॥
ततो देवगणैः साधं शङ्करो मुनिसत्तमाः। ययौ देवर्षिगन्धर्वैर्यत्र ते पक्षिणः स्थिताः ॥४६॥
मत्वा तं वृषभारूढं त्रिशूलवरधारिणम्। शिवं ते तुष्टवुर्विप्रा वाष्पगद्गदया गिरा ॥४७॥

शुका ऊचुः—

नमो भस्माङ्गरागाय त्रिशूलवरधारिणे। महेश्वराय देवाय वृषवाहाय ते नमः ॥४८॥
नमस्ते शितिकण्ठाय जटामण्डलधारिणे। विरूपाक्षाय भर्गाय भवाय च नमो नमः ॥४९॥

पर्वत' स्थित है। वहाँ 'प्रौढ-सरोवर' है। उसमें स्नान कर आप शिवजी का पूजन करें। वहीं 'गार्गी' नदी में गोता लगा कर शिवजी की आराधना करने से थोड़े दिनों में ही भगवान् शंकर की कृपा से स्वर्ग प्राप्त कर लेंगे ॥ ३७–४१ ॥

व्यासजी ने कहा—यम की वाणी सुन कर उन पक्षियों ने यमराज की समभ्यर्चना एवं प्रदक्षिणा तथा प्रणामादि कर (विदाई दी) तथा स्वयम् सरोवर का रास्ता पकड़ते हुए प्रौढ नामक शंकर के समीप आ पहुँचे। हे मुनिवरों ! वहाँ स्नान कर पर्वत की अधित्यका की ओर बढे। वहाँ पर 'शतधारा' में स्नान कर अपने नाम से अङ्कित शिवलिङ्ग (शुकेश्वर) स्थापित कर पूजा में संलग्न हो गए। सूखे पत्तों और वायु पर जीवन निर्भर करते हुए उन सुग्गों ने पन्द्रह वर्ष तक तपश्चर्या की। तब, हे ऋषिवरों ! देवगणों आदि सहित भगवान् शंकर सुग्गों के तपश्चर्या-स्थल पर पहुँच गए। वृषभ पर चढे हुए, तथा सुन्दर त्रिशूल को हाथ में लिए भगवान् शिव को देखकर उन सुग्गों ने गद्गद होकर स्तुति करनी आरम्भ कर दी ॥ ४२–४७ ॥

सुग्गों ने इस प्रकार स्तुति की—हे भस्म से लिप्त शरीर वाले, सुन्दर त्रिशूलधारी[3], वृषभारुढ भगवान् शङ्कर ! आपको हमारा नमस्कार है। पुनरपि हे नीलकण्ठ, जटाधारी, विरूपाक्ष[4] (त्रिनेत्र) भर्ग[5] तथा भव[6] आदि नामों से कहे जाने वाले शङ्कर को हमारा प्रणाम है ॥ ४८–४९ ॥

---

१. 'जग्मुरुत्तरमार्गेण' इति 'क' 'ख'। अयमेव युक्तः पाठः। २. 'तत्र वै शतधा चैव' इति 'क'।

३. शिव के अस्त्र त्रिशूल के सिर पर तीन फल होते हैं। यह सूर्य के वैष्णव तेज से त्वष्टा द्वारा प्रस्तुत किया गया था। देखें—'मत्स्य-पुराण' (११–२९)–"पृथक् चकार तत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत्। त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिन्द्रस्य चाधिकम्" ॥ ४. विविधानि-रविचन्द्राग्नि अक्षीणि यस्य। अर्थात् सूर्यचन्द्राग्निरूपी नेत्र वाले भगवान् शंकर की ग्यारह मूर्तियों में से एक रुद्र। 'रुद्र' क्रोधरूप माने जाते हैं। इन्हीं

व्यास उवाचः—

इत्येवं शुकसन्तुष्टो[1] महादेवस्तपोधनाः। उवाच करुणार्द्रेण वचसा वदतां वरः ॥५०॥

शिव उवाच –

दुष्प्राप्यं देवगन्धर्वैः प्रयच्छामि वरं खगाः। वृण्वन्त्वभीप्सितं मत्तः सिद्धि येन प्रयास्यथ।५१।

शुका ऊचुः—

नान्यदिच्छाम वै शम्भो त्वत्पादयुगलं विना। अपि त्रैलोक्यराज्यं वै महेन्द्रपदवीं तथा ॥५२॥

ते पादयुगलं शम्भो त्यक्तुं कालत्रयैरपि। न शक्नुमो वयं मूढा वत्सं गौः कातरा यथा ॥ ५३ ॥

व्यास उवाच—

इति तैः प्रार्थितः शम्भुस्तथेत्युक्त्वा च तान् खगान्। अधिरोप्य विमानाग्रे ययौ नीत्वा स्वमन्दिरम्

इत्येतत्कथितं विप्राः शुकाख्यानं सुविस्तरम्। यः शृणोति हरस्याग्रे यमलोकं न पश्यति ॥५५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शुकेश्वरमाहात्म्यं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा – शुकों की प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर करुणार्द्र भगवान् शंकर ने इस प्रकार कहा ॥ ५० ॥

शिवजी बोले—हे पक्षियों ! तुम वर माँगो चाहे वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ हो। उससे तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि होगी ॥ ५१ ॥

सुग्गों ने कहा – आप के चरण-युगलों के अतिरिक्त हम कुछ नहीं चाहते। त्रैलोक्य-राज्य एवं महेन्द्र पदवी के भी हम इच्छुक नहीं हैं। जैसे कातर गायें अपने बछड़ों को नहीं छोड़ती हैं, उसी प्रकार हम भी आपके चरण-कमलों का परित्याग नहीं कर सकते ॥५२–५३।

तब व्यासजी बोले—इस प्रकार सुग्गों की प्रार्थना सुन 'तथाऽस्तु' कहते हुए भगवान् शंकर उन सुग्गों को विमान में चढ़ा कर अपने लोक को ले चले। हे विप्रों ! इस शुकाख्यान का विस्तार के साथ वर्णन मैंने कर दिया है। जो शिवजी के समक्ष इस उपाख्यान को सुनता है, उसे यमयातना नहीं देखनी पड़ती ॥ ५४–५५ ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'शुकेश्वर'-माहात्म्य नामक तेतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

से भूत, प्रेत, पिशाचादि उत्पन्न बतलाये गए हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अनुसार ये उत्पन्न होते ही जोर जोर से रोने लगे थे (√रुद्=रोना)। इसी से इनका नाम रुद्र पड़ा। ५. काम आदि के विनाशक पितृ-मोक्षप्रद देवता (सूर्यरूपी)। देखें 'वायुपुराण'—"तिमिरादित्य ईशान-भर्गादिते महेश्वराः। वह्निर्द्वौ वरुणौ रुद्राभ्रस्वारः पितृमोक्षदाः" ॥ ६. सर्व प्रथम स्वयं प्रकट होने वाला देवता शिव—भवति भवते वा सर्वम्—√भू+अच्।

१. 'इति शुकैः सुसन्तुष्टो' इति 'क'।

३४

ऋषय ऊचुः—

शुकेश्वरस्य माहात्म्यं त्वयैतत्समुदाहृतम् । तीर्थानां तत्र माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामो वै द्विजाः ।१।

व्यास उवाच—

तस्य पादतले पुण्या शतधारा सरिद्वरा । शुकैः संप्रार्थिता शुद्धा विद्यते मुनिसत्तमाः ॥ २ ॥
ब्राह्मं सौरं तथा चान्द्रं शुकं सारण्यकं तथा । निमज्य तेषु तीर्थेषु नरो ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥ ३ ॥
संगमे शतधारायाः पुण्या गुप्तसरस्वती ॥ ४ ॥
तत्र स्नात्वा च मनुजः शुकेशं यः प्रपूजयेत् । शिवलोकमवाप्नोति रुद्रकन्यानिषेवितः ॥ ५ ॥
शतधारा शुकवतीं ययौ वै मुनिसत्तमाः । सङ्गमे शतधारायाः शुकवत्यास्तथैव च ॥ ६ ॥
यः स्नाति मानवः सम्यक् स याति शिवमन्दिरम् । तत्र दुःशासनो विप्र जित्वा पर्वतभूमिपान् ।७।
चकार मज्जनं पुण्यं बली कौरवनन्दनः । तत्र श्मशाननिलयं देवं दुःशासनेश्वरम् ॥ ८ ॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् शिवलोके महीयते । द्रोणाद्रिपादसम्भूतां पुण्यां शुकवतीं हि ये ॥ ९ ॥
निमज्जन्ति महाभागास्ते न यान्ति यमालयम् । द्रोणाद्रिपादसम्भूतासुतोये प्रार्थयन्ति माम् ॥
तस्यां निमज्य मनुजाः पूज्यन्ते शिववद् भुवि । सन्ति तीर्थान्यनेकानि शुकवत्याः पदे पदे ॥११।
या गार्गी समनुप्राप्य पूज्यते सिद्धनायकैः । गार्गीशुकवतीसङ्गे वटेशं नाम शंकरम् ॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् शिवलोके महीयते ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शुकेश्वरमाहात्म्यं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने कहा—महर्षे ! शुकेश्वर का माहात्म्य तो आपने सुना दिया । अब हम वहाँ के समीपवर्ती तीर्थों का माहात्म्य सुनने के इच्छुक हैं ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहना आरम्भ किया—उसके निम्नभाग में 'शतधारा' नदी है । उसमें अनेक तीर्थ प्रतिष्ठित हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्राह्म, सौर, चान्द्र, शुक और सारण्यक । इनमें स्नान कर मानव 'ब्रह्मपुर' को जाये[1] । फिर 'शतधारा' के सङ्गम में पवित्र 'गुप्त-सरस्वती' है । उसमें स्नान करने के पश्चात् शुकेश्वर का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है । 'शतधारा' और 'शुकवती' के सङ्गम में जो स्नान करता है, उसे शिवलोक प्राप्त होता है । हे ऋषिवरों ! यहाँ पर दुःशासन ने पर्वतीय शासकों को जीत कर स्नानोपरान्त शंकर का पूजन किया था । वहीं श्मशानभूमि पर 'दुःशासनेश्वर' का मन्दिर है । उनका पूजन कर मानव शिवलोक में संमानित होते हैं । द्रोणपर्वत[2] के निम्नभाग से निकली हुई 'शुकवती'[3] में स्नान करने से यमलोक में नहीं जाना पड़ता । ऐसे लोग पृथ्वी पर शिव की तरह संमानित होते हैं । 'शुकवती' के पग पग पर अनेक तीर्थ हैं । वह 'गार्गी' में मिलने पर सिद्धों से पूजित होती है । वहाँ पर 'वटेश'[4] महादेव का पूजन करने से शिवलोक में संमान मिलता है ॥ २–१२ ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'शुकेश्वर'-माहात्म्य
नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. यहाँ 'ब्रह्मपर्वत', 'ब्रह्मपुर', 'ब्राह्मतीर्थ' आदि शब्द उस 'ब्रह्मपुर' राज्य की ओर संकेत करते हैं, जिसका अस्तित्व चीनी यात्री 'युवानच्वाङ' ने अपनी यात्रा के समय बतलाया है ।

२. दूनागिरि नाम से प्रसिद्ध । ३. स्थानीय नाम—सुरने गाड़ । ४. स्थानीय नाम—मणकेश्वर ।

३५

ऋषय ऊचुः—

गार्गीमध्यगतानां तु माहात्म्यं मुनिसत्तम । कथयस्व प्रसादेन सर्वतो विदितं हि यत्[1] ॥१॥

व्यास उवाच—

द्रोणद्विपादौ द्वौ विप्रा वदन्ति हि मनीषिणः । लोध्र-ब्रह्मेति विख्यातौ पर्वतौ सिद्धसेवितौ ॥२॥
तयोर्मध्ये महाभागाः पुण्यो गर्गाश्रमः स्मृतः । तस्याश्रमसमुद्भूता गार्गी नाम सरिद्वरा ॥ ३ ॥
गङ्गासारजलैः पूर्णा मकरैश्च विराजिता । मूले गङ्गेश्वरं नाम देवं सम्पूज्य वै द्विजाः ॥ ४ ॥
पूजया मानवः सम्यक् शिवलोके महीयते । ततो गार्गीसरिन्मध्ये पुण्यं गर्गह्रदं स्मृतम्[2] ॥५ ॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो ब्रह्मलोके महीयते । ततो बिल्ववती नाम गार्गीसंगमसंगता ॥६॥
तयोर्मध्ये महादेवं[3] मणिकेशं द्विजोत्तमाः । सम्पूज्य मानवः सम्यक् ऐहिकं फलमाप्नुयात् ॥७॥
ततो वेत्रवती नामा गार्गीसंगमसंगता । तत्र स्नात्वा च विधिवत् तयोर्मध्ये महेश्वरम् ॥८॥
सोमेशं तत्र सम्पूज्य सोमलोके महीयते । ततो[4] वामे महादेवी भद्रा संपूज्यते द्विजाः ॥९॥
तासु पूज्य नरः सम्यगैहिकं फलमश्नुते । ततो भद्रवती नामा गार्गी-संगत-संगता ॥१०॥
यः स्नाति मानवः सम्यक् स पापैर्मुच्यते द्विजाः । तयोर्मध्ये महादेवं भद्रेशं नाम नामतः ।११।
सम्पूज्य मानवो विप्राः शिवेन सह मोदते । दक्षिणे कमलाकान्तं गुहायां परमेश्वरम् ॥१२॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् विष्णुलोके[5] महीयते । ततः शुकवतीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः ॥१३॥
निमज्य मानवस्तत्र पितॄन् संतारयेत् स्वकान् । वामे शैलवतीं देवीं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः॥१४॥

ऋषियों ने व्यासजी से कहा—महर्षे ! आप सर्वज्ञ हैं। कृपया 'गार्गी' नदी के अन्तर्गत तीर्थों का माहात्म्य भी बतलायें ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—हे ऋषियों ! द्रोणाचल के निम्न भाग में दो शृङ्ग हैं—(१) 'लोध्र' तथा 'ब्रह्म'। ये दोनों सिद्धों से सेवित हैं। इन दोनों के मध्य 'गर्गाश्रम' है। उस आश्रम से निकलने वाली 'गार्गी' नदी गंगाजल के समान स्वच्छ जल एवं नाकों से भरी हुई है। उसके मूल में 'गङ्गेश्वर' शिव पूजे जाते हैं। उनके पूजन से शिवलोक प्राप्त होता है। तत्पश्चात् 'गार्गी' के मध्यस्थ 'गर्गह्रद' है। वहाँ स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में आनन्दित होता है। तदनन्तर 'बिल्ववती' नदी 'गार्गी' में मिल जाती है। इन दोनों नदियों के मध्यस्थ 'मणि-केश' शिव का पूजन करने से ऐहिक कामनायें पूर्ण होती हैं। उसके बाद 'वेत्रवती' का 'गार्गी' के साथ संगम है। वहाँ स्नान तथा 'सोमेश' का पूजन करने से चन्द्रलोक (सोमलोक) प्राप्त होता है। फिर बाई ओर 'भद्रा' महादेवी का पूजन करने से ऐहिक कल्याण प्राप्त होता है। आगे चल कर 'भद्रवती' भी 'गार्गी' में मिल जाती है। उसमें स्नान करने से मानव को पापों से मुक्ति मिलती है। हे ऋषिवर ! इन दोनों के मध्यस्थ 'भद्रेश' नामक शिव का पूजन करने से शिवसायुज्य प्राप्त होता है। दाहिनी ओर गुहा में भगवान् विष्णु का पूजन करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है। तब 'शुकवती'-'गार्गी' का संगम है। वहाँ पर स्नान-पूजादि से पितरों का

---

१. 'सर्वं ते विदितं हि यत्' इति 'क'। २. गार्गीह्रदम्' इति 'क'।
३. 'मणिकेशम्' इत्यारभ्य···'विधिवत्' इति पर्यन्तः अंशः 'क' पुस्तके नोपलभ्यते।
४. 'तस्य' इति 'क'। ५. 'शिवलोके' इति 'ख'।

ऐहिकं फलमाप्नोति महामायाप्रसादतः। ततस्तु संगमं पुण्यं वर्ण्यते मुनिसत्तमाः ॥१५॥
शैलवत्याः सुपुण्याया गार्गीमध्ये सुपूजितम्। तयोर्मध्ये महादेवं चिताभस्मविभूषणम् ॥१६॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् शिवसायुज्यमश्नुते। वामे कर्णाटकां देवीं दक्षिणे विजयां तथा ॥१७॥
सम्पूज्य फलमाप्नोति वाञ्छितं मुनिसत्तमाः। ततो गार्गी महाभागा सुपुण्ये देवसेविते ॥१८॥
सङ्गमे रथवाहिन्या ययौ सा सरितां वरा। सुगार्गीरथवाहिन्योः संगमे मुनिसत्तमाः ॥१९॥
निमज्य पिण्डदानं ये प्रकुर्वन्ति समाहिताः। समुद्धरन्ति ते विप्राः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥२०॥
तत्र चक्रेश्वरं वामे देवं सम्पूज्य वै द्विजाः। शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥२१॥
तत्र वामे महामायां चक्रवाकीं द्विजोत्तमाः। सम्पूज्य मानवो याति महेन्द्रभवनं प्रति ॥२२॥
ततः पारावती नाम तथा चक्रवती सरित्। सङ्गमे रथवाहिन्या ययतुर्मुनिसत्तमाः ॥२३॥
तत्र पारावतीं देवीं पुण्ये पाराहपर्वते। सम्पूज्य मानवो लोके पूज्यते देववद् द्विजाः ॥२४॥
अनेकार्बुदसंख्यानि तीर्थानि मुनिसत्तमाः। सुपुण्ये रथवाहिन्या जले सन्ति न संशयः ॥
तानि सर्वाणि व्याख्यातुं न शक्यन्ते द्विजोत्तमाः ॥२५॥
माहात्म्यं रथवाहिन्यास्तथा गार्ग्या द्विजोत्तमाः। संक्षेपेण मया प्रोक्तं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छथ।२६।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे रथवाहिनीमाहात्म्यं नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

उद्धार होता है। फिर बाईं ओर 'शैलवती' देवी का पूजन कर महामाया की कृपा से ऐहिक सुख प्राप्त करें। तब दूसरा शैलवती-गार्गी का पवित्र संगम है। उसी संगम के मध्यस्थ सुपूजित 'चिताभस्मधारी' शङ्कर का पूजन कर शिवसायुज्य मिलता है। उसके वामभाग में 'कर्णाटका' देवी और दक्षिण भाग में 'विजया' देवी का पूजन करने से वाञ्छित फल मिलता है। तत्पश्चात् 'गार्गी' नदी का 'रथवाहिनी' के साथ संगम है। इन दोनों नदियों के संगम पर तन्मयता के साथ स्नान एवं पिण्डदान करने से एक सौ एक कुलों का उद्धार होता है। तब 'चक्रेश्वर'[1] का पूजन करने से शिवसायुज्य का आनन्द मिलता है। हे द्विजवरों! वहीं वामभाग में 'चक्रवाकी' देवी का पूजन कर अमरावती जाने का सौभाग्य मिलता है। मुनिवरों! तब 'पारावती' तथा 'चक्रवती' नदियां का 'रथवाहिनी' के साथ संगम हो जाता है। वहाँ 'पाराह' पर्वत पर 'पारावती' देवी का पूजन कर मानव देवताओं के समान पूजित होते हैं। श्रेष्ठ मुनिवरों! रथवाहिनी नदी में असंख्य (अरबों) तीर्थ हैं। उनका वर्णन करना सम्भव नहीं। अतः मैंने 'गार्गी' और 'रथवाहिनी'[2] के माहात्म्य का संक्षेप में वर्णन किया है। अब आप और क्या पूछना चाहते हैं॥ २-२६॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड के अन्तर्गत 'रथवाहिनी-माहात्म्य' नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

---

१. स्थानीय परिचय—'भिकियासैण' के पास 'चटकेश्वर'।

२. रथवाहिनी का नाम 'जैमिनीय-ब्राह्मण' में 'रथस्या' है। 'ऋक्तन्त्र प्रातिशाख्य (४-७-५) में भी 'रथस्या' है। महाभारत के आदिपर्व में 'सरस्वती' और 'गण्डकी' के बीच की सात पवित्र नदियों में इसका नाम 'रथस्या' है। यही रामगंगा उपरले भाग में 'रहुत' कहलाती है। मध्यकालीन कोषों में पैंचाल का पुराना नाम 'प्रत्यग्रथ' दिया है। मैदान में आकर 'रामगंगा' यहीं बहती है। 'रथस्या' और 'प्रत्यग्रथ' का अर्थ एक सा है—"जहाँ पहुँच कर रथ ठहर जाय या मुड़ जाय"। पाणिनि ने भी (४-१-१७३) 'प्रत्यग्रथ' जनपद का उल्लेख किया है।

३६

ऋषय ऊचुः—

द्रोणाद्रिरिति यः ख्यातस्त्वया ब्रह्मर्षिसत्तम । माहात्म्यं तस्य पुण्यस्य श्रोतुमिच्छाम[1] साम्प्रतम् ।

व्यास उवाच—

कौशिकीरथवाहिन्योर्मध्ये द्रोणगिरिः स्मृतः । द्रोणाद्यैर्वसुभिः पुण्यैः सेवितः सुमनोहरः ॥२॥
नानाविधैः पक्षिगणैः सेव्यमानो महागिरिः । महौषधिमहादीपैः रात्रौ मरकतोपमः ॥३॥
इतस्ततः प्रधावद्भिः शार्दूलैश्च निषेवितः । गुहासु चातिकान्तासु सिद्धकन्याविराजितः ॥४॥
महेन्द्रप्रमुखैर्देवैः परिवार्य निषेवितः । प्रौढाख्यादिसरैर्युक्तस्तथा देवतटादिभिः ॥५॥
पर्वतस्य च कन्याभिः सेवितो[2] मुनिसत्तमाः । स गिरिप्रवरो भूत्वा राजते मेरुवत् स्वयम् ॥६॥
यत्र पुण्या महौषध्यो रात्रौ सम्प्रवदन्ति हि[3] । ये चास्मान् पश्य वै मूढा न गृह्णन्ति वने कथम् ।
सिद्धिं यान्ति दुराचारा भाग्यहीना निरर्थकाः । ये चास्मान्पश्य वै मूढाः करलग्नान्त्यजन्ति हि ॥

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ ! आप ने 'द्रोण' पर्वत का उल्लेख किया है, अब हम उस पवित्र पर्वत का माहात्म्य सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥

महर्षि व्यास ने बतलाया—कौशिकी[4] और रथवाहिनी[5] के मध्य द्रोणपर्वत की स्थिति है। वह भव्य है और द्रोण[6] आदि आठ वसुओं से सेवित है। नाना प्रकार के पक्षियों से समाविष्ट होने के कारण वह रमणीय है। रात्रि के समय महौषधिरूप-दीपकों से उज्ज्वलित होने पर वह मरकत-मणि (हरित-मणि) की तरह चमक जाता है। इधर-उधर विचरण करते हुए शेरों से व्याप्त तथा सुन्दर गुफाओं में सिद्ध कन्याओं से आवासित है। महेन्द्र आदि प्रधान देवताओं से सेवित होते हुए 'प्रौढसर' आदि सरोवरों तथा अनेक पवित्र स्थानों से युक्त है। वह पर्वत-कन्याओं से सेवित होता हुआ भी मेरु के सदृश शोभित हो रहा है। वहाँ पर रात्रि के समय पवित्र महौषधियाँ परस्पर वार्तालाप करती हैं। वे कहती हैं कि 'भाग्यहीन और दुराचारी लोग जब हमें प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते तो उन्हें सफलता कैसे प्राप्त

---

१. विसर्गलोपश्छान्दसः । २. 'क्रीडितो' इति 'घ' ।

३. 'रात्रौ सम्प्रवदन्ति हि' इत्यारभ्य···'त्यजन्ति हि' इतिपर्यन्तः अशः 'क' पुस्तके नास्ति ।

४. कोसी नदी । ५. पश्चिमी रामगङ्गा । ६. भागवत (६–६–१०) में आठ वसुओं के अन्तर्गत 'द्रोण' का नाम मिलता है—"वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु । द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः" ॥ देवीभागवत में भी इसी प्रकार कथानक है कि वसिष्ठ ने अपनी धेनु नन्दिनी के 'द्यो' नामक वसु द्वारा चुराये जाने के कारण वसुओं को मानव के रूप में जन्म लेने का शाप दिया था। इनमें से सात वसुओं के शाप की अवधि तो केवल एक वर्ष की कर दी। किन्तु 'द्यो' नामक वसु को दीर्घ काल तक मनुष्ययोनि में रहने एवं सन्तान उत्पन्न न करने तथा स्त्रीसुखोपभोग से वञ्चित रहने का शाप दिया। इसके फलस्वरूप इनका जन्म 'शन्तनु' की पत्नी 'गङ्गा' के गर्भ से 'भीष्म' के रूप में हुआ। तदनुसार सात को गङ्गा ने जल में फेंक दिया और आठवें भीष्म को बचा लिया।—देखें—देवीभागवत स्कन्ध २, अध्याय ४।

ते कथं मानवे लोके सिद्धिं यान्ति निरर्थकाः । रात्रौ रात्रौ हि संवादं प्रकुर्वन्ति तपोधनाः ॥९॥
ये निमज्य महाभागाः प्रौढाख्ये सरनायके । समारोहन्ति द्रोणाद्रिं दुर्दर्शं पापकारिभिः ॥१०॥
ते सिद्धिं यान्ति वै विप्राः प्रार्थितां सिद्धिनायकैः । वामे देवतटो नाम सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥११॥
विद्यते मुनिशार्दूलाः पुण्यो मानसरोपमः । सिद्धगन्धर्वनारीणां क्रीडनार्थं दिवेश्वरः ॥१२॥
यं सम्यग् रचयामास[1] पुण्यतोयैर्द्विजोत्तमाः । तस्मिन् वै सिद्धगन्धर्वास्तथा सिद्धाङ्गनाः शुभाः ।
निमज्जन्ति महाभागाः संस्थिता द्रोणसानुषु । सरे तस्मिन् महाभागा निमज्य त्रिदिवेश्वरम् ॥
सम्पूज्य तटमध्यस्थां महादेवीं तथैव च । यो याति द्रोणशिखरं स देवैः सह मोदते ॥१५॥
द्रोणं वसूनां प्रवरं स्नात्वा द्रोणसरोवरे[2] । तथा द्रोणेश्वरं नाम गिरिमध्ये द्विजोत्तमाः ॥१६॥
सम्पूज्य मानवः सम्यक् वसुभिः सुप्रपूज्यते । द्रोणाद्रिनागयोर्मध्ये बिल्वेशं नाम शङ्करम् ॥१७॥
सम्पूज्य मुनिशार्दूला वाजपेयफलं लभेत् । पुण्ये द्रोणाद्रिकक्ष्ये वै महामायां हरप्रियाम् ॥१८॥
वरदां शूलहस्तां तां महिषासुरघातिनीम् । द्रोणाद्यैर्वसुभिः पुण्यैः पूजितां मृगवाहिनीम् ॥१९॥
देवीं वह्निमतीं पूज्य सिद्धिं यातीह मानवः[3] । तथैव कालिकां देवीं द्रोणाद्रिकुक्षिसंस्थिताम् ॥
सम्पूज्य प्राप्यते विप्रा मनोऽभिलषितं फलम् । मासमात्रेण सम्पूज्य देवीं वह्निमतीं तथा ॥२१॥
ये वसन्ति महाभागा द्रोणाद्रिशिखरे शुभे । ते सिद्धिं समनुप्राप्य पूज्यन्ते दैवतैरपि ॥२२॥

हो सकती है' ? 'हाथ में आई हुई इन महौषधियों को छोड़ कोई यदि चाहे कि सफलता मिल जाय, यह सम्भव नहीं' । यह उनके परस्पर संवाद का रूप है । हे ऋषियों ! जो व्यक्ति प्रौढ-सरोवर में स्नान कर पापियों के लिये अदृश्य द्रोण-पर्वत पर चढ़ते हैं, वे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करते हैं । उसके वामभाग में 'देवतट' नामक सरोवर है । वह मानसरोवर के समान सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित है । उसे देवराज इन्द्र ने देवाङ्गनाओं के जलक्रीडा करने के लिए बनवाया था । उसमें 'द्रोणाद्रि' के श्रृङ्ग पर रहने वाले सिद्धों, तथा गन्धर्वों आदि की अङ्गनायें (नायिकायें) स्नान का आनन्द लेती हैं । हे महाभागों ! प्रौढसरोवर में स्नान कर 'स्वर्गाधिपति' तथा 'देवतट' के मध्यस्थ 'महादेवी' का पूजन कर जो लोग शिखर पर आरूढ होते हैं, वे देवताओं के साथ आनन्दित होते हैं । 'द्रोणसरोवर' में स्नान कर आठों वसुओं में श्रेष्ठ 'द्रोण' तथा पर्वत पर द्रोणेश्वर' की पजा करने से मनुष्य वसुओं से सम्मानित होता है । 'द्रोणाचल' और 'नागार्जुन' के मध्य 'बिल्वेश' नामक शिव का पूजन कर 'वाजपेय' यज्ञ का फल मिलता है । पवित्र द्रोणाचल के बगल में (समीप) महामाया 'हरप्रिया' का पूजन करे । वही देवी वरदात्री, शूलहस्ता एवं महिषासुरमर्दिनी हैं । वह सिंहवाहिनी वह्निमती देवी पवित्र द्रोणादि वसुओं से पूजित होने के कारण मानवों को मनोभिलषित फल देती हैं । इसी प्रकार द्रोणाचल की ही दूसरे कोख में 'कालिका' का पूजन करने पर मानवों की मनःकामना पूर्ण होती है । वह भगवती महिषमर्दिनी, शूलिनी, वरदा तथा सिंहवाहिनी आदि नामों से पूजित हैं । द्रोणाचल के बगल में विराजमान 'कालिका' माता का पूजन करने से मनोभिलषित फल मिलता है । जो मनुष्य

---

१. 'यं वै विरचयामास' इति 'क' । २. 'द्रोणजले शुभे' इति 'क' ।

३. 'यान्तीह मानवाः' इति 'क' ।

मयैतत् कथितं विप्रा माहात्म्यं नातिविस्तरम् । यः शृणोति महाभागा विष्णुना स हि पूज्यते[1] ।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे द्रोणाद्रिमाहात्म्यं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

द्रोणाद्रि[2] के शिखर पर मास-पर्यन्त निवास करते हुए 'वह्निमती' देवी का पूजन करते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर देवताओं से भी संमानित होते हैं। हे ऋषिवरों ! संक्षेप में मैंने यह आप लोगों से वर्णन किया है। इस माहात्म्य का श्रवण करने वाला भी भगवान् विष्णु से अभ्यर्चित होता है ॥ २-२३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'द्रोणाद्रि' माहात्म्य
नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'विष्णुलोके प्रपूज्यते' इति 'क' ।

२. वाल्मीकि रामायण के 'युद्धकाण्ड' के १०१ वें अध्याय में लक्ष्मण को शक्ति लगने के उपरान्त सुषेण ने हनुमान् को 'महोदय'-पर्वत पर संजीवनी बूटी लाने के लिये भेजा। उस पर्वत के दक्षिण शिखर पर लगी हुई 'विशल्यकरणी', 'सावर्ण्यकरणी', 'सजीवकरणी' तथा 'सन्धानी' नाम से प्रसिद्ध महौषधियों को लाने के लिये कहा—"सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् । पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता तव ॥ दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय । विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ॥ सञ्जीवकरणीं वीरसन्धानीं च महौषधिम् । संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय ॥"—(३०-३३)। सन्देह में पड़ने के कारण मारुति जल से भरे हुए मेघ के समान उस पर्वत-शिखर को ही ले आये—"स नीलमिव जीमूतं तोयपूर्णं नभस्तलात् । उत्पपात गृहीत्वा तु हनूमान् शिखरं गिरेः ॥"—(३८)। (ख) 'द्रोणगिरि' नामक एक और ऊँचा पर्वत भी है। जिसकी ऊँचाई २३, १२४ फीट है। प्रकृत सन्दर्भ में वर्णित 'द्रोण' से सम्बद्ध 'द्रोणगिरि' का उल्लेख अन्य पुराणों में भी हुआ है। विशेषतः महाभारत में द्रोणाचार्य से सम्बद्ध अनेक स्थान प्रसिद्ध रहे हैं। तदनुसार द्रोणाचार्य भरद्वाज के पुत्र थे। उनका आश्रम हरिद्वार के निकट था। द्रोण इनके पुत्र थे। भरद्वाज से अग्निवेश को जितने अस्त्र मिले थे, वे उन्होंने सब द्रोण को दे दिये थे। इन्होंने महेन्द्र पर्वत पर जाकर परशुराम से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई थी (महाभारत आदि० १३०-४०-५०)। महर्षि अग्निवेश के आश्रम में राजा द्रुपद इनके बालसखा और सहाध्यायी थे। राज्य मिलने पर उन्होंने द्रोण का तिरस्कार किया था (महा० आदि० १३०।४०-५०)। फिर ये हस्तिनापुर चले गए और कौरव तथा पाण्डवों के गुरु बने। पञ्चाल-नरेश द्रुपद के हारे जाने पर पाञ्चाल-प्रदेश के उत्तरी भाग पर इन्होंने राज्य किया। इस प्रकार इनका सम्बन्ध 'अहिच्छत्रा' (काशीपुर से ६६ मील दूर) से मिले हुए कूर्माचल के तराई प्रदेश में रहा। इनके नाम से प्रसिद्ध 'द्रोणसागर' आदि स्थल उस समय के इतिहास को उजागर करते हैं। गंगा के दक्षिण तट का स्पर्श करते हुए इनके राज्य की सीमा 'चर्मण्वती' (चम्बल) नदी तक फैली रही। इस प्रकार कुरुवंशी राजाओं से शासित भूभाग के उत्तरवर्ती होने के कारण 'उत्तर-कुरु' नाम से अभिहित महाभारतकालीन पर्वतीय प्रदेश की प्रमुखता रही है। महाभारत के सभापर्व में उल्लिखित राजसूय यज्ञ में 'पिपीलिका-स्वर्ण' उपहार लाने वाले राजाओं की सूची में हिमालय-प्रदेश के शासकों का नाम आया है—

"खसा एकासना ह्यर्हाः प्रदरा दीर्घवेणवः । पारदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः ।
तद्वै पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत् पिपीलिकैः । जातरूपं द्रोणमेयमहार्षुः पुञ्जशो नृपाः" ॥

—(अध्याय ५२ श्लोक २ से ४)।

३७

सूत उवाच—

पिनाकीशस्य माहात्म्यं श्रुत्वा ते मुनिसत्तमाः। कृष्णद्वैपायनं व्यासं पप्रच्छुर्नृपसत्तम ॥१॥

सूतजी बोले—राजन्! 'पिनाकीश' के माहात्म्य को सुनकर उन ऋषियों ने महर्षि व्यास से आगे पूछना आरम्भ किया¹ ॥ १ ॥

पर्वतीय-प्रदेश के इस तराई क्षेत्र की महत्ता चीनी यात्री 'युवानच्वाङ' (६२८ – ६३४ ई० के मध्य) के विवरण से सूचित होती है। 'युवानच्वाङ' ने 'गोविषाण' राजधानी का उल्लेख किया है। तदनुसार यह राज्य-नगरी 'मन्दावर' के दक्षिण ४०० ली (६७ मील) की दूरी पर स्थित थी। इसके चारों ओर जलाशय थे। यह नगर शिखर (टीले) पर बसा था। भूगोलवेत्ताओं के अनुसार यह वर्तमान काशीपुर (जि० नैनीताल में मुरादाबाद से ३० मील उत्तर) से एक मील की दूरी पर स्थित 'उज्जैन' (गांव) है। यहां प्राचीन दुर्ग के ध्वंसावशेष हैं। यहां के जलपूर्ण सरोवरों में 'द्रोणसागर' अब भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त यहां पर 'गिरिताल' तथा 'कटोराताल' भी विद्यमान हैं। महाभारत-कालीन नगरी होने से यह प्रतीत होता है कि पाण्डवों ने द्रोण की स्मृति में 'द्रोणसरोवर' बनाया होगा। 'द्रोणसागर' की भित्ति १५×१०×२½ फीट हैं, जो प्राचीनता का द्योतक हैं। दीवारों की ऊँचाई ३० फीट है। अब यहां वन हो गया है। किले का भीतरी भाग २० फीट ऊँचा है। उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम की ओर द्वार हैं। ये द्वार अब जंगल के मार्ग रह गए हैं। 'ह्वेनसांग' के अनुसार 'गोविषाण' का राज्य २०००×३३३ ली का क्षेत्र था। उसने किसी राजा का नामोल्लेख नहीं किया है। कदाचित् यह 'मन्दावर' राज्य के अन्तर्गत हो।

१. छत्तीसवें अध्याय के अन्त में कुछ अंश मूल में त्रुटित है। वहां पिनाकीश की जिज्ञासा भी होनी चाहिये। उनका वर्णन पहले कहीं नहीं हुआ है। पैंतीसवें अध्याय के आरम्भ में 'द्रोणाचल' के दो शृङ्गों का उल्लेख है—'ब्रह्म' तथा 'लोध्र'। 'ब्रह्मपर्वत' का वर्णन हो चुका है। 'लोध्र' से सम्बद्ध वर्णन रह गया है। 'भटकोट' पहाड़ 'लोध्र' पर्वत है। उसके एक ओर तो 'कोशी' नदी है और दूसरी ओर 'रथवाहिनी'। 'रथवाहिनी' के उद्‌गमस्थल का भी स्पष्ट निर्देश कहीं नहीं किया गया है। वह 'ग्वालदम' और 'दूधातोली के मध्यस्थ शिखर से नीचे उतरती है। उसी से कुछ नीचे दक्षिण की ओर ऊँचाई पर 'वृद्ध पिनाकीश' का स्थान है। बाद में नीचे की ओर बाजबहादुर चन्द्र (१६२८–१६७८) ने सन्तति न होने पर अपनी मनःकामना की पूर्ति के लिए नया मन्दिर बनवाया। इससे उनको सन्तति हुई। वहां मन्दिर-प्रबन्ध हेतु 'गूंठ' (माफी जमीन) दी गई। उसकी पूर्ति संक्षेप में निम्न लिखित श्लोकों द्वारा की जा रही है।

ऋषय ऊचुः—"ब्रह्मपर्वतमाहात्म्यं भवता समुदीरितम्। वैशिष्ट्यं लोध्रशृङ्गस्य भवान् वदतु सत्वरम् ॥

व्यास उवाच—ईशानकोणाधिपतिः पिनाकी यत्र तिष्ठति। स लोध्रशृङ्गः प्रथितो द्रोणपर्वतपार्श्वगः ॥
तत्रैव जामदग्न्यश्च तपस्तेपे सुदुष्करम्। यस्य प्रभावाद्रथगा रामगङ्गेति विश्रुता ॥
यद्धनुः प्राप्य जनकः कृतार्थः सम्बभूव ह। सीतास्वयंवरे रामो हेलयैव बभञ्ज तत् ॥
वरदो हि पिनाकीशो जातः सन्ततिदायकः। पूजयेयुः पिनाकीशं सन्ततेरभिलाषुकाः ॥"

ऋषय ऊचुः—

पिनाकीशस्य माहात्म्यं कथितं मुनिसत्तम। यावद् ब्रह्मसरः[1] पुण्यं तावत् क्षेत्रं त्वयोदितम्।२।
ततः कौशिकि-माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामो वै द्विज। वामदक्षिणगानां च तीर्थानां वद विस्तरम्[2]।

व्यास उवाच—

कौशिकीतीर्थमाहात्म्यं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः। यस्यां ब्रह्मसरः पुण्यं[3] विद्यते मुनिसेवितम्[4]।४।
निमज्य विधिवत्तत्र सम्पूज्य च प्रजापतिम्। पिण्डं दत्त्वा च मतिमान् पितॄणां तारयेच्छतम्।।
ततस्तु कर्कटी नाम कौशिकीसङ्गमे द्विजाः। सङ्गता तीर्थबहुला पुण्यतोयवहा सरित्।।६।।

ऋषियों ने कहा—मुनिवर ! आपने 'पिनाकीश' के माहात्म्य को बतलाया। (इसके साथ ही) ब्रह्मसर-पर्यन्त पिनाकीश के क्षेत्र को भी बतला दिया। अब हमलोग 'कौशिकी' के माहात्म्य को सुनने के इच्छुक हैं। अतः उसके बाईं और दाहिनी ओर के तीर्थों का भी विस्तार के साथ आप कृपया वर्णन करें।। २-३ ।।

व्यास ने कहा—मुनिवरों ! अब आप लोग कौशिकी[5] (कोसी नदी) के तीर्थों के माहात्म्य को सुनें। उसमें पवित्र एवं मुनियों से सेवित 'ब्रह्मसर' विद्यमान है। वहाँ स्नान एवं ब्रह्मा का पूजन एवं पिण्डदान करने से पितरों की तृप्ति होती है। ब्रह्मसरोवर के बाद 'कर्कटी' नदी अनेक तीर्थो से युक्त तथा दिव्यजलवाहिनी होकर 'कौशिकी' में मिल जाती है। उसमें

---

१. 'ब्रह्मसरम्' इति 'क'। २. 'विस्तरात्' इति 'क'।
३. 'पुण्यो' इति 'क'। ४. 'मुनिसेवितः' इति 'क'।

५. वाल्मीकि-रामायण में अनेक स्थलों पर 'कौशिकी' का उल्लेख है। सर्वप्रथम बालकाण्ड के ३१वें सर्ग के श्लोक १५ में मिथिला जाते समय उत्तर दिशा की ओर 'हिमालय' की उपत्यका में जाने का उल्लेख किया है। तदनन्तर ३४ वें सर्ग के १२ वें श्लोक में राम की महिमी बतलाते हुए यह कहा गया है कि विश्वामित्र की बड़ी बहन सत्यवती (ऋचीक की पत्नी) अपने पति का अनुगमन कर सशरीर स्वर्ग को गई और वही जगत् का हित करने के लिए हिमालय का आश्रय ले महानदी 'कौशिकी' के रूप में प्रवाहित हुई—"सा तु सत्यवती पुण्या सत्ये धर्मे प्रतिष्ठिता। पतिव्रता महाभागा कौशिकी सरितां वरा।।" फिर वे उसका साथ छोड़ कर यज्ञ-नियम-सम्बन्धी सिद्धि के लिए 'सिद्धाश्रम' में गए थे। वहां के विघ्नों को राम ने दूर कर दिया। इस वर्णन से 'कौशिकी' नेपाल से भी सम्बद्ध है।

कौशिकी के अन्यत्र वर्णन से यहां का साम्य सम्भव हो सकता है। महाभारत के वनपर्व (अ-११०) में लोमश ऋषि ने नन्दाक्षेत्र का वर्णन कर युधिष्ठिर से यह कहा है कि आप अलकनन्दा में स्नान करें। तदनन्तर कौशिकी को प्राप्त हों। वहां विश्वामित्र ने कठिन तपश्चर्या की थी। वहां से थोड़ी दूर विश्वामित्र का आश्रम (काषाय पर्वत में काश्यप स्थान=कपड़खान तथा रथवाहिनी के तट पर कश्यप आश्रम) दिखाई पड़ता है। वहां काश्यप-आश्रम भी है (बिनसर-वीणेश्वर शिव)। इसी कौशिकी तीर्थ में एक कुण्ड है 'ब्रह्मसर' (बमसरघाट—द्योतल—देवस्थल के निकट—महाभारत अनुशासन पर्व अ० ९४)। प्राचीन काल में ऋषिगण प्रभास तीर्थ के अनन्तर अनेक क्षेत्रों का दर्शन कर कौशिकी-तीर्थ में पहुँचते थे।

वाल्मीकि-रामायण के बालकाण्ड के ६२ से लेकर ६५ सर्ग पर्यन्त विश्वामित्र की कठोर तपश्चर्या के फलस्वरूप 'ब्रह्मर्षि' पद के प्राप्त होने का विवरण भी उत्तर में स्थित कौशिकी को पूर्व दिशा से सम्बद्ध प्रस्तुत किया है।

निमज्य विधिवत्तत्र मानवो याति शाश्वतम् । स्वयम्भूगिरिसम्भूता शैवी नाम सरिद्वरा ॥७॥
पुण्येनोत्तरमार्गेण कौशिकीसङ्गमे गता । तयोर्मध्ये महादेवं नाम्ना चैव स्वयम्भुवम्[1] ॥८॥
सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् । ततः पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा दक्षिणाभिमुखी शुभा ।९।
सत्या नाम महाभागा कौशिकीसङ्गमं ययौ । तत्र स्नात्वा च मनुजः सत्यलोकमवाप्नुयात् ।१०।
ततस्तु बहवः पुण्याः सरितो मुनिसत्तमाः । कौशिकीसङ्गमे पुण्याः सङ्गता नात्र संशयः ॥११॥
वामे काषायसंज्ञो वै पर्वतः समुदाहृतः । तस्य पादसमुद्भूता काशी नाम सरिद्वरा ॥१२॥
कौशिकी-सङ्गमे पुण्या संगता मुनिसत्तमाः । तयोर्मध्ये निमज्याशु पातकान्[2] तरते जनः ।१३।
ततस्तु दक्षिणे पार्श्वे वटी नाम सरिद्वरा । कौशिकीसङ्गमे पुण्या संगता मुनिसत्तमाः ॥१४॥
तयोर्मध्ये निमज्याशु दक्षिणे परमेश्वरीम् । भवानीं पूजयित्वा तु बडादित्यं प्रपूजयेत् ॥१५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कौशिकीमाहात्म्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

विधिपूर्वक स्नान करने से 'अक्षय' पद प्राप्त होता है। फिर 'स्वयम्भू-पर्वत'[3] से उत्पन्न शैवी नदी उत्तर मार्ग से 'कौशिकी' में संगत होती है। उनके मध्यस्थित 'स्वयम्भूनाथ' का पूजन कर शिवलोक प्राप्त होता है। तदनन्तर पवित्र 'सत्या' नदी दक्षिणाभिमुखी होकर 'कौशिकी' में मिल जाती है। उसमें स्नान कर मानव सत्यलोक में प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर अनेक नदियाँ कौशिकी में मिलती हैं। उसके बाई ओर 'काषाय पर्वत' है[4]। उससे उद्भूत 'काशी' नदी 'कौशिकी' में मिल जाती है। उसके मध्य स्नान करने से मानव पातकों से विमुक्त हो जाता है। फिर दक्षिण पार्श्व में 'वटी' नदी 'कौशिकी' में संगमन करती है। वहाँ स्नान कर दाहिनी ओर 'भवानी' का पूजन करने के पश्चात् 'बडादित्य' (सूर्य)[5] का पूजन करना चाहिये।३-१५।

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कौशिकी-माहात्म्य'
नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

---

१. 'स्वयम्भू नाम' इति 'क'। २. 'पातकात्' इति 'क'।
३. स्थानीय नाम—सिमतोला। ४. स्थानीय नाम—कलमटिया।

५. आगे अध्याय में इनका वर्णन दिया गया है। यह मन्दिर 'कटारमल' नामक ग्राम में इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान अलमोड़ा के पश्चिम में लगभग ८ मील की दूरी पर है। इस मन्दिर को कत्यूरी राजा वसन्त देव के पुत्र कटारमल्लदेव ने ईसवीं सातवीं शताब्दी के अन्त में बनवाया हो। इस मन्दिर में बड़ी तीन धातुओं से मिश्रित प्रतिमा थी। ऐसी मूर्तियों को 'पोण' राजा के नाम से जाना जाता है। कटारमल की मूर्ति चुरा ली गई थी। सुना है कि यह अमरीका में है। 'कालसी' के निकट जगत ग्राम में खुदाई होने पर अश्वमेध-यज्ञ की वेदिकाओं और ईंटों पर यह लेख प्राप्त हुआ था—"सिद्धम् ओं। युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपतेः। इष्टका वार्षगण्यस्य नृपतेश्शीलवर्मणः॥ नृपतेर्वार्षगण्यस्य पोणषष्ठस्य धीमतः। चतुर्थस्याश्वमेधस्य चित्यो, यं शीलवर्मणः॥" यह शीलवर्मा ही 'पोणषष्ठ' की उपाधि से विभूषित है। अतः कदाचित् 'पोण' नामधारी राजवंश उत्तराखण्ड में राज कर रहा हो।

ऋषय ऊचुः—

सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् । जन्ममृत्युजराव्याधि-भयं येन न जायते ।।
तदस्मान् ब्रूहि विप्रर्षे यथावत्सुसमाहितः ।।१।।

व्यास उवाच—

कौशिकीगर्गसरितोर्मध्ये कञ्जारपर्वतः । देवर्षिसिद्धकन्यानां समूहैः सुनिवेशितः[1] ।।२।।
यत्र द्रोणाद्रिपादान्तं विद्यते मुनिसत्तमाः । तस्य दक्षिणपार्श्वे वै बडादित्येति विश्रुतः ।।३।।
गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघैः संसेवितो ज्योतिमहिम्नमूर्तिः ।
त्रैलोक्यदीपस्त्रिगुणात्मधारी वर्वति देवो रविसंज्ञको वै ।। ४ ।।
जन्ममृत्युजराव्याधि लोकानां मुनिसत्तमाः । यं सुपूज्य प्रणश्यन्ति घोरे संसारसागरे ।।५।।
संसारार्णवविष्वाङ्क्षतमोनाशकरः प्रभुः । पूज्यते यैर्बडादित्यो तेषामार्तिः प्रणश्यति ।।६।।
दुर्वृत्तशमनोपायं सुवृत्तस्य प्रदर्शकम् । बडादित्यस्य देवस्य पूजनं समुदाहृतम् ।।७।।
यो देवो दीप्यते विप्रा रविः संसारसागरे । तमाराध्य मनुष्याणां कुतो भीतिः प्रवर्त्तते ।।८।।
आदित्येति च यो देवैः स्तूयते कश्यपात्मजः । तमाराध्य बडादित्यं न भयं प्राप्नुयाज्जनः ।।९।।
कौशिकीपुण्यतोये वै निमज्य च दिवाकरम्[2] । प्रपूजयन्ति ये धन्यास्ते दिवं प्राप्नुवन्ति हि ।१०।

ऋषय ऊचुः—

केन मर्त्ये बडादित्यः पूजितो मुनिसत्तम । केन स्वं मण्डलं हित्वा भूमौ संस्थितवान् रविः ।११।

ऋषियों ने कहा—सब पापों और उपद्रवों के नाशक तथा जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधियों के शामक स्थान को कृपया हमें स्वस्थचित्त हो बतलायें ।। १ ।।

व्यासजी बोले—'कौशिकी' और 'गार्गी' के मध्य 'कञ्जार' पर्वत है । वह देवर्षि और सिद्धकन्याओं से सेवित है । वहाँ निम्न 'द्रोणाचल' की सीमा समाप्त हो जाती है । उसके दक्षिण पार्श्व में गन्धर्व, विद्याधर और सिद्धों के समुदाय से सुसेवित 'बडादित्य' (सूर्य) विद्यमान हैं । वे भगवान् सूर्य त्रैलोक्य के प्रकाशक ज्योतिर्मय और त्रिगुणात्मक आदित्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं । इनका पूजन करने से इस ससार के जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधियों का भय विद्यमान नहीं रहता । संसार-सागर के घोर अन्धकार को नाश करने वाले इस 'महान् सूर्य' का पूजन करने से मानवों का भय दूर हो जाता है । वस्तुतः इन सूर्यदेव के पूजन से सदाचार में प्रवृत्ति एवं दुराचार का नाश होता है । हे मुनिवरों ! जो भगवान् रवि सारे संसार को प्रकाशित कर देदीप्यमान हैं, उनकी आराधना से भय का संचार संभव नहीं । कश्यप-प्रजापति के पुत्र सूर्य की आराधना देवों से भी की जाती है । उनकी (बडादित्य) आराधना करने पर मानव निर्भय हो जाता है । अतः कौशिकी नदी में स्नान कर जो 'बडादित्य' का पूजन करते हैं, वे धन्य हैं । वे स्वर्ग को जाते हैं ।। २–१० ।।

---

१. 'सन्निवेशितः' इति 'ग' । २. 'सविधानकम्' इति 'क' । 'सविताकरम्' इति 'ग' ।

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगे विप्राः कालनेमिर्महाऽसुरः। बभूवातिबलः पापो देवविद्वेषणे रतः ॥१२॥
ऋषीणामाश्रमान् विप्रा नाशयामास दुर्मतिः। प्रहृत्याध्वरसामग्रीं बुभुजे देववत् स्वयम् ॥१३॥
महर्षयो महाभागास्ततस्तेन विनाशिता:[1]। द्रोण-काषाय-कञ्जार-वासिनः शंसितव्रताः ॥१४॥
निमज्य कौशिकी-पुण्ये जले वै शंसितव्रताः[2]। उपतस्थुर्दिनकरं क्लेशिताः कालनेमिना ॥१५॥

[3]ऋषय ऊचुः—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे त्रयीमयायाखिलविश्वमूर्तये[4]।
दिव्यप्रकाशाय सुवर्णधारिणे सुघोरसंसारभयप्रणाशिने ॥ १६ ॥
सुघोरसंसारनिमग्नभूतान् जनान् समुद्धृत्य विवेकदायिने।
कालोपमाच्छत्रुभयाद् विभो त्वं संत्राहि तुभ्यं प्रणताः स्म देव ॥ १७ ॥

व्यास उवाच—

इति संस्तूयमानानामाविर्भूत्वा दिवाकरः। स्वेनैव वपुषा कान्तो वचनं समुवाच ह ॥१८॥

सूर्य उवाच—

प्रार्थितोऽस्मि महाभागा भवद्भिः केन हेतुना। प्रब्रूत तत् करिष्यामि दुष्करं दैवतैरपि ॥१९॥

ऋषियों ने फिर पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! सर्वप्रथम 'बडादित्य' की पूजा किसने की ? भगवान् सूर्य सवितृ-मण्डल को छोड़ इस भूमण्डल पर क्यों प्रतिष्ठित हुए ? ॥ ११ ॥

वेदव्यास ने उत्तर दिया—हे ब्रह्मर्षियों ! पहले सत्ययुग में 'कालनेमि' नामक असुर देवों का विद्वेषी रहा। उसने ऋषियों के आश्रमों को उजाड़ कर देवों की तरह यज्ञ-सामग्री स्वयं ग्रहण कर ली। इसके साथ ही उसने 'द्रोणगिरि' और 'कञ्जार' पर्वत के निवासी ऋषि-मुनियों को मार भगाया। इसके फलस्वरूप वे ऋषि 'कौशिकी' तट पर आये। वहाँ स्नान कर उन्होंने सूर्योपस्थान किया॥ १२–१५ ॥

ऋषियों ने स्तुति की—हे संसार के नेत्रस्वरूप, वेदत्रयीस्वरूप, समग्र संसार के प्रतीक, दिव्य प्रकाशशाली, सुवर्णप्रभ तथा संसार के भय-विनाशक सूर्यभगवान् को हमारा प्रणाम स्वीकार हो। घोर संसार में मग्न जनों का उद्धार कर विवेक देने वाले हे सूर्यदेव ! हम आप की शरण में आये हैं। इस कालनेमि के भय से हमें बचायें। सूर्य के द्वारा प्रार्थना का हेतु पूछे जाने पर व्यासजी ने ऋषियों की अभीष्ट बात को कहा कि आप के द्वारा रक्षित होते हुए हम तपोधन बनें। हे परमेश्वर ! हम समिदाधान द्वारा यज्ञीय अग्नियों को सम्बोधित करें। आप के स्वर्ग जाने पर वह अधम पापी बालक-वृन्द सहित हम लोगों को उठा ले जायेगा। इस प्रकार उन

---

१. 'निराकृताः इति 'क'।
२. 'पूर्वार्धभागः' 'क' पुस्तके नास्ति।
३. 'ग' पुस्तके नास्ति।
४. 'त्रयीमयायाखिलदेवपूजिते' इति 'क'।

व्यास उवाच—

ऊचुस्ते दिननाथस्य वचनं समुदाहृतम् । श्रुत्वाऽस्मान् रक्ष वै नाथ कालनेमेर्भयाद् द्रुतम् ॥२०॥
त्वया संरक्षमाणा वै करिष्यामस्तपोऽध्वरान् । तथैवाग्नीन्प्रहूयामः[1] समिद्भिः परमेश्वर ॥२१॥
त्वयि स्वर्गमनुप्राप्ते स पापो दानवाधिपः[2] । पुत्रदारान्वितान् देव स चास्मान् नाशयिष्यति ॥
इत्थं विज्ञापितो विप्रैः सविता द्विजसत्तमाः । तथेत्युक्त्वा प्रभां दिव्यां पुण्ये वटशिलातले ।२३।
चिक्षेप मुनिशार्दूला ज्योतिर्मध्यगतां शुभाम् । ज्योतिस्तत्र स संस्थाप्य दिननाथो द्विजोत्तमाः ।
तेषामार्ति प्रशम्याशु ततश्चान्तर्दधे प्रभुः । अन्तर्हिते दिनकरे ऋषयः सवितुः प्रभाम् ॥२५॥
समाश्रित्य महाभागास्तेपिरे संयतव्रताः । दैत्यः सोऽपि[3] प्रभां दृष्ट्वा दिननाथस्य सुव्रताः ॥
भयाद् भीतिं च तेभ्यो वै चक्रे साक्षाद् यमोपमः । ततःप्रभृति वै विप्रा देवो भूमण्डले स्थितः ।
पुण्ये वटशिलामध्ये बडादित्येति गीयते ।
इत्येतत् कथितं विप्रा बडादित्यो यथा भुवि । निपत्य पूज्यते विप्रैः सर्वारिष्टप्रणाशकः ॥२८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे बडादित्य-माहात्म्यं नाम अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

ब्राह्मणों से निवेदन किए जाने पर भगवान् 'सूर्य' ने 'तथास्तु' कह कर सवितृ-मण्डलमध्य-गत अपने दिव्य तेज को पवित्र वट-शिला पर स्थापित किया । हे ब्रह्मर्षियों ! इस प्रकार सूर्य ने अपने तेज को वहाँ प्रतिष्ठित कर उन ऋषियों का कष्ट दूर किया । तदनन्तर सूर्य अन्तर्हित हो गए । सूर्य के अन्तर्धान होने पर ऋषि लोग सूर्य के तेज का सहारा लेकर तपश्चर्या में लग गए । यमराज की तरह वह दैत्य भी सूर्य के दिव्य तेज को देख कर भयभीत हो गया । हे ब्राह्मणों ! तब से इस पृथ्वी पर उस वटशिला के मध्य स्थित उन सूर्य भगवान् की 'बडादित्य'[4] नाम से स्तुति की जाती है । हे ब्रह्मर्षियों ! इस प्रकार उनका सर्वारिष्ट-विनाशक माहात्म्य मैंने आप लोगों को बतला दिया है ॥ १६–२८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में वर्णित 'बडादित्य-माहात्म्य' नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'तथैवाग्नि प्रह्वयामः' इति 'क' । २. 'दानवाधमः' इति 'क' ।
३. 'दैतेयोऽपि प्रभां दृष्ट्वा' इति 'क' ।
४. वैदिक संहिता में सूर्योपस्थान की ऋचाओं में 'बडादित्य' शब्द का प्रयोग मिलता है । वहाँ पर 'महीधर' एवम् 'उव्वट' आदि भाष्यकारों ने इस शब्द की सन्धि 'बट् + आदित्य'—इस रूप में की हैं । इसके साथ ही 'बट्' शब्द को अव्यय माना है और उसका अर्थ 'सत्य' बतलाया है । उदाहरणार्थ—"ॐ बण्महाँ २॥ असि सूर्य्यं बडादित्य महाँ २॥ असि । महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धादेव महाँ २॥ असि" (य० सं० ३३–३९) ।इस ऋचा का अर्थ इस प्रकार किया है—"हे सूर्य ! तुम सच (बट्) महान् हो । हे आदित्य ! तुम वस्तुतः=सत्य ही (बट्) महान् हो । (और भी) श्रेष्ठ (महः) एवं नित्य-स्वरूप (सतः) तुम्हारे (ते) महत्त्व (महिमा) की प्रशंसा (लोगों से) की जाती है (पनस्यते) । हे (प्रकाशमान) देव ! सच ही (अद्धा) तुम महान् हो" । इस वैदिक प्रयोग का इस पुराण में 'वटादित्य' (वटवृक्ष से सम्बद्ध आदित्य) रूप अर्थ मानकर 'बडादित्य' पद का निर्वाह किया गया है । यह सूर्य मन्दिर 'कटारमल' नामक ग्राम में इसी नाम से प्रसिद्ध है । बहुत पुराना मन्दिर है ।

३९

व्यास उवाच—

निमज्य कौशिकीं पुण्यां दक्षिणे दिननायकम्। प्रपूज्य मुनिशार्दूला देवीं कात्यायनीं व्रजेत् ॥१॥
सम्पूज्य च महामायां दिननाथजले शुभे। निमज्य मानवः सम्यक् स्वर्गलोके महीयते ॥२॥
रामपादसमुद्भूता रम्भा[1] नाम सरिद्वरा। ययौ सा कौशिकीसङ्गे उत्तरद्वारवाहिनी ॥३॥
निमज्य मानवस्तत्र सत्यलोके महीयते। ततस्तु दक्षिणे भागे श्यामो[2] नाम महागिरिः ॥४॥
तत्र पुण्या महादेवी शक्तिनाम्ना प्रपूज्यते। तां प्रपूज्य महाभागाः शत्रुतो न भयं भवेत् ॥५॥
टङ्कणपृष्ठसम्भूता[3] शाली नाम सरिद्वरा। नदीभिर्बहुभिः पुण्या मिश्रिता मुनिसत्तमाः ॥६॥
कौशिकी-सङ्गमे पुण्ये सङ्गता मुनिसत्तमाः। तयोर्मध्ये महादेवं शक्तीशं नाम वै द्विजाः ॥७॥
सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम्। तत्र पुण्या गुहायां वै महादेवी प्रपूज्यते ॥८॥
ततः कुम्भवतीसङ्गे शशवत्या अनन्तरम्। ततः शशवतीसंगाद्वामे शेषवती स्मृता[4] ॥९॥
तेषां मध्ये[5] निमज्याशु पातकात् तरते जनः। कौशिकीशेषवत्योस्तु संगमे मुनिसत्तमाः ॥
सम्पूज्य शेषनागेशं शिवलोके महीयते ॥१०॥
ततः पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा भित्त्वा शेषगिरिं द्विजाः। निषेव्य द्रोणपादं वै गता मध्यभुवं प्रति ॥११॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कौशिकीमाहात्म्यं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिश्रेष्ठों ! पवित्र कौशिकी में स्नान कर वहाँ से दक्षिण की ओर सूर्य का पूजन करने के पश्चात् 'कात्यायनी' की तरफ जाये। कात्यायनी का पूजन तथा 'सूर्य-कुण्ड' में स्नान करने से स्वर्ग-प्राप्ति होती है। आगे राम के चरण[6] से निकली हुई 'रम्भा'[7] नदी उत्तरवाहिनी होती हुई 'कौशिकी' में मिल जाती है। उसमें स्नान करने से सत्यलोक प्राप्त होता है। उससे दक्षिण की ओर 'श्याम'[8] नामक पर्वत है। पर्वतस्थ 'शक्ति' नाम की देवी का पूजन करने से शत्रुभय नहीं रहता। 'टङ्कण' पर्वत के पृष्ठ भाग से उत्पन्न 'शाली'[9] नदी अनेक नदियों को अपने साथ लेती हुई 'कौशिकी' में मिल जाती है। इन दोनों के मध्य 'शक्तीश' का पूजन कर शिवलोक प्राप्त होता है। वहीं गुफा में महादेवी भी पूजित हैं। फिर 'कुम्भवती' और 'शशवती' का संगम होकर वाम भाग में 'शेषवती' का संगम है। इनके संगम में स्नान करने से मानव पातकों से रहित हो जाता है। 'कौशिकी' और 'शेषवती' के संगम में 'शेषनागेश' की पूजा करने से मानव शिवलोक में सम्मानित होता है। तब 'कौशिकी' नदी 'शेषगिरि' को विदीर्ण करती हुई एवं 'द्रोणाचल' के निम्नभाग की सेवा करती हुई (सींचती हुई) मध्यभूमि (मालभूमि=तराई) को चली जाती है ॥ १–११ ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'कौशिकी-माहात्म्य' नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'रम्भा नामा सरिद्वरा' इति 'क'। २. 'रामो नाम' इति 'क'। ३. 'टङ्कणाचलसम्भूता' इति 'क'।
४. 'ततः शशवतीसङ्गे मध्ये शेषवती शुभा' इति 'क'। ५. 'सङ्गे' इति 'क'।
६. अल्मोड़ा कचहरी में रामशिला मन्दिर (जलस्रोत)। ७. स्थानीय नाम—रम्फा नौली।
८. वर्तमान नाम—स्याही देवी। ९. वर्तमान नाम—सुआल नदी।

ऋषय ऊचुः—

यः शेष इति विख्यातः पर्वतो मुनिसत्तम। तस्य ख्यापय[1] माहात्म्यं क्षेत्राणामपि[2] विस्तरात्॥

व्यास उवाच—

कौशिक्या वामभागे वै नाम्ना शेषगिरिः स्मृतः। हिमालयसमः पुण्यः सिद्धगन्धर्वसेवितः॥२॥
तथा कान्ताभिः शुद्धाभिर्गुहाभिः सुविराजितः[3]। उच्छ्रितस्तुहिनाकारः सर्वतो दैवतोपमः॥
राजते देवकन्याभिः पूजितो मुनिसत्तमाः। यमाहुस्तुहिनप्रान्तं सर्वतः सिद्धसेवितम्॥४॥
सूकरैर्महिषैर्वन्यैः शार्दूलैश्च विराजितः। यत्र सिद्धगणाः सर्वे निवसन्ति द्विजोत्तमाः॥५॥
तथैव गणगन्धर्वाः किन्नराश्च तथैव च। तत्र शेषनिवासं वै प्रवदन्ति मनीषिणः॥६॥
तमारुह्य जनाः सर्वे स्वर्गलोके वसन्ति हि[4]। तस्य कुक्षौ महाभागाः पुण्या शेषवती गुहा॥७॥
तत्र शेषो महाभागाः पूज्यते नागनायकैः। शेषं सम्पूज्य मनुजा यवैश्च तुलसीदलैः॥८॥
प्राप्नुवन्ति हरेः स्थानं यावदाहूतसंप्लवम्। ततो देवीं महामायां दक्षिणे मुनिसत्तमाः॥९॥
सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम्। ततस्तु पर्वतप्रान्ते सीता नाम्नी सरिद्वरा॥१०॥
संभवा कौशिकीं पुण्यां सङ्गता[5] मुनिसत्तमाः। तयोर्मध्ये महाभागाः[6] पर्वतान्ते सुशोभना।११।

ऋषियों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! 'शेष' नाम से विख्यात पर्वत और उससे सम्बद्ध तीर्थों का कृपया वर्णन करें॥ १॥

व्यासजी ने वर्णन आरम्भ किया—'कौशिकी के बाईं ओर 'शेषगिरि' नामक पर्वत है। वह हिमालय के समान पवित्र तथा सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित है। इसके साथ ही वहाँ रमणीय एवं स्वच्छ गुफायें भी है। देखने में ऊँचा और हिम के सदृश श्वेत वह देवताओं की तरह (मान्य) है। हे मुनिवरों! वह देवकन्याओं से पूजित होकर विराजमान है। उसे हिमालय का सिद्धसेवित स्थल कहा गया है। वहाँ जंगली सूअर, भैंसे तथा सिंह भी विचरते हैं। श्रेष्ठ ऋषियों! वह सिद्धों की आवास-भूमि है। विद्वानों का कथन है कि 'शेषगिरि' में गन्धर्व और किन्नरों का बाहुल्य है। उस पर चढ़ने से यह विदित होता है मानों स्वर्गारूढ़ हो गए हों। उसके बगल में पवित्र 'शेषवती' गुहा है। वहाँ नागों में प्रमुख 'शेषनाग' पूजित हैं। यव और तुलसीदल से शेष भगवान् की पूजा करने से मानव प्रलय-पर्यन्त शिवलोक प्राप्त करता है। मुनिश्रेष्ठों! तत्पश्चात् दक्षिण भाग में गुहा के भीतर 'महामाया' देवी का पूजन करने से मनुष्य को दुर्लभ शिवलोक मिलता है। तदनन्तर पहाड़ी हिस्से में 'सीता' नदी निकलती हुई 'कौशिकी' में मिल जाती है। 'सीता' और 'कौशिकी' नदियों के बीच में पर्वत-श्रेणी के छोर पर जनमानस को आह्लादित करने वाली पवित्र 'अशोकवनिका' है। वह सत्यव्रती ऋषियों के आश्रमों से पुनीत की जाती हुई पूतात्मा सप्तर्षियों के आश्रमों से सुशोभित है। इसके साथ ही

---

१. 'तस्याख्यापय' इति 'क'। २. 'क्षेत्राणां चापि' इति 'क'।
३. 'गुहाभिश्च विराजितः' इति 'क'। ४. 'तमारुह्य महाभागा जनाः स्वर्गे वसन्ति हि' इति 'क'।
५. 'पुण्यामन्विता' इति 'क'। ६. 'महापुण्या' इति 'क'।

अशोकवनिका नामा जनशोकविनाशिनी। सत्यव्रतादिभिः पुण्यैः पुण्याश्रममयी कृता ॥१२॥
सप्तर्षीणां च पुण्यानामाश्रमैः सुविराजिता[१]। कूजतां पक्षिसङ्घानां निनादैः परिपूरिता ॥१३॥
पुण्यैरशोकवृक्षैश्च सर्वतः परिवेष्टिता। तत्र रामाश्रमं पुण्यम्[२] ऋषीणामपि सुव्रताः ॥१४॥
त्यक्त्वा स कोशलां[३] रम्यां सीतया सह भार्यया। भ्रात्रा सौमित्रिणा चापि ययौ सीतावनीं द्विजाः।
कौशिकेन समुद्दिष्टो यज्ञाचार्येण धीमता। तत्राशोकवनीं दृष्ट्वा कौशिकीजलसेविताम् ॥
रामं विज्ञापयामास जानकी कमलेक्षणा ॥१६॥

सीता उवाच—

स्थास्याम्यत्र महाबाहो भवता सह राघव। वासन्तं पुण्यमासं[४] वै सुपुण्ये कौशिकीजले ॥१७॥
स्नानं चात्र विधास्यामि मयोक्तं यदि रोचते ॥ १८ ॥

व्यास उवाच—

इति विज्ञापितो राज्ञ्या रामो राजीवलोचनः। प्रत्युवाच महाभागाः सीतां तां चारुभाषिणीम्।

रामचन्द्र उवाच[५] —

ममापि[६] रोचते भद्रे सुवासः पुण्यमण्डले। वसिष्यामि प्रियार्थं ते यावत् स्नानं विधास्यसि ॥
कुरु स्नानं महाभागे वैशाखे मासि संस्थिता ॥२०॥

व्यास उवाच—

रामेण सा समादिष्टा साध्वी सीता तपोधनाः। अशोकवनिकामध्ये छायामाश्रित्य सुव्रता ॥

वह अशोकवनिका पक्षियों के कलरव से निनादित होती हुई चारों ओर अशोकवृक्षों से घिरी हुई है। हे व्रती तपस्वियों! वहाँ पर अनेक ऋषियों के आश्रम हैं—इस बात को सुनकर श्रीरामचन्द्र कोशल देश को छोड़ पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण को साथ लेकर 'सीतावनि' चले आए। श्रेष्ठ याज्ञिक एवं विद्वान् विश्वामित्र ऋषि से आज्ञा पाकर कोसी नदी के जल से सींची गई अशोकवनी को देखते हुए कमलनयनी सीता ने रामचन्द्र से निवेदन किया ॥२–१६॥

सीताजी बोलीं—महाबाहो राघव! मैं आपके साथ वसन्त ऋतु के वैशाख मास में यही रहूँगी। साथ ही पवित्र कोशी नदी के जल में स्नान करूँगी। यदि मेरी बात अच्छी लगे तो आप बतलायें ॥ १७–१८ ॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार सीता के द्वारा निवेदन किए जाने पर राजीवलोचन राम ने यह उत्तर दिया ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—भद्रे! इस पवित्र भूमि में रहना मुझे भी अच्छा लग रहा है। तुम्हारी स्नानविधि समाप्त होने तक तुम्हारे सन्तोषार्थ मैं यहाँ रहूँगा। तुम वैशाख मास भर रह कर यहाँ स्नान करो ॥ २० ॥

(तब) व्यासजी बोले—हे तपोधनों! राम से आदेश प्राप्त कर साध्वी सीता ने अशोक-

---

१. 'आश्रमैश्च विराजिता' इति 'क'। २. 'रामाश्रमं श्रुत्वा' इति 'क'।
३. 'मिथिलाम्' इति 'क'। ४. 'वसन्ते पुण्यमासे' इति 'क'।
५. 'राम उवाच' इति 'क'। ६. 'षष्ठीविभक्तिप्रयोग आर्षः'।

प्रियेण सह रामेण स्नानं विधिवदाचरत् । वैशाखे मासि सा साध्वी सपुण्ये कौशिकीजले ।२२।
ततः काले व्यतीते तु सा सती मुनिसत्तमाः । संस्नाप्य माधवे मासे ययौ मध्यावनीं शुभाम् ।।
बभूव तृषिता साध्वी चन्द्रबिम्बोपमा द्विजाः । तदा रामं महाभागं तृषितास्मीत्युवाच ह ।२४।
तस्योदितं[1] समाकर्ण्य रामो भागीरथीं स्मरन् । सीताऽपि कौशिकीं पुण्यां सस्मार मुनिसत्तमाः।
संस्मृता रघुनाथेन धन्या भागीरथी सरित् ।। २५ ।।
ततः प्रभृति वै विप्राः ख्याता सीतावनीति सा । देवगन्धर्वमनुजैः पूजिता मुनिसत्तमाः ।।
आविर्बभूव वै विप्रास्तस्यैव चरणोद्भवा । सीतया संस्मृता पुण्या कौशिकी चापि सुव्रताः ।।
क्षणेनाविर्बभूवाशु धारयामृतपूरया । पीत्वा पयः सद्व्रता सा[2] शंकरं लिङ्गरूपिणम् ।।२८।।
पूजयामास विधिवद् अभिषेकेण सुव्रताः । सम्पूज्य शंकरं शान्तं समाप्य माधवं प्रभुम् ।।२९।।
रथमारुह्य रामेण सह सा वरवर्णिनी । ययावयोध्यां शोभाढ्यां बहुप्राकारशोभिताम् ।।३०।।
ततः प्रभृति वै विप्राः ख्याता सीतावनीति सा । देवगन्धर्वमनुजैः पूजिता मुनिसत्तमाः ।।३१।।
तत्र सीतेश्वरं देवं स्थापितं सीतया शुभम् । ये प्रपश्यन्ति मनुजास्ते शोकाद् वितरन्ति हि ।३२।
ये च सम्यक् पूजयन्ति देवं सीतेश्वरं हरम् । शिवेन सह ते विप्रा मोदन्ते नात्र संशयः ।।३३।।
ये तत्र रामधारायां निमज्य मुनिसत्तमाः । पूजयन्ति शिवं शान्तं ते यान्ति परमां गतिम् ।३४।
तत्र सीताजले पुण्ये निमज्य मुनिसत्तमाः । ये पूजयन्ति देवेशं ते शोकाद् वितरन्ति हि ।।३५।।
अशोकपल्लवैः पुण्यैः सीतेशं यः प्रपूजयेत् । स शोकमुक्तो भूत्वेह शिवेन सह मोदते ।।३६।।
तत्र सीतां महाभागां रामेण सह वै द्विजाः । प्रपूज्य मानवः सम्यक् विष्णुलोके महीयते ।।३७।।

वनिका के मध्य कुटी बना कर ब्राह्मणों और रामचन्द्रजी के साथ नियमानुकूल वैशाख मास में कौशिकी में स्नानविधि की। मुनिश्रेष्ठों! वैशाख-स्नान समाप्त होने पर सीताजी सुन्दर मालभूमि (तराई) की ओर चलीं। हे ब्रह्मबन्धुओं! चन्द्रवदनी साध्वी सीता प्यासी हो गईं। उन्होंने भगवान् राम से अपने प्यासे होने की बात कही। उनकी बात सुन कर भगवान् राम ने भागीरथी का स्मरण किया। उनके साथ ही सीताजी ने कौशिकी का स्मरण किया। उन दोनों के स्मरण करते ही दोनों की अमृत धारायें वहाँ प्रकट हो गईं। उस अमृतोपम जल से अपनी प्यास बुझा कर व्रतपरायणा सीता ने रुद्राभिषेकपूर्वक शिवलिङ्ग की पूजा की। इस तरह पूजनोपरान्त वैशाख मास समाप्त होने पर चार्वङ्गी सीता भगवान् राम के साथ रथ पर बैठ राजधानी अयोध्या को वापस गईं। तब से यह स्थान 'सीतावनी' नाम से प्रसिद्ध है। देवों, गन्धर्वों और मानवों द्वारा यह स्थान पूजित है। यहीं भगवती सीता ने 'सीतेश्वर' की स्थापना भी की। उनका दर्शन करने से लोग शोकरहित हो जाते हैं। एवं विधिपूर्वक पूजा करने वालों को आनन्दपूर्वक शिव-सान्निध्य प्राप्त होता है। जो लोग वहाँ 'रामधारा' में स्नान कर 'सीतेश्वर' की पूजा करते हैं, उन्हें सद्गति मिलती है। वहीं पर 'सीताधारा' में स्नान कर शंकर जी की पूजा करने वालों का जीवन शोकरहित रहता है। (कहाँ तक वर्णन करें) जो लोग अशोक-पल्लवों से सीतेश्वर की समभ्यर्चना करते हैं, वे शोकमुक्त हो शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। इसके साथ ही सीताराम की पूजा करने वालों को विष्णुलोक प्राप्त होता है।

---

१. 'तयोदितम्' इति 'क'। अयमेव समीचीनः पाठः।
२. 'पीत्वाऽऽपः सुव्रता साध्वी' इति 'क'।

तत्र सीतावनीमध्ये देवकी नाम वै सरित् । राजते शेषसम्भूता सर्वपापप्रणाशिनी ।।
निमज्य मानवस्तस्यां स्वर्गलोके महीयते ।। ३८ ।।
इत्येतत्कथितं विप्राः पर्वतान्तं[1] मयाऽधुना । शृणुयाद्वा पठेद्वापि स शोकाद् विप्रमुच्यते ।।३९।।
।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सीतेश्वरमाहात्म्यं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।।

वहाँ 'सीतावनी' में 'देवकी' नदी है । वह शेषपर्वत से निकली है । उस पापविनाशिनी नदी में स्नान करने पर स्वर्ग प्राप्त होता है । हे ऋषिवरों ! मैंने यह पर्वतपर्यन्त वर्णन कर दिया है । इसको सुनने वाले शोकविमुक्त हो जाते हैं ।। २१-३९ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सीतेश्वर-माहात्म्य'[2] नामक
चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'पर्वतानां मयाऽधुना' इति 'क'।

२. महाभारत (वनपर्व अध्याय ८३, ५९-६०) में 'सीतावन' तीर्थ का उल्लेख है । तदनुसार वर्णन इस प्रकार है—"नियमपूर्वक मिताहारी होकर 'सीतावन' तीर्थ जाये । वहाँ अनेक तीर्थ हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं । वहाँ 'लोमापह' (काशीपुर-रामनगर के मध्य वनमार्ग में मालावल-क्षेत्र) तीर्थ में स्नान कर प्राणायाम द्वारा लोम गिराने से परमगति प्राप्त होती है । वहाँ दशाश्वमेधिक तीर्थ भी है । फिर मानुष-तीर्थ है । इस तीर्थ से एक कोस दूरी पर सिद्धों से सेवित 'आपगा' नदी (साम्य— 'ढबका' नदी) है । पुराणकोषकारों ने इस वन को कुरुक्षेत्र की सीमा के अन्तर्गत माना है ।

व्यास उवाच—

शेषस्य दक्षिणे भागे पुण्यो गर्गगिरिः स्मृतः । [1]लतापादपसंकीर्णो नानाधातुविराजितः ॥१॥
कूजत्कोकिलसंघैश्च यत्र तत्र प्रणादितम् । रजताकरसंयुक्तो राजते रजतोपमः ॥२॥
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया[2] । तुष्टि-प्रभृतयो देव्यो राजन्ते यत्र वै द्विजाः ।३।
चित्रकः सत्यसेनश्च तथा गार्ग्यो महातपाः । यत्र सिद्धा विराजन्ते सत्यव्रतपरायणाः ॥४॥
कान्ता कान्तिमती पुण्या वेणुभद्रा[3] तथा नदी । सुवाहा देवहा चैव[4] भद्रा भद्रवती तथा ॥५॥
सुभद्रा कालभद्रा च काकभद्रा तथा नदी । पुष्पभद्रा सरिच्छ्रेष्ठा मानसी मानसा[5] तथा ॥६॥
एतास्तु बहवो नद्यो तस्मिन् सम्भूय सुव्रताः । पूर्वपश्चिमवाहिन्यो याम्योत्तरगतास्तथा ॥७॥
विराजन्ते महानद्यो यस्मिन् पर्वतनायके । यासु स्नात्वा च मुनयो गताः स्वर्गं प्रति द्विजाः ।८।
षट्षष्टीति च विख्याता यस्मिन् वै ह्रदनायकाः । निमज्य तेषु वै विप्रा विनश्यन्त्यघकोटयः[6] ।
मा यजन्तु महाभागा यज्ञैः सुबहुदक्षिणैः । मा निमज्जन्तु तीर्थेषु मा कथां प्रवदन्तु हि[7] ॥१०॥
पुण्यं गर्गगिरिं विप्राः समारोहन्तु[8] मानवाः । यत्र गर्गो महातेजास्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥११॥
सुपुण्यं पर्वतं मत्वा लोकानां हितकाम्यया । तस्मान्नान्यतमः पुण्यः पर्वतो मुनिसत्तमाः ॥१२॥
यत्र कीटाः पतङ्गाद्याः श्वानाद्या मशकाश्च हि । मृताः शिवपुरं पुण्यं यान्ति वै मुनिसत्तमाः ॥
यो हिमाद्रिं प्रणम्याशु संस्थितो गिरिनायकः । तस्य व्याख्यापनं विप्राः कथं वै कथयाम्यहम् ।

व्यासजी ने कहा—शेषगिरि के दक्षिणभाग में पवित्र 'गर्गाचल' है । वह लताओं, वृक्षों तथा विभिन्न धातुओं से संयुक्त है । कोयलों के मधुर स्वर से निनादित एवं चाँदी की खानों से संयुक्त यह पर्वत चाँदी के समान शुभ्र है । हे ब्राह्मणों ! उस पर्वत पर गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया तथा तुष्टि आदि मातृकायें विराजमान हैं । चित्रक, सत्य-सेन, तपस्वी गार्ग्य एवं सत्यव्रती सिद्धगण भी वहाँ विद्यमान हैं । कान्ता, पवित्र कान्तिमती, वेणुभद्रा, सुवाहा, देवहा, भद्रा, भद्रवती, सुभद्रा, कालभद्रा, काकभद्रा, पुष्पभद्रा, श्रेष्ठ नदी मानसी, मानसा आदि बहुत सी नदियाँ वहाँ से निकल कर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की ओर बहती हुई विराजमान हैं । जिनमें स्नान करने से अनेक मुनि स्वर्ग को गए । इसी पर्वत-माला में ६६ सरोवर (श्रेष्ठ ह्रद) विख्यात हैं । इनमें स्नान करने से पाप विनष्ट हो जाते हैं । मानव चाहे बहुदक्षिणा-सम्पन्न अनेक यज्ञ, तीर्थस्नान, कथाश्रवण आदि भले ही न करे किन्तु केवल लोकहितार्थ गर्ग ऋषि के तपःस्थल 'गर्गाचल' पर आरूढ़ हो जायें तो उससे बढ़ कर दूसरा पुण्य कार्य नहीं है । हे व्रती ऋषियों ! वहाँ रह कर कीड़ों-मकोड़ों और मच्छरों आदि ने भी मुक्ति पाई है । जो पर्वतश्रेष्ठ गर्गाचल हिमालय को प्रणाम करता हुआ प्रतीत होता है,

---

१. 'शिलापादपसंकीर्णो' इति 'क' ।
२. 'चापराजिता' इति 'क' ।
३. 'वेणुवाहा' इति 'क' ।
४. 'देववाहा च' इति 'क' ।
५. 'मनसा' इति 'क' ।
६. 'विनश्यन्तेऽघकोटयः' इति 'क' ।
७. 'प्रवदन्त्विह' इति 'क' ।
८. 'समायान्तु' इति 'क' ।

तस्य वै शिखरे पुण्ये गार्ग्येशो नाम शङ्करः । पूज्यते देवगन्धर्वैर्मुनिवैश्च तपोधनाः ॥१५॥
तत्र गार्ग्याश्रमादुत्था[1] गार्गी नाम सरिद्वरा । पुण्यतोयवहा पुण्या विद्यते मुनिसत्तमाः ॥१६॥
वामे तस्या महाभीमो ह्रदः[2] संख्यायते द्विजाः । त्रिभिर्यो ऋषिभिः पुण्यः पूरितस्तृषिसंज्ञकः॥

ऋषय ऊचुः—

कथं वै ऋषयो विप्र त्रयः परमधार्मिकाः । ह्रदं सम्पूरयामासुः के ते ख्यातास्तपोधनाः ॥१८॥

व्यास उवाच—

अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः ऋषयो गर्गपर्वतम् । समाजग्मुर्महाभागास्तपस्तप्तुं सुदुष्करम् ॥१९॥

उसकी प्रशंसा कैसे की जाय ? उसके शिखर पर पवित्र 'गार्ग्येश' शिव का पूजन होता है। मुनिश्रेष्ठों ! वहीं 'गर्गाश्रम' से 'गार्गी'[3] नदी प्रादुर्भूत होती है। गर्गाचल के वामभाग में बहुत बड़ा ताल (ह्रद) है। उसे तीन ऋषियों ने भरा था। अतः वह 'तृषि' (त्रिऋषि) सरोवर नाम से प्रसिद्ध है ॥ १-१७ ॥

(इस बीच) ऋषियों ने पूछा—ब्रह्मर्षे ! परम धार्मिक तीन ऋषि वे कौन थे ? उन्होंने इसे किस प्रकार भरा ? ॥ १८ ॥

वेदव्यास ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! अत्रि[4], पुलह[5] और पुलस्त्य[6]—ये तीन ऋषि कठोर

---

१. 'तत्र गर्गाश्रमाभ्यासे' इति 'क' ।   २. 'वामे तस्य महाभीमो ह्रदः' इति 'क' ।

३. 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में गर्गगोत्रोत्पन्न ब्रह्मवादिनी स्त्री का वर्णन है। वह याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी थी ।

४. (क) यह ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। पुराणों के अनुसार इनका जन्म ब्रह्मा की आँखों से हुआ था। कर्दम-देवहूति की पुत्री 'अनसूया' इनको ब्याही थीं। इनसे दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम नाम के तीन पुत्र हुए। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार इनका आश्रम दण्डकारण्य में था। अनसुया ने सीता को उपदेश दिये थे। इसके साथ ही अनेक प्रकार के लेप उनके शरीर पर लगा दिए थे, जिससे उनके शरीर पर जंगली हवा का कोई प्रभाव न पड़े। इनके पुत्र दत्तात्रेय ने अलर्क तथा प्रह्लाद को आन्वीक्षिकी विद्या बतलायी थी (भागवत १-३-११)। 'मत्स्यपुराण' के अनुसार इनका एक आश्रम 'हिमालय' पर्वत पर भी था। उस आश्रम में पुरूरवा गए थे—"तदाश्रमं श्रमशमनं मनोहरं, श्रमशमनैः कुसुमशतैरलंकृतम् । कृतं स्वयं रुचिरमथात्रिणा शुभं, शुभावहं च हि ददर्श स मद्रराट्" ॥—मत्स्य० ११८-७६ । (ख) भागवत के अनुसार इन्होंने अनेक ऋषियों के साथ 'पिण्डारक' (पिण्डर) की यात्रा भी की थी। उनके नाम ये हैं—"विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासाः भृगुरङ्गिराः । कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥"—(भागवत—११-१-१२)। (ग) मत्स्यपुराण में अत्रि को वृद्ध गर्ग का समकालीन कहा गया है—"अत्र ते वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः । अत्रये वृद्धगर्गस्तु सर्वधर्मवतां वरः"—(मत्स्य० २२९-२) ॥

५. ब्रह्मा के मरीच आदि १० मानसपुत्रों में से एक। यह ऋषि वैशाख मास में अर्यमा आदि अन्य छह सौरगणों के साथ सूर्यरथ पर अधिष्ठित रहते हैं (भागवत ३-१२-२२)। इनका आश्रम अति पवित्र था। भरत के अन्तिम दिन वहाँ व्यतीत हुए थे।

६. यह भी ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक। ये विश्रवा के पिता एवं कुबेर तथा रावण के पितामह थे। ये चैत्र मास में सौरगण के धाता आदि अन्य छहों के साथ सूर्य-रथ पर अधिष्ठित रहते हैं।

तत्र चित्रशिलां दृष्ट्वाऽऽरुरुहुः पर्वतोत्तमम् । आरुह्यमाणा ऋषयः सूर्यरश्मिप्रपीडिताः ॥२०॥
तृषिताश्चाभवन् विप्राः परिम्लानमुखश्रियः । तत्र ते तृषिताः सर्वे खनयामासुः भूधरम् ॥२१॥
खनित्वा भूधरं सर्वे स्मरन्तो मानसं सरम् । स्मृतमात्रस्तु ऋषिभिर्मानसो मुनिसत्तमाः ॥२२॥
जलेन पूरयामास ह्रदं तं भीमसंमितम् । तत्र ते पूरितं दृष्ट्वा ह्रदं तं तृषिसंज्ञकम्[1] ॥
पीत्वाऽपः सुचिरं स्थित्वा ययुर्विप्रा यथागतम् ॥ २३ ॥
ये निमज्जन्ति मनुजाः सरे वै तृषि-संज्ञिते । मानसस्नानजं पुण्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥२४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गर्गाद्रिमाहात्म्यं नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

तप करने हेतु गर्गाचल पर आये । मार्ग में 'चित्रशिला' को देख, वहाँ से उन्होंने चढ़ाई आरम्भ की । पहाड़ पर चढ़ते हुए धूप की तेजी से उन्हें प्यास लग गई । उन्होंने मानसरोवर का स्मरण कर पर्वत को खोदना आरम्भ किया । स्मरण करते ही मानसरोवर ने उस स्थान को जल से भर दिया । उस ताल को जल से भरा देख उन सब ऋषियों ने जल पिया । बहुत दिनों तक रहने के पश्चात् वे ऋषि अपने निश्चित स्थान को चले गये । जो इस 'तृषि' (त्रिऋषि) सरोवर[2] में स्नान करते हैं, वे निःसन्देह मानसरोवर में स्नान करने का फल प्राप्त करते हैं ॥ १९ – २४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गर्गाद्रि-माहात्म्य'-
नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

(भाग० १२-११-३३) । ये 'देवदारुवन' के महर्षि थे—"पुरा कृतयुगे विप्राः शृङ्गे हिमवतः शुभे । देवदारुवनं रम्यं नानाद्रुमलताकुलम् ॥ ततस्ते मुनयः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् । भृग्वङ्गिराः वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च । गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन् ॥"—(मत्स्यपुराण २७, ६ तथा १०४–१०५) ।

१. 'ऋषिसंज्ञितम्' इति 'क' ।

२. वर्तमान 'नैनीताल' नगर । इस नगर को अंग्रेज शासकों ने अपनी सुख-सुविधा के लिए बसाया । उन दिनों छह मास गर्मियों में यह नगरी उत्तर प्रदेश की राजधानी मानी जाती रही ।

४२

ऋषय ऊचुः—

सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं सर्वदानाधिकं तथा। प्राप्यते यत्र विप्रर्षे तत्तीर्थं वद विस्तरात् ॥१॥

व्यास उवाच—

सर्वतीर्थोत्तमं तीर्थं सर्वक्षेत्रोत्तमं तथा। शृण्वन्तु मुनिशार्दूला मया सम्यगुदाहृतम् ॥२॥
क्षेत्रं भद्रवटं नाम सर्वपापप्रणाशनम्। सेवितं सिद्धगन्धर्वैर्गन्धर्वीभिस्तथैव च ॥३॥
यं स्मृत्वा मुनिशार्दूला ब्रह्महत्यादिकोटयः। प्रद्रवन्ति न सन्देहः क्षेत्रं भद्रवटस्य हि ॥४॥
यत् फलं कपिलादानात् माघस्नानाच्च यत् फलम्। चन्द्रसूर्यग्रहे विप्रा यत्फलं कुरुपुष्करे ॥५॥
तत्फलं चातिपुण्ये वे क्षेत्रे भद्रवटाह्वये। प्राप्यते मुनिशार्दूलाः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥६॥
गयाश्राद्धेन यत्पुण्यं काशीवासाच्च यत् फलम्। यत्फलं मानसे क्षेत्रे मज्जनान्मुनिसत्तमाः ॥७॥
केदारोदकपानाच्च पूजनाच्छङ्करस्य च। यत्फलं प्राप्यते विप्रास्तत्तद् भद्रवटे स्मृतम् ॥८॥
क्षेत्रं भद्रवटं प्राप्य ये द्विजा लोभमोहिताः। प्रतिगृह्णन्ति वै विप्रास्ते यान्ति नरकं प्रति ॥९॥
यत्र भद्रवटो नाम वटः सम्पूज्यते द्विजाः। तस्मान्नान्यतमं क्षेत्रं प्रपश्यामि महीतले ॥१०॥
यस्य च्छायां समाश्रित्य देवदेवो जनार्दनः। सुष्वाप मुनिशार्दूलास्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः[1]॥११
यस्मिन् क्षेत्रे महापुण्या शिला देवविनिर्मिता। धन्या चित्रशिला नाम महेन्द्राद्यैः सुसेविता ॥
यस्मिन् ब्रह्मा च विष्णुश्च महादेवस्तथैव च। सार्धं स्वशक्तिभिर्विप्रा[2] विराजन्ते न संशयः ॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मर्षे ! जहाँ पर सब तीर्थों की यात्रा एवं सब दानों के करने से भी अधिक फल (पुण्य) मिलता है, उस तीर्थ का आप विस्तार के साथ वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठों ! मैं अब सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ एवं सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र का वर्णन करता हूँ। आप लोग सावधानी के साथ सुनें। सिद्धों, गन्धर्वों तथा गन्धर्व-पत्नियों से सेवित पापों का विनाशक 'भद्रवट' नाम का क्षेत्र है, जिसका स्मरण करने से ही ब्रह्महत्यादि करोड़ों पाप दूर भाग जाते हैं। जो फल गोदान, माघ-स्नान तथा चन्द्र-सूर्य ग्रहणों में कुरुक्षेत्र तथा पुष्कर में स्नान करने से प्राप्त होता है, वह पुण्य 'भद्रवट' में प्राप्त होता है। यह बात मैंने सच कही है। हे ऋषिवरों ! गयाश्राद्ध, काशीवास तथा मानसरोवर में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वह भद्रवट में सहज ही मिल जाता है। इसी प्रकार केदार के जलपान तथा शङ्कर आदि की पूजा करने का फल भी भद्रवट क्षेत्र में ही मिल जाता है। जो ब्राह्मण लोभवश भद्रवट-क्षेत्र में दान लेते हैं, वे नरकगामी होते हैं। हे द्विजवरों ! भद्रवट के पूजास्थल से बढ़कर कोई दूसरा क्षेत्र नहीं है। जिसकी छाया में भगवान् विष्णु सोये, उससे बढ़ कर और कौन सा क्षेत्र हो सकता है ? उस क्षेत्र में देवताओं से गढ़ी हुई परम पवित्र

---

१. 'कोऽन्यतमोऽधिकः' इति 'क'। २. 'स्वशक्तिभिश्च वै विप्राः' इति 'क'।

ऋषय ऊचु:—

कथं चित्रशिला पुण्या केन मर्त्ये प्रकाशिता। कथयस्व समासेन सर्वं ते विदितं प्रभो ॥१४॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ क्षेत्रे भद्रवटाह्वये। पुष्पभद्राजले शुद्धे निमज्य मुनिसत्तमाः ॥१५॥
सुतपा नाम वै मौनी तपस्वी शंसितव्रतः। वटच्छायां समाश्रित्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥१६॥
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजाः शीर्णपर्णानिलाशनः। त्रिगुणं द्वादशाब्दं वै तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥१७॥
ततः काले व्यतीते तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः। मुनेरनुग्रहार्थाय ययुर्भद्रवटं द्विजाः ॥१८॥
तत्र ते तं द्विजं मौनं दृष्ट्वा तत्र शिलां तथा। चित्रधातुसमानाभां रचितां विश्वकर्मणा ॥१९॥
तस्यां तस्थुस्तदा ते वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। ऋषेरनुग्रहार्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥२०॥
उवाच तमृषिं विप्रा विष्णुर्ब्रह्मा तथा शिवः[1]। त्रैलोक्यहितकर्तारं वचनं समुवाच ह ॥२१॥

विष्णुरुवाच—

धन्योऽसि ऋषिशार्दूल येनाहं तोषितस्त्वया। ध्यानं सन्त्यज्य मां पश्य हितं ते वै करोम्यहम्।

'चित्रशिला' है। वहीं पर त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु और महेश—अपनी-अपनी शक्तियों (ब्राह्मी, वैष्णवी तथा माहेश्वरी) के साथ निश्चय रूप से विराजमान हैं॥ २ – १३॥

(यह सुन) ऋषियों ने फिर पूछा—प्रभो ! यह 'चित्रशिला' क्यों कर पवित्र है ? मृत्युलोक में इसका पता किसने लगाया ? कृपया संक्षेप में वर्णन करें॥ १४॥

व्यास जी ने उत्तर दिया—मुनिश्रेष्ठों ! 'पुष्पभद्रा' के शुद्ध जल में स्नान कर 'सुतपा'[2] नामक मौनी तपस्वी के आश्रम में जायें। उस मुनि ने वट-वृक्ष की छाया में रह कर कठोर तप किया है। वह मुनि वहाँ पर ३६ वर्ष पर्यन्त हाथ ऊपर उठाये तथा सूखे पत्तों को खाते हुए साधना करता रहा। इस प्रकार समय व्यतीत होने पर सुतपा नामक ऋषि के अनुग्रहार्थ ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देव 'भद्रवट' पहुँचे। वहाँ उन्होंने उस मौनी तपस्वी तथा विश्वकर्मा की विचित्र सृष्टि-स्वरूप पुष्पभद्रा नदी के मध्यस्थ सुवर्ण के समान दीप्यमान उस 'चित्रशिला'[3] को देखा। वहाँ आकर त्रिदेव उस 'चित्रशिला' पर बैठे। उस पर तीनों देव अनुग्रह करते हुए भी विष्णु ने उससे त्रैलोक्य के हितकारी वचन कहे॥ १५–२१॥

---

१. 'विष्णुर्ब्रह्मभवान्वित:' इति 'क'।

२. तेरहवें मन्वन्तर मनु रौच्य के एक पुत्र का नाम।—देखें मत्स्य पुराण ४.१. १०२–१०३— "अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्योप्यव्ययस्तु सः। पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः। निष्प्रकम्प्यस्त-थात्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा। सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु त्रयोदश॥"

३. काठगोदाम रेलवे स्टेशन से नैनीताल–अल्मोड़ा आदि स्थानों को जाते समय 'रानीबाग' नामक स्थान है। वहीं पर नीचे नदी के तट पर यह 'चबूतरे' की तरह रंग-बिरंगे पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़ों से बना शिलाखण्ड है। उसी के पास श्मशान-स्थल भी है। पहाड़ की चढ़ाई रानीबाग से आरम्भ होती है। पहाड़ों की प्राकृतिक छटा तथा वायु में शीतलता का अनुभव यहीं होने लगता है। 'मानसखण्ड' के निम्न भाग की भौगोलिक सीमा का यहीं अन्त है।

व्यास उवाच—

इति विष्णोर्गिरं श्रुत्वा मेघगम्भीरनादिताम् । कोऽयमित्यधुना वाचं सम्भाव्य प्रददर्श ह ॥२३॥
ततो ददर्श वैकुण्ठं शङ्खचक्रगदाधरम् । श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं वनमालाविराजितम् ॥२४॥
सहस्रभानुसङ्काशं दिव्यद्युतिविराजितम् । चोपविष्टं शिलापृष्ठे सह ब्रह्मभवादिभिः ॥२५॥
चिह्नादिभिश्च वैकुण्ठं[1] कृष्णं मत्वा श्रियः पतिम् । ननाम दण्डवद् भूमौ किञ्चिन्नोवाच स व्रती ॥
प्रणामानन्तरं मौनी तुष्टाव मनसा हरिम् । स मौनं तमृषिं ज्ञात्वा हरिः संसारभाववित् ॥२७॥
अनुजग्राह वै विप्रा विश्वकर्ता सतां गतिः । अधिरोप्य विमानाग्रे मौनं सत्यव्रतं मुनिम् ॥२८॥
सह तेन तदा देवो ब्रह्मणा शङ्करेण च । ययौ वैकुण्ठभवनं वैकुण्ठो मुनिसत्तमाः ॥२९॥
सुतपस्याश्रमे पुण्ये सा शिला त्वष्टृनिर्मिता । पुष्पभद्रानदीमध्ये चित्रा धातुमयी यया ॥३०॥
पूज्यते देवगन्धर्वैः किमुतान्यैर्महर्षिभिः । ये पूजयन्ति मनुजाश्चित्रां चित्रशिलां द्विजाः ॥३१॥
तेषां वैकुण्ठभवनान्नास्तीह पुनरागमः । दुर्लभं मानुषं जन्म मानुषे मुनिसत्तमाः ॥३२॥
सुदुर्लभतरं तत्र शिलासन्दर्शनं शुभम् । तत्रापि दुर्लभं मन्ये पुष्पभद्रासरिज्जले ॥३३॥
मज्जनं मुनिशार्दूला ब्रह्महत्याविनाशनम् । ते धन्या मानुषे लोके[2] मातुर्जठरवासिनः ॥३४॥

भगवान विष्णु ने कहा—महातपस्विन् ! तुम धन्य हो । तुमसे मैं प्रसन्न हूँ । अब तुम ध्यान छोड़ कर मेरी ओर देखो । मैं तुम्हारा हितैषी हूँ ॥ २२ ॥

इसी बीच व्यासजी बोले—मेघ के समान उस गम्भीर वाणी को सुन सुतपा ने सोचा कि यह कौन हो सकता है ? आँखें खोल कर देखने पर उसने अपने समक्ष शङ्ख-चक्र-गदाधारी, श्रीवत्स-चिह्न से अंकित, वनमाली, एवं चतुर्भुज विष्णु भगवान् को देखा । सहस्रों सूर्यों के समान द्युतिमान् विष्णु वहीं ब्रह्मा तथा शिव के साथ 'चित्रशिला' पर विराजमान दिखाई पड़े । देवचिह्नों से यह अनुमान किया कि वहाँ पर वैकुण्ठवासी विष्णु भगवान् बैठे हुए हैं । मुनि ने दण्डवत् प्रणाम किया । वह मौन होकर बैठा रहा । तथा मन ही मन उसने स्तुति की । सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ने उसके मौनव्रत को समझ सत्यव्रती सुतपा को विमान पर बैठा कर देवताओं सहित वैकुण्ठ लोक को ले गए । पुष्पभद्रा नदी के मध्यस्थित सुतपा के आश्रम में वह धातुमयी शिला के सदृश 'चित्रशिला' देवों, गन्धर्वों तथा ऋषियों से पूजी जाती है । हे ब्रह्मबन्धुओं ! जो मनुष्य उस विचित्र 'चित्रशिला' का पूजन करते हैं, वे वैकुण्ठ-धाम जाते हैं । उनका इस लोक में पुनरागमन नहीं होता । यों तो संसार में मनुष्य का जन्म दुर्लभ है । मुनिवरों ! उसमें भी वहां पर उस शिला का दर्शन और दुर्लभतर है तथा [3]पुष्पभद्रा-नदी के जल

---

१. 'चिह्नानुमेयं वकुण्ठम्' इति 'क' ।

२. 'मानवा लोके' इति 'क' । 'मानवे' इति 'ग' ।

३. एक नदी जिसके तट पर हिमालय पर्वत के पास मार्कण्डेय ऋषि ने तपस्या की थी । वहीं चित्रशिला भी है । इस नदी को 'पुष्पवहा' भी कहते हैं ।—द्रष्टव्य भागवत—"प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् । छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ एवं तपःस्वाधायपरो वर्षाणामयुतायुतम् । आराधयन् हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः । दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना । तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः । व्यतीयाय महान् कालो मन्वन्तर-

यैः स्नानं पुष्पभद्राया जले पुण्यप्रदे द्विजाः। निमज्य पुष्पभद्राया जले यैः पूज्यते शिला ॥
ते मातुर्जठरं विप्रा न पश्यन्ति पुनः पुनः ॥३५॥
दक्षिणे पुष्पभद्रायाः पुण्यं भद्रवटं हि ये। प्रपश्यन्ति महाभागास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥३६॥
॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भद्रवटमाहात्म्ये द्विचत्वांरिशोऽध्यायः ॥

में स्नान करना तो और भी दुर्लभ है। उसमें स्नान करने से ब्रह्महत्या-सदृश पाप दूर होते हैं। हे विप्रर्षियों ! वे गर्भस्थ माता के पुत्र धन्य हैं, जो 'पुष्पभद्रा' के जल में स्नान कर इस दिव्य शिला का पूजन करते हैं। उन्हें फिर गर्भवास का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। ऋषिवरों ! 'पुष्पभद्रा' के दक्षिणतटस्थ पवित्र 'भद्रवट' का दर्शन करने वाले व्यक्ति सद्गति को प्राप्त होते हैं॥ २३-३६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भद्रवट-माहात्म्य'
नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

षडात्मकः ॥ एतत् पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन् किलान्तरे। तपोविशङ्कितो ब्रह्मन् आरेभे तद्विघातनम् ॥ गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ। मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्वं उत्तरे। 'पुष्पभद्रा' यत्र नदी 'चित्राख्या' च 'शिला' विभो ॥ तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम्। पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम्''—भागवत, स्कन्ध १२, अध्याय ८, श्लोक ७-१९।

व्यास उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीमम् इतिहासं पुरातनम् । गर्गेण मुनिना गीतं व्याधाय परिपृच्छते ॥१॥
व्याधः कश्चिन्महारण्ये खसदेशसमुद्भवः । मृगयां व्यचरत् पापो देशे व्याधसहायवान् ॥२॥
वराहांश्च रुरूंश्चापि हरिणानपि दुर्मतिः । जघान विपिने घोरे तथान्यानपि वै मृगान् ॥३॥
स कदाचित् तपस्यन्तं गर्गं पश्यन् तपोधनाः । ध्यायमानं जगन्नाथं प्रभविष्णुं महेश्वरम् ॥४॥
तं दृष्ट्वा सोऽतिपापो वै पुण्यां ज्ञानरतिं गतः । अहो नैष्ठुर्यकर्मोऽयं प्राणिनां हिंसनं वदन् ।५।
इति पुण्यमतं ज्ञात्वा स व्याधो मुनिसत्तमाः । प्रणम्य स यथान्यायं गर्गं सम्पृष्टवान् तदा ॥६॥

व्याध उवाच—

मुने हिंसारतानां हि मानवानां दुरात्मनाम् । कस्मिन् क्षेत्रे गतिः पुण्या विद्यते तद्वदस्व माम् ॥

गर्ग उवाच—

अपि क्षेत्रशतं दृष्ट्वा ये हिंसानिरता जनाः । ते न शुध्यन्ति वै व्याध वटक्षेत्रमदृश्य हि ॥८॥
तावत् पापानि सर्वाणि देहलग्नानि सन्ति वै । यावद् भद्रवटं क्षेत्रं न पश्यति हि पातकी ॥९॥
दृष्ट्वा भद्रवटं क्षेत्रं तथा चित्रशिलां शुभाम् । विलीयन्ते हि पापानि हिमवद् भास्करोदये ॥

व्यास उवाच—

इति श्रुत्वा महाव्याधस्त्यक्त्वा च सशरं धनुः । सुनिर्विण्णमना भूत्वा पुनर्गर्गमुवाच ह ॥११॥

व्याध उवाच—

कुत्र व्याख्यायते विप्र त्वया भद्रवटः स्मृतः । कुत्र सा पुण्यनिलया शिवा चित्रशिला स्मृता ॥

व्यासजी ने कहा—इस सन्दर्भ में गर्ग मुनि द्वारा व्याध के पूछने पर कथित एक आख्यान प्रसिद्ध है। आप लोग सुनें। खस देश का एक व्याध इस बड़े वन में मृगया हेतु विचरण करने लगा। उस दुरात्मा ने सूअर, मृग, हिरन आदि पशुओं का संहार किया। उसने एक दिन तपश्चर्या में लीन भगवान् विष्णु और शंकर का ध्यान करते हुए गर्ग ऋषि को देखा। उन के दर्शन से व्याध की बुद्धि धर्म की ओर झुक गई। वह कहने लगा कि प्राणियों में हिंसा की प्रवृत्ति बड़ी हेय है। हे ऋषिवरों ! इस प्रकार उसके मन में यह पवित्र विचार आने पर वह व्याध गर्ग मुनि को प्रणाम कर पूछने लगा॥ १-६ ॥

व्याध बोला—ऋषे ! हिंसा करने वालों की गति किस क्षेत्र में सुधरती है। कृपया आप बतलायें॥ ७ ॥

गर्ग ऋषि ने कहा—रे व्याध ! हिंसकों की प्रकृति किसी क्षेत्र को देख कर नहीं सुधरती। केवल 'वट' क्षेत्र में ही सुधरती है। जब तक 'भद्रवट-क्षेत्र' और 'चित्रशिला' का दर्शन नहीं होता तब तक शरीरस्थ पापों की निवृत्ति नहीं होती। इनके दर्शन होते ही, सूर्योदय होने पर हिम के विलय होने के सदृश, समग्र पाप भी विलीन हो जाते हैं॥ ८-१० ॥

व्यासजी बोले—गर्ग की वाणी को सुन उस महाव्याध ने धनुष-बाण फेंक दिया। वह मनस्वी गर्ग मुनि से फिर पूछने लगा॥ ११ ॥

व्याध बोला—विप्रवर ! वह 'भद्रवट' कहाँ पर प्रसिद्ध है ? वह 'चित्रशिला' कहाँ बतलाई गई है ? ॥ १२ ॥

गर्ग उवाच—

शुद्धे हिमालयप्रान्ते पुण्यो गर्गगिरिः स्मृतः । तत्र गर्गाश्रमो व्याध विद्यते सिद्धसेवितः ॥१३॥
तत्र गार्ग्याश्रमाद्‌भूता गार्गी नाम सरिद्वरा[१] । वामे तस्या महाभीमः पुण्यो भीमह्लदः स्मृतः ।
तस्मात् पुण्या[३] सरिच्छ्रेष्ठा पुष्पभद्रा महानदी । सम्भूता वै महाव्याध तपस्विविनिषेविता[४] ॥
तत्रैव पर्वतोद्देशे सुभद्रा सरिदुत्तमा । बभूव सिद्धगन्धर्वैः पूजिता व्याधनायक ॥१६॥
तयोः सङ्गममध्ये वै चिताभस्मविभूषणः । जागर्ति शङ्करो देवः[५] सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥१७॥
तत्र चित्रशिला नाम तयोर्वै संगमाद् बहिः । देवगन्धर्वमनुजैः पूजिता व्याधनायक ॥
सेविता मुनिभिः पुण्यैस्तपोभिर्वीतकल्मषैः ॥ १८ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्त्रयो देवा वसन्ति हि । यस्यां देवर्षिपूज्यायां[६] सेवितायां सरिज्जलैः ।१९।
तां दृष्ट्वा पापिनो घोरा विलिप्ता पापकोटिभिः । क्षणेनैव विशुध्यन्ति सत्यं ते कथितं मया ।
अणुमात्रमपि स्नातं पुष्पभद्रासरिज्जले । तस्मिन् क्षेत्रे प्रकुरुते भस्मसादघकोटयः ॥२१॥
दक्षिणे पुष्पभद्रायाः पुण्यं भद्रवटं स्मृतम् । तं दृष्ट्वा मानवो याति विष्णुलोकं सुदुर्लभम् ॥२२
तच्छिलावटयोर्मध्ये क्षेत्रं भद्रवटं स्मृतम् । ऋषिपुण्याश्रमैर्व्याध सेवितं सुमनोहरम् ॥२३॥
प्रविशन्नेव ते पापं तस्मिन् क्षेत्रे विनश्यति[७] । गच्छ त्वं तत्र वै व्याध त्यज हिंसां मलप्रदाम् ॥

व्यास उवाच—

इति गर्गस्य वचनं श्रुत्वा व्याधो महामनाः । प्रणम्य तमृषिश्रेष्ठं ययौ भद्रवटं शुभम् ॥२५॥
स्नात्वा भीमह्लदे पुण्ये सरितोः संगमेऽपि च[८] । तथैव पुष्पभद्राया जले स्नात्वा यथाविधि ।२६।

गर्ग ऋषि ने कहा—शुद्ध हिमालय के प्रदेश में पवित्र 'गर्गाचल' है। वहीं पर हे व्याध ! सिद्धों से सेवित 'गर्गाश्रम' है। उसी गर्गाश्रम से 'गार्गी' नदी निकली है। उसके बाईं ओर पवित्र एवं विस्तृत भीमह्लद है। वहीं 'पुष्पभद्रा' नदी का उद्गम है। वह तपस्वियों से निषेवित है। वहीं पास ही पर्वत के एक छोर से श्रेष्ठ नदी 'सुभद्रा' निकलती है। हे व्याध ! वह सिद्धों एवं गन्धर्वों से पूजित है। उन दोनों के संगम में चिताभस्म-विभूषित भगवान् शंकर जागरूक हैं। उन दोनों की संगमस्थली के बाहर तट पर 'चित्रशिला' है। वह देवों, गन्धर्वो, मानवों एवं वीतराग ऋषियों से पूजित है। उन दोनों नदियों के जल से सेवित एवं देव तथा ऋषियों से पूजित शिला में—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश—तीनों देवताओं का वास है। उसका दर्शन कर करोड़ों पापों से विलिप्त घोर पापी भी क्षण भर में पवित्र हो जाते हैं। पुष्पभद्रा के जल में थोड़ा सा भी स्नान किया जाय तो करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। 'पुष्पभद्रा' के दक्षिण में 'भद्रवट' का दर्शन करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है। 'शिला' और 'वट' के मध्य ऋषियों के पवित्र आश्रमों से विभूषित 'भद्रवट-क्षेत्र' है। है व्याध ! अब तुम अहिंसा के मार्ग को छोड़ो, वहाँ जाओ। वहाँ प्रवेश करते ही तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे॥ १३–२४ ॥

व्यासजी ने कहा—गर्ग ऋषि की बातें सुन कर वह मनस्वी व्याध उन्हें प्रणाम कर

---

१. 'गर्गाश्रमाद् भूता' इति 'क'।
२. 'गार्गी नामा नदी स्मृता' इति 'क'।
३. 'पुण्याद्' इति 'क'।
४. 'तपस्विभिर्निषेविता' इति 'क'।
५. 'व्याध' इति 'क'।
६. 'देवर्षिपूज्यानाम्' इति 'ग'।
७. 'प्रणश्यति' इति 'क'।
८. 'संगमे तथा' इति 'क'।

स शिलां पूजयामास पूर्णमब्दत्रयं द्विजाः। तथा भद्रवटं पुण्यं गन्धपुष्पाक्षतैर्जलैः ॥२७॥
पूजयामास विधिवत् स व्याधो मुनिसत्तमाः। ततो वर्षत्रयान्ते वै स व्याधः स्वगृहं ययौ ॥२८॥
पातकैर्बहुभिर्युक्तो निर्ममो निरहङ्कृतः। बुभुजे विषयान् भोगान् ईजे यज्ञान् सुदक्षिणान् ।२९।
ततः कालेन स व्याधो दैवात् पञ्चत्वमाप्तवान्। मृतो विमानमारुह्य देवैः सम्प्रेषितं शुभम् ॥
सत्यलोकं गतो व्याधः पुण्येनोपार्जितेन वै ॥ ३० ॥
व्याधाख्यानान्वितां विप्राः कथां भद्रवटस्य वै। यः पठेत् शृणुयाद्वाऽपि सत्यलोके महीयते ।३१।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भद्रवटमाहात्म्यं नाम त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

भद्रवट की ओर चला। प्रथम उसने 'भीमताल' तथा दोनों नदियों के संगम में स्नान किया। फिर 'पुष्पभद्रा' में यथाविधि स्नान एवं पूजन कर तीन वर्ष पर्यन्त 'चित्रशिला' का पूजन करता रहा। हे मुनिवरों! इसके साथ ही वह गन्ध-अक्षत-पुष्पादि से 'भद्रवट'[1] का पूजन भी करता रहा। तीन वर्षों के बाद वह पापरहित तथा निरहंकारी होकर अपने घर चला गया। वहाँ सांसारिक भोगों का आनन्द लेते हुए दक्षिणायुक्त यज्ञ-यागादि सम्पन्न करता रहा। समय पाकर दैववश उसकी मृत्यु हो गई। मरणोपरान्त देवों ने उसे विमान पर चढ़ा कर उसके पुण्योपार्जन से सत्यलोक पहुँचा दिया। ब्रह्मर्षियों! व्याध के आख्यान-सहित भद्रवट की कथा को जो पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सत्यलोक में सम्मानित होता है॥ २५ – ३१ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भद्रवट-माहात्म्य'
नामक तेंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥

---

१. मार्कण्डेय मुनि की तपश्चर्या के सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत में यह कहा गया है कि 'कठोर तपश्चर्या को भङ्ग करने में जब देवादि तथा अप्सरायें आदि सफल नहीं हुए तो वहां भगवान् के रूप में नर-नारायण ऋषि आये। मार्कण्डेय ऋषि ने उनकी स्तुति की। प्रसन्न होकर नारायण ने वर मांगने को कहा। मार्कण्डेय ने कहा कि 'आप के दर्शन से बढ़ कर दूसरा क्या वर हो सकता है'। सन्तुष्ट होकर नारायण बदरिकाश्रम को चले गए। इस तरह ऋषि को तपश्चर्या करते हुए सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गये। वे इतने विभोर हो जाते थे कि उन्हें पूजन करने का स्मरण भी नहीं रहता था। एक दिन सायंकाल 'पुष्पभद्रा' के तट पर भयंकर तूफान उठा, जलवर्षण से समग्र धरा जलाप्लावित हो गई। वहां केवल वट-पत्र पर सोये हुए अपने पैर का अंगूठा चूसते हुए एक शिशु को ऋषि ने देखा। वे भ्रान्त-से हो गए। उस बालक के पास जाकर वे प्रश्न करना चाहते थे। उसके सांस लेते ही वे मच्छर की तरह शिशु के पेट में समा गये। उसके भीतर उन्होंने सारा जगत् वैसे ही देखा, जैसा प्रलय के पहले बाहर देखा था। फिर उस बालक के श्वास छोड़ते ही वे बाहर निकले और उन्होंने उसका आलिङ्गन करना चाहा। तत्काल बालक अन्तर्धान हो गया। सारा वातावरण पूर्ववत् हो गया'। भद्रवट के माहात्म्य का यह वर्णन है। मार्कण्डेय ऋषि चिरजीवी माने गए हैं। अतः जन्म-दिवस में उनका पूजन कर प्रत्येक व्यक्ति उनसे यही अभ्यर्थना करता है—"आयुष्प्रद महाभाग! सोमवंशसमुद्भव। महातपो मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते" ॥

४४

ऋषय ऊचुः—

तीर्थानां पुष्पभद्राया माहात्म्यं मुनिसत्तम । श्रोतुमिच्छामो मुक्त्यर्थं[1] तत्त्वं[2] सत्यवतीसुतात् ।

व्यास उवाच—

तत्र चित्रह्लदे स्नात्वा पुष्पभद्राप्रपूरिते । मानवो देवभवनं प्रयाति मुनिसत्तमाः ।।२।।
अधोभागे महातीर्थं शेषनागाह्वयं स्मृतम् । तत्र स्नात्वा च मनुजः स्वर्गलोके[3] महीयते ।।३।।
ततस्तु शेषभद्रायाः सङ्गमोऽस्ति तपोधनाः । तत्र पिण्डप्रदानेन पितॄन् सन्तारयेन्नरः ।।४।।
ततस्तु चन्द्रभद्रायाः सङ्गमोऽस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च मनुजः स्वर्गलोके महीयते ।।५।।
ततस्तु वेणुभद्रायाः संगमोऽस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च मनुजः स्वर्गलोके महीयते ।।६।।
वामे तत्र महादेवी चाण्डिका परमेश्वरी । पूज्यते मुनिशार्दूला देवगन्धर्वपूजिता ।।७।।
तदूर्ध्वभागे वै विप्राः शिलायां देवपूजितम् । सुभद्रासङ्गमं पुण्यं विद्यते ऋषिसेवितम् ।।
तत्र श्मशाननिलयो हरः सम्पूज्यते द्विजाः ।। ८ ।।
निमज्य विधिवत्तत्र शङ्करं यः प्रपूजयेत् । शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।।९।।
ततः कमलभद्रायाः सङ्गमोऽस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च मनुजः शिववत् पूज्यते भुवि ।।१०।।
तदूर्ध्वं पुष्पभद्राया गार्गीसङ्गमनं स्मृतम् । तत्र स्नात्वा च मनुजो शिवस्य प्रियतां व्रजेत्[4] ।।
मूले तस्या महापुण्यो ह्लदः संख्यायते द्विजाः । भीमो नाम महापूज्यः सुरगन्धर्वसेवितः ।।१२।।

ऋषियों ने कहा—महर्षे ! मुक्ति के इच्छुक हम लोग अब 'पुष्पभद्रा' के तीर्थों का माहात्म्य सत्यवती-पुत्र से सुनना चाहते हैं ।। १ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—हे ऋषिवरों ! पुष्पभद्रा के जल से भरे हुए 'चित्रह्लद' में स्नान कर मानव को स्वर्गलोक मिलता है । उसके नीचे की ओर 'शेषनाग तीर्थ' है । उसमें स्नान कर मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है । हे तपस्वियों ! तब 'शेषभद्रा' का संगम है । वहाँ पिण्डदान कर पितरों को तृप्त करना चाहिये । फिर 'चन्द्रभद्रा' का संगम है । वहाँ स्नान करने से स्वर्ग में प्रशंसा होती है । तब 'वेणुभद्रा' के संगम में स्नान करने से स्वर्ग में संमान मिलता है । वहाँ बाईं ओर 'चण्डिका' महादेवी का पूजन किया जाता है । उसके ऊपरी भाग में शिला के ऊपर 'सुभद्रा' का संगम है । वहाँ पर श्मशानवासी 'शिव' का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है । तदनन्तर 'कमलभद्रा' के संगम में स्नान करने से पृथ्वी पर ही शिव के समान सम्मान मिलता है । उससे ऊपर 'पुष्पभद्रा' और 'गार्गी' का संगम है । उसमें स्नान करने से प्राणी शिव का प्रिय हो जाता है । उसके मूल में सुर-गन्धर्व-पूजित पवित्र-'भीमताल' है । वहाँ पर 'भीमेश्वर' शिव का पूजन होता है[5] । भीमेश्वर का पूजन करने से

---

१. 'विप्रर्षे' इति 'क' । २. 'स्वतः' इति 'क' ।
३. 'देवलोके' इति 'क' । ४. 'जायते शिववल्लभः' इति 'क' ।
५. सुप्रसिद्ध 'भीमताल' नामक विशाल सरोवर । रानीबाग-मेहरागाँव मार्ग अथवा मवाली मार्ग से जाया जाता है ।

तत्र भीमेश्वरो नाम हरः सम्पूज्यते द्विजाः । भीमेशं पूज्य मनुजो जायते शिववल्लभः ॥१३॥
तत्र पुण्या महाभागाः ख्याताः सप्त ह्रदाः शुभाः । तत्र भीमह्रदः पुण्यः ख्यायते मुनिसत्तमाः।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पुष्पभद्रातीर्थ-वर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदध्यायः ॥

मनुष्य शिव का प्रिय हो जाता है। वहीं पर निकटस्थ सात पवित्र सरोवर हैं। मुनिश्रेष्ठों ! उनमें 'भीमताल' बहुत पवित्र माना जाता है ॥ २-१४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत 'पुष्पभद्रातीर्थ'-माहात्म्य'[1]-नामक
चवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. श्रीमद्भागवत में 'पुष्पभद्रा' नदी का दूसरा नाम 'पुष्पवहा' बतलाया गया है—
"हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ।
विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥
—स्कन्ध १२, अ० ९, श्लोक ३० ।

ऋषय ऊचुः—

कुत्र ते मुनिशार्दूल पुण्याः सप्त ह्लदाः स्मृताः । कस्माद् भीमह्लदः पुण्यः ख्यायते मुनिसत्तम ॥
ह्लदानां नामधेयानि पुण्यं चापि तपोधन । समुत्पत्तिं च विधिवच्छ्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२॥

व्यास उवाच—

शृण्वतां मुनिशार्दूला ह्लदानां नामसंज्ञितम् । यैर्धन्यैर्बहुभिः पुण्याः कृता मानसरोपमाः ॥३॥
प्रथमं तृषि-संज्ञो वै ततो भीमह्लदः स्मृतः । ततः सनत्कुमारेण कल्पितो ह्लदनायकः ॥४॥
नवकोणसुविस्तीर्णो[1] ब्रह्मर्षिगणसेवितः । ततो नलसरः पुण्यो दमयन्त्यास्ततः परम् ॥५॥
ततो रामह्लदः ख्यातस्ततः सीतासरः स्मृतः । तेषां मध्ये महाभागाः पुण्यो भीमह्लदः स्मृतः ।
सिद्धविद्याधरगणैः सेवितः सरनायकः । यत्र भीमेश्वरं देवं स पाण्डुतनयो बली ॥
समाराध्याञ्जलीर्दत्वा पूरयामास तं ह्लदम् ॥७॥

ऋषय ऊचुः—

कथं भीमो महाभाग शिवमाराधयत् प्रभुम् । कस्मात्तत्राञ्जलीः पुण्याश्चिक्षेप पाण्डुनन्दनः ॥

व्यास उवाच—

एकदा बलवान् भीम एकाकी हिमपर्वतम् । जगाम स गदाहस्तः पाकशासनविक्रमः ॥९॥
व्रजंश्चित्रशिलां दृष्ट्वा सम्पूज्य च महामतिः । परिक्रम्य वटं भीमो रुरुहे स महागिरिम् ।१०।

ऋषियों ने फिर पूछा—महर्षे ! वे सातों सरोवर कहाँ पर हैं ? उनमें भी 'भीमताल' की क्या विशेषता है ? हे तपोधन ! उन पवित्र ह्लदों के नाम तथा उनके उत्पत्तिस्थल के सम्बन्ध में हम जानना चाहते हैं ॥ १ - २ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—ऋषिश्रेष्ठों ! उन सरोवरों के नाम सुनें। बहुत से महर्षियों ने इन्हें मानसरोवर के समान श्रेष्ठ बना दिया है। सर्वप्रथम (१) 'तृषिसरोवर' (नैनीताल) है। तदनन्तर (२) 'भीमसरोवर' (भीमताल) प्रसिद्ध है। फिर (३) 'सनत्कुमार' के नाम से ख्यात सरोवर है। वह नौ कोणों (कोस) तक फैला हुआ है। फिर (४) 'नलह्लद', (५) 'दमयन्तीह्लद', (६) 'रामह्लद' तथा (७) 'सीताह्लद' हैं। इन सरोवरों के मध्यस्थ होने से 'भीमताल' की विशेषता है। वह सिद्ध एवं विद्याधरादि से सेवित है। वहाँ पर पाण्डुपुत्र एवं बली 'भीमसेन' ने शिवार्चन कर अपनी अञ्जलियों से जल देकर उस सरोवर को भर दिया था ॥ ३-७ ॥

ऋषियों ने फिर जिज्ञासा की—महर्षे ! वहाँ पर भीमसेन ने किस प्रकार शिवार्चन किया ? तथा वहाँ अञ्जलि-प्रदान क्यों किया ? ॥ ८ ॥

व्यासजी ने समाधान किया—एक बार बलशाली, गदाधारी, एवम् इन्द्र के समान पराक्रमी भीम अकेले ही हिमालय पर्वत की ओर चले गए। जाते हुए मार्ग में उन्होंने 'चित्रशिला'

---

१. 'नव क्रोशान् सुविस्तीर्णो' इति 'क'।

तत्रारुहन्तमेकाकी वागुवाच शरीरिणी । गदाहस्तं पदाक्रान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ॥११॥
भीम भीम महाबाहो शिवमाराधय प्रभुम् । आराध्याञ्जलिदानेन शिवत्वं समवाप्नुहि ॥१२॥
स्थापयस्व स्वकीर्ति वै युगमेकं न संशयः ॥ १३ ॥

व्यास उवाच—

आकाशवाणीं तां श्रुत्वा भीमसेनो महामतिः[1] । सन्निधाय गदां भूमौ नमस्कृत्वा महेश्वरम्[2] ॥
उपचक्रे महादेवं स पाण्डुतनयो बली । संस्थाप्य भूमौ देवेशं भीमो भीमपराक्रमः ॥१५॥
स्वकीर्ति स्थापयामास शङ्करं लोकशङ्करम् । गन्धपुष्पाक्षतैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च विविधैरपि ॥
सम्पूज्य देवदेवेशं नैवेद्येन सुतोष्य च ॥ १६ ॥
गदया पर्वतं भित्वा निष्कास्य स मृदं द्विजाः । जलं समानयामास गाङ्गेयं मुनिसत्तमाः ॥१७॥
ततः प्रक्रम्य देवेशं भीमसेनो महाबलः । स्वकीर्ति स्थापयद् भूमौ गाङ्गेयजलपूरिताम् ॥१८॥
ददौ जलाञ्जलीर्भीमो महादेवाय शूलिने । ततो विसर्जयामास शङ्करं पाण्डुनन्दनः ॥१९॥
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ भीमः स्वस्थमना अभूत् । ततोऽञ्जलिप्रदानेन भीमस्य च महात्मनः ॥
क्षणाज्जलचराणां वै स बभूव गृहं द्विजाः ॥ २० ॥
नक्रस्तिमिङ्गिलझषादिसुपूर्णभूतं कल्लोलक्षोभचपलं वरटाप्रपूर्णम् ।
दृष्ट्वा ह्रदं त्रिदशनायक-नायिकाभिः सम्पूज्य तुष्टिमगमन् किमु ते सुसिद्धाः ॥ २१ ॥
इति सम्पूजितं भीमं पुनस्तं वागुवाच ह । गच्छ नागाह्वयं भीम श्रेयस्त्वं समवाप्नुहि ॥२२॥
वागुक्तं वचनं श्रुत्वा भीमस्तुष्टमना द्विजाः । ययौ नागाह्वयं प्रीतो गदाहस्तो महाबलः ॥२३॥

को देखा । वहाँ पूजन और 'वट' की प्रदक्षिणा कर वे पर्वत पर आरूढ़ हुए । इतने ही में, पराक्रमी, गदाधारी भीम के चढ़ते हुए, आकाशवाणी हुई—'भीम ! महाबाहो ! भीम ! शीघ्र ही तुम भगवान् शंकर की आराधना करो । आराधना के उपरान्त अञ्जलिदान कर शिवत्व प्राप्त कर अपनी कीर्ति को युगपर्यन्त स्थायी करो ॥ ९–१३ ॥

व्यासजी ने पुनः कहा—आकाशवाणी को सुनकर भीम ने अपनी गदा भूमि पर रख दी । शंकर को प्रणाम कर भूमि पर शिव की स्थापना करते हुए गन्ध, अक्षत, पुष्प, माला, नानाविध नैवेद्य वस्त्रादि से अभ्यर्चना कर उन्हें सन्तुष्ट किया । फिर गदा से पर्वत का भेदन कर मिट्टी बाहर करते हुए गङ्गा का आह्वान किया । पुनः भगवान् की परिक्रमा कर अपनी कीर्ति स्थापित की । तदनन्तर गङ्गा-जल से भरी अञ्जलियाँ शंकर को प्रदान कीं । तत्पश्चात् पूजा विसर्जित की । अन्त में दण्डवत् प्रणाम कर भीम स्वस्थचित्त हो गए । भीम के अञ्जलि-दान से वह जलाशय जलचरों का आवास बन गया । इसके फलस्वरूप उस सरोवर में मगर तथा मछलियां आ गईं एवं लहरों से संकुलित होने के साथ ही कौड़ियां भी वहां दिखाई देने लगीं । जिस स्थान पर देवाङ्गनाओं के साथ देवगण का विहार होता हो, वहां सिद्धों के आनन्द की क्या चर्चा की जाय ? पूजनोपरान्त वहीं पुनः आकाशवाणी हुई । अशरीरी वाणी ने यह सुनाया कि 'भीम ! अब तुम हस्तिनापुर वापस जाओ । तुम्हारा कल्याण होगा' । इस बात को

---

१. 'वागुक्तमशरीरिण्याः श्रुत्वा भीमो महामतिः' इति 'ग' । २. 'शङ्करं लोकशङ्करम्' इति 'क' ।

इत्येतत्कथितं विप्रा यथा भीमह्लदो वरः। मया व्याख्यायितः सम्यक् लोकानां हितकाम्यया।
ये स्नानं मुनिशार्दूलाः कुर्वन्त्यत्र सरोवरे[1]। क्रीडन्ति देवभुवने यावदाहूतसंप्लवम् ॥२५॥
गङ्गास्नानसमं पुण्यं स्नात्वा भीमह्लदे शुभे। प्राप्नोति मानवः सम्यङ् नात्र कार्या विचारणा।
तत्र भीमेश्वरं देवं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः। मनोऽभिलषितां सिद्धिं ददाति परमेश्वरः ॥२७॥
तत्रैव बहवो विप्रा गुहाः सन्ति सुशोभनाः। तासु सिद्धैर्महादेवी पूज्यते नात्र संशयः ॥२८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भीमह्लदमाहात्म्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

सुन कर गदाधारी भीम वापस हो गए। हे ऋषियों! जिस प्रकार 'भीमह्लद' प्रसिद्ध हुआ, उसका वर्णन मैंने लोगों के उपकारार्थ कर दिया है। जो जन इस सरोवर में स्नान करते हैं, वे देवलोक में आनन्दित होते हैं। वहां स्नान करने से निःसन्देह गङ्गास्नान का फल मिलता है। वहीं 'भीमेश्वर' का पूजन करने से मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त होती है। हे विप्रवरों! वहाँ पर विद्यमान गुफाओं में सिद्धजन भगवती देवी की उपासना में लगे रहते हैं॥ १४-२८॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भीमह्लद-माहात्म्य' नामक
पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

---

१. 'कुर्वन्ति भीमसञ्ज्ञिते' इति 'क'।

४६

व्यास उवाच—

ततः सनत्कुमारस्य ह्रदः संवर्ण्यते द्विजाः। नवकोणसुविस्तीर्णो[1] देवमानवपूजितः ॥१॥
शृण्वन्तु मुनिशार्दूला मुनयः शंसितव्रताः। सनत्कुमारं तं विभुं पुरा चोषरवासिनः ॥२॥
समाराध्य तपश्चक्रुस्तपोध्यानपरायणाः। तेषामनुग्रहार्थाय साक्षाद् विष्णुतनूपमः ॥३॥
ययौ तत्र महातेजाः स प्रभुर्मुनिसत्तमाः। सनत्कुमारं च विभुं तत्रासीनं द्विजोत्तमाः ॥४॥
नमश्चक्रुर्महाभागास्तपोभिर्वीतकल्मषाः। स तैः प्रणमितो विप्रास्तानुवाच यतव्रतान् ॥५॥
कथयन्तु महाभागाः प्रार्थितो येन हेतुना। ऊचुस्ते ह्यूषरे विप्रा जलमस्मान् प्रदर्शय ॥६॥
ततः सनत्कुमारोऽपि निःसार्याङ्गुलिभिर्मृदम्। सरः प्रदर्शयामास पुष्करेण[2] समं द्विजाः ॥७॥
दर्शयित्वा ह्रदं तत्र स तेषु मुनिसत्तमाः। ऋषीणां पश्यतामेव तत्रैवान्तरधीयत ॥८॥
ये निमज्जन्ति मनुजाः सरे कौमारसंज्ञके[3]। पुष्करस्नानजं पुण्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥९॥

व्यासजी ने कहा—व्रती तपस्वियों ! अब आप लोग नौ कोस (कोण) तक फैले हुए, देवों तथा मनुष्यों से पूजित 'सनत्कुमार' ह्रद का वर्णन सुनें। पुराने समय में ऊसर प्रदेश के रहने वाले लोगों ने 'सनत्कुमार'[4] की आराधना की। उन्होंने तपश्चर्या भी की। उन पर कृपा करने के लिए प्रभु सनत्कुमार साक्षात् विष्णु का स्वरूप धारण कर वहां आए। वहां पर उपस्थित द्विजों ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने उपस्थित द्विजवरों से पूछा कि आप लोगों ने किस हेतु मेरी प्रार्थना की है ? उपस्थित जनसमुदाय ने यह कहा कि 'यहां ऊसर भूमि में जल नहीं है, अतः आप हमें जल दिखायें'। तब सनत्कुमार ने उँगलियों से ही मिट्टी खोद कर 'पुष्कर' के समान सरोवर प्रकट कर दिया। सरोवर को दिखा कर ऋषियों के देखते ही सनत्कुमार अन्तर्धान हो गए। जो लोग इस 'सनत्कुमार' सरोवर[5] में स्नान करते हैं, उन्हें निःसन्देह पुष्कर[6] स्नान का फल मिलता है। जो लोग स्नान कर वहां पिण्डदान करते हैं, वे एक सौ एक

---

१. 'नव क्रोशसु विस्तीर्णो' इति 'क'।

२. 'पुष्करैः सदृशम्' इति 'क'।

३. 'कुमारसंज्ञिते'—इति 'क'।

४. ब्रह्मा के चार मानस-पुत्रों—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन—में से एक, जो सबसे पहले प्रजापति कहे गए हैं। इन सबकी अवस्था सदा ५ वर्ष के शिशु की सी रहती है। सनकादि के अनुसार भगवद्भक्ति के सहयोग से बन्धनोन्मुक्ति जितनी सरल है उतनी योग से नहीं।

"यत्सेवयाऽशेषगुहाशयः स्वराड् विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः।
तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥"—भागवत ४-२२-३९।

५. वर्तमान समय में यह स्थान 'नौकुचियाताल' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें नौ कोने हैं। बनावट बड़ी विचित्र है। एक जगह से पूरे सरोवर का आकार दिखाई नहीं पड़ता।

६. अजमेर के निकट एक तीर्थ। यहां पर ब्रह्मा का एक मन्दिर है और ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा ने यहां पर यज्ञ किया था। पद्मपुराणानुसार यहां पर ब्रह्मा के हाथ से कमल गिर पड़ा, अतः इसे

ये तत्र पिण्डदानेन पितॄन् सन्तर्पयन्ति हि । ते तारयन्ति वै विप्राः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥१०॥
सनत्कुमारं च विभुं तत्र ये पूजयन्ति हि । ते यान्ति विष्णुभुवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥११॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'सनत्कुमारसर'माहात्म्यं
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

४७

व्यास उवाच—

ततो नलसरः पुण्यो विद्यते मुनिसत्तमाः । पुण्यतोयैश्च सम्पूर्णः पूरितो जलजैरपि ॥१॥
तत्र राजा विधिवशान्नष्टराज्यः स भार्यया । जगाम मुनिशार्दूलाः पुण्यकीर्तिः सुदक्षिणः ॥२॥
स गर्गाधित्यकां प्राप्य मृगयां विचरद्वने[1] । चरतस्तस्य राजर्षे मृगास्तस्मादपाक्रमन् ॥३॥
स चाप्राप्य मृगान् विप्रास्तृषितो नृपतिस्तदा । भूधरं खनयामास स धनुषाग्रेण संयतः ॥४॥
खनित्वा भूधरं तत्र दैवयोगेन भूपतिः । प्राप्य तोयं सुशीतं वै तद् गाङ्गेयमिवापरम् ॥५॥
तत्र तोयं प्रपीत्वा वै स राजा मुनिसत्तमाः । जगाम विपिनं घोरं निराशो दैवतोपमः ॥६॥
तत्र ये मुनिशार्दूलास्तोये स्नानं चरन्ति हि । कुरुक्षेत्रसमं पुण्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नलह्रदमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

कुलों का उद्धार करते हैं। इसके साथ ही सनत्कुमार का पूजन करने वाले लोग जन्म-मरण के चक्र को छोड़ विष्णुलोक प्राप्त करते हैं ॥ १ – ११ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सनत्कुमार-सरोवर'-नामक
छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिश्रेष्ठों ! तत्पश्चात् पवित्र 'नलसरोवर' है। वह पवित्र जल से परिपूरित एवं कमलों से भी भरा हुआ है। मुनिवरों ! दुर्भाग्यवश वहां पर राज्यभ्रष्ट होने पर सुचतुर राजा (नल) अपनी पत्नी-सहित आ पहुँचा। 'गर्गाचल' की अधित्यका में पहुँच कर वन में विचरते हुए उसके शिकार खेलते-खेलते सब मृग वहां से भाग गए। मृगों को न पाकर तृषार्त राजा नल धनुष की नोक से पहाड़ को खोदने लगे। सौभाग्य से वहां गङ्गाजल के समान शीतल जल बह निकला। उसका जल पीकर वह देवतुल्य राजा निराश होकर घनघोर जंगल में चला गया। मुनिश्रेष्ठों ! उस सरोवर के जल में जो स्नान करते हैं, वे निःसन्देह कुरुक्षेत्र-स्नान का फल प्राप्त करते हैं ॥ १ – ७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'नलह्रद'-माहात्म्य-
नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

'पुष्कर' कहा गया। इस फूल से रसातल का असुर 'वज्रनाभ' मर गया। ब्रह्मा के मन्दिर के साथ यहां पर 'सावित्री' का मन्दिर भी प्रसिद्ध है।

१. 'व्यचरद्वने'—इति सम्भाव्यते।

४८

व्यास उवाच—

दमयन्त्या ह्रदं पुण्यं तत्रैव मुनिसत्तमाः। नानाविधैः पक्षिगणैर्मृगैश्च परिसेवितम् ॥१॥
राजते मुनिशार्दूला यं पुरा भीमनन्दिनी। प्रातःस्नानव्रतरता निर्ममे ह्रदनायकम् ॥२॥
यान्ति श्रेयपदं[1] विप्रा दमयन्त्या विनिर्मितम्। निर्मितं भीमनन्दिन्या ह्रदं दृष्ट्वा महर्षयः ।३।
पूरयामासुः सकलं तोयैर्भद्रासमुद्भवैः। चक्रे बहुतिथं तत्र स्नानं भीमसुता द्विजाः ॥४॥
ये स्नानं तत्र कुर्वन्ति मानवा मुनिसत्तमाः। प्रयागस्नानजं पुण्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'दमयन्तीसर'-माहात्म्ये अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

४९

व्यास उवाच—

ततः सिद्धसरः[2] पुण्यं विद्यते मुनिसत्तमाः। सेवितं सिद्धकन्याभिर्वन्यैश्च विविधैर्मृगैः ॥१॥
चित्रकप्रमुखाः सिद्धाः यं विरच्य तपोधनाः। महेन्द्रवर्षितैस्तोयैः पूरयामासु सुव्रताः ॥२॥
निमज्य तत्र ते सिद्धास्तपश्चक्रुस्ततः परम्। सह विद्याधरगणैर्गन्धर्वैश्चापि संयताः ॥३॥
तत्र स्नात्वा महाभागाः सरयूस्नानजं फलम्। सम्प्राप्य मानवः सम्यङ् महेन्द्रभवनं व्रजेत् ।४।

॥ इति श्रीमानसखण्डे स्कन्दपुराणे 'सिद्धसर'माहात्म्ये एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

व्यासजी कहने लगे – हे मुनिवरों! उसके पास ही 'दमयन्ती-ताल भी है। वह अनेक पक्षियों और पशुओं से संकुलित है। हे मुनिश्रेष्ठों! दमयन्ती-ताल में स्नान कर ब्रह्मवर्ग स्वाभीष्ट पद को प्राप्त करते हैं। इस सरोवर को दमयन्ती ने प्रातःस्नान एवं पूजा-व्रत हेतु बनवाया था। वह वहीं सुशोभित है। महर्षियों ने उसे देखकर 'भद्रा' नदी के जल से पूरित करा दिया। हे ब्राह्मणों! उस सरोवर में दमयन्ती ने वहुत समय तक स्नान किया है। मुनिश्रेष्ठों! जो मनुष्य उस सरोवर में स्नान करते हैं, उन्हें प्रयाग-स्नान का फल प्राप्त होता है॥ १ – ५ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'दमयन्ती-सर'-माहात्म्य
नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! वहीं पर सिद्ध-कन्याओं तथा अनेक प्रकार के जंगली पशुओं से निषेवित 'सिद्धसरोवर' भी है। हे तपोधनों! चित्रक-प्रमुख सिद्धों ने उसका निर्माण

---

१. 'स्वेष्टपदम्'—इति 'क'।
२. 'सिद्धसरम्' इति 'क'।

व्यास उवाच—

ततः कश्चिन्महाभागास्तपस्वी शंकरं प्रभुम् । आराधयन् सरं पुण्यं चक्रे शिवपरायणः ॥१॥
सरं शिवगणाः सर्वे पूरयामासुर्विस्तरम् । तोयैः शिवसमुद्दिष्टैस्तस्य भक्त्या तपोधनाः ॥२॥
तपस्वी स महारण्ये सरं प्राप्य सुशोभनम् । शिवमाराधयामास स हर्षोत्फुल्ललोचनः ॥३॥
ततः कालेन महता तपस्वी शंसितव्रतः । दैवात् पञ्चत्वतां प्राप गतः शिवपुरं प्रति ॥४॥
तपस्विना कृतं पुण्यं ह्रदं ये यान्ति सुव्रताः । ते न पश्यन्ति मनुजा यमं लोकभयप्रदम् ॥५॥
तत्र ये शंकरं शान्तं निमज्य विधिपूर्वकम् । पूजयन्ति महाभागास्ते यान्ति शिवमन्दिरम् ॥६॥
सप्तह्रदानां माहात्म्यं मयैतत्समुदाहृतम् । यः शृणोति समग्रं वै स याति परमां गतिम् ॥७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सप्तह्रदमाहात्म्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

कर वर्षा के जल से उसे भरवाया है। तदनन्तर उन सिद्ध-गणों ने वहाँ स्नान कर तपस्या की है। इसमें विद्याधरों और गन्धर्वों ने भी उनका साथ दिया। हे भाग्यशालियों! वहां स्नान करने से सरयू-स्नान का पुण्यलाभ होता है। इसमें स्नान कर मानव अमरावती को प्राप्त करता है ॥१-४॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सिद्धसर'-माहात्म्य-नामक
उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी बोले—किसी भाग्यशाली शिवपरायण तपस्वी ने भगवान् शंकर की आराधना करते हुए एक 'सरोवर' का निर्माण किया। सब शिवगणों ने शिव के द्वारा अभिहित जल से उस सरोवर को भर डाला। तब हर्ष से प्रफुल्लित नेत्रों वाले उस तपस्वी ने सरोवर के निकट भगवान् शिव का पूजन किया। दैववश उसका देहान्त हो गया और वह शिवपुर को चला गया। जो लोग इस सरोवर के समीप जाते हैं, वे उस तपस्वी के पुण्य-प्रताप से भयदायक यमलोक का दर्शन नहीं करते। जो लोग विधिपूर्वक स्नान कर वहां शिवार्चन करते हैं, वे शिवलोक को जाते हैं। मुनिवरों! मैंने सातों ह्रदों का माहातम्य बतला दिया है। महर्षियों! इसका श्रवण करने वालों को सद्गति प्राप्त होती है ॥ १ – ७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सप्तह्रद'-माहात्म्य नामक
पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥

५१

व्यास उवाच—

ह्लदानां वामपार्श्वे वै महादेवी महेश्वरी। राजते मुनिशार्दूलाः सिद्धगन्धर्वसेविता ॥१॥
पूजिता सा महादेवी मानवानां शुभप्रदा[1]। प्रयच्छति न सन्देहो वरदा लोकपूजिता ॥२॥
तृषिह्लदोर्ध्वभागे[2] वै महेन्द्रपरमेश्वरी। राजते मुनिशार्दूला महारण्ये महेश्वरी ॥३॥
[3]तां सुपूज्य जनो याति महेन्द्रभवनं प्रति। ततो गर्गस्य शिखरे देवेशः शंकरो द्विजाः ॥४॥
राजते देवगन्धर्वैः सिद्धविद्याधरोरगैः। दैत्येयैर्दानवैश्चापि सह रुद्रैर्द्विजोत्तमाः ॥५॥
तत्र ये शंकरं देवं पूजयन्ति महेश्वरम्। महेन्द्रादीन् देवगणान् तथैव मुनिसत्तमाः ॥६॥
इह लोके शिवं प्राप्य यान्ति ते शिवमन्दिरम्। ततो गर्गगिरेः पुण्ये पूर्वभागे सरिद्वरा ॥७॥
सुपुण्या मेनका नाम बभूव मुनिसत्तमाः। काल्या सह सुसंगम्य कौशिकीसंगमे गता ॥८॥
कौशिकीमेनकयोश्च संगमे मुनिसत्तमाः। निमज्य मानवो याति स्वर्गलोके न संशयः ॥९॥
तत्र वै दक्षिणे भागे कौशिक्या मुनिसत्तमाः। शाकम्भरीति विख्याता पूज्यते पर्वतोपरि ॥१०॥
ततोर्ध्वभागे बहवः सरितः संगमे गताः। तीर्थैरनेकसाहस्त्रैः संगमैर्बहुभिस्तथा ॥११॥
शिवा शिवस्य लिङ्गैः सा वामदक्षिणगैरपि। पूरिता कौशिकी पुण्या विद्यते मुनिसत्तमाः॥१२॥
कौशिकीशाल्मलीमध्ये[4] सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः। तानि वर्षशतैर्वापि व्याख्यातुं नैव शक्यते १३॥
गर्गपर्वतमाहात्म्यं शेषस्य च तपोधनाः। तथा द्रोणस्य माहात्म्यं मया सम्यगुदाहृतम् ॥१४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गर्गपर्वतमाहात्म्यं नाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—ह्लदों के वामभाग में सिद्धों एवं गन्धर्वों से सेवित 'महादेवी' विराजमान हैं। उनका पूजन करने से मनुष्यों को अभिलषित वर मिलता है। 'तृषि' सरोवर के ऊपर की ओर घने जंगल में 'महेन्द्रपरमेश्वरी' विद्यमान हैं[5]। उनका पूजन करने से मनुष्य महेन्द्रभवन प्राप्त करते हैं। तदनन्तर 'गर्गाचल' के शिखर पर देव, दानव, सिद्ध, विद्याधर और रुद्रगणों से सेवित भगवान् 'शङ्कर' विराजमान हैं। वहाँ पर भगवान् शंकर एवं महेन्द्रादि देवों का जो पूजन करते हैं, वे इस लोक में सुख भोग कर अन्त में शिवलोक प्राप्त करते हैं। तदनन्तर 'गर्गाचल' के पूर्वभाग में 'मेनका' नदी है, जो 'काली' के साथ संगत होती हुई 'कौशिकी' के साथ मिल जाती है। 'कौशिकी' और 'मेनका' के संगम में स्नान करने से निःसन्देह स्वर्ग प्राप्त होता है। हे मुनिश्रेष्ठों ! कौशिकी के दक्षिण भाग में पर्वत के ऊपर 'शाकम्भरी' देवी पूजित है। उससे कुछ ऊपर अनेक नदियों का संगम है। वहाँ पर सहस्रों तीर्थ हैं। मुनिवरों ! 'कौशिकी' के बाईं तथा दाहिनी ओर तटों पर 'शिवलिङ्ग' तथा 'शक्ति' के प्रतीक भरे पड़े हैं। 'कौशिकी' और 'शालमली' ('सुआल' नदी) के मध्य अनेक पुण्यस्थल हैं। सैकड़ों वर्षों

---

१. 'शुभं फलम्' इति 'ङ'। अयं पाठः समीचीनः। ३. 'तां…प्रति' अयमर्धश्लोकः 'ग' पुस्तके नास्ति।
२. 'ऋषिह्लदोर्ध्वभागे' इति 'क'। ४. 'कौशिकीसालिमध्ये' इति 'क'। ५. नैनीताल का देवीमन्दिर।

५२

सूत उवाच—

श्रुत्वा तीर्थान्यनेकानि[1] मुनयो जातसंभ्रमाः। व्यासं धर्मार्थतत्त्वज्ञं पप्रच्छुर्नृपसत्तम ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

मुक्तिदं स्थिरचित्तानां वैष्णवानां विशेषतः। कथयस्व महाभाग क्षेत्रं पापप्रणाशनम् ॥२॥

व्यास उवाच—

मुक्तिः सर्वेषु तीर्थेषु मृतानां हिमपर्वते। विद्यते मुनिशार्दूलाः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥३॥
आब्रह्म भुवनाद् विप्राः मृतानां पुनरागमनम्[2]। वदन्ति मुनयः सर्वे वैकुण्ठं भवनं[3] विना ॥४॥
तत्र विष्णोः प्रसादेन योगमाराध्य सुव्रताः। गता ब्रह्मर्षयः केचित् केचिद् देवर्षयः शुभाः ।५।
अनाराध्य हरिं सम्यक् सांख्ययोगैस्तपोधनाः। न यान्ति भवनं विष्णोरनाराध्य रघूत्तमम् ।६।
भवद्भ्यः संप्रवक्ष्यामि तथापि मुनिसत्तमाः। ब्रूयुः स्निग्धमतीनां वै गुरवो गुह्यमप्युत ॥७॥
कौशिकी-शालिमध्ये वै पुण्यः काषायपर्वतः। तस्य पश्चिमभागे वै क्षेत्रं विष्णोः प्रतिष्ठितम् ॥
महेन्द्राद्यैर्देवगणैः सेवितं सुमनोहरम्। रामक्षेत्रेति विख्यातं विद्यते मुनिसत्तमाः ॥९॥

में भी उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऋषिश्रेष्ठों! इस प्रकार 'गर्गाचल' 'शेषाचल' और 'द्रोण' पर्वतों का माहात्म्य मैंने अच्छी तरह वर्णन कर दिया है॥ १ – १४॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गर्ग-पर्वत'-माहात्म्य-
नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त॥

सूतजी ने कहा—अनेक तीर्थों का माहात्म्य सुन कर ऋषियों के मन में अनेक शंकायें उत्पन्न हुईं। उनका निवारण करने के लिये ऋषियों ने व्यासजी से पुनः पूछा॥ १॥

ऋषियों ने कहा—हे महाभाग! स्थितप्रज्ञ वैष्णवों के मुक्तिप्रद क्षेत्र को आप कृपा कर बतलायें॥ २॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—हिमालय का प्रत्येक तीर्थ मुक्तिप्रद है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। ब्रह्मर्षियों! वैकुण्ठ को छोड़ अन्य सब लोकों से (पुण्य-क्षीण होने पर) लोगों को वापस आना पड़ता है। अनेक ब्रह्मर्षियों और देवर्षियों ने महाविष्णु की आराधना की है और वे वैकुण्ठ को गए हैं। विष्णु एवं राम की आराधना किये बिना केवल साङ्ख्य और योग के ज्ञानमात्र से विष्णुलोक प्राप्त नहीं होता। तथापि हे मुनिश्रेष्ठों! मैं ऐसे स्थलविशेष का निर्देश करता हूँ, क्यों कि गुरुजन स्नेही छात्रों को रहस्य की बातें भी बतला देते हैं। 'कौशिकी' और 'शाली, ('सुआल' नदी) नदियों के मध्य पवित्र 'काषाय-पर्वत' (स्थानीय नाम—'कलमटिया') है। इसका पश्चिम भाग[4] विष्णु का क्षेत्र है। वह महेन्द्रादि देवों से सेवित है। रामक्षेत्र

---

१. 'तीर्थान्यशेषाणि' इति 'ङ'। २. 'पुनरागमम्' इति 'क'। ३. 'वैकुण्ठभुवनाद्' इति 'घ'।
४. अल्मोड़ा नगर की वर्तमान 'कचहरी' का परिसर।

तत्र रामशिला नाम शिला देवर्षिसेविता । रामपादाङ्किता पुण्या दृश्यतेऽद्यापि शोभना ।१०।
यत्र रामो महाभागाश्चोपविश्य शिलातले । पितॄन् सन्तर्पयामास तथा देवर्षिमानवान् ॥११॥
क्षेत्रं तं प्राप्य वै विप्रास्त्रिरात्रं ये चरन्ति हि । ते यान्ति विष्णुभुवनं[1] पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।१२।

ऋषय ऊचुः—

कथं दाशरथी रामो गतः काषायपर्वतम् । कथं तत्र शिलापृष्ठे तर्पयामास वै पितॄन् ॥१३॥

व्यास उवाच—

रामो दाशरथिर्विप्रा अन्तमास्थाय[2] पौरुषम् । यमेन सह कालज्ञो गन्तुं वैकुण्ठमन्दिरम् ॥१४॥
ययौ हिमालयं विप्रा देवर्षिमनुजैः[3] सह । ततो मध्याह्नसमये हित्वा स वसतिद्वयम् ॥१५॥
काषायगिरिमध्ये वै तस्थौ रामो महामनाः । स मेने कारणं किञ्चिद् भूतले मुनिसत्तमाः ।१६।
तत्र पुण्यशिलापृष्ठे गत्वा वानरपुङ्गवम् । सस्मार स हनूमन्तं राक्षसान्तकरं द्विजाः ॥१७॥
स्मृतमात्रो महातेजा हनूमान् वानरर्षभः । आजगाम महातेजा दिशः शब्देन पूरयन्[4] ॥१८॥
ततोऽग्रे रामचन्द्रस्य[5] गत्वा वानरपुङ्गवः । किङ्करोमीति स्वं नाथमुवाच मुनिसत्तमाः ॥१९॥
ततस्तं वानरं विप्राः प्रोवाच रघुनायकः । गच्छ वानरशार्दूल तोयमानय सुव्रत ॥२०॥
प्रयागादत्र सम्पूर्णं कुम्भं कृत्वा सुशोभनम् । तेनाऽहं तर्पयिष्यामि देवर्षिपितृमानवान् ॥२१॥

के रूप में उसकी प्रसिद्धि है। वहाँ पर देवर्षियों से सेवित श्रीरामचन्द्र के चरणों से चिह्नित 'रामशिला' अब भी विद्यमान है। यहाँ बैठ कर भगवान् राम ने देव, ऋषि, सनकादि सप्त मनुष्यों तथा पितरों का तर्पण किया था। हे विप्रर्षियों ! इस क्षेत्रमें आकर जो त्रिरात्र प्रवास करते हैं, उन्हें जनन-मरण के चक्र से मुक्ति मिल जाती है और वे वैकुण्ठ-लोक जाने के अधिकारी हो जाते हैं ॥ ३ - १२ ॥

ऋषियों ने कहा—दशरथ के पुत्र राम 'काषाय-पर्वत' पर क्यों गए तथा किस प्रकार उन्होंने 'रामशिला' में पितरों का तर्पण किया ? ॥ १३ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—हे विप्रों ! मृत्यु के ज्ञाता दशरथसुत रामचन्द्र अन्तिम पुरुषार्थ विचार कर यमराज के साथ वैकुण्ठलोक को जाने के लिए देव, ऋषि तथा मानवों के साथ हिमालय की ओर चले। महामना ऋषियों ! मध्याह्न के समय वे दो पड़ावों को छोड़ कर 'काषाय-पर्वत' पर ठहर गए। मुनिवरों ! उनके वहाँ ठहरने का विशेष कारण था। मध्याह्न के समय प्रस्तर-शिला पर बैठ कर उन्होंने राक्षसों के संहारक वानरश्रेष्ठ हनुमान् का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही परम तेजस्वी वानरों में श्रेष्ठ हनुमान् दिशाओं को निनादित करते हुए वहाँ आ पहुँचे। तब हनुमान् रामचन्द्रजी के समक्ष खड़े होकर पूछने लगे कि मुझे क्या आज्ञा है ? हे ब्रह्मर्षियों ! तब रघुवंशियों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी ने हनुमान् से प्रयाग से एक घड़ा जल भर लाने के लिए कहा। यह भी बतलाया कि उस जल से मैं देव, ऋषि, मानव तथा पितरों का तर्पण करूँगा ॥ १४-२१ ॥

---

१. 'विष्णुभुवनम्' इति 'क'। २. 'मतिमास्याय' इति 'क'। ३. 'मानवैः सह' इति 'क'। ४. 'शब्देनापूरयन् दिशः' इति 'क'। ५. 'रामभद्रस्य' इति 'क'।

व्यास उवाच—

रामस्य वचनं मूर्ध्ना प्रतिगृह्य स वानरः। ततो मनोजवं कृत्वा ययौ स बलिनां वरः[१] ॥२२॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये गत्वा कुम्भं प्रपूर्य वै। पुनः स वानरो विप्रा यत्र रामो व्यराजत[२] ॥२३॥
तत्राजगाम गाङ्गेयैस्तोयैः पूर्णं घटं स्वयम्। रामे निवेदयामास जलपूर्णं घटं ततः[३] ॥२४॥
गाङ्गेयजलसम्पूर्णं मुद्रितं च हनूमता। ततस्तेन घटोदेन चोपविश्य शिलातले ॥२५॥
पितॄन् सन्तर्पयामास तथा देवर्षिमानवान्। यत्र यत्राञ्जलिं रामश्चिक्षेप मुनिसत्तमाः ॥२६॥
तत्र तत्र गिरिः पुण्यस्तोयेन परिपूरितः। स पूर्वे दैवतगणान् पश्चिमे मानवान् पुनः[४] ॥२७॥
दक्षिणे सर्वपितॄंश्च ऋषींश्चापि तथोत्तरे। तर्पयित्वा महाभागो हनूमन्तमुवाच ह ॥२८॥

राम उवाच—

हनूमन् सुचिरं जीव त्वया मे कारणेन हि। बहवः साधिताः कार्या मयोक्ता नात्र संशयः॥
साधितो देवकार्यार्थः पौलस्त्यः सगणो हतः[५]। सीता चाऽपि समानीता त्वत्प्रसादेन वानर॥
अद्याहं सत्यभुवने[६] सम्प्राप्य सरयूतटम्। गमिष्यामि महाभाग सह तैः[७] पुरवासिभिः ॥३१॥
व्रज सुग्रीवभवनं श्रेयस्ते सम्भविष्यति। एषा मे विपुला कीर्तिर्लोके गीता भविष्यति ॥३२॥
शिलायाश्चरणौ पुण्यौ द्रक्ष्यन्ति मनुजा भुवि। इत्युक्तो रघुनाथेन साश्रुगद्गदया गिरा ॥३३॥
प्रणम्य वानरो विप्रा ययौ सुग्रीवमन्दिरम्। रामोऽपि मुनिशार्दूलाः प्राप्य तैः सरयूतटम् ।३४।

व्यासजी फिर बोले—भगवान् राम की आज्ञा शिरोधार्य कर महाबली हनुमान् मनोवेग से रवाना हो गए। प्रयाग पहुँच कर गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती (संगम) जल से भरा हुआ घड़ा रामचन्द्रजी के समीप लाकर रख दिया। गङ्गाजल से पूर्ण हनुमान् द्वारा आनीत उस घड़े को लेकर रामचन्द्र शिला पर बैठ गए। तब उन्होंने देवर्षि, मानवों एवं पितरों का यथाविधि तर्पण किया। उन्हों ने जिन स्थानों पर जलाञ्जलि दी वहीं वहीं काषाय-पर्वत जल पूरित हो गया। उन्होंने पूर्वाभिमुख देवताओं, पश्चिमाभिमुख मानवों, दक्षिणाभिमुख पितरों तथा उत्तराभिमुख ऋषियों को जल से तृप्त कर हनुमान् से कहना आरम्भ किया ॥२२-२८॥

रामचन्द्र ने कहा—हनुमन्! तुम चिरजीवी हो जाओ। तुम्हारे ही माध्यम से मैंने बहुत से कार्य सिद्ध किये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। देवों की भलाई के लिए सपरिवार रावण को मारा और तुम्हारी कृपा से सीता भी वापस मिलीं। आज मैं सरयू-तट पर स्थित समग्र नगरवासियों के साथ सत्यलोक को प्रस्थान करूँगा। तुम सुग्रीव के घर जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। मेरी इस विपुल कीर्ति का संसार में प्रसार होगा। शिला में प्रतिष्ठित मेरे चरणों का लोग दर्शन करेंगे। इस प्रकार रामचन्द्रजी की वाणी सुन हनुमान् अश्रुपूर्ण हो गदगद वाणी

---

१. 'ततो मनोजवं प्राज्ञो जवं कृत्वा ययौ हि सः' इति 'क'।
२. 'रामोपविष्टवान्' इति 'क'।
३. 'तोयपूर्णघटं ततः' इति 'क'।
४. 'पश्चिमे मानवानपि' इति 'क'।
५. 'स गणोद्धतः' इति 'ङ'।
६. 'सत्यभवने' इति 'क'।
७. 'सहैतैः' इति 'क'।

संस्तुतः सिद्धगन्धर्वैर्ययौ वैकुण्ठमन्दिरम् । ततःप्रभृति सा पुण्या रामपादाङ्किता शिला ।।३५।।
दृश्यते भूतलेऽद्यापि पुण्ये काषायपर्वते । तत्र ये वैष्णवा धन्या रामपादाङ्कितां शिलाम् ।।३६।।
पूजयन्ति महाभागास्ते धन्या नात्र संशयः । स धन्यः पर्वतो ज्ञेयो यत्र रामशिला शुभा[1] ।।३७।।
जागर्ति मुनिशार्दूला मोक्षमार्गप्रदायिनी[2] । रामपादसमुद्भूता रम्भा नाम सरिद्वरा ।।३८।।
ययौ सा कौशिकीमध्ये[3] उत्तरद्वारवाहिनी । निमज्य मानवस्तत्र सत्यलोके महीयते ।।३९।।
तावद्देहे मनुष्याणां वसन्ति पापराशयः । यावद् रामशिलां पुण्यां न पश्यन्ति तपोधनाः ।।४०।।
तावद्वैकुण्ठभवनं सुदुर्लभतरं द्विजाः । यावद् रामशिलां पुण्यां न पश्यन्ति हि मानवाः ।।४१।।
ये स्नानं विधिवद् विप्राः पुण्ये सन्तर्पिते जले । कुर्वन्ति ते विष्णुगृहं प्राप्नुवन्ति न संशयः ।४२।
इत्येतत्कथितं विप्रा येन मुक्तिः प्रदृश्यते । क्षेत्रं वै रघुनाथस्य रावणान्तकरस्य च ।।४३।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'रामशिला'माहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

से उन्हें प्रणाम कर सुग्रीव के भवन को चले गए। मुनिवरों ! रामचन्द्र भी जनतासहित सरयू-पर जाकर सिद्ध-गन्धर्वादि से स्तुति किए जाते हुए वैकुण्ठ धाम चले गए। उस दिन से वह पवित्र शिला राम के चरणों से चिह्नित होकर अद्यावधि काषाय-पर्वत पर दिखलाई देती है। वहाँ पर जो वैष्णव पूजन करते हैं, वे धन्य हैं। वह पर्वत भी धन्य है, जहाँ यह मोक्षदायिनी 'रामशिला' अब भी जागरूक है। रामचन्द्रजी के चरणों से उद्भूत 'रम्भा'-नदी[4] उत्तर द्वार-वाहिनी होती हुई कौशिकी में संगत हो जाती है। उसमें स्नान कर मनुष्य सत्यलोक में सत्कृत होते हैं। हे तपोधनों ! जब तक लोग इस पवित्र रामशिला का दर्शन नहीं कर लेते हैं तब तक शरीर में पाप समाविष्ट ही रहते हैं। इसके साथ ही वैकुण्ठ-प्राप्ति भी कठिन रहती है। हे विप्रवरों ! रामचन्द्रजी के द्वारा उस पवित्र सन्तर्पित जल में जो विधिपूर्वक स्नान करते हैं, उन्हें निःसन्देह विष्णुलोक प्राप्त होता है। विप्रवरों ! मैंने रावण के हन्ता रामचन्द्र के मुक्तिप्रद पवित्र क्षेत्र का वर्णन आप लोगों के समक्ष कर दिया है ।। २९ – ४३ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'रामशिला'-माहात्म्य नामक
बावनवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'भुवि' इति 'ग'। २. मोक्षमार्गप्रदर्शिनी' इति 'क'।
३. 'कौशिकीतीरे' इति 'क'।
४. 'रम्फ-नौली' नाम से प्रसिद्ध । वर्तमान में अल्मोड़ा नगरस्थ जिलाधीश के न्यायालय-भवन की पुरानी सीढियां 'रम्फनौली' की ओर जाती हैं। पहले इस मार्ग से रानियां स्नान करने जाती थीं।

५३

ऋषय ऊचु:—

प्राधान्येन महाभाग क्षेत्राणां वर्णनं शुभम् । श्रोतुमिच्छामो विप्रर्षे तस्मिन् काषायपर्वते ॥१॥

व्यास उवाच—

सन्ति क्षेत्राण्यनेकानि पर्वतेऽस्मिन्नहो द्विजाः[1] । त्यक्त्वा नल्वान् दश दश ख्यायन्ते नात्र संशयः ।
रामक्षेत्रे महादेवी राजते मुनिसत्तमाः । तां सुपूज्य जनो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् ॥३॥
तत्र पर्वतमध्ये वै पुण्या यक्षनिषेविता । जागर्ति सा महामाया देवगन्धर्वपूजिता ॥४॥
तां सुपूज्य महाभागाः प्राप्यतेऽभीप्सितं फलम् । ततः पर्वतकुक्षौ वै पत्रेशो नाम शंकरः ॥५॥
राजते मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशनः । तं सुपूज्य महाभागाः प्राप्यते शिवमन्दिरम् ॥६॥
तत्र सिद्धाश्च नागाश्च तथैवाप्सरसां गणाः । विद्यन्ते मुनिशार्दूलाः कन्दरासु न संशयः ॥७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'काषायपर्वत'माहात्म्यं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मर्षे ! उस काषाय पर्वत के प्रमुख क्षेत्रों और तीर्थों का विवरण सुनने को हम लोग इच्छुक हैं । कृपया वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—विप्रवरों ! इस पुण्य क्षेत्र में प्रत्येक दस नल्व[2] पर अनेकानेक क्षेत्र हैं । इस रामक्षेत्र में 'महादेवी' विराजमान हैं । उनका पूजन कर मानव शिवलोक प्राप्त करता है । वहीं पर्वत के मध्य यक्षों से सेवित एवं देव-गन्धर्वों से पूजित महामाया[3] जागरूक हैं । उनका पूजन करने से अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती हैं । तदनन्तर पर्वत की कोख में 'पत्रेश' नामक महादेव विद्यमान हैं । उनके पूजन से शिवलोक प्राप्त होता हैं । वहीं गुफाओं में सिद्ध, नाग और अप्सरायें आदि निवास करते हैं ॥ २–७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'काषाय-पर्वत' नामक
तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'पर्वते मुनिसत्तमाः' इति 'क' ।

२. प्राचीन माप का सूचक शब्द । ४०० हाथ की लम्बाई के बराबर माना गया है ।

३. अल्मोड़ा नगर के मध्य 'गल्ली' मोहल्ले में विद्यमान यक्षिणी—'जाखन देवी' का प्रसिद्ध मन्दिर ।

५४

व्यास उवाच—

काषायस्य महाभागाः पूर्वभागे महागिरिः। स्वयम्भूर्नामधेयो वै स्वयम्भूरिव पूजितः ॥१॥
तस्मिन् स्वयम्भूसंज्ञो वै देवः सम्पूज्यते द्विजाः। तथैव च महादेवी स्थानेषु विविधेषु च ॥२॥
तमारुह्य जनो याति शिवलोकं सुदुष्करम् ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीमानसखण्डे स्कन्दपुराणे 'स्वयम्भूपर्वत' माहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

५५

ऋषय ऊचुः—

ततो ये पर्वताः पुण्या यानि क्षेत्राणि सन्ति वै। या नद्यो यानि तीर्थानि वदस्व मुनिसत्तम ।१।

व्यास उवाच—

ततष्टङ्कणनामा वै पर्वतः समुदाहृतः। सङ्गतो गोमतीं पुण्यां तथैव दारुकानने[1] ॥२॥
राजते मुनिशार्दूलाः सिद्धगन्धर्वसेवितः। तस्मिन् वै बहवो नद्यः सम्भूता मुनिसत्तमाः ॥३॥
गताः सुपुण्याः सरयूं देवर्षिगणसेविताम्। तस्य वै पश्चिमे भागे श्वेतकक्षे तपोधनाः ॥४॥
शाली नाम सरिच्छ्रेष्ठा सम्भूता मुनिसत्तमाः। देवगन्धर्वकन्याभिः सेविता मुनिसत्तमाः ॥५॥
निमज्य मानवस्तस्यां रूपवान् जायते द्विजाः। मूले धवलसरो नाम वर्ण्यते मुनिसत्तमाः ॥६॥

व्यासजी ने कहा—महानुभावों! 'काषाय' के पूर्वभाग में 'स्वयम्भू' नामक पर्वत है। वह 'स्वयम्भू' की तरह पूजित भी है। वहाँ 'स्वयम्भूनाथ' का पूजन होता है। इसके साथ ही वहाँ अनेक स्थानों में देवियों के स्थान भी हैं। उस पर्वत पर चढ़ने से शिवलोक प्राप्त होता है॥ १–३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'स्वयम्भू-पर्वत' माहात्म्य
नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—महर्षे! तदनन्तर जो भी क्षेत्र, पर्वत, नदियाँ एवं तीर्थ विद्यमान हैं, उनका भी वर्णन करें॥ १ ॥

व्यासजी ने कहा—तत्पश्चात् 'टङ्कण' नामक पर्वत है, जो 'गोमती' नदी तथा 'दारुकानन' से मिला हुआ है। मुनिवरों! सिद्ध-गन्धर्वादि से सेवित अनेक नदियाँ उस पर्वत से निकली हैं। उसके पश्चिम भाग में 'श्वेतकक्ष' पर्वत है। वहाँ से 'शाली'[2] नदी निकली है। उसमें स्नान कर मनुष्य रूपसम्पन्न होता है। उसके मूल में 'धवलसर'[3] है। वहीं पर वामभाग में देवीपूजन[4]

---

१. 'तस्याग्रे गोमती पुण्या तथैव दारुकावनम्' इति 'क'।

२. प्रचलित नाम 'स्वाल' गाड़। ३. प्रचलित नाम—'धौलछीना'। ४. विमलकोट—विमला देवी।

वामे देवीं प्रपूज्याशु मानवो याति शाश्वतम् । ततो गुणवती नाम शालीसंगमसंगता ॥७॥
ततः पलवतीसङ्गं मेनवत्या[1] अनन्तरम् । सम्पूज्य मेनकां तत्र प्राप्नोति परमां गतिम् ॥८॥
ततः शतवतीसङ्गं दिगवत्या अनन्तरम् । ततो दिगवती नाम देवी सम्पूज्यते द्विजाः ॥९॥
ततो वटवतीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा महाभागाः पूज्यो भवति मानवः ॥१०॥
ततस्तिलवतीसङ्गं चित्रवत्या अनन्तरम् । ततस्तु शालिवाहायाः सङ्गमस्ति तपोधनाः ॥११॥
शाला-शालिवहोर्मध्ये निमज्य मुनिसत्तमाः । शक्तीशं नाम देवेशं पूजयेत् सुसमाहितः ॥१२॥
ततस्तु त्रिवटीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः । त्रिवटीं तत्र वै देवीं सम्पूज्य स्नानमाचरेत् ॥१३॥
ततस्तु सुवटीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः । निमज्य विधिवत्तत्र महादेवं प्रपूजयेत् ॥१४॥
चिताभस्मपरीताङ्गं नरमालाविभूषणम् । महादेवं प्रपूज्याशु श्मशाननिलयं प्रभुम् ॥
मानवो मुनिशार्दूलाः शिवेन सह मोदते ॥ १५ ॥
ततः शाली महाभागाः कौशिकीसङ्गमं गता । मुनिपुण्याश्रमैर्युक्ता सेविता सिद्धनायकैः ॥१६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शालीमाहात्म्यं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

का बड़ा माहात्म्य है। फिर 'गुणवती' नदी[2] 'शाली' में सङ्गमित हो जाती है। तदनन्तर 'पलवती' नदी का संगम[3] है। तत्पश्चात् 'मेनवती' के साथ-साथ 'पेलवती[4] का संगम भी है। वहाँ मेनका का पूजन कर सद्गति प्राप्त होती है। फिर क्रमशः 'शतवती'[5] और दिग-वती'[6] नदियों का संगम है। वहाँ पर 'दिगवती' देवी[7] का पूजन किया जाता हैं। फिर 'वटवती'-संगम है। उसमें स्नान करने से मनुष्य पूज्य होता है। तब 'तिलवती'[8] और 'चित्र-वती'[9] के संगम के पश्चात् 'शालिवहा'[10] का संगम है। 'शाली'[11] और 'शालिवहा' के मध्य में स्नान कर 'शक्तीश' महादेव का मनोयोग-पूर्वक पूजन करें। फिर 'त्रिवटी'-संगम है। वहाँ पर 'त्रिवटी' देवी का पूजन और स्नान करे। हे तपोधनों ! तब 'तुवटी' संगम में स्नान कर चिताभस्म और मुण्डमाला-धारी शिव[12] का पूजन करना चाहिए। उससे शिवलोक प्राप्त होता है। तदनन्तर 'शाली' नदी 'कौशिकी' नदी के साथ संगमन करती है।[13] उसके तट पर मुनियों के आश्रम हैं॥ २-१७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शाली'-माहात्म्य नामक
पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'मेनकायाः' इति 'क'।

२. प्रचलित नाम-'ग्वारचार'=ग्वालगाड़, जो 'त्रिनेत्र' महादेव के बाद 'मिलती' है। ३. 'मेरगाड़'-'पिठौनी' में मिलती है। ४. 'पल्यूँ' ग्राम से निकलने वाली गाड़। संगम मुण्डेश्वर मन्दिर में होता है। ५. 'शल्लं गाड़'। ६. 'दिगोली' ग्रामस्य गाड़। ७. 'नारायणकालिका'='नरेयणद्यो'। ८. तिलाड़ी ग्राम से निकलती है। ९. 'चितई' ग्राम से आती है। १०. पेटशाल। ११. कपडखान के समीप 'शल्ल' ग्रामस्य। १२. विश्वनाथ नामक स्थान। अल्मोड़ा नगर का प्रसिद्ध श्मशानस्थल है। १३. घुराड़ी नामक ग्राम।

५६

व्यास उवाच—

वामे तस्य महाभागाः पुण्यो वृन्दगिरिः स्मृतः। यत्र वृन्दा महादेवी पूज्यते गणनायकैः ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

योगमार्गप्रदं तीर्थं योगिभिश्च निषेवितम्। सिद्धिदं सांख्ययोगानां सांख्यैश्च प्रतिपूजितम् ॥२॥

व्यास उवाच—

शृणुध्वं मुनिशार्दूला योगमार्गप्रदर्शकम्। वासुकिप्रमुखैर्नागैः सेवितं क्षेत्रनायकम् ॥३॥
नन्दिस्कन्दिगणेशाद्यैस्तथा षोडशमातृभिः। अघकोटयः क्षयं यान्ति जीवहत्यादिकोटयः ॥४॥
यत्र संदर्शनाद् विप्रा अगम्यागम्यकोटयः। क्षेत्रं तं मुनिशार्दूलाः कथयामि न संशयः ॥५॥
वृन्दादारुकयोर्मध्ये क्षेत्रं कपिलसंज्ञकम्। देवर्षिगणगन्धर्वास्तथैव सिद्धनायकाः ॥६॥
योगिनो योगधर्मज्ञास्तथा साङ्ख्यरता द्विजाः। यं न त्यजन्ति मुनयः कपिलाद्यास्तपोधनाः ॥७॥
तमेव योगमार्गस्य दर्शकं ज्ञायतां द्विजाः। राजते यत्र देवेशः कपिलेशो महेश्वरः ॥८॥
मूकमार्गरतानां च योगमार्गप्रदर्शकः। तमाराध्य मनुष्याणां जायते सिद्धिरुत्तमा ॥९॥
योगिनां योगसिद्धिश्च तत्रैव मुनिसत्तमाः। इदमेव महत्प्रश्नं कृतं नागैस्तपोधनाः ॥१०॥
वासुकिप्रमुखैः शान्तैः शिवभक्तिप्रकाशिभिः[1] ॥ ११ ॥

व्यासजी ने कहा—कौशिकी के वामभाग में पवित्र 'वृन्द'-पर्वत है। वहाँ शिवजी के प्रमुख गणों द्वारा 'वृन्दा'-देवी[2] का पूजन किया जाता है। (इसके आगे कुछ ग्रन्थ खण्डित है) ॥ १ ॥

ऋषियों ने कहा—महर्षे ! अब आप हम लोगों को सांख्यमत-सम्मत एवं योगियों से मान्य योगमार्ग को सिखाने वाले तीर्थ को बतलायें ॥ २ ॥

व्यासजी ने बतलाना आरम्भ किया—मुनिवरों ! आप लोग मेरी बात सुनें। मैं अब आप लोगों को ऐसे तीर्थ का माहात्म्य बतला रहा हूँ, जो योगमार्ग का प्रदर्शक एवं वासुकि-प्रभृति नागों से सेवित उत्तम क्षेत्र के रूप में सुप्रसिद्ध है। इसके साथ ही वह क्षेत्र नन्दी, स्कन्दी, गणेश तथा सोलह मातृकाओं से सेवित होते हुए प्राणिवधसदृश एवम् अन्य पापों का विनाशक है। 'वृन्द' तथा 'दारुक' पर्वतों के मध्य 'कपिल-क्षेत्र' है। इसके दर्शनमात्र से गम्यागम्यादि पाप विनष्ट हो जाते हैं। देवगण, ऋषिगण, गन्धर्वगण, प्रमुख सिद्धवर्ग, योगक्रियाओं में लीन योगिवर्ग तथा सांख्य के मनीषी एवं कपिलादि ऋषि भी उस पुण्य स्थल को छोड़ते नहीं हैं। हे द्विजवरों ! आप लोग, जहाँ कपिलेश्वर विराजमान हैं, उसे योगमार्ग का प्रदर्शक समझ। वे कपिलेश्वर ही मौनव्रतधारी साधकों को योग की शिक्षा देते हैं। उनकी आराधना से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। योगियों को योगसिद्धि भी यहीं प्राप्त होती है। तपोधनों ! यही प्रश्न शान्त एवं शिवभक्ति के प्रकाशक (शैव) नागों ने भी किया था ॥ ३–११ ॥

---

१. 'शिवभक्तिप्रकाशकैः इति 'क'।

२. प्रचलित नाम 'बानणी देवी'।

ऋषय ऊचुः—

वासुकिप्रमुखैर्नागैः कीदृक् प्रश्नं कृतं द्विज । शिवभक्तिः सुदुर्ज्ञेया कथं ज्ञाता महात्मभिः ॥१२॥

व्यास उवाच—

वासुकिप्रमुखाः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः । कपिलस्याश्रमं पुण्यं ययुर्नागास्तपोधनाः ॥१३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'कपिलाश्रम'माहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

५७

नागा ऊचुः—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते सौख्यदर्शन[1] । नमस्ते ऋषिमुख्याय सदा ध्यानरताय च ॥१॥

अद्य दावाग्निदग्धास्त्वां वयं हि शरणं गताः । प्रष्टुमिच्छामहे[2] सर्वजनानां पापनाशनम् ॥२॥

केनोपायेन सर्वेषां[3] जनानां पापविच्युतिः । कमाराध्य च दृष्ट्वा च जायते पापविच्युतिः ॥३॥

साङ्ख्ययोगमनाराध्य महापातकिनो जनाः । येन मुक्तिं प्रपश्यन्ति तत्त्वं कथय सुव्रत ॥४॥

व्यास उवाच—

इति नागैर्महाभागः प्रार्थितः कपिलो मुनिः । ध्यात्वा स सुचिरं कालं तेषु क्षेत्रं[4] प्रदर्शयत्[5] ॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—विप्रवर ! वासुकि आदि नागों ने किस प्रकार प्रश्न किया था ? दुर्बोध्य शिवभक्ति (शैव सिद्धान्त) कैसे परिज्ञात हुई ? ॥ १२-१३ ॥

व्यासजी ने समाधान किया—तपोधनों ! शिवभक्ति-परायण वासुकि-प्रमुख नाग महर्षि कपिल के आश्रम में गए ॥ १३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कपिलाश्रम-माहात्म्य' नामक
छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥

नागों ने कहा—कमल की तरह नेत्रवाले, सौम्यदर्शन, ध्यानमग्न एवं प्रमुख ऋषि कपिल को हम लोगों का प्रणाम स्वीकार हो । दावानल से सन्तप्त हम लोग आप की शरण में आकर जनों के पापों का विनाशक उपाय पूछना चाहते हैं । हे ब्रह्मर्षे ! लोगों के पाप किस उपाय से दूर होंगे ? तथा यह भी बतलायें कि किसकी आराधना करने से पाप दूर होंगे ? हे सुव्रत ! सांख्य-योग के न जानने वाले पापियों को जिस उपाय से मुक्ति सम्भव हो, कृपया उसे आप बतलायें ॥ १-४ ॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार नागों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर महर्षि कपिल चिरकाल-पर्यन्त ध्यानमग्न रहे । तत्पश्चात् उन्होंने उस क्षेत्र को दिखाया ॥ ५ ॥

---

१. 'सौम्यदर्शन' इति 'क' । २. 'प्रष्टुमिच्छामि सर्वेषाम्' इति 'क' ।
३. 'विप्रर्षे' इति 'क' । ४. 'केशम्' इति 'क' ।
५. 'तान् क्षेत्रमदर्शयत्' इति परिष्कृतः पाठः ।

कपिल उवाच—

नानाद्रुमलताकीर्णो नानापक्षिनिषेवितः। पर्वतैर्बहुभिः क्रान्तो भूतले दारुकाननः ॥६॥
तस्योत्तरप्रदेशे वै पुण्यो वृन्दगिरिः स्मृतः। तत्रोद्देशे महापुण्या कपिला सरितां वरा ॥७॥
मया हृता सा पुण्यार्थे[1] पुण्यतोयवहा सरित्। तत्र शेषवती नाम ऋषिपुण्याश्रमैर्युता ॥८॥
सम्भूता दारुकप्रान्ते कपिला-संगमे गता। तयोर्मध्ये महाकान्तं गन्धर्वविनिषेवितम् ॥९॥
आश्रमः सर्वधर्माणां पथभूतो[2] महोरगाः। ममैव देवराजेन सेवितो नात्र[3] संशयः ॥१०॥
मया तत्र महादेवः कपिलेशो महोरगाः। सेवितः साङ्ख्ययोगेन योगमार्गप्रदः प्रभुः ॥११॥
तमाराध्य च लोकानां साङ्ख्ययोगं विना हितम्। जायते मुक्तिरव्यग्रा शाश्वती नात्र संशयः ॥
तत्र साङ्ख्यपथं सर्वे संप्राप्य शंसितव्रताः। गताः शिवपुरं पुण्यं विद्याधरनिषेवितम् ॥१३॥
विना योगपथैः पुण्यैर्विना तीर्थैस्तपोऽध्वरैः। नान्यत्र विद्यते मुक्तिः कपिलेशस्थलं विना ।१४।

नागा ऊचुः—

कस्मात् प्रवेशः क्षेत्रेऽस्मिन् विद्यते मुनिसत्तमाः। कानि तत्र सुपुण्यानि सन्ति तीर्थान्यनेकशः।

कपिल उवाच—

कपिलाशेषयोर्मध्ये ब्रह्मतीर्थेति विश्रुतः। प्रवेशस्तत्र विज्ञेयो योगमार्गनिषेविभिः ॥१६॥
निमज्य ब्रह्मतीर्थे वै कपिलातोयमध्यगम्। तीर्थं मे विधिवन्नागाः पूजयेच्छङ्करप्रियम् ॥१७॥
यवैः काशस्य कुसुमैस्तथा गन्धाक्षतैरपि। समर्च्य विधिवन्नागा धूपदीपादिकैरपि ॥

कपिल मुनि बोले—नाना प्रकार के वृक्ष, लता तथा पक्षियो से संकुलित एवम् अनेक पर्वत-शृङ्गों से घिरा हुआ इस भूतल पर 'दारुकानन' है। उसके उत्तर में पवित्र 'वृन्द' पर्वत है। उसी स्थल पर 'कपिला' नदी है। ईस पुण्यसलिला को मैंने ही पवित्र-कार्य-सम्पादन हेतु प्रवाहित किया है। वहाँ दारुकानन से निकल कर ऋषियों के पवित्र आश्रमों से घिरी हुई 'शेषवती' नदी 'कपिला' के साथ मिलती है। नागश्रेष्ठों! उनके मध्य में परम रमणीय एवं गन्धर्वों से सेवित मेरा आश्रम है। वह देवराज से भी सेवित है। मैंने वहाँ 'कपिलेश' महादेव को प्रतिष्ठापित किया है। वे भगवान् शङ्कर 'साङ्ख्ययोग' के परम ज्ञानी 'योग'-मार्ग के प्रदर्शक है। उनकी आराधना से 'सांख्य-योग' के ज्ञान के बिना भी शाश्वत मुक्ति सम्भव है। वहाँ पर व्रत रखने वालों ने सांख्य-सिद्धान्त के तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर विद्याधरों से सेवित शिवलोक प्राप्त किया है। अन्य स्थानों में बिना योगसाधना के मुक्तिलाभ नहीं होता। किन्तु 'कपिलेश' का स्थान इसका अपवाद है ॥ ६–१४ ॥

तब नागों ने फिर पूछना आरम्भ किया—हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रदेश का प्रवेश-मार्ग कौन सा है? तथा इसमें विद्यमान पुण्य तीर्थस्थल कौन से हैं? आप बतलायें ॥ १५ ॥

कपिल मुनि ने उत्तर दिया—आप सुनें। 'कपिला' और 'शेषवती' के मध्य में 'ब्रह्मतीर्थ' है। 'योगमार्ग' के सेवियों के लिये वही इस क्षेत्र का प्रवेशद्वार है। वहाँ आकर 'ब्रह्मतीर्थ' में स्नान कर भगवान् 'कपिलेश' का पूजन करना चाहिए। पूजा में काश-पुष्प, गन्ध एवम्

---

१. 'पुण्यार्थम्' इति 'घ'। २. 'पथिभूतम्' इति 'क'। ३. 'सेवितोऽस्ति' इति 'क'।

नैवेद्येन सुतोष्याशु पठेत् स्तोत्रं समाहितः ।। १८ ।।
नमः शिवाय शशिशेखराय हराय भस्माङ्गविभूषणाय ।
कपालमालासुविभूषिताय षडर्धनेत्राय वृषध्वजाय[1] ।। १९ ।।
नमो नमस्ते कपिलेश्वरात नागेन्द्रहाराय हरिस्तुताय ।
त्रिशूलखट्वाङ्गपिनाकधारिणे संसारसारप्रलयान्तकारिणे ।। २० ।।
इति स्तुत्वा महादेवमनुज्ञाप्य हरप्रियाम् । कपिलां तत्र सम्पूज्य साङ्ख्ययोगमवाप्यते ।।२१।।
वामे कालीं प्रपूज्याशु शङ्खवत्याः शुभे जले । निमज्य विधिन्नागा योगमार्गमवाप्यते ।।२२।।
दक्षिणे क्षेत्रपालञ्च वाणीशं नाम शंकरम् । सम्पूज्य विधिवन्नागा योगमार्गमवाप्यते ।।२३।।

व्यास उवाच—

इति कपिलमुनेर्वचनमवाप्य नागा हृदयकलुषनाशं प्राप्य देवं भजन्ते ।
ययुर्मुनिगणसिद्धैः सेव्यमानं महेशं, सकलकलुषहीनाः प्रापु मुक्ति हरस्य ।। २४ ।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'कपिलेश्वर'माहात्म्यं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

अक्षतादि चढ़ा कर धूप, दीप नैवेद्य आदि से भगवान् को सन्तुष्ट कर इस स्तोत्र का पाठ करें। 'चन्द्रशेखर, विभूतिभूषण, त्रिनेत्र, वृषमध्वज एवं कपालमालाधारी नामों से विख्यात शिवजी को हम प्रणाम करते हैं। 'कपिलेश्वर' नाम से विख्यात, नागेन्द्रहारधारी, विष्णु से संस्तुत त्रिशूल-खट्वाङ्ग एवं पिनाक-(धनुष)-धारी तथा प्रलयङ्कर शंकर को हमारे कोटिशः प्रणाम हैं"। इस प्रकार स्तुति के अनन्तर शंकर-प्रिया 'कपिला' देवी का पूजन करने से 'सांख्य-योग' का ज्ञान मिलता है। इसके वामभागस्थ 'शंखवती' के जल में स्नान कर 'काली' का पूजन कर योग-ज्ञान प्राप्त होता है। तत्पश्चात् दक्षिण-भाग में 'क्षेत्रपाल' और 'वाणीश' का पूजन कर 'योगसिद्धि' होती है ।। १६-२३ ।।

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार कपिल-मुनि[2] की वाणी को सुन कर नागों का अज्ञान दूर हो गया। तथा ऋषियों से सेवित शंकर की कृपा से नागों को मुक्ति मिली ।। २४ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कपिलेश्वर'-माहात्म्य नामक
सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'सदाशिवाय'—इति 'क'।

२. (क) महर्षि कपिल के सम्बन्ध में अनेक आख्यान मिलते हैं। 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' में इन्हें 'ब्रह्मा' का मानस-पुत्र बतलाया है। श्रीमद्भगवद्गीता' में इन्हें भगवान् की विभूतियों के अन्तर्गत एक सिद्धर्षि कहा गया है—"सिद्धानां कपिलो मुनिः"। इसके अतिरिक्त राजा सगर के ६०,००० पुत्रों के भस्म होने सम्बन्धी कथा तो जगत्प्रसिद्ध है (भागवत ९-८।७०-२९)। महाभारत में कपिल का धर्मतत्त्वविवरण-सम्बन्धी एक उपाख्यान विद्यमान है। 'शिवसंहिता' में 'योगिश्रेष्ठ' का वर्णन है। 'बौद्ध-ग्रन्थों' में विहित वर्णन के अनुसार इक्ष्वाकुवंशी राजा विराधक द्वारा निष्कासित चार राजकुमारों का अपनी पाँच बहनों को लेकर 'कपिल' के आश्रम में जाने का आख्यान है। वही 'कपिल' मुनि बाद को गौतम हुए थे और इन्हीं के नामानुसार बुद्धदेव की जन्मभूमि का नाम 'कपिलवस्तु' पड़ा।

५८

व्यास उवाच—

दारुकाननसंलग्नो नाम्ना शाल्मलिपर्वतः। पश्चिमे मुनिशार्दूला राजते नात्र संशयः ।।१।।
तत्र पुण्याः सुसरितो बहवः सन्ति वै द्विजाः। तपस्विनो महाभागाः सत्यधर्मपरायणाः ।।२।।
स्वाध्यायनिरताः शान्तास्तत्र वै निवसन्ति हि। कालीयश्चक्रसेनश्च वडवानर्यमास्तथा ।।३।।
निवसन्ति महाभागाः पुण्ये शाल्मलिपर्वते। लोहताम्राकरैर्विप्रास्तथा रौप्याकरैर्युतः ।।४।।
राजते पर्वतश्रेष्ठः सरित्सरसमन्वितः। तुष्टिप्रभृतयो देव्यश्चाणिमाद्या विभूतयः[1] ।।५।।
तत्र संनिहिताः सन्ति पर्वते मुनिसत्तमाः। तत्र पर्वतमध्यस्थां भवानीं शङ्करप्रियाम् ।।६।।
महेन्द्रप्रमुखैर्देवैः सेवितां भुवनेश्वरीम्। सन्ध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्तथैव च ।।७।।
यां निषेव्य स्थिताः सर्वास्तथा षोडश मातरः। तां सुपूज्य महाभागा जनो याति परां गतिम्।

व्यासजी ने कहा—मुनिश्रेष्ठों! पश्चिम में दारुकानन से मिला हुआ पवित्र शाल्मलि[2] नाम का पर्वत है। विप्रवरों! उस क्षेत्र में अनेक पवित्र नदियाँ हैं। इसके साथ ही सत्यव्रती ऋषियों का वहाँ निवास भी है। उस 'शाल्मलि' पर्वत में कालीय, चक्रसेन, वडवान् तथा अर्यमा सदृश स्वाध्याय-रत एवं शान्त तपस्वी रहते हैं। वहाँ लोहे, ताँबे तथा चाँदी की खानें भी हैं। वह पर्वत नदियों और जलाशयों से भी सुशोभित है। मुनिश्रेष्ठों! उस पर्वत में

(ख) इन आख्यानों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में इन्हें एक सिद्धर्षि के रूप में बतलाया गया है। ये 'कर्दम' प्रजापति के औरस और देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनकी ९ बहनें थीं तथा यह एक सिद्ध थे, जिन्होंने अपनी माता को ब्रह्मज्ञान दिया था (भागवत १-३-१०)। इन्हें 'साङ्ख्यशास्त्र' का आदि प्रवर्तक कहा जाता है। 'सांख्य' के मत से 'दैहिक दैविक', तथा 'भौतिक'—इन त्रिविध दुःखों की निवृत्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। प्रकृत्यादि २५ तत्त्वों के ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। इस दर्शन में 'ईश्वर' का नामोल्लेख नहीं है। 'योग'-दर्शन में 'सेश्वर''पुरुष' विशेष की कल्पना द्वारा उसके ज्ञान की विशेषता एवं 'योगक्रिया' का महत्त्व बतलाया गया है। भागवत के अनुसार यह बाद में 'बिन्दुसर' चले गए और वहाँ इन्होंने अपनी माता को सांख्यतत्त्व, अष्टांगयोग, भक्तियोग, काम्यकर्म तथा ज्ञानयोग बतलाया था (भाग० २-२४-३३)।

(ग) मत्स्यपुराण के अनुसार 'तृतीय तल' के निवासी का एक 'काद्रवेय'—नाग का नाम भी 'कपिल' था, जो २६ प्रमुख नागों के अन्तर्गत गिनाया गया है—"सहस्रशिरसां कद्रूः सहस्रं चापि सुव्रत। प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिन्दम ॥ (६-८)" तथा "शङ्खरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा। कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृताः" ॥ (६-४१)।

'मानसखण्ड' के इस अध्याय में 'नागों' के साथ इनका संवाद कदाचित् इसी सन्दर्भ में दिखाया गया हो।

१. 'देव्यश्चाणिमाद्याश्च भूतयः' इति 'क'।

२. 'सालम'नाम से ज्ञात क्षेत्र।

तस्योद्देशे च याः पुण्याः सरितः सन्ति वै द्विजाः । ताः पुण्याः सन्ति वै सर्वाः सर्वपापप्रणाशकाः । तत्रैव शाल्मली नाम पुण्यतोयवहा सरित् । निमज्य शाल्मलीं देवीं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ।१०। परां गतिमवाप्नोति नरो वै नात्र संशयः । शाल्मलीसरिदुद्देशे कङ्कुेशं नाम शङ्करम् ॥ सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शाल्मलीपर्वतमाहात्म्यं नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

'तुष्टि'[1] प्रभृति देवियाँ एवम् 'अणिमा'[2] आदि विभूतियाँ भी समाविष्ट हैं। वहीं पर्वत के मध्य में महेन्द्रादि देवों से सेवित भगवान् शंकर की प्रिया 'भुवनेश्वरी'[3] भवानी की सेवा में रत 'सन्ध्या'[4], 'रात्रि'[5], 'प्रभा'[6], निद्रा'[7], 'कालरात्रि' प्रभृति देवियाँ तथा 'सोलह-मातृकायें' भी

---

१. दक्ष की एक पुत्री तथा धर्म की पत्नी और मुद की माता। द्रष्टव्य भागवत—४-१-४९— "श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः। बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः" ॥

२. अष्ट सिद्धियों में सर्वप्रथम। इसी की सहायता से योगी लोग अति सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं और अगोचर हो जाते हैं। द्रष्टव्य ब्रह्माण्डपुराण ४-३५-१०४—"चिन्तामणिगृहस्थानां परिचारक-यात्तयः। अणिमादिकशक्तीनाम् अर्घ्ययन्ति मदोद्धताः" ॥

३. दश महाविद्याओं में से एक महाविद्या (=देवी)। अन्य महाविद्याओं के नाम ये हैं—काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी और कमलात्मिका।

४. ब्रह्मा की एक पुत्री सन्ध्याकाल के रूप में विद्यमान। शिवपुराणानुसार (रुद्रसंहिता, २ खण्ड, अध्याय १-२) इनका विवाह शिव से हुआ। एक बार ब्रह्मा ने विचलित होकर इनका पीछा किया। सन्ध्या ने हिरनी का रूप धारण कर लिया। तब शिव ने हिरनरूप धारण किये ब्रह्मा का एक तीर से सिर काट दिया। ब्रह्मा ने शिव की स्तुति की। शिव का वह बाण अबतक 'आर्द्रा' नक्षत्र के रूप में विद्यमान है। तथा हिरन का सिर 'मृगशिरा' नक्षत्र के रूप में विद्यमान है। 'सन्ध्या' बाद को तपोबल से मेधातिथि की पुत्री 'अरुन्धती' हुई, जो वसिष्ठ को ब्याही गई।"

५. समय-विशेष की प्रतिपादिका देवी 'रात्रि' दो प्रकार की है—(१) जीवरात्रि तथा (२) ईश्वररात्रि। 'जीवरात्रि' वह है, जिसमें प्रतिदिन जगत् के साधारण जीवों का व्यवहार लुप्त होता है। 'ईश्वररात्रि' वह है, जिसमें ईश्वर के जगद्रूप व्यवहार का लोप होता है। उसी को 'कालरात्रि' या 'महाप्रलय-रात्रि' कहते हैं। उस समय केवल ब्रह्म और उनकी मायाशक्ति अर्थात् अव्यक्त प्रकृति शेष रहती है। इसकी अधिष्ठात्री देवी "भुवनेश्वरी" है—"ब्रह्ममायात्मिका रात्रिः परमेशलयात्मिका। तदधिष्ठातृदेवी तु भुवनेशी प्रकीर्तिता"—देवीपुराण। दुर्गा-सप्तसती के 'रात्रिसूक्त' में इन्हीं का स्तवन किया गया है।

६. सती देवी की एक मूर्ति जो सूर्यबिम्ब में 'प्रभा' नाम से प्रतिष्ठित है।

७. 'दुर्गा-सप्तशती' के अध्याय १ श्लोक ७०-७१ में 'निद्रा' देवी को योगनिद्रा का प्रतीक माना गया है। अतः ब्रह्मा ने विष्णु को जगाने के लिए उस योग-निद्रा की स्तुति 'विश्व की अधीश्वरी, जगत् को धारण करने वाली, संसार का पालन और संहार करने वाली तथा तेजःस्वरूप विष्णु की अनुपम शक्ति के रूप में की है—"विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्। निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥

५९

व्यास उवाच—

दारुकाननसंज्ञो वै ततः पर्वतनायकः। सिद्धविद्याधरगणैः संघशः परिसेवितः ॥ १ ॥
मरीच्यत्र्यादिप्रमुखैर्महर्षिगणसेवितः[1] । महेन्द्रप्रमुखैर्देवैर्बाणाद्यैर्दितिजैरपि ॥ २ ॥
वासुकिप्रमुखैर्नागैः यक्षैश्चापि सुसेवितः[2]। ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यत्र सन्निहिताः सदा ॥ ३ ॥
राजते पर्वतश्रेष्ठो दारुकाननसंज्ञकः। पदे पदे महादेवो महादेव्या समन्वितः ॥
पूज्यते देवगन्धर्वैर्नानास्थानेषु वै द्विजाः ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे 'मानसखण्डे' दारुकाननमाहात्म्ये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥

प्रतिष्ठित हैं। महाभागों ! उन महादेवियों का पूजन कर मनुष्यों को सद्गति प्राप्त होती है। इस पर्वत पर सभी नदियाँ पवित्र एवं पापविनाशिनी हैं। वहीं 'शाल्मली'[3] नाम की पवित्र नदी है। मुनिवरों ! उसमें स्नान कर 'शाल्मली' देवी का पूजन करने से निःसन्देह मनुष्य की सद्गति होती है। 'शाल्मली' के ऊपरी भाग में 'कङ्केश' नामक शिव हैं। उनकी पूजा करने पर दुर्लभ शिवलोक प्राप्त होता है ॥ १-११ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शाल्मलि' पर्वत-माहात्म्य नामक अठावनवां अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा –तदनन्तर 'दारुकानन' नाम का एक पर्वत है। वह सिद्धों, विद्याधर-गणों, मरीचि, अत्रि आदि महर्षियों, महेन्द्रादि देवों, बाणादि दैत्यों तथा वासुकी आदि नागों एवं यक्षों से सेवित है। ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि तीनों देवताओं के साथ वह पर्वत सुशोभित है। इसके साथ ही वहाँ अनेक स्थानों में पद पद पर देवीसहित भगवान् शंकर देवों और गन्धर्वों से पूजित हैं ॥ १ – ४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'दारुकानन'-माहात्म्य नामक उनसठवां अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'मरीचिवत्सप्रमुखैः महर्षिभिर्निषेवितः' इति मुद्रिते पाठान्तरम्।

२. 'यक्षैश्च सुनिषेवितः' इति 'क'।

३. वर्तमान नाम 'सुवाल'।

ऋषय ऊचुः—

कथितं भवता ब्रह्मन्माहात्म्यं बहु विस्तरम् । वयं तच्छ्रोतुमिच्छामः प्राप्यते येन शंकरः ॥१॥
यमाराध्य महादेवं क्षणेनैव स्थलं मुने[1] । प्राप्नुवन्ति जनाः सर्वे महापातकिनोऽपि हि ॥२॥

व्यास उवाच—

इदमेव पुरा पृष्टो रामपुत्रेण धीमता । वसिष्ठो मुनिशार्दूलाः कुशेन करुणात्मना ॥३॥

कुश उवाच—

पातकानां विनाशाय भूतले मुनिसत्तम । कः क्षेत्रः प्रवरः ख्यातः को देवो भवतां मते[2] ॥४॥
कमाराध्य मनुष्याणां जायते मुक्तिरुत्तमा । दुष्प्राप्या मानवैर्धन्यैः सत्यमार्गप्रवर्तिभिः ॥५॥
कस्मिन्यमपदं हित्वा क्षणेन मुनिसत्तम । यान्ति मुक्तिं सुदुर्ज्ञेयां कालपाशं विना जनाः ॥६॥

व्यास उवाच—

इति रामस्य पुत्रेण वसिष्ठो मुनिसत्तमः । पृष्टः स कथयामास यथापूर्वं तपोधनाः ॥७॥

वसिष्ठ उवाच—

एवं विज्ञापनार्थाय मुनयो जातसंभ्रमाः[3] । ज्ञातुं मुक्तिप्रदं क्षेत्रं वैकुण्ठभवनं ययुः ॥८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे दारुकाननमाहात्म्ये षष्टितमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने पूछा—ब्रह्मन् ! आपने उसका माहात्म्य तो विस्तारपूर्वक बतलाया । अब हम ऐसा उपाय जानना चाहते हैं, जिससे भगवान् शंकर प्राप्त हो सकें । मुनिवर ! हम ऐसा उपासनास्थल भी जानना चाहते हैं, जहाँ क्षण भर आराधना करने पर महापातकी मनुष्य भी उस दिव्य स्थान को प्राप्त कर सकें ॥ १-२ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—इसी बात को विनम्र भाव से पहले रामपुत्र कुश ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ से भी पूछा था ॥ ३ ॥

कुश ने जिज्ञासा की थी—मुनिश्रेष्ठ ! पातकों के विनाश के लिए आपके मत में पृथ्वी पर कौन सा क्षेत्र है ? तथा किस देवता की आराधना से मनुष्य को उत्तम मुक्ति मिलती है ? सत्य-मार्ग के अन्वेष्टा पुण्यात्माओं के लिए दुष्प्राप्य क्या है ? कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे यमलोक गए हुए लोग कालपाश से रहित हो दुर्ज्ञेय मुक्ति प्राप्त कर सकें ? ॥ ४-६ ॥

व्यासजी बोले—हे तपोधनों ! महर्षि वसिष्ठ ने कुश को भी वैसा ही उत्तर दिया था, जैसा मैंने ऊपर बताया है ॥ ७ ॥

वसिष्ठ जी ने कुश से कहा—इस प्रकार उस क्षेत्र को जानने के इच्छुक मुनि उतावले होते हुए विष्णु के पास वैकुण्ठ-भवन गए ॥ ८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'दारुकानन'-माहात्म्य नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'दिवःस्थलम्' इति 'क' । २. 'मुने' इति 'ग' । ३. 'मुनयो ज्ञानसत्तमाः' इति 'क' ।

वसिष्ठ उवाच—

ऋषयो वेदमार्गज्ञाः सत्यमार्गप्रदर्शकाः । सत्यलोकं ययुश्शान्ताः सत्यध्यानपरायणाः ॥१॥
गत्वा विष्णुं ततःशान्ताः पुरुषसूक्तेन तुष्टुवुः । सङ्घशो वेदधर्मज्ञाः सदा वेदपथे रताः ॥२॥

ऋषय ऊचुः—

नमस्ते पद्मनाभाय शङ्खचक्रधराय च । श्रीवत्सवक्षसे तुभ्यं वनमालाधराय च ॥३॥
नमः सहस्रशीषार्य सहस्रभुजधारिणे । सहस्राक्षाय देवाय वैकुण्ठाय नमो नमः ॥४॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । यस्त्वं संगीयते[1] लोके तस्मै देवाय ते नमः ॥५॥

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये नमोब्जनाभाय श्रियान्विताय ।
ब्रह्मादिभिर्योगिभिरप्यगम्यो यो गीयते[2] त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

पापैर्वित्रास्यमानानां[3] ऋषीणां त्वं गतिर्भव । मोक्षमार्गविहीनानां विषयेष्वनुयायिनाम् ॥७॥
केनोपायेन देवेश जनानां पापविच्युतिः । विना सांख्यैर्विनायोगैर्विनाज्ञानतपोध्वरैः ॥८॥
कमाराध्य च गत्वा वा किं वा पुण्यतमं भुवि । कथयस्व महाविष्णो पुण्यक्षेत्रमनुत्तम् ॥९॥
यस्य दर्शनमात्रेण नराणां भूतले प्रभो । जायते मुक्तिरव्यग्रा शाश्वती चातिदुर्लभा ॥१०॥
प्राणानां त्यागमात्रेण तत्क्षेत्रं कथय प्रभो । यानि तीर्थानि सर्वाणि भूतले सन्ति वै प्रभो ॥११॥
तेभ्यो ह्यनुत्तमं तीर्थं कथयस्व प्रसादतः । महापातकिनां चैव गोविप्रगुरुघातिनाम् ॥१२॥

महर्षि वसिष्ठ ने कहा —सत्यमार्ग-प्रदर्शक, वेदमार्गज्ञाता, शान्त एवं सत्यध्यानपरायण ऋषियों ने सत्यलोक को प्रस्थान किया। वेदमार्गज्ञ तथा वेदमार्गानुसारी उन शान्त ऋषियों ने भगवान् विष्णु के पास जाकर उनकी सामुदायिक स्तुति करनी आरम्भ की ॥ १-२ ॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मा को नाभिकमल से उत्पन्न करने वाले, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, श्रीवत्स चिह्न से वक्षःस्थल विभूषित एवं वनमाली विष्णु भगवान् को हमारे नमस्कार हैं। हे विष्णो ! आप हजार सिर वाले, हजार भुजा वाले, हजार नेत्र वाले वैकुण्ठवासी हैं। आप को हम लोग नमन करते हैं। आप वेदों में सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष एवं सहस्रपादयुक्त पुरुष के रूप में विख्यात हैं। आप हमारे प्रणाम स्वीकार करें। हे अनन्त, हे कमलनाभ, हे लक्ष्मीपते ! आप ब्रह्मादि देवों तथा योगियों के लिए भी अगम्य हैं। ऐसे सर्वव्यापी भगवान् की शरण में हम लोग आए हैं। पाप से त्रास पहुँचाये गए ऋषियों के लिए तथा मोक्षमार्गरहित विषयों का अनुसरण करने वाले अज्ञानीजनों के लिए आप ही एक मात्र गति हैं। देवेश ! साङ्ख्य-योग, के बिना जाने तथा दान-यज्ञों के किए बिना कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे मनुष्य पापों से छुटकारा पा सके ? अथवा किसकी आराधना करने से तथा किस पुण्यस्थल या किस पुण्यक्षेत्र में जाकर पापों का नाश हो सकता है ? हे महाविष्णो ! यह आप हमें बतलायें। हे प्रभो ! जिन क्षेत्रों के दर्शनमात्र एवं प्राणत्याग करने से मनुष्यों को इस भूतल में अव्यग्र व शाश्वत

---

१. 'संज्ञायते' इति 'ग'। २. 'ज्ञायते' इति 'क'।
३. पापैर्विशस्यमानानाम्' इति 'क'।

दर्शनाज्जायते मुक्तिरगम्यागमकारिणाम् । तत्क्षेत्रं वद वै विष्णोः प्रसादान्नात्र संशयः ॥१३॥
वेदमार्गविहीनानां परदाराभिमर्षिणाम्[1] । गुरुद्रोहरतानां च तथा मातृद्रुहामपि ॥१४॥
दर्शनाज्जायते मुक्तिर्यस्मिन्क्षेत्रे सुदुर्लभे । सर्वतीर्थोत्तमं तीर्थं राजानं ब्रूहि केशव ॥१५॥

वसिष्ठ उवाच—

तच्छ्रुत्वा वचनं रम्यं मुनीनां भावितात्मनाम् । करसम्पुटमध्ये वै कृत्वा भूमण्डलं शुभम् ।१६।
सरिद्भिः सागरैश्चैव पर्वतैर्बहुभिर्युतम् । क्षेत्राधिराजराजं वै दर्शयामास तांस्तदा ॥१७॥
हिमाद्रिकुक्षिसंलग्नं सुदिव्यं दारुकाननम् । तत्र कपर्दिसंभूतां गङ्गां लोकमलापहाम् ॥१८॥
तथैवालकनन्दां च निजपादसमुद्भवाम् । तयोर्मध्ये महालिङ्गं ज्योतिर्मयमघान्तकम् ॥१९॥
तेषु संदर्शयामास रुद्रकन्यानुषेवितम् । दहन्तं त्रिषु लोकेषु कान्त्या कालायतेक्षणम् ॥
मुक्तिमण्डलमध्यस्थं दिव्यं जागीश्वराह्वयम् ॥ २० ॥

मुक्ति मिले, ऐसे क्षेत्रों के विषय में महाराज ! आप हमको बतलायें । इसके अतिरिक्त आप गो-विप्र-गुरु-घातकादि सदृश महापापियों के लिए भी मुक्तिप्रद तीर्थस्थानों का वर्णन करें ॥ ३-१५ ॥

महर्षि वसिष्ठ बोले—महात्मा ऋषियों की सुन्दर वाणी को सुनकर विष्णु ने सारे भूमण्डल को कर-सम्पुट में रखते हुए नदियों, सात समुद्रों तथा अनेक पर्वतोंसमेत उस प्रमुख क्षेत्र के दर्शन कराये । वह पुण्य क्षेत्र हिमालय की कुक्षि से संलग्न है । उसका नाम 'दारुकानन' है । साथ ही वह दिव्य भी है । वहीं भगवान् शङ्कर की जटा से निकलती हुई 'गङ्गा' तथा अपने चरणों से निकलती 'अलकनन्दा' को भी दिखाया । उन दोनों के मध्य पापनाशक 'ज्योतिर्मय महालिङ्ग'[2] का भी दर्शन कराया । वही ज्योतिर्मय लिङ्ग रुद्रकन्याओं से सेवित एवं तीनों लोकों में कालाग्नि के समान प्रज्वलित नेत्रों वाले, मुक्तिमण्डलमध्यवर्ती 'यागीश्वर' नाम से विख्यात हैं ॥ १६-२० ॥

---

१. 'परदारापमर्शिनाम्' इति 'क' ।

२. भारत के प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों के नाम तथा उनकी स्थिति—'केदारो' हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां 'भीमशङ्करः' । वाराणस्यां च 'विश्वेशः' 'त्र्यम्बको' गौतमीतटे । सौराष्ट्रे 'सोमनाथ'श्च श्रीशैले 'मल्लिकार्जुनः' । उज्जयिन्यां 'महाकालः' ओङ्कारे 'चाऽमरेश्वरः' । 'वैद्यनाथ'श्चिताभूमौ 'नागेशो' दारुकानने । सेतुबन्धे च 'रामेशो' 'घुश्मेश'श्च 'शिवालये' ॥ —शिवपुराण शतरुद्रसंहिता अ० ४२।२-४।

इसके अनन्तर 'नागेश' के स्वरूप का वर्णन भी बतलाया है—

'नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तितः । आविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानां दण्डदः सदा ॥
हत्वा दारुकनामानं राक्षसं धर्मघातकम् । स्वभक्तं वैश्यनाथं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम् ॥
लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपधृक् । सन्तस्थौ साम्बिकः शम्भुर्बहुलीलाकरः परः ॥
तद् दृष्ट्वा शिवलिङ्गं तु मुने नागेश्वराभिधम् । विनश्यन्ति द्रुतं चाऽर्य्य महापातकराशयः ॥
—शिव० शत० ४२।४२-४५ ।

वसिष्ठ उवाच—

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे प्रणेमुस्सुसमाहिताः ॥ २१ ॥

ऋषय ऊचुः—

संसारभीतिसंलग्नांस्त्राहि पापाज्जनार्दन। न ते विदुः सुरगणा न चान्तं ते महर्षयः ॥२२॥
सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वतीर्थोत्तमं तीर्थं समस्ताघप्रणाशनम् ॥
तं ब्रूहि देवदेवेश भक्तानां सिद्धिदायक ॥ २३ ॥

वसिष्ठ उवाच

एतच्छ्रुत्वा स भगवान्भक्तानां सिद्धिदायकः। स्फुरद्वदनबिम्बेन वचनं समुवाच ह ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच—

हिमालयतटे रम्ये संभूता सरयू नदी। तस्या दक्षिणपार्श्वे वै सुपुण्यं दारुकाननम् ॥२५॥
सिद्धगन्धर्वमनुजैर्देवर्षिभिर्निषेवितम्। राजते गिरिराजेव स दारुशिखरो महान् ॥२६॥
दर्शनादश्वमेधस्य फलं सम्यक् प्रयच्छति। दर्शनाद्दशगुणं प्रोक्तं शतमारोहणात् स्मृतम् ॥२७॥
दारुटङ्कणयोर्मध्ये[1] तत्रैव शिवदा शुभा। कर्पादिनिस्सृता पुण्या जटागङ्गा सुशोभना ॥२८॥

पुनः वसिष्ठ जी ने कहा—उसको देखकर ऋषियों ने बड़ी तत्परता के साथ प्रणाम किया ॥ १९ ॥

ऋषिगण बोले—हे जनार्दन ! पापियों एवं सांसारिक विभीषिकाओं से पीडित लोगों की आप रक्षा करें। आपके आदि, मध्य व अन्त को कोई नहीं जानता। हे भक्तों के सिद्धिदायक ! अब आप कृपया भक्तों को सिद्धि प्रदान करने वाले तथा सभी पापों का नाश करने वाले सर्वोत्तम तीर्थ का वर्णन करें ॥ २०–२३ ॥

(यह सुनकर) पुनः वसिष्ठ जी बोले—भक्तों के सिद्धि-दाता भगवान् ने ऋषियों की प्रार्थना को सुन प्रसन्न-वदन हो इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ २४ ॥

भगवान् विष्णु बोले—हिमालय के सुरम्य तट पर सरयू प्रादुर्भूत हुई है। उसके दक्षिण-पार्श्व में पवित्र 'दारुकानन' (देवदारुवन) है। वहाँ सिद्ध, गन्धर्व, मनुज, देवर्षि तथा महर्षियों का वास है। वह 'दारुकानन' हिमालय की तरह सुशोभित है। उसके दर्शन करने से अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलता है। उसके स्पर्श से दस गुना तथा आरोहण से सौगुना फल प्राप्त होता है। 'दारु'पर्वत और 'टङ्कण'[2] पर्वत के बीच में वहाँ मङ्गलमयी एवं शुभदा 'जटागङ्गा'[3] भगवान् शंकर की जटाओं से निकलती हुई सुशोभित है। वह जगह-जगह पर तपस्वियों के आश्रमों से परिवेष्टित है[4]। इसके अतिरिक्त वह 'जटागङ्गा' पापरूपी

---

१. 'दारुकण्टकयोर्मध्ये' इति 'क'।

२. टंगणू' नामक स्थान। ३. 'जटीश्वर' नामक स्थान पर 'सरयू' में मिलती है।

४. वही स्थान लिङ्गोत्पत्ति के रूप में शिवपुराण' में भी वर्णित है—'दारुनाम वनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः। शिवभक्ताः सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः ॥ ते कदाचिद्वने याताः समिदाहरणाय च। सर्वे

तपोन्विताश्रमैः पुण्यैः स्थानेषु विविधेषु च। सेविता सा सरिच्छ्रेष्ठा पापदावाग्निनाशिनी ॥
पिबतां मज्जतां चैव शतजन्माघनाशिनी। दारुकाननमध्ये वै संप्राप्ता सरितां वरा ॥३०॥
सा पुण्यालकनंदाख्या मम पादविनिःसृता। तयोः सङ्गममध्ये वै देवो जागीश्वराह्वयः ॥३१॥
जागर्त्ति सर्वपापानां नाशाय परमेश्वरः। सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं तमेव मुनिसत्तमाः ॥३२॥
ज्ञायतां नात्र संदेहः सत्यमेतन्मयोदितम्। जटायाः सरितोर्मध्ये देवो जागीश्वराह्वयः ॥३३॥
जागर्त्ति यत्र वै विप्रास्तत्र मुक्तिपथं स्मृतम्। स्मरणाद्वाजिमेधस्य फलं देवः प्रयच्छति ॥३४॥
दर्शनाद्राजसूयस्य तथा प्रक्रमणाद्विभो। पूजनान्मुक्तिदो ज्ञेयो गुरुद्रोहरतामपि ॥३५॥
अश्वमेधसहस्राणां शतप्रक्रमणेन हि। ददाति देवदेवेशः फलं वै मुनिसत्तमाः ॥३६॥
[1]यानि तत्र च तीर्थानि यानि लिङ्गानि तत्र वै। तेषामपि प्रकाशोऽत्र क्रियते मुनिसत्तमाः ॥३७॥
टङ्कणस्य महाभागाः कुक्षौ वै दारुकाननम्। [2]तत्र जागीश्वरो देवो पूज्यते देवनायकैः ॥३८॥

दावाग्नि को शान्त करने वाली है। उसका जलपान व उसमें स्नान करने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। 'दारुकानन' के मध्यस्थ जहाँ भगवान् 'योगीश्वर' जागरूक हैं, वहीं मेरे चरणों से निकली हुई 'अलकनन्दा' नदी भी है। इन दोनों नदियों के संगम में ही 'यागीश्वर' भगवान् विद्यमान हैं। वे समग्र पापों को विनष्ट कर देते हैं। मुनियों ने उसी को सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र कहा है। मैं आप लोगों से निःसन्देह यह सत्य कह रहा हूँ। जागेश्वर का स्थान ही मुक्तिपथ है। उसके स्मरणमात्र से अश्वमेध-यज्ञ का, दर्शन एवं परिक्रमा करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। पूजन करने से मुक्ति मिलती है। सौ प्रदक्षिणा करने से भगवान् शङ्कर सहस्रों अश्वमेध यज्ञ का फल प्रदान करते हैं। अब मैं वहाँ पर विद्यमान पुण्य-तीर्थों एवं महत्त्वपूर्ण शिवलिङ्गों के विषय में बतला रहा हूँ। महाभागो! 'टङ्कण' के ही बगल में 'दारुकानन' है। वहीं जागेश्वर का पूजन श्रेष्ठ देवताओं से किया जाता है ॥ २५-३८ ॥

द्विजर्षभाः शैवाः शिवध्यानपरायणाः ॥ एतस्मिन्नन्तरे साक्षात् शंकरो नीललोहितः। विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥ तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः। विह्वला विस्मिताश्चान्या समाजग्मुस्तथा पुनः। एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्याः समागमन्। विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः। यदा च नोक्तवान् किञ्चित्सोऽवधूतो दिगम्बरः। ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः। त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्गविलोपि यत्। ततस्त्वदीयं तल्लिङ्गं पततां पृथिवीतले। इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिङ्गं च पतितं क्षणात्। अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः' ॥ —शिव० शतरुद्र० अध्याय १२/६-१८।

१. अयं श्लोकः 'क' पुस्तके नास्ति।

२. आदर्श पुस्तक में 'व्यास उवाच' से लेकर ये श्लोक दिये गए हैं—'शृण्वन्तु मुनिशार्दूला ह्रदानां नाम संज्ञितम्। यैर्यैर्बहुभिः पुण्याः कृता मानसरोपमाः। प्रथमं तृषिसंज्ञो वै ततो भीमह्रदः स्मृतः ॥ ततः सनत्कुमारेण कल्पितो ह्रदनायकः। नवक्रोशाद् सुविस्तीर्णो ब्रह्मर्षिगणसेवितः ॥ ततो नलसरः पुण्यो वमयन्त्यास्ततः परम्। ततो रामह्रदः ख्यातो ह्यतः सीतासरः स्मृतः ॥ तेषां मध्ये महाभागाः पुण्यो वै दारुकाननः।' वस्तुतः ये अपेक्षित नहीं हैं। ये श्लोक पहले आ चुके हैं।

सर्वेषामेव लिङ्गानां सर्वोत्पत्तिकारकः[1]। तत्र मुक्तिर्मनुष्याणां प्रार्थनेनैव वै द्विजाः ॥३९॥
जायते नात्र संदेहः सत्यमेतन्मयोदितम्। सर्वेषामेव लोकानां यावज्जागीश्वरो हरः ॥४०॥
न ध्यातः पूजितो वापि न स्मृतो मुनिसत्तमाः। तावद्धि निरये वासो विद्यते नात्र संशयः ।४१।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं तपोधनाः[२]। आसीत्सुवटको नाम ब्राह्मणो वेदपारगः ॥४२॥
सुमन्तुगोत्रे चोत्पन्नो धर्मात्मा ज्ञानलोलुपः। वृद्धे वयसि तस्याऽऽसीत् पुत्रो नाम्ना सुजामलिः।
स पित्रा शास्यमानोपि [३]चक्रे वेदस्य दूषणम्। दूषयन्ब्राह्मणान्सर्वांस्तथैव पितरं द्विजाः ॥४४॥
कालेन स महापापः चाक्षक्रीडारतोऽभवत्। विजित्य स धनं चाक्षैर्ददौ वेश्यासु वै द्विजाः ।४५।
तं कदाचिन्महाभागाः क्रीडन्तं वेश्यया सह। माता तं वर्जयामास सुतस्य हितकारिणी ॥४६॥
वर्जयन्तीं तदा पापो मातरं संजघान ह। कुठारेण सुतीक्ष्णेन कालपाशावृतो द्विजाः ॥४७॥
स हत्वा मातरं पापो वेश्यया सह भार्यया। रेमे बहुतिथं कालं गृह्णन्नक्षैर्धनं बहु ॥४८॥
स कदाचिच्च तां वेश्यां संत्यज्य मिथिलां ययौ। *स तत्र राजपुत्रेण चक्रेऽक्षक्रीडनं सह ॥४९॥
शतं शतं परिमितं पणं कृत्वा तपोधनाः*। ततः स राजपुत्रेण विजितो ब्राह्मणाधमः ॥५०॥
चक्रे चौर्यं दुराचारः सदा वाराङ्गनारतः। स कदाचिद्धि मुष्णन्वै धनं नागरिकैर्जनैः ॥५१॥

---

[४]इस बीच व्यास जी ने स्मरण कराया—मुनिश्रेष्ठों! आप ध्यान से सुनें। 'देवदारु' वन कुछ सरोवरों से घिरा हुआ है। वे अत्यधिक विस्तृत हैं—अतः मानसरोवर के समान पवित्र माने गए हैं। वे 'तृषि-सरोवर', 'भीमह्लद', नौ कोणों (कोस) तक फैला हुआ 'सनत्कुमार-ह्लद', 'नलह्लद', दमयन्ती-ह्लद', 'रामह्लद' तथा 'सीताह्लद' हैं। इनके मध्य में स्थित 'दारुकानन' में भगवान् 'यागेश्वर' (नागेश) विराजमान हैं। सब शिवलिङ्गों के 'कारणस्वरूप' वे ही हैं। उनके दर्शनमात्र से मुक्ति मिलती है। उनका माहात्म्य इतना अधिक है कि लोगों के नरकवास की अवधि उनके दर्शन न करने तक ही है। इस सम्बन्ध में यह आख्यान प्रसिद्ध है—"ज्ञानलोलुप, धर्मात्मा एवं वेदों का पारङ्गत सुमन्तु गोत्र में उत्पन्न 'सुवट' नाम का एक ब्राह्मण था। वृद्धावस्था में उसे एक पुत्र हुआ। उसका नाम 'सुजामलि' था। पिता से अनुशासित होते हुए भी वह वेदनिन्दक हो गया। पितरों और ब्राह्मणों का विद्वेषी होकर वह जुआ खेलने लगा। ऋषिवरों! द्यूतक्रीड़ा में धन जीत कर वह वेश्याओं का पोषक बन गया। महर्षियों! एक दिन उसकी माता ने वेश्याओं के साथ क्रीडा करते हुए देख उसे मना किया। तब कालपाश में पड़े हुए उसने अपनी माता को तीखी कुल्हाड़ी से मार डाला। तत्पश्चात्, हे द्विजवरों! वह लम्बी अवधि तक किसी वेश्या के साथ रमण करता रहा। बाद में वह उसे भी छोड़ कर मिथिला चला गया। उसने वहाँ सौ-सौ की बाजी लगाकर राजपुत्र के साथ द्यूतक्रीडा की। राजपुत्र ने उस नीच ब्राह्मण को जुए में हरा दिया। तब वेश्यागामी उस दुराचारी ने चोरी

---

१. सर्वोत्पत्तिकरः स्मृतः' इति 'क'।
२. 'पुरातनम्' इति 'क'।
३. 'चकार वेददूषणम्' इति 'क'।
*....*यह श्लोक आदर्श-पुस्तक में नहीं है, किन्तु अपेक्षित है। अन्य कई पुस्तकों में भी है।
४. इन श्लोकों का मूल भाग पृ० २४८ मूलस्थ टिप्पणी में देखें।

निबद्धो लोहपाशेन बभूव मुनिसत्तमाः । तदा स्वां मातरं पापः सस्मार हितकारिणीम् ॥५२॥
प्ररुदन्मुनिशार्दूलाः स्वकर्म गर्हयन्भृशम् । ततस्ते नागराः सर्वे पप्रच्छुस्तं द्विजाधमम् ॥५३॥

नागरा ऊचुः—

किं त्वया रुद्यते पाप ! वृथा ते रोदनेन किम् । लोहपाशैर्निबद्धोऽसि मा शुचस्व क्षमां कुरु ।५४।

ब्राह्मण उवाच—

न चाहं पीडया लोकाः शोचामि किन्तु कारणम् । शृण्वन्तु तद्धि वक्ष्यामि यावच्च सुसमाहिताः[1]।
मया पापेन वै लोकाः स्वमाता हितकारिणी । निहता गृहमध्यस्था कुठारेण दुरात्मना ॥५६॥
फलमस्यैव[2] पापस्य साम्प्रतं समुपागतम् । तेन मे रोदनं लोका जायते नात्र संशयः ॥५७॥

श्रीभवानुवाच—

इति तस्योदितं श्रुत्वा नागरा मुनिसत्तमाः । मोचयामासुस्तं पापं करुणार्द्रेण चेतसा ॥५८॥
स तैर्मुक्तो महाभागाः मिथिलावासिनं द्विजम् । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं तपस्यन्तं सुचेतसा[3] ॥५९॥
तं दृष्ट्वा पातकं घोरं संस्मरन्स कुलाधमः । निहतां मातरं वापि तथा वेश्यारतादिकम् ।६०।
तं संपूज्य महाभागं स द्विजो मुनिसत्तमाः । स्वपापं कथयामास यथापूर्वं प्रनिन्दितम् ॥६१॥

ब्राह्मण उवाच—

भगवन्ये महापापाः पापिष्ठा लोभमोहिताः । ये मातृपितृहन्तारो गुरुद्रोहरताश्च ये ॥६२॥

करना आरम्भ किया । एक दिन चोरी करते हुए नागरिकों ने उसे जंजीरों से जकड़ दिया । तब उस मूर्ख को अपनी माता का स्मरण हो आया । वह स्वयं रोते हुए अपने चौरकर्म की निन्दा करने लगा । फिर नागरिक उस नीच ब्राह्मण से उसके रोने का कारण पूछने लगे ॥५१-५३॥

नागरिकों ने कहा—पापिन् ! तू अब क्यों रो रहा है ? तेरे वृथा रोने से क्या लाभ है ? तुझे तो जंजीरों से जकड़ ही रखा है । वृथा शोक मत कर, दुःख सहन कर ॥ ५४ ॥

तब वह ब्राह्मण बोला—मैं पीड़ा के कारण नहीं रो रहा हूँ । मेरे रोने का कारण दूसरा ही है । मैं उसे बतलाता हूँ । आप लोग सुनें । मुझ पापी ने घर में रहती हुई अपनी माता की कुठार से हत्या की है । उसी पाप का फल यह उपस्थित हुआ है । हे सज्जनों ! इसी हेतु मैं रो रहा हूँ ॥ ५५-५७ ॥

(तब) भगवान् ने कहा—मुनिवरों ! जब नागरिकों ने उसकी ये बातें सुनीं तो दयार्द्रचित्त हो उन्होंने उसे वेद-वेदाङ्ग के तत्त्वज्ञ एवं स्वस्थचित्त से तपश्चर्या में रत मिथिलावासी ब्राह्मण जानते हुए बन्धन से छुड़ाया । अपने को बन्धन-मुक्त देख कर वह कुलघ्न—मातृवध तथा वेश्यागमन आदि पूर्व पातकों का स्मरण कर भगवान् का पूजन कर अपने घृणित पापों को बतलाने लगा ॥ ५८ - ६१ ॥

ब्राह्मण बोला - भगवन् ! लोभ से मोहित महापापी, माता-पिता का घातक तथा गुरु-

---

१. 'शृण्वन्तु तत्प्रवक्ष्यामि यथावत्सुसमाहिताः' इति 'क' । 'शृण्वन्तु तत्समाहिताः' इति मुद्रिते माहात्म्ये । २. 'तस्यैव' इति 'क' । ३. 'सुचेतसम्' इति 'क' ।

तेषां मुक्तिः कथं विप्र ! जायते निश्चला भुवि । कथं पापात्मनां विप्र दुष्टानां पापकारिणाम् ।
मोहमार्गरतानां च जायते पापविच्युतिः । कमाराध्य च देवेशं कस्मिन्क्षेत्रे तपोधनाः ॥६४॥
पातकानां विनाशो हि केन संजायते इह । मया स्वमाता निहता दुष्कर्मफलभोगिना ॥६५॥
तथाऽक्षैः क्रीडितं विप्र तथा वेश्यासु संगमः । कृतान्येतादृशान्येव पातकानि बहून्यपि ॥६६॥
निष्कृतिः कुत्र वै तेषां कथं मुक्तिं लभेमहि[1] ॥ ६७ ॥

ऋषिरुवाच—

दुष्कर्म भवता विप्र ! कृतं मातृनिपातनम् । नैतद्युगशतेनापि नाशमायाति दुष्कृतम् ॥६८॥
यज्जन्मकोटिभोज्यं ते दुष्कृतं तदिहैव हि । विनश्यति न सन्देहस्तत्ते सम्यक् वदाम्यहम् ॥६९॥
हिमालयतटे लग्नं सुपुण्यं दारुकाननम् । तत्र जागीश्वरो देवो जागर्ति द्विजसत्तम ॥७०॥
तीर्थैरनेकसाहस्रैर्वेष्टितो ज्योतिमध्यगः । जागर्त्ति योऽघनाशाय पापिष्ठानां दुरात्मनाम्[2] ।७१।
गोविप्रगुरुबालघ्नाः पितृमातृद्रुहादयः । यत्र संशोध्य चात्मानं व्रजन्ति शिवमन्दिरम् ॥७२॥
तावद्वसन्ति मनुजा रौरवे घोरदर्शने । पितृमातृद्रुहाश्चापि गोविप्रगुरुघातिनः ॥७३॥
यावज्जागीश्वरं देवं तपस्यन्ति समाहिताः । अष्टौ युगसहस्राणि ह्युषित्वा काशिमण्डले ।७४।
पूज्य विश्वेश्वरं देवं यत्फलं समवाप्यते । मासेनैकेन तद्विप्र पूज्य जागीश्वरं हरम् ॥७५॥
स्नात्वा कपर्दिगङ्गायां जायते दारुकानने । सेतुबन्धात्समागत्य पुण्ये केदारमण्डले[3] ॥७६॥

द्रोही व्यक्तियों को ध्रुव मुक्ति इस पृथ्वी पर कैसे होती है ? हे ऋषिवर ! दुष्ट एवं पाप-कर्म-रत पापात्माओं तथा अज्ञान-मार्ग के अनुगामी जनों को पापों से कैसे छुटकारा मिलता है ? हे तपोधन ! किस क्षेत्र में किस देवेश की आराधना करने से पापों का विनाश किन उपायों से सम्भव है ? बुरे कर्मों के फलों के भोगने वाले मुझ पापी ने अपनी माता का वध किया है । हे ब्रह्मन् ! इसके साथ ही मैंने वेश्याओं के साथ सम्पर्क भी रखा है । कहाँ तक कहूँ । इनके अतिरिक्त मैंने और भी दुष्कर्म किए हैं । उन सब की निष्कृति कैसे हो सकती है ? मुझे मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती हैं ? ॥ ६२ – ६७ ॥

एक तपस्वी ने इसका उत्तर दिया—हे विप्र ! माता के वध-सदृश महापाप का विनाश सौ युगों में भी यद्यपि सम्भव नहीं, तथापि मैं तुम्हारे करोड़ों जन्मों में भी भोग्य इस महापातक के दूर करने का ध्रुव उपाय बतला रहा हूँ । तुम सुनो—"हिमालय के तट पर पुण्य दारु-कानन है । वहाँ अनेक तीर्थों से वेष्टित ज्योति के मध्य में विराजमान होकर यागीश्वर (योगेश्वर) विद्यमान रहते हैं । वहाँ पर गो, विप्र, गुरु एवं बालघ्न तथा मातृ-पितृ-द्रोही जन यदि शुद्ध मन से शिवमन्दिर में जाते हैं तो उनका रौरव-नरक-वास उसके पूर्व तक ही सीमित रहता है । उनका दर्शन करते ही आठ हजार युगों तक काशी-मण्डल में रहकर विश्वेश्वर का पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल, हे विप्र ! केवल एक मास वहाँ रहकर पूजन करने से प्राप्त हो जाता है । दारुकानन में जो 'जटागङ्गा' हैं, उसमें स्नान करने से

---

१. 'लभाम्यहम्' इति 'ग' ।

२. अयं श्लोकः 'क' पुस्तके नास्ति ।

३. 'पुण्यं केदारमण्डलम्' इति 'ङ' ।

संपूज्य शंकरं तत्र यत्फलं समवाप्यते। तत्फलं प्राप्यते विप्र पूज्य जागीश्वरं हरम् ॥७७॥
मा वैद्यनाथं मनुजा व्रजन्तु काशीपुरीं शंकरवल्लभां वा।
मायानगर्यां मनुजा न यान्तु जागीश्वराख्यं हि हरं व्रजन्तु ॥ ७८ ॥
प्राप्य जागीश्वरं देवं यो ब्रूते मुक्तिमेव हि। स मुक्तिं याति वै विप्र! दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ॥७९॥

ब्राह्मण उवाच—

कथं संज्ञायते[1] क्षेत्रं कस्मिन्भूमण्डले द्विज। जागर्त्ति स कथं देवः कथं मुक्तिप्रदः स्मृतः ॥८०॥
प्रवेशः कुत्र विज्ञेयः कुतो वा निर्गमः स्मृतः। तस्मिन्क्षेत्रे महाभाग विद्यते तद्वदस्व माम् ॥८१॥
तीर्थाधिराजसंज्ञो वै को देवः ख्यायते द्विज। के तत्र देवदेवस्य परिवारे स्थिता द्विज ॥८२॥
कानि तत्र च लिङ्गानि सन्ति देवस्य सन्निधौ। कानि तीर्थानि पुण्यानि सरितः काश्च तत्र हि।
के तत्र शंकरं शान्तं देवाः संसेवयन्ति हि। के तत्र सिद्धा नागाश्च तानाख्यापय सुव्रत ॥८४॥

ऋषिरुवाच—

सर्वोत्पत्तिर्लिङ्गानां विद्यते द्विजसत्तम। यथा मुक्तिप्रदो जातो भूतले तच्छ्रृणुष्व हि ॥८५॥
रिचको[2] नाम गंधर्वो बभूव द्विजसत्तम। तस्याऽऽसीद्वाणको नाम पुत्रः परमधार्मिकः ॥८६॥
रूपयौवनसम्पन्नो दीर्घायुर्विमलाकृतिः। संगीतज्ञोऽभवत् विप्र शिल्पज्ञश्चापि चानघ ॥८७॥
दान्तो नृत्यकलाभिज्ञः सर्वज्ञः संयतेन्द्रियः[3]। स कदाचिन्महाभाग ऋषीणां मध्यगोऽभवत् ॥८८॥

जो फल मिलता है, वह फल 'सेतुबन्ध रामेश्वर' से आकर 'केदारनाथ' का पूजन करने की तरह 'यागीश्वर' हर का पूजन करने से प्राप्त होता है। मनुष्य 'वैद्यनाथ' न जायें, शङ्करप्रिया 'काशी' नगरी में भले ही न जायें तथा 'मायापुरी' (हरिद्वार) न जा सकें, किन्तु 'यागीश्वर' का दर्शन अवश्य करें। हे ब्राह्मण ! 'यागीश्वर' में जाकर जो मुक्ति की याचना करता है, उसे मुक्तिलाभ अवश्य होता है" ॥ ६८ - ७९ ॥

(इसे सुन) मैथिल ब्राह्मण ने कहा—वह 'यागीश्वर'-क्षेत्र किस ओर है तथा उसे कैसे जाना जाय ? वहाँ भगवान् शंकर क्यों कर जागरूक हैं ? उन्हें मुक्तिप्रद क्यों कहा जाता है ? उस परिसर में वहाँ का प्रवेश और निर्गम मार्ग कौन सा है ? हे महाभाग ! वहाँ के तीर्थाधिष्ठाता कौन से देव प्रसिद्ध हैं ? उनके परिवार में और कौन-कौन से देवगण हैं ? उस प्रदेश के समीपस्थ शिवलिङ्ग, पुण्यतीर्थ एवं नदियाँ कौन-कौन सी हैं ? हे सुव्रत ! उन शान्त शङ्कर के सेवी देवगण एवं सिद्धवर्ग तथा नागों के सम्बन्ध में भी कृपया आप हमें जानकारी दें ॥ ८० - ८४ ॥

ऋषि ने उत्तर दिया—द्विजश्रेष्ठ ! शिवलिङ्गों की उत्पत्ति होने का यही स्थान है। इस स्थान के मुक्तिक्षेत्र होने का आख्यान सुनो। द्विजश्रेष्ठ ! पहले 'रिचक' नाम का एक गन्धर्व रहा। उसका वाणक नाम का परम धार्मिक पुत्र था। वह देखने में सुन्दर, दीर्घायु एवं रूपयौवनसम्पन्न, शिल्पी तथा संगीतज्ञ था। साथ ही वह दान्त, नृत्यकला-निपुण तथा

---

१. 'संज्ञायते' इति 'ङ'। २. 'रेचको' इति 'क'। ३. 'संजितेन्द्रियः' इति 'क'।

सह गन्धर्वकन्याभो रन्तुमैच्छन्महागुणी । तस्मै प्रकुपिता विप्र ऋषयो धर्मवत्सलाः ॥
ददुः शापं महाभागा गन्धर्वाय महात्मने ॥ ८९ ॥

ऋषय ऊचुः—

यस्मात्त्वं मध्यगो भूत्वा गतोऽसि कुलपांसनः । तस्मात्त्वं राक्षसीं योनि प्राप्य घोरतमो भव ॥

ऋषिरुवाच—

स शप्तो ऋषिभिः पुण्यैस्त्यक्त्वा कान्ततरं वपुः । स चासौ राक्षसीं योनिं प्राप्तवान् द्विजसत्तमाः ।
स घोरो राक्षसो भूत्वा प्राणिहिंसारतोऽभवत् । चकार च मनुष्याणां कदनं द्विजसत्तमः॥९२॥
ततो ये वनमध्यस्था राक्षसा घोरदर्शनाः । तमाश्रित्य च ते सर्वे तस्थुर्यमगणोपमाः ॥९३॥
ततः स राक्षसो घोरो भगिन्या सह संययौ । विपिनं चातिघोरं वै तथान्यै राक्षसैः सह ॥९४॥
सोपयेमे स्वभगिनीं विपिने राक्षसाधमः । रूपसौन्दर्य्यलावण्यगुणैर्बहुभिरन्विताम् ॥९५॥
रेमे बहुतिथं कालं तया सह सुदुर्मतिः । सरित्सु चापि कान्तासु वनेषूपवनेषु च ॥९६॥
स कदाचिद्दुराचारः सह तै रक्षसां गणैः । कालेन दैवयोगेन प्रययौ दारुकाननम् ॥९७॥
तत्रारण्ये प्रदीप्यन्तं मुक्तिमण्डलमध्यगम् । ददर्श देवदेवेशं दिव्यं जागीश्वराह्वयम् ॥९८॥
सेवितं देवगन्धर्वैर्बाणाद्यैर्दितिजैरपि । नन्दिस्कन्दगणेशाद्यैः परिवारैर्विराजितम् ॥९९॥
दीप्यन्तं दीर्घतेजोभिः प्रभया भास्करोपमम् । तं दृष्ट्वा देवदेवेशं ननाम राक्षसाधमः ॥१००॥

जितेन्द्रिय भी था । किसी समय वह ऋषियों के बीच बैठ कर गन्धर्वकन्याओं के साथ रमण करने की इच्छा करने लगा । अतः परम धार्मिक ऋषिगण उसके इस आचरण से कुपित हो गए । इस हेतु उस गन्धर्व को ऋषियों ने शाप दिया ॥ ८५ – ८९ ॥

ऋषियों ने कहा—तुम हमारे मध्य रहकर भी कुलाधम हो गए, अतः तुम भयंकर राक्षसयोनि प्राप्त करो ॥ ९० ॥

(पहले) ऋषि फिर कहने लगे—इस प्रकार ऋषियों के द्वारा शाप दिये जाने पर उसने अपना पूर्व शरीर छोड़ दिया । राक्षसी-योनि को प्राप्त कर तथा भयंकर रूप धारण करते हुए वह नरसंहार में लगा रहा । वह मनुष्यों को खाता रहा । वहाँ रहने वाले अन्य राक्षस भी उसका आश्रय ले यमदूतों के समान देखने में भयंकर लगते थे । वह राक्षस अपनी बहन के साथ उस भयंकर वन में गया । तब भी वह भयंकर था । उस दुर्बुद्धि ने अपनी रूपवती बहन के साथ विवाह कर बहुत दिनों तक दुष्कर्म किया । वह कभी नदियों के तट पर, कभी वनों एवम् उपवनों में रहते हुए विलासमय जीवन व्यतीत करता रहा । घूमते-घूमते वे दोनों अन्य राक्षसों के साथ संयोगवश 'दारुकानन' में पहुँच गए । वहाँ उन्होंने अरण्य में मुक्तिमण्डल के मध्य में प्रतिष्ठित प्रदीप्त 'यागीश्वर' देव को देखा । उसने यह भी देखा कि देवदेवेश, देव, गन्धर्व, बाणासुर आदि सभी लोग यागीश्वर की सेवा में लगे हुए हैं । वे नागेश नन्दी, स्कन्दी आदि गणों से समाविष्ट हो अपने दिव्य तेज एवं कान्ति से भगवान् भास्कर के सदृश भासमान हैं । उस अधम राक्षस ने देवदेवेश को प्रणाम किया । प्रणाम करने मात्र से ही उसका राक्षस-

प्रणामेनैव तद्देहं हित्वा घोरं सुदुर्धरम् । प्राप्य गन्धर्वदेहं वै साक्षाद्देवतनूपमम् ॥१०१॥
ततः सस्मार भगिनीं पितरं मातरं च सः । स्मृतमात्रास्तु ते सर्वे तस्य देवस्य सन्निधौ ॥१०२॥
संत्यज्य राक्षसं देहं ययुः शंकरमन्दिरम् । सोऽपि मुक्तिं तदा विप्र वव्रे देवस्य सन्निधौ ॥१०३॥
ब्रुवन्नेव च तैः सर्वैः राक्षसैः सह किङ्करा: । अधिरोप्य विमानाग्रे तं शैवा निन्युरेव च[1]॥१०४॥
ययौ शिवपुरं रम्यं रुद्रकन्यानिषेवितम् । इत्येतत्कथितं विप्र यथा मुक्तिं प्रयच्छति[2] ॥१०५॥
येन मर्त्ये महादेवो राधितः कथितं मया । शृणुष्व यानि लिङ्गानि तत्र सन्ति समाहितः ॥१०६॥
केचिदद्यापि दृश्यन्ते केचिद् गूढा भुवस्तले[3] । केचिद्दीप्यन्ति मर्त्यानां हिताय द्विजसत्तम ।१०७।
यत्र जागर्ति जागीशः शृणुष्व द्विजसत्तम । तत्र गूढानि लिङ्गानि शिलायां वै शतत्रयम् ।१०८।
सन्ति गूढानि लिंगानि तथान्येषु स्थलेषु च । तानि संभाव्य जागीशं ये सम्यक् पूजयन्ति हि ॥
शिवसायुज्यतां यान्ति मानवा नात्र संशयः । पूज्य जागीश्वरं देवं ततो मृत्युञ्जयं व्रजेत् ।११०।
संपूज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् । तत्र गत्वा नरो यद्यद्वरमिच्छति[4] वै द्विज ।१११।
तत्तद्ददाति देवेशो मानवानां हिताय वै । असंख्याताः सहस्राणि तस्मिन्नुत्पत्तिमण्डले ॥११२॥
सन्ति लिङ्गानि वै विप्र ! प्राधान्येन शृणुष्व हि । मृत्युञ्जयं च संपूज्य वामे विश्वेश्वरं हरम् ॥
संपूज्य तत्र वै विप्र ! गोकर्णेशं हरं व्रजेत् । ततो विन्ध्येश्वरं देवं ततो वाणीश्वरं हरम् ।११४।

शरीर छूट गया । पुनः उसने देवों के समान गन्धर्व-शरीर धारण कर लिया । उसे फिर बहन और माता-पिता का स्मरण हो गया । पुत्र के स्मरण करते ही वे सब राज्य को छोड़ भगवान् शङ्कर के मन्दिर में आ पहुँचे । वह किन्नर भी उन राक्षसों से बातें करते करते देवेश से मुक्ति माँगने लगा । तब शिवजी के दूतों ने उसे विमान पर चढ़ा कर रुद्रकन्याओं से सेवित शिवलोक में पहुँचा दिया । विप्रवर ! भगवान् शङ्कर द्वारा इस मर्त्यलोक में मुक्ति-प्रदान किये जाने की वार्ता मैंने बतला दी है । अब उस क्षेत्र में विद्यमान शिवलिङ्गों के विषय में सुनो । उनमें से कुछ तो अब भी मानवों के हितार्थ प्रकाशमान हैं । तथा तीन सौ लिङ्ग शिला के भीतर समाये हुए हैं । उन सबको प्रणाम कर जो विधिपूर्वक यागीश्वर का पूजन करते हैं, उन्हें निःसन्देह शिवसायुज्य प्राप्त होता है । यागीश्वर के पूजोपरान्त 'मृत्युञ्जय' महादेव की ओर जाना चाहिये । उनका पूजन कर मनुष्य को दुर्लभ शिवलोक प्राप्त होता है । वहाँ पर माँगा हुआ वर शिवजी द्वारा अवश्य प्राप्त होता है । शिवलिङ्गों के उस उत्पत्ति-स्थान में हजारों अनगिनती[5] शिवलिङ्ग हैं । उनमें से प्रमुख शिवलिङ्गों के बारे में सुनो । 'मृत्युञ्जय' का पूजन कर उनके वामभाग में 'विश्वेश्वर' का पूजन करे । फिर 'गोकर्णेश'[6] भगवान् की सेवा में

---

१. 'द्विजसत्तमाः' इति 'क' । २. 'प्रयच्छसि' इति 'क' ।
३. 'भुवः स्थले' इति 'क' । मुद्रिते पुस्तके च । ४. 'वाञ्छामिच्छति' इति 'क' ।

५. 'ॐ असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् । तेषां सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ।' —य० सं० १६-५४ ।

६. 'गोकर्ण' नामक आधे योजन का एक तीर्थ मालाबार में भी स्थित है । यहाँ 'धूतपापस्थल' नामक एक तपोवन है (ब्रह्माण्ड० ३।१३-१६) । यह समुद्र में चला गया था, पर ऋषियों के आग्रह पर बल-

संपूज्य भुवनेशाख्यं दक्षिणे द्विजसत्तम। ततो गच्छेन्महाकालं कालीं च तदनन्तरम् ।।११५।।
ततः पुष्टिं महादेवीं रचितां विश्वकर्मणा। ततः सोमेश्वरं देवं सूर्येशं हि ततः परम् ।।११६।।
ततस्तु कमलाकान्तं ब्रह्माणं हि ततः परम्। ततो नागेश्वरं देवं पश्चिमे द्विजसत्तम ।।११७।।
ततो नन्दीश्वरं देवं नन्दां चापि हरप्रियाम्। संपूज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् ।११८।
ततश्चण्डीश्वरं देवं शीतलाञ्च ततः परम्। ततस्तु वरुणेशाख्यं महेन्द्रेशं ततः परम् ।।११९।।
ततः पूर्वे महादेवं बालीशं द्विजसत्तम। संपूज्य मानवो याति शिवलोकं न संशयः ।।१२०।।
ततस्तु धनदेशाख्यं यमेशं हि ततः परम्। ततः कपालपाणिं वै कोटीशाख्यं ततः परम् ।।१२१
ततो मुक्तीश्वरं देवं मृडानीशं ततः परम्। भैरवेशं हरं तत्र सङ्गमध्ये द्विजोत्तम ।।१२२।।
संपूज्य मानवो याति महेशभवनं शुभम्[1]। ततः स्रोतः समुत्तीर्य चण्डिकां शंकरप्रियाम् ।।१२३।।
सम्पूज्य मानवः सम्यगैहिकं फलमश्नुते। ततस्तु जलमध्ये वै ब्रह्मतीर्थस्य चोपरि ।।१२४।।

जाये। तदनन्तर 'विन्ध्येश्वर' और 'वाणीश्वर' के पूजनोपरान्त दक्षिण भाग में 'भुवनेश्वर', 'महाकाल' तथा 'काली' का पूजन करे। तत्पश्चात् विश्वकर्मा द्वारा सृजित 'पुष्टि'[2] महादेवी की पूजा की जाय। फिर क्रमशः 'सोमेश्वर' 'सूर्येश', 'कमलाकान्त' एवं ब्रह्माजी का पूजन करे। तदनन्तर पश्चिम भाग में 'गणेश्वर', 'नन्दीश्वर' एवं 'नन्दा' भगवती का पूजन कर मानव शिवलोक प्राप्त करता है। फिर 'चण्डीश्वर', 'शीतला देवी', 'वरुणेश' तथा 'महेन्द्रेश' का पूजन कर वहाँ से पूर्वभाग में जाकर 'बालीश' की पूजा की जाय। तत्पश्चात् 'धनदेश', 'यमेश', 'कपालपाणि', कोटीश्वर', 'मुक्तीश्वर' तथा 'मृडानीश्वर' का पूजन कर सङ्गम के मध्य में 'भैरवेश' महादेव का पूजन किया जाय। इन सबका पूजन करने से मानव शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् स्रोत को पार कर शङ्कर-प्रिय 'चण्डिका' का पूजन कर मनुष्य

राम के कहने पर वरुण ने इसे पुनः दे दिया था (ब्रह्माण्ड ३–५६)। रामायण के अनुसार रावण, कुम्भकर्ण आदि ने यहाँ तप किया था। इस स्थान में शिवमूर्ति का नाम 'गोकर्ण' है। इसी के निकट ताम्रपर्णी नदी है। (ख) काशीखण्ड के अनुसार वाराणसी में इस नाम का मन्दिर है। शिव के एक गण का नाम 'गोकर्ण' रहा।

१. 'प्रति' इति 'क'।

२. (क) देवदारुवन में स्थापित सती देवी की एक मूर्ति—'देवदारुवने 'पुष्टि'र्मेधा काश्मीरमण्डले। भीमादेवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा' ।।—मत्स्यपुराण १३–४७। (ख) दक्ष की कन्या सती के साठ रूपों में से एक का नाम। (ग) देवीभागवत में वर्णित १०८ सिद्धपीठों में से एक का नाम—'देवदारुवने पुष्टिः'। हिमालयस्य अन्य सिद्धपीठों के नाम ये हैं—'कामुकी' गन्धमादने।' 'मानसे 'कुमुदा' प्रोक्ता। 'दक्षिणे 'विश्वकामा'। 'उत्तरे 'विश्वकामप्रपुरणी'।' 'देवी मन्दरे 'कामचारिणी'। 'केदारपीठे सम्प्रोक्ता देवी 'सन्मार्गदायिनी'। " 'नन्दा' (मन्दा) हिमवतः पृष्ठे।" "त्रिकूटे 'रुद्रसुन्दरी'।" "गङ्गाद्वारे 'रतिप्रिया'।" "जालन्धरे 'विश्वमुखी'।" " 'मेघा' काश्मीरमण्डले।" " 'भीमा' देवी हिमाद्रौ तु।" " 'धृतिः' पिण्डारके तथा।" " अच्छोदे 'शिवधारिणी'।" "बदर्याम् 'उर्वशी' तथा"। " 'औषधि'श्चोत्तरकुरौ"। " 'मन्मथा' हेमकूटे तु।"

पूजयेत्पञ्चकेदारान्सर्वपापप्रणाशकान् । तत्रोत्तरे महादेवं यागीशं[1] पूज्य वै द्विज ॥१२५॥
मानवः शिवसायुज्यं प्राप्नुते नात्र संशयः[2] । ततो गच्छेद्धनूमन्तं दिव्यदेहधरं द्विज ॥१२६॥
ततस्तु चक्रवाकीश ततो वागीश्वराह्वयम् । ततस्तु वनमध्ये वै सुपुण्ये दारुकानने ॥१२७॥
देवं यागीश्वरं[3] पूज्य ऋषिपत्नीनिषेवितम् । मानवो देवभुवनं प्राप्नोति न हि संशयः ॥१२८॥
ततश्चक्रेश्वरं देवं विष्णुचक्राङ्कितं द्विज । सम्पूज्य मानवः सम्यग् लोकचक्रं न पश्यति ॥१२९॥
ततो ढुण्ढीश्वरं देवं पूजयेत्सुसमाहितः । वैद्यनाथं हरं तत्र यत्र ढुण्ढीश्वरो हरः ॥१३०॥
शिलापृष्ठे महाभाग ! सम्पूज्य शिवमाप्नुयात् । ततः कर्पविसरितो मूले देवं महेश्वरम् ॥१३१॥
सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं न संशयः[4] । एतानि शिवलिङ्गानि विशिष्टानीति विद्धि वै[5] ।
ये चक्रकणमुक्तानि[6] भूमौ निपतितानि च । गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः[7] । तुष्टिः पुष्टिः स्वमाता च कुलदेवी तथैव च ॥

सभी ऐहिक फलों को प्राप्त करते हैं। तदतन्तर 'ब्रह्मतीर्थ' के ऊपर जन्मस्थ सभी पापों के विनाशक 'पाँच केदारों' का पूजन करे। हे विप्र ! उससे उत्तर में यागीश (योगीश) की पूजा कर मनुष्य निःसन्देह शिवसायुज्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात् दिव्य देहधारी 'हनुमान्' का दर्शन कर 'चक्रवाकीश' एवं 'वागीश्वर' की ओर जाय। तदनन्तर वन के मध्य दारुकानन में प्रतिष्ठित एवं ऋषिपत्नियों से सेवित 'यागीश्वर' की अर्चना करे। भगवान् यागीश्वर का पूजन करने से मानव निःसंशय देवलोक प्राप्त करता है। वहाँ से 'चक्रेश्वर' जाकर उनका पूजन करने से मानव को संसार-चक्र से मुक्ति मिल जाती है। तदनन्तर 'ढुण्डीश्वर' की पूजा की जाय। वहीं शिलापृष्ठ पर 'वैद्यनाथ' का पूजन करने से मानव को शिवसायुज्य मिलता है। फिर 'कर्पदिगङ्गा' के उद्गमस्थल पर 'महेश्वर' की पूजा करने से दुर्लभ शिवलोक की प्राप्ति होती है। ये सभी विशिष्ट शिवलिङ्ग चक्रकणों से मुक्त होकर पृथ्वी पर गिरे हुए हैं। इस यागीश्वर तार्थ में 'गौरी', 'पद्मा', 'शची', 'मेधा', 'सावित्री', 'विजया', 'जया', 'देवसेना', 'स्वधा', 'स्वाहा' आदि सभी 'मातायें' और 'देवमातायें' विद्यमान रहती हैं। इनके साथ ही यहाँ 'तुष्टि', 'पुष्टि', 'धृति[8]', 'स्वमाता' और 'कुलदेवी'—भी विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त 'महेन्द्र' आदि देव, 'विद्याधर',[9] 'गन्धर्व',[10] 'पुष्पदन्त' तथा अप्सराओं के समुदाय भी यहाँ पर

---

१. 'योगीशम्' इति 'क'। २. 'प्राप्नोति न हि संशयः'—'क'।
३. 'योगीश्वरम्' इति 'क'। ४. 'सुदुर्लभम्' इति 'क'।
५. 'विशिष्टानि मयोदितम्' इति 'क'। ६. 'चक्रबाणमुक्तानि' इति 'क'।
७. 'देवमातरः' इति 'क'।

८. सती देवी की एक मूर्ति, जो पिण्डारक में स्थापित है।—मत्स्य पु० १३–४८।

९. एक प्रकार के देवगण, जो इन्द्र के सहचर हैं और खेचर, नभचर आदि नामों से पुकारे जाते हैं।

१०. पुराणानुसार देवताओं का एक भेद, जो स्वर्ग में रहते हैं तथा उनसे तीन पाव कम ऐश्वर्य-वाले हैं। ये यक्ष, राक्षस तथा पिशाचों की तरह अर्ध-देवता हैं। चित्ररथ इनका स्वामी कहा गया है—

एताः सर्वा विराजन्ते क्षेत्रे जागीश्वराह्वये । महेन्द्रप्रमुखा देवास्तथा विद्याधराः शुभाः ।१३५॥
गन्धर्वाः पुष्पदन्ताद्यास्तथैवाप्सरसां गणाः । गुह्याः सिद्धाः पिशाचाश्च तथा नागा महोरगाः ।
वसवोऽष्टौ द्वादशार्काः तथैव मरुतां गणाः ॥ १३७ ॥
देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयः परे । दैतेया दानवाश्चैव डाकिन्यश्च महाबलाः ॥१३८॥
सेवन्ते देवदेवेशं दिव्यं जागीश्वराह्वयम् । एतेषां नामलिङ्गानि सन्त्यदृश्यानि वै द्विज॥१३९॥
केचिदद्यापि दृश्यन्ते भूतले नात्र संशयः । एतेषां नामलिङ्गानि दृष्ट्वा सम्भाव्य वै द्विज ।१४०।
सम्पूज्य देवदेवेशं दिव्यं जागीश्वराह्वयम् । प्राप्नोति परमां सिद्धिं देवैरपि सुदुर्लभाम् ॥१४१॥
सम्पूज्य तत्र देवेशं टङ्कणाद्रौ महेश्वरम् । वृद्धजागीश्वराख्यं वै सम्पूज्य साङ्गमाप्नुयात् ।१४२।
वृद्धजागीश्वरं पूज्य तत्रैव परमेश्वरीम् । ततो भाण्डीश्वरं देवं पुनर्गच्छेद् द्विजोत्तम ॥१४३॥

स्थित हैं । 'गुह्य', 'सिद्ध', 'पिशाच', 'नाग', 'महोरग', 'अष्टवसु', ''द्वादशार्क''[1] तथा मरुद्गण[2] भी इसी क्षेत्र में रहते हैं । कहाँ तक गिनाया जाय ? फिर भी 'देवर्षि', 'ब्रह्मर्षि', 'दैत्य', 'दानव' तथा महाबलशालिनी 'डाकिनियो'[3] ने इसी स्थान को अपनाया है । द्विजवर ! वहाँ पर ये सभी दिव्य यागीश्वर की सेवा करते हैं । इनके नाम और लिङ्ग कहीं तो अदृश्य (अज्ञात) हैं; कुछ अब भी दृश्य हैं । उनका नाम-स्मरण और चिह्नों (प्रतीकों) का पूजन कर देवदेवेश 'यागीश्वर' का पूजन करने से मनुष्य देव-दुर्लभ सिद्धि प्राप्त कर लेता है । फिर इस तरह टंकण-पर्वत पर यागीश्वर के पूजनोपरान्त 'वृद्धयागीश्वर' का पूजन करने से पूजा की सफलता प्राप्त

'हीना देवैस्त्रिभिः पादैर्गन्धर्वाप्सरसः स्मृताः । गन्धर्वेभ्यस्त्रिभिः पादैर्हीना गुह्यकराक्षसाः ॥ ऐश्वर्यहीना रक्षोभ्यः पिशाचास्त्रिगुणे पुनः । एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च ॥ गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्रो देवयोनयः ॥' – ब्रह्माण्ड ३, १६७–१७० । ये स्वर्ग के संगीतकार हैं । इनके ग्यारह गण कहे गये हैं—अभ्राज, अन्धारि, रम्भारि, सूर्यवर्चा, कृधु, हस्त, सुहस्त, मूर्धंवान्, महामना, विश्वावसु और कृशानु । वायुपुराण (६६–७३) के अनुसार ये भद्रा के पुत्र हैं । वेदों के अनुसार गन्धर्व दो हैं, एक द्युस्थान के और दूसरे अन्तरिक्ष स्थान के । पहली कक्षा के 'दिव्य गन्धर्व' कहे जाते हैं, जो सोम-रक्षक तथा सूर्य के सारथि हैं । अन्तरिक्ष-स्थान के गन्धर्व नक्षत्रों के प्रवर्तक कहे गए हैं । इनसे सोम छीन कर इन्द्र मनुष्यों को देता है । वरुण इनका स्वामी है । ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों के अनुसार गन्धर्व दो प्रकार के हैं—(क) देवगन्धर्व तथा (ख) मनुष्यगन्धर्व ।

१. १२ आदित्यों के नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र, धातृ, भग, त्वष्टृ, मित्र, वरुण, अर्यमन्, विवस्वत्, सवितृ, पूषन्, अंशुमत् और विष्णु (भागवत १२-११।३०-४५) ।

२. मरुत्—एक देवगण का नाम, जो वेदों के अनुसार 'रुद्र' तथा 'वृष्णि' के पुत्र थे । पुराणों के अनुसार ये 'कश्यप' और 'दिति' के पुत्र हैं । इन्द्र ने इन्हें गर्भ में ही ४९ टुकड़ों में काट डाला था । काटे जाने पर ये रोये तो इन्द्र ने कहा—'मा रुद' मत रोओ । अतः ये ही ४९ मरुत् (मारुत) हुए । वेदों के अनुसार ये अन्तरिक्ष-स्थानीय हैं । वायुपुराण के अनुसार ये 'आवह' 'प्रवह' आदि सात वातस्कन्धों के निवासी कहे गए हैं—(१०१-२९) । दिति के कहने पर इन्द्र ने इनका समावेश देवगणों में कर दिया ।

३. एक पिशाची या देवी, जो काली के गणों में मानी गयी है ।

ततो जागीश्वरं देवं पुनः प्राप्य समाहितः। परिक्रम्य महाभाग नत्वा चैव पुनः पुनः ॥१४४॥
ततो गच्छेत्त्रिनेत्रेशं पूर्णं गव्यूतिदूरगम्। दक्षिणे काननप्रान्ते क्षेत्रपालान्वितं द्विज ॥१४५॥
सम्पूज्य मानवो याति त्रिनेत्रं द्विजसत्तम। देवगन्धर्वकन्याभिः सेवितं शिवमण्डलम् ॥१४६॥
एवं वै कुरुते यस्तु यात्रां वै द्विजसत्तम !। स कोटिकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥१४७॥
नास्ति संसारभीतिर्वै प्राप्य जागीशमण्डलम्। न मातुर्गर्भगा चिन्ता विद्यते द्विजसत्तम ।१४८।
कायक्लेशं विना यत्र शिवभक्तिः सुदुर्लभा। प्राप्यते देवगन्धर्वैर्दुष्प्राप्या द्विजसत्तम ॥१४९॥
यत्र सन्दर्शनेनैव शिवस्य करुणात्मनः। जायते मुक्तिरव्यग्रा शाश्वती द्विजसत्तम ॥१५०॥
तस्मान्नान्यतमं क्षेत्रं प्रपश्यामि न संशयः। यानि तत्र च तीर्थानि मुख्यभूतानि च द्विज ।१५१।
तानि ते कथयिष्यामि यावतः सुसमाहितः। यत्र कर्पादिसम्भूता गङ्गा साक्षाच्छिवप्रिया ।१५२।
अणुमात्रमपि स्पृष्टा या दहेत्पातकान्द्विज ! तस्यां तीर्थान्यनेकानि सन्ति तानि शृणुष्व वै ।१५३।
कानिचिदणुमात्राणि सुगम्भीराणि कानिचित्। कानिचिच्चुलुकोदानि कानिचिच्चापदानि च ॥
सन्ति तीर्थानि वै विप्र सहस्राख्यानि तत्तथा। प्राधान्येन वदिष्यामि[1] तानि सर्वाणि साम्प्रतम् ॥
मूले कर्पादितीर्थं[2] वै ततो बाहुसरः स्मृतम्। ततो बाणस्य तीर्थं वै शिवातीर्थं ततः स्मृतम् ॥
ततस्तु ढुण्ढुतीर्थं वै माण्डव्यश्च ततः परम्। ततस्तु बालितीर्थं वै जामदग्न्यं ततः स्मृतम् ।१५७।
ततस्तु वेणुतीर्थं वै मौर्वतीर्थं ततः स्मृतम्। ततस्तु काश्यपं नाम तीर्थमस्ति सुशोभनम्[3] ।१५८।
ततस्तु क्रौञ्चतीर्थं वै ततः पापप्रणाशनम्। ततो वाराहतीर्थं वै वाराही पूज्यते यतः ॥१५९॥

करे। तत्पश्चात् वहीं 'परमेश्वरी' की पूजा कर 'भाण्डीश्वर' की ओर जाय। उनकी परिक्रमा व प्रणाम कर वहाँ से फिर यागीश्वर के मन्दिर को लौट जाय। वहाँ से दो कोस की दूरी पर त्रिनेत्रेश' के समीप जाय। वह स्थान यागीश्वर के दक्षिण में क्षेत्रपाल से युक्त है। द्विजवर ! देवों और गन्धर्व-कन्याओं से सेवित 'त्रिनेत्र' का पूजन करने से शिवमण्डल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार इस क्षेत्र की यात्रा करने से मानव असंख्य कुलों का उद्धार कर अन्त में शिव-लोक जाकर सुखी होता है। इसके फलस्वरूप प्राणी को माता के गर्भवास का दुःख नहीं भोगना पड़ता। इस क्षेत्र में कायक्लेश के विना देवादि-दुर्लभ शिवभक्ति प्राप्त होती है तथा दर्शन-मात्र से शाश्वती मुक्ति मिल जाती है। इस कारण इससे बढ़कर मैं किसी दूसरे क्षेत्र को नहीं समझता। अब मैं यहाँ के प्रमुख तीर्थों को बतलाता हूँ। उन्हें ध्यान से सुनो। कर्पदिगङ्गा के उद्गमस्थल का स्पर्शमात्र करने से सब पातक नष्ट हो जाते हैं। अब इससे सम्बद्ध तीर्थों के विषय में सुनें। उनमें से कुछ तो छिछले हैं और कुछ गहरे। कुछ तो चुल्लू भर जल-युक्त हैं तो दूसरे घुटनों भर जल वाले हैं। इस प्रकार के तीर्थ वहाँ पर असंख्य हैं। अतः उनमें से केवल प्रधान तीर्थों का ही वर्णन किया जा रहा है। 'कर्पदितीर्थ' के मूल में 'बाहुसर' है। तत्पश्चात् 'वाणतीर्थ', 'शिवातीर्थ', 'ढुण्ढुतीर्थ', 'माण्डव्यतीर्थ', 'बालितीर्थ', 'जामदग्न्यतीर्थ', 'वेणुतीर्थ', 'मौर्वतीर्थ', 'काश्यपतीर्थ', पापनाशक 'क्रौञ्चतीर्थ' तथा 'वाराहतीर्थ' भी हैं। वहाँ पर 'वाराही' का पूजन होता है। तदनन्तर 'कमलनाभ' एवं 'भूपति' तीर्थ हैं। यहाँ 'भूतेश' का

---

१. 'कथिष्यामि' 'क'। 'ब्रवीम्यत्र' इति मुद्रिते माहात्म्ये। २. 'कर्पदतीर्थं'–'क'।
३. 'सुपूजितम्' इति 'क'।

ततः कमलनामस्य तीर्थमस्ति सुशोभनम्[1]। ततो भूतपतेस्तीर्थं भूतेशो यत्र पूज्यते ॥१६०॥
ततः कपालतीर्थं च कालापं हि ततः स्मृतम्। ततस्तु प्राणदं नाम तीर्थमस्ति सुशोभनम् ।१६१।
ततस्तु लोमहन्तारं ततः कालप्रणाशनम्। ततो हारीतकं नाम तीर्थमस्ति सुशोभनम्[2] ॥१६२॥
ततो रूपप्रदं नाम तीर्थमस्ति द्विजोत्तम। ततस्तु सूर्यतीर्थं वै शशितीर्थं ततः स्मृतम् ॥१६३॥
ततस्तु शूलगङ्गाया मध्ये वै द्विजसत्तम। ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातं देवगन्धर्वपूजितम् ॥१६४॥
सुकपालाङ्कितं पुण्यं पातकान्तकरं शुभम्। ये निमज्य महाभागाः पिण्डं ददति तत्र हि ।१६५।
ते तारयन्ति वै विप्र कुलमेकोत्तरं शतम्। धर्माधर्माह्वयं तीर्थं ततस्तु द्विजसत्तम ॥१६६॥
ततस्तु ऋणमोक्षं हि ततः पापप्रणाशनम्। ततः सौन्दर्यदं तीर्थं ततस्तु नरकाह्वयम् ॥१६७॥
ततस्तु वेत्रजं नाम सुवेत्रजलसम्मितम्। ततो योगीश्वराख्यं वै तीर्थमस्ति तपोधन ॥
ततस्तु शूलगङ्गायाः सङ्गमोऽस्ति तपोधनाः ॥ १६८ ॥
तपस्यमानेन हरेण या पुरा शूलेन भित्त्वा किल दारुकावनम्।
निष्कासिता योगगतेन योगिना सङ्गं गता पुण्यमतीव शोभना ॥ १६९ ॥
तस्यां तीर्थान्यनेकानि सन्ति ते वै द्विजोत्तम ॥ १७० ॥
माहेन्द्रं लवणं त्वाष्ट्रं सौरभेयं ततः परम्। तेषु स्नात्वा नरो याति महेन्द्रभवनं प्रति ॥१७१॥
ततो मृत्युञ्जयाख्यं वै तीर्थमस्ति न संशयः। हेतुवृन्दारकं नाम कौशल्यं हि ततः परम् ।१७२।
ततो माहेन्द्रतीर्थं वै पाकशासनसंज्ञकम्। ततो वरुणतीर्थं वै तीर्थं वागीश्वराह्वयम् ॥१७३॥

पूजन होता है। हे तपोधन! तब 'कपाली', 'कालाप', 'प्राणद', 'लोमहन्ता' 'कालप्रणाशन', 'हारीतक' तीर्थ क्रमशः आते हैं। तब सुन्दर 'रूपप्रद', 'सूर्य', 'शशि' नाम के तीर्थ हैं। हे द्विज-श्रेष्ठ! तत्पश्चात् 'शूलगङ्गा' के मध्य में 'ब्रह्मतीर्थ' है। इसमें स्नान तथा पिण्डदान करने से मानव अपने एक सौ एक कुलों का उद्धार करता है। तदनन्तर 'धर्माधर्म' 'ऋणमोक्ष', 'पापनाशन', 'सौन्दर्यद' एवं 'नरक'[3] नाम के तीर्थ हैं। उसके बाद अच्छे बेंतों की लता से संयुक्त 'सुवेत्र' नामक तीर्थ है। तब 'योगीश्वर' नामक तीर्थ है। फिर 'शूलगङ्गा' का संगम है। यहाँ तपश्चर्या में लीन शङ्कर ने त्रिशूल से 'दारुवन' का भेदन कर योगस्थिति में ही इस पुण्यशीला गङ्गा को बाहर निकाला था। उसमें अनेक तीर्थ हैं। वे 'माहेन्द्र', 'लवण', 'त्वाष्ट्र', 'सारमेय' नामों से जाने जाते हैं। उनमें स्नान करने से इन्द्रभवन प्राप्त होता है। तत्पश्चात् 'मृत्युञ्जय' नामक विशिष्ट तीर्थ है। तब 'हेतुवृन्दारक' तथा 'कौशल्य' नाम के तीर्थ हैं। तदनन्तर 'पाकशासन' नाम से प्रसिद्ध 'माहेन्द्रतीर्थ' एवं 'वरुण' तथा 'वागीश्वर' तीर्थ हैं। फिर 'कपर्दी',

---

१. 'तीर्थमस्ति न संशयः' इति 'क'। २. 'तपोधन' इति 'क'।

३. पुराणों और धर्मशास्त्रों के अनुसार वह स्थान, जहाँ पापियों की आत्मा को दण्ड भोगने के लिये भेजा जाता है और कर्मानुसार फिर जन्म होता है (ब्रह्माण्ड० ४।२।१४६-१५०)। नरकों की संख्या २७ बतलाई गई है। मनुस्मृति ने २१ नरक माने हैं। वे इस प्रकार हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान। भागवत में इनके अतिरिक्त ७ और भी कहे गए हैं।

ततः कर्पवितीर्थं वै धनवं हि ततः स्मृतम् । ततो विद्याप्रदं तीर्थं शुद्धपीतजलं द्विज ।।१७४।।
ततस्तु कायतीर्थं वै शुक्रतीर्थं ततः स्मृतम् । ततो गणेशतीर्थं वै तीर्थं चण्डीश्वराह्वयम् ।१७५।
ततो वानरतीर्थं वै सिंहतीर्थं ततः स्मृतम्[1] । ततः कपिलतीर्थं वै जयन्ताख्यं ततः परम्।।१७६।।
रूपदं धनदं नाम सूर्यतीर्थं ततः परम् । तथा ब्रह्मकपालाख्यं तथा यमविनिर्णयम् ।।१७७।।
देवार्णतारकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् । ततस्त्वलकनन्दायाः सङ्गमस्ति तपोधन ।।१७८।।
तयोर्मध्ये सुपुण्याख्या चास्ति पुण्या सरस्वती । निमज्य मानवस्तत्र महेशभवनं व्रजेत् ।।१७९।।
शृणुष्वालकनन्दायास्तीर्थानि सुबहूनि च । मरीचिरत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं तथा ।।१८०।।
तथा नारदतीर्थं वै पर्वताख्यं ततः परम् । निमज्य तेषु तीर्थेषु देवो भवति मानवः ।।१८१।।
ततस्तु शेषतीर्थं वै तक्षकाख्यं ततः परम् । ततस्तु बलतीर्थं वै क्राथतीर्थं ततः परम् ।।१८२।।
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्स्कन्दितीर्थं ततः परम् । ततो ब्रह्मण्यदं नाम शूद्रवृत्तिहरं ततः ।।१८३।।
काकपक्षाककं नाम तीर्थमस्ति ततः परम् । ततस्तु भोगनाथाख्यं तीर्थमस्ति शुभप्रदम् ।।१८४।।
ततः करिकराकार ऐरावणह्रदः स्मृतः । ततस्तु वारुणीतीर्थं पौलोम्याश्च ततः परम् ।।१८५।।
ततस्तु मेनकातीर्थं मेनकासङ्गमं ततः । ततस्तु गौतमीतीर्थं गौतमस्तदनन्तरम् ।।१८६।।
ततो मुद्गलतीर्थं वै कुम्भाण्डाख्यं ततः परम् । ततस्तु हिमवताख्यं वै जैमिनिस्तदनन्तरम् ।१८७।
ततः पराशराख्यं च व्यासतीर्थं ततः परम् । ततस्तु शुकतीर्थं वै चन्द्रतीर्थं ततः परम् ।।१८८।।
परं हि हाटकेशाख्यं तीर्थं त्रिदशसेवितम् । विद्यते यत्र वै देवो हाटकेशो महेश्वरः ।।१८९।।
ततस्तु वह्नितीर्थं वै कदुष्णजलसेवितम् । विद्यते सर्वपापानां हेतुभूतं विनाशने ।।१९०।।
त्रिनेत्रपादसंसेव्या ततो गौरी महासरित् । जटागङ्गामहासङ्गं प्राप्य सा राजते द्विज ।।१९१।।

'धनद' तथा शुद्ध जलयुक्त 'विद्याप्रद' नाम के तीर्थ हैं। तदनन्तर 'काय' 'शुक्र', 'गणेश' और 'चण्डीश्वर' तीर्थ हैं। तत्पश्चात् 'वानर', 'सिंह', 'कपिल', 'जयन्ती', 'रूपद', 'धनद', 'सूर्य', 'ब्रह्मकपाल', 'यमविनिर्णय' तथा 'देवार्णतारक' सर्वपापप्रणाशन तीर्थ हैं। हे तपोधन ! तब 'अलकनन्दा' का संगम है। इसके मध्य में पुण्यशीला 'सरस्वती' नदी है। वहाँ स्नान करने से मानव शिवलोक प्राप्त करता है। अब 'अलकनन्दा' के बहुत से तीर्थों के बारे में सुनें। 'मरीचि', 'अत्रि', 'अङ्गिरा', 'पुलस्त्य', 'पुलह', 'नारद', तथा 'पर्वत' नाम से अनेक तीर्थ विख्यात हैं। उनमें स्नान करने से देवत्व प्राप्त होता है। तब 'शेष', 'तक्षक', 'बल', 'क्राथ' 'नन्दी', 'स्कन्द', 'ब्रह्मण्य', 'शूद्रवृत्तिहर', 'हर', 'काकपक्षाकक' तथा 'भोगनाथ' तीर्थ हैं। फिर हाथी की सूँड के आकार का 'ऐरावत-ह्रद' है। फिर 'वारुणी' 'पौलोमी', 'मेनका', 'मेनका-सङ्गम', 'गौतमी', 'गौतम', 'मुद्गल', 'कुम्भाण्ड', 'हिमवन्त', 'जैमिनि', 'पराशर', 'व्यास', 'शुक' 'चण्ड' तथा देवताओं से सेवित 'हाटकेश'[2] नामक अनेक तीर्थ हैं। वहाँ 'हाटकेश्वर'[3] शिव भी विराजमान हैं। फिर मन्दोष्ण जलयुक्त पापों का विनाशक 'वह्नितीर्थ' है। तत्पश्चात्

---

१. 'परम्' इति अन्यत्र।

२. हिमालय के उत्तर भागवर्ती एक देश का नाम 'हाटक' है। उत्तर दिग्वजय के समय अर्जुन यहाँ गए थे और गुह्यकों को समझा-बुझा कर अपने अधीन कर लिया था।

३. गोदावरी-तट पर भी 'हाटकेश्वर' का मन्दिर स्थित है।

ततो गौरीश्वरो देवः पूज्यते देवनायकैः । तं सम्पूज्य जनो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् ॥१९२॥
ततः कपर्दिसम्भूता सरयूसङ्गमं गता । न तु वर्षशतैर्वापि तीर्थानां वर्णनं मया ॥१९३॥
शक्यते नान्यथा विप्र सत्यमेतन्मयोदितम् । सोमपानफलं यस्य पिबता जायते द्विज ॥१९४॥
जनानां तोयमात्रेण सत्यमेतन्मयोदितम् । निमज्य तीर्थे मनुजो यज्ञान्तस्नानजं फलम् ॥१९५॥
प्राप्नोति नात्र सन्देहस्तत्र जागीश्वरस्थले । तीर्थेषु तेषु यः स्नात्वा प्रणतो द्विजसत्तम ॥१९६॥
देवं जागीश्वरं पूज्य नरो याति परां गतिम् । यस्तु सर्वेषु तीर्थेषु निमज्य परमेश्वरम् ॥१९७॥
सम्पूज्य ब्रह्मतीर्थे च श्राद्धं कृत्वा विधानतः । समुत्तीर्णं प्रकुरुते कुलमेकोत्तरं शतम् ॥१९८॥
तत्र जागीश्वरं देवं सप्तरात्रेण वै द्विज । पूजयन्ति निराहारास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥१९९॥
त्रिरात्रेण च यो विप्र शंकरं तत्र पूजयेत् । मनोभिलषितां सिद्धिं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥२००॥
दारुकाननमध्ये वै पुण्यं कल्पतरुं हि ये । पश्यन्ति मानवाः सम्यक् न तेषामिह दुर्लभम् ॥२०१॥
येन तेषु च तीर्थेषु सुस्नातं द्विजसत्तम । गङ्गायमुनयोः सङ्गे माघस्नानशतत्रयम् ॥२०२॥
कृतं तेनात्र सन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् । संक्षेपेण मया विप्र तीर्थाख्यानं निबोधितम् ॥२०३॥
लिङ्गानामपि माहात्म्यं कथितं पुण्यवर्धनम् । शृणु पूजाविधिं सम्यक् जागीशस्य द्विजोत्तम ॥
निमज्य ब्रह्मतीर्थे वै सुस्नातविधिना द्विज । मृत्युञ्जयञ्च सम्पूज्य ततो देवीं हरिप्रियाम् ।२०५॥
ततो जागीश्वरं गच्छेत्प्रक्रम्य विधिपूर्वकम् । प्रणम्य च यथान्यायं गत्वा देवस्य सन्निधौ ॥२०६॥

त्रिनेत्र के चरणों से उत्पन्न एक बड़ी 'गौरी' नदी का 'जटागङ्गा' के साथ संगम है। वहाँ 'गौरीश्वर' की पूजा करने से शिवलोक प्राप्त होता है। तब 'जटागङ्गा' का 'सरयू' के साथ संगम होता है। विप्रवर ! सैकड़ों वर्षों में भी इनका वर्णन असम्भव है। इस बात को सच मानो कि इसका जल-पान करने से सोमपान करने का फल प्राप्त होता है। इन तीर्थों में स्नान करना 'अवभृय' स्नान (यज्ञान्तस्नान)[1] के समान माना गया है। यागीश्वर के तीर्थों, में स्नान कर 'यागीश्वर' का पूजन करने से मनुष्य को परम गति प्राप्त होती है। तीन रात्रि तक शिव की पूजा करने वाले ब्राह्मण को निःसन्देह मनोभिलषित फल मिलता है। दारुवन के मध्य में एक पुण्यशील 'कल्पवृक्ष' है। इसे जो अच्छी तरह देखते हैं, उनके लिए संसार में कुछ दुर्लभ नहीं है। हे द्विजश्रेष्ठ ! इन तीर्थों में स्नान करने से गङ्गा-यमुना के संगम में सौ माघ-स्नान करने का फल प्राप्त होता है। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है। मैंने यह संक्षेप में तीर्थों का वर्णन कर दिया है। इसके साथ ही पुण्यप्रद लिङ्गों का माहात्म्य भी बतला दिया है। अब यागेश्वर की पूजाविधि के सम्बन्ध में सुनो। द्विजवर ! सर्वप्रथम 'ब्रह्मतीर्थ' में स्नान कर 'मृत्युञ्जय' की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर 'शङ्करप्रिया' पार्वती की अर्चना के पश्चात्

---

१. यज्ञानुष्ठान की समाप्ति पर किया जाने वाला स्नान 'अवभृय'-स्नान के नाम से जाना जाता है। भागवत १०-७५।८-९ में भीष्म द्वारा सम्पादित राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर 'अवभृय'-स्नान का वर्णन हुआ है—

'ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ।
चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥
मृदङ्गशङ्खपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः । वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे' ॥

आगमोक्तेन विधिना शिवपूजां समाचरेत् । पञ्चरत्नैश्च सम्पूर्णं कलशं स्थापयेच्छुभम् ॥२०७॥
गणेशं स्कन्दिना युक्तं कलशोपरि विन्यसेत् । ततोऽर्घं विधिवद् भूमौ संस्थाप्य द्विजसत्तम ।२०८।
अङ्गन्यासं विधानेन कृत्वा प्राणान्नियम्य च । ततः सङ्कल्पविधिना सुसङ्कल्पं समाचरेत् ।२०९।
ततस्तु मातृकान्यासं विधाय द्विजसत्तम । ऋष्यादिन्यासमारभ्य स्वाङ्गपूजां विधाय च ॥२१०॥
धर्मादीन् लोकपालांश्च दिग्द्वारे पूजयेद् द्विज । द्वाविंशाक्षरमन्त्रेण चावाह्य परमेश्वरम् ।२११।
द्वादशाक्षरमन्त्रेण कृत्वा पाद्यादिकं ततः ।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य पुनः शुद्धजलेन च । द्वात्रिंशाक्षरमन्त्रेण स्नापयेद्विधिपूर्वकम् ॥२१२॥
ततो वस्त्रञ्च यज्ञं च दत्वा गन्धं विलेपयेत् । पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण विलिप्य चन्दनं शुभम् ॥२१३॥
षड्विंशाक्षरादिमन्त्रेण चाधारादीन्प्रपूजयेत् । ततोऽक्षतैः सकुसुमैः पूजयेत्परमेश्वरम् ॥२१४॥

सम्पूज्य धूपागुरुसंयुतं द्विज ! निवेद्य दीपं कलिकल्मषघ्नम् ।
घृतान्वितं पायसमाद्यदेवं निवेद्य नीराजनकं विधाय ॥ २१५ ॥
ततस्तु तोष्येत्प्रणतो महेशं कपालपाणिं शितिकण्ठदेवम् ।
कलाधरश्चन्द्रनिषेवितं तं वृषध्वजं पञ्चमुखं त्रिनेत्रम् ॥ २१६ ॥
नमः शिवाय शशिशेखराय हराय कालान्तकराय तुभ्यम् ।
भस्माङ्गरागाय रविप्रभाय देवाय तुभ्यं मदनान्तकाय ॥ २१७ ॥
किरीटमालासुविराजिताय षडर्धनेत्राय वृषध्वजाय ।
नागेन्द्रहाराय नगप्रभाय देवीकलत्राय सदाशिवाय ॥ २१८ ॥
श्रीवामदेवाय कलाधराय सुयोगगम्याय जटाधराय ।
देवाय तुभ्यं त्रिपुरान्तकाय चण्डीशपूज्याय नमः शिवाय ॥

परिक्रमा करते हुए 'यागीश्वर' देव के समीप पहुँचे । उन्हें प्रणाम करे । तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधि से उनकी अर्चना करे । वहीं पञ्चरत्नों से युक्त शुभप्रद कलश की स्थापना की जाय । 'गणेश' और 'कार्तिकेय' की स्थापना उस कलश पर करे । उस स्थापित कलश के समीप अर्घ-स्थापन कर अङ्गन्याससहित प्राणायाम करना चाहिये । फिर पूजासंकल्प किया जाय । तब 'मातृकान्यास' एवं 'ऋष्यादि-न्यास'-पूर्वक अङ्गन्यास करना चाहिये । तत्पश्चात् दिशाओं के द्वार में धर्मादि लोकपालों की पूजा की जाय । फिर द्वाविंशाक्षर मन्त्र से आवाहन एवं बारह अक्षर के मन्त्र से पाद्यादि तथा बत्तीस अक्षरों के मन्त्र से स्नान कराया जाय । फिर वस्त्रादि अर्पित कर पञ्चाक्षर मन्त्र से चन्दन का लेप करे । तत्पश्चात् छब्बीस अक्षर के मन्त्र से आधारादि पूजन कर अक्षत एवं सुगन्धित फूलों से समभ्यर्चना की जाय । अगरु-धूप से युक्त दीप-प्रदर्शन कर घृतमिश्रित पायस का नैवेद्य अर्पण करना चाहिये । फिर नीराजन कर प्रणतभाव से मन्त्र-पुष्पाञ्जलि दी जाय । भगवान् शिव के विभिन्न नामों—अर्थात् कपालपाणि, शितिकण्ठ, कलाधर, चन्द्रशेखर, वृषध्वज, पञ्चमुख, त्रिनेत्रादि का संकीर्तन कर नमस्कार किया जाय । इनके साथ ही चन्द्रशेखर तथा कालान्तकर का नाम लेकर प्रणाम किया जाय । इसी सन्दर्भ में अन्य नामों से भी शिव को प्रणाम करे । वे इस प्रकार हैं—'भस्म का अङ्गराग लगाने वाले, सूर्य के समान कान्तियुक्त, कामान्तक, मुकुट और माला को धारण करने वाले, वृषभध्वज, त्रिनेत्र, नागेन्द्र का हार धारण करने वाले, देवी सहित रत्न के समान दीप्तिमान् सदाशिव, वामदेव,

इति स्तुत्वा महादेवं प्रणमेत्सुसमाहितः ॥ २१९ ॥
दण्डवद्विधिवद्विप्र सम्यगष्टोत्तरं शतम् । ततः प्रक्रमणं कृत्वा सव्यासव्यविधानतः ॥२२०॥
देवं क्षमापयेद्विप्र भवानीवल्लभं प्रभुम् । क्षमाप्य स्वकृतान्दोषान्वाचयेद्देवसन्निधौ ॥२२१॥
कायिकान्वाचिकान्वापि मनसा च कृतानपि । ततस्तु प्रार्थयेद्देवं मुक्त्यर्थं द्विजसत्तम ॥२२२॥
प्रार्थकाय परां सिद्धिं[1] प्रयच्छति महेश्वरः । अनेनैव विधानेन शंकरं यस्तु पूजयेत् ॥२२३॥
तस्य नास्तीह संसारे भीतिः कुत्रापि वै द्विज । गच्छ त्वं तत्र वै विप्र यत्र जागीश्वरो हरः ।२२४।
जागर्ति देवगन्धर्वैः पूजितो विश्वभावनः । तत्र ते पातकाः सर्वे प्रणश्यन्ति न संशयः ॥
मर्त्यलोके सुदुर्ज्ञेयां तत्र मुक्तिमवाप्स्यसि ॥२२५॥

श्रीभगवानुवाच—

इति तस्य ऋषेर्वाक्यमाकर्ण्य मुनिसत्तमाः ॥ २२६ ॥
तमभ्यर्च्य यथान्यायं प्रणम्य च पुनः पुनः । ययौ चोत्तरमार्गेण स द्विजो दारुकाननम् ॥२२७॥
सिद्धगन्धर्वमनुजैर्ब्रह्माद्यैर्देवनायकैः । तथा गन्धर्वकन्याभिः सेवितं सुमनोहरम् ॥२२८॥
तत्र सिद्धपर्यैर्ज्ञात्वा स ययौ ब्राह्मणाधमः । गहनं देववृक्षैश्च सुदिव्यं दारुकाननम् ॥२२९॥
नन्दनागतवृक्षैश्च गहनं नन्दनोपमम् । तस्य मध्ये मृडानीशं रुद्रकन्यानिषेवितम् ॥२३०॥
सहस्रादित्यसंकाशं स्वभासा पूरिताम्बरम्[2] । गणेशनन्दिप्रमुखैः पार्षदैः सुनिषेवितम् ॥२३१॥
भूतले ऋषिकान्ताभिरप्रकाश्यं प्रकाशितम् । स ददर्श मृडानीशं देवं जागीश्वरं प्रभुम् ॥२३२॥
प्रफुल्लवदनो भूत्वा महादेवं रविप्रभम् । नमश्चक्रे महाभागाः पापसागरसंयुतः ॥२३३॥

कलाधारी, योगगम्य, जटाधारी, त्रिपुरासुरारि तथा चण्डीश के पूज्य शिव को हमारा नमस्कार है'। इन नामों से स्तुतिपूर्वक भगवान् को बार-बार प्रणाम करना चाहिये। हे विप्र! तत्पश्चात् भगवान् शंकर से क्षमायाचना करते हुए अपने कायिक, वाचिक तथा मानसिक दोषों को बतलावे। फिर मुक्ति की याचना की जाय। इस तरह प्रार्थना करने वाले को भगवान् सिद्धि प्रदान करते हैं। इस प्रकार शंकर का पूजन करने से संसार में भय नहीं रह जाता। अतः हे विप्रवर! तुम यागीश्वर की शरण में जाओ। वे देव, गन्धर्व आदि से पूजित होते हुए सबका दुःख दूर करने वाले हैं। वहाँ जाने पर तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे। तुम मर्त्यलोक में दुर्लभ मुक्ति प्राप्त कर लोगे ॥ ९१ – २२५ ॥

विष्णु भगवान् ने कहा—हे मुनिवरों! इस प्रकार ऋषि की वाणी को सुन कर वह ब्राह्मण विधिपूर्वक यागीश्वर का पूजन एवं बार-बार प्रणाम करने के पश्चात् उत्तरमार्ग से 'दारुकानन' की ओर चला गया। वह दारुकानन सिद्ध, गन्धर्व, मानव एवं ब्रह्मादि देवों से सेवित तथा नन्दनवन से लाये गए वृक्षों से संयुक्त हो नन्दनवन की तरह सुशोभित है। कल्पवृक्षों से विभूषित उस घने देवदारुवन में रुद्रकन्याओं से सेवित पार्वतीपति शङ्कर हजारों सूर्यों के समान अपनी दीप्ति से आकाश को पूरित करते हुए गणेश एवं नन्दी आदि गणों सहित विराजमान हैं। इस लोक में अप्रकाश्य होने पर भी ऋषिपत्नियों द्वारा प्रकाशित उन भगवान् को उस ब्राह्मण ने देखा। वह पातकी ब्राह्मण दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग को देख बड़ा पुलकित

---

१. 'मुक्तिम्' इति 'क'। २. 'भासा पूरितमम्बरम्' इति 'क'।

प्रणम्य देवदेवेशं दृष्ट्वा लिङ्गानि सर्वतः । चक्रे स्नानं स तीर्थेषु यथोक्तविधिना द्विजः ।२३४।
स्नात्वा सर्वेषु तीर्थेषु सर्वपापप्रणाशिषु । त्रिनेत्रलिङ्गमारभ्य पूज्य लिङ्गानि वै द्विजः ।।२३५।।
यावत्स वृद्धयागीशो राजते पापनाशकः । ततः स ब्रह्मतीर्थे वै निमज्य विधिपूर्वकम् ।।२३६।।
जागीशं पूजयामास पूर्वोक्तविधिना द्विजः । सप्तरात्राणि वै विप्र निराहारो जितेन्द्रियः।२३७।
ततः समाप्य देवस्य पूजां वै द्विजसत्तम । प्रक्रम्य च यथान्यायं प्रणम्य च पुनः पुनः ।।२३८।।
पितॄन्सन्तर्पयामास ब्रह्मतीर्थे तपोधनाः । सन्तर्प्य च पितॄन्सर्वान्दत्त्वा पिण्डं पृथक् पृथक् ।२३९।
तारयामास वै विप्राः कुलमेकोत्तरं शतम् । स सन्तर्प्य पितॄन्सर्वांस्तथा मातामहानपि ।।२४०।।
पुनर्निमज्य विधिवद्ययौ यागीशसन्निधौ । तत्र गत्वा महादेवं मुक्त्यर्थं द्विजसत्तम ।।
प्रार्थयामास वै विप्रा वाच्यान्पापान्पुराकृतान् ।। २४१ ।।

ब्राह्मण उवाच—

मया स्वमाता निहता महेश ! तथा हि वेश्यागमनादिकं च ।
पापस्य मे पापरतस्य शम्भो कुरुष्व मुक्तिं प्रणतोऽस्मि तुभ्यम् ।। २४२ ।।

श्रीभगवानुवाच—

तेन सम्प्रार्थितः शम्भुर्ददौ मुक्तिं सुदुर्लभाम् । सायुज्यां देवगन्धर्वैर्दुष्प्राप्यां मुनिसत्तमाः ।।२४३।।
इत्येतत्कथितं विप्राः सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् । गोविप्रगुरुबालघ्नास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।२४४।
यत्र वै पापराशिस्थो ब्राह्मणोऽपि परां गतिम् । प्राप्तवान्देवदेवस्य प्रसादान्मुनिसत्तमाः ।२४५।
तस्मान्नान्यं प्रपश्यामि मुक्तिमार्गप्रदर्शकम् । भूतले मुनिशार्दूलाः सत्यमेतन्मयोदितम् ।।२४६।।
तस्माद्भवन्तो योगाढ्या व्रजन्तु क्षेत्रनायकम् । तत्र जागीश्वरं देवं पश्यन्तु सुसमाहिताः ।।
मानवानां हितार्थाय लोके व्याख्यापयन्तु च ।।२४७।।
तत्र मे प्रतिमां दिव्यां ब्रह्मतीर्थस्य मध्यगाम् । पश्यन्तु पापविच्छित्त्यै ब्रह्मणा सहितां शुभाम् ।।

हुआ। देवदेवेश यागीश्वर तथा चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित शिवलिङ्गों को देख उसने सब तीर्थों में विधिपूर्वक स्नान किया। फिर उसने त्रिनेत्र-लिङ्ग का पूजन किया। तत्पश्चात् 'वृद्ध-यागीश्वर' का दर्शन कर 'ब्रह्मतीर्थ' में स्नान किया। पूर्वोक्त विधान के अनुसार उसने सात-रात्रिपर्यन्त निराहार होकर भगवान् की अर्चना की। पूजन समाप्त कर उस विप्र ने परिक्रमा एवं प्रणाम करते हुए ब्रह्मतीर्थ में पितरों का तर्पण एवं श्राद्ध कर अपने एक सौ एक कुलों का उद्धार किया। पुनः स्नान कर वह यागीश्वर देव के समीप गया तथा अपने पूर्व कृत्यों तथा पापों का उद्घाटन कर मुक्ति के लिए इस प्रकार प्रार्थना करने लगा ।। २२६-२४१ ।।

ब्राह्मण ने कहा—हे देवेश ! मैंने अपनी माता का वध किया है तथा वेश्यागमनादि अनेक दुष्कर्म भी किए हैं। मुझ पापी को आप मुक्ति-प्रदान करें। मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ ।। २४२ ।।

विष्णु भगवान् बोले—उसकी प्रार्थना सुन कर भगवान् शङ्कर ने उसे दुष्प्राप्य मुक्ति दे दी। इसी हेतु मैंने उस क्षेत्र के विषय में बतला दिया है। गो, ब्राह्मण, गुरु एवं बालकों की हत्या करने वालों को जहाँ मुक्ति प्राप्त हो जाती है, उसी क्षेत्र में वह पापी ब्राह्मण भी परम गति को प्राप्त कर सका। इससे बढ़ कर और दूसरा क्षेत्र कौन हो सकता है ? अतः हे मुनि-

वसिष्ठ उवाच—

पश्यतामेव विप्राणां तदा देवो जनार्दनः । संश्राव्य भारतीं पुण्यां तत्रैवान्तरधीयत ॥२४९॥
मुनयोऽपि निरातङ्का ज्ञात्वा क्षेत्रं महीतले । प्रत्याययुर्महाभागाः स्वाश्रमान्नष्टकल्मषाः ।२५०।
निर्ममा निरहङ्कारास्त्यक्तसन्देहकारणाः । सदा स्वाध्यायनिरताः सदा लोकहिते रताः ॥२५१
इत्येतत्कथितं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । क्षेत्राधिराजसंज्ञं वै यथा त्वं परिपृच्छसि ॥२५२॥
यश्चेमां वाचयेन्मर्त्यः शृणुयाद्वा समाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति[1] ॥२५३॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'यागीश्वरमाहात्म्ये' एकषष्टितमोऽध्यायः ॥

वरों ! योगयुक्त होते हुए भी आप उस क्षेत्र में जायें। वहाँ ध्यानपूर्वक यागेश्वर का दर्शन करें। लोकहितार्थ उन्हें प्रकाश में भी लायें। वहीं 'ब्रह्मतीर्थ' के मध्य पापों की विनाशिका 'विष्णु' तथा 'ब्रह्मा' की मूर्ति भी देखें। उनके दर्शन से समग्र पाप विलीन हो जाते हैं।

(तब) महर्षि वसिष्ठ ने कहा—उस पुण्य वाणी को सुना कर सबके देखते-देखते विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गए। सब ऋषिलोग भी पृथ्वी पर स्थित ऐसे महनीय क्षेत्र के सम्बन्ध में जानकर पापरहित हो अपने-अपने आश्रमों को चले गए। वे सभी ममता एवं अहङ्कार से रहित, स्थिरमति तथा स्वाध्याय में लगे हुए लोकहित के लिए सर्वदा तत्पर रहते थे। हे मुनिवरो ! आप लोगों की जिज्ञासा के अनुसार मैंने उस पुण्यशील क्षेत्र का वर्णन कर दिया है। जो मनुष्य इस कथा का श्रवण करेगा या लोगों को सुनायेगा, वह पापरहित हो शिवलोक प्राप्त करेगा ॥ २४९–२५३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'यागीश्वर[2]-क्षेत्रराज-माहात्म्य' नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'शिवलोके महीयते' इति 'क'।

२. द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में 'नागेश' नामक लिङ्ग 'मानसखण्ड' के अनुसार यहाँ वर्णित है। यह स्थान अल्मोड़ा से १७ मील उत्तर पूर्व की दूरी पर है। 'जागेश्वर' के नाम से यह जाना जाता है। 'यागेश' और 'नागेश' में कैसे साम्य हो ? ऋषियों की यज्ञस्थली होने से 'याग' यहाँ होते रहे हैं। 'नाग' जाति का प्राधान्य भी इस क्षेत्र में रहा है। इसके प्रतीकात्मक मन्दिरों का समूह भी 'नागों' के नाम से प्रसिद्ध है। ये प्रतीकात्मक नाम 'बेरीनाग', 'धौलेनाग', 'कालियनाग' आदि नामों से जाने जाते हैं। इन नागमन्दिरों एवं स्थानों के केन्द्र-स्वरूप 'नागेश' के नाम से इनकी प्रसिद्धि पुराणों में वर्णित है। मन्दिर बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि 'शालिवाहन' ने इसका जीर्णोद्धार कराया था। इस मन्दिर के समीपवर्ती 'मृत्युञ्जय' में एक शिलालेख मल्ल राजाओं द्वारा अंकित कराया गया था। यह घटना 'ह्वेनसांग' के समय की ज्ञात होती है। 'मल्ल' लिच्छवियों के मामा थे। इस ज्योतिर्लिङ्ग की मान्यता बड़ी प्राचीन है। आदि शङ्कराचार्य भी यहाँ आए थे। यहाँ के पूजक भी नम्बूदरी ब्राह्मण रह चुके हैं। देवदारु वन यहीं है।

६२

व्यास उवाच—

इति तस्य ऋषेर्वाक्यं स रामतनयो बली। श्रुत्वा निश्चलदेहो वै बभूव मुनिसत्तमाः ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

दारुकाननमाहात्म्यं तथा यागीश्वरस्य च। कथितं भवता ब्रह्मन् सर्वज्ञेन महात्मना ॥२॥
परं यः पर्वतश्रेष्ठो विद्यते मुनिसत्तम। क्षेत्राणां तस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामः साम्प्रतम् ॥३॥

व्यास उवाच—

दारुकाननमध्ये वै नद्यो याः समुदाहृताः। ताः सर्वाः सरयूं प्राप्य वर्ण्यन्ते नात्र संशयः ॥४॥
दारुकाननसंलग्नः पुण्यः शाल्मलिपर्वतः। तस्यैव पश्चिमे भागे पुण्यः पद्मगिरिः स्मृतः ॥५॥
पद्भ्यां पद्मोत्पलाभाभ्यां पद्मनाभस्य वै द्विजाः। यः पूतो गीयते लोके नारदाद्यैर्निषेवितः॥६॥
तस्य कुक्षौ महाभागाः पद्मनाभपदोद्भवा। सम्भूता पद्मपर्णेति व्याख्याता मुनिसत्तमाः ॥७॥
देवगन्धर्वमनुजैः सेविता सुमनोहरा। नानाविधैः पक्षिगणैर्जलजैश्च निषेविता ॥८॥
काकगृध्रबकाकीर्णा चक्रवाकैश्च सेविता। महर्षिजनसङ्घानामाश्रमैश्च प्रपूरिता ॥९॥
मनोहरजला दिव्या भोगिपूर्णा सरिद्वरा। विद्यते मुनिशार्दूलाः पातकौघप्रतारिणी ॥१०॥
तस्या मूले स्वयं विष्णुः पद्मनाभेति गीयते[1]। शङ्खचक्रान्वितो देवः पूज्यते देवनायकैः ॥११॥
पद्मनाभपदाक्रान्तो दिव्योऽयं पर्वतोत्तमः[2]। ताम्राकरैः सुसंयुक्तः[3] स्वर्णाकरविराजितः ॥१२॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार ऋषि की वाणी सुन कर राम का पुत्र स्तब्ध हो गया ॥ १ ॥

(तब) ऋषियों ने पुनः पूछा—हे सर्वज्ञ महर्षे ! आपने 'दारुकानन' तथा 'यागीश्वर' का माहात्म्य तो बतला दिया। अब हम लोग इसके आगे विद्यमान पर्वत तथा क्षेत्र का माहात्म्य सुनने के इच्छुक हैं ॥ २-३ ॥

महर्षि व्यास ने उत्तर दिया—दारुकानन के मध्य जो नदियाँ बतलाई गई हैं, वे सब 'सरयू' में मिल जाती हैं। दारुकानन से संयुक्त शाल्मली-पर्वत है। उसके पश्चिम में पवित्र 'पद्मगिरि' है। वह पद्मनाभ के चरणकमलों से पवित्र किया हुआ है। इसके साथ ही नारदादि मुनियों से सुसेवित भी है। उसकी कोख में पद्मनाभ के चरणों से उत्पन्न 'पद्मपर्णा' नदी है। वह देव, गन्धर्वादि से सेवित होती हुई नाना-विध वृक्षों तथा पक्षियों एवं कमलों से संकुलित है। उसके तटस्थ वृक्षों पर काक, गिद्ध, बगुले तथा चक्रवाक पक्षियों का आवास है। इसके अतिरिक्त महर्षियों के आश्रम भी वहाँ हैं। उसका जल बड़ा स्वच्छ है। यत्र तत्र सर्प भी अपना बिल बना कर रहते हैं। वह पापघ्नी है। उसके उद्गम स्थल पर शङ्ख-चक्र-विभूषित 'पद्मनाभ' देवों से पूजित हो विराजमान हैं। भगवान् पद्मनाभ के चरणों से आक्रान्त इस पर्वत में 'ताँबे' और 'सोने' की खानें भी हैं। वहाँ पर भगवान् की पूजा करने वालों को

---

१. 'वियुतः' 'क'। २. 'पद्मपर्वतः' 'क'। ३. 'स ताम्राकरसंयुक्तः' 'क'।

तत्र दिव्यं हरेर्देहं सम्भाव्य द्विजसत्तमाः । ये पूजयन्ति मनुजास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥१३॥
निमज्य पर्णपत्रायां त्रिरात्रं ये चरन्ति हि । ते यान्ति विष्णुसदनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१४॥
ततस्तु पर्णपत्रायाः सङ्गमे मुनिसत्तमाः । गर्गपर्वतसम्भूता चक्री नाम्नी सरिद्वरा ॥१५॥
प्रयाता मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशिनी । तयोर्मध्ये निमज्याशु चक्रेशं नाम शङ्करम् ॥१६॥
सम्पूज्य मुनिशार्दूलाः सर्वपापैः प्रमुच्यते । सा पुण्यतीर्थसाहस्रैः पूरिता सरयूं गता ॥
प्राप्य तां सरयूं पुण्यां सेव्यते मुनिनायकैः ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पर्णपत्रामाहात्म्यं नाम द्वाषष्टितमोऽध्यायः ॥

सद्गति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति त्रिरात्र निवास कर 'पर्णपत्रा' में स्नानादि करते हैं, वे जन्मबन्धन से रहित हो विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। वहीं आगे चल 'गर्ग'-पर्वत[1] से निकलने वाली 'चक्री' नाम की नदी मिलती है। उनके मध्य स्नान एवं 'चक्रेश' शंकर का पूजन कर मानव सब पापों से विमुक्त हो जाता है। फिर वह नदी अपने तट पर अनेक तीर्थों को अंकित करती हुई 'सरयू' में मिल जाती है। सरयू में संगम होने पर मुनिजनों द्वारा वह सेवित होती है ॥ ४-१७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पर्णपत्रा'-माहात्म्य नामक
बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'गागर धुरा'—५०६२ फीट ऊँचा शृङ्ग।

६३

व्यास उवाच—

ततः परं महाभागाः पुण्यः कूर्माचलः स्मृतः। चक्रवाकैर्मयूरैश्च कङ्कैश्च विनिषेवितः ॥१॥
विद्युदुग्रप्रभावैश्च काननैः सुविराजितः। पुण्यतोयवहाभिश्च नदीभिः परिवारितः ॥२॥
सूकरैर्महिषैर्वन्यैः शार्दूलैश्च तथैव हि। सेवितः स महाभागाः पौलस्त्यैः प्रतिपूजितः ॥३॥
नानावृक्षलताकीर्णो नानाधातुविराजितः। राजते मुनिशार्दूलाः सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥४॥
सरोवरस्य यत्रान्तं[1] प्रवदन्ति मनीषिणः। भूतं भव्यं भविष्यं च यं सम्यग् प्रवदन्ति हि ॥५॥
शङ्करेण निकुम्भाय पृच्छते पर्वतोपरि। मानसेयं जलं यत्र दर्शितं द्विजसत्तमाः ॥६॥
यत्र वै कुम्भकर्णस्य वानरेण हनूमता। निक्षिप्तं सुकिरीटं वै पूर्णयोजनविस्तृतम्[2] ॥७॥

ऋषय ऊचुः—

कथं कूर्माचले विद्वन् वानरेण हनूमता। किरीटं कुम्भकर्णस्य क्षिप्तं कूर्माचले महत् ॥
लङ्कायां निहतस्यापि तथा बलवतोऽपि च ॥८॥

व्यास उवाच—

कुम्भकर्णेति विख्यातः पुलस्त्यतनयो बली ॥ ९ ॥
शिवमाराधयामास दश वर्षाणि सप्त च। शीर्णपर्णानिलाहारः शङ्करं पर्यतोषयत् ॥१०॥

व्यासजी ने कहा—तदनन्तर पवित्र 'कूर्माचल' पर्वत है। वह चकवों, कंक पक्षियों (बगुलों) और मोरों से संकुलित है। वह बिजली की चमक से भयङ्कर घने वनों और पवित्र जल वाली नदियों से घिरा हुआ है। सूअर, शेर और जंगली भैंसों से वह वन अभिव्याप्त है तथा दानवों (पौलस्त्य) की वह वासभूमि भी है। वह श्रृङ्ग नाना प्रकार के वृक्षों, लताओं एवं धातुओं से संकुलित होता हुआ सिद्धगणों से परिसेवित है। यहाँ पर भूत, वर्तमान एवं भविष्य-वक्ताओं द्वारा 'मानसरोवर' का अन्त होना बतलाया गया है। निकुम्भ[3] के द्वारा पूछे जाने पर भगवान् शङ्कर ने उस श्रृङ्ग पर मानसरोवर का जल दिखाया था। यहीं पर एक योजन (आठ मील) तक फैले हुए कुम्भकर्ण के किरीट को महाबली हनुमान् ने फेंका था ॥ १-७ ॥

ऋषियों ने कहा—हनुमान् द्वारा कुम्भकर्ण के किरीट को कूर्माचल में फेंके जाने का वृत्तान्त वर्णन करें ॥ ८ ॥

व्यासजी बोले—पुलस्त्य का पुत्र कुम्भकर्ण महाबली था। उसने १७ वर्षों तक सूखे पत्तों को चबा कर वायु-भक्षण करते हुए कठिन तप किया था। इसके साथ ही आँक के फूलों

---

१. 'यत्र सरोवरस्यान्तम्' 'क'।

२. 'किरीटं कुम्भकर्णस्य क्षिप्तं कूर्माचले महत्'—'क'। तदनन्तरं 'लङ्कायां निहतस्यापि तथा बलवतोऽपि च' इत्यधिकः पाठः।

३. कुम्भकर्ण का एक पुत्र तथा रावण का मन्त्री। वह हनुमान् द्वारा मारा गया था। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में ६१वें अध्याय के २१वें श्लोक में उसका परिचय दिया गया है—

"यश्चैव जाम्बूनदवज्रजुष्टं दीप्तं सधूमं परिघं प्रगृह्य।
आयाति रक्षोबलकेतुभूतो योऽसौ निकुम्भोऽद्भुतघोरकर्मा ॥"

स चार्कदर्भजैः पुष्पैः शङ्करं पर्यतोषयत् । ततः कालेन महता तस्मै तुष्टो हरः स्वयम् ॥११॥
आविर्बभूव वै विप्राः सर्वदेवनमस्कृतः । वरं वरय भद्रं ते ततस्तं समुवाच ह ॥१२॥
नातिगम्भीरया वाचा देवगन्धर्वपूजितः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोऽयमित्येव भाषयन् ॥१३॥
स ददर्शाद्भुताकारं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । त्रिनेत्रं वृषमारूढं चिताभस्मविभूषितम् ॥१४॥
कलाधरं कलावासं[1] शूलहस्तं वृषध्वजम् । नीलकण्ठं महादेवं नरमालाविभूषितम् ॥१५॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं पुलस्त्यतनयो बली । प्रमुञ्चन् वारि नेत्राभ्यां हर्षादाकुललोचनः ॥
स वरं वरयामास दुष्प्राप्यं दैवतैरपि ॥१६॥

कुम्भकर्ण उवाच—

मा मे शिरस्य पतनं लङ्कायां परमेश्वर ॥ १७ ॥
भूयान्मे प्रार्थितं देव एतद्धि नात्र संशयः । द्वितीयमपि देवेश वरयामि सुदुर्लभम् ॥१८॥
वरं देवर्षिगन्धर्वैर्दुष्प्राप्यं मानवैरपि । यत्र वै पतितं लोके किरीटं मे सकुण्डलम् ॥
तत्स्थलं जलमग्नं वै भूयादिति वृणोम्यहम् ॥१९॥

व्यास उवाच —

तथेत्युक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २० ॥
सोऽपि देवाद् वरं लब्ध्वा निश्चलो मुनिसत्तमाः । ययौ लङ्कां सुविस्तीर्णां प्राकारद्वारशोभिताम् ।
ततः कालेन महता रामो दाशरथिः स्वयम् । गत्वा लङ्कां महाभागाः ससुग्रीवः सहायवान् ।२२।
जहार कुम्भकर्णस्य शरेणानतपर्वणा । रामो दाशरथिर्विप्राः सकिरीटं सकुण्डलम् ॥२३॥
तं हत्वा देवदेवस्य वरं स्मृत्वा स राघवः[2] । उवाच स हनूमन्तं मुख्यं वानरपुङ्गवम् ॥२४॥

से चिरकाल पर्यन्त भगवान् शङ्कर की अर्चना की थी। तब भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर प्रकट हुए और कुम्भकर्ण से वर माँगने को कहा। शिवजी की वाणी को सुन कर यह कौन हो सकता है—इस प्रकार सहज वाणी से कहते हुए उसने सिद्धों एवं गन्धर्वों आदि से सेवित अद्भुत आकार वाले त्रिनेत्र, वृषभारूढ़ एवं चिताभस्मधारी भगवान् शङ्कर को देखा। उनके हाथ में त्रिशूल एवं वृषभध्वजा, मस्तक पर चन्द्रकला, नीलाङ्कित कण्ठ तथा गले में मुण्डमाला शोभित थी। उन्हें देख कर वह राक्षस हर्षाश्रुसंयुत हो दुष्प्राप्य वर माँगने लगा ॥ ९-१६ ॥

कुम्भकर्ण बोला—भगवन्! एक तो मैं यह वर माँगता हूँ कि मेरा सिर लङ्का में न गिरे। मैंने यह प्रार्थना अवश्य की है। दूसरा वर मानवों एवं देवों आदि को जो दुष्प्राप्य है, वह यह है कि 'कुण्डलों सहित मेरे मुकुट के गिरने के स्थान को जलमग्न होना चाहिये' ॥ १७-२० ॥

(तब) व्यासजी ने कहा—भगवान् शङ्कर 'तथास्तु' कह कर वहाँ से अन्तर्धान हो गए। कुम्भकर्ण भी वर पाकर निश्चल हो लङ्का की ओर प्रस्थित हुआ। चिरकाल के बाद दशरथ-सुत रामचन्द्र ने सुग्रीव की सहायता से लङ्का पहुंच कर उसका शिरोभेदन कर दिया। भगवान् शंकर के वरदान का स्मरण कर रामचन्द्र ने वानरश्रेष्ठ हनुमान् से इस प्रकार कहा ॥ २१-२४ ॥

---

१. 'कलाभासम्' 'क'। २. 'वरं संस्मृत्य राघवः' 'क'।

श्रीरामचन्द्र[1] उवाच—

शृणु वानरशार्दूल पुराऽनेन दुरात्मना। तोषितः शङ्करो देवो महेन्द्राद्यैः प्रपूजितः ॥२५॥
तेनास्मै देवदेवेन वरं दत्तं महात्मना। न पतिष्यति ते रक्ष लङ्कायां किल ते शिरः ॥२६॥
पुनश्चास्मै महाभागः प्रार्थितो गिरिजापतिः। ददौ देवर्षिदुष्प्राप्यं वरं वानरपुङ्गव ॥२७॥
यत्र ते सकिरीटो हि करोटिः प्रपतिष्यति। तत्स्थलं जलमग्नं वै भविष्यति न संशयः ॥२८॥
वरेणानेन दुष्टस्य लङ्कायां वानरर्षभ। न पतिष्यति वै देहात् करोटिः शुभकुण्डली ॥२९॥
तस्मात् कूर्माचलं शुद्धं चास्य मौलिं दुरासदम्। प्रापयस्व महाभाग कृत्वा वामकरे शुभे ।३०।
तत्र वै राक्षसा घोरा निवसन्त्यतिदारुणाः। त्वया संस्थापितो मौलिस्तत्र तान् प्लावयिष्यति।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा तदा विप्रा हनूमान् वानरर्षभः। तस्य मौलिं विहृत्याशु ययौ कूर्माचलं प्रति ।३२।
स गत्वा पर्वताग्रे वै मौलिं चिक्षेप वै द्विजाः। स मौलिस्तेन निक्षिप्तः प्लावयामास राक्षसान् ॥
स सर्वान् राक्षसान् प्लाव्य सरवद्राजते द्विजाः। स तान्संप्लावितान्दृष्ट्वा प्रफुल्लवदनो द्विजाः ॥
ययौ लङ्कां महाभागा हनूमान् वानरर्षभः। इत्येतत् कथितं विप्रा यथा कूर्माचले शिरः ॥३५॥
कुम्भकर्णस्य दुष्टस्य पतितं पर्वतोपमम्। यं भित्त्वा भीमसेनेन पुत्राय च महात्मने ॥३६॥
दत्तं कूर्माचलं सर्वमसुरैः सुनिषेवितम्। तत्र भीमेन पुण्येन बहवः क्षेत्रनायकाः ॥३७॥
प्रकाश्य दर्शिता विप्रा ब्राह्मणेषु महात्मसु। तत्र सर्वा महानद्यो राक्षसैर्विनिषेविताः ॥३८॥
सन्ति वै मुनिशार्दूलास्ता भीमेन प्रकाशिताः। तत्र घोराः सुबहवो घटोत्कचहिताय वै ॥
वसन्ति राक्षसा विप्राः प्राणिहिंसारताः सदा ॥ ३९ ॥

भगवान् राम बोले—महावीर ! इस राक्षस ने भगवान् शिव से अपना सिर लंका में न गिरने का वर माँगा था। शंकरजी ने उसका सिर वहाँ न गिरने का वचन दिया था। इसके साथ ही उसने एक दुष्प्राप्य वर और भी मांगा था कि 'किरीट-पतन का स्थल भी जलमग्न हो जाये'। अतः इसका सिर लंका में नहीं गिरेगा। इस कारण तुम इसके सिर को बायें हाथ में पकड़ कर पवित्र 'कूर्माचल' पर्वत पर पहुँचा दो। वहाँ घोर दानवों का निवास है। जहाँ तुम इसका सिर रखोगे, वहाँ वह उस भार से राक्षसों को डुबा देगा ॥ २५-३१ ॥

(तब) व्यासजी ने फिर कहा—वीर हनुमान् 'तथाऽस्तु' कहकर कुम्भकर्ण के सिर को 'कूर्माचल' ले गए। वहाँ पर्वत के शिखर पर उसके सिर को फेंका। सिर फेंकते ही वहाँ सब राक्षस डूब गए और वह तालाब की तरह सुशोभित हो गया। राक्षसों को डूबा हुआ देख प्रसन्नमना हनुमान् लङ्का को वापस हो गए। कुम्भकर्ण के पर्वताकार सिर की कूर्माचल पर गिरने की कथा मैंने सुना दी है। तदनन्तर पाण्डव भीमसेन ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर मयूरों से संवलित कूर्माचल को अपने पुत्र को अर्पित कर दिया। फिर महाबली भीम ने अनेक अच्छे-अच्छे स्थान ब्रह्मज्ञानी महात्माओं को दिखाये। इसके साथ ही दानवों से सेवित उस क्षेत्र की श्रेष्ठ नदियों को भी बताया। वहाँ भीम के पुत्र घटोत्कच के हितार्थ बहुत-से राक्षसों के निवास होने की बात भी कही ॥ ३२-३९ ॥

---

१. 'श्रीराम उवाच'—'क'।

ऋषय ऊचुः—

कथं वै भीमसेनेन कुम्भकर्णस्य मस्तकम् । भित्त्वा समर्पितं विप्र स्वपुत्राय महात्मने ॥४०॥
कथं हि बहवो नद्यः पुण्या भीमेन दर्शिताः । कानि तत्र च क्षेत्राणि का नद्यो मुनिसत्तम ॥४१॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूला भीमस्य[1] चरितं महत् । सर्वपापप्रशमनं सर्वरोगप्रणाशनम् ॥४२॥
बभूव भीमसेनस्य हिडिम्बायां सुतोत्तमः । घटोत्कचेति विख्यातो नागायुतबलो द्विजाः ॥४३॥
ततो भारतसैन्यानां मुख्यो भूत्वा घटोत्कचः । युयुधे कौरवैः सार्धं दिनानि दश पञ्च च ॥४४॥
ततः कर्णेन वै विप्रा मायावी राक्षसीसुतः । अमोघशक्त्या निहतो भूमौ स निपपात ह ॥४५॥
ततस्तं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनस्तपोधनाः । शोकेन महताविष्टो मूर्च्छितो निपपात ह ॥४६॥
ततः सम्बोधितो विप्रा राज्ञा धर्मसुतेन हि । प्रत्युत्थाप्य निहत्याग्रचान्कौरवान् कौरवो बली ॥
ददौ राज्यं महाभागो राज्ञो धर्मसुताय वै । सिंहासनगते राज्ञि स धर्मतनये बली ॥४८॥
स्वप्नान्ते तनयं बालं मृतं पुनरिवागतम् । क्रीडन्तं चास्त्रविद्याभिर्मायाशतविशारदम् ॥४९॥
ततस्तं भीमसेनोऽपि समालिङ्ग्य द्विजोत्तमाः । उवाच क्वासि वै पुत्र मां त्यज्य क्व गतो ह्यसि ।
कुतस्त्वं तिष्ठसे शुद्धे स्थले मानवदुर्लभे । सोवाच न मया तात लब्धं भूमण्डले क्वचित् ।५१।
स्थलं मानवदुर्गम्यं पावनं रक्षसां न हि । ददस्व स्थलमेकं मां पुण्यतोयैर्निषेवितम् ॥५२॥
तत्राहं राक्षसैः सार्धं वसिष्यामि न संशयः ॥ ५३ ॥

(तब) ऋषियों ने जिज्ञासा की—महर्षे ! भीमसेन ने कुम्भकर्ण का सिर क्यों तोड़ा ? उसने अपने पुत्र घटोत्कच को वह स्थान क्यों दिया ? भीम के द्वारा वहाँ कौन-से क्षेत्र तथा कौन-सी नदियाँ प्रकाश में लाई गईं ? ॥ ४०–४१ ॥

(इस पर) व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों ! मैं आप लोगों को पाप एवं रोग नाशक भीम का चरित्र सुनाता हूँ। हिडिम्वा नाम की राक्षसी से उत्पन्न घटोत्कच नामक उसका एक पुत्र था। वह दस हजार हाथियों के सदृश अतुल बलशाली था। उसने महाभारत के युद्ध में सेनापति बन कर १५ दिनों तक कौरव-सेना विनष्ट की थी। तब कर्ण ने अपनी अमोघ शक्ति द्वारा उसे मार गिराया था। ऐसी स्थिति में भीमसेन मूर्च्छित होकर गिर पड़े। युधिष्ठिर के समझाने पर उनका शोक दूर हुआ। तब पुनः शत्रुओं का संहार कर युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होने के पश्चात् भीम ने अपने पुत्र को स्वप्न में देखा। वह बालक रूप में पुनः आकर मायावी के रूप में अस्त्र विद्याओं के साथ क्रीडा कर रहा था। भीम ने उसको गले लगाया और कहा कि तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गए हो ? तुम मानवों को दुर्लभ किस पवित्र स्थान पर प्रतिष्ठित हो ? इसके उत्तर में घटोत्कच ने कहा कि 'हे तात ! मैंने भूमण्डल में कहीं स्थान नहीं पाया। आप मुझे कृपा कर पवित्र जल से युक्त कोई स्थान दें। वहीं मैं दानवों के साथ निवास करूँगा' ॥ ४२–४३ ॥

---

१. 'मुनिशार्दूलाः कूर्मस्य'—'क' 'घ' 'ङ' ।

व्यास उवाच—

इति स्वप्नान्तरे दृष्ट्वा उत्तस्थौ पाण्डुनन्दनः ।। ५४ ।।

न तं पश्यत् सुतं तत्र मायाशतविशारदम् । तस्य सम्भाषणं सर्वं सस्मार मुनिसत्तमाः ।।५५।।
स्मृत्वा सम्भाषणं तत्र मूर्च्छितो निपपात ह । ततस्तं मूर्च्छितं श्रुत्वा युधिष्ठिरपुरोगमाः।।५६।।
समाजग्मुर्महाभागा भीमसेनस्य चान्तिकम् । परं सम्बोधयामासुर्भीमं भीमपराक्रमम् ।।५७।।
शीततोयैः सुपुण्यैश्च वायुसम्मार्जनेन च । ततः सम्बोध्य ते[1] सर्वे पप्रच्छुः कारणं महत् ।।५८।।

पाण्डवा ऊचुः—

केन त्वं मोहमापन्नो ह्यसि कौरवनन्दन । कदाचिदपि ते युद्धे मोहोऽस्माभिर्न शङ्कितः ।।५९।।
साम्प्रतं केन वै भीम मोहं त्वं विगतो ह्यसि । तदस्मान्वद वै वाणीं यथावत् सुसमाहितः ।६०।

भीमसेन उवाच—

मया स्वप्नान्तरे राजन् दृष्टो बालो घटोत्कचः । क्रीडमानोऽस्त्रविद्याभिर्मायाशतविशारदः ।।
स मयाऽऽलिङ्गितो राजनुपविष्टो[2] गजाह्वये । त्वं क्वासीति मया पृष्टः स बली मामुवाच ह ।।
स्थातुं हि च मया तात स्थलं प्राप्तं न भूतले । ततोऽहं निद्रया त्यक्तः समुत्थाय नृपोत्तम ।६३।
न चापश्यं सुतं बालं भाषमाणं परस्परम् । तेनाऽहं मूर्च्छितो राजन् प्राप्य चिन्तां दुरत्ययाम् ।।
साम्प्रतं भवता साधुर्बोधितोऽस्मि न संशयः । प्रातरेव महाभाग स्थलं दास्यामि शोभनम् ।।
सुताय सुकुमाराय मायाशस्त्रान्तगामिने ।। ६५ ।।

व्यास उवाच—

इति भीमस्य वचनं श्रुत्वा पाण्डवनन्दनाः । स्थलमारेभिरे कर्तुं युधिष्ठिरपुरोगमाः ।।६६।।

व्यासजी ने कहा – जागने पर भीम ने उस मायिक पुत्र को नहीं देखा । हे मुनिवरों ! स्वप्न में की गई बातचीत का स्मरण कर भीम मूर्च्छित होकर गिर पड़े । तब युधिष्ठिरादि महानुभावों ने भीम को देखा । शीतल जल एवं शीतल वायु के उपचार से वे भीम को होश में लाये । फिर उन्होंने अस्वस्थता का कारण पूछा ।। ५४–५८ ।।

पाण्डवों ने कहा –भीमसेन ! तुम्हारी मूर्च्छा का क्या कारण है ? युद्ध-समय में तो तुम कभी विचलित नहीं हुए । इस समय तुम कैसे मोहित हो गए ? अपनी मूर्च्छा का यथोचित कारण बतलाओ ।। ५९–६० ।।

भीमसेन ने उत्तर दिया—राजन् ! मैंने स्वप्नान्त में बालक घटोत्कच को देखा है । वह शतशः मायिक की तरह अस्त्रविद्या का प्रदर्शन कर रहा था । जब मैंने उसका आलिङ्गन किया तथा पूछा कि तुम कहाँ रहते हो ? उसने यह कहा कि मैंने भूतल पर कहीं स्थान नहीं पाया । निद्रा टूटने पर मैंने उसे वहाँ नहीं पाया । इसके बाद मैं मूर्च्छित हो गया । अब तो आपने मुझे होश में ला दिया है । अतः मैं प्रातः उठ कर अपने उस मायिक सुकुमार पुत्र को सुकर स्थान दूंगा ।।६१–६५ ।।

व्यासजी बोले—इस प्रकार भीमसेन की वाणी को सुनकर युधिष्ठिर प्रभृति पाण्डवों ने स्थान ढूंढना आरम्भ किया ।। ६६ ।।

---

१. 'ततस्तं बोध्य'—'क' ।   २. 'राजनुपविष्टो गजाह्वये' 'क' ।

पाण्डवा ऊचुः—

पुरा रामेण निहतं कुम्भकर्णस्य मस्तकम् । निक्षिप्तं पर्वताग्रे वै वानरेण हनूमता ॥६७॥
पुण्ये कूर्माचलाख्ये वै सरवद्राजते शिरः । जलपूर्णत्वतां प्राप्तं प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥
घटोत्कचाय तं भित्त्वा स्थानं दास्यामः साम्प्रतम् ॥ ६८ ॥

व्यास उवाच—

ततः प्रभाते विरलेन्दुतारके प्रकाशभूते दिननायके द्विजाः ।
उपास्य देवं दिननायकं तदा कूर्माचलं पाण्डुसुता ययुर्मुदा ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'कूर्माचलाख्यानं' नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥

६४

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूला यथा तीर्थं मयोदितम् । यथा भीमेन सरितः प्रकाशत्वं कृताः शुभाः ॥१॥
[1]यथा कूर्मस्वरूपेण देवदेवो जनार्दनः । तस्थौ चाब्दत्रयं विप्रा महेन्द्राद्यैर्निषेवितः ॥२॥
ततः प्रभृति वै विप्राः कूर्मपादाङ्कितो गिरिः । कूर्माचलेति विख्यातो दशयोजनविस्तृतः ॥३॥
तत्र याः सरितः प्रोक्ताः कूर्मपादसमुद्भवाः । ताः सर्वा जाह्नवीतुल्याः सन्ति वै मुनिसत्तमाः ॥

पाण्डवों ने कहा—प्राचीन काल में राम के द्वारा कुम्भकर्ण का वध किए जाने पर हनुमान् ने उसे कूर्माचल पर्वत के ऊपर फेंक दिया था। वह सिर अब सरोवर की तरह शोभित है। भगवान् शंकर की कृपा से वह जल-पूर्ण हो गया है। अब हम उस स्थान को खोद कर घटोत्कच को दे देंगे ॥ ६७-६८ ॥

फिर व्यासजी ने कहा—चन्द्र और तारों के लोप होने पर प्रातः सूर्य के प्रकाशित होते ही पाण्डव भगवान् सूर्य का पूजन कर कूर्माचल की ओर प्रस्थित हुए ॥ ६९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कूर्माचलाख्यान' नामक
तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! भीमसेन द्वारा प्रकाशित नदियों तथा तीर्थों का वर्णन मैंने आप लोगों से कर दिया है। वहीं पर कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु महेन्द्रादि देवगणों से सेवित हो तीन वर्षों तक स्थित रहे। हे विप्रवरों ! तब से यह पर्वत 'कूर्म' भगवान् के चरणों से चिह्नित होने के कारण 'कूर्माचल' (कूर्म + अचल) नाम से विख्यात हुआ। इसका विस्तार दस योजन है। 'कूर्म' के चरणों से उद्भूत होने के कारण वहाँ की नदियाँ जाह्नवी' (गङ्गा)

---

१. 'यत्र'-इति 'क'।

सरयूसंगमे सर्वाः संगता नात्र संशयः । यथा ता भीमसेनेन काश्चित् पुण्या द्विजेषु वै ॥५॥
दर्शिता मुनिशार्दूलास्ताः प्रवक्ष्यामि साम्प्रतम् । ततस्ते पाण्डवाः सर्वे प्राप्य कूर्माचलं शुभम् ॥
सन्तस्थुर्ब्राह्मणैः सार्धं यत्र पाण्डवसंज्ञकम् । वनं विराजते विप्रास्तपस्विविनिषेवितम्[१] ॥७॥
प्राप्य कूर्माचलं विप्रा वनं वृक्षैर्विराजितम् । तत्र ते विधिवत् स्नानं चक्रुः पाण्डुसुताः किल ॥८॥
ततःप्रभृति सा विप्रा गीयते पाण्डवी वनी । पाण्डवीसरितोर्मध्ये ये तत्र मुनिसत्तमाः ॥९॥
निमज्जन्ति महाभागा पितॄन् सन्तर्पयन्ति ये । ते यान्ति परमं स्थानं यत् सुरैरपि दुर्लभम् ।१०।
स तत्र पाण्डवान् सर्वान् विसर्ज्य मुनिसत्तमाः । स्कन्धे निधाय महतीं गदां भीमो महाबलः ॥
ब्राह्मणैर्वेदवेदान्ततत्त्वज्ञैः सह संमतः । ययौ कूर्माचलं पुण्यं कूर्मपादाङ्कितं शुभम् ॥१२॥
व्रजन्ददर्श एलाख्यां कूर्मपादसमुद्भवाम् । नदीं सिद्धगणैः पुण्यां सेवितां सुमनोहराम् ॥१३॥
बृहत्कूलसमायुक्तां रचितां पद्मयोनिना । स तेन नृपमुख्येन भूतले सुप्रकाशिताम् ॥१४॥
सुवेलासरितो विप्राः सङ्गमेन सुशोभनाम् । निमज्य भीमसेनोऽपि तत्र तैर्ब्राह्मणैः सह ॥१५॥
ददर्श सिद्धमेकं वै साक्षाच्छिवतनूपमम् । तीर्थानि मुनिशार्दूलाः स तस्मै पर्यपृच्छत ॥१६॥
सोवाच एलतीर्थं वै सङ्गमे मुनिसत्तमाः । [२]देवर्णतारकं पुण्यं सत्यलोकप्रदर्शकम् ॥१७॥
एलेशं जलमध्ये वै शङ्करं चाप्यर्शयत्[३] । ततः स्रोतः समुत्तीर्य सिद्धतीर्थं प्रदर्शयत् ॥१८॥
मज्जनान्मुनिशार्दूलाः सत्यलोकप्रदर्शकम् । ततोर्ध्वभागे स तीर्थान्[४] दर्शयन् मुनिसत्तमाः ॥

के तुल्य हैं। वे सब 'सरयू' में मिल जाती हैं। उनमें से कुछ नदियाँ भीमसेन ने ब्राह्मणों को विदित कराई थीं, अब मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ। तब ब्राह्मण लोग पाण्डवों के साथ तपस्वियों से परिवेष्टित पाण्डव-वन नामक स्थान पर ठहरे। वह प्रदेश (कूर्माचल) जंगली हरे भरे वृक्षों से संकुलित था। वहाँ की नदियों में पाण्डवों ने स्नान किया। तब से वह स्थान 'पाण्डवीवनी' नाम से जाना गया। उस पाण्डवी नदी[५] में जो स्नान कर पितृ-तर्पण करते हैं, वे परम पद प्राप्त करते हैं। वहाँ भीम ने सब पाण्डवों को बिदा कर बड़ी भारी गदा अपने कन्धे पर रखी। पाण्डव-वन से भीम तत्त्वज्ञ ब्राह्मणों समेत 'कूर्माचल' की ओर गया। वहाँ से जाते हुए मार्ग में उसने 'एला' नदी देखी। उसका तट विशाल था और उसे ब्रह्मा ने रचा था। भीम ने उसे विदित कराया। आगे चलकर 'सुवेला' नदी के संगम पर ब्राह्मणों सहित भीमसेन ने स्नान किया। वहाँ एक सिद्ध पुरुष दिखाई दिया। भीम ने उससे वहाँ के तीर्थों के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। सिद्ध पुरुष ने उन दोनों नदियों के सङ्गम पर देव-ऋणों का निस्तार करने वाला तथा सत्यलोक का प्रदर्शक 'एलतार्थ' बताया। उसने जल के मध्य में 'एलेश' नामक शिव का भी दर्शन कराया। वहाँ से किनारे की ओर उतर कर 'सिद्धतीर्थ' दिखाया। वहाँ स्नान करने से 'सत्यलोक' की प्राप्ति होती है। वहाँ से कुछ ऊपर अनेक प्रख्यात तीर्थ हैं। 'एला' के

---

१. 'तपस्विभिर्निषेवितम्'—'क'।
२. 'संसारतारकं पुण्यम्'—'क'।
३. 'शङ्करं चापि दर्शयत्'—'क'।
४. 'सत्तीर्थान्'—'क'।
५. स्थानीय नाम—पडवानी।

एलामूले महातीर्थं कमठाख्यं प्रदर्शयत् । मज्जनाद्विष्णुलोकस्य दातारं नात्र संशयः ॥२०॥
एलायाः संगमं पुण्यं जामदग्न्याश्रमं शुभम् । कथयद् भीमसेनाय सरय्वां मुनिसत्तमाः ॥२१॥
तस्या मूले[1] महादेवीं भवानीं चाप्यदर्शयत् । एतद् दृष्ट्वा तदा भीमः स्नात्वा एलासरिज्जले ।
व्रजन् कूर्माचलं पुण्यं ददर्श सुतटीं नदीम् । सुवटीसङ्गमगतां कूर्माचलसमुद्भवाम् ॥२३॥
तयोर्मध्ये महादेवं सुतटीशं महेश्वरम् । पूजितं देवगन्धर्वैः क्रव्यादैश्च निषेवितम् ॥२४॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं निमज्य सुतटीजले । पूजयामास वै भीमः सह तैर्ब्राह्मणैर्द्विजाः ॥२५॥
पूजयित्वा शिवं शान्तं गन्धर्वः प्रददर्श तम् । तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमश्चक्रे महाबलः ॥२६॥
ततोपरि स तीर्थानि तं तदा मुनिसत्तमाः । सोवाच तं तदा भीमं प्रणतं प्रणतो द्विजाः ॥२७॥
सुवटी-सुतटी-मध्ये महादेवेत्यसौ प्रभुः । गीयते मानवश्रेष्ठैर्देवगन्धर्वपूजितः ॥२८॥
सुतटी-सरितोर्मध्ये निमज्य पूजयन्ति ये । महादेवं महाभागास्ते यान्ति शिवमन्दिरम् ॥२९॥
सुवटी-सुतटीमध्ये ब्राह्मतीर्थमिति स्मृतम् । निमज्य मानवो याति पिण्डदानं प्रकल्प्य च॥३०॥
त्रिसप्तकुलभिः सार्धं ब्रह्मलोके महीयते । ततः स्रोतः समुत्तीर्य ततः कालीं प्रदर्शयत् ॥३१॥
ततो गन्धर्वतीर्थं वै संसर्गाघप्रणाशनम् । ततोर्ध्वं सुवटीमध्ये तीर्थं विद्याधराह्वयम् ॥३२॥
वचसा सम्भवानां च पातकानां प्रणाशनम् । दर्शयित्वा सुतीर्थानि गन्धर्वः स्वगृहं ययौ ॥३३॥
भीमोऽपि तं नमस्कृत्य व्रजन् कूर्माचलं द्विजाः । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गमायान्तं शिवयोगिनम् ॥
ददर्श मुनिशार्दूला जपन्तं शङ्करं प्रभुम् । नमश्चक्रे तदा भीमः स तस्मै शिवयोगिने ॥३५॥
सोवाच तं तदा भीमं शिवयोगी महातपाः । अस्मिन् कूर्माचले भीम प्राप्तोऽसि केन हेतुना ॥
सोवाच कुम्भकर्णस्य गण्डं भेत्तुमिहागतः । केनचिद्धेतुना योगिन् कथं तं भेदयाम्यहम् ॥३७॥

मूल में उसने 'कमठ' महातीर्थ दिखाया । वहाँ स्नान करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है । हे मुनिश्रेष्ठों ! फिर 'एला' का पवित्र संगम तथा सरयू में जामदग्न्याश्रम भी दिखाया । सरयू के मूल में 'भवानी' को भी बतलाया । यहाँ का दर्शन एवं 'एला' स्नान कर भीम ने 'सुतटी' और 'सुवटी'[२] संगम को देखा । उन दोनों नदियों के मध्य में देव, गन्धर्व और राक्षसों से पूजित 'सुतटीश' नामक शंकर को देखा । वहाँ स्नान कर भीम ने गन्धर्वदर्शित शिव की अर्चना की । तत्पश्चात् उस सिद्ध को प्रणाम किया । तब सिद्ध पुरुष ने भीम को ऊर्ध्वभाग के सभी तीर्थों को बतलाते हुए यह कहा कि यह महादेव देवादि से पूजित हैं । जो मनुष्य इनके मध्य स्नान कर महादेव का पूजन करते हैं, वे शिवलोक में प्रतिष्ठित होते हैं । इन दोनों नदियों के मध्य 'ब्राह्मतीर्थ' है । वहाँ स्नान और पिण्डदान करने से मनुष्य इक्कीस कुलों का उद्धार कर 'ब्रह्मलोक' प्राप्त करते हैं । तब नदी से उतर कर 'काली' को दिखाया । फिर संसर्ग-दोष-हारक 'गन्धर्व' और 'विद्याधर' तीर्थ दिखाये । इसके साथ ही वाणी के दोषों के निवारक अन्य तीर्थों को बतला कर वह गन्धर्व अपने घर चला गया । तब भीम ने उसे नमस्कार किया तथा आगे मार्ग से आते हुए भस्म रमाये एक शिवयोगी को देखा । वह शिव-मन्त्र का जप कर रहा था । भीम ने उसे प्रणाम किया । उस शिवयोगी ने भीम से कूर्माचल आने का कारण पूछा । भीम ने कहा कि मैं कुम्भकर्ण का सिर तोड़ने आया हूँ' । उसे किस तरह तोड़ा जाय ? ॥ १-३७ ।

---

१. 'तस्याः कूले'–'क' ।   २. प्रचलित नाम 'स्वाला' ।

शिवयोग्युवाच—

गच्छ देवं शिवं पश्य तथैव गिरिजासरम् । आक्रम्य स गिरेः कूटं भासयन्तं दिशो दश ॥३८॥
क्रान्तीशं नाम देवेशं क्रान्त्वा पर्वतनायकम् । संस्थितो रुद्रकन्याभिः सेवितं सुमनोहरम् ॥३९॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं वामे दिनकरं व्रज । सम्पूज्य दिननाथं वै परिक्रम्य महेश्वरम् ॥४०॥
सम्पूज्य गिरिजां भीम तदा कुम्भं हि भेत्स्यसि । इत्युक्त्वा शिवयोगी तं वामे कूर्माचलस्य हि ।
नागं प्रदर्शयामास घोरं प्राणिविनाशकम् । तं चूडं गदया भीमो निजघान महाबलः ॥४२॥
ततो वामे महाभागास्तीर्थानि विविधानि च । गिरिजा-बिन्दुकासङ्गे सुपुण्यं गिरिजासरम् ॥
मनोवाक्कायभूतानां पातकानां प्रणाशनम् । अदर्शयन्महाभागाः शिवक्रान्तगिरिं ततः ॥४४॥
निमज्य विधिवत्तत्र गिरिजां पूज्य वै ह्रदे । सन्तर्प्य पितृदेवादीन् भीमसेनो महाबलः ॥४५॥
शिवयोगिप्रदिष्टेन मार्गेण क्रान्तपर्वतम् । स ययौ मुनिशार्दूला भीमो भीमपराक्रमः ॥४६॥
सम्पूज्य तत्र क्रान्तीशं गिरिजामपि सुव्रताः । स च तीर्थसरिन्मध्ये निमज्य च पुनःपुनः ॥४७॥
वामे दिनकरं देवं गत्वा सम्पूज्य वै द्विजाः । नदीं सुविशदां भीमो दृष्ट्वा संस्नाप्य वै द्विजाः ॥
स्नात्वा दिनकरं देवं देवीं वै सुधिकां तथा । सम्पूज्य मुनिशार्दूलाः परिक्रम्य स पर्वतम् ॥४९॥
ययौ स कुम्भकर्णस्य यत्र गण्डे महत्सरः । तत्र गत्वा ततो भीमो देवीं चाऽखिलतारिणीम् ।५०।
सस्मार मुनिशार्दूला देवपुष्पैः सुपूजिताम् ।

शिवयोगी ने कहा—तुम भगवान् शङ्कर के साथ ही 'गिरिजा-सर' को देखो। वह पर्वत के शिखर को आक्रान्त कर दसों दिशाओं को आभासित कर रहे हैं। तत्पश्चात् 'कूर्माचल' (पर्वत) को अभिभासित करते हुए रुद्रकन्याओं से सेवित 'क्रान्तेश्वर' महादेव को दिखाया। फिर यह कहा कि उनका दर्शन एवं वाम भाग में 'सूर्यनारायण' का दर्शन कर भगवान् शङ्कर की परिक्रमा करना। तब 'गिरिजा' का पूजन करना। तत्पश्चात् उसकी खोपड़ी को तोड़ना। तदनन्तर शिवयोगी ने 'कूर्माचल' (पर्वत) के वाम भाग में स्थित प्राणियों के नाशक भयङ्कर नाग[1] को बताया। इस पर भीम ने तत्काल गदा से प्रहार कर उसे मार डाला। हे महाभागो ! वहाँ वाम पार्श्व में अनेक तीर्थ हैं। 'गिरिजा' और 'बिन्दुका' के सङ्गम पर 'गिरिजासर' है। वह मानसिक, वाचिक और शारीरिक पापों का विनाशक है। तदनन्तर 'शिवक्रान्तगिरि'[2] को देखते हुए उसने स्नान किया। फिर 'गिरिजा' का पूजन करने के पश्चात् देव-पितृ-तर्पण करने के उपरान्त महाबली भीम शिवयोगी द्वारा निर्दिष्ट 'क्रान्त'-पर्वत पर आरूढ़ हुआ। तब 'क्रान्तीश' और 'गिरिजा' का पूजन किया। वहाँ के तीर्थ और नदियों में स्नान कर बाईं ओर 'सूर्य भगवान्' का पूजन कर आगे विशाल नदी में स्नान कर 'दिनकर' और 'सुधिका' देवी का पूजन कर क्रान्त-पर्वत की परिक्रमा करते हुए उस स्थान पर पहुंचा, जहाँ कुम्भकर्ण के 'गण्डस्थल' पर बड़ा सरोवर विद्यमान था। वहाँ देवपुष्पों से सुपूजित 'अखिलतारिणी[3] तथा भीमादेवी'[4] को सम्बोधित कर भीमसेन ने कहा ॥ ३८-५० ॥

---

१. 'नागनाथ' नाम से प्रसिद्ध—चम्पावत में तहसील के निकट। २. क्रान्तेश्वर।

३. खिलपति—स्थानीय नाम। यहाँ पर सन् १८१४ ई० में के० हिरसी तथा गोरखा अधिकारी काजी अमरसिंह थापा के मध्य युद्ध हुआ था। कैप्टन हिरसी पराजित होकर गोरखाओं द्वारा अपहृत किया गया था। ४. देवी भागवतानुसार—'हिमाद्री भीमादेवी' यह कथन प्रसिद्ध है। 'भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति'—दुर्गा सप्तशती अध्याय ११-५२।

भीम उवाच—

नमाम्यहं महादेवीं योगमायां हरिप्रियाम् ॥ ५१ ॥

कालपाशनिबद्धानां लोकानां हितकारिणीम् । निशुम्भस्य च शुम्भस्य प्राणविच्छेदकारिणीम् ॥
पूजितां देवभुवने महेन्द्रेण महात्मना । कालरात्रिं महारात्रिं योगरात्रिं शिवप्रदाम् ॥५३॥
देवीं कुमारमातां वै कुमारीं विन्ध्यवासिनीम् । गिरिराजसुतां भद्रां कल्याणीं मङ्गलप्रदाम् ॥
नन्दगोपसुतां देवीं गौरीं ब्रह्मर्षिसेविताम् । सुनन्दप्रमुखैर्दिव्यैः पार्षदैर्विनिषेविताम् ॥५५॥
संसाराखिललोकानां तारिणीं परमेश्वरीम् ।

व्यास उवाच—

एवं स्तुता महादेवी भीमेन मुनिसत्तमाः ॥ ५६ ॥

आविर्बभूव भूखण्डं भित्त्वा चाखिलतारिणी । तां दृष्ट्वा भीमसेनस्तु प्रफुल्लवदनो द्विजाः ॥
नमश्चक्रे महामायां संसारभयनाशिनीम् । नमस्कृता महादेवी भीमसेनेन वै द्विजाः ॥५८॥
वरं गृहाण वै भीम मत्तस्तु समुवाच ह । ततस्तु भीमस्तां देवीं याचयामास वै वरम् ॥५९॥
कुम्भकर्णस्य गण्डं वै भित्त्वा सम्यक् स्थलं भवेत् ।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६० ॥

भीमोऽपि गदया गण्डं कुम्भकर्णस्य वै द्विजाः । भित्त्वा निष्क्रामयामास गण्डकीं सरितां वराम् ॥
ततस्तु लोहदण्डं वै भित्त्वा तस्य दुरात्मनः । पुण्यां लोहवतीं नाम नदीं संवाहयद् द्विजाः[1] ।६२।
गण्डकी-लोहसरितोः सङ्गमान्ते द्विजोत्तमाः । पुत्रस्य प्रतिमां कृत्वा स्थापयामास पाण्डवः ।६३।

भीम ने प्रार्थना की—योगमाया-रूपिणी भगवान् शंकर को प्रिय लगने वाली महादेवी को मैं प्रणाम करता हूँ। कालपाश में बँधे हुए लोगों का हित करने वाली एवं शुम्भ और निशुम्भ का वध करने वाली, स्वर्ग में महेन्द्र से संमानित, कालरात्रि, महारात्रि तथा योग-रात्रिरूपिणी कल्याणदात्री, कुमार-माता[3], विन्ध्यवासिनी, गिरिराजपुत्री[2], मङ्गलप्रदा, भद्रा, देवी, नन्दगोप की पुत्री, तथा ब्रह्मर्षि एवं नन्दादि पार्षदों से सेवित अखिल लोक का उद्धार करने वाली[4] आदि नामों से कही गई भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१-५५ ॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार भीम के द्वारा स्तुति किये जाने पर समग्र संसार का उद्धार करने वाली भगवती पृथ्वी का भेदन कर प्रकट हुईं[5]। उन्हें देख भीम ने बड़ा प्रसन्न हो प्रणाम किया। तब भगवती ने भीम से वर माँगने के लिए कहा। भीम ने यह वर माँगा कि 'कुम्भकर्ण के गण्डस्थल के तोड़ने का स्थान वन के रूप में परिणत हो जाये' ॥ ५६-५९ ॥

व्यासजी ने पुनः कहा—भगवती ने 'तथास्तु' कहकर भीम की प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अन्तर्धान हो गईं। तब भीम ने गदा से कुम्भकर्ण के गण्डस्थल को तोड़कर वहाँ 'गण्डकी'[6] नदी प्रवाहित की। तदनन्तर उस दुरात्मा के लोहदण्ड को तोड़कर पवित्र 'लोह-

---

१. 'नदी संवाहिता द्विजाः'—'क'। २. गौरी।
३. 'पञ्चमं स्कन्दमातेति'—देवीकवच। ४. तारा।
५. स्वयम्भू मूर्ति। ६. स्थानीय नाम 'गिडियो'।

घटोत्कचं तु संस्थाप्य पाण्डवो मुनिसत्तमाः। निर्ययौ पाण्डवा यत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥६४॥
स प्रणम्य तु राजानं समालिङ्ग्य धनञ्जयम्। बालीश्वरं च सम्पूज्य तथा भोगीश्वरं हरम् ॥
देवगन्धर्वमनुजैः सेवितौ सुमनोहरौ। बालिना वानरेन्द्रेण स्थापितौ देवसेवितौ ॥६६॥
*समर्चितौ तौ वरदौ महेश्वरौ गण्डेन रक्षस्य च छादितौ शुभौ।
उद्धृत्य देवौ खिललोकवन्दितौ वरप्रदौ सर्वजनस्य शाश्वतौ ॥ ६७ ॥
लिङ्गद्वयं परिक्रम्य ततः पाण्डुसुतो बली। कथयामास तत् सर्वं गण्डसंभेदनादिकम् ॥६८॥
निर्ययौ पाण्डवा यत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः। स प्रणम्य च राजानं समालिङ्ग्य धनञ्जयम् ॥
घटोत्कचाय तत्स्थानं दत्तं चापि न्यवेदयत्।

व्यास उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साधु साध्विति वादिनः ॥ ६९ ॥
ययुर्नागाह्वयं विप्रा रथमारुह्य दंशिताः। हिडिम्बाऽपि महाभागा श्रुत्वा सम्पूजितं[1] सुतम् ॥

वती'[2] नदी बहाई। हे ब्रह्मर्षियों! 'गण्डकी' और 'लोहवती' के सङ्गमान्त में भीम ने घटोत्कच की प्रतिमा स्थापित की[3]। तत्पश्चात् वह वहाँ से प्रस्थित हो पाण्डवों के समीप चला गया। वहाँ युधिष्ठिर को प्रणाम किया तथा अर्जुन को गले लगाया। तब 'बालीश्वर'[4] तथा 'भोगीश्वर' का पूजन किया। ये दोनों मन्दिर वानरराज बाली[5] द्वारा प्रतिष्ठापित रहे तथा देव, गन्धर्व, मानव आदि से पूजित हुए हैं। वे दोनों मन्दिर उस राक्षस के गण्डस्थल से ढँके हुए थे। भीम ने उनका उद्धार कर पूजन किया। ये दोनों शिवलिङ्ग वरद कहे गये हैं। इन दोनों लिङ्गों की परिक्रमा कर भीम ने पूर्वोक्त बातें वर्णित की। साथ ही घटोत्कच के लिए सुरक्षित स्थान का वृत्तान्त भी सुनाया ॥ ६०–६८ ॥

व्यासजी कहते रहे—सब लोगों ने भीम को शाबाशी दी तथा रथ पर चढ़कर सभी पाण्डव 'हस्तिनापुर' प्रस्थित हुए। हिडिम्बा अपने पुत्र का सम्मान देख अन्य राक्षसियों सहित

---

*अयं श्लोकः 'क' पुस्तके नास्ति।

१. 'प्रतिगतम्' इति 'क'।

२. लोहाघाट की 'लधिया' नदी।

३. 'घटकू' (घटोत्कच) नाम से प्रसिद्ध है। भीम का पुत्र 'घटोत्कच' 'हिडिम्बा' नाम की राक्षसी से उत्पन्न कहा गया है। वह हिडिम्ब की बहन थी। हिडिम्ब का वध करने के पश्चात् कुन्ती की आज्ञा से भीम ने यह विवाह किया था। घटोत्कच महाभारत-युद्ध में वीरता से लड़ा था। कर्ण ने अमोघ शक्ति से इसे मारा था (महाभारत, द्रोणपर्व १७९–५८)।

४. 'चम्पावत में बालेश्वर' नाम का सुप्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर।

५. सुग्रीव का ज्येष्ठ भ्राता बाली नाम से प्रसिद्ध है। इसका पुत्र अंगद था तथा यह पम्पा (किष्किन्धा) का राजा था। एक बार मेरु पर तपस्या करते हुए ब्रह्मा की आँखों से गिरे आँसुओं से 'ऋक्षराज' नामक एक बन्दर उत्पन्न हुआ। अपनी छाया देख यह जल में कूद पड़ा। इसका रूप स्त्री की तरह हो गया। इसी के गर्भ से इन्द्र द्वारा उत्पन्न 'बाली' एवं सूर्य द्वारा उत्पन्न 'सुग्रीव' हुए।

ययौ कूर्माचलं विप्राः सहान्यै राक्षसीगणैः । ततः प्रभृति सा देवी हिडिम्बा मुनिसत्तमाः ।७१।
पुत्रेण सह बालेन पूज्यते कूर्मपर्वते । इत्येतत्कथितं विप्रा यथा कूर्माचलोऽभवत् ॥
यथा शिरस्य पतनं यथा वा तस्य भेदनम्[1] ।।७२।।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कूर्माचलाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥

'कूर्माचल' आ पहुँची । तभी से कूर्माचल में अपने पुत्र 'घटोत्कच' के साथ 'हिडिम्बा'[2] भी पूजी जाती है । विप्रवरों ! 'कूर्माचल' का समुद्भव एवं कुम्भकर्ण का वहाँ शिरःपतन तथा खण्डभेदन आदि का वर्णन मैंने कर दिया है ॥ ६९-७२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कूर्माचलाख्यान'[3] नामक
चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'यथावद् भेदनं द्विजाः'—'क' । २. 'हिडिम्बा नौलो'—वर्तमान में प्रसिद्ध है ।

३. वर्तमान कुमायूँ का जो क्षेत्र है वह ब्रिटिश आधिपत्य (१८१५ ई०) से पूर्व चन्द राजाओं का एक स्वतन्त्र राज्य था । कुमायूँ में इन राजाओं के शासन-काल का आरम्भ कुछ लोगों के मत में ६५३ ई० माना जाता है । प्रथम चन्द राजा सोमचन्द ने कुमायूँ के दक्षिण-पूर्व में स्थित चम्पावत नामक एक छोटे से स्थान को अपनी राजधानी बनाया था । उनकी राजधानी का किला अभी तक उस स्थान पर विद्यमान है, जहाँ आजकल चम्पावत तहसील का मुख्यालय है । इस स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व 'स्कन्द-पुराण' की कथा के अनुसार यह है कि चम्पावत की निकटवर्ती 'क्रान्तेश्वर' पहाड़ी में कूर्म अवतार हुआ था । इस कारण चम्पा नदी के किनारे पर स्थित चम्पावत का यह छोटा-सा क्षेत्र 'कूर्माचल' कहलाया जाने लगा । धीरे-धीरे चन्द राजाओं ने अपने राज्य का विस्तार उस सारे प्रदेश तक कर लिया, जो वर्तमान कुमाऊँ मण्डल (अल्मोड़ा, नैनीताल तथा पिठौरागढ़) के जिलों को समाविष्ट करता है । साधारण बोलचाल में अभी भी 'कुमूँ' का अभिप्राय कालीकुमायूँ से ही लिया जाता है । 'काली-कुमायूँ' नाम के सम्बन्ध में दो जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं । एक के अनुसार चूँकि इस परगने की पूर्वी सीमा पर भारत-नेपाल सीमा का निर्माण करने वाली काली नदी बहती है, अतः काली नदी से लगे कुमायूँ के इस क्षेत्र को काली-कुमूँ कहा जाता है । दूसरी के अनुसार इस क्षेत्र के बाहरी दुनिया के साथ सम्पर्क न रह सकने, इसके अन्तर्गत घने वनों के होने, इसके पिछड़ेपन आदि ने इसे अन्धकार (काले) में बनाये रखा । अतः कुमायूँ के इस मूल क्षेत्र को 'काली कुमायूँ' कहा गया ।

६५

ऋषय ऊचुः—

विशेषपुण्यदं क्षेत्रं कथयस्व तपोधन। पावनं स्थिरचित्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१॥

व्यास उवाच—

मानसेयेति विख्यातो मध्ये कूर्माचलस्य हि। पर्वतो मुनिशार्दूला विद्याधरनिषेवितः ॥२॥
शिखरे तस्य वै विप्रा मानसेशो हरः स्मृतः। स तु मुक्तिप्रदो विप्राः सैव भुक्तिप्रदः स्मृतः ॥३॥
सैव शैवजनानां वै शिवलोकप्रदर्शकः। यं ब्रह्मा पूजयामास मनसा संविरच्य च ॥४॥
पुष्पगन्धैश्च विविधैस्तथा तीर्थैः सरोद्भवैः। ब्रह्मणा पूजितं ज्ञात्वा मनसा निर्मितं हरम् ॥५॥
तदा देवाः सगन्धर्वा मानसेशं प्रपूजयन्। तत्र वै मानसाख्यस्य ह्यन्तं पश्यन् द्विजोत्तमाः ॥६॥
दर्शितं देवदेवेन शङ्करेण महात्मना।

ऋषय ऊचुः—

कथं तत्र महाभाग शङ्करेण महात्मना पुण्यं सरोवरस्यान्तं दर्शितं तद् वदस्व हि ॥ ७ ॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ निकुम्भो गणनायकः ॥ ८ ॥
शिवमाराधयामास तपसा तोषणेन च। स कदाचिन्महाभागास्तुषितं पार्वतीप्रियम् ॥९॥
पर्यपृच्छन्नदीनां हि सम्भवं मुनिसत्तमाः। सर्वासां गिरिभूतानां पुण्यतोयवाहिनीनाम् ॥१०॥
तत्तदा देवदेवेशो नदीनां सम्भवं द्विजाः। मानसं कथयामास सर्वासां गिरिगामिनाम् ॥११॥
ततः प्रफुल्लवदनो निकुम्भो मुनिसत्तमाः। पुनः पृच्छन् महादेवं सरान्तं मुनिसत्तमाः ॥१२॥

ऋषियों ने कहा - तपोधन ! स्थिरचित्त वाले लोगों को भुक्ति-मुक्तिप्रद एवं विशेष पुण्यप्रद क्षेत्र के सम्बन्ध में कृपया निर्वचन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! कूर्माचल के मध्य में विद्याधरों से सेवित 'मानसेय' नामक पर्वत है। उसके शिखर पर 'मानसेश्वर' विराजमान हैं। वे भोगप्रद एवं मोक्षदायक हैं। वही भक्तों को शिवलोक का मार्ग बतलाते हैं। उन भगवान् शङ्कर की भी ब्रह्माजी ने मन से सृष्टि की थी। गन्ध, पुष्प एवं नानाविध तीर्थ-जलों से इनका पूजन किया था। इस बात को जान कर देवों, गन्धर्वों आदि ने भी इनका अर्चन किया। यहीं पर मानसरोवर की अन्तिम सीमा भी देखी गई। इसको भगवान् शङ्कर ने ही दिखाया ॥ २–६ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—ब्रह्मर्षे ! भगवान् शंकर ने मानसरोवर का अन्त किस प्रकार विदित कराया। कृपया यह हमें बताएं ॥ ७ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—ऋषिवरों ! सत्ययुग के आरम्भ में 'निकुम्भ' नाम का शंकर का प्रमुख गण था। उसने शंकर को प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्या की। कुछ समय के बाद शिवजी को प्रसन्न हुआ देख उसने पवित्र जल को प्रवाहित करने वाली नदियों के बारे में शिवजी से पूछा। तब देवदेवेश ने 'मानसरोवर' को ही सब पर्वतीय नदियों का उद्भव

तस्मै प्रदर्शयामास तुषितः पार्वतीप्रियः। कूर्माचलस्य शिखरे सरोवरसमुद्भवम् ॥१३॥
स्वपदा चातिशुद्धं वै जलं देवर्षिसवितम्। वचसा वाऽपि तं विप्राः प्रोवाच भगवान् हरः ।१४।

शिव उवाच—

यावत् तोयं हिमाद्रौ वै सम्भूतं गणनायक। तावन्मानससम्भूतं जानीहि गणनायक ॥१५॥

व्यास उवाच—

इति गौरीपतेर्वाक्यमाकर्ण्य द्विजसत्तमाः। दृष्ट्वा चापि सरस्यान्तं स लेभे परमं परम् ॥१६॥
तत्र ये मानसीये वै जले स्नात्वा द्विजोत्तम। सम्पूजयन्ति देवेशं मुक्तिं विन्दन्ति ते सदा ॥१७॥
पिण्डदानं प्रकुर्वन्ति ते यत्र मुनिसत्तमाः। कुलानि ते ब्रह्मभुवं प्रापयन्ति शतानि वै ॥१८॥
गण्डकी-लोहसरितोर्मध्ये वै द्विजसत्तमाः। निमज्य ये शिवं शान्तं ते यान्ति परमां गतिम् ।१९।
समातृकं भीमसुतं सम्भाव्य मुनिसत्तमाः। मानसेशं हरं ये वै पूजयन्ति समाहिताः ॥२०॥
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् शिवं यान्ति परत्र ते ॥
मयैतत्कथितं विप्रा मानसेशस्य वर्णनम्। शृण्वन्ति ये शिवगृहं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥२१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'मानसेश्वर'माहात्म्यं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥

बतलाया। तत्पश्चात् आनन्दित हो निकुम्भ ने 'मानसरोवर' की सीमा के अन्त होने की बात पूछी। प्रसन्न हो शंकर ने 'कूर्माचल' पर्वत के शिखर पर मानसरोवर से समुद्भूत जल को अपने चरण से प्रकट होता हुआ दिखाकर बतलाया ॥ ८-१४ ॥

शिवजी ने कहा—हे गणनायक! हिमालय में समग्र जल 'मानसरोवर' से ही प्रकट हुआ है ॥ १५ ॥

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों! इस प्रकार भगवान् शंकर की बात सुन सरोवर का अन्त देख वह गण परम पद को प्राप्त हुआ। जो वहाँ स्नान कर देवेश का पूजन करते हैं उन्हें मुक्तिलाभ होता है। वहाँ पिण्डदान करने वालों के पितृगण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। 'गण्डकी' और 'लोहवती' नदियों के मध्य स्नान कर शिवपूजन करने वालों को परम गति मिलती है। जो लोग हिडिम्बासहित घटोत्कच को प्रणाम कर मानसेश हर[1] का पूजन करते हैं, वे इस लोक में विपुल भोग भोग कर अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। हे विप्रवरों! मैंने आप लोगों को मानसेश्वर का माहात्म्य बता दिया है। इसका श्रवण करने से शिवलोक प्राप्त होता है ॥ १६-२१ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'मानसेश्वर'-माहात्म्य नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. स्थानीय नाम—मानेश्वर।

६६

व्यास उवाच—

गण्डकीसंगमे विप्राः पुण्या सोमवती स्मृता । तत्र सोमेश्वरं देवं सम्पूज्य शिवमाप्नुयात् ॥१॥
तत्र कूर्माचले पुण्ये देवीं चाखिलतारिणीम् । सम्पूज्य मानवो याति सत्यलोकं द्विजोत्तमाः ॥२॥
कूर्माचलस्य वं विप्राः शृङ्गं संवर्ण्यते शुभम् । उत्तरे देवगन्धर्वैः पूजितं सुमनोहरम् ॥३॥
गोशृङ्गेति च विख्यातो देवगन्धर्वपूजितः । गोशृङ्ग-सरितोर्मध्ये निमज्य शंकरं प्रभुम् ॥४॥
सम्पूज्य मानवो याति सत्यलोकं न संशयः ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'कूर्माचल'माहात्म्यं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—'गण्डकी' के संगम में 'सोमवती' मिलती है। वहाँ 'सोमेश्वर' का पूजन करने से मानव का कल्याण होता है। हे द्विजवरों ! वहाँ 'कूर्माचल' में 'अखिलतारिणी' देवी का पूजन कर मानव सत्यलोक में प्रतिष्ठित होते हैं। अब 'कूर्माचल' के शृङ्गों का वर्णन किया जा रहा है। उसका उत्तरभागस्थ शृङ्ग 'गोशृङ्ग' नाम से प्रसिद्ध है। 'गोशृङ्ग' और दोनों नदियों के मध्य स्नान कर भगवान् शंकर का पूजन करने से मानव को सत्यलोक प्राप्त होता है ॥ १–५ ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कूर्माचल'-माहात्म्य-सम्बन्धी
छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषय ऊचुः—

दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च यस्मिन् क्षेत्रे प्रणश्यति। तत्क्षेत्रं वद भो विप्र[1] सर्वदुर्गस्य तारणम् ।१।

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूला एष प्रश्नस्तु शोभनः। दक्षिणे पर्णपत्राया: पुण्यः कूर्माचलो गिरिः ॥२॥
कूर्मपादाङ्कितः शुद्धो यक्षगन्धर्वसेवितः। त्रयस्त्रिंशत् सुपुण्याख्या कानना यत्र संस्थिताः[२]॥३॥
देवगन्धर्वमनुजैः राक्षसैश्च निषेविताः। *कूर्माचलोत्तरे भागे देवगन्धर्वसेविता ॥४॥
भवानीवल्लभा नाम गुहा परमशोभना। विद्यते मुनिशार्दूला यक्षराजनिषेविता* ॥५॥
तत्र जागर्ति गिरिजा शक्तिभिः परिषेविता। भवानी भवदुःखस्य तारिणी मुनिसत्तमाः ॥६॥
तत्र गत्वा महाभागा मानवाः पापकारिणः। दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च तथा चौराग्निसङ्कटम् ।७।
ईति भीतिश्च वै विप्रास्तथा राजभयं महत्। तथाऽल्पमृत्युं भीतिं च ग्रहभीतिं तथैव च ॥८॥
तथा दुर्गेषु घोरेषु न पश्यन्ति भयं क्वचित्[३]। भवानीं तत्र सम्पूज्य मानवा मुनिसत्तमाः ॥९॥
तरन्ति सर्वदुर्गेषु तथा चौरभयेषु च। गन्धपुष्पाक्षतैः शुद्धैर्जातिपुष्पैस्तथैव च ॥१०॥
गुहायां गिरिजां देवीं भवानीं शङ्करप्रियाम्। सम्पूज्य मानवो विप्राः शत्रुभीतिं न पश्यति[४] ॥

ऋषय ऊचुः—

केन मर्त्ये महाभाग भवानी शङ्करप्रिया। प्रकाशिताऽप्रकाश्या सा वरदा लोकपूजिता ॥१२॥

ऋषियों ने कहा—विप्रर्षे ! अब आप कृपया दुःस्वप्न और दुर्निमित्तों के विनाशक क्षेत्र का वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहना प्रारम्भ किया—ऋषिवरों ! यह प्रश्न बड़ा समुपयुक्त है। इसका उत्तर सुनें। 'पर्णपत्रा' के दक्षिण में 'कूर्म' के चरणों से अङ्कित, यक्ष और गन्धर्वों से पूजित 'कूर्माचल' है। इसमें ३३ वन हैं। 'कूर्माचल' के उत्तर भाग में कुबेर आदि से सेवित 'भवानीवल्लभा' नाम की गुफा है। वहाँ 'गिरिजा' (पार्वती) अपनी शक्तियों के साथ जागरूक है। महाभागों ! वहाँ जाकर पापियों के दुःस्वप्न, दुर्निमित्त, चोरभय, अग्निभय, ईतिभय, राजभय, अल्पमृत्यु-भय, ग्रहभीति आदि अनिष्टों तथा दुर्गों के भय दूर हो जाते हैं। गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि—विशेषतः जातीपुष्पों-से भगवती का पूजन करने से शत्रुभयादि अनिष्ट दूर हो जाते हैं ॥ २–११ ॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—भगवन् ! इस लोक में अप्रकाश्य शङ्करप्रिया भवानी को किसने विदित कराया ? ॥ १२ ॥

---

१. 'विप्रर्षे'—इति 'क'।
२. 'कानन: सन्ति हि'—'क'
*'अङ्कितः'—'क' पुस्तके नास्ति।
३. 'महत्'—'क'।
४. 'विन्दति'—'क', विद्यते—'घ'।

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ सुरथस्य सुतो बली। विदूरथेति विख्यातो राजाऽभून्मुनिसत्तमाः ॥१३॥
वदान्यो मितवाक् सत्यो धर्मात्मा ज्ञानलोलुपः। देवर्षिपितृभक्तानां मुख्योऽभून्मुनिसत्तमाः ॥
स राजा मतिमान् धन्यो भक्तः शिव-मुकुन्दयोः। चकार मुनिशार्दूलाः शंसितो मन्त्रिनायकैः।
कदाचिन्मृगयामिच्छन् व्याधैः सह द्विजोत्तमाः। ययौ कूर्माचलं नाम पर्वतं सिद्धसेवितम् ॥१६॥
तत्र गत्वा मृगान् व्याघ्रान् सूकरान् महिषानपि। जघान स नृपो विप्राः शार्दूलान् गवयानपि ॥
मृगयां चरमाणस्य राज्ञस्तस्य महात्मनः। गन्धर्वकन्या आजग्मुः सङ्घशो मुनिसत्तमाः ॥१८॥
क्रीडन्त्यः ससखीभिस्ता रूपयौवनशालिनाम्। राजा गन्धर्वकन्यानां समूहं रक्तवाससाम् ।१९।
दृष्ट्वा विसर्जयामास बने व्याधान् द्विजोत्तमाः। ततो वनान्तरे विप्रा राज्ञा तेन विसर्जिताः।
ददृशुः पुरतो यान्तीं सुरभीं मुनिसत्तमाः। ऊधोभारेण निम्नाङ्गीं स्रवन्तीं स्तनजं पयः ॥२१॥
तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूला व्याधास्ते जातकौतुकाः। तामनुप्रययुः सर्वे सन्त्यज्य मृगयां तदा ।२२।

व्यासजी ने समाधान किया—सत्ययुग के आदि में राजा 'सुरथ'[1] का महाबली पुत्र 'विदूरथ'[2] नाम से विख्यात हुआ। वह मितभाषी, सत्यप्रिय, धर्मात्मा, ज्ञानलोलुप, देवर्षि-पितृ-भक्त एवं वदान्य भी था। वह बड़ा बुद्धिमान् तथा शिव और विष्णु का भक्त एवं मन्त्रियों से परामर्श कर शासन करता था। किसी समय वह घूमते-घूमते व्याधों के साथ मृगया-वश 'कूर्माचल' चला गया। वहाँ उसने मृग, व्याघ्र, सूअर, भैंसे, सिंह और गवयों का शिकार किया। मुनिवरों! इसी बीच राजा के विचरण करते हुए गन्धर्व-कन्याओं का झुण्ड वहाँ आ पहुंचा। रूप-यौवन-सम्पन्न लालवस्त्रधारी वे गन्धर्वकन्याएँ अपनी सखियों के साथ खेल रही थीं। उन्हें देख राजा ने व्याधों को दूसरे वन में भगा दिया। राजा से अलग होकर मार्ग में जाते हुए व्याधों ने स्तन्यभार से अवनत एवं दुग्ध-स्राव करती हुई कामधेनु को देखा। उसे देख सब व्याधों ने कुतूहल-वश सुरभि का अनुसरण किया। उसने सरस्वती के

---

१. पुराणों के अनुसार स्वारोचिष मन्वन्तर का एक चन्द्रवंशी राजा। इसने सर्वप्रथम दुर्गा की आराधना की थी। दुर्गा के वर से यह 'सावर्णि-मनु' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। द्रष्टव्य—"स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चंद्रवंश-समुद्भवः। सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥ तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्। बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥" दुर्गासप्तशती अ० १, श्लोक ४-५। तथा दुर्गासप्तशती के अन्त में—"स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान्। हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः। सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥" अ० १३, श्लोक २०-२२।

२. एक पौराणिक राजा का नाम, जिसकी कीर्ति दूर तक फैली हुई थी। 'सुनीति' और 'सुमति' इनके दो पुत्र थे। एक बार इनकी पुत्री को एक दानव हर ले गया एवं इनके पुत्रों को उसने बन्दी बना लिया। मनन्दन के पुत्र वत्सप्री ने इस कुजम्भ दानव को राजाज्ञा से मार दिया। राजा की सन्तति बन्धन-मुक्त हो गई। विदूरथ ने प्रसन्न होकर राजकुमारी मुदावती का विवाह वत्सप्री के साथ कर दिया (मार्कण्डेयपुराण)।

ततः सरस्वतीतोये निमज्य गिरिकन्दराम् । यान्तीं कामदुघां धेनुं स्वर्गलोकात् समागताम् ।२३।
ततस्तेनैव मार्गेण कन्दरां मुनिसत्तमाः । विविशुर्मुनिशार्दूला व्याधास्ते जातकौतुकाः ।।२४।।
ततस्ते कन्दरायां वै भवानीं शङ्करप्रियाम् । पूजितां देवराजेन संस्तुतां ब्राह्मणोत्तमैः ।।२५।।
गन्धर्वैश्चित्रसेनाख्यैरप्सरोभिः सुसेविताम् । भवानी चण्डिका कृष्णा मृडानी माधवीति च ।२६।
शालिका कुमुदा माया गुहावासा हरप्रिया । एभिर्नामैश्च गन्धर्वैः संस्तुतां परमेश्वरीम् ।।२७।।
तथा गन्धर्वकन्याभिः सेवितां ददृशुर्द्विजाः । तस्योपरि महाभागां स्रवन्तीं सुरभीं द्विजाः ।२८।
स्तन्यधाराभिः पीनाङ्गीं महेन्द्रहितकारिणीम् । दृष्ट्वा तां गिरिजां विप्राः कन्दरायां महेश्वरीम्।।
व्याधाश्चाखेटकं हित्वा नृपान्तिकमुपाययुः ।। २९ ।।

सह गन्धर्वकन्याभिः क्रीडन्तं भूपतिं द्विजाः । कथयामासु ते व्याधा भवानीदर्शनादिकम् ।।३०।।

व्याधा ऊचुः—

शृणुष्व नृपशार्दूल यदस्माभिर्निबोधितम् । त्वया विसर्जिता नूनं वनान्ते मृगयां चिरम् ।।३१।।
वयं हि विपिने घोरे चोपविष्टा न संशयः । तत्र गां सुरभीं यान्तीं दृष्ट्वा तस्यानुगा वयम् ।।
कूर्माचलोत्तरे भागे ददृशुर्गिरिकन्दराम् । तत्र वै बहवो लोका भवानीमिति कामपि ।।३३।।
स्तुवन्ति नृपशार्दूल चोपविष्टां शिलोपरि । तस्योपरि महाभागाः स्तन्यैः सा सुरभी नृप ।३४।
श्रावणे वर्षधारेव प्रवर्षति न संशयः[1] ।।

जल में स्नान किया तथा स्वर्गलोक से समागत वह गाय गुफा में प्रवेश करने लगी । उसी मार्ग से व्याधों ने भी गुफा में प्रवेश किया । वहाँ गुफा के भीतर उन व्याधों ने देवराज इन्द्र एवं सद्ब्राह्मणों, चित्रसेनादि गन्धर्वों, अप्सराओं तथा गन्धर्वकन्याओं से पूजा की जाती हुई भवानी, चण्डिका, कृष्णा, मृडानी, माधवी, माया, कालिका, कुमुदा, गुहावासा तथा हरिप्रिया नामों से सम्बोधित की जाती हुई परमेश्वरी को देखा । हे द्विजवरों ! भगवती के ऊपर दूध की धारा बहाती हुई महेन्द्र की हितकर्त्री उस सुरभी एवं गुहावासिनी गिरिजा को देखते हुए व्याध-समुदाय मृगया त्याग कर पुनः राजा के पास पहुँचा । राजा उस समय गन्धर्वकन्याओं के साथ क्रीडा कर रहा था । व्याधों ने राजा से भवानी के दर्शनादि का वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया ।। १३–३० ।।

व्याधों ने कहा—राजेन्द्र ! कृपया ध्यान दें । आपके द्वारा अलग किए जाने पर हम लोगों ने एक वन के छोर पर विचित्र घटना देखी । वह यह कि घोर जंगल में बैठे हुए हम ने एक कामधेनु देखी । हम उसका अनुसरण करते रहे । इसी बीच कूर्माचल के उत्तर भाग में हमने एक गुहा देखी । वहाँ बहुत लोग 'भवानी' नाम से किसी की स्तुति कर रहे थे । वह एक शिला के ऊपर विराजमान थी । उस पर वह सुरभी श्रावण मास की वर्षाधारा की तरह अपना दूध बरसा रही थी । यह बात यथार्थ है ।। ३१–३४ ।।

---

१. 'तत्र तां पश्य राजर्षे यदस्माकं हितं वचः । तां दृष्ट्वा श्रेयमाप्नोषि गुहायां नात्र संशयः' ।।—'क' पुस्तके अधिकः पाठः ।

व्यास उवाच—

त्यक्त्वा गन्धर्वकन्यानां समूहं रक्तवाससाम् ।। ३५ ।।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा स राजा प्रययौ द्विजाः । व्याधोदितेन मार्गेण यत्र सा शङ्करप्रिया ।।३६।।
ततः सरस्वतीं तीर्त्वा स राजा मुनिसत्तमाः । दक्षिणे पर्णपत्रायाः प्रान्ते कूर्माचलस्य हि ।३७।
ददर्श कन्दरां पुण्यां भवानीं गणसेविताम् । ततः प्रविश्य रार्जाषः पूजयामास तां शिवाम् ।३८।
आगमोक्तेन विधिना यथावत् सुसमाहितः । बलिपुष्पोपहारैश्च[1] तथान्यैः कुसुमैरपि ।।३९।।
सम्पूज्य गिरिजां देवीं तत्रैव परमेश्वरीम् । सम्भाव्य गणगन्धर्वान् नमस्कृत्य स गां द्विजाः ।।
निश्चक्राम गुहाद्वारात् स राजा जातकौतुकः । स्नात्वा सरस्वतीतोयैः पर्णपत्राजलैस्तथा ।४१।
स तयोः सगमे विप्रा निमज्य विधिपूर्वकम् । सन्तर्प्य पितृदेवादीन् सम्पूज्य च महेश्वरम् ।४२।
स राजा मुनिशार्दूलाः प्रतस्थे स्वां पुरीं प्रति । व्याधैः सह महाबाहुः सव्यसाची धनुर्धरः ।४३।
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च दुर्गभीतिं तथैव च । न चापश्यत् स रार्जाषर्महामायाप्रसादतः ।।४४।।
ततः स कथयामास भवानीं मुनिसत्तमाः । गुहायां संस्थितां देवीं प्रान्ते कूर्माचलस्य हि ।।४५।।
इत्येतत् कथितं विप्रा देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । दुःस्वप्नदुर्निमित्तानां तथा दुर्गभयस्य च ।।४६।।

नाशकं सर्वरोगाणाम् आयुरारोग्यवर्धनम् ।। ४७ ।।

कूर्माचलस्य माहात्म्यं मयैतत् कथितं द्विजाः । तथा योगीश्वरस्यापि किमन्यत्प्रष्टुमिच्छथ ।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भवानीमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।।

(फिर) व्यासजी कहने लगे —रक्त वस्त्र पहनी हुई उन गन्धर्व-कन्याओं को छोड़ वह राजा व्याधों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से शङ्करप्रिया 'भवानी' के स्थल पर पहुँचा । तव कूर्माचल के छोर में 'पर्णपत्रा'[2] के दाहिनी ओर (दक्षिण भाग में) 'सरस्वती' को पार कर राजा ने 'भवानी' के गणों से सेवित उस गुफा को देखा । उसमें प्रविष्ट हो देवी का आगमोक्त विधान से पूजन किया । बलि और पुष्पोपहार आदि से देवी को सन्तुष्ट कर, साथ ही गन्धर्वगणों को प्रणाम कर, हे विप्रर्षियों ! उसने सुरभी को देखा । वह राजा गुफा के द्वार से बाहर आया । उसे देख राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने 'सरस्वती' एवं 'पर्णपत्रा' के संगम में स्नान किया । तथा देव-पितृ-कर्म सम्पादित कर अपनी राजधानी को वापस हो गया । महामाया की कृपा से उसने दुःस्वप्न, अपशकुन एवं दुर्गभयादि कभी नहीं देखे । तत्पश्चात् उसने 'कूर्माचल' की सीमा (छोर) पर स्थित गुहा में विराजमान 'भवानी'[3] के सम्बन्ध में चर्चा की । विप्रवरों ! मैंने यह दुःस्वप्नादि व्याधियों का नाशक उत्तम देवी-माहात्म्य, 'कूर्माचल' माहात्म्य एवं जागेश्वर-(यागेश्वर)-माहात्म्य आप लोगों को सुना दिया है । अब आप क्या जानना चाहते हैं ? ।। ३५-४८ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भवानी-गुहा' वर्णनात्मक
सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'पूजोपहारैश्च'–'क' ।
२. वर्तमान नाम 'पनार' । ३. यह गुफा 'भवानी ओडयार' के नाम से जानी जाती है ।

जनमेजय उवाच—

कथितं भवता ब्रह्मन् माहात्म्यं बहु विस्तरम् । सरित्सराख्यानयुतं कृष्णद्वैपायनोदितम् ।।१।।
श्रुत्वा कूर्माचलाख्यानं तथा योगीश्वरस्य च । मुनयो वेदमार्गज्ञाः किमपृच्छन्त[१] वै द्विजाः ।।२।।

सूत उवाच—

ततस्ते मुनयः सर्वे व्यासं धर्मार्थकोविदम् । उपविष्टं महाभागं नैमिषे शौनकादयः ।।३।।
प्रणिपत्य महाराज पराशरसुतं गुरुम् । पप्रच्छुः पर्वतानां वै माहात्म्यं शङ्करस्य च ।।४।।

ऋषय ऊचुः—

कूर्माचलस्य माहात्म्यं त्वयैतत् समुदाहृतम् । तथा योगीश्वरस्यापि माहात्म्यं बहु विस्तृतम् ।।
ब्रह्माद्यैर्मुनिशार्दूल सेवितं देवनायकैः । हित्वा यागीशसंज्ञं वै स्थलं देवो महेश्वरः ।।६।।
कथं सम्पूजयामास गणेशं पर्वतान्तरे । कथमुद्वाहविधये त्यक्त्वा योगीश्वरं ततः ।।७।।
हिमालयेन देवाय तत्र गत्वा कथं सुता । न दत्ता मुनिशार्दूल कथं तत्र गतः शिवः ।।८।।
एतत् सर्वमशेषेण कथयस्व द्विजोत्तम ।

व्यास उवाच—

कालीं देहान्तरगतां ज्ञात्वा देवो द्विजोत्तमाः ।। ९ ।।
नोद्वाहं रोचयामास प्रार्थितोऽपि महात्मभिः । ततः कालेन महता सङ्ग्रामे तारकामये ।।१०।।
तारकेण जिताः सर्वे[२] ब्रह्माणं शरणं ययुः । ब्रह्माऽथ सुचिरं ध्यात्वा तारकस्य वधं प्रति ।।११।।

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन् ! आपने कृष्णद्वैपायन द्वारा वर्णित नदी एवं सरोवरों का आख्यान बड़े विस्तार के साथ कर दिया है। 'कूर्माचल' तथा 'यागेश्वर' के आख्यान को सुनकर वेदमर्मज्ञ ऋषियों ने आपसे और क्या जिज्ञासा की थी ? ।। १-२ ।।

महर्षि सूत ने इसका उत्तर दिया—महाराज ! तदनन्तर शौनकादि ऋषियों ने नैमिषारण्य में महर्षि व्यास को सादर प्रणाम कर पर्वतों व भगवान् शङ्कर का माहात्म्य पूछा था ।। ३-४ ।।

(यह सुन) ऋषिगण बोले—महर्षे ! 'कूर्माचल' और 'यागेश्वर' का माहात्म्य तो आपने बड़े विस्तार के साथ बताया। अब कृपया यह बतायें कि ब्रह्मादि देवों से सेवित यागेश्वर को छोड़ भगवान् शङ्कर ने दूसरे पर्वत पर गणेशजी का पूजन किस हेतु किया ? विवाह-संस्कार के लिये भी जागेश्वर को छोड़ हिमाचल अन्यत्र क्यों गए ? विप्रर्षे ! इन सब बातों को विस्तार के साथ बतायें ।। ५-८ ।।

व्यासजी ने कहना आरम्भ किया—द्विजवरों ! सती के दूसरा जन्म लेने पर अनेक महानुभावों के कहने पर भी शिवजी द्वितीय विवाह करने के लिये राजी नहीं हुए। तब तारकासुर[३] के साथ देवताओं का घोर संग्राम हुआ। उसने देवताओं को हरा दिया। तब सब

---

१. 'किमकुर्वन्त'—'क'। २. 'तारकेण जिता देवाः'—'क'।

३. एक सुप्रसिद्ध असुर, जो तार का पुत्र और तारा का भाई था। इसने घोर तपस्या कर ब्रह्मा से दो वर प्राप्त किये—(१) मेरे समान कोई बलवान् न हो तथा (२) यदि मैं मारा जाऊँ तो वह

आत्मनो वरदानेन ज्ञात्वा दुर्जयमात्मनः । तानुवाच स्वयं ब्रह्मा अजेयं शम्भुना विना ॥१२॥
ततस्तां ब्रह्मणो वार्णीं महेन्द्रप्रमुखा द्विजाः । कामदेवं पुरस्कृत्य ध्यायमानं महेश्वरम् ॥१३॥
प्रार्थयामासुर्वै विप्रा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः[1] । स तैः सम्प्रार्थितो देवो दग्ध्वा कामं पुरःस्थितम् ॥
उवाच वदतां श्रेष्ठो बृहस्पतिरिव स्वयम् ।

शिव उवाच—

केन यूयमिहायाता ब्रह्माद्यास्त्रिदिवेश्वराः । कथयन्तु करिष्यामि दुष्करं दैवतैरपि ॥१५॥

देवा ऊचुः—

तारकेण महादेव निर्जिता देवतागणाः । शरणन्त्वामनुप्राप्ता उपायं चिन्त्यतां प्रभो ॥१६॥

व्यास उवाच—

इति विज्ञापितो देवैः शङ्करो लोकशङ्करः ॥ १७ ॥
उपायं चिन्तयामास समाधौ मुनिसत्तमाः । नापश्यन्तस्य हन्तारं त्रिषु लोकेषु वै द्विजाः ॥१८॥
तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा प्रोवाच स्वयमेव हि ।

देवता ब्रह्माजी की शरण में गए । ब्रह्मा ने तारकासुर के मारने के सन्दर्भ में बहुत सोचा । तत्पश्चात् देवताओं को यह बताया कि वह मेरे ही वरदान से पराजित होगा । केवल शिवजी ही इसका विनाश कर सकते हैं । ब्रह्माजी की बातें सुनकर इन्द्रादि देवगण कामदेव को साथ ले ध्यानावस्थित शङ्कर के पास पहुँचे । वहाँ सब देवों ने शङ्कर की प्रार्थना की । शिवजी ने समक्ष बैठे मदन को भस्म कर दिया तथा उन्होंने वागीश बृहस्पति की तरह कहना आरम्भ किया ॥ ९-१४ ॥

शिवजी बोले—ब्रह्मादि देवों ! आप लोग यहाँ किस कारण आये हैं ? देवताओं के लिए दुष्कर कार्य को भी मैं कर दूंगा ॥ १५ ॥

(इस पर) देवताओं ने कहा —महादेव ! तारकासुर ने सब देवताओं को पराजित कर दिया है । अतः हम लोग आपकी शरण में आए हैं । प्रभो ! इसका कोई उपाय सोचिये ।१६॥

व्यासजी ने (ऋषियों से) कहा—देवों से इस प्रकार निवेदन किये जाने पर समाधिस्थ भगवान् शङ्कर उपाय सोचने लगे । किन्तु उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा । इस पर स्वयं ब्रह्मा (बीच ही में) बोल उठे ॥ १७-१८ ॥

व्यक्ति शिव से उत्पन्न हो । तारक के अन्याय करने पर देवगण ब्रह्मा के पास गए । उस समय पार्वती तप कर रही थी । कामदेव के भस्म करने के पश्चात् शिव ने पार्वती के साथ विवाह किया । बहुत दिनों तक सन्तति न होने पर देवताओं ने अग्नि को शिव के पास भेजा । कपोत के वेष में अग्नि को देख शिव ने कहा 'तुम्हीं हमारे तेज को धारण करो' । यह कह कर उन्होंने अपना तेज अग्नि पर छिड़क दिया । उससे कार्तिकेय का जन्म हुआ और वह देवताओं के सेनानायक बने । इन्हीं के बाण से तारकासुर का वध हुआ (शिवपुराण, रुद्रसंहिता, अध्याय १६) ।

१. 'त्रिदिवेश्वराः' 'क' ।

ब्रह्मोवाच—

न त्वया देववेवेश न मया न च विष्णुना ॥ १९ ॥

शक्यते तारको जेतुं वरदानेन दर्पितः । शृणुष्वैकमनाः शम्भो उपायं तु ब्रवीम्यहम् ॥२०॥

येन देवगणाः सर्वे पुरन्दरपुरोगमाः[1] । रमन्ते त्रिदिवारूढा महेन्द्रेण प्रशासिताः ॥२१॥

गृहाण गिरिजां देव तस्यां ते भविता सुतः । निहत्य तारकं दुष्टं महेन्द्राय[2] दिवःस्थलम् ।२२।

स दास्यति महादेव सत्यं ते कथितं मया ।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान् आरुह्य वृषभं शुभम् ॥ २३ ॥

प्रतस्थे गिरिराजस्य गृहं प्रति द्विजोत्तमाः । गतं वै[3] टङ्कणप्रान्ते दृष्ट्वा स्कन्दिमुखा गणाः ।

शिवं विज्ञापयामासुर्विघ्ननाशाय वै द्विजाः । स तैर्विज्ञापितो देवो रुरुचे तद्धितं वचः ॥२५॥

गणैर्विज्ञापितो विप्राः समारुह्य गिरिं शुभम् । गणेशं पूजयामास[4] सुपुण्ये गणपर्वते ॥२६॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गणपर्वतारोहणं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥

ब्रह्माजी ने कहा – हे देवेश ! न तो आप, न मैं और न विष्णु ही उसे जीत सकते हैं । वह मेरे इस प्रकार के वरदान से अभिमानित है । आप ध्यान देकर सुनें । मैं उसका उपाय वतलाता हूँ । उसके द्वारा देवगण महेन्द्र से प्रशासित हो स्वर्ग में सुखी रह सकें । (यहाँ कुछ अंश त्रुटित है) । हे देव ! आप गिरिजा के साथ विवाह करें । मैं यह सत्य कहता हूँ कि उससे उत्पन्न पुत्र तारकासुर का वध कर इन्द्र को स्वर्गलोक प्राप्त करा देगा ॥ १९-२२ ॥

व्यासजी ने (पुनः ऋषियों से) कहा—(ब्रह्माजी की वाणी को सुन) शिवजी 'तथास्तु' कह कर वृषभ पर आरूढ हो हिमाचल के घर चल दिये । शिवजी को 'टङ्कण' के छोर पर पहुँचा हुआ देख स्कन्दी आदि गणों ने विघ्ननाशार्थ कुछ करने के लिए निवेदन किया । उनका यह हितकारी वचन शिवजी को अच्छा लगा । विप्रवरों ! गणों के द्वारा निवेदन करने पर शिवजी ने पर्वत-शृङ्ग पर आरूढ़ हो 'गणपर्वत' पर गणेश का पूजन किया ॥ २३-२६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गणपर्वतारोहण' नामक

अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'प्रशासिताः'–'क' । २. 'महेन्द्राय'–'क' । ३. 'वै'–'क' ।

४. 'सह पार्षदनायकैः । हिताय त्रिदिवेशस्य हित्वा योगीश्वरः स्थलम् । गणेशं पूजयामास'— 'घ' 'ङ' ।

ऋषय ऊचुः—

गणाध्यक्षस्य माहात्म्यं कथयस्व तपोधन। यत्फलं स गणेशो वै पूजितः सम्प्रयच्छति ॥१॥

व्यास उवाच—

मानुषे मानवानां वै सन्ति विघ्नान्यनेकशः। विघ्नैः कार्याणि सर्वाणि प्रणष्टानि भवन्ति हि। तेषां नाशाय वै विप्रास्त्वष्ट्रा विरचिता शुभा। स्थापिता पर्वतस्याग्रे गणेशप्रतिमा शुभा ॥३॥ महादेवेन देवेन निर्विघ्नोत्पत्तिहेतवे। समारुह्य गिरिं ये वै गणाध्यक्षं तपोधनाः ॥४॥ गणेशप्रतिमां पुण्यां पूजयन्ति समाहिताः। तेषां विघ्नाश्च वै सर्वे प्रणश्यन्ति न संशयः ॥५॥ रक्तचन्दनसंसिक्तैः पुण्यैर्दूर्वाङ्कुरैर्हि ये। न ते पश्यन्ति मनुजा विघ्नानि मुनिसत्तमाः ॥६॥ ये गणेशमपूज्याशु पर्वताग्रे द्विजोत्तमाः। कल्पयन्ति महापूजां शङ्करस्य तपोधनाः ॥७॥ तेषां निरर्थका पूजा जायते नात्र संशयः। यथा सर्वत्र वेदेषु प्रणवः प्रथमोच्यते ॥८॥ तथा सर्वत्र पूजायां गणेशः प्रथमोच्यते। गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैस्तथा दूर्वाङ्कुरैरपि ॥९॥ सम्पूज्य पर्वताग्रे वै नरो नाप्नोति दुष्कृतिम्। तत्र ये [1]गिरिकातोये निमज्य गणनायकम् ।१०। पूजयन्ति महाभागास्तेषु नो विघ्नकोटयः। संस्पृशन्ति न सन्देहः सत्यमेतन्मयोच्यते ॥११॥

ऋषय ऊचुः—

कथं सा गणिका नामा नदी पूता द्विजोत्तम। केन तत्र समानीता तत् त्वं कथय विस्तरात् ।१२।

व्यास उवाच—

पूजयन् गणनाथं वै स्कन्दी[2] देवो महेश्वरः। सम्प्राप्य प्रतिमां तत्र जलं देहीत्युवाच ह ॥१३॥

ऋषियों ने (व्यासजी से) पुनः जिज्ञासा की—हे तपोधन! गणाध्यक्ष एवं उनके पूजन का माहात्म्य कृपया बतलायें ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—इस लोक में मानवों के समक्ष अनेक प्रकार के विघ्न आते हैं। विप्रर्षे! उन विघ्नों द्वारा मनुष्य के सब कार्य बिगड़ते रहते हैं। अतः उन विघ्नों को दूर करने के लिए विश्वकर्मा ने गणेश की प्रतिमा पर्वत के अग्रभाग में गढ़ी हैं। तपोधनों! महादेवजी ने वहाँ पर चढ़ कर निर्विघ्नताहेतु उनका पूजन किया है। जो लोग इस पवित्र प्रतिमा का पूजन करते हैं, उनके सब विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। रक्तचन्दन से संसक्त पवित्र दूर्वाङ्कुरों से गणेश का अर्चन करने पर सब विघ्न दूर हो जाते हैं। पर्वताग्र में गणेशपूजा किये बिना शंकर की पूजा निरर्थक हो जाती है। जिस प्रकार वेदारम्भ में प्रणव (ॐ) का उच्चारण सर्वप्रथम किया जाता है, उसी प्रकार पूजाकर्म में गणेश का पूजन भी सर्वप्रथम होता है। गन्ध, पुष्प, अक्षत, दूर्वा और धूप आदि से गणेश का पूजन कर मानव को दुःख प्राप्त नहीं होता। वहीं 'गणिका' नदी में गोता लगाकर गणेश का पूजन करने से विघ्न दूर भागते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। मैंने यह सब यथार्थ कहा है ॥ २–११ ॥

ऋषियों ने पुनः पूछा—ब्रह्मर्षे! वह 'गणिका' नदी कैसे पवित्र मानी गई? उसे वहाँ कौन लाया? कृपया इन बातों को विस्तारपूर्वक बतलायें ॥ १२ ॥

---

१. 'गणिकातोये'—'क'। २. 'स्कन्दी'—'क'।

स तत्र शङ्करस्याज्ञां प्रतिगृह्य महायशाः । आहूय सरयूतोयं शङ्कराय द्विजोत्तमाः ॥१४॥
गणेन प्रथिता पुण्या पर्वतान्ते द्विजोत्तमाः । गणिकेति च विख्याता सम्भूता गणपर्वते ॥१५॥
*मूले स्कन्दिसरो नाम ख्यायते मुनिसत्तमाः । तत्र स्नात्वा सुसन्तर्प्य दश पूर्वान् दशोत्तरान् ॥
समुत्तीर्य पितृगणान् महेन्द्रभवनं व्रजेत् ॥ १७ ॥
ततस्तु रिटिसञ्ज्ञं वै कामसंज्ञं ततः परम् । ततो गणेशसंज्ञं वै तीर्थं गणनिषेवितम् ॥१८॥
[1]तत्र स्नात्वा मनुष्याणां प्रणश्यन्त्यघकोटयः । ततः सत्ययुगाख्यं वै तीर्थमस्ति तपोधनाः ।१९।
तत्र स्नात्वा यथान्यायं पितॄन् सन्तर्पयेत् ततः । पिण्डदानेन मनुजः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥२०॥
समुत्तीर्य दिवं याति विमानमधिरुह्य वै । ततस्तु गोत्रजासङ्गं गणिकायां द्विजोत्तमाः ॥२१॥
गणिकेशं हरं तत्र पूजयेत् सुसमाहितः । तत्राधित्यगतां भूमौ गिरिजां पूजयेद् द्विजाः ॥२२॥
तां सुपूज्य नरो याति सत्यलोकं न संशयः । गणाध्यक्षस्य माहात्म्यं कथितं द्विजसत्तमाः ।२३।
गोमत्या दक्षिणे भागे प्रान्ते या टङ्कणस्य हि । राजते देवगन्धर्वसेवितं सुमनोहरम् ॥२४॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गणाध्यक्षमाहात्म्यं नाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥

(इस पर) व्यासजी बोले—विप्रवरों ! जब भगवान् शंकर ने गणनाथ की पूजा का उपक्रम किया तो उन्होंने स्कन्दी से जल लाने के लिये कहा । तदनुसार स्कन्दी ने शिवजी की आज्ञा से सरयू का जल लाकर दे दिया । द्विजश्रेष्ठों ! शिवजी के गण ने पर्वत के छोर पर एक नदी बहा दी, जो 'गणिका' नाम से प्रसिद्ध हुई । उसमें जो स्नान करता है, उसे सरयू नदी में स्नान करने का फल मिलता है । वह मानव इन्द्रलोक को प्राप्त करता है । उसके मूल में 'स्कन्दीसर' है । उसमें स्नान एवं तर्पण करने से पहली तथा बाद की दस पीढ़ियों का उद्धार होता है । तत्पश्चात् गणों के द्वारा सेवित 'रिटि', 'काम' तथा 'गणेश' नाम के तीर्थ हैं । तब 'सत्ययुग' नामक तीर्थ है । उसमें स्नान तर्पण पिण्डदानादि करने से एक सौ एक कुलों का उद्धार कर मानव विमान पर चढ़ स्वर्गलोक प्राप्त करता है । तब 'गणिका' नदी में 'गोत्रजा' आकर मिलती है । वहाँ 'गणिकेश' शिव का पूजन किया जाता है । उस स्थल पर शिखर के ऊपरी भाग में 'गिरिजा' का पूजन कर मनुष्य को सत्यलोक प्राप्त होता है । हे विप्रवरों ! मैंने आप लोगों को 'टङ्कण'[2] पर्वत के छोर पर एवं 'गोमती' के दक्षिण भाग में स्थित 'गणनाथ' का माहात्म्य बतला दिया है । वह स्थल देवों एवं गन्धर्वों से सेवित हो सुशोभित है ।१३-२४।

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'गणाध्यक्ष'-माहात्म्य नामक
उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

*"तस्यां यः स्नाति मनुजः सरयूस्नानजं फलम् ।
प्राप्य देवेन्द्रभवनं प्राप्नोति मुनिसत्तमाः ॥"—अधिकः श्लोकः–'क' ।

१. 'यथान्यायम्'–'क' ।

२. महाभारत में 'तङ्गण' तथा 'प्रतङ्गण' नाम से उल्लेख मिलता है । यहाँ इसका स्थानीय नाम 'टंगणू' ग्राम है ।

ऋषय ऊचुः—

ततो ये पर्वताः सन्ति या नद्यो मुनिसत्तमाः। कथयस्व समासेन सर्वं ते विदितं द्विज ॥१॥

व्यास उवाच—

*ततस्तु वेणुसञ्ज्ञो वै पर्वतो मुनिसत्तमाः। निवाससंज्ञो[1] नागानां दानवानां तथैव च ॥२॥
यस्य कुक्षौ महाभागाः गोविन्दचरणोद्भवा। गोमती सरितां श्रेष्ठा पापमार्गप्रणाशिनी ॥३॥
तस्य पूर्वं गिरिर्नाम पर्वतो द्विजसत्तमाः। निवासभूतः सिद्धानां तथैवाप्सरसां द्विजाः ॥४॥
सा गोमती पक्षिगणैः[2] सेविता सुमनोहरा। ऋषीणामाश्रमैः पुण्यैः सर्वत्र सुनिषेविता ॥५॥
मीनैश्च कमठैश्चैव पूरिता मन्दगामिनी। समुद्भूय महाभागा राजते लोकपावनी ॥६॥
सोमपानफलं यस्य पिबता कुरुते जलम्। तस्या मूले स्वयं देवो गोविन्दः पूज्यते द्विजाः ॥७॥
तस्यां स्नानं महाभागाः किमहं वर्णयामि वै। यज्ञान्तस्नानजं पुण्यं या प्रयच्छति भूतले ॥८॥
ततस्तु सङ्गवाहिन्याः सङ्गमे मुनिसत्तमाः। सङ्गता पूज्यते देवी वरदा देवपूजिता ॥९॥

ऋषियों ने पुनः कहा—मुनिवर! तदनन्तर जो पर्वत और नदियाँ वहाँ हैं, उनका भी संक्षेप में वर्णन करें॥ १॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! फिर नागों की निवासभूमि 'वेणु' नामक पर्वत है। जिसके बगल में विष्णु के चरणों से निकली पापनाशिनी 'गोमती' नदी[3] है। उसके पूर्व में 'गिरि' नामक पर्वत है। वहाँ सिद्ध और अप्सराएँ रहते हैं। 'गोमती' नदी पूतात्मा ऋषियों के आश्रमों एवं पक्षि-समूह से परिवेष्टित है। उसमें मछलियाँ तथा कछुवे भी हैं। इसके साथ ही वह मन्दगामिनी है। उसका जलपान करने से सोमरस-पान का फल मिलता है। उसके उद्गम-स्थल पर गोविन्द देव का पूजन होता है। महाभागों! उसमें स्नान करने का माहात्म्य मैं कैसे वर्णन करूँ? यह नदी भूतल में अवभृथ-स्नान का फल प्रदान करती है। आगे चलकर यह

---

*"ततस्तु गिरिसंज्ञो वै पर्वतो मुनिसत्तमाः। निवासभूतः सिद्धानां तथैवाप्सरसां द्विजाः॥"—पर्यन्तम् 'क' पुस्तके अत्र वर्तते।

१. 'निवासभूतो'—'क'। २. नानाविधैः पक्षिगणैः—'क'।

३. गङ्गा की एक सहायक नदी। हिमालय के निम्नभाग से निकल कर मैदानी भाग में 'शाहजहाँपुर' के पास झोल के रूप में परिणत हो जाती है। वहाँ से आगे चलकर 'नैमिषारण्य' में प्रविष्ट होती है। आगे लखनऊ, जौनपुर होती हुई वाराणसी जनपद के 'कैथी' ग्राम के पास (मार्कण्डेयेश्वर) गङ्गा के साथ मिल जाती है। ऋग्वेद में भी इसका नाम आया है। क्षेमक नामक राक्षस से पीड़ित होकर काशीराज दिवोदास ने काशी छोड़ दी थी और गोमती नदी के तट पर आ बसे थे—"तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः। विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत्'॥"—वायु० ९२-२६॥ बलराम की तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में भी भागवत (१०-७९।९-११) में गोमती का उल्लेख हुआ है—"अथ तैरभ्यनुज्ञातः 'कौशिकी'मेत्य ब्राह्मणैः। स्नात्वा 'सरोवर'मगाद् यतः 'सरयुरास्रवत्॥ अनुस्रोतेन 'सरयूं' प्रयागमुपगम्य सः। स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम्। "गोमतीं' गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः। गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गङ्गासागरसङ्गमे।"

ततो मायावतीसङ्गं पुण्यं त्रिदशसेवितम् । तत्र मात्रीश्वरो देवो मुनिभिः पूज्यते सदा ।।१०।।
तत्र स्नात्वा च मनुजः सन्तर्प्य च पितॄन् द्विजाः । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ।।११।।
ततः कोकावतीसङ्गं यत्र कोका महेश्वरी । पूज्यते मुनिशार्दूला वरदा लोकपूजिता ।।१२।।
निमज्य तत्र मनुजः सत्यलोकं प्रयाति वै । ततस्तु श्येनकासङ्गे श्येनकां शङ्करप्रियाम् ।।१३।।
सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् । ततस्त्वघविनाशिन्याः सङ्गमोऽस्ति द्विजोत्तमाः[1] ।।
निमज्य पितृकृत्यं च समाप्य मनुजो द्विजाः । शिवलोकमवाप्नोति रुद्रकन्यानिषेवितम् ।।१५।।
तयोर्मध्ये महादेवं वृद्धकेदारसंज्ञकम् । सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं न संशयः ।।१६।।
ततस्तु शतशो नद्यो गोमत्याः सङ्गमे द्विजाः । सङ्गताः सिद्धगन्धर्वैः सेविताः सुमनोहराः ।१७।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गोमतीमाहात्म्ये सप्ततितमोऽध्यायः ।।

'सङ्गवाहिनी' के साथ मिल जाती है। यह देवों से सम्मानित एवं वरदायिनी है। तत्पश्चात् 'मायावती' का पवित्र संगम है। वहाँ 'मात्रीश्वर' का पूजन होता है। उस स्थान पर स्नान-तर्पणादि करने से इक्कीस कुलों का उद्धार होकर मानव विष्णुलोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् 'कोकावती'-संगम में 'कोका' देवी विद्यमान हैं। वह वरदायिनी होती हुई लोक में पूजित हैं। वहाँ स्नान करने से सत्यलोक प्राप्त होता है। तब 'श्येनका' नदी का संगम है। उसमें स्नान कर 'श्येनका' देवी का दर्शन करने से मनुष्य को शिवलोक प्राप्त होता है। तदनन्तर 'अघ-विनाशिनी' का सङ्गम है। वहाँ स्नान और तर्पण करने से शिवलोक मिलता है। उनके मध्य में 'वृद्धकेदार' का पूजन कर निःसन्देह शिवलोक का लाभ होता है। तत्पश्चात् सिद्धगन्धर्वों से सेवित एवं बहुत-सी मनोहर नदियाँ गोमती में आकर मिलती हैं ।। २-१७ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गोमती' माहात्म्य नामक
सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'तपोधनाः'-'क' ।

७१

ऋषय ऊचुः—

मनोरथाः सुसम्पूर्णा यस्मिन् क्षेत्रे भवन्ति हि । तं क्षेत्रं वद विप्रर्षे ! सर्वं ते विदितं यतः ॥१॥

व्यास उवाच—

इदमेव पुरा देवी शङ्करं पर्यपृच्छत । कैलासशिखरे रम्ये चोपविष्टं शुभासने ॥२॥

देव्युवाच—

मनोरथा मनुष्याणां कस्मिन् क्षेत्रे महेश्वर । सम्पूज्य कं प्रपूर्णा हि भवन्ति तद्वदस्व मे ॥३॥

ईश्वर उवाच—

हिमालयतटे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते । महर्षिजनसङ्घैश्च पूजिते सुमनोहरे ॥४॥
पर्वतो वेणुसंज्ञो वै राजते परमेश्वरी । तत्र गोविन्दचरणात् सम्भूता सरितां वरा ॥५॥
सुपुण्या गोमती नामा गारुडीसङ्गमे गता । विद्यते मृगशावाक्षि सिद्धगन्धर्वसेविता ॥६॥
तयोर्मध्ये महाक्षेत्रं मदीयं वरवर्णिनि । महेन्द्रप्रमुखैर्देवैर्बाणाद्यैर्दितिजैरपि ॥७॥
तथैव सिद्धगन्धर्वैः सेवितं सुमनोहरम् । वैद्यनाथेति विख्यातं विद्यते परमेश्वरि ॥८॥
*वैद्यनाथेति विख्यातं लिङ्गमस्ति महेश्वरि । तत्र मे देवगन्धर्वैः पूजितं सुमनोहरम् ॥९॥
तावद्भ्रवन्ति संसारे मानवाः परमेश्वरि । मनोरथविहीना वै निमग्नाः शोकसागरे ॥१०॥
यावन्मे वैद्यनाथाख्यं न लिङ्गं पूजयन्ति हि । वैद्यनाथाद् दशगुणं फलं यत्र हि लभ्यते ॥११॥
तथा विश्वेश्वराद् देवात् काशीवासात् तथैव च । तस्मान्नान्यं प्रपश्यामि मनोऽभिलषितप्रदम् ॥

यो वैद्यनाथाभिमुखं प्रयाति गव्यूतिमात्रं प्रयतः प्रभाते ।
मनोरथास्तस्य भवन्ति पूर्णाः श्रीवैद्यनाथस्य महाप्रभावात् ॥ १३ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—ब्रह्मर्षे ! आप सर्वज्ञ हैं । अब आप मनोरथों की सिद्धि होने वाले क्षेत्र का वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों ! यही प्रश्न भगवती ने शुभासन पर विराजमान कैलास-शिखरस्थ भगवान् शङ्कर से भी किया था ॥ २ ॥

देवी ने शंकर से पूछा—महेश्वर ! किस क्षेत्र में मनुष्यों के मनोरथ पूर्ण होते हैं ? किसकी समभ्यर्चना से यह कार्य सिद्ध होता है ? ॥ ३ ॥

भगवान् शंकर ने कहा—देवि ! सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित हिमालय के तट पर 'वेणु' पर्वत है । उस पर गोविन्दचरण से निकलती हुई 'गोमती' नदी 'गारुड़ी' में संगत होती है । उनके मध्य में मेरा महाक्षेत्र 'वैद्यनाथ' है । वह क्षेत्र सिद्धगन्धर्वादि एवं बाणादि असुरों से भी सेवित है । उस क्षेत्र में 'वैद्यनाथ' नामक प्रसिद्ध शिवलिङ्ग है । वैद्यनाथ के पूजन करने से पहले तक ही मानव मनोरथशून्य हो चक्कर काटते रहते हैं । वैद्यनाथ का पूजन करने से काशीवास एवं विश्वनाथ के पूजन की अपेक्षा दस गुना फल मिलता है । उस क्षेत्र के अतिरिक्त और कोई दूसरा क्षेत्र मनोरथों की सिद्धि को पूर्ण करने वाला विदित नहीं होता । जो मनुष्य वैद्यनाथ की ओर मुखकर दो कोस भी चलता है, उसके सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं । जो मनुष्य घर, वन

---

*'विद्यते मृगशावाक्षि सिद्धगन्धर्वसेवितम्' इत्यधिकः–'घ' ।

श्रीवैद्यनाथेति च यः स्मरेज्जनो गृहे वने वाऽपि तथा वनान्तरे।
न तस्य चौराग्निमहद्भयं भवेत् मम प्रभावात् गिरिराजकन्यके ॥ १४ ॥

वैद्यनाथसमं स्थानं नान्यं मे विद्यते भुवि। वर्णितो यत्र चोद्वाहस्त्वया सह महेश्वरि ॥१५॥
यत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत् दृष्ट्वा वैवाहिकं विधिम्। निवसन्ति महाभागे समाराधयितुं हि माम् ॥
यत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे। समुपासन्ति मां देवि वैद्यनाथस्थले स्थिताः ॥१७॥
ये पूजयन्ति सततं वैद्यनाथस्थले शुभे। लिङ्गं मे गारुडीमध्ये ब्रह्माद्यैरपि पूजितम् ॥१८॥
तेषां सम्भूय सन्तुष्टो मनोऽभिलषितं फलम्। ददामि सकलान् कामान् तथैव परमेश्वरि ।१९।
शृणुष्व त्वं महादेवि ! इतिहासं पुरातनम्। पुरा ब्रह्मसभायां वै गतोऽस्मि रिटिना सह ।२०।
ततो ब्रह्मा समुत्थाय विष्णुना सह सुव्रते। मह्यं समासनं दत्त्वा पूजाविधिमकल्पयत् ॥२१॥
गृहीतपूजाविधिमासने स्थितं हरिं स मामग्रतः सङ्गतः शुभे।
वाणीं सुगम्भीररवां महामतिः कृत्वाऽब्रवीद्देवि समस्ततारिणीम् ॥ २२ ॥

हरिरुवाच—

त्वल्लिङ्गैर्देवदेवेश च्छादितं भुवनत्रयम्। वदन्ति मुनयः सर्वे वसिष्ठप्रमुखाः शुभाः ॥२३॥
हिमाद्रिस्तु विशेषेण लिङ्गैस्तव महेश्वर। सञ्छादितोऽस्ति वै विप्राः कथयन्ति यतव्रताः ॥२४॥
तत्रैव शयनं पुण्यं देव्या सह महेश्वर। वर्णयन्ति महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ॥२५॥
हिमाद्रिसंस्थितस्त्वं वै वर्ण्यसे नात्र संशयः। तत्र कस्मिन् स्थले देव मनुष्याणां मनोरथान् ।२६।
प्रपूरयसि तन्मह्यं कथयस्व प्रसादतः।

ईश्वर उवाच—

इति सम्भाषितो देवि विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥

एवं वनान्तर में वैद्यनाथ का स्मरण करता है, उसे शङ्कर के प्रभाव से चोर, अग्नि आदि का भय व्याप्त नहीं होता। वैद्यनाथ के समान कोई और दूसरा स्थान नहीं है। हे पार्वति ! वहाँ पर तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ था। जहाँ तेतीस कोटि देवगण मेरी वैवाहिक विधि को देखकर मेरी आराधना करने के लिए निवास करते हैं। इसके साथ ही वहाँ ब्रह्मा तथा विष्णु एवं ब्रह्मर्षिगण मेरी उपासना करते हैं। शुभे ! जो लोग वैद्यनाथक्षेत्र में गारुड़ी के मध्य ब्रह्मादि देवों से पूजित शिवलिङ्ग की पूजा करते हैं, उनसे प्रसन्न होकर मैं उनके मनोरथों की सिद्धि कर देता हूँ। महादेवि। इस सम्बन्ध में तुम एक प्राचीन आख्यान सुनो। पहले मैं एक बार 'रिटि' के साथ ब्रह्माजी की सभा में गया था। वहाँ विष्णु के साथ खड़े होकर ब्रह्मा ने मेरा स्वागत किया। साथ ही शुभासन पर बैठाकर मेरी पूजा की। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने बड़ी गम्भीरता के साथ ब्रह्माजी से कहा ॥ ४-२२ ॥

भगवान् विष्णु ने बोलना आरम्भ किया—देवदेवेश ! वसिष्ठादि मुनियों से यह विदित हुआ कि शिवलिङ्गों से तीनों लोक आच्छादित हैं। हिमालय तो अधिकतर शिवलिङ्गों से अभिव्याप्त है। वहाँ पर देवी के साथ आपकी शयन-भूमि बतलाई गई है। आप कृपया यह बतायें कि वहाँ ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ लोगों के मनोरथ सिद्ध हो सकें ॥ २३-२६ ॥

भगवान् शंकर ने पार्वती से कहा—हे देवि ! सृष्टि, स्थिति तथा विनाश के ज्ञाता एवं

सृष्टिस्थित्यन्तबोधेन लोकानां हितकारिणा। ततोऽहं गोमतीतीरे गारुडीसङ्गमान्तरे ॥२८॥
लिङ्गं श्रीवैद्यनाथाख्यं दर्शयामास सुव्रते। तं दृष्ट्वा स हरिः श्रीमान् पाकशासनविक्रमः ।२९।
मेने मनोरथान् पूर्णान् लोकानां गिरिकन्यके। ततो देवाः सगन्धर्वा मया सन्दर्शितं शुभम् ॥
ददृशुर्वैद्यनाथाख्यं लिङ्गं मे वरवर्णिनि। दर्शनादेव ते सर्वे देवाः पूर्णमनोरथाः[1] ॥३१॥
सन्तस्थुर्देवलोकं वै महेन्द्रेण सहेश्वरि। इत्येतत् कथितं देवि मनोऽभिलषितप्रदम् ॥३२॥
क्षेत्रं श्रीवैद्यनाथाख्यं देवगन्धर्वसेवितम्।

व्यास उवाच—

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा भवानी मुनिसत्तमाः। सम्पूज्य सा शिवं शान्तं पुनरेवमपृच्छत ॥३३॥

श्रीदेव्युवाच—

यानि मुख्यानि देवेश वैद्यनाथस्थले शुभे। विस्तरेणातिपुण्यानि तीर्थानि वद तानि मे[2] ॥३४॥

ईश्वर उवाच—

यानि तत्र च मुख्यानि तानि ते कथयाम्यहम् ॥ ३५ ॥
सन्ति तीर्थान्यनेकानि गोमत्याश्च पदे पदे। यावद्वै वैद्यनाथाख्यं क्षेत्रं संवर्ण्यते शुभे ॥३६॥
तावत् सर्वाणि तीर्थानि कथयामि न संशयः। सूर्यतीर्थं समारभ्य यावन्मे पीवराह्वयम् ॥३७॥
लिङ्गं मे विद्यते देवि तावत् क्षेत्रं प्रकथ्यते। तत्र तीर्थान्यनेकानि तानि ते कथयाम्यहम् ॥३८॥
गारुडी गोमतीमध्ये बिन्दुमाधवसंज्ञकम्। क्षेत्रमस्ति महाभागे पावनं देवसेवितम् ॥३९॥
तत्र स्नात्वा यथान्यायमुपोष्य विधिपूर्वकम्। प्रकल्प्य पितृकृत्यं वै पूज्य तं बिन्दुमाधवम् ।४०।

लोकहितकारी विष्णु के ऐसा कहने पर मैंने उन्हें 'गारुडी' के संगम पर 'गोमती' के तटवर्ती 'वैद्यनाथ' नामक शिवलिङ्ग को बताया। पार्वति! उसे देख इन्द्र के सदृश पराक्रमी विष्णु ने लोगों के मनोरथों को पूर्ण होते हुए समझा। तत्पश्चात् देवताओं ने 'वैद्यनाथ' का दर्शन कर अपने को पूर्णमनोरथ समझा। महेश्वरि! 'वैद्यनाथ' के दर्शन कर वे इन्द्र सहित देवलोक चले गए। हे देवि! इस प्रकार मैंने देव-गन्धर्वादि से सेवित एवं मनोरथप्रद वैद्यनाथक्षेत्र का वर्णन कर दिया है॥ २७-३२॥

व्यासजी ने (ऋषियों से) कहा—मुनिवरों! शिव की इस वाणी को सुन पार्वती ने उनकी समभ्यर्चना की तथा फिर पूछना आरम्भ किया॥ ३३॥

पार्वती बोली—देवेश! 'वैद्यनाथ'-धाम के अन्तर्गत जितने भी प्रमुख स्थान तथा तीर्थादि हैं, उनका विस्तारपूर्वक आप वर्णन करें॥ ३४॥

शिवजी ने वर्णन आरम्भ करते हुए कहा—शुभे! मैं अब वहाँ के प्रमुख स्थानों को बतला रहा हूँ। गोमती के तट पर 'वैद्यनाथ'-पर्यन्त पग-पग पर अनेक तीर्थ हैं। उनका वर्णन अब किया जा रहा है। 'सूर्यतीर्थ' से आरम्भ कर 'पीवर' महादेव तक विद्यमान सब तीर्थों को बता रहा हूँ। 'गारुडी' और 'गोमती' के मध्य 'बिन्दुमाधव' क्षेत्र है। वहाँ स्नान, उपवास तथा पितृकृत्य करने के पश्चात् 'बिन्दुमाधव' का पूजन करने से इक्कीस कुलों का उद्धार होता

---

१. 'पूर्णमनोरथैः'—'क'। २. 'तानि तीर्थानि मे वद'—'ग'। 'तीर्थानि वद मे प्रभो'—'घ'।

त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो याति हरेः पदम् । तदूर्ध्वं ब्रह्मतीर्थाख्यं तीर्थं त्रिदशसेवितम् ॥४१॥
निमज्य पितृकृत्यं वै समाप्य शिववल्लभे । ब्रह्मलोकमवाप्नोति नरस्त्रिशत्कुलान्वितः ॥४२॥
तदूर्ध्वं सुरभीसङ्गे चन्द्रतीर्थमिति स्मृतम् । निमज्य तत्र सोमं वै सम्पूज्य शिववल्लभे ॥४३॥
चन्द्रलोकमवाप्नोति मानवो नात्र संशयः । ततः स्रोतः समुत्तीर्य सीतासङ्गे महेश्वरि ॥४४॥
आवर्तैर्बहुभिर्युक्ते सूर्यतीर्थे शिवप्रदे । स्नात्वा ततो नरो देवि पितृकृत्यं समाप्य च ॥४५॥
स्वर्गलोकमवाप्नोति भास्करस्य प्रसादतः ॥ ४६ ॥

ततोर्ध्वम् ऋषितीर्थं वै बाणाख्यं च ततः परम् । तत्र स्नात्वा च मनुजः स्वर्गलोके महीयते ॥
गारुडी-गोमतीमध्ये पुण्यां गुप्तसरस्वतीम् । निमज्य मानवो याति स्वर्गलोकं न संशयः ॥४८॥
वेणीमध्ये नवोढां त्वां सम्पूज्य शिववल्लभे । मनोऽभिलषितां सिद्धिं [1]प्राप्नोत्येव न संशयः ॥
तदूर्ध्वं गारुडीमध्ये गारुडीतीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो देवि सर्पभीतिं न विन्दति ॥५०॥
तदूर्ध्वं श्येनवत्यास्तु सङ्गमे परमेश्वरि । निमज्य मानवः सम्यग् देवीं श्येनवतीं तथा ॥५१॥
सम्पूज्य चिरजीवित्वं प्राप्नोति नहि संशयः । गारुडी-गोमतीमध्ये नवोढां त्वां प्रपूज्य वै ॥५२॥
मानवो देवभवनं प्राप्नोति नहि संशयः । चण्डीशं तत्र सम्पूज्य तथैव च गणेश्वरम् ॥५३॥
वामे च क्षेत्रपालं वै पूज्य याति परां गतिम् । ब्रह्मतीर्थादधोभागे ऋषीणां यज्ञकारिणाम् ॥५४॥
सन्ति तीर्थान्यनेकानि सेवितानि महर्षिभिः । तेषु स्नात्वा च मनुजः परां गतिमवाप्नुयात् ॥५५॥
ततस्तु गारुडीसङ्गाद् बहिर्भागे महेश्वरि । सुतारा-सरितः सङ्गे पुण्ये स्नात्वा महेश्वरि ॥५६॥
तरत्येव महापापात् सत्यमेतन्न संशयः । ततः स्रोतः समुत्तीर्य रोहिण्याः सङ्गमे शुभे ॥५७॥
निमज्य मानवो याति महेन्द्रभवनं शुभम् । ततस्तु गौतमीसङ्गे निमज्य मुनिसत्तमाः[2] ॥५८॥

है। साथ ही उपासक ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् देवों से सेवित ब्रह्मतीर्थ है। उसमें स्नान और पितृकृत्य कर मानव तीस कुलों सहित ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। उसके ऊपर सुरभी के सङ्गम पर 'सूर्यतीर्थ' है। उसके प्रवाह में बड़ी भौंरियाँ हैं। वहाँ स्नान और पितृकार्य करने पर सूर्य की कृपा से स्वर्ग प्राप्त होता है। उसके ऊपर 'ऋषितीर्थ' और 'बाणतीर्थ' हैं। ये दोनों भी स्वर्गप्रद हैं। 'गारुडी' और 'गोमती' के मध्य 'गुप्त सरस्वती' है। उसमें स्नान करने से भी स्वर्गलाभ होता है। 'त्रिवेणी' के मध्य में 'नवोढा पार्वती' का (तुम्हारा) पूजन कर मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। फिर ऊपरी भाग में 'गारुडी'-तीर्थ है। उसमें स्नान कर सर्पभय नहीं रह जाता। उसके ऊपर 'श्येनवती' के सङ्गम में स्नान एवं देवी का पूजन करने से मानव चिरजीवी होता है। गारुडी-गोमती के मध्य में प्रतिष्ठित तुम्हारा पूजन करने से मानव निःसन्देह देवलोक प्राप्त करता है। वहाँ 'चण्डीश' और गणेश का पूजन कर वाम भाग में क्षेत्रपाल का पूजन करने से परम गति प्राप्त होती है। ब्रह्मतीर्थ से निम्नभाग में याज्ञिक ऋषियों के अनेक तीर्थ हैं, उनमें स्नान करने से सद्गति मिलती है। महेश्वरि! तदनन्तर गारुडी-संगम के बाहर 'सुतारा'-सङ्गम में स्नान कर मानव पाप-निर्मुक्त हो जाता है। तब नदी से उतर कर पवित्र 'रोहिणी' के सङ्गम में स्नान करने से मानव को इन्द्रलोक मिलता

---

१. 'सिद्धिमवाप्नोति न संशयः'—'क'। २. 'शिववल्लभे'—'क'।

मानवः सकलान् पापान् सन्त्यज्य शिवमाप्नुयात् । ततः स्रोतः समुत्तीर्य वेगवत्यास्तु सङ्गमे ॥
निमज्य मानवो याति महेन्द्रभवनं शुभम् । ततो वामे महादेवं कपालीशं महेश्वरि ॥६०॥
सम्पूज्य मानवो याति सत्यलोकं न संशयः । ततस्त्वहीश्वरा-सङ्गं पुण्यमस्ति महेश्वरि ॥६१॥
तत्र स्नात्वा च मनुजः पूज्याहीशं महेश्वरम् । शिवलोकमवाप्नोति प्रसादान्मम सुव्रते ॥६२॥
ततस्तु कालमेनायाः सङ्गमोऽस्ति महेश्वरि । कालमेनां शिवां पूज्य निमज्य विधिपूर्वकम् ।६३।
मानवो मम सायुज्यं प्राप्नोति नहि संशयः । ततस्त्वहिवरासङ्गे सुपुण्ये परमेश्वरि ॥६४॥
निमज्य मानवो याति शिवलोकं शिवप्रदम् । तयोर्मध्ये महादेवं पीवरं पूज्य शङ्करम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गे लोके महीयते ॥६५॥

व्यास उवाच—

इति श्रुत्वा महादेवी शिवस्य वचनं शुभम् । सम्पूज्य देवदेवेशं तूष्णीमासीत्[1] तपोधनाः ॥६६॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वैद्यनाथमाहात्म्यं नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥

है । मुनिवरों ! फिर 'गौतमी' के सङ्गम में स्नान कर मनुष्य पापरहित होकर कल्याण-लाभ करता है । तब बाहर उतर कर 'वेगवती' के सङ्गम में स्नान करने से मनुष्य शुभ इन्द्रलोक प्राप्त करता है । महेश्वरि ! फिर वहाँ से बाईं ओर 'कपालीश' का पूजन कर मनुष्य निःसन्देह 'सत्यलोक' प्राप्त करता है । तब 'अहीश्वरा' का सङ्गम है । वहाँ स्नान कर 'अहीश्वर' का दर्शन कर मनुष्यों को मेरी कृपा से शिवलोक प्राप्त होता है । तदनन्तर 'कालमेना' का सङ्गम है । वहाँ स्नान कर 'कालमेना देवी' का पूजन कर मानव शिवसायुज्य प्राप्त करता है । पार्वति ! तब पुण्यशील 'अहिवरा'-सङ्गम में स्नान कर मनुष्य को कल्याणप्रद शिवलोक की प्राप्ति होती है । उन दोनों के मध्य 'पीवर' नामक शिव का पूजन कर मनुष्य पापरहित होकर स्वर्गलोक में सम्मानित होता है ॥ ३५–६५ ॥

व्यासजी ने कहा—तपोधनों ! पार्वती शिवजी की बातें सुन कर उनकी पूजा करने के उपरान्त चुप हो गईं ॥ ६६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वैद्यनाथ-माहात्म्य' नामक
इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'तूष्णीमास' इति–'क' ।

७२

व्यास उवाच—

गोमत्यां शतशो नद्यः सङ्गम्य मुनिसत्तमाः । पुण्यतोयवहाः सर्वाः ख्यायन्ते नात्र संशयः ॥१॥
तासां सङ्गेषु मनुजो निमज्य मुनिसत्तमाः । समुद्धृत्य पितॄन् सर्वान् दशपूर्वान् दशोत्तरान् ॥
प्रयाति देवभवनमप्सरोभिर्निषेवितम् । विशेषेण महाभागा गोमती पुण्यवाहिनी ॥३॥
सरयू-सङ्गमं प्राप्य वर्ण्यते नात्र संशयः । गोमती-मज्जनं विप्रा महेन्द्रादिदिवौकसः ॥४॥
वाञ्छन्ति नहि सन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् । सुपुण्ये गोमतीतीरे मृता ब्रह्मपदं शुभम् ॥५॥
प्राप्नुवन्ति महाभागाः कलौ सत्यं ब्रवीम्यहम् । गोमत्यां मज्जनं कृत्वा ये यान्ति सरयूं प्रति ॥
न तेषामिह माहात्म्यं शक्यते कथितुं द्विजाः । गोमत्याश्चुलुकादेव ये स्नानं प्रचरन्ति हि ॥७॥
ते देवभवनं यान्ति सेव्यन्ते चाप्सरोगणैः । माहात्म्यं कथितं पुण्यं गोमत्याः शङ्करस्य च[1] ॥८॥
गौरी-महेशसंवादं वैद्यनाथस्य वर्णनम् । ये वै शृण्वन्ति सततं ते यान्ति परमं पदम्[2] ॥९॥

इति श्रीमानसखण्डे स्कन्दपुराणे गोमतीमाहात्म्ये द्वासप्ततितमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! गोमती में अनेक नदियाँ मिल कर पवित्र जल वाली प्रसिद्ध हो गई हैं । उनके सङ्गमों में स्नान कर मनुष्य अपने दस पूर्वजों तथा दस उत्तरवर्ती पीढ़ियों का उद्धार कर स्वयं अप्सराओं से सेवित देवलोक को प्राप्त करता है । महाभागों ! उन सब नदियों में भी पुण्यसलिला गोमती विशेष रूप से प्रख्यात है । हे विप्रवरों ! महेन्द्रादि देवता भी गोमती में स्नान करने के इच्छुक रहते हैं । गोमती के तट पर मरने वालों को कलियुग में शुभद ब्रह्मलोक मिलता है । विप्रवरों ! गोमती में स्नान कर जो लोग सरयू में स्नान करने के लिये जाते हैं, उनका माहात्म्य कहा नहीं जा सकता । गोमती के चुल्लू भर जल से ही जो लोग स्नान करते हैं, उन्हें देवलोक मिलता है और अप्सरायें उनकी सेवा करती हैं । इस प्रकार गोमती और शङ्कर का माहात्म्य, शिव-पार्वती-संवाद एवं वैद्यनाथ का वर्णन भी मैंने कर दिया है । इसका सतत श्रवण करने वालों को मोक्ष मिलता है ॥ १-९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गोमती-माहात्म्य' नामक
बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'शङ्करप्रदम्'—'क' ।   २. 'परमां गतिम्'—'क' ।

७३

ऋषय ऊचुः—

वैद्यनाथस्य माहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमाः। साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामो हिमालयकथां शुभाम् ॥१॥
शिखराणां च माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम्[1]। हिमदर्शनजं पुण्यं शिरसां शङ्करस्य च ॥२॥

व्यास उवाच—

माहात्म्यं मुनिशार्दूला हिमाद्रेश्चातिशोभनम्। सर्वपापप्रशमनं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः[2] ॥३॥
यस्य माहात्म्यकथनात् श्रवणाद्वापि सुव्रताः। प्राप्यते मुक्तिरप्राप्या[3] विष्णुसायुज्यदायिनी ।४।
हिमसीकर-शोभाभिर्भासितं हिमपर्वतम्। ये पश्यन्ति महाभागास्ते यान्ति हरिमन्दिरम् ॥५॥
हिमं हिमेति यो ब्रूते मानवो[4] भक्तिसंयुतः। योजनायुतदूरस्थो स याति हरिमन्दिरम् ॥६॥
हिमं ब्रूयुर्गृहे विप्रा वनान्ते हिममेव हि। हिममेव हि सर्वत्र मानवैश्च हितार्थिभिः ॥७॥
वृद्धावस्थागतैर्लोकैर्हिममेव तपोधनाः। स्मरणीयो न सन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥८॥
हिमालयेति यो ब्रूते मृत्युकाल उपस्थिते। स याति विष्णुभवनं पूजितो देवनायकैः ॥९॥
यस्य सन्दर्शनाद्विप्राः शतयोजनदूरगाः। मृताः कीटाः पतङ्गाद्याः[5] शिवलोकं प्रयान्ति वै ।१०।
सर्वत्र हिमवान् पुण्यः ख्यायते मुनिसत्तमाः। तथा स्थानविशेषेण पुण्यात् पुण्यतरं स्मृतम् ।११।
हिमदर्शनमात्रेण गङ्गास्नानसमं फलम्। जायते मुनिशार्दूलास्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ॥१२॥
काशीवाससमं पुण्यं हिमाद्रेर्दर्शनाद् द्विजाः। जायते नात्र सन्देहः तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ।१३।

ऋषियों ने कहा—मुनिवरों! आपने वैद्यनाथ का माहात्म्य तो बतला दिया है, अब हम 'हिमालय' के माहात्म्य को सुनना चाहते हैं। इसके साथ ही उसके दर्शनजन्य पुण्य तथा भगवान् शङ्कर के सिरों का माहात्म्य जानने के इच्छुक हैं ॥ १-२ ॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठों! हिमालय का माहात्म्य परम शोभनीय है तथा पापविनाशक है। आप लोग सुनें। उसके कहने एवं सुनने से विष्णुसायुज्य प्राप्त होता है। हिमकणों की शोभा से दीप्तिमान् हिमालय के दर्शन मात्र से विष्णुपद मिलता है। जो लोग भक्तिपूर्वक 'हिम' शब्द का बार-बार उच्चारण करते हैं, उन्हें दस हजार योजन दूर रहते हुए भी, विष्णुलोक का लाभ होता है। हे विप्रवरों! अतः अपना हित चाहने वाले लोगों को घर या वन में कहीं भी रहते हुए 'हिम' का स्मरण करते रहना चाहिये। मृत्यु के समय जो 'हिमालय' का नाम लेता है, उसे विष्णुलोक मिलता है। सैंकड़ों योजनों दूर रहते हुए भी हिमालय का दर्शन होने से कीट-पतङ्गों को भी मरणोपरान्त मुक्ति मिल जाती है। मुनिवरों! हिमालय को सर्वत्र पुण्यवान् बतलाया गया है। विशेष स्थानों पर तो उसे महान् पुण्यजनक कहा है। 'हिम' के दर्शन मात्र से गङ्गा-स्नान का फल प्राप्त होता है। आप ही कहें उससे बढ़कर और कौन स्थान हो सकता है? विप्रवरों! हिमालय के दर्शन से काशीवास के सदृश पुण्यलाभ

---

१. 'श्रोतुमिच्छामः साम्प्रतम्'—'क'। २. 'सुसमाहिताः'—'क'। ३. 'मुक्तिर्दुर्ज्ञेया'—'क'।
४. 'यो भक्त्या'—'क'। ५. 'कीटपतङ्गाद्याः'—'क'।

यत्र संरोहणात् सद्यो मानवो मुनिसत्तमाः। जायते दिव्यदेहो वै तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ।१४।
यत्र देवाः सगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः। निवसन्ति महाभागास्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ।१५।
स यत्र देवदेवेशो मृडान्या वल्लभः स्वयम्। चकार स्वनिवासं यो तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ।।
यत्र जाता महादेवी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। पूज्यते देवगन्धर्वैस्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ।१७।
तत्राप्येकं महाक्षेत्रं देवमुख्यैर्निषेवितम्। ब्रह्माद्यैर्विष्णुसहितैः सेवितं देवनायकैः ।।१८।।
विद्यते क्षेत्रराजाख्यः कैलासशिखरोपमः। शिखराणि सुपुण्यानि यत्र सन्ति द्विजोत्तमा. ।।१९।।
यत्र विष्णुश्च रुद्रश्च तथैव कमलासनः। सेवार्थं निवसन्त्यत्र त्रयो ह्येते तपोधनाः ।।२०।।
नन्दकैलासयोर्मध्ये शिखराणि गिरेर्द्विजाः। अमरा द्रष्टुमिच्छन्ति मानवानान्तु का कथा ।२१।
येषु शिरांसि संस्थाप्य चरणौ दारुकानने। नाभिं कटिं च वागीशे ग्रीवां जीवारपर्वते ।।२२।।

होता है। ऐसी स्थिति में कौन दूसरा स्थान उससे बढ़कर हो सकता है? वहीं देव, गन्धर्व एवं ऋषियों का वास है। अतः वह सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। पार्वती-सहित भगवान् शङ्कर की वास-भूमि होने के कारण वह सर्वश्रेष्ठ है। वहीं सृष्टि-स्थिति-संहार-कर्त्री भगवती उत्पन्न हुई हैं तथा वे देव-गन्धर्वों से पूजित हैं। ऐसे 'हिमालय' की महिमा को कैसे बताया जाय? उसी 'हिमालय' में विष्णुसहित ब्रह्मादि देवों से सेवित एक महाक्षेत्र है। वह 'कैलास' नाम से प्रसिद्ध है। उस शिखर के समान अनेक पुण्यशील हिमशिखर हैं। तपस्वियों! उन शिखरों पर तीनों देव हिमालय की परिचर्या के लिये सर्वदा सन्नद्ध रहते हैं। विप्रवरों! 'नन्द' और 'कैलास'[२] पर्वत के मध्य विद्यमान शिखरों को देवगण भी देखना चाहते हैं। मनुष्यों का तो कहना ही क्या? उन्हीं शिखरों पर भगवान् ने अपने सिरों को रखा (तकिया बनाया), तथा अपने पैरों को 'दारु-पर्वत' (जागेश्वर)[३] पर फैलाये। अपनी नाभि तथा कमर को 'वागीश्वर' (बागेश्वर)[४] में प्रतिष्ठित किया। अपनी ग्रीवा (गर्दन) 'जीवार-पर्वत' (जोहार)[५] पर

---

१. 'देवमुख्यैर्वै'—'क'।

२. 'कैलास' का वर्णन पहले ग्रन्थारम्भ में देखें।

३. ग्रन्थ के ६१-६३ तक अध्यायों में इसका वर्णन देखें।

४. प्रस्तुत ग्रन्थ के ७८वें अध्याय में वर्णन किया जायगा।

५. इस सम्बन्ध में एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि पूर्वकाल में 'जोहार' प्रदेश के अधिकारी 'हल्दुवा' और 'पिंगलुवा' वर्ग के लोग थे। 'मापा' ग्राम के नीचे और 'मंगलदुंगा' के ऊपर विद्यमान सड़क के निकट वर्तमान 'सेकतांताल' के ऊपर 'मिलम' तक 'पिंगलुवा' का तथा ताल के नीचे 'मापङ' तक का भाग 'हल्दुवा' के अधीन था। इन दोनों की सन्तानों में से वर्तमान काल में 'मापा' स्थित 'हेलंगवावफ्' स्थान में 'मर्गालिया' और 'मलहम', 'मर्तोली' में 'कलपा' परिवार के लोग रहते हैं। इसके अतिरिक्त 'धोनरपा' 'तीतरपा' आदि परिवारों से सम्बद्ध लोगों के वास भी हैं, जो अब प्रायः तितर-बितर हो गए हैं। उपर्युक्त भूमिपालों के शासन-काल में लोग बारहों मास 'मल्ला-जोहार' में बस कर 'उवा' आदि अन्नों की खेती से निर्वाह करते थे। शीतकाल के लिए अन्न, इंधन आदि वस्तुओं का संचय पहले ही कर लेते थे। अभी तक धरती खोदने पर खंडहरों में 'मिट्टी' और 'धातुओं' के पात्र मिलते रहते हैं। कालान्तर में साम्प्रतिक जोहारी इधर-उधर से आकर बसने लगे और जमीन पर घर बनाने लगे।

बाहवो भुवनेशाख्ये सव्या देवर्षिपूजिताः। दक्षिणाख्या विभाण्डेशे संस्थाप्य जगदीश्वरः ।२३।
सुखं सुष्वाप वै विप्रा भवान्या सह शङ्करः ।। २४ ।।
यो महेशस्य सायुज्यं प्राप भक्त्या द्विजोत्तमाः। यस्मिन् शेते महादेवस्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः।।
शिरांसि यस्य रुद्रस्य शिखरेषु द्विजोत्तमाः। विराजन्ते सुपुण्यानि तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ।।
तत्र ये देवदेवस्य पूजयन्ति शिरांसि हि। सायुज्यं यान्ति वै विप्राः शङ्करस्य न संशयः ।।२७।।
ये तत्रारुह्य वै विप्राः शिरांसि शङ्करस्य च। ते यन्ति स्वेन देहेन महेशभवनं प्रति ।।२८।।
ये शिरांसि महाभागाः सम्भाव्य पूजयन्ति हि। शिवेन सह सायुज्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ।२९।
दशयोजनदूरस्थो यः शिरांसि प्रपश्यति। शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।।३०।।
शिरांसि सम्भाव्य हरस्य ये द्विजाः पश्यन्ति सम्यक् प्रणताः परायणाः।
ते सेव्यमानाः सुरनायिकादिभिः प्रयान्ति शम्भोः परमं पदं जनाः।। ३१ ।।
ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्ते च मानवाः। ये हरस्य महाभागाः प्रपश्यन्ति शिरांसि वै ।३२।
मानुषा देवदेवस्य शिरांसि हिमपर्वते। ये न पश्यन्ति मनुजास्ते यान्ति नरकं प्रति ।।३३।।
यं स्वयं मघवान् धन्यः सुपुण्ये हिमपर्वते[1]। सम्पूजयति वै विप्रास्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ।३४।
तावत् काशीं स्तुवन्ति स्म मुनयो मुनिसत्तमाः। यावच्छिरांसि देवस्य न पश्यन्ति हिमालये ।।

रखी। बाईं भुजा 'भुवनेश्वर' में स्थिर की। दाहिनी भुजा को विभाण्डेश्वर में स्थापित किया। उसे शयनागार बनाकर शंकर ने पार्वती के साथ सुखपूर्वक शयन किया है। जिस हिमालय ने भगवान् शङ्कर का सायुज्य प्राप्त किया है एवं जिसे भगवान् ने अपना शयनागार बनाया है, उससे बढ़कर महान् और किसे कहा जाय? जिसके शिखरों पर शिव के सिर प्रतिष्ठित हैं, उससे बढ़कर और कौन हो सकता है? ऋषिवरों! वहाँ शिव का पूजन करने से मानव शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। वहाँ चढ़कर शिव के सिरों का पूजन करने वाले लोग सदेह शिवलोक चले जाते हैं। असमर्थजनों को 'पञ्चशिरों' का दर्शन कर पूजन करने से ही शिव-सायुज्य मिलता है। जो दस योजन की दूरी से ही शिव के सिरों का दर्शन करता है, वह अवश्यमेव शिवलोक जाकर शिव के साथ आनन्द करता है। इसके अतिरिक्त शिव के सिरों का दर्शन कर नमन करने वाले लोग भी देवाङ्गनाओं से सेवित हो परम पद प्राप्त करते हैं। भगवान् शंकर के सिरों का दर्शन-लाभ करने वाले स्थान, जनपद एवं पर्वतादि भी धन्य हैं। भगवान् शंकर के हिमालयस्थ 'पञ्चशिरों' के दर्शन से वञ्चित जन नरकगामी होते हैं। जिस हिमाद्रि में जाकर देवेन्द्र भी शिव के सिरों का पूजन करते हैं, उससे बढ़कर और कौन महान् हो सकता है? मुनिश्रेष्ठों! ऋषिगण काशी की स्तुति तब तक करते हैं, जब तक उन्हें हिमालय में शिव के सिरों के दर्शन नहीं हो जाते। महर्षिगण अन्य तीर्थों की प्रशंसा भी तभी तक

व्यापार के लिये हूण देश का धारा भी खुल गया। धौल ग्वीदाङ खलकोट होते हुए बरपटिये, मुनस्यार व मनकोट के माल का भी आवागमन होने लगा।

(द्रष्टव्य-जौहारी-उपकारक भाग २ : रामसिंह मन्त्री, जाब वर्क्स प्रेस, मुरादाबाद, पृ० १०-११)

१. 'हिमसीकरैः'–'क'।

तावदन्यानि तीर्थानि कथयन्ति महर्षयः । यावच्छिरांसि देवस्य न स्मरन्ति हिमालये ॥३६॥
तावत् स्नानप्रशंसां वै प्रकुर्वन्ति महर्षयः । यावद्धिमालये विप्रा न स्पृष्टा हिमसीकरैः ॥३७॥
तावद् यमस्य भीतिं वै प्रकुर्वन्ति भुवः स्थले । यावद्धिमालये पुण्ये न दृष्टा हिमराशयः ॥३८॥
यावच्छिरांसि मनुजैः[1] पूजितानि हिमालये । देवगन्धर्वकन्याभिस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥३९॥
प्रणमन्ति न वै विप्रास्तावद् भोगानि भूतले । पश्यन्ति नातियोग्यानि विपुलानि धनानि च ॥
तावद्वै कालकूटेन देहभूतेन मानवाः । विलिप्ताः सन्ति वै विप्रा जना विषहता यथा ॥४१॥
यावच्छिरांसि देवस्य सुपुण्यैः कुसुमैर्द्विजाः । न पूजितानि भूलोके पूजितानि महर्षिभिः ॥४२॥
हिमालयस्य माहात्म्यं[2] मयैतत्समुदाहृतम् । यः शृणोति महाभागाः स याति परमां गतिम् ॥४३॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे तुहिनशिखरमाहात्म्ये महेशशिरोवर्णनं
नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥

करते हैं, जब तक हिमालय पर हिम-कणों का स्पर्श नहीं हो पाता। हिमराशि के दर्शन के पूर्व तक ही यमराज का भय विद्यमान रहता है। हिमालय में देवगणों, गन्धर्वकन्याओं, अप्सराओं और मानवों द्वारा शिवजी का पूजन और प्रणामादि विधान जब तक नहीं किया जाता, तब तक पृथ्वी पर सुख-भोग एवं विपुल धन की प्राप्ति सम्भव नहीं। विप्रवरों! मनुष्य के देह में कालकूट तभी तक लिप्त रहता है, जब तक महर्षियों से पूजित शिव-शिरों को मनोहर पुष्पाञ्जलि अर्पित नहीं की जाती। महाभागों! इस तरह हिमालय का माहात्म्य मैंने आप लोगों को समझा दिया है। जो इसे श्रवण करता है उसे परम गति मिलती है ॥ ३-४३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में हिमशिखर-माहात्म्य के प्रसङ्ग में 'शिवशिरो-
माहात्म्य'[3] नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'मनुजाः'–'क'।

२. "शिरसां शंकरस्य च। कथितं मुनिशार्दूलाः किमन्यत्प्रष्टुमिच्छथ। हिमालयस्य माहात्म्यम्।"— इत्याकारकः पाठः 'क' पुस्तके।

३. पिठौरागढ़ जिले की उत्तरी सीमा पर हिमाच्छादित शिखर 'पञ्चचूली' का यह वर्णन है। पिठौरागढ़ नगर में भाटकोट से 'पञ्चचूली' के पाँचों शिखर दिखायी देते हैं। मुनस्यारी और धारचूला तहसीलों में हिमाच्छादित शिखरों के नीचे की भूमि छह मास तक शीतकाल में बर्फ से ढंकी रहती है।

७४

सूत उवाच—

हिमालयस्य माहात्म्यं श्रुत्वा ते मुनिसत्तमाः[1]। कृष्णद्वैपायनं व्यासं सम्पूज्य सुसमाहिताः ।।१।।
पप्रच्छुस्तस्य तीर्थानां माहात्म्यं नृपसत्तम। तथैव हिमभूतानां नदीनां सम्भवं शुभम् ।।२।।

ऋषय ऊचुः—

धन्योऽसि मुनिशार्दूल सर्वं ते विदितं यतः। लोकसागरमग्नानां प्लवभूतोऽसि भूतले ।।३।।
विस्तरेण महाभाग माहात्म्यं ब्रूहि साम्प्रतम्। हिमालयस्य तीर्थानां क्षेत्राणामपि तत्तथा ।।४।।
नदीनां च समुत्पत्तिं विस्तरेण तपोधन। कथयस्व विशेषेण सर्वज्ञोऽसि यतः स्वतः[2] ।।५।।

व्यास उवाच—

अहो समुच्यमानायां[3] कथायां मुनिसत्तमाः। भूयसी जायते श्रद्धा भवतां भावितात्मनाम् ।६।
कथायां क्रियमाणायां येषां श्रद्धा विवर्धते। ते धन्या मानुषे लोके ते पूज्या नात्र संशयः ।।७।।
हिमाद्रेर्दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः। पूज्यते देवगन्धर्वैर्महेन्द्राद्यैर्न संशयः ।।८।।
वामे तस्य महादेवी विजया मुनिसत्तमाः। पूज्यते यक्षगुह्याद्यैर्विद्याधरगणैस्तथा ।।९।।
समर्च्य[4] तां नरो याति महेन्द्रभवनं प्रति। तस्य वै दक्षिणे पार्श्वे सन्ति कान्ता महागुहाः ।१०।
तासु विद्याधराः सर्वे निवसन्ति न संशयः। तस्य वै पूर्वभागे च चत्वारिंशन्महागुहाः ।।११।।
निवसन्ति महाभागास्तासु गन्धर्वनायकाः। तस्य चोत्तरभागे वै पुण्याः सप्त गुहाः स्मृताः ।१२।
उर्वशीप्रमुखास्तासु निवसन्त्यप्सरो द्विजाः। अष्टाविंशतिसंख्यास्तु गुहाः पुण्यास्तपोधनाः ।१३।

सूतजी बोले—नृपश्रेष्ठ ! हिमालय के माहात्म्य को सुनकर ऋषियों ने वेदव्यास की समभ्यर्चना की। तदनन्तर उन्होंने वहाँ के तीर्थों तथा हिमसम्भूत नदियों के उद्गम-स्थलों के बारे में पूछा ।। १-२ ।।

ऋषियों ने व्यासजी से कहा—मुनिश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं। आप सर्वज्ञ हैं। इस भूतल पर भवसागर में उतराने वालों के लिये आप जहाज हैं। महाभाग ! सर्वज्ञ होने के कारण कृपया आप हिमालयस्थ तीर्थों, क्षेत्रों तथा नदियों के उद्गम-स्थानों का वर्णन करें ।। ४-५ ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! कथा सुनाते-सुनाते आप महात्माओं की उत्कण्ठा बढ़ती जा रही है। ऐसे लोग मनुष्यलोक में धन्य हैं, पूज्य हैं। हिमालय के दक्षिण भाग में लोकपितामह ब्रह्मा महेन्द्रादि देवों से पूजित हैं। उसके बाईं तरफ 'विजया' महादेवी—यक्ष, गुह्यक और विद्याधरों से—पूजित हैं। उनका पूजन कर मानव इन्द्रलोक प्राप्त करता है। उसी के दाहिनी ओर सुन्दर गुफायें हैं। उनमें विद्याधरों का निवास है। वहाँ से पूर्व की ओर चालीस कन्दरायें और हैं। उनमें गन्धर्व-कन्याओं का निवास है। उस के उत्तर भाग में सात पवित्र गुफायें हैं। उनमें उर्वशी आदि अप्सरायें निवास करती हैं। इनके अतिरिक्त अट्ठाईस पवित्र

---

१. 'मुनयो नृपः'—'क'।
२. 'त्वत्तो यतः'—'क'।
३. 'संवाच्यमानाया'—'क'।
४. 'सम्भाव्य'—'क'।

सन्ति देवर्षिमनुजैः सेविताः सुमनोहराः। तासु तपस्विनः सर्वे वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः॥
वसन्ति सुमहात्मानो मानसा ब्रह्मणः सुताः॥ १४॥
गन्धर्वविद्याधरगुह्यकादीन् महर्षिसिद्धांश्च तथैव पुण्यान्।
सम्पूज्य कान्तासु महागुहासु नरो महेन्द्रस्य पदं प्रयाति॥ १५॥

इत्येतत्कथितं विप्राः क्षेत्राख्यानं सुविस्तरम्। नदीनां सम्भवञ्चापि शृण्वन्तु कथयाम्यहम्॥१६॥
हिमालयतटे रम्ये महर्षिमुनिषेविते[1]। हित्वा ऋषीन् ययौ विप्रा वसिष्ठः सह भार्यया॥१७॥

ऋषय ऊचुः—

कथं सर्वान् ऋषीन् हित्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः। हिमालयतटं रम्यं स ययौ सह भार्यया॥१८॥

व्यास उवाच—

मरीचिप्रमुखान् सर्वान् ऋषीन् मानसरे गतान्। वसिष्ठो मुनिशार्दूलाः श्रुत्वा हिमगिरिं ययौ।
स हिमाद्रिं महाभागाः प्राप्य सिद्धनिषेवितम्। तपसे कृतसंकल्पः आश्रमं स चकार ह॥२०॥
आश्रमं च प्रकुर्वन् वै हिमालयतटे शुभे। स विष्णोर्वामचरणं ददर्श मुनिसत्तमाः॥२१॥
पद्माङ्कुशादिरेखाढ्यं सेवितं नारदादिभिः। ततः स संशयं चक्रे कस्यायं चरणोऽन्तिके॥२२॥
शिलापृष्ठे विलग्नो वै दीप्यमानं स्वतेजसा। इति संशयमापन्नं वागुवाचाऽशरीरिणी॥२३॥
महर्षे! मास्तु सन्देहो विष्णोस्तच्चरणं स्मर। ततस्तु खेचरां वाणीं वसिष्ठो मुनिसत्तमाः॥२४॥

गुफायें और भी हैं। वे देवर्षि और मनुष्यों से पूजित हैं। उन सबमें वसिष्ठादि तपस्वी तथा ब्रह्माजी के मानस-पुत्र रहते हैं। उन गुफाओं में गन्धर्व, विद्याधर, गुह्यक, महर्षि और सिद्धगणों का पूजन कर मानव महेन्द्रपद प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। विप्रवरों! मैंने इस क्षेत्र का वर्णन विस्तार के साथ कर दिया है। अब मैं नदियों के उद्गम का वर्णन कर रहा हूँ। आप लोग सुनें। एक समय महर्षि वसिष्ठ सब ऋषियों को छोड़ अपनी पत्नी समेत हिमालय के रमणीय तट पर चले गए॥ १७॥

(इसी मध्य) ऋषियों ने पुनः पूछा—सब ऋषियों को छोड़ वसिष्ठ के हिमालय-तट पर जाने का क्या कारण था?॥ १८॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों! मरीचि आदि ऋषियों को मानसरोवर में गया हुआ जानकर महर्षि वसिष्ठ हिमालय की ओर गए। वहाँ जाकर तपश्चर्या करने के विचार से आश्रम[2] बनाने में लग गये। वहाँ पर आश्रम बनाते हुए उन्हें विष्णु भगवान् का वाम-चरण दिखाई पड़ा। वह पद्म, अंकुश आदि रेखाओं से अङ्कित था। नारदादि ऋषियों द्वारा सेवित भी था। उसे देख यह सन्देह हुआ कि यहाँ पाषाण पर किसका चरणचिह्न अंकित है? उसके समानान्तर ही यह आकाशवाणी हुई—'महर्षे! सन्देह मत करो। इसे विष्णु का चरण समझो'॥ १९-२४॥

---

१. 'महर्षिभिः'—'क'।

२. वसिष्ठ आश्रम—बाछम, बोछम।

व्यास उवाच—

श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो बभूव सह भार्यया । स तत्र स्वाश्रमं चक्रे ऋषिभिः परिसेवितम् ॥२५॥
तथा गन्धर्वकन्याभिर्गन्धर्वैश्च निषेवितम् । हिमालयतटं प्राप्य कृत्वा पुण्याश्रमं शुभम् ॥२६॥
विष्णुमाराधयामास वसिष्ठो मुनिसत्तमाः । शीर्णपर्णानिलाहारो वायुभक्षो जितेन्द्रियः ॥२७॥
पूर्णमब्दशतं साग्रमरुन्धत्या स भार्यया । ततो वर्षशतस्यान्ते ददर्श पुरतः स्थितम् ॥२८॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गैरन्वितं वनमालिनम् । पीताम्बरधरं देवं प्रभविष्णुं महेश्वरम् ॥२९॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वसिष्ठो मुनिसत्तमाः । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवं नारायणं द्विजाः ।३०।

वसिष्ठ उवाच—

नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । शार्ङ्गपाणे नमस्तुभ्यं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥३१॥
नमः कमलपत्राक्ष पद्मनाम नमोऽस्तुते । वैकुण्ठपुरुषाधार शेषावास नमोऽस्तुते ॥३२॥
नमस्ते विश्वरूपाय वामनाय नमोऽस्तु ते । बहुरूपातिरूपाय विश्वावासाय ते नमः ॥३३॥
अनादिमध्यनिधने यस्यान्तं न विदुः सुराः । तस्मै नमोऽस्त्वनन्ताय वैकुण्ठाय नमो नमः॥३४॥
लोकसागरमग्नानां त्राता भव जनार्दन ।

व्यास उवाच—

इति तेन स्तुतो विष्णुर्वसिष्ठेन महात्मना । मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच द्विजोत्तमाः ॥३५॥

(इसे सुन) फिर व्यासजी ने कहा—आकाशवाणी को सुन महर्षि वसिष्ठ अरुन्धती सहित बड़े प्रसन्न हुए । इसके फलस्वरूप उन्होंने वहाँ अपना आश्रम बनाया । वह आश्रम अनेक ऋषियों, गन्धर्वकन्याओं तथा गन्धर्वों से सेवित रहा । उस आश्रम में महर्षि वसिष्ठ ने तपस्या की । उन्होंने सूखे पत्तों को खाकर केवल वायु के सहारे जितेन्द्रिय हो सौ वर्षों तक घोर तप किया । उसके समाप्त होने पर अरुन्धती के साथ बैठे हुए वसिष्ठ ने अपने समक्ष शङ्ख-चक्र-गदा-धारी एवं वनमाला से विभूषित, पीताम्बर धारण किए विष्णु भगवान् को देखा। इस तरह नारायण को देख महर्षि ने अभ्युत्थानपूर्वक उन्हें प्रणाम किया । तदनन्तर उन्होंने स्तुति करनी आरम्भ की ॥ २५-३० ॥

महर्षि वसिष्ठ बोले—शङ्ख-चक्र-गदाधर ! शाङ्र्गपाणे । वासुदेव ! मैं आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ । हे कमलनयन ! पद्मनाभ ! वैकुण्ठवासिन् ! शेषशायिन् ! मैं आपको पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ । हे विश्वरूप ! वामन ! अनेक रूपधर ! अनिर्वचनीय स्वरूप ! विश्वात्मन् ! आपको मैं बार-बार नमन करता हूँ । आपके आदि, मध्य और अन्त को देवता भी नहीं जान सके । ऐसे अनन्तरूपधारी वैकुण्ठाधिष्ठाता को मेरा प्रणाम स्वीकार हो । हे जनार्दन ! संसार-सागर में डूबे हुए लोगों की आप रक्षा करें ॥ ३१-३४ ॥

(तब) व्यासजी ने कहा—ऋषियों ! इस प्रकार महर्षि वसिष्ठ द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् विष्णु ने गम्भीर वाणी में बोलना आरम्भ किया ॥ ३५ ॥

विष्णुरुवाच—

तवैवानुग्रहार्थाय इहायातोऽस्मि साम्प्रतम् । वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥३६॥

वसिष्ठ उवाच—

वृणोमि देवदेवेश जनानां हितकाम्यया ॥ ३७ ॥

पावनं सर्वलोकानां चरणोत्पलसम्भवम् । तोयं ते भगवन् विष्णोरघकोटिप्रणाशनम् ॥३८॥

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान् वसिष्ठस्याश्रमे शुभे । गुहां प्रदर्शयामास देवगन्धर्वपूजिताम् ॥३९॥
दर्शयित्वा गुहां पुण्यां देवगन्धर्वपूजिताम् । पुनः सम्भाषयामास वसिष्ठं मुनिसत्तमाः ॥४०॥

विष्णुरुवाच—

पश्यत्वेनां महापुण्यां गुहां देवर्षिपूजिताम् । सुरम्यां चातिविस्तीर्णाम् अनन्ताभोगिपूजिताम् ॥
दृष्ट्वा चैनां महाभाग श्रेयस्त्वं समवाप्स्यसि । न तुभ्यमन्धकारस्य भीतिर्भवति दारुणा ।४२।
न दृष्ट्वा तं महाभाग गुहायां चातिशोभनाम् । न तु प्रत्यागमं मह्यं रोचते तव सर्वथा ॥४३॥
भुजगानां महाभाग गुहाद्वारनिरोधिनाम् । नैव भीतिस्त्वया कार्या स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत । वसिष्ठोऽपि गुहायां वै[1] प्रविवेश तपोधनाः ॥४५॥
पुराणपुरुषं विष्णुं संस्तुवन्मुनिसत्तमाः । गुहायां शेषनागं वै ददर्श द्विजसत्तमाः ॥४६॥

विष्णु ने कहा—'मैं तुम्हें अनुगृहीत करने यहाँ आया हूँ । तुम्हारे मन में जो इच्छा हो, उसे मेरे समक्ष 'वर' रूप से प्रकट करो' ॥ ३६ ॥

(तब) वसिष्ठ बोले—देवदेवेश ! मैं लोकहित की इच्छा से सबको पवित्र करने वाले आपके चरण-कमल से उत्पन्न जल का अभिलाषुक हूँ । उस से कोटिशः पाप विनष्ट होंगे ॥ ३७-३८ ॥

(फिर) व्यासजी ने कहा—ऋषियों ! भगवान् विष्णु ने 'तथास्तु' कह कर वसिष्ठाश्रम में ही देव-गन्धर्वों से पूजित एक गुफा[2] दिखलाई । मुनिवरों ! गुफा को दिखाने के बाद भगवान् विष्णु ने महर्षि वसिष्ठ से इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ ३९-४० ॥

भगवान् विष्णु बोले -महर्षे ! यह गुहा बड़ी विस्तीर्ण, पवित्र तथा अनेक नागों से पूजित है । इसे देखकर तुम्हारा कल्याण होगा । तुम्हें घोर अँधेरे का भय भी नहीं रहेगा । तुम इसे अच्छी तरह देखो । अच्छी तरह देखे बिना तुम्हारा यहाँ से लौटना सम्भव नहीं । गुहा-द्वार के रक्षक नागों से डरना नहीं । तुम्हारा कल्याण हो । मैं अब चला ॥ ४१-४४ ॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार कहकर विष्णु अन्तर्धान हो गए । तपोधनों ! वसिष्ठ ने भी गुहा में प्रवेश किया । पुराणपुरुष विष्णु का स्मरण करते हुए वसिष्ठ ने शेषनाग का दर्शन

---

१. 'गुहां तस्याम्'-'क' ।

२. बाछम में गुहा ।

सहस्रमौलिं देवेशं सहस्राक्षं महाप्रभुम्। सहस्रचरणं देवं सहस्रकरपङ्कजम् ॥४७॥
नागकन्यासहस्राणां परिवारैर्विराजितम्। गुहायां शेषसंज्ञं वै यमनन्तं वदन्ति हि ॥४८॥
ददर्श मुनिशार्दूला वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः। स तं प्रणम्य वै विप्राः सम्पूज्य च पुनः पुनः ॥४९॥
ययौ गुहामनन्तां तां भोगिभिः परिसेविताम्। ततोऽग्रे भोगिसंरुद्धं द्वारं निष्क्रम्य स द्विजाः ॥
ददर्श सर-राजानं मानसं मुनिसत्तमाः। 'हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकैश्च शोभितम्[2] ॥५१॥
सुगम्भीरं सुविस्तीर्णं द्वितीयमिव सागरम्। मध्ये तस्य महालिङ्गं स्वर्णहंसमयं शुभम् ॥५२॥
ददर्श मुनिशार्दूला वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः। यस्मिन् ब्रह्मा च विष्णुश्च महादेवस्तथैव च ॥५३॥
प्रविष्टा हंसदेहे वै विराजन्ते द्विजोत्तमाः। तं दृष्ट्वा स्वर्णहंसाख्यं लिङ्गं देवर्षिसेवितम् ॥५४॥
ननाम परया भक्त्या वसिष्ठो मुनिसत्तमाः। ततस्तुष्टाव देवेशं स्वर्णहंसमयं शुभम् ॥५५॥

वसिष्ठ उवाच—

नमोऽस्तु हंसाय महाप्रभाय देवैर्महेन्द्रादिभिरर्चिताय[3]।
सुवर्णदेहाय महाबलाय हंसस्वरूपाय नमो नमस्ते ॥ ५६ ॥
यस्मिन् ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवाद्यास्त्रिदिवौकसः। प्रविष्टाः सुविराजन्ते तस्मै हंसाय वै नमः ॥

व्यास उवाच—

एवं संस्तूयमानं तं वसिष्ठं मुनिसत्तमाः। अशरीरा ततो वाणी अन्तरिक्षादजायत ॥५८॥

वाक् उवाच—

तेन मार्गेण विप्रर्षे येनेह प्राप्तवानसि। व्रजस्व स्वाश्रमं पुण्यमरुन्धत्या निषेवितम् ॥५९॥
सरोवरजलं पुण्यं शिलया रोधितं शुभम्। प्रापय स्वाश्रमं पुण्यं तेन त्वं श्रेय आप्नुहि ॥६०॥

किया। वह अनन्तसंज्ञक शेषनाग सहस्रशिरस्क, सहस्राक्ष, सहस्रचरण तथा हाथों से संयुक्त हजारों नागकन्याओं से सेवित रहा। विप्रवरों! उनका दर्शन कर वसिष्ठ ने प्रणामपूर्वक पूजन किया। तदनन्तर सर्पों से परिवेष्टित उस गुहा में उन्होंने प्रवेश किया। मुनिवरों! सर्पों से अवरुद्ध द्वार का उल्लङ्घन कर महर्षि ने महान् मानसरोवर का दर्शन किया। वह सरोवर हंस, वत्तख, चकवे आदि पक्षियों से शोभित था। वह अत्यधिक गहरा तथा विस्तीर्ण था। मानो वह दूसरा समुद्र रहा हो। उस सरोवर के मध्य में स्थित स्वर्णहसमय शिवलिङ्ग को देखा। विप्रवरों! उस महालिङ्ग में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव अन्तःप्रविष्ट रहे। देवर्षियों से सेवित उस महालिङ्ग का दर्शन कर वसिष्ठ ने भक्ति के साथ प्रणाम किया और देवेश की स्तुति आरम्भ की ॥ ४५-५५ ॥

वसिष्ठजी ने कहा—महाकान्तिशाली, महेन्द्रादि देवों से सेवित, सुवर्ण शरीरधारी एवं महाबली हंसस्वरूप भगवान् को मेरा प्रणाम स्वीकार हो। जिस विग्रह में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव अन्तःप्रविष्ट हो विराजमान हैं, उस हंसस्वरूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५६-५७॥

व्यासजी बोले—वसिष्ठ के इस प्रकार स्तुति करते हुए वहाँ आकाशवाणी हुई ॥५८॥

वाणी ने घोषणा की—ब्रह्मर्षे! तुम जिस मार्ग से आए हो, उसी मार्ग से अरुन्धती द्वारा परिसेवित अपने आश्रम को लौट जाओ। सरोवर का पवित्र जल एक शिलाखण्ड

---

१. हंसकारण्डवैः कीर्णं'—'क'। २. 'सेवितम्'—'क'। ३. 'सेविताय' 'क'।

व्यास उवाच—

वागुक्तं वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमाः । ययौ तत्र शिलां पुण्यां गुहाद्वारं निरुध्य वै ।।६१।।
संस्थिता चित्रगुप्ताख्या स्थापिता पद्मयोनिना । ततः स मुनिशार्दूला गुहाद्वारे महाशिलाम् ।।
ददर्श चित्रगुप्ताख्यां स्थापितां पद्मयोनिना । स तां दण्डेन निर्भिद्य सरोवरजलं शुभम् ।।६३।।
वाहयत्तेन मार्गेण स्वाश्रमं प्रति वै द्विजाः । सरयूं सरजैस्तोयैः पूरितां शीघ्रवाहिनीम् ।।६४।।
दुराध्यक्षमहापुण्यां दुष्प्राप्यां देवदानवैः । ततो नागालयं प्राप्य सा सरित् मुनिसत्तमाः ।।६५।।
प्राविशच्छेषनागस्य देहे देवनिषेविते । ततस्तां शेषनागस्य देहाविष्टां महानदीम् ।।
दृष्ट्वा तुष्टाव तं नागं स मुनिर्मुनिसत्तमाः ।।६६।।

वसिष्ठ उवाच—

नमोऽस्तु शेषाय सहस्रमूर्तये सहस्रकल्पानलरूपधारिणे ।
सहस्रकल्पान्तसमुद्रवासिने सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।। ६७ ।।
हिताय लोकस्य ददस्व मार्गं पुण्यं सरय्वां प्रणतोऽस्मि तुभ्यम् ।
ममाश्रमं पुण्यजलेन चास्याः पुनीहि नागेश तथैव लोकान् ।। ६८ ।।

व्यास उवाच—

एवं महर्षिणा नागः संस्तुतो मुनिसत्तमाः । मुमोच सरयूं पुण्यां देहाविष्टां सुपावनीम्* ।।६९।।
ययौ द्वारे महानागाः फणामणिविराजिताः ।। ७० ।।
ततः स मुनिशार्दूला गरुडं विष्णुवाहनम् । तुष्टाव नागकालाग्निं वैनतेयं रविप्रभम् ।।७१।।

से रुका पड़ा है। उस जल को तुम अपने आश्रम में पहुँचाओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा ।। ५९-६० ।।

व्यासजी ने पुनः कहा—ऋषिवरों ! आकाशवाणी को सुन वसिष्ठ उस शिला के पास गये, जो गुहा के द्वार को बन्द कर पड़ी हुई थी। उसे ब्रह्मा ने 'चित्रगुप्ता' नाम से वहाँ स्थापित किया था। उस 'चित्रगुप्ता' शिला को डण्डे से तोड़कर वहाँ जल प्रवाहित किया। उस जल को आगमनमार्ग से ही महर्षि वसिष्ठ अपने आश्रम की ओर ले गए। मुनिवरों ! देवों और दानवों को भी अप्राप्य वह परम पवित्र नदी उस गुहा में पहुँच कर शेषनाग के शरीर में प्रवेश कर गई। तब वसिष्ठ मुनि ने शेषनाग की स्तुति आरम्भ की ।। ६१-६६ ।।

वसिष्ठ बोले—सहस्रमुख वाले, सहस्रकल्पाग्नि के समान कान्तिवाले, सहस्र चरण-चक्षु-सिर-ऊरु तथा बाहु धारण करने वाले तथा सहस्रों कल्पान्तों में समुद्र में वास करने वाले शेष भगवान् को मेरे प्रणाम हैं। हे नागेश ! आप लोककल्याणार्थ सरयू को ले जाने के लिए मार्ग प्रशस्त करें। इसकी पुनीत धारा से मेरे आश्रम तथा संसार को पवित्र करें ।।६७-६८।।

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार स्तुति किये जाने पर नागराज ने अपने देह में प्रविष्ट पुण्यसलिला को मुक्त कर दिया। तब गुहाद्वार पर स्थित बड़े फनों वाले बड़े नागों को देख वसिष्ठ ने सूर्य अथवा कालाग्नि सदृश तेजस्वी भगवान् विष्णु के वाहन गरुड की स्तुति करनी आरम्भ की ।। ६९-७१ ।।

---

*'ततो नागेन संयुक्तां सरयूं लोकपावनीम्'। —इत्यधिकः-'ग'।

वसिष्ठ उवाच—

गरुडं विनतापुत्रं सुपर्णं विष्णुवाहनम्। नागारिं नागनाशाय स्तुवामि विनतासुतम् ॥७२॥
तार्क्ष्यं वैष्णवमुख्यानां मुख्यभूतं हरिध्वजम्। स्मरामि तं गरुत्मन्तं नागनाशाय वैष्णवम् ।७३।

व्यास उवाच—

वसिष्ठेन महाभागाः संस्तुतो विनतासुतः। चालयन् भूधरान् सर्वान् पक्षवेगेन वेगवान् ॥७४॥
आजगाम वसिष्ठाय पन्नगानां भयप्रदः। तं दृष्ट्वा पन्नगाः सर्वे वेपमाना मुहुर्मुहुः ॥७५॥
सन्त्यज्योद्गिलय तां गङ्गां वसिष्ठं शरणं ययुः। [1]वसिष्ठः शरणे नागान् दृष्ट्वा तार्क्ष्यमुपागतम्।
उवाच संस्तुवन् तार्क्ष्यं करुणार्द्रेण चेतसा ॥ ७६ ॥

वसिष्ठ उवाच—

तव प्रसादात् पक्षीश गङ्गा संवाहिता मया। निरुद्धमार्गा नागाग्रैः संसारकलिनाशिनी ॥७७॥
साम्प्रतं त्वद्भयान्नागाः शरणं समुपागताः। तस्मान्मे शरणं प्राप्तान् मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स नागारिर्ययौ विष्णुगृहं शुभम्। वसिष्ठोऽपि च तां गङ्गां वाहयत् स्वाश्रमं प्रति ॥
ततस्तस्याश्रमं प्राप्य सरयू लोकपावनी। विवेश चरणं विप्रा विष्णोरतुलतेजसः ॥८०॥
ततस्तां चरणे विष्णोः प्रविष्टां मुनिसत्तमाः। दृष्ट्वा तुष्टाव देवेशं प्रभविष्णुं महेश्वरम् ।८१।

वसिष्ठ उवाच—

नमाम्यहं नारद-फाल्गुनादिभिर्निषेवितं सत्यपथे प्रतिष्ठितम्।
वैकुण्ठमग्र्यं पुरुषं प्रभाविनं नमामि चक्राब्जगदाधरं प्रभुम् ॥ ८२ ॥

वसिष्ठ ने कहा—मैं गरुड को प्रमुख वैष्णव एवं हरि के ध्वजरूप में स्मरण करता हूँ। साथ ही वैनतेय की प्रार्थना करता हूँ कि वह नागों का विनाश कर दें ॥ ७२-७३ ॥

व्यासजी फिर बोले—ऋषिवरों! वसिष्ठ के द्वारा गरुड की स्तुति किये जाने पर प्रसन्नमना गरुड अपने पंखों से पर्वतों को कँपाते हुए बड़े वेग से वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर भयभीत नागों ने गङ्गासदृश उस नदी को उगल दिया और वे महर्षि वसिष्ठ की शरण में आये। शरणागत नागों को देख वसिष्ठ करुणा से द्रवित हो गरुड की स्तुति करने लगे ॥ ७४-७६ ॥

वसिष्ठ बोले—पक्षिराज! जिन नागों के कारण सरयू-गङ्गा का मार्ग अवरुद्ध था, उसे आपकी कृपा से मैंने प्रवाहित कर दिया है। ये सब आपके भय से मेरी शरण में आए हैं, अतः अब आप इन बेचारों को कृपया वृथा न मारें ॥ ७७-७८ ॥

व्यासजी ने कहा—गरुड देव 'तथास्तु' कहकर विष्णु-भवन को वापस चले गये। तथा महर्षि वसिष्ठ ने सरयू को अपने आश्रम की ओर मोड़ दिया। आश्रम में पहुँच कर सरयू विष्णु के चरणों में प्रविष्ट हो गई। तब वसिष्ठ भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥ ७९-८१ ॥

वसिष्ठ बोले—नारद-फाल्गुनादि से सेवित, सत्यमार्ग में स्थित, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी, प्रधान पुरुष तथा वैकुण्ठवासी प्रभु को मेरे प्रणाम स्वीकार हों ॥ ८२ ॥

---

१. 'वसिष्ठशरणगान्नागान्' 'क'।

व्यास उवाच—

वसिष्ठेन स्तुतो विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः । आविर्बभूव वै विप्राः सर्वदेवनमस्कृतः ॥८३॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वसिष्ठो मुनिसत्तमाः । सगद्गदगिरा दीनो नमश्चक्रे हरिं प्रभुम् ॥८४॥

वसिष्ठ उवाच—

नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते मधुसूदन । नमस्ते पद्मपत्राक्ष दामोदर नमोऽस्तुते ॥८५॥

व्यास उवाच—

इति प्रणमितो विष्णुर्वसिष्ठेन महात्मना । उवाच मुनिशार्दूला मेघगम्भीरया गिरा[1] ॥८६॥

विष्णुरुवाच—

केन मां मुनिशार्दूल विज्ञापयसि हेतुना । तत् सर्वं कथ्यतामाशु करिष्याम्येव तद् ध्रुवम्[2] ।८७।

वसिष्ठ उवाच—

प्रसन्ने त्वयि देवेश मानवानां भयं कुतः । सोऽहं त्वद्वचनाद् विष्णो गुहामेनां प्रविश्य वै ॥८८॥
प्राप्तवान् मानसक्षेत्रे सिद्धगन्धर्वसेविते । तत्र खेचरया प्रोक्तां मानसात्तोयवाहिनीम् ॥८९॥
नदीं संवाहयामास[3] प्रसादात् तव वै विभो । सैषा ते चरणं विष्णोः प्रविष्टा लोकपावनी ।९०।
मानसोत्था पुण्यतीर्था सरयू देवसेविता । एतामुद्धर्तुमिच्छामि चरणान्मधुसूदन ॥९१॥
अस्योद्धारे कृपां विष्णो क्रियतां नात्र संशयः ॥ ९२ ॥

व्यासजी ने कहा—महर्षि वसिष्ठ के द्वारा स्तुति किये जाने पर शङ्ख-चक्र-पद्म-गदा-धारी, सब देवों के पूज्य भगवान् विष्णु वहीं प्रकट हो गए । सहसा उन्हें देखकर वसिष्ठ मुनिने अभ्युत्थानपूर्वक हरि को प्रणाम किया और गद्गद वाणी से बोलना आरम्भ किया ॥८३–८४॥

वसिष्ठजी ने कहा—हे कमलाकान्त ! मधुसूदन ! कमलनयन ! दामोदर ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८५ ॥

व्यासजी बोले—वसिष्ठ द्वारा विष्णु को प्रणाम किये जाने पर भगवान् ने गम्भीर वाणी में बोलना आरम्भ किया ॥ ८६ ॥

विष्णु ने कहा—मुनिवर ! तुम ने किस हेतु मेरी स्तुति की है ? स्पष्टतः कहो । तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा ॥ ८७ ॥

वसिष्ठ ने उत्तर दिया—देवेश ! आपके प्रसन्न होने पर मानवों को भय कहाँ ? आपकी आज्ञा से मैं इस गुहा में प्रविष्ट होकर सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित मानसक्षेत्र में पहुँचा । वहाँ आकाशवाणी की प्रेरणा एवं आपकी कृपा से मानसक्षेत्र से नदी को बहा लाया । विभो ! वह लोकपावनी सरयू नदी आपके चरणों में प्रवेश कर गई है । मधुसूदन ! उसको मैं बाहर निकालना चाहता हूँ ।[4] अतः उसे निकालने की आप कृपा करें ॥ ८८–९२ ॥

---

१. 'मेघगम्भीरनिःस्वनः'–'क' । २. 'नान्यथा'–'क' । ३. 'नदीं संवाहयेति त्वं'–'क' ।

४. 'वर्तमान पिठौरागढ़ जनपद की प्रसिद्ध नदियों में 'सरयू' अग्रगण्य है । इसके अतिरिक्त काली, पूर्वी रामगङ्गा, धौली, गोरी, पनार आदि नदियाँ भी वहाँ प्रवाहित होती हैं । सरयू नदी परगना दानपुर

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान् चरणाच्छरयूं शुभाम् । तस्मै प्रदर्शयामास निःसार्य मुनिसत्तमाः ।९३।
स तस्मै चेप्सितं दत्त्वा भगवान् मुनिसत्तमाः । पश्यतस्तस्य विप्रर्षेस्तत्रैवान्तरधीयत ।।९४।।
वसिष्ठोऽपि महाभागाः प्राप्य तां सरयूं शुभाम् । मानवानां हितार्थाय वाहयामास तां नदीम् ।
सरयूसम्भवं दृष्ट्वा मयैतत्समुदाहृतम् । यः शृणोति समग्रं वै स याति परमां गतिम् ।।९६।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरयूमाहात्म्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।।

वेदव्यास ने कहा - मुनिवरों ! भगवान् ने 'ठीक है' कह कर सरयू को अपने चरण के बाहर निकाल कर वसिष्ठ को दिखला दिया । भगवान् ने महर्षि वसिष्ठ की मनःकामना पूरी कर दी देखते-देखते वे वहीं अन्तर्धान हो गए। वसिष्ठ ऋषि ने भी लोकहित की इच्छा से सरयू को प्रवाहित किया । ऋषिवरों ! सरयू के उद्गम को देखकर मैंने यह यथार्थ वर्णन किया है। इस समग्र आख्यान को सुनने वाला व्यक्ति परम गति को प्राप्त होता है ।। ९३-९६ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सरयूमाहात्म्य' नामक
चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

की 'नत्थीसुख' पट्टी के पूर्व भाग में उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है । इसका उद्गम इसी पट्टी के उत्तरी भाग 'कंतेला' पहाड़ की जड़ (सौंधार) है । यह पहाड़ छह महीने बर्फ से ढंका रहता है। गर्मियों में बर्फ नहीं रहता । इसके ऊपर दो विस्तृत रमणीक कुण्ड हैं—(१) गौरीकुण्ड और (२) शिवकुण्ड । नदी के किनारे 'वसुधारा', 'सहस्रधारा', 'भद्रतुङ्ग' तथा 'तप्तकुण्ड' नामक तीर्थस्थान हैं । सरयू के पूर्वी भाग से होती हुई सार्वजनिक निर्माण विभाग की सड़क 'लोहारखेत' के मध्य होकर 'पिण्डारी ग्लेशियर' तक जाती है । इसके किनारे लोहारखेत, धाकुड़ी, खाती, द्वाली और फुरकिया में ठहरने की व्यवस्था है । पिण्डारी जाने का मार्ग अप्रैल से अक्टूबर तक खुला रहता है । पिण्डारी की प्रसिद्ध नदी 'पिण्डर' गढ़वाल की ओर जाकर कर्ण-प्रयाग में 'अलकनन्दा' से मिल जाती है । पिण्डारी ग्लेशियर के अलावा 'सुन्दरढूंगा' तथा 'कफिनी' ग्लेशियर भी हैं। 'पिण्डारी ग्लेशियर' लाँघकर 'पट्टी जोहार मल्ला' के 'मर्तोली ग्लेशियर' को पार कर 'मर्तोली' गाँव में बड़ी कठिनाई से जाया जाता है ।

'बड़कोट' व 'बौछम' में 'दाणू'-देवता के गीत गाये जाते हैं । नन्दाष्टमी के अवसर पर 'नन्दादेवी' की पूजा की जाती है। 'चिल्ह' में भगवती की पूजा होती है। इस पट्टी के निवासी ढाकुली, दाणू, कर्मियाल, कोरङ्गा आदि आस्पद-युक्त हैं ।

सरयू का तटवर्ती सुप्रसिद्ध मन्दिर 'बागेश्वर' (व्याघ्रेश्वर) है । वहाँ से चक्कर खाती हुई आगे चलकर सरयू 'पञ्चेश्वर' में 'काली' से मिल जाती है । काली नदी का उद्गम 'कालापानी' (लिपुलेख) कहलाता है। काली नदी वर्तमान में नेपाल राज्य के साथ पूर्वी सीमा निर्धारण करती है । सांस्कृतिक दृष्टि से यह नदी पवित्र नहीं मानी जाती । कूर्माचली भाषा में 'काली नायो भालू खायो' कहावत प्रचलित है। धारचूला से पाँच मील उत्तर में काली नदी के किनारे 'तपोवन' नामक स्थान में गरम पानी का स्रोत है।

७५

ऋषय ऊचुः—

सरयूसम्भवं विप्र त्वया सम्यगुदाहृतम् । माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तोऽभिलषितं फलम् ।१।

व्यास उवाच –

शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः सरयूवर्णनं शुभम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।।२।।
दर्शनाद्वाजिमेधस्य स्पर्शनाद्राजसूयजम् । [1]स्नात्वा च ब्रह्मलोकाप्तिर्यस्यां सञ्जायते फलम् ।३।
सोमपानफलं यस्याः पिबतां जायते जलम् । हिमालयतटे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते[2] ।।४।।
वसिष्ठस्याश्रमं विप्रा ब्रह्मर्षिगणसेवितम् । तत्रैव विष्णोश्चरणं वामसङ्गे द्विजोत्तमाः ।।५।।
पूज्यते देवगन्धर्वैर्नारदाद्यैस्तपस्विभिः । तत्रैव विष्णोश्चरणाद्वामसङ्गे द्विजोत्तमाः ।।६।।

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् ! आपने सरयू के उद्गमस्थल को तो बतला दिया है। अब हम उसके अभीष्ट फल देने वाले माहात्म्य को सुनने के इच्छुक हैं ।। १ ।।

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठों ! सरयू का आख्यान सब पापों तथा सब उपद्रवों का विघातक है। सरयू के दर्शन से अश्वमेध, जलस्पर्श से राजसूय-यज्ञ का फल तथा स्नान करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। उसके जलपान से सोमरस-पान का फल मिलता है। ब्रह्मर्षियों ! आप सुनें। हिमालय के रम्य तट पर सिद्धों, गन्धर्वों तथा ऋषियों से सेवित महर्षि वसिष्ठ[3] का आश्रम है। वहीं बाईं ओर विष्णु का चरण है। वह देवों, गन्धर्वों तथा [4]नारद आदि से

धारचूला में काली नदी के बायें किनारे से आगे की ओर नेपाल (प्राचीन डोटी राज्य) के अन्तर्गत 'मल्लिकार्जुन' का मन्दिर है (इस ग्रन्थ के अनुसार 'मानसखण्ड' की सीमा के अन्तर्गत)। स्थानीय परम्परा के अनुसार दक्षिण भारत के श्रीशैल से नेमिनाथ नामक योगी ने इस प्रदेश में आकर ऊकू, अस्कोट, धारचूला आदि स्थानों में 'मल्लिकार्जुन' के रूप में अनेक शिव-मन्दिर बनवाये। नेमिनाथ का समय १२५० ई० के आस-पास है। काली नदी और सरयू के संगमस्थल 'पञ्चेश्वर' में 'चौमू' देवता का मन्दिर है। इस देवता के अनेक मन्दिरों में 'गुमदेश' का चम-देवाल तथा 'वाड्ढा' के समीप 'चौपाता' के मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं।

१. 'स्नानाच्च' 'क'। २. 'किन्नरसेविते' 'क'।

३. एक सुविदित महर्षि। वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, पुराणादि सब ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है। वेदों के अनुसार यह मित्र और वरुण के पुत्र थे। ऋग्वेद के अनुसार यह दिवोदास के पुरोहित थे। पुराणानुसार वसिष्ठ ब्रह्मा के मानसपुत्र रहे। कर्दम की पुत्री अरुन्धती इनकी पत्नी सुविदित हैं। विश्वामित्र तथा राजा निमि से इनका मनोमालिन्य हो गया था। निमि से विवाद के कारण यह सूर्यवंश की दूसरी शाखा इक्ष्वाकुवंश के पुरोहित हो गए थे। महर्षि वसिष्ठ ने माघ शुक्ला सप्तमी के दिन 'सूर्यव्रत' का विधान कराया था। तब से यह तिथि 'सूर्यसप्तमी' भी कहलाई। सूर्य ने मन्वन्तर के आदि में इसी दिन अपना प्रकाश दिया था। वसिष्ठ के भिन्न-भिन्न नाम कल्पभेद के कारण हैं।

४. सुप्रसिद्ध देवर्षि, जो ब्रह्मा के मानसपुत्र कहे जाते हैं। भागवत में इन्हें अगाधबोध, रहस्यवेत्ता, परापरब्रह्म-निष्णात, सूर्य के समान पर्यटक, वायुवत् विचरणकर्ता और आत्मसाक्षी कहा गया है।

पूज्यते देवगन्धर्वैर्नारदाद्यैर्महर्षिभिः। तत्रैव विष्णोश्चरणाद् वामाद् दिव्या सरिद्वरा ॥७॥
मानसोत्था पुण्यतीर्था सरयू लोकपावनी। बभूव मुनिशार्दूलाः सिद्धगन्धर्वसेविता ॥८॥
यां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलास्तद्विष्णोः परमं पदम्। प्राप्नुवन्ति नराः सम्यक् कुलकोटिसमन्विताः॥
मूले विश्वम्भरो देवः पूज्यते देवनायकैः। यं सम्पूज्य जनाः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम् ।१०।
यं सुपूज्य महाभागाः वसिष्ठो मुनिसत्तमाः। सरयूं वाहयामास सिद्धगन्धर्वसेविताम् ॥११॥
वसिष्ठं तत्र सम्भाव्य अरुन्धत्या निषेवितम्। नरो याति परां सिद्धिं देवदानवदुर्लभाम् ॥१२॥
तस्यास्तु दक्षिणे विप्रा दानवा निवसन्ति हि। निवासं कल्पितं विप्रा पुरा हि[1] पद्मयोनिना॥
सरय्वा दक्षिणे भागे दानवानां दुरात्मनाम्। दानवैः पूजिता पुण्या महामाया हरिप्रिया ॥१४॥
विद्यते मुनिशार्दूला देवानां विजयावहा। सरय्वा वामभागे वै नागाः सर्वे वसन्ति वै ॥१५॥
सुपुण्ये नपुराख्ये[2] वै विसृष्टा पद्मयोनिना। तयोः पर्वतयोर्मध्ये सरयू लोकपावनी ॥१६॥

पूजित है। वहीं विष्णु भगवान् के वाम चरण से लोकपावनी दिव्य नदी प्रकट होती है। वस्तुतः उसका मूल उद्‌गम मानसरोवर है। मुनिश्रेष्ठों! उसका दर्शन करने से करोड़ों कुलों सहित मानव को विष्णुपद का लाभ होता है। उसके मूल में देवगण विश्वम्भर देव का पूजन करते हैं। उनका पूजन कर मानव विष्णुलोक पहुँचते हैं। उन्हीं महाविष्णु का अर्चन कर महर्षि वसिष्ठ ने सिद्धादि सेवित सरयू को प्रवाहित किया था। अरुन्धती[3] द्वारा सेवित महर्षि वसिष्ठ का पूजन कर मानव देवों और दानवों को भी दुष्प्राप्य सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। उसके दाहिनी ओर ब्रह्माजी ने दानवों की निवासभूमि नियत की है। वहाँ के निवासी दानव[4]-गण वहीं सुप्रतिष्ठित 'महामाया' का पूजन करते हैं। वह 'हरिप्रिया' नाम से प्रसिद्ध हैं तथा देवों की भी विजयदात्री हैं। सरयू के बाईं ओर नागों का निवासस्थान है। वह नागपुर (नाग-भूमि) के नाम से प्रसिद्ध है। उन दोनों के बीच में वसिष्ठ ने पुण्यसलिला सरयू प्रवाहित की

(भागवत १।५।६)। महाभारत के अनुसार इन्होंने ब्रह्मा से संगीत की शिक्षा पाई थी। देवर्षि नारद वेदान्त, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत शास्त्रादि के आचार्य हैं। प्रमुख रूप में 'भक्ति' के प्रधान आचार्य हैं। इनका 'पाञ्चरात्र' भागवत-मार्ग का मुख्य ग्रन्थ है। इनकी प्रशंसा में श्रीकृष्ण द्वारा कहे गये शब्द स्कन्दपुराणान्तर्गत माहेश्वर खण्ड एवं 'कुमारिका खण्ड' (५४।१७-४६) में अंकित हैं।

१. 'ख'–'क'।

२. नागपुराख्ये–'क'।

३. महर्षि वसिष्ठ की पत्नी जो कर्दम की पुत्री तथा पर्वत और नारद की बहन रहीं। इन्हें ऊर्जा भी कहा गया है तथा चित्रकेतु आदि इनके सात पुत्र प्रसिद्ध ऋषि थे। सप्तर्षि तारों में वसिष्ठ (पिछले तीन तारों में बीच वाला) के समीप ही दिखाई पड़ने वाला एक छोटा-सा तारा अरुन्धती माना गया है। विवाह में इसे पत्नी को दिखाया जाता है। वायुपुराण के अनुसार 'अरुन्धती' और 'ध्रुव' तारों के न दिखाई पड़ने वाले व्यक्ति की मृत्यु निकट रहती है—'अरुन्धतीं ध्रुवं चैव सोमच्छायां महापथम्। यो न पश्येत् स नो जीवेन्नरः संवत्सरात् परम् ॥' (उपोद्‌घात पाद अ० १९–२)।

४. स्थानीय भाषा में 'दाणू' आस्पद प्रसिद्ध है।

वसिष्ठेन महाभागा वाहिता पुण्यवाहिनी । हिताय मुनिशार्दूलाः कोशलापुरवासिनाम् ॥१७॥
स पश्यंस्तीर्थसाहस्रं लिङ्गसाहस्रमेव च । कोशलां प्रययौ विप्रा विकुक्षिप्रतिपालिताम् ॥१८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरयूमाहात्म्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥

है । उसे कोशलवासियों के हित के लिए प्रवाहित किया है[1] । तब महर्षि वसिष्ठ अनेकों तीर्थों और शिवलिङ्गों का दर्शन करते हुए वहाँ से विकुक्षि[2] द्वारा पालित 'अयोध्या' नगरी को गए ॥ २-१८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सरयूमाहात्म्य' नामक
पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. वाल्मीकि-रामायण के बालकाण्ड के २४वें अध्याय में यह वर्णित है—'कैलासपर्वते राम ! मनसा निर्मितं परम् । ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः ॥ तस्मात् सुस्राव सरसः साऽयोध्यामुपगूहते । सरःप्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता ॥' इस प्रकार यह नदी ऐतिहासिक मानी गई है। यह शारदा, घाघरा आदि अनेक नामों से स्थान-स्थान पर प्रसिद्ध है। मार्ग में अनेक सहायक नदियों को अपने में मिलाती हुई सरयू छपरा जिले में गङ्गा से अनङ्गदेश में 'कामाश्रम' के समीप मिल जाती है। महाभारत के अनुसार (अनु० अध्याय १५५) भी इसका मूलस्थान 'मानसरोवर' ही है। ऋग्वेद ४।३०।१८ तथा १०।६४।९ में 'सरयू' नाम से यह अभिहित है। दशम मण्डल में इसका उल्लेख भारत की बड़ी २१ नदियों के साथ हुआ है। कोशल को दक्षिणी एवम् उत्तरी भागों में यह नदी विभाजित करती है।

२. सूर्यवंशोत्पन्न इक्ष्वाकु के १०० पुत्रों में से सर्वज्येष्ठ पुत्र अयोध्याधिपति। यह ककुत्स्थ—जिनके नाम पुरञ्जय तथा इन्द्रवाह भी थे—के पिता थे। भागवत—'क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः। तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षि-निमि-दण्डकाः ॥' तथा 'पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् । शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥' (भाग० स्कन्ध ९ अ० ६० श्लोक ४ तथा ११)

ऋषय ऊचुः—

विशेषेण वयं सर्वे सरयूवर्णनं शुभम्। विप्रर्षे श्रोतुमिच्छामो यथा तीर्थं त्वयोदितम् ॥१॥

व्यास उवाच—

सरयूवर्णनं विप्राः स्वयमेव पितामहः। कथितुं न समर्थोऽस्ति पूर्णैर्वर्षशतैरपि ॥२॥
तथापि मुनिशार्दूलाः कथ्यते चाधुना मया। यत्र पुण्यानि क्षेत्राणि यत्र तीर्थानि सन्ति वै ॥३॥
तत्र तत् कथयिष्यामि सरयूवर्णनं शुभम्। सर्वत्र सरयू पुण्या विद्यते मुनिसत्तमाः ॥४॥
तीर्थेषु च विशेषेण अघकोटिविनाशिनी। सर्वत्र सरयूस्नानं दुर्लभं मुनिसत्तमाः ॥
सङ्गमे भद्रतुङ्गाया विशेषेण मयोदितम् ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः—

कुत्र सा भद्रतुङ्गाख्या सरयूसङ्गमे द्विज। सङ्गता लोकपापघ्नी देवगन्धर्वसेविता ॥६॥

व्यास उवाच—

पूज्य विश्वम्भरं देवं मूले तस्या द्विजोत्तमाः। विश्वम्भरसरे स्नात्वा मैनकाख्यं ह्रदं व्रजेत् ॥७॥
मैनकाख्ये ह्रदे स्नात्वा कैतवीसङ्गमं व्रजेत्। कैतवीसङ्गमे स्नात्वा नरो याति परां गतिम् ॥
ततः स्रोतः समुत्तीर्य बालायाः सङ्गमे शुभे। गन्तव्यं मुनिशार्दूला देवर्षिगणसेविते ॥९॥
तत्र स्नात्वा नरो याति महेन्द्रभवनं शुभम् ॥ १० ॥
ततः कागवती नाम सरयू-संगमे गता। तत्र स्नात्वा च मनुजो दिव्यमारोहति ध्रुवम् ॥११॥
सरय्वा दक्षिणे भागे पञ्चपावनसंज्ञकः। पर्वतो मुनिशार्दूला विद्यते मुनिसत्तमाः ॥१२॥

ऋषियों ने कहा - ब्रह्मर्षे ! जिस प्रकार आपने सरयू के तीर्थों को बतलाया है, वैसे ही अब हम विस्तार के साथ सरयू का माहात्म्य सुनने के इच्छुक हैं ॥ १ ॥

वेदव्यास बोले—मुनिवरों ! यद्यपि लोकपितामह ब्रह्मा भी सैकड़ों वर्षों तक सरयू का वर्णन नहीं कर सकते तो भी मैं उसके विशेष तीर्थों एवं क्षेत्रों के सम्बन्ध में आप लोगों को बतलाता हूँ। सरयू सर्वत्र पुण्यशीला है, फिर भी तीर्थों में विशेष रूप से पापों की विनाशिका है। सरयू में सर्वत्र स्नान करना बड़ा कठिन है। विशेषतः 'भद्रतुङ्गा' के संगम में तो और भी कठिन है ॥ २-५ ॥

(तब) **ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की**—ब्रह्मन् ! लोकपापहन्त्री एवं देवादिसेवित भद्रतुङ्गा किस स्थान पर 'सरयू' से मिलती है ? ॥ ६ ॥

वेदव्यास बोले—विप्रवरों ! सरयू के मूल में 'विश्वम्भर' का पूजनादि कर वहाँ स्नान करने के पश्चात् 'मैनक-ह्रद' में स्नान किया जाय। तदनन्तर 'कैतवी-सङ्गम' में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने से परमगति प्राप्त होती है। तब उससे उतर कर 'बाला' के सङ्गम में स्नान किया जाय। वहाँ स्नान करने पर इन्द्रलोक मिलता है। तत्पश्चात् 'कागवती' सरयू में मिलती है। वहाँ स्नान करने से देवलोक मिलता है। सरयू के दाहिनी ओर 'पञ्चपावन'[1] पर्वत है। उस

---

१. वायुपुराण में 'पञ्चशैल' तथा 'त्रिशिखर'—पर्वतों का उल्लेख मिलता है। ये मानसरोवर के

तत्रैव दानवावासः कल्पितः पद्मयोनिना। तत्रैव पर्वतोद्देशे पञ्चपावनसंज्ञकः ।।१३।।
हरः सम्पूज्यते विप्रा वरदो देवपूजितः। तस्योद्देशे समुद्भूता भद्रतुङ्गा सरिद्वरा ।।१४।।
भद्रतन्त्रेण मुनिना प्रार्थिता मुनिसत्तमाः। सरयूसगमं प्राप्य पूजिता सिद्धनायकैः ।।१५।।
तस्या मूले सुभद्राख्या शिला सम्पूज्यते द्विजाः। तां सुपूज्य जनो याति शिवलोकं न संशयः ।।
सङ्गमे मुनिशार्दूलाः सरयूभद्रतुङ्गयोः। चिताभस्मपरीताङ्गो हरः सम्पूज्यते द्विजाः ।।१७।।
तं सुपूज्य नरो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् ।। १८ ।।
सङ्गमे भद्रतुङ्गाया ये स्नानं प्रचरन्ति हि। ते यान्ति मुनिशार्दूला वैकुण्ठभवनं शुभम् ।।१९।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरयूमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।।

स्थल को ब्रह्मा ने दानवों के निवास के लिये नियत किया है। वहाँ 'पञ्चपावनेश्वर' की पूजा होती है। उस पर्वत से ही 'भद्रतुङ्गा' निकलती है। मुनिवरों! भद्रतन्त्र ऋषि की प्रार्थना से यह प्रकट हो—आगे सरयू में मिल जाती है। उसके मूल में 'सुभद्रा' नाम की शिला पूजी जाती है। उसका पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है। सरयू और भद्रतुङ्गा के संगम में चिताभस्म विभूषित शङ्कर की पूजा होती है। उनका पूजन कर मानव दुर्लभ शिवलोक प्राप्त करता है। इस सङ्गम में स्नान करने वाले व्यक्ति वैकुण्ठधाम जाते हैं ।। ७–१९ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सरयू-माहात्म्य' नामक
छियत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

दक्षिण भाग में स्थित कहे गए हैं। उनकी गणना 'शिशिर', 'कलिङ्ग', 'पतङ्ग', 'रुचक', 'विषधार', 'रत्नधार' आदि के समान श्रेष्ठ मानी गई है—"सरसो मानसस्येह दक्षिणा ये महाचलाः। ये कीर्तिता मया ये वं नामतस्तान्निबोधत। शैलस्त्रिशिखरश्चापि शिशिरश्चाचलोत्तमः। कलिङ्गश्च पतङ्गश्च रुचकश्चैव सानुमान्। ताम्राभश्च विशाखश्च तथा श्वेतोदरो गिरिः। समूलो विषधारश्च रत्नधारश्च पर्वतः ।। एकशृङ्गो महामूलो गजशैलः पिशाचकः। 'पञ्चशैलो'ऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः" ।।
(उपोद्घातपाद अध्याय ३६।२१–२४)।

७७

व्यास उवाच—

दुर्लभं मानुषे लोके मानुष्यं मुनिसत्तमाः। तत्रापि दुर्लभं मन्ये सरयूमज्जनं शुभम् ॥१॥
सङ्गमे भद्रतुङ्गायाः सुदुर्लभतरं शुभम्। गो-विप्र-गुरु-बालघ्ना ब्रह्महा पितृघातकः ॥२॥
निमज्य भद्रतुङ्गायाः सङ्गमे मुनिसत्तमाः। प्रकल्प्य पितृकृत्यं वं शुद्धिमाप्नोति नान्यथा ॥३॥
तावद् भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसङ्कुले। यावन्न भद्रतुङ्गायाः सङ्गमे मज्जनं कृतम् ॥४॥
मध्यगं मुनिशार्दूलाः सरयूभद्रतुङ्गयोः। स धन्यः प्रयतो भूत्वा यो वायुमुपसर्पति ॥५॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। महर्षेर्भद्रतन्त्रस्य राक्षसानां तथैव च ॥६॥
महर्षिर्भद्रतन्त्राख्यो भारद्वाजकुलोद्भवः। बभूव मुनिशार्दूलाः सत्यधर्मपरायणाः ॥७॥
स चक्रे स्वाश्रमं पुण्यं पञ्चपावनपर्वते। सङ्गमे भद्रतुङ्गायाः स स्नानं मुनिसत्तमाः ॥८॥
प्रातरुत्थाय भगवांश्चकार च दिने दिने। कदाचित् स महाभागः सुस्नात्वा सरयूजले ॥९॥
व्रजन् पुण्याश्रमे विप्राः राक्षसान् स ददर्श ह। पतितान् मानुषव्याधान् सरयूवायुसेवितान् ॥
तान् दृष्ट्वा स मुनिर्विप्राः करुणार्द्रेण चेतसा। पप्रच्छ स यथान्यायं सम्भाव्य च पुनः पुनः ॥

भद्रतन्त्र उवाच—

के यूयमिह संप्राप्ताः पतिताः केन हेतुना। केन दीर्घतरं श्वासं कुर्वन्त इह संस्थिताः ॥१२॥

राक्षसा ऊचुः—

वयं हि राक्षसा घोरा हिमालयनिवासिनः। प्राक्तनेनैव पापेन जाताः स्म प्राणिहिंसकाः ॥१३॥
सर्वदा मानवानां च व्याधभूताश्चरामहे। साम्प्रतं वायुना स्पृष्टाः सरितोत्थेन भूरिशः ॥१४॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! प्रथम तो मानव-जीवन एवं मानवता कठिन हैं, फिर सरयू-स्नान बड़ा दुर्लभ है। गो, ब्राह्मण, गुरु, पितृ एवं बालघाती भी सरयू-भद्रतुंगा-संगम में स्नान कर पापविमुक्त हो जाते हैं तथा श्राद्धकृत्य करने पर सर्वतः शुद्ध हो जाते हैं। भद्र-तुङ्गा-सङ्गम में स्नान करने के पूर्व तक ही मानव दुःखसंकुल संसार में विचरण करता है। मुनिश्रेष्ठों! उस सङ्गम के मध्य जो वायु चलती है उसका सेवन करने वाला धन्य है। इस सम्बन्ध में महर्षि भद्रतन्त्र तथा राक्षसों के मध्य हुआ वार्तालाप प्रसिद्ध है। भारद्वाज कुल में उत्पन्न महर्षि भद्रतन्त्र सत्यधर्म के पक्षपाती थे। उन्होंने 'पञ्चपावन' पर्वत पर अपना आश्रम वनाया। वे प्रतिदिन इस सङ्गम में प्रातःस्नायी रहे। किसी दिन सरयू में स्नान कर अपने आश्रम की ओर जाते हुए उन्होंने मार्ग में सरयू की हवा में लम्बी साँस लेते हुए मनुष्यों के हिंसक बहलियों को गिरा हुआ देखा। हे विप्रवरों! उनको गिरा हुआ देखकर दयार्द्रचित्त हो भद्रतन्त्र मुनि ने बार-बार ढ़ाढ़स बँधाते हुए पूछना आरम्भ किया ॥ १-११ ॥

भद्रतन्त्र ऋषि बोले—यहाँ आने वाले तुम लोग कौन हो? तुम लोग कैसे गिरे? तुम लोग लम्बी सांस क्यों ले रहे हो? ॥ १२ ॥

राक्षसों ने कहा—हम लोग हिमालय-वासी राक्षस हैं? पूर्वजन्मों के पापों से हम

मोहिता हि वयं पान्थ यथाऽज्ञानेन योगिनः। साम्प्रतं मोहितानां हि विरच्य गतिमुत्तमाम् ॥
याहि स्वभवनं पान्थ अस्माकं यदि मन्यसे ॥१५॥

व्यास उवाच—
राक्षसानां गिरं श्रुत्वा स मुनिः करुणार्द्रधीः। उपायं कथयामास तेषां मुक्त्यै तपोधनाः ।१६।

भद्रतन्त्र उवाच—
अप्राप्य सरयूं पुण्यां न निमज्य च तत्तथा। नास्ति नास्ति महाभागा मुक्तिर्भूतलवासिनाम् ॥

व्यास उवाच—
भद्रतन्त्रवचः श्रुत्वा राक्षसाश्च तपोधनाः। सरयूस्नानजं पुण्यं पप्रच्छुः प्रणिपत्य तम् ॥१८॥

राक्षसा ऊचुः—
सरयूस्नानमाहात्म्यं कथयस्व समाहितः। येन वै राक्षसं देहं हित्वा स्वर्गं व्रजामहे ॥१९॥

भद्रतन्त्र उवाच—
अपि वर्षशतैः साग्रैः सरयूस्नानजं फलम्। न शक्नोति महाभागाः कथितुं कमलासनः ॥२०॥
संक्षेपं कथयिष्यामि शृण्वन्तु सुसमाहिताः ॥ २१ ॥
गङ्गायाः सङ्गमे विप्रा माघस्नानेन यत् फलम् ॥ तत्फलं सरयूमध्ये दिनेनैकेन जायते ॥२२॥
तावत्स्नानप्रशसा वै तीर्थेष्वन्येषु विद्यते। यावन्न सरयूतोये न स्नातं भुवि वासिभिः ॥२३॥
यस्यां स्नात्वा महाभागा मानवा भूतले स्थिताः। यान्ति ब्रह्मपदं पुण्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥

प्राणिहिंसक हो गए हैं। केवल इतना ही नहीं, हम तो मनुष्यघाती व्याध हैं। इस समय इस नदी के वायु से प्रभावित है। हे पथिक ! हम भ्रान्त हैं। अज्ञान से मोहित योगी जैसे ज्ञान द्वारा सद्गति प्राप्त करते हैं, उसी तरह यदि आप ठीक समझें तो हम मोहितों की सद्गति का उपाय बताकर अपने आश्रम को जायँ ॥ १३-१५ ॥

व्यासजी ने कहा—तपोधनों ! राक्षसों का कथन सुनकर दयार्द्रचित्त मुनि ने उनकी मुक्ति का उपाय बतलाया ॥ १६ ॥

भद्रतन्त्र ऋषि बोले—पहले तो सरयू का मिलना कठिन है और मिलने पर भी वहाँ स्नान न करने वाले व्यक्तियों को तो मुक्ति मिलती ही नहीं ॥ १७ ॥

व्यासजी बोले—तपस्वियों ! भद्रतन्त्र की बातें सुनकर राक्षसों ने उन्हें प्रणाम कर सरयू में स्नान करने का पुण्य पूछा ॥ १८ ॥

राक्षसों ने कहा—भगवन् ! आप सावधानी के साथ सरयू-स्नान का माहात्म्य बतलायें, जिससे हम राक्षस-देह को त्याग स्वर्गलोक जा सकें ॥ १९ ॥

भद्रतन्त्र बोले—महानुभावों ! ब्रह्मदेव भी सैकड़ों वर्षों में सरयू का माहात्म्य वर्णन नहीं कर सकते। तथापि मैं संक्षेप में उसका वर्णन करता हूँ। आप लोग सुनें। गङ्गा के सङ्गम में माघ मास में स्नान करने से जो फल मिलता है वह सरयू में एक दिन स्नान करने पर प्राप्त होता है। अन्य तीर्थों में स्नान करने की प्रशंसा तब तक होती है जब तक सरयू में स्नान न किया जाय। उसमें स्नान कर भूलोक के मानव पवित्र महर्षियों से सेवित ब्रह्मलोक

अणुमात्रं जलं ये च सरयूसम्भवं शुभम् । संस्पृशन्ति महापुण्यं ते यान्ति परमां गतिम् ॥२५॥
सरयूसम्भवैः पुण्यैर्ये स्पृष्टा वायुभिः शुभैः । तेऽपि ब्रह्मभुवं पुण्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥२६॥
अथान्यदपि वक्ष्यामि क्षेत्रं देवर्षिसेवितम् । ये निमज्जन्ति मनुजाः सरयूभद्रतुङ्गयोः ॥
सङ्गमे देवगन्धर्वैः पूजिते सुमनोहरे ॥२७॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूला भद्रतन्त्रो महामतिः । ददौ तेभ्यः सुपुण्यं हि जलकुम्भं सुशोभनम् ॥२८
सरयू-भद्रतुङ्गाया जलेन परिपूरितम् । प्राप्य ते सरयूतोयं पीत्वा तां राक्षसीं तनुम् ॥२९॥
हित्वा तु भद्रतुङ्गस्य प्रसादान्मुनिसत्तमाः । प्राप्य ते देवसदृशं देहं मानुषदुर्लभम् ॥३०॥
विमानमधिरुह्याशु ययुर्ब्रह्मपुरं प्रति ॥ ३१ ॥
भद्रतन्त्रोऽपि तान् सर्वान् मोचयित्वाऽतिपातकात् । शिवमाराध्य योगेन निमज्य सरयूजले ॥
ययौ शिवपुरं पुण्यं पुत्रदारान्वितो द्विजाः ॥ ३३ ॥
इत्येतत् कथितं विप्रा माहात्म्यमतिशोभनम् । सरय्वाख्यानसंयुक्तमघकोटिप्रणाशनम् ॥३४॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरयूमाहात्म्ये राक्षसाख्यानं
नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥

प्राप्त करते हैं। उसका जलकण-स्पर्श करने वाले मनुष्यों को सद्गति मिलती है। सरयू-तट के वायु-स्पर्श से निःसन्देह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। अब मैं देवर्षि-सेवित क्षेत्र का वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य देव-गन्धर्वों से पूजित मनोहर सरयू-भद्रतुङ्गा के सङ्गम में गोता लगाते हैं...... ॥ २०-२७ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! इतना कहने पर ज्ञानी भद्रतुङ्ग ने सरयू-भद्रतुङ्गा के पवित्र जल से भरा हुआ एक घड़ा उन्हें दे दिया। उस घड़े का सरयू-जल उन्होंने पी लिया। मुनिवरों ! उसे पीकर भद्रतुङ्गा की कृपा से उन्होंने राक्षस-शरीर छोड़ दिया। तथा मानवों को दुर्लभ देवसदृश शरीर धारण कर लिया। तदनन्तर विमान पर आरूढ़ हो वे ब्रह्मलोक को चले गए। भद्रतन्त्र भी इन्हें पातकों से छुटकारा दिलाकर सरयू में स्नान कर योग द्वारा भगवान् शिव को प्रसन्न कर सपरिवार शिवलोक पहुँच गए। विप्रवरों ! मैंने यह अतिसुन्दर एवम् पापों के नाशक सरयू के आख्यानसहित भद्रतुङ्गा का माहात्म्य बतला दिया है ॥ २८-३४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में सरयू-माहात्म्य से सम्बद्ध
'राक्षसाख्यान' नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

७८

व्यास उवाच—

याः पुण्याः सरयूमध्ये संगताः सरितां वराः। ता धन्याः सर्वतीर्थेभ्यो विद्यन्ते नान्यथा क्वचित्।
सङ्गमे च महाभागा यः स्नाति सरयूं शुभाम्। स याति विष्णुभुवनं[1] पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।२।
हित्वा यः सरयूं पुण्यां तीर्थान्तरमुपासते। स याति नरके घोरे पीडितो मम किङ्करैः ॥३॥
तीर्थानि सरयूमध्ये भाषितुं कश्मलं गताः। समग्राणि महाभागा ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥४॥
संक्षेपात् कथयिष्यामि तीर्थानि सरयूजले। सामान्येन महाभागाः शृण्वन्तु सुसमाहिताः ॥५॥
*स्रोतन्तु भद्रतुङ्गाया उत्तीर्य मुनिसत्तमाः। भद्रतीर्थमिति ख्यातं भद्रतन्त्रेण सेवितम् ॥६॥
निमज्य मानवस्तत्र पितृकृत्यं विधाय च। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥७॥
ततस्तु सरयूसङ्गे रेवा नाम सरिद्वरा। सङ्गता मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशिनी ॥८॥
निमज्य मानवस्तत्र पितृकृत्यं समाप्य च। प्रयाति देवभुवनं[2] देवगन्धर्वसेवितम् ॥९॥
ततः स्रोतः समुत्तीर्य नर्कपर्वतसम्भवा। सु-कोका सरितां श्रेष्ठा सरयूसंगमं गता ॥१०॥
संगमे तत्र संस्नात्वा पितृश्राद्धं समाप्य च। मानवो देवभुवनं प्रयाति मुनिसत्तमाः ॥११॥
तदूर्ध्वं मुनिशार्दूला नागपर्वतसम्भवा। नरनारायणी पुण्या सरयूसंगमे गता ॥१२॥
तत्र नागेश्वरं देवं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः। निमज्य पितृकृत्यं वै समाप्य मुनिसत्तमाः ॥१३॥
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो याति परां गतिम्। दक्षिणे नागगङ्गाया धात्रीशो नाम शंकरः ॥१४॥

व्यासजी बोले—सरयू के साथ जिन नदियों का सङ्गम हुआ है वे सब तीर्थों से प्रशस्त हैं। इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं। सरयू के साथ संगत होने वाली नदियों के संगम में स्नान करने वाला व्यक्ति सतत विष्णुलोक प्राप्त करता है। सरयू को छोड़ अन्य तीर्थों का आराधक यम-दूतों से पीड़ित हो नरकगामी होता है। ब्रह्मादि देववृन्द भी सरयू के अन्तर्गत तीर्थों का वर्णन करने में असमर्थ रहे हैं। मुनिश्रेष्ठों! मैं साधारणतः संक्षेप में उन तीर्थों का वर्णन करता हूँ। आप लोग सुनें। 'भद्रतुङ्गा' के जल में उतर कर भद्रतन्त्र मुनि से सेवित 'भद्रतीर्थ' है। उसमें स्नान एवं पितृकार्य कर मनुष्य इक्कीस कुलों का उद्धार कर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। तदनन्तर सरयू के साथ पापों का नाश करने वाली 'रेवा' नदी मिलती है। उसमें स्नान तथा श्राद्ध करने से देवलोक प्राप्त होता है। तदनन्तर प्रवाह से उतरकर आगे 'नरक' पर्वत से निकली हुई श्रेष्ठ 'कोका' नदी सरयू में मिलती है। उसके संगम में स्नान तथा श्राद्ध सम्पन्न कर मनुष्य देवलोक में जाता है। मुनिश्रेष्ठों! उसके ऊपर 'नागपर्वत' से निकलने वाली 'नागनारायणी' नदी का 'सरयू' से मिलन होता है। वहाँ 'नागेश्वर' नामक शङ्कर का पूजन, स्नान तथा पितृकृत्य सम्पन्न कर २१ कुलों का उद्धार कर मनुष्य सद्गति को प्राप्त करता है। 'नागगङ्गा' के दक्षिण में 'धात्रीश' नामक महादेव का अर्चन देव, गन्धर्व तथा शिव-

---

*अत्र सकारान्तस्य स्रोतसः स्थाने अकारान्तः 'स्रोत'-शब्दः प्रयुक्तः। अन्यत्र तु नैव प्रयुक्तः। लिपिदोषवशात् भवितुमर्हति।

१. 'विष्णुभवनम्'—'क'।

२ 'देवभवनम्' इति 'क'।

पूज्यते देवगन्धर्वैस्तथैव शिवकिङ्करैः । तं सुपूज्य जनो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् ॥१५॥
वामे दुर्गा महाभागा सर्वदुर्गविनाशिनी । वासुकिप्रमुखैर्नागैः पूज्यते परमेश्वरी ॥१६॥
मानवः सर्वदुर्गेषु तां सुपूज्य द्विजोत्तमाः । न विन्दति महाभीतिं रोगभीतिं तथैव च ॥१७॥
ततः स्रोतः समुत्तीर्य कोकायाः संगमे शुभे । निमज्य मानवो याति शिवलोकं सुदुर्लभम् ॥१८॥
ततो रिष्टवतीसङ्गे निमज्य मुनिसत्तमाः । सम्पूज्य रिष्टकं देवं रिष्टामूले महेश्वरि ॥१९॥
सम्पूज्य मानवो याति महेन्द्रभवनं शुभम् । ततः स्रोतः समुत्तीर्य दुर्गायाः सङ्गमे शुभे ॥२०॥
निमज्य विधिवत्तत्र पितृकृत्यं विधाय च । स त्रिंशकुलमुद्धृत्य मानवो मुनिसत्तमाः ॥२१॥
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते । गोमती-सरयूमध्ये ततो नीलगिरिः स्मृतः ॥२२॥
सेवितो देवगन्धर्वैर्बाणाद्यैर्दितिजैरपि । तथैव सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ॥२३॥
उर्वशीप्रमुखाभिश्च नायिकाभिस्तथैव च । निवसन्ति त्रयस्त्रिंशत्कोटयो देवतागणाः ॥२४॥
यत्र पर्वतराजानं[1] प्राप्य देवर्षिसेवितम् । यमाहुर्नीलसंज्ञं वै विन्ध्याद् द्विगुणवर्णितम् ॥२५॥
महर्षयो महाभागाः सरयूजलसेवितम् । यं प्राप्य देवताः सर्वास्तथैव च महर्षयः ॥२६॥
तथा सिद्धगणाश्चान्ये न काशीं बहु मेनिरे । सूर्याग्नितीर्थयोर्मध्ये मरणं प्रार्थयन्ति ये ॥२७॥
ते धन्या मानुषे लोके देवपूज्या भवन्ति वै । यत्र देवादयः सर्वे निवसन्ति महर्षयः ॥२८॥

गण भी करते हैं। उनका पूजन कर मानव शिवलोक प्राप्त करता है। उनके बाईं ओर दुर्गति-हारिणी 'दुर्गा' का निवास है। वे वासुकि आदि नागों से पूजित हैं। विप्रवरों! उनका पूजन करने से मानव के रोग, शोक, भय आदि दूर हो जाते हैं। वहाँ से उतर कर 'कोका' नदी के सङ्गम में स्नान कर मनुष्य दुर्लभ शिवलोक प्राप्त करता है। मुनिश्रेष्ठों! तब 'रिष्टवती' के सङ्गम में स्नान तथा उसके मूल में 'रिष्टकदेव' एवं देवी का पूजन कर मनुष्य इन्द्रभवन को प्राप्त करता है। तदनन्तर प्रवाह से उतर कर 'दुर्गा' के शुभ संगम में स्नान तथा विधिवत् श्राद्धकर तीस पूर्व पुरुषों का उद्धार करते हुए मानव शिवलोक में शिवसायुज्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात् 'गोमती' और 'सरयू' के मध्यवर्ती 'नीलगिरि'[2] है, जो देव, गन्धर्व और बाणा-सुर आदि दैत्यों, सिद्ध, विद्याधर तथा बड़े-बड़े नागों से एवम् उर्वशी आदि अप्सराओं से सेवित है। इस पर्वत पर ३३ करोड़ देवताओं का वास है। इस पर्वत को 'नील' नाम दिया गया है। 'विन्ध्य' पर्वत से इसका दुगुना माहात्म्य है। इसको प्राप्त कर सब देवों, ऋषियों, सिद्धों आदि ने काशी को अधिक महत्त्व नहीं दिया। 'सूर्य'[3] और 'अग्नितीर्थ'[4] में मरणेच्छुजन

---

१. 'पर्वतराजम्' इति पाणिनिसम्मतं रूपम्।

२. 'कोकस का डांडा' नाम से प्रसिद्ध है। 'मत्स्यपुराण' (२२–७०; १२१–६८) के अनुसार 'नीलपर्वत' पितरों के श्राद्ध आदि के लिये अति प्रशस्त और पवित्र तीर्थ माना गया है।

३. महाभारत (वन० ८३–४८) में वर्णित 'सूर्यतीर्थ' को कुरुक्षेत्र सीमा के अन्तर्गत बतलाया गया है। यहाँ स्नान, पूजन, श्राद्धादि करने वाले व्यक्ति को अग्निष्टोम याग का फल मिलता है।

४. अन्यत्र 'अग्नितीर्थ' को गन्धमादन पर्वत पर भी बतलाया गया है। जहाँ श्रीराम ने रावण को मार कर विभीषण को राजा बना अग्नि का आवाहन किया था। यहीं अग्निदेव प्रकट हुए थे (स्कन्द-पुराण, ब्राह्मखण्ड)।

मृतास्तत्र नराः सर्वे सायुज्यं यान्ति शङ्करे ॥ २९ ॥
सूर्याग्नितीर्थयोर्मध्ये क्षेत्रराडिति विश्रुतः । तत्र कीटपतङ्गाद्या मशका मर्कटादयः ॥३०॥
श्वानश्च शलकाद्याश्च तथैव च शिवादयः । प्रविष्टा शिववज्ज्ञेया मानवैर्मुनिसत्तमाः ॥३१॥
यत्र ये पदमेकं वै संस्पृशन्ति महीतले । प्रविशन्ति च ये विप्रास्ते यान्ति शिवमन्दिरम् ॥३२॥
प्रविश्य तत्र वै विप्रा मा जानन्तु जना गिरिम् । नीलसञ्ज्ञं महापुण्यं त्रिदशैः परिवारितम् ।३३।
प्रविश्य तत्र वै विप्रा मा जानन्तु जना गिरिम् । धर्मसेतुकरं शुद्धं जानन्तु 'मेरु'संज्ञकम् ॥३४॥
महामरकतप्रख्यं सेवितं सिद्धनायकैः । पर्वतं तं महापुण्यमज्ञाः पश्यन्त्ययोमयम् ॥३५॥
तत्त्वज्ञास्तु स्वरूपेण 'मेरुरूपं' वदन्ति हि ।
यो नीलपर्वतं दृष्ट्वा प्रणामं नोपसर्पति । स याति नरकं घोरं ताडितो यमकिङ्करैः ॥॥३६॥
सूर्याग्नितीर्थयोर्मध्ये यस्य प्रान्ते तपोधनाः । 'वाराणसी'ति विख्याता विद्यते बाणसेविता ॥३७॥
यत्र वाराणसीक्षेत्रे प्रेषितो गणनायकैः । निवासकल्पनार्थाय चण्डीशः शङ्करेण हि ॥३८॥

ऋषय ऊचुः—

शङ्करेण स चण्डीशः प्रेषितः केन हेतुना । निवासं च कथं चक्रे शङ्करस्य महात्मनः ॥३९॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ चण्डीशं पुरतः स्थितम् । उवाच देवदेवेशो भवान्या सह संस्थितः ॥४०॥

शिव उवाच—

चण्डीश शृणु मे वाक्यं लोकानां हितकारकम् । येन सर्वे नरा धन्याः प्राप्नुवन्ति पदं मम ॥४१॥

धन्य हैं। वे देवगणों से संमानित होते हैं। देवों और महर्षियों के निवास करते हुए ऐसे स्थान में मरने वाले मनुष्यों को शिवसायुज्य मिलता है। 'सूर्य' और 'अग्नि' तीर्थों का मध्यस्थल 'क्षेत्रराज' है। उसमें कीड़े-मकोड़े, मच्छर, मर्कट (बन्दर) आदि जन्तु तथा कुत्ते, साही एवं सियार भी यदि वहाँ प्रवेश करें तो वे भी शिव के समान मान्य होते हैं। यहाँ की पृथ्वी पर यदि किसी का एक पैर भी पड़ जाय तो वह 'शिवभवन' प्राप्त करता है। विप्रवरों ! यहाँ प्रवेश कर देवगणों से सेवित इस पर्वत को साधारण 'नीलपर्वत' न समझें, किन्तु सर्वश्रेष्ठ 'मेरु' (सुवर्णाचल) के रूप में जानें। वह सिद्ध पुरुषों से सेवित है तथा मरकतमणि के समान है। मूर्खजन इस पर्वत को लौहमय देखते हैं। तत्त्वज्ञ लोग इसे साक्षात् 'मेरु' ही समझते हैं। 'नील पर्वत' का दर्शन कर जो नमन नहीं करता वह यमदूतों से प्रताड़ित हो नरकगामी होता है। 'सूर्य' और 'अग्नि' तीर्थों का मध्यभाग 'वाराणसी' नाम से अभिप्रेत होकर 'बाण' से सेवित है। 'वाराणसी-क्षेत्र' में शङ्कर ने गणनायकों द्वारा 'चण्डीश' को निवास हेतु भेजा था ॥ १-३८ ॥

ऋषियों ने व्यासजी से फिर पूछा—भगवान् शङ्कर ने 'चण्डीश' को किस कारण निवास करने के लिए वहाँ भेजा ? उसने वहाँ किस प्रकार निवास किया ? ॥ ३९ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—प्राचीन काल में सत्ययुग के आरम्भ में भवानी सहित शङ्कर ने अपने सामने बैठे हुए चण्डीश से कहा ॥ ४० ॥

शिवजी बोले—लोकहितकारी मेरी बातें सुनो, जिससे सर्वसाधारण शिवसायुज्य

मृतास्तत्र नराः सर्वे सायुज्यं यान्ति शङ्करे ॥ २९ ॥
सूर्याग्नितीर्थयोर्मध्ये क्षेत्रराडिति विश्रुतः । तत्र कीटपतङ्गाद्या मशका मर्कटादयः ॥३०॥
श्वानश्च शलकाद्याश्च तथैव च शिवादयः । प्रविष्टा शिववज्ज्ञेया मानवैर्मुनिसत्तमाः ॥३१॥
यत्र ये पदमेकं वै संस्पृशन्ति महीतले । प्रविशन्ति च ये विप्रास्ते यान्ति शिवमन्दिरम् ॥३२॥
प्रविश्य तत्र वै विप्रा मा जानन्तु जना गिरिम् । नीलसञ्ज्ञं महापुण्यं त्रिदशैः परिवारितम् ।३३।
प्रविश्य तत्र वै विप्रा मा जानन्तु जना गिरिम् । धर्मसेतुकरं शुद्धं जानन्तु 'मेरु'संज्ञकम् ॥३४॥
महामरकतप्रख्यं सेवितं सिद्धनायकैः । पर्वतं तं महापुण्यमज्ञाः पश्यन्त्ययोमयम् ॥३५॥
तत्त्वज्ञास्तु स्वरूपेण 'मेरुरूपं' वदन्ति हि ।
यो नीलपर्वतं दृष्ट्वा प्रणामं नोपसर्पति । स याति नरकं घोरं ताडितो यमकिङ्करैः ॥।३६॥
सूर्याग्नितीर्थयोर्मध्ये यस्य प्रान्ते तपोधनाः । 'वाराणसी'ति विख्याता विद्यते बाणसेविता ॥३७॥
यत्र वाराणसीक्षेत्रे प्रेषितो गणनायकैः । निवासकल्पनार्थाय चण्डीशः शङ्करेण हि ॥३८॥

ऋषय ऊचुः—

शङ्करेण स चण्डीशः प्रेषितः केन हेतुना । निवासं च कथं चक्रे शङ्करस्य महात्मनः ॥३९॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ चण्डीशं पुरतः स्थितम् । उवाच देवदेवेशो भवान्या सह संस्थितः ॥४०॥

शिव उवाच—

चण्डीश शृणु मे वाक्यं लोकानां हितकारकम् । येन सर्वे नरा धन्याः प्राप्नुवन्ति पदं मम ॥४१॥

धन्य हैं। वे देवगणों से संमानित होते हैं। देवों और महर्षियों के निवास करते हुए ऐसे स्थान में मरने वाले मनुष्यों को शिवसायुज्य मिलता है। 'सूर्य' और 'अग्नि' तीर्थों का मध्यस्थल 'क्षेत्रराज' है। उसमें कीड़े-मकोड़े, मच्छर, मर्कट (बन्दर) आदि जन्तु तथा कुत्ते, साही एवं सियार भी यदि वहाँ प्रवेश करें तो वे भी शिव के समान मान्य होते हैं। यहाँ की पृथ्वी पर यदि किसी का एक पैर भी पड़ जाय तो वह 'शिवभवन' प्राप्त करता है। विप्रवरों ! यहाँ प्रवेश कर देवगणों से सेवित इस पर्वत को साधारण 'नीलपर्वत' न समझें, किन्तु सर्वश्रेष्ठ 'मेरु' (सुवर्णाचल) के रूप में जानें। वह सिद्ध पुरुषों से सेवित है तथा मरकतमणि के समान है। मूर्खजन इस पर्वत को लौहमय देखते हैं। तत्त्वज्ञ लोग इसे साक्षात् 'मेरु' ही समझते हैं। 'नील पर्वत' का दर्शन कर जो नमन नहीं करता वह यमदूतों से प्रताड़ित हो नरकगामी होता है। 'सूर्य' और 'अग्नि' तीर्थों का मध्यभाग 'वाराणसी' नाम से अभिप्रेत होकर 'बाण' से सेवित है। 'वाराणसी-क्षेत्र' में शङ्कर ने गणनायकों द्वारा 'चण्डीश' को निवास हेतु भेजा था ॥ १-३८ ॥

ऋषियों ने व्यासजी से फिर पूछा—भगवान् शङ्कर ने 'चण्डीश' को किस कारण निवास करने के लिए वहाँ भेजा ? उसने वहाँ किस प्रकार निवास किया ? ॥ ३९ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—प्राचीन काल में सत्ययुग के आरम्भ में भवानी सहित शङ्कर ने अपने सामने बैठे हुए चण्डीश से कहा ॥ ४० ॥

शिवजी बोले—लोकहितकारी मेरी बातें सुनो, जिससे सर्वसाधारण शिवसायुज्य

पश्य वाराणसीं चान्यां पुण्यतोयनिषेविताम् । सेवितां देवदैत्यैस्तथैव च महोरगैः ॥४२॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा देवदेवेशो ध्यात्वा च सुचिरं ततः । पुनश्चण्डीशसञ्ज्ञं वै गणं वव्रे तपोधनाः ॥४३॥

शिव उवाच—

हिमालयतटं रम्यं याहि चण्डीश मा चिरम् । सेवितं देवगन्धर्वैर्ब्रह्माद्यैर्दैवतैरपि ॥४४॥
तत्र त्वं सरयूतीरे प्रकल्पय पुरीं मम । पुण्यां वाराणसीं नाम असी-वरुणमध्यगाम् ॥४५॥
सरयूगोमतीमध्ये विद्यते नीलपर्वतः । तत्राधस्तात् स्थलं पुण्यं प्रापयिष्यसि नान्यथा ॥४६॥
असीं च वरुणां चैव संस्थाप्य गणनायकैः । प्रकल्पय पुरीं रम्यां सेवितां गणनायकैः ॥४७॥
त्वया संकल्पितां ज्ञात्वा पुरीं वाराणसीं शुभाम् । अहमप्यागमिष्यामि भवान्या सह नान्यथा ॥
यथा पुण्यतमा काशी ख्यायते भूतले शुभा । तथा साऽपि महापुण्या भविष्यति न संशयः ॥४९॥

व्यास उवाच—

शिवस्य वचनं मूर्ध्ना प्रतिगृह्य तपोधनाः । हिमालयतटं रम्यं स ययौ गणनायकः ॥५०॥
सरयूगोमतीमध्ये दृष्टवान् नीलपर्वतम् । सेवितं सिद्धगन्धर्वैः सिद्धविद्याधरैरपि ॥५१॥
तत्र गत्वा स सरयूं दृष्ट्वा पुण्यतमां द्विजाः । पुण्यतोयवहां शुद्धां गोमतीसङ्गमे गताम् ॥५२॥
तयोर्मध्ये स्थलं पुण्यं ददर्श मुनिसत्तमाः । देवगन्धर्वसिद्धैश्च सेवितं गिरिवासिभिः ॥५३॥
तत्र पुण्यतमं स्थानं तथैव सरयूं शुभाम् । दृष्ट्वा चण्डीश्वरो विप्राः कल्पयामास तां पुरीम् ॥
सेवितां रुद्रकन्याभी रुद्रैश्चैकादशैस्तथा । वसुभिश्चापि भो विप्रास्तथैव च महर्षिभिः ॥५५॥

प्राप्त कर सकें। पवित्र तीर्थजलों, देवों, दैत्यों तथा नागों से सेवित इस दूसरी वाराणसी को देखो ॥ ४१-४२ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार कह कर भगवान् शङ्कर कुछ देर के लिए ध्यानमग्न हो गए। तपोधनों! तदनन्तर उन्होंने 'चण्डीश' नामक अपने गण को इस कार्य के लिए नियत किया ॥ ४३ ॥

शिवजी ने कहा—चण्डीश ! हिमालय के रम्य तट पर सरयू के किनारे देव-गन्धर्व एवं ब्रह्मादि देवों से सेवित असी-वरुणा के मध्य पवित्र 'वाराणसी' की तरह दूसरी वाराणसी नामक हमारी पुरी की रचना करो। 'सरयू' और 'गोमती' के मध्यवर्ती 'नीलपर्वत' है। उस पर्वत के निम्नभाग में 'गोमती और 'सरयू' को 'असी' और 'वरुणा' के रूप में स्थापित कर गणनायकों से सेवित दूसरी वाराणसी (रमणीय पुरी) का निर्माण करवाओ। तुमसे सुचारुरूप में बनाई गई उस नगरी को देखकर मैं पार्वती-सहित वहाँ आऊँगा। जिस तरह काशी इस भूमण्डल में पवित्र मानी जाती है, उसी तरह यह दूसरी वाराणसी भी निःसन्देह पवित्र समझी जायेगी ॥ ४४-४८ ॥

व्यासजी ने कहा—तपोधनों! भगवान् शङ्कर के वचनों को शिरोधार्य कर 'चण्डीश' नामक गणनायक ने 'सरयू' और 'गोमती' के मध्यवर्ती 'नीलपर्वत' को देखा। वहाँ जाकर पुण्यसलिला 'सरयू' के साथ 'गोमती' के संगत होने का स्थान भी देखा। इन दोनों के मध्यस्थ उस पर्वत पर निवास करने वाले देवों, गन्धर्वों और सिद्धों से सेवित पवित्र स्थल को देखकर 'चण्डीश' ने दूसरी 'वाराणसी की रचना की, जिसमें असंख्य रुद्रकन्याएँ तथा एकादश 'रुद्र',

तथैव द्वादशादित्यैर्बाणाद्यैर्दितिजैरपि । वासुकिप्रमुखैर्नागैस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥५६॥
पुण्यां वाराणसीं नाम नियोगाच्छूलपाणिनः । व्यरचन्मुनिशार्दूलाश्चण्डीशो गणनायकः ।५७।
विरच्य स पुरीं रम्यां शङ्करस्य महात्मनः । वरुणां स्थापयामास सूर्योपरि तपोधनाः ॥५८॥
तथैवासीं महापुण्याम् अग्नितीर्थे सुशोभनाम् । तयोर्मध्ये महत् क्षेत्रं विरच्य मुनिसत्तमाः ।५९।
रिटिना नन्दिस्कन्दिभ्यां परिवारैर्निषेवितम् । ततः स रचयामास तयोर्मध्ये तपोधनाः ॥६०॥
देवानां दानवानां च स्थानानि विविधानि च । आहूतास्तेन वै विप्रा महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥
वसवो द्वादशादित्या रुद्राश्चैकादशास्तथा । महर्षयो महाभागास्तथा देवर्षयोऽपरे ॥६२॥
वरुणः पवनश्चैव तथैव यक्षराट् स्वयम् । प्रेतराट् पितृभिः सार्धं तथा गन्धर्व-किन्नराः ॥६३॥
विद्याधराऽप्सरोभिश्च तथा गुह्यगणा द्विजाः । तथा नागगणाः सर्वे वासुकिप्रमुखाः शुभाः ॥
तस्मिन् क्षेत्रे महाभागाः प्रीतये शङ्करस्य च । चक्रुर्निवासं ते सर्वे चण्डीशेनोपसादिताः ॥६५॥
ज्ञात्वा विरचितां देवः पुरीं वाराणसीं शुभाम् । समाजगाम पार्वत्या सह देवर्षिसेवितः ॥६६॥
ज्ञात्वा तं सरयूमध्ये वागुवाचाऽशरीरिणी । तुष्टाव प्रणतं देवं दुर्दृश्या मानवैर्द्विजाः ॥६७॥

आठों वसु, बारहों आदित्य तथा महर्षिगण विद्यमान थे । उसी प्रकार बारह [१]आदित्य, बाणादि दैत्य एवं वासुकि नाग आदि भी प्रतिष्ठित रहे । इसी तरह अनेक अप्सरायें भगवान् शङ्कर की आज्ञानुसार इस पवित्र वाराणसी में रहने लगीं । हे तपस्वियों ! भगवान् शङ्कर के निवास-हेतु इस पवित्र पुरी की रचना कर चण्डीश ने सूर्य के ऊर्ध्वभाग में वरुणा की स्थापना की । इसी प्रकार 'अग्नितीर्थ' के ऊपर 'असी-तीर्थ' की प्रतिष्ठा की । उन दोनों के मध्य 'महाक्षेत्र' रचा । तपोधनों ! शिवजी के गणों—रिटि, नन्दी तथा स्कन्दी—के परिवारों से सेवित इस वृहत् क्षेत्र में देवों और दानवों के वास हेतु समुचित स्थान नियत किये गये । विप्रवरों ! तब चण्डीश ने ब्राह्मणों, महेन्द्रादि देवों, आठ वसुओं, बारह आदित्यों, ग्यारह रुद्रों तथा महर्षियों-देवर्षियों एवम् वरुण, वायु, [२]यक्षराज कुबेर और पितृगणों के साथ प्रेतराज यम, गन्धर्वों और किन्नरों[३] को भी बुलाया । साथ ही विद्याधरों, अप्सराओं, गुह्यगणों तथा वासुकि आदि नागगणों को बुलाकर चण्डीश ने शिवजी के परितोषार्थ उन सबको वहाँ बसाया । इस प्रकार वाराणसी की रचना किए जाने पर भगवान् शङ्कर भी पार्वती-सहित वहाँ आ पहुँचे । सरयू के मध्य सब देवताओं का वास वहाँ जानकर शिव की स्तुतिपरक एवं मानवों से अदृश्य आकाशवाणी सुनाई पड़ी ॥ ४९–६७ ॥

---

१. वाराणसी में द्वादश आदित्यों के मन्दिर निम्नलिखित हैं—

(१) लोलार्क, (२) उत्तरार्क, (३) साम्बादित्य, (४) द्रुपदादित्य, (५) मयूखादित्य, (६) खखोल्कादित्य, (७) अरुणादित्य, (८) वृद्धादित्य, (९) केशवादित्य, (१०) विमलादित्य, (११) गङ्गादित्य तथा (१२) यमादित्य । विशेष विवरण 'कल्याण' के 'सूर्याङ्क' में देखें ।

२. यक्ष एक प्रकार के देवता कहे गए हैं । ये कुबेर के सेवक माने जाते हैं । पुराणानुसार ये सुयशा और प्रचेता की सन्तान हैं । तथा इनकी आकृति विकराल होती है । तदनुसार पेट फूला, कन्धे भारी और हाथ-पैर घोर काले होते हैं । देखें—मत्स्यपुराण १९८।४–११ ।

३. किन्नरगण एक प्रकार के देवता हैं, जिनका मुख घोड़े की तरह होता है । ये संगीत में प्रवीण

वागुवाच—

नमो नमो वासुकियज्ञकारिणे नमो नमश्चर्मवसानधारिणे[1]।
नमो नमः सत्यसमाधिकारिणे नमो नमो मानवमौलिधारिणे ॥ ६८ ॥
हराय दक्षस्य मखप्रणाशिने शिवाय श्रीवत्ससमाधिगामिने।
रुद्राय रौद्रान्तकनाशिने प्रभो नमामि सत्याय कलाङ्कधारिणे ॥ ६९ ॥

व्यास उवाच—

संस्तुतं देवदेवेशं वाचा खेजातया तदा। ददृशुर्मुनिशार्दूलाः सर्वे ते शिवकिङ्कराः ॥७०॥
सरयूगोमतीमध्ये लिङ्गं ब्रह्मादिसेवितम्। संस्तुतं सिद्धगन्धर्वैर्महेन्द्राद्यैर्दिवौकसैः[2] ॥७१॥
वाचा देव्या प्रथमतः संस्तुतं मुनिसत्तमाः। वागीश्वरेति ते सर्वे तुष्टुवुर्गणनायकाः ॥७२॥
सिद्धगन्धर्वमनुजा देवदानववानराः। महर्षयो महाभागास्तथा देवर्षयोऽपरे ॥७३॥
तुष्टुवुर्देवदेवेशं वागीशेति तपोधनाः। इत्येतत् कथितं विप्रा मया वाराणसी शुभा ॥७४॥
द्वितीया रचिता पुण्या चण्डीशेन महात्मना। सूर्याग्नितीर्थयोर्मध्ये मृता यत्र तपोधनाः ॥७५॥
सूर्यमण्डलमभ्येत्य यान्ति तच्छिवमन्दिरम्। काशीशतगुणं पुण्यं विद्यते यत्र वै द्विजाः ॥७६॥
यत्र ये मर्तुमिच्छन्ति तेऽपि यान्ति शिवालयम् ॥ ७७ ॥

आकाशवाणी ने घोषित किया—वासुकि-नाग का यज्ञोपवीत धारण करने वाले तथा हाथी के चर्म को वस्त्र के रूप में धारण करने वाले शिव को हमारा नमस्कार स्वीकार हो। वास्तविक समाधि के परिज्ञाता, मुण्डमाला धारण करने वाले, दक्षयज्ञ के विध्वंसक, श्रीवत्स नामक समाधि के परिज्ञाता, अन्धकासुर के विनाशक रुद्रदेव को हमारे नमस्कार हैं। सत्य-मूर्ते, चन्द्रशेखर, हे प्रभो ! आपको हम बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ६८–६९ ॥

व्यासजी ने कहा—आकाशवाणी से इस प्रकार स्तुति किये जाते हुए शिव-गणों ने सरयू-गोमती के मध्य ब्रह्मादि देवों तथा सिद्ध-गन्धर्व-महेन्द्र प्रभृति देवगणों से सेवित और भी आकाशवाणी से सर्वप्रथम संस्तुत 'शिवलिङ्ग' को वहाँ देखा। अतः 'वागीश्वर' नाम से गणनायकों ने उनकी स्तुति की। महाभागों ! इसी प्रकार ऋषियों, मानवों, वानरों आदि ने भी 'वागीश' नाम से उनकी स्तुति की। विप्रवरों इस प्रकार मैंने चण्डीश द्वारा बसाई गई दूसरी वाराणसी की स्थापना के सम्बन्ध में वर्णन कर दिया है। महाभागों ! 'सूर्य' तथा 'अग्नि' तीर्थों के मध्य मृत मनुष्य सूर्यमण्डल का भेदन कर शिवलोक पहुँचते हैं। विप्रवरों ! काशी में मरने की अपेक्षा सौगुना अधिक फल उन्हें मिलता है। इतना ही नहीं उस क्षेत्र में मुमूर्षु भी (मरणोपरान्त) शिवलोक प्राप्त करते हैं ॥ ७०–७७ ॥

होते हैं। ये लोग पुलह ऋषि के वंशज माने जाते हैं। इनका निवास-स्थान कैलासपर्वत कहा गया है—भागवत ३. २०. ४५—'स किन्नरान् किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः। मानयन्नात्मनात्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥'

१. वस्त्रार्थे 'वसन'शब्दस्य स्थाने छन्दोभङ्गभिया 'वसान'शब्दः प्रयुक्तः।
२. सकारान्तशब्दस्य स्थाने अकारान्तशब्दस्य प्रयोगः कृतः।

ऋषय ऊचुः—

सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं समस्ताघविनाशनम्। अपि पापविलिप्तानां मुक्तिदं वद वै द्विज ॥७८॥
संन्यासेन विना यत्र प्राप्यते मुक्तिरुत्तमा। क्षेत्राधिराजराजानं प्रब्रूहि मुनिसत्तम ॥७९॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूला गालवेन महात्मना। क्षेत्राधिराजराजानं भूतले समुदाहृतम् ॥८०॥
पुनर्जनपदां सङ्घैर्ऋषयश्च यतव्रताः। सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥८१॥
सूपविष्टं सुखासीनं गालवं वेदवित्तमम्। सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं ध्यायन्तं पुरुषोत्तमम् ॥८२॥
श्रुत्वा धर्माण्यशेषाणि सर्वशास्त्राणि वै तथा। पप्रच्छुः सर्वधर्मज्ञा भीताः पातकराशिभिः ॥८३॥

जानपदा ऊचुः—

नमस्ते वेदतत्त्वज्ञ ऋषीणां सम्मतं प्रभो। मनोवाक्कर्मभिर्ब्रह्मन् कृतानामघकोटिनाम् ॥८४॥
केनोपायेन शान्तिः स्यात् दुष्कर्मफलभागिनाम् ॥ ८५ ॥

गालव उवाच—

एतदर्थं सुराः सर्वे ऋषयः शंसितव्रताः। वसिष्ठाद्या महात्मानो वैकुण्ठभवनं ययुः ॥८६॥
तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं जनार्दनम्। तुष्टुवुः सर्वधर्मज्ञाः सर्वलोकहिते रताः ॥८७॥

ऋषियों ने कहा—मुनिवर! हमें अब आप समस्त पापों के विनाशक सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र के सम्बन्ध में निर्देश दें। जहाँ संन्यास ग्रहण किए बिना भी पापियों को मुक्ति मिल सके ॥ ७८-७९ ॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठों! आप लोग सुनें। महात्मा गालव ने इस भूतल पर ही सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र की बात कही है। एक समय की बात है कि समग्र जानपद तथा व्रती ऋषियों ने सब शास्त्रों के ज्ञाता, वेद-वेदाङ्गों में पारङ्गत, पुरुषोत्तम के ध्यान में मग्न, सुखपूर्वक बैठे हुए महर्षि गालव[1] से धर्मग्रन्थों का श्रवण करने के अनन्तर विविध पापों से भयभीत हो उनसे छुटकारा पाने की जिज्ञासा की ॥ ८०-८३ ॥

जानपद बोले—वेदतत्त्वज्ञ, ऋषियों के मान्य प्रभुवर! आप को हमारा प्रणाम स्वीकार हों। ब्रह्मन्! मन, वचन और कर्मों से किए हुए पापों से छुटकारा कैसे मिल सकता है? ॥ ८४-८५ ॥

महर्षि गालव ने कहा—इसका समाधान जानने के लिए एक बार व्रतपरायण वसिष्ठ आदि ऋषि वैकुण्ठलोक में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर वे देवाधिदेव जनार्दन की स्तुति करने लगे ॥ ८६-८७ ॥

---

१. पुराणों में गालव नाम के अनेक व्यक्ति मिलते हैं। परन्तु महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के शिष्य गालव हठी प्रसिद्ध हैं। एक बार परीक्षा लेने के लिए धर्मराज ने वसिष्ठ का रूप धारण कर विश्वामित्र को १०० वर्षों तक एक ही स्थान पर भोजन का थाल लिए हुए खड़ा रहने की आज्ञा दी थी। उस समय गालव ने इनकी बड़ी सेवा की थी। जिसके फलस्वरूप विश्वामित्र के आशीर्वाद से यह पूर्ण विद्वान् बने। इनके हठ करने पर विश्वामित्र ने ८०० श्यामकर्ण घोड़े माँगे। इन्होंने ययाति की पुत्री माधवी की सहायता से गुरुदक्षिणा दे दी।

ऋषय ऊचुः—

नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । शार्ङ्गपाणे नमस्तुभ्यं पद्मनाभ नमोऽस्तुते ॥८८॥
वासुदेव ! जगन्नाथ ! हृषीकेश ! जनार्दन । कमलाकान्त देवेश वासुदेव नमोऽस्तुते ॥८९॥
त्वमिन्द्रस्त्वं च सोमस्त्वं वायुस्त्वं च हुताशनः । त्वं रविस्त्वं धनाध्यक्षो यमस्त्वं वरुणोऽपि च ॥
त्वमाधारश्च धाता च विधाता त्वं जनार्दनः । त्वमापस्त्वं च वै विप्रो बीजकर्ता त्वमेव च ॥
विजयी विश्वनाथस्त्वं वारिनाथस्त्वमेव च । लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षस्त्राहि पापान्नमोऽस्तुते ॥
भवसागरमग्नानां मग्नानां शोकसागरे । महापातकभीतानामृषीणां त्वं गतिर्भव ॥९३॥
पाहि विष्णो जगन्नाथ पाहि पाहि जनार्दन । यथा पूता महात्मानो ऋषयः शंसितव्रताः ॥९४॥
सर्वे स्युः कर्मणा येन तथा त्वं ब्रूहि केशव । मुक्त्यर्थमेषां सर्वेषां क्षेत्रतीर्थं जनार्दन ॥९५॥
कृपया देवदेवेश त्रयाणामपि पावनम् ।

गालव उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु भगवान् मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ९६ ॥
दर्शयामास सरयूं दिव्यां वामाङ्घ्रिसंस्थिताम् । सर्वेषां पापविच्छित्त्यै अवतीर्णां हिमालये ।९७।
मानसोत्थां महापुण्यां दिव्यां मुक्ताफलोपमाम् । हिमालयतटे रम्ये सम्भूतामिन्दुसन्निभाम् ।९८।
प्रकाशितां वसिष्ठेन मोक्षमार्गकरीं पराम् । ब्रह्मणा च शिवेनाऽपि प्रार्थितां पुण्यवाहिनीम् ॥
महेन्द्राद्यैर्देवगणैः सेविताम् ऋषिभिः सह । प्रक्रीडद्भिर्मृगद्वन्द्वैः सर्वतः सुनिनादिताम् ॥१००॥

ऋषियों ने कहा—देवदेवेश ! शङ्ख-चक्र-गदाधर ! शार्ङ्गपाणे ! पद्मनाभ ! हम आपको पुनः-पुनः नमस्कार करते हैं । हम लोग वासुदेव, जगन्नाथ, हृषीकेश, जनार्दन, कमलाकान्त आदि नामों से सम्बोधित कर आपको प्रणाम करते हैं । आप ही इन्द्र, सोम, वायु और अग्नि के रूप में स्थित हैं । सूर्य, कुबेर, यम और वरुण भी आप ही हैं । आपही सबके आधार, धाता, विधाता, जल, विप्र, बीजकर्ता, विजयी, संसार के स्वामी, वीरश्रेष्ठ, लोकाध्यक्ष तथा देवों के अध्यक्ष भी हैं । हमें आप पापों से बचायें । आपको हम नमस्कार करते हैं । भवसागर में डूबे हुए, शोकाकुल तथा पातकों से भयभीत जनों एवम् ऋषियों के लिए आप शरण बन जायें । विष्णो ! जगन्नाथ ! जनार्दन ! आप हमारी रक्षा करें । जिस प्रकार व्रतधारी महात्मा ऋषिगण पूतात्मा होते हैं, उसी तरह सब लोग जिस कार्य को करने से पवित्र हो सकें—ऐसा उपाय बतलाने की कृपा करें । इसके साथ ही तीनों लोकों में पवित्र तथा सबका मुक्तिप्रद क्षेत्र भी बतलायें ॥ ८८–९५ ॥

महर्षि गालव ने कहा—यह बात सुनकर भगवान् ने अपने बायें चरण में संस्थित सब के पापों की विनाशिका दिव्य सरयू नदी को हिमालय से निकलती हुई दिखाया । वह सरयू मानसरोवर से निर्गत होती है, उसका जल मोतियों की तरह दिव्य (स्वच्छ) तथा चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त है । मोक्षदायिनी यह नदी शिव और ब्रह्मादि देवों से प्रार्थित महर्षि वसिष्ठ के तपोबल से प्रकाशित हुई है । महेन्द्रादि देव एवम् ऋषिगण इसका गुणगान करते रहते हैं । इसके चारों ओर ऋषियों के साथ खेलते मृगों के जोड़े शब्द करते रहते हैं तथा

हंसकारण्डवाकीर्णां चक्रवाकैर्निषेविताम् । स्वर्णवर्णाभिदिव्याभिः[1] सिकताभिश्च पूरिताम् ॥
नानाविधैर्वृक्षगणैर्विशोभितमहातटाम् । महर्षीणां महापुण्यैराश्रमैश्च विशोभिताम् ॥१०२॥
देवाङ्गनाङ्गरागेण मज्जनक्षालितेन च । पङ्कीभूतह्रदां दिव्यां पूरितां जलजैरपि ॥१०३॥
मकरैः कमठैश्चैव तथाऽन्यैर्जलजन्तुभिः । इलावर्तादिभिर्नागैः सम्पूरितजलाशयाम् ॥१०४॥
कल्लोललोकां विस्तीर्णां चलन्तीं हिमपर्वते । निजतीरे मृतानां च जन्तूनां वै महद्गतिम् ॥
ददन्तीं त्रिविधं पुण्यं यममार्गविरोधिनीम् । संयमैर्बहुभिः पूर्णां मुक्त्यै पुण्यार्थदायिनीम् ॥१०६
गोमतीसंगमे दिव्ये समन्तात् कौमुदीसमाम् । तत्र मध्ये महत्पुण्यं सुमेरुसदृशं शुभम् ॥१०७॥
पर्वतं नीलसंज्ञं वै पुण्यं तेभ्यः प्रदर्शयत्[2] । तस्योद्देशे महापुण्यां चण्डीशेन प्रकल्पिताम् ॥१०८॥
पुरीं वाराणसीं नाम पुण्यां काश्या दशोत्तराम् । तत्र मध्ये महालिङ्गं देवं वागीश्वराह्वयम् ॥
पूजितं देवगन्धर्वैः शैवं तेभ्यः प्रदर्शयत् । वसिष्ठानुग्रहार्थाय यत्र देवो महेश्वरः ॥११०॥
सम्मोहयन् ऋषिश्रेष्ठं मार्कण्डेयं हरिप्रियम् । चक्रे सैंहं वपुः शम्भुर्भीषयन्निव भूसुरम् ॥१११॥

तट पर हंस, बत्तख और चकवों के निवास-सहित सुनहली बालू बिछी रहती है। साथ ही इसके तट पर बड़े-बड़े वृक्ष लगे हुए हैं। उनके समीप महर्षियों के आश्रम भी सुशोभित हैं। देवाङ्गनाओं के स्नान करने के कारण उनके अङ्गराग के धुल जाने से मलिन हुए गहरे कुण्डों वाली, कमलों से पूरित, मगर-कछुए आदि जल-जन्तुओं तथा इलावर्तादि[3] नागों से संकुलित एवम् उठती हुई चञ्चल लहरों से अपना आयाम प्रकट करती हुई यह नदी हिमालय में प्रविष्ट हुई है। अपने तटवर्ती मृतकों को सद्गति प्रदान करने वाली, त्रिविध पुण्यदात्री एवम् यम-मार्ग की निरोधिका यह सरयू नदी बड़ी संयमित है। गोमती के दिव्य सङ्गम पर यह चारों ओर चन्द्रिका के समान प्रकाशित होती है। वहीं उन दोनों नदियों के मध्यवर्ती परम पवित्र तथा सुमेरु-सदृश 'नीलपर्वत' को भी भगवान् ने दिखलाया। उस प्रदेश में चण्डीश[4] की बनाई हुई पवित्र एवं काशी से भी दशगुणित पुण्यदात्री वाराणसी नगरी को भी दिखाया। इसके साथ ही उस नगरी के मध्य में प्रतिष्ठित, देव-गन्धर्वों से पूजित 'वागीश्वर' नामक महान् शिवलिङ्ग को भी सब लोगों को दिखलाया। जहाँ पर वसिष्ठ ऋषि को अनुगृहीत करने के लिए महेश्वर ने विष्णु के प्रिय ऋषिश्रेष्ठ मार्कण्डेय को सिंह का रूप धारण कर डराते हुए मोहित किया था ॥ ८८-१११ ॥

---

१. 'स्वर्णवर्णाभदिव्याभिः' इति पाठोऽपेक्ष्यते।

२. धातोः पूर्वं प्रायशः अडभावो लङ्लकारे ग्रन्थेऽस्मिन् दृश्यते।

३. वायुपुराण (५२-१०) में 'एलापर्ण' नाग का उल्लेख है, जो श्रावण मास में सूर्य के रथ के साथ रहता है—'एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ। विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातश्चैवारुणश्च ह ॥ नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे।'

४. रुद्र का प्रमुखगण। दक्ष के यज्ञध्वंस के समय इसने पूषन् पर आक्रमण किया था। यहाँ पर इसे नगर-नियोजक के रूप में दिखाया गया है। देखें—'भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम्। 'चण्डीशः' पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत्'।—भागवत ४-५-१८।

जानपदा ऊचुः—

चक्रे स भगवान् देवः कथं तस्य महात्मनः । अनुग्रहं च सम्मोहं मार्कण्डेयं हरिप्रियम् ॥११२
आजगाम कथं तत्र भगवान् किं चकार सः । किं तत्र विप्रियं चक्रे शङ्करस्य तपोधन ॥११३॥

गालव उवाच—

पुरा वै भगवांस्तत्र मार्कण्डेयो महातपाः । गीतां सनत्कुमारेण गाथां श्रुत्वा हिमालये ॥
समाजगाम धर्मज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥ ११४ ॥

जना ऊचुः—

सनत्कुमाराद् भगवान् गाथां श्रुत्वा हिमालये । समाजगाम च कथं तयोः सम्मतयोः शुभम् ॥

गालव उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ ऋषयः शंसितव्रताः । सत्यलोके सुखासीनं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥११६॥
सनत्कुमारं च विभुं प्रणम्याशु यतव्रताः ॥ ११७ ॥

वसिष्ठो भगवानत्रिः पुलस्त्यः पुलहश्च वै । मरीचिरङ्गिराश्चैव क्रतुश्चैव महातपाः ॥११८॥
मार्कण्डेयो महातेजाः सह तैरेव ब्राह्मणैः । सनत्कुमारस्य सभां विविशुर्महतीं शुभाम् ॥११९॥
सूपविष्टेषु सर्वेषु प्रजापतिषु तेषु वै । उवाच स मुनिः पुण्यां गाथां ब्रह्मर्षिसेविताम् ॥१२०॥
असारे खलु संसारे सारं वैकुण्ठकीर्तनम् । ध्यानं प्रणामपूर्वं वै सारात् सारतरं स्मृतम् ॥१२१॥
दुर्लभं मानुषे लोके मानुष्यं मुनिसत्तमाः । सुदुर्लभतरं तत्र ध्यानं शिवमुकुन्दयोः ॥१२२॥
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वासं काश्यां सुदुर्लभम् । यत्प्रार्थयन्ति मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥१२३॥
तस्मादपि महत्पुण्यं वासमत्र हिमालये । गत्वा तत्र हरेर्लोकं पापिष्ठा अपि यान्ति वै ॥१२४॥
हिमसीकरसंस्पृष्टाः शशका मशकादयः । अपि शूकरमार्जारा यत्र यान्ति हरेः पदम् ।१२५॥

प्रदेशवासियों ने कहा—हे तपोधन ! भगवान् शङ्कर ने विष्णुभक्त मार्कण्डेय ऋषि को मोहित कर इस प्रकार वसिष्ठ को क्यों अनुगृहीत किया ? वहाँ ऋषि क्यों आये ? उन्होंने शिवजी का क्या बिगाड़ा था ? ॥ ११२-११३ ॥

गालव ऋषि बोले—सुनें । हिमालय के सन्दर्भ में सनत्कुमार की गाई हुई गाथा को सुनकर मार्कण्डेय ऋषि वहाँ आ गए थे ॥ ११४ ॥

लोगों ने फिर पूछा—मार्कण्डेय ऋषि सनत्कुमार द्वारा गाई हुई गाथा को सुनने हिमा- में क्यों आए ? ॥ ११५ ॥

गालव ऋषि ने उत्तर दिया—इस असार संसार में हरिकीर्तन ही सार है । ईश्वर का प्रणामपूर्वक ध्यान करना उससे अधिक सारयुक्त है । मुनिवरों ! मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है, उसमें भी मानवता एवं शिव और विष्णु का ध्यान करना दुर्लभतर हैं । वेदों में पारङ्गत मुनियों के चाहते हुए भी मानव को काशीवास मिलना सुदुर्लभ है । उससे भी बढ़कर हिमालय-वास है, जहाँ रहते हुए पापी भी वैकुण्ठ को प्राप्त कर सकते हैं । हिमकणों का स्पर्श होने पर खरगोश, मच्छर, सूअर, बिल्ली आदि भी विष्णुलोक प्राप्त कर लेते हैं । हिमालय के

हिमालयतटस्थेन कः शुना साम्यमिच्छति । तपसा विद्यया चापि ध्यानेन नियमेन च ॥१२६॥
मृतः स्वर्गं विहायाशु तृणवद्देवसेवितम् । दुष्प्राप्यं देवगन्धर्वैर्यो याति हरिमन्दिरम् ॥१२७॥
ध्यानं तपः क्षेमकरी च विद्या तीर्थानि काशीप्रमुखानि शम्भोः ।
तावद्धि सर्वाणि च कीर्तितानि यावन्न चार्द्रहिमसीकराणि ॥ १२८ ॥

गालव उवाच—

इमां गाथां सकृच्छ्रुत्वा मार्कण्डेयो महातपाः । परिक्रम्य प्रणम्याशु तमृषिं विष्णुसम्मितम् ॥
आजगाम महाभागो भूलोकं लोकवन्दितः । तत्रापश्यत् स तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥
हिमवन्तं महापुण्यं जगाम दिशमुत्तराम् । अथ नीलगिरिं पुण्यं हिमाद्रेर्देवसेवितम् ॥१३१॥
प्राप्य तत्र ततः शीघ्रं गोमतीतोयसेविते । शीर्णपर्णानिलाहारो निराहारो जितेन्द्रियः ॥१३२॥
दिव्यवर्षशतं तत्र तपस्तेपे सुदुष्करम् । ततः कालेन महता मानवानां हिताय वै ॥१३३॥
प्राप्यानुज्ञां विधेस्तत्र वसिष्ठो मुनिसत्तमाः । सरयूं मानसोत्पन्नां देवर्षिगणसेविताम् ॥१३४॥
समानयत् पदोत्पन्नां हरेरमिततेजसः । पुण्यां हिमालयस्यान्ते लुठमानां सरिद्वराम् ॥१३५॥
मार्कण्डेयाश्रमं प्राप्य संलग्नां नीलपर्वते । ह्रदीभूतां महापुण्यां तस्थौ तत्र महानदी ॥१३६॥
तत्र गङ्गां ह्रदवर्तीं वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः । दृष्ट्वा चुकोप भगवान् किमेतदिति कारणम् ॥
स ध्यात्वा सुचिरं कालं ततस्तु मुनिसत्तमाः । ज्ञातवाँस्तत्र मार्कण्डेयं तपस्यन्तं तपोनिधिम् ॥
किं करोमीति सञ्चिन्त्य पुनर्ज्ञात्वा महेश्वरम् । तत्रस्थं पार्वतीकान्तं पार्वत्या सह पूजितम् ॥
तुष्टाव प्रणतस्तत्र देवं वागीश्वरं हरम् ॥ १३९ ॥

तटवर्ती कुत्ते की समता तपोबल से, विद्या से, ध्यान से या यमनियमादि से कौन कर सकता है ? वह यदि शरीर छोड़ता भी है तो स्वर्ग को तिनके की तरह छोड़ हिमालय में मरने पर शीघ्र ही देवों और गन्धर्वों से दुष्प्राप्य वैकुण्ठ-धाम पहुँच जाता है । ध्यान, तपश्चर्या, क्षेमकरी विद्या तथा शंकर के प्रिय काशी-धाम सदृश प्रमुख तीर्थों की महत्ता तब तक स्वीकृत है, जब तक हिमालय में हिमकणों का स्पर्श न हो पाये ॥ ११६-१२८ ॥

गालव ऋषि ने पुनः कहा—तपस्वियों ! इस गाथा को सुनते ही तपस्वी मार्कण्डेय ने विष्णुभक्त उस ऋषि की परिक्रमा की ओर प्रणाम कर भूलोक में आ पहुँचे । वहाँ अनेक तीर्थों और क्षेत्रों को उन्होंने देखा । तदनन्तर उत्तर दिशा में हिमालय की ओर उन्होंने प्रस्थान किया । हिमालयस्थ 'नीलपर्वत' पर पहुँच कर गोमती के जल से सिक्त सूखे पत्तों और वायु सेवन से निराहार व्रत रखते हुए उन्होंने सौ वर्षों तक तपश्चर्या की । अधिक समय व्यतीत होने पर वहीं महर्षि वसिष्ठ ने तप कर ब्रह्माजी की आज्ञा से मानसरोवर से उद्भूत तथा भगवान् विष्णु के चरण में प्रविष्ट होने से और अधिक पवित्र सरयू नदी को लोकहितार्थ नीचे की ओर प्रवाहित किया । हिमालय प्रान्त में प्रवाहित होती हुई वह पवित्र नदी नील-पर्वतस्थ मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में पहुँच कर ह्रदरूप में स्थिर हो गई । यह देख वसिष्ठ ऋषि क्रुद्ध हो गए और सरयू की गति अवरुद्ध होने का कारण देखने लगे । चिरकाल तक ध्यान करने पर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वहाँ मार्कण्डेय ऋषि तप कर रहे हैं ॥ १२९-१३९ ॥

वसिष्ठ उवाच—

महाप्रभो शङ्कर पार्वतीश शम्भो शिव त्र्यम्बक पार्वतीश।
हराव्यय त्र्यक्ष महानुभाव देवीपते विश्वपते गणेश ॥ १४० ॥
वृषध्वज शूलपिनाकवाणे रथाङ्गपाणे प्रियदेवदेव।
देवेशदेव प्रमथाधिनाथ शम्भो भव त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ १४१ ॥
वीणामृदङ्गपणवध्वनिगीतघोष वेदैः पुराणरचितस्तवगीतकीर्ते।
विश्वम्भर त्रिपुरदैत्यशतान्तकेश लोकेश मन्मथरिपो शरणं प्रपद्ये ॥ १४२ ॥
श्रीमन् महाकाल कलाविलास प्रजापतेर्यज्ञविनाश भर्ग।
भक्तप्रिय प्राणभृतामधीश काशीश कैलासनिवास शम्भो ॥ १४३ ॥
हरान्धकानङ्गरिपो सुरेश मृत्युञ्जयस्त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ १४४ ॥

व्यास उवाच—

एवं स्तुतस्ततस्तेन भगवान् शङ्करः स्वयम्। आविर्भूय वरं देवः प्रगृहाणेत्युवाच ह ॥१४५॥
ततो वव्रे मुनिस्तत्र शिवात् स मुनिसत्तमाः। सरय्वा आश्रमाद् दिव्याद् गतिं वेदविदां वरः॥

गालव उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान् विचिन्त्य च मुनेस्तपः। उवाच स प्रियां देवीं पार्वतीं प्राणसम्मिताम्।

श्रीशिव उवाच—

कथमत्र विधातव्यमनयोः श्रेय उत्तमम्। वसिष्ठस्य प्रतिज्ञा वै कथं पूर्णा भवेदिह ॥१४८॥
कथमत्र मुनेस्तस्य न स्याद्धि तपसः क्षयः। एवं विचिन्त्य भगवान् पार्वतीं प्राह शङ्करः ॥१४९॥
गोस्वरूपं विधायाशु यत्रास्ते तपसो निधिः। तत्र याहि महाभागे सुरगन्धर्वपूजिते ॥१५०॥

वसिष्ठजी बोले—महाप्रभु, शङ्कर, पार्वतीपति, शिव, शम्भु, त्र्यम्बक, हर, अव्यय, विश्वपति, गणेश्वर, वृषध्वज, शूलपिनाकधारी, चक्री, देवेशदेव, प्रमथनाथ आदि नामों वाले शिव ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपका यश वीणा-मृदङ्ग-पणव आदि वाद्यों से घोषित तथा वेदमन्त्रों एवं पुराणादि में वर्णित स्तोत्रों द्वारा गाया जाता है। आप विश्व का भरण-पोषण करने वाले, त्रिपुरदैत्य तथा कामदेव को भस्म करने वाले हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ। उन्होंने फिर शिव को सम्बोधित कर कहा—श्रीमन् महाकाल, कालविलास, प्रजापते, दक्षयज्ञविनाशक, भर्ग, भक्तप्रिय, प्राणियों के अधीश, काशीश, कैलासवासिन्, शम्भो, अन्धकासुर एवं अनङ्गहन्ता, सुरेश, मृत्युञ्जय—मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥ १४०–१४४ ॥

व्यासजी ने (बीच में) कहा—इस तरह स्तुति किये जाने पर भगवान् शङ्कर प्रकट हो गए। उन्होंने महर्षि वसिष्ठ से वर माँगने को कहा। इसके फलस्वरूप वसिष्ठ ने मार्कण्डेयाश्रम से नदी के बाहर आने का वर माँगा ॥ १४५–१४६ ॥

गालव ऋषि ने कहा—भगवान् ने 'तथास्तु' कह कर मार्कण्डेय ऋषि की तपस्या पर विचार करते हुए प्राणप्रिया पार्वती से कहा ॥ १४७ ॥

शिवजी बोले—पार्वति ! इन दोनों ऋषियों का श्रेय कैसे हो ? साथ ही वसिष्ठ की प्रतिज्ञा कैसे पूरी कराई जाय ? दूसरी ओर मार्कण्डेय ऋषि का तप भी नष्ट न हो—यह भी

अहमप्यागमिष्यामि सिंहरूपेण त्वां प्रति । आपतन्तं हि मां दृष्ट्वा ध्वनिस्तत्र विधीयताम् ॥

गालव उवाच—

सुरभीरूपमास्थाय तथेत्युक्त्वा महेश्वरी । समाजगाम यत्रास्ते मार्कण्डेयो महातपाः ॥१५२॥
तस्यानुप्रययौ देवः सिंहरूपेण सत्वरः । नखदंष्ट्रामयूखैः स्वैः पूरयन्निव भूतले ॥१५३॥
जृम्भितेन मनुष्याणाम् असून् सम्प्रहरन्निव । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सा गौस्तत्र महाध्वनिम् ॥
विवर्णवदना भीता चक्रे हि नयनक्रमात् । किमेतदिति सञ्चिन्त्य ध्यानादुद्बुध्य चक्षुषी ।१५५।
इतस्ततः पश्यमानां[1] गां तत्र स्वमुखे स्थिताम् । ददर्श मृगराजेन समाक्रान्तामधोमुखीम् ।१५६।
विवर्णवदनां दीनां प्रपश्यन्तीं स्वमेव हि । सत्वरं समुपस्थाय त्रातुं हाहेत्यपि ब्रुवन् ॥१५७॥
महर्षिः प्रययौ यावत् तावत् सा सरितां वरा । पन्नं कृत्वा ह्रदं भित्त्वा पूरयन्ती स्वनैर्दिशः ॥
नदीं प्रवाहितां दृष्ट्वा मुनेस्तस्याश्रमाद्बहिः । स्वं रूपं भगवान् दध्रे भवान्या सह शङ्करः ॥
पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं दशबाहुं त्रिशूलिनम् । कपाल-खट्वाङ्गधरं महादेव्या समन्वितम् ॥१६०॥
तमेव देवं व्याघ्रेशं मत्वा व्याघ्रस्वरूपिणम् । प्रणम्याभीप्सितान् कामान् प्राप्य सत्यं ययौ पुनः ॥
वसिष्ठोऽपि महातेजाः संस्तुवन् शङ्करं प्रभुम् । प्रवाहे वाहयित्वा तां सरयूं प्रययौ गृहम् ॥
एवमासीन्मुनेस्तस्य समागमनकारणम् । तत्र वागीश्वराख्यं वै क्षेत्रे देवनिषेविते ॥१६३॥

हमें देखना है । इन सब बातों पर विचार करते हुए शिवजी ने पार्वती से कहा कि तुम गाय का रूप धारण कर मार्कण्डेय ऋषि के तपःस्थल पर चली जाओ । मैं वहीं सिंह का रूप धारण कर तुम्हारे पास आऊँगा । झपटते हुए मुझे देखकर तुम चिल्लाना ॥ १४८-१५१ ॥

गालव ऋषि ने कहा—तदनुसार सुरभी का रूप धारण कर पार्वती मार्कण्डेय ऋषि के पास गईं । उनके पीछे से अपने नखों और दाँतों की कान्ति से दिशाओं को आलोकित करते हुए सिंह का रूप धारण कर शिव भी वहीं आ पहुँचे[2] । वे सिंहरूप में भयानक जम्हाई लेते हुए मनुष्यों का प्राणहरण करते हुए से प्रतीत हो रहे थे । उनको आते देख गाय ने चिल्लाना आरम्भ कर दिया तथा दीनवदना होती हुई स्वय को देखने लगी । ध्यानस्थ मुनि आर्तनाद को सुन कर गाय को देखने लगे । इधर-उधर देखने के साथ ही जब मुनि ने गाय के समक्ष सिंह को देखा तो उनके मुख से 'हा हा' शब्द निकल पड़े । साथ ही उठकर गाय के समीप जाने का उपक्रम करने लगे । इतने ही में 'सरयू नदी' ह्रद के बाँध को तोड़कर कलकल निनाद करती हुई आश्रम से बाहर निकल पड़ी । तब भगवान् शङ्कर तथा पार्वती ने अपने वास्तविक रूप धारण कर लिए । तदनुसार शङ्करने पाँच मुख, तीन नेत्र, दस भुजा, त्रिशूल तथा कपालखट्वाङ्ग धारण करते हुए पार्वती के साथ मार्कण्डेय ऋषि को दर्शन दिये । मार्कण्डेय ऋषि उन्हें व्याघ्ररूपधारी (व्याघ्रेश) जान कर प्रणाम करते हुए वरप्राप्ति के अनन्तर सत्यलोक पहुँच गए । वसिष्ठ भी शङ्कर की स्तुति करते हुए 'सरयू' को प्रवाहित कर अपने आश्रम को चले गए । इस हेतु मुनि को देवों से सेवित वागीश्वर क्षेत्र में आना पड़ा । भगवान् शङ्कर के द्वारा व्याघ्ररूप

---

१. 'शानच्' प्रयोग आर्षः ।

२. इसी प्रकार का आख्यान कालिदास ने 'रघुवंश' के २ सर्ग में दिलीप की परीक्षा लेने हेतु वसिष्ठाश्रम से कुछ दूर हिमालय की गुफा में वर्णित किया है ।

यथा व्याघ्रस्वरूपेण भगवान् शङ्करः स्वयम् । मुनिं सम्मोहयामास तथा समुदितं मया ।१६४।
तत्रैव पद्मनाभं च पुरीं चण्डीशकल्पिताम् । वाराणसीं शिलां चापि मार्कण्डेयाख्यां प्रपूजिताम् ।।
तां दृष्ट्वा तादृशीं भव्यां प्रणेमुस्ते द्विजातयः । सरयूं च महापुण्यां तथा शिवपुरीं शुभाम् ।।
तत्रोचुस्ते जगन्नाथं त्राहि पापाज्जनार्दन । महिमां चास्य तीर्थस्य प्रब्रूहि कृपया प्रभो ।।१६७।।
सर्वेषामेव लोकानां हिताय जगदीश्वर ।। १६८ ।।

गालव उवाच—

एतच्छ्रुत्वा स भगवान् मुनीनां भावितात्मनाम् । कृपया देवदेवेशः प्रोवाच जगतां वरः[1] ।१६९।

श्रीभगवानुवाच—

हिमालयतटे रम्या पुण्या मे चरणोद्भवा । सरयू लोकपापघ्नी विद्यते सरितां वरा ।।१७०।।
सोमपानफलं तस्याः पिबतां कुरुते जलम् । मज्जनाच्चाश्वमेधस्य तर्पणे द्विगुणं फलम् ।।१७१।।
गोमतीसङ्गमे दिव्या सङ्गता सा महानदी । तत्र मध्ये महत् क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१७२।।
वागीश्वरस्य[2] वै विप्राः सर्वपापप्रणाशनम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं सर्वकामदम् ।।१७३।।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं शृण्वतां पापनाशनम् । योऽसो हिमालयः प्रोक्तस्तस्य कुक्षौ महेश्वरः ।।
वागीशेति च विख्यातः शिवनाभिः सुपूजितः । तदेव सारं सर्वेषां भूलोके शिवमण्डलम् ।१७५।
सरयू-गोमती-मध्ये पुण्या वाराणसी स्मृता । तत्रास्ते पार्वतीनाथो देवो विश्वेश्वरो हरः ।।
तन्मध्ये सुमहत् पुण्यं प्रख्यातं भूतले शुभे ।। १७६ ।।

धारण किये हुए मार्कण्डेय ऋषि को मोहित करने का आख्यान मैंने आप लोगों को सुना दिया है। साथ ही उन ऋषियों को विष्णु भगवान्, चण्डीश द्वारा नियोजित वाराणसी तथा 'मार्कण्डेय-शिला' को भी दिखा दिया । इनको देखकर उन ऋषियों ने पवित्र सरयू और वाराणसी को प्रणाम किया । विष्णु भगवान् को देखकर उन्होंने पापों से बचाने तथा सबके हितकारी उस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करने की प्रार्थना की ।। १५२–१६८ ।।

गालव ऋषि ने कहा—वहाँ समुपस्थित ऋषियों की वाणी सुन कर दयार्द्रचित्त हो भगवान् ने कहना आरम्भ किया ।। १६९ ।।

भगवान् विष्णु बोले—हिमालय प्रान्त में मेरे चरण से निकली हुई पवित्र एवं पाप-हारिणी सरयू नदी है । उसके जलपान से सोमपान का फल मिलता है । वहाँ स्नान करने से अश्वमेधयज्ञ करने का फल मिलता है । तर्पण करने से उसकी अपेक्षा दुगुना फल मिलता है। ब्रह्मर्षियों ! जहाँ पर इस बड़ी नदी का गोमती के साथ सङ्गम होता है, उसके मध्यवर्ती 'वागी-श्वरक्षेत्र'—पापों का विनाशक, चतुर्विध पुरुषार्थों का साधक, इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होते हुए—भुक्तिप्रद भी है । उसके माहात्म्य को श्रवण करने वाले पापमुक्त हो जाते हैं । उपर्युक्त वर्णित हिमालय की कुक्षि (कोख) में 'वागीश्वर' नामक 'शिवनाभि' सर्वश्रेष्ठ शिवलिङ्ग है। भूलोक में यही 'शिवमण्डल' सारस्वरूप है । सरयू और गोमती के मध्य में पवित्र 'वाराणसी' है । उसमें भवानीश विश्वेश्वर विराजमान रहते हैं । इस भूतल पर उन दोनों का मध्य-स्थल

---

१. 'वदतां वरः' इति पाठो युक्ततरः प्रतिभाति ।
२. 'वागीश्वराख्यम्' इति पाठः समीचीनः स्यात् ।

तुहिनगिरेः पञ्च शिखराणि विभोः परमेश्वरस्य शिरांसि वरदारुकाननं चरणौ ।
करमपि विद्धि भुवनेश्वरे वामकं कमलजविभोश्च दक्षिणकरो विमाण्डेश्वरे ।। १७७ ।।
सन्निधौ देवदेवस्य सन्ति तीर्थानि यानि च । तेषामपीह सर्वेषां प्रकाशः क्रियते मया ।।१७८।।
यानि सन्तीह तीर्थानि देवदेवस्य सन्निधौ । तानि सर्वाणि वक्ष्यामि अन्तर्गृहगतानि च ।१७९।
सर्वेषां तु समासेन तीर्थयात्रां प्रवक्ष्यहम् । गोमती-सरयूमध्ये पुण्यो नीलगिरिः स्मृतः ।१८०।
तस्याधो रचिता चास्ति दिव्या वाराणसी पुरी । तस्या मध्ये स वागीशस्तीर्थराजेति गीयते ।।
शिवनाभिः स विख्यातो देवो वागीश्वरो हरः । तत्र गत्वा नरः सम्यग् भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ।।
चिन्तयन् संस्मरन् वापि देवं वागीश्वरं हरम् । जायते मुक्तिरव्यग्रा महापातकिनामपि ।।१८३।।
दर्शनात् पूजनाद् ध्यानात् तथा संस्पर्शनादपि । वागीशस्य महाभागा मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।।
पितृहा मातृहा चैव गुरुघ्नो ब्रह्महा तथा । गो-स्त्री-पशुघ्न-बालघ्ना गरदो विषदस्तथा ।१८५।
स्वामिहा पतिहा रौद्रो [1]अग्निदो वृषलीपतिः । अनेकपापराशिः स्याद्द्विद्वेषकरस्तथा ।।१८६।।
शिवनाभिमयं सोऽथ गत्वा निष्कलुषो भवेत् । तत्र ये प्राणिनो जातु सन्त्यजन्ति कलेवरम् ।।
भक्तिहीनापि[2] सायुज्यं यान्ति सर्वे न संशयः । काश्यादिषु च तीर्थेषु तावन्मृत्युर्विशिष्यते ।।
यावद् वागीशदेवस्य सन्निधौ न मृतः पुमान् । या सती तत्र देवस्य सन्निधौ सह गच्छति ।।
सा कोटिकुलमुत्तीर्य शिवलोकं प्रयाति वै । येन दृष्टं महापुण्यं तीर्थं वागीश्वराह्वयम् ।।१९०।।
तेन दृष्टा मही सर्वा सप्तद्वीपा ससागरा । तेनोद्धृतानि सर्वाणि कुलानि मुनिसत्तमाः ।१९१।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । पुरा कृतयुगस्यादौ श्वेताश्वो नाम भूपतिः ।।१९२।।

बड़ा विख्यात है। 'हिमालय के पाँच शिखर' भगवान् शङ्कर के पाँच सिर हैं। सुन्दर दारुकानन दोनों चरण हैं। भुवनेश्वर को बायाँ हाथ समझो तथा दाहिना हाथ विभाण्डेश्वर हैं।" उनके समीप जो तीर्थ हैं, उनका वर्णन क्रमशः किया जा रहा है। सर्वप्रथम वागीश के सन्निध तीर्थों का तथा उसके साथ ही अन्तर्गृह तीर्थों का वर्णन भी संक्षेप में वर्णित विधान है। इसके साथ ही तत्सम्बन्धी तीर्थयात्रा का वर्णन इस प्रकार है। गोमती और सरयू के मध्य 'नीलगिरि' है। उसके निम्न भाग में 'वाराणसी' बनाई गई है। नगरी के मध्य में 'वागीश' ही तीर्थराज के रूप में प्रख्यात हैं। वही वागीश 'शिवनाभि' के रूप में विदित हैं। वहाँ जाकर मानव भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त करते हैं। प्रतिदिन वागीश का स्मरण करने वाले पापियों को भी शाश्वत मुक्ति मिलती है। वागीश के दर्शन, चिन्तन तथा स्पर्श करने से तत्काल ही मुक्तिलाभ होता है। पितृ-मातृ-बाल-गुरु-ब्राह्मणघाती विषदाता, स्वामिघातक, आगलगानेवाले एवं शिव-द्रोही आदि महापातकी भी वागीश के समीप जाने पर पापमुक्त हो जाते हैं। भक्तिहीन यदि वहाँ जाकर प्राणत्याग करते हैं तो वे भी सायुज्य-मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं। काशी आदि अन्य तीर्थों में तब तक मरना श्रेष्ठ समझा जाता है जब तक वागीश देव के समक्ष प्राणी का शरीर-त्याग न हुआ हो। जो पतिव्रता स्त्री वागीश के समीप पति की सहगामिनी होती है, वह करोड़ों कुलों का उद्धार कर शिवलोक प्राप्त करती है। मुनिवरों! कुलोद्धारक वागीश-तीर्थ का दर्शन सातों समुद्रों से परिवेष्टित सातों द्वीपों के दर्शन के समान है। इस सन्दर्भ में

---

१. पूर्वरूपसन्ध्यभाव आर्षत्वात् समाधेयः। २. 'भक्तिहीना अपि'–इत्यपेक्षितः।

बभूव नगरे रम्ये प्रद्योताख्ये सुशोभने। वार्धकेऽभूत् सुतस्तस्य आग्नीध्रोऽग्निशिखोपमः ।१९३।
जघान पितरं पापो राज्यलोभेन मोहितः। स पोषितोऽपि तेनाथ विषं दत्त्वा च दुर्मतिः ।१९४।
मृते पितरि दुःखार्तो लोकान् विश्वासयन्निव। तस्यौर्ध्वदैहिकं कृत्वा राजा राज्यमपालयत् ॥
ततः कुष्ठं शरीरस्य बभूवातीव दुःसहम्। वह्निसंयोगमन्विच्छन् अमात्यैर्विनिषेधितः ॥१९६॥
कुष्ठं दृष्ट्वा शरीरेऽसौ चिन्तयामास भूपतिः। कथमेतत् कृतं पूर्वं मूढात्मा स विचिन्तयन् ॥
ततः सर्वैः पुरा त्यक्तो बान्धवैः सेवकैः क्षणात्। भ्रष्टश्रीकः स पापात्मा ययौ दुर्वाससाश्रमम्[1]॥
स पृष्टस्तेन धर्मात्मा प्रोवाच कृपया मुनिः।

दुर्वासा उवाच—

दुष्कर्म भवता राजन् कृतं पितृनिपातनात् ॥ १९९ ॥
काश्यादिषु च तीर्थेषु पुण्यतीर्थेषु वै तथा। उषित्वाऽपि महत्पापं न विनश्यति वै नृप ॥२००॥
जन्मकोटिषु भोज्यं[2] ते दुष्कृतं येन नश्यति। तदहं कथयिष्यामि याहि त्वं हिमपर्वते ॥२०१॥
सरयूगोमतीसङ्गे सङ्गमे यत्र सङ्गते। तत्र वाराणसी चास्ति काश्याः कोटिगुणा स्मृता ।२०२।
राजते तत्र मध्ये वै देवो वागीश्वरो हरः। तत्र गत्वा महेशस्य दर्शनात् पूजनादपि ॥२०३॥
पापाच्च्युतित्वमाप्नोति शिवनाभ्यभिलोकनात्।

एक प्राचीन आख्यान प्रसिद्ध है। वह इस प्रकार है—"सतयुग के आरम्भ में 'श्वेताश्व' नाम का राजा था। वह प्रद्योत नामक नगर का स्वामी था। वृद्धावस्था में एक पुत्र हुआ। उसको अग्निशिखा के समान उस आग्नीध्र के पिता के द्वारा पाले-पोसे जाने पर भी उस दुर्बुद्धि ने विष देकर अपने पिता को मार डाला। पिता के मरने पर उस दुःखी ने जनता को विश्वास दिलाते हुए और्ध्वदैहिक कृत्य सम्पन्न कर राज्यकार्य संचालित किया। कुल दिनों के बाद वह कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो गया। आतमदाह की इच्छा होने पर भी अमात्यवर्ग ने ऐसा करने से मना कर दिया। स्वयं को कुष्ठी देख वह अपने पूर्व कृत्यों पर विचार करने लगा। फिर उसके बान्धवों और सेवकों ने उसका परित्याग कर दिया। राज्यलक्ष्मी से परिभ्रष्ट हो वह दुर्वासा ऋषि के आश्रम में पहुंचा। उसके द्वारा पूछे जाने पर दुर्वासा ऋषि ने उसे उत्तर दिया" ॥१७०-१९८॥

महर्षि दुर्वासा बोले—राजन्! तुमने पितृवध कर बड़ा दुष्कर्म किया है। काशी आदि तीर्थों में जाकर भी यह पाप दूर नहीं हो सकता। करोड़ों जन्मों तक भी तुम्हारा यह पाप दूर नहीं हो सकता। तथापि इस पाप के दूर होने का उपाय मैं बतला रहा हूँ। तुम हिमालय पर्वत पर जाओ। उस प्रदेश में गोमती-सरयू-संगम पर काशी से करोड़गुनी पवित्र वाराणसी पुरी है। वहाँ जाकर उसके मध्य में 'वागीश्वर' का दर्शन और पूजन करो। 'शिवनाभि' के दर्शन से तुम्हारे सब पाप कट जायेंगे ॥ १९९-२०३ ॥

---

१. 'दुर्वाससः आश्रमम्' इत्यर्थः। अत्रापि दीर्घसन्धिकार्यम् आर्षत्वात् समाधेयम्।

२. 'भोग्यम्' इति युक्ततरः पाठः, यतो भक्ष्यार्थ एव 'भोज्यं भक्ष्ये' (पा० सू० ७-३-६९) इति नियमनाद् 'भोज्यम्' इति प्रयोगः सम्पद्यते।

श्रीभगवानुवाच—

इति श्रुत्वा मुनेस्तस्य वाक्यमाग्नीध्रभूपतिः ।। २०४ ।।
यात्रां तस्य कथं जाने प्रवेशो निर्गमस्तथा । कीदृशी महिमा[1] तस्य तीर्थराजस्य शाश्वती ।२०५।
यानि तीर्थानि देवस्य सन्निधौ सन्ति तानि वै । प्रब्रूहि तानि सर्वाणि तथा पूजाविधिं द्विज ।।
वागीश्वरस्य चाख्यानं समासेन वदस्व मे ।

दुर्वासा उवाच—

धन्योऽसि नृपशार्दूल गतास्ते पापकोटयः ।। २०७ ।।
वागीश्वरकथायां वै सञ्जाता मतिरीदृशी । जाह्नवी यैस्तु संस्नाता पूर्वजन्मशतत्रये ।।२०८।।
सरयूगोमतीमध्ये यान्ति वागीश्वरं हि ते । काशीभुवं च सन्त्यज्य तथा कैलासपर्वतम् ।।
सरयू नैव सन्त्याज्या शङ्करप्रेयसी यतः ।। २०९ ।।
सरयूं जाह्नवीं विद्धि यमुनां विद्धि गोमतीम् । विन्ध्यं नीलाचलं राजन् साक्षात् काञ्चनसन्निभम्।।
अश्वत्थमक्षयवटं माधवं बिन्दुमाधवम् । प्रयागं तीर्थराजं च विद्धि सङ्गममध्यगम् ।।२११।।
विश्वेश्वरं च वागीशं पुरीं चण्डीशकल्पिताम् । विद्धि वाराणसीं दिव्यामुत्तरस्यां शिवप्रियाम् ।।
पिपीलिकाद्याः कृमिमक्षिकादयः शिवाः पिशाचा जलजाश्च भूधराः ।
मृता विमानं त्रिदशैर्निषेवितामवाप्य यां यान्ति शिवार्चका: किमु ।। २१३ ।।
तीर्थेऽस्मिन् वै महाभागाः प्रकुर्वन्ति शिवार्चनम् । पूजितोऽस्ति हि विश्वेशस्तैरेवाब्दशतत्रये ।।
गुञ्जामात्रेण स्वर्णेन पुमान् वागीश्वरं हरम् । धनं स विपुलं प्राप्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।।
परत्र च शिवं याति कुलकोटिसमन्वितः । वागीश्वरसमं तीर्थं सरयूसम्मिता नदी ।।२१६।।

भगवान् बोले—ऋषि के वचन सुनकर राजा आग्नीध्र ने यात्रा का मार्ग तथा पूजाविधि एवं वागीश-माहात्म्य आदि के सम्बन्ध में संक्षेप में बतलाने के लिये प्रार्थना की ।२०४-२०६।

दुर्वासा ऋषि बोले—नृपश्रेष्ठ ! तुम्हारी बुद्धि वागीश्वर-कथा की ओर प्रवृत्त हुई—यही तुम्हारे पापों के नाशों का संकेत कर रही है । जिन्होंने अपने ३०० पूर्वजन्मों में गङ्गा-स्नान किया हो, उन्हें ही सरयू-गोमती के सङ्गम पर स्थित 'वागीश्वर' के दर्शन होते हैं। काशी और कैलास छूट जायें, 'सरयू' कभी न छोड़े, क्योंकि वह शङ्कर को अत्यधिक प्रिय है। 'सरयू' को गङ्गा तथा 'गोमती' को यमुना जानो । राजन् ! 'नीलपर्वत' को 'विन्ध्य' अथवा 'सुवर्णाचल' समझो । तत्रस्थ 'पीपल' के पेड़ को 'अक्षयवट', 'माधव' की मूर्ति को 'बिन्दुमाधव' तथा दोनों नदियों के सङ्गमस्थल को तीर्थराज 'प्रयाग' जानो । 'वागीश को विश्वेश्वर तथा उस नगरी को उत्तर वाराणसी का दूसरा रूप मानो । इस क्षेत्र में चींटियाँ, मक्खियाँ, कीड़े, सियार, जलजन्तु, पिशाच और भूचरादि सभी मरणोपरान्त विमानारूढ़ हो देवों से सेवित स्वर्ग पहुँच जाते हैं। इस तीर्थ में शिवपूजा करने वाले व्यक्तियों को तीन सौ वर्ष तक विश्वेश्वर की पूजा करने का फल मिलता है । जो मनुष्य एक गुन्जा-भर सुवर्ण वागीश को अर्पण करता है, वह यथेप्सित सुख भोग कर अपने करोड़ों कुलों सहित शिवलोक चला जाता है । महाभाग ! वागीश्वर के समान तीर्थ तथा सरयू के समान नदी तीनों लोकों में कहीं भी

---

१. स्त्रीत्वप्रयोग आर्षः ।

नास्ति नास्ति महाभाग पुण्ये लोकत्रये ह्यपि । काशीकोटिगुणं पुण्यं वक्तुं येषां न शक्यते ॥
प्राप्यते नृपशार्दूलास्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः । गो-भू-तिल-हिरण्यानां गोषु रत्नादिवाससाम् ॥
दानं चरन्ति ये राजन् ते मुक्ताः सन्ति भूतले । पापात्मानोऽपि राजेन्द्र यत्र शम्भोः परं पदम्॥
यान्ति संस्मरणादेव वागीशस्य शिवस्य वै । निष्कामोऽपि महेशस्य पदं यः स्पृशति प्रभोः ॥
स याति मन्दिरं शम्भोः प्रार्थितं देवदानवैः । पापात्मानोऽपि देवस्य मन्दिरे यान्ति वै शृणु ॥
सुबलो नाम धर्मिष्ठो वैश्योऽभून्नृपसत्तम । स धनी सर्वधर्मज्ञो धर्मशास्त्रार्थकोविदः ॥२२२॥
दशांशं प्रददौ वैश्यो द्विजेभ्यो धर्मशास्त्रवित् । अनपत्यः स धर्मात्मा पुत्रार्थं प्रार्थयन्नृपः ॥२२३॥
वृद्धे वयसि धर्मात्मा प्राप पुत्रद्वयं शुभम् । नानाविधेन पुण्येन भक्त्या शिवमुकुन्दयोः ॥२२४॥
तयोर्नामाकरोत्तातः स चानन्दान्निधीति च । पुण्डरीकेति चान्यस्य सुबलो धर्मवत्सलः ॥२२५॥
बाल्ये वयसि विक्रान्तौ दृष्ट्वा लोके सुखं हि तौ । सुतौ सन्तोषितौ तेन पुत्रिणा प्राप्तयौवनौ ॥
तत्यजुः पितरं वृद्धं कामार्तौ रतिलालसौ । वीतरागस्ततो वैश्यो गृहं त्यक्त्वा वनं ययौ ।२२७।
गते पितरि धर्मात्मा निधिः पुण्यं चकार ह । पितृवद्यज्ञकर्माणि तथा ब्राह्मणपूजनम् ॥२२८॥
कनिष्ठः पुण्डरीकस्तु पापः स्वां मातरं नयन् । गते पितरि संरन्तुं तया सह स दुर्मतिः ।२२९।
तस्य तादृशं मतं बुध्वा तत्यजुर्भ्रातृबान्धवाः । भ्रात्रा चापि परित्यक्तो स पापो विपिनं ययौ ।
ततो बहुतिथं कालं रेमे दुष्टस्तया सह । पर्वतेषु च रम्येषु नदीषु च गुहासु च ॥२३१॥
ततः कालेन महता मृतां हित्वा स्वमातरम् । ययौ स भोजनृपतेः सभायां दुष्टमानसः ॥२३२॥
तत्र भोजसभायां च नृत्यन्तं स्त्रीकदम्बकम् । तासां मध्ये प्रनृत्यन्तीं प्रददर्शाब्जलोचनाम् ॥
पूर्णचन्द्रमुखीं रामामुर्वशीसदृशाम्बराम् । दृष्टिपातेन लोकानां तेजोबलविनाशिनीम् ॥२३४॥

नहीं है । काशी से कोटिगुण पुण्य इस क्षेत्र में मिलता है । इसका वर्णन करना बड़ा कठिन है । जहाँ ऐसा फल प्राप्त होता हो, उससे बढ़कर दूसरा स्थान और कौन हो सकता है ? गो, भूमि, तिल, सुवर्ण एवं वस्त्रादि दान करने वाले पापी व्यक्ति भी पापमुक्त हो शिवधाम पहुँच जाते हैं । निष्काम व्यक्ति शिव का स्मरण करने से ही देव-दानवादि प्रार्थित शिवलोक के अधिकारी हो जाते हैं । अब मैं देवमन्दिर के सभी पहुँचने वाले पापात्माओं के सन्दर्भ में कह रहा हूँ, उसे सुनो । राजन् ! सुबल नाम का एक बड़ा धनी धर्मात्मा वैश्य था । उसने अपने धन का दशमांश दान कर पुत्र-प्राप्ति हेतु भगवान् से प्रार्थना की । शिव और विष्णु की भक्ति करने के फलस्वरूप पुण्यप्राप्ति से वृद्धावस्था में उसे दो पुत्र हुए । उस वैश्य ने उन दोनों का नाम क्रमशः 'निधि' तथा 'पुण्डरीक' रखा । बाल्यावस्था में ही उन्हें पराक्रमी देखकर उसने युवावस्था के पहले ही पुष्ट कर सन्तुष्ट किया । क्रमशः युवा होने पर कामार्त हो उन दोनों ने अपने पिता को छोड़ दिया । इस पर वृद्ध पिता घर छोड़ वन को चला गया । पिता के चले जाने पर धर्मात्मा निधि ने अपने पिता की तरह यज्ञादि धर्मकार्य किये । कनिष्ठ पुत्र पुण्डरीक पापाचरण में प्रवृत्त हो दुष्कर्म की इच्छा से अपनी माता को कहीं बहका ले गया । । इस जघन्य कृत्य के कारण बन्धु-बान्धवों ने उसे छोड़ दिया । उसने वन में जाकर पर्वतों, नदियों, कन्दराओं आदि में विचरते हुए दुष्कर्म किया । बहुत दिनों के बाद उसकी माता का देहान्त हो गया । उसे त्याग कर वह दुष्ट भोज की सभा में पहुँचा । वहाँ नृत्य करती हुई नर्तकियों में से

गतासूनिव कुर्वन्ती कामबाणेन मानवान् । तां दृष्ट्वा तादृशीं रम्यां नृत्यान्ते स विटाधमः ॥
तया सार्धं ययौ तस्या गृहं वैदूर्यशोभितम् । ततः प्राप्य गृहं रम्यं रेमे पापस्तया सह ॥२३६॥
गृहे तस्यापि शोभाढ्ये वैदूर्यमणिशोभिते । पिबंस्तस्याधरं दुष्टो रेमे वर्षशतं नृप ॥२३७॥
ततः काले व्यतीते तु वैश्यः पञ्चत्वमागतः । नीतो याम्यैर्यमपुरं हाहेति च वदन् मुहुः ।२३८।
पपात नरके घोरे प्राक्तनेनैव कर्मणा । तामिस्रादिष्वपुण्येषु नरकेषु पुनः पुनः ॥२३९॥
पच्यमानः स पापात्मा कुम्भीपाकं जगाम ह । तत्रापि नरकान् घोरान् भुक्त्वान्येषु नरेश्वरः ।
जगाम नरकेष्वेवं नानादुःखप्रदेषु च । कैलासपयःपूर्णेषु क्षिप्तोऽसौ यमकिङ्करैः ॥२४१॥
तत्र तत्र स्वमांसं हि खादन्नब्दायुतं नयन् । स रुदन् नरकान् घोरान् बुभुजे स्वेन कर्मणा ।२४२।
नानाविधं महद् दुःखं बुभुजे पूर्वजन्मजम् । न कदाचित् सुखं लेभे प्राक्कृतेनैव कर्मणा ।२४३।
निधिस्तु नृपशार्दूल स्वेन पुण्येन धर्मवित् । जगाम देवगन्धर्वैः सेवितं शिवमन्दिरम् ॥२४४॥
बुभुजे विषयान् भोगान् स निधिः शङ्करप्रियः । किञ्चित्पापावलिप्ताङ्गं[1] ततः कालेन शङ्करः ।
किङ्करान् नरकं ह्येनं दर्शयन्नित्युवाच ह । प्रत्यागच्छत मे लोके दृष्ट्वाथ यमयातनाम् ।२४६।
अथ ते किङ्कराः सर्वे तथेत्युक्त्वा महेश्वरम् । प्रक्रम्य ते यमपुरं ययुर्वै निधिना सह ॥२४७॥
भ्रात्रोः समागमश्चाभूत् तयोस्तत्र नरेश्वर । पापेभ्यः स विमुक्तोऽभूत् निधिस्तु क्षणमात्रतः ॥
पातकेभ्यो विमुक्तं तम् अथोचुः शिवकिङ्कराः । व्रजास्माभिश्च सहितो लोकनाथस्य मन्दिरम्॥
त्वमस्मान्निरयामासात् सेवितोऽप्सरसां गणैः । नह्येते नारकाः सर्वे पापिष्ठा पापयोनयः ।२५०।

एक नर्तकी पर वह मुग्ध हो गया । वह सुन्दरी चन्द्रमुखी, उर्वशी के समान वस्त्र धारण की हुई एवम् अपने कटाक्षों से लोगों को तेजोविहीन करने वाली तथा अपने कामबाणों से मानवों को प्राणविहीन सा कर रही थी । नृत्य समाप्त होने पर वह दुरात्मा उस रमणीय नायिका के पीछे-पीछे उसके वैदूर्यमणिमण्डित घर में पहुँचा तथा उसके साथ सौ वर्षों तक रमण किया । समय बीतने पर वह मर गया तथा यमदूतों की पकड़ में आकर 'हा हा' चिल्लाते हुए यमपुर पहुँचा दिया गया । अपने प्राकृत कर्मों के अनुसार 'तामिस्रादि' नरकों की यातना के पश्चात् 'कुम्भीपाक' नरक में कष्ट पाता रहा । तदनन्तर अन्यान्य नरकों में दुःख भोगने के पश्चात् यमदूतों ने उसे कैलास पर्वत के समान हिमपूरित ठण्डे जल वाले नरकों में फेंक दिया । वहाँ पर वह स्वयम् अपने मांस को खाता हुआ अनेक वर्षों तक दुःख भोगते हुए सड़ता रहा । अपने कर्मों के कारण उसे सुख का नाम भी सुनने को न मिला । राजसिंह ! निधि धर्मात्मा था, अतः उसे पुण्यों के कारण देव गन्धर्व-सेवित शिवलोक प्राप्त हुआ । वहाँ वह शिवजी का भक्त सुख भोगता रहा । फिर भी थोड़े पापों से लिप्त होने के कारण शिवजी ने अपने सेवकों से उसे यमलोक का दर्शन कराते हुए वहाँ की यातनाओं को दिखाकर वापस लाने को कहा । अतः शिवजी के गणों ने तदनुसार यमपुरी के लिए प्रस्थान किया । राजन् ! वहाँ प्रसङ्गवश दोनों भाइयों का समागम हो गया । फिर भी निधि क्षणमात्र में पापों से छुटकारा पा गया । इस पर शिवजी के गणों ने उससे अप्सराओं से सेवित शिवलोक चलने को कहा । उन दूतों ने यह

---

१. अन्यत्र 'पापविलिप्ताङ्गम्' इति पाठः ।

स तत्र सपरीवारो समारेभे शिवार्चनम् । दीपमालाशतैर्युक्तां पुष्पाभरणशोभिताम् ।।२६२।।
दृष्टवानसि धर्मज्ञ पूजां तेन प्रकल्पिताम् । प्रयुक्तां रत्नकलशैस्तृष्णया त्वमुपागतः ।।२६३।।
पूजां समाप्य राजर्षिः परिवारसमन्वितः । कृत्वा जागरणं रात्रौ समुपोष्य गृहं ययौ ।।२६४।।
ससैन्यामात्यसुहृदः कालेन स महीपतिः । मृतः शिवपुरं रम्यं पूज्य वागीश्वरं ययौ ।।२६५।।
त्वयापि तत्र धर्मज्ञ दृष्ट्वा तच्छिवपूजनम् । कृतं स्नातोऽसि सरयूं तथा प्रक्रमणं विभोः ।२६६।
तेन पुण्येन त्वं भोगान् भुक्त्वा सप्तसु जन्मसु । द्विगुणेष्विह प्राप्तोऽसि जन्मन्यस्मिन् शिवालये।।
यत्त्वया दुष्कृतं पूर्वं कृतं दृष्टेह यातना । गतं ते नारकी शम्भोः पदं पश्य त्वमाचिरम् ।।२६८।।
यद्यस्ति नारकी चिन्ता भ्रातुर्मनसि ते शुभा । तर्हि वागीश्वराख्यानं श्रावयस्व समाहितः ।।

दुर्वासा उवाच—

इत्युक्तः स निधिः पुण्यां कथां तस्मै प्रकीर्तयत् । वागीश्वरगुणोपेताम् इतिहाससमन्विताम् ।।
मोक्षमार्गकरीं रम्यां विचित्रार्थपदान्विताम् । श्रुत्वाथ नारकाः सर्वे विमुक्ताः पापराशिभिः ।।
अधिरुह्य विमानाग्रे सर्वे शम्भोः पदं ययुः । पुण्डरीकोऽपि संश्रुत्य कथां वागीश्वरस्य हि ।२७२।
मात्रा सार्धं शिवगृहं ययौ देवर्षिसेवितम् । नारका अपि चित्रार्थां कथां श्रुत्वा शुभार्थदाम् ।।
निधेः कृतस्य पुण्यस्य तथा सम्प्राप्य शाङ्करम् । पदं प्राप्तं निधेस्तस्य प्रसादान्नृपसत्तम ।२७४।
तस्मात् त्वमपि राजर्षे दृष्ट्वा वागीश्वरं हरम् । सुकृतस्य परां वृद्धिं प्राप्स्यसीह विशान्तये ।।
गलत्कुष्ठं शरीरं ते दर्शनात् भास्करोपमम् । भविष्यति महाबाहो नास्त्यत्र संशयो ध्रुवम् ।।
प्रवेशं निर्गमं चापि शृणुष्व नृपसत्तम । तच्छ्रुत्वापि महापापात् मुच्यते नात्र संशयः ।।२७७।।
वह्नितीर्थे च संस्नात्वा वरुणायाश्च मध्यगे । प्रजापतिं च सम्पूज्य अश्वमेधफलं लभेत् ।२७८।

लेकर वागीश्वर पहुँचा । उसने सपरिवार पुष्प, आभूषण आदि से युक्त सौ दीपों से नीराजन किया । हे धर्मज्ञ ! रत्नकलशों द्वारा सम्पादित उस पूजा को देख तुम्हारे मन में बड़ी लालसा उत्पन्न हुई । वह राजर्षि पूजा समाप्त कर रात्रि-जागरण करने के बाद अपनी राजधानी को चला गया । बहुत दिनों बाद वह राजा मर गया । उसे शिवलोक प्राप्त हुआ । तब तुमने इस तरह पूजाविधि देख सरयू-स्नान कर भगवान् शिव की आराधना तथा प्रदक्षिणा की थी । उस पुण्यप्रताप से तुम सात जन्मों में उससे दुगना सुख भोगकर अब यहाँ शिवलोक में आए हो । उस बीच किये गए पापों के कारण तुम्हें यह नरक देखना पड़ा है । अब तुम शीघ्र परमपद प्राप्त करो । अगर तुम्हें अपने भाई की नरक-वास की चिन्ता है तो तुम उसे वागीश्वर का माहात्म्य सुना दो ।। २५७-२६९ ।।

दुर्वासा ने फिर कहा—मेरे ऐसा कहने पर निधि ने अपने भाई को वागीश्वर के माहात्म्य एवम् इतिहास सहित आख्यान सुनाया । उस रमणीय एवं मोक्षदायिनी कथा को सुन सब नरकवासी पापमुक्त हो गए । इस तरह निधि के पुण्य एवं प्रसाद से अन्य सभी पापियों को भी शिवलोक प्राप्त हो गया । अतः राजर्षे ! तुम भी वागीश्वर हर का दर्शन कर शान्तिलाभ के लिये पुण्य-वृद्धि कर लोगे । भगवान् के दर्शन से गलित कुष्ठ से विकृत तुम्हारा शरीर सूर्यसदृश कान्तिमान् हो जायगा । अब आप वहाँ के प्रवेश और निर्गम के सम्बन्ध में सुनें । उसके सुनने से भी पाप नष्ट होते हैं । वरुणा के मध्य वह्नितीर्थ में स्नानोपरान्त प्रजापति

तत्र तीर्थे स्वयं ब्रह्मा वाजिमेधं महाक्रतुम् । चक्रे तत्रापि संस्नात्वा लभेत् पुण्यं सुदुष्करम् ॥
बाणह्रदं ततो गत्वा कृत्वा स्नानं सचैलकम् । मुण्डनं पितृश्राद्धं च विधायाशु परं व्रजेत् ।२८०।
शमदं च महातीर्थं स्नात्वा सम्पूज्य शङ्करम् । कृत्वा श्राद्धं पितॄणां तु कुलानां तारयेच्छतम् ॥
तत्रोत्तीर्य महाबाहो ईशानं लोकपूजितम् । स्नात्वा सम्पूज्य सन्तर्प्य मन्त्रं जप्त्वा शिवात्मकम् ॥
तारयित्वा कुलांस्तत्र दश पूर्वान् दशोत्तरान् । पितृकृत्यं विधायाशु ततो गोदावरीं व्रजेत् ॥

स्नात्वा ततः समुत्तीर्य कालिन्दीं सङ्गमे स्थिताम् ।
तीर्थे स्नात्वा ततस्तस्मिन् शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। २८४ ॥

तदूर्ध्वं च महातीर्थं स्नात्वा पापप्रणाशनम् । पूज्य चन्द्रोदरीं देवीं तीर्थे वागीश्वराह्वये ।२८५।
असंस्कृतप्रमीतानां तर्पयित्वा परां गतिम् । कृत्वोर्ध्वं रुद्रकुण्डाख्ये कुण्डे स्नानं विधाय च ॥
विधाय शतरुद्रीयं तस्मिंस्तीर्थे नरेश्वर । तस्मादधः पुराणाख्ये तीर्थे कृत्वा कृतक्रियः ।।२८७।।
सरयूगोमतीतीरे गत्वोर्ध्वं ऋणमोचनम् । तत्र स्नानं विधायाशु कृत्वा सर्वां पितृक्रियाम् ।२८८।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः । तदूर्ध्वं गोमतीतीर्थे भूकुण्डस्थं व्रजेच्छिवम् ।।२८९।।
तर्पयित्वा तिलजलैः पितॄणां तारयेच्छतम् । चक्रतीर्थे ततो गत्वा तदूर्ध्वं स्नानमाचरेत् ।२९०।
देवं सम्पूजयेत्तत्र नन्दिना स्कन्दिना तथा । सेवितं पूज्य देवेशं पितॄनुद्धारयेच्छतम् ।।२९१।।
तदूर्ध्वं देवदेवेशं गत्वा स्नात्वा जगद्गुरुम् । अर्चयित्वा पितॄणां वै अयुतं तारयेन्नृप ।।२९२।।
तदूर्ध्वं चन्द्रभागायाः सङ्गमे विधिपूर्वकम् । स्नात्वा चन्द्रेश्वरं देवं पूजयेद् ह्रदमध्यगम् ।२९३।
तदूर्ध्वं शेषभागायाः संगमे शेखरेश्वरम् । अर्चयित्वा शिवपुरं प्राप्नुयात् तत्र मानवः ।।२९४।।

का पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहाँ ब्रह्मा ने स्वयम् अश्वमेध यज्ञ किया था। अतः उस तीर्थ में स्नान करने पर अक्षय पुण्य मिलता है। तब 'बाणह्रद' में वस्त्रों सहित स्नान करने से सद्गति प्राप्त होती है। तत्पश्चात् 'शमद' महातीर्थ में स्नान, शिवार्चन तथा पितृकृत्य करने पर पितरों का उद्धार होता है। वहाँ से उतर कर लोकपूजित 'ईशान' देव का पूजन तथा शिवमन्त्र का जप एवं श्राद्ध करने से दस पूर्वजों और दस भावी पीढ़ियों का उद्धार होता है। तदनन्तर आगे बढ़कर 'गोदावरी' में स्नान करें। वहाँ से कुछ उतर कर 'कालिन्दी'-सङ्गम में स्नान किया जाय। उससे शिवसायुज्य प्राप्त होता है। उसके ऊपर 'पापप्रणाशन' नामक महातीर्थ में स्नानोपरान्त 'चन्द्रोदयी' देवी का पूजन कर 'वागीश्वर' तीर्थ में संस्कार-विहीन मृतपितरों के तर्पण द्वारा उनका उद्धार कर 'रुद्रकुण्ड' में स्नान करना चाहिये। वहाँ शतरुद्रीय विधि सम्पादित कर वहाँ से कुछ नीचे की ओर 'पुराणतीर्थ' में कार्य सम्पन्न करना चाहिये। तब 'सरयू' और 'गोमती' के ऊपरी भाग में 'ऋणमोचन' तीर्थ में स्नान और श्राद्ध करने से मानव ऋणत्रय से मुक्त हो जाता है। ऋणमोचन के ऊपर गोमतीतीर्थ के 'भूकुण्ड' में स्थित शिव की ओर जाय। वहाँ तर्पण करने से पूर्व की सौ पीढ़ियाँ तर जाती हैं। तब उसके ऊपर 'चक्रतीर्थ' में स्नान कर 'नन्दी' तथा 'स्कन्दी' के साथ शङ्कर का पूजन करने से पितर तर जाते हैं। राजन्! फिर उसके ऊपर देवदेवेश जगद्गुरु के समीप पहुँचकर स्नानादि से निवृत्त हो उनका अर्चन कर १०००० पितरों का उद्धार होता है। उसके ऊपर 'चन्द्रभागा' सङ्गम में स्नान कर ह्रद के मध्यस्थ 'चन्द्रेश्वर' का पूजन किया जाय। उससे कुछ ऊपर 'शेषभागा' के सङ्गम में 'शेखरेश्वर' का पूजन करने से मानवों को शिवलोक प्राप्त होता है। उसके और

तदूर्ध्वं गोमतीमध्ये गृञ्जनाख्यं महाह्लदम् । गत्वा स्नात्वा पितॄन् सर्वान् उत्तार्य शिवमश्नुते ॥
सम्पूज्य गोमतीमध्ये सरयूं पुनरेव च । समागत्य च संस्नात्वा पूजयेद् बिन्दुमाधवम् ॥२९६॥
तर्पयित्वा पितृगणान् श्राद्धं कृत्वा च मानवः । शिवलोकमवाप्नोति कुलकोटिसमन्वितः ।२९७।
भागीरथीं महापुण्यां सरयूसंगमे गताम् । स्नात्वा सम्पूजयेद्देवं सेतुबन्धं महेश्वरम् ॥२९८॥
गवां कोटिप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः । तदूर्ध्वं च महाक्षेत्रं ध्रुवाख्यं सर्वकामदम् ॥२९९॥
तत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य महादेवं ध्रुवेश्वरम् । पितृकृत्यं विधायाशु प्राप्नुयात् परमं पदम् ।३००।
कर्णाटकं महाक्षेत्रं तस्मादूर्ध्वं महेश्वरः । स्नात्वा श्राद्धं प्रकृत्याशु कुलानां तारयेच्छतम् ।३०१।
ततः परं हि रामाख्यं तीर्थमस्ति सुशोभनम् । स्नात्वा पितॄंश्च सन्तर्प्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ।३०२।
तस्मादूर्ध्वप्रदेशे तु पुष्करक्षेत्रमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा शिवपुरं प्राप्नोति मनुजो नृप ॥३०३॥
तदूर्ध्वं सुरभीसङ्गं तीर्थमस्ति सुशोभनम् । वामे सुरभीं देवीं सम्पूज्य तर्पयेत् पितॄन् ॥३०४॥
श्राद्धं सम्यग् विधायाशु ब्रह्मलोके महीयते । सुरभीसङ्गमे स्नात्वा नन्दायाः सङ्गमे व्रजेत् ॥
स्नात्वा पितॄन् समुत्तीर्य शिवलोकं व्रजेन्नरः । गत्वा तस्मादूर्ध्वभागे कणमाटीश्वरं हरम् ।३०६।
सरय्वा ह्लदमध्यस्थं समर्च्य शिवमश्नुते । तदूर्ध्वस्थं महाभाग ह्लदान्तस्थं महेश्वरम् ॥३०७॥
चन्द्रेश्वरं समभ्यर्च्य सर्वकामार्थदं शुभम् । देवं त्रिविक्रमं राजन् तदूर्ध्वं पूज्य मानवः ॥३०८॥
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते । अत्रितीर्थं ततो गत्वा स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ।३०९।
अर्चयित्वा च कपिलं शिवलोके महीयते । तस्मादूर्ध्वं कुबेराख्ये तीर्थे स्नात्वा यथाविधि ।३१०।

ऊपर 'गृञ्जन' नामक महाह्लद में स्नान और तर्पण करने से पितरों का उद्धार हो शिवत्व की उपलब्धि होती है। फिर 'गोमती' के मध्य में पूजन कर पुनः 'सरयू' में आकर स्नानोपरान्त 'बिन्दुमाधव' का पूजन करें। वहाँ तर्पण, श्राद्धादि करने से पितरों का उद्धार तथा अनेकों कुलसमेत शिवलोक प्राप्त होता है। तदनन्तर 'सरयू' के सङ्गम में प्राप्त 'भागीरथी' में स्नान कर 'सेतुबन्धेश्वर' का पूजन कर सौ गोदान करने का फल मिलता है। उसके ऊपर 'ध्रुव' महाक्षेत्र में स्नान कर 'ध्रुवेश्वर' का पूजन तथा श्राद्धादि करने से मोक्ष-प्राप्ति होती है। उससे ऊपर 'कर्णाटक' क्षेत्र में स्नान तथा श्राद्धादि कर सैकड़ों कुलों का उद्धार करें। तदनन्तर 'रामतीर्थ' में स्नान, श्राद्धादि करने से सब यज्ञों के करने से मिलने वाले फलों को प्राप्त करें। उससे ऊपर 'पुष्कर' क्षेत्र में स्नान करने से शिवलोक मिलता है। उसके ऊपर 'सुरभी-सङ्गम' तीर्थ के वाम भाग में 'सुरभी' देवी का पूजन तथा तर्पण करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। वहाँ 'सुरभी' के सङ्गम में स्नान कर 'नन्दा' के सङ्गम की ओर जायें। फिर ऊपरी भाग में 'सरयू' के ह्लद में 'कर्णमारीश्वर'[1] शिव का पूजन करने से शिवत्व की सिद्धि होती है। तब वहीं उसके ऊपर कामद 'चन्द्रेश्वर' तथा उससे ऊपर 'त्रिविक्रम' का पूजन करने से शिवलोक में जाकर शिवसाहचर्य का आनन्द मिलता है। तब 'अत्रितीर्थ' में स्नान और तर्पण कर 'कपिल' का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है। उसके ऊपर 'कुबेरतीर्थ' में यथाविधि

---

१. 'मत्स्यपुराण' (१७९-१५) में 'कर्णमोटी' नाम की एक 'मातृका' का उल्लेख मिलता है। वह शिवजी द्वारा सृष्ट एक 'मानसपुत्री' के रूप में वर्णित है। उसके नाम पर स्थापित 'कर्णमोटीश्वर' के स्थान पर लेखक ने भ्रमवश कदाचित् 'कर्णमाटीश्वर' अङ्कित कर दिया हो।

धनदं पूज्य मनुजो धनहीनो न जायते । तस्मादधः कपालाख्यं सूर्यकुण्डं ततः परम् ॥३११॥
सरयूमध्यगं स्नात्वा सूर्यकोटिसमो भवेत् । तस्मादधः प्रदेशे तु वाणक्यं नाम तीर्थकम् ।३१२।
वाणकाख्यं महादेवं पूज्य सन्तर्प्य वै पितॄन् । काश्यपं काश्यपीं देवीं पूज्य याति परां गतिम् ॥
तस्मादधोऽविमुक्ताख्ये तीर्थे स्नात्वा यथाविधि । अविमुक्तेश्वरं देवं समभ्यर्च्य नरेश्वर ।३१४।
पितृमातामहानां च तारयित्वा शतं शतम् । रुद्रसायुज्यतां याति मानवो नृपसत्तम ॥३१५॥
तस्माद्दक्षिणभागे वै हंसतीर्थमिति स्मृतम् । यमाराध्य शिवं हंसो लेभे शिवपुरीं शुभाम् ।३१६।
तस्मिन् क्षेत्रे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा यतव्रतः । कुलानां शतमुत्तीर्य नरः सायुज्यमश्नुते ॥
ततः परं महातीर्थं रुद्रद्वारमिति स्मृतम् । तत्र स्नानं विधायाशु पूर्ववत् पितृतर्पणम् ॥३१८॥
नन्दिरुद्रं प्रपूज्याशु महाकालं प्रपूजयेत् । क्षेत्रपालं नमस्कृत्य शम्भोरन्तःपुरं व्रजेत् ॥३१९॥
तत्र कालीं कपालीं च देवीं वै जह्नुजां तथा । सावित्रीं शारदां चापि समर्च्याशु शिवं व्रजेत् ॥

स्नान तथा पूजन करने से मनुष्य दरिद्र नहीं रहता । उसके निम्न भाग में 'कपालतीर्थ' है। फिर 'सरयू' के मध्य 'सूर्यकुण्ड' में स्नान कर मनुष्य करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है। उसके नीचे 'वाणक्य' तीर्थ में 'बाणक' शिव का पूजन और तर्पणादि के उपरान्त 'काश्यप' और 'काश्यपी' का पूजन करने से परमगति मिलती है । राजन् ! उसके नीचे 'अविमुक्ततीर्थ'[1] में स्नान एवम् 'अविमुक्तेश्वर' का पूजन करने से पितृ तथा मातामह कुलों के सौ-सौ पूर्वजों का उद्धार होता है। इसके साथ ही रुद्रसायुज्य का लाभ होता है। इसके दक्षिण भाग में 'हंसतीर्थ'[2] है, जिसकी आराधना कर हंस ने शिवलोक प्राप्त किया था । उस क्षेत्र में स्नान तथा श्राद्ध करने से सौ कुलों का उद्धार होता है । तब 'रुद्रद्वार' नामक महातीर्थ है। वहाँ भी स्नान, तर्पणादि कर 'नन्दिरुद्र' के पूजनोपरान्त 'महाकाल' का पूजन करना चाहिये । तदनन्तर 'क्षेत्रपाल' की पूजा एवं प्रणामोपरान्त शिवजी के अन्तर्गृह में प्रवेश करें । वहाँ 'काली'[3], 'कपाली'[4], 'जह्नुजा'[5], 'सावित्री'[6] और 'शारदा'[7] का पूजन कर शिवजी के समीप जाय। तब

---

१. 'अविमुक्त क्षेत्र' के नामकरण के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक कारण दिये गए हैं, परन्तु 'मत्स्यपुराण' (१८०।५४।६४) के अनुसार इसका यह नाम इसलिए पड़ा कि भगवान् शङ्कर ने न तो इसको कभी छोड़ा, न छोड़ेंगे—'विमुक्तं न मया यस्मात् मोक्ष्यसे न कदा च न। महत्क्षेत्रमिदं तस्मात् अविमुक्तमिति स्मृतम्'। काशी को भी अविमुक्त-क्षेत्र कहा जाता है। सङ्कल्प में भी इसका उल्लेख किया जाता है।

२. काशी में भी 'हंसतीर्थ' नाम से एक बड़ा तालाब था । अब पाट दिया गया है।

३. दश महाविद्याओं के अन्तर्गत प्रथम महाविद्या (ब्रह्माण्डपुराण ४. ७. ७२) । कालिकापुराणानुसार इनके चार हाथ हैं—दाहिने में खट्वाङ्ग और चन्द्रहास तथा बायें दोनों हाथों में ढाल और पाश हैं। नरमुण्डमाला इनका आभूषण है, व्याघ्रचर्म इनका वस्त्र, मस्तकशून्य तथा शव इनका वाहन है। इन्होंने तारकामय के समय सबको अन्धकार में लपेट लिया था (मत्स्य० १३. ३२; १७२-१९)।

४. अन्धकासुर के विनाश के लिए शिवजी द्वारा सृष्ट एक मातृका देवी (मत्स्य० १७९-१६)।

५. गङ्गा का एक नाम ।

६. सत्यवान् की पत्नी, जिन्होंने पातिव्रत-धर्म के बल पर यमराज को प्रसन्न कर अपने मृत पति को पुनः जीवित कर लिया था । ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की अमावस्या या पूर्णिमा को सौभाग्यवती स्त्रियाँ व्रत रखती हैं।

७. दुर्गा या सरस्वती ।

ततो ब्रह्मशिलायां तु पितृश्राद्धं विधाय वै । शिवलोकमवाप्नोति पितृभिः सह मानवः ॥३२१॥
शेषतीर्थे ततः स्नात्वा प्रभासाख्ये ततः परम् । तत्र स्नात्वा च मनुजः पितृकृत्यं विधाय च ॥
कुलायुतं समुत्तीर्य शिवलोके महीयते । ततः कनखलाख्ये वै तीर्थे स्नात्वा च मानवः ॥३२३॥
कणमात्रं द्विजातिभ्यः स्वर्णं दत्वा महेश्वरः । मेरुदानफलं लब्ध्वा नरो याति परं पदम् ।३२४।
ततः परं महातीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् । यत्र ब्रह्मा विमुक्तोऽभूद् दुहितृगमनोद्भवात् ॥३२५॥
तत्र स्नात्वा च पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । वामदेवोऽपि संस्नात्वा तीर्थे विमलसंज्ञके ।३२६।
वेणुजामध्यगे नित्यं समर्च्य सकलं हरिम् । पितृकृत्यं विधायाशु मानवो निर्मलो भवेत् ।३२७।
परं हि विश्वनाथाख्यं तीर्थमस्ति सुशोभनम् । स्नात्वा तत्र विधानेन स्नानं कृत्वा च मानवः ॥
विश्वनाथं समभ्यर्च्य काश्याः कोटिगुणं फलम् । गयाश्राद्धं तथैवात्र प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥
स्नात्वा विद्याधरे तीर्थे मुक्तिदेये ततः परम् । सङ्गमाख्ये महातीर्थे सङ्गमध्ये ततः परम् ।३३०।
मार्कण्डेयशिलां पुण्यां समर्च्य विधिपूर्वकम् । वेणीमध्ये महाक्षेत्रे स्नात्वा श्राद्धं विधाय च ॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं सम्प्राप्नुयान्नरः । वेणीमध्ये महादण्डे स्नात्वा कृत्वा पितृक्रियाम् ॥
आब्रह्मभुवनाँल्लोकान् देवर्षिपितृमानवान् । तर्पयित्वा महाभाग गच्छेद्वागीश्वरं हरम् ॥३३३॥
समर्च्याशु महाकालं गच्छेद् वागीशसन्निधौ । यस्य दर्शनमात्रेण शिवदेहो भवेन्नरः ॥३३४॥
नन्दि भृङ्गि रिटिं चापि गणेशं चापि पूजयेत् । त्रिः परिक्रम्य देवेशं गत्वा देवस्य सन्निधौ ॥
यस्य दर्शनमात्रेण शिवदेहो भवेन्नरः । योऽयं वागीशसंज्ञो वै शिवनाभिरिति स्मृतः ॥३३६॥

'ब्रह्मशिला' पर श्राद्ध करने से शिवलोक में पितरों का साहचर्य मिलता है। तत्पश्चात् 'शेषतीर्थ' में स्नान कर 'प्रभास' तीर्थ में स्नान तथा पितृकार्य करने से १०००० कुलों का उद्धार होता है। फिर 'कनखल' तीर्थ में स्नानोपरान्त किञ्चिन्मात्र सुवर्ण-दान करने से 'मेरुदान' का फल प्राप्त होकर मोक्ष मिलता है। तदनन्तर 'सर्वपापप्रमोचन' महातीर्थ है। वहाँ स्नान करने से ब्रह्मा भी दुहितृ-गमन के लाञ्छन से विमुक्त हुए थे। वहाँ स्नान कर अवश्य पापों से छुटकारा पा लिया जाय। इसके अनन्तर 'विमलतीर्थ' है, वहाँ स्नान कर 'वामदेव'[1] ने भी सिद्धि पाई थी। वहीं 'वेणुजा' के मध्य में 'हरि' का पूजन और 'पितृकृत्य' कर मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। इसके बाद 'विश्वनाथ' तीर्थ है। उसमें स्नान एवं 'विश्वनाथ' का पूजन करने पर काशी से करोड़ों गुना अधिक फल मिलता है। इतना ही नहीं वहाँ गयाश्राद्ध का भी फल प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् मुक्तिप्रद 'विद्याधर' क्षेत्र तथा 'सङ्गम' नामक महातीर्थ में स्नान कर पवित्र 'मार्कण्डेय-शिला' का पूजन कर त्रिवेणी के मध्य स्नान एवं श्राद्ध किया जाय। इससे अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है। वेणी के मध्य 'महादण्ड' क्षेत्र में स्नान और श्राद्ध कर ब्रह्मादि देवों से लेकर देव, ऋषि, मानव तथा पितरों का तर्पण करने के उपरान्त 'वागीश्वर' महादेव के समीप जाय। वहाँ सर्वप्रथम 'महाकाल' का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर 'वागीश' पहुँचे। उनका दर्शन होते ही मानव शिवमय हो जाता है। फिर नन्दी, भृङ्गी, रिटि और गणेश का पूजन कर तीन परिक्रमा करें। तदनन्तर देवदेवेश के समीप जाय। शिवनाभि-स्वरूप वागीश के दर्शन मात्र से ही मनुष्य शिवत्व प्राप्त कर लेता है। उनके दर्शन मात्र से

1. एक वैदिक ऋषि जो उशिज के पिता थे। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के यह मन्त्रद्रष्टा थे।

दृष्टमात्रो हरेत् पापं मानवानां दुरात्मनाम् । यमर्चन्ति महेन्द्राद्याः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः ॥
तं समर्च्याशु मनुजो शिवदेहो भवेत् सदा । तस्य पूजाविधिं चापि शृणुष्व सुसमाहितः ।३३८।
अर्चयित्वा दिनकरं गणेशं नन्दिनं तथा । ब्रह्माणं क्षेत्रपालं च तथा नारायणं हरिम् ॥३३९॥
वृषभं चापि सम्पूज्य देवं वागीश्वरं भजेत् । जप्त्वा शिवात्मकं मन्त्रं कृत्वाऽङ्गन्यासमादरात् ॥
षडङ्गानि ततो न्यस्य अभिषिच्य च शङ्करम् । आवाहयेत्ततो राजन् पार्वत्या सह शङ्करम् ॥
इह सन्तिष्ठ सन्तिष्ठ पार्वत्या सह शङ्करः । गृहाण मत्कृतां पूजां यथाविधि समन्विताम् ।३४२।
द्वादशाक्षरमन्त्रेण ततो ध्यायेन्महेश्वरम् । षट्त्रिंशद्वर्णमात्रेण पाद्यं दत्त्वा परं ततः ॥३४३॥
अर्घं तेनैव मन्त्रेण स्नानादिकरणं तथा । पञ्चाक्षरमन्त्रेण पूजयेत् परमेश्वरम् ॥३४४॥
वषट् स्वाहेति वै धूपं दीपं हुं-फट् प्रकीर्तयेत् । नैवेद्यं चापि सम्पूज्य विसर्जनविधिं तथा ।३४५।
षडक्षरेण मन्त्रेण विधातव्यं नरेश्वर । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥३४६॥
बद्धाञ्जलिपुरो राजन् पठेत् स्तोत्रं समाहितः । नमस्ते देवदेवाय महाकालाय शूलिने ॥३४७॥
वृषध्वजाय देवाय वृषवाहाय ते नमः । पशूनां पतये तुभ्यं नमोऽन्धकविनाशिने ॥३४८॥
कालाय कालरुद्राय शम्भवे भीमबाहवे । नमो वाक्पतये तुभ्यं नमस्तुभ्यं कपर्दिने ॥३४९॥
नमस्त्र्यक्षाय देवाय वागीशाय नमो नमः । नमस्ते त्रिपुरघ्नाय भवानीपतये नमः ॥३५०॥
नीलकण्ठाय देवाय नमो वागीश्वराय ते । इदं स्तोत्रं पठित्वा तु प्रणम्य वृषभध्वजम् ॥३५१॥
भवानीं चाऽपि सम्पूज्य ततो निष्क्रमणं चरेत् । निष्क्रम्य नृपशार्दूल ततो बाणेशसन्निधौ ।३५२
तत्र गत्वा विलिख्याशु श्लोकमेकं शुभार्थदम् । "बाणेश्वर महादेव त्वत्प्रसादान्मया कृता ।३५३॥

दुराचारी मानवों के पाप भाग जाते हैं । महेन्द्रादि देव भी उनकी पूजा करते हैं । अब उनकी पूजाविधि को ध्यान देकर सुनें । प्रथम सूर्य, गणेश, नन्दी, ब्रह्मा, क्षेत्रपाल तथा भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् 'वागीश' की पूजा आरम्भ की जाय । पूजा के मध्य 'शिवमन्त्र' का जप करने के साथ अङ्गन्यास एवं षडङ्गन्यास कर 'रुद्राभिषेक' किया जाय। राजन् ! फिर पार्वती-सहित शिव का इस प्रकार आवाहन करें—'भगवन् ! आप पार्वतीसहित यहाँ विराजमान हों, मेरी विधिपूर्वक की जाने वाली पूजा को आप स्वीकार करें।' तदनन्तर द्वादशाक्षर मन्त्र से ध्यान किया जाय । फिर छत्तीस अक्षर के मन्त्र से पाद्य, अर्घ्य, स्नानादि समर्पण कर पञ्चाक्षर मन्त्र से अवशिष्ट पूजाविधि सम्पन्न करें । 'वषट् स्वाहा' से धूप तथा 'हुँ फट्' से दीप जलायें तथा 'नैवेद्य समर्पित कर षडक्षर मन्त्र से पूजाविधि सम्पन्न करे। अन्त में प्रदक्षिणा करते हुए पुनः पुनः भगवान् को हाथ जोड़ प्रणाम करना चाहिये । फिर उनकी स्तुति की जाय —'हे देवदेव ! आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । आप 'महाकाल' 'त्रिशूल-धारी' 'वृषध्वज', 'वृषवाहन', 'पशुपति' तथा 'अन्धकासुर' के विनाशक हैं । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ । आप ही काल, कालरुद्र, शम्भु, भीमबाहु, वागीश्वर, कपर्दी तथा भूतेश्वर आदि नामों से विख्यात हैं । इसके अतिरिक्त त्रिनेत्र, त्रिपुरान्तक, भवानीश, वागीश एवं नील-कण्ठ आदि आपके अनेक सार्थक नाम हैं । अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ । इस नामात्मक स्तोत्र को पढ़कर शङ्कर को प्रणाम करने के उपरान्त भवानी का पूजन कर वहाँ से बाहर आये । राजसिंह ! तत्र 'बाणेश' के समीप जाकर यह प्रार्थना करें कि 'मेरी यह यात्रा आपकी

यात्रा साङ्गफला मेऽस्तु साक्षीभव महेश्वर"। विलिख्य च विनिष्क्रम्य गच्छेन्नीलाचले नृप ॥
नीलकण्ठं महादेवं तत्रस्थं पूज्य मानवः। काश्यादीनां च क्षेत्राणां स यात्राफलमश्नुते।३५४।
दिव्यदेहश्च मनुजो जायते नात्र संशयः। प्रवेशो निर्गमश्चापि मया सम्यक् प्रकीर्तितः॥३५५॥
तत्र पापसहस्राणां निष्कृतिस्ते भविष्यति। तत्र गच्छ महाभाग दिव्यदेहो भविष्यति॥३५६॥

श्रीभगवानुवाच—

तथेत्युक्त्वा समभ्यर्च्य तं मुनिं नृपसत्तमः। ययौ तस्मिन् महाक्षेत्रे यत्र जागर्ति शंकरः।३५७।
तेनोदितेन विधिना प्रविश्य स नरेश्वरः। स्नानदानादिकं सर्वं तथा श्राद्धं विधाय च॥३५८॥
वागीश्वरं समभ्यर्च्याथ दिव्यदेहो बभूव ह। देहं देवोपमं प्राप्य निष्क्रम्य च यथाविधि॥३५९॥
शासयित्वा च वसुधां ययौ शिवपुरं ततः। क्रीडतेऽद्यापि तेनैव सुपुण्येनाप्सरोगणैः॥३६०॥
शिवलोके महाभाग सेव्यते किन्नरीगणैः। तस्माद्यूयं महाभागाः सर्वशास्त्रविशारदाः॥३६१॥
क्षेत्रं तमेव जानन्तु मुक्तिमार्गप्रदं शुभम्। मा काशीं मा च विश्वेशं मा प्रयागं तपोधनाः।३६२।
जानन्त्वेकं हि वागीशं सरयूतोयसेवितम्।

गालव उवाच—

इति श्रुत्वा महात्मानः कपिलाद्यास्तपोधनाः॥ ३६३॥
प्रणम्य विष्णुं योगीशं बभूवुर्निश्चला हि ते। एकं वागीश्वरं सर्वे जानन्तो मुक्तिदं प्रभुम्।३६४।
समागत्याथ तीर्थानि स्नानपुण्यानि चक्रिरे। तस्मान्मद्वचनात् सर्वे पुरस्कृत्य महेश्वरम्।३६५।

कृपा से फलवती हो। आप ही इसके साक्षी हैं'। राजन्! इस वाक्य को वहाँ लिखकर तब बाहर निकल जायें। बाहर आने पर 'नीलपर्वत' पर प्रतिष्ठित 'नीलकण्ठ' महादेव का पूजन करें। इनका पूजन करने से काशी आदि तीर्थों की यात्रा करने का फल मिल जाता है। इसके साथ ही मानव दिव्यदेहधारी हो जाता है। मैंने इस तरह वहाँ का प्रवेश और निर्गम बतला दिया है। वहाँ पर तुम्हारे पाप धुल जायेंगे। अतः तुम वहाँ जाओ एवं दिव्य देहसम्पन्न हो जाओ॥ २७०-३५६॥

भगवान् बोले—ठीक है—कह कर वह राजा मुनि को सम्मानित कर उस क्षेत्र की ओर गया, जहाँ भगवान् शङ्कर जागरूक हैं। ऋषि के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से वहाँ प्रविष्ट हो विधि-पूर्वक स्नान, दान तथा श्राद्धादि कर वागीश्वर की पूजोपरान्त दिव्यदेहसम्पन्न हो गया। तदुपरान्त वहाँ से यथाविधि विदा होकर अपनी राजधानी में वापस आ गया। चिरकाल तक राज्यशासन करता हुआ अन्त में मरणोपरान्त शिवपुर प्राप्त कर सका। किन्नरियों से सेवित वह अब भी अप्सराओं के साथ क्रीडा करता है। महाभागो! आप लोग सब शास्त्रों के वेत्ता हैं। अतः उसी क्षेत्र को शुभ मुक्तिदाता जानें। तपोधनो! आप काशी, प्रयाग आदि को अधिक महत्त्व न दें। केवल सरयू-जल से सिक्त वागीश्वर-क्षेत्र को अद्वितीय मानें॥ ३५६-३६२॥

गालव ऋषि बोले—कपिलादि महात्माओं ने यह बात सुन कर योगीश्वर भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हुए यह ज्ञात कर लिया कि वागीश्वर-क्षेत्र ही एकमात्र मुक्तिप्रद क्षेत्र है। तदनुसार उन्होंने वहीं जाकर स्नान-दानादि किया। अतः मेरे कहने से आप लोग भगवान्

वागीश्वरं समर्च्याशु मुक्तिं धन्यां प्रयास्यथ।
व्यास उवाच—
एतत् तस्य मुनेर्वाक्यम् आकर्ण्य ते द्विजातयः ॥ ३६६ ॥
वागीश्वरं समाराध्य मुक्ताः शिवपुरं ययुः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं सर्वकामदम् ॥३६७॥

शङ्कर को अभिलक्षित कर शीघ्र वागीश्वर[1] की पूजा कर मुक्ति प्राप्त करें ॥ ३६३-३६५ ॥

(तब) व्यासजी ने कहा—गालव ऋषि की वाणी को सुन कर सब ब्राह्मण वागीश की अर्चना कर मुक्त हो शिवलोक चले गए। मुनिवरों! मेरे द्वारा सुनाया गया यह वागीश्वर

---

१. अल्मोड़ा से २७ मील की दूरी पर 'गोमती'-'सरयू' के संगम पर स्थित बागेश्वर (३१४३ फीट) का मन्दिर सर्वमान्य तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। यहाँ पर मकरसंक्रान्ति के एक दिन पूर्व से पाँच दिन तक बड़ा मेला लगता है। यह उत्तरायणी मेला के नाम से प्रसिद्ध है। इस मेले में भोटा-न्तिक—विशेषकर जोहारी लोग ('जीवार' पर्वतवासी)—बड़ी संख्या में सम्मिलित होते हैं। ये लोग ऊनी वस्तुएं, सुहागा, कस्तूरी, जड़ी-बूटियाँ आदि विक्रय के लिए लाते हैं।

कूर्माचल में दोनों अयन-संक्रान्तियों के त्योहारों की निजी विशेषता है। साथ ही उसका सांस्कृतिक महत्त्व भी है। दक्षिणायन सूर्य (कर्क संक्रान्ति) के ६ या ७ दिनों पूर्व दो छोटी डलियों (टोकरियों) में मिट्टी डाल कर सात अन्न (सप्त धान्य) बोये जाते हैं। उसी बीच कच्ची मिट्टी में रूई मिला कर शिव, पार्वती, गणेश, नन्दीश्वर, वीरभद्र तथा महाकाल आदि के विग्रह बनाकर रंग आदि विलेपन कर पूरे किये जाते हैं। 'मासान्त' के दिन सन्ध्यासमय उन हरी भरी डलियों में इन विग्रहों को रख कर 'हरकाली' का पूजन होता है। इसे 'डिकर-पूजा' (दिक्कर=शिव) कहा जाता है। संक्रान्ति के दिन लड़कियाँ अपने बड़ों को टीका लगाती हैं तथा उपहार प्राप्त करती हैं। दक्षिणायन के बीतने पर उत्तरायण का आरम्भ 'देवयान' का सूचक है। दक्षिण दिशा के अधिष्ठाता यमराज हैं। अतः उनके दूतों को उपहार (काकबलि) देने की प्रथा कूर्माचल में प्राचीनकाल से चली आ रही है। तदनुसार यह त्योहार 'का-ले का-ले' (कौवा ले, कौवा ले) के नाम से प्रसिद्ध है। यह काकबलि मङ्गलकामना हेतु दी जाती है। वैसे तो गृहस्थ के लिए प्रतिदिन 'गोग्रास', 'श्वानबलि' तथा 'काकबलि' देने का विधान है, किन्तु मकर-संक्रान्ति के उपलक्ष्य मे पर्वतीय प्रदेश में इसका विशेष महत्त्व है। सरयू-गोमती के 'सङ्गमक्षेत्र' तथा 'गङ्गोली' के आसपास यह उत्सव संक्रान्ति के दिन ही मना लिया जाता है, परन्तु अल्मोड़े आदि में दूसरे दिन प्रातःकाल मनाया जाता है। संक्रान्ति के दिन मीठे सकरपार तथा कई और प्रकार की आकृतियाँ बनाकर उनकी माला बनाई जाती है। उसे पहन कर बालक दूसरे दिन प्रातः होते ही छतों पर जाकर यह गीत गाकर कौवों को बुलाते हैं—

का-ले, का……ले का-ले। कउवा, का……ले।
ले कउवा बोड़ो, म कें वें सुनू घोड़ो ॥
ले कउवा ब्वं, मं कें दे भलि भलि ज्वै।
ले कउवा ढाल, मं के वे सुनूक थाल ॥
का-ले, का…ले। का-ले कउवा, का…ले।
ले कउवा तरवार, मं कें दे भल भल परवार।

पुण्यं वागीश्वराख्यानं मयैयत् समुदाहृतम् । यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वान् कामान् स विन्दति ।
मुच्यते सर्वदुःखैस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते । अपुत्रो लभते पुत्रं धनमारोग्यमेव च ॥
अन्ते शिवपुरं याति कुलकोटिसमन्वितः ॥ ३६९ ॥*

व्यास उवाच—

कङ्कह्रदे च संस्नाप्य सत्येशं चार्चयेच्छिवम् । तर्पयित्वा पितॄन् तीर्थे तीर्थश्राद्धं विधाय च ॥
कुलत्रयं समुत्तार्य वसेच्छिवपुरं सुधीः ॥३७१॥
कालतीर्थं ततो गत्वा सरोजाजलमध्यगम् । निमज्य विधिवत्तत्र कालञ्चाप्सु समर्चयेत् ।३७२।
अकालमृत्युं नाप्नोति यमराजस्य सेवनात् । भोगतीर्थे सरोजायां शमदादक्षिणे तटे ॥३७३॥
कृतश्राद्धः पुनर्मृत्युभयं नाप्नोति दैवतः । दक्षिणे भोगतीर्थस्य ऋषिं हरिणसन्निभम् ॥३७४॥
समभ्यर्च्य सरोजायां कृतस्नानादिकक्रियः । ब्रह्मण्यं सर्वधर्माणां प्राप्नुयान्नान्यथा क्वचित् ॥
तस्माद्देवो महाभागाः सन्ध्यायाः सङ्गमध्यगम् । सरोजायां शुकबलमर्चयेद्दिव्यवर्चसम् ।३७६।
सर्वज्ञोतिप्रभुत्वेन गौरवं प्राप्नुयान्नरः । तस्माद् वामे विरूपाक्षं सरय्वां शूलधारिणम् ।३७७।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो शिवसायुज्यमश्नुते । ऋषयः स्रोत उत्तीर्य स्नात्वा वामेश्वरं जले ।३७८।

का आख्यान बड़ा धन्य, पवित्र, आयुष्प्रद, पुत्रप्रद तथा सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है। जो इसे प्रातःकाल उठ कर पढ़ता है वह अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। इसके साथ ही वह सब दुःखों तथा पापों से छुटकारा पा लेता है। वह धन, पुत्र एवम् आरोग्य प्राप्त कर अन्त में असख्य कुलों सहित शिवलोक पहुँच जाता है* ॥ ३६६-३६९ ॥

व्यासजी ने कहा—'कङ्क' ह्रद में स्नान कर 'सत्येश' का पूजन, पितृतर्पण तथा श्राद्ध करने से तीन कुलों का उद्धार होता है। तब 'सरोजा' स्थित 'कालतीर्थ' में स्नान एवं जल में ही 'काल' (यमराज) का पूजन करने से अकाल मृत्यु नहीं होती। 'शमदा' के दाहिने किनारे 'सरोजा' के मध्य 'भोगतीर्थ' में श्राद्ध करने से मृत्यु का भय नहीं रहता। भोगतीर्थ के दाहिनी ओर हरिण-सदृश ऋषि के पूजनोपरान्त 'सरोजा' में स्नानादि करने वाला व्यक्ति सब धर्मों का ज्ञाता होने के साथ ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। महाभागो ! तदनन्तर वहाँ से 'सन्ध्या' और 'सरोजा' के सङ्गमस्थ 'सरोजा' की ओर तेजस्वी 'शुकबल' की अर्चना करें। उनकी अर्चना करने से मानव सर्वज्ञ हो जाता है। वहाँ से बाईं ओर 'सरयू' में विरूपाक्ष की

ले कउवा फुल्लो, मं कें दे भल भल घुल्लो ॥
ले कउवा पूरी, मं कें दे सूनूकि घूरी ॥
ले कउवा गोजो, मं कें दे सूनूको बोजो ॥
का-ले, का······ले। का-ले कउवा, का······ले।
ले कउवा मेंचुलो, मोलबटी आले त्यार गलाड़ थेंचुलो ॥

*आदर्श पुस्तक में इसके अन्त में अधूरी पुष्पिका—'इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे'—लिखकर छोड़ दिया गया है। अध्याय के समाप्ति की सूचना भी अङ्कित नहीं की गई है। पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार 'वागीश्वर-माहात्म्य' तो समाप्त हो गया है, किन्तु 'सरयू' के अवशिष्ट तीर्थों का वर्णन नहीं हो पाया। उसकी पूर्ति आगे की गई है। प्रसङ्ग बदलने के कारण वक्ता के रूप में पुनः व्यास को ही दिखाया गया है।

योऽर्चति स शिवं याति परत्रेह सुखं लभेत् । इन्दुतीर्थं ततः ख्यातं तारागणनिषेवितम् ॥३७९॥
गत्वा निमज्य सर्वेषु तीर्थेषु सरयूजले । यत्फलं प्राप्यते मर्त्यैः पौर्णमास्यां निमज्जनात् ।३८०।
ईशानस्थं महादेवं क्षेत्राच्चन्द्रमसः शुभात् । गत्वा निमज्य सरयूं स्रोतान्ते पूजयेच्छिवम् ॥
महापापप्रणाशाय ब्राह्मणानां हिताय च । जागर्ति योऽर्चितो देवो महेन्द्राद्यै दिवौकसः ॥३८२॥
तमर्च्य शिवभक्तानां प्रियो भवति मानवः । दक्षिणस्थां ततस्तस्मात् ब्रह्माणीं सत्यकाचले ॥
पूजयित्वा विधानेन त्रिरात्रं मुनिसत्तमाः । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो विमुक्तो याति शाश्वतीम् ॥
महादेवादधोभागे नारदीयह्लदं व्रजेत् । टङ्कनेन महेशेन तथा चन्द्रसमन्वितम् ॥३८५॥
संस्नाप्य वैष्णवं धाम विमुक्ति प्राप्नुयान्नरः । देवर्षिर्नारदो यत्र त्रिवारं स्नानमाचरत् ।३८६।
ध्यायन् विष्णुं जगन्नाथं पावयन् भुवनत्रयम् । प्राप विष्णोः परां भक्ति महाभागवताग्रणीः ॥
युगे युगे च वेदानां ध्यापनं[1] कुरुते सुधीः । वेदाङ्गपारगो भूत्वा विष्णुलोके महीयते ॥३८८॥
ततः परं महातीर्थं ख्यातमस्ति तपोधनाः । ब्रह्मनारदसंज्ञं वै महापापप्रणाशनम् ॥३८९॥

पूजा करने से पापों से मुक्ति मिल जाती है। इसके साथ ही शिवसायुज्य भी प्राप्त होता है। मुनिवरों ! तब नदी से बाहर उतर कर जलस्थित 'वामेश्वर' का पूजन करने से मनुष्य इस लोक में सुख भोग कर अन्त में शिवधाम पहुँचता है। तदनन्तर नक्षत्रों से सेवित 'इन्दुतीर्थ' है। वहाँ स्नान करने का अधिक माहात्म्य है। सरयू के अन्य तीर्थों में पौर्णमासी के दिन स्नान करने से जो फल मिलता है वह यहाँ तत्काल मिल जाता है। तब 'इन्दुतीर्थ' के ईशान कोण में स्थित 'महादेव'[2] के निकट जाकर 'सरयू' में स्नान तथा पापों की निवृत्ति तथा ब्राह्मणों के हित के लिए शिव का पूजन करना चाहिये। वह शिव वहाँ महेन्द्रादि देवों से अर्चित होकर जागरूक हैं। इनका पूजन करने से मनुष्य शिवभक्तों का स्नेहभाजन हो जाता है। वहाँ से चल 'सत्यक' पर्वत पर दक्षिण भाग में स्थित 'ब्रह्माणी' का, ब्रह्महत्यादि पापों की निवृत्ति के लिये तीन रात्रि तक, पूजन करें। इस प्रकार करने से मुक्ति मिलती है। तब 'महादेव' के नीचे 'नारद'ह्लद की ओर चले। वहाँ स्नान कर चन्द्रमासहित 'टङ्कणेश'[3] का पूजन कर विष्णु-लोक प्राप्त किया जाय। यहाँ पर देवर्षि नारद ने तीनों लोकों को पवित्र करते हुए तीन बार स्नान किया था। तब वे परम वैष्णव हुए तथा उन्होंने प्रत्येक युग में वैदिक शिक्षा दी। मानव भी वहाँ तदनुसार आचरण कर 'विष्णुलोक' में आनन्दित होते हैं। तत्पश्चात् 'ब्रह्म-नारद'

---

१. अध्यापनमिति विवक्षितम् । छन्दोभङ्गभिया अल्लोपो विहितः ।

२. शिव का सार्थक नाम । शंकर की उपासना जब महाकाल के रूप में की जाती है तब उन्हें महाप्रलय या सारी सृष्टि को ध्वंस करने वाला देवता समझा जाता है। किन्तु महाप्रलय के अनन्तर नयी सृष्टि का भाव छिपा रहता है। इसी से भगवान् शङ्कर की पूजा 'शिव' (लिङ्गात्मक) और 'शक्ति' (योन्यात्मक) के रूप में की जाती है। इनके दोनों कार्यों ने ही शङ्कर को 'महादेव' बना दिया है।

—'वायुपुराण' अध्याय ३० पूरा।

३. संस्कृत में 'टङ्कण' शब्द 'सोहागा' का पर्यायवाची है। कदाचित् वहाँ 'सोहागा' की अधिकता के कारण गरम जल का स्रोत हो। उसी नाम से शंकर की पूजा की जाती हो। वाल्मीकि रामायण में 'टङ्कवान्' नाम से एक पर्वत का उल्लेख है। वह भी इसी अर्थ को सूचित करता है।

ब्रह्माणं नारदं चापि स्नात्वा योऽर्चति वै जले । ब्रह्मलोकमवाप्नोति ब्रह्मणा सह मोदते ।३९०।
ततस्तु पश्चिमे तस्मात् तीर्थमस्ति शुकाह्वयम् । मुण्डनं कारयेत्तत्र तीर्थश्राद्धं तथैव च ।।३९१।।
पञ्चाशतकुलमुत्तार्य स्वर्गमाप्नोति मानवः । ततः पल्वलगं नाम तीर्थं पुलहनिर्मितम् ।।३९२।।
यः स्नाति मौनमास्थाय स शिवं याति नान्यथा । वह्नितीर्थं ततो गच्छेद् बाणतीर्थे निमज्य वै ।
यः स्नाति वह्निमुद्दिश्य उपोष्य च दिनत्रयम् । लोकानां पावको भूत्वा स्वर्गलोके महीयते ।।
ततस्तु मुनिशार्दूला उमासङ्गमिति स्मृतम् । सर्वपापप्रशमनं शिवलोकप्रदर्शनम् ।।३९५।।
तस्मिन् स्नात्वा च विधिवत् सन्तर्प्य च पितृँस्तथा । श्राद्धं विधाय पितरो यान्ति शिवपुरं प्रति।।
ततोऽग्नितीर्थं विज्ञेयं सुपुण्ये चाग्निपर्वते । न्यवसन्मुनिशार्दूला ब्रह्मा लोकपितामहः ।।३९७।।
हिताय च ऋषीणां वै समाहूय सुशोभनम् । स चकाराऽध्वरं विप्रा महर्षिगणसेवितः ।।३९८।।
तर्पयामास चाग्निं वै हव्यैः पुण्ये महाध्वरे । तत्राग्नितीर्थे मनुजा अग्निवत्याः सुसंगमे ।३९९।
निमज्य लोकधातारं ब्रह्माणं पूजयेद् द्विजाः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति ब्रह्मणा सह मोदते ।।४००।।
ततः कालीयसंज्ञं वै ह्रदोऽस्ति मुनिसत्तमाः । तत्र स्नात्वा पितृन् तर्प्य याति ब्रह्मपदं शुभम् ।।
ततस्तु गणिकासङ्गः पुण्योऽस्ति मुनिसत्तमाः । गणेश्वरं महादेवं सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ।४०२।
निमज्य तत्र मनुजो याति शिवपुरं प्रति । ततः स्रोतः समुत्तीर्य ताला पश्चिमवाहिनी ।।४०३।।
नृपेण तालञ्जयेन वाहिता पुण्यकारिणी । सरयूसंगमं प्राप्य पूज्यते दैवतैरपि ।।४०४।।
तत्र स्नात्वा तु मनुजो याति शिवपुरं प्रति । तत्र स्रोतं समुत्तीर्य निषधासंगमे शुभे ।।४०५।।

तीर्थ में स्नान कर 'ब्रह्मा' और नारद की अर्चना करने पर मनुष्य 'ब्रह्मलोक' जाकर ब्रह्मा के साथ सुखी होता है। वहाँ पर मुण्डन एवं तीर्थश्राद्ध करने से पचास कुलों के उद्धार होने के साथ स्वर्गलोक मिलता है। तब 'पुलह' ऋषि द्वारा परिकल्पित 'पल्वलग' तीर्थ में मौन धारण करते हुए स्नान करने से निःसन्देह शिवलोक प्राप्त होता है। तब 'वह्नितीर्थ' तथा 'बाणतीर्थ' में स्नान कर 'अग्नि' को अभिलक्षित कर तीन दिन उपवास करने से मनुष्य पूतात्मा हो स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करता है। फिर पापों का विनाशक तथा शिवलोकदर्शक 'उमासङ्ग' नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान, तर्पण तथा श्राद्धादि करने पर पितृगण शिवलोक में प्रतिष्ठित होते हैं। तदनन्तर 'अग्नि' पर्वत में 'अग्नि'तीर्थ[1] है। मुनिवरों ! वहाँ ब्रह्मा ने ऋषियों के हितार्थ अग्नि का आवाहन कर यज्ञ सम्पादित करते हुए अग्निदेव को तृप्त किया था। वहाँ मानव 'अग्निवती' नदी के सङ्गम पर 'अग्नितीर्थ' में स्नान कर ब्रह्मा की पूजा करें। इससे 'ब्रह्मलोक' प्राप्त होता है। तत्पश्चात् 'कालीय-ह्रद' में स्नान एवं तर्पण करने से ब्रह्मपद प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठों ! फिर आगे 'गणिका'-सङ्गम है। वहाँ स्नान तथा गणों के अधिष्ठाता 'गणेश्वर' महादेव का विधिपूर्वक पूजन करने से मानव शिवपुर पहुँच जाता है। तब नदी से बाहर आकर तालञ्जय[2] नामक राजा द्वारा प्रवाहित पश्चिमवाहिनी 'ताला' नदी में स्नान करें। वह सरयू में संगमित होती है और देवों द्वारा भी पूजित है। उसमें स्नान करने से मानव पापमुक्त

---

१. स्कन्दपुराणान्तर्गत ब्राह्मखण्ड (सेतु माहात्म्य) के अनुसार 'गन्धमादन' पर्वत पर यह तीर्थ है। श्रीराम ने रावण को मारकर विभीषण को राजा बना अग्नि का आवाहन किया था। यहीं अग्निदेव प्रकट हुए थे। २. अन्यत्र पुराणों में 'तालजंघ' नाम है।

निमज्य पितृकृत्यं च समाप्य विधिपूर्वकम् । महेन्द्रभवनं याति मानवो मुनिसत्तमाः ।।४०६।।
ततस्तु कोकिलासङ्गे मानवो मुनिसत्तमाः । सन्त्यज्य पातकान् सर्वान् शिवलोके महीयते ।।
ततः सुग्रीवसंज्ञं वै तीर्थमस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च मनुजो मातुर्गर्भं न पश्यति ।।४०८।।
ततस्तु बहवः पुण्याः सरयूसंगमे गताः । सरितो मुनिशार्दूलास्तपस्विविनिषेविताः ।।४०९।।
ततः पुण्याः सरिच्छ्रेष्ठाः सरयूसंगमे शुभे । भद्रामूलशतैर्युक्ताः संगता मुनिसत्तमाः ।।४१०।।
तन्मध्ये च महाभागाः पूज्य भद्रेश्वरं शुभम् । महेन्द्रभवनं याति मानवो नान्यथा क्वचित् ।।
या भद्रा मुनिशार्दूला गोपीवननिषेविभिः । महर्षिभिः समाहूता आस्तीकाद्यैस्तपस्विभिः ।।
पावनाय महायज्ञे नागानां गिरिवासिनाम् । दक्षिणाभिमुखी पुण्या गङ्गा या गीयते भुवि ।।
निमज्य पितृकृत्यं वै मानवो मुनिसत्तमाः । वैकुण्ठभवनं याति स्नात्वा सत्संगमे तयोः ।४१४।
इत्येतत्कथितं विप्राः क्षेत्राख्यानं फलप्रदम् । संक्षेपेण महापुण्यं सर्वपापान्तकारकम् ।।४१५।।
भद्रतुङ्गं समारभ्य यावद् भद्रा महानदी । तावद्वागीशसंज्ञं वै क्षेत्रमस्ति न संशयः ।।४१६।।
भद्रतुङ्गं समारभ्य यावद् भद्रा महानदी । तावद् याः सरितः पुण्याः सरयूसंगमं गताः ।४१७।
ताः सर्वाः सरयूप्राया विद्यन्ते नात्र संशयः । तासु स्नात्वा नरो याति महेन्द्रभवनं शुभम् ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरय्वां क्षेत्राख्यानं
नाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।।

हो शिवलोक प्राप्त करता है । तब जल से बाहर निकल कर पवित्र 'निषधा' के संगम में विधिपूर्वक स्नान तथा श्राद्धादि करने पर मानव को रहने के लिए इन्द्रभवन मिलता है । तदनन्तर 'कोकिला' के संगम में स्नान करने से मनुष्य पापरहित हो शिवलोक में सम्मानित होता है। तपोधनों ! तत्पश्चात् 'सुग्रीव' नामक तीर्थ है । वहाँ स्नान करने पर मानव को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता । इसके बाद अनेक नदियाँ 'सरयू' में आकर मिलती हैं । मुनिवरों ! वे सब मुनियों से सेवित हैं । तदनन्तर अनेक धाराओं में विभक्त[१] 'भद्रा' और 'सरयू' का सङ्गम है। उसके मध्य में 'भद्रेश्वर'[२] का पूजन करने से 'इन्द्रलोक' मिलता है । उस भद्रा का आह्वान बड़े बड़े ऋषियों ने किया था । पर्वतवासी नागों के यज्ञ को पावन करने के लिए आस्तीक[३] आदि ऋषियों ने उसका आह्वान किया था । इसके फलस्वरूप वह दक्षिण-वाहिनी 'गङ्गा' के रूप में प्रवाहित हुई । वहाँ स्नान एवं श्राद्धादि करने पर मनुष्य 'वैकुण्ठ' लोक को जाता है । विप्रवरों ! मैंने विशेष फलप्रद इस क्षेत्र का आख्यान संक्षेप में कह दिया है । यह क्षेत्र (सरयूक्षेत्र)

१. मत्स्यपुराण के अनुसार 'भद्रा' नदी 'भद्राश्ववर्ष' में 'गङ्गा' की एक धारा के रूप में बहती है। अतः यहाँ पर उसे 'गङ्गा' का ही रूप माना है ।

२. अन्यत्र एक पीठस्थान माना गया है, जहाँ भद्रा नाम से सती देवी की एक मूर्ति स्थापित है (मत्स्य० १३–३१) । पितरों के श्राद्ध आदि के लिए यह तीर्थ प्रशस्त माना गया है (मत्स्य० २२–२५ तथा ३२) ।

३. आस्तीक ऋषि ने जनमेजय के सर्पयज्ञ में पातालवासी तक्षक को भस्म होने से बचा लिया था । यह जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की बहन मनसा की सन्तान थे ।
—महाभारत आदि० १६. १७ ।

७९

ऋषय ऊचुः—

सा भद्रा मुनिशार्दूल समाहूता महर्षिभिः। कथं तत्र महायज्ञे नागानां गिरिवासिनाम् ॥१॥
ते कस्मिन् पर्वते नागा निवसन्ति तपोधन। कथं नागालयं हित्वा भूतले समुपागताः ॥२॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ ब्रह्मा लोकपितामहः। विभज्य सकलां पृथ्वीं विभागं स चकार ह ॥३॥
देवानां दानवानां च गन्धर्वाप्सररक्षसाम्। गुह्यविद्याधराणां च तथान्येषां च पक्षिणाम् ॥४॥
दत्वा विभज्य भागं वै तेषु सर्वेषु वै द्विजाः। ततस्तेभ्यो ददौ ब्रह्मा हिमालयतटं शुभम् ॥५॥
सुपुण्यं नागपूराख्यं संलग्नं हिमपर्वते। तत्र ते स्वपुरं सर्वे व्यरचन् मुनिसत्तमाः ॥६॥
ग्रहीतुकामाः स्वं भागं नागाः सर्वे समाहिताः। उपतस्थुर्विधातारं वासुकिप्रमुखा द्विजाः ॥
विरच्य स्वां पुरीं सर्वे बलिं गृह्णन्ति भूतले ॥ ७ ॥

ऋषय ऊचुः—

कियन्मानं स्थलं तेषां ददौ ब्रह्मा तपोधन। कुत्र ते रचयामासुः पुण्यं नागपुरं शुभम् ॥८॥

अत्यधिक पुण्यदायक और पापों का विनाशक भी है। (अब वागीश क्षेत्र की सीमा का वर्णन किया जा रहा है)। 'भद्रतुङ्गा' से आरम्भ होकर 'भद्रा' नदी के साथ सङ्गमपर्यन्त भूभाग 'वागीश' क्षेत्र है। इस क्षेत्र के मध्य जितने स्रोत सरयू में मिलते हैं, वे सब 'सरयू' के समान हैं। उनमें स्नान करने का फल 'सरयू' में स्नान करने के समान ही है। उनमें स्नान करने से स्वर्गलोक मिलता है ॥ ३७०-४१८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वागीश्वर-माहात्म्य' सहित 'सरयू नदी के अन्तर्गत क्षेत्रों का आख्यान, नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने (फिर) जिज्ञासा की—महर्षे ! गिरिवासी नागों के महायज्ञों में (आस्तीक आदि) महर्षियों ने किस प्रकार 'भद्रा' का आह्वान किया ? उन नागों की निवास भूमि कहाँ पर है ? तथा वे पाताल को छोड़ इस भूतल में कैसे आयें ? ॥ १-२ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—ऋषिवरों ! सत्ययुग के आरम्भ में ब्रह्मा ने सारी पृथ्वी को अनेक खण्डों में विभक्त कर दिया था। उन भूभागों में देवता, दानव, गन्धर्व, अप्सरायें, गुह्यक, विद्याधर तथा अन्यान्य पशु-पक्षियों आदि को रहने के लिए अनेक स्थान वितरित किये। इसी प्रसङ्ग में ब्रह्मा ने नागों के लिए हिमालय से सम्बद्ध 'नागपुर' नामक स्थान नियत किया। अतः गिरिवासी नागों ने वहीं अपना नगर बना लिया। ब्रह्मा से नागों के अपना भाग प्राप्त करने का निवेदन करने पर यह स्थिति आई। अतः ये अपने नगर में रह कर प्रजा से अपना राजग्राह्य भाग (वलि=कर) प्राप्त करते हैं ॥ ३-७ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—हे तपोधन ! ब्रह्मा ने नागों को कितना भूखण्ड दिया ? उन्होंने कहाँ पर नागपुर बसाया ? ॥ ८ ॥

व्यास उवाच—

पश्चिमे शिखराणां हि पुण्यो जीवारपर्वतः। विद्यते देवदेवस्य स्थलैर्बहु विराजितम् ॥९॥
यत्रोरू मुनिशार्दूला ग्रीवया सह शङ्करः। संस्थाप्य स-सुखं शेते देवदानवसेवितः ॥१०॥
तस्य पश्चिमभागे वै पुण्यो नागपुरः स्मृतः। निर्मितो नागराजेन नागकन्यानिषेवितः ॥११॥
जीवारगिरिमारभ्य स यावद्दारुपर्वतः। तावत्तेभ्यो ददौ ब्रह्मा हिमालयतटं शुभम् ॥१२॥
तत्र ते निवसन्तिस्म भुजङ्गाद्यास्तपोधनाः। निवस्य तत्र ते सर्वे तपोव्रतपरायणाः ॥१३॥
शिवपूजारता नागा बभूवुर्मुनिसत्तमाः। कदाचिद् द्रष्टुमिच्छन्तो यज्ञे लोकपितामहम् ॥१४॥
ययुर्गोपीवनं नागाः पुण्यं काननशोभितम्। ऋषीन् ते मन्त्रयामासुः आस्तीकाद्यास्तपोधनाः॥
निमन्त्रिता महाभागा ऋषयो नागनायकैः। समाजग्मुर्महापुण्यं गोपीकाननसंज्ञकम् ॥१६॥
तत्रागतान् ऋषीन् सर्वान् सम्पूज्य नागनायकाः। आसनानि विचित्राणि ददुस्तेषु तपोधनाः॥
आसनेषु विचित्रेषु चोपविष्टेषु वै द्विजाः। ब्राह्मणेषु तथा नागा यज्ञमारेभिरे शुभम् ॥१८॥
समारब्धे महायज्ञे मूलनारायणस्तदा। दृष्ट्वोवाच महातेजा नागमुख्यस्तपोधनाः ॥१९॥

मूलनारायण उवाच—

विना दानेन को यज्ञो विना तोयेन को विधिः। विना चान्नेन को भोगः क्व चान्नं श्रद्धया विना॥
वने चास्मिन् महाभागास्तोयहीने महाक्रतुः। करिष्यामः कथं भूरि साम्प्रतं तद्विचिन्त्यताम्॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—(हिम) शिखरों के पश्चिम में 'जीवार' पर्वत है। वह भगवान् शङ्कर के अनेक स्थलों से सुशोभित है। वहीं पर देवों और दानवों से सेवित भगवान् शङ्कर ने अपनी गर्दन रखकर जांघें फैलाईं और सुखपूर्वक विश्राम किया। उसके पश्चिम की ओर [1]नागपुर (नागभूमि) है। नागराज ने उसकी रचना की है तथा नागकन्यायें वहाँ सेवा करती हैं। 'जीवार'पर्वत से लेकर 'दारु'पर्वत[2] पर्यन्त हिमालय-तटवर्ती भाग ब्रह्मा ने नागों के वास हेतु निर्धारित कर दिया है। वहीं पर वे लोग निवास करते हैं। मुनिवरों! वहाँ पर रह कर वे नाग नियम-धर्म-पूर्वक शिव की पूजा करने लगे। किसी समय नागों के मन में यज्ञ में ब्रह्मा को देखने की इच्छा हुई और वे वनराजि से सुशोभित 'गोपीवन' में गए। वहाँ उन्होंने 'आस्तीक' आदि ऋषियों से मन्त्रणा की। नागों ने वहाँ ऋषियों को आमन्त्रित किया। ऋषिगण वहाँ आए। वासुकि आदि नाग-प्रमुखों ने उनका सत्कार किया। उन्हें विविध आसनों पर बैठाया। तब यज्ञसम्बन्धी चर्चा की गई। यज्ञ के आरम्भ का निश्चय देख कर नागप्रमुख 'मूलनारायण' ने कहना आरम्भ किया ॥ ८-१९ ॥

मूलनारायण बोले—विना दान के यज्ञ कैसा ? बिना जल के विधि कैसी ? बिना अन्न के भोग कैसा ? विना श्रद्धा के अन्न कहाँ ? अतः जलहीन वन में यज्ञविधि कैसे सम्पन्न हो—यह विचारणीय है ॥ २०-२१ ॥

---

१. स्थानीय नाम 'नाकुरी'। गढ़वाल में भी पट्टी 'नागपुर' के नाम से नागभूमि प्रसिद्ध है।
२. स्थानीय नाम 'धारीधुर'। यहाँ भी एक ताग है।

व्यास उवाच—

मूलनारायणेनोक्तां वाणीं सम्पूज्य ते तदा । चक्रुर्जलागमोपायं सह तैर्ब्राह्मणैर्द्विजाः ।।२२।।
तेषां विचिन्त्यमानानां जलोपायं तपोधनाः । फेनिलो वदतां श्रेष्ठो वचनं समुवाच ह ।।२३।।

फेनिल उवाच—

ब्राह्मणान् वेदतत्त्वज्ञान् पूजयामस्तपोधनाः । पूजितास्ते महाभागाः प्रार्थयन्तु महानदीम् ।२४।
प्रार्थिता मुनिभिः पुण्या ह्याविर्भवति शोभना । गङ्गा भागीरथी नाम नागानां पावनाय वै ।।

व्यास उवाच—

फेनिलेन महाभागा नागाः सर्वे निबोधिताः । ब्राह्मणान् पूजयामासुरर्घ्याद्यैर्विधिपूर्वकम् ।।२६।।
ततस्ते पूजिता विप्रा गङ्गां भागीरथीं शुभाम् । प्रार्थयामासुरापुण्यामावाह्य मुनिसत्तमाः ।।
ततः सा प्रार्थिता पुण्या समाहूता महर्षिभिः । आविर्बभूव पुरतः साक्षाद् भागीरथी द्विजाः ।।
आविर्भूतां च तां दृष्ट्वा मुनयो जातसम्भ्रमाः । भद्रं कुरु महाभागे नागानामिति चावदन् ।।
भद्रेति वचनात् पूर्वं सा भद्रा गीयते द्विजाः । तां भद्रां प्राप्य ये स्नानं प्रकुर्वन्ति तपोधनाः ।।
ते यान्ति ब्रह्मभुवनं कुलकोटिसमन्विताः । प्राप्य भद्रां तदा नागाः कुलकोटिप्रतारिणीम् ।३१।
ब्रह्माणं तोषयामासुर्यज्ञैश्च विविधैर्द्विजाः । ते समाप्य महायागं सोमयागं तथैव च ।।३२।।
ब्राह्मणेभ्यो महार्हां वै दक्षिणां प्रददुर्द्विजाः । महार्हाणि च वस्त्राणि दानानि विविधानि च ।।
दत्त्वा क्षमापयामासुर्ब्राह्मणान् मुनिसत्तमाः । दत्तदाना द्विजाः सर्वे प्रययुः स्वं स्वमाश्रमम् ।।
नागा नागवनं सर्वे हित्वा गोपीवनं शुभम् । प्राप्ताशिषो महाभागा ययुर्यज्ञं विधाय वै ।।३५।।
भद्रायाश्च समुत्पत्तिर्मयैतत् समुदाहृता । नागानां च महायज्ञे यथाऽऽहूता महर्षिभिः ।।३६।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भद्रामाहात्म्ये एकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।

व्यासजी ने कहा—द्विजवरों ! मूलनारायण की वाणी को सुन कर नाग आगत ब्राह्मणों के साथ जल को लाने के सम्बन्ध में परामर्श करने लगे । तपोधनों ! उन सबके साथ विचार करते-करते नागों में वाग्मी 'फेनिल' नामक नाग ने कहना आरम्भ किया ।। २२-२३ ।।

फेनिल बोला—हे तपस्वियों ! हम वैदिक ब्राह्मणों का पूजन करते हैं । पूजित होने पर वे महानदी की प्रार्थना करें । प्रार्थना करने पर नागों को पवित्र करने के लिए पुण्यसलिला नदी अवश्य आविर्भूत हो जायगी ।। २४-२५ ।।

व्यासजी ने कहा—फेनिल द्वारा प्रेरित नागों ने ब्राह्मणों का यथाविधि सत्कार किया । तब उन्होंने भागीरथी गङ्गा की प्रार्थना की । महर्षियों के आवाहनानन्तर गङ्गा वहाँ प्रकट हो गईं । तब आश्चर्यान्वित हो ब्राह्मणों ने गङ्गा से नागों का कल्याण करने के लिये ('भद्रं कुरु') निवेदन किया । द्विजवरों ! 'भद्र' शब्द के प्रयोग से उस नदी को 'भद्रा'[1] कहा गया । 'भद्रा' को प्राप्त कर उसमें स्नान करने वाले व्यक्ति असंख्य कुलों के साथ ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं । विप्रवरों ! इस प्रकार नागों ने भद्रा को प्राप्त कर अनेक यज्ञों के सम्पादन से ब्रह्मा

---

१. 'भद्राश्व वर्ष' तथा 'केतुमाल' देश की एक नदी का नाम भी 'भद्रा' है । वहाँ यह 'गङ्गा' की एक धारा कही गई है । अतः उसे यहाँ 'गङ्गा' के रूप में माना गया है ।

८०

ऋषय ऊचुः—

कस्मिन् क्षेत्रे प्रपूज्यन्ते दत्तदानास्तपस्विनः । कमाराध्य च स्तुत्वा तु प्राक्तनाः पापकोटयः ॥
पितृभिश्च कृताश्चापि तथा मातामहैरपि । तथा संसर्गजातानां दुःसंसर्गात्तपोधनाः ॥२॥
प्राक्तनेषु च जन्मेषु[1] कृतानां चापि निष्कृतिः । शृण्वन्तु मुनिशार्दूला मयैतत् समुदाहृतम् ॥३॥
निष्कृतिर्यत्र संप्राप्य यान्ति शिवपुरं प्रति । हिमालयतटे पुण्ये नागो रम्यो गिरिः[2] स्मृतः ॥४॥
पश्चिमे तस्य वै विप्रा गोपीकाननसंज्ञकम् । विद्यते नागकन्याभिः सेवितं सुमनोहरम् ॥५॥
तत्र गोपीश्वरो देवो जागर्ति मुनिसत्तमाः । त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भं येन संस्थापितं शुभम् ॥६॥
यस्मिन् जागर्ति देवेशो द्वादशादित्यदेवताः । उदिता निष्प्रभा यान्ति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥७॥
तत्र गत्वा नराणां वै कुलकोटिसमुद्भवात् । नास्ति पापान्महाभीतिः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥
वर्णसङ्करता वापि तत्र गत्वा द्विजोत्तमाः । न तिष्ठति महापापा मानवानां कलेवरे ॥९॥
तावद्देहे महापापा मानवानां दुरात्मनाम् । निवसन्ति महाघोरा यावद् गोपीशमण्डलम् ॥१०॥

को प्रसन्न किया। उन्होंने अनेक बड़े यज्ञ तथा 'सोमयाग' कर ब्राह्मणों को वस्त्र, बहुमूल्य उपहार एवं दक्षिणा द्वारा सन्तुष्ट किया। उन्होंने कष्टहेतु उनसे क्षमायाचना की। उपहारादि प्राप्त कर ब्राह्मणवर्ग अपने-अपने आश्रमों को चले गए। यज्ञ की समाप्ति के बाद नागसमुदाय भी महर्षियों द्वारा आशीर्वाद प्राप्त कर 'गोपीवन' को छोड़ 'नागपुर' चला गया। आवाहित गङ्गा (भद्रा) की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैंने आप लोगों को बतला दिया है॥ २६-३६॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भद्रामाहात्म्य' नामक
उनासीवाँ अध्याय समाप्त॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मर्षे! दान द्वारा सन्तोषित तपस्वियों की किस स्थानमें पूजा होती है? किसकी स्तुति या आराधना करने से पूर्वजन्मार्जित पापराशि तथा पितृ-मातामहादि पूर्वजों के किये हुए एवं सांसर्गिक पापों का क्षय होता है?॥ १-२॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! आप लोग सुनें। अब मैं यह बतला रहा हू कि कहाँ रहने से सब प्रकार के पापों का क्षय तथा शिवलोक प्राप्त होता है। हिमालय के पवित्र तट पर रमणीय 'नागगिरि' है। उसके पश्चिम की ओर 'गोपीवन' है। वह मनोहारी तथा नागकन्याओं से सेवित है। उस वन में 'गोपीश्वर' महादेव[3] जागरूक हैं, जिन्होंने त्रैलोक्य रूपी मण्डप का स्तम्भ स्थापित किया था। इनके जागरूक रहने पर द्वादशादित्य भी निःसन्देह कान्तिहीन प्रतीत होते हैं। वहाँ जाने पर पापों से उत्पन्न भय दूर हो जाते हैं। इसके साथ ही वर्णसाङ्कर्य-दोष का भी निराकरण हो जाता है। दुरात्मा मानवों के पाप गोपीश्वर मण्डल में

---

१. अकारान्तशब्दप्रयोग आर्षः। २. 'रम्यो नागगिरिः स्मृतः' इति समुचितः पाठः।

३. काँडा से डेढ़ मील दूर बेनीनाग जाने वाली सड़क के समीप 'भद्रवती' नदी के तट पर यह मन्दिर स्थित है। वहाँ दूसरी छोटी नदी भी आती है, जिसका उद्गम-स्थान 'हुणुम' के जंगल में है।

न यान्ति पातकान् स्मृत्वा तावत्ते निवसन्ति हि । पितृभ्यामपि दुष्कर्म कृतं यत्र विलीयते ॥
किं न यान्ति नरास्तत्र पापलिप्तास्तपोधनाः । स्वर्णस्तेयादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।१२।
अगम्यागमभूतानि पितृभ्यां वै कृतानि च । विलीयन्ते च पापानि हिमवद्भास्करोदये ॥ १३ ॥
त्रिःसप्तकृत्वा सकलां धरित्रीं प्रक्रम्य यद्याति महीतले वै ॥
तत्तत्र गोपीश्वरपूजनेन सम्पूज्य जातीकुसुमैः सुशोभनैः ॥ १४ ॥

ऋषय ऊचुः—

कथं गोपीश्वरो विप्र गीयते परमेश्वरः । कथं गोपीवनं नाम वनं च प्रवदन्ति हि ॥१५॥

व्यास उवाच—

नागा नागपुरे रम्ये निवस्य मुनिसत्तमाः । सुरभिं पूजयामासुः दश वर्षाणि पञ्च च ॥१६॥
ततः सा सुरभिः पुण्या सन्तुष्टा मुनिसत्तमाः । बभूव नागमुख्येभ्यः कामदा वरदा शिवा ।१७।
सा तुष्टा तांस्ततो वव्रे मत्तो वाञ्छत्वमीप्सितम् । ततस्ते नागमुख्या वै सुरभीं परितोषिताम् ॥
ऊचुः सर्वे महाभागाः कामदां लोकपावनीम् ॥ १९ ॥

नागा ऊचुः—

वयं त्वत्तो महाभागे वरयामो वरं वरम् । येन तृप्ता वयं सर्वे भविष्यामोऽनुकम्पया ॥२०॥
देह्यस्मभ्यं महाभागे कुलानि बहु वै गवाम् । वयं ताभिः सुपुण्याभिस्तर्पिताः सम्भवामहे ।२१।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा महाभागाः कामदा देवपूजिता । ययौ महेन्द्रभवनं देवगन्धर्वपूजितम् ॥२२॥
गवां कुलानि संप्राप्य नागाः सर्वे तपोधनाः । व्रजं विरचयामासुर्विस्तीर्णे गोपिकानने ॥२३॥

पहुँचने के पूर्व तक ही विद्यमान रहते हैं। वहाँ पहुँचने पर उसके पूर्वजों के पापों का भी क्षय हो जाता है। तपोधनो! पापलिप्त मनुष्य वहाँ क्यों नहीं जायें? सूर्योदय होने पर हिम के पिघलने की तरह वहाँ जाने पर सोने की चोरी करने, अगम्या स्त्री के साथ गमन करने तथा पूर्व पितरों द्वारा किए हुए पापों का भी विलय हो जाता है। उत्तम जाती-पुष्पों से गोपीश्वर का पूजन करने पर सारी पृथ्वी की इक्कीस बार परिक्रमा करने का फल प्राप्त होता है ॥ ३-१४ ॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—ब्रह्मन्! 'गोपीश्वर' नाम रखने का क्या कारण है? तथा 'गोपीवन' नाम क्यों रखा गया? ॥ १५ ॥

व्यासजी ने समाधान किया—नागसमुदाय ने 'नागपुर' में रहकर पन्द्रह वर्ष-पर्यन्त कामधेनु की सेवा की। मुनिवरों! तब सुरभी सन्तुष्ट हो गई। नागों के लिये वरद होकर उसने इच्छित वर माँगने के लिए कहा। महोदयों! सुरभी को सन्तुष्ट देखकर तब प्रमुख नागों ने संसार में पवित्र समझी जाने वाली सुरभी से इस प्रकार कहा ॥ १६-१९ ॥

नाग बोले—महाभागे! हम आप से अपनी तृप्ति हेतु अनेक गो-कुलों को मांगते हैं। हम लोग गायों को पाकर सन्तुष्ट हो जायेंगे ॥ २०-२१ ॥

व्यासजी ने कहा—देवों से संमानित वह कामधेनु 'तथाऽस्तु' कह कर देवों तथा गन्धर्वों से पूजित स्वर्गलोक में पहुँच गई। तपोधनों! गायों के कुलों को प्राप्त कर उनके चरने के लिए नागों ने 'गोपीवन' की रचना की। उस गोचर-भूमि में गायों को चराने एवं रक्षा करने

विरच्य ते व्रजं सर्वे गवां संचरणाय च । ययुर्नागपुरं रम्यं नागकन्यानिषेवितम् ॥२४॥
संचारणाय ते नागा गवां सत्यव्रते स्थिताः । नागकन्यासमूहे वै रक्षणायोपरेमिरे ॥२५॥
उपविष्टास्तदा कन्या नागमुख्यैस्तपोधनाः । ता गाः संचारयामासुर्विस्तीर्णे गोपिकानने ।२६।
शिवमाराधयन्त्यस्ताश्चारयन्त्यश्च गास्तदा । ददृशुः काननं घोरं नानापादपवेष्टितम् ॥२७॥
नानावृक्षलताकीर्णं शिवाभिश्च निनादितम् । तत्र ताः शंकरं दृष्ट्वा चिक्रीडुर्द्विजसत्तमाः ।२८।
आराधयन्त्यो गोप्यस्तं शंकरं लोकशंकरम् । ददृशुः पर्वताग्रे वै गिरिराजगुहां शुभाम् ॥२९॥
शाण्डिल्येन महाभागा भूतले सुप्रकाशिताम् । तथा सरस्वतीं गङ्गां समाहूतां महर्षिणा ॥३०॥
गुहाद्वारं समायान्तीं पुण्यतोयवहां शुभाम् । तां दृष्ट्वा तादृशीं पुण्यां शाण्डिल्यस्य महागुहाम् ॥
हरं सम्पूजयामासुस्तास्तत्र मुनिसत्तमाः । तासां सम्पूजयन्तीनां मूलनारायणाङ्गजा ॥३२॥
ददर्श कन्दरायां वै रन्ध्रं पाषाणसम्भवम् । दृष्ट्वा रन्ध्रं सुचपला हित्वा पूजां हरस्य च ।३३।
उवाच ताः सखीः सर्वाः प्रविशन्त्विति शोभनाः । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सख्यः सर्वाः सुशोभनाः ॥
शाण्डिल्यस्य महासत्यं पुरस्कृत्य तपोधनाः । प्रविशुः कन्दरां दिव्यां भाषयन्त्यः शुभं वचः ॥
यद्यस्माकं परा भक्तिः शङ्करे देवसेविते । तर्ह्येनां चातिशोभाढ्यां गुहां निःसृत्य यामहे ॥३६॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलास्ताः सर्वास्तां गुहां शुभाम् । निससर्जुर्महापुण्यां पुरस्कृत्य महेश्वरम् ॥
ऊचुस्ता मुनिशार्दूला रन्ध्रे तस्मिन् विनिःसृताः । धर्माधर्मपरीक्षैषा अस्माकं निष्फला गता ॥

के लिए नागकन्याओं को नियत किया । तत्पश्चात् नाग लोग नागपुर चले गए । प्रमुख नागों के कथनानुसार नागकन्यायें गायों को चराती हुई विस्तृत गोपीवन में 'गोपीश्वर' की आराधना में तत्पर रहीं । अनेक प्रकार के वृक्षों से संकुलित उस गोपीवन में एक दिन उन्होंने सियारियों को शब्द करते हुए देखा । भगवान् शङ्कर की आराधना करते हुए उन नागकन्याओं ने शिवजी के समक्ष नाचना आरम्भ कर दिया । इतने ही में उन्होंने पहाड़ के अग्रभाग में 'शाण्डिल्य' मुनि द्वारा प्रकाशित एक गुहा[1] को देखा । वहीं पर गुहा के द्वार पर महर्षि द्वारा आहूत पवित्र जल को प्रवाहित करती हुई 'सरस्वती-गङ्गा' को भी देखा । मुनिश्रेष्ठों ! उस महागुहा को देख उन्होंने वहीं शिव की पूजा की । उनके पूजा करते हुए मूलनारायण की पुत्री ने गुहा के भीतर पाषाण के ऊपर एक छिद्र[2] देखा । सहज-सुलभ चञ्चलता के कारण उन नागकन्याओं ने पूजन को छोड़ उस छिद्र में प्रवेश किया । मूलनारायण की कन्या के कथनानुसार शाण्डिल्य ऋषि के माहात्म्य को अभिलक्षित कर 'हमारी शिवभक्ति यदि सच्ची है तो हम गुहा को पार कर जायँ'—यह कहती हुई वे भगवान् शङ्कर को आगे कर उस गुहा में प्रविष्ट हो पार कर गईं । शिवजी को वहाँ न पाकर वे कहने लगीं कि हमारी यह परीक्षा

---

१. स्थानीय प्रचलित नाम 'सान्योडधार' है । वहाँ एक नागमन्दिर भी है । 'शाण्डिल्य' ऋषि कश्यपवंशी महर्षि 'देवल' के पुत्र थे । यह रघुवंशी दिलीप के पुरोहित थे । 'शतानीक' के पुत्रेष्टि यज्ञ में वह प्रधान ऋत्विज् और 'त्रिशङ्कु' के यज्ञ में प्रधान होता थे । कुछ पुराणों के अनुसार यह ब्रह्मा के सारथि थे । स्मृतिग्रन्थकार 'शङ्ख'-और 'लिखित' इन्हीं के पुत्र थे । इनका 'भक्तिसूत्र' प्रसिद्ध है । इसमें तीन अध्याय हैं । यह भक्तिमार्ग के अनुयायी हैं ।

२. 'सान्योडधार' गुहा का छिद्र (तंग रास्ता) ।

नास्माभिः शङ्करः कान्तः प्राप्यते नान्यथा क्वचित् । इति सम्भाषयन्तीनां गोपीनां गा विदूरगाः॥
बभूवुर्मुनिशार्दूलाः पश्यन्तीनामितस्ततः । ततो गाः संप्रपश्यन्त्यो ययुः सर्वा वनान्तरम् ।४०।
इतस्ततः प्रधावन्त्यो नागकन्यास्तपोधनाः । ततो वनान्ते गाः सर्वाश्चरन्त्यो ददृशुर्द्विजाः ।४१।
अविच्छिन्नं तृणं भूरि तृणलोभेन दूरगाः । गवां मध्ये महादेवं सिद्धकिन्नरसेवितम् ॥४२॥
द्वादशादित्यसंकाशं वनान्ते ददृशुर्द्विजाः । यस्य भासा जगत् सर्वं भासितं सचराचरम् ॥४३॥
स ज्योतिर्मध्यगो भानुर्यस्य भासा पराजितः । तं ज्योतिर्मध्यगं लिङ्गं गवां मध्ये विराजितम् ।
ददृशुस्तास्तदा गोप्यः शङ्करस्य महात्मनः । तं दृष्ट्वा नागमुख्यानां गोप्यः सर्वाः सुशोभनाः ।
नमश्चक्रुर्महाभागाः प्रफुल्लमुखपङ्कजाः । नमस्कृत्य महादेवं ताः सर्वाश्चातिशोभनाः ॥४६॥
देवेशं पूजयामासुर्नियमव्रतकर्शिताः । ततस्तं प्रार्थयामासुर्गोप्यः सर्वास्तपोधनाः ॥४७॥
प्रणतास्तन्मनस्काश्च तस्य ध्यानपरायणाः ॥ ४८ ॥

गोप्य ऊचुः—

नमो हरायामितभूषणाय चितासमिद्भस्मविलेपनाय ।
वृषध्वजाय सुवृषप्रभाय शिवाय शान्ताय नमो नमस्ते ॥ ४९ ॥
नमो विरूपाय कलाधराय षडर्धनेत्राय परावराय ।
ऋषिस्तुतायापरिसेविताय नमो नमस्ते वृषवाहनाय ॥ ५० ॥

व्यास उवाच—

इति सम्यक् स्तुतो देवो गोपीभिर्मुनिसत्तमाः । आविश्चक्रे महाज्वालां दुर्दर्श्यां देवदानवैः ।५१।
ततो ज्वालामुखाद्देवो निःसृत्य च तपोधनाः । उवाच देवदेवेशो गोपीमध्यगतः स्वयम् ॥५२॥

निष्फल हो गई है । इस बीच उनकी गायें उनकी आँखों से ओझल हो गईं । वे इधर-उधर देखती रहीं । गायों को ढूंढते-ढूंढते वे नागकन्याएँ दूसरे वन में पहुँचीं । वहाँ उन्होंने उस गोचर भूमि में हरी-भरी घास चरती हुई गायों को देखा । वे गायें घास के लोभवश दूर चली गई थीं । विप्रवरों ! उन गायों के बीच में उन्होंने वन के छोर पर सिद्धादियों से सेवित बारहों आदित्य के समान तेजोयुक्त भगवान् शंकर को देखा । उन्होंने देखा कि उस दीप्ति से चराचर जगत् दीप्तिमान् हो रहा है । उन्हीं की गायों के मध्य उस लिङ्ग के तेजोमण्डल से आकाश के मध्यवर्ती सूर्य की ज्योति फीकी पड़ गई है । उस ज्योतिर्मय लिङ्ग को उन गोपियों ने देखा । उसे देख प्रसन्नवदना गोपियों ने प्रणाम किया तथा नियमपूर्वक उनका पूजन किया । वे तल्लीन होकर भगवान् की प्रार्थना करने लगीं ॥ २२-४८ ॥

गोपियाँ बोलीं—असङ्ख्य भूषणभूषित, चिताभस्मलिप्ताङ्ग, वृषध्वज, मोर की कान्ति-स्वरूप शान्त शिव को हम प्रणाम करते हैं । विरूप, कलाधर, त्रिनेत्र, चन्द्रशेखर तथा महर्षियों से संस्तुत शङ्कर को हम बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ४९-५० ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिश्रेष्ठों ! गोपियों (नागकन्याओं) की प्रार्थना को सुन शिवजी ने, देवों और दानवों से न सहन करने योग्य ज्वाला वहाँ प्रकट कर दी । तपोधनों ! उस ज्वाला के मुख से भगवान् प्रकट हो गोपियों के मध्य बोलने लगे ॥ ५१-५२ ॥

शिव उवाच—

प्रार्थयन्तो महाभागाः केन यूयमिहागताः । मामेव देवदेवेशं प्रियं वाऽभिलषामहे ॥५३॥

गोप्य ऊचुः—

त्वामेव देवदेवेशं प्रियं वाऽभिलषामहे । त्वामेव जगतां नाथ प्रियं मत्वा न संशयः ॥५४॥
अपि त्रैलोक्यनाथं वा महेन्द्रं न स्पृहामहे । त्रैलोक्यदेवदेवेश त्वत्पादकमलं विना ॥५५॥

व्यास उवाच—

इति तासां गिरं श्रुत्वा देवदेवो महेश्वरः । तथेत्युक्त्वा महाभागास्तत्रैवान्तरधीयत ॥५६॥
गोभिः सह ततः सर्वा गोप्यो देवेश्वरं हरम् । विविशुर्मुनिशार्दूलास्त्यक्त्वा देहं पुरातनम् ।५७।
क्रीडन्त्यस्ता महाभागा गोप्यो नीताः सुदुर्लभाम् । देवगन्धर्वमनुजैर्दुष्प्राप्यां गतिमुत्तमाम् ।५८।
पातका विप्रलीयन्ते गोपीशस्मरणादपि । दर्शनात् किमु भो विप्राः पूजनात् कथयाम्यहम् ।५९।
इत्येतत्कथितं विप्राः सर्वपापप्रणाशनम् । गोपीश्वरस्य चाख्यानं गोपीवनसमन्वितम् ॥ ६० ॥
गोपीश्वरेति देवेशो यथा संगीयते भुवि । यथा सम्पूज्यते लोके यथा लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥६१॥
गोपीनां नागकन्यानां शिवं प्रति समर्पणम् । तथा गोपीवनस्यापि माहात्म्यमुपवर्णितम् ॥६२॥
गोपीश्वरस्य माहात्म्यं यः पठेत् सुसमाहितः । शिवलोकमवाप्नोति रुद्रकन्यानिषेवितः ॥६३॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गोपीश्वरमाहात्म्ये अशीतितमोऽध्यायः ॥

शिवजी ने कहा—महाभागो ! यहाँ आकर तुम किस हेतु मेरी प्रार्थना कर रही हो ? तुम मुझे ही देवदेवेश जानो । जो तुम कहो, उसे मैं पूरा कर दूँ ॥ ५३ ॥

गोपियों ने कहा—हम आपको ही अपना अभीष्ट देव मानती हैं । आप ही संसार के स्वामी हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम आपके सामने तीनों लोकों के स्वामी महेन्द्र को भी कुछ नहीं समझतीं ॥ ५४–५५ ॥

व्यासजी बोले—गोपियों की वाणी को सुन 'तथाऽस्तु' कहते हुए शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गए । गोपियाँ भी गायों के साथ शिवजी में प्रविष्ट हो गईं । इस प्रकार क्रीडा करती हुई वे उत्तम गति को प्राप्त कर सकीं । गोपीश्वर के स्मरण तथा दर्शन से पातक विलीन हो जाते हैं । विप्रवरो ! उनके दर्शन और पूजन करने का तो कहना ही क्या ? ये सब बातें मैंने कह दी हैं । विप्रो ! इस प्रकार गोपीश्वर का आख्यान, गोपीवन का माहात्म्य तथा 'गोपीश्वर' नाम पड़ने का कारण एवं लिङ्ग-प्रतिष्ठा आदि सभी बातें कह दी गई हैं । जो इस आख्यान को सावधानी के साथ पढ़ता है, वह रुद्र-कन्याओं से सेवित रुद्रलोक प्राप्त करता है ॥ ५६–६३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गोपीश्वर'-माहात्म्य-सम्बन्धी
अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥

८१

ऋषय ऊचुः—

गोपीवनप्रमाणं वै श्रोतुमिच्छामहे वयम् । क्षेत्राणां चापि माहात्म्यं लिङ्गानां वर्णनं तथा ॥१॥

व्यास उवाच—

गोपीवनप्रमाणं च शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । लिङ्गानां चापि माहात्म्यं मयैतत् समुदाहृतम् ॥२॥
पुण्यो नागपुरो नाम पर्वतो मुनिसत्तमाः । तत्र फेनिलसंज्ञो वै नागः सम्पूज्यते द्विजाः ॥३॥
धनधान्येन सम्पूर्णो जायते पूजया तया । तस्मात् क्षेत्रात् समारभ्य यावद् भद्रपुरं स्मृतम् ॥४॥
तावद् गोपीवनं पुण्यं ख्यायते मुनिसत्तमाः । गोपीशस्य महाभागाः परिवारे समास्थिताः॥५॥
तावद्देवाः सगन्धर्वा निवसन्ति न संशयः । भद्राया दक्षिणे पार्श्वे पुण्यो भद्रपुरः स्मृतः ॥६॥
कालीयतनयो यत्र भद्राख्यो नागनायकः । व्यरचद् भद्रपुण्याख्यं निवासाय तपोधनाः ॥७॥
तत्र भद्राख्यनागं वै सम्पूज्य मुनिसत्तमाः[1] । मानवो भूतले सम्यग् नागभीतिं न पश्यति ॥८॥
तत्र भद्रवती नामा कन्दरायां महेश्वरी । पूज्यते नागकन्याभिर्नागैश्चान्यैस्तथैव च ॥९॥
सुभद्रासरितस्तोये निमज्य मुनिसत्तमाः । देवीं भद्रवतीं पूज्य नरो याति परां गतिम् ॥१०॥

ऋषियों ने कहा—अब हम लोग 'गोपीवन की सीमा तथा वहाँ के क्षेत्र और लिङ्गों का वर्णन सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मैं 'गोपीवन' का प्रमाण तथा वहाँ के लिङ्गों का वर्णन कर रहा हूँ । आप लोग सुनें । मुनिवरों ! पवित्र 'नागपुर' पर्वत में 'फेनिल' नाग का पूजन करने से धन-धान्य तथा समृद्धि बढ़ती है । वहाँ से 'भद्रपुर' तक का क्षेत्र 'गोपीवन' कहा जाता है । महाभागों ! 'गोपीश्वर'-परिवार के देव, गन्धर्वादि वहाँ रहते हैं । 'भद्रा' के दाहिनी ओर 'भद्रपुर' है । वहाँ 'कालीय'[2] का पुत्र 'भद्रनाग' रहता है । उसी ने अपने रहने के लिए 'भद्र-पुर'[3] की रचना की थी । वहाँ 'भद्रनाग' की पूजा करने से इस लोक में सर्प-भय नहीं रह जाता । वहाँ पर गुहा में नागकन्याओं तथा नागों से 'भद्रवती[4] देवी' की पूजा की जाती है ।

---

१. 'सुसमाहिताः' इति पाठान्तरमादर्शपुस्तके ।

२. 'कोटिगडी' के समीप । ३. 'भतौरगांव' नाम से जाना जाता है ।

४. 'भद्रकाली' नाम से प्रसिद्ध हैं । कांडा से २ मील की दूरी पर स्थित हैं । यह पल्ला 'कमस्यार' में 'कुलूर' नदी के किनारे पर है । मन्दिर 'सान्योडधार' से 'बेनीनाग' जाने वाली सड़क पर आधा मील उत्तर की ओर है । मन्दिर के नीचे करीब ५०० गज की एक गुफा है । गुफा के भीतर अनेक चित्र अङ्कित हैं । कहीं-कहीं मनुष्य और सर्पों की-सी आकृतियाँ हैं । गुहा में अन्धेरा है । प्रकाश के साथ प्रवेश किया जाता है । गुफा में ऊपर से नीचे जाने पर बीच में एक 'शिवलिङ्ग' भी है । मन्दिर गुफा के ठीक ऊपर बना हुआ है । ऊपर मन्दिर और नीचे गुफा में बड़ा तालाब है । पहले भव्य मन्दिर नहीं था । केवल 'लिङ्ग' और 'शक्ति' थे । मन्दिर के चारों ओर छोटे-छोटे पर्वत-शृङ्ग हैं । समीप में न कोई गाँव है न वहाँ से कुछ दिखाई देता है । दुर्गासप्तशती में देखिये—'हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य्य जगत् । सा घण्टा पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥' (अध्याय ११) ।

ततस्तु पूर्वभागे वै भद्राया दक्षिणे तथा । काली सम्पूज्यते विप्राः कालीयेन महात्मना ॥११॥
तां सुपूज्य जनो याति महेन्द्रभवनं शुभम् । भद्रामूले महादेवो भद्रेशो नाम वै द्विजाः ॥१२॥
पूज्यते देवगन्धर्वैस्तथैव च महोरगैः । तं सुपूज्य नरो याति शिवलोकं न संशयः ॥१३॥
चटकः श्वेतकश्चैव तथा कालीयसंज्ञकः । सन्त्येतानि सुपुण्यानि भद्रामूले तपोधनाः ॥१४॥
तीर्थानि देवगन्धर्वैः सेवितानि समाहिताः । शृण्वन्तु मुनिशार्दूला भद्रातीर्थानि साम्प्रतम् ।१५।
यस्य वामे महादेवो गोपीशः पूज्यते द्विजाः । निमज्य मुनिशार्दूला भद्रातोये प्रयत्नतः ॥१६॥
पूज्य गोपीश्वरं देवं प्रयाति परमं पदम् । क्षेत्रपालं प्रपूज्याशु कालीं वापि हरप्रियाम् ॥१७॥
शिवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः । भद्रायाः शेषवत्याश्च संगमे मुनिसत्तमाः ॥१८॥
चिताभस्मविलिप्ताङ्गो हरः सम्पूज्यते द्विजाः । तयोः सङ्गे महाभागा रुद्रतीर्थमिति स्मृतम् ॥
तत्र स्नात्वा नरो याति महेन्द्रभवनं शुभम् । गोपीश्वरस्य चरणात् संभवा सा सरस्वती ॥२०॥
भद्रायाः संगमे पुण्ये संगता मुनिसत्तमाः । तस्यां स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं न संशयः ॥२१॥
संगमे ब्रह्मतीर्थाख्यं तीर्थं त्रिदशसेवितम् । विद्यते मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशनम् ॥२२॥
तत्र स्नात्वा च विधिवत् पिण्डं दत्त्वा तथैव च । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो याति परां गतिम् ॥
तदूर्ध्वं नागतीर्थाख्यं तीर्थमस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च मनुजो नागभीतिं न पश्यति ।२४।
तदूर्ध्वं कनखलाख्यो वै विद्यते तीर्थनायकः । कणमात्रं हिरण्यं हि दत्त्वा स्नात्वा च मानवः ॥
शिवलोकमवाप्नोति प्रसादाच्छङ्करस्य च । तस्यां तीर्थान्यनेकानि सन्निधौ मुनिसत्तमाः ॥२६॥
चत्वारि सुविशिष्टानि सन्ति वै मुनिसत्तमाः । ततो वेगवती नाम भद्रासंगमसंगता ॥२७॥

'सुभद्रा' में स्नानोपरान्त 'भद्रकाली' का पूजन करने से परम गति प्राप्त होती है । वहाँ से पूर्व 'भद्रा' के दक्षिण की ओर 'कालीय नाग' द्वारा 'काली' देवी का पूजन किया जाता है । 'भद्रा' के उद्गम स्थल पर 'भद्रेश' की पूजा करने से सिद्धि प्राप्त होती है । देव, गन्धर्व, सर्प आदि भी भद्रेश का पूजन करते हैं । 'चटक', श्वेतक, 'कालीय' नाग आदि 'भद्रा' के मूल में वास करते हैं । अब देव, गन्धर्वादि से सेवित 'भद्रा'[1] के तीर्थों को सुनो । 'भद्रा' में स्नानकर उसके बायीं ओर 'गोपीश्वर' का पूजन किया जाता है । उनका पूजन करने से मोक्ष प्राप्त होता है। 'क्षेत्रपाल' और 'काली' का पूजन करने से शिवलोक मिलता है । 'भद्रा' और 'शेषवती' के सङ्गम में 'चिताभस्मधारी शिव' पूजे जाते हैं । उस सङ्गम में 'रुद्रतीर्थ' है । वहाँ स्नान कर मानव 'महेन्द्रभवन' प्राप्त करता है । 'गोपीश्वर' के पादतल से 'सरस्वती' नदी पवित्र 'भद्रा' में मिलती है । उसमें स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है । वहीं सङ्गम में सब पापों का नाशक 'ब्रह्मतीर्थ' है । वहाँ विधिपूर्वक स्नान और पिण्डदान करने से मानव इक्कीस कुलों सहित सद्गति प्राप्त करता है । उसके ऊपर 'नागतीर्थ' है । उसमें स्नान करने से सर्प-भीति नहीं रह जाती । उसके ऊपर 'कनखल' नामक महातीर्थ है । वहाँ स्नान कर कणमात्र सुवर्ण-दान देने पर भगवान् शङ्कर की कृपा से शिवलोक मिलता है । उसके निकट अनेक तीर्थ हैं । मुनिवरों ! उनमें से चार तीर्थ विशेषतः प्रसिद्ध हैं । तदनन्तर 'वेगवती' नदी 'भद्रा' के

---

१. स्थानीय नाम 'भदरगाड' ।

तत्र स्नात्वा नरो याति महेन्द्रभवनं प्रति । ततो ढुण्ढुसरं नाम सरमस्ति तपोधनाः ॥२८॥
तत्र स्नात्वा च मनुजः पूज्य ढुण्ढुवतीं शिवाम् । चिताभस्मविलिप्ताङ्गं हरं सम्पूज्य वै तथा ॥
शिवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः । ततः सरस्वतीसङ्गो भद्राया वर्ण्यते द्विजाः ॥३०॥
सरस्वतीं महादेवीं सम्पूज्य शिवमाप्नुयात् । ततो भद्रा महाभागाः सरयूसंगमं गता ॥३१॥
तत्र स्नात्वा च भद्रेशं पूज्य सन्तर्प्य वै पितॄन् । शिवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः ।३२।
तदूर्ध्वं सरयूमध्ये पुण्यः शिवसरः स्मृतः । तत्र स्नात्वा महाभागाः कुलत्रयसमन्वितः ॥
महेन्द्रभवनं याति मानवो नात्र संशयः ॥ ३३ ॥
इत्येतत्कथितं विप्रा भद्रामाहात्म्यमुत्तमम् । यः शृणोति महापुण्यं स याति परमां गतिम् ।३४।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भद्रामाहात्म्यं नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥

साथ मिलती है । उसमें स्नान करने का फल महेन्द्रभवन की प्राप्ति है । तब 'ढुण्ढुसर'[1] में स्नान, 'ढुण्ढुवती' तथा 'चिताभस्मधारी शिव' का पूजन करने से मानव 'शिवलोक' में पहुँचता है । तब 'सरस्वती' और 'भद्रा' के सङ्गम में 'सरस्वती' देवी का पूजन कर शिवत्व की उपलब्धि होती है । आगे चलकर 'भद्रा' नदी 'सरयू' में मिल जाती है । वहाँ स्नान, भद्रेश का पूजन एवं पितृतर्पण कर शिवलोक प्राप्त होता है । उसके ऊपर सरयू में 'शिवसर' है । उसमें स्नान कर मानव तीन कुलों सहित स्वयं शिवलोक में जाता है । विप्रवरों ! इस प्रकार मैंने आप लोगों को 'भद्रा'-माहात्म्य बतला दिया है ॥ २–३४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भद्रा-माहात्म्य' नामक
इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'ढपड़ा सेरा' ।

ऋषय ऊचुः—

माहात्म्यं नागमुख्यानां श्रोतुमिच्छाम[1] साम्प्रतम् । तत्तथा शिवलिङ्गानां तेषामाख्यानमेव च ॥

व्यास उवाच—

हरं गोपीश्वरं पूज्य शिखरे मुनिसत्तमाः । खराख्यं हि महानागं पूजयेत् सुसमाहितः ॥२॥
ततो गोपालकं नागं पूजयेत् सुसमाहितः । तथैव नागकन्यानां गोपीनां सङ्घमेव च ॥३॥
सम्पूज्य मानवो याति गोपीशपदवीं शुभाम् । ततो गोपीवने देवीं कालीं सम्पूज्य वै द्विजाः ॥
मानवः सर्वदुःखेभ्यो न विन्दति भयं क्वचित् । याः सर्वाः सरितः सन्ति पुण्ये नागगिरौ द्विजाः ॥
ताः सर्वा नागमुख्यैर्वै समाहूता दिवःस्थलात् । तासु स्नात्वा नरो याति महेन्द्रभवनं शुभम् ।६।
शाण्डिल्येन समाहूतां पुण्यां गुप्तसरस्वतीम् । निमज्य मानवो याति महेन्द्रभवनं शुभम् ॥७॥
ततस्तु पश्चिमे भागे कोका कोटीश्वरी शिवा । कालिकेति च विख्याता पूज्यन्ते देवनायकैः ।८।
ततस्तु दक्षिणे विप्राः कालीयाद्यैर्निषेविता । भद्रा नाम महादेवी पूज्यते मुनिसत्तमाः ॥९॥
सुभद्रा-सरितोर्मध्ये भद्रां यः पूजयेद् द्विजाः । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य स याति परमां गतिम् ।१०।
ततस्तु कनकाख्यस्य शिखरे मुनिसत्तमाः । पूज्य तां शाङ्करीं देवीं नागकन्यानिषेविताम् ॥११॥
तां सुपूज्य महाभागा नरो नाप्नोति दुर्गतिम् । ततस्तु शिखरे नागो फेनिलाख्यः प्रपूज्यते ।१२।
कालीयस्य सुतो ज्येष्ठः सर्वकामवरप्रदः । तं सुपूज्याशु कुसुमैस्तथा तोयैः समाहितः ॥१३॥

ऋषियों ने कहा—अब हम लोग प्रमुख नागों तथा शिवलिङ्गों का आख्यान सुनने के इच्छुक हैं ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! शिखर पर 'गोपीश्वर' का पूजन कर 'खर'[2] नामक महा-नाग का पूजन करना चाहिये । तब ध्यानपूर्वक 'गोपालक' नाग का पूजन करे । वहीं गोपियों तथा नागकन्याओं के समूह का पूजन भी करे । इनका पूजन करने से 'गोपीश' पद प्राप्त होता है । द्विजवरों ! तब 'गोपीवन' में 'काली' देवी का पूजन कर दुःख और भय को दूर भगा दिया जाय । नागपर्वत में जो पवित्र नदियाँ हैं, वे सब नागप्रमुखों ने स्वर्ग से बुलाई हैं। उनमें स्नान कर महेन्द्रभवन प्राप्त होता है । महर्षि शाण्डिल्य से आहूत 'गुप्तसरस्वती' में स्नान करने से 'इन्द्रपुर' मिलता है । तब पश्चिम की ओर 'कोका', 'कोटीश्वरी' तथा 'कालिका' का पूजन किया जाता है । दक्षिण भाग में कालीय आदि नागों से सेवित 'भद्रा' देवी का पूजन किया जाता है । 'सुभद्रा-रामगङ्गा' के मध्य जो 'भद्रा' की पूजा करता है, वह इक्कीस कुलों का उद्धार कर परमगति प्राप्त करता है । तदनन्तर 'कनक' पर्वत के शिखर पर 'नागकन्याओं से सेवित 'शाङ्करी' देवी का पूजन कर दुर्गति से अपनी रक्षा करें । तब शिखरस्थ 'फेनिल' नाग[3]

---

१. मात्रालाघवार्थं विसर्गलोपः कृतः ।

२. 'खन्तोली' ग्रामस्य ।

३. स्थानीय नाम 'फिणि' नाग—कांडा के समीप ।

प्रणश्यति महाभागा मनुष्याणाममङ्गलम् । ततस्त्रैलोक्यसंज्ञो वै नागोऽस्ति मुनिसत्तमाः ।१४।
आरोग्यं तं सुपूज्याशु प्राप्यते नहि संशयः । ततो वनान्तशिखरे मूलनारायणः शुभः ।।१५।।
पूज्यते नागकन्याभिर्नागैश्चान्यैस्तथैव च । येन नारायणं देवं समाराध्य तपोधनाः ।।१६।।
नारायणाख्या सम्प्राप्ता दुष्प्राप्या दैवतैरपि । तमाराध्य नराः सर्वे सिद्धिं यान्ति न संशयः ।।

ऋषय ऊचुः—

कथं नारायणाख्यां स प्राप्तवान् मुनिसत्तमाः । कथं स शिखरारूढो ज्ञानमापद्दुरत्ययम् ।१८।

व्यास उवाच—

कालीयदेवतायां वै पुङ्गव्यां मुनिसत्तमाः । वेदवेदान्ततत्त्वज्ञो ब्राह्मणो विष्णुमव्ययम् ।।१९।।
समाराध्य स पुङ्गव्यां मूलर्क्षे संबभूव ह । मूलर्क्षजातं तनयं नदीमध्ये विनिक्षिपत् ।।२०।।
क्षिप्तमात्रस्तु शिखरे जगाम मुनिसत्तमाः । न च जानयामास कालीयं शिखरे स्थितम् ।।२१।।
न च सा पुङ्गवी माता जीवन्तं रुदती सुतम् । स च तं शिखरं प्राप्य जातमात्रस्तपोधनाः ।२२।
नारायणं जगन्नाथं पुराणं पुरुषोत्तमम् । समारराध धर्मात्मा स्मरन् प्राक्तनसम्भवान् ।।२३।।
शीर्णपर्णानिलाहारो वायुभक्ष्यो जितेन्द्रियः । नारायणं हरिं देवं पूजयामास सुव्रताः ।।२४।।
ततः काले व्यतीते तु पूजयन् विष्णुमव्ययम् । आविर्भूतं जगन्नाथं ददर्श मुनिसत्तमाः ।।२५।।

का पूजन किया जाता है। वह 'कालीय' नाग का ज्येष्ठ पुत्र है। तथा कामद है। जल तथा पुष्पों से उसका पूजन करने से किसी तरह का अमङ्गल नहीं होता। उससे आगे 'त्रैलोक्य' नाग का पूजन होता है। उसकी पूजा आरोग्यवर्धक है। तब वन के छोर पर शिखरस्थ एवं नागकन्याओं से सेवित 'मूलनारायण' नाग है। तपोधनों ! उसने नारायण की आराधना कर देवदुर्लभ 'नारायण' नाम प्राप्त किया। उसकी आराधना करने पर दुर्लभ सिद्धियाँ सुलभ हो जाती है।। २-१७ ।।

ऋषियों ने (फिर) जिज्ञासा की—मुनिश्रेष्ठ ! उसने 'नारायण' नाम कैसे पा लिया ? तथा शिखर पर आरूढ़ हो वह दिव्य ज्ञान कैसे पा सका ?।। १८ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिश्रेष्ठों ! 'पूर्व जन्म में वेद-वेदान्त-तत्त्वज्ञ ब्राह्मण विष्णु की आराधना करने के फलस्वरूप कालीय-देवता द्वारा 'पुङ्गवी' में मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ। अतः उसे नदी में फेंक दिया गया। नदी में फेंकते ही वह शिखर पर पहुँच गया। उसे यह विदित नहीं हुआ कि 'कालीय' भी वहीं है। इसके साथ ही जीवित पुत्र के न दीखने के कारण रोती हुई उसकी माता को भी यह अविदित रहा। मुनिवरों ! उत्पन्न होते ही शिखर पर चढ़ पूर्वजन्म की उपासना का स्मरण होने से वह पुराणपुरुषोत्तम की पूजा करने लगा। इस प्रकार मूलनारायण गिरे हुए सूखे पत्तों और वायु-भक्षण करते हुए संयम के साथ भगवान् नारायण[1]

---

१. मनुस्मृति के अनुसार 'नर' परमात्मा का नाम है। सबसे पहले जल उत्पन्न हुआ, अतः 'नारा' शब्द जल का पर्यायवाची माना गया। जल जिस परमात्मा का 'अयन' (=अधिष्ठान) है, उसे 'नारायण' संज्ञा दी गई—'आपो नारा इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तस्मान्नारायणः स्मृतः' (मार्कण्डेय ४-४२)। महाभारत के अनुसार भी परमात्मा का नाम 'नर' है। उससे उत्पन्न होने के कारण आकाशादि को 'नार' कहते हैं। यह सर्वत्र व्याप्त है तथा सबकी उत्पत्ति का कारण भी है। अतः परमात्मा को नारायण कहा गया।

तं दृष्ट्वा कोऽयमित्येव पुराणपुरुषो यथा । चिन्तयामास धर्मात्मा स नागो मुनिसत्तमाः ।२६।
इति सञ्चिन्त्यमानं तं भगवान् प्रभुरव्ययः । मेघगम्भीरया वाचा उवाच करुणानिधिः ॥२७॥

नारायण उवाच—

नारायणोऽस्मि वै नाग मास्तु ते संशयो वृथा । स्मर त्वं प्राक्तनं पुण्यं येन त्वं तप्यसेऽधुना ।२८।
जन्मनि प्राक्तने नाग ब्राह्मणो वेदपारगः । जातोऽसि गौतमकुले ममार्चनपरायणः ॥२९॥
आराधितेन ते नाग मया सन्दर्शितं वपुः । पूजितं देवगन्धर्वैर्नारदाद्यैस्तपस्विभिः ॥३०॥
त्वया संयाचितस्तत्र मत्तः स्वामीप्सितं वरम् । अजरामरदेहत्वं द्वितीये जन्मनि ध्रुवम् ॥३१॥
तथेत्युक्त्वा तदा नाग सत्यलोकं गतोऽस्म्यहम् । गते मयि त्वया सर्वे भूसुरास्तर्पितास्तथा ।३२।
त्वं तत्र दैवयोगेन पञ्चत्वं प्राप्य सुव्रत । जातोऽसि नागमुख्यस्य कुले महति साम्प्रतम् ॥३३॥
पितृभ्यामपि सन्त्यक्तो भूत इत्यशुभे दिने । ममार्चनपरो भूत्वा इहायातोऽसि साम्प्रतम् ॥३४॥

की आराधना में तत्पर रहा । अधिक समय बीतने पर उसे विष्णु भगवान् के दर्शन हुए । उस नाग ने सोचा कि वह कौन हो सकता है ? कहीं पुराणपुरुषोत्तम तो नहीं हैं ? उसके ऐसा सोचते हुए करुणासागर भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोलना आरम्भ किया ॥ १९-२७ ॥

नारायण ने कहा – हे नाग ! मैं नारायण हूँ । तुम सन्देह मत करो । पूर्वजन्मार्जित पुण्य के कारण तुम तपश्चर्या में लीन हो । तुम पूर्व जन्म में गौतम गोत्र में उत्पन्न वेद-वेदाङ्ग-पारग होते हुए भी मेरी उपासना करते रहे । मैंने तुम्हें दर्शन भी दिये थे । उस समय तुम ने यह अभीष्ट वर माँगा था कि दूसरे जन्म में तुम्हें अजरामर देह प्राप्त हो । मैं यह स्वीकृति देकर सत्यलोक चला गया । मेरे जाने के पश्चात् तुमने ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया । दैवयोग से देहत्याग कर तुम नागकुल[1] में उत्पन्न हुए हो । माता-पिता के द्वारा त्याग करने पर भी तुम यहाँ

---

१. पुराणों में 'नाग' शब्द दो ('नाग'वंश तथा सर्पों के अर्थों) में संश्लिष्ट कर दिया गया है । पर्वतों में नागवंश का राज्य सर्वत्र रहा । 'नीलमतपुराण' को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर में भी नागवंश के राजाओं ने बहुत समय तक राज्य किया । 'नीलमतपुराण' का प्रवक्ता स्वयम् अपने को 'नीलनाग' कहता है । बंगाल में 'नाग' आस्पद अब भी प्रचलित है । 'नागालैण्ड' नाम भी इस बात की स्मृति दिलाता है कि नागभूमि में उस प्रदेश का समावेश प्राचीन काल में रहा होगा । वायुपुराण (३६।३१) के अनुसार 'महाभद्र'झील के उत्तर के कई पहाड़ों में से एक पर्वत 'नागपर्वत' रहा— "महाभद्रस्य सरस उत्तरेणापि श्रीमतः । ये मया पर्वताः प्रोक्तास्तान् वक्ष्ये यथाक्रमम् । शङ्कुकूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः । 'नागश्च' कपिलश्चैव इन्द्रशैलश्च सानुमान् ॥" पुराणों में वर्णित नागगणों की उत्पत्ति पर विचार करने से भी यह विदित होता है कि सामान्य मानव की अपेक्षा इनमें शारीरिक विशेषता होने से 'नागगण' (=नागकुल) के रूप में इनकी प्रसिद्धि हुई । भागवत (१. ११. ११) के अनुसार नागगण दक्ष की पुत्री 'कद्रू' से उत्पन्न 'कश्यप' ऋषि की सन्तान हैं । जिनकी कमर से ऊपर का भाग तो मनुष्य का-सा है तथा नीचे का भाग सर्पाकृति से मिलता-जुलता है । इनका निवास-स्थान 'पाताल' लिखा है और राजधानी 'भोगवती' । इनके आठ कुल प्रसिद्ध हैं—(१) अनन्त, (२) वासुकि, (३) कम्बल, (४) कर्कोटक, (५) पद्म, (६) महापद्म, (७) शङ्ख और (८) कुलिक । नागवंश के सम्बन्ध में ब्रह्माण्डपुराण २.७४-१९४ तथा वायु० ९९.४५३ में उल्लेख मिलता है । इस वंश के नौ राजाओं ने चम्पावती से शासन किया था । सात ने मथुरा से 'दोआब' पर ३८३ वर्षों तक शासन किया । 'साकेत' और 'मगध' इन्हीं के अधीन थे ।

प्राक्तनं सम्भवं स्मृत्वा तुषितोऽस्मि महामते। तेन मे दर्शितं रूपं त्वया पुण्येन साम्प्रतम् ।३५।
न कदाचिन्महाभाग दर्शनं विफलं भवेत्। वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ।।३६।।

व्यास उवाच—

नारायणस्य वचनाज् ज्ञात्वा नारायणं प्रभुम्। नमस्कृत्य तदा नागो वचनं समुवाच ह ।।३७।।

नाग उवाच—

पितृभ्यामपि सन्त्यक्तस्त्वामाराध्य जगत्पते। इह तिष्ठामि शिखरे क्षुत्पिपासादिवर्जितः ।।३८।।
कृपया दर्शितं रूपं त्वयेह परमेश्वर। लोकनाथेन देवेन सृष्टिसंहारकारिणा ।।३९।।
यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि त्वं वरदो ह्यसि। स्वांशं प्रयच्छ तन्मह्यं वरमेतद् वृणोम्यहम् ।४०।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान् तत्रैवान्तरधीयत। सोऽपि नारायणस्यांशं प्राप्य विष्णोरनुग्रहात् ।४१।
प्राप्य नारायणस्यांशं नागोऽपि मुनिसत्तमाः। दर्शयामास नागेषु रूपाणि च बहूनि सः ।।४२।।
ततः प्रभृति तं नागं सर्वे नागास्तपोधनाः। मूलनारायणं नाम कथयामासुरञ्जसा ।।४३।।
श्रुत्वाथ पुङ्गवी माता जीवन्तं स्वसुतं द्विजाः। जगाम शिखरे पुण्ये यत्र नागः स शोभते ।४४।
ततः स्वमातरं दृष्ट्वा स नागो मुनिसत्तमाः। प्रत्युत्थाय प्रपूज्याशु अर्घं तस्यै समार्पयत् ।४५।
ततो गङ्गाजलैः पुण्यैः पूरितं शुभलक्षणम्। स्वमात्रे प्रददौ नागः कृत्वा पादावनेजनम् ।।४६।।
यावदर्घजलं भूमौ न्यपतन्मुनिसत्तमाः। तावद्ददर्श सम्भूतां नदीं नागैर्निषेविताम् ।।४७।।
मूलनारायणस्थानान्नागनारायणी सरित्। बभूव मुनिशार्दूला नागवंशप्रतारिणी ।।४८।।
यथा नारायणाख्यां स प्राप्तवान् नागनायकः। तथा निवेदितं विप्राः किमन्यत् प्रष्टुमिच्छथ ।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नागपर्वतमाहात्म्ये द्वयशीतितमोऽध्यायः ।।

आकर मेरी पूजा कर रहे हो। महामते! तुम्हें पूर्वजन्म का स्मरण होने पर ही मैंने तुम्हें दर्शन दिये हैं। मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता। अब तुम जो चाहे वर माँगो ।। २८-३६ ।।

व्यासजी ने कहा -नारायण के वचन से ही उन्हें भगवान् जानकर नाग ने उन्हें प्रणाम किया और वह बोला ।। ३७ ।।

नाग ने कहा—जगत्पते! माता-पिता से परित्यक्त होने पर भी मैं आपकी आराधना करता हुआ इस शिखर पर रहता हूँ। हे परमेश्वर! आप सृष्टिकर्ता तथा संहारकर्ता होते हुए भी मुझ पर कृपालु हैं। दर्शन देने पर भी यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं और 'वर' देना ही चाहते हैं तो कृपया मुझे अपना अंश दे दें ।। ३८-४० ।।

व्यासजी बोले—भगवान् 'तथाऽस्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गए। उस नाग ने विष्णु की कृपा से उनका अंश पाकर नागसमुदाय को अनेक चमत्कार दिखायें। तब से सब नाग उसे 'मूलनारायण' कहने लगे। उसकी माता 'पुङ्गवी' भी उसे जीवित जानकर उस शिखर पर आई। माता को देख वह खड़ा हो गया तथा 'अर्घ्य' दे उसका सम्मान किया। तब नागों के द्वारा गङ्गा-जल से पूरित शुभ जल पात्र से मूलनारायण ने उसके पैर धोये। उस अर्घ्यपात्र

ऋषय ऊचुः—

अथान्यदपि नागानां माहात्म्यं मुनिसत्तमाः । विशिष्टानां नदीनां च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥

व्यास उवाच—

नागानां मुनिशार्दूलाः कुलानि सुबहूनि च । निवसन्ति महाभागाः सुपुण्ये नागपर्वते ॥२॥
शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः प्राधान्येन मयोदिताः । बहुलं नैव शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ॥३॥
नागनारायणीमध्ये पुङ्गवी नागनायिका । पूज्यते मुनिशार्दूला नागपुत्रैर्निषेविता ॥४॥
नागनारायणीमध्ये चन्द्रिकासङ्गमं शुभम् । विद्यते मुनिशार्दूलाः सर्वपापान्तकारकम् ॥५॥
तत्र स्नात्वा च वृत्तेशं चिताभस्मविलेपनम् । सम्पूज्य मुनिशार्दूला नरः शिवपुरं व्रजेत् ॥६॥
दक्षिणे नागनाथाख्यं हरं सम्पूज्य पर्वते । प्राप्नोति देवभुवनं मानवो मुनिसत्तमाः ॥७॥
नागनारायणीमध्ये शैवीसङ्गं वदन्ति हि । तत्र स्नात्वा च मनुजः शिवं सम्पूज्य सुव्रताः ॥८॥
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते । वामे तस्या महादेवी दुर्गा नाम प्रपूज्यते ॥९॥
सिद्धगन्धर्वमनुजैर्नागमुख्यैस्तथैव च । तां सुपूज्य महाभागाः स्नात्वा दुर्गासरिज्जले ॥१०॥

से गिरे हुए जल से नागवंश की उद्धारिका 'नारायणी' नदी को वहाँ से उद्भूत होकर प्रवाहित होते हुए मूलनारायण ने देखा । मुनिवरो ! जिस प्रकार नागश्रेष्ठ ने नारायण नाम प्राप्त किया वह मैंने आप लोगों को बतला दिया है । आप लोग और क्या पूछना चाहते हैं ॥४१-४९॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'नागपर्वत-'माहात्म्य नामक
बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! हम लोग और भी दूसरे नागों का तथा विशिष्ट नदियों का माहात्म्य सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—महाभागों ! नागों के अनेक कुल 'नागपर्वत' पर रहते हैं । मुनिवरों ! प्रधान वंशों के बारे में मैं कहता हूँ । उसे आप लोग सुनें । अधिक विस्तार करना अपेक्षित नहीं है । 'नागनारायणी' नदी के मध्य नागनायिका 'पुङ्गवी' की पूजा होती है । वह नागपुत्रों से सेवित है । आगे 'नागनारायणी में 'चन्द्रिका' नदी मिलती है । उनका सङ्गम सब पापों का विनाशक है । वहाँ स्नान कर चिताभस्मधारी 'वृत्तेश' का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है । दक्षिण में 'नागनाथ' का पूजन करने से देवभवन मिलता है । 'नागनारायणी' में 'शैवी' नदी का भी सङ्गम है । उसमें स्नान और 'शिव'पूजन करने से शिवलोक में आनन्द प्राप्त होता है । उसके बाईं ओर 'दुर्गा' महादेवी का पूजन किया जाता है । 'दुर्गा' नदी में स्नान कर सिद्धादि द्वारा सेवित 'दुर्गा' देवी का पूजन करने पर महेन्द्रभवन मिलता है । 'दुर्गा' और 'सोमवती' के मध्य (स्नानादि कर) 'सर्वदुर्गप्रणाशन' शंकर का पूजन करने पर शिवलोक

महेन्द्रभवनं याति मानवो मुनिसत्तमाः। दुर्गासोमवतीमध्ये सर्वदुर्गप्रणाशनम् ॥११॥
हरं सम्पूज्य मनुजो निमज्य विधिपूर्वकम्। शिवलोकमवाप्नोति प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥*
ततस्तु पर्वतप्रान्ते शेषः सम्पूज्यते द्विजाः। देवगन्धर्वमनुजैस्तथा नागैर्महोरगैः ॥१३॥
तं सुपूज्य जनो याति महेन्द्रभवनं शुभम्। वामे मूलाख्यनागस्य त्रिपुराख्यस्तपोधनाः ॥१४॥
नागः सम्पूज्यते पुण्यः सर्वपापप्रणाशनः। ततस्तु मुनिशार्दूला नागनारायणादयः ॥१५॥
आराधयन्ति गिरिजां सुपत्राख्यां शशिप्रभाम्। सम्पूज्य मानवो याति पातकान्तं न संशयः ॥
फेनिलस्य सुतो ज्येष्ठः सुचूडाख्यस्तपोधनाः। पूज्यते दक्षिणे भागे नागनारायणस्य च ॥१७॥
ततस्तु पर्वताग्रे वै चोत्तरे फेनिलस्य च। धवलं नागनागेशं नागकन्यानिषेवितम् ॥१८॥
प्रसादात्तस्य सम्पूज्य विभवं प्राप्नुयान्नरः। तत्रैव वासुकेः कन्यां शिवतोषणतत्पराम् ॥१९॥
वेलावतीं महापुण्यां नागकन्यानिषेविताम्। सम्पूज्य तां महाभागां हरध्यानपरायणाम् ।२०।
मनोऽभिलषितां सिद्धिं प्राप्नोत्येव न संशयः। ततस्तु तक्षको नागो गुहामध्ये तपोधनाः ।२१।
पूज्यते नागमुख्यैश्च धवलाद्यैर्न संशयः। ततः पर्वतमध्ये वै कालीयो यत्र तिष्ठति ॥२२॥
इलावर्तो महानागः कर्कोटको धनञ्जयः। धृतराष्ट्रः सुराष्ट्रश्च पूज्यन्ते नागनायकाः ॥२३॥

मिलता है। *(यहाँ भी कुछ अंश त्रुटित है)। द्विजवरों! तब पर्वत के प्रान्त में 'शेषनाग' का पूजन किया जाता है। उसका पूजन करने से महेन्द्रभवन प्राप्त होता है। मूलनारायण के बाईं ओर सर्वपापहारी 'त्रिपुर' नाग है। तदनन्तर मूलनारायणादि सब नाग चन्द्रमा के समान ज्योत्स्नामयी एवं पापनाशिनी 'सुपत्रा' नाम की देवी का पूजन करते हैं। तपोधनों! 'नाग-नारायण' के दाहिनी ओर 'फेनिल' नाग का ज्येष्ठपुत्र 'सुचूड़' नाम से पूजित है। तदनन्तर पर्वत के शिखर पर 'फेनिल' के उत्तर की ओर नागकन्याओं से सेवित एवं धनप्रद 'धवलनाग'[1] का पूजन किया जाता है। वहीं पर शंकर के ध्यान में लगी हुई 'वासुकि' नाग की कन्या 'वेला-वती' का पुजन करने से मनोभिलषित सिद्धि प्राप्त होती है। तब गुहा में 'धवल' आदि प्रमुख नागों द्वारा 'तक्षक'[2] नाग की पूजा की जाती है। तदनतन्र 'इलावर्त', 'कर्कोटक', 'धनञ्जय',

---

१. स्थानीय प्रसिद्ध नाम—'धौलो' नाग। 'धवलनाग' का मन्दिर बागेश्वर से १२ मील दूर है। मन्दिर गुफा की तरह पत्थरों से बना है। पत्थर भीमकाय हैं। मूर्ति अब मृत सर्प के रूप में पड़ी हुई है। उस मूर्ति पर अनेक गहने भी चढ़ाये हुए प्रतीत होते हैं। अन्य मूर्तियाँ नाग की ओर हाथ जोड़ हुए खड़ी सी दिखाई देती हैं। यहाँ का पूजकवर्ग 'धामी' कहलाता है। यहाँ पूजा करने का विशेष अधिकार 'धपोला सेरा' के 'धपोला' लोगों को है। नवरात्र में विशेष पूजा होती है। इनके अतिरिक्त 'खन्तोली' ग्राम के पन्त भी 'धौली नाग' की पूजा में सम्मिलित होते हैं। अब भी 'धवलनाग' के निकट स्थानों में श्वेत सर्प मिलते हैं। ये आकार में बड़े होते हैं। इनकी पीठ और सिर विशेषतः श्वेत रंग के दिखाई देते हैं।

२. अन्यत्र पुराणों के अनुसार यह काद्रवेय ('कद्रू' की सन्तान) नाग है। 'शृङ्गी' ऋषि के शापवश इसने परीक्षित् को डँसा था। जनमेजय के सर्पसत्र के समय यह इन्द्र की शरण में गया। ऋषियों के मन्त्रप्रभाव से इन्द्र के भी खिंच जाने से इन्द्र ने इसे छोड़ दिया। फिर भी 'आस्तीक' ऋषि के आग्रहवश यज्ञ बन्द हो जाने से इसके प्राण बच गए। यह नाग ज्येष्ठ मास में अन्य गणों के साथ सूर्य-रथ पर अधिष्ठित रहता है (भाग० १२।११–३५)। यह शिव की ग्रीवा के चारों ओर लिपटा रहता है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भारतवर्ष में 'तक्षक' जाति थी, जिसका जातीय चिह्न 'सर्प' था।

तान्दृष्ट्वा मानवो धन्यः ख्यायते मुनिसत्तमाः । नागकन्यासहस्रं वै कालीयो तत्र तिष्ठति ।२४।
विद्यते मुनिशार्दूलाः कालीयस्य महात्मनः । नागकन्यासहस्रं वै सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ॥२५॥
मानवः परमां सिद्धिं प्रयाति नहि संशयः । मधुर्नाम महानागो मूलनारायणस्य हि ॥२६॥
अस्ति वै दक्षिणे पार्श्वे नागमुख्यस्तपोधनाः । एतैर्नागैर्महाभागो मूलनारायणो द्विजाः ॥२७॥
पूज्यते शिखराग्रे वै नागकन्याभिरेव च । कदाचित् कुपितो नागः शिखरे मुनिसत्तमाः ॥२८॥
शतमष्टोत्तरं रूपं चकार बहुरूपधृक् । कदाचिच्छिखरं हित्वा कालीयेन प्रकोपितः ॥२९॥
वसने प्रययौ नागो मूलनारायणो द्विजाः । ततस्तु पश्चिमे भागे वनान्तरगतं हि तम् ॥३०॥
गन्धर्वाः पूजयामासुर्नागनारायणं शुभम् । कदाचिद्विपिने घोरे वासुकिप्रमुखैर्द्विजाः ॥३१॥
कोपितो नागशार्दूलस्तोयमध्ये जगाम ह । तोये नागसहस्रं हि पूजयामासुस्तं तदा ॥३२॥
यथा मान्यो महेन्द्राद्यैः शेषः संगीयते द्विजाः । पूज्यते देवगन्धर्वैर्मूलनारायणस्तथा ॥३३॥
तत्रैव शिखराग्रे वै नागो वासुकिसंज्ञकः । पूज्यते नागकन्याभिर्नागमुख्यस्तपोधनाः ॥३४॥
यस्य नेत्रेण भगवान् वेष्टयित्वाऽथ मन्दरम् । ममन्थ सागरं सर्वं महेन्द्रप्रमुखैः सह ॥३५॥
यस्याङ्गे वासुदेवस्य दृश्यन्ते चाङ्गुलिक्षताः । शङ्खचक्रादिपद्मेन लक्षिताः शुभलक्षणाः ॥३६॥
सम्पूज्य वासुकिं नागं नागकन्याभिरन्वितम् । ईतयो नानुपश्यन्ति मानवा नात्र संशयः ॥३७॥
शिखराग्रे महाभागाः पुण्यो नागह्रदः स्मृतः । तत्र स्नात्वा नरो याति महेन्द्रभवनं शुभम् ।३८।
मधुना नागमुख्येन यस्मान्मधुमती सरित् । प्रकाश्य वाहिता पुण्या रामगङ्गां प्रति द्विजाः ।३९।

और 'सुराष्ट्र' नामक नागों से पूजित हो नागपर्वत के मध्य 'कालीय' विराजमान हैं। उनके दर्शन से मानव धन्य हो जाता है। 'कालीय' नाग हजारों नागकन्याओं से परिवेष्टित हैं। इन नागकन्याओं का पूजन कर मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। 'मूलनारायण' के दाहिनी ओर 'मधु' नामक महानाग रहता है। 'मधु' तथा अन्य नागों एवं नागकन्याओं द्वारा 'मूलनारायण' पूजित हैं। यदि कभी 'नाग'पर्वत पर 'मूलनारायण' कुपित हो जायँ तो वे अपने एक सौ आठ रूप बदल कर दिखाई पड़ते हैं। द्विजवरों! एक समय कालीय नाग के कुपित करने पर 'मूलनारायण' उस शिखर को छोड़ घर (गुहा) में चले गये। वहाँ से भी पश्चिम भाग के दूसरे वन में जाने पर गन्धर्वों ने नागनारायण का पूजन किया। किसी समय घोर वन में वासुकि प्रभृति नागों से कुपित किये जाने पर वह जल के भीतर चले गये। वहाँ भी सहस्रों नाग, महेन्द्रादि द्वारा पूजित शेषनाग की तरह, उनका गुणगान करने लगे। वैसे ही देव-गन्धर्वों से भी उनकी पूजा होती है। उसी शिखर के अग्रभाग पर वासुकि नाग की भी पूजन होता है। तपोधनों! जिसको मथनी की रस्सी बनाकर महेन्द्रादि देवताओं सहित भगवान् ने मन्दराचल को बांध समुद्रमन्थन किया। इसके फलस्वरूप उसके अङ्ग में विष्णु की उँगलियों के चिह्न दिखाई देते हैं। उन चिह्नों में शङ्ख, चक्र और पद्म की आकृति बनी हुई है। उस वासुकि का पूजन करने से ईतिभय नहीं रह जाता है। 'शिखर' के अग्र भाग पर 'नागह्रद' है। उसमें स्नान करने से 'महेन्द्र-भवन' प्राप्त होता है। 'मधु' नाग ने 'मधुमती' नदी को प्रवाहित किया है, वह आगे चलकर (पूर्वी) रामगङ्गा में मिलती है ॥ ११-३९ ॥

ऋषय ऊचुः—

कथं तत्र सरं चक्रुर्नागाः सर्वे तपोधनाः। कथं हि मधुनागेन वाहिता मधुवाहिनी ॥४०॥

व्यास उवाच—

मूलनारायणं नागमुपास्य मुनिसत्तमाः। नागाः सर्वेश्वरं चक्रुः पूर्य मन्दाकिनीजलैः ॥४१॥
न मधुं दर्शयामासुः सरं तं नागनायकाः। चिक्रीडुस्ते सरे तस्मिन् नागकन्याभिरावृताः ॥४२॥
ततस्तु कुपितो भूत्वा मधुनागस्तपोधनाः। सरसोऽस्मान्मधुमतीं वाहयामास तां नदीम् ॥४३॥
कालीयस्य महाभागा वामपार्श्वे सुपुण्यदा। पुण्या मधुमती नाम विद्यते सरितां वरा ॥४४॥
तस्यां स्नात्वा च विधिवत् सन्तर्प्य च पितृँस्तथा। महेन्द्रभवनं याति मानवो नात्र संशयः ॥
इलावर्तो महानागो वामे तस्य प्रपूज्यते। तं सुपूज्य जनो जाति[1]पातकाद् विप्रमुच्यते ॥४६॥
तथा इलावती देवी देवगन्धर्वपूजिता। विद्यते नागराजेन सेविता सुमनोहरा ॥४७॥

ऋषियों ने फिर पूछा—तपोधन ! नागों ने किस प्रकार 'नागह्रद' को बनाया ? तथा वहाँ से 'मधु' ने 'मधुमती' को कैसे प्रवाहित किया ? ॥ ४० ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! नागसमुदाय ने 'मूलनारायण' की उपासना कर उसे सर्वश्रेष्ठ माना तथा 'मन्दाकिनी' के जल से पूरित कर एक सरोवर बना दिया। उन्होंने 'मधु' नाग को यह बात विदित नहीं कराई। वहाँ नागसमुदाय नागकन्याओं से परिवेष्टित हो क्रीडा कर रहा था। 'मधु' ने कुपित हो उस सरोवर से एक नदी प्रवाहित कर दी। वही 'कालीय नाग' के बायीं ओर 'मधुमती' नाम से बहती है। उसमें विधिपूर्वक स्नान और तर्पण करने से 'इन्द्रलोक' मिलता है। उसके बायीं ओर 'इलावर्त' नाग का पूजन होता है। उसकी पूजा करने से जातिपातक की निवृत्ति हो जाती है। वहीं 'इलावर्त' की अर्चना करने से अग्निभय नहीं रह जाता। उसके (इलावर्त के) दक्षिण भाग में 'कालीय' नागराज[2]

१. 'नरो विप्राः' इति पाठान्तरम्।

२. 'कालिय नाग' का मन्दिर पट्टी पुंगरांव में है। मार्ग बहुत विकट है। बाबिला-घास पकड़कर ४०-५० गज जाना पड़ता है। स्त्रियाँ नहीं जातीं। जनश्रुति के अनुसार स्त्रियों के द्वारा धोये हुए कपड़े पहन कर भी नहीं जाया जाता। यह भी प्रसिद्धि है कि इस पर्वत के ऊपर गरुड कभी नहीं उड़ता। यदि मन्दिर में कोई मल-मूत्रादि कर अपवित्र कर देता है तो अनेक नाग बाहर निकल आते हैं। स्थान-शुद्धि होने के बाद फिर अन्दर चले जाते हैं। पुराणों में 'कालिय' का वर्णन इस तरह है—

(क) भागवत (५-२४-२९) के अनुसार 'कालिय' को 'क्रोधवश'-वर्ग का सर्पराज माना जाता है— 'ततोऽधस्तान्महीतले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहक-तक्षक-'कालिय'-सुषेणादि-प्रधाना महाभोगवन्तः पतत्त्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति'। गरुड के भय से समुद्र छोड़कर व्रज के समीप एक सरोवर में छिप कर रहता था। उसका जल विषाक्त हो गया था। श्रीकृष्ण ने इसे वश में कर गरुड़ के भय से मुक्ति दी तथा समुद्र में वापस भेज दिया। (ख) स्थानीय परम्परा तथा प्रस्तुत प्रसङ्गानुसार उसे पर्वत पर भेज दिया। (ग) 'ब्रह्माण्ड-पुराण' (४२९-१२४) के अनुसार 'कालिय' नाम का एक दानव राजा भी था। इस सन्दर्भ में यह विदित होता है कि 'नागों' के सम्बन्ध में पर्वतस्थ 'नागजाति' तथा 'सर्प-समुदाय' के विभिन्न तत्त्वों को एक रूप में संजोकर धार्मिकता का रूप दे दिया गया है। गम्भीर अध्ययन करने से उन्हें पृथक् कर इतिहास की शृङ्खला को जोड़ा जा सकता है।

तां सुपूज्य मनुष्याणामग्निभीतिर्न जायते ॥

तस्या दक्षिणपार्श्वे वै कालीयो नागनायकः । विद्यते नागकन्यानां सहस्रैः परिवारितः ॥४८॥
श्रेष्ठो नागसहस्राणां नागपर्वतवासिनाम् । अष्टभिः प्रमुखैः पुत्रैः सेव्यमानो महायशाः ॥४९॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । नागानां प्रथमो नागो यो गुरुर्गीयते द्विजाः ॥५०॥
नागपुरस्य शिखरे राजते मुनिसत्तमाः । कालीयं पूज्य मनुजा गन्धपुष्पाक्षतैस्तिलैः ॥५१॥
पञ्चगव्यैर्यथाशुद्धैर्मौक्तिकैर्मणिपुष्पकैः । परां सिद्धिं महापुण्यां प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥५२॥
तत्र नागवती नाम गुहा नागैः प्रपूरिता । विद्यते नागकन्याभिः सेविता सुमनोहरा ॥५३॥
तत्र नागजले पुण्ये निमज्य विधिपूर्वकम् । देवीं नागवतीं पूज्य परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४॥
वासुकेर्मातरं तत्र सम्पूज्य मुनिसत्तमाः । नरो नारायणावासं प्राप्नोति नहि संशयः ॥५५॥
कालीयस्य महाभागा वामे मधुमती सरित् । पुण्याभिर्नागकन्याभिः सेविता सुमनोहरा ॥५६॥
मूले नागसरस्तस्या विद्यते देवसेवितम् । ततस्तु शकटीसङ्गं पुण्यमस्ति तपोधनाः ॥५७॥
निमज्य मानवस्तत्र सुनन्दां च महेश्वरीम् । सम्पूज्य मुनिशार्दूला मानवः शाङ्करं पदम् ॥५८॥
प्रयात्येव न सन्देहो सत्यमेतन्मयोदितम् । देवदानवगन्धर्वैस्तथा नागैर्महाबलैः ॥५९॥
पुण्याभिर्नागकन्याभिः पूजितां परमेश्वरीम् । सम्पूज्य मानवाः सम्यक् पापिनोऽपि तरन्ति वै ।
तावद्देहे मनुष्याणां वैचिन्त्यं जायते द्विजाः । यवाद्देवीं सुनन्दां तां पूजयन्ति न शोभनाम् ॥६१॥
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्नेर्मध्यगोऽपि वा । स्मृत्वा देवीं सुनन्दां वै नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥

रहता है। वह नागपर्वतवासी सहस्रों नागों में श्रेष्ठ है तथा अनेक नागकन्याओं से परिवेष्टित है। वह आठ प्रमुख पुत्रों से सेवित, वेद-वेदाङ्गों का ज्ञाता, सब शास्त्रों का विद्वान् तथा यशस्वी है। अतः वह नागों में श्रेष्ठ तथा नागकुल का गुरु है। मुनिवरों ! वह 'नागपुर' पर्वत के शिखर पर विराजमान है। गन्ध, अक्षत, पुष्प, पञ्चगव्य, स्वच्छ मोती तथा शुद्ध मणियों से उसका पूजन करने पर मानव को सिद्धि प्राप्त होती है। वहीं पर नागों से संकुलित 'नागवती' गुहा है। वहीं गुहा के भीतर जल में स्नान कर 'नागवती' देवी का पूजन करने से सिद्धि प्राप्त होती है। मुनिश्रेष्ठों ! वहीं 'वासुकि' की माता का पूजन करने से मानव को विष्णुलोक मिलता है। महाभागों ! कालीय के बायीं ओर नागकन्याओं से सेवित पवित्र मधुमती नदी है। उसके मूल में देवों से सेवित 'नागह्रद' है। तत्पश्चात् 'शकटी' नदी का संगम है। वहाँ स्नान करने के पश्चात् 'सुनन्दा'[1] देवी का पूजन कर शिवलोक प्राप्त होता है। सुनन्दा देवी महत्त्वशालिनी होने के साथ ही देवों, गन्धर्वों, विशिष्ट नागों तथा नागकन्याओं से पूजित हैं। इनका पूजन सिद्धिप्रद है। मुनिश्रेष्ठों ! 'सुनन्दा' देवी के पूजन के पूर्व तक ही चित्त में अशान्ति रहती है। अरण्य, सूनसान मार्ग तथा दावानल के बीच में भी 'सुनन्दा' का स्मरण किया जाय तो संकट से मुक्ति मिल जाती है। जो लोग बलिदान एवम् उपहार आदि से सुनन्दा को सन्तुष्ट

१. राजा विदूरथ की पुत्री मुदावली का यह नाम कुजृम्भ के मूसल 'सुनन्द' का स्पर्श करने के कारण अनन्त नागराज ने रखा था। कुजृम्भ दैत्य के मूसल 'सुनन्द' को विश्वकर्मा ने बनाया था। इस दैत्य की मृत्यु के बाद इस मूसल को अनन्त नागराज ले गए थे। युवती के स्पर्श से इसकी शक्ति नष्ट हो जाती थी। मुदावली ने इसका अंगुलियों से स्पर्श कर शक्तिहीन कर दिया था (मार्कण्डेयपुराण)।

बलिपूजोपहारेण सुनन्दां पूजयन्ति ये। तेषामभीप्सितं कामं तुषिता संप्रयच्छति ॥६३॥
सुनन्दां तत्र सम्पूज्य ततः कुशवतीं व्रजेत्। देवीं कुशवतीं पूज्य नरः प्राप्नोति गौरवम् ॥६४॥
कुशा-मधुमतीसङ्गे कुशेशो नाम शङ्करः। चिताभस्मविलिप्ताङ्गः पूज्यते सिद्धनायकैः ॥६५॥
ततो मधुमती पुण्या रामगङ्गासुसङ्गमम्। सङ्गता मुनिशार्दूला नागकन्यानिषेविता ॥६६॥
वामे तस्य महाभागाः पुण्यः कण्वगिरिः स्मृतः। तत्र कण्वाश्रमो विप्रा विद्यते ऋषिसेवितः ॥
तत्र कण्वमृषिश्रेष्ठं सम्भाव्य मुनिसत्तमाः। वेदवेदान्ततत्त्वज्ञो जायते भुवि मानवः ॥६८॥
पर्वताग्रे महापुण्यां कण्वां देवीं प्रपूज्य वै। मानवः सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥६९॥
कालीयपुत्रपौत्राद्यास्तक्षकस्य सुतादयः। इलावर्तकुलोद्भूताः कर्कोटककुलोद्भवाः ॥७०॥
निवसन्ति महाभागाः सुपुण्ये कण्वपर्वते। तत्र वै पुण्डरीकाख्यो नागः सम्पूज्यते द्विजाः ॥७१॥
पुण्डरीकं प्रपूज्याशु ज्ञानवान् जायते नरः। तत्रैव कुण्डली नाम नागः सम्पूज्यते गणैः ॥७२॥
दिनत्रय-कृतं पापं दर्शनात्तस्य नश्यति। ततो होमगिरिः पुण्य उत्तरे मुनिसत्तमाः ॥७३॥
तत्र नागैर्हुतं द्रव्यं समश्नन्ति दिवौकसः। तत्र होमान्तसंस्नाता हुताशनविनिःसृता ॥७४॥
नदी हुतवती नाम विद्यते मुनिसत्तमाः। तस्यां निमज्य विधिवत् पितॄन् सन्तर्प्य वै तथा ॥७५॥
वाजिमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः। ततः पृथुगिरिः पुण्यो विद्यते मुनिसत्तमाः ॥७६॥

करते हैं, उन्हें अभीष्ट सिद्धि मिलती है। तत्पश्चात् 'कुशवती' देवी का पूजन करने से आदर प्राप्त होता है। मुनिवरों! 'कुशा' और 'मधुमती' के सङ्गम में सिद्धगण 'चिताभस्मधारी' शिव का पूजन करते हैं। आगे बढ़कर मधुमती का रामगङ्गा (पूर्वी) के साथ सङ्गम होता है। उसके वामभाग में पुण्यशील 'कण्वगिरि' है। वहीं ऋषियों से संकुलित 'कण्वाश्रम'[1] है। वहाँ 'कण्व' ऋषि[2] का पूजन करने से विद्यालाभ होता है। पर्वत शिखर पर 'कण्वा देवी' का पूजन करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। 'कालीय' के पुत्र-पौत्रादि, तक्षक की सन्तति, इलावर्त के वंशज, तथा 'कर्कोटक' के कुल में उत्पन्न नाग—ये सभी 'कण्व'पर्वत पर निवास करते हैं। यहाँ पर 'पुण्डरीक' नाग का पूजन करने से ज्ञान प्राप्त होता है। वहीं पर 'कुण्डली' नाग का पूजन करने से तीन दिन के किये पाप विनष्ट हो जाते हैं। वहाँ से उत्तर की ओर 'होमगिरि' है। वहाँ नागों ने हवन किया था। उस 'हविष्' को देवों ने ग्रहण किया। यज्ञ की समाप्ति पर 'अवभृथ' स्नान के जल से 'होमवती' सरिता प्रकट हुई। वहाँ स्नान तथा तर्पणादि करने पर 'अश्वमेध' यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। फिर 'पृथुगिरि' है। वहाँ स्थिर होकर

---

१. 'कँवोईमहर' के समीप।

२. 'कश्यप गोत्रोत्पन्न एक तपःप्रभाव-सम्पन्न प्राचीन ऋषि, जो अप्रतिरथ के पुत्र तथा मेधातिथि के पिता कहे गए हैं। इन्हीं से काण्वायन ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। यह मेनका अप्सरा की छोड़ी हुई कन्या शकुन्तला के पोषक रहे। इनका आश्रम 'मालिनी' नदी के तीर पर था। शकुन्तला-पुत्र भरत के सब संस्कार इन्होंने किये थे (महाभारत आदि० अध्याय ७१-७२-७३)। वर्तमान समय में 'कोटद्वार' (गढ़वाल) के समीप वन में उसका प्रतीक बड़ा भव्य आश्रम बनाया गया है। कालिदास के शाकुन्तल में भी 'अनुमालिनीतीरम्' कहकर इसकी स्थिति स्पष्ट की है। पाँचवें अङ्क में भी 'हिमगिरेः उपत्यकारण्य-वासिनः' विशेषणों द्वारा हिमालय की तराई में कण्वाश्रम का होना प्रामाणिक है।

यत्र स्थित्वा हिमगिरिं प्रार्थयित्वा वसुन्धराम् । विलिखन् स महाभागः पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ।
तत्र पृथूदके पुण्ये निमज्य मुनिसत्तमाः । स्थितं पृथा-सरिन्मध्ये चिताभस्मविलेपनम् ॥७८॥
पार्थिवं शंकरं पूज्य नरः शिवपुरं व्रजेत् । सुनन्दा च महानन्दा काली चैव हरप्रिया ॥७९॥
महादेव्यो महाभागाः स्थानेषु विविधेषु च । पूज्यन्ते नागकन्याभिर्नागमुख्यैस्तथैव च ॥८०॥
देवगन्धर्वमनुजैर्दानवैश्च विशेषतः । तेषु पर्वतमुख्येषु निवसन्ति महाबलाः ॥८१॥
नागाश्च दानवाश्चैव तथैव देवतागणाः । निवसन्ति महाभागा नागानां हितकाम्यया ॥८२॥
कालीयस्य महाभागा दक्षिणे वासुकिः स्मृतः । जलशायी महापुण्यो नागमुख्यस्तपोधनाः॥८३॥
चरणात्तस्य निष्क्रान्ता बोधनेन महात्मना । विद्यते बहुला नाम पुण्यतोयवहा सरित् ॥८४॥
वामे तस्या महानागः शितरूपस्तपोधनाः । नागायुतबलो नागो विद्यते मुनिसत्तमाः ॥८५॥
तं स्मृत्वा नागशार्दूलं महाभीतिं न विन्दति । ततस्तु दक्षिणे तस्याः पिङ्गलाख्यो महोरगः ॥
सेवितो नागकन्याभिर्नागैश्चान्यैस्तथैव च । पिङ्गलं पूज्य वै विप्रा गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा ॥८७॥
मनोभिलषितां सिद्धिं कामं प्राप्नोति मानवः । चरणात्तस्य सम्भूता भुजङ्गाख्या महानदी ॥८८॥
विद्यते नागकन्याभिः सेविता सुमनोहरा । प्राधान्येन महानागाः कथिता मुनिसत्तमाः ॥८९॥
आयुरारोग्यदातारः सुखसौख्यप्रवर्धकाः ॥ ९० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नागाख्याने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥

हिमालय की प्रार्थना करते हुए वैण्य राजा पृथु ने पृथ्वी का विस्तार किया । वहीं पवित्र 'पृथूदक'[1] तीर्थ है । उसमें स्नान करने पर 'पृथा' नदी पर 'चिताभस्मधारी' शङ्कर का पूजन कर पार्थिव पूजन कर शिवलोक प्राप्त होता है । वहाँ पर अनेक स्थानों में सुनन्दा, महानन्दा, हरप्रिया आदि देवियाँ नागकन्याओं तथा नागप्रमुखों से पूजित हैं । वहीं अनेक पर्वतों पर नागों की हितकामना से देव, गन्धर्व, मनुष्य, दैत्य आदि निवास करते हैं । हे महाभाग ! कालीय नाग के दक्षिण में जलशायी 'वासुकि' बड़ा पवित्र नाग है । उसके चरण से महात्मा बोधन द्वारा 'बहुला' नदी प्रवाहित हुई । उसके बाईं ओर दस हजार हाथियों के समान बलशाली 'शतरूप' महानाग विद्यमान है । उसके स्मरण मात्र से बड़े से बड़ा भय नहीं रहता । उसके दक्षिण भाग में नागकन्याओं से सेवित 'पिङ्गल'[2] महानाग की पूजा करने से अभीष्ट

---

१. पुराणों में अन्यत्र इस तीर्थ को सरस्वती के तट पर स्थित कहा गया है । राजा पृथु ने यहीं राजा वेन की अन्त्येष्टि की थी । १२ दिनों तक अभ्यागतों को जल पिलाया था । इसी से इसका यह नाम पड़ा (भाग० १०-७८-१९) ।

२. स्थानीय बोली में 'पिङ्गल'नाग को 'प्यूली'नाग कहा जाता है । लोकगाथा के अनुसार 'प्यूली' नागपर्वत में 'स्फटिक लिङ्ग' प्रकट हुआ । उस पर्वत पर एक कृषक गायें चराने के लिये जाया करता था । उसकी एक गाय 'शिवलिङ्ग' पर दूध गिरा देती थी । यह बात उसे विदित नहीं हुई । एक दिन वह उसके पीछे-पीछे गया । उसने गाय को दूध गिराते देखा । उसने स्फटिक शिला पर आघात कर दिया । उसे रात्रि में मन्दिर बनाने हेतु स्वप्न हुआ । वह भूमि उसकी नहीं थी । भूस्वामी से उसने किसी प्रकार वह जमीन खरीदी और मन्दिर बनवा दिया । बाद को भूस्वामी पछताया कि उसने देवभूमि

८४

ऋषय ऊचु:—

कमाराध्य महाभागा विस्तीर्णे नागपर्वते । निवसन्ति महाभागा ज्ञातुमिच्छाम तद्वयम् ॥१॥

व्यास उवाच—

सर्वे नागा महात्मानो देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् । समाराध्य बलिं शुद्धां बुभुजुर्मुनिसत्तमाः ॥२॥
देवीमाराधयामास मूलनारायणः स्वयम् । स तस्मिन् शिखरे पुण्ये मूर्ति कृत्वा महीमयीम् ।३।
स चकाराहंणां तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः । तेन सम्पूजिता देवी पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥४॥
आविर्बभूव पुरतः साक्षादग्निशिखोपमा । तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलाः स नागोत्याथ सत्वरम् ।५।
ननाम परया भक्त्या देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् । ततः प्रणमिता देवी तेन नागेन सुव्रताः ॥६॥
वरं वरय भद्रं तेऽस्त्वित्युवाच महेश्वरी । ततो वव्रे महानागो द्रष्टुमिच्छामि ते पुनः ॥७॥
तत्र त्वां पूजयिष्यामि नागैः सह महेश्वरि ! ।

सिद्धि प्राप्त होती है । उसके पादतल से 'भुजङ्गा' नदी निकली है । वह अनेक नागकन्याओं से सेवित है । मुनिवरों ! मैंने प्रमुख नागों का वर्णन कर दिया है । यह आख्यान आयु और आरोग्य का वर्धक है ॥ ४१–९० ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'नागाख्यान'-सम्बन्धी
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने पूछा—महोदय ! विशाल नागपर्वत पर नाग लोग किसकी आराधना कर वहाँ निवास करते हैं ? ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—ऋषिवरों ! नागपर्वत पर सभी नागगण भगवती 'त्रिपुर-सुन्दरी'[१] की उपासना कर पवित्र वलि का उपभोग करते हैं । मूलनारायण ने स्वयं मिट्टी की मूर्ति बनाकर शिखर पर देवी की आराधना की थी । उसने पुष्प, धूप, दीप आदि से भगवती को प्रसन्न किया था । जिसके फलस्वरूप उसके समक्ष अग्नि की ज्वाला के समान देवी प्रकट

बेच दी है । अतः समझौते के अनुसार आगे की भूमि पर भूस्वामी ने अपना स्वत्व रखा तथा गो-स्वामी को पूजा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । यहाँ पर आश्विन शुक्ला पञ्चमी को मेला लगता है ।

१. यह मन्दिर 'बेनीनाग' से पश्चिम की ओर गंगोली-हाट जाने वाली सड़क पर दो मील की दूरी पर स्थित है । स्थान बड़ा रमणीक है । इसके साथ ही 'उल्का देवी' का भी मन्दिर है । वहीं किनारे पर एक 'बाण' देवता भी स्थापित हैं । यहाँ पर नन्दाष्टमी (भाद्रपद शुक्ला अष्टमी) को मेला लगता है । ग्रामवासी 'त्रिपुरसुन्दरी' को कृषि की रक्षा करने वाली मानते हैं । 'उल्का'देवी परिवार की रक्षिका समझी जाती है । उल्कादेवी की पूजा आदि में बड़ी पवित्रता अपेक्षित है । 'बाण' देवता भी पशुओं के रक्षक हैं । इन्हें खिचड़ी का भोग लगता है । 'मत्स्यपुराण' के अनुसार उल्कामुखी एक मातृका हैं । 'ब्रह्माण्ड' पुराण (४–७–७२) के अनुसार 'ललिता देवी' के २५ नामों में से एक नाम 'उल्का' है ।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा भगवती मूलनारायणाय वै। कन्दरां दर्शयामास सिद्धगन्धर्वसेविताम् ।।८।।
दशयोजनविस्तीर्णां योजनद्वादशायताम् । दर्शनीयां तथैकान्तां ज्योतीरूपां तथा पराम् ।।९।।
ददर्श स महाभागा भोगिराजनिषेविताम् । दर्शयित्वा महादेवी पुरं स्वं सिद्धसेवितम् ।।१०।।
पश्यतां नागमुख्यानां तत्रैवान्तरधीयत । मूलनारायणो विप्रा ततस्तां परमेश्वरीम् ।।११।।
पूजयामास विधिवन्नागैः सह तपोधनैः । ततस्तां कन्दरां सर्वे आख्याय मुनिसत्तमाः ।।१२।।
मूलनारायणीं नाम्ना कथयामासुः शोभनाम् । सर्वे नागा महाभागास्तामाराध्य महेश्वरीम् ।१३।
तस्थुर्नागपुरे रम्ये नागकन्यानिषेविते । मूलनारायणीं देवीं गिरिकन्दरवासिनीम् ।।१४।।
पूज्य याति परां सिद्धिं मानवो मुनिसत्तमाः । यामाराध्य महाभागाः सुग्रीवो नाम वानरः ।।
प्राप्तवान् दुर्लभं राज्यं बालिना परिपालितम् ।

ऋषय ऊचुः—

कथं नागपुरं रम्यं सुग्रीवो नाम वानरः । ययौ स स्वपुरं रम्यं हित्वा कस्मात् तपोधन ।।१६।।
मूलनारायणीं देवीं कथं स ज्ञातवान् द्विज । कथं नृपासनं प्राप बालिना परिपालितम् ।।१७।।
एतत् सर्वमशेषेण कथयस्व तपोधन ।। १८ ।।

व्यास उवाच—

किष्किन्धायां महाभागा वानरौ द्वौ बभूवतुः । भ्रातरौ बालि-सुग्रीवौ महाबलपराक्रमौ ।।१९।।
सत्यमार्गरतौ शान्तौ सर्वविद्याविशारदौ । प्रीत्या चाधिकशोभाढ्यौ पूजितौ वानरर्षभौ ।२०।

हुईं। मूलनारायण उठ खड़ा हुआ और उसने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। देवी ने उससे वर माँगने के लिए कहा तो मूलनारायण ने पुनः दर्शन देने की इच्छा प्रकट की। तथा निवेदन किया कि आपके दर्शन देने पर मैं नागकुल के साथ आपका पूजन करूँगा ।। २-७ ।।

व्यासजी ने पुनः कहा—देवी ने 'तथास्तु' कहकर मूलनारायण को एक गुफा दिखाई। वह दस योजन लम्बी और बारह योजन चौड़ी थी। वह दर्शनीय, सुनसान तथा ज्योतीरूप थी। उस देवी ने कन्दरा में शेषनाग से सेवित अपनी नगरी भी दिखलाई। देखते देखते वह देवी अन्तर्धान हो गईं। 'मूलनारायण' ने नागों के साथ भगवती का पूजन किया। मुनिवरों! मूलनारायण ने उस गुहा के सम्बन्ध में लोगों को अवगत कराया। तब सब नागों ने 'महेश्वरी' की आराधना कर गिरिकन्दरवासिनी को 'मूलनारायणी' नाम से प्रख्यात किया। फिर नाग लोग 'नागपुर' में रहने लगे। 'मूलनारायणी' का पूजन कर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। जिसकी आराधना करने से सुग्रीव ने बाली के अधिकार में शासित दुर्लभ राज्य को प्राप्त किया था ।। ८-१५ ।।

ऋषियों ने कहा—सुग्रीव नामक वानर किस प्रकार नागपुर में आया? तपोधन! उसने अपना नगर क्यों त्यागा? उसने मूलनारायणी देवी को कैसे जाना? बाली के राज्य को कैसे प्राप्त किया? इन सब बातों को आप कृपाकर बतलायें ।। १६-१८ ।।

व्यासजी बोले—महाभागो! किष्किन्धा में 'बाली' और 'सुग्रीव' नाम के दो भाई हुए। वे सगे भाई थे। वे सत्यनिष्ठ, शान्त तथा सब विद्याओं में निपुण थे। इसके साथ ही वे

सुग्रीवस्तु महाभागास्तारां प्राप्य यशस्विनीम् । नवोढां सुकुमाराङ्गीं साक्षात् सुरसुतोपमाम् ॥
लक्ष्मीमिव गुणोपेतां पत्नीं प्राप्य शशिप्रभाम् । स मुदं परमं लेभे निःस्वः प्राप्य यथा धनम् ॥
स रेमे परमं कालं तया सह तपोधनाः । काननेषु च कुञ्जेषु वनेषूपवनेषु च ॥२३॥
कदाचिन्मुनिशार्दूलास्तारां ताराधिपप्रभाम् । तां ददर्श ततो वाली रूपयौवनशालिनीम् ।२४।
तां दृष्ट्वा मोहमापन्नो मन्मथेन प्रपीडितः । जग्राह च करं तस्या देवमार्गविरोधकः ॥२५॥

तारां स ताराधिपशोभिताननां जहार सुग्रीवसुखावहां पराम् ।
प्रगृह्य तां वानरपुङ्गवेश्वरो लतां यथा वन्यगजो दुरासदाम् ॥ २६ ॥
हृत्वा च तारां प्रथमं स दुर्मतिर्मतिं च सुग्रीववधे प्रचक्रिरे ।
स्वसौहृदं त्यज्य विमोहितो धिया स्वयं सहामात्यपुरोहितैर्बली ॥ २७ ॥

स हृत्वा प्रहृतां तारां सुग्रीवो बिमना यथा । पप्रच्छ मन्त्रिमुख्यानां मन्त्रं मन्त्रविदां वरः ।२८।
शुश्राव स्ववधोपायं ताराहेतोस्तपोधनाः । तारां तथाकृतां श्रुत्वा बालिना बाहुशालिना ॥२९॥
स चकार महाबुद्धिर्वानरेण हनूमता । सह पलायनं विप्रा बलविद्भिश्च वानरैः ॥३०॥
स कदाचिन्महाभागाः सह तेन हनूमता । पलायमानो नागाख्यं गिरिं नागनिषेवितम् ॥३१॥
ययौ नागसहस्राणां परिवारैर्विराजितम् । तत्र गत्वा चरन् क्वापि ददर्श गिरिकन्दराम् ॥३२॥
पुण्ये नागपुराह्वे तु पर्वते मुनिसत्तमाः । मूलनारायणीं देवीं महादेवस्य वल्लभाम् ॥३३॥
सिद्धगन्धर्वमुख्यैश्च सेवितां सुमनोहराम् । मूलनारायणीं नाम्ना नागकन्यानिषेविताम् ॥३४॥
तस्या मध्ये महादेवीं दीपज्योतिमिवापराम् । ददर्श नागमुख्येन सेवितां सुमनोहराम् ॥३५॥
तां दृष्ट्वा देवराजस्य वरदां लोकपूजिताम् । पूजयामास विधिवत् सह तेन हनूमता ॥३६॥
स बालिभयवित्रस्तस्तस्थौ तत्र महामनाः । पूजयन् गिरिजां देवीं मूलनारायणीं गुहाम् ॥३७॥

परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार के कारण अधिक शोभायमान रहे । सुग्रीव का विवाह तारा के साथ हुआ था । वह बड़ी यशस्विनी, सुकुमाराङ्गी, नवोढा तथा लक्ष्मी की तरह गुणसम्पन्न एवम् अप्सरा के समान सुन्दरी थी । उस चन्द्रकान्ता तारा को पाकर सुग्रीव, दरिद्र को धनप्राप्ति की तरह बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने चिरकाल तक वनों, लतागृहों तथा उपवनों में उसके साथ रमण किया । एक दिन बाली ने रूपसम्पन्ना तारा को देखा । तब उसने मोहवश कामपीड़ित हो उसका हाथ पकड़ लिया । सुग्रीव की सुखसाधिका चन्द्रमुखी उस तारा को जङ्गली हाथी के द्वारा उखाड़ी हुई लता के समान बाली हरण कर ले गया । साथ ही वह सुग्रीव को मारने के लिये भी उद्यत हो गया । पूर्व मैत्री को उसने त्याग दिया । तब ताराहरण से दुःखी सुग्रीव ने प्रमुख मन्त्रियों से परामर्श कर पूछा कि आगे क्या किया जाय ? तपोधनों ! तारा के कारण उसने अपने वध किये जाने के उपाय के सम्बन्ध में भी सुना । तारा को इस प्रकार छीन लेने के कारण सुग्रीव ने यह बुद्धिमानी की कि वह हनुमान् को साथ ले 'नागपर्वत' पर आ गया । वह पर्वत नागों के परिवारों से संकुलित था । उसने भ्रमण करते हुए यों ही एक गुहा देखी । वह गुहा पवित्र नागपुर पर्वत में महादेव-प्रिया 'मूलनारायणी देवी' के नाम से विख्यात थी । वहाँ सिद्ध, गन्धर्व एवम् नागकन्यायें देवी की सेवा में संलग्न रहीं । उस गुहा के मध्य में उसे दीप-ज्योति की तरह प्रकाश दिखाई दिया । सुग्रीव ने हनुमान् के साथ इन्द्र

कदाचित् सा महादेवी सर्वदेवनमस्कृता। आविर्बभूव पुरतः सुग्रीवस्य महात्मनः ॥३८॥
ततः सा वानरं देवी वचनं समुवाच ह। मनोऽभिलषितां सिद्धिं याचयस्व ददाम्यहम् ॥३९॥
ततो वव्रे स सुग्रीवो हत्वा बालिनमाहवे। तारां तथा नरेशं च साहाय्यकरणे जनम् ॥४०॥

व्यास उवाच—

ततोवाच महादेवी वानरं बलिनां वरम्। स्वल्पैरहोभिः साहाय्यं प्राप्स्यसे रघुनायकम् ॥४१॥
कर्तव्यं तस्य साहाय्यं त्वया वानरपुङ्गव। स तुभ्यं वानराणां वै राज्यं दास्यति राघवः ॥४२॥
निहत्य बालिं बलिनं तारया सह शोभिनम्। साम्प्रतं रामसरितोर्मध्ये बालीश्वर हरम् ॥४३॥
त्वद्वधाय स ते भ्राता सम्पूजयति शङ्करम् ॥ ४४ ॥

मम प्रसादाद्वरदस्य शम्भोर्वरं न संप्राप्स्यति वानरेशः।
न ते प्रहाराभिमुखः कदाचिद् अतः परं सम्भविता स राजा ॥ ४५ ॥
सुरेश्वरस्यापि महाभयं कपे न ते प्रहाराभिमुखे भविष्यति।
मम प्रभावाद् रघुनायकः स्वयं गृहे समायात्यनुजेन सम्मतः ॥ ४६ ॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत। प्रहृष्टवदनो भूत्वा सुग्रीवोऽपि गृहं ययौ ॥४७॥
मूलनारायणाख्यानं नारायण्यास्तथैव च। कथितं मुनिशार्दूलाः पातकौघप्रणाशनम् ॥४८॥
यामाराध्य महानागाः संस्थिता नागपर्वते। सुग्रीवोऽपि च तां प्राप्य परां सिद्धिं प्रजग्मिवान् ॥
यः शृणोति महाभागा मूलनारायणीं कथाम्। प्राप्नोति परमां सिद्धिं महामायाप्रसादतः ॥५०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नारायणीमाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥

को भी वर देने वाली उस देवी का पूजन किया। महाशयों ! बाली के भय से वह वहीं रहने लगा। कुछ समय के बाद उसकी आराधना से सन्तुष्ट हो महादेवी सुग्रीव के समक्ष प्रकट हो उससे अभीष्ट वर माँगने के लिये कहने लगीं। तब सुग्रीव ने बाली का वध, तारा की प्राप्ति तथा किसी राजा का सहायक के रूप में मिलना—ये तीन वर माँगे ॥ १९–४० ॥

व्यासजी ने पुनः कहा—तब भगवती ने सुग्रीव से कहा कि तुम भगवान् रामचन्द्र की सहायता प्राप्त करोगे। सुग्रीव ! तुम उनकी सहायता करना, वे तुम्हारा राज्य वापस करा देंगे। साथ ही बाली का वध कर तारा भी मिल जायेगी। इस समय बाली तुम्हारे वध हेतु रामगङ्गा (पूर्वी) के मध्य 'बालीश्वर'[1] का पूजन कर रहा है। मेरी कृपा से वह शिव से वर माँग नहीं पायेगा। और न वह तुम्हारे प्रहरणाभिमुख हो सकेगा। हे वानर ! अब तुम्हें देवराज भी भयभीत नहीं कर सकते। मेरी प्रेरणा से रघुनाथजी भी अपने भाई के साथ स्वयं तुम्हारे घर आयेंगे ॥ ४१–४६ ॥

व्यासजी कहते रहे—ऐसा कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। सुग्रीव भी अपने घर वापस आ गया। विप्रवरों ! इस प्रकार मैंने भगवती तथा मूलनारायण का आख्यान आप

---

१. 'बल' में 'बालेश्वर' का मन्दिर।

८५

व्यास उवाच—

वासुकेः पदसम्भूतां बहुलां यो महानदीम् । निमज्जति महाभागाः स याति परमां गतिम् ।१।
मूले तस्या महादेवी बहुलाख्या प्रपूज्यते । तां सुपूज्य निमज्याशु महेन्द्रभवनं व्रजेत् ।।२।।
ततस्तु फेनिलासङ्गे निमज्य मुनिसत्तमाः । महेन्द्रभवनं याति मानवो मुनिसत्तमाः ।।३।।
तस्या वामे महाभागाः कालीयपदसम्भवा । बहुलासङ्गमं पुण्यं सङ्गता मुनिसत्तमाः ।।४।।
तस्यां कोटीश्वरी देवी पूज्यते नागनायकैः । तां सुपूज्य नरो याति महेन्द्रभवनं शुभम् ।।५।।
कोकाबहुलयोर्मध्ये हरः सम्पूज्यते द्विजाः । वासुकिप्रमुखैर्नागैः सेवितः सुमनोहरः ।।६।।
दक्षिणे पिङ्गलं पूज्य भुजङ्गं सरितो जले । निमज्य मानवो विप्राः पातकेभ्यः प्रमुच्यते ।।७।।
माहात्म्यं नागमुख्यानां सर्वपापप्रणाशनम् । कथितं मुनिशार्दूला किमन्यत् प्रष्टुमिच्छथ ।।८।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पर्वतमाहात्म्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।।

लोगों को सुना दिया है । उनकी उपासना कर नागकुल नागपर्वत में निवास करते हैं। उनकी कृपा के कारण ही सुग्रीव को वर प्राप्त हुआ। महाभागों! जो मूलनारायण की कथा सुनता है, वह परम सिद्धि प्राप्त करता है ।। ४७-५० ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'नारायणी' माहात्म्य नामक
चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।

व्यासजी ने कहा—महाभागों! 'वासुकि' नाग के चरण से उत्पन्न 'बहुला' नदी में स्नान करने से परम सिद्धि प्राप्त होती है। उसके उद्गम-स्थल पर 'बहुला' देवी का पूजन करने से महेन्द्रभवन में रहने का लाभ होता है। तदनन्तर 'फेनिला' के संगम में स्नान करने पर भी इन्द्रपुरी में जाने का अवसर मिलता है। उसके बायीं ओर 'कालीय' नाग के पादतल से निकली नदी 'बहुला' नदी में मिलती है। वहाँ 'कोटीश्वरी' देवी का पूजन कर इन्द्रभवन मिलता है। 'द्विजवरों! 'कोका' और 'बहुला' के मध्य 'हर' का पूजन किया जाता है। उसके दक्षिण भाग में 'पिङ्गल' नाग का पूजन कर नदी में स्नान करने से मुक्ति-लाभ होता है। इस तरह मैंने पापविनाशक प्रमुख नागों का वर्णन कर दिया है। अब आप लोग क्या पूछना चाहते हैं? ।। १-८ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'नागपर्वत'-माहात्म्य नामक
पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।।

८६

ऋषय ऊचुः—

ततो याः सरितः पुण्या ये देवाः सन्ति वै द्विजाः। तेषां च ब्रूहि माहात्म्यं सर्वज्ञोऽसि स्वतो यतः॥१॥

व्यास उवाच—

पिङ्गलस्य महाभागा गौरी नाम सरिद्वरा। विद्यते देवगन्धर्वैः सेविता सुमनोहरा॥२॥
गौरनागेन सा गौरी वाहिता पुण्यवाहिनी। तस्यां तीर्थान्यनेकानि वर्ण्यन्ते मुनिसत्तमाः॥३॥
तस्यां स्नात्वा च विधिवत् सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा। महेन्द्रभवनं याति मानवो मुनिसत्तमाः॥४॥
मूले तस्या बलिर्नागः पूज्यते नागनायकैः। तं सुपूज्य निमज्याशु परां गतिमवाप्नुयात्॥५॥
वृद्धबालीश्वरो देवो वृद्धबालीश्वरो हरः। पूज्यते नागमुख्येन पिङ्गलेन महात्मना॥६॥
ह्रदे तस्मिन् महाभागा निमज्य सुसमाहितः। सन्तर्प्य पितॄन् देवादीन् वृद्धबालीश्वरं हरम्॥
सम्पूज्य मानवो याति महेन्द्रभवनं शुभम्। गौरीभुजङ्गसरितोः सङ्गमे मुनिसत्तमाः॥८॥
भुजङ्गेशं हरं पूज्य विधिवद्द्विजसत्तमाः। महेन्द्रभवनं याति मानवो नात्र संशयः॥९॥
ततस्तु निर्झरं विप्रा वर्ण्यते सिद्धनायकैः। यत्र स्नात्वा नरो याति शिवलोकं न संशयः॥१०॥
ततस्तु निर्झरप्रान्ते लुम्बकेशो महेश्वरः। विद्यते मुनिशार्दूला गौर्या सह शिवः स्वयम्॥११॥
यत्र गौरीजलैः पुण्यैर्गणगन्धर्वकिन्नराः। अभिषिञ्चन्ति देवेशं लुम्बकेशं तपोधनाः॥१२॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मर्षे! तदनन्तर वहाँ जो पावन तीर्थ और देवता हैं, उनके माहात्म्य का वर्णन करें॥ १॥

व्यासजी ने कहा—महाभागों! 'पिङ्गल' नाग[1] के पास 'गौरी'[2] नाम की नदी को 'गौर' नाग ने प्रवाहित किया था। वह देव और गन्धर्वों से पूजित है। उसमें अनेक तीर्थ हैं। उनमें स्नान एवं तर्पणादि करने से महेन्द्रभवन प्राप्त होता है। उसके मूल में 'बालि' नामक नाग का पूजन करने से सद्गति प्राप्त होती है। 'पिङ्गल' नाग वहाँ पर 'वृद्धबालीश्वर' का पूजन करते हैं। मुनिवरों! वहाँ ह्रद में स्नान करने और पितृतर्पण तथा 'वृद्धबालीश्वर' का पूजन करने से इन्द्र-पदवी मिलती है। 'गौरी' और 'भुजङ्गा'[3] नदियों के सङ्गम में 'भुजङ्गेश' शिव[4] का विधिपूर्वक पूजन करने से इन्द्रभवन की प्राप्ति होती है। तदनन्तर एक 'झरना' है। वहाँ स्नान करने से शिवलोक प्राप्त होता है। उस परिसर में 'लुम्बकेश' शिव के साथ 'गौरी' का भी पूजन किया जाता है। तपस्वियों! वहाँ शिवजी के 'गण', 'गन्धर्व' तथा 'किन्नर'

---

१. 'छन्दःशास्त्र' के प्रणेता 'पिङ्गल' से इनका तादात्म्य स्थापित किया जाता है।

२. स्थानीय नाम—'गुरघटिया'।

३. स्थानीय नाम 'घाङ्ली'।

४. भुजङ्गेश शिव 'गराऊँ' के पास पट्टी मल्ला 'बड़ाऊँ' में है। 'भुजङ्गेश' हर से नीचे 'छीड़ेश्वर' का झरना है। यह १५० फीट ऊँचा है। यह 'झरना' सूर्यकुण्ड से लुम्बक—ह्रद में गिरता है। 'लुम्बकेश' काले पत्थर की मूर्ति है। उन पर झरने की धारा क्रमशः सिर व चरणों पर गिरती रहती है। झरने के समीप ही 'लुम्बकगुहा' है। वहीं 'वृद्धपुगीश्वर' हैं।

भवान्या सह देवेशो जलक्रीडां करोति वै। महेन्द्रप्रमुखैर्देवैः सेवितो यत्र वै द्विजाः ॥१३॥
निर्झरान्ते महादेवं लुम्बकेशं तपोधनाः। दारिद्रयभीतिमशुभां पूज्य नाप्नोति मानवः ॥१४॥
निर्झराद्वामपार्श्वे वै लुम्बकाख्या महागुहा। सेविता रुद्रकन्याभिर्नागकन्याभिरेव च ॥१५॥
तस्यां जागर्ति देवेशो वृद्धपूगीश्वराह्वयः। जरारोगभयं तावत् तावद् दारिद्रयजं भयम् ॥१६॥
यावद् गौरीजले स्नात्वा वृद्धपूगीश्वरो हरः। न समाराधितो विप्रा वर्तते नात्र संशयः ॥१७॥
लुम्बकाख्यह्रदे स्नात्वा सप्तरात्रं तपोधनाः। वृद्धपूगीश्वरं देवं सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ॥१८॥
मनुष्येषु जरादुःखं नायाति मुनिसत्तमाः। अजरामरदेहत्वं ये वसन्ति भुवः स्थले ॥१९॥
पूगीशं मासमात्रं ते पूजयन्तु समाहिताः। ये धनं विपुलं विप्रा वाञ्छन्ति वसुधातले ॥
निर्झरान्ते गुहायां वै पूगीशं पूजयन्तु ते ॥२०॥

इति श्रीमानसखण्डे स्कन्दपुराणे वृद्धपूगीश्वरमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥

८७

व्यास उवाच—

ततो गौरीसरिन्मध्ये पुण्यो बालीसरः स्मृतः। तत्र वामे महाभागाः चक्रद्वारेश्वरं हरम् ॥१॥
पूजयन्ति गुहायां वै निमज्य विधिपूर्वकम्। ततो गौरी महापुण्या रामगङ्गां सुशोभनाम् ॥२॥
सम्मिलन्मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गौरीमाहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥

गौरी के जल से शङ्कर का अभिषेक करते हैं। वहीं जलाशय में भगवान् शङ्कर पार्वती के साथ जलक्रीडा करते हैं। झरने के समीप 'लुम्बकेश' का पूजन करने से दारिद्रय-भय नहीं रहता। उस झरने के बायीं ओर रुद्रकन्याओं तथा नागकन्याओं से सेवित 'लुम्बका' नाम की बड़ी गुहा है। वहाँ 'वृद्धपूगीश्वर' देव का पूजन होता है। वृद्धपूगीश्वर' की आराधना करने के पहले तक ही जरा, रोग और दारिद्रय-भय रहता है। महर्षियों! 'लुम्बक-ह्रद'[1] में स्नान कर सात रात तक विधिपूर्वक 'वृद्धपूगीश्वर' का पूजन करने से जरा-भय नहीं रह जाता। देह अजरामर की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। विप्रवरों! धन के इच्छुक व्यक्ति मास-पर्यन्त 'पूगीश्वर का पूजन करें ॥ १–२० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वृद्धपूगीश्वर-माहात्म्य' नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—महाभागों! तदनन्तर 'गौरी' नदी के मध्य पवित्र 'बालीसर'[2] है। वहाँ बायीं ओर 'चक्रद्वारेश्वर' हर हैं। जो लोग स्नानपूर्वक गुहा[3] में उनका पूजन करते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होता है। तदनन्तर 'गौरी' नदी पापविनाशिनी 'रामगङ्गा' (पूर्वी) में मिल जाती है ॥ १–३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गौरी' माहात्म्य नामक सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. स्थानीय नाम—'छीड़ की ताल'।
२. 'बलिघट' नाम से जाना जाता है। ३. 'बगु'उडचार नाम से जानी जाती है।

ऋषय ऊचुः—

अजरारोग्यदं क्षेत्रं धनधान्यप्रवर्धकम्। कथयस्व महाभाग भोगमुक्तिप्रदं तथा ॥१॥

व्यास उवाच—

सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं शृण्वन्तु मुनिपुङ्गवाः। भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं धनधान्यप्रवर्धकम् ॥२॥
व्रतोपवासैर्यैर्देवा नान्यजन्मनि तोषिताः। ते नरा मुनिशार्दूला जरादुःखैः प्रपीडिताः ॥३॥
धनधान्यविहीनाश्च रटन्ति भुवि मण्डले। आरोग्यं परमां वृद्धि मनसा ये समाहिताः ॥४॥
वसन्ति मुनिशार्दूलास्तोषयन्ति शिवं हि ये। गौर्या दक्षिणभागे वै देवः पूगीश्वरः स्मृतः ॥५॥
भवान्या सह देवेशो राजते मुनिसत्तमाः। पूगीश्वरस्थलमपि यो याति मुनिसत्तमाः ॥६॥
इहातुलां श्रियं प्राप्य भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति। धनधान्यादिभिः पूर्णाः पुत्रपौत्रविवर्धिताः॥७॥
भवन्ति मानवाः सम्यक् पूगीशस्मरणादपि। यमाहुर्वैद्यनाथं हि भवान्या सह शोभितम् ॥८॥
तद्गतानां मानवानां नहि दारिद्रयजं भयम्। पूगीश्वरेति विख्यातो देवदेवो महेश्वरः ॥९॥
दक्षिणे नागपूरस्य वामे दारुगिरिः स्मृतः। महेन्द्रप्रमुखा देवा बाणाद्या दैत्यनायकाः ॥१०॥
यमाराध्य स्थितास्तत्र क्रीडन्तो गौरिनिर्झरे। विद्यते मुनिशार्दूला मनोऽभिलषितप्रदः ॥११॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—महर्षे ! अब हम लोग अजर और आरोग्यप्रद, धन-धान्य-वर्धक तथा भुक्ति-मुक्तिप्रद क्षेत्र के सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हैं। अतः हमें बतलायें ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठों ! भुक्ति-मुक्तिप्रद तथा धन-धान्य-वर्धक क्षेत्र के विषय में आप लोग सुनें। जिन लोगों ने व्रत तथा उपवासादि कर पूर्व जन्मों में देवों को सन्तुष्ट नहीं किया, वे ही लोग अन्य जन्मों में जरा तथा अन्यान्य दुःखों से पीड़ित रहते हैं एवं धन-धान्य-रहित हो इधर-उधर मारे फिरते हैं। आरोग्य और सुख की वृद्धि चाहने वाले लोग मन में समाहित हो भगवान् शङ्कर को प्रसन्न रखते हैं। 'गौरी' नदी के दक्षिण भाग में 'पूगीश्वर'[1] महादेव विराजमान हैं। वे पार्वती के साथ सर्वदा रहते हैं। मुनिवरों ! जो मनुष्य 'पूगीश्वर' की यात्रा के उन्मुख भी रहता है—वह श्री, धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, भुक्ति, मुक्ति आदि सब कुछ पा लेता है। 'पूगीश्वर' के स्मरणमात्र से सकल सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वे भवानीसहित 'वैद्यनाथ' के रूप में ही जाने गए हैं। उनके समीप पहुँचने पर मानव को दारिद्रय व्याप्त नहीं होता। नागपुर (नाकुरी) के दक्षिण में 'दारुपर्वत' (द्यारीधुर) है। वह महेन्द्रादि देवों तथा बाणादि[2] दैत्यों से सेवित है। वहाँ पूगीश्वर को अभिलक्षित कर ये लोग 'गौरी' के झरने में क्रीड़ा करते हुए रहते हैं। पूगीश्वर के दर्शन करने से वैद्यनाथ तथा महाकाल से दस गुना एवं 'स्वर्णहंस' की पूजा से भी अधिक फल प्राप्त होता है। वही ऋणमोचक तथा भवसागर के पार कराने वाले हैं। वही कर्ता, विकर्ता, सम्पत्ति, विपत्ति, मृत्यु तथा जन्म

---

१. 'पूगेश्वर' नाम से प्रसिद्ध हैं। २. काली-कुमायूँ क्षेत्रस्थ 'बाराकोट' में भी इनका स्थान है।

वैद्यनाथाद्दशगुणं महाकालात्तथैव च। यस्य सन्दर्शनात् पुण्यं प्राप्यते नात्र संशयः ॥१२॥
मानसे स्वर्णहंसस्य दर्शने यत्फलं विदुः। पूगीश्वरस्य देवस्य दर्शनात्तत्फलं भवेत् ॥१३॥
भुक्तिमुक्तिप्रदो देवो धनधान्यप्रदस्तथा। स एव भूतले देवो विद्यते नात्र संशयः ॥१४॥
ऋणसागरमग्नानां मग्नानां दुःखसागरे। सैव प्लवो मनुष्याणां विद्यते नात्र संशयः ॥१५॥
सैव कर्ता विकर्ता च सम्पदो मुनिसत्तमाः। सैव मृत्युर्मनुष्याणां सैवोत्पत्तिकरः स्मृतः ॥१६॥
सैव भूमण्डले रुद्र एक एव विराजते। तथापि स्थानभेदेन विशिष्टः कथ्यते द्विजाः ॥१७॥
तं नागा नागपुत्र्यश्च सम्प्राप्य पर्वणि द्विजाः। पूजयन्ति महार्हैश्च मणिभिः कमलैस्तथा ॥१८॥
पर्वणां दिवसैस्तत्र नागयागमहोत्सवः। विद्यते मुनिशार्दूलाः क्षेत्रे पूगीश्वराह्वये ॥१९॥
यात्रा सर्वासु तिथिषु वासरेषु तथैव च। देवानां दानवानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥२०॥
विद्यते मुनिशार्दूलास्तत्र पुण्या कुहूं विना। पूगीक्षेत्रं समायान्ति नागाः पर्वणि पर्वणि ॥२१॥
तमाराध्य महादेवं समश्नन्ति विनिश्चिताः। ये चरन्ति महाविघ्नं नागानां पुण्यकारिणाम् ॥२२॥
शापं ते नागमुख्यानां समश्नन्ति न संशयः। कुहू-निदिवसं प्राप्य तद्भक्तैरपि वै द्विजाः ॥२३॥
वर्जनीया महायात्रा तत्र पूगीश्वरस्य हि। न हि नागा उपासन्ते मानवैः सह शङ्करम् ॥२४॥
नागपूजां विना तां तु कः समर्थोऽस्ति भूतले। यस्मिन्नहनि सर्पाणां यात्रा सम्यक् प्रकीर्तिता ॥
देवानां दानवानां च न तस्मिन्नहनि स्मृता। अनुक्रमेण देवेशमुपासन्ते महोरगाः ॥२६॥
न देवा न च गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः। यथा पूगीश्वरं देवं पूजयन्ति महोरगाः ॥२७॥
न जरा क्षुत् पिपासा च न च रोगभयं महत्। जायते मुनिशार्दूलाः पूगीशस्मरणादपि ॥२८॥
तमाराध्य स्थिताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः। तस्य देवस्य माहात्म्यं कथितुं न हि शक्यते ॥
जलक्रीडापरिश्रान्तं भवान्या सह शङ्करम्। पूजयित्वा च पूगीशं पूगीशाख्यां प्रचक्रिरे ॥३०॥

के देने वाले हैं। भूमण्डल में वही एक रुद्र विराजमान हैं। द्विजवरों! तथापि स्थानभेद से उनमें वैशिष्ट्य प्रकट होता रहता है। नाग और नागकन्यायें वहाँ आकर विशेष पर्वों में बहुमूल्य रत्नों तथा कमल पुष्पों से उनका पूजन करते हैं। विशेष पर्वों में नागसमुदाय पूगीश्वर में उत्सव मनाता रहता है। पूगीश्वर-धाम में देव, दानव, गन्धर्व तथा अप्सरायें अमावास्या को छोड़ सब तिथियों और वारों में यात्रार्थ आते हैं। महादेव का पूजन कर तब भोजन करते हैं। नागों के विघ्नकर्ता वहाँ शाप-भाजन हो जाते हैं। शिवभक्त अमावास्या के दिन वहाँ की यात्रा न करें। नागकुल जिस दिन वहाँ आराधना करते हैं, उस दिन अन्य लोग अपनी यात्रा स्थगित रखें, क्योंकि नागसमुदाय दूसरों के साथ पूजा नहीं करता। उस दिन नागों के अतिरिक्त और कौन पूजा करने में समर्थ हो सकता है? अतः नागों की यात्रा के दिन देवों और दानवों को भी पूजा करने की सलाह नहीं दी जाती। तदनुसार सब लोग यथाक्रम पूजा करें। जिस प्रकार महान् नाग 'पूगीश्वर'[1] की पूजा करते हैं, उस प्रकार देवादि-गण नहीं कर सकते। पूगीश के स्मरण करने से ही जरा, क्षुधा, तृषा और रोगभय दूर हो जाते हैं। उनकी आराधना के लिये ब्रह्मादिगण वहाँ उपस्थित होते हैं। उनका माहात्म्य वर्णनातीत है। जलक्रीडा से थके हुए पार्वती-सहित शङ्कर के पूजनोपरान्त उन्हें 'पूगीश्वर' नाम से प्रख्यात किया गया॥ २-३०॥

---

१. 'पूगीश्वर' ग्राम तथा शिवलिङ्ग 'बेनीनाग' से २½ मील की दूरी पर हैं।

ऋषय ऊचुः—

कथं तस्य महाभाग पूगीशाख्यां प्रचक्रिरे । के सम्प्रपूज्य सुभगाः सञ्जाता तद्वदस्व हि ॥३१॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ समुद्वाह्य गिरेः सुताम् । जलक्रीडां समारेभे सुपुण्ये गौरिनिर्झरे ॥३२॥
जलक्रीडां समारब्धां श्रुत्वा ब्रह्मादयो द्विजाः । देवाश्च दानवाश्चैव गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥३३॥
विद्याधरगणाश्चान्ये तथैवाप्सरसां गणाः । राजानो राजपुत्राश्च राजपत्न्यस्तथैव च ॥३४॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव तथाऽपरे । आत्मनो विहितां वृत्तिं परित्यज्य समाहिताः ॥
समाजग्मुर्जलक्रीडां द्रष्टुं कौतूहलेन वै । गायन्त्यः प्रहसन्त्यश्च राजपत्न्यो नृपैः सह ॥३६॥
ददृशुस्तस्य देवस्य जलक्रीडामहोत्सवम् । देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे ॥३७॥
गायन्त्यन्ये स्तुवन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये दिवौकसः । शङ्करस्य जलक्रीडां दृष्ट्वा संमुमुहुः परे ॥३८॥
दिव्यां देवीं पुरस्कृत्य विमानस्था दिवौकसः । सहस्रं क्रीडयामासुः सुपुण्ये गौरिनिर्झरे ॥३९॥
तथा देवाः सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य महेश्वरम् । विमानस्थाः सुचिक्रीडुरप्सरोभिः समन्ततः ।४०।
ततः क्रीडापरिश्रान्तो भवान्या सह शङ्करः । क्षेत्रं जीवेशसंज्ञं वै जगाम मुनिसत्तमाः ॥४१॥
तत्र देवाः सगन्धर्वाः पुङ्गवध्वजधारिणम् । पूगीफलैः सकुसुमैः पूरितं परमेश्वरम् ॥४२॥
पूगीश्वरेति तं देवं तुष्टुवुर्मुनिसत्तमाः । गौर्या दक्षिणभागे वै दृष्ट्वा पूगीश्वरं हरम् ॥४३॥
प्रजग्मुस्ते यथायाता देवदानवमानवाः । यं वा सञ्चिन्त्य सत्कामं समायाता दिवौकसः ॥४४॥
तथान्ये देवगन्धर्वा दैतेयाश्च महोरगाः । दानवा मानवाश्चैव तं तं प्रापुर्विनिश्चितम् ॥४५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेतरजातयः । यां यां वृत्तिं परित्यज्य समायातास्तपोधनाः ॥
तां तां प्रापुः सुसंपूर्णां प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥ ४७ ॥

ऋषियों ने पूछा—महाभाग ! उनका नाम 'पूगीश्वर' किन लोगों ने रखा ? तथा उस नामकरण में क्या हेतु रहा ? ॥ ३१ ॥

व्यासजी बोले—सत्ययुग के आरम्भ में भगबान् ने पार्वती के साथ विवाह कर पवित्र झरने में जलक्रीडा आरम्भ की । इस समारम्भ को सुन ब्रह्मादि देव, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस, विद्याधर, अप्सरागण, अनेक राजसमुदाय, राजकुमार, रानियाँ तथा ब्राह्मणादि वर्ण के लोग अपनी-अपनी वृत्ति को छोड़ प्रसन्नता-पूर्वक कुतूहलवश वहाँ आ पहुँचे । उस महोत्सव को देख देवताओं ने स्तुति करनी आरम्भ की । फिर सभी देवता मोहित हो अपनी-अपनी शक्तियों के साथ जलक्रीड़ा में सम्मिलित हो गए । इसके साथ ही गन्धर्वों सहित देवगण विमानस्थ अप्सराओं सहित चारों ओर क्रीड़ा में संलग्न हो गये । मुनिवरों ! भगवान् शङ्कर परिश्रान्त होने पर जीवेश-क्षेत्र की ओर चले गए । वहाँ वृषध्वजधारी भगवान् का देवताओं ने पुष्पादि पूजासामग्री के साथ 'पूगीफलों' (सुपारी) से पूजा की । तथा 'पूगीश्वर' नाम से उनकी स्तुति की । फिर सब लोग 'गौरी' के दक्षिण भाग में 'पूगीश्वर' का दर्शन कर यथास्थान वापस हो गए । जो जिस कामना से आया था, उसकी वह कामना पूरी हो गई । ब्राह्मणादि सभी वर्ण के लोग जो-जो अपना कार्य छोड़ कर आए थे, वे सब अपने कामों में लग गए ॥ ३१-४७ ॥

ऋषय ऊचुः—

कानि तीर्थानि पुण्यानि सन्ति तत्र तपोधन । कथं पूजाविधिस्तस्य कुत्र कुत्रास्ति मज्जनम् ।।

व्यास उवाच—

पूगीशपदसंभूता जटागङ्गा सुशोभना । विद्यते देवगन्धर्वैः प्रार्थिता सुमनोहरा ।।४९।।
सा गौर्याः सङ्गमे प्राप्य पूज्यते सिद्धनायकैः । रुद्रतीर्थमिति ख्यातं सङ्गमे मुनिसत्तमाः ।।५०।।
तत्र स्नात्वा च विधिवत् मौनमास्थाय दुर्धरम् । ततो बालिसरः पुण्यं तयोर्मध्ये तपोधनाः ।।
गत्वा निमज्य विधिवत् सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा । व्रजेत् पूगीश्वरं देवं मौनी भूत्वा तपोधनाः ।।
तत्र गत्वा च देवेशं परिक्रम्य समाहितः । क्षेत्रपालं प्रपूज्याशु द्वारपालांस्तथेतरान् ।।५३।।
महादेवं प्रपूज्याशु हरार्धाङ्गस्थितां शुभाम् । ततः पूगीश्वरं देवं शालितण्डुलपूरितम् ।।५४।।
विधाय चाञ्जलिं पुण्यं पूजयेत्सुसमाहितः । पूरयित्वा महादेवं सुशुभ्रैः शालितण्डुलैः ।।५५।।
गन्धपुष्पाक्षतैः शुभ्रैर्देशकालोचितैः फलैः । पूजयेन्मुनिशार्दूला यथाशक्ति शिवापतिम् ।।५६।।
सम्पूज्य शङ्करं शान्तं शालितण्डुलपूरितम् । पुनरेवाञ्जलिं कृत्वा प्रार्थयेत्सुसमाहितः ।।५७।।
'भवसागरमग्नोऽहं निमग्नो ऋणसागरे । गतोऽस्मि शरणं शम्भो त्राहि मां भवसागरात्' ।५८।
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं पूजयित्वा यथाविधि । अनुज्ञाप्य शिवं शान्तं विनिर्गच्छेच्छिवालयात् ।।
अनेन विधिना देवं योऽपसर्पति मानवः । सम्प्राप्य परमां सिद्धिमिह लोके तपोधनाः ।।
शिवेन सह सायुज्यां मुक्तिं याति परत्र च ।।६०।।
कथितं हि मया विप्राः पूगीशाख्यानमुत्तमम् । यः शृणोति हरस्याग्रे स याति परमां गतिम् ।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पूगीश्वरमाहात्म्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ।।

ऋषियों ने पूछा - तपोधन ! वहाँ कौन से पवित्र तीर्थ हैं ? उनकी पूजाविधि क्या है ? तथा स्नान कहाँ किया जाता है ? ।। ४८ ।।

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों ! देवादि तथा गन्धर्वों से प्रार्थित 'पूगीश' के चरणसे 'जटा-गङ्गा' निकली है । वह आगे चलकर 'गौरी' नदीमें मिलती है । वह देव, सिद्धगण तथा गन्धर्वादि से पूजित है । सङ्गम में 'रुद्रतीर्थ' है । वहाँ स्नान करने के पश्चात् मौन धारण कर, 'बालिसर' में स्नानतर्पणादि कर मौनी ही 'पूगीश्वर' के समीप जा प्रदक्षिणा की जाय । वहीं 'क्षेत्रपाल'-'द्वारपालादि' के पूजनोपरान्त शिव के अर्धाङ्ग में स्थित भगवती का पूजन करना चाहिये । तब शालि-तण्डुलों से पूरित'पूगीश्वर' के समक्ष हाथ जोड़ कर विविध पूजा सामग्री तथा मौसम के अनुसार उत्पन्न फल आदि से पार्वती-पति का अर्चन करना चाहिये । पुनः हाथ जोड़ कर ध्यानपूर्वक 'पूगीश्वर' की इस प्रकार प्रार्थना करें—'प्रभो ! मैं भवसागर में डूबा हूँ । मुझे ऋणसागर से उबारिये । मैं आपकी शरण में हूँ' । तदनन्तर यथाविधि पूजाकर शिवजी की आज्ञा से शिवालय के बाहर आ जाय । इस प्रकार जो भगवान् की सेवा में उपस्थित होता है, वह इस लोक में परम सिद्धि प्राप्त कर अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त करता है । विप्रवरों ! इस

८९

ऋषय ऊचुः—

नागपर्वतसम्भूता या नद्यः सरयूं शुभाम् । सङ्गता मुनिशार्दूलाः श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥

व्यास उवाच—

नागानां फेनिलो नाम नागमुख्यः प्रकथ्यते । नागकन्यासहस्रेण सेवितो वरदस्तथा ॥२॥
तस्य पश्चिमभागे वै फेनिला सरितां वरा । कुहकानां विनाशाय यावत्तीर्णा महीतले ॥३॥
राजते मुनिशार्दूलाः सरयूसङ्गगामिनी । तस्यां स्नात्वा महाभागाः सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ॥
मानवो देवभवनं प्रयाति न वृथा भवेत् । मूले कुहकहं देवं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ॥५॥
द्वादशाब्दसमुद्भूतात्पातकात् विप्रतीर्यते । ततस्तस्यां महाभागाः सुपुण्यस्त्रिपुरासरः ॥६॥
विद्यते नागकन्याभिः सेवितः सुमनोहरः । तत्र स्नात्वा विधानेन गुरुत्वं याति मानवः ॥७॥
ततस्तु त्रिपुरां देवीं वामे सम्पूज्य मानवः । अब्दत्रयकृतात्पापात् प्रमुच्यति न संशयः ॥८॥
ततस्तस्यां शशाख्यं वै तीर्थमस्ति तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च मनुजः शशयोनिं न विन्दति ।९।
ततः कुहकहासङ्गे सुमेनासङ्गमं स्मृतम् । तत्र मेनां प्रपूज्याशु मानवो याति शाश्वतम् ॥१०॥
ततः सुषवतीसङ्गं विद्यते मुनिसत्तमाः । तयोर्मध्ये महादेवं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ॥
निमज्य च विधानेन भोगमाप्नोति मानवः ॥११॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नागपुरमाहात्म्ये एकोननवतितमोऽध्यायः ॥

प्रकार मैंने यह 'पूगीश्वर' का उत्तम आख्यान कह दिया है। जो इसे सुनता है वह सिद्धि-सम्पन्न हो जाता है ॥ ४९-६१ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पूगीश्वर'[१]-माहात्म्य नामक
अठासीवां अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की —ब्रह्मर्षे ! नागपर्वत से उत्पन्न 'सरयू' में सङ्गमित होने वाली नदियों के विषय में हम जानना चाहते हैं ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—विप्रवरों ! नागप्रमुख 'फेनिल' नागकन्याओं से सेवित होने के साथ ही वरद भी है। उसके पश्चिम भाग में 'कुहकों' के विनाश करने के लिए 'फेनिला' नदी[२] पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है। वह 'सरयू' में मिलती है। उसमें स्नान और तर्पण करने से 'देवभवन' मिलता है। उसके उद्गमस्थल पर 'कुहकह' देव का पूजन कर बारह वर्षों के पापों से मुक्ति मिलती है। वहीं 'त्रिपुरा-सर' है। वहाँ स्नान करने से गुरुत्व प्राप्त होता है। तब वामभाग में स्थित 'त्रिपुरा' देवी की पूजा कर तीन वर्षों के पापों से मुक्ति प्राप्त करें। वहीं 'शशतीर्थ' है। उसमें स्नान करने से शशयोनि नहीं मिलती। तब 'कुहकहा'[३] और

---

१. 'पुङ्गवीश्वर'।

२. 'फेणीनाग' के डांडे से यह नदी निकली है।

३. प्रचलित नाम—'कुलूर'।

९०

सूत उवाच—

ततस्तु ऋषयः सर्वे प्रणिपत्य तपोनिधिम्। व्यासं धर्मार्थतत्त्वज्ञं पप्रच्छुर्नृपसत्तम ।।१।।

ऋषय ऊचुः—

कथितं भवता ब्रह्मन् नागपर्वतवर्णनम्। तथैव नागमुख्यानां माहात्म्यं कथितं त्वया ।।२।।
महापातकलिप्तानामसत्सङ्गाभिगामिनाम्। परद्रोहरतानां च मानवानां दुरात्मनाम् ।।३।।
अधुना श्रोतुमिच्छामो येन सिद्धिः प्रजायते ।। ४ ।।

व्यास उवाच—

सरयूरामसरितोर्मध्ये नागगिरिः स्मृतः। यत्र नागकुलान्यष्टौ निवसन्ति तपोधनाः ।।५।।
दक्षिणे तस्य गिरिजा सिद्धगन्धर्वसेविता। गुहायां चण्डिका नाम विद्यते मुनिसत्तमाः ।।६।।
चण्डिकाक्षेत्रसदृशं नान्यं पश्यामि भूतले। यथा हिमाद्रिशिखरे यथा विन्ध्ये महेश्वरी ।।७।।
गुहायां सा तथा देवी पूजिता देवनायकैः। जागर्ति मुनिशार्दूलाश्चण्डिका चण्डविक्रमा ।।८।।
ब्रह्मर्षिभिर्महाभागा नारदाद्यैर्महर्षिभिः। सेविता सिद्धगन्धर्वैर्ब्रह्माद्यैस्त्रिदिवौकसैः ।।९।।
चण्डिकादर्शनाद्विप्रा वाजपेयफलं भवेत्। प्राप्यते नात्रसन्देहो मया सत्यं प्रकीर्तितम् ।।१०।।

'सुमेना' नदियों का संगम है। वहाँ 'मेना' का पूजन कर 'शाश्वत' शान्ति मिलती है। तब 'सुषवती' संगम में स्नान करने से भोगसुख प्राप्त होता है ।। २-११ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'नागपुर'-माहात्म्य नामक
नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।।

सूत पौराणिक बोले—राजन्! सब ऋषियों ने सर्वधर्मज्ञ महर्षि वेदव्यास को प्रणाम कर यह जिज्ञासा की ।। १ ।।

ऋषि कहने लगे—ब्रह्मन्! आपने नागमुख्यों तथा नागपर्वत का माहात्म्य तो बतला दिया। अब हम तापसन्तप्त, दुःसङ्गकारी, परद्रोही तथा दुरात्मा जनों के सिद्धि प्राप्त करने के उपायों को जानने के इच्छुक हैं ।। २-४ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—'सरयू' और 'रामगङ्गा' (पूर्वी) के मध्य 'नागगिरि' है। तपस्वियों! वह अष्टकुल नागों का निवास-स्थान है। उसके दक्षिण में सिद्ध और गन्धर्वों से पूजित 'गिरिजा' हैं। वहीं गुहा में 'चण्डिका' देवी हैं। उस क्षेत्र के समान कोई दूसरा क्षेत्र नहीं है। जिस प्रकार 'हिमालय' के शिखर पर तथा 'विन्ध्याचल' में देवी का पूजन होता है उसी तरह इस गुफा[1] में भी देवों द्वारा देवी की पूजा की जाती है। मुनिश्रेष्ठों! प्रचण्ड पराक्रमी 'चण्डिका' देवी नारदादि ऋषियों, ब्रह्मादि देवों, गन्धर्वों आदि से सेवित हो जागरूक हैं। इनके दर्शन से निःसन्देह 'वाजपेय' याग करने का फल मिलता है। मुनिवरों! महामाया

१, चण्डिकाघाट (पट्टी बराबीसी गंगोली हाट) से १ मील ऊपर।

तावत् सिद्धिं न पश्यन्ति मानवा मुनिसत्तमाः । यावच्चण्डीं महामायां न सम्यक् पूजयन्ति हि ।
सम्पूज्य विन्ध्याचलवासिनीं शिवां सुवर्णपुष्पैः कमलैश्च शोभनैः ।
फलं यथा लभ्यति मानवो द्विजाः सम्पूज्य चण्डीं किल लभ्यते तथा ।। १२ ।।
संसर्गेणापि मनुजा दृष्ट्वा देवीं हि चण्डिकाम् । देवगन्धर्वमनुजैर्दुष्प्राप्यां प्राप्नुवन्ति हि ।१३।
सिद्धिं देव्याः प्रभावेण भक्त्या वाऽनन्यपूर्वया । यां सुपूज्य महामायां सिद्धिं पश्यन्ति चण्डिकाम् ।।
कायक्लेशकरैः पुण्यैर्न तां विन्दन्ति मानवाः । उपपातकलिप्तानां महापातकिनामपि ।।
ददाति दर्शनात् सिद्धिं चण्डिका चण्डविक्रमा ।। १५ ।।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं तपोधनाः । नकुलस्य च संवादं दिलीपस्य तथैव च ।।१६।।
इक्ष्वाकुवंशे राजर्षिर्दिलीपो नाम विश्रुतः । बभूव सर्वधर्मज्ञः सत्यवाक् सत्यविक्रमः ।।१७।।
शशास सकलां पृथ्वीं धर्मेण स नराधिपः । स कदाचिद्वने राजा नकुलं मरकतप्रभम् ।।१८।।
बिलाद् विनिःसृतं शुद्धं स्वर्णदेहमयं द्विजाः । ददर्श देवकान्तं तं भाषन्तं मानुषीं गिरम् ।।१९।।
कोऽयमद्भुताकारो ब्रुवन् राजा तपोधनाः । नकुलं पूजयामास गत्वा तस्यान्तिकं बली ।।२०।।
न पूजां तस्य राजर्षे गृहाण नकुलो द्विजाः । उवाच वचनं घोरं दारयन्निव मेदिनीम् ।।२१।।

नकुल उवाच—

नाहं गृह्णामि ते पूजां पापलिप्तस्य दुर्मतेः । प्रजापीडनवृत्तस्य व्रतहीनस्य वै तथा ।।२२।।

राजोवाच—

न मया पीडिता लोका न वेश्यासु रतं कृतम् । कथं पापेति मां साधो भाषसे प्राक्तनो[1] यथा ।।

चण्डी के पूजन के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती । विन्ध्यवासिनी देवी का पूजन, कमल-पुष्पों तथा सोनजुही के फूलों से, सम्पन्न करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल यहाँ केवल चण्डी के पूजन से ही प्राप्त हो जाता है । चण्डिका का दर्शन करने पर देव-गन्धर्वादि से दुष्प्राप्य सिद्धि प्राप्त हो जाती है । अनन्य भक्ति से चण्डिका का पूजन करने पर जो सिद्धि प्राप्त हो सकती है, वह शारीरिक कष्टों के साथ विहित अनुष्ठानादि से प्राप्त नहीं हो सकती । पातकों और उपपातकों से लिप्त मनुष्यों को भी 'चण्डिका' के दर्शन से सिद्धि प्राप्त हो जाती है । इस सम्बन्ध में एक आख्यान प्रस्तुत किया जाता है । वह इस प्रकार है—'इक्ष्वाकु-वंश में राजर्षि दिलीप अति प्रसिद्ध राजा हुए हैं । वे सत्यभाषी तथा सर्वधर्मज्ञ थे । उनका शासन धर्माचरण से युक्त था । एक दिन उन्होंने मरकत-मणि के सदृश कान्तिसम्पन्न एक न्यौले को बिल से निकलते हुए देखा । उसका शरीर देवों के समान तेजःसम्पन्न था । तथा वह मनुष्य की वाणी बोलता था । उस अद्भुत प्राणी को देख राजा दिलीप उत्कण्ठापूर्वक उसके समीप पहुँचे और उसकी पूजा की । विप्रवरों ! नकुल ने राजा के पूजन को स्वीकार नहीं किया । इसके साथ ही पृथिवी को विदीर्ण करता हुआ सा वह भयङ्कर शब्द करने लगा ।। ५-२१ ।।

न्यौला बोला—राजन् ! तुम पापों से विलिप्त हो तथा प्रजापीडन में तत्पर रहते हो । ऐसे दुर्बुद्ध की पूजा मैं स्वीकार नहीं करता ।। २२ ।।

राजा ने कहा—साधो ! मैंने न तो प्रजा को दुःख दिया है और न वेश्यागमन । अतः

---

१. 'प्राकृतो यथा' इति पाठान्तरम् ।

को भवानीदृशं देहं धृत्वा यातोऽसि साम्प्रतम् । सर्वस्वर्णमयं देहं दर्शयित्वा प्रभाषसे ॥२४॥

नकुल उवाच—

कालुष्येण मया नोक्तं न द्विषा न च मत्सरात् । न ते पुष्पाणि पान्थस्य पदरेणुसमानि वै ।२५।
जातानि नृपशार्दूल तस्मात् त्वां धिक्करोम्यहम् ॥ २६ ॥

राजोवाच—

कथं पान्थस्य नकुल पदरेणुसमानि वै । कुसुमानि न जातानि कारणं तद्वदस्व हि ॥२७॥

नकुल उवाच—

पातकेन महाराज प्राक्तनेन न संशयः । जातोऽस्मि नकुलो दुष्टः सर्वप्राणिविहिंसकः ॥२८॥
तथापि कथयिष्यामि पान्थस्य चरितं महत् । निवस्य दण्डकारण्ये भुक्त्वा सर्पमहेश्वरम् ।२९।
सुप्तं मां पथिकः कश्चित् पदा संस्पृष्टवान् बली । चरणात् तस्य राजर्षे रेणवो मम मस्तके ॥
पतिताः संविलग्नाश्च गाङ्गेयजलसम्मिताः । रेणुभिः स्पृष्टमात्रोऽहं हित्वा देहं पुरातनम् ॥
धारयामि इमं देहं दिव्यं स्वर्णमयं प्रभो ॥३१॥

राजोवाच—

स कस्मात्तादृशं पुण्यं प्राप्तवान् पथिकः शुभम् । को नाम पथिकः पुण्यो मिलितः स त्वया सह ॥
इष्टापूर्तादिकं तेन किं पुण्यं तत्कृतं शुभम् । किमधीतो महाविद्यां कमाराध्य च सन्मते ॥३३॥
प्राप्तवान् परमं पुण्यं दुष्प्राप्यं दैवतैरपि ॥३४॥

नकुल उवाच—

पान्थः कश्चिन्महाराज पदा मां स्पृश्य संगतः । स्पृष्टमात्रं तु रजसा तस्य पादोद्भवेन वै ।३५।

तुम प्राकृत जन के समान मुझे पापी क्यों ठहराते हो ? तुम इस प्रकार देह धारण कर यहाँ क्यों आए हो ? सुवर्णमय शरीर धारण कर ऐसी बात क्यों बोल रहे हो ? ॥ २३-२४ ॥

न्यौला फिर कहने लगा—राजन् ! मैंने यह बात राग द्वेष या मनमुटाव से नहीं कही है । तुम्हारे ये फूल मेरे यहाँ आए हुए पथिक के पैरों की धूल के समान भी नहीं हैं । अतः तुम्हें धिक्कार है ॥ २५-२६ ॥

राजा बोला—हे नकुल ! पथिक की पदरेणु के समान भी मेरे पुष्प पूजा के योग्य क्यों नहीं हैं ? ॥ २७ ॥

न्योले ने उत्तर दिया—राजन् ! मैं अपने पूर्व जन्म के पापों से ही इस जन्म में प्राणियों का हिंसक न्यौला पैदा हुआ हूँ । तथापि मैं पान्थ के अनुकरणीय चरित्र का वर्णन करता हूँ—'दण्डकारण्य में निवास करते हुए सर्प को खाकर सोए हुए किसी पथिक ने पैर से मुझे छू दिया । गंगाजल से भीगी उसके चरण की धूलि मेरे मस्तक पर गिर पड़ी । उस धूल के स्पर्श होते ही मैंने पूर्व शरीर को छोड़ यह स्वर्णमय दिव्य शरीर धारण कर लिया ॥२८-३१॥

राजा ने कहा—पथिक को इस प्रकार का पुण्य कैसे प्राप्त हुआ ? उसका क्या नाम है ? वह तुम्हें किस प्रकार प्राप्त हुआ ? किस विद्या के प्रताप से देवों को भी दुर्लभ पुण्य को वह इस तरह प्राप्त कर सका ? ॥ ३२-३४ ॥

नकुल ने उत्तर दिया—महाराज ! कोई पथिक अपने पैर से मेरे शरीर को स्पर्श कर

देहं मे नृपशार्दूल बभूव स्वर्णसम्मितम् । दृष्ट्वा स्वर्णमयं देहं स्वकीयं जातसंभ्रमः ।।३६।।
स चाहं तं नमस्कृत्य पृष्टवानस्मि तस्य तम् । सोवाच मामवज्ञाय कथासम्भवपूर्वकम् ।।३७।।

पान्थ उवाच—

अहं निषधदेशस्य वैश्योऽस्मि मूषकान्तक । सर्वदा पापसहितो हिंसावृत्तिपरायणः ।।३८।।
मया नेष्टादिकं पूर्तं न दत्तं ब्राह्मणेषु च । न मया सरितां श्रेष्ठा सुस्नाता जाह्नवी शुभा ।३९।
न मया शङ्करो देवस्तुषितो नकुलोत्तम । न मयाऽऽराधिता देवी दैवतैरपि सेविता ।।४०।।
प्रसङ्गेन मया पुण्या हिमालयतटे शुभे । दृष्टैका चण्डिका नाम गुहायां परमेश्वरी ।।४१।।
तस्या दर्शनमात्रेण पापा मे विलयं गताः । नष्टपापो महाभाग विचरामि महीतले ।।४२।।
संस्पृष्टं चरणाभ्यां मे चण्डिकाक्षेत्रमुत्तमम् । तेन मे चरणौ पुण्यौ पूतस्त्वं नकुलोत्तम ।।४३।।
धूलिभिस्ते शरीरं मे संस्पृष्टं चरणोद्भवैः । तेन स्वर्णमयं जातं तव देहं न संशयः ।।४४।।
इति तस्योदितं वाक्यं श्रुत्वाऽहं नृपसत्तम । प्रणिपत्य महाभाग प्रष्टुमारेभिरे[1] ततः ।।४५।।

नकुल उवाच—

कुत्र सा चण्डिका नाम देवी देवनिषेविता । प्रासङ्गेन कथं पान्थ पूजिता सा महेश्वरी ।।४६।।
इति पृष्टो मया राजन् स पान्थो मामुवाच ह । मनसा परिपूर्णेन कौतुकाविष्टचेतसा ।।४७।।

पान्थ उवाच—

हिमालयतटे रम्ये सरयूराममध्यगे । नागपूरेति विख्यातः पर्वतो नकुलोत्तम ।।४८।।
तत्राहं निजवृत्त्यर्थं गतोऽस्मि सह बान्धवैः । स्वां वृत्तिं परिपूर्णांशुक्रय-विक्रय-वृत्तिभिः ।।४९।।
ततस्तु चण्डिका नामा गुहायां संश्रुता मया । देवगन्धर्वमनुजैर्नागैश्च विनिषेविता ।।५०।।

चला गया । उसके चरण की धूल के स्पर्श से मेरा शरीर स्वर्णमय हो गया । अपने शरीर को स्वर्णमय देख कर आश्चर्यान्वित हो मैंने नमस्कार कर उससे इसका कारण पूछा । उसने मेरा तिरस्कार कर यह कथा कहनी आरम्भ की ।। ३५–३७ ।।

पथिक बोला—रे चूहा खाने वाले ! मैं निषध देश का वैश्य हूँ । मैं पापी और हिंसक रहा हूँ । देवों से आराधित देवी की आराधना मैंने कभी नहीं की । प्रसङ्गवश मैंने हिमालय प्रान्त में किसी गुफा में 'चण्डिका' देवी देखीं । उनके दर्शनमात्र से मेरे सब पाप विलीन हो गए । रे नकुल ! अब मैं इस पृथ्वी पर विचरण कर रहा हूँ । उसकी कृपा से तुम्हारा देह स्वर्णमय हो गया है । राजन् ! इस प्रकार उसकी बातें सुन और प्रणाम कर मैंने उससे पूछना आरम्भ किया ।। ३८–४५ ।।

न्योले ने कहा—पान्थ ! देवों से सेवित वह चण्डिका देवी कहाँ प्रतिष्ठित हैं ? तुमने किस प्रसङ्ग में उनका पूजन किया है ? राजन् ! मेरे पूछने पर वह पथिक कुतूहलयुक्त मन से इस प्रकार कहने लगा ।। ४६–४७ ।।

पथिक बोला—रे नकुल ! हिमालय के सुरम्य तट पर सरयू और रामगङ्गा के मध्यवर्ती 'नागपुर' नामक विख्यात पर्वत है । मैं वहाँ बान्धवों सहित अपनी आजीविका के लिए

---

१. 'ततः प्रष्टुं समारभे'—इति पाठोऽपेक्षितः ।

ततस्तु बान्धवान् हित्वा ह्येकाकी नकुलोत्तम । फेनिलातुषवत्योश्च मध्ये देव्याः स्थलं शुभम् ।।
गतोऽस्मि देवगन्धर्वैः सेवितं सुमनोहरम् । तस्य प्रान्ते महापुण्या गुहा सिद्धनिषेविता ।।५२।।
तत्र मध्ये महादेवी शिवेन सह चण्डिका । सन्दृष्टा लोकपापघ्नी मया नकुलसत्तम ।।५३।।
तत्र धात्रीजले स्नात्वा सम्पूज्य च महेश्वरम् । देव्या दक्षिणपार्श्वे वै पूजितं देवनायकैः ।।५४।।
ततः सा चण्डिका देवी मया सम्पूजिता शुभा । गन्धपुष्पाक्षतैः शुद्धैः स्वर्णपुष्पैस्तथैव च ।५५।
तत्र सिद्धिं प्रलभ्याशु समायातोऽस्मि साम्प्रतम् । इत्येतत् कथितं पुण्यं मया त्वं परिपृच्छसि[1] ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि पुरीं नैषधपालिताम् ।।५७।।

नकुल उवाच—

इत्युक्त्वा स ययौ पान्थो निषधान्नृपसत्तम । अहमप्यागतोऽरण्यं द्रष्टुं राजन् गृहेश्वरम् ।।५८।।
दृष्टोऽसि त्वं मया राजन् राजराज गृहेश्वर । नान्यं हि त्वत्समं भूपं प्रपश्यामि महीतले ।।५९।।
नेर्ष्यायोगान्मया प्रोक्तं न द्वेषान्न च मत्सरात् । इमां वाणीं प्रकटितुं कथितं नृपसत्तम ।।६०।।

व्यास उवाच—

नकुलस्य महावाणीं स राजा मुनिसत्तमाः । नकुलं पूजयित्वाशु श्रुत्वा स्वस्थमना भवत् ।।६१।।
हित्वा देहं महाभागा नकुलोऽपि पुरातनम् । विमानमधिरुह्याशु समानीतं दिवौकसैः ।।६२।।
इत्युक्त्वा सत्यलोकं स ययौ देव्याः प्रभावतः ।। ६३ ।।
इत्येतत्कथितं विप्राश्चण्डिकाख्यानमुत्तमम् । सम्पर्केणापि या देवी सिद्धिं सम्यक्प्रयच्छति ।६४।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे चण्डिकामाहात्म्ये नवतितमोऽध्यायः ।।

गया । वाणिज्य वृत्ति के द्वारा क्रय-विक्रय आदि करते हुए मैंने देवादि से पूजित गुहावासिनी चण्डिका के बारे में सुना । नकुल ! तब अपने बान्धवों को छोड़कर मैं अकेले ही 'फेनिला' और 'तुषवती के मध्य देवी के धाम में पहुँचा । वह स्थल देव-गन्धर्वादि से सेवित था । उस प्रान्त में सिद्धों से सेवित एक गुफा थी । वहाँ 'धात्री' के जल में स्नान और देवी की अर्चना कर देवों से पूजित चण्डिका को गन्धपुष्पादि एवं सुवर्ण-दक्षिणा अर्पित कर सिद्धि प्राप्त की है । अब मैं वहाँ से वापस हो रहा हूँ ।। ४८–५७ ।।

न्योले ने कहा – राजन् ! ऐसा कहकर वह पथिक निषध देश को चला गया । मैं भी गृहस्वामी को देखने के लिए जङ्गल में चला गया । आप ही मेरे अभीष्ट गृहपति एवं राज-राजेश्वर हैं । मैं इस भूमण्डल में किसी दूसरे राजा को महान् नहीं देख रहा हूँ । मैंने ये बातें ईर्ष्या, द्वेष तथा मात्सर्यवश नहीं कही हैं । आपको ज्ञात कराने के लिए कह रहा हूँ ।।५८–६०।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! राजा दिलीप उस न्योले की अच्छी बातें सुन उसका सम्मान कर स्वस्थचित्त हो गए । महाभागों ! वह न्योला भी अपने शरीर को छोड़कर विमान पर आरूढ़ होता हुआ देवताओं द्वारा देवी के प्रभाव से सत्य लोक पहुँचाया गया । विप्रवरों !

---

१. 'पृष्टवानसि' इति परिष्कृतः पाठः ।

९१

व्यास उवाच—

देवीचरणसम्भूता धात्री नाम सरिद्वरा। तस्यां स्नात्वा महादेवीं पूज्य याति परां गतिम् ॥१॥
वामे धात्रीं प्रपूज्याशु मानवो मुनिसत्तमाः। महेन्द्रभवनं याति महामायाप्रभावतः ॥२॥
नागपर्वतसंभूता पुण्या तुषवती सरित्। समायाता महाभागाः फेनिलासङ्गमं प्रति ॥३॥
धात्री-तुषवतीसङ्गे गङ्गास्नानसमं फलम्। प्राप्यते नात्र सन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥४॥
फेनिलातुषवत्योश्च सङ्गमे मुनिसत्तमाः। तुषेशं शंकरं पूज्य जनानां मुक्तिदायकम् ॥५॥
शिवलोकमवाप्नोति मानवो देवसेवितम्। ततो गोपीवनोद्भूता शाङ्करी सरितां वरा ॥६॥
कुहकासंगमं पुण्यं सङ्गता मुनिसत्तमाः। तत्र स्नात्वा च मनुजः शिवलोकं प्रयाति वै ॥७॥
ततस्तु गोमतीसङ्गं विद्यते मुनिसत्तमाः। तत्र स्नात्वा नरो याति महेन्द्रपदवीं शुभाम् ॥८॥
ततस्तु भीमसेनस्य तीर्थे स्नात्वा महेश्वरीम्। दक्षिणे पर्वतावासां पूज्य याति परां गतिम् ॥९॥
ततो विन्ध्येश्वरं देवं पूज्य याति परां गतिम्। ततस्तु बहवो नद्यः फेनिलासङ्गमं गताः ॥१०॥

चण्डिका[१] का यह आख्यान मैंने कह दिया है। केवल सम्पर्क स्थापित करने से वह देवी सिद्धि प्रदान करती है ॥ ६१-६४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'चण्डिका'-माहात्म्य-सम्बन्धी
नब्बेवां अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—देवी के चरणों से उत्पन्न 'धात्री' नदी में स्नान करने पर देवी का पूजन करने से मनुष्य परम गति प्राप्त करता है। मुनिवरों ! नदी के बाईं ओर 'धात्री' का पूजन कर महामाया के प्रसाद से मनुष्य महेन्द्रभवन प्राप्त करता है। नागपर्वत से उत्पन्न 'तुषवती' नदी 'फेनिला' में मिलती है। 'धात्री' और 'तुषवती' के संगम में स्नान करने से गङ्गा-स्नान का फल मिलता है। 'फेनिला' और 'तुषवती' के सङ्गम में मुक्तिप्रद 'तुषेश' का पूजन करे। तत्पश्चात् 'गोपीवन' से उद्भूत 'शाङ्करी' एवं 'कुहका' के सङ्गम में स्नान करने से शिवलोक मिलता है। मुनिश्रेष्ठों ! तब 'गोमती' का संगम है, वहाँ स्नान करने से इन्द्रपद प्राप्त होता है। तब 'भीमसेन-तीर्थ' में स्नान कर दक्षिण में पर्वतवासिनी 'माहेश्वरी' का पूजन करने से सद्गति प्राप्त होती है। तत्पश्चात् 'विन्ध्येश्वर' का दर्शन करे। इसके आगे अनेक नदियाँ

---

१. चण्डिका या चण्डी की सृष्टि देवताओं ने अपनी शक्ति को शुम्भ-निशुम्भ के वध के लिए एक कन्या के रूप में प्रस्तुत किया। वह दुर्गा के रूप में अवतीर्ण हुई। महिषासुर-वध करने के लिए दुर्गा ने जो यह रूप धारण किया था, उसका विस्तृत वर्णन 'मार्कण्डेयपुराण' के अन्तर्गत 'दुर्गासप्तशती' में विद्यमान है। भागवत के अनुसार 'योगमाया' का एक नाम भी 'चण्डिका' है (१०-२१२), जिसका सिद्धस्थान 'चण्डिकागृह' है (भाग० ५-६-१४)।

गङ्गास्नानसमं पुण्यं स्नात्वा कुहकहारिणीम् । प्राप्यते मुनिशार्दूलाः सत्यमेतन्मयोदितम् ।११।
ततस्तस्यां महापुण्यो नाम्ना कोकसरः स्मृतः । तत्र स्नात्वा महाभागाः पातकाद् विप्रमुच्यते ।
ततः सा सरयूं पुण्यां संगता मुनिसत्तमाः । पूज्यते देवगन्धर्वैर्यत्र सा सरितां वरा ॥१३॥
सरयूफेनिलासङ्गे देवतीर्थमिति स्मृतम् । प्रयागस्नानजं पुण्यं तत्र स्नात्वा प्रजायते ॥१४॥
तदूर्ध्वं बोधनं नाम सरयूमध्यगं द्विजाः । तीर्थमावर्तबहुलं विद्यते मुनिसत्तमाः ॥१५॥
उषसि स्नानमात्रेण कार्तिकस्नानजं फलम् । प्राप्नोति मानवः सम्यक् सत्यमेतन्मयोदितम् ।१६।
तदूर्ध्वं मुनिशार्दूलाः स्रोत उत्तीर्य सुप्रभम् । जयन्त्याः संगमं पुण्यं विद्यते देवसेवितम् ॥१७॥
स्वयम्भूगिरिसंज्ञो वै टङ्कणान्ते तपोधनाः । ततः सम्भूय सा पुण्या सरयूसंगमं गता ॥१८॥
तस्यां स्नात्वा तु प्राप्नोति गङ्गास्नानफलं नरः । मूले तस्या महादेवी जयन्ती पूज्यते द्विजाः ।
सम्पूज्य तां महामायां मानवो याति शाश्वतीम् । ततस्यस्यां महाभागाः कलापासंगमं स्मृतम् ।
तयोर्मध्ये महादेवं कलापीशं प्रपूज्य वै । शिवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः ॥२१॥
ततो होमवतीसङ्गे निमज्य मुनिसत्तमाः । गङ्गास्नानसमं पुण्यं प्राप्यते नात्र संशयः ॥२२॥
तत्र वामे महादेवीं कोकिलां पूज्य वै द्विजाः । महेन्द्रभवनं पुण्यं प्राप्नोति मनुजः शुभम् ॥२३॥
ततस्तु बहवो नद्यो जयन्त्याः सङ्गमं शुभम् । सम्प्राप्य मुनिशार्दूलाः सङ्गताः सरयूं शुभाम् ॥
जयन्त्या दक्षिणे भागे मङ्गलां पूज्य वै द्विजाः । वामेऽथ शङ्करं शान्तं शिवलोकमवाप्यते ।२५।

'फेनिला' में मिलती हैं। उनमें स्नान करने के पश्चात् 'कुहकहारिणी' में स्नानकर गङ्गा स्नान का फल प्राप्त करे। वहीं पवित्र 'कोकसर' है। उसमें स्नान करने से मानव पापविमुक्त होता है। तब वहाँ 'सरयू' आकर मिलती है। 'सरयू' और 'फेनिला' के संगम में 'देवतीर्थ' है। वहाँ स्नान करने से 'त्रिवेणी'-स्नान का पुण्य मिलता है। उसके ऊपर 'सरयू' में भौरियों से युक्त 'बोधन' नामक तीर्थ है। वहाँ उषःकाल में स्नान करने पर कार्तिक-स्नान का फल प्राप्त होता है। मुनिवरों ! नदी से उतर कर आगे 'जयन्ती' नदी 'सरयू' में संगत करती है। तपस्वियों ! 'जयन्ती' नदी 'टङ्कण'-पर्वत का अन्त होने पर 'स्वयम्भू' पर्वत से निकल कर यहाँ 'सरयू' में मिलती है। इस संगम में स्नान करने से भी गङ्गास्नान का फल मिलता है। उसके मूल में महादेवी 'जयन्ती'[1] पूजित हैं। उनका पूजन करने पर शाश्वत-गति (अमरता) मिलती है। तदनन्तर उसमें 'कलापा' आकर मिलती है। वहाँ शिवलोक-प्राप्ति के लिये 'कलापीश' का पूजन किया जाता है। इसके बाद 'होमवती' का संगम है। उसमें स्नान करने पर गङ्गास्नान का फल मिलता है। वहाँ वाम भाग में 'कोकिला' देवी की पूजा होती है। तदनन्तर अनेक नदियाँ 'जयन्ती' में संगमित हो 'सरयू' में प्रविष्ट हो जाती हैं। 'जयन्ती' के दाहिनी ओर 'मङ्गला'[2] देवी पूजित हैं। फिर वाम भाग में 'शान्तेश्वर' का पूजन कर 'शिव-

१. तथा २.—अन्धकासुर के रक्तपानार्थ शिव के द्वारा सृष्ट कई मातृकाओं में से दो मातृकाएँ। देखें—'रेवती च महारक्ता तथैव पिर्लपिच्छिका। जया च विजया चैव 'जयन्ती' चापराजिता। माया विचित्ररूपा च कामरूपा च संगमा। मुखेबिला 'मङ्गला' च महानासा महामुखी'' (मत्स्य० १७८-१३)। दुर्गासप्तशती के अन्तर्गत 'अर्गला' में दस मातृकाओं का उल्लेख सर्वप्रसिद्ध है। उसके क्रमानुसार यहाँ वर्णन है। द्रष्टव्य—''जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥''

ततो ढुण्ढिगिरिः पुण्यो वामे तस्य प्रगीयते । तत्र स्नात्वा च मनुजो ढुण्ढीशं पूज्य वै द्विजाः ॥
महेन्द्रभवनं याति मानवो नात्र संशयः । ततः सा सरयूं पुण्यां सम्मिलन्मुनिसत्तमाः ॥२७॥
गङ्गायमुनयोः सङ्गे संस्नात्वा यत्फलं भवेत् । जयन्ती-सरयूसङ्गे तत्फलं प्राप्यते द्विजाः ।२८।
जयन्ती-सरयूमध्ये जयन्तीशं महेश्वरम् । सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं न संशयः ॥२९॥
तदूर्ध्वं चन्द्रभागायाः सङ्गमस्ति तपोधनाः । गङ्गाद्वारसमं स्नानं स्नात्वा तत्र प्रजायते ॥३०॥
ततः पिकवतीसङ्गे स्रोत उत्तीर्य वै द्विजाः । पिकेशं तत्र सम्पूज्य निमज्य विधिपूर्वकम् ॥३१॥
मानसस्नानजं पुण्यं प्राप्यते नात्र संशयः । ततः कुहकहासङ्गे बहिर्भागे तपोधनाः ॥३२॥
चक्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकं न संशयः ॥३३॥
ततस्तु जामदग्न्याख्यं तीर्थमस्ति तपोधनाः । यत्र सन्तर्पयामास जामदग्न्यो महाबलः ॥३४॥
सुपुण्यैः सरयूतोयैः देवर्षिपितृमानवान् । निमज्य मानवो याति विष्णुलोकं न संशयः ॥३५॥
ततस्तु नलतीर्थाख्यं वेलायाः सङ्गमे शुभे । तत्र स्नात्वा च विधिवद्दत्त्वा दानं तथैव च ।३६॥
महेन्द्रभवनं याति अप्सरोभिः समन्ततः । तत्र स्नात्वा च विधिवत् पिण्डं दत्त्वा च मानवः ॥
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ।
तत्रोत्तरगतां पुण्यां सरयूं मुनितत्तमाः । निमज्य मानवो याति विष्णुलोकं न संशयः ॥३८॥
ततस्तु विन्ध्यवत्याश्च सङ्गमे मुनिसत्तमाः । गङ्गास्नानसमं पुण्यं प्राप्यते नात्र संशयः ॥३९॥
ततो वरवती नाम दारुपर्वतसम्भवा । सरयूसङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥४०॥
तत्र स्नात्वा च विधिवद् दत्त्वा दानं तथैव च । महेन्द्रभवनं याति अप्सरोभिः समन्ततः ॥४१॥
तदूर्ध्वं स्रोत उत्तीर्य नागतीर्थमिति स्मृतम् । सङ्गमे नागगङ्गायाः सर्वपपाप्रणाशनम् ॥४२॥

लोक' प्राप्त करे। उसके वाम भाग में पवित्र 'ढुण्ढिगिरि' है। वहाँ स्नान कर 'ढुण्ढीश' का पूजन किया जाता है। मुनिवरों ! तब 'जयन्ती' का 'सरयू' के साथ संगम होता है। वह गंगा-यमुना के मिलन के सदृश माना जाता है। अतः वहाँ स्नान करने का फल भी उसके ही समान है। 'जयन्ती' और 'सरयू' के बीच 'जयन्तीश' की पूजा कर शिवलोक प्राप्त करे। तपोधनों ! उसके ऊपर 'चन्द्रभागा' के संगम में गङ्गास्नान का फल प्राप्त करें। तत्पश्चात् 'पिकवती' के संगम में स्नान तथा 'पिकेश' का पूजन करने पर 'मानसरोवर'-स्नान का पुण्य होता है। तदनन्तर 'कुहकहा'-संगम के बाहरी ओर 'चक्रतीर्थ' है। वह तीर्थ पापनाशक एवं शिवलोकप्रद है। तपस्वियों ! तब 'जामदग्न्यतीर्थ' है। वहाँ परशुराम ने पवित्र सरयू-जल से देव, ऋषि, मनुष्य तथा पितृगणों का तर्पण किया। वहाँ स्नान, पूजन तथा पिण्डदानादि करने से 'विष्णुलोक' प्राप्त होता है। तब 'वेला'-सङ्गम पर 'नलतीर्थ' है। वहाँ विधिवत् स्नान, दान, तर्पणादि कर इक्कीस कुलों के उद्धार सहित विष्णुलोक में सम्मान मिलता है। वहीं पर 'सरयू' उत्तरवाहिनी हो जाती है। वहाँ स्नान करने का विशेष महत्त्व है। मुनिवरों ! तब 'विन्ध्यवती' के संगम में स्नान कर गङ्गास्नान का पुण्य ग्रहण करें। तत्पश्चात् 'दारुपर्वत' (द्यारीधुर) से निकलने वाली 'वरवती' का संगम है। उसमें स्नान तथा सुवर्ण-दक्षिणा देकर अप्सराओं सहित इन्द्रभवन में सुख प्राप्त करे। तदनन्तर जल से उतर कर उसके ऊपर 'नागतीर्थ' में जाये। वहाँ 'नागगङ्गा' के संगम में स्नान तथा एक गुन्जा सुवर्ण दान करने से विष्णुलोक मिलता

तत्र स्नात्वा च मनुजः स्वर्णगुञ्जाप्रमाणतः । ब्राह्मणेभ्यो महाभागा दत्त्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ॥
तत्र छत्रशिला नाम सरयूतोयमध्यगा । तां दृष्ट्वा मानवः सम्यक् शिवलोकं प्रयाति हि ।४४।

ऋषय ऊचुः—

कथं छत्रशिला नाम वर्ण्यते तोयमध्यगा । केन तत्र महाभाग स्थापिता बहुपुण्यदा ।।४५।।

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ भवान्या सह शङ्करम् । जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं मार्कण्डेयो महातपाः ।।४६।।
देवोपरि महाभागा दधारातपवारणम् । मार्कण्डेयधृतं छत्रं दृश्यतेऽद्यापि भूतले ।।४७।।
देवगन्धर्वमनुजैर्दुर्धरं मुनिसत्तमाः । तत्र यागीश्वरो देवो भवान्या सह वै द्विजाः ।।४८।।
निविश्य तत्र देवेशो यागीशो पार्वती तथा । क्रीडतोऽद्यापि लोकानां पावनाय न संशयः ।।४९।।
तत्र जागीश्वरं देवं जलमध्ये तपोधनाः । सम्भाव्य कुसुमैस्तोयैः पूजयन्ति समाहिताः ।।५०।।
शिवेन सहसायुज्यं समश्नन्ति सदैव ते । यागीशं शिलया गूढं तोयमध्ये तपोधनाः ।।५१।।
सम्भाव्य स्प्रष्टुमिच्छन्ति ते यान्ति परमं पदम् । मन्दवारप्रदोषे वै शिलायां शिवपूजनम् ।५२।
ये हि कुर्वन्ति मनुजास्ते यान्ति शिवमन्दिरम् । निमज्य सरयूं पुण्यां तत्र ये मुनिसत्तमाः ।५३।
स्वर्णं ददति विप्रेभ्यस्ते यान्ति शिवमन्दिरम् । निमज्य विधिवत्तत्र पिण्डं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥
गूढजागीश्वरं पूज्य तोयमध्ये तपोधनाः । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य मानवो याति शाश्वतम् ।।५५।।
तदूर्ध्वं हंसतीर्थाख्ये तीर्थे त्रिदशसेविते । निमज्य च पितॄन् तर्प्य[1] पिण्डं दत्त्वा प्रयत्नतः ।।५६।।
मानवो मुनिशार्दूलाः कुलत्रयसमन्वितः । प्रयाति विष्णुसदनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।५७।।

है । वहाँ 'सरयू' के जलमध्य 'छत्रशिला' है । उसके दर्शन करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है ।। १-४४ ।।

ऋषियों ने पूछा—महर्षे ! जलमध्यस्थ 'छत्रशिला' का क्या इतिहास है ? तथा उसकी स्थापना कैसे हुई ? हमें बतलायें ।। ४५ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—सत्ययुग के आरम्भ में भगवान् शिव ने पार्वती के साथ 'सरयू' के मध्य निवास किया । निवास करते समय उन्होंने जलक्रीड़ा की । वहाँ पर धूप से बचाने के लिए 'मार्कण्डेय' ऋषि ने छाता लगा दिया । वह छाता अब भी दिखाई देता है। मुनिश्रेष्ठों ! अब भी पार्वतीसहित देवेश यागीश—देव, गन्धर्व, मनुष्य आदि से पकड़े न जाने वाले छाते को लगाकर—लोगों को पवित्र करने के उद्देश्य से जलक्रीड़ा करते हैं। तपस्वियों ! जो लोग जल में यागेश्वर का पूजन कर (सम्भावना कर) उनका स्पर्श करना चाहते हैं वे परम पद के अधिकारी हैं। शनिप्रदोष को उस शिला की पूजा करने वाले शिव-लोक में जाते हैं । मुनिवरों ! वहाँ पर सरयू में स्नान तथा स्वर्ण-दक्षिणा देने वाले भी शिव-लोक में रहने के अधिकारी होते हैं । तपोधनों ! वहाँ विधिपूर्वक स्नान, तर्पण, पिण्डदान तथा जल में प्रच्छन्न 'यागेश्वर' का पूजन करने वाले इक्कीस कुलों का उद्धार करते हैं । फिर उसके ऊपर देवों से सेवित 'हंसतीर्थ' में स्नान, तर्पणादि कर कर मनुष्य तीन कुलों के साथ जन्म-मरण से मुक्त हो विष्णुलोक प्राप्त करता है। तब 'मार्कण्डेयतीर्थ' में भी स्नान,

---

१. 'निमज्य पितॄन् सन्तर्प्य'—इति पाठः समीचीनः प्रतिभाति ।

मार्कण्डेयमहातीर्थं ततो गच्छेत् समाहितः । निमज्य विधिवत्तत्र पिण्डं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥५८॥
द्विजेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा मानवो याति शाश्वतम् ॥५९॥
इत्येतत् कथितं विप्रा नागानां वर्णनं शुभम् । नागपुरस्य माहात्म्यं सरितां सम्भवं तथा ॥६०॥
सरयूमध्यगानां च तीर्थानां सम्भवं तथा । तथा छत्रशिलाख्यानं किमन्यत् प्रष्टुमिच्छथ ॥६१॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे नागपर्वतमाहात्म्ये एकनवतितमोऽध्यायः ॥

दान, देव-पितृकार्य कर परमगति प्राप्त करे । विप्रवरों ! मैं ने यह 'नागवंश' तथा उनके क्षेत्र 'नागपुर'[1] एवं वहाँ से निकलने वाली 'नदियों', सरयू के बीच पड़ने वाले 'तीर्थों' तथा 'छत्र-शिला' का आख्यान आदि का वर्णन कर दिया है। अब आप लोग क्या पूछना चाहते हैं ॥ ४६-६१ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'नागपर्वत' माहात्म्य नामक
इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. (क) प्रकृत ग्रन्थ 'मानसखण्ड' में नागों के वर्णनप्रसङ्ग में 'नागपुर' तथा 'नागपर्वत'—इन दोनों का उल्लेख है। 'नागपुर' का उल्लेख 'अग्निपुराण' में भी मिलता है। वहाँ यह कहा गया है कि शंकर की जटा से निकलकर तथा पहाड़ों को लाँघकर जब गङ्गा आई तो 'स्वलीन' नामक एक दानव पर्वत के रूप में मार्ग रोककर खड़ा हो गया। इस पर राजा भगीरथ ने कौशिक को प्रसन्न कर एक नागवाहन प्राप्त किया। जिसने उस दैत्य को विदीर्ण कर दिया। जहाँ पर विदीर्ण किया, उस स्थान का नाम 'नाग-पुर' पड़ा। अन्य पुराणों में पाताल-स्थित 'भोगवती' को ही 'नागपुर' कहा गया है। (ख) महाभारत (शान्तिपर्व ३५५-२) के अनुसार नैमिषारण्य में 'गोमती' के तट पर स्थित एक नगर, जो 'पद्मनाभ' नाग का निवासस्थान कहा गया है।

९२

ऋषय ऊचुः—

अथान्या या महापुण्याः सरितो मुनिसत्तमाः। सरयूसङ्गमं पुण्यं सङ्गतास्ता ब्रवीहि वै ॥१॥

व्यास उवाच—

ततो दारुगिरिः पुण्यो विद्यते मुनिसत्तमाः। देवदानवसिद्धैश्च सेवितः किन्नरोरगैः ॥२॥
नानापादपसंकीर्णो नानाधातुविराजितः। नानाविधैः पक्षिगणैः सेवितः सुमनोहरः ॥३॥
यत्र देवास्त्रयस्त्रिंशन्निवसन्ति तपोधनाः। तत्र देवैः समाहूता नाम्ना नरकतारिणी ॥४॥
विद्यते सरितां श्रेष्ठा सम्भूता दारुपर्वते। सरयूसंगमं पुण्या समायाता तपोधनाः ॥५॥
देवगन्धर्वसिद्धैश्च सेविता सुमनोहरा। तस्यां स्नात्वा च विधिवत् सरयूस्नानजं फलम् ॥६॥
प्राप्नोति मानवः सम्यक् सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा। मूले विश्वम्भरो देवः पूज्यते मुनिसत्तमाः ॥
ततस्तस्यां सुषेणाया बालायास्तदनन्तरम्। ततः परं महापुण्यं जाबाल्याः सङ्गमं स्मृतम् ॥८॥
तेषु सङ्गेषु मनुजो निमज्य मुनिसत्तमाः। द्वादशाब्दकृतात् पापात् प्रमुच्यति न संशयः ॥९॥
वामे तस्या महादेवी कालापी पूज्यते द्विजाः। दक्षिणे शेखरो देवः सर्वपापप्रणाशनः ॥१०॥
ततः सा सरयूं प्राप्य पुण्या नरकतारिणी। गीयते चातिपुण्या सा सर्वपापप्रणाशिनी ॥११॥
सङ्गे नरकतारिण्या निमज्य मुनिसत्तमाः। सन्तर्प्य च पितॄन्मुख्यान्मानवो याति शाश्वतीम् ॥
ततो वेत्रवतीसङ्गे निमज्य मुनिसत्तमाः। मानवो देवभवनं प्रयाति नहि संशयः ॥१३॥
ततो गौतमतीर्थे वै संस्नाप्य विधिपूर्वकम्। द्विजेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा नरो याति हरेः पदम् ।१४।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरयूतीर्थमाहात्म्ये द्विनवतितमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! 'सरयू' के साथ मिलने वाली अन्य नदियों के बारे में भी आप बतलायें ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! तब 'दारुगिरि' है। वह देव, दानव, सिद्ध, किन्नर, नाग, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, धातु आदि वस्तुजात से युक्त है। वहाँ तेतीसों देवता निवास करते हैं। इस पर्वत पर देवताओं ने 'नरकतारिणी' नामक नदी का आवाहन किया और वह 'सरयू' में जा मिली। इस नदी में स्नान, तर्पणादि करने से 'सरयू' में स्नान करने का फल मिलता है। इसके मूल में 'विश्वम्भर' की पूजा की जाती है। तदनन्तर उसमें 'सुषेणा', 'बाला' तथा 'जाबाली' नदियाँ मिलती हैं। उन सङ्गमों में स्नान कर मनुष्य बारह वर्षों के किये पापों से मुक्त होते हैं। उसके बाईं ओर 'कालापी' देवी पूजित हैं। तथा दाहिनी ओर 'शेखर महादेव' पूजित हैं। इन सब नदियों के साथ सङ्गत होती हुई 'नरकतारिणी' आगे चल कर 'सरयू' में मिल जाती है। इन दोनों के सङ्गम में स्नान कर मनुष्य देवलोक में जाता है। अन्त में 'गौतमतीर्थ' है। वहाँ स्नान-दानादि करने से मानव को विष्णुचरणों का लाभ होता है।२-१४।

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सरयूतीर्थ'-माहात्म्य नामक बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यास उवाच—

सर्वतीर्थोत्तमं तीर्थं शृण्वन्तु मुनिपुङ्गवाः। यत्र सप्तर्षयो देवं यष्ट्वा ब्रह्मपुरं महत् ॥१॥
दारुकाननसंज्ञो वै भूधरो यो मयोदितः। सिद्धगन्धर्वमनुजैः सेवितोऽस्ति न संशयः ॥२॥
यत्र कोटीश्वरो देवः कोटिलिङ्गैः समन्वितः। यागीश्वरं महादेवमाराधयति नित्यशः ॥३॥
तत्रैव पर्वतोद्देशे सम्भवा पुण्यवाहिनी। जटागङ्गेति विख्याता पूजिता सिद्धनायकैः ॥४॥
सङ्गमैर्बहुभिः पूर्णा सरयूसंगमे गता। गङ्गास्नानसमं पुण्यं मज्जतां या ददाति हि ॥५॥
सोमपानफलं पुण्यं पिबतां जायते जलम्। सरयूसंगमे पुण्या संमिलन्मुनिसत्तमाः ॥६॥
जटायाश्च सरय्वाश्च मध्ये स्थित्वा महर्षयः। जटेश्वरं महादेवं पूज्य यज्ञं प्रचक्रिरे ॥७॥
तयोर्मध्ये महाभागा निमज्य मुनिसत्तमाः। जटेश्वरं महादेवं पूजयेत् सुसमाहितः ॥८॥
एवं यः कुरुते विप्राः फलं शृण्वन्तु तस्य तु। गङ्गायमुनयोः सङ्गे माघस्नानेन यत् फलम् ॥९॥
तथा विश्वेश्वरं देवमुषित्वा काशिमण्डले। सम्पूज्य यत्फलं विप्रा जायते स्वर्णपङ्कजैः ॥१०॥
निमज्य विधिवत्तत्र पूज्य देवं जटेश्वरम्। तत्फलं प्राप्यते विप्रा जटा-सरयु-सङ्गमे ॥११॥

ऋषय ऊचुः—

कस्मिन्नवसरे विप्र ऋषयः सत्यवादिनः। तत्र पूज्य महादेवमग्निहोत्रं प्रचक्रिरे ॥१२॥

व्यास उवाच—

पुरा कृतयुगस्यादौ ऋषयः सत्यवादिनः। मरीचिर्भगवानत्रिरङ्गिराश्च महातपाः ॥१३॥

व्यासजी ने कहा—विप्रवरों ! अब आप एक उत्तम तीर्थ के विषय में सुनें। वहाँ सप्तर्षियों ने याग कर ब्रह्मलोक प्राप्त किया। मैं पहले 'दारुकानन'[1] के विषय में कह चुका हूँ। वहाँ पर कोटिलिङ्गों से युक्त 'कोटीश्वर' महादेव 'यागेश्वर' की नित्य आराधना करते हैं। वहीं पर्वत के ऊपरी भाग से 'जटागङ्गा' निकली है। उसमें भी अनेक नदियाँ आकर मिली हैं। उसमें स्नान करने से गङ्गा-स्नान का फल मिलता है। उसका जल सोमपान-सदृश है। यह नदी 'सरयू' में जाकर मिली है। मुनिवरों ! 'सरयू-जटागङ्गा' के मध्य में रहकर ऋषियों ने 'जटेश्वर' महादेव का पूजन कर यज्ञ सम्पन्न किया था। अतः वहाँ के तीर्थों का फल आप लोग सुनें। माघमास में प्रयाग स्नान तथा काशी में कमल-पुष्पों से विश्वनाथ का पूजन करने के सदृश फल सरयू-जटागङ्गा के संगसस्थ 'जटेश्वर' का पूजन करने से प्राप्त होता है।१-११।

(इसे सुनकर) ऋषिगण बोले—महर्षे ! वसिष्ठप्रमुख सत्यवादी अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, अङ्गिरा तथा गौतम ऋषि अपनी पत्नियों सहित 'दारुकानन' में किस अवसर पर आये ? फिर वहाँ से 'जटागङ्गा-सरयू' सङ्गम में आहिताग्नि हो तपश्चर्या में कब संलग्न हुए ? ॥ १२ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! किसी समय कपर्दी भगवान् आत्मदर्शी ऋषियों को

---

१. 'यागीश्वर' से सम्बद्ध 'पट्टी दारुण'।

पुलस्त्यः पुलहश्चैव गौतमश्च महातपाः । वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ऋषिपत्नीसमन्विताः ।।१४।।
समाजग्मुर्महाभागाः सुपुण्यं दारुकाननम् । तत्र ते सरयूतीरे जटासङ्गममध्यगे ।।१५।।
अग्निहोत्रं प्रकल्प्याशु तपश्चक्रुस्तपोधनाः । कदाचिन्मुनिशार्दूला मुनीनां भावितात्मनाम् ।।१६।।
स्वयं कपर्दविभृद्देवो द्रष्टुं तेषां महात्मनाम् । समाजगाम दिष्टयाऽसौ चिताभस्मविलेपनः ।१७।
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं ऋषयो मुनिसत्तमाः । उत्तस्थुर्युगपत् सर्वे नमश्चक्रुर्महेश्वरम् ।।१८।।
पूजितं प्रार्थयामासुः ऋषयो मुनिसत्तमाः ।। १९ ।।

ऋषय ऊचुः—

मुनीनां सकलत्राणामग्निहोत्रं महेश्वर । पूर्णतां यातु चापूर्णं तिष्ठ तावदनुग्रहात् ।।२०।।
करिष्यामो वयं सर्वे सोमयागं तथैव च । सम्पूज्य त्वां महादेवं ब्रह्माणं तर्पयामहे ।।२१।।
तथेत्युक्त्वा स भगवान् तस्थौ तत्र तपोधनाः । चिताभस्मविलिप्ताङ्गो जटामङ्गलशोभितः।२२।
बार्हस्पत्यं च चाग्नेयं योनिकुण्डं विधाय वै । तेऽपि ब्रह्मषयो विप्रा यज्ञमारेभिरे ततः ।।२३।।
पूज्य तत्र महादेवं यज्ञस्तम्भं विरोप्य च । चक्रिरे सोमयागं ते गवालम्बं ततः परम् ।।२४।।
जुहुयामासु यज्ञाग्निं विधिवत्सुसमाहिताः । ब्रह्माणं तर्पयामासुर्हव्यैर्नानाविधैरपि ।।२५।।
समाप्य विधिवद् यज्ञान् सम्पूज्य परमेश्वरम् । तस्थुस्तत्रैव मुनयो यज्ञाग्निसममेव च ।।२६।।
इत्येतत्कथितं विप्रास्तथा ते यज्ञकारिणः । संस्थिता वेदनिधयः सत्यधर्मपरायणाः ।।२७।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे जटेश्वरमाहात्म्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ।।

देखने के लिए वहाँ आ गए। उन्हें देख ऋषिगण उठकर खड़े हो गए। अभ्युत्थान-पूर्वक उन्हें प्रणामादि कर उनकी प्रार्थना करने लगे ।। १३–१९ ।।

ऋषियों ने निवेदन किया—शङ्कर! आप अग्निहोत्रविधि सम्पन्न होने तक कृपा कर यहीं विराजमान रहें। आप का पूजन कर हम सब यहाँ 'सोमयाग' कर ब्रह्माजी को सन्तुष्ट करेंगे। भस्म रमाये एवं जटाधारी भगवान् शङ्कर भी 'तथाऽस्तु' कहकर वहीं ठहर गए। तब याज्ञिकों ने 'बार्हस्पत्य' और 'आग्नेय' यज्ञ-कुण्ड बना कर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। ब्रह्मर्षियों ने महादेव का पूजन कर, यज्ञस्तम्भ आरोपित किया तथा 'सोमयाग' सम्पन्न किया। उसके साथ ही गायों को आश्रय दिया। इस प्रकार यज्ञार्थ अग्नि में उन्होंने विविध हवनीय पदार्थों से आहुति देकर ब्रह्मा को प्रसन्न किया। विधिवत् यज्ञ सम्पन्न कर अन्त में परमेश्वर का पुनः पूजन किया। फिर वे ऋषि लोग यज्ञाग्नि सहित वहीं ठहर गए। विप्रवरो! मैंने यह वर्णन कर आप को बता दिया कि वे सत्यधर्मपरायण वेदनिधि जटेश्वर में क्यों निवास करने लगे ।। २०–२७ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'जटेश्वरमाहात्म्य' नामक
तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।

९४

व्यास उवाच—

जटासरयुसरितोः सङ्गमे मुनिसत्तमाः। निमज्य पितृकृत्यं वै विधाय सुसमाहितः ॥१॥
जटीशं देवदेवेशं पूज्य याति परां गतिम्। ततः सप्तर्षितीर्थे वै निमज्य विधिपूर्वकम् ॥२॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः। ततस्तु वह्नितीर्थे वै योनितीर्थे तथैव च ॥३॥
निमज्य ब्रह्मतीर्थे वै मानवो याति शाश्वतम्। सप्तर्षिभिः समाहूता ततो गुप्तसरस्वती ॥४॥
सरयूसंगमे पुण्ये संप्राप्ता पुण्यदायिनी। निमज्य विधिवत्तत्र पिण्डं दत्वा च मानवः ॥५॥
द्विजेभ्यो दक्षिणां दत्वा सम्पूज्य च महेश्वरम्। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥६॥
ततः स्रोतः समुत्तीर्य यमुनासंगमे शुभे। निमज्य यमलोकं हि न पश्यति नरो द्विजाः ॥७॥
ततः स्रोतः समुत्तीर्य प्रजावत्यास्तु सङ्गमे। निमज्य मानवो याति ब्रह्मलोकं न संशयः ॥८॥
ततो बौद्धसरे पुण्ये निमज्य मुनिसत्तमाः। विष्णुलोकमवाप्नोति सन्तर्प्य च पितॄन् नरः ॥९॥
तत्र बौद्धशिलां पूज्य सुपुण्यैः कुसुमैरपि। विष्णुलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः ॥१०॥
ततस्तु रामगङ्गायाः संगमोऽस्ति तपोधनाः। तत्र स्नात्वा च मनुजः कुलकोटिसमन्वितः ॥
शिवलोकमवाप्नोति रुद्रकन्यानिषेवितः ॥ ११ ॥

ऋषय ऊचुः—

सर्वदानाधिकं यत्र सर्वक्षेत्राधिकं तथा। सर्वपुण्याधिकं यत्र सर्वतीर्थाधिकं तथा ॥१२॥
फलं प्रलभ्यते शुद्धं काशीवासादपि प्रभो। प्रब्रूहि सर्वधर्मज्ञ सर्वलोकहिताय वै ॥१३॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूला यथा प्रश्नोत्तरं शुभम्। सर्वपापप्रशमनं रहस्यं कथयाम्यहम् ॥१४॥

व्यासजी ने कहा - 'जटागङ्गा' और 'सरयू' के सङ्गम में स्नान, पितृकृत्यादि कर 'जटीश्वर' का पूजन करने से परमगति प्राप्त होती है। तत्पश्चात् 'सप्तर्षितीर्थ' में स्नान कर 'ब्रह्मलोक' मिलता है। फिर 'वह्नितीर्थ' 'योनितीर्थ' तथा 'ब्रह्मतीर्थ' में स्नान कर सद्गति प्राप्त करे। तब सप्तर्षियों से आहूत 'गुप्तसरस्वती' 'सरयू' में मिलती है। वहाँ स्नान, दान, पितकृत्य तथा महादेव का पूजन कर इक्कीस कुलों को तारते हुए 'विष्णुलोक' प्राप्त किया जाय। फिर नदी से कुछ उतर कर 'यमुना-सङ्गम में स्नान करने पर मानव को 'यमपुरी' नहीं देखनी पड़ती। फिर नदी से आगे बढ़कर 'प्रजावती' के सङ्गम में गोता लगाये। मुनिवरों! तब 'बौद्धसर'* में गोता लगाकर वहीं 'बौद्धशिला'* का पूजन किया जाय। तब 'रामगङ्गा' (पूर्वी) सङ्गम है। वहाँ स्नान करने पर असख्य कुलों को उद्धार कर शिवलोक प्राप्त होता है।१-११।

ऋषियों ने पूछा—महाभाग! जहाँ पर दान, क्षेत्र, पुण्य, तीर्थ—इन सबमें सर्वाधिक फल मिलता हो—उस स्थल का वर्णन आप लोकाहितार्थं कीजिये ॥ १२-१३ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों! सब पापों के विनाशक एवं आपके रहस्यात्मक

---

*समग्र 'मानसखण्ड' में इन दो के अतिरिक्त आगे 'बौद्धेश' शङ्कर का उल्लेख और भी है। अन्यत्र पूरे ग्रन्थ में 'बौद्ध' विशेषण से युक्त शब्दप्रयोग नहीं किया गया है।

कथितं हि महाभाग नारदेन महात्मना। सत्यव्रताय पूर्णाय भीष्माय परिपृच्छते ॥१५॥

ऋषय ऊचुः—

कथं समागमो ब्रह्मन् तयोरासीन्महात्मनोः। किं पुण्यं कथयामास भीष्मः किं पृष्टवान् शुभम् ॥

व्यास उवाच—

सत्यव्रतं च गाङ्गेयं नारदो भगवानृषिः। आजगाम महाभाग देवलोकात् तपोधनः ॥१७॥
सम्पूज्य नारदं विप्रा गाङ्गेयः स महातपाः। उपवेश्यासने शुद्धे पृष्टवानामयं तथा ॥१८॥
कथां स प्रष्टुमारेभे कुरुवृद्धः पितामहः ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरयूमाहात्म्ये चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥

प्रश्नों का उत्तर मैं दे रहा हूँ। आप सुनें। (पहले भी) सत्यव्रत भीष्म के पूछने पर देवर्षि नारद ने उस सम्बन्ध में कहा था ॥ १५ ॥

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—ब्रह्मन् ! उन दोनों महात्माओं का समागम वहाँ कैसे हुआ ? भीष्म ने क्या प्रश्न किया ? नारद ने क्या उत्तर दिया ? ॥ १६ ॥

व्यासजी ने इस प्रकार समाहित किया—गङ्गापुत्र भीष्म के पास प्रसङ्गवश देवलोक से नारद आ पहुँचे। भीष्म ने उनका सम्मान कर आसन पर बैठाया। कुशल-वार्तादि पूछने के बाद उन्होंने कथा पूछनी आरम्भ की ॥ १७-१९ ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'सरयूमाहात्म्य'-सम्बन्धी
चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

भीष्म उवाच—

किमेकं भूतले क्षेत्रं किं वाप्येकं शुभप्रदम् । किमेकं दैवतं देवे पूज्य प्रापुर्नराः शुभम् ॥१॥

नारद उवाच—

पुरा ब्रह्मसमाजे यं श्रुतं ब्रह्ममुखान्मया । सेतिहासं विचित्रं यं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् ॥२॥
ब्रह्मणा कथितं पुण्यं गौतमाय महात्मने । सर्वतीर्थाधिकं भीष्म शृणुष्व सुसमाहितः ॥३॥
एकदा सुखमासीनं ब्रह्माणं लोकपूजितम् । प्रणम्य परया भक्त्या गौतमः पर्यपृच्छत ॥४॥

गौतम उवाच—

धातः सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च । सेतिहासपुराणानि विचित्रचरितानि च ॥५॥
श्रुतानि त्वन्मुखात्तात विष्णोश्च शंकरस्य च । विना सर्वाणि तीर्थानि अटित्वा कमलासन ॥
कस्मिन्क्षेत्रे विमुक्तिः स्यान्मानवानां दुरात्मनाम् । सर्वेषामपि तीर्थानां विना गत्वा प्रजायते ॥
यस्मिन् क्षेत्रे महाभाग तत्क्षेत्रं वद विस्तरात् ॥७॥

नारद उवाच—

गौतमेन महाभाग स्मारितः कमलासनः । क्षेत्रं संकथयामास[1] सर्वक्षेत्राधिकं शुभम् ॥८॥

ब्रह्मोवाच—

हिमालयतटे रम्ये सिद्धकिन्नरसेविते । पूजयन्ति हरेः पुण्यं चरणं देवतागणाः ॥९॥
तत्रैव विष्णोश्चरणाद्वामाद् दिव्या सरिद्वरा । मानसोत्था पुण्यतीर्था वसिष्ठेन प्रकाशिता ॥१०॥
बभूव सरयूनामा जाह्नवीसदृशी शुभा । तथा हिमालयोद्देशे जामदग्न्येन वाहिता ॥११॥

भीष्म ने पूछा—महर्षे ! इस भूतल पर जिनके पूजन करने से लोगों का भला हुआ हो, ऐसा अद्वितीय क्षेत्र अथवा स्थान तथा देव किसे कहा जाय ? ॥ १ ॥

नारद ने उत्तर दिया—प्राचीन समय में ब्रह्मा की सभा में मैंने उन्हीं के मुख से इतिहास-समन्वित उत्तम क्षेत्र के बारे में जाना है। स्वयं ब्रह्मा ने उस आख्यान को महर्षि गौतम से कहा था। भीष्म ! तुम ध्यान पूर्वक सुनो। किसी समय आनन्द-पूर्वक बैठे हुए ब्रह्माजी से गौतम ऋषि ने प्रणामपूर्वक पूछना आरम्भ किया ॥ २-४ ॥

गौतम ऋषि ने पूछा—ब्रह्मन् ! अनेक तीर्थों एवं क्षेत्रों का इतिहास आप के मुख से सुननें का अवसर मिला है। सब तीर्थों में भ्रमण किए बिना किस तीर्थ में दुराचारियों की मुक्ति हो सकती है ? उस क्षेत्र का विस्तार पूर्वक आप वर्णन करें ॥ ५-७ ॥

नारद भीष्म से बोले—महाभाग ! इस प्रकार गौतम ऋषि के द्वारा स्मरण दिलाये जाने पर ब्रह्मा ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के बारे में बताना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालय के रमणीय तट पर सिद्ध तथा किन्नरों से सेवित एवं देवगणों से पूजित विष्णु भगवान् का चरण है। वहीं 'मानसरोवर' से प्रवाहित 'सरयू' नदी प्रकट हुई।

---

1. 'व कथयामास'—इति पाठान्तरम्।

रामगङ्गेति विख्याता पातकान्तकरी शुभा। राजते जामदग्न्येन रामेण परिसेविता ॥१२॥
तयोर्मध्ये महाक्षेत्रं दिव्यं रामेश्वराह्वयम्। विद्यते देवगन्धर्वैः सेवितं सुमनोहरम् ॥१३॥
तत्र रामेश्वरो देवो भवान्या सह राजते। महेन्द्रप्रमुखैर्देवैर्वाणाद्यैर्दितिजैरपि ॥१४॥
सिद्धविद्याधरैश्चापि सेवितो मुनिसत्तम। यथा कैलासशिखरे यथा मन्दरमूर्धनि ॥१५॥
यथा वागीश्वरो देवो यथा विश्वेश्वरो हरः। यथा सम्पूज्यते देवः सुपुण्ये दारुकानने ॥१६॥
तथा रामेश्वरो देवः पूज्यते देवनायकैः। पूज्य विश्वेश्वरं देवमुषित्वा काशिमण्डले ॥१७॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं पूज्य रामेश्वरं स्मृतम्। वैद्यनाथाच्छतगुणं सेतुबन्धात्तथैव च ॥१८॥
प्राप्यते मुनिशार्दूल पूज्य रामेश्वरं हरम्। येन रामेश्वरो देवः सरयूसंगमे शुभे ॥१९॥
निमज्य विधिवत्तत्र सन्तर्प्य च पितॄन् तथा। पूजितस्तेन भूखण्डं सशैलं वनकाननम् ॥२०॥
दृष्टं सर्वं महाभाग सरित्सरसमन्वितम्। तेन सर्वाणि तीर्थानि प्रयागप्रमुखानि च ॥२१॥
तथा क्षेत्राणि सर्वाणि कुरुक्षेत्रमुखानि वै। दृष्टानि मुनिशार्दूलाः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२२॥
सरयूरामयोर्मध्ये क्षेत्रराजेति विश्रुतः। देवापि मर्तुमिच्छन्ति मानवानां तु किं ततः ॥२३॥
अवतीर्य महाभाग कोशलायां हरिः स्वयम्। रामो नाम विशालाक्षो गृहे दशरथस्य च ॥२४॥
सत्यागमनमाकाङ्क्ष्य यत्र सम्पूज्य शङ्करम्। स्वेनैव वपुषा पुत्र ययौ वैकुण्ठमन्दिरम् ॥२५॥
लिङ्गं संस्थाप्य देवस्य स्वनाम्ना च कृतं शुभम्। पूज्य देवर्षिमनुजैः पूजितं वरदं शिवम् ।२६।

वसिष्ठ मुनि ने उसे प्रकाशित किया था। वह गङ्गा के समान पवित्र 'सरयू' नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार 'हिमालय' के एक प्रान्त में परशुराम द्वारा प्रवाहित 'रामगङ्गा' (पूर्वी) है। उन दोनों के मध्य दिव्य 'रामेश्वर' क्षेत्र है। उसमें देवों, दैत्यों, सिद्धों, मानवों आदि से सेवित भवानीसहित 'रामेश्वर' का वास है। कैलास-शिखर, मन्दराचल की तरह, वागीश्वर, विश्वनाथ, यागीश्वर, रामेश्वर भी सर्वपूज्य हैं। काशीवास कर विश्वनाथ के पूजन की अपेक्षा दस गुना फल 'रामेश्वर' के पूजन से मिलता है। 'वैद्यनाथ' तथा 'सेतुबन्ध' रामेश्वर की अपेक्षा सौ गुना फल सरयू-रामगङ्गा के सङ्गम पर स्थित 'रामेश्वर' की पूजा से प्राप्त होता है। सरयू-संगम में स्नानोपरान्त 'रामेश्वर' का पूजन करने वाले व्यक्ति की समता समस्त शैल-वन-सरोवरों और नदियों सहित भूखण्ड के दर्शन और पूजन करने के समान की जाती है। उसे 'प्रयागादि' तीर्थों तथा 'कुरुक्षेत्रादि' क्षेत्रों का उसी में दर्शन हो जाता है। इन दोनों नदियों के मध्यस्थ क्षेत्र में देवादि भी आत्मसमर्पण करना चाहते हैं, मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? नारद! कोशल में जन्मे दशरथ के पुत्र अवतार-पुरुष रामचन्द्र ने सत्यलोक जाने की इच्छा से यहाँ स्नान कर शङ्कर का पूजन किया था। वे सशरीर वैकुण्ठ-धाम गए। उन्होंने अपने नाम से यहाँ शिवलिङ्ग[1] स्थापित किया ॥ ९-२६ ॥

---

१. चारों धामों में से एक सुप्रसिद्ध धाम 'रामेश्वर' नाम से सुदूर दक्षिण में प्रतिष्ठापित है। कहा जाता है कि उसकी स्थापना लङ्का जाते समय भगवान् राम ने की थी। पुल बाँधने के पूर्व शङ्करजी का पूजन कर फिर नल तथा नील की सहायता से समुद्र पर सेतु बाँधा गया। इस लिए वह मन्दिर 'सेतुबन्ध रामेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध है। रामचरितमानस के लङ्काकाण्ड में इस मन्दिर के स्थापना-दिवस के सम्बन्ध में सूचित किया गया है कि "इस मन्दिर की स्थापना ज्येष्ठ शुक्ला १०, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गर

नारद उवाच—

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा गौतमो हर्षपूरितः। स्फुरद्दशनबिम्बेन वदनेन विराजितः ॥
पुनः पप्रच्छ धातारं सृष्टिसंहारकारकम् ॥२७॥

गौतम उवाच—

कथं दाशरथी रामो ह्यवतीर्य रघोः कुले। हित्वा स कोशलां पुण्यां तथा काशीं हरप्रियाम् ॥
स्वयं पुण्या हि रघवो व्याख्यायन्ते नराधिपाः। स तु रामो विशालाक्षो हरिः साक्षात्प्रगीयते ॥
यस्य संस्मरणादेव लोकाः सर्वे तरन्ति हि। ययौ हिमगिरिं पुण्यं स कथं कमलासन ॥३०॥

ब्रह्मोवाच—

यत्त्वया कथितं पुत्र सत्यमेतन्न संशयः। स्मरणाद्रघुनाथस्य लोकाः सर्वे तरन्ति हि ॥३१॥
तथापि स रघूणां वै कुलकर्म स्मरन् शुभम्। हिमवन्तं गिरिं पुण्यं सर्वतो मुनिसत्तमाः ॥३२॥
मत्वा जगाम राजर्षिः स्तूयमानो महर्षिभिः। स राजा मुनिशार्दूल विलङ्घ्य वसतित्रयम् ॥
सरयूरामसरितोर्मध्ये क्षेत्रं महोत्तमम्। प्राप्य स्वेनैव वपुषा गन्तुमैच्छत् स्वमास्पदम् ॥३४॥
शङ्करं पूजयामास कृत्वा लिङ्गं मथोदितम्। स्वनाम्ना चाङ्कितं लिङ्गं संस्थाप्य मुनिसत्तमाः ॥
तेनैव वपुषा रामो ययौ वैकुण्ठमन्दिरम्। प्रसादाद्देवदेवस्य शङ्करस्य तपोधनाः ॥३६॥
ततः प्रभृतिलोकेषु देवो रामेश्वरो विभुः। रामेश्वरेति विख्यातो बभूव मुनिसत्तमाः ॥३७॥
ये पूजयन्ति मनुजा देवं रामेश्वरं प्रभुम्। सरयू-रामसरितोर्मध्ये स्नात्वा यथाविधि ॥३८॥
सन्तर्प्य च पितृन् सर्वान् पिण्डं दत्त्वा तथैव च। कुलकोटिं समुत्तीर्य शिवलोकं प्रयान्ति ते ।३९।
विना दानैर्विना पुण्यैर्विना तीर्थैस्तपोऽध्वरैः। यत्र याति महामुक्तिः पूज्य रामेश्वरं हरम् ।४०।
अत्र संगीयते पुत्र इतिहासं पुरातनम्। ब्राह्मणेन पुरा गीतो राज्ञे वेदसहाय च ॥४१॥

नारद ने कहा - ब्रह्माजी की बातें सुन प्रसन्नता के साथ गौतम ऋषि ने फिर जिज्ञासा की ॥ २७ ॥

गौतम ऋषि बोले – ब्रह्मन् ! कोसलेश जगदुद्धारक राम रघुकुल में जन्म लेकर अयोध्या और काशी सदृश तीर्थों को छोड़ कर हिमालय की ओर किस कारण आये ? ॥२८-३०॥

ब्रह्माजी ने कहा—तुमने जो कुछ कहा, वह सर्वथा सत्य है। राम का स्मरण करने से ही सब तर जाते हैं। तथाऽपि रामचन्द्र अपने पूर्वजों का पुण्य-स्मरण कर तीन बस्तियों (प्रदेशों) को पार कर 'सरयू-रामगङ्गा' के मध्यस्थ इस पुनीत क्षेत्र में चले आए। अपने नाम से अङ्कित इस शिवलिङ्ग को स्थापित करने के उपरान्त उनका यथाविधि पूजन कर सदेह वैकुण्ठधाम चले गए। मुनिवरों ! तब से इस संसार में भगवान् शङ्कर रामेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। जो मनुष्य सरयू-संगम में स्नान कर भगवान् शंकर का पूजन कर पितृकार्यादि करते हैं, वे असंख्य कुलों का उद्धार कर शिवलोक प्राप्त करते हैं। रामेश्वर का पूजन करने पर बिना दान, पुण्य तप तथा यज्ञ किए ही मुक्ति उन तक पहुँच जाती है। पुत्र नारद ! इस सम्बन्ध में एक पुराना

करण, आनन्द तथा व्यतीपात योग, कन्या राशि के चन्द्रमा तथा वृष के सूर्य में हुई थी। स्कन्दपुराणान्तर्गत ब्राह्मखण्ड सेतुमाहात्म्य ४३-७१ में इनकी प्रार्थना इस प्रकार की गई है—"रामनाथ महादेव मां रक्ष करुणानिधे। इति यः सततं ब्रूयात् कालिनाऽसौ न बाध्यते" ॥

गौतम उवाच—

कुत्र वेदसहो राजा बभूव कमलासन। कस्मिन् वंशे प्रसूतश्च कथं द्विजसमागमः ॥४२॥
किं तत्र कथितं पुण्यं ब्राह्मणेन महात्मना। एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तो वै कमलासन ॥४३॥

ब्रह्मोवाच—

उज्जयिन्यां महाभाग राजा नहुषवंशजः। नाम्ना वेदसहो राजा बभूव परमार्थवित् ॥४४॥
सर्वदा मृगयासक्तः परस्त्रीरतिलालसः। ब्राह्मणानां महापापो वृत्तिहन्ता बभूव ह ॥४५॥
कदाचित् वृत्तिहन्तारं राजानं मुनिसत्तमाः। ब्राह्मणः कश्चिदागत्य शशाप सह भार्यया ॥४६॥
शपन्तं ब्राह्मणं राजा समुत्पाट्य स वेगवान्। जघान शिरमुद्धृत्य सभार्यः पापनिश्चयः ॥४७॥
तेन पापेन तस्याशु साङ्गं राज्यं क्षयं ययौ। तथान्यैः शत्रुभिः पुत्रहृतदारो बभूव ह ॥४८॥
हृतराज्यो हृतामात्यो हृतदारः स दुर्मतिः। निर्जितः शत्रुभिः पुत्र महाबलपराक्रमः ॥४९॥
वनं वसनवासाय एकाकी मुनिसत्तमाः। ययौ स विपिनं घोरं गुहापादपसङ्कुलम् ॥५०॥
स हत्यां पृष्ठतो यान्तीं घोरां ब्रह्मवधोद्भवाम्। ददर्श मुनिशार्दूलाः कालरात्रिमिवापराम् ॥५१॥
यत्र यत्र दुराचारो जगाम मुनिसत्तमाः। तत्र तत्र समायान्तीं ब्रह्महत्यां ददर्श ह ॥५२॥
तां दृष्ट्वा पृष्ठतो यान्तीं स राजा मुनिसत्तमाः। चिन्तया परयाविष्टः सङ्गमे दुष्कृतं कृतम् ॥
भृत्यैर्मित्रैः कलत्रैश्च त्यक्तोऽस्मि गहने वने। राज्येनापि तदा पुत्रैर्बान्धवैश्च नियोजितः ॥५४॥
नानया पृष्ठगामिन्या परित्यक्तोऽस्मि साम्प्रतम्। इति संचिन्त्यमानस्य तस्य बुद्धिः सुनिर्मला।
बभूव हृतराज्यस्य हृतदारस्य वै तदा। ततस्तीर्थेषु सर्वेषु स राजा विचचार ह ॥५६॥
स्नात्वा सर्वेषु तीर्थेषु दृष्ट्वा क्षेत्राणि वै तथा। न शान्तिं मुनिशार्दूला लेभे वेदसहः सदा ॥

आख्यान प्रसिद्ध है। उसे किसी ब्राह्मण ने राजा वेदसह को सुनाया था ॥ ३१-४१ ॥

गौतम ऋषि ने फिर पूछा—ब्रह्मदेव ! राजा वेदसह कहाँ रहा ? वह किस वंश में उत्पन्न हुआ ? तथा वह ब्राह्मण उसके पास कैसे पहुँचा ? मैं आप से यही जानना चाहता हूँ कि उसने कौन सी अच्छी बात कही ? ॥ ४२-४३ ॥

ब्रह्माजी ने उत्तर दिया—महाभाग ! उज्जयिनी में 'नहुष' के वंश में मोक्ष प्राप्त करने का इच्छुक 'वेदसह' नाम का राजा हुआ। वह आखेट का प्रेमी, परस्त्री-प्रेमी, ब्राह्मणों की वृत्ति का हरण करने वाला महापापी व्यक्ति था। किसी समय किसी ब्राह्मण ने भार्यासहित वहाँ आकर उस राजा को शाप दे दिया। शाप देते समय पापी राजा ने पत्नी सहित बड़ी शीघ्रता से उसे दबोच कर मार दिया। उस पाप के फलस्वरूप उसका सप्ताङ्ग राज्य नष्ट हो गया। उसके शत्रुओं ने उसके पुत्र और पत्नी को भी मार डाला। इस प्रकार राज्य, पुत्र, पत्नी, अमात्यादि के नष्ट होने पर उस पराक्रमी राजा के शत्रुओं ने उसे हरा दिया। अतः वह गुफा और वृक्षों से संकुलित घोर वन में रहने के लिये चला गया। मुनिवरों ! जहाँ-जहाँ वह जाता था, वहाँ उसके पीछे कालरात्रि की तरह ब्रह्महत्या भी पहुंच जाती थी। मुनिवरों !! उसके पीछा करते हुए वह राजा बड़ा दुःखी हुआ तथा यह सोचने लगा कि किए हुए दुष्कर्मों के कारण मैं धन, पुत्र, कलत्रादि से रहित हो गया हूँ और इस भयङ्कर वन में भटक रहा हूँ। इस ब्रह्महत्या का पीछा भी नहीं छूट रहा है। ऐसा सोचते हुए उसकी बुद्धि शुद्ध हो चली। तब उस राजा ने तीर्थाटन किया। मुनिवरों ! उस राजा को अनेक तीर्थों और क्षेत्रों में

ततस्तीर्थेषु सर्वेषु स्नात्वा पीत्वा मुहुर्मुहुः । शान्तिमिच्छन् स राजाऽपि हिमवन्तं गिरिं ययौ ॥
मृगाणां मिथुनैर्युक्तं पूरितं हिमसीकरैः । हिमालयतटे रम्ये चोपविष्टं सुखासने ॥५९॥
ददर्श ब्राह्मणं राजा तपन्तं दीप्ततेजसम् । प्रणम्य पूजयामास पूजोपकरणाविभिः ॥६०॥
स राजा पूजितः पुत्र बभाषे करुणं वचः । राजानं दीनवदनं दृष्ट्वा स ब्राह्मणोत्तमः ॥६१॥

ब्राह्मण उवाच—

दीर्घमुष्णं च निःश्वासं क्रियते केन हेतुना । केन त्वां नगरीं त्यज्य इहायातोऽसि साम्प्रतम् ।६२।
किमिह ध्यायसि हृदा किं त्वया दुर्नयं कृतम् । किं नु जानपदाः सर्वे सन्ति ते कुशला नृप ।६३।

राजोवाच—

मया नृपपदं प्राप्य मया सर्वे विनाशिताः । प्रहृता द्विजवृत्तिश्च ब्राह्मणाश्च निपातिताः ॥६४॥
कदाचिच्छप्यमानो वै ब्राह्मणो निहतो मया । सपत्नीकः कलाभिज्ञो वेदवेदान्तपारगः ॥६५॥
तेन पापेन मे राज्यं प्रणष्टं द्विजसत्तम । षडङ्गैरपि सम्पूर्णं पितृपैतामहं शुभम् ॥६६॥
शत्रुभिः प्रहृता दारास्तथा भृत्यादयः परे । विहीनः स्वजनैर्दारैः पुत्रैश्चापि तपोधन ॥६७॥
विचरामि वनं घोरं गुहां पादपसङ्कुलाम् । पुत्रैर्दारैश्च भृत्यैश्च मित्रैरपि वियोजितः ॥६८॥
कदाचिदपि सन्त्यक्तो नानया ब्रह्महत्यया । विमुक्तिमिच्छते विप्र शरणं संगतोऽस्म्यहम् ॥६९॥
उपायं ब्रूहि पापस्य यथा स्यान्निष्कृतिः शुभा ।

ब्रह्मोवाच—

इति विज्ञापितो राजा ब्राह्मणो मुनिसत्तमाः । कथयामास पुण्याख्यं रामेश्वरकथोद्भवम् ।७०।

स्नानादि करने पर भी शान्ति नहीं मिली । इस प्रकार वह अशान्त मन से सब तीर्थों के भ्रमण करने के पश्चात् 'हिमालय' पर्वत की ओर आ पहुँचा । वहाँ मृगयूथों से युक्त एवं बर्फ से ढके हुए स्थान पर उसने एक तेजस्वी ब्राह्मण को आसन पर अवस्थित तप करते हुए देखा । राजा ने उसकी पूजा की तथा करुणा-पूर्ण वाणी से उसके समक्ष बोलने लगा । उसे सुन वह तपस्वी ब्राह्मण उस दीन-वदन राजा से बोला ॥ ४४-६१ ॥

ब्राह्मण ने कहा—तुम लम्बी सांस क्यों ले रहे हो ? अपनी नगरी को छोड़ यहाँ कैसे आये ? तुम मन में क्या सोच रहे हो ? तुमने क्या अन्याय किया है ? राजन् ! तुम्हारी प्रजा तो कुशली है ? ॥ ६२-६३ ॥

राजा बोला—राजपद पाकर मैंने सबका नाश कर दिया है। ब्रह्मवृत्ति का भी उच्छेद किया है । ब्राह्मणों को भी मारा है । कभी मुझे शाप देते हुए किसी सपत्नीक वैदिक ब्राह्मण की मैंने हत्या भी की है । विप्रवर ! इसी पाप से मेरा राज्य विनष्ट हो गया है। पितृपरम्परागत षडङ्ग राज्य के साथ ही मेरे शत्रुओं ने पुत्र-कलत्रादि को भी, मार डाला है। तपोधन ! उनसे रहित होकर अब मैं इस घनघोर वन में विचरण कर रहा हूँ । कहाँ तक कहूँ ? यह ब्रह्महत्या मेरे पीछे पड़ी हुई है, इससे छुटकारा नहीं मिल रहा है । विप्रवर ! इस से छुटकारा पाने की इच्छा से मैं आप की शरण में आया हूँ । इससे छुटकारा पाने का उपाय बतलायें ॥ ६४-६९ ॥

ब्रह्माजी ने कहा—मुनिवरों ! इस तरह राजा के द्वारा निवेदन किए जाने पर उस

ब्राह्मण उवाच—

व्रज रामेश्वरं सौम्य रुद्रकन्यानिषेवितम् । तत्र ते पातकाः सर्वे विलीयन्ते न संशयः ।।७१।।
पूजयस्व महादेवं रामेशं नृपसत्तम । श्रेयस्ते भविता सद्यः सत्यमेतन्मयोदितम् ।।७२।।
रामेश्वरादहमपि साम्प्रतं नृपसत्तम । समागतोऽस्मि देवेशं सम्पूज्य नृपसत्तम ।।७३।।
तत्र कौतूहलं दृष्ट्वा सहैतैर्ब्राह्मणैर्नृप । समागतोऽस्मि विपिनं घोरं पादपसंकुलम् ।।७४।।

राजोवाच—

किं तत्र कौतुकं दृष्टं भवता ब्राह्मणोत्तम । तिथौ कस्मिन् महादेवः पूज्यते तद्वदस्व माम् ।७५।

ब्राह्मण उवाच—

सर्वे जानपदा राजन् रामं दाशरथिं प्रभुम् । गतं वैकुण्ठभवनं क्षेत्रं रामेश्वराह्वयम् ।।७६।।
प्राप्य तं सरयूतोयैः सेवितं सुमनोहरम् । समाजग्मुर्महाभागाः सपत्नीका महोत्सवाः ।।७७।।
चतुर्दशीमुपोष्याशु पूजयामासुः शङ्करम् । सरयू-रामसरितोर्मज्जयित्वाथ संगमे ।।७८।।
तत्रैका ब्राह्मणी वृद्धा हीना चाचारलक्षणैः । न प्राप देवदेवस्य दर्शनं नृपसत्तम ।।७९।।
स्मरन्ती शङ्करं शान्तं पञ्चत्वमगमत् ततः । मृता शिवपुरं नीता विमानमधिरोप्य वै ।।८०।।
रिटिप्रभृतिभिः पुण्यैः पार्षदैर्नृपसत्तम । रामेश्वरस्य देवस्य स्मरणादपि सा नृप ।।८१।।
आचारलक्षणैर्हीना प्राप शिवपुरं महत् । भक्त्या ये शंकरं शान्तं रामेण स्थापितं शुभम् ।।८२।।

तपस्वी ब्राह्मण ने 'रामेश्वर' की उत्पत्ति का पवित्र आख्यान सुनाया ।। ७० ।।

ब्राह्मण बोला—सौम्य ! तुम रामेश्वर जाओ । उस क्षेत्र के सेवन से सब पाप विलीन हो जाते हैं । रामेश्वर का पूजन करने से तुम्हारा कल्याण होगा । मैं अभी वहीं से देवेश का पूजन कर लौट आया ह । वहाँ कुतूहल देखकर अभी इस वन में पहुँचा हूँ ।। ७१-७४ ।।

राजा बोला -द्विजश्रेष्ठ ! आप ने वहाँ क्या कौतुक देखा है ? किस तिथि को वहाँ पूजन करना श्रेयस्कर है ? ।। ७५ ।।

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—राजन् ! भगवान् राम के वैकुण्ठलोक जाने पर अयोध्या की जनता सरयू-सेवित रामेश्वर क्षेत्र में आई थी[1] । वे लोग चतुर्दशी के दिन उपवास कर सरयू-रामगङ्गा के संगम में स्नान करने के उपरान्त 'रामेश्वर' का पूजन करने लगे । उस समय एक बूढ़ी ब्राह्मणी दर्शन नहीं कर पायी । शान्त शङ्कर का स्मरण करते-करते वह मर गई । तब शिवगणों ने उसे विमान पर चढ़ा कर शिवलोक पहुँचा दिया । इस प्रकार रामेश्वर के स्मरण-

---

१. वाल्मीकि रामायण में अयोध्या की जनता के सम्बन्ध में 'गोप्रतार घाट का उल्लेख मिलता है । जिस जिसने वहां गोता लगाया वहीं-वहीं बड़े हर्ष के साथ मनुष्य-शरीर को त्याग कर विमान पर जा बैठा । यहां तक कि पशु-पक्षी भी दिव्य शरीर धारण कर देवताओं के समान दीप्तिमान् हो गए—

"अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् । सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ।।
पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः । विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ।।
तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपागताः । भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः ।।
अवगाह्याप्सु यो यो व प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् । मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत ।।"

(उत्तरकाण्ड १०-१, १२, २२, २३) ।

पूजयन्ति फलं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि। न शक्नोति महाभाग स्वयमेव पितामहः ।।८३।।
व्रजस्व नृपशार्दूल तत्र श्रेयमवाप्स्यसि। पूजयस्व चतुर्दश्यां रामेशं शङ्करं नृप।।
निमज्य सरयूतोये सन्तर्प्य च पितृंस्तथा ।।८४।।

राजोवाच—

तस्मिन् क्षेत्रे महाभाग प्रवेशः कुत्रतः स्मृतः। निर्गमः कुत्रतः प्रोक्तः कानि तीर्थानि सन्ति वै।

ब्राह्मण उवाच—

पर्णपत्रेति विख्याता नदी कूर्माचलोद्भवा। पद्मनाभपदोद्भूता सरयूसंगमं गता ।।८६।।
संगमैर्बहुभिः पूर्णा नानातीर्थविराजिता। सरयूसंगमं पुण्यं संगता नृपसत्तम ।।८७।।
प्रवेशस्तत्र विज्ञेयः क्षेत्रे रामेश्वराह्वये। निमज्य पर्णपत्रायाः संगमे नृपसत्तम ।।८८।।
सन्तर्प्य पिण्डदानेन देवर्षिपितृमानवान्। पत्रेशं शंकरं पूज्य सुपत्रां शङ्करप्रियाम् ।।८९।।
शिवलोकमवाप्नोति मानवो नृपसत्तम। तदूर्ध्वं पर्णपत्रायाः संगमे नृपसत्तम ।।९०।।
लोकवाराहतीर्थं वै सुवक्त्रं देवसेवितम्। निमज्य विधिवत्तत्र वाराहं पूज्य वै तथा ।।९१।।
सन्तर्प्य पितृदेवादीन् नरो याति परां गतिम्। तदूर्ध्वं चन्द्रशेषाख्यं शेषायां संगमे शुभे ।।९२।।
सेवितं देवगन्धर्वैर्विद्यते सुमनोहरैः। तत्र स्नात्वा नरो याति चन्द्रलोकं न संशयः ।।९३।।
तदूर्ध्वं हि कुशावर्तमस्ति देवनिषेवितम्। निमज्य विधिवत्तत्र कुशैः सम्पूज्य वै पितॄन् ।।९४।।
देवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तम। तदूर्ध्वं बालितीर्थाख्यं तीर्थमस्ति तपोधन ।।९५।।

मात्र से ही आचारहीन वृद्धा शिवलोक प्राप्त कर सकी। भक्तिपूर्वक रामेश्वर का पूजन करने वाले मनुष्यों के पुण्य का वर्णन साक्षात् ब्रह्मा भी सैकड़ों वर्षों में नहीं कर सकते। तुम वहाँ जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। चतुर्दशी के दिन 'सरयू' में स्नान तर्पणादि कर रामेश्वर का पूजन करो ।। ७६-८४ ।।

राजा बोला—विप्रवर! वहाँ के प्रवेश और निर्गम-मार्ग कहाँ पर हैं? वहाँ कौन से तीर्थ हैं? ।। ८५ ।।

ब्राह्मण ने कहा—'कूर्माचल' (काली-कुमायूँ) में पद्मनाभ के चरण से उत्पन्न 'पर्णपत्रा' (=पनार) नदी अनेक नदियों के साथ संगत होती हुई जहाँ पर 'सरयू' से मिलती है– वह स्थान रामेश्वर-क्षेत्र का प्रवेशद्वार है। वहाँ सङ्गम पर स्नान-तर्पण कर 'पत्रेश' महादेव तथा 'सुपत्रा' देवी का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है। उसके ऊपर देव-सिद्धादियों से सेवित 'शेषगङ्गा' के सङ्गम में स्नान करने से 'ब्रह्मलोक' प्राप्त होता है। उससे ऊपर 'कुशावर्त' तीर्थ है[1]। वहाँ स्नान तथा कुशों से पितृकृत्य कर देवलोक मिलता है। उसके ऊपर 'वालितीर्थ' में स्नान एवं 'जलबालीश्वर' का पूजन कर सद्गति प्राप्त होती है।

---

१. हरिद्वार में प्रसिद्ध एक तीर्थ 'कुशावर्त' घाट के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ गौतम ने गङ्गा का कुशों से आवर्तन किया था। गङ्गा को पुराणों में दो भागों में विभक्त बतलाया गया है। विन्ध्यगिरि के दक्षिण की गङ्गा 'गोदावरी' नदी है। उत्तर की 'भागीरथी' कहलाती है। 'कुशावर्त' पितरों के श्राद्ध के लिये प्रशस्त बतलाया गया है—''ब्रह्मावर्तं 'कुशावर्तं' हयतीर्थं तथैव च। पिण्डारकं च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च'' ।।—(मत्स्यपुराण, २२-५९)।

तत्र स्नात्वा च मनुजो जले बालीश्वरं हरम्। सम्पूज्य नृपशार्दूल नरो याति परां गतिम्।९६।
ततः स्रोतः समुत्तीर्य बौद्धतीर्थे नृपोत्तम। निमज्ज्य मानवो याति विष्णुलोकं न संशयः॥९७॥
तदूर्ध्वं शैलसम्भूता पुण्या गुप्तसरस्वती। सरयूसंगमे पुण्या संमिलन्मुनिसत्तमाः॥९८॥
तत्र स्नात्वा च विधिवत् सन्तर्प्य च पितृंस्तथा। शाङ्करीं तत्र सम्पूज्य नरो याति पराङ्गतिम्।
ततो वायुसरे स्नात्वा सन्तर्प्य च पितृंस्तथा। महेन्द्रभवनं याति मानवो नृपसत्तम॥१००॥
सरयू-रामसरितोर्मध्ये शैलस्थलं शुभम्। प्राप्य तां शैलजां देवीं पूजयेत्सुसमाहितः॥१०१॥
भैरवेशं च सम्पूज्य शैलोद्देशेऽतिशोभने। मानवो देवभवनं प्रयाति नृपसत्तम॥१०२॥
ततो भागीरथीसङ्गे निमज्ज्य नृपसत्तम। सन्तर्प्य च पितॄन् देवान् पिण्डं दत्त्वा विधानतः॥
शिवलोकमवाप्नोति मानवो नात्र संशयः। ततस्तु दण्डतीर्थे वै निमज्ज्य विधिपूर्वकम्॥१०४॥
मानवो देवसदनं प्रयाति नहि संशयः। ततस्तु ब्रह्मतीर्थाख्यं तीर्थमस्ति सुशोभनम्॥१०५॥
पिण्डदानेन मनुजः कुलमेकोत्तरं शतम्। सन्तर्प्य नृपशार्दूल प्रयाति परमां गतिम्॥१०६॥
सरयू-रामसरितोर्मध्ये तीर्थोत्तमं स्मृतम्। रामतीर्थेति विख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥१०७॥
तत्र स्नात्वा च विधिवत् सन्तर्प्य च पितृंस्तथा। तथैव जामदग्न्याख्ये तीर्थे स्नात्वा सुशोभने।
क्षेत्रपालं प्रपूज्याशु देवं रामेश्वरं व्रजेत्। तत्र नत्वा च विधिवत् सम्पूज्य च पुनः पुनः।१०९।
रुद्रतीर्थं ततो गच्छेद् रामगङ्गाजले शुभे। तत्र निष्क्रमणं प्रोक्तं निमज्ज्य नृपसत्तम॥११०॥
दक्षिणे रामगङ्गायास्तटस्थं बहुलेश्वरम्। सम्पूज्य नृपशार्दूल नरः शिवपुरं व्रजेत्॥१११॥
ततस्तु रामगङ्गायां नन्दिकेशसरं स्मृतम्। तत्र स्नात्वा च सम्पूज्य नन्दिकेशं नृपोत्तमम्।११२।

राजन्! तब नदी से कुछ उतर कर 'बौद्धतीर्थ' है, वहाँ स्नान करने से विष्णुलोक मिलता है। उसके कुछ ऊपर 'शैल' पर्वत से उत्पन्न 'गुप्त सरस्वती' का सरयू के साथ सङ्गम है। वहाँ स्नानादि करने पर महेन्द्रभवन प्राप्त होता है। वहीं 'शाङ्करी' का भी पूजन होता है। तब 'वायुसर' में स्नान तथा तर्पण किया जाय। 'सरयू' और 'रामगङ्गा' (पूर्वी) के मध्य 'शैल[1] स्थल' है। उसमें 'शैलजा' देवी तथा सुन्दर शैलोद्देश में 'भैरवेश' का पूजन करने से देवभवन प्राप्त होता है। तब 'भागीरथी' के सङ्गम में स्नान-तर्पण तथा पितृकार्यादि कर शिव-लोक प्राप्त करें। तदनन्तर 'दण्डतीर्थ' में स्नान करें। तत्पश्चात् 'ब्रह्मतीर्थ' में पिण्डदान कर १०१ कुलों का उद्धार होता है। फिर 'सरयू'-'रामगङ्गा' के मध्य 'रामतीर्थ'[2] है। वहाँ स्नान, तर्पणादि करने के पश्चात् 'जामदग्न्य' तीर्थ में स्नान तथा 'क्षेत्रपाल' का पूजन करने पर 'रामेश्वर' के समीप पहुँचना चाहिये। वहाँ बार-बार प्रणाम करते हुए यथाविधि पूजन करें। फिर 'रामगङ्गा' के जल में 'रुद्रतीर्थ' की ओर जाय। उसमें स्नान कर निर्गमन आरम्भ होता है। तदनन्तर 'रामगङ्गा' के दाहिने किनारे 'बहुलेश्वर' का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है। फिर रामगङ्गा में 'नन्दिकेश'सर में स्नान करना चाहिये। वहीं 'नन्दिकेश' शिव का

---

१. स्थानीय प्रचलित नाम—'श्वील' पर्वत है।

२. 'रामेश्वर' में 'स्वर्गारोहण' शिला है। वहाँ की परम्परानुसार वहाँ दाह करने पर अस्थियाँ अन्य तीर्थों—हरिद्वार, काशी, प्रयाग आदि में नहीं पहुँचाई जातीं।

महेन्द्रभवनं याति मानवो देवसेवितम् । संगमे रामगङ्गायाः सूर्यतीर्थमिति स्मृतम् ॥११३॥
तत्रैव [1]गुप्तकौशिक्याः संगमोऽस्ति नृपोत्तम । तत्र स्नात्वा च विधिवत् दिननाथं प्रपूज्य वै ॥
सन्तर्प्य च पितॄन् सर्वान् परं निष्क्रमणं शुभम्[2] । ततस्तु रामगङ्गायाः स्रोतमुत्तीर्य सुप्रभम् ॥
यक्षतीर्थे महाभागा निमज्य विधिपूर्वकम् । सम्भाव्य यक्षान् सर्वान् वै नरो याति परां गतिम् ।
तीर्थे पुण्यतरे राजन् ततस्तु विश्वकर्मणः । निमज्य विश्वकर्माणं पूजयेत् सुसमाहितः ॥११७॥
सपूज्य विश्वकर्माणं संतर्प्य च पितॄस्तथा । मानवो देवभवनं प्रयाति नृपसत्तम ॥११८॥
ततो यक्षवती पुण्या *असुरप्रान्तसम्भवा । सरयूसंगमं पुण्यं संमिलन्मुनिसत्तमाः ॥११९॥
तत्र संगममध्ये व निमज्य नृपसत्तम । सन्तर्प्य च पितॄन् सर्वान् परं निष्क्रमणं स्मृतम् ॥१२०॥
ततः स्थाल्या महासङ्गं विद्यते नृपसत्तम । तत्र स्नात्वा च विधिवत् पुण्यां पातालगां शिलाम् ।
सम्पूज्य नृपशार्दूल नरः शिवपुरं व्रजेत् । तत्र निष्क्रमणं पूर्णं जायते नात्र संशयः ॥१२२॥

राजोवाच—

तस्य पूजाविधिं ब्रूहि रामेशस्य तपोधन । तथा यात्रा यथा साङ्गं जायते तद्वदस्व माम् ।१२३।

ब्राह्मण उवाच—

गत्वा रामेश्वरं क्षेत्रं देवीं सम्भाव्य शैलजाम् । धर्मादींल्लोकपालांश्च क्षेत्रपालं तथैव च ।१२४।
सम्भाव्य नृपशार्दूल शैलं पुण्यतमं गिरिम् । ब्रह्मतीर्थे निमज्याशु रामतीर्थादनन्तरम् ॥१२५॥

पूजन किया जाय। फिर 'रामगङ्गा' (पूर्वी) के सङ्गम में 'सूर्यतीर्थ' है, उसी में 'गुप्त-कौशिकी' का सङ्गम भी है। वहाँ स्नान कर सूर्य का पूजन करने के उपरान्त निष्क्रमण विधान पूरा हो जाता है। तब 'रामगङ्गा' के प्रवाह में उतर कर 'यक्षतीर्थ' में स्नान एवं यक्षों की पूजा करने से सद्गति प्राप्त होती है। फिर पवित्र 'विश्वकर्मा'[3] तीर्थ में स्नान पूजन तथा तर्पणादि का विधान है। तत्पचात् 'असुरपर्वत'[4] के पास से निकलने वाली 'यक्षवती' नदी का 'सरयू' के साथ सङ्गम है। वहाँ पर स्नानादि करने पर स्थाली-संगम में 'पाताल-शिला' में पूजा आदि कर निष्क्रमण पूर्ण होता है ॥ ८६–१२२ ॥

राजा ने पूछा—ऋषिवर ! 'रामेश्वर' की पूजाविधि तथा पापनाशक उपायों को बतलायें ॥ १२३ ॥

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—राजन् ! 'रामेश्वर' क्षेत्र में जाकर 'शैलजा' देवी, 'धर्मादि' लोकपाल, क्षेत्रपाल तथा 'शैल' का पूजन करते हुए 'रामतीर्थ' में जाय। वहाँ 'ब्रह्मतीर्थ' में स्नान कर 'दायें' और 'बायें' दोनों तरफ परिक्रमा कर 'नन्दिकेश' और 'देवीपूजन' के पश्चात्

---

१. 'गुह्यकौशिक्याः'—'क' । २. 'स्मृतम्'—'क' ।

३. 'विश्वकर्मा' को शिल्पशास्त्र का अधिष्ठाता (देवता) कहा गया है। पुराणों की मान्यता के अनुसार वह प्रभासवसु के पुत्र एवं स्वधा के पति हैं तथा देवताओं के लिए विमान बनाने वाले हैं। महाभारत के अनुसार यह 'लावण्यमयी के पुत्र हैं (म० भा० आदि० ६६, २६–२८)। भाद्रपद की संक्रान्ति को इनकी पूजा हुआ करती है। यह भी एक प्रजापति हैं। 'नल' नामक वानर को इनका पुत्र बताया गया है। इन्द्र के प्रति द्रोहबुद्धि होने से इन्होंने तीन सिर वाले पुत्र 'विश्वरूप' को जन्म दिया (महा० उद्योग० ९, ४५–४८)। ४. मुनगल—घुनस्यारी गांव (पिठौरागढ़)।

सव्यासव्यविधानेन परिक्रम्य महेश्वरम् । नन्दिकेशं प्रपूज्याशु तथा देवीं हरप्रियाम् ॥१२६॥
देवं रामेश्वरं राजन् गत्वा संपूजयेत्ततः । आवाह्य देवदेवेशं द्वादशाक्षरविद्यया ॥१२७॥
अभिषिच्य[1] षडङ्गेन चार्घ्यं दत्त्वा विधानतः । पञ्चामृतेन संस्नाप्य पुनः शुद्धजलेन च ॥१२८॥
षडङ्गेन च संस्नाप्य गन्धं दत्त्वा प्रयत्नतः । षट्त्रिंशाक्षरमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः ॥१२९॥
धूपं दत्त्वा विधानेन ज्वाल्य दीपं विधानतः । नैवेद्येन सुतोष्याशु पठेत् स्तोत्रं समाहितः ॥

"नमो नमस्कारणकारणाय रघुप्रवीरेण निषेविताय ।
हराय देवाय वृषध्वजाय रामेश्वरायाखिललोकसाक्षिणे ॥ १३१ ॥
भस्माङ्गरागाय कलाधराय जटाधरायाखिलपावनाय ।
महिम्नपूर्णाय महाप्रभाय देवीकलत्राय नमो नमस्ते" ॥ १३२ ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं सम्पूज्य च पुनः पुनः । अनुज्ञाप्य शिवं शान्तं दत्त्वा दानं द्विजेषु वै ॥१३३॥
तर्पयित्वा पितॄन् सर्वान् ततो निष्क्रमणं चरेत् । व्रज रामेश्वरं राजन् श्रेयस्तत्र भविष्यति ॥
अहमप्यागमिष्यामि प्रदोषे मन्दसंज्ञके । तावत्तत्र त्वया स्थेयं प्रदोषे मन्दसंज्ञके ॥१३५॥
आयाति नृपशार्दूल यावत् पापप्रणाशनः । मन्दवारप्रदोषादिदुर्लभस्तत्र मण्डले ॥१३६॥
रामेश्वरस्य देवस्य पूजनं मन्दसंज्ञके । सुदुर्लभतरं तत्र प्रदोषः सत्यमेव हि ॥१३७॥

'रामेश्वर' के समीप पहुँचा जाय । वहाँ 'द्वादशाक्षरी' विद्या से देवेश का आवाहन कर 'षडङ्ग' (रुद्राष्टाध्यायी) से अभिषेक किया जाय । फिर पञ्चामृत स्नान, शुद्ध स्नान करा 'छत्तीस' अक्षरों के मन्त्र से गन्धादि उपचार करावें । तदनन्तर धूप, दीप, नैवेद्यादि समर्पण कर इस प्रकार प्रार्थना करें—"हे आदिकारण, श्रीराम द्वारा पूजित, महादेव, वृषभध्वज, सर्वसाक्षी श्रीरामेश्वर ! आप मेरे प्रणाम स्वीकार करें । 'भस्मधारिन्, चन्द्रशेखर, जटाधारिन्, सबके पवित्रकर्ता, महिमामय, महाकान्तिशालिन्, पार्वतीपते ! आप को मैं बार बार नमस्कार करता हूँ" । इस प्रकार भगवान् शङ्कर की स्तुति एवं पूजन करने के पश्चात् उनसे अनुज्ञा प्राप्त कर दान एवं तर्पणादि से निवृत्त हो निष्क्रमण करना चाहिए । नृपश्रेष्ठ ! तुम 'रामेश्वर' क्षेत्र में जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा । शनिप्रदोष के दिन मैं भी वहाँ आऊँगा, तब तक तुम वहाँ रहना । [2]'शनिप्रदोष' के दिन 'रामेश्वर' के पूजन का विशेष माहात्म्य है । ऐसा अवसर कम मिलता है ॥ १२४–१३७ ॥

---

१. अभिषित्वा'—'क' ।

२. सायंकाल में शनिवार-युक्त कृष्णपक्ष की त्रयोदशी तिथि को यह योग प्राप्त होता है । उस दिन दिनभर व्रत रखकर सन्ध्या को शिव का पूजन कर सात्त्विक आहार करने का विधान है । पद्म-पुराण के अनुसार सूर्यपुत्र शनि अपनी पत्नी के शाप से क्रूर प्रकृति का हो गया तथा पार्वती के शाप से 'खंजर'-रोग ग्रस्त हो लंगड़ा हो गया । इसका वर्ण 'काला' तथा वाहन 'गृध्र' है । इसकी दृष्टि पड़ने से गणेश का मनुष्यों का सा सिर कटकर गिर पड़ा था । पार्वती को शान्त करने हेतु 'विष्णु' को हाथी का सिर लगा गणेशजी को जीवित करना पड़ा था । इसकी शान्ति के लिए 'नीलमणि' धारण करना कहा गया है ।

ब्रह्मोवाच—

इति तद्द्विजवचनमाकर्ण्य क्षितिपतिर्विकसितवदनो जगाम क्षेत्रमुख्यम् ॥ १३८ ॥
मदनमथनमौलिं प्रपूज्य विधिवत् शिवपदमवाप स्तूयमानोऽप्सरोभिः ॥ १३९॥

नारद उवाच—

स धातुर्वचनं श्रुत्वा गौतमो जाह्नवीसुतः । सम्पूज्य लोकधातारं ब्रह्माणं कमलासनम् ॥१४०॥
मुक्तिं हि मानुषे लोके शिवानुग्रहायिनीम् । स मेने पूर्णमनसा ध्यायन् देवं महेश्वरम् ॥१४१॥
इत्येतत् कथितं भीष्म तव प्रश्नोत्तरं शुभम् । सर्वपापप्रशमनं शिवभक्तिप्रदं शुभम् ॥१४२॥
यमर्चन्तः स्तुवन्तश्च जनाः शिवपुरं प्रति । यान्ति पातकलिप्तापि[1] किमुतस्तत्परायणाः ।१४३।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे रामेश्वरमाहात्म्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार ब्राह्मण के बचन सुन राजा ने वहाँ जाकर 'रामेश्वर' का पूजन किया। इसके फलस्वरूप उसे अप्सराओं से सेवित 'शिवलोक' प्राप्त हुआ ।१३८-१३९।

महर्षि नारद बोले - ब्रह्मा की वाणी को सुन गौतम ऋषि ने ब्रह्मा का पूजन किया। इसके साथ ही मन में यह दृढ़ धारणा की कि मनुष्य-लोक में 'हिमालय' में भगवान् के अनुग्रह के साथ मुक्ति भी मिलती है। हे भीष्म पितामह! मैंने तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया है। वे सभी कार्य पापविनाशक एवं शिवभक्तिप्रद हैं। तदनुसार शिव की अर्चना और स्तवन करने से मानव के सब पातक विनष्ट हो जाते हैं तथा वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है ॥ १४०-१४३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'रामेश्वर-माहात्म्य' नामक
पचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'वं' इति पाठान्तरम् । इदमेव समीचीनम् ।

व्यास उवाच —

स नारदवचः श्रुत्वा कुरूणां प्रपितामहः। पूजयामास देवर्षि मत्वा[1] मुक्तिप्रदं शिवम् ॥१॥

ऋषय ऊचुः —

धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मस्त्वत्प्रसादात्तपोधन। पिबामस्त्वन्मुखाम्भोजच्युतं शिवकथामृतम् ॥
त्वत्प्रसादान्महाभाग क्षेत्राणि सुबहूनि च। शंकरस्यातिपुण्यानि श्रुतान्यस्माभिः साम्प्रतम् ।३।
सरयू-रामसरितोर्मध्ये यः पर्वतोत्तमः। विद्यते मुनिशार्दूल स त्वं कथय नान्यथा ॥४॥

व्यास उवाच —

सरयूरामसरितोर्मध्ये धारुगिरिः स्मृतः। गुहापादपसंकीर्णो नानाधातुविराजितः ॥५॥
तस्य दक्षिणभागे वै शैलो नाम महागिरिः। नानावृक्षलताकीर्णो नानाधातुविराजितः ॥६॥
स पर्वतो महाभागा राजते हिमवानिव। तत्र क्षेत्राण्यनेकानि स्थानानि विविधानि च ॥७॥
भवान्याश्च हरस्यापि तथान्येषां दिवौकसाम्। सन्ति तीर्थान्यनेकानि सेवितानि दिवौकसैः ।८।
तमारुह्य मनुष्याणां जायते पापविच्युतिः ॥ ९ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शैलपर्वतमाहात्म्ये षण्णवतितमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—नारद की वाणी सुन कर भीष्म पितामह ने मुक्तिप्रद जानकर उनका पूजन किया ॥ १ ॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—तपोधन ! आप की कृपा से हमने शिवकथामृत का पान तो कर लिया है। अब हम सरयू-रामगङ्गा के मध्यवर्ती उत्तम पर्वत के अनेक तीर्थों के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं। कृपया उन्हें बतलाये ॥ २–४ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! सरयू-रामगङ्गा के मध्य गुहा तथा वृक्षों से संकुचित एवं अनेक धातुओं की खानों से युक्त 'शैल' नामक[2] पर्वत विद्यमान है। देवों की वासभूमि होने के कारण वह 'हिमालय' के सदृश शोभित है। उसमें अनेक तीर्थ हैं। उस श्रृङ्ग पर आरूढ होने से पापों का विनाश होता है ॥ ५–९ ॥

॥ स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानसखण्ड में 'शैलपर्वत' माहात्म्य नामक छियानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'गत्वा'—'क', 'नत्वा'—'ग'।
२. 'श्वील' नाम से जाना जाता है।

१७

ऋषय ऊचुः—

तत्र यानि विशिष्टानि स्थानानि मुनिसत्तम । प्रब्रूहि तानि सर्वाणि शिवायाः शंकरस्य च ।१।
यत्र पातकनिर्मुक्तिर्मानवानां दुरात्मनाम् । जायते मुनिशार्दूल तत् त्वं कथय नान्यथा ॥२॥

व्यास उवाच—

शैलोद्देशे महाभागाः[1] क्षेत्रं काल्याः प्रशस्यते । कालिकेति च विख्याता शैलोद्देशेऽतिशोभने ।३।
वधाय दितिजेन्द्राणां कौशिकी याऽभवत् पुरा । तया चण्डश्च मुण्डश्च निहतौ दानवोत्तमौ ।४।
रक्तबीजस्य रुधिरं यया पीतं तपोधनाः । शैलोद्देशे महापुण्या कालिका कालनाशिनी ॥५॥
घोररूपा विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी । शैलस्य पूर्वभागे वै पूजिता देवनायकैः ॥६॥
तत्रावासं चकाराशु शैले देवप्रपूजिते । शक्तिभिर्देवमुख्यानां तथा षोडशमातृभिः ॥७॥
तथा विद्याधरैर्देवी पूजिता मुनिसत्तमाः । पापात्मानो महाकालीं न द्रष्टुं शक्नुवन्ति हि ॥८॥
प्रपश्यन्ति महाभागा धर्ममार्गरता नराः ॥ ९ ॥
स्मृत्वापि कालीं कलिकल्मषघ्नीं बालग्रहा ये ग्रहनायकाश्च ।
द्रवन्ति रक्षांसि भयप्रदानि सिद्धि ह्यभीष्टां मनुजाः प्रयान्ति ॥१०॥

ऋषियों ने पुनः पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! वहाँ के विशेष स्थानों के सम्बन्ध में हमें बतलाने की कृपा करें । दुरात्माओं के पाप-नाशक एवं पार्वती से सम्बद्ध स्थानों के विषय में आप अवश्य बतलायें ॥ १–२ ॥

व्यासजी ने कहा—'शैल'-पर्वत के उत्तम प्रदेश पर कालिका विराजमान हैं । उन्होंने ही पहले 'कौशिकी' नाम से 'चण्डमुण्ड'-वध तथा 'रक्तबीज' का रुधिर-पान किया था । वह काल को भी कवलित करने वाली एवं दैत्यों का नाश करने वाली 'काली'[2] 'शैल'पर्वत पर विराजमान हैं । वही देवी 'त्रिशूल', 'पट्टिश',[3] 'पाश', 'मुद्गर', 'शक्ति' एवं 'प्रास' (बर्छी) आदि धारण करने वाली घोररूपा विशालाक्षी होने के साथ ही भक्तों के लिए वरदा 'काली' हैं । उन्होंने 'शैल'पर्वत के पूर्व भाग में वास किया है । वह देवताओं की मुख्य शक्तियों', सोलह 'मातृकाओं' तथा 'विद्याधरों' से सेवित हैं । उनके समक्ष पापात्मा नहीं जा सकते । उन 'कालिका' के स्मरण-मात्र से कलि-कलमषों का नाश, बालग्रहों तथा बलवान् ग्रहों का निराकरण हो जाता है । राक्षस भाग जाते हैं । मानवों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है । वह देवों से सेवित हैं । प्रसन्न होने पर अभीष्ट प्रदान करती हैं । रुष्ट होने पर विनाश भी कर देती हैं ।

---

१. 'महापुण्याः' 'क' ।

२. शैलपर्वतवासिनी ।

३. 'पट्टिशो लोहदण्डो यः तीक्ष्णधारः क्षुरोपमः' (वैजयन्ती कोष) ।

सा देवमुख्यैर्विनिषेविता शिवा ददात्यभीष्टं तुषिता महीतले ।
सैव प्रदृष्टा सकलापवर्गदा सा एव गीता वरदा दिवौकसा ॥ ११ ॥
चराचरं व्याप्य इदं महीतले महोद्भटा दैत्यभटा यया द्विजाः ।
निपातिता रङ्गगता महाबलाः सा कालिका रङ्गगता विराजते ॥१२॥

सूत उवाच—

शैलोद्देशे महादेव्या वासं श्रुत्वा नृपोत्तम । व्यासदेवाय धर्मज्ञाः पप्रच्छुः पुनरेव हि ॥१३॥

ऋषय ऊचुः—

शैलोद्देशे महाकाली विन्ध्यं च तुहिनं तथा । सन्त्यज्य मुनिशार्दूला न्यवसत् केन हेतुना ॥१४॥

व्यास उवाच—

कदाचित् तां महादेवीं तुहिनाचलवासिनीम् । महेन्द्रप्रमुखा देवाः शुम्भेन च निराकृताः ॥
सर्वे शैलं समागत्य तुष्टुवुः परमेश्वरीम् ॥ १५ ॥

देवा ऊचुः—

देव्या यया त्रिभुवनं सचराचरं च व्याप्तं बिभर्षि भुवनं च धराधरं च ।
शेषः फणाशतशतैरपि नम्रभूतो सा वै धराधरसुताऽवतु देवपालम् ॥ १६ ॥
संस्तुता या महादेवी ब्रह्मणा परमेष्ठिना । योगनिद्रेति विख्याता विष्णोरतुलतेजसः ॥१७॥
यया त्यक्तो जगन्नाथो जघान मधुकैटभौ । आत्मकर्णमलोद्भूतौ मोहितौ योगमायया ॥१८॥
साऽस्मानवतु कल्याणी शुम्भदैत्येन निर्जितान् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां तेजोराशिसमुद्भवा ॥१९॥
संस्तुता देवगन्धर्वैर्दिव्यशूलप्रहारिणी । साऽस्मानवतु कल्याणी महिषासुरनाशिनी ॥२०॥

वही देवताओं को भी वर देती हैं। उनका माहात्म्य कहाँ तक कहें ? वही चर-अचर को व्याप्त कर, शक्तिशाली दैत्यों का युद्धक्षेत्र में विनाश कर, विराजमान हैं ॥ ३–१२ ॥

सूतजी बोले—'शैल' पर्वत के प्रदेश में भगवती का वास सुन इस सम्बन्ध में ऋषियों ने व्यास महर्षि से पुनः जिज्ञासा की ॥ १३ ॥

ऋषि बोले—'हिमाचल' और 'विन्ध्य' पर्वत को छोड़ भगवती ने 'शैल' पर्वत पर वास क्यों किया ? ॥ १४ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—एक समय 'शुम्भ' दैत्य से पराजित देवगण 'शैल' पर्वत पर आकर भगवती की स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥

देवगण बोले—जिस देवी ने चराचर जगत् को व्याप्त कर धारण किया है तथा जिन्हें देख 'शेष' भगवान् भी अपने असंख्य फनों को नीचे झुका कर नम्र हो जाते हैं, वह पर्वतराजपुत्री हम सब की रक्षा करें। ब्रह्मा ने भी अपनी रक्षा के लिए जिनकी स्तुति की थी[1]। जिन्होंने अतुल पराक्रमी विष्णु भगवान् के कान के मैल से उत्पन्न 'मधु' और 'कैटभ' नामक राक्षसों को भी भगवान् के नेत्रों में स्थित निद्रारूपी 'योगमाया' बनकर निद्रा का त्याग कराने के पश्चात् विमोहित करा उन दोनों राक्षसों का विष्णु के द्वारा ही वध कराया, वह भगवती हमारी रक्षा करें। जो भगवती समग्र देवों के तेजःपुञ्ज से प्रकट हुई एवं दिव्य शूल से महिषासुर का नाश करने वाली हैं—वही जगज्जननी हमारी रक्षा करें। दक्ष प्रजापति के

---

१. ब्रह्मा की स्तुति 'दुर्गा सप्तशती' अध्याय १ श्लोक ७३–८७ तक देखें।

दक्षप्रजापतेर्गेहे अवतीर्य मनोरमा। या काली गीयते लोके साऽस्मानवतु शाङ्करी[1] ॥२१॥

व्यास उवाच—

इति संस्तुवतां[2] तत्र देवानां परमेश्वरी। आविर्बभूव पुरतः संस्नात्वा जाह्नवीजले ॥२२॥
उवाच सा महाभागा दुर्गा दुर्गातिनाशिनी ॥ २३ ॥

देव्युवाच—

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते दैत्यराजनिराकृतैः। साम्प्रतं देवदेवेन्द्र सहैतैर्देवतागणैः ॥२४॥
तत् त्वं कथय देवेन्द्र येन मां समुपागताः। हेतुना त्रिदिवं त्यक्त्वा सहैतैर्देवतागणैः ॥२५॥

इन्द्र उवाच—

त्वत्प्रसादाज्जगन्मातस्तिष्ठन्ते त्रिदिवौकसः। स्वर्गे निरामयाः सर्वे मया संशासिताः शुभे ॥
साम्प्रतं शुम्भदैत्येन निर्जिताश्छद्मकारिणा। देवताः समनुप्राप्ताः शरणं ते वरेश्वरि ॥२७॥
कुरु तस्य वधोपायं सामात्यो विनशिष्यति। येनोपायेन देवानां स शत्रुः परमेश्वरि ॥२८॥

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा महादेवी पुनर्वचनमब्रवीत्। महेन्द्रप्रमुखान् देवान् प्रणतान् कार्यसिद्धये ॥२९॥

देव्युवाच—

हनिष्यामि दुराचारं सह मित्रं सबान्धवम्। शुम्भं चैव निशुम्भं च चण्डमुण्डावुभावपि ॥३०॥
तावत् तत्र वसिष्यामि यावत् तं दितिजाधमम्। हनिष्यामि दुराचारं शैलोद्देशे न संशयः ॥३१॥

घर आविर्भूत हो जो 'काली' के नाम से विख्यात हुई। वही हमारी रक्षा करें ॥ १६-२१ ॥

व्यासजी ने कहा—देवों के इस प्रकार स्तुति किये जाते हुए दुर्गतिहारिणी भगवती 'जाह्नवी'[3] में स्नान कर स्वयं प्रकट हो गईं। उन्होंने देवों के समक्ष कहना आरम्भ किया ॥ २२-२३ ॥

देवी बोलीं—देवराज इन्द्र ! आप दैत्यों से पराजित होकर देवों के साथ मेरी स्तुति कर रहे हैं। कहिए आप लोग क्यों आए हैं ? ॥ २४-२५ ॥

इन्द्र ने कहा—मातः ! हम आपकी कृपा से सदैव कुशली रहते हैं। इस समय 'शुम्भ' ने हमें कपट से जीत लिया है। अतः हम आपकी शरण में आए हैं। अब उसके वध का उपाय करें ॥ २६-२८ ॥

व्यासजी बोले—देवी ने 'तथास्तु' कहा। फिर वह देवों की सिद्धि के लिए कहने लगीं।

देवी ने कहा—मैं शुम्भ, निशुम्भ तथा चण्ड, मुण्ड का वध अवश्य करूँगी। इस कार्य के लिए मैं 'शैल' पर्वत पर वास करूँगी ॥ ३०-३१ ॥

---

१. 'हिमालयसुता देवी पार्वती शंकरप्रिया।
उमा या गीयते लोके साऽस्मानवतु 'शाङ्करी'—इत्यधिकः-'क'।

२. 'संस्तूयमानानाम्'-'क'।

३. 'हाट काली' मन्दिर के कुछ दूर नीचे 'जाह्नवी' नाम से प्रसिद्ध एक जलप्रपात है। वहाँ स्रोत के मुख के पास एक 'ताम्रपत्र' अङ्कित है। अब वह विकृत हो चला है। लोगों की रगड़ के कारण आरम्भिक अक्षर घिस गए हैं।

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूला दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी। कोपेनातिगरिष्ठेन मसीवर्णममूत्ततः ॥३२॥
देवानां कार्यसिद्धयर्थमाविर्भूता महेश्वरी। निवासं चकमे तत्र शैलोद्देशे सुशोभने ॥३३॥
निहत्य दानवान् मुख्यान् शुम्भादीन् परमेश्वरी। वरदा शैलभवने तस्थौ देवहिताय वै ॥३४॥
कालिकेति च तां प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः। देवापि मुनिशार्दूलाः शैलोद्देशनिवासिनीम् ॥३५॥
दुर्गतेस्तरणोपायं नास्त्यन्यन्मुनिसत्तमाः। सन्त्यज्य कालिकां देवीं शैलवासां हरप्रियाम् ॥३६॥
तावत् क्षेत्राणि सर्वाणि देव्याश्चान्यानि वै द्विजाः। कथितानि पुराणादौ यावच्छैलं न वर्णितम् ॥
शैले यैः कालिका देवी पूजिता मुनिसत्तमाः। धनधान्यादिभिः पूर्णा भवन्तीह परत्र च ॥३८॥
बलि-पूजोपहारेण गन्धपुष्पाक्षतः शुभैः। आगमोक्तविधानेन कालिकां ये समाहिताः ॥३९॥
पूजयन्ति महादेवीं पूजितां देवनायकैः। दुर्गतिं ते न पश्यन्ति तथा दारिद्र्यजं भयम् ॥४०॥
ग्रहरोगभयं चापि तथा शत्रुभयं महत्। वामे हि कालिकातोयैः शैलोद्देशसमुद्भवैः ॥४१॥
संस्नाप्य कालिकां पूज्य नरः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ४२ ॥
कालिकाया महाभागा माहात्म्यं कथितं मया। सर्वपापप्रशमनं समस्तभयनाशनम् ॥४३॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां ये पठन्ति समाहिताः। शृण्वन्ति चैव ये भक्त्या ते यान्ति परमां गतिम् ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शैलपर्वतकालिकामाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥

व्यासजी बोले—ऐसा कह कर भगवती 'दुर्गा' कोपाविष्ट हो स्याही के समान काली हो गईं[1]। देवों के कार्यासिद्धयर्थ वहीं रह कर 'शुम्भादि' दैत्यों का वध कर उन्होंने 'काली' नाम से प्रसिद्धि पाई। दुर्गति के उद्धार का उपाय 'शैल' पर्वत[2]वासिनी 'काली' के अतिरिक्त और कोई नहीं है। 'शैल' पर्वत के वर्णन होने के पहले तक ही 'देवी' माहात्म्य अन्य पुराणों में वर्णित है। जिसने 'शैल'पर्वत-वासिनी काली का पूजन कर लिया वह इस लोक और परलोक में सुख-समृद्धि से पूर्ण हो जाता है। जो आगमोक्त विधान से गन्ध, पुष्प, अक्षत एवं बलि-उपहार सहित देवी का पूजन करते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती। ग्रहों, रोग और शत्रुओं का भय भी नहीं होता। वहीं बाईं ओर 'शैल' पर्वत से बह कर आते हुए 'कालिका' जल से भगवती को स्नान करा पूजा करने से शिवलोक मिलता है। मुनिवरों! मैंने आप लोगों को कालिका का माहात्म्य सुना दिया है। वह सब पापों और भयों का विनाशक है। अष्टमी और चतुर्दशी के दिन देवी-माहात्म्य पढ़ने वाले व्यक्तियों को सद्गति प्राप्त होती है ॥ ३२-४४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शैल' पर्वत माहात्म्य सम्बन्धी सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. द्रष्टव्य—'एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती। स्नातुमभ्याययौ तोये 'जाह्नव्या' नृपनन्दन ॥ साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का। शरीरकोषतश्चास्याः समुद्भूताऽब्रवीच्छिवा ॥ शरीरकोषाद्यतस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका। कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत् साऽपि पार्वती। 'कालिकेति' समाख्याता हिमाचलकृताश्रया' ॥—दुर्गासप्तशती, अध्याय ५,८४-८८।

२. 'रामेश्वर' के ऊपर की ओर 'शैल'पर्वत की स्थिति कही जाती है।

१८

व्यास उवाच—

ततोऽम्बिका महादेवीं शैलोद्देशनिवासिनीम् । सेवितां देवराजेन चन्द्रबिम्बनिभाननाम् ॥१॥
संपूज्य विधिवद् विप्रा गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः । मानवोऽभीप्सितान् कामानवाप्नोति न संशयः ॥
ततो जयकरीं देवीं शुम्भदैत्यविनाशिनीम् । सेवितां सिद्धगन्धगन्धर्वैस्तथा विद्याधरोरगैः ॥३॥
देवीं जयकरीं पूज्य शैलपर्वतवासिनीम् । मानवानां महाभागाः शत्रुतो न भयं भवेत् ॥४॥
पश्चिमे शैलराजस्य चण्डमुण्डविनाशिनीम् । चामुण्डां चन्द्रवदनां सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ॥५॥
मानवो देवभुवनं प्रयाति गणसेवितम् । शैलस्य पूर्वभागे वै शीतलाख्यां हरप्रियाम् ॥६॥
देवगन्धर्वमनुजैः सेवितां रोगनाशिनीम् । सम्पूज्य मुनिशार्दूला रक्तचन्दनमौक्तिकैः ॥७॥
सर्वरोगप्रपीडा वै प्रणश्यन्ति न संशयः । शीतलां चीरवसनां सर्वरोगप्रणाशिनीम् ॥८॥
संस्मृत्य सर्वरोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । शीतलेति च यो ब्रूते रोगैर्नानाविधैरपि ॥९॥
पीडितो मुनिशार्दूला रोगभीतिं न पश्यति । सम्पूज्य विधिवद् देवीं शैलपर्वतवासिनीम् ॥
विस्फोटकभयं घोरं यः स्तौति स न पश्यति ॥१०॥

ऋषय ऊचुः—

शीतलायाः स्तवं पुण्यं श्रोतुमिच्छामः सुव्रत । विस्फोटकभयं येन विनश्यति वदस्व तत् ॥११॥

व्यासजी ने ने कहा—तदनन्तर 'शैल' पर्वत के प्रकृष्ट प्रदेश में निवास करने वाली इन्द्र से पूजित चन्द्रवदनी 'अम्बिका'[1] महादेवी का विधिपूर्वक पूजन कर मनुष्य निःसन्देह इष्टसिद्धि प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् 'जयकरी'[2] देवी की पूजा करने से शत्रुभय नहीं होता। 'शैल' पर्वत के पश्चिम में 'चण्ड' ओर 'मुण्ड' की विनाशिका 'चामुण्डा'[3] का विधिपूर्वक पूजन कर मनुष्य देवलोकगामी होता है। 'शैल' के पूर्व भाग में 'शीतला'[4] देवी का रक्तचन्दन एवं मोतियों से पूजन कर सब रोगों की बाधा दूर होती है। चीरधारिणी 'शीतला' का स्मरण कर मनुष्य सब रोगों से मुक्त हो जाता है। केवल 'शीतला' शब्द का उच्चारण करने से भी रोग-भय प्राप्त नहीं होता। 'शैल'पर्वतवासिनी 'शीतला' का पूजन या स्तुति करने से घोर विस्फोट का भय नहीं रहता ॥ १-१० ॥

ऋषियों ने (फिर) पूछा—हम लोग विस्फोट-भय के निवारक शीतला का पवित्र स्तोत्र सुनना चाहते हैं ॥ ११ ॥

---

१. 'कोठारा' ग्राम में इनकी स्थिति है। द्रष्टव्य—'ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहराम्। ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥'—दुर्गा० अ० ५ श्लो० ८६।

२. 'जखने' ग्राम में स्थिति है।

३. 'शैल' पर्वत के ऊपर 'शैलेश्वर' महादेव हैं। बड़ा मैदान है। ५ फीट का शिवलिङ्ग है। चारों ओर गङ्गा की रेत है। यहीं इनकी स्थिति है। द्रष्टव्य—'चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यतिसि।' दुर्गा० ७-२७। ४. 'कालिका' मन्दिर से नीचे की ओर 'रावलगांव' में गुफा में स्थिति है।

व्यास उवाच—

नमामि शीतलां देवीं शैलपर्वतवासिनीम्। केयूरहारवलितां शोभितां चन्द्रशेखराम् ॥१२॥
पीनस्तनीं सुशोभाढ्यां नागहारां लसन्मुखीम्। सुवासां चीरवसनां रासभस्थां दिगम्बराम् ॥
महेन्द्रेण समाहूतां पूजितां परमेश्वरीम्। कालदण्डोपमां घोरां धन्वन्तरिनिषेविताम् ॥१४॥
शीतलेति च यो ब्रूते नानारोगप्रपीडितः। विस्फोटकादिरोगाणां भयं तस्य न जायते ॥१५॥
इति स्तुत्वा महादेवीं शीतलां यस्तु पूजयेत्। विस्फोटकभयं घोरं स न पश्यति मानवः ॥१६॥
तत्रैव शैलजा नामा विख्याता सरितां वरा। निमज्य विधिवत्तत्र शीतलां यस्तु पूजयेत् ॥१७॥
शिवलोकमवाप्नोति रुद्रकन्यानिषेवितः ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शीतलामाहात्म्यं नाम अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥

व्यासजी बोले—शैलपर्वतवासिनी, केयूर तथा हार धारण की हुई चन्द्रशेखरा शीतला देवी को मैं नमस्कार करता हूँ। पुष्ट उरोजों से युक्त शोभायमान, नागहार धारण करने वाली, गर्दभ पर आरूढ़, दिगम्बरा एवं सुमुखी शीतला देवी को मैं प्रणाम करता हूँ। महेन्द्र के द्वारा आवाहित एवं पूजित, कालदण्ड के समान भयङ्कर तथा धन्वन्तरि भगवान् से सेवित शीतला देवी को मैं अभिवादन करता हूँ। 'शीतला' शब्द के उच्चारण करने से विस्फोटकादि अनेक रोग दूर हो जाते हैं। इस प्रकार स्तुति कर 'शीतला' महादेवी की पूजा करने वाले को भी विस्फोटकादि भय नहीं होता। वहीं पर 'शैलजा' में स्नान कर शीतला का पूजन करने से 'शिव'लोक प्राप्त होता है ॥ १२-१८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शीतलामाहात्म्य' नामक
अठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

९९

व्यास उवाच—

शैलोद्देशे ततो विप्राः कन्दरा देवसेविता। विद्यते शीतलापार्श्वे मुक्तिदा पापनाशिनी ॥१॥
तत्र मुक्तेश्वरो देवो मुक्तिमण्डलमध्यगः। राजते देवगन्धर्वैः सेवितः सुमनोहरः ॥२॥
अघकोटिविनाशाय संस्थितः शैलपर्वते। यस्य सन्दर्शनान्मुक्तिर्जायते चातिदुर्लभा ॥३॥
तत्र मुक्तिप्रदे तोये निमज्य विधिपूर्वकम्। पूजयेन्मुनिशार्दूला देवं मुक्तेश्वरं ततः ॥४॥
पूजितो यो महादेवो मानवानां शिवात्मनाम्[1]। परमैश्वर्यमतुलं प्रयच्छति न संशयः ॥५॥
तं पूज्य मानवः सम्यक्प्राप्य मुक्तिं सुदुर्लभाम्। शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६॥
ततः शैलप्रदेशे वै कन्दरावासिनं हरम्। पूज्य वाणीश्वरं देवं कामधेन्वभिषेचितम् ॥७॥
शिवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः। शैलप्रान्ते समुद्भूता पुण्या खगवती सरित् ॥८॥
सङ्गमे रामगङ्गायाः संगता मुनिसत्तमाः। तस्यां स्नात्वा च विधिवन्मानवो याति शाश्वतम् ॥
शैलपर्वतसम्भूताः सर्वा नद्यस्तपोधनाः। रामगङ्गासमा ज्ञेया मज्जनादिषु कर्मसु ॥१०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मुक्तेश्वरमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—तत्पश्चात् 'शीतला' के पश्चिम में देवों से सेवित एक गुफा[2] है। उसमें मुक्तिमण्डलमध्यवर्ती 'मुक्तीश्वर' देव[3] विराजमान हैं। वह असङ्ख्य पापों का नाश करने के लिए शैलपर्वस्थ कन्दरा में प्रतिष्ठित हैं। उनके दर्शन से दुर्लभ मुक्ति मिलती है। वहाँ मुक्तिप्रद जल में स्नान कर पूजा करने से ऐश्वर्य प्राप्त होने के साथ ही शिवलोक में शिव-सायुज्य मिलता है। तब 'शैल' प्रदेश में ही 'गुफा' में स्थित तथा 'कामधेनु' से अभिषिञ्चित 'वाणीश्वर'[4] का पूजन करने से शिवलोक प्राप्त होता है। तब आगे 'शैल' से निकलकर आती हुई 'खगवती' नदी 'रामगङ्गा' (पूर्वी) में मिल जाती है। वहाँ स्नान करने पर शाश्वत मुक्ति प्राप्त होती है। तपोधनों ! 'शैल' पर्वत से निकलने वाली सब नदियाँ 'रामगङ्गा' के समान ही पुण्य फलदायिका हैं ॥ १-१० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'मुक्तीश्वर'-माहात्म्य नामक
निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'दुरात्मनाम्' इति 'ख'।

२. 'शैल'पर्वत के उत्तरी भाग में दक्षिणाभिमुखी गुफा में 'गुप्तगङ्गा' के नाम से अभिहित है। इसी गुप्तगङ्गा से 'जाह्नवी' नामक जलप्रपात को जल मिलता है।

३. 'कालिका' मन्दिर से उत्तर की ओर नीचे ½ मील की दूरी पर मुक्तीश्वर का मन्दिर है। शिवरात्रि को यहाँ मेला लगता है।

४. 'शीतला' और 'कालिका' के मध्य।

१००

अथान्यदपि वक्ष्यामि क्षेत्रं पापप्रणाशनम् । प्रार्थितं देवगन्धर्वैस्तथान्यैर्देवतागणैः ॥१॥
भृगुतुङ्गेति विख्यातं भुवनेशस्य सन्निधौ । शैलस्योत्तरभागे वै सेवितं सिद्धनायकैः ॥२॥
भृगुपुण्याश्रमं यत्र ख्यायते मुनिसत्तमाः । गिरेः शिरसि शोभाढ्यं कल्पितं मुनिना पुरा ॥३॥
भृगुपुण्याश्रमं दृष्ट्वा मानवानां दुरात्मनाम्[१] । पातकानां प्रणाशाय भृगुपुण्याश्रमं विना ॥४॥
यत्र पापान्यनेकानि जन्मान्तरकृतानि च । विलीयन्ते न सन्देहो दृष्ट्वा पुण्याश्रमं भृगोः ॥५॥
तत्रैव भार्गवी नाम गुहा परमशोभना । विद्यते मुनिशार्दूला भृगुणा रचिता शुभा ॥६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या विराजन्ते तपोधनाः । भृगोरनुग्रहार्थाय तस्यां त्वेकत्वतां गताः ॥७॥
तानाराध्य गुहायां वै तपस्तपति दारुणम् । भृगुः पुत्रान्वितो विप्रा मुनीनां प्रवरो मुनिः ॥८॥
यस्य श्रीलक्ष्म वैकुण्ठो वक्षोमध्ये बिभर्ति हि[२] । तस्य पुण्याश्रमं गत्वा गुहायां शङ्करं प्रभुम् ।९।
प्रपूज्य मुनिशार्दूलाः को न याति परां गतिम् । पुण्यात् पुण्यतमं तत्र स्नानं भृगुजलैः स्मृतम् ॥
यत्र स्नात्वा मनुष्याणां जन्मकोटिकृतानि वै । पातकानि विलीयन्ते हिमवद् भास्करोदये ।११।

ऋषय ऊचुः—

कथं तत्र महापुण्यं तोयं प्राप्य तपोनिधिः । कथं रेवां परित्यज्य न्यवसद्दारुपर्वते ॥१२॥

व्यासजी कहते रहे—अब मैं पापनाशक एवं देवों से प्रार्थित 'भृगुतुङ्ग'-क्षेत्र का वर्णन करता हूँ । वह 'शैल' के उत्तरस्थ 'भुवनेश्वर' के समीप है । पर्वत के शिखर पर शोभायमान सिद्धों से सेवित 'भृगुपुण्याश्रम' है । उस सिद्ध-स्थान को देखकर दुरात्माओं के पाप विनष्ट हो जाते हैं । इस 'भृगुतुङ्ग'[३] में बारह वर्ष तक निरन्तर वास कर महर्षि भृगु ने अनेक ऋषियों समेत कठोर तप किया था । सूर्योदय होने पर हिम के पिघलने की तरह 'भृगुपुण्याश्रम' के दर्शन करने से पाप विलीन हो जाते हैं । इसके सिवा पातकों के विलीन करने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है । कहाँ तक बताया जाय ? यहाँ के दर्शनों से जन्मान्तर में किये गये पाप भी नष्ट हो जाते हैं । वहीं पर भृगु द्वारा रचित 'भार्गवी' गुहा है । उसमें भृगु के अनुग्रहार्थ तीनों देवों का वास है । मुनिश्रेष्ठ महर्षि भृगु ने वहाँ तीनों देवों की आराधना की थी । भृगु का पाद-चिह्न भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल पर अङ्कित हैं । उस आश्रम में भगवान् शङ्कर का पूजन कर कौन मुक्त नहीं होता ? वहाँ 'भृगुजलों'[४] में स्नान करने से शरीर पवित्र हो जाता है । साथ ही जन्मान्तरों में उपार्जित पाप भी धुल जाते हैं ॥ १-११ ॥

---

१. अनन्तरमस्य 'ख' पुस्तके पाठक्रमः ईदृशः वर्तते—"अघकोटिसहस्राणि विलीयन्ते न संशयः । भृगुतुङ्गे निवस्याशु द्वादशाब्दं महातपाः ॥ स यत्र मुनिभिः शान्तैस्तपस्तेपे सुदुष्करम् । विलीयन्ते हि पापानि मानवानां दुरात्मनाम् ॥ भृगुपुण्याश्रमं दृष्ट्वा हिमवद्भास्करोदये । नान्योपायं प्रपश्यामि मानवानां दुरात्मनाम्" ॥

२. 'वक्त्रे मध्ये बिभर्ति हि'—इति 'ख' ।

३. स्थानीय प्रचलित नाम—'भारग्यो' ।

४. 'भारग्यो' में एक कुण्ड है । वह 'तामतोली' नाम से विदित है ।

व्यास उवाच—

द्वादशाब्दं पुरा विप्रा नावर्षत् पाकशासनः। देवेऽवर्षति मेदिन्यामभवन्मेदिनी मरुः ॥१३॥
नान्नं प्रापुर्महाभागा महीतलनिवासिनः। न तोयमवनीमध्ये न मूलानि फलादयः ॥१४॥
हाहाभूते मनुष्याणां न वर्षति शतक्रतौ। भृगू रेवां परित्यज्य सहशिष्यैस्तपोनिधिः ॥१५॥
हिमवन्तं महापुण्यं ययौ सिद्धनिषेवितम्। स ददर्श महापुण्यं पातालभुवनेश्वरम् ॥१६॥
व्रजन् हिमालयतटे पार्षदैर्विनिषेवितम्। पार्श्वे तस्याश्रमं चक्रे स भृगुर्हर्षपूरितः ॥१७॥
तत्र पुण्याश्रमं कृत्वा तपस्तेपे स दुष्करम्। तपस्यन्तं भृगुं दृष्ट्वा महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥१८॥
शीतोदं प्रापयामासु[1]र्मन्दाकिन्यास्तवाश्रमे। भृगोः पुण्याश्रमं प्राप्य पुण्या मन्दाकिनी सरित् ॥
भार्गवीति च विख्याता भृगुपुण्याश्रमोद्भवा। तेन पुण्यं जलं तत्र गीयते भृगोराश्रमे[2] ॥२०॥
कथितं मुनिशार्दूला यथा तत्र भृगुर्मुनिः। समागम्याश्रमं चक्रे सहशिष्यैस्तपोनिधिः ॥२१॥
यथा संप्रेषिता गङ्गा महेन्द्रेण महात्मना। भृगुपुण्याश्रमे पुण्या सिद्धगन्धर्वसेविता ॥२२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भृगुपर्वतमाहात्म्ये शततमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने पूछा—उस आश्रम में जल कहाँ से आया? 'रेवा'[3] नदी को छोड़ 'भृगु' ऋषि 'दारुपर्वत' पर क्यों निवास करने लगे? ॥ १२ ॥

व्यासजी बोले—एक बार बारह वर्षों तक वृष्टि न होने से पृथ्वी ऊसर हो गई थी। पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों को अन्न, जल, कन्द, मूल एवं फलादि नहीं मिलते थे। मानवों में हाहाकार मच गया था। महर्षि 'भृगु' 'रेवा' को छोड़ शिष्यों के साथ 'हिमालय' की ओर चले आये। मार्ग में शिवपार्षदों से सेवित पुण्यस्थल 'पातालभुवनेश्वर' को देखा। अतः उसके पास इन्होंने अपना आश्रम बनवा लिया। वहाँ पर वह सुदुष्कर तप करने लगे। 'भृगु' को तपस्या करते देख 'महेन्द्र' आदि देवों ने वहाँ 'मन्दाकिनी का शीतल जल पहुँचा दिया। उस पुण्याश्रम के सम्पर्क से वह नदी 'भार्गवी' कही गई। इसी कारण वहाँ का 'भृगु' जल पवित्र माना गया है। मुनिवरों! जिस प्रकार भृगु ऋषि ने शिष्यों सहित यहाँ आकर आश्रम स्थापित किया तथा महेन्द्र ने सिद्धों से सेवित 'स्वर्गङ्गा' को वहाँ भेजा—इन सबका वर्णन मैंने कर दिया है ॥ १३-२२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भृगुतुङ्ग'-माहात्म्य[4] नामक
सौवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'शीतोदं प्रेषयामासुः'–इति 'ख'।

२. 'गीयते ह्याश्रमे भृगोः'–इति परिष्कृतः पाठः।

३. यहाँ स्थानीय एक छोटी नदी भी 'रेवा' नाम से प्रसिद्ध है। वह 'कोटेश्वर' से निकलती है।

४. (क) 'मत्स्यपुराण' (२२-३१) में पितरों के श्राद्धादि के लिये भृगुतुङ्ग' को पवित्र स्थान बताया गया है—"गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमौशनसं परम्।। भैरवं 'भृगुतुङ्गं' च गौरीतीर्थमनुत्तमम्' ॥

(ख) महर्षि भृगु के सम्बन्ध में अनेक पुराणों में चर्चा की गई है। इसी प्रकार 'मत्स्यपुराण' में ही

व्यास उवाच—

अथान्यान्यपि क्षेत्राणि शृण्वन्तु सुसमाहिताः। भार्गवीसरितोर्मध्ये निमज्य विधिपूर्वकम् ॥१॥
भार्गवीं पूजयेद्देवीं पश्चिमे मुनिसत्तमाः। सम्पूज्य तां महाभागां वाजपेयफलं लभेत्[1] ॥२॥
महाकालं ततो देवं भृगूद्देशे तपोधनाः। सम्पूज्य विधिवत् तत्र पुष्पमाल्यानुलेपनैः ॥३॥
शिवलोकमवाप्नोति मानवो नात्र संशयः। ततस्तु पश्चिमे भागे जयन्तीं पूजयेद् द्विजाः ॥४॥
सम्पूज्य तां महामायां नरो याति परां गतिम्। घण्टाकर्णं ततो गत्वा पश्चिमे गणनायकम् ॥५॥
प्रपूज्य मानवः सम्यक् यमलोकं न पश्यति। ततस्तु पश्चिमे भागे स्कन्दिं चैव रिटिं तथा ॥६॥
सम्पूज्य विधिवद् विप्रा देवलोके महीयते। जयन्त्याः पश्चिमे भागे सुरभीं पूज्य वै द्विजाः ॥७॥
मानवस्तीव्रदारिद्र्यं न पश्यति न संशयः। सुरभीपादसम्भूते तीर्थे स्नात्वा तपोधनाः ॥८॥
महेन्द्रभवनं याति मानवो देवसेवितम्। ततः खगवतीमध्ये चिताभस्मविलेपनम् ॥९॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! अव आप लोग अन्य क्षेत्रों के बारे में भी सुनें। 'भार्गवी' देवी तथा 'नदी' के मध्य जल में स्नान कर पश्चिम भाग में स्थित 'देवी' का पूजन करने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। फिर चन्दनाक्षतपुष्पादि से 'महाकाल' का पूजन कर, उसके वाम भाग में 'जयन्ती'[2] की अर्चना वाञ्छित है। तब पश्चिम में 'घण्टाकर्ण'[3] नामक गणनायक का पूजन करने पर यमलोक से छुटकारा मिल जाता है। फिर पश्चिम भाग में 'स्कन्दि' और 'रिटि' का पूजन करने से सद्गति प्राप्त होती है। तब 'जयन्ती' के पश्चिम भाग में 'सुरभी' का पूजन कर दारिद्र्य से रहित हो जाय। वहीं 'सुरभी' के पादतल से निकलने वाले तीर्थ में स्नान कर महेन्द्रभवन में रहने का फल प्राप्त होता है। वहाँ से दक्षिण में 'खग-

---

'भृगुतीर्थ' (१६५, २६-६१) के बारे में कहा गया है कि 'भृगुतीर्थ' में भृगु का सारा शरीर दीमकों ने मिट्टी से ढक दिया था। अतः उमा ने प्रसन्न हो शिव से आशीर्वाद देने के लिए कहा। शिव सन्तुष्ट नहीं थे। अन्त में भृगु ने 'करुणाभ्युदयम्' स्तुति से शङ्कर को प्रसन्न किया और 'नर्मदा'-तट के उस स्थान को तीर्थ बना दिया—'नर्मदायां स्थितं दिव्यं भृगुतीर्थं नराधिप। भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः क्वचित्॥ विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति॥' (६०-६१)।

(घ) वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में भी प्रसङ्गवश 'भृगुप्रस्रवण' गिरि का उल्लेख है। तदनुसार राजा सगर ने अपनी दोनों पत्नियों—'केशिनी' और 'सुमति' के साथ हिमालय पर्वत पर जाकर 'भृगुप्रस्रवण' नामक शिखर पर तपस्या की। सौ वर्ष पूरे होने पर भृगु ने उन्हें अनेक पुत्र प्राप्त करने का वर दिया—'ताभ्यां सह महाराजः पत्नीभ्यां तप्तवांस्तपः। हिमवन्तं समासाद्य भृगुप्रस्रवणे गिरौ'॥

—वा० रा० बालकाण्ड सर्ग ३८, श्लोक ५।

१. 'भवेत्'—'ख'।

२. 'ध्वज' पर्वत पर स्थित—'फुटसिल' के समीप। 'कनालीछीना' के पास से ऊपर रास्ता जाता है।

३. 'पिठौरागढ़' में 'घण्टाकर्ण' का मन्दिर ('घन्याल') है।

दक्षिणे शङ्करं देवं पूज्य याति परां गतिम् । यत्र सिद्धाः सगन्धर्वास्तथा नागास्तपोधनाः ।।१०।
देवाश्च पितरश्चैव निवसन्ति भृगोः पदे । उत्तरे मुनिशार्दूलाः ख्यायते कदलीवनम् ।।११।।
हाटकेशं हरं तत्र पूज्य याति परां गतिम् ।।१२।।
भृगुपुण्याश्रमाख्यानं यः शृणोति समाहितः । प्राप्नोति परमां सिद्धिं दुष्प्राप्यां दैवतैरपि ।।१३।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भृगुपर्वताख्यानं नाम एकोत्तरशततमोऽध्यायः ।।

वती'[1] नदी के मध्य 'चिताभस्मधारी' शङ्कर[2] का पूजन करने से सद्गति मिलती है। उसी क्षेत्र के सुप्रसिद्ध 'भृगु-आश्रम' में सिद्ध, गन्धर्व, नाग, मुनि, देवता और पितृगण सभी निवास करते हैं। उस आश्रम के उत्तर में 'कदलीवन' है। वहाँ पर 'हाटकेश्वर' शिव का पूजन कर सद्गति प्राप्त होती है। पवित्र भृगु-आश्रम के[3] आख्यान को जो सावधानी के साथ सुनता है, उसे देवों से भी दुष्प्राप्य सिद्धि प्राप्त होती है ।। १-१३ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भृगुपर्वताख्यान'-सम्बन्धो
एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'गोरंग गाड़' के नाम से जानी जाती है (छोटा सा प्रवाह)। इसके पश्चिम में 'दंणवां' देवी हैं।

२. 'मिर्गाविड़'—स्थानीय नाम।

३. 'भारभ्यो' नाम से जाना जाता है।

१०२

व्यास उवाच—

तत्र या भार्गवी प्रोक्ता तस्यां मूले शुकाह्वयम् । तीर्थं क्षेत्रं शुकाः सर्वे तपस्तप्त्वा दिवं गताः ।१।
ततः परं सिद्धतीर्थं यत्र सिद्धा भृगुं मुनिम् । समाराध्य तपश्चक्रुः समागत्य दिने दिने ।।२।।
तत्र स्नात्वा च विधिवत् कन्दरायां महेश्वरम् । सम्पूज्य मुनिशार्दूलाः शीघ्रं मुक्तिमवाप्नुयात् ।।
ततस्तु दक्षिणे भागे केदारीं परमेश्वरीम् । सम्पूज्य मुनिशार्दूला महामहिषसन्निभाम् ।।
नरः शिवपुरं याति कुलकोटिसमन्वितः ।।४।।
भृगोरुत्तरभागे वै सिद्धविद्याधरोरगाः । निवसन्ति महाभागा गुहासु मुनिसत्तमाः ।।५।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भृगुपर्वतमाहात्म्ये द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

व्यासजी ने फिर कहा—वहीं 'भार्गवी'[1] नदी के मूल में 'शुकतीर्थ' है । वहाँ पर सुग्गों ने तप कर स्वर्ग प्राप्त किया था । तब सिद्धतीर्थ[2] है । जहाँ पर सिद्धजन 'भृगु'[3] महर्षि की आराधना कर तप करते हैं । वहाँ पर स्नान कर गुहा में 'महेश्वर'[4] का पूजन कर मुक्ति मिलती है । तब दक्षिण में परमेश्वरी 'केदारी'[5] हैं । वह महा महिषी के सदृश हैं । उनका पूजन कर मानव कोटि कुलों सहित शिवलोक पहुँच जाता है । 'भृगु' के उत्तर में सिद्ध, विद्याधर और नाग गुहाओं में निवास करते हैं[6] ।। १–५ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भृगुतुङ्ग' माहात्म्य
नामक एक सौ दोवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. स्थानीय परिचय—'भरगड़' नाम से जानी जाती है । २. 'सिद्धबनी' नाम से प्रसिद्ध है ।

३. महर्षि भृगु चाक्षुष मन्वन्तर के प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहे गए हैं । इनकी दो पत्नियाँ थीं—(१) कर्दम की पुत्री 'ख्याति' तथा (२) पुलोमा की पुत्री । परशुराम भी इसी वंश के थे । विष्णु के सोते हुए उनकी छाती पर इन्होंने लात मार दी थी । तब विष्णु जाग गए और उन्होंने 'भृगु' का चरण-स्पर्श किया । भृगु प्रसन्न हो गए तथा इन्होंने विष्णु को आराधना-योग्य समझा । भृगु ने 'नहुष' की क्रूर दृष्टि से 'अगस्त्य' ऋषि को छुटकारा दिलाया था । उस समय इन्होंने 'नहुष' को शाप देकर सर्प बना दिया था (महाभारत अनु० ९९-१५, २२–२८, १००-३४) । 'पद्मपुराण' के अनुसार ऋषियों के आराध्य देव के सम्बन्ध में इन्होंने विष्णु-भक्ति को प्रधानता दी ।

४. स्थानीय नाम—'नन्दिकेश्वर शिव' । ५. 'केदारेश्वर' में ।

६. 'पोखरी' ग्राम के समीप 'उरग' ग्राम ।

जनमेजय उवाच—

केनोपायेन विप्रर्षे जायते पापविच्युतिः । कमाराध्य च सम्पूज्य किं वा पुण्यतमं भुवि ॥१॥
क्षेत्रेष्वपि त्रिलोकेषु महापुण्यतमं द्विज । विस्तरेणानुपूर्व्या च श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥२॥

सूत उवाच—

शृणुष्व नृपशार्दूल कृष्णद्वैपायनोदितम् । क्षेत्राधिराजराजानमघकोटिभयप्रदम् ॥३॥
यदुवाच महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनो मुनिः । शौनकादिभिः संपृष्टस्तवहं कथयामि ते ॥४॥

ऋषय ऊचुः—

कस्मिन् क्षेत्रे महाभाग त्रिदिवस्था दिवौकसः । शङ्कराराधनार्थाय निवसन्ति समाहिताः ॥५॥
तथा विद्याधराः सर्वे गन्धर्वाप्सिरसां गणाः । मुनयश्च महाभागा दैत्यदानवराक्षसाः ॥६॥
तथा नागादयः सर्वे पातालतलवासिनः । कस्मिन् क्षेत्रे निवस्याशु पूजयन्ति महेश्वरम् ॥७॥
कुत्र याति मनुष्याणां मुक्तिश्चात्यन्तदुर्लभा । यानि भूमण्डलस्थानि क्षेत्राणि मुनिसत्तम ॥८॥
तेभ्यश्चाप्युत्तमं क्षेत्रं प्रब्रूहि सर्वपावनम् ॥ ९ ॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सर्वपापहरं नृणाम् । स्मरणात् स्पर्शनादेव पूजनात् किं ब्रवीम्यहम् ॥१०॥
सरयूरामयोर्मध्ये पातालभुवनेश्वरः । विद्यते रुद्रकन्याभिर्नृत्यन्तीभिर्निषेवितः ॥११॥
महर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैस्तथा देवर्षिभिः प्रभुः । गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैः सर्वदा परिपूजितः ॥१२॥
सेवार्थमागतैः सर्वैर्ब्रह्माद्यैस्त्रिदिवौकसैः । त्रयस्त्रिंशत्कोटिगणैः सेवितः परमेश्वरः ॥१३॥

जनमेजय बोले—विप्रर्षे ! किस उपाय से तथा किसकी आराधना करने से पाप नष्ट होते हैं ? पृथ्वी पर सबसे पुण्यप्रद स्थान तथा क्षेत्रों में भी सबसे अधिक पुण्यशील क्षेत्र कौन सा है ? हम लोग इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ यथाक्रम सुनना चाहते हैं ॥ १-२ ॥

(यह सुन) सूत पौराणिक ने कहा—राजन् ! सावधानी के साथ आप सुनें । मैं महर्षि व्यास द्वारा वर्णित कोटि-कलमष नाश करने वाले क्षेत्राधिराज के सम्बन्ध में कहता हूँ ॥ ३-४ ॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—महाराज ! वह कौन सा क्षेत्र है, जहाँ देवगण शङ्कर की उपासना हेतु निवास करते हैं ? तथा विद्याधर, गन्धर्व, अप्सरागण, मुनिजन, दैत्य, दानव, राक्षस एवं पातालवासी नाग आदि किस क्षेत्र में रहकर महेश्वर का पूजन करते हैं ? दुर्लभ मुक्ति कहाँ प्राप्त की जा सकती है ? इस अखण्ड भूमण्डल में सर्वप्रधान क्षेत्र को आप बतलायें ॥ ५-९ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! आप सावधानी के साथ सुनें । मैं ऐसे क्षेत्र का वर्णन करता हूँ, जिसका स्मरण और स्पर्श करने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं । पूजन करने के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है ? सरयू-रामगङ्गा के मध्य 'पातालभुवनेश्वर' हैं । वे नृत्यशील रुद्रकन्याओं, वसिष्ठादि ब्रह्मर्षियों तथा अन्य देवर्षियों से सेवित हैं । वे सेवार्थ आए हुए ब्रह्मादि

तथा नागगणैः सर्वैः पातालतलवासिभिः[1]। फणामणिसहस्राणां दीपैः सर्वत्र दीपितः ।।१४।।
तथा विद्याधरगणैर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः। संगीतविद्याकुशलैः सेवितः षड्जगायिभिः ।।१५।।
[2]यत्र राक्षससिद्धैश्च यक्षविद्याधरोरगैः। पूजितः स महादेवो रेजे पातालमण्डले ।।१६।।
यमाराध्य त्रयस्त्रिंशत्कोटयो भुवनेश्वरम्। संस्थिता देवगन्धर्वाः पातालनागसेविते ।।१७।।
यथा कैलासशिखरे यथा मन्दरमूर्धनि। राजते स महादेवस्तथा पातालमण्डले ।।१८।।
काशीकोटिगुणं पुण्यं सेतुबन्धात्तथैव च। सहस्रगुणितं पुण्यं केदारान्मुनिसत्तमाः ।।१९।।
वैद्यनाथात् कोटिगुणं कैलाससदृशं फलम्। प्राप्नोति मानवो गत्वा पातालभुवनेश्वरम् ।।२०।।
यानि भारतमुख्येषु खण्डेषु मुनिसत्तमाः। सन्ति लिङ्गान्यनेकानि तानि पातालमण्डले ।।२१।।
स्थितानि भुवनेशस्य सान्निध्याच्छूलपाणिनः। तस्मान्नान्यतमं स्थानं पुण्यमस्ति महीतले ।२२।
यत्र जागर्ति देवेशः पातालभुवनेश्वरः। सेवितः शैलसुतया विहारपरिश्रान्तया ।।२३।।
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवाः परिवारैः समिश्रिताः[3]। यस्य पातालभुवने भुवनेशस्य शूलिनः ।।२४।।
यत्रैरावणमास्थाय महेन्द्रस्त्रिदिवौकसैः[4]। सह संकुरुते सेवां प्रत्यहं मुनिसत्तमाः ।।२५।।
अश्वमेधान्महायज्ञात् सहस्रगुणितं फलम्। प्राप्नोति मानवः सम्यक् सम्पूज्य भुवनेश्वरम् ।।
तस्मात्परतरं स्थानं नान्यं पश्यामि भूतले। वाजपेयफलं यत्र प्रपश्य[5] प्राप्यते नरैः ।।२७।।
न स्पृश्यन्ति महाभागाः तस्मिन् क्षेत्रेऽघकोटयः। तेन जानामि सान्निध्यं शङ्करस्य निरन्तरम् ।।
सरयू-रामसरितोर्मध्ये दारुगिरिर्महान्। प्राप्य किं भुवनेशेति न वदन्ति तपोधनाः ।।२९।।

देवों के पूजा-सम्भार एवं तेतीस करोड़ देवों, पातालवासी नागों तथा उनके सहस्रों फनों की दीपरूपी मणियों की कान्ति से देदीप्यमान हो विराजमान हैं। सङ्गीत में प्रवीण 'षड्ज'-स्वर में गाते हुए विद्याधर, गन्धर्व तथा अप्सराओं की प्रशस्तियों एवं सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग आदि से पूजित होकर 'पातालमण्डल' में विराजमान हैं। 'भुवनेश्वर' में जाकर दर्शनार्थियों को 'काशी' और 'सेतुबन्ध' से कोटिगुणित, 'केदार' से सहस्रगुणित और 'वैद्यनाथ' से भी कोटि-गुणित फल प्राप्त होता है[6]। भारतवर्ष के खण्डों में जो अनेक 'शिवलिङ्ग' हैं, वे सब पाताल भुवनेश्वर के समीप विद्यमान हैं[7]। वह भूतल का सबसे पवित्र क्षेत्र है। वहाँ 'पातालभुवनेश' जागरूक हैं। वे विहार करने से परिश्रान्त पार्वती द्वारा सेवित हैं। वहाँ पर देवों के साथ ब्रह्मादि देव सपरिवार निवास करते हुए उनकी सेवा में रत हैं। महेन्द्र वहाँ ऐरावत पर स्थित हो सब देवों के साथ सेवा करते हैं। भुवनेश्वर का पूजन कर अश्वमेध से हजार गुना फल प्राप्त होता है। अतः उससे बढ़कर और कोई दूसरा स्थान नहीं है। वहाँ दर्शन करने से ही अश्वमेध यज्ञ का फल मिल जाता है। उस क्षेत्र में पापों का स्पर्श तक नहीं होता। वहाँ शङ्कर का सान्निध्य निरन्तर विद्यमान रहता है। वह क्षेत्र सरयू-रामगङ्गा के मध्य 'दारुगिरि' नाम से कहा गया

---

१. 'पातालतलवासिभिः'—इति 'ख'। २. 'यक्षराक्षससिद्धैश्च'—'ख'। आदर्शपुस्तकस्थः पाठ एव समीचीनः। ३. 'समाश्रिताः'—इति पाठोऽपेक्षितः। ४. 'महेन्द्रस्तु दिवौकसैः'—इति पाठः अपेक्षितः। ५. 'दर्शनात्'—इति सम्भाव्यते।
६. 'कूर्मपर्वतवासी च पातालभुवनेश्वरः'—केदारखण्डः।
७. 'कोटेश्वर' नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग इनका प्रतीक है।

यावद् भूमण्डलं देवो भुवनेशेति न स्मृतः। तावत् पापान्यनेकानि देहलग्नानि सन्ति वै ॥३०॥
मुखरावं प्रकुर्वन्ति भुवनेशेति ये नराः। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य ते यान्ति शिवमन्दिरम् ॥३१॥
नत्वमात्रं महाभागा व्रजामि भुवनेश्वरम्। इत्युक्त्वाऽभिमुखे याति भुवनेशस्य यो नरः ॥३२॥
जन्मान्तरकृतात्पापात् विमुच्य मुनिसत्तमाः। स याति शिवलोकं वै कुलत्रयसमन्वितः ॥३३॥
पातालभुवनेशस्य सन्निधौ याति यो नरः। समुद्धृत्य महाभागाः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥३४॥
स याति शिवसायुज्यं प्रसादाच्छूलपाणिनः। यः पुमान् पूजयेद् भक्त्या कृत्रिमैः स्वर्णपङ्कजैः।
गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैः पातालभुवनेश्वरम्। प्राप्य भूमण्डलं सर्वं चक्रवर्तीह जायते ॥३६॥
नल्वपरिमितां भूमिं यः समर्पयति वै द्विजाः। भुवनेशाय देवाय हिरण्येनान्वितान्तरः ॥३७॥
सप्तजन्मसु साम्राज्यं प्रसादाच्छूलपाणिनः। प्राप्नोति मुनिशार्दूलाः सत्यमेतन्न संशयः ॥३८॥
दीपदानं प्रकुर्वन्ति महातमविनाशनम्[1]। सन्निधौ देवदेवस्य गव्येनाज्येन ये द्विजाः ॥३९॥
ते प्राप्नुवन्ति विपुलां लक्ष्मीं जन्मसु जन्मसु। शतरुद्राभिषेकेण योऽभिषिञ्चति मानवः ॥४०॥
सुरभीस्तनजैस्तोयैः पातालभुवनेश्वरम्। प्राप्नोति शिवसायुज्यं कुलत्रयसमन्वितः ॥४१॥
यः प्रनृत्यति यः स्तौति भुवनेशस्य सन्निधौ। स याति शिवसायुज्यं मातुर्गर्भं न पश्यति ॥४२॥
मन्दवारप्रदोषे वै यो याति भुवनेश्वरम्। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य स याति शिवमन्दिरम् ॥४३॥
यः पूजयति सद्भक्त्या पातालभुवनेश्वरम्। चतुर्दश्यां महाभागाः स याति शिवमन्दिरम् ॥४४॥
शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यां भुवनेशस्य सन्निधौ। जपन् शिवपुरं याति मानवो मुनिसत्तमाः ॥४५॥
मन्दवारप्रदोषेषु त्रिषु[2] ये भुवनेश्वरम्। पूजयन्ति महाभागा मातुर्गर्भं न यान्ति ते ॥४६॥
आ ब्रह्मभुवनात् सर्वे देवर्षिपितृमानवाः। पूजयन्ति महाभागाः पातालतलवासिनम् ॥४७॥

है। वहाँ जाकर 'भुवनेश' का उच्चारण क्यों न हो? इस भूमण्डल पर जब तक 'भुवनेश्वर' का स्मरण नहीं किया जाता तब तक ही पाप शरीर से सम्पृक्त रहते हैं। 'भुवनेश' का नामोच्चार करते ही इक्कीस कुलों का उद्धार होने के साथ ही जन्मान्तर के पापों से भी छुटकारा मिलता है। इसके साथ ही जीव तीन कुलों सहित शिवलोक प्राप्त करता है। 'पातालभुवनेश' के समीप जाने वाला व्यक्ति एक सौ एक कुलों का उद्धार कर शिवसायुज्य प्राप्त करता है। कृत्रिम स्वर्णकमलों एवं गन्धादि से पूजन करने वाला व्यक्ति चक्रवर्ती हो जाता है। यदि कोई नल्व मात्र (४०० हाथ लम्बी) भूमि सुवर्ण-सहित 'भुवनेश' को अर्पण करता है तो वह सात जन्म पर्यन्त साम्राज्य प्राप्त करता रहता है। गाय के घी में वत्तियाँ भिगोकर दीपदान करने वाला भक्त अनेक जन्मों में विपुल सम्पति प्राप्त करता है। 'सुरभी'[3] के स्तन से निकलते हुए जल से 'शङ्कर' का शतरुद्राभिषेक करने से तीन कुलों सहित शिवसायुज्य प्राप्त होता है। वहाँ नृत्य करने से पुनर्जन्म नहीं होता। शनिप्रदोष के दिन 'भुवनेश' का पूजन करने पर इक्कीस कुलों का उद्धार होता है। मुनिवरों! चतुर्दशी के दिन पञ्चाक्षर मन्त्र को जपते हुए पूजन करने पर शिवलोक मिलता है। तीन प्रदोषों में पूजन करने से पुनः गर्भवास नहीं मिलता। ब्रह्मलोक से लेकर देव, ऋषि, पितृ, मानव,

१. 'महाध्वान्तविनाशनम्'—इति परिष्कृतः पाठः।
२. 'तुष्टये'—इति 'ख'। 'स्थित्वा ये'—इति साम्प्रदायिकाः।
३. गुफा के भीतर 'जलस्रोत' के रूप में अङ्कित है।

भुवनेशस्थले जातं स्ववंश्यं पश्य वै द्विजाः। क्रीडन्ति निलयं शम्भोः कैलासं प्राप्नुमो वयम्॥
भुवनेशात् परं क्षेत्रं लोकेषु त्रिष्वपि द्विजाः। नान्यं वदन्ति मुनयो ब्रह्माद्यापि दिवौकसः[1]॥

ऋषय ऊचुः—

कथं पुण्यतमं क्षेत्रं प्रवदन्ति मनीषिणः। कथं पातालभुवने अन्धकारप्रसेविते॥५०॥
चकार वासं देवेशो भवान्या सह शङ्करः। कीदृक् पातालभुवनं विद्यते मुनिसत्तमाः॥५१॥
कति प्रमाणं तस्याशु गुहायाश्चातिशोभनम्। निवसन्ति महाभाग महादेवं निषेवितुम्॥५२॥
के तत्र देवमुख्या वै गण-गन्धर्व-किन्नराः। केन मर्त्ये महाभाग पातालभुवनेश्वरः॥५३॥
व्याख्यातो देवमुख्यैर्वै सेवितः पार्वतीप्रियः। पाताले मुनिशार्दूल न गतिश्चन्द्रसूर्ययोः॥५४॥
महान्धकारे लोकानां कथं तव गतिर्भवेत्।

व्यास उवाच—

सम्यक् व्यवसितं बुद्धचा भवतां मुनिसत्तमाः॥ ५५॥
मयाऽपि गदितं सर्वं शृण्वन्तु सुसमाहिताः। यावद् भुवः प्रमाणं वै कथितं मुनिसत्तमाः॥५६॥
तावत् प्रमाणं जानन्तु पातालस्य न संशयः। तस्यान्तं न विजानन्ति वसिष्ठाद्यास्तपोधनाः॥
न तस्य परिमाणं वै नागगूढस्य संशिरे। तक्षकप्रमुखाः सर्वे शेषाद्या मुनिसत्तमाः॥५८॥
निवसन्ति महाभागा नागकन्याशतैर्युताः। तत्र रत्नान्यनेकानि नागमुख्यैः कृतानि च॥५९॥
सन्ति पातालभुवने सूर्यरश्मिप्रभानि च। तेषां प्रभाभिर्धर्मज्ञा नान्धकारः प्रदृश्यते॥६०॥
न तत्र क्षुत्पिपासाश्च शोकमोहादयस्तथा। जरामृत्युभयं वापि नहि पातालमण्डले॥६१॥
न तत्र मानुषाणां वै गतिरस्ति तपोधनाः। गत्वा सुष्ठूपपाताले[2] पातालभुवनेश्वरः॥६२॥

पातालवासी आदि सभी भगवान् की पूजन करते हैं। उस क्षेत्र में जन्म लेने वाले को देख कर पितृगण प्रसन्न होकर क्रीडा करते हैं। वे सोचते हैं कि उन्हें 'कैलास' प्राप्त हो जायेगा। भुवनेश का यह क्षेत्र तीनों लोकों में महत्तर है॥ १०-४९॥

ऋषियों ने कहा—विप्रर्षे! इस अन्धकारपूर्ण क्षेत्र में शङ्कर ने पार्वती के साथ वास क्यों किया? यह क्षेत्र पवित्र क्यों माना गया? यह कैसा पाताल लोक है? उस गुहा का कितना प्रमाण है? कौन से 'देवता', 'गन्धर्व' और 'किन्नर' भुवनेश की सेवा के लिए नियत हैं? सूर्य-चन्द्र के गतिविहीन अन्धकारमय क्षेत्र का वर्णन किसने किया? वहाँ लोगों की गति कैसे होती है?॥ ५०-५४॥

व्यासजी बोले—आप लोगों के ये प्रश्न युक्तिसङ्गत है। आप लोग उन सबके उत्तर सुनें। पृथ्वी के प्रमाण के समान हो पाताल-क्षेत्र का प्रमाण है। उसका अन्त अविदित है। नागों से आच्छादित पाताल-लोक के प्रमाण के सम्बन्ध में सब मौन रहे हैं। नागकन्याओं सहित 'तक्षक' एवं 'शेष' आदि प्रमुख नागों का वहाँ आवास है। वहाँ नागमुख्यों द्वारा सम्पादित रत्न-राशि विद्यमान है। 'पातालभुवन' में सूर्य की किरणों का प्रभाव पड़ने से अन्धकार हट जाता है। वहाँ पर भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु का भय नहीं रहता। तपो-

---

१. 'ब्रह्माद्या अपि देवताः' इति परिष्कृतः पाठः।
२. 'इति मत्वा सुपाताले'—इति साम्प्रदायिकाः।

वासं चक्रे महाभागा भवान्या सह शङ्करः । ब्रह्माद्या देवताः सर्वे तथा गन्धर्वकिन्नराः ॥६३॥
वासुकिप्रमुखा नागास्तथा शेषादयोऽपरे । पातालभुवनेशस्य पाताले मुनिसत्तमाः ॥६४॥
सहाप्सरोभिर्देवस्य परिचर्यां चरन्ति हि । नहि सर्वत्र पाताले मानुषाणां गतिर्द्विजाः ॥६५॥
पातालभुवनेशस्य सन्निधौ यान्ति तत्पराः । गुहास्तस्य प्रगीयन्ते ऋषिभिः सत्यवादिभिः ॥६६॥
आवासं तासु देवस्य विद्यते मुनिसत्तमाः । स्मरःस्मेरुःस्वधामा च ख्यायन्ते मुनिसत्तमाः ॥६७॥
न यान्ति तासु पापिष्ठा गुरुद्रोहरतास्तथा । न गतिर्मानुषाणां हि कलौ तासु तपोधनाः ॥६८॥
भविष्यति न सन्देहो सत्यमेतन्मयोदितम् । पातालभुवनेशस्य गुहा परमशोभना ॥६९॥
सेविता सा महापुण्या सिद्धविद्याधरोरगैः । तत्रावासो महेशस्य विद्यते मुनिसत्तमाः ॥७०॥
ब्रह्मविष्णवादिभिर्देवैर्भवान्या स्कन्दिना सह । तत्र ये मुनिशार्दूलाः पातालभुवनेश्वरम् ॥७१॥
प्रपश्यन्ति हि सायुज्यं यान्ति देवस्य शूलिनः ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितहासं पुरातनम् । ऋतुपर्णस्य राजर्षेश्चाख्यानं कल्पिताशनम् ॥७२॥
यो मर्त्यो देवदेवेशं पातालभुवनेश्वरम् । प्रकाश्य स्वेन वपुषा ययौ शिवपुरं प्रति ॥७३॥

ऋषय ऊचुः—

स राजा मुनिशार्दूल पातालभुवनेश्वरम् । प्रकाश्य स्वेन वपुषा कथं शिवपुरं गतः ॥७४॥

व्यास उवाच—

वैवस्वतकुले राजा बभूव मुनिसत्तमाः । ऋतुपर्णेति विख्यातो महेन्द्रसमविक्रमः ॥७५॥

धनों ! मानव की पहुँच वहाँ सहज सम्भव नहीं। 'भुवनेश्वर' ने पाताल को अच्छा समझ पार्वती के साथ वास किया है। देव, गन्धर्व, किन्नर तथा वासुकि एवं शेषादि नाग अप्सराओं के साथ उनकी सेवा करते हैं। 'पाताल' में सर्वत्र मनुष्यों की गति नहीं हैं। भक्तगण ही पाताल में 'भुवनेश्वर' के समीपस्थ गुफाओं में जाते हैं। सत्यवादी ऋषियों द्वारा वर्णित गुहाओं में ही 'देवेश' का वास है। स्मर[1], स्मेरु[2] और स्वधामा[3] नाम की गुफायें वहाँ विद्यमान हैं। उनमें पापिष्ठ नहीं जा सकते। कलियुग में सामान्य जन का वहाँ प्रवेश दुस्तर है। वहाँ की गुहायें रमणीय हैं। वहाँ सिद्धादियों से सेवित महेश का वास है। ब्रह्मा, विष्णु, पार्वती और स्कन्दि उनके साथ रहते हैं। वहाँ के दर्शक शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में राजा ऋतुपर्ण का एक कीर्तियुक्त आख्यान प्रसिद्ध है। वही इस लोक में पातालभुवनेश्वर के प्रकाशयिता हैं। अन्त में उन्हें शिवलोक प्राप्त हुआ ॥ ५५-७३ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! उस राजा ने भूलोक में पातालभुवनेश्वर को कैसे प्रकाशित किया ? तथा वह शिवलोक में कैसे पहुँचा ? ॥ ७४ ॥

व्यासजी ने कहा—महेन्द्र के समान पराक्रमशील एवं सूर्यकुलोत्पन्न 'ऋतुपर्ण'[4] नाम

---

१. २. ३. ये तीनों गुफायें 'पातालभुवनेश्वर' के भीतर हैं।

४. 'ऋतुपर्ण' के पिता 'अयुतायु' थे। यह भगीरथ से सातवीं पीढ़ी में आते हैं। अयोध्या इनकी राजधानी थी। यही नल के सहायक रहे। राजा नल ने राज्यभ्रष्ट होने पर इनका आश्रय लिया। 'नल' ने इन्हें अश्वविद्या सिखाई तथा इन्होंने नल को द्यूतक्रीड़ा में निपुण किया। ऋतुपर्ण के पुत्र का नाम 'सर्वकाम' था—"ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात्। दत्वाक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः॥
—भागवत ९, ९, १७।

स राजा नयधर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः। बभूव स नरेन्द्राणां मुख्यो विपुलदक्षिणः ॥७६॥
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तयित्वा सुकीर्तनम्। मानवा यस्य नो यान्ति शून्यं यमपुरं प्रति[1]॥७७॥
स राजा विविधान् यज्ञान् विधाय मुनिसत्तमाः। शासयित्वा स वसुधां तर्पयित्वा द्विजोत्तमान् ॥
प्रजानां पोषणं कृत्वा कदाचिन्मृगयां चरन्। रथमारुह्य वेगेन हिमवन्तं गिरिं ययौ ॥७९॥
स तत्र मृगयां चक्रे ससैन्यः ससुहृद्गणः। नानाविधान् मृगगणान् निजघान महाबलः ॥८०॥
स कदाचिन्महाभागा ह्लदे निपतिते बली[2]। वाराहं चातिपीनाङ्गं स्वयमेव ददर्श ह ॥८१॥
रथादुत्तीर्य राजर्षिः खड्गचर्मधरः स्वयम्। तमन्वधावद् धावन्तं वराहं स मनोजवम् ॥८२॥
कदाचिद् विपिने राजा कदाचित् पर्वतोपरि। कदाचित् स समीपे तं कदाचिद्दूरगामिनम् ॥
ददर्श मुनिशार्दूला वाराहं शीघ्रगामिनम्। ततस्तु शूकरं राजा विलीनं दारुपर्वते ॥८४॥
न प्राप स परिश्रान्तः एकाकी पर्वतोत्तमे। परिम्लानमुखो राजा पीडितः सूर्यरश्मिभिः॥८५॥
निवासाय महाभागश्छायां पश्यन्नितस्ततः। क्षेत्रपालं ततो राजा ददृशे कानने शुभे ॥८६॥
उपविष्टं गुहाद्वारे प्रमथानां तथाग्रणीम्[3]। क्षेत्रपालं प्रणम्याशु छायां पप्रच्छ धर्मवित् ॥८७॥
निवासाय महापुण्यां रविरश्मिप्रपीडितः। सोवाच कन्दरामेनां याहि राजन्निति द्विजाः ।८८।
गुहाप्रान्ते निवासं ते भविष्यति सुशोभनम्। श्रेयस्ते भविता राजन् यात्वेनां[4] कन्दरां शुभाम्।
जन्मान्तरशतैर्वापि न दृष्टमपि पश्यसि। तथेत्युक्त्वा स राजर्षिः प्रविवेश महागुहाम् ॥९०॥
मार्गेण मुनिशार्दूलाः क्षेत्रपालोदितेन वै। व्रजन् ददर्श धर्मादींल्लोकपालान् शिवाज्ञया ॥९१॥
द्वारस्थितान् महाभागा गुहामार्गप्रदर्शकान्। स तान् प्रणम्य राजर्षिर्दर्शिताध्वा महागणैः ।९२।
व्रजन् ददर्श श्रीकान्तं नृसिंहं द्वारि संस्थितम्। नारदप्रमुखैर्भक्तैः सेवितं मुनिसत्तमाः ॥९३॥

का राजा था। वह धर्म, नीति और शास्त्रों का ज्ञाता था। उस राजर्षि का नाम लेने से यमलोक नहीं देखना पड़ता। उसने अनेक यज्ञों को सम्पादित कर प्रजापालन किया। एक समय रथ पर बैठ कर वह हिमालय की ओर आखेट के लिये गया। उसने मृगादि का शिकार कर किसी तालाव में एक स्थूलकाय सूअर देखा। उसे देख वह रथ से उतरा और तलवार, ढाल आदि हाथ में पकड़ कर उस सूअर के पीछे दौड़ा। कभी पहाड़, कभी जंगल, कभी समीप और कभी दूर होते ऋतुपर्ण उस सूअर का पीछा करता रहा। इतने ही में वह सूअर 'दारुपर्वत' में छिप गया। राजा उसे ढूंढ़ न सका। दौड़ने से वह थक गया। धूप की गर्मी से व्याकुल हो छाया की खोज करने लगा। तब वन में उसने गुहा के बाहर 'क्षेत्रपाल' को देखा। शिवजी के उस गणाधिप को प्रणाम कर वह छाया के बारे में उससे पूछने लगा। द्विजवरों! क्षेत्रपाल ने राजा से उस गुहा के भीतर जाने को कहा और यह भी बताया कि तुम्हें इसके भीतर अच्छा निवास-स्थान मिलेगा। तुम्हारा वहाँ कल्याण होगा। साथ ही वहाँ तुम अलभ्य और अदृष्ट वस्तुओं को भी देखोगे। 'तथाऽस्तु' कहकर ऋतुपर्ण ने क्षेत्रपाल द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से उस गुहा में प्रवेश किया। मार्ग में शिवजी की आज्ञा से नियत एवं द्वारस्थित मार्गदर्शक धर्मादि

---

१. 'दुःखदं नरकं प्रति'—इत्यर्थः।

२. 'शयानं पल्वले बली'—इत्यर्थे प्रयुक्तमिदं वाक्यम्।

३. 'तमग्रणीम्' इति 'ख'। ४. 'गत्वैनाम्'—इति 'ख'।

यं दृष्ट्वा मानवो याति वैकुण्ठभवनं शुभम् । तं प्रणम्य यथान्यायं सम्पूज्य च पुनः पुनः ।९४।
ययौ पातालभुवने क्षेत्रपालोदितं स्मरन् । ततो ददर्श पातालं नागकन्यानिषेवितम् ॥९५॥
नागमौलिस्थितैर्दिव्यैर्मणिदीपप्रदीपितम् । स तत्र रत्नपर्यङ्के शेषनागं ददर्श ह ॥९६॥
संस्थितं नागकन्यानां सहस्रैः परिवारितम् । वासुकिप्रमुखैर्नागैर्नागमुख्यैर्निषेवितम् ॥९७॥
सहस्रमौलिं नागेशं सहस्रास्यं महाप्रभुम्[1] । सहस्रकरपादान्तं सहस्रकरणं प्रभुम्[2] ॥९८॥
फणामणिशतैर्दिव्यैर्दीव्यन्तं चातितेजसम् । ननाम परया भक्त्या स राजाऽनन्तसंज्ञकम् ॥९९॥
संस्तुतं सिद्धगन्धर्वैः पातालतलवासिनम् । पाताले मानुषं ज्ञात्वा राजानं समुपागतम् ॥१००॥
प्रगृह्य नागकन्या वै शेषान्तिकमुपाययुः ॥१०१॥
शेषनागस्य सान्निध्यं प्राप्य राजा तपोधनाः । ननाम परया भक्त्या तुष्टाव सुसमाहितः ।१०२।

[3]राजोवाच—

नमामि नागराजानमनन्तमपराजितम् । फणामणिसहस्राणां प्रदीपैर्दीपितं हरिम् ॥१०३॥

लोकपालों को राजा ने प्रणाम कर आगे सर्वप्रथम नारदादि से सेवित नृसिंह[4] भगवान् को द्वार पर देखा । उनकी पूजा एवं प्रणामादि कर राजा 'क्षेत्रपाल' के निर्दिष्ट मार्ग से 'पाताल-लोक' में पहुँचा । वहाँ नागकन्याओं से सेवित और नागों के शिरःस्थ दिव्य मणियों से देदीप्यमान 'पाताल' में सहस्रों नागकन्याओं से परिवेष्टित तथा वासुक्यादि नागनायकों से सेवित सहस्र फन वाले 'शेषनाग'[5] को रत्नों से जटित पलङ्ग पर विराजमान देखा । वह फणों में स्थित हजारों दिव्य मणियों की प्रभा से एवं स्वभावतः परम तेजस्वी था । तब राजा 'ऋतुपर्ण' ने सिद्ध-गन्धर्वों द्वारा स्तुति किये जाते हुए पातालवासी 'अनन्त' को भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया । पाताल में प्रविष्ट हुए मनुष्य को देखकर नागकन्याओं ने उस राजा को पकड़-कर 'शेषनाग' के पास पहुँचा दिया । 'शेष' के समीप पहुँचकर राजा ने प्रणाम कर स्तुति आरम्भ की ॥ ७५–१०२ ॥

राजा ने कहा—आदि-मध्यान्त-रहित 'अनन्त' नामधारी 'शेष' भगवान् को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ । योगिजन उनके चरण कमलों का ध्यान करते हैं । वेदोक्त पुरुष सूक्त

---

१. 'महाप्रभम्'—इति 'ख' । २. 'सहस्रकिरणप्रभम्'—इति 'ख' ।
३. 'राजा उवाच'—इति 'ख' । ४. गुफा के भीतर यह मूर्ति है ।

५. नागराज अनन्त का नाम । ये साक्षात् नारायण के स्वरूप हैं । भगवान् विष्णु के लिए शय्या-रूप हो उन्हें धारण करते हैं । इन्होंने मन्दराचल को उखाड़ा था । नागों में सर्वप्रथम इन्हीं की उत्पत्ति हुई थी । इन्होंने नागों में परस्पर विद्वेष के कारण 'पुष्कर' आदि तीर्थों में तपस्या की । त्रिपुरदाह के समय ये शिवजी के रथ के अक्ष बने थे (महाभारत आदि० १८-८; ३५·२-५) । 'भागवत' एवं 'विष्णुपुराण' के अनुसार ये पाताल-वासी सहस्र फनों वाले हैं । पृथ्वी इनके मस्तक पर टिकी हुई है । इन्हें, वासुकि और तक्षक को 'कद्रू' के गर्भ से उत्पन्न माना गया है । प्रत्येक कल्प के पश्चात् अर्थात् ४, ३२, ०,००००,०० वर्षों के अन्तर पर प्रलय के लिए यह विषमिश्रित आग उगलते हैं । यह नीलाम्बर, एवं श्वेतमणिमालाधारी हैं । इनके एक हाथ में हल और दूसरे हाथ में मूसल है । इनके फन का नाम 'मणिद्वीप' तथा इनके निवास-स्थान को 'मणिभित्ति' कहा जाता है (भागवत ५. २५.६–१२) ।

सहस्रमौलिं नागेशं सहस्रास्यं रविप्रभम्। अनादिमध्यनिधनं योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥१०४॥
कल्पितं प्रमुखैर्भक्तैः सेवितं शेषसंज्ञकम्। यो बिभर्ति धरां सर्वां तस्मै शेषं नमाम्यहम्[1] ॥१०५॥

व्यास उवाच—

इति संस्तूयमानं तं दृष्ट्वा पप्रच्छ धर्मवित्। कोऽयमित्येव कन्यानां समूहं मुनिसत्तमाः ॥१०६॥
ता ऊचुरिह संप्राप्तः समानीतस्तवान्तिके। न जानीमः कुलं चास्य शीलं चापि वयं प्रभो ॥
इति तासां गिरं श्रुत्वा पुनः प्रोवाच तं नृपम्। गृहीतं नागकन्याभिः शेषनागो महामतिः ॥१०८

शेष उवाच—

कस्त्वं ममान्तिके ब्रूहि देवो वा मानुषोऽथवा। कस्मिन् कुले प्रसूतिश्च[2] नाम किं तव शोभनम्॥

राजोवाच—

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। अद्य मे निष्कृतिर्नष्टा पापानां तव दर्शनात् ॥
कोशलाधिपतिश्चास्मि वैवस्वतकुलोद्भवः। ऋतुपर्णेति मां सर्वे प्रवदन्ति महीतले ॥१११॥
कदाचिन्मृगयासक्तो हिमवन्तं महागिरिम्। आगतोऽस्मि पुरीं हित्वा सहामात्यपुरोहितैः ॥
हिमवन्तं समागत्य निहता बहवो मया। वराहा गवयाश्चैव मृगाश्चान्ये तथा प्रभो ॥११३॥
निहत्य मृगशार्दूलान् तथान्यान्मृगनायकान्। वराहस्यानुगो भूत्वा एकाकी दारुपर्वतम् ॥११४॥
समागतोऽस्मि पादातिर्हित्वा चात्मजनान् प्रभो। ततस्तं कन्दरालीनं न लेभे सूकरं प्रभो ॥११५॥
पदातिः सुपरिश्रान्तो मूर्च्छया परिपीडितः। क्षेत्रपालान्तिकं प्राप्य छायां पश्यन्नितस्ततः ॥
प्रदृष्टः क्षेत्रपालो वै स मया पार्षदाग्रणीः। स मां प्रणमितं दृष्ट्वा प्रोवाच व्रज कन्दराम् ॥
श्रेयस्ते भविता सद्यो मा चिरं कुरु सर्वथा। इति तस्योदितं श्रुत्वा प्राप्य द्वारं सुशोभनम् ॥
धर्माद्यैर्लोकपालैश्च सेवितं सुमनोहरम्। जन्मान्तरकृतैः पुण्यैः संप्राप्तोस्मि तवान्तिके ॥११९॥

के प्रतीक स्वरूप 'सहस्रशीर्ष' होते हुए वे सारी पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। उन 'शेष' भगवान् को मेरा प्रणाम है ॥ १०३-१०५ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! 'शेषनाग' ने नागकन्याओं से स्तुति करते हुए राजा के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने कहा कि इसके कुल-शील के विषय में हम अपरिचित हैं। इसके यहाँ आने पर हमने आपके समक्ष उपस्थित कर दिया है। नागकन्याओं की बातें सुनकर उनके द्वारा पकड़े हुए उस राजा से शेषनाग ने कहना आरम्भ किया ॥ १०६-१०८ ॥

शेषनाग ने कहा—तुम देव हो या मनुष्य ? किस कुल में तुम उत्पन्न हुए हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? इन बातों का उत्तर दो ॥ १०९ ॥

राजा बोला—आज मेरा जन्म सफल हुआ। आपके दर्शन होने से मेरे सब पाप विलीन हो गए। मैं सूर्यकुलात्पन्न अयोध्या नरेश 'ऋतुपर्ण' हूँ। मृगया हेतु अपनी राजधानी छोड़ हिमालय में चला आया। अनेक प्रकार के मृगों को मारकर एक सूअर का पीछा करते हुए इस 'दारुपर्वत' पर आ पहुँचा हूँ। मेरे साथी मुझसे छूट गए हैं। वह सूअर कहीं गुफा में छिप गया है। उसे मैं ढूँढ़ नहीं पाया। मैं धूप से व्याकुल थका हुआ छाया की खोज में 'क्षेत्रपाल' के पास तक पहुँच गया। मेरे प्रणाम करने पर प्रसन्न होते हुए क्षेत्रपाल ने मुझे गुहा में जाने के

---

१. 'तस्मै शेषाय ते नमः'—इति पाठः अपेक्षितः।
२. 'प्रसूतश्च'—इति 'ख'।

अद्याहं नागशार्दूल तपोदानसमुद्भवैः । अद्य मे सफलं जन्म संप्राप्ताः पितरोऽद्य मे ॥१२०॥
वैकुण्ठभवने पुण्ये कुलकोटिसमन्विताः । अद्य मे पातकं नष्टं जन्मकोटिशतोद्भवम् ॥१२१॥
दर्शनात् तव नागेश हिमवद्रविदर्शनात् ॥

व्यास उवाच—

इति राज्ञा सुविज्ञातस्तथाप्य स फणाशतम् । उवाच मुनिशार्दूलाः शेषस्तं नृपतिं पुनः ॥१२२॥

शेष उवाच—

मा भैषीर्नृपशार्दूल श्रेयस्ते भविता खलु । अचिरेणैव कालेन मत्तो वै नात्र संशयः ॥१२३॥
त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि कथयस्व न चान्यथा । कं देवं नृपशार्दूल समुपास्य महीतले ॥१२४॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः संस्थितास्तद्वदस्व माम् । को देवः पूज्यते राजन्भवद्भिः सूर्यवंशजैः ॥
तथान्यैरपि भूपालैर्नानाकुलशतोद्भवैः । कमाराध्य महीपाल भुञ्जन्ति पदवीं शुभाम् ॥
राजानो देवदेवेशं पितृभिः समुपार्जितम् ॥ १२६ ॥

राजोवाच—

महादेवेति यो देवो देवेषु परिगीयते । तमाराध्य त्रयो वर्णाः संस्थिताः सन्ति भूतले ॥१२७॥
तमेव देवदेवेशं वंश्याः सर्वे नृपाः प्रभो । समाराध्य समश्नन्ति पदवीं समुपार्जिताम् ॥१२८॥
शिवेति यं शिवगणाः प्रणमन्ति देवं, हरेति यं सकलशास्त्रविचारविज्ञाः ।
यं शंकरेति मनुजाः सततं नमन्ति, तस्मै शिवाय सततं करवाम पूजाम् ॥ १२९ ॥
वयं चान्ये च राजानस्तथा वर्णत्रयोऽपरे । तमेव देवदेवेशं समाराध्य स्थिता भुवि ॥१३०॥

लिए कहा। साथ ही मेरे कल्याण की कामना भी की। शीघ्रता करने का आदेश भी दिया। तदनुसार मैं गुहा में प्रविष्ट हो धर्मादि 'लोकपालों' से सेवित सुमनोहर द्वार पर पहुंच कर पूर्वजन्मार्जित पुण्यों से आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूं। हे नागराज ! आज मेरे तप और दानों का फल प्राप्त हुआ है। मेरे कोटि जन्मार्जित पाप नष्ट हो गए। मेरे पितृगणों ने भी अपने पूर्व कोटिकुलों के साथ वैकुण्ठलोक प्राप्त कर लिया है। आपके दर्शन से सूर्योदय के होने पर हिम के पिघलने की तरह मेरे अनेक जन्मों के पाप विलीन हो गए ॥ १०६-१२१ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! इस प्रकार ऋतुपर्ण के निवेदन करने पर शेषनाग ने सौ-सौ फनों को उठा कर उस राजा से कहा ॥ १२२ ॥

शेषनाग बोले—राजसिंह ! तुम डरो मत। मेरे द्वारा तुम्हारा निश्चय ही कल्याण होगा। मेरे प्रश्नों का तुम सही उत्तर दो। इस भूमण्डल पर मुनिजन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र किस देव के उपासक हैं ? तुम सूर्यवंशी तथा अन्य वंशी राजगण किस देव का पूजन कर राजलक्ष्मी का भोग करते हैं ? ॥ १२३-१२६ ॥

राजा ने उत्तर दिया—पृथ्वी पर सभी वर्ण के लोग शिव की आराधना करते है। सभी वंशों के अन्य राजा भी शैव हैं। तथा वे सभी अपनी उपार्जित सम्पत्ति का भोग करते हैं। शिव के गण जिन्हें 'शिव' कहकर प्रणाम करते हैं, सब शास्त्रों के पण्डित जिन्हें 'हर' कह कर नमन करते हैं, जन-साधारण 'शङ्कर' का नाम ले जिनका अभिवादन करते हैं—ऐसे 'शिव' की हम नित्य पूजा करते हैं। इस पृथ्वी पर हम सूर्यवंशी राजा तथा अन्य राजगण एवम् समग्र द्विजवर्ग शिव के ही उपासक हैं ॥ १२७-१३० ॥

व्यास उवाच—

स नृपोदितमाकर्ण्य शेषनागो महामनाः। व्याजहार पुनर्वाणीं लोकानां हितकाम्यया ॥१३१॥

शेषनाग उवाच—

जानासि त्वं गुहामेनां किं प्रजानासि वै नृप। त्वमत्र शंकरावासं जानासि किं न जानसि[1] ॥

राजोवाच—

न जानामि गुहामेनां पातालाधिपसेविताम्। न चात्र शङ्करावासं न चान्यमपि वेद्म्यहम् ॥
न चात्र त्वं पुरा ज्ञातो नागकन्याशतैर्वृतः। जन्मान्तरकृतैः पुण्यैः प्रवृष्टोऽसि मयाऽधुना ॥
साम्प्रतं द्रष्टुमिच्छामि क्षेत्राणि तव वै प्रभो। प्रसादाद् देवदेवस्य महादेवस्य शूलिनः ॥१३५॥
तथान्यानि च क्षेत्राणि पाताले त्रिदिवौकसाम्। सन्ति यानि महाभाग द्रष्टुमिच्छामि तानि वै।
गुहाख्यां चापि नागेश श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्। तथैव देवदेवेशं पातालतलवासिनम् ॥
महादेवं विरूपाक्षं द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ १३७ ॥

व्यास उवाच—

इति विज्ञापितः शेषः ऋतुपर्णेन धीमता। नाम संकथयामास गुहाया मुनिसत्तमाः ॥
तथा देवर्षिनागानां क्षेत्राणि विविधानि च ॥ १३८ ॥

शेष उवाच—

शृणुष्व नृपशार्दूल[2] गुहानाम सुशोभनम्[3]। किमन्ये देवगन्धर्वा महेन्द्रप्रमुखा नृप ॥१३९॥

व्यासजी ने कहा—मुनिगणों! राजा ऋतुपर्ण की बातें सुन कर नागराज ने लोकहित की कामना से राजा से पुनः पूछा ॥ १३१ ॥

शेषनाग बोले—राजन्! क्या तुम इस गुहा से परिचित हो? क्या तुम्हें यह विदित है या नहीं कि यहाँ शङ्कर का आवास है? ॥ १३२ ॥

राजा ने उत्तर दिया—मैं पाताल के स्वामी से सेवित इस गुहा के बारे में तथा अत्रत्य शङ्कर के आवाससम्बन्धी अन्य कोई बात मुझे विदित नहीं है। सैकड़ों नागकन्याओं से सेवित आपके बारे में भी मुझे पहले से कुछ विदित नहीं था। सैकड़ों पूर्वजन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप मैं इस समय यहाँ प्रविष्ट हुआ हूँ। प्रभो! भगवान् शङ्कर की कृपा से मैं आपके क्षेत्रों को जानना चाहता हूँ। इसके अतिरिक्त इस गुफा में विद्यमान अन्य देवताओं के क्षेत्रों को भी देखना चाहता हूँ। सर्वप्रथम मैं विरूपाक्ष भगवान् शङ्कर का दर्शनेच्छु हूँ ॥ १३३-१३७ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों! ऋतुपर्ण से निवेदन किये जाते हुए शेषनाग ने प्रथम उस गुहा का नाम बताया। इसके साथ ही गुफा के परिसर में स्थित देव, ऋषि तथा नागों के विविध क्षेत्रों का परिचय देना आरम्भ किया ॥ १३८ ॥

शेषनाग ने कहा—राजन्! इस 'शोभन' गुफा तथा यहाँ के निवासी महेन्द्रादि देव तथा

---

१. 'किं न बुध्यसे'—इति परिष्कृतः पाठः।

२. 'मुनिशार्दूल'—इति 'ख'। आदर्शपुस्तकस्थः पाठ एव समीचीनः।

३. 'भुवनेश्वरीति विख्याता गुहा ह्येषा सुशोभना। नास्यान्तं यान्ति मुनयो कपिलाद्यापि सुव्रताः ॥'
—इत्यधिकः पाठः 'ख' पुस्तके।

वसत्यस्यां महादेवः पातालभुवनेश्वरः। ब्रह्मविष्णुमहेशानां कृत्वैकत्वं नरेश्वर ॥१४०॥
त्रयस्त्रिंशद्देवगणाः सेवितुं भुवनेश्वरम्। निवसन्ति हि पाताले महेन्द्रप्रमुखा इह ॥१४१॥
दैत्येया दानवाश्चैव गन्धर्वोरगराक्षसाः। सेवितुं देवदेवेशं वसन्त्यस्मिन् शिवालये ॥१४२॥
अत्र गुह्या गुहा राजन् सन्ति देवस्य शूलिनः। न ताः पश्यन्ति मनुजा गन्धर्वोरगराक्षसाः॥
स्मरःस्मेरुःस्वधामा च तिस्रः पुण्या महागुहाः। तासु जागर्ति देवेशः स्वयमेव नरेश्वर ।१४४।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तासु यान्ति न संशयः। ताः सम्प्रदर्शयिष्यामि प्रणते त्वयि वै नृप ।१४५।
न चैताभ्यां स्वचक्षुर्भ्यां प्रपश्यसि महेश्वरम्। दास्यामि दिव्यदृष्टिं ते दुष्प्राप्यां दैवतैरपि॥
तया त्वं शंकरं शान्तं प्रपश्यसि न संशयः ॥ १४७ ॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलाः शेषनागो नरेश्वरम्। दिव्यदृष्टिं प्रदत्त्वाऽऽशु समुत्थाय स सत्वरम्॥
देवगन्धर्वनागानां दैत्यदानवरक्षसाम्। स्थानानि दर्शयामास क्षेत्राणि विविधानि च ॥१४९॥
सम्पूज्य दर्शयामास पातालतलवासिनाम्। वासुकिप्रमुखानां वै नागानां सुमहत्स्थलम् ।१५०।
स्थले तस्मिन् महाभागा नागमुख्यानदर्शयत्। वासुकिं तक्षकञ्चैव धृतराष्ट्रमनन्तरम् ॥१५१॥
कर्कोटकं महानागमेलावर्तमनन्तरम्। वामे संपूजितं देवं नागमुख्यैस्तपोधनाः ॥१५२॥

गन्धर्व प्रभृति का नाम सुनो। इस गुफा में त्रिदेव के समष्टिरूप में 'पातालभुवनेश्वर' विराजमान है। इसके साथ ही पाताल में महेन्द्र प्रमुख तेतीस करोड़ देवता भगवान् शङ्कर की सेवार्थ निवास करते हैं। दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व और नागगण शिवजी की परिचर्यहितु शिवालय में ही रहते हैं। यहाँ पर भगवान् शङ्कर की गुप्त गुफायें भी हैं। वे मानव, गन्धर्व, राक्षस एवं नागों से अदृश्य हैं। हे नरेश्वर! 'स्मर', 'स्मेरु' तथा 'सुधामा' नाम की तीन गुफाओं में स्वयं भगवान् जागरूक रहते हैं। उनमें केवल 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'शिव' ही प्रवेश करते हैं। राजन्! मैं उनको तुम्हारे प्रणाम करने पर दिखाउँगा। राजन्! इन चर्मचक्षुओं से तुम शङ्कर का दर्शन नहीं कर सकते। अतः मैं तुम्हें 'दिव्य चक्षु' प्रदान करता हूँ। उनसे तुम शान्त शङ्कर का दर्शन अवश्य कर लोगे॥ १३९-१४७ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! ऐसा कहकर शेषनाग ने ऋतुपर्ण' को दिव्यदृष्टि प्रदान कर दी। शेषनाग ने शीघ्र ही उठ कर सब पातालनिवासी देवादियों के विविध स्थानों को दिखाते हुए उनकी पूजा करा दी। इसके साथ ही असंख्य नागों से संकुलित वासुकि आदि नागों के विस्तृत स्थानों को भी दिखला दिया। 'वासुकि', 'तक्षक', 'धृतराष्ट्र',' 'कर्कोटक'[२] और 'एलावर्त' महानागों का दर्शन कराया। वहीं वामभाग में प्रमुख नागों से

---

१. पातालनिवासी ५०००, ७२००, १०००० और १००००० मस्तक वाले फनों पर स्थित महामणियों से पाताल को प्रकाशमय कर रहे 'महाक्रोधि' 'वासुकि' आदि नागपतियों में से एक प्रसिद्ध नाग। इन्होंने नारद से विष्णुपुराण सुन 'वासुकि' को सुनाया था (भागवत ५, २४-३१)।

२. महर्षि कश्यप के औरस और दक्ष प्रजापति की पुत्री कद्रू' के गर्भ से उत्पन्न एक काद्रवेय। सर्पों की संख्या १००० कही जाती है। इनमें से 'कर्कोटक' एक प्रधान सर्प था। एक समय इसने नारद मुनि को छला था। उन्होंने फिर शाप दिया था कि तुम स्थावर होकर इसी वन में रहो और राजा नल

विश्वेशं गिरिजाकान्तं नागमालाविराजितम्। विश्वेश्वरं महादेवं शेषाद्यैः सह वै द्विजाः॥
सम्पूज्य विष्णुभवनं प्रयाति सिद्धसेवितम्। ततस्तं दर्शयामास चावतीर्णं दिवः स्थलात्।१५४।
ऐरावणं महानागं दक्षिणे मुनिसत्तमाः। सेवितुं भुवनेशस्य पादयुग्मं समागतम्॥१५५॥
स्वर्गजेशं महादेवं नागराजनिषेवितम्। अनेन सह तं पूज्य सायुज्यं याति मानवः॥१५६॥
परिजाततरुं तत्र तथा कल्पतरुं शुभम्। [1]पश्चात् सन्दर्शयामास गजस्य तस्य वै द्विजाः।१५७।
ततस्तु देवनगरीं देवराजसमन्विताम्। तदूर्ध्वं दर्शयामास बृहस्पतिपुरोगमान्॥१५८॥
सर्वोच्चैःश्रवसं नाम वाजिं चापि प्रदर्शयत्[2]। सम्भाव्य देवमुख्यान् वै महेन्द्रप्रमुखान् द्विजाः॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः। ततस्तं दर्शयामास गुहां शेषवतीं शुभाम्॥१६०॥
तत्रानन्तगृहं पुण्यं नान्तं यस्य वदन्ति हि। तस्माद्विनिःसृतं श्वासं शेषनागस्य सुव्रताः॥१६१॥
पश्यन्ति मानवाः सर्वे भृगुतुङ्गस्य चोत्तरे। पश्यन्ति शेषनागस्य ये श्वासं मुनिसत्तमाः॥१६२॥
ते यान्ति विष्णुभुवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्। शेषनागगुहायां वै नागानां विद्यते गतिः॥१६३॥
न तत्र मानवा यान्ति न च गन्धर्वकिन्नराः। वासुकिप्रमुखा नागा यत्र सन्ति तपोधनाः।१६४।

पूजित एवं नागमालाधारी 'विश्वेश्वर' का दर्शन कराया। विप्रवरों! शेषादि के साथ विश्वेश्वर का पूजन करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है। फिर वहाँ से दक्षिण भाग में स्वर्ग से समागत ऐरावत हाथी को दिखलाया। फिर 'भुवनेश्वर' के चरणों की सेवा करने के लिए आए हुए नागराज से सेवित 'स्वर्गजेश' महादेव के दर्शन कराये। विप्रों! इनके साथ 'भुवनेश' का पूजन करने से शिवसायुज्य प्राप्त होता है। तब 'गजेश' के पश्चिम तरफ 'पारिजात' तथा 'कल्पवृक्ष' भी दिखलाये। उसके ऊपर की ओर देवगुरु 'बृहस्पति' से युक्त तथा 'इन्द्र' से समन्वित 'अमरावती' को बतलाया और वहीं 'उच्चैःश्रवा' नामक इन्द्र के घोड़े को भी दिखलाया। वहाँ महेन्द्रादि देवों सहित सब तपस्वियों का पूजन एवं प्रणामादि करने से मनुष्य को 'अश्वमेध' यज्ञ का फल मिलता है। तत्पश्चात् 'ऋतुपर्ण' को 'शेषवती' नाम की गुफा दिखाई। वहीं शेषनाग का आवास है। उसकी विशालता का पारावार नहीं है। 'भृगुतुङ्ग' के उत्तर में स्थित इस गुहा[3] से निकलने वाली श्वास-वायु[4] को लोग देखते हैं। श्वास-द्रष्टा जन विष्णुलोक प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। ऋषियों! उस गुहा में केवल नागों का ही प्रवेश है। मानव, गन्धर्व, किन्नर आदियों का नहीं। वहाँ पर 'वासुकि' आदि नाग वास करते हैं। वहाँ से

तुम्हारी मुक्ति करेंगे। राजा नल राज्यभ्रष्ट होकर वहाँ आए और वन को दावानल से जलता देख उन्होंने 'कर्कोटक' का उद्धार किया था। 'कर्कोटक' नाग का एक मन्दिर 'भीमिताल' की पहाड़ी पर भी है। जहाँ तक मन्दिर दिखाई देता है वहाँ तक सर्पभय नहीं रहता।

१. 'पार्श्वे'—इति 'ख'। २. 'वाजिनं चाप्यदर्शयत्'—इति परिष्कृतः पाठः।

३. गुप्तक्षेत्र को 'गुहा' का रूप दिया गया है। 'गुप्तक्षेत्र' के सम्बन्ध में 'बर्बरीक' का आख्यान प्रसिद्ध है। यह 'घटोत्कच' का पुत्र था। श्रीकृष्ण के आदेश से इसने 'गुप्तक्षेत्र' (मही-सागर संगमक्षेत्र) में रहकर सिद्धि प्राप्त की। पूर्व जन्म में यह 'सूर्यवर्चा' नामक यक्षराज था। देखें स्कन्द० माहे० कौमारिका० ६१, २७–२९, ५५–५६।

४. 'श्वासपर्वत' के नाम से विदित है।

भृगुतुङ्गे समायान्तं मार्गं तत्र प्रदर्शयत् । मार्गे सनत्कुमारादीन् ऋषींस्तत्र प्रदर्शयत् ॥१६५॥
भृगुतुङ्गं महापुण्यं तेन मार्गेण दर्शयत् । हाटकेशं हरं चापि गौतमस्याश्रमं तथा ॥१६६॥
भृगुं सनत्कुमारादीन् हाटकेशं सगौतमम् । सम्भाव्य पूजयित्वाऽथ दृष्ट्वा वा मुनिसत्तमाः ॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः । न तत्र मानुषाणां हि गतिरस्ति तपोधनाः ॥१६८॥
यान्ति सप्तर्षयस्तत्र न चान्ये देवतागणाः । ततस्तं दर्शयामास स्वर्गद्वारं महोत्सवम् ॥१६९॥
आत्मनो वामभागे वै सेवितं सिद्धनायकैः । स्वर्गद्वारं प्रपश्याशु न मातुर्जठरं व्रजेत् ॥१७०॥
गणेशं दर्शयामास ततस्तस्मै द्विजोत्तमाः । धारयन्तं महायोनिं शिरसि गणनायकम् ॥१७१॥
अर्चयित्वा विधानेन गणेशं मुनिसत्तमाः । वामे सत्येश्वरं पूज्य सायुज्यं याति मानवः ॥१७२॥
ततस्तं दर्शयामास गोविन्दं मुनिसत्तमाः । धारयन्तं स वसुधां देवीं गोरूपधारिणीम् ॥१७३॥
संस्थितां शेषनागस्य शिरसि मुनिसत्तमाः । गोरूपधारिणीं पृथ्वीं धारयन्त श्रियः पतिम् ॥
सम्पूज्य विधिवत्तत्र वाजपेयफलं शुभम् । प्राप्नोति चाक्षयं लोकमप्सरोभिर्निषेवितम् ॥१७५॥
कुलानां कोटिमुत्तीर्य[1] विष्णुलोकं व्रजेन्नरः । ततः सोमेश्वरं देवं दक्षिणे प्रस्तरोपरि ॥१७६॥
दर्शयामास राजानं भवान्या चाभिषेचितम् । सोमेश्वरं महादेवं शिलायां च कृतक्रियः ॥१७७॥
कुलकोटिद्वयं चैव तारयित्वा शिवं व्रजेत् । ततस्तं दर्शयामास धर्मद्वारं सुशोभनम् ॥१७८॥

'भृगुतुङ्ग' जानेवाले मार्ग को भी दिखलाया। उसी मार्ग से 'सनत्कुमारादि' ऋषियों, गौतम-सहित 'हाटकेश्वर'[2] तथा पुण्यशील 'भृगुतुङ्ग' के दर्शन कराये। मुनिवरो! उन सबका दर्शन या पूजन करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहाँ सप्तऋषियों के अतिरिक्त मानवों की गति नहीं है। तदनन्तर ऋतुपर्ण को अपनी बाईं ओर सिद्ध श्रेष्ठों से सेवित 'स्वर्गद्वार' का दर्शन कराया। वहाँ का दर्शन कर पुनर्जन्म नहीं होता। द्विजश्रेष्ठो! तत्पश्चात् अपने शिर पर 'महायोनि' धारण किये हुए गणनायक 'गणेश' के दर्शन कराये। राजा ने विधिपूर्वक उनका पूजन किया। फिर वहाँ से वाम भाग में 'सत्येश्वर' का पूजन होता है। उनकी पूजा से शिवसायुज्य प्राप्त होता है। तदनन्तर शेषनाग के सिर पर गोरूप-धारिणी पृथ्वी को धारण किए हुए 'गोविन्द' का दर्शन कराया। उनका पूजन करने से वाजपेय याग का फल मिलने के साथ ही अक्षयलोक प्राप्त होता है। इसके साथ ही करोड़ों कुलों का उद्धार होते हुए विष्णुलोक मिलता है। तब नाग ने पत्थर के ऊपर भवानी से अभिषेक किए जाते हुए 'सोमेश्वर' का दर्शन कराया। उनका पूजन करने से करोड़ों कुल तर जाते हैं तथा पूजन करने वाला शिवलोक चला जाता है। तदनन्तर नाग ने ऋतुपर्ण को नागकन्याओं आदि से सेवित 'धर्मद्वार' दिख-

---

१. 'कोटिमुत्तार्य'—'ख'।

२. 'महाभारत' के सभापर्व अ० २८ तथा २९ में अर्जुन की दिग्विजय के सन्दर्भ में 'मानसरोवर' के समीपवर्ती 'हाटकेश' का उल्लेख है। उनके आस-पास गन्धर्वों से सुरक्षित देशों को भी अर्जुन ने जीता। अर्जुन फिर उत्तर की तरफ बढ़कर 'हरिवर्ष' की तरफ गए। द्वारपालों द्वारा गन्धर्व-नगरी में प्रवेश वर्ज्य सूचित किये जाने पर अर्जुन ने 'उत्तर कुरु' की विशेषता जानी। अर्जुन की वीरता से ही पराभूत हो वहाँ के द्वारपालों ने 'कर'रूप में उन्हें दिव्य वस्त्र, रेशमी-ऊनी कपड़े, सुन्दर आभूषण आदि सामग्री अर्पित की। इस प्रकार संग्राम में उत्तर दिशा में विजय पाकर म्लेच्छों और क्षत्रियों को उनका राज्य वापस कर वे 'इन्द्रप्रस्थ' लौट आए।

सेवितं नागकन्याभिस्तथा गन्धर्वनायकैः। तत्र सन्दर्शयामास पातालभुवनेश्वरीम् ॥१७९॥
सेवितां सिद्धगन्धर्वैर्महापुरुषलक्षणाम्। गन्धपुष्पाक्षतैर्दीपैः सम्पूज्य भुवनेश्वरीम् ॥
त्रिरात्रं मुनिशार्दूला दिव्यदेहः प्रजायते ॥१८१॥
संस्मृत्य च पितृन् सर्वान् दश पूर्वान् दशोत्तरान्। समुत्तार्य शिवगृहं प्रयाति मतिमान् नरः ॥
तस्माददूरे वागीशं संलग्नं प्रस्तरोपरि। तस्मै प्रदर्शयामास दिव्याङ्गुष्ठसमं प्रभुम् ॥१८३॥
वागीश्वरं महादेवं तत्र सम्पूज्य मानवः। कुलानां कोटिमुत्तीर्य[1] शिवलोके महीयते ॥१८४॥
ततस्तस्माद्विनिःसृत्य वैद्यनाथं महेश्वरम्। वामे सन्दर्शयामास गणनाथस्य वै द्विजाः ॥१८५॥
शिलोपरि विराजन्तं शिलया छादितं प्रभुम्। वैद्यनाथं महादेवं सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ॥१८६॥
कुलानां शतमुत्तीर्य शिवसायुज्यतां व्रजेत्। ततस्तं[2] दर्शयामास निम्नद्वारां महागुहाम् ।१८७।
तपस्विभिः समाकीर्णां महामरकतप्रभाम्। ददृशे कपिलां तत्र शेषनागेन दीपिताम् ॥१८८॥
जपन्तं साङ्ख्ययोगं वै ध्यायन्तं विष्णुमव्ययम्। कपिलेशं हरं तत्र दर्शितं ददृशे ततः ॥१८९॥
तत्रैव दानवान् मुख्यान् दैतेयांश्च तथैव च। उज्जयिन्यां प्रयान्तं वै मार्गं तत्र प्रदर्शयत् ।१९०।
स तस्मै नृपमुख्याय ऋतुपर्णाय वै द्विजाः। मार्गे प्रदर्शयामास स पातालसरस्वतीम् ॥१९१॥
दिव्यां सिद्धाश्रमैः पूर्णां[3] सिद्धैश्च विनिषेविताम्।
यां स्मृत्वा मानवः सम्यक् दिव्यां पातालगामिनीम् ॥ १९२ ॥
कुलानां शतमुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते। ततस्तेनैव मार्गेण महाकालं प्रदर्शयत् ॥१९३॥
पुनर्जगाम तत्रैव क्षणेन मुनिसत्तमाः। महर्षि कपिलं स्मृत्वा कपिलेशं महेश्वरम् ॥१९४॥

लाया। वहाँ पर शुभलक्षणों से युक्त 'पातालभुवनेश्वरी' का दर्शन कराया। उनका यथाविधि पूजन करने पर मनुष्य दिव्यदेहसम्पन्न हो दस पूर्व एवं दस उत्तर कुलों का उद्धार कर शिवलोक प्राप्त होता है। फिर थोड़ी दूर पर पत्थर पर दिव्य अंगुष्ठ के समान अंकित 'वागीश्वर' को दिखलाया। उनके पूजन से कुलों के उद्धार सहित शिवलोक प्राप्त होता है। वहाँ से निकट ही 'गणनाथ' के वामभाग में 'वैद्यनाथ' शङ्कर के दर्शन कराये। शिला से आच्छादित और शिला के ऊपर स्थित 'वैद्यनाथ' का पूजन करने से शिवसायुज्य प्राप्त होता है। वहीं पर तपस्वियों से संकुलित एवं मरकत मणि की तरह चमकती हुई निम्न द्वार वाली एक गुफा दिखाई। उसी में 'कपिला' को भी बतलाया। उसी में साङ्ख्ययोग का अभ्यास एवं 'विष्णु' का ध्यान करते हुए 'कपिलेश्वर' तथा प्रमुख दैत्यों और दानवों को भी दिखलाया। वहीं पर 'उज्जयिनी' और 'प्रयाग' को जाने वाले मार्गों को भी बतलाया। उस मार्ग में 'सिद्धों' एवं उनके 'आश्रमों' से परिपूर्ण 'पाताल-सरस्वती' के दर्शन करायें। पातालगामिनी इस नदी का स्मरण करने से मानव अनेक कुलों को तार कर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। तब उसी मार्ग से 'महाकाल' के दर्शन करा कर फिर 'कपिलेश्वर' के पास पहुँचाया, क्योंकि इन दोनों देवों के पूजन से शिव-सायुज्य प्राप्त होता है। उस मार्ग में आगे मानवों की गति नहीं है। केवल सिद्ध ही आगे

---

१. 'कोटिमुत्तार्य'—'ख'।

२. 'तत्र तम्'—'ख'।

३. 'दिव्यसिद्धाश्रमैः पूर्णाम्'–'ख'।

महाकालं च सम्पूज्य सायुज्यं याति मानवः । मानवानां गतिस्तत्र नास्ति सत्यं वदाम्यहम् ॥
तत्र सिद्धगणा यान्ति न चान्ये देवतागणाः । सूक्ष्मां सन्दर्शयित्वाथ गुहां तत्र प्रदर्शयत् ।१९६।
स्थूलद्वारां सुविस्तीर्णां वामे तस्या गणेश्वरात् । स्रवन्तीं वारिधाराभिः प्रयान्तीं कदलीवने ॥
तस्यान्तं दर्शयामास तस्मै राज्ञे तपोधनाः । मार्गे सन्दर्शयामास मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥१९८॥
तपस्यन्तं जितात्मानं ध्यायमानं जनार्दनम् । तत्र मार्गस्थितं तस्मै दर्शयामास सुव्रताः ॥१९९॥
वामे हि सेतुबन्धं वै प्रयान्तं नातिविस्तृतम् । विद्याधरगणैः पुण्यैः सेवितं सुमनोहरम् ॥२००॥
स राजा मुनिशार्दूला मार्कण्डेयं महामुनिम् । सम्पूज्य च विधानेन पाद्यार्घाचमनादिकैः ।२०१।
यं पूज्य विधिवद्विप्रा मार्कण्डेयं महामुनिम् । प्राप्नोति चिरजीवित्वं मानवो नाऽत्र संशयः ॥
ततः कलाधरं देवं चन्द्रशेखरसंज्ञकम् । तस्मै प्रदर्शयामास शेषनागस्तपोधनाः ॥२०३॥
कलाधरं हरं पूज्य संस्मृत्य च पितॄंस्तथा । कुलानां शतमुत्तार्यं सायुज्यं याति मानवः॥२०४॥
स तस्मै दर्शयामास सेतुबन्धप्रगामिनीम् । गुहां गन्धर्वपालेन पुष्पदन्तेन सेविताम् ॥२०५॥
सूक्ष्मद्वारां सुविस्तीर्णां मणिकान्तां मणिप्रभाम्[1] । दशयोजनविस्तीर्णां तत्र मार्गे महागुहाम् ॥
स तस्मै दर्शयामास महामरकतप्रभाम् । मणीशं शङ्करं तत्र दर्शयामास सुव्रताः ॥२०७॥
मणिभिश्च विचित्राङ्गं दिव्यं मणिमयं हरम् । यं स्मृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।२०८।
द्वौ मार्गौ दर्शयामास स तत्र मुनिसत्तमाः । सव्यं गोदावरीतीरे प्रयान्तं सिद्धसेवितम् ॥२०९॥
तेनोदितेन मार्गेण स्नात्वा गोदावरीं शुभाम् । अथान्तरेण मार्गेण शेषनागोदितेन सः ॥२१०॥
सेतुबन्धं ययौ राजा रामेशो यत्र पूज्यते । निमज्य सागरे पुण्ये रामेशं पूज्य वै द्विजाः॥२११॥
पुनस्तेनैव मार्गेण मार्कण्डेयाश्रमं शुभम् । समाजगाम राजर्षिः शेषनागः सवाहनः ॥२१२॥
रामं सेतुं च संस्मृत्य स्मृत्वा रामेश्वरं हरम् । मणीश्वरं हरं स्मृत्वा स्मृत्वा गोदावरीं शुभाम् ॥

उस मार्ग पर जा सकते हैं । अन्य देवगणों को भी वह मार्ग अगम्य है । अतः नाग ने दूर से ही 'सूक्ष्म' गुफा का दर्शन करा दिया । वहीं पर वामभाग में 'स्थूल' द्वार वाली गुफा को दिखला कर 'गणेश' का दर्शन कराया । तपस्वियों ! यह 'स्थूल' द्वार वाली गुफा अति विस्तीर्ण तथा अनेक जल धाराओं को बहाती हुई 'कदलीवन' की ओर चली गई है । उसका छोर ऋतुपर्ण को दिखलाया । मुनियों ! मार्ग में ही ध्यानमग्न मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय को तप करते हुए दिखलाया । व्रतधारियों ! वहीं पर बाईं ओर सेतुबन्ध की ओर जाने वाले 'मार्ग' को भी दिखलाया । मुनिवरों ! विद्याधरादि से सेवित मार्कण्डेय ऋषि का पूजन करने से मनुष्य चिरजीवी होता है । तत्पश्चात् नाग ने ऋतुपर्ण को चन्द्रकलाधारी 'चन्द्रशेखर' शिव का दर्शन कराया । इनका पूजन करने से सौ कुलों का उद्धार हो शिवसायुज्य प्राप्त होता है । तब 'सेतुबन्ध' की ओर जाने वाली 'पुष्पदन्त' से सेवित मणिप्रभ एवं 'सूक्ष्म द्वार वाली गुफा' को दिखलाया । वह मार्ग में 'मरकत' मणि की तरह चमकती हुई 'महागुहा' थी । उसमें स्थित 'मणीश' शिव का दर्शन कराया । जिनके स्मरण-मात्र से पापों से छुटकारा मिलता है । वहीं दो मार्ग और दिखलाए । उनमें से एक 'गोदावरी' तट की ओर जाने वाला है । वहाँ राजा को स्नान कराया । शेषनागोक्त दूसरे मार्ग से राजा 'सेतुबन्ध' की ओर गया । वहाँ 'रामेश' का पूजन किया जाता है। वहाँ सागर (संगम) में स्नान कर 'रामेश्वर' का पूजन कर उसी मार्ग से 'मार्कण्डेयाश्रम' में

---

१. 'मणिकान्तमणिप्रभाम्'—'ख' ।

गुहाद्वारे महाभागा मार्कण्डेयस्य सन्निधौ । कुलकोटिशतैर्युक्तो नरः सायुज्यमश्नुते ॥२१४॥
ततः सन्दर्शयामास मध्यमार्गेण वै द्विजाः । सेवितामिन्द्रपुत्रेण गुहां सागरगामिनीम् ॥२१५॥
स राज्ञे ऋतुपर्णाय मार्गे चण्डीश्वरं हरम् । नन्दि भृङ्गि रिटि चापि दर्शयन् मुनिसत्तमाः ॥
तेनोदितेन मार्गेण दृष्ट्वा स शिवपार्षदान् । सागरं ददृशे राजा गङ्गासंगमशोभितम् ॥२१७॥
स गङ्गासंगमे स्नात्वा पुनरेव तपोधनाः । मार्कण्डेयाश्रमं पुण्यं ययौ शेषसहायवान् ॥२१८॥
चण्डीश्वरं हरं स्मृत्वा तथैव शिवकिङ्करान् । संस्मृत्य च पितॄन् सर्वान् प्राप्नुयात् परमं पदम् ।
दक्षिणे दर्शयामास प्रयान्तीं कदलीवने । गुहां देवर्षिगन्धर्वैः सेवितां नातिविस्तृताम् ॥२२०॥
अविमुक्तेश्वरं देवं मार्गे तस्मै प्रदर्शयत् । चन्द्रेश्वरं हरं चापि तथा विन्ध्येश्वरं हरम् ॥२२१॥
सम्पूज्य तानि लिङ्गानि स राजा मुनिसत्तमाः । शेषोदितेन मार्गेण जगाम कदलीवनम् ।२२२।
तत्र शेषेश्वरं देवं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः[1] । पुनस्तेनैव मार्गेण मार्कण्डेयाश्रमं ययौ ॥२२३॥
संस्मृत्य मुनिशार्दूला नरा यान्ति परं पदम् । न तेन मानवानां वै मार्कण्डेयाश्रमात् परम् ॥
गतिरस्ति महाभागाः तेषु यान्ति महर्षयः । स तत्र गणनाथस्य सन्निधौ मुनिसत्तमाः ।२२५।
दर्शयामास केदारान्पञ्च पञ्चाग्निसन्निभान् । स तान्संपूजयामास विविदृष्टेन कर्मणा ॥२२६॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैर्नानापुष्पैस्तथैव च । स तस्मै दर्शयामास स्रवन्तं कमलाज्जलम् ॥२२७॥
ब्रह्मणा चाभिषिक्तं हि पञ्च केदारमौलिषु । अणुमात्रमपि स्पृष्ट्वा पुण्यं कमलजं जलम् ॥
सम्पूज्य पञ्च केदारान् गणनाथस्य सन्निधौ । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य मानवो याति शाश्वतम् ॥

लौट आए । मुनियों ! रामेश्वर, सेतु, 'मणीश', 'गोदावरी', 'मार्कण्डेय ऋषि', 'आश्रम' तथा गुहा के 'द्वारपाल' एवं 'नाग'—इन सबका स्मरण कर कुलों का उद्धार होने के साथ ही शिव-सायुज्य प्राप्त होता है । विप्रवरों ! तत्पश्चात् 'शेषनाग ने मध्य मार्ग से 'इन्द्रपुत्र'-सेवित सागर-गामिनी गुफा 'ऋतुपर्ण' को दिखलाई । उस मार्ग में 'चण्डीश्वर' हर विराजमान हैं । वहाँ सागर में पहुँचने के पूर्व शिव के समस्त पार्षदों—'शृङ्गी', 'भृङ्गी', 'रिटि' आदि—को उस मार्ग में देखा । फिर वहाँ सङ्गम में राजा ने स्नान किया । फिर लौट कर मार्कण्डेयाश्रम में पहुँच गए । 'चण्डीश', 'शिवपार्षदगण' तथा 'पितरों का स्मरण करने से भी 'परमपद' प्राप्त होता है । फिर 'शेषनाग' ने दक्षिण में 'कदलीवन' को जाने वाली देवर्षियों से सेवित अत्यधिक तङ्ग गुहा दिखलाई । उसी मार्ग से 'अविमुक्तेश्वर' का दर्शन कराया । वहीं पर 'चन्द्रेश्वर' तथा 'विन्ध्येश्वर' एवम् अन्यान्य 'शिवलिङ्गों' का भी राजा ने पूजन किया । तत्पश्चात् 'शेषनाग' के बतलाये मार्ग से राजा 'ऋतुपर्ण' ने 'कदलीवन' में जाकर 'शेषेश्वर' का पूजन किया । उसी मार्ग से पुनः 'मार्कण्डेयाश्रम' में लौट आए । 'मार्कण्डेयाश्रम' से आगे फिर मनुष्यों की गति नहीं है । केवल ऋषिगण ही जा सकते हैं । तब 'नाग' ने 'राजा' को 'गणनाथ' के निकट 'पञ्चाग्नि' के समान 'पाँच केदारों'[2] के दर्शन करायें । राजा ने विधिपूर्वक उनका पूजन किया । तदनन्तर 'नाग' ने राजा को कमल से जल टपकाते हुए ब्रह्मा के द्वारा 'पाँचों केदारों' के मस्तक पर अभिषेक करते हुए दिखलाया । ऋषिवरों ! 'पञ्चकेदार' का पूजन एवं 'कमल

---

१. 'कदलीवने'—'ख' ।

२. केदारनाथ, तुङ्गनाथ, रुद्रनाथ, मध्यमेश्वर (मदमहेश्वर) तथा कल्पेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं ।

पुनः शेषस्य भवनात् वामे राजीवलोचनम् । वरुणं दर्शयामास ब्रह्मविष्णुसमप्रभम् ।।२३०।।
स तस्माद् वैद्यनाथस्य स्थले यान्तीं महाद्भुताम् । तस्मै प्रदर्शयामास गुञ्जाभां कलभाषिणीम्
मार्गे प्रदर्शयामास देवं गङ्गेश्वरं द्विजाः । तथा पातालरेवां च प्रयान्तीं सुमहोदधौ ।।२३२।।
गङ्गेश्वरं हरं पूज्य देवं तोयैस्तपोधनाः । तेनोदितेन मार्गेण वैद्यनाथस्थलं ययौ ।।२३३।।
वैद्यनाथं हरं पूज्य स राजा मुनिसत्तमाः । गङ्गेश्वरस्य सान्निध्यं पुनः प्राप्य महामतिः ।२३४।
नीलकण्ठसरे यान्तीं गुहां वामे ददर्श ह । ददर्श शेषनागेन स काचमणिसन्निभाम् ।।२३५।।
अप्सरोभिः समाकीर्णां यातुधाननिषेविताम् । तस्या मार्गेण राजर्षिः शेषनागोदितेन सः ।२३६।
ददर्श मार्गे दैत्येशं बलिं बलवतां वरम् । समर्च्य तं जगन्नाथं[1] दैत्यकन्याशतैर्वृतम् ।।२३७।।
नमस्कृत्य बलिं राजा नीलकण्ठह्रदं ययौ । नीलकण्ठह्रदे स्नात्वा नीलकण्ठह्रदेश्वरम्।।२३८।।
सम्पूज्य राजा मतिमान् नागेशान्तिकमाययौ[2] । विराटदेशं संयान्तीं दक्षिणे मुनिसत्तमाः ।।
ददर्श स महापुण्यां गुहां काञ्चनसन्निभाम् । भुजङ्गपिहितद्वारां शेषनागेन वर्णिताम् ।।२४०।।
पूरितां वारुणीतोयैः सूर्यकोटिसमप्रभाम् । तस्या मार्गेण राजर्षिर्विराटनगरं ययौ ।।२४१।।
किरातेशं हरं दृष्ट्वा सत्यातोये निमज्य च । पुनरेव महाभागा ययौ शेषान्तिके नृपः ।।२४२।।
वैद्यनाथं हरं स्मृत्वा नीलकण्ठं महेश्वरम् ।
वैद्यनाथं हरं चापि रेवां पातालसंस्थिताम् । वारुणीं चापि संस्मृत्य वरुणस्यैव सन्निधौ ।२४३।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य सायुज्यं याति मानवः । तासु यान्ति नरा धन्या न चान्ये मुनिसत्तमाः ।।

से उत्पन्न जल' का कण स्पर्श करने से मनुष्य इक्कीस कुलों का उद्धार कर परम पद प्राप्त करता है। पुनः नाग ने 'शेष' भवन से वाम भाग में 'ब्रह्मा' तथा 'विष्णु' की कान्ति के समान 'कमलनयन' 'वरुण' का दर्शन कराया। फिर वहाँ से 'वैद्यनाथ' की ओर जाने वाली 'गुहा' को दिखलाया। तव 'गुञ्जा' की कान्ति वाली 'मञ्जुभाषिणी' गुहा में 'गङ्गेश्वर' का दर्शन कराया। वहीं सागरगामिनी 'पातालरेवा' को दिखलाया। फिर 'गङ्गेश' हर का जलाभिषेक कर शेषोक्त मार्ग से 'वैद्यनाथ' स्थल में प्रविष्ट हो उनका पूजन कर राजा ऋतुपर्ण पुनः गङ्गेश्वर के समीप आया। वहाँ वाम भाग में काचमणि के समान 'नीलकण्ठसर' की ओर जाने वाली गुहा को देखने लगा। तब शेषनाग के कथनानुसार गुहा के मार्ग से राजा 'बलि' को देखा। शतशः दैत्यकन्याओं से परिवेष्टित 'दैत्यराज बलि को प्रणाम कर राजा ऋतुपर्ण 'नीलकण्ठ-ह्रद' में पहुँचा। वहाँ स्नान कर 'नीलकण्ठह्रदेश्वर' का पूजन कर राजा शेषनाग के पास वापस आ गया। वहाँ से दक्षिण भाग की ओर सुवर्ण की तरह 'देदीप्यमान' 'विराट' की ओर जाने वाली महागुहा को देखा। उसका द्वार सर्पों से अवरुद्ध रहता है। शेषनाग की आज्ञा से कोटि सूर्य की कन्ति के समान प्रदीप्त उस गुहा का दर्शन करता हुआ वह आगे 'विराट' नगर में पहुँच गया। वहाँ 'सत्या' में स्नान एवं 'किरातेश' का दर्शन कर फिर 'शेषनाग' के पास आ गया। मुनिवरों 'वैद्यनाथ', 'नीलकण्ठ', 'किरातेश', 'पातालरेवा' एवं 'वरुण' के समीपस्थ 'वारुणी' का स्मरण करने से मानव इक्कीस कुलों का उद्धार कर 'सायुज्य मुक्ति' प्राप्त करता है। मुनिवरों ! इन गुहाओं में जाने वालों का जीवन धन्य है। तदनन्तर 'गणनाथ'

---

१. 'समर्चन्तं जगन्नाथम्'—'ख'। २. 'गङ्गेशान्तिकमाययौ'—'ख'।

स तस्मै दर्शयामास धनदं मुनिसत्तमाः । सन्निधौ गणनाथस्य गुह्यकैः परिसेवितम् ॥२४५॥
ब्रह्मद्वारं ततस्तस्मै भुवनेशस्य सन्निधौ । प्रयान्तं देवमुख्यैर्वै सेवितं सुमनोहरम् ॥२४६॥
वामे वाणीश्वरं देवं दक्षिणे दिननायकम् । तस्मै प्रदर्शयामास चक्रेशं शङ्करं तथा ॥२४७॥
दिननाथं च सम्पूज्य तथा वाणीश्वरं हरम् । चक्रेशं शङ्करं पूज्य ब्रह्मद्वारं विलङ्घ्य च[1] ।२४८।
कुलायुतं समुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते । धर्मद्वारं महाभागाः पुनरेव ददर्श सः ॥२४९॥
धर्मेशं शङ्करं तत्र यमेन परिसेवितम् । धर्मद्वारं विलङ्घ्याशु धर्मेशं पूज्य शङ्करम् ॥२५०॥
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य सायुज्यं याति मानवः । दक्षिणे मुनिशार्दूला ब्रह्मकण्ठीं प्रदर्शयत् ॥२५१॥
न चातिविस्तृतां पुण्यां ब्रह्मलोकप्रदर्शिनीम् । द्वारे तस्या यमकरं दर्शयित्वा तपोधनाः ॥२५२॥
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं यो यत्र नरकेश्वरः[2] । मानवेभ्यो महादीक्षां प्रददाति हिमालये[3] ॥२५३॥
ब्रह्मकण्ठीं प्रपश्यन्तु माऽऽयान्तु मम शासने । ब्रह्मलोकं प्रपश्यन्तु सम्पूज्य कमलासनम् ।२५४।
इति सम्भाषमाणं तं प्रसार्य दक्षिणं करम् । ब्रह्मकण्ठे महामार्गं दर्शयित्वा करोपरि ॥२५५॥
दर्शयामास राजानं यमं संयमिनां वरम् । दर्शयित्वा यमं तत्र ब्रह्मकण्ठीं प्रदर्शयत् ॥२५६॥
सप्तर्षिसेवितां पुण्यां दुष्कृतायुततारिणीम् । ब्रह्माणं दर्शयामास ब्रह्मेशं शङ्करं तथा ॥२५७॥
शेषोदितेन मार्गेण स राजा मुनिसत्तमाः । ब्रह्मकण्ठीं प्रपश्याशु ब्रह्माणं पूज्य सत्वरम् ॥२५८॥
पुनस्तेनैव मार्गेण ययौ धर्मेशसन्निधौ । ब्रह्माणं तत्र सम्पूज्य गत्वा ब्रह्मगुहां शुभाम् ॥२५९॥
ब्रह्मेशं शङ्करं पूज्य यमं सन्तर्प्य वै तथा । ब्रह्मलोकमवाप्नोति नरस्त्रिशत्कुलान्वितः ॥२६०॥
यत्र ब्रह्मा भृगोः शापाद् विमुक्तोऽभूत् तपोधनाः । साङ्ख्ययोगं समारभ्य कपिलेन प्रकाशितम् ।

के निकट 'गुह्यकों' से सेवित 'कुबेर' तथा 'भुवनेश' के समीप देवों से सेवित मनोहर 'ब्रह्मद्वार' दिखाया । उसके बाईं ओर 'वाणीश्वर' तथा दाईं ओर 'दिननायक' (सूर्य) हैं । तब 'चक्रेश' का दर्शन कराया । उन तीनों की पूजा करने के उपरान्त 'ब्रह्मद्वार' को लाँघकर मनुष्य अपने असंख्य कुलों का उद्धार कर 'ब्रह्मलोक' प्राप्त करता है । फिर ऋतुपर्ण ने 'धर्म-द्वार' का पुनः दर्शन एवं 'धर्मेश्वर' का पूजन किया । इसका फल भी इक्कीस कुलों के उद्धार के साथ 'शिवसायुज्य' प्राप्त करना है । मुनिवरों ! वहाँ से दक्षिण की ओर 'ब्रह्मकण्ठी' को दिखलाया । वह अति विस्तृत न होते हुए भी 'ब्रह्मलोक' का दर्शन कराती है । उसके द्वार पर दाहिने हाथ से दीक्षा देते हुए हिमालयपर्वतस्थ 'यमराज' को दिखलाया । मानो वे ब्रह्मकण्ठी का दर्शन करने पर नरकमार्ग का अनुगामी न होने के लिए मानवों को उपदेश दे रहे हों । हाथ के ऊपर 'ब्रह्मकण्ठी' का मार्ग दिखलाते हुए 'यमराज' का दर्शन कराया । फिर सप्तर्षियों से सेवित असंख्य पापों की विनाशिका 'ब्रह्मकण्ठी' को दिखलाया । वहीं 'ब्रह्मा' एवं 'ब्रह्मेश' शिव के दर्शन कराये । फिर राजा 'ऋतुपर्ण' शेषोदित मार्ग से 'धर्मेश' के पास वापस पहुँच गया । द्विजों ! वहाँ 'ब्रह्मा' जी का पूजन कर एवं 'ब्रह्मगुहा' में प्रविष्ट हो 'ब्रह्मेश' एवं 'यमराज' का पूजन तथा तर्पण करने से तीस कुलों का उद्धार कर मानव 'भृगु' के शाप से विमुक्त होने-वाले स्थल 'ब्रह्मलोक' में प्रतिष्ठित होता है[4] । तत्पश्चात् 'शेष' ने 'ऋतुपर्ण' को 'कपालमोचन'

१. 'विलङ्घ्य वै'—'ख' । २. 'यमस्तत्र नरेश्वरः'—'ख' । ३. 'हिताय वै'—'ख' ।
४. 'ब्रह्मा' हिन्दू त्रिमूर्ति के प्रथम देवता हैं । इनका रंग पीतमिश्रित लाल कहा गया है । कहते

संस्मृत्यापि च तां पुण्यां ब्रह्मकण्ठीं तपोधनाः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः ॥
कपालमोचनं क्षेत्रं ततस्तस्मै प्रदर्शयत् । शिरःकपालं यत्रैव पपात ब्रह्मणः पुरा ॥२६३॥
क्षेत्रं ब्रह्मकपालाख्यं ततस्तस्मै प्रदर्शयत् । तर्पणस्य विधिं तत्र कथयामास नागराट् ॥२६४॥

शेष उवाच—

अस्मिन् ब्रह्मकपालाख्ये तर्पयस्व पितॄन् नृप । ददस्व पिण्डं सद्भक्त्या पितृभ्यः सुसमाहितः ॥

राजोवाच—

तर्पणस्य विधिं ब्रूहि पूर्वं कांस्तर्पयाम्यहम् । तर्पिताः कां गतिं यान्ति पाताले पितरः प्रभो ॥

शेष उवाच—

देवानृषींश्च सन्तर्प्य दिव्यांश्चैव पितॄंस्ततः । ततस्तु मानवान् सर्वान् तर्पयेन्नृपसत्तम ।२६७।
यवान्वितैर्जलैर्देवान् ऋषींश्चैवाक्षतैः शुभैः । तिलोदकैः पितॄन् तर्प्य मानुषान् तर्पयेत् कुशैः ॥
तर्पिताः संप्रयच्छन्ति पितरो नृपसत्तम । आयुः प्रजां धनं धान्यं स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।२६९।
पिण्डदानेन ते चात्र कुलकोटिसमन्विताः । तर्पिताः पितरः सर्वे ब्रह्मलोकं प्रयान्ति वै ॥२७०॥
कपालमोचनं क्षेत्रं पाताले प्राप्य ये नृप । न तर्पयन्ति सत्तोयैः सुरभीस्तनसम्भवैः ॥२७१॥
ते यान्ति नरके घोरे मूढाः पण्डितमानिनः । शिरःकपालं सन्त्यज्य[1] पाताले नृपसत्तम ।२७२।
मोहाद् गयायां दद्याद्यः स पितॄन् पातयेत् स्वकान् ।

के दर्शन करायें । वहाँ पर ब्रह्मा का 'कपाल' गिरा था । वहीं नागराज ने 'तर्पण' की विधि भी बतलाई ॥ १४८–२६४ ॥

शेषनाग बोले—राजन् ! यहाँ पर 'पितृतर्पण' एवं 'पिण्डदान' करो ॥ २६५ ॥

राजा ने कहा—शेष भगवन् ! आप तर्पण-विधि बतलायें । सर्वप्रथम किन्हें तृप्त किया जाय ? पाताल में तर्पण करने से पितृगण किस लोक में जाते हैं ॥ २६६ ॥

शेषनाग ने उत्तर दिया—राजन् ! देवर्षि तपण के उपरान्त पितृगण तृप्त किए जाने पर मानव 'ब्रह्मलोक' में प्रतिष्ठित होते हैं । जिसके अनुसार 'यव', 'अक्षत', 'तिल' से क्रमशः देव, ऋषि तथा दिव्य पितृगणों एवम् कुश सहित तिलों से स्वकीय पितरों का तर्पण-विधान करने के लिए कहा । ऐसा करने पर मनुष्य की आयु, सन्तान, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख आदि प्राप्त होते हैं । जो व्यक्ति 'कपालमोचन' में आकर 'सुरभी' के जल से अभिमानवश 'पितृततर्पण' नहीं करते उन्हें सद्‌गति नहीं मिलती । 'पाताललोक' में 'ब्रह्मकपाल' को छोड़ कर जो अज्ञानवश 'गया' में पिण्डदान करते हैं, उनके पितृगण प्रसन्न नहीं होते ॥२६७–२७२॥

हैं कि इनके पांच सिर थे । शङ्कर ने इनका एक सिर नष्ट कर दिया । अतः यह 'चतुर्मुख' रह गए । इनके कान तो आठ हैं, किन्तु भुजायें चार ही हैं । हंस इनका वाहन है । 'पद्म' पुराणानुसार 'भृगु' ऋषि के शाप के कारण इनकी पूजा नहीं होती । अतः इनका एक मात्र सुप्रसिद्ध मन्दिर अजमेर के निकट 'पुष्कर' क्षेत्र में है । वहीं विशेष पूजा होती है । परम्परानुसार इन्होंने एक बार यज्ञ करने का विचार किया । स्वर्ग से एक 'कमल' का फूल गिराया । यह फूल जहाँ गिरा वही स्थान यज्ञ के लिए उपयुक्त समझा गया । अतः उस स्थान का नाम 'पुष्कर' रखा गया ।

१. 'सम्पूज्य'–'ख' ।

व्यास उवाच—

शेषोदितविधानेन स राजा मुनिसत्तमाः ॥२७३॥

पितॄन् सन्तर्पयामास श्रुत्वा तस्य गिरं महत् । तर्पयित्वा स राजर्षिर्देवर्षिपितृमानवान् ।२७४।
पिण्डदानेन सन्तर्प्य कुलमेकोत्तरं शतम् । शेषेण दर्शितां तत्र कामधेनुं ददर्श ह ॥२७५॥
पयोधारां स्रवन्तीं वै वृषभेशस्य मस्तके । स पातालोदकं पुण्यं दर्शयामास वै द्विजाः ॥२७६॥
दक्षिणे वृषभेशस्य सर्वपापप्रणाशनम् । तोयस्य शेषनागेन कथितां श्रूयतां[1] कथाम् ॥२७७॥

शेष उवाच—

पश्योदकं महाराज दिव्यं पातालसम्भवम् । सर्वपापप्रशमनं शिवसायुज्यदं शुभम् ॥२७८॥
ब्रह्मणा रचितं दिव्यं विष्णुना परिपूरितम् । रुद्रेणाचमितं पुण्यं भवान्या विधृतं तथा ॥२७९॥
सुकिष्कुसम्मितं कुण्डं प्रमाणेन नरेश्वर । अनुज्ञाप्य शिवं शान्तं पिब चाचमनत्रयम् ॥२८०॥
शृणुष्वोदकमाहात्म्यं कथितं नृपसत्तम । पातालभुवनं प्राप्य यो जलं दृष्टिगोचरम् ॥२८१॥
करोति स शिवं याति शतत्रयकुलान्वितः । संस्पृश्य नृपशार्दूल पाताले चोदकं शुभम् ॥२८२॥
कुलायुतं समुत्तार्य सायुज्यं प्राप्नुयान्नरः । अत्र स्नात्वा च पीत्वा च अनुज्ञाप्य महेश्वरम् ॥
कुलानां कोटिमुत्तार्य सायुज्यं याति मानवः । अनुज्ञाप्य शिवं शान्तं यः पिबेद् अञ्जलित्रयम् ।
तस्य देहे त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । निवसन्ति महाराज सत्यमेतन् मयोदितम् ॥२८५॥
संस्नाप्य विधिवद् राजन् सुरभीस्तनजैर्जलैः । अत्र स्नात्वा च पीत्वा च देवो भवति मानवः ॥
अविज्ञाप्य शिवं शान्तं यः पिबेद् उदकं शुभम् । तं विनाशयते देवः शूलमुद्यम्य नान्यथा ।२८७।
पश्य हंसं महाराज ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । निहतं देवदेवेन त्रिशूलेन महीयसा[2] ॥२८८॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! ऋतुपर्ण ने शेषनाग के कथनानुसार पितृतर्पण कर वहाँ पिण्डदान किया । उनके एक सौ एक कुलों का उद्धार हुआ । तब शेषनाग ने 'कामधेनु' को दिखलाया । उसके स्तनों से 'वृषभेश' के ऊपर सतत 'दुग्ध' धारा बहती रहती है । तत्पश्चात् 'पातालोदक'[3] को दिखलाया । उस सर्वपापहर जल का आख्यान सुनाया ॥ २७३-२७७ ॥

शेषनाग बोले—महाराज ! पाताल में उत्पन्न इस दिव्य जल को देखो । यह पाप को नाश करने वाला एवं 'शिवलोक' में पहुँचाने वाला है । इसकी सृष्टि ब्रह्माजी ने की है । विष्णु ने इसे पूरित किया है । 'शङ्कर' ने इस जल का पान किया है । तथा 'पार्वती' ने इसे धारण कर रखा है । नरेश्वर ! यह 'कुण्ड' एक हाथ लम्बा-चौड़ा है । अतः भगवान् शङ्कर की आज्ञा प्राप्त कर तीन आचमन करो । राजन् ! इस जल के माहात्म्य को भी सुनो । इस पाताललोक में इस जल का दर्शन-लाभ कर स्पर्श करने वाला व्यक्ति असंख्य कुलों का उद्धार कर 'शिवसायुज्य' प्राप्त करता है । यहाँ स्नान तथा जलपान करने से असंख्य कुलों का उद्धार होने के साथ ही मुक्ति प्राप्त होती है । अतः शिवजी की आज्ञा प्राप्त कर इस जल के तीन आचमन करने वाले मानव के शरीर में तीनों देवताओं का वास हो जाता है । शिव की आज्ञा बिना प्राप्त किए इस जल का ग्रहण करना वर्जित है । ऐसे व्यक्ति को 'शिव' अपने शूल से

---

१. 'शृण्वन्तु कथितां कथाम्'—'ख' । २. 'महात्मना'—'ख' ।
३. 'उदकनौली' के नाम से प्रसिद्ध है ।

व्यास उवाच—

शेषोदितं समाकर्ण्य स राजा मुनिसत्तमाः। उदकेशं महादेवं महाहंसप्रणाशिनम् ॥२८९॥
सम्पूज्य विधिवत्तत्र अनुज्ञाप्य पुनः पुनः। ध्यात्वा च शङ्करं शान्तम् उदकं स पपौ द्विजाः॥
पीतोदकं हि राजानं ददर्श देवमण्डलम्। निवस्य यत्र सेवन्ते पातालभुवनेश्वरम् ॥२९१॥
तत्र देवगणान् सर्वान् सुरभिप्रमुखान् द्विजाः। त्रयस्त्रिंशत् कोटिगणाः सेवन्ते यत्र शङ्करम्॥
सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं न संशयः॥ २९३॥
सुरभीस्तनजैस्तोयैः संस्नाप्य मुनिसत्तमाः। सन्तर्प्य च पितॄन् सर्वान् यज्ञकोटिफलं लभेत्॥
ततस्तारागणान् सर्वान् ताराधिपसमन्वितान्। वामे सन्दर्शयामास स तस्मै मुनिसत्तमाः॥
दक्षिणे गणगन्धर्वान् स तस्मै दर्शयंस्ततः। तेन सन्दर्शितान्दृष्ट्वा स राजा नृपकोविदः॥२९६॥
ताराधिपं च सम्पूज्य तथा तारागणाञ्छुभान्। दर्शितं तेन नन्दीशं ददर्श मुनिसत्तमाः।२९७॥
ऊर्ध्वभागे विराजन्तं शशिकान्तं शशिप्रभम्। नन्दीशं तत्र सम्भाव्य मानवो मुनिसत्तमाः॥
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम्। ततस्तु भुवनेशस्य सन्निधौ मुनिसत्तमाः॥२९९॥
गत्वा स दर्शयामास पातालभुवनेश्वरम्। यस्यार्चार्थं सुतिष्ठन्ति[1] देवदानवनायकाः॥३००॥
दैत्याश्च सिद्धमुख्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः। सप्तर्षयो महाभागास्तथा देवर्षयोऽपरे॥३०१॥
यमाराध्य स्थिताः सर्वे पातालभुवनोत्तमे। स तस्मै दर्शयामास पातालभुवनेश्वरम्॥३०२॥
वामे तस्य स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे पुरुषोत्तमः। तस्य सन्दर्शनं प्राप्य प्रफुल्लवदनो नृपः॥३०३॥
स मत्वा धन्यमात्मानं भुवनेशस्य दर्शनात्। पप्रच्छ शेषनागेशं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः॥३०४॥

राजोवाच—

धन्योस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वयाऽनन्त जगत्पते। कथमेष महादेवो भुवनेशेति विश्रुतः॥३०५॥

प्रहार कर देते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यहाँ देखो। ब्रह्मा के हंस को 'शिव' ने त्रिशूल से घायल कर दिया है॥ २७८-२८८॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों! 'शेष' की वाणी सुन 'ऋतुपर्ण' ने महाहंस के प्रहारक 'उदकेश' शिव की पूजाकर बार-बार आज्ञा प्राप्तकर शान्त शंकर का ध्यान कर उदक-पान किया। तत्पश्चात् 'शेषनाग' ने राजा को देवमण्डल दिखलाया। वहाँ तेंतीस करोड़ देवगण 'शिव' की सेवा में तत्पर रहते हैं। वहाँ पूजन करने का फल 'शिवलोक' प्राप्त करना है। तब वहाँ से बाईं ओर 'चन्द्र' सहित 'तारा' गणों को दिखलाया। वहाँ से दक्षिण की ओर 'गन्धर्वों' को दिखाया। तब राजा ने चन्द्र-सहित तारागणों का पूजन कर ऊपरी ओर विराजमान चन्द्र-कान्तियुक्त 'वाजपेय' यज्ञ के फलदायक 'नन्दीश' का पूजन किया। फिर 'शेषनाग' ने राजा को भुवनेश्वर' के समीप ले जाकर 'पातालभुवनेश्वर' का दर्शन कराया। उनकी पूजा के लिये देव, दानवादि सभी उपस्थित रहते हैं। वहाँ दैत्य, सिद्धेश्वर, गन्धर्व, राक्षस, सप्तर्षि, देवर्षि आदि उनकी आराधना कर 'पाताल' में निवास करते हैं। 'पातालभुवनेश्वर' के वाम भाग में 'ब्रह्मा' तथा दाहिने भाग में 'विष्णु' को देख तथा 'शिव' का पूजन करने से राजा कृतकृत्य हो बड़ा प्रसन्न हुआ। राजा ने पुनः 'शेषनाग' से जिज्ञासा की॥ २८९-३०४॥

---

१. 'सेवार्थं यस्य तिष्ठन्ति'—'ख'।

के पूजयन्ति देवेशं पातालभुवनेश्वरम् । सम्पूज्य किं फलं देवः पूजकेभ्यः प्रयच्छति ॥३०६॥
एतत् सर्वमशेषेण यद् गोप्यमपि पन्नग । कथयस्व प्रसादेन तत्सर्वं संश्रृणोम्यहम् ॥३०७॥

व्यास उवाच—

इति भूपेन संपृष्टः शेषनागस्तपोधनाः । भुवनेशस्य माहात्म्यं ब्रह्मणा परिकीर्तितम्[1] ॥३०८॥

शेष उवाच—

आब्रह्मभुवनाद् राजन् समागत्य महेश्वरम् । समर्चयन्ति पाताले ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।३०९।
पाताले त्वेकतां यातो ब्रह्मविष्ण्वादिभिः सह । पूज्यते देवगन्धर्वैः पातालतलवासिभिः ।३१०।
अयमेव महादेवः पाताले पूज्यते नृप । वासुकिप्रमुखैर्नागैस्तथा गन्धर्वकिन्नरैः ॥३११॥
एवं सम्पूज्य देवेशं सर्वे पातालवासिनः । निवसन्ति सुपुण्यासु गुहासु मुनिसत्तमाः ॥३१२॥
तेनायं देवदेवेशो देवदानवपन्नगैः । पाताले सिद्धगन्धर्वैर्भुवनेशेति गीयते ॥३१३॥
समागत्य महाभाग भुवनेशस्य सन्निधौ । देवदानवयक्षाश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ॥३१४॥
गन्धर्वाप्सरसो गुह्या दैतेयाश्च महाबलाः । ऋषयः पितरश्चैव तथा भूतलवासिनः ॥३१५॥
पूजयन्ति महादेवं पर्यायेणानुपूर्वशः । प्रथमं देवताः सर्वे महेन्द्रप्रमुखा नृप ॥३१६॥
अर्चयन्ति समागत्य पातालभुवनेश्वरम् । देवयात्रातिथौ राजन् ये समर्चन्ति शङ्करम् ।३१७।
पातालभुवनं प्राप्य जातीपुष्पैः सुशोभनैः । शतं मातामहानां च पितॄणां च तथा शतम् ।३१८।
समुत्तार्य दिवं यान्ति नात्र कार्या विचारणा । द्वितीयायां महाराज बाणाद्या दैत्यदानवाः ॥
समर्चन्ति समायाताः पातालभुवनेश्वरम् । दैत्यदानवयात्रायां समर्चयति शङ्करम् ॥३२०॥
पितृकृत्यं विधायाशु कपाले शङ्करं व्रजेत् । तृतीयायां तु राजर्षे यक्षगुह्याः समागताः ॥३२१॥

राजा ने कहा—हे अनन्त ! मैं आपकी कृपा से धन्य एवम् अनुगृहीत हुआ हूँ । कृपया इन्हें 'भुवनेश' क्यों कहा गया है ? इनकी पूजा कौन लोग करते हैं ? पूजा करने वालों को क्या फल मिलता है ? इन सब गोप्य बातों के सम्बन्ध में जानना चाहता हूँ ॥ ३०५-३०७ ॥

व्यासजी बोले – राजा के पूछने पर ब्रह्माजी द्वारा वर्णित 'भुवनेश्वर' का माहात्म्य शेषनाग ने कहना आरम्भ किया ॥ ३०८ ॥

शेषनाग ने कहा – राजन् ! ब्रह्मलोक से लेकर समग्र विश्व के लोग एवं देवगण भी पाताल-लोक में आकर 'महेश' का पूजन करते हैं । ब्रह्मा-विष्णु के साथ समन्वित हो यह पातालवासी महादेव–'देव', 'गन्धर्व' और 'वासुकि' आदि नागों से-पूजे जाते हैं । इनकी अर्चना कर सब पातालवासी पवित्र गुहाओं में निवास करते हैं । इसी कारण यह देवेश 'भुवनेश्वर' के नाम से विख्यात हैं । 'भुवनेश' के समीप जाकर देव, दानव, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, नाग (उरग), गन्धर्व, अप्सरायें, गुह्य, दैतेय, ऋषि, पितर और भूलोकवासी यथाक्रम पूजन करते हैं । सर्वप्रथम 'प्रतिपदा' के दिन महेन्द्रादि देवगण पूजा करते हैं । देवयात्रा के दिन पाताल में आकर 'जातीपुष्पों' से भगवान् की पूजा करने वालों के सभी पितृगण स्वर्ग में आनन्दित होते हैं । 'द्वितीया' तिथि को बाणासुर आदि 'दैत्य' और 'दानव' पूजन करते हैं । उस दिन पूजन और तर्पण करने के पश्चात 'ब्रह्मकपाल' में चले जायें । 'तृतीया' के दिन 'यक्ष' और

---

1. 'स मे यात्रां तथैव हि'—'ख' ।

समर्चन्तीह पाताले पातालभुवनेश्वरम् । गुह्यायात्रातिथौ राजन् पातालभुवनेश्वरम् ॥३२२॥
समभ्यर्च्य पितॄन् तर्प्य दश पूर्वान् दशोत्तरान् । समुत्तार्य शिवपुरं मानवो याति निश्चितम् ॥
चतुर्थ्यां वरुणो देवः समुद्रैः सह भूपते । समर्चति महादेवं पातालभुवनेश्वरम् ॥३२४॥
सलिलेशतिथौ राजन् यः समर्चति शङ्करम् । गुञ्जामात्रेण स्वर्णेन सुशुभ्रैः शालितण्डुलैः ॥
धनं धान्यं धरां धर्ममारोग्यं चिरजीवनम् । पातालभुवनेशस्य प्रसादात् प्राप्नुयान्नरः ॥३२६॥
पञ्चम्यां पन्नगाः सर्वे मया सह नरेश्वर । वासुकिं प्रमुखं कृत्वा समर्चन्तीह शङ्करम् ॥३२७॥
प्रकल्प्य पितृकृत्यं वै कपाले ब्रह्मसंज्ञके । यः समर्चति राजर्षे पातालभुवनेश्वरम् ॥३२८॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्य सुनिश्चितम् । सूर्यकोटिसमो भूत्वा नरः शम्भोः पदं व्रजेत् ॥
उर्वशीप्रमुखाः सर्वाः षष्ठयां वै देवनायिकाः । गन्धर्वैः सह देवेशं समर्चन्तीह वै तले ॥३३०॥
समभ्यर्च्य महादेवं पातालभुवनेश्वरम् । नृत्यं कुर्वन्ति देवस्य सन्निधौ नृपतीश्वर ॥३३१॥
षष्ठ्यामभ्यर्च्य देवेशं पितृकृत्यं विधाय वै । पितृमातृकुलानां च तारयित्वा सहस्रकम् ॥३३२॥
दिव्यदेहमवाप्याशु नरः शिवपुरं व्रजेत् । ब्रह्मर्षयो महाभाग सप्तम्यां भुवनेश्वरम् ॥३३३॥
प्रजापतिं पुरस्कृत्य समर्चन्ति समाहिताः । समभ्यर्च्येह पाताले पातालभुवनेश्वरम् ॥३३४॥
सप्तम्यां पितृकृत्यं वै मानवो नृपतीश्वर । कुलानां शतमुत्तार्य शिवलोके महीयते ॥३३५॥
अष्टम्यां पितरः सर्वे पुरस्कृत्य महायमम् । समर्चन्ति समागम्य पातालभुवनेश्वरम् ॥३३६॥
येऽर्चन्ति पितृयात्रायां पातालभुवनेश्वरम् । क्षेत्रे ब्रह्मकपालाख्ये तर्पयित्वा पितॄंस्तथा ॥३३७॥
कुलकोटिद्वयं ते वै तारयन्ति न संशयः । नवम्यां धनदो राजन् यक्षगुह्यगणैः सह ॥३३८॥
समर्चति महादेवमिहागत्य नरेश्वर । नवम्यां पितृकृत्यं वै विधाय भुवनेश्वरम् ॥३३९॥
समर्चति विधानेन श्रियं प्राप्नोति मानवः । कपिलाद्या महात्मानो मार्कण्डेयादयो नृप ॥३४०॥

'गुह्य' पूजा करते हैं। इस दिन भी पूजा तर्पणादि करने पर दस पूर्व और दस उत्तर वंशों का उद्धार होता है। 'चतुर्थी' तिथि को समुद्र के साथ 'वरुण' पूजा करते हैं। इस दिन सुवर्ण दान एवं 'शालि-तण्डुलों' से पूजन करने पर धन-धान्यादि की वृद्धि तथा चिरजीवित्व प्राप्त होता है। 'पञ्चमी' के दिन 'वासुकि' को अग्रसर करते हुए 'नाग' लोग शिव का पूजन करते हैं। इस दिन यहाँ पूजन तथा 'ब्रह्मकपाल' में पितृकृत्य करने से अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलता है। इसके साथ ही कोटि सूर्यों के समान तेजस्वी होकर मानव शिवलोक प्राप्त करता है। 'षष्ठी' तिथि के दिन 'उर्वशी' आदि देवनायिकायें गन्धर्वों के साथ पूजा करती हैं। इस दिन पूजा करने पर सामान्य जन दिव्य देह प्राप्त कर शिवलोक में जाते हैं। 'सप्तमी' तिथि को ब्रह्मर्षिगण 'प्रजापति' की प्रमुखता में भुवनेश का पूजन करते हैं। राजन्! इस तिथि को पूजन करने वाला मानव अपने सैकड़ों कुलों का उद्धार करता है। 'अष्टमी' तिथि को यमराज को प्रमुख कर पितृगण देवेश की पूजा करते हैं। इस दिन पूजन करने पर मानव अपने असंख्य कुलों को तार देता है। 'नवमी' तिथि को 'यक्षों' और 'गुह्यकों'[1] के साथ 'कुबेर' पूजा करते हैं। इस दिन भी पूजन तथा 'पितृकृत्य' करने से धन-सम्पत्ति की वृद्धि होती है। 'दशमी' तिथि के दिन

---

१. 'कुबेर' के खजाने की रक्षा करने वाले यक्ष। देवजनी और मणिवर तथा उनके वंशजों की सन्तान (वायु० ६९.१६२)। ये 'हिमालय' के निवासी हैं (भाग० ४-५-२६)।

दशम्यां मुनयः सर्वे महाभागवताः शुभाः। समर्चन्ति विधानेन पातालभुवनेश्वरम् ॥३४१॥
रुद्रसूक्तेन विधिना षडङ्गेन ततः परम्। यः पुमान् नृपशार्दूल दशम्यां भुवनेश्वरम् ॥३४२॥
समर्चति विधानेन शुद्धतोयैः फलैस्तथा। पितॄणां कुलमुत्तार्य दश पूर्वान् दशोत्तरान् ॥३४३॥
शिवसायुज्यतां याति नात्र कार्या विचारणा। विद्याधरगणाः सर्वे तथा[1] षोडश मातृभिः॥
एकादश्यां समर्चन्ति सहैव भुवनेश्वरम्। ब्रह्मक्षेत्रे पितॄंस्तर्प्य इह ये शङ्करं प्रभुम् ॥३४५॥
समर्चन्ति महाभाग एकादश्यां समाहिताः। समुत्तार्य पितॄन् सर्वान् सोमयज्ञफलं शुभम्[2]॥
प्राप्य शिवपुरं यान्ति रुद्रकन्यानिषेविताः[3]। द्वादश्यां द्वादशादित्या रुद्राश्चैकादशास्तथा ।३४७।
पूजयन्तीह देवेशं मृडान्या सह पूजितम्। स्नात्वा चोदककुण्डे वै कपाले तर्प्य वै पितॄन् ।३४८।
यथेह[4] देवदेवेशमर्चयित्वाऽथ मानवः। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य मुक्तिमाप्नोति शाश्वतीम् ॥३४९॥
त्रयोदश्यां तु वसवः अश्विनौ भिषजां वरौ। समर्चन्ति शिवं शान्तमिहागत्य महेश्वरम् ।३५०।
त्रयोदश्यां समभ्यर्च्य पातालभुवनेश्वरम्। काशीकोटिगुणं पुण्यं प्राप्नुयादत्र मानवः ॥३५१॥
चतुर्दश्यां निशानाथः सह तारागणैर्नृप। प्रपूजयति देवेशं श्रद्धयेह न संशयः[5] ॥३५२॥
ये समर्चन्ति मनुजाः पातालभुवनेश्वरम्। चतुर्दश्यां चतुर्दश्यामिहागत्य नरेश्वर ॥३५३॥
न तेषां सन्ततिच्छेदो जायते नृपतीश्वर। न ते मृत्युभयं घोरं प्रपश्यन्तीह भूतले ॥३५४॥
न ते दारिद्र्यजां भीतिमश्नन्ति शिवतोषणात्। मृताः शिवपुरं यान्ति कुलकोटिसमन्विताः॥
न पुनर्नृपशार्दूल मातुर्गर्भं प्रयान्ति ते। वृक्षाश्च पर्वताश्चैव तथा पक्षिगणा नृप ॥३५६॥
ऐरावतमुखा नागा उच्चैःश्रवमुखा हयाः। सुरभिप्रमुखा गावस्तथा वायुगणा नृप ॥३५७॥
राक्षसा वानराश्चैव नानादिग्देशसंस्थिताः। किराताः शिवभक्ताश्च द्वारेष्वेतेषु संस्थिताः॥
चतुर्दश्यां महाराज पातालभुवनेश्वरम्। समर्चन्ति समागत्य नानोपायनपाणयः ॥३५९॥

'कपिल', 'मार्कण्डेय' तथा अन्य परम भागवत लोग 'भुवनेश' का पूजन करते हैं। उस दिन फल-जल-युक्त 'रुद्राभिषेक' करने से पितरों का उद्धार हो शिवसायुज्य प्राप्त होता है। सोलह मातृकाओं समेत 'विद्याधर' गण 'एकादशी' तिथि को पूजा करते हैं। उस दिन पूजा एवं पितृ-कार्यादि करने वालों के पितरों के उद्धार के साथ ही 'सोमयाग' का फल मिलता है। 'द्वादशी' तिथि को 'बारह' आदित्य तथा 'ग्यारह रुद्र' गण इनकी पूजा करते हैं। इस दिन 'उदककुण्ड' में स्नान करने वालों को पूजन, तर्पणादि करने से पूर्व पितरों के साथ मुक्ति मिलती है। 'त्रयोदशी' तिथि को 'वसु'गण तथा 'अश्विनीकुमार' भगवान् का पूजन करते हैं। इस दिन पूजन करने वालों को 'काशी' की अपेक्षा करोड़ गुना अधिक पुण्य मिलता है। 'चन्द्रमा' एवं 'तारागण' चतुर्दशी तिथि को पूजन करते हैं। उस दिन यहाँ आकर पूजन करने वालों का वंशच्छेद नहीं होता। उन्हें मृत्युभय तथा दारिद्र्यभय भी व्याप्त नहीं करता। यहाँ तक कि वे जन्म-मरण के बन्धन से रहित हो जाते हैं। राजन्! चतुर्दशी के दिन 'ऐरावत' हाथी, 'उच्चैःश्रवा'दि घोड़े, 'सुरभी' आदि गायें, वायु, राक्षस, वानर, किरातादि शिवभक्त गण इन

---

१. तथेत्यस्य स्थाने 'सह'—इति शब्दोऽपेक्ष्यते। २. 'लभेत्'—'ख'।
३. 'निषेवितम्'—'ख'। ४. 'तथेह'—'ख'।
५. 'प्रपूजति महादेवं स्वधयेह न संशयः'—'ख'।

याश्चैता दर्शिता राजन् या अहं दर्शयामि ते । गुहा देवर्षिगन्धर्वैः सेविताः सुमनोहराः ।३६०।
नानादिग्भ्यः समायान्ति नानादिग्देशसंस्थिताः । तासां मार्गैरिहायान्ति सेवितुं भुवनेश्वरम् ॥
समभ्यर्च्य महाराज पातालभुवनेश्वरम् । तासां मार्गैः[1] पुनर्यान्ति नाना काष्ठासु ते तथा ॥
स्वभागं च समश्नन्ति पातालभुवनेश्वरम् । सम्पूज्य नृपशार्दूल दैत्यदानवपन्नगाः ॥३६३॥
देवताः पितरश्चैव हव्यकव्यादिकं तथा । सम्पूज्य ते समश्नन्ति पातालभुवश्नेवरम् ॥३६४॥
अनाराध्य महाराज पातालभुवनेश्वरम् । स्वधास्वाहादयो भागा नाप्नुवन्ति दिवौकसः ।३६५।
देवदानवगन्धर्वा विद्याधराप्सरोरोगणाः । तथा प्रेतपिशाचाश्च यक्षराक्षसमानवाः ॥३६६॥
अनाराध्य महाभागाः पातालभुवनेश्वरम् । न ते मुक्तिं च भुक्तिं च प्राप्नुवन्तीह शाश्वतीम् ॥
सन्तुष्टे पार्वतीनाथे देवेऽस्मिन् भुवनेश्वरे । नासाध्यं विद्यते राजन् त्रैलोक्यैश्वर्यमेव वा ।३६८।
अयमेव महादेव इह भुक्तिप्रदो नृप । परत्र मुक्तिदो ह्येष गीयते नात्र संशयः ॥३६९॥
तथैकां शृणु राजर्षे तिथीनामुत्तमां तिथिम् । शिवलोकप्रदां पुण्यां यममार्गप्रणाशिनीम् ।३७०।
प्राप्य यस्यां क्षणमपि पापिष्ठाश्च जनेश्वर । शम्भोःसायुज्यतां यान्ति लिप्ताः पापस्य कारिभिः ।
सुदुर्लभा महाराज मन्दवारत्रयोदशी । पातालभुवनेशस्य पूजने नात्र संशयः ॥३७२॥
मन्दवारप्रदोषोऽत्र सुदुर्लभतरः स्मृतः । कलामात्रमपि प्राप्य यस्य मुक्तिं प्रयान्ति वै ॥३७३॥
मन्दवारप्रदोषे वै ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः । समर्चन्ति समागत्य पातालभुवनेश्वरम् ॥३७४॥
विष्णुश्चात्र शिवं शान्तं प्रदोषे मन्दसंज्ञके । समर्चति महाभाग किमन्ये देवतागणाः ॥३७५॥
मन्दवारप्रदोषे ये पातालभुवनेश्वरम् । समर्चन्ति महाभाग कृत्रिमैः स्वर्णपङ्कजैः ॥३७६॥

द्वारों पर स्थित होकर अनेक उपहारों सहित 'भुवनेश' का पूजन करते हैं। राजन्! जो गुहायें मैं तुम्हें दिखा चुका हूँ तथा आगे दिखाऊँगा—वे सभी बड़ी मनोहर तथा देवों एवं गन्धर्व आदि से सेवित हैं। अनेक दिशाओं और भिन्न-भिन्न स्थानों तथा गुहामार्गों से जनसमुदाय देवेश का दर्शन करने आता है। सभी पूजन कर अपने-अपने मार्गों से वापस हो जाते हैं। राजसिंह! देव, दानव एवं मनुष्यादि सभी 'पातालभुवनेश्वर' का पूजन कर अपने-अपने भाग का उपभोग करते हैं। 'देव' और 'पितर' भी 'भुवनेश' का पूजन कर 'हव्य' और 'कव्य' ग्रहण करते हैं। महाराज! 'भुवनेश्वर' का पूजन किये बिना 'देवता' भी 'स्वाहा' एवं 'स्वधा' भाग को प्राप्त नहीं करते। 'देवता', 'दानव', 'गन्धर्व', 'यक्ष', 'विद्याधर' आदि 'पाताल-भुवनेश्वर' की आराधना किए बिना 'भुक्ति' तथा 'मुक्ति' के अधिकारी नहीं होते। पार्वती-पति के प्रसन्न होने पर त्रैलोक्य का सुख दुर्लभ नहीं। राजन्! यही शिव उभय लोक में मुक्ति-प्रद हैं। राजन्! सब तिथियों में से एक तिथि ऐसी है, जो यममार्ग को निरस्त करती हुई 'शिवलोक' प्राप्त कराने वाली है, जिसका क्षणमात्र प्राप्त करने से कोटि पाप-संकुलित व्यक्ति भी शुद्ध हो शिवसायुज्य प्राप्त करता है—वह तिथि 'शनिवार युक्त त्रयोदशी' कही गई है। उस दिन 'पातालभुवनेश्वर' का दर्शन 'सुदुर्लभ' माना गया है। उसमें भी 'शनिप्रदोष' और भी दुर्लभ है। जिसकी 'कला' मात्र उपलब्ध होने से मुक्तिलाभ होता है। शनिप्रदोष के दिन 'ब्रह्मादि' देव और 'विष्णु' यहाँ शान्त शिव का पूजन करते हैं। अन्य देवताओं के विषय में

---

१. 'तासां मार्गे'—'ख'।

सप्तजन्मसु साम्राज्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः । त्रिषु यो नृपशार्दूल पातालभुवनेश्वरम् ॥३७७॥
मन्दवारप्रदोषेषु समर्चति समाहितः । कुलानां कोटिमुत्तार्य राजसूयफलं लभेत् ॥३७८॥
प्राप्य वर्षशतान्ते वै सायुज्यं याति मानवः । कथितं नृपशार्दूल तव प्रश्नोत्तरं शुभम् ॥३७९॥
पुण्याश्च बहवो रम्या गुहाः कान्ताः प्रदर्शिताः ॥३८०॥

व्यास उवाच—

स शेषवचनं श्रुत्वा सम्पूज्य भुवनेश्वरम् । स पार्श्वे भुवनेशस्य ददर्श मुनिसत्तमाः ॥३८१॥
नागैः संरोधितद्वारां पुण्यां स्मरगुहां नृप । ददर्श तत्र देवेशं शेषनागेन दर्शितम् ॥३८२॥
ब्रह्मणा सेवितं चापि क्रीडन्तमुमया सह । चरन्तं देवदेवस्य परिचर्यां तपोधनाः ॥३८३॥
धातारं लोकधातारं शिवाग्रे सन्ददर्श ह । पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं दशबाहुं च शूलिनम् ॥३८४॥
कपालखट्वाङ्गधरं मुण्डमालाविराजितम् । ददर्श रत्नपर्यङ्के क्रीडन्तं चोमया सह ॥३८५॥
ततो नन्दिगृहं पुण्यं तस्मै सोऽदर्शयद् द्विजाः । रुद्रकन्यासहस्राणां परिवारैर्विराजितम् ॥३८६॥
योजनायतविस्तीर्णां गुहां तस्मै प्रदर्शयत् । मणिभिर्दीपितां दिव्यां सर्वतः परिशोभिताम् ॥
स तत्र भुवनेशाख्यं वृद्धसंज्ञं ददर्श ह । सप्तपातालमाक्रम्य गतं भूमण्डले शुभे ॥३८८॥
स सम्पूज्य शिवं शान्तं द्वारपालं तथैव च । देवीं चापि सुसम्पूज्य पञ्चवक्त्रेण वै पुनः ॥३८९॥
स तस्मै दर्शयामास गुहां कैलासमार्गगाम् । तस्या मार्गेण कैलासं मानसं च सरोवरम् ॥३९०॥
कैलासोपरि देवेशं स्वर्णहंसं सरोवरे । नमस्कृत्य महादेवं स्नात्वा मानसरोवरे ॥३९१॥
पुनर्जगाम तेनैव पञ्चवक्त्रस्य सन्निधौ । ततः स्मेरां महापुण्यां गुहां तस्मै प्रदर्शयत् ॥३९२॥
दशयोजनविस्तीर्णां गव्यूतिंत्रिशदायताम् । प्रसुप्तं तत्र देवेशं जटामण्डलभूषितम् ॥३९३॥

तो कहना ही क्या है ? इस दिन कृत्रिम सुवर्ण कमलों से पूजन करने वाला व्यक्ति सात जन्मों तक साम्राज्य का स्वामी होता है। तीन शनिप्रदोषों में पूजन करने वाला व्यक्ति करोड़ों कुलों का उद्धार कर 'राजसूय' यज्ञ का फल प्राप्त करता है। शत वर्षानन्तर उसे शिवसायुज्य मिलता है। हे राजसिंह ! मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया है। साथ ही रमणीय गुहायें भी दिखा दी हैं ॥ ३०९-३८० ॥

व्यासजी ने कहा—ऋतुपर्ण ने 'शेष'नाग का वचन सुनकर 'भुवनेश' का पूजन किया। फिर नागों द्वारा अवरुद्ध द्वार वाली 'स्मर' नामक गुहा को देखा। 'शेषनाग' ने ऋतुपर्ण को ब्रह्माजी से सेवित एवं उमा के साथ क्रीड़ा करते हुए भगवान् शङ्कर के दर्शन कराये। वहाँ शिवजी के आगे की ओर सेवा करते हुए ब्रह्मा आसीन थे। पञ्चमुखी, त्रिनेत्र, दशभुज, त्रिशूल, कपाल एवं खट्वाङ्गधारी तथा 'मुण्डमाला' से शोभित शिव को रत्नजटित पलङ्ग पर उमा के साथ क्रीडा करते हुए देखा। इसके साथ ही उनके वाहन नन्दी के घर को भी देखा। फिर शेषनाग ने सहस्रों रुद्रकन्याओं के परिवारों से संकुलित एक योजन लम्बी एवं चौड़ी गुहा दिखायी। वह मणियों से देदीप्यमान होने से बड़ी रमणीय लग रही थी। उसमें 'वृद्धभुवनेश्वर' विराजमान थे। यह विशिष्ट देवता सातों पातालों को आक्रान्त कर इस भू-पाताल में पहुँचे हुए थे। अतः राजाने उनका, 'द्वारपालों' का तथा 'पञ्चवक्त्र' के साथ 'देवी' का पूजन किया। शेषनाग ने 'कैलास-गामिनी' गुहा को दिखाया। उस मार्ग से 'कैलास', 'मानसरोवर'

गजचर्मपरीधानं नागयज्ञोपवीतिनम् । वामे तस्य प्रसुप्तां वै उग्रतारां प्रदर्शयत् ॥३९४॥
तारिण्या सह संसुप्तं दूराद्देवं नरेश्वरः । नमश्चक्रे महाभागाः तारिणीं च ततः परम् ॥३९५॥
ततो ददर्श देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ३९६ ॥
समर्चन्तं महादेवं कमलैः कमलापतिम् । स राजा मुनिशार्दूलाः प्रपूजत् कमलापतिम् ॥३९७॥
अर्घ्याद्यैरुपचारैश्च गन्धपुष्पैस्तथोत्तमैः । सम्पूज्य कमलाकान्तं तथा सुप्तं महेश्वरम् ॥३९८॥
गुहाया महिमानं स ददर्श मुनिसत्तमाः । वामे तत्र महादेवं द्वितीयं स ददर्श ह ॥३९९॥
वैकुण्ठपूजानिरतं तद्ध्यानाभिमुखं प्रभुम् । स तत्र मुनिशार्दूलाः शङ्करेण प्रपूजितम् ॥४००॥
पुराणपुरुषं विष्णुं लक्ष्म्या सह ददर्श ह । पुनर्ददर्श राजर्षिर्दक्षिणे कमलासनम् ॥४०१॥
सप्तर्षिभिः सहासीनं वसिष्ठाद्यैर्निषेवितम् । ब्रह्माणं तत्र सम्पूज्य शेषनागनिषेवितम् ॥४०२॥
ददर्श दर्शितां देवीं सावित्रीं चापराजिताम् । दर्शयित्वाऽथ सावित्रीं तथा पुण्यां सरस्वतीम् ॥
ततः सन्दर्शयामास स्वधामाख्यां महागुहाम् । दशयोजनविस्तीर्णां योजनद्वादशायताम् ॥४०४॥
देवैरपि सुदुर्गम्यां दिव्यां मरकतोपमाम् । स राज्ञे ऋतुपर्णाय फणीशो मणिशोभितः ॥४०५॥
तत्र मध्ये महायोनिं ददर्श मुनिसत्तमाः । दर्शितां शेषनागेन महापुरुषसंमिताम् ॥४०६॥
योनिमध्ये महाकायं पुरुषं स ददर्श ह । तस्माद् विष्णुं च रुद्रं च ब्रह्माणं च प्रजापतिम् ॥४०७॥
तथैव देवगन्धर्वान् दैत्यदानवमानवान् । स्थावरान् जङ्गमांश्चापि सम्भूतान् सन्ददर्श ह ॥४०८॥

तथा कैलास पर विराजमान 'शङ्कर' तथा मानसरोवरस्थ 'स्वर्णहंस' को दिखलाया। तब वहाँ 'मानसरोवर' में स्नान तथा 'महादेव' को नमस्कार कर उसी मार्ग से 'पञ्चवक्त्र' के पास वापस पहुंचा दिया। तत्पश्चात् दूसरी 'स्मेर' नाम की गुहा दिखलायी। यह गुहा दस योजन चौड़ी तथा तीस कोस लम्बी थी। उसमें जटामण्डित, गजचर्मपरिधानयुक्त एवं नागयज्ञोपवीती भगवान् शङ्कर सोये हुए थे। उनके वाम भाग में सोई हुई 'उग्र तारा' के दर्शन कराये। महाभागों! राजा ने 'तारिणी' के साथ सोये हुए शङ्कर को दूर से ही नमस्कार किया। फिर 'तरिणी' को भी प्रणाम किया। तदनन्तर शङ्ख-चक्र-गदाधारी कमल-पुष्पों से पूजा करते हुए भगवान् विष्णु को देखा। तदनन्तर राजा ने भगवान् विष्णु तथा सोये हुए भगवान् शङ्कर की पूजा की। मुनिवरों! इस प्रकार गुहा की महिमा राजा ने देखी। फिर वहीं वामभाग में एक दूसरे 'महादेव' को 'विष्णु' भगवान् की अर्चना में संलग्न देखा। वहाँ पर 'ऋतुपर्ण' ने शङ्कर-पूजित एवं 'लक्ष्मी' द्वारा परिसेवित 'विष्णु' भगवान् के दर्शन किये। वहीं दाहिनी ओर सप्तर्षियों के साथ बैठे हुए कमलासन ब्रह्माजी को देख उनका पूजन किया। 'शेष' ने वहीं पर 'सावित्री', 'अपराजिता'[1] और 'सरस्वती' को भी दिखलाया। तदनन्तर अन्त में 'शेषनाग' ने 'ऋतुपर्ण' को 'स्वधामा' नामक प्रमुख गुहा दिखलायी। यह 'महागुहा' बारह योजन लम्बी तथा दस योजन चौड़ी है। देखने में 'मरकत' मणि की तरह शोभायमान है, किन्तु देवताओं से भी वह अगम्य है। उसके मध्य में महापुरुषप्रमाणयुक्त 'महायोनि' है। योनि के मध्य में एक 'महाकाय पुरुष' तथा उससे उत्पादित विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, प्रजापति, देव, गन्धर्व, दैत्य, दानव, मानव, स्थावर, जङ्गम आदि समग्र सृष्टि दिखला दी। इतना ही

---

1. अन्धकासुर युद्ध में अन्धकों के रुधिरपानार्थ महादेव द्वारा सृष्ट एक 'मानसपुत्री', जो मातृगण में अन्यतम है (मत्स्य० १७९, १३, ६९)।

आत्मानं तं च नागेशं तस्मादेव विनिःसृतम् । पुराणपुरुषे तस्मिन् विलीनं सचराचरम् ।४०९।
स पश्यन् मुनिशार्दूला ददर्श नृपतीश्वरः । तस्माद् विनिःसृतं रुद्रं पञ्चवक्त्रं ददर्श ह ॥४१०॥
तस्मिन् विलीनं सद्वक्त्रैर्न वक्त्रं न मुखं तथा । तस्माद्विनिःसृतं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ।४११।
श्रीवत्सवक्षं सुविराजद्वनमालाविराजितम् । ददर्श मुनिशार्दूलाः पीतकौशेयवाससी ॥४१२॥
परिधाय विराजन्तं लक्ष्म्या सह परं प्रभुम् । प्रलीनं पुरुषं तस्मिन् पुनरेव ददर्श ह ॥४१३॥
पुरुषं मुनिशार्दूलाः शङ्खचक्रगदाधरम् । पुरुषं पुरुषे तस्मिन् प्रलीनं मुनिसत्तमाः ॥४१४॥
शङ्खचक्रगदापद्मं न ददर्श तथा पुनः । तस्माद् विनिःसृतं तत्र ब्रह्माणं स ददर्श ह ॥४१५॥
हंसारूढं चतुर्वक्त्रं सावित्र्या सह संस्थितम् । विसर्जन्तं विधां सृष्टिं प्रजारूपेण वै द्विजाः ।४१६।
तस्मिन् प्रलीनं धातारं पुरुषे ज्योतिमध्यगे । दृष्ट्वा ततः प्रजां सृष्टिं न धातारं ददर्श ह ॥
तं योनिमध्यगं दृष्ट्वा पुरुषं मुनिसत्तमाः । सृष्टिस्थित्यन्तकर्तारं मत्वा नागमुवाच ह ।४१८।

राजोवाच—

गुहामध्ये महाज्योतिः किमेषा पन्नगेश्वर । कः पुमान् ज्योतिमध्ये च दृश्यते तद् वदस्व माम् ।

व्यास उवाच—

स राजा ऋतुपर्णेन संपृष्टः पन्नगेश्वरः । उवाच वचनं तस्मै मेघगम्भीरया गिरा ॥४२०॥

शेष उवाच—

शृणुष्व नृपशार्दूल मयैतत् समुदाहृतम् । सुगुह्यमपि ते सर्वं कथयिष्याम्यसंशयम्[1] ॥४२१॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां ज्योतिरेतत् सनातनम् । पाताले विद्यते राजन् दुर्दर्शं दैवतैरपि[2] ॥४२२॥
पुराणपुरुषं देवं ज्योतिर्मध्यगतं नृप । सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुभूतं सनातनम्[3] ॥४२३॥

नहीं, राजा ने अपने को तथा 'शेषनाग' को भी उसी से उत्पादित और उसी में लीन होते हुए देखा । ऋषिवरों ! उसी में से 'पञ्चवक्त्र' रुद्र को निकलते एवं उसी में लीन होते हुए देखा । लीन होने पर शङ्कर के 'पाँच मुख' दिखाई नहीं दिये । उसी से आयुध आदि सहित पीताम्वर धारी एवं लक्ष्मी सहित विष्णु भगवान् को निकलते एवम् उसी में विलीन होते हुए देखा । फिर उसी में से हंसारूढ तथा सावित्री समेत ब्रह्मा को बाहर निकलते एवं सृष्टि को विसर्जित करते हुए ज्योति के मध्य वहीं विलीन हुआ देखा । उस महायोनि के मध्यस्थ सृष्टि, स्थिति तथा संहार कर्ता उस महापुरुष को देख राजा ने शेषनाग से कहा ।। ३८१-४१८ ।।

ऋतुपर्ण बोला—पन्नगेश्वर ! गुहा के मध्यस्थ यह 'महाज्योति' तथा उसके मध्य में यह 'महापुरुष'—ये सब क्या दिखाई पड़ रहे हैं ? ।। ४१९ ।।

व्यासजी ने (ऋषियों से) कहा—मुनिवरों ! इसे सुनकर गम्भीर वाणी में 'शेषनाग' ने राजा को उत्तर दिया ।। ४२० ।।

शेषनाग बोले– राजन् ! सुनो । मैं तुम्हें रहस्यात्मक विषय वतला रहा हूँ । यह त्रिदेव की सनातन ज्योति है । यही सृष्टि, पालन एवं संहार की कारणरूप है । इसी के तेज

---

१. 'कथयिष्यामि न संशयः'–'ख' । २. 'दुर्दर्शा दैवतैरपि'–'ख' ।
३. 'न संशयः'–'ख' ।

यस्य धाम्ना इदं सर्वं भासितं भुवनत्रयम् । येनैव धार्यते सृष्टिः सचराचरशोभिता ॥४२४॥
कल्पिता येन वसुधा मधुकैटभमेदसा । यस्य धाम्ना इदं सर्वं भाति विश्वं चराचरम् ॥
स स्वधाम्ना गुहामेनां भासितां प्रकरोति हि ॥ ४२५ ॥
शैवाः शिवेति यं प्राहुस्त्रिशूलवरधारिणम् । ब्रह्मेति वेदतत्त्वज्ञा ब्राह्मणा यं वदन्ति हि ॥४२६॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुभूतं न संशयः । पुराणपुरुषं देवं श्वेतद्वीपनिवासिनम् ॥४२७॥
यमाहुर्मुनयः सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः । स एष पुरुषो राजन् ज्योतिर्मण्डलमध्यगः ॥४२८॥
राजते चेह पाताले न प्राप्यो[1] योगिनामपि । एतस्मादेव भूतानि जज्ञिरे नृपसत्तम ॥४२९॥
यस्मिन्नेव युगान्ते च प्रलीयन्ते न संशयः । यस्य धाम्ना गुहा ह्येषा भासिता नृपसत्तम ॥४३०॥
स्वधामेति च विख्याता अगम्या दैवतैरपि । पुराणपुरुषं ह्येनं प्रभविष्णुं महेश्वरम् ॥४३१॥
जानीहि नृपशार्दूल योनिसंज्ञं निरामयम् । नमस्कुरु महाराज श्रेयस्ते संभविष्यति ॥
पश्य केदारगं मार्गं मया सन्दर्शितं शुभम् ॥४३२॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा शेषनागोऽपि पार्थिवाय महात्मने । दर्शयामास सन्मार्गं गतं केदारमण्डलम् ॥४३३॥

से सारा संसार भासित है। जिसने 'मधु' और 'कैटभ' की मेदा से 'मेदिनी'[2] का निर्माण कर इस 'चराचर' जगत् को धारण किया है। वही 'देवेश' इस गुहा को एवं तीनों लोकों को अपने 'तेजःपुञ्ज' से प्रकाशित करते हैं। अतः यह 'शिव' हैं। वेदज्ञ ब्राह्मणों ने इन्हें 'ब्रह्म' कहा हैं। यही 'श्वेतद्वीप[3] निवासी' देवेश सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने वाले 'पुराणपुरुष' के रूप में पातालस्थ इस ज्योति के मध्य विराजमान हैं। इन्हें योगी भी नहीं देख पाते। समग्र जगत् इसी से उत्पन्न होकर इसी में विलीन हो जाता है। अतः इस 'गुहा' को 'स्वधामा' कहा गया है। वह देवताओं को भी अगम्य है। राजन्! अतः तुम इन्हें जगत् के उत्पत्तिरूप 'महापुरुष' जानो। तुम इन्हें प्रणाम करो, तुम्हारा कल्याण होगा। अब तुम 'केदार' जाने वाले मार्ग को देखो ॥ ४२१-४३२ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! यह कहते हुए 'नाग' ने 'ऋतुपर्ण' को 'केदार' मण्डल

---

१. 'दुष्प्राप्यो योगिनामपि'–'ख'।

२. मार्कण्डेय पुराणानुसार 'विष्णु' के कान के मैल से उत्पन्न दो भाई 'मधु' और 'कैटभ' (दुर्गासप्तशती अ० १, श्लोक ६७) एक साथ उत्पन्न हुए थे। ये दोनों 'रज' और 'तमो' गुणों का प्रतिनिधित्व करते थे (मत्स्य० १६६-१)। इन दोनों ने 'क्षीरसागर' में सोए हुए विष्णु की नाभि से निकले 'ब्रह्मा' को मारने का प्रयत्न किया। ब्रह्मा ने तब 'विष्णु' की स्तुति की। विष्णुमाया के प्रकट होने पर (देवी के रूप में) इन दोनों का वध हुआ। मधु-कैटभ की मेदा से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इसलिए इसे 'मेदिनी' कहा गया (हरिवंश)।

३. भगवान् नारायण का अनिर्वचनीय दिव्य धाम 'श्वेतद्वीप' है। इसकी स्थिति 'क्षीरसागर' के उत्तर ओर कही गई है। वहाँ के निवासी इन्द्रियों से अभिव्याप्त नहीं होते। निराहार रहते हुए भी ज्ञान विज्ञान सम्पन्न रहते हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से मनोहर गन्ध निकलती है। उनकी हड्डियाँ वज्रवत् दृढ़ होती हैं। ये गौर वर्ण के होते हैं। भगवान् उनके हृदयस्थ होते हैं (महा० शान्ति० ३३५, ८-१२)।

पुराणपुरुषं विष्णुं प्रणम्य स पुनः पुनः । शेषनागानुगो राजा ययौ केदारमण्डलम् ।।४३४।।
स ददर्शाथ केदारं शेषनागेन दर्शितम् । तथैव च महाध्वानं ययौ शिवपुरं प्रति ।।४३५।।
सम्पूज्य तत्र केदारं समाचम्योदकं तथा । स राजा मुनिशार्दूलाः पातालं पुनराययौ ।।४३६।।
समागत्य स राजर्षिर्भुवनेशस्य सन्निधौ । चिन्तयामास मनसा किमेतदिति चिन्तयन् ।।४३७।।
स्वप्नोऽयं किमुत स्वप्न-भ्रमोऽयं किमु नो भ्रमः । किमेतदिह पाताले दृष्टं संकल्पयंस्ततः ।४३८।
बिल्वोदकेश्वरं देवं ददर्शोर्ध्वं तपोधनाः । अभिषिच्य महेन्द्रेण स बिल्वफलसन्निभः ।।४३९।।
ब्रह्माणं तत्र संस्मृत्य मृडानीं नन्दिकेश्वरम् । पञ्चवक्त्रं महादेवं स्मृत्वा स्मरगुहां तथा ।४४०.।
कैलासं मानसं चापि तथाविधमहेश्वरम् । तथा स्मेरां गुहां स्मृत्वा प्रसुप्तं शंकरं तथा ।४४१।
शिवार्चनरतं विष्णुं तथा सुप्तां हि तारिणीम् । विष्णुपूजारतं रुद्रं तथैव कमलासनम् ।४४२।
शङ्खचक्रान्वितं विष्णुं श्रियायुक्तं चतुर्भुजम् । स्वधामाख्यां महापुण्यां गुहां स्मृत्वा ततः परम् ।
सूर्यकोटिप्रभां ज्योतिं संस्मृत्वा मुनिसत्तमाः । पुराणपुरुषं तत्र ज्योतिर्मध्यगतं तथा ।।४४४।।
केदारं चापि संस्मृत्वा महाध्वानं तथैव च । पातालभुवनेशस्य सन्निधौ मुनिसत्तमाः ।।४४५।।

स्मृत्वा च मानवः सम्यक् भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।
अश्वमेधादियज्ञानां फलं प्राप्य विनिश्चितम् ।। ४४६ ।।

कुलकोटिं समुत्तार्य शतान्ते विष्णुमन्दिरम् । प्रयाति देवदेवस्य प्रसादान्नात्र संशयः ।।४४७।।
तासु यान्ति न गन्धर्वा न यक्षा न च पन्नगाः । सुगुह्याः सन्ति ताः पुण्या गुहास्तित्रस्तपोधनाः।
देवता ऋषयश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे । यान्ति तावत् सुगुह्यासु गुहासु मुनिसत्तमाः ।।४४९।।
ततस्तस्मै देवगुरुं दर्शयामास पन्नगः । प्रकुर्वन्तं कथां दिव्यां भुवनेशस्य शूलिनः ।।४५०।।
प्रवालसदृशोष्णीशं दक्षिणे मुनिसत्तमाः । दिव्याङ्गुष्ठसमं कान्तं दैवतैश्च निषेवितम् ।।४५१।।
बृहस्पतिं च पाताले सम्पूज्य मुनिसत्तमाः । नानाविधैश्च कुसुमैः कविर्भवति मानवः ।।४५२।।

दिखला दिया । पुराणपुरुष 'विष्णु' को बार-बार प्रणाम करते हुए राजा ने केदारमण्डल में प्रवेश किया । बीच में 'शिवलोक' जाने वाले 'महापथ' को भी देखा । राजा 'केदार' का दर्शन एवम् वहाँ के जल का आचमन कर पुनः 'पाताल' वापस आ गया । 'भुवनेश' के पास आकर सोचने लगा कि यह 'स्वप्न' है या 'मतिविभ्रम' है । कुछ समझ में नहीं आता । तपोधनों ! तत्पश्चात् राजा ने महेन्द्र के द्वारा सेवित बिल्वफल के समान 'बिल्वोदकेश्वर' को देखा । वहाँ पर ऋतुपर्ण ने ब्रह्मा, मृडानी, नन्दिकेश, पञ्चवक्त्र शिव, स्मरगुहा, कैलास, मानसरोवर, महेश्वर, स्मेर गुहा, प्रसुप्त शङ्कर, शिवार्चन-रत विष्णु, प्रसुप्त तारिणी, विष्णुपूजारत रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, स्वधामा गुहा, कोटि-सूर्य-प्रदीप्त ज्योति तथा ज्योतिर्मध्यगत 'पुराण-पुरुष', केदार, महापथ और 'भुवनेश' के समीप पाताल का स्मरण किया । इससे मानव इस लोकमें सुख भोग कर अश्वमेध-यज्ञ का फल प्राप्त करता है । इसके अतिरिक्त अन्त में असंख्य कुलों का उद्धार करते हुए 'विष्णुलोक' प्राप्त करता है । इन तीनों गुहाओं में यक्ष, गन्धर्व, नाग आदि भी नहीं जाते हैं । मुनिवरों ! तत्पश्चात् 'शेषनाग' ने दाहिनी ओर 'ऋतुपर्ण' को 'देव-गुरु' का दर्शन कराया । वह 'मूंगे' के सदृश पगड़ी धारण कर 'भुवनेश' की कथा कह रहे थे । वह दिव्य अङ्गुष्ठ के समान कान्तियुक्त तथा अनेक देवताओं से सेवित दिखाई पड़ रहे थे । तपस्वियों ! पाताल में पुष्पादि से 'बृहस्पति' का पूजन करने से मनुष्य को कवित्व-शक्ति प्राप्त

ततो ज्वालेश्वरं देवं विकटेशं ततः परम् । गुहायां दक्षिणे भागे[1] पार्थिवाय प्रदर्शयत् ॥४५३॥
ज्वालेश्वरं महादेवं विकटेशं शिवं तथा । सम्पूज्य मानवो याति महेन्द्रभवनं शुभम् ॥४५४॥
स वामे विकटेशस्य बलं तस्मै प्रदर्शयत् । बलाद्वामे महापुण्यां गुहां देवर्षिसेविताम् ॥४५५॥
तस्मै प्रदर्शयामास दिव्यद्वारां महाप्रभाम् । सेवितां सिद्धगन्धर्वैर्यान्तीं वाराणसीं प्रति ॥४५६॥
तस्या मार्गेण राजानं नीत्वा वाराणसीं ययौ । गणान् सन्दर्शयंस्तत्र एकाक्षान् विकटांस्तथा ॥
तस्मै प्रदर्शयामास पुण्यतोयवहां शुभाम् । गङ्गां प्रदर्शयामास पातालतलगामिनीम्[2] ॥४५८॥
जह्नुजायासरिन्मध्ये तस्मै गङ्गेश्वरं हरम् । श्वेताभ्रघनसङ्काशं विद्युत्तोयसमप्रभम् ॥४५९॥
स्नात्वा पातालगङ्गायां स राजा मुनिसत्तमाः । गङ्गेश्वरं महादेवं गङ्गातोयैः सुपूजयत् ॥४६०॥
ततो गङ्गां समुत्तार्य दिव्यद्वारां महागुहाम् । पञ्चयोजनविस्तीर्णां योजनद्वादशायताम् ॥४६१॥
तत्र द्वारद्वयं तस्मै दर्शयामास पन्नगः । काशीमार्गप्रदं त्वेकम् एकं रैवतमार्गदम् ॥४६२॥
बालीश्वरं महादेवं तस्मै तत्र प्रदर्शयत् । स तारप्रमुखैः पुण्यैः कपिभिर्विनिषेवितम् ॥४६३॥
वामे बालीशदेवस्य काशीमार्गं प्रदर्शयत् । तेन मार्गेण नागेशः काश्यां विश्वेश्वरं हरम् ॥४६४॥
तथा भागीरथीं गङ्गां स काशीतलवाहिनीम् । दर्शितां शेषनागेन गङ्गां स्नात्वा यथाविधि ॥
पूज्य विश्वेश्वरं देवं कृत्रिमैः स्वर्णपङ्कजैः । पुनर्जगाम तत्रैव यत्र बालीश्वरो हरः ॥४६६॥
पूज्यते देवगन्धर्वैस्ताराद्यैर्वानरैरपि । बालीश्वरं नमस्कृत्य पुरस्कृत्य फणीश्वरम् ॥४६७॥
स दक्षिणेन मार्गेण ययौ रैवतकं गिरिम् । वज्रनादेश्वरं देवं शेषनागेन दर्शितम् ॥४६८॥

हो जाती है। फिर नाग ने गुहा के दक्षिण भाग में 'ज्वालेश' और 'विकटेश' के दर्शन कराये। इनका दर्शन करने से मनुष्य 'महेन्द्रभवन' प्राप्त करता है। 'विकटेश' के बाईं ओर 'बल'[3] को दिखाया। 'बल' के वामभाग में पवित्र एवं दिव्यद्वारयुक्त, प्रदीप्त एवं देवर्षियों से सेवित 'काशी' की ओर जाती हुई एक 'गुहा' दिखाई। उस मार्ग से 'राजा' को ले जाकर तत्रस्थ 'एक आंख' वाले विकट गणों एवं पवित्रसलिला 'गङ्गा' को दिखाया। इसके साथ ही 'पातालगङ्गा' को दिखला कर 'जाह्नवी' के मध्य 'श्वेतमेघ' एवं 'विद्युत्' के सदृश प्रदीप्त 'गङ्गेश' का दर्शन कराया। वहाँ राजा ने 'पातालगङ्गा' में स्नान कर उसके जल से गङ्गेश का पूजन किया। फिर नाग ने 'गङ्गा' पार करा ऋतुपर्ण को दिव्यद्वार वाली 'पांच योजन चौड़ी' तथा 'बारह योजन लम्बी' गुहा दिखलाई। उन दोनों द्वारों में से एक तो 'काशी-मार्ग' है और दूसरा 'रैवत' का मार्ग है। फिर बालेश्वर के वामभाग में काशी का मार्ग दिखलाया। उस मार्ग से 'विश्वनाथ' और 'गङ्गा' के दर्शन कराये। तब राजा ने गङ्गास्नान कर कृत्रिम सुवर्ण-कमलों से 'विश्वनाथ' का पूजन किया। फिर वह 'बालीश्वर' के समीप वापस आ गया। तत्पश्चात् वहाँ 'बालीश्वर' को नमस्कार कर 'नागराज' के साथ दक्षिण मार्ग से

१. 'नागः'—'ख'।

२. 'पातालतलवासिनीम्'–'ख'।

३. 'अतल' का निवासी 'मय' का एक पुत्र, जिसने ९६ जादू के तिलस्मानी खेलों की सृष्टि की थी। इसके जम्हाई लेने पर स्वैरिणी, कामिनी तथा पुंश्चली नामक तीन वर्ग की स्त्रियाँ इसके मुख से उत्पन्न हुई, जो उस प्रदेश में जाने वालों को 'हाटकरस' प्रदान करती थीं। जिससे वे सिद्धों की तरह रह सकते थे। देवासुर-संग्राम में इन्द्र से वह लड़ा था और मारा गया था (भागवत ५, २४–२६)।

मार्गे स गोमतीं पुण्यां पातालतलगामिनीम् । निमज्य गोमतीमध्ये पूज्य नाटचेश्वरं हरम् ॥
शेषोदितेन मार्गेण ययौ रैवतकं गिरिम् । नानावृक्षलताकीर्णं नानाधातुविराजितम् ॥४७०॥
प्राप्य रैवतकं राजा स्नात्वा तत्र महोदधौ । सम्पूज्य तत्र देवेशं गोकर्णं मुनिसत्तमाः ॥४७१॥
पुनर्जगाम मार्गेण स तेन भुवनेश्वरम् । सिद्धगन्धर्व-कन्याभिः सेवितं त्रिगुणात्मकम् ॥४७२॥
मानवो बलसान्निध्यं प्राप्य स्मृत्वा महागुहाम् । तथा पातालगङ्गां च स्मृत्वा गङ्गेश्वरं हरम् ।
बालीश्वरं हरं स्मृत्वा तथा वाराणसीं पुरीम् । विश्वेश्वरं हरं स्मृत्वा तथा भागीरथीं शुभाम्
तथा नाटचेश्वरं देवं तथा पातालगोमतीम् । महोदधिं च संस्मृत्वा तथा रैवतकं गिरिम् ।४७५।
गोकर्णेशं हरं स्मृत्वा मानवो मुनिसत्तमाः । निवर्त्य पितृकृत्यं च दश पूर्वान्दशोत्तरान् ।४७६।
कुलानां कोटिमुत्तार्य शिवलोकं स गच्छति । तस्य ज्योतिर्महाभागा निजधर्मरता नराः ।४७७।
न तस्यां यान्ति पापिष्ठा वर्णसङ्करकारकाः । स तस्मात् दक्षिणे भागे गुहां तस्मै प्रदर्शयत् ॥
तस्यां कालीं कपालीं च तथा त्रिपुरसुन्दरीम् । उग्रतारां महादेवीं[1] कालिकेशं हरं तथा ।४७९।
स तस्मै दर्शयामास गन्धर्वैर्विनिषेवितम् । स तस्मान्नीलशिखरे गुहां यान्तीं प्रदर्शयत् ॥४८०॥
तस्या मार्गेण राजर्षिः स नीलशिखरं शुभम् । दर्शितं शेषनागेन ययौ पश्यन् शिवालयान् ॥
स नीलशिखरं प्राप्य दृष्ट्वा वागीश्वरं हरम् । संस्नात्वा सरयूमध्ये ययौ पातालमेव च ॥
तत्र द्वारे महाकालीं तथा त्रिपुरसुन्दरीम् । उग्रतारां महादेवीं कालिकेशं हरं तथा ॥४८३॥
सरयूं चापि संस्मृत्य तथा वागीश्वरं हरम् । संस्मृत्य च पितॄन् तर्प्य नरः शम्भोः पदं व्रजेत् ।
तस्मादूर्ध्वं महाभागाः क्षेत्रं तस्मै प्रदर्शयत् । गौरीमहेशसंज्ञं वै सर्वक्षेत्रोत्तमं शुभम् ॥४८५॥
क्रीडन्तं तत्र देवेशमक्षक्रीडाविशारदम् । देवगन्धर्वमनुजैः सेवितं च प्रदर्शयत् ॥४८६॥

'रैवताचल' की तरफ गया । मार्ग में चलते हुए 'नागराज' ने 'नाटचेश्वर' को दिखलाया । उसी मार्ग में पाताल-'गोमती' में स्नान कर तथा गोमती के मध्य 'नाटचेश्वर' का पूजन कर 'शेष' द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से 'रैवतक' पर्वत पर पहुँचा । अनेक वृक्षों, लताओं तथा धातुओं से संकुलित 'रैवतक' पर्वत के समीप 'समुद्र' स्नान कर 'गोकर्णेश' की पूजा करने के बाद उसी मार्ग से सिद्ध-गन्धर्व कन्याओं से सेवित त्रिगुणात्मक "भुवनेश्वर' के पास चला आया । मुनि-वरों ! 'बल' का सान्निध्य पाकर 'महागुहा' का स्मरण करते हुए उपर्युक्त 'पातालगङ्गा' से आरम्भ कर 'गोकर्णेश्वर' पर्यन्त देवों का स्मरण करने से मानव अपने दस पूर्व एवं दस उत्तर कुलों को तार कर 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित होता है । तत्रस्थ ज्योति में वर्णसङ्करों का प्रवेश निषिद्ध है । विप्रवरों ! तब नागराज ने वहाँ से 'दक्षिण' की ओर एक और 'गुहा' दिखलाई । उसमें 'काली', 'कपाली' तथा 'त्रिपुरसुन्दरी' के दर्शन कराये । इनके साथ ही महादेवी 'उग्र-तारा' तथा 'कालिकेश' हर के भी दर्शन कराये । तब वहाँ से 'नीलशिखर' की ओर जाने वाली 'गुहा' को दिखलाया । उसी मार्ग से 'नीलपर्वत' जाकर समग्र शिवमन्दिरों को देखता हुआ 'वागीश्वर' का पूजन एवं 'सरयू' स्नान करने के पश्चात् 'ऋतुपर्ण' पुनः 'पाताल' में लौट आया । द्वारस्थ 'महाकाली' आदि देवियों तथा उपर्युक्त देवताओं और नदियों का स्मरण एवं तर्पणादि करने से 'शिवपद' प्राप्त होता है । तत्पश्चात् उसके ऊपरी भाग में सब क्षेत्रों में श्रेष्ठ क्षेत्र 'गौरीमहेश्वर-क्षेत्र' को दिखलाया । वहाँ भगवान् शङ्कर 'अक्ष-क्रीडा' करते हैं । ऋतु-

१. इत्यस्यानन्तरं 'दर्शयामास पन्नगः । कालिकेशं हरं तत्र महापुरुषलक्षणम्'—इत्यधिकः 'ख' ।

तत्राक्षैः क्रीडमानौ च पार्वतीपरमेश्वरौ । ददृशुः सिद्धगन्धर्वा देवदानवमानवाः ॥४८७॥
स राजा पूजयेद्देवं पार्वत्या सह शङ्करम् । देवगन्धर्वमनुजैः[1] सेवितं मुनिसत्तमाः ॥४८८॥
स्वमेव भवनं शेषो राज्ञा सह ययौ मुनिः । दर्शयित्वा च क्षेत्राणि शङ्करस्य तपोधनाः ॥४८९॥
सुपुण्यानि च तीर्थानि तथा सर्वा महागुहाः । ऋतुपर्णाय भूपाय दर्शयित्वा तपोधनाः ४९०॥
सम्पूज्य तत्र देवेशमक्षक्रीडाविशारदम् । कुलद्वयं समुत्तार्य भवान्या सह शङ्करम् ॥४९१॥
शिवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः । आशीभिर्नन्दयामास राजानं रविवंशजम् ॥४९२॥
गृहं गत्वा स नागेशः सहामात्यपुरोहितैः । सहस्रं रत्नभाराणां दत्त्वा तस्मै तपोधनाः ॥४९३॥
शतमाज्ञापयामास वहनार्थं स रक्षसाम् । ददौ मनोजवं चाश्वं पार्थिवाय महात्मने ॥
दत्त्वोवाच तदा नागो राजानं शिक्षयत् पुनः ॥ ४९४ ॥

शेष उवाच—

गोपनीया प्रयत्नेन गुहा ह्येषा नरेश्वर । न वाच्या भुवनेशस्य गुहा प्रीतिकरा शुभा ॥४९५॥
स्थलमेतन्महाराज कस्यचिन्न प्रकाशयेः । गोपनीयं प्रयत्नेन स्वगुरोर्वचनं यथा ॥४९६॥
अप्रकाश्यं स्थलं ह्येतत् श्रेयस्ते सम्भविष्यति । न वक्तव्यं महाभाग त्वया मे सङ्गमादिकम् ॥
कीर्तिस्ते भूतले राजन् सम्भूयाल्लोकपावनी । भूतले तव सन्तानं प्रवर्धतु धनं तव ॥४९८॥
व्रजस्वान्तःपुरं पश्य पुत्रान् पश्य शुभव्रतान् । पालयस्व धरां सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥४९९॥
वचनं मे पुरस्कृत्य समर्चय महेश्वरम् । पुत्रदारान्वितो राजन् स्वयमेव न संशयः ॥५००॥
न त्वया भुवनेशस्य कथा वाच्या नरेश्वर । वल्कलाख्यो महादेवं प्रकाशयति भूतले ॥५०१॥
नागमिष्यन्ति मनुजास्तावत् पातालमण्डले । सत्क्रियां देवदेवस्य वल्कलाख्यः करिष्यति ॥

पर्ण ने क्रीडा करते हुए भगवान् शङ्कर की पूजा की । मुनिवरों ! अक्षक्रीडारत शिव तथा शक्ति का पूजन करने से मानव मातृ-पितृ दोनों कुलों का उद्धार कर शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है । इस प्रकार नागराज ने ऋतुपर्ण को 'पाताल' की यात्रा सम्पन्न कराई । तब शेषनाग उसे अपने निवास स्थान में ले गए । अपने घर जाकर 'शेषनाग' ने अपने मन्त्रियों, पुरोहितों समेत 'ऋतुपर्ण' का आशीर्वचनों से अभिनन्दन करते हुए उपहारस्वरूप 'रत्नराशि' अर्पित की । राक्षसों को उन्हें घर तक पहुँचाने का आदेश दिया । इसके अतिरिक्त इच्छानुसार वेगशाली एक घोड़ा देकर शेषनाग ने ऋतुपर्ण को कुछ बातें बतलाई ॥ ४३३-४९४ ॥

शेषनाग बोले—राजन् ! भुवनेश्वर को इस प्रीतिकरी गुहा के बारे में किसी से कुछ न कहना । गुरुमन्त्र के समान इस स्थल की गोपनीयता का ध्यान रखना । इसी बात से तुम्हारा भला होगा । मेरे साथ तुम्हारा सम्पर्क होना तथा वार्तालाप आदि भी सब गोपनीय जानना । तुम्हारी लोकपावनी कीर्ति इस संसार में प्रसारित होती रहेगी । साथ ही तुम्हारा वंश एवं सम्पत्ति बराबर बढ़ते रहेंगे । अब तुम अपने निवास-स्थान को जाओ और अपने पुत्रादि की देखभाल करते हुए राज्य व्यवस्था का संचालन करो । मेरे वचनों का पालन करते हुए सपरिवार भगवान् शङ्कर की अर्चना करो । किन्तु राजन् ! तुम इस बात का ध्यान रखना कि भुवनेश्वर की गोपनीयता सर्वदा बनी रहें । कभी 'वल्कल' नामक व्यक्ति भगवान् को इस

---

१. 'देवगन्धर्वदैतेयैः'–'ख' ।

तदाप्रभृति मर्त्यानां गुहा गम्या भविष्यति । यावन्नागा गुहाद्वारान्[1] रोधयन्ति न भूपते ।५०३।
ततः परं ततः पूर्वमगम्या संभविष्यति । तस्मान्न वाच्या राजर्षे त्वया पातालकन्दरा ।५०४।
स्वस्ति तेऽस्तु व्रज पुरीं पुरन्दरपुरोपमाम् ।। ५०५ ।।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स रत्नानि प्रगृह्याश्वं तथैव च । समर्च्य शेषनागेशं प्रणम्य च पुनः पुनः ।।५०६।।
ऋतुपर्णः समारुह्य[2] कामगं मुनिसत्तमाः । प्रत्याययौ स मार्गेण तेनैव पृथिवीतलम् ।।५०७।।
भूतलं स समागत्य सप्तमेऽहनि वै द्विजाः । क्षेत्रपालान्तिकं राजा पुनरेव जगाम ह ।।५०८।।
क्षेत्रपालं नमस्कृत्य पञ्चवक्त्रस्य पार्षदम् । अनुज्ञातस्ततस्तेन शेषनागेन वै तथा ।।५०९।।
कामगं चाश्वमारुह्य पश्यन् दारुवने जनान् । स दारुपर्वतं हित्वा ददर्श सरयूतटे ।।५१०।।
चोपविष्टान् महामात्यान् महासैन्यबलावृतान् । राजानं पुनरायान्तं मृत्वा पुनरिवागतम्[3] ।।
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे दृष्ट्वा प्राणमिवागतम् । स तान्सम्भाव्य राजर्षिः समालिङ्ग्य तथैव हि ।
पृष्टवानामयं तेभ्यः समाश्वास्य पुनः पुनः । वराहाखेटकव्याजं तेषु सर्वं प्रकाशयत् ।।५१३।।
न तेषां कथयामास कथां शेषोदितां नृपः । स सभ्यां कथयन् वार्तां ससैन्यः ससुहृद्गणः।५१४।
प्रत्याययौ महाभागाः कोशलं कोशलाधिपः । स प्राप्य कोशलं राजा शशास सकलां महीम् ।।
पुरग्रामाकरैर्युक्तां शैलसागरसंयुताम् । राक्षसा रत्नभाराणि समर्प्य मुनिसत्तमाः ।।५१६।।
ते राज्ञे ऋतुपर्णाय सत्यशीलाय सम्मताः । राज्ञा विसर्जिताः सर्वे पातालं पुनरेव हि ।।५१७।।
नागकन्याभिराकीर्णं ययुस्ते सिद्धसेवितम् । ततस्तु रत्नभाराणि नीत्वा चान्तःपुरं ययौ ।५१८।

भूतल पर प्रकाशित करेगा । तब तक इस पाताल में मानव की गति नहीं होगी । 'वल्कल' द्वारा सेवा किए जाने पर 'महादेव' की इस गुहा में मानव का प्रवेश आरम्भ हो जायगा । बस तुम किसी प्रकार की चर्चा न करते हुए यहाँ से प्रस्थान करो । तुम्हारा भला होगा ।। ४९५–५०५ ।।

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों ! 'ऋतुपर्ण' ने 'तथाऽस्तु' कहकर 'शेष' को प्रणाम किया । उपहार में मिली 'रत्नराशि' को ग्रहण कर उस घोड़े पर सवार होकर सातवें दिन उसी मार्ग से वह इस भूतल पर पहुँच गया । पहुँचने पर 'शिव' के प्रमुख पार्षद 'क्षेत्रपाल' को पूर्वोक्त स्थल पर देख, उससे आज्ञा प्राप्त कर, घोड़े पर सवार हो मार्गस्थ 'देवदारुवन'-वासी जनों को देखते हूए 'सरयू' के तट पर पहुँच कर अपने मन्त्रियों एवं पुरोहितवर्ग-सहित सेना को देखा । राजा को आते देख उन सबमें मानों पुनः प्राणसंचार हो गया हो । सब ने आनन्दित हो राजा का अभ्युत्थान-पूर्वक सत्कार किया । प्रत्युत्तर-स्वरूप ऋतुपर्ण ने सबकी कुशल-वार्ता पूछी । 'सूअर' के शिकार के बहाने राजा ने 'पाताल' की बातों को 'शेष' के सामने की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार छिपा दिया । इस तरह अपने सभासदों को सन्तुष्ट करते हुए राजा ऋतुपर्ण अपने मित्रवर्ग एवं सेना के साथ 'कोशल' पहुँच गया । वहाँ पहुँचकर पूर्ववत् अपने राजकाज में लग गया । मुनिवरों ! शेष द्वारा नियुक्त 'राक्षसवर्ग' ने राजा को सारी 'रत्नराशि' लाकर अर्पित कर दी । राजा से अनुज्ञा प्राप्त कर वे राक्षस पाताल में वापस चले गए । तब राजा ने वह

---

१. 'गुहाद्वारम्'—'ख' । २. 'ऋतुपर्णोऽश्वमारुह्य'—'ख' ।
३. 'मृतं पुनरप्यागतम्'—'ख' ।

स राजा मुनिशार्दूला महेन्द्रसमविक्रमः । पुत्रेभ्यः प्रददौ राजा रत्नानि मुनिसत्तमाः ॥५१९॥
महार्हाणि विचित्राणि वैदूर्यसदृशानि च । पुत्राः पप्रच्छू राजानं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥५२०॥
रत्नप्राप्तिं शुभां चापि पितरं शुभलक्षणम् ॥ ५२१ ॥

राजपुत्र उवाच—

कस्मादिमानि रत्नानि प्रलब्धानि त्वया प्रभो[1] । विचित्राणि सुयोग्यानि स्यमन्तकसमानि च ।
विद्यन्ते कुत्र रत्नानामाकरं देवकल्पितम् । कथ्यतां तदशेषेण तात सत्यं न संशयः ॥५२३॥

राजोवाच—

सरयूरामयोर्मध्ये पातालभुवनेश्वरः । शेषनागेन दत्तानि रत्नान्यश्वश्च कामगः ॥५२४॥
मह्यं प्रदर्श्य पातालं गुहाः सर्वास्तथा शुभाः । नास्त्यत्र भूतले पुत्रा रत्नानामाकरं शुभम् ॥

व्यास उवाच—

शेषनागोदितं राजा विस्मृत्य मुनिसत्तमाः । पातालभुवनेशेति कथयामास विस्तरात् ॥५२६॥
अहो ऐश्वर्यमत्तानां विस्मृतिर्महतामपि । जायते हि ब्रुवन् शैवा राजानं कोशलाधिपम्[2]॥५२७॥
भुवनेशकथां रम्यां प्रकुर्वन्तं तपोधनाः । विजह्रुरासनस्थं तं सत्यधर्मपरायणम् ॥५२८॥
हृतस्तेनैव देहेन स राजा कोशलापतिः । सत्यलोकं ययौ हृष्टः शिवपार्षदसेवितम् ॥५२९॥

रत्नराशि 'अन्तःपुर' ले जाकर अपने पुत्रों में वितरित कर दी । राजपुत्रों न 'स्यमन्तकमणि'[3] के समान उम रत्नराशि के प्राप्त होने के सम्बन्ध में जिज्ञासा की ॥ ५०६–५२१ ॥

एक राजपुत्र ने कहा—पितः ! ऐसे रत्न कहाँ उपलब्ध हो सकते हैं ? क्या कोई ऐसी 'खान' है, जहाँ यह उपलब्ध हो सकें ? ॥ ५२२–५२३ ॥

राजा ने उत्तर दिया—'सरयू' और 'रामगङ्गा' के मध्य 'पातालभुवनेश्वर' हैं । यह 'यथेच्छगामी' अश्व तथा 'रत्नराशि 'शेषनाग' ने दी है । उन्होंने समग्र 'पाताल' और 'गुहायें' मुझे दिखलाईं । पृथ्वीतल में ऐसे रत्नों की खान कहाँ ? ॥ ५२४–५२५ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! 'शेषनाग' के कथन को भूल कर ऋतुपर्ण ने 'पातालभुवनेश्वर' का सारा वृत्तान्त अपने पुत्र को कह सुनाया । देखो, ऐश्वर्य में मदमत्त होकर लोग अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं । राजा के वृत्तान्त सुनाते-सुनाते 'शिवगण' वहाँ आ पहुँचे और आसन पर आसीन उसका अपहरण कर सशरीर सत्यलोक में पहुँचा दिया । ऋषिवरों ! विमल कीर्तिशाली ऋतुपर्ण का चरित्र सुनने वाले या पढ़ने वाले व्यक्ति इस लोक में कीर्ति पाकर

---

१. 'विभो'—'ख' । २. 'कोशलापतिम्'—'ख' ।

३. पुराणोक्त एक प्रसिद्ध मणि, जो 'सत्राजित्' यादव ने सूर्य से प्राप्त की थी । इसकी चोरी का कलङ्क श्रीकृष्ण को लगा था । भागवत के अनुसार 'सत्राजित्' का भाई 'प्रसेनजित्' इस मणि को धारण कर शिकार करने गया । उसे एक सिंह ने मार कर मणि छीन ली । रास्ते में 'जाम्बवान्' ने उस मणि को ले लिया । वहाँ से श्रीकृष्ण ने उसे पुनः प्राप्त कर लिया और सत्राजित् को पुनः वह मणि मिल गई—"सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ । प्राप्तिं चाख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत्" (भागवत १०, ५६, ३८) ।

कथितममलकीर्तेः कीर्तनीयं चरित्रं, सकलभुवनवन्द्यं वन्दनीयस्य शौरेः।
व्रजति शिवसमीपं पाठकः संपठित्वा भवति भुवनमध्ये निर्मला तस्य कीर्तिः ॥५३०॥
भुवनेशकथां रम्यां शेषनागस्य कीर्तनम्। गुहानां चापि माहात्म्यं श्रुत्वा मुच्येत पातकैः॥
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो यः शृणोति तपोधनाः ॥५३२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भुवनेश्वरमाहात्म्ये त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

१०४

ऋषय ऊचुः—

तत्र तीर्थान्यनेकानि श्रोतुमिच्छामः सुव्रत। तथा क्षेत्रप्रमाणं च पर्वतस्य च वर्णनम् ॥१॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूलास्तीर्थानि कथितानि वै। भृगुणा मुनिमुख्येन भार्गवाय महात्मने ॥२॥

भार्गव उवाच—

स्थानान्यन्यानि वै तात त्यक्त्वा त्वमिह संस्थितः।
कमाराध्यात्र तपसि कानि तीर्थानि सन्ति हि ॥ ३ ॥
कोऽत्र क्षेत्रविशेषोऽस्ति कमाराध्य स्थितो ह्यसि। कियत्प्रमाणं क्षेत्रस्य विद्यते तद्वदस्व माम् ॥

'शिवपुर' प्राप्त करते हैं। 'भुवनेश्वर' की रमणीय कथा, 'शेषनाग' का संकीर्तन तथा 'पातालगुहा' का माहात्म्य श्रवण करने से पापों से मुक्ति मिलती है। राजा 'ऋतुपर्ण' का सकीर्तन कलि-कल्मषों का विनाशक है। इसका श्रवण करने से सर्वविध पापों से छुटकारा मिलता है ॥ ५२६-५३२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भुवनेश्वर-माहात्म्य' नामक
एक सौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—हे सुव्रत ! हम लोग वहाँ के सब तीर्थों तथा क्षेत्रों एवं पर्वतों के विस्तार का वर्णन सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! प्रमुख ऋषि भृगु ने भार्गव को जो बतलाया था, उन तीर्थों के विषय में मैं वही कहता हूँ। आप लोग सुनें ॥ २ ॥

भार्गव बोले—तात ! अन्य स्थानों को छोड़ आप यहाँ किसकी आराधना करते हैं ? यहाँ पर कौन से तीर्थ हैं ? यह कौन सा क्षेत्र है ? इसका कितना विस्तार है ? ॥ ३-४ ॥

भृगुरुवाच—

शृणुष्व वत्स भद्रं ते मयैतत् समुदाहृतम् । गोपनीयं प्रयत्नेन न वाच्यं कस्यचित् त्वया ॥५॥
पातालभुवनेशस्य क्षेत्रमेतत् प्रतिष्ठितम् । सर्वेभ्यः क्षेत्रमुख्येभ्यः क्षेत्रमेतद् विशिष्यते ॥६॥
तस्मादन्यानि क्षेत्राणि त्यक्त्वाऽहमिह संस्थितः । यस्ते पार्श्वे महादेवो हाटकेशेति विश्रुतः[1] ॥
तस्योदितेन मार्गेण पाताले प्रव्रजाम्यहम् । तत्राराध्य महाभाग पातालभुवनेश्वरम् ॥८॥
पुनः स्वमाश्रमं प्राप्य तपामि नहि संशयः । तस्यैतद् विद्यते क्षेत्रं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् ॥९॥
अहं चान्ये च ऋषयस्तमाराध्य महेश्वरम् । प्रतपामो[2] न सन्देहः पुण्येऽस्मिन् दारुपर्वते ॥१०॥
हाटकेशं समारभ्य यावद् गणवतीसरित् । तावत् क्षेत्रं महापुण्यं विद्यते नात्र संशयः ॥११॥
सन्ति तीर्थान्यनेकानि तस्मिन् क्षेत्रे तपोधनाः । तानि ते संकथिष्यामि प्राधान्येन शृणुष्व वै ॥
हाटकेशं हरं पूज्य पिण्डं दत्त्वा जले मम । गवां कोटिप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥१३॥
तस्मादधो महापुण्यां गुहां गत्वा तपोधन । कलाधरं हरं पूज्य यज्ञकोटिफलं लभेत् ॥१४॥
ततो मे गृहमागत्य मया सह महेश्वरः । पूजनीयो महाभाग यज्ञकोटिफलप्रदः ॥१५॥
ततो नागेश्वरं देवं गत्वा संपूज्य मानवः । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥१६॥
तस्मादुत्तरभागे वै व्रजेत् पुण्यां सरस्वतीम् । गत्वा स्नात्वा च विधिवत्पिण्डं दत्त्वा च मानवः।
कुलायुतं समुत्तार्य शिवलोके महीयते । तस्माददूरे श्वासाख्यं पर्वतं मुनिसत्तमाः ॥१८॥
गत्वा सम्पूजयेद् देवीं दिव्यश्वासप्रदायिनीम् । क्षेत्रपालं ततो गत्वा सम्पूज्य विधिपूर्वकम् ।१९।
प्राप्नोति मानवः सम्यक् ततो गोदानजं फलम्[3] ।
गत्वा तत्परतः स्नात्वा गङ्गां भागीरथीं शुभाम् ॥ २० ॥

भृगु बोले—वत्स ! सुनो । यह बड़ा गोपनीय विषय है । 'पातालभुवनेश्वर' का यह क्षेत्र सब क्षेत्रों में प्रमुख है। इसी कारण अन्य क्षेत्रों को छोड़ मैं यहीं पर रहता हूँ । यहीं 'हाटकेश्वर' महादेव भी हैं । उनके कथनानुसार मार्ग से मैं पाताल से जाकर 'भुवनेश्वर' की पूजा कर फिर अपने आश्रम में आकर तपश्चर्या करता हूँ । उन्हीं 'हाटकेश' का यह उत्तम क्षेत्र है। अन्य ऋषिगण भी उन्हीं शङ्कर की आराधना कर इस पवित्र 'दारुवन' में तपस्या करते हैं। इस क्षेत्र में अनेक तीर्थ हैं । उनमें से कुछ प्रधान क्षेत्रों अथवा तीर्थों के सम्बन्ध में सुनो। 'हाटकेश्वर' से आरम्भ कर 'गणवती' नदी पर्यन्त यह क्षेत्र है । यहाँ 'हाटकेश' का पूजन कर 'भार्गव'-जल में पिण्डदान करने से 'कोटि गोदान' का फल प्राप्त होता है । हे तपोधन ! इसके नीचे की ओर एक पवित्र गुहा है । उसके भीतर 'कलाधर' शिव विराजमान हैं । उनका पूजन करने से करोड़ों यज्ञ करने का फल मिलता है । तब मेरे आश्रम में आकर मेरे साथ 'महेश्वर' का पूजन करने से 'वाजपेय' याग का फल प्राप्त होता है । फिर 'नागेश्वर' का पूजन कर 'कोटियज्ञ' फल प्राप्त करें । मेरे आश्रम से उत्तर की ओर पवित्र 'सरस्वती' में स्नान एवं पिण्डदान करने से पितरों का उद्धार होते हुए 'शिवलोक' मिलता है । उसके निकट में 'श्वास-पर्वत' है । वहाँ 'श्वास-प्रदायिनी' देवी तथा 'क्षेत्रपाल' का पूजन करने पर 'गोदान' का फल मिलता है । तत्पश्चात् 'भागीरथी गङ्गा' में स्नान एवं पिण्डदान करने से सैकड़ों कुलों का

---

१. 'हाटकेशोऽत गीयते'—'ख'। २. 'प्रतपन्ति'—'ख'।
३. एतदनन्तरं 'ख' पुस्तके—''क्षेत्रपालावधोभागे कन्दरायां शशिप्रभाम् । भागीरथ्या जलकर्णः

पिण्डं दत्त्वा च मतिमान् कुलानां तारयेच्छतम् । ततो वृद्धमहादेवं भुवनेशाख्यं तपोधनाः ।२१।
देवगन्धर्वदितिजैः पूजितं पूजयेत् ततः । संपूज्य भुवनेशं वै वृद्धसंज्ञं तपोधनाः ।।२२।।
कुलकोटिद्वयं तत्र समुत्तार्यं शिवं व्रजेत् । तस्माद् वामे महादेवीं कोटरां पूज्य मानवः ।।२३।।
मनोऽभिलषितां सिद्धिं प्राप्नोति नहि संशयः । तस्मादधो महादेवीं शीतलां पूज्य मानवः ।२४।
विस्फोटकभयं घोरं नाप्नोति सत्यमेव हि । तस्मादुत्तरभागे वै जटागङ्गां सुशोभनाम् ।।२५।।
कैलासकोणसम्भूतां गत्वा स्नात्वा च मानवः । तर्पयित्वा पितृगणान् श्राद्धं निर्वर्त्य वै तथा ।।
कोटिसूर्यप्रभो भूत्वा[1] प्राप्नोति शिवमन्दिरम् । तस्मादुत्तरभागे वै गत्वा सिद्धाश्रमं शुभम् ।।
गणेश्वरं च सम्पूज्य गुहायां कविनायकम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं प्रयाति सः ।।२८।।
ततो गणवतीं गत्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् । तर्पयित्वा पितृगणान् श्राद्धं पश्चाद् विधाय वै ।
समुत्तार्य महाभाग कुलानां स शतत्रयम् । शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।।३०।।
ततो गणवती पुण्या भागीरथ्याश्च संगमे । संगता मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशिनी ।।३१।।
तयोर्मध्ये शिवसरे निमज्य कविनायकम् । निवर्त्य पितृकृत्यं च प्राप्नुयात् परमं पदम् ।।३२।।
कथितानि मया तात प्राधान्येन न संशयः । क्षेत्राणि चैव तीर्थानि तथा लिङ्गानि साम्प्रतम् ।।

व्यास उवाच—

एतानि तीर्थमुख्यानि कथित्वा मुनिसत्तमाः । तूष्णीमास ततो विप्रा वेदवेदाङ्गपारगः ।।३४।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे भुवनेश्वरमाहात्म्ये चतुरुत्तरशततमोऽध्यायः ।।

उद्धार होता है। तपोधनों ! तब 'वृद्धभुवनेश्वर' का पूजन कर कोटि कुलों का उद्धार करें। फिर 'शिव' की ओर जायें। तब वहाँ से बाईं ओर 'कोटरा' देवी[2] की पूजा कर मनोभिलषित सिद्धि प्राप्त की जाय। उसके नीचे की ओर 'शीतला' देवी का पूजन कर विस्फोटकभय नहीं रहता। उसके उत्तर की ओर 'कैलास-कोण' से उत्पन्न 'जटागङ्गा' है। उसमें यथाविधि स्नान एवं पितृकृत्य करने पर मानव कोटि सूर्यों के समान कान्तिमान् होकर शिवलोक जाता है। उसके उत्तर में 'सिद्धाश्रम' है। वहाँ गुहा में 'गणेश्वर' का पूजन कर निष्कलङ्क हो 'शिवलोक' प्राप्त करे। वहाँ स्नानादि करने से तीन सौ कुलों का उद्धार होता है। तत्पश्चात् 'गणवती' और 'भागीरथी' का सङ्गम है। उनके मध्यस्थ 'शिवसर' है। उसमें स्नान करने से कवित्वशक्ति तथा पितृकृत्य करने से परमपद प्राप्त होता है। यही भुवनेश्वर-क्षेत्र के प्रधानतीर्थ एवं शिवलिङ्ग हैं।। ५-३३ ।।

व्यासजी ने कहा—तपोधनों ! इस प्रकार वर्णन कर वेदवेदाङ्गपारग 'भृगु' ऋषि ने अपनी वाणी को विराम दिया।। ३४ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'भुवनेश्वरमाहात्म्य' के अन्तर्गत एक सौ चारवाँ अध्याय समाप्त ।।

सेवितं बिन्दुकेश्वरम् । समभ्यर्च्य महाभाग लभेद् गोदानजं फलम्' ।—इत्यधिकः पाठः विद्यते ।

१. 'सूर्यकोटिप्रभो भूत्वा'—'ख' ।

२. 'कोठारा' ग्राम ।

१०५

व्यास उवाच—

दारुपर्वतमाहात्म्यं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥१॥
सरयू-रामसरितोर्मध्ये दारुगिरिः स्मृतः । उच्छ्रितः शिखराकारो नानाधातुविराजितः ॥२॥
षडशीतिर्गुहा यत्र पुण्या ब्रह्मर्षिसेविताः । तमारुह्य नरा यान्ति शिवलोकं न संशयः ॥३॥
तत्र देवगणाः सर्वे निवसन्ति न संशयः । ततस्तु रामगङ्गाया बाणतीर्थमिति स्मृतम् ॥४॥
यत्र बाणस्तपस्तप्त्वा बभूव शिववल्लभः । तस्मादधः प्राणवत्याः संगमे मुनिसत्तमाः ॥५॥
संस्नात्वा मानवो याति शिवलोकं न संशयः । ततश्चाधःप्रदेशे तु मधुमत्याश्च सङ्गमे ॥६॥
निमज्य विधिवत्तत्र पूज्य नागेश्वरीं शिवाम् । प्राप्नोति मानवः सम्यक् माघस्नानफलं समम् ।
तस्मादधः शेषकुण्डं रामगङ्गासुमध्यगम् । संवत्सरकृतं पापं तत्र स्नात्वा प्रणश्यति ॥८॥
ततो जयन्ततीर्थं वै दृष्टमात्रमघापहम् । स्नात्वा चैव महातीर्थे पूर्ववत् पितृपूजनम् ॥९॥
विधाय जाप्यं देवेशं जयन्तं परमेश्वरम् । अर्चयित्वा महाभागाः कुलानां तारयेच्छतम् ॥१०॥
प्राप्नुते च परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति । ततस्तस्मादधोभागे पुण्या दुन्दुवती नदी ॥११॥
पुण्या पावनपार्श्वे वै वामे सा मुनिसत्तमाः । सम्भूता रामगङ्गायाः सङ्गमे संगता द्विजाः ।१२।
तस्यां मयाऽपि संस्नातं मानसं गन्तुमिच्छता । तस्यां स्नात्वा पितॄणां च कृत्वा तर्पणमादरात् ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः । वामे तस्या महादेवो दक्षिणे कर्णिका शुभा ।।१४॥
कर्णिका-शंकरौ तत्र पूज्येते शिवपार्षदैः । सङ्गमैर्बहुभिः पूर्णा पुण्या दुन्दुवती नदी ॥१५॥
सङ्गमे रामगङ्गायाः संमिलन्मुनिसत्तमाः । तत्र स्नात्वा विधानेन जप्त्वा पञ्चाक्षरीं शुभाम् ॥
सन्तर्प्य च पितृगणान् लभेद् गोदानजं फलम् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे रामगङ्गा-जामदग्न्यमाहात्म्ये पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! अब पापविनाशक एवं सर्वोपद्रवनाशक 'दारुपर्वत' का माहात्म्य सुनें । 'सरयू' और 'रामगङ्गा' के मध्य अनेक धातुओं की खानों से युक्त उन्नत शिखराकार 'दारुपर्वत' (=धारीधुर) है । वहाँ ब्रह्मर्षियों से सेवित 'छियासी' गुहायें हैं । उस पर आरूढ़ होने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है । वहाँ सब देवों का वास है । तब 'रामगङ्गा' (पूर्वी) में 'बाणतीर्थ' है । वहाँ 'बाणासुर' ने तप किया तथा 'शिव' का स्नेहभाजन हुआ । उसके नीचे 'प्राणवती' के संगम में स्नान करने से 'शिवलोक' मिलता है । उसके नीचे 'मधुमती' का सङ्गम है । वहाँ स्नान कर 'नागेश्वरी' का पूजन करने से माघस्नान का फल मिलता है । उसके नीचे 'शेषकुण्ड' है । उसमें स्नान कर वर्ष भर के पाप विनष्ट होते हैं । तब 'जयन्त' तीर्थ है । उसके दर्शन-मात्र से पाप विलुप्त हो जाते हैं । वहाँ स्नान, दान, तर्पण, श्राद्धादि करने से सैंकड़ों कुलों का उद्धार होता है । उसके नीचे 'दुन्दुवती' नदी है । वह 'पावन' पर्वत के बाईं

१०६

ऋषय ऊचुः—

कथिता रामगङ्गायाः समुत्पत्तिस्त्वया गुरो । जामदग्न्यस्य रामस्य व्याख्यानं कथितं तथा ।१।
अधुना श्रोतुमिच्छामः क्षेत्रमेकं प्रतिष्ठितम् । प्राप्यते यत्र सन्मुक्तिर्योगिनामपि दुर्लभा ।।२।।
यत्र दुःखानि सर्वाणि जन्मान्तरकृतानि च । प्रणश्यन्ति महाभाग तत्क्षेत्रं वद विस्तरात् ।।३।।

व्यास उवाच—

शिव आत्मा शिवो जीवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम् । क्षेत्रं क्षेत्रेश्वरश्चापि शिव एव न संशयः ।
भूमौ सर्वाणि क्षेत्राणि तीर्थान्यपि तपोधनाः । तस्यैव च प्रशंसन्ति मुनयो वेदपारगाः ।।५।।
सैवाग्नौ पूज्यते विप्रा वरुणे सैव पूज्यते । सैव भूमौ शिलायां च पर्वताग्रे स एव हि ।।६।।
सैव श्मशाने नृकिरीटमालां धृत्वा चिताभस्मविलेपनाङ्गः ।
हरेति यः प्राणहरः प्रपूज्यते गन्धर्वयक्षोरगसिद्धसङ्घैः ।। ७ ।।

ओर से निकल कर 'रामगङ्गा' में यहाँ पर मिलती है। 'मैंने मानसरोवर की यात्रा में यहाँ भी स्नान किया था'। वहाँ स्नानादि करने का फल अश्वमेध यज्ञ करने के समान है। उसके बाई ओर दाई ओर क्रमशः 'महादेव' और 'कर्णिका' देवी हैं। वे शिवपार्षदों से नित्य पूजित हैं। मुनिश्रेष्ठों ! 'ढुण्ढुवती' में इसके पूर्व अनेक 'प्रवाह' मिलते हैं। उस 'सङ्गम' में स्नानादि कर 'पञ्चाक्षर' मन्त्र का जप करने पर गोदान का फल प्राप्त होता है ।। १ – १६ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'रामगङ्गा-जामदग्न्य' [1]माहात्म्य
सम्बन्धी एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

ऋषियों ने फिर पूछा—महर्षे ! आप ने 'रामगङ्गा' और 'जामदग्न्य' (परशुराम) का माहात्म्य तो वतला दिया है। अब हम योगियों को भी दुर्लभ मुक्ति प्राप्त होने वाले क्षेत्र के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं। साथ ही सब दुःखों को दूर करने वाले क्षेत्र के सम्बन्ध में भी आप हमें वतलायें ।। १ – ३ ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! 'शिव' ही आत्मा है, 'शिव' ही जीव हैं। वही 'बन्धु', 'क्षेत्र' एवं 'क्षेत्रेश्वर' हैं। हे वेदज्ञों ! इस भूमण्डल में विद्यमान सब तीर्थ, क्षेत्र आदि उसी 'शिव' की प्रशंसा करते हैं। वही 'अग्नि', 'वरुण', 'भूमि', 'शिला', 'पर्वत' आदि में विद्यमान हैं। वहीं श्मशानस्थ 'चिताभूमि' में 'मुण्डमाला' धारण कर 'प्राणहारी' के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्हीं की पूजा 'शिवालयों' में मानव समुदाय द्वारा अपनी इष्ट सिद्धि के लिए की जाती

---

१. जमदग्नि ऋषि के पुत्र 'जामदग्न्य' का सम्बन्ध 'भृगु' वंश से है। उपर्युक्त अध्याय में 'भार्गव' के द्वारा कथा वर्णित है। इन्हें ही 'भार्गव' नाम से कहा गया है। ये सावर्णि मनु के युग के सप्तर्षियों में से एक ऋषि थे। इन्होंने क्रूर सिंहिकापुत्र 'सिंहिकेय' गण के १४ महा असुरों तथा उनके १०००० अनुगामियों (असुरों) को मारा था ('ब्रह्माण्ड—३-६-२२, ४-१-१०) ।

तमेव देवं मनुजाः शिवेति शिवालये देवगणैः समर्चितम्[1]।
सर्वे समर्चन्ति सहैव वै द्विजा महर्षिविद्याधरसिद्धसङ्घैः ॥ ८ ॥

शिवान्नान्यं प्रपश्यामि भूतले मुनिसत्तमाः। सैव कर्ता विकर्ता च विद्यते नात्र संशयः ॥९॥
पृथिवी वायुराकाश आपोऽग्निश्चन्द्रमा रविः। सैवात्मा परमात्मा च विद्यते सत्यमेव हि ।१०।
सैव सर्वेषु क्षेत्रेषु स्थानेषु च जलेषु च। सैव सर्वेषु तीर्थेषु विद्यते मुनिसत्तमाः ॥११॥
स्थानभेदेन शृण्वन्तु सर्वे सम्यक् समाहिताः। शङ्करस्य विचित्रार्थां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां सैव हेतुः प्रगीयते। तथापि स्थानभेदेन फलभेदप्रदः स्मृतः ॥१३॥
स वामे रामगङ्गायाः पावनाख्यो गिरिः स्मृतः। तस्या पार्श्वे महादेवो बालीशेति प्रगीयते ॥
महापार्षदमुख्यैश्च सेवितो मुनिसत्तमाः। बालीशं क्षेत्रमाहुर्वै सारूप्यादिप्रदं द्विजाः ॥१५॥
मुनयो वेदतत्त्वज्ञाः सत्यधर्मपरायणाः। तावत् सर्वाणि क्षेत्राणि प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥१६॥
स यावन्नार्चितो देवः क्षेत्रे बालीश्वराह्वये। ये सम्यग् रामगङ्गाया वामे बालीश्वरं हरम् ।१७।
समर्चन्ति महाभागास्ते धन्या नात्र संशयः। बालीशसदृशं क्षेत्रं नान्यं पश्यामि भूतले ॥१८॥
धर्ममर्थं च कामं च तथा मोक्षं सुदुर्लभम्। ददाति यत्र बालीशो ह्यर्चितो मुनिसत्तमाः ॥१९॥
स क्रान्ति-रामयोर्मध्ये बालीशो नाम शङ्करः। पूज्यते देवगन्धर्वैर्महेन्द्रप्रमुखैरपि ॥२०॥
यत्र गत्वा च दुःखानि जन्मान्तरकृतानि च। विलीयन्ते च पापानि हिमानीव दिवोदये ॥२१॥
दृष्ट्वा बालीश्वरं देवं क्षेत्रे बालीश्वराह्वये। राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ।२२।
काश्यां विश्वेश्वरं देवं सम्पूज्य यत् फलं भवेत्। बालीश्वरं समभ्यर्च्य तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥
सर्वयज्ञफलं सर्वं दानेषु च हि यत् फलम्[2]। तत्र च प्राप्नुयाद्विप्रा नात्र कार्या विचारणा ॥

है। ऋषिवरों! मुझे 'शिव' के अतिरिक्त इस भूतल पर और कोई देव नहीं दिखाई देता है। वही 'कर्ता' एवं 'विकर्ता' हैं। 'पृथ्वी' आदि पाँचों तत्त्व, सूर्य, चन्द्र, आत्मा, परमात्मा आदि सब 'शिव' के ही रूप हैं। अतः उनकी स्थिति सभी क्षेत्रों, तीर्थों और स्थानों में हैं। अब आप स्थानभेद से उनके विशेष माहात्म्य को सुनें। वही सृष्टि, स्थिति तथा संहार के हेतु हैं। तथापि स्थानभेद से फलभेद दिखाई पड़ता है। 'पावन' पर्वत के पार्श्ववर्ती 'रामगङ्गा' के वाम भाग में 'बालीश' नामक महादेव हैं। अनेक पार्षदों से सेवित यह बालीश-क्षेत्र 'शिव-सारूप्य' प्राप्त कराने वाला है। 'बालीश्वर' की अर्चना के पहले तक ही मुनिगण अन्य क्षेत्रों की प्रशंसा करते हैं। इनका पूजन करने वाले वस्तुतः धन्य हैं। 'बालीश्वर' का पूजन करने से चारों पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं। 'रामगङ्गा' के मध्य 'सङ्क्रान्ति' पर्व पर महेन्द्रादि देव 'बालीश्वर' का पूजन करते हैं। इस क्षेत्र में जाने से सूर्योदय होने पर हिम के पिघलने की तरह जन्मान्तर में किये पाप भी विलीन हो जाते हैं। उस क्षेत्र में जाकर 'बालीश' की पूजा करने से 'राजसूय' यज्ञ का फल मिलता है। 'बालीश' की पूजा करने से भक्तों को काशीस्थ 'विश्वनाथ' का पूजन करने के समान ही फल प्राप्त होता है। साथ ही 'यज्ञ' एवं दानादि का फल भी प्राप्त होता है। 'बालीश' क्षेत्र में जाने के इच्छुक व्यक्ति की उस ओर तीन पग रखने पर

---

१. 'समन्वितम्'—'ख'।
२. 'सर्वदानफलं सर्वयज्ञानामपि यत्फलम्'—इति 'ख'।

अहं व्रजामि बालीशमित्युक्त्वा यः पदत्रयम् । प्रयात्यभिमुखं शम्भोर्लभेद् गोदानजं फलम् ॥
बालीश्वरं महादेवं यः समर्चति मानवः । क्रान्तिरामसरिन्मध्ये पितृकृत्यं विधाय वै ॥२६॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्य सुनिश्चितम् । कुलकोटिं समुत्तार्य शिवलोके महीयते ॥२७॥
यत्र वै वानरो राजा सम्भ्यर्च्य महेश्वरम् । नागायुतसमप्राणं प्राप शम्भोरनुग्रहात् ॥२८॥

ऋषय ऊचुः—

कथं स वानरो बाली हिमवन्तं तपोधनाः । ययौ तत्र कथं शम्भुमर्चयामास तद्वद ॥२९॥

व्यास उवाच—

स कदाचिन्महाभागा हृत्वा तारां महाबलः । सुग्रीववधमिच्छन् वै सुग्रीवान्वेषणे रतः ॥३०॥
स हि वानरसैन्येन हिमवन्तं गिरिं ययौ । नानावृक्षलताकीर्णं नानाधातुविराजितम् ॥३१॥
रामगङ्गां स संस्नात्वा सन्तर्प्य च पितॄन् तथा । तुष्टाव शंकरं शान्तं बाली सुग्रीवद्वेषकृत् ॥

[1]बाल्युवाच—

वृषध्वजाय देवाय वृषवाहाय ते नमः । विरूपाक्षाय शुद्धाय विश्वनाथाय ते नमः ॥३३॥
कलाधराय देवाय कपर्दवरधारिणे । हराय त्रिपुरघ्नाय महादेवाय शूलिने ॥३४॥
त्रिनेत्रायादिदेवाय नागयज्ञोपवीतिने । नमो वासुकि-कालीय-महाहालाहलाशिने ॥३५॥
रुद्राय रौद्ररूपाय रौद्रप्राणान्तकारिणे । रौद्रष्टुताय पूज्याय महारुद्राय ते नमः ॥३६॥
रुद्राय कालरुद्राय शिवाय शिवदाय च । हराय हरिपूज्याय महादेवाय ते नमः ॥३७॥
स्तौमि वै शंकरं शान्तं महादेवं वृषध्वजम् । त्रिपुरारिं त्रिनेत्रं च भवानीवल्लभं शिवम् ॥३८॥

त्वं सिद्धिदः सिद्धिमतांश्च सिद्धिस्त्वं सिद्धिभुक् सिद्धपतिस्त्वमेव ।
त्वं वृद्धिदो वृद्धिकरस्त्वमेव वृद्धस्त्वमेवासि दिवौकसां च ॥ ३९ ॥

गोदान करने का फल मिल जाता है। 'क्रान्ति' और 'रामगङ्गा' के मध्य पितृकृत्य सम्पादित कर 'बालीश्वर' का पूजन करने से 'अश्वमेध' यज्ञ का फल मिलने के साथ ही असङ्ख्य कुलों का उद्धार होता है। यहाँ पर वानर-राज ने शिव-पूजन कर अयुत 'नागों' के समान बल प्राप्त किया था ॥ ४ – २८ ॥

ऋषियों ने पूछा – विप्रर्षे ! बाली ने हिमालय में आकर शिवपूजा किस हेतु की ?।२९।

व्यासजी ने कहा—महाभागों ! 'बाली' 'तारा' का अपहरण कर 'सुग्रीव' के वध-हेतु उसकी खोज करने के लिए 'हिमालय' की ओर गया। उसने 'रामगङ्गा' में स्नान एवं पितृकार्य सम्पादित कर 'शिव' की स्तुति करनी आरम्भ की ॥ ३० – ३२ ॥

बाली बोला—वृषध्वज, वृषवाहन, विरूपाक्ष, विश्वनाथ आदि नामधारी 'शिव' को मेरा नमस्कार है। चन्द्रशेखर, त्रिपुरहर, शूलधर, जटाजूटधारी शङ्कर को मेरा प्रणाम स्वीकार हो। त्रिनेत्र, आदिदेव, नागयज्ञोपवीतधारी, हलाहलभक्षक, रौद्ररूप, रौद्रष्टुत, महारुद्र, कालभद्र, शिवप्रद, शिव, हरिपूज्य, महादेव, शान्त, शंकर एवं भवानीपति को मेरा नमस्कार है। हे देवदेव ! आप ही देवों में वृद्ध तथा वृद्धिकर भी हैं। सत्यव्रत, सत्यपर, सत्यात्मक,

---

१. 'बालिरुवाच'—'ख'।

सत्यव्रतः सत्यपरस्त्वमेव सत्यात्मकः सत्यपतिस्त्वमेव ।
त्वमेव सत्यस्य विकारहेतुः सत्ये स्थितं त्वां त्रिदशाः स्तुवन्ति ।। ४० ।।
मां पाहि विश्वं सचराचरं च शिवापते त्वां शरणं गतोऽस्मि ।
त्वां द्रष्टुमिच्छामि हिमालयेऽस्मिन् रविप्रभं देवपतिं महेशम् ।। ४१ ।।

व्यास उवाच—

इति स्तुत्वा महादेवं वानरेन्द्रो महामतिः । ददर्शाग्रे ततो बाली क्रीडन्तं दैवतोपमम् ।।४२।।
एहीति ब्रुवमाणं वै शिवं पश्येति मानवः । स बालवचनं श्रुत्वा वानरो मुनिसत्तमाः ।।४३।।
स ययौ तमविज्ञाय शिवं शान्तं शिवापतिम् । स पञ्चहायनो भूत्वा बालो बालार्कसन्निभः ।।
उवाच मुनिशार्दूलाः पुनस्तं मर्कटेश्वरम् ।। ४४ ।।

बाल उवाच—

एहि वानरशार्दूल शिवं तं दर्शयाम्यहम् । रुद्रकन्यासहस्राणां परिवारैर्विराजितम् ।।४५।।
कृपया देवदेवेन प्रेषितोऽस्मि तवान्तिकम् । उत्तिष्ठ पश्य देवेशं सहस्रादित्यसन्निभम् ।।४६।।
समर्चय महादेवं मया सन्दर्शितं प्रभुम् । देव्या सह महाभाग स ते श्रेयोऽभिधास्यति ।।४७।।

व्यास उवाच—

गिरं स बालेन समीरितां शुभाम् निशम्य बाली प्रययौ तदन्तिकम् ।
पश्यन् स देवांस्त्रिदशामहागतान् ययौ सहामात्यगणैः शिवालयम् ।।४८।।
बालोदितेन मार्गेण स पश्यञ्छिवकिङ्करान् । ययौ शिवालयं हृष्टः सहामात्यपुरोहितैः ।।४९।।
ततो ददर्श देवेशं सिद्धकिन्नरसेवितम् । महेन्द्रप्रमुखैर्देवैः पूजितं दिव्यवर्चसम् ।।५०।।
यस्मिन् प्रलग्ना दृश्यन्ते सुपुण्या जलबिन्दवः । मुक्ताफलसमा दिव्या अद्यापि मुनिसत्तमाः ।।

सत्यपति, सत्य-स्थित, सत्यविकार के कारण भी आप ही हैं। देवगण आप की स्तुति करते हैं। आप मेरी एवं चराचर संसार की रक्षा करें। सूर्य की कान्तिवाले देव, देवों के स्वामी एवं महेशरूप को मेरे प्रणाम हैं। मैं आप की शरण में कल्याणकामना से आया हूँ। आप ही सिद्धि तथा सिद्धों के सिद्धिकोष हैं। मैं आप का दर्शन करना चाहता हूँ ।। ३३-४१ ।।

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार शिवजी की स्तुति करने पर 'बाली' ने क्रीड़ा करते हुए एक देवतुल्य बालक को सामने देखा। उसने 'बाली' को उधर आने के लिए कहा तथा शान्त शिव को देखने का निर्देश दिया। सूर्य के समान कान्तिवाले पाँच वर्ष के उस बालक ने पुनः वानरराज से उधर आने के लिए कहा। साथ ही उसे शिवजी का दर्शन कराने की बात कही ।। ४२ – ४४ ।।

बालक बोला—वानरेश ! सहस्रशः रुद्रकन्याओं से सेवित भगवान् शङ्कर ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम उठो। सहस्र सूर्यों की प्रभा के सदृश कान्तिवाले 'देवेश' का दर्शन करो। मैं तुम्हें दर्शन कराता हूँ। भगवतीसहित भगवान् का दर्शन करो। वह तुम्हारा कल्याण करेंगे ।। ४५–४७ ।।

व्यासजी बोले—मुनियों ! उस बालक की वाणी सुन बाली उसके पास पहुँचा। उसके कथनानुसार मार्ग का अनुसरण कर अनेक देवों और शिवकिङ्करों को देखते हुए बाली ने अपने मन्त्री और पुरोहितों सहित 'देवेश' का दर्शन किया। उनमें जलकणों की सी आभा दिखाई

स तं दृष्ट्वा महादेवं रुद्रकन्यानिषेवितम् । सुपुण्ये पावनोद्देशे तेन बालेन दर्शितम् ॥५२॥
प्रणम्य परया भक्त्या देवदेवं महेश्वरम् । स समर्च्य[1] विधानेन गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः ॥५३॥
बालिना पूजितं दृष्ट्वा स बालो मुनिसत्तमाः । भवान्या सह देवेशं शङ्करं लोकशंकरम् ॥५४॥
तमुवाच व्रज गृहं श्रेयस्ते संभविष्यति । नागायुतबलो भूत्वा शत्रून् सर्वान् विजेष्यसि ॥५५॥
इत्युक्त्वा वानरं बालः तस्मिन् लिङ्गे विवेश ह । संस्तुतो देवगन्धर्वैः सिद्धविद्याधरोरगैः ।५६।
तस्मिन् लिङ्गे प्रविष्टं वै दृष्ट्वा बालं तपोधनाः । स मेने शंकरं शान्तं तं बालं समुपागतम् ॥
स तत्र देवदेवस्य सन्निधौ मुनिसत्तमाः । तपस्तेपे सहामात्यैः स्नात्वा रामसरिज्जले ॥५८॥
आराधयन् शिवं शान्तं विंशद्वर्षाणि वै द्विजाः । तस्थौ तत्र महापुण्ये हिमालयतटे शुभे ॥५९॥
तस्माल्लिङ्गाद् विनिष्क्रान्तं स तं बालं दिने दिने । लिङ्गे तस्मिन्विशन्तं च ददर्श मुनिसत्तमाः ॥
कदाचित् समुपागत्य प्रतुष्टः पार्वतीप्रियः । बभाषे वानरं बालो याहि याहि गृहं स्मर ॥६१॥
स तस्य वचनं मूर्ध्ना प्रतिगृह्य तपोधनाः । प्रययौ स्वगृहं प्रीतो नीलाद्यैर्वानरैः सह ॥६२॥
ततस्तु रामगङ्गाया वामे देवं महेश्वरम् । तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा बालीशेति तपोधनाः ॥६३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे बालीश्वरमाहात्म्ये षडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

पड़ती थी । वे जलबिन्दु आज भी मुक्ताफल के सदृश दिखाई देते हैं । बालक द्वारा दर्शित भगवान् को देख बाली ने प्रणाम किया । गन्धादि से भगवान् का उपचार किया । भवानीसहित शङ्कर का पूजन देख उस बालक ने कहा—'वानरराज ! तुम्हारा भला हो । दस हजार हाथियों के समान बल पाकर तुम शत्रुओं को जीतोगे' । ऐसा कह कर वह बालक उस लिङ्ग में प्रविष्ट हो गया । लिङ्ग में समाविष्ट उस बालक को ही सब लोग उसे शङ्कर जान पाये । फिर मन्त्रियों के साथ बाली ने 'रामगङ्गा' में स्नान कर बीस वर्षों तक तप किया । प्रतिदिन उस बालक को लिङ्ग से निकलते और प्रवेश करते देख किसी दिन उस बालक ने 'बाली' के समीप आकर कहा—'अपने घर जाओ और भगवान् का स्मरण करो' । उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर नीलादि वानरों के साथ बाली प्रसन्न ही अपने घर वापस हो गया । तब से 'रामगङ्गा' के वामभाग में देव और गन्धर्व 'बालीश' नाम से उस शङ्कर की स्मृति करने लगे ॥ ४८ – ६३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'बालीश्वर' माहात्म्य नामक
एक सो छठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'स समार्चद्विधानेन'—'ख' ।

१०७

व्यास उवाच—

यथा मानसरे विप्राः स्वर्णहंसेश्वरो हरः। अर्च्यते देवगन्धर्वैः तथा बालीश्वरो हरः ॥१॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। शृण्वन् पठन् स्मरन् वाऽपि सर्वपापप्रणाशनम् ॥२॥
विश्वामित्रकुलोत्पन्नो ब्राह्मणो मगधाह्वये। देशे बभूव धर्मात्मा बिन्दुशर्मेति विश्रुतः ॥३॥
धर्मात्मा सत्यवाग् दान्तः शान्तश्चामितदक्षिणः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मो विग्रहवानिव ॥४॥
भारद्वाजकुलोत्पन्नां कन्यामुद्वाह्य वै द्विजः। सत्यशीलेति विख्यातां द्वितीयां शारदामिव ॥५॥
स सत्यशीलां सम्प्राप्य गृहाश्रमरतो द्विजः[1]। निनाय कालं धर्मेण पूजयन्नतिथींस्तथा ॥६॥
यजन् यज्ञान् पठन् वेदान् पूज्य देवमुमापतिम्। संस्तुवन् कमलाकान्तमटन् तीर्थेषु वै द्विजाः ॥
स लेभे सत्यशीलायां पुत्रं चान्धं तपोधनाः। गलत्कुष्ठं शरीरं वै कृमिभिः परिपूरितम् ॥८॥
अनन्यपुत्रो विप्रर्षिः पुपोष तं सुतं ततः। अपश्यत्तस्य देहं हि प्रशीर्णं स दिने दिने ॥९॥
तादृशं तस्य तं पुत्रं दृष्ट्वा सर्वे हि बान्धवाः। तत्यजुर्बिन्दुशर्माणं सपत्नीकं तपोधनाः ॥१०॥
न पपुर्मागधाः सर्वे तस्य तोयं तपोधनाः। न तेन सह संवादं चक्रुस्तद्देशवासिनः ॥११॥
ततः स चिन्तयामास भार्यया सह सन्मतिः। निश्वसन्तं सुतं पश्य सुकृत चिन्तयन् मुहुः ॥१२॥
अहो देवस्य पारुष्यं न जानामि हि साम्प्रतम्। जातान्धोऽपि सुतो येन कुष्ठरोगेण पीडितः ॥
तस्य माया बलवती वृथा मोहो दुरत्ययः। येन मह्यमपुत्राय जातान्धो रोगपीडितः ॥१४॥
प्रशीर्णोऽयं प्रदत्तो वै देवं तं प्रणमाम्यहम्। बान्धवेष्वपि पारुष्यं दत्तं येन हतं सुतम् ॥१५॥
देवं तमेव शरणं व्रजामि सह भार्यया। यस्मिन् देशे न मित्राणि यस्मिन् देशे न बान्धवाः ॥

व्यासजी ने कहा – विप्रवरों! जिस प्रकार मानसरोवर में 'स्वर्णहसेश्वर' हैं उसी प्रकार 'बालेश्वर' महादेव भी हैं। इस सन्दर्भ में एक प्राचीन आख्यान प्रसिद्ध है। उसका पठन श्रवण एवं मनन करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। विश्वामित्र-गोत्र में उत्पन्न बिन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण मगध देश में उत्पन्न हुआ। उसे साक्षात् देहधारी धर्म ही माना जाता था। सत्यमूर्ति, एवं वेदवेत्ता बिन्दुशर्मा ने भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न सत्यशीला नाम की विदुषी के साथ विवाह किया। उसे पाकर बिन्दुशर्मा गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ वेदाध्ययन, अतिथि-पूजन, तीर्थाटन आदि कार्यों में प्रवृत्त हो गया। कालान्तर में उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, किन्तु वह अन्धा होने के साथ गलित एवं कृमियुक्त कुष्ठ रोग से ग्रस्त था। दूसरा पुत्र न होने के कारण वह उसी रुग्ण पुत्र को परिपुष्ट करने में लगा रहा। उसके रुग्ण पुत्र को देख सपत्नीक बिन्दुशर्मा को बन्धु-बान्धवों ने त्याग दिया। मगध-देशवासियों ने उसका पानी भी बन्द कर दिया। यहाँ तक कि उसके साथ भाषण करना भी छोड़ दिया। दु:खी हो उस दीन बालक की ओर बार-बार देखते हुए उसने पत्नी से कहा—'भगवान् कितना निष्ठुर है, जिसने मुझे जन्मान्ध और कुष्ठ पीडित पुत्र दिया है। उस दैव की माया बलवती है। मैं उस देव को प्रणाम करता हूँ। इसी कारण सब लोग मेरे प्रति कठोर हो गए हैं। मैं सपत्नीक उसी भगवान् की शरण में जाता हूँ। जिस देश में न बान्धव हों, न मित्र हों, न स्नेही जन हों—उस देश में वास नहीं

---

१. 'तथा'—'ख'।

प्रीतिं कुर्वन्ति विपुलां वासं तत्र न कारयेत् ।। १६ ।।
न बन्धुमध्ये निवसामि चात्र त्यक्तो सुहृद्बन्धुजनैः समस्तैः ।
व्रजामि देवं शरणं महेशं स एव धर्मा सुखदुःखहेतोः[1] ।। १७ ।।
न त्यागः संविधातव्यो जीवितस्य सुतस्य च । तस्मादेनं सुतं नीत्वा महामार्गं व्रजाम्यहम् ।१८।

व्यास उवाच—

इति निश्चित्य सहसा ब्राह्मणो मुनिसत्तमाः । हिमवन्तं ययौ पुत्रमादाय सह भार्यया ।।१९।।
स्मरन् स शंकरं देवं पश्यन् पुत्रं पुनः पुनः । ततः कालेन महता हिमालयतटं शुभम् ।।२०।।
संस्मरन् स शिवं शान्तं प्राप्य देवर्षिसेवितम् । व्रजन् ददर्श पुत्रं वै वैवस्वतवशं गतम् ।।२१।।
जात्यन्धं दैवयोगेन कुष्ठरोगप्रपीडितम् । रामगङ्गातटं प्राप्य भूमौ संस्थाप्य तं सुतम् ।।
विललाप महाभागाः स तया भार्यया सह ।।२२।।

ब्राह्मण उवाच—

किं न रोदिषि वै पुत्र हित्वा मां क्व गतो ह्यसि । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ते रोगं शंकरो नाशयिष्यति ।
पश्य मां पितरं वृद्धं मातरं च तथैव हि । तव हेतोर्गृहं शून्यं कृत्वाऽहमिह चागतः ।।२४।।
त्यक्त्वा मां मातरञ्चापि कां गतिं त्वं गतो ह्यसि । क्व ते क्षुधा च ते क्लेशं सुखस्वापकृते गतम्
हृतोऽसि केन वै विप्र यमेन धनदेन वा । किन्नु पाशभृता पुत्र[2] प्रहृतोऽसि वदस्व माम् ।।२६।।
किं त्वं नीतोऽसि देवेन महादेवेन साम्प्रतम् । किं महेन्द्रेण देवेन प्रहृतोऽसि वदस्व माम् ।२७।

व्यास उवाच—

विलप्य सुचिरं तत्र पत्न्या सह तपोधनाः । व्यायत्तं तन्मुखं दृष्ट्वा मूर्च्छितो निपपात ह ।२८।

करना चाहिए'। मित्र, बन्धु आदि से परित्याग किए जाने पर उनके मध्य रहना उचित नहीं। अब मैं सुख और दुःख के हेतुभूत शङ्कर की शरण में जाता हूँ। जीवित पुत्र का परित्याग भी नहीं कर सकता। अतः इसको साथ लेकर मैं 'महामार्ग' की ओर जाता हूँ ।। १ – १८ ।।

व्यासजी कहते रहे - मुनिवरों! ऐसा निश्चय कर वह ब्राह्मण अपने पुत्र एवं कलत्र-सहित हिमालय की ओर चल दिया। शङ्कर का स्मरण करते हुए पुत्र को बार-बार देखता हुआ चलते हुए भी मार्ग में उसका पुत्र मर गया। जन्मान्ध एवं कुष्ठी पुत्र को जमीन पर रख वह पत्नी के साथ विलाप करने लगा ।। १९ – २२ ।।

ब्राह्मण बोला—पुत्र! तुम रोते क्यों नहीं? मुझे छोड़ कर तुम कहाँ गए हो? मेरे बालक, उठ। शङ्कर तेरा रोग दूर करेंगे। मैं तेरा वृद्ध पिता हूँ। तेरी माता भी यहीं है। हम लोगों की ओर देखो। तेरे कारण ही हम घर को खाली कर यहाँ चले आए हैं। तुम हमको छोड़ कहाँ चले गए? इस सुख-शयन के कारण तुम्हारी भूख और क्लेश कहाँ गए? यमराज, कुबेर या अन्य किस देव ने तुम्हारा हरण किया है? क्या तुम्हें वरुण, महादेव या इन्द्र ने तो नहीं हरा? तुम हमें बतलाओ ।। २३ – २७ ।।

व्यासजी ने कहा—ऋषियों! इस तरह अपनी पत्नी के साथ बहुत समय तक विलाप

---

१. 'सैव प्रगीतः सुखदुःखहेतोः'—'ख'।
२. 'किं महेन्द्रेण देवेन'—'ख'।

संस्मरन् स शिवं शान्तं सृष्टिसंहारकारकम् । सुक्रान्त्या रामगङ्गाया[1] मध्ये प्राप्य तपोधनाः ।
कृपया देवदेवेशो ब्राह्मणं पार्श्वसंस्थितम् । मूर्छितं पुत्रशोकेन ज्ञात्वेत्युच्चैर्जगाद ह ।।३०।।
बालरूपेण देवेशो गत्वा तस्यान्तिकं द्विजाः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वै पुत्र जीवयामि सुतं तव ।।३१।।
शुश्राव देववचनं द्विजः स्वप्नोदितं यथा । उत्थाय पुरतो देव चोपविष्टं ददर्श ह ।।३२।।
ननाम परया भक्त्या ब्राह्मणः सह भार्यया । उपविष्टं शिलापृष्ठे शङ्करं बालरूपिणम् ।।३३।।
प्रणमन्तं पुनः प्राह भगवान् वृषभध्वजः । एहि संस्नाप्य तं बालम् ऊर्ध्वं पश्यस्व मे गृहम् ।।
जीवनं संप्रदास्यामि सुतस्य तव सुव्रत ।। ३५ ।।

व्यास उवाच—

ततः स रामगङ्गायां स्नापयित्वा सुतं द्विजाः । तदनुप्रययौ हृष्टो दिव्यं बालीशमन्दिरम् ।३६।
ददर्श तत्र देवेशं बालीशं मुनिसत्तमाः । महेन्द्रप्रमुखैर्देवैः पूजितं संस्तुतं तथा ।।३७।।
दर्शयित्वाऽथ स्वं लिङ्गं बालरूपधरो हरः । जीवनं तस्य पुत्रस्य प्रददौ स्वेन पाणिना ।।३८।।
शरीरात्तस्य तं रोगं प्रनिःसार्य तपोधनाः । दत्त्वा देवोपमं देहं तत्रैवान्तरधीयत ।।३९।।
बिन्दुशर्मा ततः पुत्रं मृतं पुनरिहागतम् । सन्तोषं परमं लेभे निस्वः प्राप्य यथा धनम् ।।४०।।
देवोपमं सुतं दृष्ट्वा ततो ब्राह्मणदम्पती । बालीश्वरार्चनं पुण्यं चक्राते मुनिसत्तमाः ।।४१।।
समभ्यर्च्य शिवं शान्तम् अनुज्ञाप्य पुनः पुनः । पुनः स्वमेव भवनं हृष्टः संप्रययौ द्विजः ।।४२।।
सह तेन कुमारेण बिन्दुशर्मा ययौ द्विजः । बान्धवा बिन्दुशर्माणं प्रतिजग्मुः समाहिताः ।।४३।।
बिन्दुशर्मा ततः पुत्रं ददर्श मुनिसत्तमाः । प्रसादाद्देवदेवस्य प्रलब्धं प्राणसम्मितम् ।।४४।।
सत्यशीलाऽपि तं पुत्रं मृतं पुनरिहागतम् । सन्तोषं परमं लेभे निःस्वः प्राप्य यथा धनम् ।।४५।।
इति वादित्रनिनदैर्भेरीणां च महास्वनैः । ददृशुस्तस्य तं पुत्रं नैवाऽन्धं न च रोगिणम् ।।४६।।

करते हुए उस पुत्र का मुँह खुला हुआ देख वह ब्राह्मण शिव का स्मरण करता हुआ मूर्च्छित हो गया। सङ्क्रान्ति के दिन रामगङ्गा के मध्य ब्राह्मण को मूर्च्छित देख भगवान् शङ्कर ने बालरूप में उससे जाकर कहा—'रे पुत्र ! उठ, मैं तेरे बालक को जीवित करता हूँ' । स्वप्नस्थ बिन्दुशर्मा यह वाणी सुन कर उठा तो अपने सामने भगवान् को देखा । भक्तिवश सपत्नीक उसने प्रणाम किया । शिला पर बैठे 'बालरूपी' शिव को प्रणाम किया । तदुपरान्त बाल-शङ्कर ने उससे कहा—'इस बालक को स्नान करा, यहीं ऊपर मेरे घर पर ले आओ । मैं इसे जीवित करूँगा' ।। २८ – ३५ ।।

व्यासजी बोले—तब उस ब्राह्मण ने उस मृत बालक को रामगङ्गा में स्नान करा 'बालीश' मन्दिर में पहुँचाया । वहाँ महेन्द्रादि से पूजित एवं स्तुति किये जाते हुए 'बालीश' को देखा । उस बालरूपी 'शिव' ने अपना लिङ्ग दिखाकर अपने हाथों उसके पुत्र को जीवित कर दिया । उसके शरीर के रोग को दूर कर देवों की तरह उसे कान्तिमान् बना दिया । तब 'बिन्दुशर्मा' ने देवादिदेव के प्रसाद से प्राणप्रिय पुत्र को प्राप्त किया । साथ ही सत्यशीला भी पुत्र को वापस आया हुआ देख दरिद्र को धन प्राप्ति के समान पुलकित हो उठी । तब उन दोनों ने भक्ति के साथ पूजा की । उसने बार-बार भगवान् से आज्ञा प्राप्त कर दिव्य-देह-युक्त

---

१. 'सुक्रान्ति-रामगङ्गायाः'—'ख' ।

सुकुमारं महाभागाः कुमारसदृशप्रभम् । प्रविवेश गृहं रम्यं स्वर्णद्वारैर्विराजितम् ॥४७॥
प्रसादाद्देवदेवस्य सर्वसम्पत्समन्वितम् । बुभुजे विषयान् भोगान् प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥४८॥
मयैतत्कथितं विप्रा बालीशाख्यं सुविस्तरम् । आयुरारोग्यदं पुण्यं यशःकीर्तिविवर्धनम् ॥४९॥

दिव्यं बालीश्वराख्यानं यः शृणोति समाहितः ।
स याति परमं स्थानं भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे बालीश्वरमाहात्म्ये सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

अपने पुत्र सहित घर को प्रस्थान किया । उसके बन्धु-बान्धव भी उन दोनों को लेने वहाँ पहुँचे । संगीत-वाद्यादि के साथ दिव्य-देह-युत उस बालक को सब लोगों ने 'कुमार' के समान देखा । शिवजी की कृपा से सुवर्णद्वार-युत भवन में उसने प्रवेश किया । इसके साथ ही अतुल भोगों को भोगकर आनन्दित हुआ । हे विप्रों ! मैंने 'बालीश्वराख्यान' बड़े विस्तार के साथ आप लोगों को सुना दिया है । इसको जो सुनता है, वह इस लोक में सुख भोग कर अन्त में परम पद प्राप्त होता है ॥ ३६–५० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'बालीश्वर'माहात्म्य नामक
एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

१०८

ऋषय ऊचुः—

प्रमाणं वद विप्रर्षे क्षेत्रस्यास्य विनिश्चितम् । यानि तत्र च तीर्थानि क्षेत्रे बालीश्वराह्वये ॥१॥
सन्ति मुख्यानि लिङ्गानि देवदेवस्य शूलिनः । वयं तानि सुपुण्यानि श्रोतुमिच्छामहे द्विज ॥२॥

व्यास उवाच—

प्रमाणं मुनिशार्दूलाः शृण्वन्तु सुसमाहिताः[१] । मयोदितानि पुण्यानि तीर्थानि सुबहूनि च ॥३॥
चन्द्रभागां समारभ्य यावद् गौर्याः सुसंगमम् । तावत्क्षेत्रं महापुण्यं विद्यते मुनिसत्तमाः ॥४॥
चन्द्रभागा सरिच्छ्रेष्ठा पावनोद्देशसम्भवा । सङ्गमे रामगङ्गायाः संगता पापनाशिनी ॥५॥
सङ्गमे चन्द्रभागायाः निमज्य विधिपूर्वकम् । जले चन्द्रेश्वरं देवं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ॥६॥
प्रविश्य तत्र सन्तर्प्य पितॄन् याति नरो ध्रुवम् । लक्ष्मीक्षेत्रे[२] ततो गत्वा निमज्य विधिपूर्वकम् ।
श्रियं प्राप्नोति विपुलां महालक्ष्म्याः प्रसादतः । तस्माददूरे सन्तीर्त्वा पुण्यां गोदावरीं व्रजेत् ।
गोदावरी-रामयोश्च सन्निपाते निमज्जनात् । जातिस्मरः सम्भवति तथा गोविन्दपूजनात् ॥९॥
ततस्तीर्त्वा महातीर्थं मालिकाख्यं तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च विधिवद्रूपवान्[३] जायते नरः ॥
ततस्तु रामगङ्गायामुत्क्रान्त्याः सङ्गमे नरः । शिवलोकमवाप्नोति निमज्य विधिपूर्वकम् ।११।
क्रान्ति-रामसरिन्मध्ये बालितीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ।
देवं बालीश्वरं गच्छेत् क्षेत्रपालं प्रपूज्य वै । बालीश्वरं च सम्पूज्य सायुज्यं याति मानवः ॥१३॥
वामे भृङ्गीश्वरं देवं दक्षिणे शाङ्करीं तथा । सम्पूज्य मानवा यान्ति शिवलोकं न संशयः ।१४।
क्रान्त्या मूले करीराख्यं पूज्य प्राप्नोति सद्गतिम् । वामपार्श्वे महादेवीं देवीनां कुलतारिणीम् ॥

ऋषियों ने कहा—विप्रर्षे ! अब हम लोग 'बालीश्वर' क्षेत्र का विस्तार, उस क्षेत्र के तीर्थ एवं प्रमुख शिवलिङ्गों' के सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हैं। कृपया आप हमें बतलायें ॥१-२॥

व्यासजी बोले—ऋषिवरों ! इस क्षेत्र का प्रमाण तथा तीर्थादि मैं बतलाता हूँ। आप लोग सुनें। 'चन्द्रभागा' से लेकर 'गौरी' सङ्गम तक यह क्षेत्र है। पावन' पर्वत से निकलने वाली 'चन्द्रभागा' नदी आगे चल कर 'रामगङ्गा' में मिलती है। उस संगम में स्नानोपरान्त चन्द्रेश्वर' देव का पूजन एवं तर्पणादि करने के पश्चात् 'लक्ष्मीक्षेत्र' में पुनः स्नान कर महालक्ष्मी की कृपा से अतुल सम्पत्ति प्राप्त होती है। फिर 'गोदावरी'-'रामगङ्गा' के संगम में स्नान कर विष्णु की पूजा करने से पूर्वजन्म का स्मरण होता है। तपोधनों ! तब उतर कर 'मालिका'-तीर्थ[४] में स्नान कर मनुष्य रूपवान् होता है। फिर उत्क्रान्ति-संगम में स्नान कर शिवलोक प्राप्त करे। फिर 'क्रान्ति' संगम में स्नान कर बालीश्वर को जाये। वहाँ क्षेत्रपाल और बालीश्वर का पूजन करे। तब बाईं ओर 'भृङ्गीश्वर' तथा दाईं ओर 'शाङ्करी' की

---

१. 'मुनिसत्तमाः'—इत्यपि पाठः—'ख'। २. 'लक्ष्मीतीर्थम्'—'ख'।
३. 'तत्र स्नात्वा च विधिना सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा। देवं बालीश्वरं गच्छेत् क्षेत्रपालं प्रपूजयेद्'—इतिश्लोकानन्तरम् अग्रिमौ द्वौ श्लोकौ 'ख' पुस्तके न विद्येते। ४. पट्टी माली।

समच्यं विधिवत्तत्र श्रियं प्राप्नोति मानवः । ततः क्रान्त्या जले पुण्ये बालतीर्थमिति स्मृतम् ॥
बालीश्वरस्य देवस्य पार्श्वे तीर्थोत्तमे शुभे । निमज्य मानवस्तत्र माघस्नानफलं लभेत् ॥१७॥
क्रान्तिरामसरिन्मध्ये स्नात्वा प्रेतशिलां शुभाम् । समच्यं विधिवत्तत्र प्रकम्पन्तीमितस्ततः ॥
प्रेतत्वं कुलजातानां तारयित्वा दिवं व्रजेत् । अणुमात्रेण स्वर्णेन पुण्यां प्रेतशिलां हि यः ॥१९॥
समर्चंति महाभागाः पितॄणां तारयेच्छतम् । ततस्तीर्त्वा महातीर्थं बहुलासंगमे स्थितम् ॥२०॥
तत्र स्नात्वा नरो विप्रा ऐश्वर्यमिह लभ्यते । बहुलासरितो मध्ये नागतीर्थमिति स्मृतम् ॥२१॥
तत्र स्नात्वा विधानेन नागान् सम्पूज्य मानवः । शिवलोकमवाप्नोति कुलत्रयसमन्वितः ॥२२॥
ततस्तु रामगङ्गाया मध्ये बिन्दुसरः स्मृतम् । निमज्य पितृकृत्यं च विधायाशु शिवं व्रजेत् ।२३।
ततस्तु ब्रह्मतीर्थं वै मुनितीर्थं ततः स्मृतम् । तदूर्ध्वं वेणुमध्ये वै रामतीर्थमिति स्मृतम् ॥२४॥
तेषु स्नात्वा च मनुजः पितृकृत्यं विधाय च । ब्रह्मलोकमवाप्नोति ब्रह्मणा सह मोदते ॥२५॥
क्रान्तिश्च बहुला चैव रामगङ्गा तथैव च । एतास्तिस्रो महापुण्या विद्यन्ते नात्र संशयः ॥२६॥
एतासां संगमे स्नात्वा पूज्य प्रेतशिलां शुभाम् । मानवो देवदेहो वै जायते नात्र संशयः ॥२७॥
ततस्तु रामगङ्गायां हाटकेशं महेश्वरम् । वामे सम्पूज्य वै विप्राः शिवलोके महीयते ॥२८॥
सत्यतीर्थं ततः पुण्यं ततो वेणुसरः स्मृतम् । ततो बाणाह्वयग्राम ततो रुद्रसरः स्मृतम् ॥२९॥
तारातीर्थं ततो गत्वा सूर्यतीर्थं ततः परम् । तेषु स्नात्वा च मनुजो वाजपेयफलं लभेत् ॥३०॥
ततस्तु सत्यगामिन्याः सङ्गमे मुनिसत्तमाः । संस्नात्वा मानवस्तत्र नित्यस्नानफलं लभेत् ।३१।
पावनाख्याच्च संभूतां सुपुण्यां सत्यगामिनीम् । माघस्नानसमं पुण्यं निमज्य प्राप्यते द्विजाः ॥
तस्मादधः शेषतीर्थं निःशेषपापनाशनम् । तत्र स्नात्वा च विधिवद् विष्णुलोके महीयते ॥३३॥

पूजा करे। वहीं निकट 'क्रान्ति' के मूल में 'करीर'[१] का पूजन करने से सद्गति प्राप्त होती है। तब बाईं ओर 'महादेवी' का पूजन करने से मानव लक्ष्मीवान् होता है। तदनन्तर 'क्रान्ति' के जल में सुविदित 'बालतीर्थ'[२] है। उस तीर्थ में स्नान करने से माघ-स्नान का फल मिलता है। 'क्रान्ति' और 'रामगङ्गा' के मध्य काँपती हुई 'प्रेतशिला' है। उसका पूजन करने से कुलगत प्रेतत्व नष्ट होकर स्वर्ग प्राप्त होता है। जो व्यक्ति अणु-मात्र सुवर्ण-युक्त हो 'प्रेतशीला' का पूजन करता है उसके पितृगण तर जाते हैं। तत्पश्चात् 'बहुला' नदी के मध्य नागतीर्थ' है। वहाँ पूजन करने पर तीन कुलों सहित शिवलोक प्राप्त होता है। 'रामगङ्गा' के मध्य में 'बिन्दुसर' है। उसमें स्नान-दानादि करने से 'शिव' प्राप्त होते हैं। तदनन्तर 'वेणु' के मध्य 'ब्रह्मतीर्थ', 'मुनितीर्थ' तथा 'रामतीर्थ' हैं। उनमें स्नान एवं पितृकृत्य करने पर 'ब्रह्मलोक' मिलता है। 'क्रान्ति'[३], 'बहुला'[४] और 'रामगङ्गा'—ये तीनों नदियाँ बड़ी पवित्र हैं। इनके सङ्गम में स्नान तथा 'प्रेतशिला' का पूजन करने से दिव्य देह की प्राप्ति होती है। तब 'रामगङ्गा' के वामभाग में 'हाटकेश्वर'[५] का पूजन कर 'शिवलोक'

---

१. कदाचित् यह 'करवीर' हो। इस नाम के तीर्थ में देवी के रूप में 'महालक्ष्मी' की स्थिति बतलाई गई है।

२. 'बलतिर' नाम से प्रसिद्ध है।

३. 'नैनीगाड़' के नाम से जाती है।

४. 'बरड़ गाड़' के नाम से विदित है।

५. डीडीहाट।

तत्र स्रोतः समुत्तीर्य अम्बातीर्थे निमज्य च। देवलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥३४॥
ततः परं महापुण्या गौरी नाम महासरित्। सङ्गमे रामगङ्गायाः संगता मुनिसत्तमाः ॥३५॥
तत्र स्नात्वा विधानेन जले गौरीश्वरं हरम्। सम्पूज्य तर्पयित्वा च देवर्षिपितृमानवान् ॥
कुलानां शतमुत्तार्य नरः शम्भोः पदं व्रजेत्।३६॥
तीर्थेषु सर्वेषु निमज्य तत्र बालीश्वरं पूज्य महानुभावम्।
संस्मृत्य बालीं च शिवं च बालं शम्भोः पदं याति नरस्तपोधनाः॥ ३७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे बालीश्वरमाहात्म्येऽष्टोत्तरशततमोऽध्यायः॥

में जाने का मार्ग प्रशस्त किया जाय। तदनन्तर 'वेणुसर' 'बाणसर', 'रुद्रसर', 'तारातीर्थ' और 'सूर्यतीर्थ' हैं। इनमें स्नान करने से वाजपेय-यज्ञ का फल मिलता है। तब 'सत्यगामिनी' के सङ्गम में स्नान कर नित्यस्नान का फल ग्रहण करें। 'पावन पर्वत' से उत्पन्न 'सत्यगामिनी' में स्नान कर 'माघस्नान' का फल मिलता है। उसके नीचे 'शेषतीर्थ' है। वहाँ स्नान करने से 'विष्णुलोक' प्राप्त होता है। वहाँ से कुछ नीचे उतर कर 'अम्बातीर्थ'[1] में स्नान करने से 'देवलोक' मिलता है। तदनन्तर एक बड़ी नदी 'गौरी'[2] का 'रामगङ्गा' के साथ सङ्गम है। वहाँ स्नान एवं 'गौरीश्वर' का पूजन तथा तर्पणादि करने से सैकड़ों कुलों का उद्धार होता है। वहाँ पर सब तीर्थों में स्नान कर 'बालीश्वर' का पूजन एवं 'बाली', 'शिव' तथा 'बालक' का स्मरण करने पर 'शिवपद' प्राप्त होता है॥ ३ – ३७॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'बालीश्वर'-माहात्म्य
नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त॥

---

१. स्थानीय नाम—अमतड़। २. 'गोरघट्या' नाम से जानी जाती है।

१०९

ऋषय ऊचुः—

पावनेति च यः ख्यातस्त्वया पराशरात्मज । पर्वतस्तस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु पावनाख्यानं भवन्तो मुनिसत्तमाः । पावनं सर्वपापानां मानवानां तथैव च ॥२॥
स वामे रामगङ्गायाः पुण्यः पावनपर्वतः । विद्यते सिद्धगन्धर्वैः सेवितः सुमनोहरः ॥३॥
नानाधातुसमाकीर्णो नानावृक्षविराजितः । रजताकरदैः काष्ठैः सर्वतः परिशोभितः ॥४॥
नानामृगगणाकीर्णो नानापक्षिनिनादितः । यस्मिन् सुपुण्या बहवः कन्दराः सन्ति वै द्विजाः ॥
यासु स्थित्वा देवगणाः सेवन्ते पावनं प्रभुम् । पावनेशो हरो यत्र[1] पूज्यते देवनायकैः ॥६॥
तमारुह्य मनुष्याणां विनश्यन्त्यघकोटयः । जन्मान्तरकृताद्याश्च ज्ञाताज्ञातास्तथैव च ॥७॥
तमारुह्य पितृगणान् सन्तर्प्य च तपोधनाः । महेशं पावनाख्यं हि सम्पूज्य विधिवत् तथा ॥८॥
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः । पावनेशं विधानेन रक्तपुष्पैः प्रपूज्य च ॥९॥
ततो रुद्राभिषेकेण[2] अभिषिच्य महेश्वरम् । शतं मातामहानां च पितॄणां च तथा शतम् ।१०।
उत्तार्य नरकाच्छीघ्रं शिवलोकं व्रजेन्नरः । यस्य देवस्य पद्भ्यां वै समाक्रान्तः स पर्वतः ॥११॥
पावनेति च विख्यातः पापभाजां स पावनः । तस्मात्तु बहवो नद्यः सम्भूता मुनिसत्तमाः॥१२॥
सङ्गमे रामगङ्गायाः सङ्गता नात्र संशयः । श्यामायाः सङ्गमे काश्चिच्छुद्धायाः सङ्गमे पराः ॥
मुनिपर्वतमारभ्य पताकाख्यो महागिरिः । यावत् संवर्ण्यते विप्रास्तावत् पावनपर्वतः ॥१४॥
तत्र स्थानान्यनेकानि पावनेशस्य शूलिनः । तथा स्थलानि पुण्यानि सन्ति देव्या न संशयः ॥
प्राधान्येन वदिष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । नद्यश्च शिवलिङ्गानि तथा स्थानानि वै द्विजाः ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पावनपर्वतमाहात्म्ये नवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने कहा—पराशरसुत व्यास ! आप ने जो 'पावन-पर्वत' का उल्लेख किया है, कृपया उसका माहात्म्य सुनायें ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहा—ऋषियों ! 'रामगङ्गा' के वामभाग में सबको पवित्र करने वाला 'पावन पर्वत' है[3] । वह नाना प्रकार की धातुओं और वृक्षों से संकुलित है । चांदी की खानों और अनेक गुहाओं तथा सफेद पपड़ी जमी लकड़ियों से शोभित है । इसमें 'पावनेश' का पूजन किया जाता है । इस पर चढ़ने से जन्म-जन्मान्तर के पातक नष्ट हो जाते हैं । यहां पितृकृत्य सम्पादित कर 'पावनेश' महादेव का पूजन करने से तीनों ऋणों से मुक्ति मिल जाती है । विशेषतः लाल फूलों से 'पावनेश' का पूजन एवं रुद्राभिषेक करने से पितृगण मुक्त हो जाते हैं । जिस देवके चरण से यह पर्वत आक्रान्त है, वही पापियों को पवित्र करने से 'पावन' कहा जाता

१. 'सम्पूज्य विधिवत्तथा' इत्यनन्तरं द्वौ अग्रिमौ श्लोकौ 'ख' पुस्तके न वर्तेते ।
२. 'शतरुद्राभिषेकेण'—'ख' ।
३. 'सीरा' पट्टी माली का पर्वत । इसके अन्तर्गत तीन चोटियाँ आती हैं ।

११०

व्यास उवाच—

पश्चिमे पावनेशस्य देवी काषायवाससी । परिधाय विचित्राङ्गी राजते मुनिसत्तमाः ॥१॥
गन्धपुष्पोपहारैश्च देवीं तत्र प्रपूज्य वै । मनोभिलषितां सिद्धिं प्राप्यते नहि संशयः ॥२॥
पुण्या पावनसम्भूता संक्रान्ता सरिता वरा । वामे तस्या भवेद्विप्राः सर्वपापप्रणाशिनी ॥३॥
सङ्गमं रामगङ्गायाः सङ्गता मुनिसत्तमाः । द्विक्रान्ताद्या महानद्यः पुण्याः पावनसम्भवाः ॥
सङ्गमे रामगङ्गायाः सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पावनपर्वतमाहात्म्ये दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

है। इससे अनेक नदियाँ निकली हैं। उनमें से कुछ तो 'रामगङ्गा' में और कुछ 'श्यामा' (काली) में मिलती हैं। इसके अनन्तर कुछ 'शुद्धा' में मिलती हैं। 'मुनिपर्वत'[1] से 'पावन-पर्वत' पर्यन्त इसकी सीमा है। इसमें अनेक 'शिवस्थल' और 'देवीपत्तन' हैं। अब मैं यहाँ की सब नदियों, शिवलिङ्गों तथा विशेष स्थानों का वर्णन करता हूँ ॥ २ - १६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पावन-पर्वत' माहात्म्य नामक
एक सौ नौवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—मुनियों! 'पावनेश' के पश्चिम में काषायवस्त्रधारिणी 'विचित्राङ्गी देवी' विराजमान हैं। उनकी सेवा करने से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। पावन पर्वत से उत्पन्न पापनाशिनी 'संक्रान्ता' नदी उसके वाम भाग में है। वहीं से 'द्विक्रान्ता'[2] आदि अनेक नदियाँ निकल कर 'रामगङ्गा' में मिलती हैं ॥ १ - ४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पावनपर्वत' माहात्म्य सम्बन्धी
एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'कालमुनि' नाम से विदित है। २. प्रचलित नाम—'बुकाना'।

१११

व्यास उवाच—

द्विक्रान्तासरितोः सङ्गे[1] निमज्य मुनिसत्तमाः । गङ्गास्नानसमं पुण्यं प्राप्यते नात्र संशयः ॥१॥
तत्र तीर्त्वा महातीर्थं सीतायाः सङ्गमे स्थितम् । तत्र स्नात्वा नरो विप्राः सत्यलोकं प्रयाति वै ।
ततस्तु बिन्दुमत्याश्च सङ्गमे तर्प्य वै पितॄन् । स्नात्वा च विधिवत्तत्र दशपूर्वान् स तारयेत् ।३।
ततः स्रोतः समुत्तीर्य गोदावर्यास्तु सङ्गमे । निमज्य मानवो याति शिवलोकं न संशयः ॥४॥
ततस्तु रामगङ्गायास्तीर्थं विकटसंज्ञकम् । तत्र स्नात्वा च विधिवत्तारयेत् स दशोत्तरान् ॥५॥
ततः स्रोतः समुत्तीर्य रेवत्याः सङ्गमं स्मृतम् । तत्र स्नात्वा च मनुजैरिह जातिस्मरो भवेत् ।६।
ततस्तु रामगङ्गाया रवितीर्थमिति स्मृतम् । तत्र स्नात्वा नरो विप्रा रविवत् पूज्यते भुवि ।७।
ततस्तु रामगङ्गाया दक्षिणे पूज्य वै शिवम् । गुरुं श्मशाननिलयं शिवलोके महीयते ॥८॥
ततस्तु रामगङ्गायां पुण्या पावनसम्भवा । भैरवी सरितां श्रेष्ठा सम्मिलन्मुनिसत्तमाः ॥९॥
संगमैर्बहुभिः पूर्णा पुण्यतोयवहा शिवा । पावनेशो हरस्तस्या मूले सम्पूज्यते द्विजाः ॥१०॥
तस्यां स्नात्वा नरः सम्यक्गङ्गास्नानफलं लभेत् । पावनीविन्ध्ययोः सङ्गे निमज्य विधिपूर्वकम् ।
भैरवी-पावनीमध्ये ततो गच्छेत् समाहितः । तत्र गत्वा च संस्नात्वा तर्षेशं शङ्करं तथा ॥१२॥
चिताभस्मविलिप्ताङ्गं पूज्य याति परां गतिम् । वामे पाराहसंज्ञं वै दक्षिणे पावनी तथा ।१३।
पूज्यन्ते मातरो विप्राः देवगन्धर्वपूजिताः । भैरव्या रामगङ्गायाः सङ्गमे मुनिसत्तमाः ॥१४॥

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों ! 'द्विक्रान्ता'-'रामगङ्गा' नदी के सङ्गम में स्नान का फल गङ्गास्नान के सदृश है । तब 'सीता' के सङ्गम 'महातीर्थ' में स्नान करने से 'सत्यलोक' प्राप्त होता है । तदनन्तर 'बिन्दुमती' के सङ्गम में स्नान और तर्पण करने से दस पूर्व कुलों का उद्धार होता है । फिर कुछ उतर कर 'गोदावरी' के सङ्गम में स्नान करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है । तब 'रामगङ्गा' के विकट तीर्थ में स्नान कर दस उत्तर कुलों का उद्धार होता है । फिर उतर कर 'रेवती-सङ्गम' में स्नान करने से पूर्वजन्म का स्मरण होता है । तब 'रामगङ्गा' के 'रवितीर्थ' में स्नान कर मानव सूर्य के समान पूजित होता है । तब 'रामगङ्गा' के दक्षिण में श्मशानवासी 'शिव' का पूजन करने से 'शिवलोक' उपलब्ध होता है । इसके बाद 'रामगङ्गा' में पावनपर्वत से समुद्भूत एवम् अनेक प्रवाहों से संयुक्त 'भैरवी' नदी[2] का संगम है । उसके मूल में 'पावनेश' भगवान् का पूजन किया जाता है । वहाँ स्नान करने पर गङ्गास्नान का फल मिलता है । 'पावनी' और 'विन्ध्या' के सङ्गम में स्नान कर फिर 'भैरवी' और 'पावनी' के सङ्गम में स्नान कर 'तर्षेश'[3] तथा चिताभस्मविभूषण का पूजन करने से सद्गति प्राप्त होती है । वहीं बाइंओर 'पारा'[4] और दाहिनी ओर 'पावनी'[5] आदि मातृकाओं का पूजन किया जाता है । फिर 'भैरवी' और 'रामगङ्गा' के सङ्गम में 'पितृकृत्य' सम्पादित करने से इक्कीस कुलों का उद्धार

---

१. 'द्विक्रान्ता-रामयोः सङ्गे'—इति परिष्कृतः पाठः ।

२. भुरमुणी गाड़ ।

३. एक 'वसु' का नाम 'तर्ष' है ।

४. 'सती' देवी की एक मूर्ति का नाम ।

५. 'ललिता' देवी का एक नाम ।

पितृकृत्यं विधायाशु पिण्डं दत्त्वा च मानवः। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य देवलोके महीयते ॥१५॥
सुपुण्यां तारिणीं रेवां गत्वा स्नात्वा प्रयत्नतः। पितृकृत्यं विधायाशु वृषदानफलं लभेत् ॥१६॥
रेवाया रामगङ्गायाः सङ्गमे पूर्ववत् तथा। विधाय पिण्डदानं वै शिवलोके महीयते ॥१७॥
ततः परं रामगङ्गामध्ये श्रीतीर्थसंज्ञकम्। ततः केदारसंज्ञं वै तीर्थमस्ति तपोधनाः ॥१८॥
तत्र स्नात्वा पितृकृत्यं विधायाशु शिवं व्रजेत्। केदारं विधिवत् पूज्य महाभैरवरूपिणम् ॥१९॥
महेन्द्रभवनं याति कैदारी-रामगङ्गयोः। मध्ये देवर्षिवर्यैः पूजितं सिद्धसेवितम् ॥२०॥
ततस्तु दक्षिणे पार्श्वे पावनस्य तपोधनाः। पुण्या वसुमती नाम पूर्णाया बहुसङ्गमैः ॥२१॥
सङ्गमे रामगङ्गायाः संमिलन्मुनिसत्तमाः। वासुदेवं प्रपूज्याशु स्नात्वा तत्सङ्गमे शुभे ॥२२॥
पितृकृत्यं विधायाशु वसुभिः पूज्यते नरः। मूले तु कोकिला देवी देवैः सम्पूज्यते द्विजाः॥२३॥
ततो वसुमती नाम वामे संपूज्यते द्विजाः। सुमतीसङ्गमे पुण्ये स्वर्गेशो नाम शङ्करः ॥२४॥
पूज्यते देवगन्धर्वैर्महापुण्यफलप्रदः। ततो माहेश्वरी नाम ध्वजपर्वतसंभवा ॥२५॥
सुपुण्या सरितां श्रेष्ठा भूतनाथस्य पार्श्वगा। सङ्गमे रामगङ्गायाः सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥२६॥
स्नात्वा माहेश्वरीसङ्गे महेशं पूज्य वै तथा। मूकत्वं मानवानां वै प्रणश्यति न संशयः ॥२७॥
ततो भागीरथी नामा भुवनेशस्य पार्श्वगा। संमिलन्मुनिशार्दूला रामगङ्गासुसङ्गमे ॥२८॥
तत्र स्नात्वा विधानेन वाक्पटुत्वं प्रजायते। ध्वजाख्यगिरिसम्भूता बहवो मुनिसत्तमाः ॥२९॥
सङ्गमे रामगङ्गायाः संगता मुनिसत्तमाः ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पावनपर्वतमाहात्म्ये एकादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

होता है। तदनन्तर पवित्र नदी 'तारिणी' तथा 'रेवा' के सङ्गम में स्नान तथा पितृकृत्य करने पर 'वृषदान' का फल मिलता हैं। 'रेवा' और 'रामगङ्गा' के सङ्गम में पिण्डदान करने से शिवलोक प्राप्त होता है। तब रामगङ्गा में 'श्रीतीर्थ' और 'केदारतीर्थ'[1] हैं। इनमें स्नानादि करने से 'शिव' की प्राप्ति होती है। वहाँ महाभैरवरूपधारी 'केदार' का पूजन करने पर महेन्द्र-भवन प्राप्त होता है। 'कैदारी' और 'रामगङ्गा' के संगम में यह केदार स्थित हैं। तब 'पावन' पर्वत के दक्षिण में 'वसुमती' नदी अनेक नदियों से सङ्गमित 'रामगङ्गा' में प्रविष्ट होती है। उसमें स्नान, 'वासुदेव' का पूजन तथा पितृकृत्य करनेवाला व्यक्ति वसुओं से सम्मानित होता है। इसके मूल में 'कोकिला' देवी का पूजन किया जाता है। तब बाईं ओर 'वसुमती' का पूजन किया जाता है। फिर 'सुमती' के सङ्गम में 'स्वर्गेश' शङ्कर की पूजा होती है। तदनन्तर 'ध्वज' पर्वत से निकलने वाली 'माहेश्वरी' नदी भूतनाथ के बगल से निकल कर 'रामगङ्गा' में मिलती है। वहाँ सङ्गम में स्नान करने पर गूंगा-पन दूर हो जाता है। वहीं पास में 'भुवनेश' के पास से बहने वाली 'भागीरथी' नदी का 'रामगङ्गा' के साथ संगम है। उसमें स्नान करने से व्यक्ति वाक्पटु हो जाता है। मुनिवरों 'ध्वज' पर्वत से निकलने वाली नदियाँ भी 'रामगङ्ग्गा' के साथ संगत होती हैं ॥ १ – ३० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पावनपर्वत' माहात्म्य
नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

1. 'केदारघाट' नाम से जाना जाता है।

११२

ऋषय ऊचुः—

ध्वजपर्वतमाहात्म्यं कथयस्व तपोधन । तत्र स्नानं च लिङ्गानां नदीनां सम्भवं तथा ॥१॥
कुत्र स ध्वजनामा वै पर्वतोऽस्ति तपोधनाः । तमारुह्य कथं पुण्यं को देवस्तत्र पूज्यते ॥२॥

व्यास उवाच—

वामे वै रामगङ्गायाः पावनाख्यो गिरिः स्मृतः । तस्यैव दक्षिणे भागे ध्वजाख्यः पर्वतः स्मृतः ।
उच्छ्रितः शिखराकारो नानाधातुविराजितः । महौषधिमहादीपैः सर्वतः परिदीपितः । ४॥
विद्याधरगणैः सर्वैर्गीयमान इतस्ततः । सिद्धगन्धर्वयक्षाणां परिवारैर्विराजितः ॥५॥
दिव्यधातुसहस्राणामाकरैः परिपूरितः । हिमवन्तं गिरिं नत्वा ध्वजवत्स ध्वजो गिरिः ॥६॥
सेवितः सिद्धगन्धर्वैः श्यामातटनिवासिभिः । चित्रसेनमुखाः सर्वे तमाश्रित्य तपोधनाः ॥७॥
संस्थिताः सन्ति वै सिद्धा विद्याधरगणैः सह । विद्यते स सुपुण्यो वै ध्वजाख्यो मुनिसत्तमाः ॥
तमारुह्य महापुण्यं चतुर्दश्यां समाहितः । सर्वान् कामानवाप्नोति मानवो नात्र संशयः ॥९॥
पञ्चदश्यां तमारुह्य रात्रौ तत्रैव जागरम् । यः करोति महाभागा ध्वजेशं पूज्य शङ्करम् ।१०।
भवन्ति तस्य वशगा दुर्लभाश्चाष्टसिद्धयः । मन्दवारप्रदोषे वै यः समारोहति ध्वजम् ॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥११॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे ध्वजपर्वतमाहात्म्ये द्वादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने पूछा—तपोधन ! अब आप कृपया 'ध्वजपर्वत' की स्थिति, तीर्थस्थान, नदियों का उद्गम एवं तत्रस्थ शिवलिङ्गों के माहात्म्य का वर्णन करें। ध्वज पर्वत कहाँ पर स्थित है ? उस पर आरुढ़ होने का क्या फल है ? वहाँ किन देवों की पूजा होती है ? ॥ १ - २ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! 'रामगङ्गा' के बाईं ओर 'पावन' पर्वत है। उसके दक्षिण में 'ध्वज' पर्वत है। उसका शिखर उन्नत है। अनेक धातुओं और ओषधियों से वह प्रदीप्त है। सिद्ध, विद्याधर, यक्ष आदि के परिवारों से वह पर्वत वेष्टित है। दिव्य धातुओं की इसमें सहस्रशः खानें हैं। 'हिमालय' को नमस्कार करता हुआ यह 'ध्वजा' की तरह स्थित है। 'श्यामा' (काली नदी) के तीरवासी सिद्धों और चित्रसेनादि गन्धर्वों से यह सेवित है। इस पर्वत पर विशेषतः सिद्धों एवं विद्याधर-गणों का वास है। यहाँ 'चतुर्दशी के दिन आरूढ़ होने पर कामनायें पूर्ण होती हैं। पूर्णिमा के दिन जागरण करने से आठों सिद्धियाँ प्राप्त की जाती है। 'शनिप्रदोष' के दिन वहाँ जाने पर कुछ भी शेष नहीं रह जाता ॥ ३ - ११ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'ध्वज' पर्वत माहात्म्य सम्बन्धी
एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

११३

ऋषय ऊचुः—

ध्वजेशस्य च माहात्म्यं कथयस्व तपोधन। कथं स सिद्धिदो देवो मर्त्ये केन प्रकाशितः ॥१॥

व्यास उवाच—

ध्वजेशस्य च माहात्यं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः। सर्वसिद्धिप्रदं पुण्यं धनधान्यविवर्धनम् ॥२॥
यत्र ध्वजं समाधत्ते निकुम्भो गणनायकः। शङ्करस्य महाभागा दुर्धरं देवनायकैः ॥३॥
ध्वजेशो नाम देवेशः सिद्धविद्याधरोरगैः। सेवितो राजते विप्रा उच्छ्रिते ध्वजपर्वते ॥४॥
ध्वजेशं शङ्करं तत्र समर्च्य मुनिसत्तमाः। सर्वान् कामानवाप्नोति मानवो नात्र संशयः ॥५॥
ध्वजेशं प्राप्य यो देवं न समर्चति मानवः। न प्राप्नोति सुखं विप्रा दुःखमाप्नोति नित्यशः ।६।
करवीरस्य कुसुमैर्ध्वजेशं यः प्रपूजति। सिद्धयस्तस्य वशगा भवन्त्येवात्र निश्चितम् ॥७॥
न हि सिद्धिप्रदश्चान्यो ध्वजेशं शङ्करं विना। भूतले मुनिशार्दूलाः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥८॥
सुपुण्यौषधयो यत्र महादेवस्य शूलिनः। क्रीडायां मुनिशार्दूलाः प्रदीपाः प्रचरन्ति हि ॥९॥
सुपुण्यौषधयो यस्य रात्रौ नीराजनाविधिम्। प्रकुर्वन्ति महाभागास्तस्मात् कोऽन्यतमो वरः ॥
ध्वजेशः शङ्करो विप्राः सुपुण्ये ध्वजपर्वते। सिद्धिप्रदः सिद्धगणैरर्च्यते दैवतैः सह ॥११॥
सिद्धिकामैर्महाभागा गन्तव्यं ध्वजपर्वते। पूजनीयो महादेवो ध्वजेशो नान्यथा क्वचित् ॥१२॥

ऋषियों ने कहा—मुनिवर! सर्वसिद्धिदायक एवं धनधान्यवर्धक 'ध्वजेश' का माहात्म्य बतलाने की कृपा करें। उनसे क्या सिद्धि मिलती है? किसने उन्हें विदित कराया है? ॥१॥

व्यासजी बोले—तपस्वियों! अब आप लोग सुनें। जहाँ पर गणनायक 'विकुम्भ'[1] ने 'शङ्कर' की ध्वजा धारण की है, वहीं 'ध्वज' की आकृति के रूप में उन्नत शिखर पर 'ध्वजेश' शिव विराजमान हैं। उनका पूजन कर निःसन्देह सब सिद्धियाँ मिलती हैं। उनका पूजन न करने पर दुःख सम्भावित रहता है। 'कनेल' के फूलों से 'ध्वजेश' का पूजन करने पर सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। 'ध्वजेश' के अतिरिक्त कोई अन्य देव अभीष्ट सिद्धि-दायक नहीं हैं। वहाँ पर बड़ी-बड़ी ओषधियाँ शिवजी की क्रीडा में 'दीपक' का काम करती हैं। ऐसा विदित होता है कि ज्योतिष्प्रदायिनी ओषधियाँ शिवजी को रात्रि के समय नीराजन कर रही हों। अतः इनसे बढ़ कर दूसरा कोई सिद्धिप्रद देव नहीं है। इस कारण सिद्धि के अभिलाषुक लोग 'ध्वज' पर जायें और उनका पूजन करें। प्राचीन काल में सत्ययुग में 'पुण्डरीक'

---

१. शिव के गणेश्वर का नाम। यह राजा दिवोदास के समय में 'मंकन' नामक एक ब्राह्मण को स्वप्न में दिखाई दिये थे। तथा नगर के प्रवेशद्वार पर अपनी पूजा का आदेश दे गए थे। पुत्र की कामना से 'दिवोदास' की रानी 'सुयशा' ने 'गणेश्वर' की यथेष्ट उपासना की, पर असफल रही। अतः क्रुद्ध हो 'दिवोदास' ने इनका मन्दिर ढहवा दिया। इसके पश्चात् 'निकुम्भ' के शाप से काशी शून्य हो गई। किन्तु वहाँ शङ्करजी ने सपत्नीक निवास किया। उन्होंने वहाँ से अन्यत्र न जाने का निश्चय किया। इस कारण काशी नगरी 'अविमुक्त' कहलाने लगी—(ब्रह्माण्ड ३·६७, २८–६५)।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । सिद्धिदं सर्वकामानां तथान्येषां समृद्धिदम् ॥१३॥
पुरा कृतयुगस्यादौ हिमालयतटे शुभे । वैश्यो बभूव धर्मात्मा पुण्डरीकेति विश्रुतः ॥१४॥
निजधर्मरतो नित्यं सर्वदाऽतिथिपूजकः । जितेन्द्रियो जितप्राणः सर्वदा मितभाषणः ॥१५॥
तस्य पुत्रो बभूवाथ सत्यधर्मेति विश्रुतः । सत्यधर्मे रतः शान्तः शिवार्चनरतः सदा ॥१६॥
पितृदेवार्चनपरस्तथा ब्राह्मणपूजकः । निजवृत्तिं स सत्येन चकार मुनिसत्तमाः ॥१७॥
मितवाङ् मितभुक् शान्तो वदान्यो सत्यवृत्तिदः । सत्यशीलः स धर्मात्मा सत्यधर्मा बभूव ह ॥
क्रतून् बहुविधांश्चक्रे वैश्यः परमधार्मिकः । देवालयानि च तथा वापीकूपतडागकान् ॥१९॥
सत्यधर्मा स धर्मात्माऽभोजयद् ब्राह्मणानपि । न तस्य विमुखः कश्चिद् बभूव मुनिसत्तमाः ॥
स कदाचिद् दरिद्रः सन् सभार्यो विपिनं ययौ । सिद्धिमिच्छन् महाभागा महादेवाद्वृषध्वजात्॥
ददर्श स महारण्ये योगिनं शिवरूपिणम् । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं सम्भाषन्तं शिवेति च ॥२२॥
तमुवाच प्रणम्याशु सत्यधर्मा तपोधनाः । सम्पूज्य विधिवत्तत्र विश्वस्य शिवयोगिनम्[1] ॥२३॥

सत्यधर्मोवाच[2]—

कुशलं भवतो देहे कस्मात् त्वमिह संगतः । किमत्र विपिने घोरे प्रपश्यसि वदस्व माम् ॥२४॥

शिवयोग्युवाच[3]—

कुशलं योगिनां वैश्य शिवाराधनजं[4] स्मृतम् । नाहं शिवं प्रपश्यामि तेन मे कुशलं नहि ॥२५॥
शङ्करं द्रष्टुमिच्छामि विपिने पार्षदप्रियम्[5] । सिद्धिदं देववर्यानां वरदं विश्वपूजितम् ॥२६॥
यावत्तं न प्रपश्यामि वने तावद् भ्रमाम्यहम्[6] । दृष्ट्वा तमर्चयिष्यामि स यावत्सम्प्रतुष्यति ॥

उनको नहीं देखता, तब तक मैं भ्रमण करता रहूँगा। उनका पूजन करने से वे अवश्य प्रसन्न नाम का एक वैश्य था। वह धार्मिक, जितेन्द्रिय, मितभाषी और अतिथिपूजक था। उसका पुत्र 'सत्यधर्मा' बड़ा शिवभक्त एवं सत्यनिष्ठ था। वह अपनी वृत्ति में भी सत्यनिष्ठ था। देव, ऋषि, ब्राह्मण एवं पितरों का भी पूजक रहा। साथ ही मितभोजी, शान्त एवं सदा सत्यशील तथा उदार रहा। उसने अनेक यज्ञ सम्पन्न किए तथा वृक्ष, उद्यान, वापी, कूप, तालाव, मन्दिर आदि भी बनवाये। वह ब्राह्मण-भोजन एवम् अतिथि-सत्कार से कभी विमुख नहीं रहा। दुर्भाग्य-वश दरिद्र होने पर वह सपत्नीक जंगल में चला गया। शिवजी की कृपा से सिद्धि प्राप्त करना चाहता था। एक दिन भस्म धारण किए हुए एक 'शिवयोगी' को उसने देखा। उन्हें प्रणामादि कर सत्यधर्मा ने उनसे कहना आरम्भ किया ॥ २ - २३ ॥

सत्यधर्मा बोला—योगिन्! कुशल से तो हैं? आप इस घोर वन में क्यों भ्रमण कर रहे हैं? ॥ २४ ॥

शिवयोगी ने उत्तर दिया—वैश्यवर! योगियों की कुशल तो शिवजी की आराधना में ही निहित है। किन्तु मैंने 'शिव' का दर्शन नहीं किया है। अतः कैसे कुशली कहूँ? मैं तो पार्षदप्रिय शङ्कर को देखना चाहता हूँ। वह देव 'वरद' एवं विश्वपूजित हैं। जब तक मैं

---

१. 'शिवयोगिनः'—'ख'।
२. सत्यधर्मा उवाच'—'ख'।
३. 'शिवयोगी उवाच'—'ख'।
४. 'शिवाराधनतः'—'ख'।
५. 'पार्षदप्रिये'—'ख'।
६. 'वने तावच्चराम्यहम्'—'ख'।

तुष्टितः पार्वतीनाथः सिद्धिं दास्यति दुर्लभाम् । तस्मात् सिद्धिं प्रलप्स्याम्यु तपिष्यामि महत्तपः ।
तदहं विपिने घोरे ध्यायामि नहि संशयः ।

वैश्य उवाच—

तमेवाहं महाभाग महादेवं वृषध्वजम् ॥ २८ ॥
द्रष्टुमिच्छामि सिद्धयर्थमनया भार्यया सह । सिद्धिमिच्छाम्यहमपि विचरामि महावने ॥२९॥

व्यास उवाच—

ततस्तौ सिद्धिमिच्छन्तौ सहधर्मचरौ वने । विचरन्तौ महाभागौ संस्मरन्तौ महेश्वरम् ॥३०॥
ततः काले व्यतीते तु चरन्तौ वैश्ययोगिनौ । शंकरात् सिद्धिमिच्छन्तौ ययतुर्ध्वजपर्वतम् ॥३१॥
ततस्तौ पर्वते रम्ये सिद्धकिन्नरसेविते । महौषधिमहादीप-दीपराजि-विराजिते ॥३२॥
सिद्धगन्धर्वमुख्यानां महानादनिनादिते । कन्दरावासिभिः सिद्धैः सर्वतः परिपूरिते ॥३३॥
विद्याधराप्सरोयक्षैर्गीयमानगुणोदये । रात्रौ वासं महाभागौ चक्रतुर्वैश्ययोगिनौ ॥३४॥
तत्र शुश्रुवतुर्विप्रा महौषधिसमीरिताम् । सर्वकामदुघां वाणीं परस्परकथोद्गताम् ॥३५॥

महौषधय ऊचुः—

पर्वतं यः समारुह्य चतुर्दश्यां ध्वजेश्वरम् । समभ्यर्च्य महाभागाः सिद्धिं प्राप्नोति निश्चितम्* ।
मानवा बहवो मूढा निवसन्ति महीतले । ये नायान्ति चतुर्दश्यां ध्वजाख्यं पर्वतोत्तमम् ॥३७॥
ये वै चास्मानविज्ञाय संस्थिताः सन्ति भूतले । न ते विन्दन्ति संसिद्धिमनभ्यर्च्य ध्वजेश्वरम् ॥

व्यास उवाच—

ओषधीनां वचः श्रुत्वा सिद्धाः पर्वतवासिनः । ऊचुः सिद्धिं चतुर्दश्यां कथमत्र लभन्ति हि ।३९।
ध्वजेशं शङ्करं पूज्य कथमत्र महागिरौ । प्रलभन्ति कथं सिद्धिं मानवास्तद् ब्रुवन्तु नः ॥४०॥

होंगे । प्रसन्न होने पर पार्वती-पति दुर्लभ सिद्धि प्रदान कर देंगे । फिर भी मैं तपस्या करूँगा। तथा इस घोर वन में शिव का ध्यान करूँगा ॥ २५ –२७ ॥

वैश्य ने कहा—महाभाग ! उसी वृषध्वज महादेव का दर्शन मैं भी करना चाहता हूँ। मैं भी सिद्धि का अभिलाषुक हूँ । इसी कारण वन में विचरण कर रहा हूँ ॥ २८ – २९ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! तदनन्तर वे दोनों महेश्वर का स्मरण करते हुए वन में विचरण करते रहे । कालान्तर में वे दोनों 'ध्वज' पर्वत पर पहुँचे । वह सिद्ध आदि से सेवित एवम् महौषधियों से प्रदीप्त था । वहाँ पर कन्दराओं में निवास करने वाले सिद्ध, यक्ष, विद्याधर, अप्सरायें आदि सभी शिव की स्तुति में संलग्न रहे । उन दोनों ने रात्रिवास वहीं किया। उन्होंने महौषधियों के वार्तालाप से कामनाओं की पूर्ति करने वाली वाणी सुनी ॥३०–३५॥

महौषधियाँ बोलीं –हे महाभागों ! जो मनुष्य 'ध्वज' पर्वत पर चतुर्दशी के दिन आरूढ़ हो 'ध्वजेश' का पूजन करते हैं, उन्हें निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है । संसार में ऐसे भी मूढ़ जन हैं, जो चतुर्दशी को 'ध्वज' पर्वत पर नहीं चढ़ते । साथ ही ऐसे भी मूढ़ जन हैं, जो हमारे प्रभाव (ओषधियों के) को भी नहीं जानते । उन्हें सिद्धि क्यों कर प्राप्त हो ? ।३६-३८।

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार ओषधियों की वाणी सुन कर पर्वतवासी सिद्धों ने पूछा

---

* अयं श्लोकः 'ख' पुस्तके ३८ श्लोकानन्तरं विद्यते ।

महौषधय ऊचुः—

एकाकी जागरं यस्तु प्रकरोति ध्वजेश्वरम्। समर्च्य रात्रौ विधिवत् स सिद्धिं याति मानवः ॥
सर्वौषधिगणाः सर्वे तद्दिने सिद्धनायकाः। फलं स्वं स्वं प्रयच्छामो वयं चात्र न संशयः ॥४२॥
सिद्धिश्चास्मासु लोकानां विद्यते नात्र संशयः। शिवभक्तेषु संसिद्धिं दर्शयामो न चान्यथा ॥४३॥
ध्वजेशं यो महादेवं चतुर्दश्यां समर्चति। गन्धपुष्पाक्षतैस्तोयैस्तस्य सिद्धिर्न दुर्लभा ॥४४॥
ध्वजेशं पूज्य देवेशं योऽस्मान् समुपसर्पति। स्वां स्वां सिद्धिं वयं तस्मै प्रयच्छामो न संशयः ॥

व्यास उवाच—

महौषधीनां सिद्धानां संवादं शृण्वतोस्तयोः। सुप्रभाता च रजनी बभूव मुनिसत्तमाः ॥४६॥
ततः प्रातः समुत्थाय कृतावश्यक्रियौ हि तौ। ददर्शतुर्महादेवं ध्वजेशं सिद्धसेवितम् ॥४७॥
पूजयामासतुर्देवं ध्वजेशं तत्र संस्थितौ। करवीरस्य कुसुमैर्गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥४८॥
महौषधीनां वचनं स्मरमाणौ तपोधनाः। चतुर्दश्यां निराहारौ पूजयामासतुः शिवम् ॥४९॥
रात्रौ जागरणं तत्र चक्रतुर्वैश्ययोगिनौ। महौषधिमहापुष्पैः पूजयन्तौ महेश्वरम् ॥५०॥
तत ओषधयो विप्रा निशान्ते प्रभुपूजने। स्वां स्वां सिद्धिं ददुस्ताभ्यामनुज्ञाताः शिवेन हि ॥

ततः प्रभाते विमलेन्दुतारके प्राप्याष्टसिद्धिर्ययतुर्गृहाश्रमौ।
ध्वजेश्वरं पर्वतवासिनं प्रभुं समर्च्य तोयैः कुसुमैरपि द्विजाः ॥ ५२ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे ध्वजेश्वरमाहात्म्ये त्रयोदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

कि चतुर्दशी को यहाँ कैसे सिद्धि मिलती है तथा 'ध्वजेश' का पूजन करने पर मानवों को कैसी सिद्धि प्राप्त होती है ? ॥ ३९ – ४० ॥

महौषधियों ने कहा—जो मनुष्य एकाकी 'ध्वजेश' का पूजन कर रात्रिजागरण करता है, उसे सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धजनों ! हम उस दिन अपना प्रभाव लोगों को देते हैं। लोगों की सिद्धि हमारे अधीन है। विशेषतः हम शिवभक्तों को सिद्धि प्रदान करते हैं। चतुर्दशी के दिन 'ध्वजेश' का पूजन करने वालों को सिद्धि असम्भव नहीं है। अतः 'ध्वजेश' का पूजन कर हमारे पास आने वालों को सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ४१ – ४५ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! महौषधियों और सिद्धजनों के संवाद को सुनते-सुनते रात बीत गई। प्रातःकाल होने पर शौच-स्नानादि से निवृत्त हो वे दोनों सिद्ध-सेवित 'ध्वजेश' का दर्शन करने के उपरान्त गन्ध, अक्षत, पुष्पादि से पूजन कर दीपदान करने लगे। महौषधियों के कथनानुसार उन दोनों ने चतुर्दशी के दिन निराहार व्रत रखकर शङ्कर का पूजन किया। वहाँ उन दोनों ने वहीं खिलने वाले वनस्पतियों के पुष्पों को चढ़ाकर रात्रि-जागरण किया। तब शिवजी की आज्ञा से औषधियों ने उन को सिद्धियाँ दीं। इस प्रकार वे दोनों पूजोपरान्त अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त कर अपने-अपने स्थान को चले गए ॥ ४६ – ५२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'ध्वजेश-माहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

११४

व्यास उवाच—

ध्वजस्य दक्षिणे भागे पुण्या ध्वजगुहा स्मृता। गुहायां शङ्करं पूज्य गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥१॥
ध्वजस्य पूर्वभागे वै पुण्या सिद्धगुहा स्मृता। सिद्धेशं तत्र देवेशं समर्च्य विधिपूर्वकम् ॥२॥
तत्र सिद्धजलैः स्नात्वा मूकत्वं नश्यति द्विजाः। नन्दा चर्मण्वती चैव तथा सत्यवती नदी ॥३॥
एतास्तिस्रो महापुण्याः सम्भूता ध्वजपर्वतात्। सम्पीत्वा जलमेतासां लभेद् गोदानजं फलम् ॥
एतास्तिस्रो महापुण्याः श्यामायाः सङ्गमे गताः। नन्दाचर्मण्वतीमध्ये चर्मेशं पूजयेच्छिवम् ।५।
सम्पूज्य मानवो याति शिवलोकं न संशयः। स्नात्वा नन्दाजलैः पुण्यैः ध्वजेशं पूजयेच्च यः ।६।
स धनं विपुलं प्राप्य चान्ते शिवपुरं व्रजेत्। तस्य पश्चिमभागे वै कालिकां पूजयेद् द्विजाः ॥७॥
कालिकाया जलैः स्नात्वा नरः शिवपुरं व्रजेत्। ध्वजस्य पश्चिमे भागे कालापी सरितां वरा।
बभूव मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशिनी। सरयूस्नानजं पुण्यं तस्यां स्नात्वा लभेद् ध्रुवम् ॥९॥
मूले तस्य महादेवी ततः शम्भुः प्रपूज्यते। ततो बला सरिच्छ्रेष्ठा कालापी-संगमे गता ॥१०॥
बलेशं शङ्करं पूज्य तत्र यान्ति परां गतिम्। ततो भगवती नाम कालापीसंगमे गता ॥११॥
भाण्डेशं शङ्करं मध्ये कालापीसरितोर्द्विजाः। पूजयित्वा शिवं याति मानवो नात्र संशयः ।१२।

व्यासजी ने फिर कहा—'ध्वज' के दाहिनी ओर 'ध्वजगुहा' है। वहाँ शङ्कर का पूजन कर गङ्गास्नान का फल प्राप्त होता है। फिर 'ध्वज' के पूर्व भाग में 'सिद्धगुहा' है। वहाँ 'सिद्धेश' का पूजन कर सिद्धजलों से स्नान करने पर गूंगापन दूर होता है। ध्वज-पर्वत से 'नन्दा', 'चर्मण्वती'[1] तथा 'सत्यवती'[2]—ये तीन नदियाँ निकलती हैं। इनका जल पीने से गोदान का फल मिलता है। ये तीनों नदियाँ 'काली' (श्यामा) नदी में मिलती हैं। 'नन्दा' और 'चर्मण्वती' के मध्य 'चर्मेश' का पूजन कर शिवलोक प्राप्त होता है। 'नन्दा' में स्नान कर 'ध्वजेश' का पूजन करने से धन-लाभ होता है। उसके पश्चिम भाग में 'कालिका' का पूजन तथा कालिका-जलों में स्नान कर 'शिवलोक' प्राप्त होता है। 'ध्वज' के पश्चिम में 'कालापी'[3] नदी है। उसमें स्नान करने से गङ्गास्नान का फल मिलता है। उसके मूल में 'महादेवी'[4] और 'शङ्कर' का पूजन होता है। तब 'बला'[5] नदी और 'कालापी' का सङ्गम है। वहाँ 'बलेश' शङ्कर का पूजन होता है। तब 'भगवती' नदी 'कालापी' में मिलती है। 'कालापी-भगवती' के मध्य में 'भाण्डेश' शिव का पूजन किया जाता है। तब अर्जुनी'[6] नदी का 'कालापी'[7] से मिलन

---

१. 'चरमगाड़' नाम से जानी जाती है। २. 'सतगड़'। ३. स्थानीय नाम—'कालिपानि' गाड़। ४. यहाँ शिवरात्रि का मेला लगता है। ५. 'वेपुल' नाम से जानी जाती है। ६. 'ध्रुनी' गाड़ के नाम से विदित है। ७. नाम-साम्य से स्थानीय परम्परा ने 'कलाप' नगर से इसका सम्बन्ध जोड़ा है। 'मत्स्यपुराण' के अनुसार 'हिमालय' के पूर्वी ढाल पर 'कलाप' नगर बसा था—'तस्य पूर्वे तटे रम्ये सिद्धवासमुदाहृतम्। 'कलाप' ग्राममित्येवं नाम्नाख्यातं मनीषिभिः'—(४१.४३)। यह बड़े-बड़े ऋषियों के निवास तथा

ततोऽर्जुनी सरिच्छ्रेष्ठा कालापी-सङ्गमे गता। तत्र स्नात्वा च मनुजो गङ्गास्नानफलं लभेत् ।।
ततोऽर्जुनी महापुण्या सङ्गमे मुनिसत्तमाः। सङ्गता रामगङ्गायाः सर्वपापप्रणाशिनी ।।१४।।
अर्जुनी-रामसरितोर्मध्ये स्नात्वा तपोधनाः। पूर्ववत्पितृकृत्यं च विधायाशु शिवं व्रजेत् ।।१५।।
ततोऽर्जुनीसरिन्मध्ये भवानीं पूज्य वै द्विजाः। पूजितां क्षेत्रपालेन तथा देवर्षिसेविताम् ।।१६।।
सर्वान् कामानवाप्नोति शिवलोकं च गच्छति। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तत्र चण्डीं प्रपूज्य वै ।।
मनोऽभिलषितां सिद्धिं प्राप्नोत्येव न संशयः। तदूर्ध्वभागे पुण्याख्यं भार्गवीसङ्गमं स्मृतम् ।१८।
भार्गवेशं प्रपूज्याशु पितृकृत्यं विधाय वै। कुलषष्टिं समुत्तार्य शिवलोके महीयते ।।१९।।
ततो गुणवती पुण्या शैलासरसमुद्भवा। सङ्गमे रामगङ्गायाः सङ्गता मुनिसत्तमाः ।।२०।।
मूले तस्याथ कपिला पूज्यते मुनिसत्तमाः ।।
वामे चैवासुरस्तस्याः पर्वतेशेति गीयते। तस्यां स्नात्वा नरो याति सत्यलोकं न संशयः ।२१।
गोकर्णेशो महादेवो वामे तस्याः प्रपूज्यते। दक्षिणे शाङ्करी देवी पूज्यते सिद्धनायकैः ।।२२।।
कपिलां शाङ्करीं पूज्य तथा गोकर्णसंज्ञकम्। कुलानां दशमुत्तार्य सत्यलोकं व्रजेन्नरः ।।२३।।

होता है। वहाँ स्नान करने से गङ्गास्नान का फल मिलता है। तदनन्तर 'अर्जुनी' नदी 'रामगङ्गा' से सङ्गमित होती है। वहाँ स्नान करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है। तब 'अर्जुनी' के मध्य 'क्षेत्रपाल' से पूजित 'भवानी' का पूजन कर सिद्धि प्राप्त होती है। 'अष्टमी' और 'चतुर्दशी के दिन 'चण्डी' का पूजन कर मनोऽभिलषित सिद्धि मिलती है। उसके ऊपर 'भार्गवी'[1] सङ्गम है। वहाँ स्नान एवं 'भार्गवेश' का पूजन एवं पितृकृत्य सम्पादित करने पर मानव अपने साठ कुलों का उद्धार हो 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित होता है। तब 'शैलासर' से निकलने वाली 'गुणवती' नदी 'रामगङ्गा' में मिलती है। उसके मूल में 'कपिला' की पूजा होती है। उसके वाम भाग में 'असुर'[2] 'पर्वतेश' हैं। 'सत्यलोक' में प्रतिष्ठित होना है। वहाँ स्नान करने का फल उसके बाईं ओर 'गोकर्णेश'[3] और दाहिनी ओर 'शाङ्करी'[4] देवी की पूजा होती है। इन

शास्त्रचर्चा के लिए प्रसिद्ध रहा है (भाग० १०, ८७-७)। अन्यत्र भागवत (९, १२-६) के अनुसार सूर्यवंश के 'अग्निवर्ण', 'शिघ्र', 'मरु' आदि राजा तथा 'चन्द्रवंश' के 'शान्तनु' के बड़े भाई 'देवापि' इसी नगर के निवासी थे। इनमें 'मरु' और 'देवापि' योगबल-सम्पन्न थे। ये दोनों राजर्षि कलियुग के अनन्तर नष्ट हुए 'सूर्य' एवं 'चन्द्र' वंश को क्रमशः पुनः स्थापित करेंगे और विलुप्त वर्णाश्रमव्यवस्था को स्थापित करेंगे। 'विष्णुपुराण' (३-६-१७) के अनुसार 'कलापवन' में 'इक्ष्वाकु' को पितरों ने उपदेश दिये थे।

१. 'भद्रिका' गाड़। २. 'असुरचुल' (पिठौरागढ़)।

३. 'छाना' गाँव में इनकी स्थिति है। 'गोकर्ण' के सम्बन्ध में 'ब्रह्माण्ड-पुराण' (३, १३-१९) में यह वर्णित है कि 'मालाबार' में आधे योजन के विस्तार में 'गोकर्ण' तीर्थ स्थित है। यहाँ 'धूतपापस्थल' नामक वन है, जो 'रुद्र' को अति प्रिय है। यह समुद्र में चला गया था। पर ऋषियों के आग्रहवश 'बलराम' के कहने पर वरुण ने इसे वापस दे दिया (ब्रह्माण्ड ३-५६) तथा (७-१२ से अध्याय ५८ पूरा)। यम यहाँ तप कर लोकपाल हो गए। रावण, कुम्भकर्ण आदि ने भी यहाँ तप किया था (रामायण)। इस स्थान पर शिवमूर्ति का नाम भी 'गोकर्णेश्वर' है। भागवत (माहात्म्य) के अनुसार 'धुन्धुकारी' के भाई का नाम 'गोकर्ण' था। जिसने भागवत का सप्ताह सुना तथा अपने भाई 'धुन्धुकारी' को तार दिया था।

४. 'वैष्णवी' देवी के नाम से विदित हैं।

सङ्गमे रामगङ्गायाः संस्नात्वा मुनिसत्तमाः। पितृकृत्यं विधायाशु सोमयागफलं लभेत् ॥२४॥
ततः खगवतीसङ्गे स्रोतमुत्तीर्य वै द्विजाः। गत्वा स्नात्वा च विधिवदश्वदानफलं लभेत् ॥२५॥
ततो दक्षवतीपुण्यासङ्गमे[1] पूर्ववच्चरेत्। स्नात्वा स्वर्णदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥२६॥
ततस्तु शैलजासङ्गे गत्वा स्नानं विधाय च। अचलां श्रियमाप्नोति शैलजायाः प्रभावतः ।२७।
सरयू-रामयोः सङ्गे ततो गत्वा तपोधनाः। निमज्य पितृकृत्यं च विधायाशु शिवं व्रजेत् ।२८।
बिल्ववत्यां ततो गत्वा संस्नात्वा मुनिसत्तमाः। देवीं बिल्वेश्वरीं पूज्य नरो याति परां गतिम्।
ततस्तु सरयूमध्ये सुकटचाः सङ्गमं स्मृतम्। तत्र स्नात्वा च मनुजः कुलानां तारयेद्दश ॥३०॥
ततस्तु सरयूमध्ये तीर्थं गोविन्दसंज्ञकम्। तत्र स्नात्वा पितृंस्तर्प्यं गोविन्दं पूज्य वै द्विजाः॥
कुलानां शतमुत्तार्यं विष्णुलोके महीयते। ततो गणवती पुण्या दिव्या कूर्माचलोद्भवा ॥३२॥
सरयूसङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः। तत्र स्नात्वा गणेशानं पूज्य यान्ति परां गतिम् ।३३।
ततः श्यामा महापुण्या सरयूसङ्गमे गता। तत्र स्नात्वा च मनुजो विष्णुलोके महीयते ॥३४॥
माहात्म्यं रामगङ्गायायाः यः शृणोति समाहितः। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य स याति परमां गतिम् ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे रामगङ्गामाहात्म्ये चतुर्दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

तीनों का पूजन करने से दस कुलों के उद्धारसहित 'सत्यलोक' प्राप्त होता है। तब 'रामगङ्गा' के सङ्गम में स्नान एवं पितृकृत्य सम्पादित कर 'सोमयाग' का फल-लाभ करें। फिर 'खगवती' के सङ्गम में स्नान करने पर 'अश्वदान' का फल मिलता है। तब 'दक्षवती' तथा 'शैलजा' के सङ्गमों में स्नानादि करने से क्रमशः 'सुवर्णदान-फल' तथा 'अचल सम्पत्ति' मिलती है। तदनन्तर 'सरयू' और 'रामगङ्गा' के संगम में स्नानादि करने पर 'शिव' जी की ओर जाये। तत्पश्चात् 'बिल्ववती' में स्नान एवं 'बिल्वेश्वरी' का पूजन करने पर 'सद्गति' होती है। तब सरयू में 'सुकटी' का संगम है। उसमें स्नान करने से दस कुलों का उद्धार होता है। फिर 'सरयू' के मध्य में 'गोविन्द' तीर्थ है। उसमें स्नान, तर्पण एवं पूजनादि करने से सौ कुलों के तारने के साथ 'विष्णुलोक' प्राप्त होता है। तब 'कूर्माचल' से निकलने वाली 'गणवती' नदी 'सरयू' में मिलती है। वहाँ स्नान और 'गणपति' का पूजन कर परम गति प्राप्त होती है। फिर 'श्यामा' नदी आगे चलकर 'सरयू' के साथ सङ्गमित होती है[2]। वहाँ स्नान करने पर 'विष्णुलोक' मिलता है। जो मनुष्य 'रामगङ्गा' का माहात्म्य ध्यान पूर्वक सुनता है, वह अपने इक्कीस कुलों को तार कर 'सद्गति' प्राप्त करता है ॥ १ - ३५ ॥

॥ स्कन्दपुराणातर्गत मानसखण्ड में 'रामगङ्गा-माहात्म्य' नामक
एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'यक्षवतीपुण्यासङ्गमे'—'ख'।

२. 'पञ्चेश्वर' नामक स्थान पर 'रामगङ्गा' और 'काली' नदियों का सङ्गम है। यहाँ विद्युत्-उर्जा के लिये बड़ा भारी केन्द्र (डैम) बन रहा है। पश्चिमी नेपाल के लिये यह केन्द्र वहाँ के विकास में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

११५

ऋषय ऊचुः—

पञ्चेन्द्रियकृतानां च पातकानां च विच्युतिः। कमाराध्य च गत्वा च जायते मुनिसत्तम ॥१॥
पञ्चानामपि भूतानां विमुक्तिः कुत्र विद्यते। कथयस्व प्रसादेन यद् गोप्यमपि सुव्रत ॥२॥
समो वा कर्मभूतानां पातकानां च विच्युतिः। जायते यत्र विप्रर्षे क्षेत्रं तद्वद विस्तरात् ॥३॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम्। सरयू-श्यामयोर्मध्ये पुण्यः स्थाकिलपर्वतः[1] ॥४॥
[2]स तस्याधित्यगो देवः पञ्चेशो नाम विद्यते। सरयूश्यामयोर्मध्ये पञ्चेशाख्यो महेश्वरः ॥५॥
विद्यते तत्र देवेशः पञ्चभूतैः प्रपूजितः। पञ्चेशसदृशं क्षेत्रं नास्ति भूमण्डले क्वचित् ॥६॥
यथा विश्वेश्वरो देवो वैद्यनाथो यथा हरः। पूज्यते देवगन्धर्वैस्तथा पञ्चेश्वरो हरः ॥७॥
विश्वेशपूजनात्पूर्वं द्विगुणं तस्य दर्शने। पूजने त्रिगुणं प्रोक्तम् अभिषिच्य चतुर्गुणम् ॥८॥
मुक्ताफलैश्च बिल्वैश्च फलं शतगुणं स्मृतम्। सहस्रगुणितं पुण्यं स्वर्णपङ्कजपूजनैः ॥९॥
अनन्तगुणितं पुण्यमभिषिच्य गवां पयैः[3]। अभिषिच्य च सम्पूज्य पञ्चेशं मुनिसत्तमाः ॥१०॥
पञ्चेन्द्रियकृतान् पापान् मुच्यते नात्र संशयः। चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तथैव सोमवासरे ॥११॥
मन्दवारप्रदोषे च पञ्चेशं पूज्य शङ्करम्। पञ्चेन्द्रियकृतं पापं प्रणश्यति न संशयः ॥१२॥
पृथिवी वायुराकाश आपोग्निर्मुनिसत्तमाः। यमाराध्य स्थितास्तत्र तस्मात्कोऽन्यतमो वरः ॥
मनोवाक्कायजातानां निष्कृतिं स करोति हि। सरयूश्यामयोर्मध्ये निमज्य विधिपूर्वकम् ।१४।

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! पाँचों इन्द्रियों से किए गए पातकों का नाश किस देवता की आराधना तथा किस स्थान पर करने से होता है ? एवं पञ्चभूतों की विमुक्ति किस स्थान पर होती है ? कृपया इन बातों को विस्तारपूर्वक बतलायें ॥ १ – ३ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! अब मैं आप लोगों को एक उत्तम क्षेत्र बतलाता हूँ। आप सुनें। 'सरयू' और 'श्यामा' (काली) नदियों के मध्य 'स्थाकिल' पर्वत है। उसकी अधित्यका[4] (समतलभूमि) में पञ्चेश्वर' महादेव हैं। वे 'पञ्चभूतों' से पूजित हैं। ऐसा क्षेत्र अन्यत्र सुलभ नहीं। 'विश्वेश्वर' एवं 'वैद्यनाथ' आदि के समान 'पञ्चेश्वर' भी देवों और गन्धर्वों से पूजित हैं। इनके दर्शन से 'विश्वनाथ' की अपेक्षा द्विगुणित, पूजन से त्रिगुणित, अभिषेक से चतुर्गुण, मौक्तिक-बिल्वफलों से शतगुण, स्वर्णकमलों से सहस्र गुण तथा गाय के दूध से रुद्राभिषेक करने पर अनन्त गुणित फल मिलता है। मुनिवरों ! इस प्रकार 'पञ्चेश्वर' का पूजन करने से पाँचों इन्द्रियों के पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रति चतुर्दशी, सोमवार तथा शनि-प्रदोष के दिन उक्त रीति से पूजन करने पर निःसन्देह पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। पृथिव्यादि

---

१. 'पुण्यो थाकिल्पर्वतः'—'ग्र'।   २. 'तत्रस्याधित्यगो देवः'—इत्यन्यत्र पाठः।

३. 'गोदुग्धस्याभिषेचने'—इति पाठः साधुः।   ४. 'थल-केदार' के नाम से विदित है।

हिमालयतटे रम्ये स्याकिलाधित्यगं द्विजाः । पञ्चेशं देवदेवेशं योऽपसर्पति मानवः ॥१५॥
पितृकृत्यं विधायाशु पञ्चेशं योऽपसर्पति । सर्वेषां पातकानां च निष्कृतिं प्राप्य सुव्रताः ॥१६॥
समुद्धृत्य शिवं याति कुलमेकोत्तरं शतम् ।

ऋषय ऊचुः—

तीर्थानां वद विप्रर्षे माहात्म्यं बहुवर्णितम् ॥ १८ ॥
क्षेत्रस्यापि च माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामः सुव्रत । तस्य तीर्थे [1]सरोजायास्तथा स्नानफलं वद ॥

व्यास उवाच—

सर्वत्र सरयूपुण्या सरोवरसमा स्मृता । स्थानत्रये विशेषेण वर्ण्यते मुनिसत्तमाः ॥२०॥
वागीशे रामक्षेत्रे च तथा पञ्चेश्वराह्वये । दुर्लभा वर्ण्यते पुण्या देवतैरपि सुव्रताः ॥२१॥
हिमालयतटे रम्ये पुण्या व्यासाश्रमोद्भवा । सरयूसङ्गमे पुण्या श्यामा नाम समागता ॥२२॥
श्यामायाः सङ्गमे पुण्या विशेषेण तु वर्ण्यते । श्यामायाः सङ्गमे स्नात्वा नरो हरिपदं व्रजेत् ॥
इतिहासं वदिष्यामि[2] शृण्वन्तु सुसमाहिताः । स्मरणात्पठनात्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
पुरा कृतयुगस्यादौ देवलो[3] नाम नामतः । बभूव शूद्रो दुष्टात्मा विष्टङ्कुतनयो[4] द्विजाः ।२५।
मनसा कर्मणा वाचा तथा बाह्येन्द्रियैरपि । चकार पापं दुष्टात्मा सर्वासां रतिलालसः ॥२६॥
बुभुजे मृगयां कृत्वा मृगमांसं सदैव हि । चाण्डालीगमनं चक्रे सर्वदा रतिलालसः ॥२७॥
स कदाचित्समायान्तं सुपुण्यं शिवयोगिनम् । सम्पूज्य पातकानां वै निष्कृतिं पर्यपृच्छयत् ।२८।
सोवाच निष्कृतिं तस्मै पातकानां तपोधनाः । पञ्चेश्वराह्वयं क्षेत्रं स्याकिलोपत्यगं द्विजाः ।२९।

पञ्च तत्त्वों के आराध्य देव की अपेक्षा और दूसरा कौन महत्तर हो सकता है ? मन, वचन तथा कर्म द्वारा किए गए पातकों के विनाशक यही शिव हैं। जो व्यक्ति हिमालय के तट पर 'स्याकिल'[२] की अधित्यका पर विराजमान 'पञ्चेश्वर' के समीप जाता है और 'श्यामा-सरयू' के सङ्गम में स्नान पुरस्सर पूजन एवं पितृकृत्य करता है, उसके सब पाप विलीन हो जाते हैं। साथ ही एक सौ एक कुलों का उद्धार भी होता है ॥ ४ – १७ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—विप्रर्षे ! आपने तीर्थों का माहात्म्य तो बतला दिया। अब आप कृपया क्षेत्रों का वर्णन करें। 'सरयू' के तीर्थ में स्नान का फल भी बतलायें ॥ १८–१९ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनियों ! 'सरयू नदी 'मानस' के समान पवित्र है। वह तीन स्थानों पर विशेष पुण्यप्रद कही गई है—(१) वागीश्वर, (२) रामेश्वर तथा (३) पञ्चेश्वर। इन स्थानों पर देवों को भी वह दुर्लभ है। 'हिमालय' के रम्य तट 'व्यासाश्रम' (व्यांस) से उद्‌भूत हो 'श्यामा' नदी 'सरयू' के साथ 'पञ्चेश्वर' में मिलती है। वहाँ 'काली' नदी का विशेष माहात्म्य है; वहाँ स्नान करने पर 'हरिपद' मिलते हैं। इसके माहात्म्य के सुनने, पढने एवं स्मरण करने के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध आख्यान सुनें। सत्ययुग के आदि में 'विष्टङ्कु' का पुत्र 'देवल' शूद्र बड़ा दुष्ट रहा। वह मनसा, वाचा, कर्मणा बड़ा पापी तथा व्यभिचारी था। वह आखेट के अनन्तर मांस-भक्षण कर चाण्डाली-गमन भी कर लेता था। उसने उधर एक शिवयोगी को आते हुए देख अपने पापों के निस्तार का उपाय पूछा। 'शिवयोगी' ने उसे

---

१. सरसः=मानसरसः, जाता=उत्पन्ना—इति सरोजा='सरयूः' इत्यर्थः।
२. 'कथयिष्यामि'—'ख'। ३. 'देवलो'—'ख'। ४. 'विष्कङ्कुतनयो'—'ख'।

सोवाच सकलं ज्ञेयं क्षेत्रं शूद्रो महामनाः । कथं क्षेत्रेश्वरो देवः कानि तीर्थानि सन्ति वै ॥३०॥
सोवाच सुचिरं ध्यात्वा शूद्रं तं पतितं द्विजाः । हिमालयतटे रम्ये दिव्या व्यासाश्रमोद्भवा ॥
श्यामा नाम[1] सुपुण्याख्या सरयूसङ्गमे गता । तयोर्मध्ये महादेवः पञ्चेशेति प्रकथ्यते ॥३२॥
सह देव्या निवसति पञ्चभूतैर्निषेवितः । तत्र तीर्थानि भूतानि पञ्चानां तानि वै शृणु ॥३३॥
सरयूश्यामयोर्मध्ये निमज्य सागराह्वये । गन्तव्यं ब्रह्मतीर्थे वै तयोर्नद्योः सुमध्यगे[2] ॥३४॥
निमज्य विधिवत्तत्र पितृकृत्यं विधाय च[3] । कुलकोटिं समुत्तार्य तर्पयित्वा दिवौकसः ॥३५॥
मध्ये तीर्थानि भूतानां सन्ति तानि शृणुष्व वै । ब्रह्मतीर्थे निमज्याशु महीकुण्डं व्रजेत्ततः ॥३६॥
यत्र स्नात्वा धरा देवी स्थैर्यं प्राप्य सुनिश्चला । तत्र स्नात्वा च वैरूप्यं त्यक्त्वा शिवपुरं व्रजेत् ।
ततो वरुणकुण्डं वै गत्वा स्नानं विधाय च । चक्षुःश्रोत्रैः कृतं पापं क्षाल्य विष्णुपुरं व्रजेत् ।३८।
ततस्तु वह्निकुण्डे वै गत्वा स्नानं समाचरेत् । मनोवाक्कर्मज भूतं पापं प्रक्षाल्य सत्पदम् ॥३९॥
प्रयाति मानवः सम्यग्वह्नितीर्थे निमज्य वै । वायुकुण्डे ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत् ॥४०॥
निमज्य पितृकृत्यं च विधाय विधिवज्जनः । प्रक्षाल्य कायजं पाप प्राप्यते शिवमन्दिरम् ॥४१॥
ततस्त्वाकाशसंज्ञं वै कुण्डं देवर्षिसेवितम् । सिद्धविद्याधरगणैर्गत्वा स्नानं समाचरेत् ॥४२॥
पञ्चेन्द्रियसमुद्भूतं पापं प्रक्षाल्य मानवः । सत्यलोकमवाप्नोति स देवैः सह मोदते ॥४३॥
गोविन्दतीर्थे संस्नात्वा सरोजायाः सुमध्यगे । सुरतीर्थे ततो गत्वा स्नानं विधिवदाचरेत् ।४४।
तत्र स्नात्वा विधानेन क्षेत्रपालं प्रपूजयेत् । तथा पञ्चेश्वरीं देवीं धर्मादीन् पूज्य वै तथा ॥४५॥
पञ्चानामपि भूतानां सम्यक्पूजां विधाय च । तथैव शिवलिङ्गानां सम्यक् पूजां विधाय वै ।४६।
सन्निधौ देवदेवस्य गन्तव्यं शूद्रनायक । पञ्चेशं देवदेवेशमर्चयेत्तण्डुलैः शुभैः ॥४७॥

स्याकिल पर्वत के निकटवर्ती 'पञ्चेश्वर' क्षेत्र बतलाया। फिर उस शूद्र ने 'क्षेत्रेश्वर' की उपासना तथा तीर्थों के सम्बन्ध में पूछा। तब शिवयोगी ने ध्यानमुद्रा में बैठ विचारपूर्वक कहा—'हिमालय के रमणीय तट पर व्यासाश्रम से उत्पन्न 'श्यामा' नदी 'सरयू' में जाकर मिलती है'। उन दोनों के मध्य 'पञ्चेश्वर' हैं। वह देवीसहित पाँच भूतों से सेवित हैं। वहीं पाँचों भूतों से सम्बद्ध तीर्थ भी हैं। 'सरयू' और 'श्यामा' के मध्य 'सागर' तीर्थ में स्नान कर उनके बीच 'ब्रह्मतीर्थ' में जाना चाहिये। वहाँ स्नान एवं पितृकृत्य सम्पादित कर 'कुल' का उद्धार होता है'। अब महाभूतों के तीर्थों के बारे में सुनो। प्रथम 'ब्रह्मकुण्ड' में स्नान कर 'महीकुण्ड' में जायें। वहाँ स्नान करने पर स्थिरता मिलती है। साथ ही कुरूपता नष्ट होती है। तब 'वरुण-कुण्ड' में स्नान करने पर 'नेत्र' और 'कानों' से उत्पन्न पाप दूर होते हैं। तदनन्तर 'वह्निकुण्ड' में स्नान करने से मन, वाणी और कर्मज पापों का नाश होता है। तब 'वायुकुण्ड' में स्नान एवं श्राद्धादि करने पर शरीर से सम्बद्ध पाप नष्ट होते हैं। फिर 'आकाशकुण्ड' में स्नान करने पर पाँचों इन्द्रियों से किये गए पाप दूर होते हैं। तथा अन्त में 'सत्यलोक' प्राप्त होता है। तब 'गोविन्दतीर्थ' और 'सुरतीर्थ' में स्नान करने के पश्चात् 'क्षेत्रपाल' की पूजा करते हुए 'पञ्चेश्वरी देवी', 'धर्मादि' तथा 'पाँचों भूतों' की अर्चना कर अन्त में 'पञ्चेश्वर' के समीपवर्ती शिवलिङ्गों का पूजन किया जाय। तत्पश्चात् देवेश 'पञ्चेश्वर' के समीप जाकर शुभ तण्डुलों से उनका अर्चन किया जाय। तब 'पञ्चेश' से आज्ञा प्राप्त

---

१. 'श्यामा नामा'—'ख'। २. 'श्यामासरयूमध्ये'—'ख'। ३. 'विधाय वै'—'ख'।

समर्च्य समनुज्ञाप्य सत्यायससरं व्रजेत् । तत्र निष्क्रमणं कृत्वा संस्नात्वा शूद्रनायक ॥४८॥
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्य सुनिश्चितम् । पञ्चेन्द्रियकृतात्पापान्मनोवाक्कायसम्भवात् ।४९।
मुच्यते नात्र सन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् । गच्छ तत्र महादेवं पूजयस्व समाहितः ॥५०॥
निष्कृतिस्तव पापानां भविष्यति न संशयः । अपि कीटपतङ्गाद्याः स्पृष्टाः पञ्चेश्वराह्वये ॥
स्थलं शिवपुरं यान्ति किमुतान्ये तपोधनाः । सरयूश्यामयोर्मध्ये क्षेत्रे पञ्चेश्वराह्वये ।५२॥
प्राणांस्त्यक्त्वा शिवपुरं यान्ति सत्यं मयोदितम् । त्वमपि श्रद्धया युक्तो याहि पञ्चेश्वराह्वयम् ।
निष्कृतिस्तव पापानां भविष्यति न संशयः ।

व्यास उवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा स शूद्रो मुनिसत्तमाः ॥ ५४ ॥
योगिनं प्रणिपत्याशु ययौ पञ्चेश्वराह्वयम् । सागरादिषु सर्वेषु निमज्य मुनिसत्तमाः ॥५५॥
पञ्चेशं पूजयामास नानापुष्पैः सुशोभनैः । पञ्चतीर्थेषु संस्नात्वा स तत्र विधिपूर्वकम् ॥५६॥
पूज्य पञ्चेश्वरं देवं पितृकृत्यं विधाय वै । विहाय सकलान् पापान् जीर्णत्वं त्वगिवोरगः ।५७।
भवनं प्रययौ हृष्टः स शूद्रो मुनिसत्तमाः । ततः कालेन महता मृतः शिवपुरं ययौ ॥५८॥
दिव्यं विमानमारुह्य रुद्रकन्यानिषेवितः । पञ्चेश्वरस्य माहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमाः ॥५९॥
यत्र शूद्रोऽपि पापिष्ठः पञ्चेशं पूज्य शङ्करम् । प्राप शिवपुरं रम्यं रुद्रकन्यानिषेवितम् ॥६०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पञ्चेश्वरमाहात्म्ये पञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

कर 'सत्यायस' सर में जाय। वहाँ स्नान करने पर 'वाजपेय' यज्ञ का फल मिलता है। इस तरह पाँचों इन्द्रियों से किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। ये सब बातें मैंने तुम्हें ठीक-ठीक बतलाई हैं। अतः तुम वहाँ जाकर शिवार्चन करो, तुम्हारे सब पाप दूर हो जायेंगे। 'पञ्चेश्वर' क्षेत्र का स्पर्श होने पर 'कृमि', 'कीट', 'पतंग' आदि सभी तर जाते हैं। मुनिवरों! 'सरयू' और 'श्यामा' के मध्य क्षेत्र में प्राणत्याग करने से मानव 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित होते हैं। इस प्रकार शिवयोगी ने उस शूद्र से 'पञ्चेश्वर' क्षेत्र में श्रद्धापूर्वक जाने के लिए कहा। वहाँ जाने से उसके पापों का नाश हो जायगा ॥ २६ – ५३ ॥

व्यासजी बोले – मुनिश्रेष्ठों! शिवयोगी की बात सुन वह शूद्र उन्हें प्रणाम कर शीघ्र 'पञ्चेश्वर' को चला गया। वहाँ के तीर्थों में स्नान कर विविध पुष्पों से 'पञ्चेश्वर' की पूजा की। फिर पाँचों 'भूततीर्थों' में स्नान एवं तर्पणादि कर 'साँप की पुरानी केंचुली' छोड़ने की तरह पापों से छुटकारा पा वह शूद्र अपने घर चला गया। शरीर छोड़ने पर वह विमान पर आरूढ़ हो 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित हो गया। मुनिश्रेष्ठों! मैंने यह 'पञ्चेश्वर' का माहात्म्य बतला दिया है। जिनकी पूजा करने से वह शूद्र भी रुद्रकन्याओं से सेवित सुन्दर 'शिवलोक' प्राप्त कर सका ॥ ५४ – ६० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पञ्चेश्वर' माहात्म्य नामक
एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

११६

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं हि श्यामगङ्गाया माहात्म्यं मुनिसत्तम । पञ्चेश्वरस्य माहात्म्यं त्वया सम्यगुदाहृतम् ।।१।।
अधुना श्रोतुमिच्छामः श्यामाया मुनिसत्तम । समुत्पत्तिं विशेषेण त्वत्तो वै ज्ञानसागरात् ।।२।।

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः श्यामायाः सम्भवं शुभम् । मर्त्यलोके यथा श्यामा समाहूता महाशुभा ।।

ऋषय ऊचुः—

कथं सा भवता श्यामा समाहूता तपोधन । कथं पूततमा लोके कथ्यते सा सरिद्वरा ।।४।।

व्यास उवाच—

सूतश्च जैमिनिश्चैव शुकश्च मुनिसत्तमाः । तथान्ये ऋषयः सर्वे मया सह तपोधनाः ।।५।।
कुबेरस्य महायज्ञे समाहूता हिमालये । ययुस्तुहिनसम्पूर्णं नानाधातुविराजितम् ।।६।।
ददृशुस्तत्र धनदं गुह्येशं नरवाहनम् । सह पत्न्या समासीनं ध्यायन्तं पार्वतीप्रियम् ।।७।।
दक्षिणे शिखराणां वै आसीनं लिपिपर्वते । तत्र सम्पूजिताः सर्वे धनदेन महात्मना ।।८।।
विविशुस्ते महात्मानो मया सह तपोधनाः । आसीनेषूपविष्टेषु द्विजेषु धनदः स्वयम् ।।९।।
चक्रे ममाश्रमं पुण्यं नानाधातुविराजितम् । लिपेः पश्चिमभागे वै शिखराणां च दक्षिणे ।।१०।।
स तस्मिन्नाश्रमे पुण्ये आसने मां न्यवेशयत् । स मां विज्ञापयामास यज्ञार्थं सरितां वराम् ।११।
पावनाय द्विजातीनां तथान्येषां हिताय च । मयाहूता सरिच्छ्रेष्ठा पुण्या मन्दाकिनी द्विजाः ।।

ऋषि बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! हम लोगों ने 'श्यामा' तथा 'पञ्चेश्वर' का माहात्म्य सुना । अब हम आप के सदृश ज्ञानसागर से 'श्यामा' की उत्पत्ति का वर्णन सुनना चाहते हैं ।। १ – २ ।।

व्यासजी ने कहा—ऋषियों ! अब मैं 'श्यामा' के उद्भव तथा उसके पृथ्वी पर पदार्पण करने के विषय में आप लोगों को बतला रहा हूँ । आप लोग सुनें ।। ३ ।।

ऋषियों ने फिर पूछा—हे तपोधन ! आपने 'श्यामा' को किस कारण पृथ्वी पर प्रवाहित किया ? वह इतनी पवित्र क्यों मानी जाती है ? ।। ४ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—ऋषियों ! एक बार पौराणिक सूत, जैमिनि, शुकदेव तथा कुछ अन्य ऋषियों को मेरे साथ हिमालय पर कुबेर के महायज्ञ में बुलाया गया था । वह हिमाच्छादित, अनेक धातुओं से सकुलित एवं हिममण्डित 'लिपिपर्वत'[1] पर शिखरों के दक्षिण में यज्ञस्थल पर कुबेर को बैठा हुआ देखा । वे सब मेरे साथ वहाँ गए । कुबेर ने उनका स्वागत किया । जब मेरे साथ सब ऋषि आसनों पर विराजमान हुए तो लिपिपर्वत के पश्चिम की ओर कुबेर ने आश्रम बनाया । वहाँ आसन पर मुझे बैठाकर यज्ञार्थ नदी को प्रवाहित करने की प्रार्थना

---

१. 'लिपूलेख' के नाम से विदित है ।

महाकालस्य शिरसि पपात मुनिसेविता। महाकालस्य रोषेण श्यामा मन्दाकिनी ह्यभूत् ॥१३॥
देवगन्धर्वमनुजैः सेविता मुनिसत्तमाः। ततः श्यामेति मुनयस्तां प्राहुः सत्यवाहिनीम् ॥१४॥
समाहूता मया दिव्या कुवेरहितकारिणा। ततस्तु धनदो विप्रा यज्ञं चक्रे सुदक्षिणम् ॥१५॥
वाजपेयं महापुण्यं समुत्स्पृश्य[1] सरिज्जलम्। ततस्तु मुनिशार्दूला ऋत्विजो दत्तदक्षिणाः ॥१६॥
ययुः सर्वे महात्मानः कासारारण्यवासिनः। गतेषु तेषु धनदो ययौ स्वर्गं महाबलः ॥१७॥
सिद्धगन्धर्वगुह्यांश्च पत्न्या सह तपोधनाः। मयाहूता ततः श्यामा पुण्यतोयवहा सरित् ॥१८॥
गिरेर्दंष्ट्रान् विदार्याशु सङ्गमैर्बहुभिर्युता। सरयूसङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥१९॥
तस्यां स्नात्वा स विधिवत्पितृकृत्यं विधाय वै। गङ्गास्नानाद्दशगुणं फलं प्राप्य तपोधनाः ॥
कुलायुतं समुत्तार्य विष्णुलोके महीयते ॥ २० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्यामामाहात्म्ये षोडशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

की। तब मैंने पवित्र मन्दाकिनी का आह्वान किया। वह 'महाकाल' के मस्तक पर स्वर्ग से गिरी। 'महाकाल' के क्रोधवश वह काली हो गई। अतः वह 'सत्यवाहिनी' नदी 'श्यामा' कही जाने लगी। तब कुवेर ने उसका जलस्पर्श कर बहुत धन से सम्पन्न होने वाला 'वाजपेय' यज्ञ सम्पन्न किया। [2]कासारारण्यवासी ऋत्विजादि ब्राह्मण दक्षिणा लेकर अपने-अपने घर चले गए। तदनन्तर कुवेर भी स्वर्गलोक को प्रस्थित हुए। इस प्रकार मेरे द्वारा आहूत पवित्र जल से परिपूर्ण 'श्यामा' (काली नदी) आगे चलकर 'सरयू' में मिलती है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान तर्पणादि करने से गङ्गा-स्नान की अपेक्षा दस गुना फल मिलता है। इसके साथ ही मानव अपने सैकड़ों कुलों को तार कर 'विष्णुलोक' में आनन्दित होता है ॥ ५ – २० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'श्यामामाहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'समुत्सर्ज्य'–'ख'। २. प्रचलित नाम—फंगुवा—'काउवाकोट'। भागवत के अनुसार 'बाष्कलि' का एक शिष्य' 'कासार' था। गुरु ने इन्हें 'बालखिल्य' का अध्ययन कराया (१२.६.५६)।

ऋषय ऊचुः—

श्यामाया ब्रूहि विप्रर्षे तीर्थानि च बहूनि च । तथा क्षेत्राणि सर्वाणि श्यामायास्तटगानि च ॥
विशेषसम्भव चापि कथयस्व तपोधन ।

व्यास उवाच—

भगीरथेन या पुण्या प्रार्थिता वै सरिद्वरा ॥ २ ॥
मन्दाकिनी महापुण्या पतिता मुनिसत्तमाः । धनदस्य महायज्ञे समाहूता हि सा मया ॥३॥
आविर्बभूव तत्रैव सुपुण्ये लिपिपर्वते । मानसोत्था पुण्यतीर्था श्यामला लिपिपर्वते ॥४॥
बभूव मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशिनी । सरयूसङ्गमे पुण्या पावयित्वा ममाश्रमम् ॥५॥
समायाता महाभागा देवगन्धर्वसेविता । तस्या मूले लिपिगिरिं समारुह्य वृषध्वजम् ॥६॥
सम्पूज्य मुनिशार्दूला आयुष्माञ्जायते नरः । श्यामामूले महाकालं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ॥७॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्दीपैः प्रजावाञ्जायते नरः । वामे तु हिम्बुकां देवीं सम्पूज्य मुनिसत्तमाः ॥८॥
अश्वमेधफलं प्राप्य कीर्तिमाञ्जायते नरः । ततो ममाश्रमं प्राप्य मां समर्चन्ति ये नराः ॥९॥
ते भारतं च अतुलं प्राप्नुवन्ति न संशयः । श्यामामूले च संस्नाप्य पितृपिण्डोदकक्रियाम् ।१०।
विधाय कुलमुत्तार्य सत्यलोके महीयते । ततस्तुहिनजासङ्गे संस्नाप्य मुनिपुङ्गवाः ॥११॥
देवीं तुहिनजां पूज्य मानवो याति शाश्वतीम् । ये पुण्यं त्वाश्रमं विप्राः स्मरन्ति सुसमाहिताः ॥

ऋषियों ने कहा—विप्रर्षे ! 'श्यामा' के तटवर्ती 'तीर्थों', 'क्षेत्रों' तथा उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम लोग जानने के इच्छुक हैं । कृपया उनका वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों ! आप लोग सुनें । भगीरथ के 'सरोवर' से प्रार्थना किये जाने पर मेरे द्वारा कुबेर के 'यज्ञ' में आहूत वह 'श्यामा' नदी 'लिपिपर्वत' से प्रकट हुई । फिर 'सरयू' के साथ सङ्गत हो देव-गन्धर्वादि से सेवित मेरे आश्रम में आई । उसके मूलस्थान 'लिपिपर्वत' पर 'वृषध्वज' का पूजन कर मनुष्य आयुष्मान् होता है । 'श्यामा' के मूल में 'महाकाल' की पूजा करने पर सन्तति-लाभ होता है। वहाँ बाईं ओर 'हिंबुका' देवी[२] का पूजन करने से 'अश्वमेध' यज्ञ का फल प्राप्त होने के साथ ही मानव यशस्वी होता है। तब मेरे आश्रम में आकर मेरा पूजन करने से मनुष्य को 'बृहत् भारत' (महाभारत) का ज्ञान-लाभ होता है । श्यामा के मूल में स्नान एवं पिण्डदान करने पर अनेक कुलों का उद्धार होने के साथ ही 'सत्यलोक' में प्रतिष्ठा होती है । तब 'तुहिनजा' के सङ्गम में स्नान कर 'तुहिनजा' देवी[३] का पूजन कर शाश्वत पद प्राप्त होता है । आश्रम का स्मरण करने वाले व्यक्ति निःसन्देह

---

१. 'तपोधनाः'–'ख'

२. प्रचलित नाम—हुंग उड्यार ।

३. 'टिंगु' नाम से विदित है । इसी प्रकार वही 'टिकर' नामक संकीर्ण मार्ग तथा नदी एवं ग्राम भी विदित हैं ।

ते यान्ति सत्यभुवनं नात्र कार्या विचारणा। वामे करीरसंज्ञं वै समारुह्य महागिरिम् ॥१३॥
करीरं पूज्य देवेशं मानवो याति शाश्वतीम्। ततो गुह्यवती नाम श्यामायाः सङ्गते गत ॥१४॥
तत्र स्नात्वा गुह्यतीर्थे वाक्पटुत्वं प्रजायते। गुह्येश्वरं च सम्पूज्य तथा गुह्यगणान् द्विजाः ॥१५॥
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः। ततस्तु कोटवो नाम विद्यते पर्वतोत्तमः ॥१६॥
तमारुह्य महामायां कोटवीं पूज्य वै द्विजाः। शत्रुतो न भयं तस्य जायते भूतले महत् ॥१७॥
तस्य वै दक्षिणे भागे पुण्या गुणगुहा स्मृता। गौतमस्तत्र वसति भार्यया सह सुव्रताः ॥१८॥
गौतमस्याश्रमं गत्वा महर्षि गौतमं तथा। सम्पूज्य ब्रह्मलोकाप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥१९॥
ततस्तु धर्मतीर्थे वै धनदायास्तु सङ्गमे। निमज्य पितृभिः सार्धं सत्यलोकमवाप्यते ॥२०॥
सव्यं धर्माश्रम पुण्यं विद्यते नात्र संशयः। सम्पूज्य धर्मराजं तं सत्यलोके महीयते ॥२१॥
धर्माश्रमादूर्ध्वभागे ये यान्ति हिमपर्वते। ते धन्या देवसदृशा ज्ञातव्या नात्र संशयः ॥२२॥
वामे कागाख्यसंलग्नो क्रोञ्चनाख्यो[1] महागिरिः। तमारुह्य गिरिवरं कपिलेशं प्रपूज्य वै ॥२३॥
सत्यलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः। ततस्तु श्यामगङ्गायां शोणतीर्थमिति स्मृतम् ॥२४॥

'सत्यलोक' में प्रतिष्ठित होते हैं। वहाँ वाम भाग में विशाल पर्वत 'करीर' पर 'करीर' देव का पूजन करने वाले व्यक्ति भी 'शाश्वत' मुक्ति के अधिकारी हो जाते है। तब 'गुह्यवती' श्यामा में मिलती है। वहाँ 'गुह्यतीर्थ' में स्नान कर मनुष्य वाक्पटु होता है। 'गुह्येश्वर' एवं 'गुह्यगणों' का पूजन करने पर वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। तब 'कोटव' पर्वत पर 'कोटवी'[2] देवी का पूजन कर 'शत्रुभय' से मुक्त हो जायें। उसके दक्षिण में पवित्र 'गुणगुहा'[3] है। वह (सपत्नीक) गौतम का निवास-स्थान है। गौतमाश्रम में महर्षि 'गौतम' का पूजन करने पर ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। तब 'धर्मतीर्थ' में 'धनदा' के सङ्गम में स्नान करने से पितृगणों सहित 'सत्यलोक' प्राप्त होता है। बायें 'धर्माश्रम'[4] है। वहाँ पूजन करने पर भी 'सत्यलोक' प्राप्त होता है। 'धर्माश्रम' से ऊपर 'हिमालय' में जाने वाले व्यक्ति देवतुल्य जाने जायें। बाईं ओर 'काग पर्वत' से मिला हुआ 'क्रोञ्चनपर्वत' है। उसमें चढ़कर 'कपिलेश' का पूजन करने से 'सत्यलोक' मिलता है। तब 'श्यामा' में 'शोणतीर्थ'[5] है। उसमें 'स्नान' एवं 'शोण'

---

१. 'काञ्चनाख्यो'–'ख'

२. 'कोटितीर्थ' पर स्थापित 'सती' देवी की एक 'मूर्ति' का नाम—"कोटवी कोटितीर्थे तु" (मत्स्य० १३, ३७)। 'कोटितीर्थ' में नारद की आज्ञानुतार श्रीकृष्ण कंसवधजन्य प्रायश्चित करने वहाँ गए थे (स्कन्द० ब्राह्म० सेतु०)।

३. 'अहल्या' के रूप में मनोनीत स्थान। एक आख्यान के अनुसार मेघनाद ने इन्द्र को पराजित किया। इन्द्र म्लान हो गए। ब्रह्मा ने इन्द्र से यह कहा कि मैंने एक 'गुणवतो' (अहल्या—हल्य=विकृत रूप, अहल्य=अविकृत—अहल्या=विकृति रहित स्त्री) स्त्री की सृष्टि की है। वह 'गौतम' के यहाँ रक्षार्थ रखी गई। बाद में गौतम ने उसे ब्रह्मा को लौटा दिया। इन्द्र ने आसक्त हो गौतम का रूप धारण कर दुराचरण किया था। इसके फलस्वरूप इन्द्र 'सहस्राक्ष' हो गए। 'अहल्या' सूखी नदी के रूप में परिणत कर दी गई। बहुत विनय के पश्चात् अहल्या को 'गौतमी-गङ्गा' (गोदावरी) से मिलने पर पुनः पूर्ववत् हो जाने का वर दिया गया (ब्रह्मपुराण)।

४. ढोलगिया। ५. स्यांकुची।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च शोणं सम्पूज्य मानवः। ज्वलदग्निमुखां दिव्यां देवीं तत्र प्रपूज्य वै ॥
समुत्तार्य महाभागाः कुलमेकोत्तरं शतम्। शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥२६॥
ततस्तु होतृतीर्थं वै श्यामायां विद्यते द्विजाः। तत्र स्नात्वा च मनुजो नित्यहोमफलं लभेत् ॥
ततस्तु दक्षिणे भागे चतुर्दंष्ट्रो गिरिः स्मृतः। हिमालयमुखं यत्र चतुर्दंष्ट्रे प्रदृश्यते ॥२८॥
तत्र गत्वा महाभागा दंष्ट्राः सम्भाव्य मानवः। विष्णुलोकमवाप्नोति कुलकोटिसमन्वितः ।२९।
द्वौ दन्तौ दक्षिणे यस्य प्रविष्टौ मुनिसत्तमाः। दृश्येते सर्वपापघ्नौ द्वौ दन्तौ चोत्तरे गतौ ॥३०॥
तमारुह्य महापुण्यं हिमालयमुखं शुभम्। न कालभवनं याति मानवः सत्यमेव हि ॥३१॥
चतुर्दंष्ट्रवती पुण्या गिरिदंष्ट्रविनिःसृता। श्यामायाः सङ्गते पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥३२॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो यमदंष्ट्रा न पश्यति। ततः खगवती नाम श्यामायाः संगमे गता ॥३३॥
तत्र स्नात्वा विधानेन नरः सारूप्यतां व्रजेत्। दक्षिणेऽखिलगो नाम पर्वतोऽस्ति तपोधनाः ।३४।
सिद्धगन्धर्वयक्षैश्च सेवितोऽखिलपावनः। तमारुह्याखिलवतीं शिलां सम्पूज्य मानवः ॥३५॥
तथा नन्दां महादेवीं पर्वताग्रे तपोधनाः। सर्वान् कामानवाप्नोति सत्यलोकं स गच्छति ।३६।
ततस्तु यूपतीर्थं वै श्यामायां संस्थितं द्विजाः यूपतीर्थे नरः स्नात्वा पितृकृत्यं विधाय च ॥३७॥
यूपकां च गुहां गत्वा श्यामाया दक्षिणे द्विजाः। यत्र यूपं यमोराजा निचखान महामतिः ।३८।
तत्र गत्वा च दृष्ट्वा च सत्यलोकं प्रयाति वै। ततस्तु रन्तिजा[1] नाम श्यामायाः सङ्गमे गता।

का पूजन कर जलती हुई 'आग' के सदृश मुखवाली दिव्य 'देवी'[2] का दर्शन कर एक सौ एक कुलों का उद्धार होकर शिवलोक में प्रतिष्ठा होती है। तब श्यामा का 'होतृतीर्थ' है। उसमें स्नान कर नित्य होम का फल मिलता है। तब दक्षिण में 'चतुर्दंष्ट्र'[3] पर्वत है। उसमें जा 'दाढों' का पूजन करने पर विष्णुलोक प्राप्त होता है। इन चार 'दाढ़ों' में से दो 'दाढ़' दक्षिण में और दो 'दाढ़' उत्तर में प्रविष्ट हैं। इस हिमालय के मुख में आरूढ होकर 'काल' के मुख से रक्षा होती है। पर्वत के दंष्ट्राओं से निकली हुई 'चतुर्दंष्ट्रवती' नदी[4] श्यामा के साथ मिलती है। उसमें स्नान कर यम के 'दाँत' देखने में नहीं आते। तब 'खगवती'[5] का सङ्गम है। वहाँ स्नान करने से सौन्दर्य बढ़ता है। फिर दक्षिण की ओर 'अखिलग' नाम का पर्वत[6] है। यह सबको पवित्र करता है। इस पर आरूढ हो 'अखिलवती'[7] का पूजन कर तथा पर्वत के अग्र-भाग में 'नन्दा'[8] का पूजन कर सब काम सिद्ध होते हैं। तब श्यामा' का 'यूप' तीर्थ है। उसमें स्नान और पितृकृत्य करने पर वहाँ से दक्षिण 'यूपगुहा' में जाये। वहाँ 'यूप'[9] यमराज ने गाड़ा था। उस यूप का दर्शन कर सत्यलोक प्राप्त होता है। तब 'रन्तिजा' नदी[10] 'श्यामा' में आकर मिलती है। वहाँ स्नान करने से शिवलोक प्राप्त होता है। तब 'दुर्वासा'

---

१. 'रतिजा'—'ख'।

२. 'पीपला'। ३. 'चौवांस' नाम से प्रसिद्ध है। ४. 'शंखोला' की गाड़। ५. 'जुन्ती'।

६. 'खेला' नाम से विदित है। ७. देवी मन्दिर (अखिल पर्वतस्य)।

८. 'हरद्योल' में नन्दा की पूजा होती है।

९. कदाचित् यह 'यूपकेतु' हों, जो श्री 'सोमदत्त' के पुत्र भूरिश्रवा के नामान्तर के रूप में जाने जाते हैं (महा० सभा० ४४–१९)।

१०. 'रेला' गाड़ नाम से विदित है।

रतिन्जासङ्गमे स्नात्वा नरः शिवपुरं व्रजेत्। दुर्वाससाश्रमोत्था वै[1] पुण्या दुन्दुवती सरित् ।४०।
श्यामायाः सङ्गमे शुद्धा सङ्गता मुनिसत्तमाः। यत्र दुश्च्यवनो नाम राजा मगधवंशजः ॥४१॥
विमुक्तः पातकाद्विप्रा दुहितृगमनोद्भवात्। तत्र स्नात्वा पितृंस्तर्प्य सत्यलोकमवाप्यते ॥४२॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्यामामाहात्म्ये सप्तदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

११८

ऋषय ऊचुः—

आश्रमं कुत्र भगवांश्चक्रे [2]दुर्वाससो मुनिः। तत्र गत्वा च किं पुण्यं प्राप्यते मुनिसत्तम ॥१॥

व्यास उवाच—

यूपतीर्थाद्वामभागे पुण्यो वासुकिपर्वतः। तस्य वै दक्षिणे भागे पुण्यः काकगिरिः स्मृतः ॥२॥
तयोर्मध्ये स भगवान् दुर्वासा मुनिसत्तमाः। चक्रे स्वमाश्रमं तत्र समाश्रित्य हिमालयम् ॥३॥
दुन्दुवसुमतीमध्ये पुण्यं दुर्वाससाश्रमम्। विद्यते मुनिशार्दूलाः सर्वपापप्रणाशनम् ॥४॥
वसुदुन्दुवतीमध्ये धन्यं दुर्वाससं मुनिम्। समर्च्य विधिवत्तत्र पितॄन् सन्तर्प्य मानवः ॥५॥
विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। वसुदुन्दुवतीमध्ये संस्नात्वा मुनिसत्तमाः ॥६॥
गङ्गास्नानफलं सद्यः प्राप्यते नात्र संशयः। वसुदुन्दुवतीमध्ये देवीं वासुकिसेविताम् ॥७॥
पत्रेश्वरीं प्रपूज्याशु सिद्धिं प्राप्नोति मानवः। दुन्दुवत्या महामूले देवीं दर्दुरसंज्ञिकाम् ॥८॥
सम्पूज्य सत्यलोकाप्तिर्जायते नात्र संशयः। दुर्वाससाश्रमादूर्ध्वं यो याति मुनिसत्तमाः ॥
सत्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणाः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे दुर्वाससाश्रममाहात्म्येऽष्टादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

के आश्रम से आती हुई 'दुन्दुवती'[3] 'श्यामा' से मिलती है। वहाँ 'दुश्च्यवन' मगधराज पुत्री-गमनरूप पाप से मुक्त हुआ था। वहाँ पर स्नान करने से सत्यलोक मिलता है ॥ २-४२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'श्यामामाहात्म्य' नामक
एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! कृपया यह बतलायें कि भगवान् 'दुर्वासा' ने कहाँ आश्रम स्थापित किया ? वहाँ जाने से कौन सा पुण्य मिलता है ? ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! 'यूपतीर्थ' के वामभाग में 'वासुकि' पर्वत है। उसके दक्षिण में 'काकपर्वत' है। उनके मध्य 'दुर्वासा' ने आश्रम बनाया। 'दुन्दुवती' और 'वसुमती' के मध्य में 'दुर्वासा' का आश्रम है। वहाँ ऋषि का पूजन एवं पितृकृत्य करने से पुन-

---

१. 'दुर्वासस आश्रमादुत्था'—इत्यपेक्षितः।
२. दुर्वासस् शब्दस्य स्थाने 'दुर्वासस'-इति अकारान्तः कल्पितः।
३. 'कुल्ला' नाम से जानी जाती है।

११९

व्यास उवाच—

दुन्दुवत्या महत्सङ्गात् श्यामायां सरसंज्ञकम् । वृक्षैश्च कल्पवृक्षाद्यैः सेवितं मरकतोपमम् ।।१।।
पुण्यं योजनगम्भीरं विद्यते मुनिसत्तमाः । तत्र वृक्षा निमज्जन्ति प्रत्यहं नात्र संशयः ।।२।।
तत्र स्नात्वा विधानेन अपुत्रो लभते सुतम् । कृत्तिकानां ततो तीर्थं विद्यते मुनिसत्तमाः ।।३।।
तत्र पुण्यं तपस्तप्त्वा कार्तिकेयं सुरोत्तमम् । लेभिरे कृत्तिकाः सर्वाः स्नात्वा श्यामासरिज्जले ।।
तत्र स्नात्वा च मनुजो मातुर्गर्भं न पश्यति । ततो गौरी सरिच्छ्रेष्ठा हिमालयसमुद्भवा ।।५।।
श्यामायाः सङ्गमं पुण्यं सङ्गता मुनिसत्तमाः । तत्र स्नात्वा च मनुजो यज्ञकोटिफलं लभेत् ।६।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्यामामाहात्म्ये एकोनविंशतिशततमोऽध्यायः ।।

जन्म-रहित विष्णुलोक मिलता है । इन दोनों नदियों के सङ्गम में स्नान करने पर गङ्गास्नान का फल मिलता है । वहाँ पर 'वासुकि'[1] से सेवित 'पत्रेश्वरी' का पूजन करने से सिद्धि मिलती है । 'दुन्दुवती' के मूल में 'दर्दुर' देवी का पूजन कर मानव 'सत्यलोक' में प्रतिष्ठित होता है । 'दुर्वासा' आश्रम के ऊपर जाने से मानव निःसन्देह सत्यलोक प्राप्त करता है ।। २ – ९ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'दुर्वासा-आश्रम' वर्णनात्मक
एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

व्यासजी कहते रहे—मुनिवरों ! 'दुन्दुवती' और 'श्यामा' के महासङ्गम में एक सरोवर (तालाब) है । वह अनेक प्रकार के वृक्षों से प्रतिबिम्बित होने के कारण 'मरकत' मणि के समान शोभित है । उसका विस्तार एक योजन है । साथ ही वह गहरा भी है । उसके किनारे झुके वृक्षों के जलस्पर्श से आभास होता है कि वे स्नान का आनन्द लेते हों । वहाँ विधिपूर्वक स्नान करने से पुत्रप्राप्ति होती है । मुनिवरों ! तब 'कृत्तिकाओं' का तीर्थ है[2] । वहाँ 'श्यामा' के जल में स्नान एवं तपस्या कर कृत्तिकाओं ने 'कार्तिकेय' को प्राप्त किया था । वहाँ स्नान करने से मानव को पुनः माता का गर्भवास नहीं देखना पड़ता । तब हिमालय से निकल कर 'गौरी'[3] नदी श्यामा में मिलती है[4] । वहाँ स्नान कर करोड़ों यज्ञ करने का फल मिलता है ।।१ – ६।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'श्यामामाहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. वासुकि पर्वत का प्रचलित नाम– 'बनोनन डांडा' ।

२. 'धारचूला' से २ मील की दूरी पर 'तपोवन' है । धरचू=पतका, ला=देवला=कार्तिकेय ।

३. प्रचलित नाम गोरी–'गलंती' ।

४. 'जौलजीवी' नामक स्थान में (संगम में) मेला भी लगता है । 'गोरी' नदी 'मिलम ग्लेशियर' के पास से निकलती है ।

१२०

ऋषय ऊचुः—

कुयोनिष्वपि भूतानां प्राणिनां मुनिसत्तम । कथं सञ्जायते मुक्तिः कमाराध्य च पूज्य च ॥१॥
कुयोनौ च समुत्पत्त्य जन्मान्ते भोगिनां कुले । कस्मिन् तीर्थे निमज्याशु सम्भवन्ति तपोधन[1] ॥

व्यास उवाच—

गौरीश्यामासरिन्मध्ये तुहिनाचलसंज्ञकः । शैलोऽस्ति मुनिशार्दूलास्तुहिनैः परिपूरितः ॥३॥
अधित्यकायां मुनिपूजितो हरो हंसेश्वराख्यस्त्रिदिवैर्निषेवितः ।
वर्वर्ति सर्वोपरि क्षेत्रनायको यथा स कैलासपतिस्तपोधनाः ॥ ४ ॥
समर्च्य तं क्षेत्रपतिं महेश्वरं श्यामासरिन्मध्यतटे समर्चितम् ।
देवैर्महेन्द्रप्रमुखैस्तथेतरैर्हंसाह्वये तीर्थवरे तपोधनाः ॥ ५ ॥
निमज्य साम्राज्यशतं महीतले भुक्त्वा शिवं याति कुलैः शताधिकैः ।
शतं सहस्राधिककोटिकल्पकं स्थित्वा स तत्रैव शिवेन मोदितः ॥ ६ ॥
महीतलं प्राप्य पुनस्तपोधनाः ससप्तद्वीपामवनीं स शासयेत् ।
ससागरां शैलशतैः समन्वितां दिवं यथा देवपतिः पुरन्दरः ॥ ७ ॥
यत्कोटिकल्पान्तशतेषु शङ्करमाराध्य देवं कमलापतिं तथा ।
सम्प्राप्य तं हंसपतिं महेश्वरं समर्च्य हंसाह्वयतीर्थमज्जनात् ॥ ८ ॥
पुण्ये हंसाह्वये तीर्थे निमज्य मुनिसत्तमाः । हंसेश्वरं प्रपूज्याशु नास्ति नास्तीह दुष्करम् ॥९॥

ऋषय ऊचुः—

हंसतीर्थमिति ख्यातं त्वया पाराशरात्मज । स कथं ज्ञायते पुण्यं कथं तीर्थंहि विद्यते ॥१०॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—मुनिश्रेष्ठ ! कुत्सित योनि में उत्पन्न प्राणियों को किसकी आराधना करने से अन्त में कैसे मुक्ति मिलती है ? हे तपोधन ! भोगियों के कुल में दुष्ट योनि में जन्म लेने पर भी किस तीर्थ में स्नान करने शीघ्र मुक्ति सम्भव है ? ॥ १ – २ ॥

व्यासजी ने समाधान किया—'गौरी' और 'श्यामा' के मध्य हिमाच्छादित 'तुहिनाचल' है। उसके शिखर पर 'हंसेश्वर' शिव विराजमान हैं। कैलासपति की तरह यह भी इस क्षेत्र के सर्वोच्च क्षेत्राधिपति हैं। 'श्यामा' के मध्य तटवर्ती 'हंसतीर्थ'[2] में स्नान कर महेन्द्रादि देवों से सेवित एवम् अर्चित क्षेत्राधिपति 'हंसेश्वर' का पूजन करने पर मनुष्य शताधिक कुलों के साथ 'शिवलोक' में जाता है। उसके पूर्व इस लोक में भी सम्राट् हो सुख भोगता है। इतना ही नहीं, वह मानव स्नान तथा शिव एवं विष्णु का पूजन करने पर सैकड़ों कल्पों तक शिव के साथ आनन्द लाभ कर पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर अखिल पृथ्वी का अधिपति बन स्वर्गाधिपति इन्द्र की तरह सुख भोगता है। पवित्र 'हंसतीर्थ' में स्नान कर 'हंसेश्वर' का पूजन करने से कुछ भी दुष्कर नहीं रह जाता ॥ ३ – ९ ॥

---

१. 'विकल्मषाः'—इत्यपेक्षितः ।

२. जालजीवी के दक्षिण लगभग २½ मील की दूरी पर ।

व्यास उवाच—

तुहिनाचलसम्भूता गौरी नाम सरिद्वरा। सङ्गमैर्बहुभिः पूर्णा श्यामायाः सङ्गमे गता ॥११॥
तत्रैव मन्थना नाम तयोः सङ्गमसङ्गता। गौरी च मन्थना चैव तथा श्यामासरिद्वरा ॥१२॥
एतास्तिस्रो महापुण्या धन्याः सङ्गमिता द्विजाः। हंसेश्वरस्तयोर्मध्ये राजते मुनिसत्तमाः॥
एतासां सङ्गमे सन्ति तानि शृण्वन्तु वै द्विजाः। सत्यतीर्थं ततस्त्रेता ततस्तु द्वापराह्वयम्॥
ततः कलियुगाख्यं वै तीर्थं कज्जलसन्निभम्। ततस्तु स्वर्गसंज्ञं वै नरकाख्यं ततः परम् ॥१५॥
शुद्ध-पङ्कनिभं श्यामं विद्यते मुनिसत्तमाः। एतेषां नामसदृशं फलमास्ति न संशयः ॥१६॥
ततो हंसह्रदं ज्ञेयमेतासां सङ्गमाद्बहिः। तत्र हंसनिभः पुण्यो विद्यते प्रस्तरोपमः ॥१७॥
यत्र हंसो विमुक्तोऽभूत्समाराध्य महेश्वरम्। पुत्रदारान्वितो विप्राः सहामात्यसुहृद्गणैः ॥१८॥
तत्र हंसह्रदे स्नात्वा कीटाद्यापि[1] मृताः पुनः। सप्त जन्मसु साम्राज्यं भुक्त्वा संयान्ति शंकरम्॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे हंसतीर्थमाहात्म्ये विंशोत्तरशततमोऽध्यायः॥

ऋषियों ने कहा—हे वेदव्यास! जल के भीतर समाविष्ट 'हंसतीर्थ' का परिज्ञान कैसे किया जाय? ॥ १० ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—'तुहिनाचल' से उत्पन्न 'गौरी' नदी अनेक नदियों से संगत होकर 'श्यामा' में मिलती है। वहीं पर 'मन्थना' नदी भी आकर मिलती है। ये तीनों नदियाँ बड़ी पवित्र हैं। इन दो के मध्य 'हंसेश्वर' हैं। मुनियों! इन अनेक नदियों के सङ्गमों के बारे में भी सुनो। तब 'सत्य', 'त्रेता', 'द्वापर' तीर्थों के अतिरिक्त काजल के समान चौथा 'कलि' तीर्थ है। तदनन्तर चन्दन के समान 'स्वर्गतीर्थ' है। फिर कीचड़ के सदृश 'नरक' तीर्थ है। इनमें स्नान करने का फल 'यथा नाम तथा गुणः' लोकोक्ति के अनुसार है। वहाँ 'हंस' के समान एक 'शिला' है। उस पर 'हंस'[2] ने तपश्चर्या कर अपनी स्त्री, पुत्र, मन्त्री आदि सभी को मुक्त कराया। वहीं 'हंसह्रद' में स्नान कर कीट-पतङ्ग आदि भी मरणोपरान्त सात जन्म पर्यन्त सुखैश्वर्य भोग कर अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं॥ ११ – २० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'हंसतीर्थ-माहात्म्य' नामक
एक सौ बीसवां अध्याय समाप्त॥

---

१. 'कीटाद्याश्च मृताः पुनः' इति समुचितः पाठः।

२. (क) एक श्रेष्ठ पक्षी, जो कश्यप-पत्नी 'ताम्रा' की पुत्री 'धृतराष्ट्री' से उत्पन्न हुए थे (आदि० ६६, ५६-५८)। (ख) भगवान् विष्णु का एक अवतार। सनकादिक को इसी रूप में भगवान् ने उपदेश दिया था। तदनुसार 'विषय' और उनका 'चिन्तन' दोनों माया ही हैं। (ग) 'हंसकूट' एक पर्वत का नाम, जहाँ पत्नियों सहित 'पाण्डु' गए थे। इस पर्वत को पार कर वे 'शतशृङ्ग' पर्वत पर पहुँचे थे (महा० आदि० ११८-५०)।

१२१

व्यास उवाच—

गौर्याश्चैव समुत्पत्तिं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः। यस्यां स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकं न संशयः ।१।
शिरांसि देवदेवस्य यत्र संवर्णितानि वै। तेभ्यो बभूव सा गौरी गौरधर्मप्रवर्तिनी ॥२॥
गौरी शुश्रूषणपरा देवदेवस्य शूलिनः। कदाचिदाह्वयामास मानसात्सरितां वराम् ॥३॥
महादेव्या समुद्भूता गौरी पुण्या सरिद्वरा। समाजगाम सा गौरी यत्र तिष्ठति शाङ्करी ॥४॥
आविर्भूतां च तां गौरीं दृष्ट्वा तुष्टा महेश्वरी। चक्रे स्नानं विधानेन गौर्यास्तोयेमहेश्वरी[1] ॥
तुहिनस्य कटिं भित्त्वा निर्गत्याशु सरिद्वरा। उपदिष्टा महादेव्या श्यामायाः सङ्गते गता ॥६॥
तुहिनस्य जलैः पूर्णा नानासङ्गमपूरिता। जीवारदक्षिण पार्श्वं भित्त्वा तोयवहा ययौ ॥७॥
तुहिनाद्रिं समारुह्य तस्या मूले महेश्वरीम्। सम्पूज्य तुहिनाद्रिस्थं शङ्करं मुनिसत्तमाः ॥८॥
तत्र स्नात्वा विधानेन योऽपसर्पति मानवः। स देवसदृशो लोके ज्ञातव्यो नात्र संशयः ॥९॥
तस्या वामे बलिगिरिर्विद्यते मुनिसत्तमाः। तमारुह्य नरः सम्यग्दिव्यदेहः प्रजायते ॥१०॥
दक्षिणे केरलो नाम पर्वतोऽस्ति तपोधनाः। केरलेशं महादेवं गिरिकन्दरवासिनम् ॥११॥
तमारुह्य प्रपूज्याशु देववत्पूज्यते नरः। ततस्तु जनिजातीर्थं जनिजायास्तु सङ्गमे ॥१२॥
तत्र स्नात्वा विधानेन सोमयागफलं लभेत्। ततस्तु केरलीसङ्गे कैरलीं पूज्य शाङ्करीम् ॥१३॥
जीवत्याः सङ्गमं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्। सङ्गमे जीववत्याश्च सन्निमज्य तपोधनाः ॥१४॥
गोसहस्रस्य दानस्य फलमाप्नोति निश्चितम्। ततस्तु सङ्गमैः पूर्णा सा सरिन्मुनिसत्तमाः ॥१५॥
सङ्गमे मधुमत्यास्तु सङ्गता मुनिसत्तमाः। पावनस्योत्तरे भागे सम्भूता मधुमती सरित् ॥१६॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! 'गौरी' की भी उत्पत्ति आप लोग सुनें। उसमें स्नान करने पर विष्णुलोक प्राप्त होता है। पहले शिवजी के सिरों का वर्णन हो चुका है। उसी 'पञ्चचूली' से गौर-धर्म का प्रवर्तन करने वाली 'गौरी' नदी उत्पन्न हुई है। किसी समय देवेश की सेवा में संलग्न 'पार्वती' ने 'मानसरोवर' से इस श्रेष्ठ नदी को बुलाया था। तब यह पार्वती के पास चली आई। उसके प्रकट होने पर पार्वती ने उसमें स्नान किया। 'तुहिनाचल' के नितम्ब[2] को भेदन कर उस मार्ग से देवी की आज्ञानुसार यह 'श्यामा' में आकर मिल जाती है। 'तुहिन' अर्थात् 'हिम' से पूरित इस नदी के साथ 'श्यामा' नदी मिल जाती है। तब यह 'जीवार-पर्वत' के दक्षिण पार्श्व को भेदन कर आगे प्रवाहित होती है। 'तुहिनाचल' में आरूढ हो इसके मूल में स्नान कर 'महेश्वरी' तथा पर्वत पर स्थित 'शङ्कर' का पूजन करने से व्यक्ति देवसदृश हो जाता है। उसके बाईं ओर 'बलि' पर्वत है। उसमें चढ़ने पर मानव दिव्य-देह-सम्पन्न हो जाता है। दक्षिण में 'केरल' पर्वत पर चढ़कर गुहावासी 'केरलेश' शङ्कर का पूजन कर मानव देवता के समान पूज्य हो जाता है। तब 'जनिजा' के सङ्गम पर 'जनिजा'-तीर्थ में स्नान करने से 'सोमयाग' करने का फल मिलता है, तब 'केरली' के सङ्गम में 'कैरली' देवी का पूजन कर 'जीवती' के सङ्गम में जाये। वहाँ पर स्नान करने से सहस्र-गोदान करने का

---

१. 'तपोधनाः' इत्यन्यत्र पाठः।

२. 'छिपला पहाड़'—'पञ्चचूली' का अन्तिम छोर।

गौर्याः सा सङ्गमे पूर्णा सङ्गता मुनिसत्तमाः । वामे तस्या महादेवी पूज्यते सिद्धनायकैः ॥१६॥
तां स्नात्वा मानवो याति सत्यलोकं न संशयः । पुण्या मधुमती नाम गौर्याः सा सङ्गमं गता ॥
तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य पितॄनाशु दिवं व्रजेत् । श्यामायाः सङ्गमं पुण्यं सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥
तत्र स्नात्वा विधानेन दिव्यदेहः प्रजायते । गौर्यास्तु स्मरणं पुण्यं यः करोतीह मानवः ॥
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ २० ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गौरीमाहात्म्ये एकविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

फल है । तदनन्तर उस नदी में अनेक नदियां मिलती हैं । फिर इसका सङ्गम 'मधुमती' नदी से होता है, जो 'पावन' पर्वत के उत्तर भाग से उत्पन्न हुई है । उसके वाम भाग में सिद्धगण 'महादेवी' का पूजन करते हैं । वहाँ स्नान करने पर 'सत्यलोक' प्राप्त होता है । 'गौरी-मधुमती' के सङ्गम में स्नानादि करने से पितर लोग स्वर्ग प्राप्त करते हैं । फिर यह 'श्यामा' के साथ संगत होती है । वहाँ विधिपूर्वक स्नान कर दिव्य देह प्राप्त करे । जो व्यक्ति पवित्र 'गौरी' का स्मरण करता है, उसके इक्कीस कुलों का उद्धार होता है और वह बिष्णुलोक प्राप्त करता है ॥ १-२० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गौरी-माहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यास उवाच—

श्यामायाः सङ्गमे पुण्या पावनाद्रौ समुद्भवा। पावनेशस्य चरणात्सम्भूता मुनिसत्तमाः ॥१॥
दिनञ्जा लोकपापघ्नी श्यामायाः सङ्गमे गता। दक्षिणे क्षेत्रजा नाम दिनञ्जायाः प्रपूज्यते ।२।
तस्यां स्नात्वा च सम्पूज्य सरःस्नानफलं लभेत्। दिनञ्जासङ्गमे स्नात्वा बकजासङ्गमं व्रजेत्।
बकतीर्थे च संस्नात्वा नरो याति परां गतिम्। बकपर्वतसम्भूता ततः पुण्या तु शाङ्करी ॥४॥
श्यामायाः सङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः। तत्र स्नात्वा शिवगृहं प्राप्यते नात्र संशयः ।५।
बकपर्वतमारुह्य तथा सूकरपर्वते। सत्येशं सत्यपूज्यं च मानवो याति शाश्वतीम् ॥६॥
ततस्तु रोहिणी नाम पावनोत्था महानदी। श्यामायाः सङ्गमे पुण्या संगता मुनिसत्तमाः ॥७॥
तत्र स्नात्वा च मनुजः सत्यलोकं प्रयाति वै। वराहाद्रिसमुद्भूता ततो वेगवती सरित् ॥८॥
श्यामायाः सङ्गमे पुण्या संगता मुनिसत्तमाः। *ध्वजपर्वतसम्भूता तथा चर्मण्वती सरित् ॥९॥
सङ्गमे श्यामगङ्गायाः संगता सत्यदायिनी*। चर्मतीर्थे च संस्नात्वा अन्नदानफलं लभेत् ॥१०॥
ततो नन्दा सरिच्छ्रेष्ठा ध्वजशैलसमुद्भवा। श्यामायाः सङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥
तत्र नन्दां महादेवीं पूज्य स्नानं विधाय च। सत्यलोकमवाप्नोति कुलत्रयसमन्वितः ॥१२॥
मालिकार्जुनशैलाद्वै मेनकाख्या सरिद्वरा। श्यामायाः सङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥१३॥
तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य नरो याति परां गतिम्। ततः पिकवती नाम सङ्गमे संगता द्विजाः ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! 'पावन' पर्वत से निकली एवं 'पावनेश' के चरणों से प्रकट होती हुई पापों की विनाशिका 'दिनञ्जा' भी 'श्यामा' में जा मिली। उसके दक्षिण में 'क्षेत्रजा' पूजित हैं। 'दिनञ्जा' में स्नान करने से 'मानसरोवर में स्नान का फल मिलता है। 'दिनञ्जा' के सङ्गमस्नानोपरान्त 'बकजा'-संगम में जाये। वहाँ स्नान करने से सद्गति मिलती है। फिर 'बक'-पर्वत से निकली पवित्र नदी 'शाङ्करी' श्यामा में संगत होती है। उसमें स्नान कर 'शिवगृह' प्राप्त होता है। 'बक' पर्वत पर आरूढ हो तथा 'सूकर' पर्वत पर 'सत्येश' का पूजन कर परम गति प्राप्त होती है। तदनन्तर 'पावन' पर्वत से उद्भूत 'रोहिणी'[1] नदी 'श्यामा' के साथ मिलती है। वहाँ स्नान करने से सत्यलोक मिलता है। फिर 'वराह'[2] पर्वत से निकलने वाली 'वेगवती' नदी 'श्यामा' से संगत होती है। वहीं पर 'ध्वज' पर्वत से समुद्भूत 'चर्मण्वती' नाम की नदी भी मिलतो है। वहाँ 'चर्मतीर्थ' में स्नान कर अन्नदान का फल फिलता है। तब 'ध्वज' पर्वत से निकलकर 'नन्दा' नदी 'श्यामा' में मिलती है। उसमें स्नान एवं 'नन्दा' देवी का पूजन करने से तीन कुलों के साथ 'सत्यलोक' में स्थान मिलता है। फिर 'मालिकार्जुन'[3] पर्वत से निकलकर 'मेनका' नदी का 'श्यामा' के साथ संगम

... चिह्नयोरन्तर्गता भागः 'ख' पुस्तके नास्ति।

१. प्रचलित नाम—'रौतिस गाड़'। यह मल्ला देश से निकलती है।

२. 'वारावीसी' नाम से जाना जाता है।

३. 'लोड़ीधुर' की चोटी में 'मल्लिकार्जुन' का स्थान है।

तत्र स्नात्वा च मनुजः सत्यलोके महीयते। ततस्तु जानकीसङ्गे निमज्य विधिपूर्वकम् ॥१५॥
जातिस्मरत्वं जायते नात्र कार्या विचारणा। कालिन्दीसङ्गमे गत्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ॥
मासोपवासस्य फलं प्राप्यते नात्र संशयः। ततो भगवती पुण्या असुरप्रान्तसम्भवा ॥१७॥
श्यामायाः सङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः। मूले तस्या भगवती पूज्यते देवनायकैः ॥१८॥
महामायां भगवतीं पूज्य याति परां गतिम्। ततश्चर्मण्वती नाम हिमालयसमुद्भवा ॥१९॥
अघकोटिविनाशायावतीर्णा च भुवः स्थले। सङ्गमे श्यामगङ्गायाः संगता मुनिसत्तमाः ॥२०॥
तत्र स्नात्वा पितृकृत्यं विधायाशु दिवं व्रजेत् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्यामामाहात्म्ये द्वाविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

है। वहाँ स्नान-तर्पणादि कर परम गति प्राप्त करे। तब इस सङ्गम पर 'पिकवती' आकर मिलती है। वहाँ स्नान कर मानव सत्यलोक में प्रतिष्ठित होता हैं। तब 'जानकी' के सङ्गम में स्नान कर पूर्व जन्म की घटनाओं का स्मरण हो जाता है। फिर 'कालिन्दी' के सङ्गम में स्नान करने से मासोपवास का फल मिलता है। फिर 'असुरपर्वत' के किनारे से निकलने वाली 'भगवती' का 'श्यामा' के साथ संगम है। उसके मूल में देवगण 'भगवती' की पूजा करते हैं। सद्गति प्राप्त होना इसका फल है। तब 'चर्मण्वती' नदी 'हिमालय' से निकल कर[1] 'श्यामा' के साथ मिलती है। उसमें स्नान-तर्पणादि करने पर 'स्वर्ग' प्राप्त होता है ॥ १ – २१ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'श्यामामाहात्म्य' नामक
एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. (स्थानीय नाम) 'भोपानी' से निकलती है

१२३

ऋषय ऊचुः—

क्षेत्राणि ब्रूहि पुण्यानि तथा साम्प्रतम् । तथैव शिवलिङ्गानां माहात्म्यं मुनिसत्तम ॥१॥

व्यास उवाच—

श्यामाचर्मण्वतीमध्ये क्षेत्रं सत्याह्वयं स्मृतम् । लोकानां पापविच्छित्यै अर्जुनाद्रेरधिष्ठितम् ॥२॥
क्षेत्रं सत्यप्रदं विप्रा विद्यते शूलपाणिनः । तत्र सत्येश्वरो देवो भृङ्गिना परिसेवितः ॥३॥
राजते पार्षदगणैः सह देव्या तपोधनाः । तस्मिन्क्षेत्रे च यो याति चर्मण्वत्याश्च मध्यगे ॥४॥
स याति भवनं शम्भोः कुलकोटिसमन्वितः । धन्या चर्मण्वती नाम अघकोटिविनाशिनी ॥५॥
अर्जुनाद्रेः कटिं भित्त्वा श्यामायाः सङ्गमे गता । यत्र सा सरितां श्रेष्ठा सत्यमार्गप्रदायिनी ॥६॥
तत्र सत्याह्वयं क्षेत्रं ज्ञातव्यं मुनिसत्तमाः । सत्यां सत्येश्वरं देवं समर्च्य मुनिसत्तमाः ॥७॥
मांसास्थिचर्मसंलग्नं पापं तत्र प्रणश्यति । अर्जुनाधित्यकां गत्वा सत्येशं यः समर्चति ॥८॥
श्यामाचर्मण्वतीमध्ये स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् । कुलानां त्रिंशदुद्धृत्य सत्यलोकं प्रयाति वै ॥
काश्यां विश्वेश्वरं देवं विधिवत्पूज्य यत्फलम् । प्राप्यते तत्फलं सर्वं सत्येशं पूज्य शङ्करम् ।१०।
स्नात्वा चर्मण्वतीमध्ये भैरवाख्ये महासरे । निमज्य पितृकृत्यं च विधायाशु दिवं व्रजेत् ॥११॥
ततः सरस्वतीतीर्थे चर्मण्वत्यास्तु मध्यगे । निमज्य पितॄन् सन्तर्प्य सत्येशं पूजयेद्धरम् ॥१२॥
पूज्य सत्येश्वरं देवं वामे सत्यां हरिप्रियाम् । समर्च्य सत्यलोकाप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥१३॥

सत्यायाः सङ्गमे स्नात्वा विन्ध्यायाः सङ्गमं व्रजेत् ।
विन्ध्यायाः सङ्गमे स्नात्वा पुनश्चर्मण्वतीं व्रजेत् ॥ १४ ॥

चर्मण्वत्याश्च कालिन्द्याः सङ्गमे विधिपूर्वकम् । निमज्य मुनिशार्दूलाः कालिन्दीं सम्प्रपूज्य वै ॥
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सत्येश्वरमाहात्म्ये त्रयोविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! आप कृपया 'श्यामा' से सम्बद्ध 'क्षेत्र', 'तीर्थ' तथा 'शिव'-लिङ्गों का परिचय दें ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—'श्यामा' और 'चर्मण्वती'[1] के मध्य 'अर्जुन पर्वत' पर अधिष्ठित पापनाशक 'सत्यक्षेत्र' है। वहाँ पर 'भृङ्गी' से सेवित 'सत्येश्वर' शिव हैं, जो 'देवी' तथा 'पार्षदों' से युक्त सुशोभित हैं। उस क्षेत्र में जाने वाला व्यक्ति कोटि कुलों सहित शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। धन्य है वह असंख्य पापनाशिनी 'चर्मण्वती नदी'। 'अर्जुनाद्रि' की कटि का भेदन कर जहाँ वह 'श्यामा' के साथ मिलती है, वहीं पर 'सत्यक्षेत्र' है। वहाँ 'सत्येश्वर' का अर्चन करने से मानव के अस्थि, चर्म और मांसगत पाप नष्ट हो जाते हैं। 'सत्येश' का पूजन तथा 'श्यामा-चर्मण्वती' के संगम में स्नान करने से तीस कुलों का उद्धार होता है। साथ ही 'सत्येश्वर' एवम् उनके बाईं ओर 'सत्या देवी' का पूजन करने से काशी-विश्वनाथ की पूजा के

---

१. 'चरमगाड़' के नाम से विदित है। अन्यत्र पुराणों में वर्णित 'चर्मण्वती' नदी 'पारियात्र' पर्वत से निकलती है। वह पितृगणों को प्रिय है।

१२४

ऋषय ऊचुः—

पर्वता ये महापुण्याः सन्ति तत्र तपोधनाः । वयं ताञ्छ्रोतुमिच्छामो देवपुण्यान्दिवप्रदान् ॥१॥

व्यास उवाच—

श्यामाचर्मण्वतीमध्ये पर्वता ये तपोधनाः । तानहं कथयिष्यामि हिमसीकरसेवितान् ॥२॥
श्यामाचर्मण्वतीमध्ये शमिसंज्ञो महागिरिः । उच्छ्रितः शिखराकारो नानाधातुविराजितः॥३॥
तमारुह्य शमवतीं देवीं सम्पूज्य मानवः । महापारकजं पुण्यं प्राप्नोति नहि संशयः ॥४॥
शमी च सुभगा चैव तस्मान्नद्यौ विनिःसृते । चर्मण्वत्या महासङ्गे सङ्गते मुनिसत्तमाः ॥५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शमिपर्वतमाहात्म्ये चतुर्विशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

समान फल मिलता है। 'चर्मण्वती' के मध्य 'भैरव-सरोवर' तथा 'सरस्वती-तीर्थ' में स्नान करने पर भी वही फल मिलता है। तब 'सत्या'-संगम में स्नान करने के बाद 'विन्ध्या'-सङ्गम में जाये। वहाँ स्नान कर पुनः 'चर्मण्वती' जाये। वहाँ 'चर्मण्वती-कालिन्दी'[1] में स्नान कर 'कालिन्दी' का पूजन कर शिवलोक प्राप्त करे॥ २ – १५॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सत्येश्वर'-माहात्म्य नामक
एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥

ऋषियों ने कहा—गुरुदेव ! 'सत्यक्षेत्र' में विद्यमान पुण्यशील एवं महनीय पर्वतों का वर्णन कर हमें अनुगृहीत करें॥१॥

व्यासजी बोले—ऋषिवरों ! 'श्यामा-चर्मण्वती' के मध्यगत पर्वतशृङ्गों को मैं बतलाता हूँ। सर्वप्रथम इन दोनों के मध्य 'शमी'[2] पर्वत है। वह अत्युन्नत शिखराकार एवम् अनेक धातुओं की खानों से संकुलित है। उस पर आरूढ़ हो 'शमवती' देवी का पूजन कर पुण्य-लाभ होता है। 'शमी' और 'सुभगा'—ये दो नदियाँ वहाँ से निकल कर 'चर्मण्वती' में मिलती हैं॥ २ – ५॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शमिपर्वत-माहात्म्य'
नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥

---

१. अन्यत्र 'केतुमाल' देश की एक नदी का नाम भी 'कालिन्दी' है (वायु० ४४-२१)। 'यमुना' की प्रसिद्धि तो 'कालिन्दी' के नाम से सर्वविदित है (विष्णु ५-७-२)।

२. 'सिमहली' नाम से विदित है। आश्विन में मेला लगता हैं। 'घनलेख' की चोटी पर 'दुरमल' देवता व 'भगवती' की पूजा होती है।

१२५

ऋषय ऊचुः—

सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् । सर्वलोकाधिपत्यं च दातारं वद साम्प्रतम् ॥१॥

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः क्षेत्रं क्षेत्रोत्तमं शुभम् । अघकोटिविविनाशाय महादेव्या प्रकाशितम् ।२।

पृच्छते गणनाथाय चण्डीशाय तपोधनाः । पर्वता ये महाक्षेत्रं मालिकार्जुनसंज्ञकम् ॥३॥

पापकर्मापि मनुजो गत्वार्जुनगिरिं शुभम् । ततः[1] कृतार्थो विज्ञेयः प्राप्नोति शिवमन्दिरम् ॥४॥

इति देव्या महापुण्यं चण्डीशोऽपि महामतिः । संश्रित्य कथितं विप्रास्तां देवीं पर्यपृच्छत ॥५॥

चण्डीश्वर उवाच—

कथयस्व प्रसादेन क्षेत्रं क्षेत्रेश्वरं तथा । यत्र गत्वा च तप्त्वा च प्राप्यते शिवमन्दिरम् ॥६॥

तदहं श्रोतुमिच्छामि महादेवि नमोऽस्तु ते । यत्र जागर्ति गिरिशस्त्वया सह वदस्व माम् ॥७॥

देव्युवाच—

स्थलं पापविनाशाय मानवानां दुरात्मनाम् । शृणुष्व वत्स भद्रं ते मया निगदितं वचः ॥८॥

अवाच्यमपि वक्ष्यामि मानवानां हिताय च । क्षेत्रं क्षेत्रोत्तमं पुण्यं महादेवस्य शूलिनः ॥९॥

हिमालयतटे रम्ये नानौषधिसमन्विते । श्यामाचर्मण्वतीमध्ये सुरसिद्धनिषेविते ॥१०॥

पर्वतोऽर्जुनसंज्ञो वै विद्यते गणनायक । सुरसिद्धगणैः सेव्यो नानाऽऽकरसमन्वितः ॥११॥

मालिकार्जुनसंज्ञं[2] वै क्षेत्रं तत्र प्रतिष्ठितम् । भृङ्गिना गणमुख्येन सेवितं सुमनोहरम् ॥१२॥

तत्र गत्वा महाभाग शीघ्रमेवाघविच्युतिः । जायते नात्र सन्देहो दृष्ट्वा चैवार्जुनेश्वरम् ॥१३॥

ऋषियों ने पूछा—ब्रह्मर्षे ! अब आप सब पापों का विनाशक, सब लोकों का आधिपत्य-दाता तथा सर्वोत्तम क्षेत्र का वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—ऋषिवरों ! अब आप लोग पहले भगवती से प्रकाशित सर्वोत्तम क्षेत्र के सम्बन्ध में सुनें। इस बात को चण्डीश के द्वारा पूछे जाने पर भगवती ने पर्वत के अग्र भाग में विद्यमान 'मल्लिकार्जुन'[3] नामक महाक्षेत्र को बतलाया था। मुनियों ! 'अर्जुन पर्वत' पर पापी जन भी कृतार्थ हो जाते हैं। तब चण्डीश ने देवी से पुनः जिज्ञासा की ॥ २–५ ॥

चण्डीश ने निवेदन किया—देवि ! शिव की प्राप्ति होने वाले एवं देवीसहित शङ्कर के जागरूक रहने वाले 'क्षेत्र' तथा 'क्षेत्रेश्वर' के सम्बन्ध में वर्णन कर कृतार्थ करें ॥ ६–७ ॥

देवी ने चण्डीश से कहा—वत्स ! सुनो। मैं अब दुष्टों के पापनाशक उत्तम क्षेत्र के सम्बन्ध में वर्णन करती हूँ। सबके हितार्थं रहस्योद्घाटन करती हूँ। 'हिमालय' के तट पर 'श्यामा'-'चर्मण्वती' के मध्य अनेक प्रकार की ओषधियों से युक्त वह 'अर्जुन पर्वत' है। वहाँ जाने पर 'अर्जुनेश्वर' के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। 'अर्जुनेश्वर' के दर्शन का बड़ा माहात्म्य है। इनका दर्शन होने के पूर्व तक दुःख सम्भावित रहते हैं। 'सत्या' के जल में स्नान

---

१. 'तत्र'—'ख'। २. 'मालिकार्जुनसंज्ञो वै'—'ख'।

३. 'अंगालीलेख' में मल्लिकार्जन मन्दिर।

तावद् भ्रमन्ति संसारे दुःखार्ता मनुजाधमाः । यावदर्जुनसंज्ञं वै स्थानं शम्भोर्न यान्ति हि ।१४।
यत्र गत्वा महापापा विलीयन्ते न संशयः । दर्शनाद्देवदेवस्य सत्यातोयनिमज्जनात् ॥१५॥
इतिहासकथां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् । मया निगदितां तां वै शृणुष्व सुसमाहितः ॥१६॥
यौनको नाम धर्मात्मा विपिने युनकात्मजः । बभूव धन्विनां श्रेष्ठो भिल्लो ब्राह्मणरूपधृक् ।१७।
कदाचिन्मृगयां कुर्वन् स भिल्लो ब्राह्मणीं शुभाम् । मृगं ज्ञात्वा हि विपिने शरेण निजघान ह ॥
स मृतां ब्राह्मणीं ज्ञात्वा वर्णिलिङ्गी तपोधनाः । विसृज्य सशरं चापं जपन् शिव-शिवेति च ॥
मत्वा पापं शुभाचारो भृगुपुण्याश्रमं ययौ । पृष्टो मुनिवरस्तेन प्रोवाच कृपया च सः ॥२०॥

भृगुरुवाच—

कृतं दुष्कर्म भवता ब्राह्मणीविनिपातनात् । नैतद्युगायुतैर्वापि दुष्कृतं ते प्रणश्यति ॥२१॥
येनोपायेन दुष्कर्म ते प्रणश्यति साम्प्रतम् । तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मा भीतिं कुरु सर्वथा ॥२२॥
गच्छ त्वं हिमवत्पार्श्वे यत्र दिव्ये सरिद्वरे । श्यामाचर्मण्वतीसंज्ञे दिव्यतीर्थे तपस्विनाम् ॥२३॥
तत्र स्नात्वा विधानेन तयोर्मध्ये महागिरिम् । समारुह्यार्जुनाख्यं वै अर्जुनेशं प्रपूज्य वै ॥२४॥
भविष्यति महाभाग शीघ्रमेवाघविच्युतिः ।

देव्युवाच—

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं स भिल्लः प्रणतो मुनिम् ॥ २५ ॥
पुनराह स्थलं तस्य कथं जानामि सुव्रत । कीदृग्विधा च महिमा तस्य देवस्य शोभना ॥२६॥
प्रवेशो निर्गमश्चापि कस्मात्तत्र प्रतिष्ठितः । यानि तत्र च लिङ्गानि यानि तीर्थानि सन्ति वै ॥
कृपया वद विप्रर्षे अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ।

भृगुरुवाच—

हिमालयतटोत्पन्ना पुण्या चर्मण्वती नदी ॥ २८ ॥

तथा 'देवेश' का दर्शन करना बड़ा पावन कार्य है। इस सम्बन्ध में एक आख्यान प्रसिद्ध है—'युनक' का पुत्र 'यौनक' भील बड़ा धनुर्धारी था। एक दिन उसने 'मृग' के भ्रम से एक ब्राह्मणी का वध कर दिया। उसका मरण देख वह बड़ा दुःखी हुआ। धनुष-वाण छोड़ 'शिव'-'शिव' जपने लगा। पाप से दुःखी हो वह 'भृगुतुङ्गाश्रम'[1] में पहुँचा। वहाँ जाकर महर्षि 'भृगु' से पाप की चर्चा करने पर उन्होंने यह उत्तर दिया ॥ ८ – २० ॥

भृगु बोले—भिल्ल ! तुमने ब्रह्महत्या की है। यह पाप सैकड़ों वर्षों में भी नष्ट नहीं हो सकता। तथापि मैं पाप दूर होने का उपाय तुझे बतलाऊँगा। भयभीत न होओ। तुम हिमालय के तटवर्ती 'श्यामा-चर्मण्वती' के सङ्गम पर 'दिव्यतीर्थ' में जाओ। वहाँ स्नान कर तत्रस्थ 'अर्जुन-पर्वत' पर आरूढ हो 'अर्जुनेश' का पूजन करो। ऐसा करने पर पापों की विच्युति होगी ॥ २१ – २४ ॥

देवी ने कहा—'भृगु' ऋषि के वाक्यों को सुन उस भील ने प्रणामपुरस्सर उस स्थल का परिचय, महिमा, प्रवेश, निर्गम तथा वहाँ के तीर्थों एवं शिवलिङ्गों का परिचय पूछा ॥ २५ – २७ ॥

---

१. 'भारम्यो' नाम से जाना जाता है।

मालिकार्जुनशैलस्य दक्षिणे सङ्गता द्विज । तथान्या जाह्नवी नाम बीजशैलसमुद्भवा ॥२९॥
तयोस्तु सङ्गमे स्नात्वा जाह्नवीशं प्रपूज्य वै । मुण्डनं चोपवासं च पितृकृत्यं विधाय च ॥३०॥
प्रवेशस्तत्र कर्तव्यस्तस्मिन् क्षेत्रे महीतले । जाह्नवीसङ्गमादूर्ध्वं सत्यासङ्गे महामते ॥३१॥
सत्येश्वरीं महादेवीं स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् । धर्मशैलं ततो गच्छेद्धर्मेशं पूज्य शङ्करम् ॥३२॥
ततो धर्मसरिन्मध्ये निमज्य विधिपूर्वकम् । पितृकृत्यं विधायाशु पर्वताग्रे ततो व्रजेत् ॥३३॥
दृष्ट्वा धर्मशिलां पुण्यां ताम्रधातुनिभां शुभाम् । द्वितीयेऽहति वै भिल्ल गन्तव्यं देवसन्निधौ ॥
मालिकां दक्षिणे पार्श्वे पूज्य देवीं हरप्रियाम् । पूजयेद्देवदेवशमर्जुनेशं महामते ॥३५॥
नानापुष्पैश्च वस्त्रैश्च तथा मौक्तिकतण्डुलैः । समर्च्य देवदेवेशं वामे कालीं प्रपूज्य वै ॥३६॥
प्रत्यागत्य महापुण्यां धर्माख्यां भिल्लनायक । तत्र निष्क्रमणं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३७॥
निष्कृतिस्तत्र पापानां भविष्यति व्रजस्व वै । इति तस्य ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वा सम्पूज्य तं द्विजम् ॥
मालिकार्जुनसंज्ञं वै स भिल्लः प्रययौ शुभम् । श्यामाचर्मण्वतीमध्ये निमज्य विधिपूर्वकम् ।३९।
सत्येशं पूज्य देवेशं द्वितीयेऽहनि वै गणः । जाह्नवीसरितोर्मध्ये स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ॥४०॥
सत्येशासङ्गमे स्नात्वा ययौ चर्मण्वतीं शुभाम् । तृतीयेऽहनि देवस्य सन्निधौ प्रययौ ततः ॥४१॥
अर्चयामास देवेशं मया सह तपोधनाः । समर्च्य विधिवद्देवं प्राप्यानुज्ञां महामते ॥४२॥
ब्राह्मणीवधजं पापं सम्यक्संक्षाल्य वै द्विजाः । स्वमेव भवनं गत्वा भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥
अन्ते शिवपुरं रम्यं स लेभे गणनायक ।

(तब) भृगुजी ने कहा—वत्स ! 'मालिकार्जुन' पर्वत के दक्षिण में 'चर्मण्वती' नदी सङ्गमित होती है । तथा 'बीज' पहाड़ से निकलने वाली 'जाह्नवी' भी वहीं आकर मिलती है । उनके सङ्गम में स्नान कर 'जाह्नवीश' का पूजन, उपवास और पितृकृत्य करने पर उस क्षेत्र में प्रवेश करे । जाह्नवी-संगम से ऊपर की ओर 'सत्या' के संगम में 'सत्येश्वरी' का पूजन एवं पितृकार्य सम्पादित कर 'धर्म' पर्वत[1] पर जाकर 'धर्मेश' का पूजन करना चाहिए । तब 'धर्म' नदी[2] में स्नान-तर्पणादि कर पर्वत के अग्रभाग में जाकर ताँबे की तरह दिखाई देने वाली 'धर्मशिला' का दर्शन कर दूसरे दिन 'देवेश' के समीप जाना चाहिए । तब दक्षिण भाग में 'मालिका' का पूजन कर 'अर्जुनेश' भगवान् को नाना प्रकार के पुष्प, वस्त्र, मोती एवं अक्षत आदि से पूजन किया जाय । फिर वाम भाग में 'काली' पूजा कर पुनः 'धर्मशिला' के समीप आकर निष्क्रमण करने पर पापों से छुटकारा मिलता है । रे भील ! तुम वहाँ जाओ, तुम्हारे पाप दूर हो जायेंगे । ये बातें सुनकर उस भील ने 'मालिकार्जुन' में जाकर श्यामा-चर्मण्वतीसङ्गम में स्नान किया । तब 'सत्येश' का पूजन किया । उसने दूसरे दिन 'जाह्नवी' में स्नान-तर्पणादि करने के पश्चात् 'सत्येशा' सङ्गम तथा 'चर्मण्वती' में स्नान किया । तीसरे दिन 'देवेश' के समीप जाकर, तपोधनों ! उसने मेरे साथ वहाँ पूजन किया । तब उसने वहाँ से अनुज्ञा प्राप्त की । इस प्रकार वह ब्राह्मणी-वध-जन्य पाप से मुक्ति पा सका । फिर उसने अपने घर जाकर यथेष्ट सुख भोगा । हे गणनायक ! अन्त में उसने शिवलोक प्राप्त किया ॥ २८ – ४३ ॥

---

१. 'धनलेख' नाम से विदित है । २. 'धनलेख-गाड़' नाम से जानी जाती है ।

चण्डीश उवाच—

मल्लिकार्जुनसंज्ञो वै कथं स क्षेत्रनायकः । कथ्यते तन्महाभागे श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।४४।

देव्युवाच—

अर्जुनेन तु रूपेण तत्स्थले वसति प्रभुः । भृङ्गिणा गणमुख्येन मया मल्लिकया सह ।।
मालिकार्जुनसंज्ञो वै तेन संकथ्यते प्रभुः ।। ४५ ।।

व्यास उवाच—

स देव्या वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य महेश्वरीम् । देवं तं वरदं ज्ञात्वा तूष्णीमास तपोघनाः ।।४६।।
अर्जुनेशस्य चाख्यानं महादेव्या प्रकाशितम् । संस्मृत्य सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।।४७।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मालिकार्जुनमाहात्म्ये पञ्चविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

१२६

व्यास उवाच—

अर्जुनाख्यस्य शैलस्य उत्तरे मुनिसत्तमाः । ढुण्ढुपां धेनुकगिरौ पूज्य याति परां गतिम् ।।१।।
ततस्तु कौशिको नाम पर्वतोऽस्ति तपोधनाः । अर्जुनस्य पूर्वभागे वै दिव्यो मलयसन्निभः ।।२।।
तमारुह्य महादेवीं कामदां च शिवं पुरः[1] । सम्पूज्य मानवो याति सत्यलोकं न संशयः ।।३।।
ततस्तु पूर्वभागे वै दिव्यो ज्वालागिरिः स्मृतः । तस्य पश्चिमभागे वै देवीं ज्वालावतीं शिवाम् ।।
सम्पूज्य तं समारुह्य सत्यलोकमवाप्यते । तस्मान्नवा सरिन्नाम नवमूलसमुद्भवा ।।५।।
चर्मण्वत्या महासङ्गे सङ्गता मुनिसत्तमाः । तां वै स्नात्वा च पीत्वा च सोमपानसमं फलम् ।।

चण्डीश ने पूछा—देवि ! इस क्षेत्र के अधीश्वर का नाम 'मालिकार्जुन' क्यों पड़ा ? ।। ४४ ।।

देवी ने कहा—गणनायक ! यहाँ 'अर्जुन' रूप में देव निवास करते हैं । 'भृङ्गी के साथ मैं भी यहाँ 'मल्लिका' के रूप में रहती हूँ ।' अतः क्षेत्र को 'मल्लिकार्जुन' कहा गया ।। ४५ ।।

व्यासजी बोले—इस प्रकार वह देवी की बात सुनकर चुप हो गया । मुनिवरों ! देवी के द्वारा प्रकाशित 'अर्जुनेश' का आख्यान सुनकर सब दुरित दूर हो जाते हैं ।। ४६ – ४७ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'मल्लिकार्जुन-माहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! 'अर्जुनाद्रि' के उत्तर में 'धेनुक' पर्वत पर 'ढुण्ढुपा' देवी का पूजन करने से सद्‌गति प्राप्त होती है । तब 'अर्जुनाद्रि' के पूर्व में 'कौशिक' पर्वत है । उस पर चढ़ कर 'कामदा' देवी और 'शिव' का पूजन कर सत्यलोक प्राप्त होता है । फिर पूर्व भाग में दिव्य 'ज्वालागिरि' है । उसके पश्चिम में 'ज्वालावती' का पूजन कर सत्यलोक प्राप्त होता है । तब 'नवमूल' से निकलने वाली 'नवा' नदी 'चर्मण्वती' के साथ मिलती है । वहाँ

---

१. 'तमारुह्य महादेवं कामदां च तयेश्वरीम्'—इति 'ख' पुस्तके पाठः ।

नवमूलगिरिं गत्वा काकाख्यं पर्वतं व्रजेत् । नवकोणं सुविस्तीर्णं योजनद्वादशायतम् ।।७।।
उन्नतं शिखराकारं हिमसीकरपूरितम् । रजताकरसम्पूर्णं ताम्रधातुविराजितम् ।।८।।
नानामृगगणाकीर्णं नानाधातुविराजितम् । सुरसिद्धगणैर्विप्राः सेवितं मेरुसन्निभम् ।।९।।
तमारुह्य महादेवं शशकाख्यं तपोधनाः । सम्पूज्य च पितॄन् सर्वांस्तारयेन्नात्र संशयः ।।१०।।
तस्मात्तु बहवो नद्यः सम्भूताः सरितां वराः । चर्मण्वतीं महापुण्यां सङ्गताः पुण्यलक्षणाः ।।११।।
तस्य दक्षिणभागे वै पुण्या बिल्ववती गुहा । विद्यते देवगन्धर्वैः सेविता काञ्चनोपमा ।।१२।।
तत्र बिल्वेश्वरो देवः शतलिङ्गैः समन्वितः । राजते देवगन्धर्वैः सेवितः काञ्चनोपमः ।।१३।।
बिल्वेश्वरं महादेवं कन्दरायां च संस्थितम् । महापूजाफलं पूज्य प्राप्यते मुनिसत्तमाः ।।१४।।
भृङ्गिं रिटिं च रिटिजं कन्दरायां प्रपूज्य च । महाफलं च सम्पूर्णं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।।१५।।
ततो वृन्दारको नाम पर्वतोऽस्ति तपोधनाः । तत्र वृन्दारकां देवीं पूज्य प्राप्नोति सत्पथम् ।१६।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पर्वताख्याने षड्विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

स्नान करना तथा उसका जलपान—ये दोनों सोमपान-सदृश हैं । तब 'नवमूल' पर्वत पर जाने के पश्चात् 'काकपर्वत' पर जाये । वह 'काकपर्वत' नौ कोनों वाला, बारह योजन विस्तृत, 'हिमाचलाच्छादित' उन्नत शिखरों से युक्त, चाँदी-ताँबों की खानों तथा मृगों से संकुलित होता हुआ सुरगणों एवं सिद्धजनों से सेवित 'मेरु' के समान सुशोभित है । उस पर चढ़ 'शशक'[1] देव का पूजन कर सब पितृगण तर जाते हैं । उस पर्वत से अनेक नदियाँ निकलकर 'चर्मण्वती' में सङ्गमित होती हैं । उसके दक्षिण में सुवर्ण की तरह प्रदीप्त एवं देव-गन्धर्वगणों से सेवित पुनीत 'बिल्ववती' गुहा है । उसमें 'शतलिङ्गों' से संयुत काञ्चनसदृश कमनीय 'बिल्वेश्वर' महादेव सुशोभित हैं । मुनिवरों ! उनका पूजन करने से 'महापूजा' करने का फल मिलता है । उस गुहा में शिवजी के गणों—'भृङ्गी', 'रिटि' और 'रिटिज'—का पूजन करने पर अधिक फल प्राप्त होता है । तपोधनों ! तब 'वृन्दारक' नाम का पर्वत है । वहाँ 'वृन्दारका' देवी का पूजन करने से 'सन्मार्ग' प्राप्त होता है ।। १ – १६ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पर्वताख्यान' सम्बन्धी
एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. महाभारत (वनपर्व २५४-२१) के अनुसार एक जाति विशेष का नाम है । 'कर्ण' ने इस जाति के राजा को पराजित किया था ।

१२७

ऋषय ऊचुः—

चर्मण्वतीति या ख्याता त्वया सत्यवतीसुत । सम्भवं श्रोतुमिच्छामस्तस्याः पापप्रणाशनम् ॥१॥
तथा पुण्यानि तीर्थानि रम्याणि मुनिसत्तम । क्षेत्राणि चातिपुण्यानि तस्यास्तटगतानि च ॥२॥
कथयस्व प्रसादेन प्रपन्नान् पाहि सर्वतः । न तृप्यामः पिबन्पुण्यममृतं त्वन्मुखोद्गतम् ॥३॥

व्यास उवाच—

चर्मण्वत्याः समुत्पत्तिं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । सर्वपापहरं दिव्यं मया सम्यगुदाहृतम् ॥४॥
पुरा त्रेतायुगस्यादौ चर्मवासा तपोनिधिः । सूक्ष्मासरं समाश्रित्य तपश्चक्रे तपोधनाः ॥५॥
चर्मवासा महाभागो तपः परमदुष्करम् । दशवर्षसहस्राणि चक्रे साक्षाच्छिवोपमः ॥६॥
तं तपन्तं तदादित्यो निष्प्रभः सम्बभूव ह । जगत्प्राणो महाप्राणो न ववौ मुनिसत्तमाः ॥७॥
महेन्द्रभवने दिव्ये उल्कापातो बभूव ह । तपन्तं तं तदा दृष्ट्वा महेन्द्रो मुनिसत्तमाः ॥
धातारं लोकधातारं सशङ्कः शरणं ययौ ॥ ८ ॥

तपस्यमाने पृथिवीं सुरेन्द्रे महीश्चकम्पेप्यचलाचलैः सह ।
पद्मासनाद्यास्त्रिदिविकसो द्विजा जग्मुः शरण्यं शरणं रमापतेः ॥ ९ ॥
तं तुष्टुवुर्लोकपतिं वचोभिर्वैकुण्ठमग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।
सनातनं विष्णुमनन्तरूपं श्रियः पतिं सत्यपतिं ससत्यम् ॥ १० ॥
स्तुवन् हि विष्णुर्वचनं शुशुश्रुवुः सूक्तैः समाधौ गमने समीरितम् ।
गम्भीरमेघोपमनिःस्वनं स्वन व्रजान्त्विति श्रेय उदाहृतं मया ॥ ११ ॥
स चर्मवासा मम मन्दिरं शुभं सूक्ष्मासरे भूतपतिं च मां च ।
समर्च्य सिद्धैः सह सन्निमज्य आयाति देवौ स समर्च्य तत्र ॥ १२ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे वेदव्यास ! अब हम लोग 'चर्मण्वती' के उद्‌गम स्थान के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं । इसके साथ ही वहाँ के तटवर्ती तीर्थ तथा क्षेत्र आदि के विषय में भी हम जिज्ञासुओं का समाधान करें । आप के मुख से निकलने वाली अमृत-वाणी से हम छकने पर भी तृप्त नहीं होते ॥ १ – ३ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! 'चर्मण्वती' के उद्‌गम के बारे में आप लोग सुनें । त्रेतायुग के आरम्भ में 'चर्मवासा' नाम के तपस्वी 'सूक्ष्मासर' में दस वर्षों तक तपस्या करते रहे । जिसके प्रभाव से सूर्य निष्प्रभ हो गए तथा संसार के प्राणरूप वायु ने बहना बन्द कर दिया । कहाँ तक कहें ? इन्द्रभवन में उल्कापात हो गया । उस तपस्वी के तप से भयभीत हो इन्द्रदेव 'ब्रह्मा' के शरण में गए । उस ब्राह्मण के तप करने पर पृथ्वी एवं पर्वत कांप उठे । तब ब्रह्मादि देवगण विष्णु के पास पहुँचे । वहाँ जाकर देवगण पुराणपुरुष विष्णु भगवान् की स्तुति करने लगे । स्तुति करते हुए समाधिस्थ देवों ने विष्णु भगवान् की यह वाणी सुनी कि 'आप लोग जायें । आप लोगों का कल्याण होगा' । चर्मवासा ऋषि 'सूक्ष्मासर' में स्नान कर 'विष्णु' और 'शिव' का पूजन करने के लिए सिद्धों के साथ मेरे मन्दिर में आते हैं ॥ ४ – १२ ॥

व्यास उवाच—

वैकुण्ठवचनं श्रुत्वा महेन्द्राद्या दिवौकसः। त्रिविष्टपं समाजग्मुः पुरस्कृत्य पितामहम् ॥१३॥
चर्मवासा ततः स्नात्वा दिव्ये वृन्दारपर्वते। विष्णुं संचिन्तयामास ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् ॥
सनातनं दिव्यसहस्रमौलिम् अनन्तसंज्ञं पुरुषं ददर्श।
विमानमग्रयं च तथा स्तुवन्तं समागतं भागवतैः सहासुरैः ॥ १५ ॥
यावद्ददर्श तं देवं स मुनिर्मुनिसत्तमाः। विमानमधिरोप्याशु तावत्सम्प्रययौ प्रभुः ॥१६॥
तेनैव वपुषा दिव्यं चर्मवासा तपोधनाः। वैकुण्ठभवनं पश्यन् ययोऽनन्तसहायवान् ॥१७॥
तस्मिन्मुनिवरे विप्रा गते वैकुण्ठमन्दिरम्। प्रहर्षमतुलं लेभे इन्द्रो देवगणैः सह ॥१८॥
गते तस्मिन्महाभागे वैकुण्ठभवनं प्रति। लोकानां पावनार्थाय तस्य स्नानसमुद्भवा ॥१९॥
दिव्या चर्मण्वती नाम बभूव सरितां वरा। पूरिता कलहंसीभिः चक्रवाकोपशोभिता ॥२०॥
बककारण्डवाकीर्णा तथाऽन्याभिरलङ्कृता। दिव्याङ्गनाङ्गरागेण कलुषा मुनिभिः कृता ॥२१॥
समाधिनिरतैरन्यैस्तापसैरुपशोभिता। बभूव सा सरिच्छ्रेष्ठा स्नानतोयप्रपूरिता ॥२२॥
सर्वयज्ञफलं सर्वं सर्वदानफलं तथा। यस्यां निमज्य विधिवत्प्राप्यते मुनिसत्तमाः ॥२३॥
सोमपानफलं यस्याः पिबतां कुरुते जलम्। मज्जनादग्निहोत्रस्य प्रयच्छति फलं शुभम् ॥२४॥
चर्मवासा द्विजश्रेष्ठः स्नात्वा यां पूरयच्छुभाम्।
तस्यां स्नात्वा मृता वापि यान्ति वै शिवमन्दिरम् ॥२५॥
मर्तव्यं मानवैर्विप्राः स्वर्गस्य फलकाङ्क्षिभिः। चर्मण्वत्यास्तटे रम्ये महर्षिभिरलङ्कृते ॥२६॥
असीवरुणयोर्मध्ये मृताः शिवपुरं यथा। तथा चर्मण्वतीतीरे मृता यान्ति न संशयः ॥२७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे चर्मण्वतीमाहात्म्ये सप्तविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

व्यासजी कहते रहे तपोधनों! भगवान् विष्णु के वचन सुन महेन्द्रादि देवगण ब्रह्माजी को आगे कर स्वर्ग चले गए। तब 'चर्मवासा' ऋषि ने 'वृन्दार' पर्वत पर 'विष्णु' के चरणों का ध्यान किया तो सामने ही सहस्रशीर्षा सनातन पुरुष को तथा भगवद्भक्त असुरों के द्वारा लाए हुए विमान को देखा। देखते ही भगवान् ने चर्मवासा को बिमान पर चढ़ा कर वैकुण्ठ भेज दिया। उस मुनि के वैकुण्ठ चले जाने पर देवों सहित इन्द्र बड़े प्रसन्न हो गए। तदनन्तर असंख्य जनों को पवित्र करने हेतु उनके स्नान से उत्पन्न 'चर्मण्वती' नदी 'कलहंस' और 'चक्रवाकों' से शोभित हो बहने लगी। 'बगुले' और 'बत्तखों' से व्याप्त हो दिव्याङ्गनाओं के अङ्गराग से रञ्जित एवं स्नान योग्य जल से पूरित हो श्रेष्ठ नदियों की श्रेणी में मानी गई। इसमें स्नान कर सब यज्ञों और दानों का फल प्राप्त होता है। इसके जलपान से सोमरस पान का फल मिलता है। यहाँ स्नान करने से अग्निहोत्र का फल मिलता है। चर्मवासा ऋषि के स्नान करने से पूरित चर्मण्वती में स्नान कर मानव मरणोपरान्त शिवलोक प्राप्त करते हैं। विप्रवरों! मुमुक्षुजन यदि चर्मण्वती के तट पर अपना शरीर छोड़ें तो असी-वरुणा के मध्य वाराणसी में मृत होने वाले प्राणियों के समान निःसन्देह मुक्तिलाभ करते हैं॥ १३ – २७॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'चर्मण्वती-माहात्म्य' नामक
एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

१२८

व्यास उवाच—

चर्मण्वतीसमुत्पत्तिं पुनरेव तपोधनाः। शृण्वन्तु कथितां दिव्यां सर्वपापहरां शुभाम् ॥१॥
पुनाति सकलं लोकं दिव्या चर्मण्वती नदी। यथा भागीरथी पुण्या पुनाति भुवनत्रयम् ॥२॥
ये स्पृशन्त्यणुमात्रं वै दिव्यं चर्मण्वतीजलम्। उर्वशीप्रमुखा दिव्या दिव्याङ्गैः संलुठन्तिहि ।३।
काक-चन्दनमध्ये वै पुण्यो वृन्दारपर्वतः। तस्माच्चर्मण्वती नाम चर्मवासाश्रमोद्भवा ॥४॥
प्रार्थिता सिद्धगन्धर्वैर्वृता क्षेत्रोत्तमैः शुभैः। श्यामायाः सङ्गमं पुण्यं गता दिव्यरता नदी ॥५॥
मूले तस्याः स वैकुण्ठो गुहायां विद्यते द्विजाः। पुरुषोत्तमं जगन्नाथं गुहायां यः समर्चति ॥६॥
मानुषो देववत्पूज्यो याति विष्णोरनुग्रहात्। तस्यां स्नात्वा च यो विष्णुं समर्च्य मृतिमाप्नुते ॥
स देवाप्सरसां विप्रा नायको भवति ध्रुवम्। तस्या मूले निमज्याशु विश्वनाथं प्रपूज्य वै ॥८॥
स्नात्वा सत्यव्रते कुण्डे चर्मण्वत्यास्तु मध्यगे। पूर्वोक्तं कर्म निर्वर्त्य पूजयेद् ह्रदमध्यगम् ॥९॥
सत्यव्रतं स वै विप्राः प्राप्नुयान्मुक्तिमव्ययम्। तस्यामेव जलावर्तं तीर्थं स्नात्वा च तर्पणम् ॥१०॥
श्राद्धं कोटिगुणं पुण्यं जायते नात्र संशयः। काकशैलसमुद्भूता बाला नाम महानदी ॥११॥
सङ्गता मुनिशार्दूलाश्चर्मण्वत्यास्तु सङ्गमे। स्नात्वा दत्तं महाक्षेत्रे गुञ्जामात्रं तु काञ्चनम् ॥
तेन दत्ता भवेत्सर्वा सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ततः परं चर्मण्वती काकसङ्गमसंगता ॥१३॥
पूर्वोक्तं कर्म निर्वर्त्य नरो याति परां गतिम्। तत्र वामे महादेवो मूकपर्वतसंस्थितः ॥१४॥
स्नात्वा च तर्पणं कृत्वा पूजयेद् गिरिमध्यगम्। महादेवं प्रपूज्याशु मुक्तिमाप्नोति शाश्वतीम् ॥

व्यासजी ने कहा—तपोधनों ! सब पापों को दूर करने वाली 'चर्मण्वती' के उद्भव के सम्बन्ध में और सुनिये। भागीरथी की तरह 'चर्मण्वती' भी तीनों लोकों को पवित्र करने वाली है। उर्वशी आदि दिव्याङ्गनाओं द्वारा जलक्रीड़ा की जाती हुई इस नदी के जलकण का स्पर्श होते ही सिद्धि प्राप्त होती है। 'काक' और 'चन्दन' पर्वतों के मध्य 'वृन्दार' पर्वत है। वहाँ से 'चर्मण्वती' नदी 'चर्मवासा' ऋषिके आश्रमसे उत्पन्न होकर अनेक क्षेत्रोंमें विचरती हुई 'श्यामा' के साथ मिल जाती है। उसके मूल में गुहा के भीतर 'पुरुषोत्तम' का पूजन सम्पन्न करने से मानव देववत् पूज्य होता है। वहाँ स्नान और विष्णुपूजोपरान्त देहत्याग होने से मानव को देवप्रमुख तथा श्रेष्ठ अप्सराओं का स्थान मिलता है। उसके मूल में स्नान एवं विश्वनाथ की पूजा कर 'सत्यव्रत-कुण्ड' में स्नान विहित है। तब पूर्वोक्त विधान करने के पश्चात् ह्रद में 'सत्यव्रत' का पूजन करने से मुक्ति मिलती है। वहाँ 'जलावर्त-तीर्थ' में स्नान तर्पणादि कर श्राद्ध का फल बहुत अधिक हो जाता है। 'काकपर्वत'[1] से उत्पन्न 'बाला' नाम की नदी 'चर्मण्वती' में सङ्गम करती हैं। उस महाक्षेत्र में रत्तीभर सोना देकर 'सप्तद्वीपा वसुन्धरा' के दान करने का फल मिलता है। तब 'चर्मण्वती' काक-संगम[2] प्राप्त करती है। उसमें पूर्वोक्त कर्म करने से परम गति मिलती है। वहीं वाम भाग में 'मूकपर्वत' पर स्थित 'महादेव' की पूजा

---

१. 'कोलेख'   २. 'कोली'-गाड़।

ततस्तु दक्षिणे भागे काकस्याधित्यमध्यगम्। शिलायां स्फटिकाभं वै महापुरुषलक्षणम् ॥१६॥
शिवं समर्च्य परमां सिद्धिमाप्नोति मानवः। ततश्चर्मण्वतीसङ्गे चर्मभागा महानदी ॥१७॥
तत्र स्नात्वा विधानेन भूमिदानं विधाय वै। चन्द्रेश्वरं महादेवं पूजयेद् ह्रदमध्यगम् ॥१८॥
यो ददाति सुविप्राय भूमिदानं तदक्षयम्। गणशैलसमुद्भूता गण्डकी सरितां वरा ॥१९॥
ततश्चर्मण्वतीसङ्गे सङ्गता मुनिसत्तमाः। गण्डकीशं महादेवं स्नात्वा सम्पूज्य मानवः ॥२०॥
गण्डकीस्नानजं पुण्यं प्राप्नोति नहि संशयः। अन्यक्षेत्रे कृतं स्नानं कालेन च भविष्यति ।२१।
अस्मिन्क्षेत्रे कृतं स्नानमक्षयं भवति ध्रुवम्। ततस्तु वारिजन्नाम तीर्थमस्ति तपोधनाः ॥२२॥
पूर्वोक्तं कर्म निर्वर्त्य जलं दत्तं सकाञ्चनम्। स तु स्नानफलं सर्वं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥२३॥
ततश्चन्द्रवती नाम चन्द्रभागा ततः परम्। गणपर्वतसम्भूता देवभागा ततः परम् ॥२४॥
नवमूलसमुद्भूता नवमूला ततः परम्। भूतले अप्रकाश्या सा नारदेन प्रकाशिता ॥२५॥
नारदो भगवान् यत्र पुण्ये कौशिकपर्वते। कौशिकेशं समभ्यर्च्य नवमूलां महानदीम् ॥२६॥
नवमूलोद्भवानां च मलानां मुनिसत्तमाः। विनाशाय महापुण्या नवमूला प्रकाशिता ॥२७॥
तस्यां स्नात्वा च सन्तर्प्य कौशिकीं पूज्य शाङ्करीम्। प्रणश्यति महापापं नवद्वारविनिःसृतम्।
वामे देवीं प्रपूज्याशु कौशिकीं कौशिके गिरौ। सर्वयज्ञफलं सर्वं प्राप्यते नात्र संशयः ॥२९॥
नवमूलासरिन्मध्ये दिव्यं शतसरः स्मृतम्। शतयज्ञफलं तत्र स्नात्वा सम्यक् प्रलभ्यते ॥३०॥
ततश्चर्मण्वतीसङ्गे शतमूला सरिद्वरा। सङ्गता लोकपापघ्नी दिव्यतोया तपोधनाः ॥३१॥
नाकेशं शंकरं तत्र सम्पूज्य ह्रदमध्यगम्। काशीदशगुणं पुण्यं प्राप्नुयादत्र पूजनात् ॥३२॥
ततः सत्या ततो वाटी ततस्तूर्णा सरिद्वरा। तत्र स्नात्वा च मनुजस्तूर्णायाः सङ्गमे द्विजाः ॥
दत्त्वा च सशरं तूणं विजयं प्राप्नुयान्नरः। ततस्तु शङ्कराख्ये वै तीर्थे स्नानं विधाय च ॥३४॥

करने से शाश्वत-मुक्ति प्राप्त होती है। तब 'काकपर्वत' के ऊपरी भाग की शिला में 'स्फटिक-कान्ति महापुरुषलणोपेत' 'शिव' का पूजन करने से सिद्धि मिलती हैं। तब चर्मण्वती में 'चन्द्र-भागा' मिलती है[1]। वहाँ स्नान करने से अक्षय भूमिदान का फल प्राप्त होता है। यहीं 'ह्रद' के मध्य 'चन्द्रेश्वर' की भी पूजा होती है। तब 'गण' पर्वत[2] से निकल कर 'गण्डकी' नदी चर्मण्वती में मिलती है। 'गण्डकीश' शिव का पूजन करने पर 'गण्डकी' स्नान का फल प्राप्त होता है। अन्य क्षेत्रों में किया हुआ स्नान तो कालवश होता है, किन्तु इस तीर्थ का स्नान अक्षय फलप्रद है। तदनन्तर 'वारिज' नाम के तीर्थ में शुभ कार्य कर सुवर्णसहित जलदान करने से 'सेतुस्नान' का फल मिलता है। तत्पश्चात् 'चन्द्रवती', 'चन्द्रभागा'[3] 'देवभागा' (गणपर्वत से उद्भूत) तथा 'नवमूला' ('नवमूल'[4] से निकलने वाली) नदियाँ हैं। इन अप्रकाश्य नदियों को नारद ने भूतल पर प्रकाशित किया। पवित्र 'कौशिक' पर्वत में भगवान् का पूजन करने से काशी की अपेक्षा दस गुना पुण्य मिलता है। तदनन्तर 'सत्या', 'वाटी' तथा 'तूर्णा' नदियाँ संगम करती हैं। 'तूर्णा' के संगम में स्नान तथा तूणीर-सहित बाण का दान करने पर विजय प्राप्त होती है। तदनन्तर 'शंकर' तीर्थ में स्नान और 'शाङ्करी' नदी

---

१. 'गणकोट' २. 'गणकोट'।
३. 'देवचूला' से आती है। ४. 'नानपापो'।

शाङ्करीसरितोर्मध्ये समभ्यर्च्य महेश्वरम् । यो दद्यात्तत्र विप्राय वस्त्रदानं तदक्षयम् ॥३५॥
ततश्चर्मण्वतीसङ्गे स्नानं सम्यग्विधाय वै। नागान्प्लक्षादिकान्भाव्य मानुषर्णात्प्रमुच्यते ॥३६॥
ततस्तु जाह्नवीसङ्गे गत्वा स्नानं विधाय च । तर्पणं पिण्डदानं च कृत्वा कोटिगुणं भवेत् ।३७।
जाह्नवीसरितोर्मध्ये जाह्नवीशं महेश्वरम् । समभ्यर्च्य विधानेन लभेद्भूदानजं फलम् ॥३८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे चर्मण्वतीमाहात्म्ये अष्टाविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

के मध्य 'महेश्वर' का पूजन-पूर्वक ब्राह्मण को वस्त्रादि देने पर अक्षय फल मिलता है। तब 'चर्मण्वती' के 'सङ्गम' में स्नान तथा 'प्लक्षादि' नागों का पूजन कर ऋणमुक्त हो जाय। फिर 'जाह्नवी के सङ्गम' में स्नान, तर्पण, श्राद्धादि सम्पादित कर गुणसम्पन्न हो जाय। 'जाह्नवी' के मध्य जाह्नवीश का विधिवत् पूजन करने से भूदान का पुण्य मिलता है॥ १- ३८॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'चर्मण्वती माहात्म्य' नामक
एक सौ अठाईसवां अध्याय समाप्त ॥

ऋषय ऊचुः—

जाह्नव्याश्च समुत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामः सुव्रत । कथं सा जाह्नवी नामा बभूव सरितां वरा ॥१॥
कस्मिन् शैले समुत्पन्ना केन मर्त्ये प्रकाशिता । कथं स्नानफलं तस्याः कानि तीर्थानि सन्ति वै ।

व्यास उवाच—

चर्मण्वत्या वामभागे यो मया गणपर्वतः । व्याख्यातः शिखराकारो हिमालयतटस्थितः ॥३॥
वृन्दपर्वतमारम्भ यावद् घण्टागिरिः स्मृतः । हिमालयगणो भूत्वा तावदाक्रम्य भूतलम् ॥४॥
तस्थौ तत्र महाशैलः स शैलेन्द्र इवात्मना । तमारुह्य गणेशानं पर्वतोत्तरसंस्थितम् ॥५॥
यः समर्चति तं देवं विघ्नस्तस्य न जायते । तस्य दक्षिणपार्श्वे वै विश्वसंज्ञो गिरिः स्मृतः ॥६॥
तयोर्मध्ये महादेवो महालिङ्गेति विश्रुतः । तत्र पश्चिमभागे वै भवान्या स्कन्दिना सह ॥७॥
राजते देवगन्धर्वैस्तथान्यैर्देवतैः सह । सम्पूज्य तत्र देवेशं महापूजाफलं लभेत् ॥८॥
जमदग्निर्महाभागास्तत्रागत्य महेश्वरम् । समर्च्य विष्णुचरणात् सम्भवां जाह्नवीं ततः ॥९॥
स्नानार्थं प्रार्थयामास सुपुण्ये विश्वपर्वते । स्नानार्थं तस्य विप्रर्षे जाह्नवी सरितां वरा ॥१०॥
आविर्बभूव स्वर्गस्था समाहूता महर्षिणा । तां स्नात्वा स महाभागा जमदग्निः प्रतापवान् ।११।
सिद्धिं स चातुलां प्राप्य ययौ पुण्याश्रमं प्रति । ततस्तस्मान्महापुण्या जाह्नवी सरितां वरा ॥
बभूव मुनिशार्दूला सर्वपापप्रणाशिनी । गङ्गाद्वारे च संस्नात्वा गङ्गां भागीरथीं शुभाम् ॥१३॥
यत्फलं प्राप्यते विप्रास्तत्फलं जाह्नवीजले । तस्या मूले विश्वरूपः पूज्यते मुनिसत्तमाः ॥१४॥
विश्वरूपं प्रपूज्याशु नरः सायुज्यमाप्नुयात्[1] । सन्ति तीर्थान्यनेकानि जाह्नव्याश्च पदे पदे ।१५।
सङ्क्षेपेण वदिष्यामि न हि विस्तरतः क्वचित् । जाह्नवीधेनुकासङ्गे धेनुकां पूज्य शाङ्करीम् ॥
संस्नात्वा तर्पयित्वा च धेनुदानफलं लभेत् । ततश्च वृश्चिकासङ्गे पुण्या रक्तशिला स्मृता ।१७।

ऋषियों ने पूछा—हे सुव्रत ! अब हम लोग जाह्नवी के उद्‌गम को जानना चाहते हैं। उसका 'जाह्नवी' नाम क्यों रखा गया ? किस पर्वत से वह निकली ? उसमें स्नान करने का क्या फल है ? तथा उसके तीर्थों के क्या नाम है ? ॥ १–२ ॥

व्यासजी बोले—चर्मण्वती के बाईं ओर शिखराकार 'गणपपर्वत'[2] है। 'वृन्दपर्वत' से लेकर 'घण्टागिरि' तक पृथ्वी को दबाते हुए यह पर्वत हिमालय का गण होकर दूसरे पर्वत की तरह स्थित है। इस पर आरूढ हो पर्वत के उत्तर में जो देवपूजन करता है उसके सब विघ्न दूर हो जाते हैं। इसके दक्षिण में 'विश्व' पर्वत है। उसके मध्य 'भवानी' एवं 'स्कन्दी' के सहित 'महालिङ्ग' नामक महादेव विराजमान हैं। अन्य देवगणों का भी वहाँ निवास है। वहाँ पूजन करने पर विशेष फल मिलता है। 'जमदग्नि' ऋषि ने वहाँ आकर स्नानार्थ 'विष्णु-पदी' की प्रार्थना की थी। उनके स्नानार्थ 'जाह्नवी' प्रकट हुई। वहाँ स्नान कर जमदग्नि सिद्धि पाने के उपरान्त अपने आश्रम को चले गए। ऋषिगणों ! इस प्रकार 'जाह्नवी' प्रकट हुई। हरिद्वार के समान ही 'जाह्नवी' स्नान का फल है। उसके मूल में 'विश्वरूप' का पूजन कर 'शिवसायुज्य' का लाभ होता है। अब मैं 'जाह्नवी' के तट पर स्थित तीर्थों का वर्णन

---

१. 'सायुज्यमाप्नुते' 'ख'।   २. 'गणकोट'।

संस्नात्वा तां समभ्यर्च्य नरो याति परां गतिम् । तयोर्मध्ये च दधिजा जागर्ति मुनिसत्तमाः ॥
तां पूज्य दधिजां देवीमभीष्टफलमश्नुते । ततः शेषसरं पुण्यं चाणक्यं च ततः परम् ॥१९॥
ततो बालिसरं पुण्यं भद्रायाः सङ्गमं ततः । ततः शुकवती पुण्या जाह्नव्याः सङ्गमं गता ।२०।
भ्रमराद्रिसमुद्भूता सत्यदा सत्यदायिनी । भ्रमराद्रिं समारुह्य भ्रामरीं पूज्य शाङ्करीम् ॥२१॥
दुर्निमित्तं च दुःस्वप्नं प्रणश्यति न संशयः । भ्रामरीसरितोर्मध्ये शुकाः स्नात्वा तपोधनाः ॥
संजग्मुः सत्यभवनं भ्रामर्याः संप्रभावतः । तदूर्ध्वं नावुको देवो ह्रदमध्ये गतो द्विजाः ॥२३॥
पूर्वोक्तं कर्म निर्वर्त्य नावुकं पूज्य शङ्करम् । मानवो मुनिशार्दूला मुक्तिमाप्नोति शाश्वतीम् ॥
शेषा वातवती नामा कुलीराख्या महानदी । एतास्तिस्रो महापुण्या मन्दिराद्रिसमुद्भवाः ॥२५॥
जाह्नवीसङ्गमे पुण्याः सङ्गता मुनिसत्तमाः । तासु स्नात्वा च मनुजः श्यामास्नानफलं लभेत् ।
जाह्नव्या दक्षिणे भागे पुण्यो नागगिरिः स्मृतः । वामे मन्दिरसञ्ज्ञो वै पर्वतोऽस्ति तपोधनाः ।
तयोर्मध्ये महापुण्या जाह्नवी पापनाशिनी । चर्मण्वतीमहासङ्गे सङ्गता सा सरिद्वरा ॥२८॥
तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य पूर्वोक्तं फलमश्नुते । तत्रैव जाह्नवीशं च चिताभस्मविलेपनम् ॥२९॥
समर्च्य कुलमुत्तार्य नरः शम्भोः पदं व्रजेत् । वेणीमध्ये सङ्गराख्यं महातीर्थमुदाहृतम् ॥३०॥
तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य पूर्वोक्तं फलमश्नुते । ततस्तु धीवरा नाम मन्दिराद्रिसमुद्भवा ॥३१॥
चर्मण्वत्याः सङ्गमे वै सङ्गता मुनिसत्तमाः । वैशाखस्नानसदृशं फलं स्नात्वा प्रलभ्यते ॥३२॥

करता हूँ। 'जाह्नवी' और 'धेनुका' के संगम में 'धेनु' का पूजन, स्नान, तर्पणादि करने पर धेनु-दान का फल प्राप्त होता है। मुनिवरों ! तब 'वृश्चिका' के सङ्गम में 'रक्तशिला' की पूजा करने से सद्गति मिलती है। उनके मध्य 'दधिजा' देवी जागरूक हैं। उनकी पूजा से अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है। तत्पश्चात् पवित्र 'शेषसर', 'चाणक्यसर', 'बालिसर' और 'भद्रा'-संगम हैं। फिर 'भद्र' पर्वत से निकलने वाली 'भद्रा' नदी का जाह्नवी के साथ संगम है। फिर 'भद्र' पर्वत से निकलने वाली 'शुकवती' का 'जाह्नवी' के साथ संगम है। तब 'भ्रमर' पर्वत पर आरूढ हो 'भ्रामरी'[1] का पूजन कर दुःस्वप्न और दुर्निमित्त व्याप्त नहीं होते। यह प्रसिद्धि है कि सुग्गों ने 'भ्रामरी' में स्नान कर 'सत्यलोक' प्राप्त किया था। उसके ऊपर ह्रद के मध्य में 'नावुक' देव का पूजन एवं पूर्वोक्त विधान कर मानव मुक्ति-लाभ करता है। तत्पश्चात् 'मन्दि-राद्रि' से प्रकट हो 'शेषा', 'वातवती' और 'कुलीरा' नदियाँ 'जाह्नवी' के साथ संगत होती हैं। उनमें स्नान करने पर 'श्यामा'-स्नान के सदृश फल मिलता है। 'जाह्नवी' के दक्षिण में पवित्र 'नागपर्वत' है। वामभाग में 'मन्दिराद्रि' है। इन दोनों के मध्य परम पुनीत 'जाह्नवी' है। वह 'चर्मण्वती' में संगम करती है। उसमें स्नानादि करने से पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। वहीं चिताभस्मधारी 'जाह्नवीश' का दर्शन करने से कुलों का उद्धार होता है। तीनों नदियों के मध्य में 'शङ्कर' महातीर्थ है। वहाँ स्नान करने पर भी पूर्वोक्त फल मिलता है। तदनन्तर 'मन्दिराद्रि' से उत्पन्न 'धीवरी' का 'चर्मण्वती' के साथ सङ्गम है। उसमें स्नान करना वैशाख

---

१. द्रष्टव्य—

"यदाऽरुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधा करिष्यति । तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वा सङ्ख्येय-षट्पदम् ॥
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महाऽसुरम् । भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ॥"

ततस्तु मेनकासङ्गे मन्दोदर्यास्तथैव च। पूर्ववत्पितृकृत्यं च विधायाशु शिवं व्रजेत् ।।३३।।
तीर्थैरनेकसाहस्त्रै पूरिता सरितां वरा। अघकोटिविनाशाय अवतीर्णा महीतले ।।३४।।
श्यामायाः सङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः । आयुरारोग्यदं पुण्यं धनधान्यविवर्धनम् ।।३५।।
चर्मण्वत्यास्तु माहात्म्यं यः शृणोति समाहितः । काशीवाससमं पुण्यं प्राप्नोति न हि संशयः ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे चर्मण्वतीमाहात्म्ये एकोनत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ।।

१३०

व्यास उवाच—

तदूर्ध्वं राजताख्यं वै श्यामाया मुनिसत्तमाः । तीर्थमस्ति सुशोभाढ्यं तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।
श्यामाया दक्षिणे भागे ध्वजस्यापि च दक्षिणे । मलयाख्यो गिरिः पुण्यो विद्यते मुनिसत्तमाः ।।
देवीं च मलयावासां प्रपूज्य मुनिसत्तमाः । तमारुह्य नरः सम्यक् सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।३।।
तस्याधित्ये भगवतीं सम्पूज्य कुसुमैः शुभैः । मनोभिलषितां सिद्धिं प्राप्नोत्येव न संशयः ।।४।।
तस्य दक्षिणभागे वै दिव्या भगवती सरित् । श्यामायाः सङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः ।।
धेनुदानफलं तत्र स्नात्वा सम्प्राप्यते शुभम् । ततः शिरीषका नाम्ना श्यामासङ्गमसङ्गता ।।६।।
सङ्गमैर्बहुभिः पूर्णा शाल्यलाद्रिकटोद्भवा । श्रीशं सम्पूज्य संस्नात्वा तस्य सङ्गमसंस्थितम् ।७।

स्नान माहात्म्य के समान है। तत्पश्चात् 'मेनका' और 'मन्दोदरी' के सङ्गम में स्नान करने से सद्‌गति प्राप्त होती है। इस प्रकार अनेक तीर्थों से संकुलित यह नदी असख्य पापों के विनाश हेतु पृथ्वी पर अवतीर्ण हो 'श्यामा' के साथ मिल जाती है। धन, धान्य, आयुष्य और आरोग्य बढ़ाने वाली 'चर्मण्वती' के माहात्म्य को जो सुनता है, उसे काशीवास के समान पुण्य मिलता है।। ३ – ३६ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'चर्मण्वतीमाहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरो! उसके ऊपर 'श्यामा' का 'राजत' तीर्थ है। स्नानोत्तर वह स्वर्गप्रद है। 'श्यामा' और 'ध्वज' पर्वत के मध्य 'मलय' पर्वत है। उस पर आरूढ़ हो 'मलयवासा देवी'[1] का पूजन करना सिद्धिप्रद है। उसकी ऊपरी भूमिमें 'भगवती' का सुन्दर पुष्पों से पूजन कर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त की जाय। उसके दक्षिण भाग में दिव्य 'भगवती'[2] नदी श्यामा में मिलती है। उसमें स्नान करने से 'गो-दान' का फल मिलता है। तत्पश्चात् शिरीषका नदी श्यामाके साथ संगत होती है। 'शाल्मल' पर्वत के छोर से उत्पन्न होकर अनेक नदियों

---

१. 'मौले' नाम से विदित है।　　२. 'कटधारिया गाड़' के नाम से जानी जाती है।

प्राप्नोति मुनिशार्दूलाः श्रियं वै चातुलां नरः । तिमिराद्रिसमुद्भूता शाङ्करीसङ्गमे गता ॥८॥
शाङ्करीसरितोर्मध्ये शङ्करं ह्रदमध्यगम् । समर्च्य तत्र संस्नात्वा जाड्यं नो याति वै द्विजाः ॥
ततस्तु मङ्गलातीर्थं नागतीर्थं ततः परम् । तत्र स्नात्वा च मनुजो नागयोनिं न पश्यति ॥१०॥
ततस्तु गोमतीसङ्गे स्नात्वा वायुतटं व्रजेत् । तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य चान्द्रायणफलं लभेत् ॥
शाल्मलाद्रिसमुद्भूता सुपुण्या बोधकारिणी । श्यामायाः सङ्गमे पुण्या दिव्या सङ्गमिता द्विजाः ॥
*बोधिन्यां च महाभागाः संस्नाति बोधकारिणीम् । स दिव्यदेहो मनुजो जायते नात्र संशयः ।१३।
सार्धमेवोपकारिण्या तारिणी संमिलन्द्विजाः* । तारकेशं हरं तत्र पूज्य याति परां गतिम् ॥१४॥
दक्षिणे बोधकारिण्याः पुण्यस्तिमिरपर्वतः । भवानीं तत्र सम्पूज्य स्वाभीष्टं फलमाप्नुयात् ।१५।
सङ्गमे बोधकारिण्या जलमाचम्य मानवः । देवलोकमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते ॥१६॥
श्यामाया वामभागे वै दिव्यो वायुतटः स्मृतः । तस्मात्तिमिरसंज्ञो वै पर्वतोऽस्ति तपोधनाः ॥
ततः शाल्मलसंज्ञो वै पर्वतः पर्वतोपमः । स बन्धूकाद्रिसंलग्नो विद्यते मुनिसत्तमाः ॥१८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शाल्मलिपर्वतमाहात्म्ये त्रिशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

के सङ्गमों से पूरित इस नदी के संगम में स्नान एवं 'श्रीश' का पूजन करने से अतुल लक्ष्मी प्राप्त होती है। 'तिमिराद्रि'[1] से उद्‌भूत 'शाङ्करी' नदी के मध्य भगवान् 'शङ्कर' का पूजन कर जड़ता नहीं होती। तदनन्तर 'मङ्गला' और 'नागतीर्थ' में स्नान कर सर्पयोनि नहीं मिलती। तत्पश्चात् 'गोमती-सङ्गम' तथा 'वायुतट' में स्नान-तर्पणादि करने से 'चान्द्रायण' का फल मिलता है। फिर 'शाल्मलाद्रि' से निकलकर 'बोधकारिणी' का श्यामा के साथ संगम है। वहाँ स्नान कर दिव्यदेह प्राप्त होता है। फिर 'तारिणी' और 'उपकारिणी' एक दूसरे से मिलती हैं। वहाँ 'तारकेश' हर[2] का पूजन कर सद्‌गति प्राप्त होती है। 'बोधकारिणी'[3] के दक्षिण में 'तिमिर'[4] पर्वतस्थ 'भवानी' का पूजन करने पर अभीष्ट सिद्धि मिलती है। 'बौधिनी-संगम' में आचमन करने पर 'स्वर्ग' मिलता है। 'श्यामा' के बाईं आर दिव्य 'वायुतट' है। फिर तिमिर-पर्वत' है। मुनिवरों ! तब 'बन्धूक'[5]-पर्वत' से मिला हुआ 'शाल्मल' पर्वत है ॥१-१८॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शाल्मलपर्वत-माहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

... चिह्नयोरन्तर्गतो भागः 'ख' पुस्तके न वर्तते ।

१. रामायण (युद्ध० १०८-३२) में रात्रि की देवता को 'तिमिर' कहा गया है।

२. 'तारकेश्वर' के नाम से विदित हैं। ३. 'बैरीगाड़' नाम से जानी जाती है।

४. तिचुलि' नाम से विदित है। ५. 'सोरलेख' नाम से प्रसिद्ध है।

१३१

व्यास उवाच—

शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः शालमलाद्रेः कथां शुभाम् । यस्मिश्च शतलिङ्गाख्यः शक्तिमाराध्य तिष्ठति।
तत्र शक्तिर्महादेवी राजते मुनिसत्तमाः । नानाशक्तिशतैर्युक्ता ह्यर्च्यंते निर्जरैरपि ।।२।।
शक्तिं देवालक्षेत्रस्थां समर्च्य मुनिसत्तमाः । दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च प्रणश्यति तपोधनाः ।।३।।
बलिपूजोपहारेण शैवीं तां पूज्य मानवः । अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ।।४।।
तस्य दक्षिणभागे वै वाराहीं पूज्य मानवः । वरदां कन्दरावासा जयमाप्नोति मानवः ।।५।।
देवालपश्चिमे भागे शालमलाद्रौ तपोधनाः । समर्च्य शतलिङ्गं च महादेवं तपोधनाः ।।६।।
देवालं शतलिङ्गं च समर्च्य शिवमन्दिरम् । तत्र शक्तिजले स्नात्वा नरो याति परां गतिम्[१] ।७।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शालमलपर्वतमाहात्म्ये एकत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ।।

व्यासजी ने कहा – मुनिवरों ! अब 'शालमलाद्रि'[२] की कथा सुनें । वहाँ 'शतलिङ्ग' शक्ति की उपासना करते हैं[३] । हे तपस्वियों ! वहाँ देवगण भी अनेक शक्तियों से समन्वित हो 'महाशक्ति' की उपासना करते हैं । 'देवाल क्षेत्र'[४] की 'शक्ति' की पूजा करने से दुःस्वप्न और दुर्निमित्त नष्ट हो जाते हैं । एवम् बलि तथा पुष्पोपहारादि से उस 'शक्ति' का पूजन कर 'अश्वमेध' का फल मिलता है । उसके दाहिनी ओर गुहा में वास करने वाली 'वाराही'[५] का पूजन करने से विजय प्राप्त होती है । 'शालमल' पर्वतस्थ 'देवाल'[६] के पश्चिम में 'शतलिङ्ग' महादेव[७] तथा 'देवाल मन्दिर' का पूजन एवं 'शक्ति'जल में स्नान कर परम गति प्राप्त होती है ।। १ – ६ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शालमल पर्वत' माहात्म्य सम्बन्धी
एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'विनिश्चितम्'—'ख' ।

२. 'वड्डा' ग्राम । ३. 'सतसिलिङ्ग' तथा 'सलमोड़ा' ग्रामों का सन्धिस्थल ।

४. 'सलमोड़ा' ग्राम में 'द्याल' नामक स्थान है । ५. 'धुन्स्यारी' देवी के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

६. 'द्योल' ग्राम । ७. (क) स्कन्दपुराणन्तर्गत माहेश्वर खण्ड में 'रुद्र' का एक स्वरूपविशेष 'शतरुद्र' के नाम से बतलाया गया है । तदनुसार 'शतरुद्र' के १०० मुख हैं । (ख) शैवदर्शन के अनुसार 'शतरुद्र' एक शक्ति के रूप में विदित है । इस शक्ति को 'आत्मा' की उत्पादिका कहा गया है ।

१३२

व्यास उवाच—

श्यामायाः सङ्गमे पुण्या शारदा शाल्मलोद्भवा । तत्र स्नात्वा च मनुजः पुत्रवाञ्जायते ध्रुवम्[१] ॥
ततस्तु आसुरीसङ्गे निमज्य मुनिसत्तमाः । ततः सकलतीर्थे च संस्नात्वा मुनिसत्तमाः[२] ॥२॥
स्थानजासङ्गमे स्नात्वा शमदाख्यं सरं व्रजेत् । शमदाख्यसरे स्नात्वा चटकाख्यं ततो व्रजेत् ॥
तीर्थेषु तेषु संस्नात्वा नरः सायुज्यतां व्रजेत् । ततः श्यामासरिच्छ्रेष्ठा सरयूसङ्गमे गता ॥४॥
सरयूसङ्गमगतां श्यामां यः स्नाति मानवः । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥५॥
श्यामाकथां यः शृणुयात् समग्रां[३] मयेरितां लोकमलापहारिणीम् ।
स याति विष्णोः परमं पदं ततः पितॄन् समुत्तार्य च मातुलांश्च ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्यामामाहात्म्ये द्वात्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! 'शाल्मलाद्रि' से निकल कर 'शारदा' नदी आगे चलकर 'श्यामा' से मिल जाती है । वहाँ स्नान करने का फल पुत्रप्राप्ति है । तदनन्तर 'आसुरी'[४]-सङ्गम एवम् अन्य तीर्थों में स्नान कर 'स्नानजा'-सङ्गम में जाये । वहाँ तथा 'शमद' सर में स्नान कर 'वटक' तीर्थ[५] में जाय । इनमें स्नान करने से 'शिवसायुज्य' प्राप्त होता है । इन नदियों को अपने में समेटती हुई 'श्यामा' नदी 'सरयू' में मिलती है । सरयू-संगम में 'श्यामा' में स्नान करने का फल इक्कीस कुलों का उद्धार होना है । इसके साथ ही विष्णुलोक में जा आनन्द प्राप्त करना भी है । तपोधनों ! मेरे द्वारा वर्णित 'श्यामा' की समग्र कथा को श्रवण करने वाला व्यक्ति पितरों का उद्धार कर 'विष्णु'पद प्राप्त करता है ॥ १ – ६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'श्यामामाहात्म्य'-सम्बन्धी
एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. भवति ध्रुवम्'—'ख' । २. 'विधिपूर्वकम्'—'ख' । ३. 'समर्च्य'—'ख' ।
४. 'असुरचुल' से 'मठगाड़' आकर वटकेश्वर में मिलती है । ५. 'वटकेश्वर' ।

१३३

ऋषय ऊचुः—

माहात्म्यं मुनिशार्दूल वैयासिक्यास्त्वयोदितम् । दिव्यं क्षेत्राख्यसंयुक्तं श्रुतं पापहरं शुभम् ।।१।।
श्यामासरय्वोर्मध्ये हि स्थाकिलेति त्वयोदितः । तस्याद्वेनं श्रुतं विप्र माहात्म्यं कल्मषापहम् ।२।

व्यास उवाच—

सरयूश्यामसरितोर्मध्ये स्थाकिलपर्वतः । स कान्तेनातिदिव्येन स्थलेनातिविराजितः ।।३।।
शिवस्थलेति विख्यातं पर्वताग्रे तपोधनाः । तत्र मध्ये महादेवः स्थलकेदारसंज्ञकः ।।४।।
राजते मुनिशार्दूला महापुरुषलक्षणः । या न साङ्ख्येन योगेन प्राप्यते मुनिसत्तमाः ।।५।।
तां प्राप्नोत्याशु मनुजः स्थलकेदारदर्शनात् । पर्वतं तं समारुह्य स्नात्वा सिद्धजलैः[1] शुभैः ।।६।।
समर्च्य स्थलकेदारं विधिदृष्टेन कर्मणा । केदारसंमितं पुण्यं प्राप्यते नहि संशयः ।।७।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे स्थलकेदारमाहात्म्ये त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ।।

ऋषियों ने पुनः जिज्ञासा की—मुनिश्रेष्ठ ! आपने वैयासिकी (श्यामा) के पापघ्न दिव्य क्षेत्रों का विशद वर्णन किया । हमने उसे हृदयङ्गम किया । अब हमें 'श्यामा' और 'सरयू' के मध्यवर्ती 'स्थाकिल' पर्वत का माहात्म्य सुनायें ।। १ – २ ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! उपर्युक्त दोनों पर्वतों के मध्य अत्यधिक कान्तिमान् पुरुष-लक्षणों से युक्त स्थाकिल पर्वत के अग्र भाग में एक स्थल-विशेष है । उसे 'शिवस्थल' कहा गया है । वहाँ 'स्थलकेदार' नामक महादेव हैं । साङ्ख्य-योग से अप्राप्य मुक्ति इस शिवमूर्ति के दर्शन से प्राप्त हो सकती है । इस पर्वत पर आरूढ हो 'सिद्धजलों' से स्नान कर 'स्थलकेदार' का विधिपूर्वक पूजन करने से 'केदार' के समान फल मिलता है ।। ३ – ७ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'स्थलकेदार'-माहात्म्य सम्बन्धी
एक सौ तेतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'सत्यजलैः'—'ख' ।

व्यास उवाच—

स्याकिलस्योत्तरे भागे पुण्या बिल्ववती नदी । यां स्नात्वा सत्यलोकाप्तिर्जायते नात्र संशयः[1] ॥
सत्या चैव महापुण्या तस्याः सङ्गमसङ्गता । तयोस्तु सङ्गमे स्नात्वा बिल्वेशं पूज्य शङ्करम् ।२।
गवां कोटिप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः । *ततो ढुण्ढीश्वरं देवं देवगन्धर्वसेवितम् ॥३॥
समर्च्य मुनिशार्दूला अर्जुनाद्रेरधिष्ठितम् । समर्च्य सर्वपापेभ्यः सरस्वत्यास्तु मध्यगम् ॥४॥
समर्च्यं यक्षगन्धर्वैः सेवितं वरदं शुभम् । जायते शिवभक्तनाम् अग्रणीर्मानवो द्विजाः ॥५॥
स्याकिलस्योत्तरे भागे तस्मादूर्ध्वं महागिरिः । गीयतेऽर्जुनसंज्ञं वैं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥६॥
तत्र सिद्धगुहा दिव्या विद्यते सिद्धसेविता । सिद्धेश्वरं महादेवं यक्षगन्धर्वसेवितम् ॥७॥
सप्तजन्मसु साम्राज्यं समर्च्य प्राप्नुयान्नरः* । ततस्तस्योत्तरे विप्रा विद्यते सुरपर्वतः ॥८॥
सुरभागा सरिच्छ्रेष्ठा निष्क्रान्ता सुरपर्वते । विद्यते लोकपापघ्नी पुण्या दक्षिणवाहिनी ॥९॥
तां स्नात्वा मानवो याति सुरलोकं न संशयः । सुपुण्यां सुरभागां यो विलङ्घ्य सङ्गमत्रयम् ॥
सङ्गमे देवभागाया बौद्धेशं सम्प्रपूजयेत् । बौद्धेशं शङ्करं पूज्य प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥११॥
विलङ्घ्य मुनिशार्दूलास्ततः सङ्गमपञ्चकम् । कोटकी-सरितोमध्ये वटकेशं महेश्वरम् ॥१२॥
सम्पूज्य देवदेवेशं चिताभस्मविभूषणम् । वृषभायुतदानस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥१३॥
कोटकी या सरित्प्रोक्ता मया चासुरसम्भवा । तस्या मूले महादेवी कोटवी विद्यते द्विजाः ।१४।
कोटवीं कन्दरावासां समर्च्य मुनिसत्तमाः । ये युद्धाभिमुखं यान्ति संस्नात्वा कोटवीजले ।१५।

व्यासजी बोले—ऋषिवरों ! 'स्याकिल' के उत्तर में 'बिल्ववती'[2]-स्नान का माहात्म्य 'सत्यलोक' प्राप्त करना है । 'सत्या-बिल्ववती-संगम' में स्नान तथा बिल्वेश्वर का पूजन करने से असंख्य गोदान करने का फल मिलता है । तब 'अर्जुनपर्वत'[3] पर स्थित 'ढुण्ढीश्वर'[4] की पूजा करने से मानव की गणना प्रमुख शिवभक्तों में होती है । 'स्याकिल' के उत्तर में 'अर्जुन-पर्वत' है । उसमें 'सिद्धगुहा' के भीतर 'यक्ष' और 'सिद्धों' से सेवित 'सिद्धेश्वर'[5] महादेव हैं । उनकी पूजा करने से मानव 'सम्राट्' पद प्राप्त करता है । उसके उत्तर में 'सुरपर्वत' है । वहाँ से 'सुरभागा' निकलती है । वह दक्षिण-वाहिनी है । उसमें स्नान करने से 'देवलोक' प्राप्त होता है । 'सुरभागा' में तीन सङ्गमो को पार कर 'देवभागा' के सङ्गम पर 'बौद्धेश' शङ्कर का पूजन कर मनुष्य सद्गति प्राप्त करे । मुनिवरों ! तब 'पाँच सङ्गमों' को पार कर 'कोटकी' नदी के मध्य चिताभस्मविभूषित 'वटकेश' का पूजन कर असंख्य वृषोत्सर्गों का फल प्राप्त करें । 'असुरपर्वत' से निकलने वाली 'कोटकी' के मूल में 'कोटवी' देवी है । 'कोटकी' के जल में स्नान कर पूजोपरान्त युद्धाभिमुख जन अवश्य विजय प्राप्त करते हैं । तब 'देवतमा' का

---

१. 'मुनिसत्तमाः'—'ख' ।

... चिह्नयोरन्तर्गताः श्लोकाः 'ख' पुस्तके न सन्ति ।

२. 'बिलें' गाड़ के नाम से विदित है । ३. 'अर्जुनेश्वर'—'विशाड' तथा 'मासो' के मध्य में है ।

४. 'बमनढौन' नामक ग्राम में स्थित हैं । ५. 'धमौड़' ग्राम में इनकी स्थिति है ।

शत्रुतो न भयं तेषां कदाचित् सम्भविष्यति । ततो देवतटीनाम सङ्गता सङ्गमे द्विजाः ॥१६॥
तत्र स्नात्वा देवतीर्थे नरो याति परां गतिम् । वामे तत्सुरभागायाः पर्वताग्रे तपोधनाः ।१७।
शेषेशश्चातिसूक्ष्मो वै विद्यते मुनिसत्तमाः । ततस्तु दक्षिणे तस्याः स्याकिलस्यापि दक्षिणे ॥१८॥
शङ्करं शीतलां चापि पूज्य याति परां गतिम् । ततस्तु सुरभागा सा श्यामायाः संगमं गता ॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो दशपूर्वान्दशोत्तरान् । समुत्तार्य दिवं याति भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे स्याकिलपर्वतमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

१३५

ऋषय ऊचुः—

भूय एव महाभाग सरयूवर्णनं शुभम् । कथयस्व प्रसादेन सर्वं ते विदितं यतः ॥१॥

व्यास उवाच—

सरयूवर्णनं सम्यक् स्वयमेव प्रजापतिः । वक्तुं वर्षशतैर्नालं विद्यते कमलासनः ॥२॥
सङ्क्षेपं कथयिष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । यस्यास्तोयं समाचम्य सोमपानफलं लभेत् ॥३॥
द्वारं तस्यास्तु सम्प्राप्य श्यामायाः सङ्गमे च हि । प्रार्थिता देवगन्धर्वैरतिपुण्यतरा स्मृता ॥४॥
श्यामायाः सङ्गमाद्विप्रास्तीर्थं केशवसञ्ज्ञकम् । तत्र स्नात्वा जले विष्णुं सन्तर्प्य च समर्च्य च ।
मासोपवासपुण्यं वै प्राप्य विष्णोः पदं व्रजेत् । ततः काकसरं पुण्यं गत्वा स्नात्वा च वै द्विजाः ।
दशाश्वमेधजं पुण्यं प्राप्नुयात्तत्र मानवः । तस्माददूरेऽनङ्गाख्यं सरमस्ति तपोधनाः ॥७॥

संगम है । वहाँ 'देवतीर्थ' में स्नान करने से 'सद्‌गति' होती है । तपोधनों ! 'सुरभागा' के बाईं ओर पर्वत के ऊपर अति सूक्ष्म 'शेषेश' हैं । तब 'सुरभागा' तथा 'स्याकिल' के भी दाहिनी तरफ 'शङ्कर' एवं 'शीतला' का पूजन कर 'परमगति' प्राप्त करे । फिर 'सुरभागा' का 'श्यामा' के साथ संगम है । वहाँ स्नान कर मानव इस लोक में अभीष्ट सुख भोग कर अपनी पहली एवं बाद की दस पीढ़ियों का उद्धार कर 'स्वर्गलोक' प्राप्त करता है ॥ १ - २० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'स्याकिलपर्वत'-माहात्म्य सम्बन्धी
एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—महाभाग ! आप पुनः विस्तार के साथ 'सरयू' का अवशिष्ट वर्णन करें । आप को उस सम्बन्ध में सब कुछ विदित है ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! स्वयं ब्रह्मा भी सौ वर्षों में 'सरयू' का वर्णन करने में असमर्थ हैं । तथापि मैं संक्षेप में उसका वर्णन करता हूँ । उसके जल से आचमन करने पर भी सोमरस-पान का फल मिलता है । देव-गन्धर्वों से प्रार्थित 'सरयू' का 'द्वार' तथा 'श्यामा का सङ्गम' विशेष पुण्यप्रद हैं । विप्रवरों ! 'श्यामा' के सङ्गम से आगे 'केशव' तीर्थ है । वहाँ स्नान तथा विष्णुतर्पण एवं पूजन कर मासोपवास का पुण्य लाभ होने के साथ ही 'विष्णुलोक'

सेवितं देवगन्धर्वैर्वारिजासङ्गमाद्बहिः । वारिजासङ्गमे स्नात्वा तथाऽनङ्गसरे शुभे ॥८॥
अनङ्गो यत्र संस्नात्वा अङ्गं प्राप हरेर्गृहम् । तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य कन्दर्पं पूज्य वै द्विजाः[1] ॥
अगम्यागमसम्भूतं पापं तत्र प्रणश्यति । ततस्तु कोटवीसङ्गे संस्नात्वा मुनिसत्तमाः ॥१०॥
सत्यलोकमवाप्नोति सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा । ततस्तु हरितीर्थे च स्नात्वा सम्पूज्य वै हरिम् ॥
विष्णुलोकमवाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः । ततस्तु गण्डकी पुण्या सुतटीसङ्गपूरिता ॥१२॥
सरयूसङ्गमं पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः । गण्डकीसरयूमध्ये ह्रदान्तस्थं महेश्वरम् ॥१३॥
गत्वा गन्धर्वसोटीशं ह्रदे स्नात्वा गणाशये । कृत्वा श्राद्धं पितॄणां च सम्पूज्य च महेश्वरम् ॥
ह्रदान्तस्थं महादेवं सायुज्यं याति मानवः । अवतीर्य ततस्तस्मात्किञ्चिद्दूरे सुरार्णकम् ॥१५॥
स्नात्वा सुरार्णनिर्मुक्तो मानवो भवति ध्रुवम् । नन्दासरयूसङ्गे स्नात्वा च मुनिसत्तमाः ॥१६॥
पितृकृत्यं विधायाशु अन्ते शिवपुरं व्रजेत् । ततस्तु शतरुद्राख्या धुन्धुस्नाता सरिद्वरा ॥
सरयूसंगमे पुण्या संगता मुनिसत्तमाः ॥ १७ ॥
घण्टाशिवाद्रिमध्ये वै सम्भूता कलिनाशिनी[2] । तत्र स्नात्वाश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥
जामदग्न्याह्वये तीर्थे एलासङ्गसमध्यगे । स्नात्वा कुलशतैर्युक्तो विष्णुलोके महीयते ॥१९॥

मिलता है । तब आगे 'काकसर' में स्नान कर मानव दशाश्वमेधजन्य पुण्य प्राप्त करे । उसके समीप ही 'वारिजा' सङ्गम के बाहर 'अनङ्गसर' है । वहीं 'वारिजा' सङ्गम तथा 'अनङ्ग' सर में स्नान करे । वहाँ 'अनङ्ग' (कामदेव) ने स्नानोपरान्त शरीर प्राप्त कर प्रद्युम्न के रूप में[3] 'विष्णु' के घर जन्म लिया । वहाँ स्नान और 'कन्दर्प' का पूजन करने से मानव 'अगम्यागमन' दोष से मुक्त हो जाता है । तब 'कोटवी' के सङ्गम पर स्नान तथा पितृ-तर्पण कर 'सत्यलोक' मिलता है । तब 'हरि' तीर्थ में स्नान तथा पूजन कर विष्णुलोक प्राप्त किया जाय । मुनिवरों ! तब 'सुतटी' के साथ संगत होती हुई पवित्र 'गण्डकी' नदी 'सरयू' के साथ संगत होती है । 'गण्डकी' और 'सरयू' के मध्य ह्रद के भीतर 'महेश्वर' के पास जा 'गणाश्रय' ह्रद में स्नान-श्राद्धादि एवं 'शङ्कर' की पूजा करने से 'शिवसायुज्य' मिलता है। वहाँ से उतर कर थोड़ी दूर पर 'सुरार्णक' तीर्थ है । वहाँ स्नान करने से मनुष्य 'देव-ऋण' से मुक्त हो जाता है। फिर 'नन्दा सरयू' के संगम में स्नान एवं पितृकृत्य कर शिवलोक प्राप्त करे । तब 'धुन्धु'[4] से स्नात 'शतरुद्रा' नाम की नदी 'सरयू' में संगत हुई है । वह 'घण्टा-शिव' पर्वतों के मध्य से निकली है । उसमें स्नान कर अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है । तब 'एला' के सङ्गम में

---

१. 'तथा'—'ख' । २. 'कपिनाशिनी'—'ख' ।

३. रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के बड़े पुत्र 'प्रद्युम्न' थे । 'कामदेव' (अनङ्ग) शिव के कोपाग्नि से भस्म होकर 'प्रद्युम्न' के रूप में उत्पन्न हुए थे । देखें भागवत (१०-९०-३५)—'एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः । प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥' तथा (भागवत १०, ५५, १-२)—"कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना । देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः । 'प्रद्युम्न' इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥"

४. पुरुवंशी राजा 'युध' का पुत्र 'मनस्यु' और मनस्यु का पुत्र 'धुन्धु' था । इसके पुत्र का नाम 'बहुविध' तथा पौत्र का नाम 'सम्पाति' था (मत्स्य० ४९, २-३) ।

जामदग्न्यसमं क्षेत्रं त्रैलोक्ये न मयेक्षितम् । यत्र स्नातो भवेद्यस्मात् प्रियो देवस्य चक्रिणः ।२०।
जामदग्न्यमृते तीर्थं सरोजायास्तु मध्यगम् । न पश्यामि महाभागास्तीर्थं वागीश्वरं विना ।२१।
निःक्षत्रां पृथिवीं कृत्वा यः स्नात्वा सरयूतटे । प्रस्तरं यः कुठारेण भित्त्वा क्षेत्रं चकार ह ।२२।
एलासङ्गममध्ये वै सरय्वा दक्षिणे तटे । भित्त्वा ह्रदोपमं कृत्वा यत्र स्वां प्रतिमां द्विजाः ॥
ह्रदे संस्थापयामास पुण्यतीर्थे[1] प्रतापवान् । शिलायां मुनिशार्दूलाः स ह्रदोऽद्यापि दृश्यते ॥
दशाङ्गुलपरिमिता कल्पिता विश्वकर्मणा । जामदग्न्यस्य प्रतिमा ह्रदे तस्मिन् तपोधनाः ॥
किष्कुत्रयगभीरे वै तथा तावत्सुविस्तृते । ये समर्चन्ति मनुजास्ते धन्या नात्र संशयः ॥२६॥
ह्रदमात्रं प्रपश्यन्ति अज्ञास्तत्र न तां शुभाम् । तत्त्वज्ञा जामदग्न्यं पश्यन्ति प्रतिमाकृताम्[2] ॥
एलायाः सङ्गमे स्नात्वा प्रस्तराग्रकृते ह्रदे । जामदग्न्यं समर्चन्ति मानवा ये तपोधनाः ॥२८॥
कुलानां कोटिमुत्तार्य ते यान्ति हरिमन्दिरम् । कूर्मपर्वतसम्भूता एला सा सरितां वरा ॥२९॥
संगता यत्र वै विप्राः सरोजायास्तु सङ्गमे । जामदग्न्यसरं तत्र ज्ञातव्यं मुनिसत्तमाः ॥३०॥
तत्र स्नात्वा च मनुजो देवमेलेश्वरं विभुम् । समर्च्य परमं स्थानं प्राप्नुते तर्प्य वै पितॄन् ।३१।
एलातीर्थे ततो गत्वा संस्नात्वा वटसंज्ञकम् । समर्च्य मुनिशार्दूला देवं नारायणीपतिम् ॥३२॥
गङ्गायमुनयोः सङ्गे माघस्नानफलं लभेत् । पूतनासङ्गमे पुण्यं तीर्थमस्ति सुशोभनम् ॥३३॥
पुत्रदं नाम संस्नात्वा तत्र पुत्रः प्रलभ्यते । ततो गोदावरीं गत्वा गोविन्दं पूज्य मानवः ॥३४॥
प्राप्नुते परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति । ततस्तु पाण्डवोसङ्गे स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ।३५।

स्नान करने वाले मनुष्य को अपने सौ कुलों सहित 'विष्णुलोक' में सम्मान प्राप्त होता है। ऋषिवरों ! 'जामदग्न्य-क्षेत्र' के समान मैंने तीनों लोकों में कोई तीर्थ नहीं देखा, क्योंकि यहाँ ऋषि स्नान कर भगवान् के प्रिय हो गए। 'सरयू' के मध्य 'जामदग्न्य' और 'वागीश्वर' तीर्थों को छोड़ अन्य कोई तीर्थ प्रशस्त नहीं हैं। पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करते हुए 'परशुराम' ने सरयू तट पर स्नान किया था। वहाँ अपने कुठार से पत्थर को तोड़ कर उस 'क्षेत्र' को बनाया। सरयू के दाहिने किनारे 'एला' सङ्गम के मध्य पत्थर तोड़ कर 'ह्रद' का स्वरूप बना अपनी 'प्रतिमा' वहाँ स्थापित कर दी। वह ह्रद मुनिवरों ! अब भी शिला के रूप में स्थित है। विश्वकर्मा ने शिला पर दस अङ्गुल नाप की वह प्रतिमा बनाई है। तीन 'हाथ' गहरे एवं तीन 'हाथ' विस्तृत उस स्थान पर जो लोग 'जामदग्न्य' की पूजा करते हैं वे वस्तुतः धन्य हैं। 'मूर्ख' तो उस स्थान को 'कुण्ड' के रूप में ही समझते हैं। तत्त्वज्ञ उसे 'जामदग्न्य' के रूप में ही देखते हैं। मुनिवरों ! जो लोग 'एला' के सङ्गम पर पत्थर के ऊपर ह्रद में 'जामदग्न्य' का पूजन करते हैं वे असंख्य कुलों का उद्धार कर 'विष्णु'लोक प्राप्त करते हैं। यह 'एला' नदी कूर्म-पर्वत (कूर्माचल = कानदेव) से निकलती है। इसका जहाँ पर 'सरयू' के साथ मिलन होता है वहीं 'जामदग्न्य'-सर समझा जाय। वहाँ स्नान-तर्पणादि कर 'एलेश्वर' शिव की पूजा करने से परम पद प्राप्त होता है। तब 'एलातीर्थ' में जा स्नान कर पार्वतीपति 'वटेश्वर' की पूजा की जाय। इससे गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर माघस्नान-सदृश फल प्राप्त होता है। तदनन्तर 'पूतना' के सङ्गम पर 'पुत्रद' नामक तीर्थ में स्नान करने से पुत्र-प्राप्ति होती है। फिर 'गोदा-

---

१. 'शून्यतोये'—'ख'। २. "तत्त्वज्ञा जामदग्न्यस्य पश्यन्ति प्रतिमां कृताम्"—'ख'।

मुण्डनं चोपवासं च तथा श्राद्धं विधाय वै। युधिष्ठिरं धर्मसुतं पाण्डवांश्च तथेतरान् ॥३६॥
नमस्कृत्वा शिवपुरं प्राप्नुते मुनिसत्तमाः। ततस्तु सरयू पुण्या गता मध्यभुवं प्रति ॥३७॥
सेविता सुरगन्धर्वैस्तथा विद्याधरोरगैः ॥ ३८ ॥

एतत्पवित्रं सरयूचरित्रं पठेत् स्मरेद्यः शृणुयात्तथैव च।
दुःस्वप्ननाशोऽप्यथ तस्य जायते महाभयं चापि विनश्यति ध्रुवम् ॥ ३९ ॥
पुण्यं वसिष्ठगङ्गाया माहात्म्यं यः शृणोति हि। देवकन्याशतैः सेव्यो जायते देवमण्डले ॥४०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सरयूमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

१३६

ऋषय ऊचुः—

सरोजायास्तु माहात्म्यं कथितं मुनिसत्तम। मुक्तिदं मुक्तिवृत्तीनां समस्ताघहरं शुभम् ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामो गिरीणां चरितं शुभम्। सर्वपापहरं पुण्यं निःसृतं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥२॥

व्यास उवाच—

सन्त्यनेके च गिरयो हिमालयतटे स्थिताः। सङ्क्षेपेण कथिष्यामि न हि विस्तरतः क्वचित् ॥३॥
वामभागे सरोजाया यत्र सा पाण्डवी नदी। संगमे संगता दिव्या तस्माद्वामे महागिरिः ॥४॥

वरी' के पास 'गोविन्द' का पूजन कर दुःखरहित परम पद प्राप्त होता है। तब 'पाण्डवी' नदी के सङ्गम पर मुण्डन, स्नान, तर्पण तथा श्राद्ध कर धर्मराज युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों को प्रणाम कर मानव 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित होता हैं। तत्पश्चात् 'सरयू' पहाड़ी क्षेत्र की यात्रा पूरी कर 'मध्य-भूमि' (मैदानी भाग) की ओर चली जाती है। सरयू के इस पवित्र आख्यान को जो व्यक्ति पढ़ता है, सुनता है या स्मरण करता है, उसके बुरे स्वप्न विनष्ट होते हैं तथा उसे भय नहीं होता। जो मनुष्य इस 'वसिष्ठगङ्गा' के माहात्म्य को सुनता है वह देवत्व प्राप्त कर देवकन्याओं से सेवित देवमण्डल में प्रतिष्ठित होता है ॥ २ – ४० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सरयू-माहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! आपने मुमुक्षुओं की मोक्षप्रदा एवं पाप-विनाशिका 'सरयू' के माहात्म्य का वर्णन किया। अब हम तत्सम्बद्ध पर्वतों का पापहर एवं पुण्यप्रद आख्यान सुनना चाहते हैं ॥ १ – २ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! हिमालयतट पर अनेक पर्वत स्थित हैं। उनका विस्तृत

तत्र वामे सरोजायाः पुण्यो घण्टागिरिः स्मृतः। नानाधातुशतैर्युक्त उन्नतोन्नतपादपः ॥५॥
तस्याधि धुन्धुनामा वै पर्वतोऽस्ति तपोधनाः। जामदग्न्यसरे स्नात्वा गत्वा धुन्धुगिरिं शुभम्।
देवीं धुन्धुवतीं पूज्य यज्ञकर्मफलं लभेत्। तस्माद्धूमवती नामा सरित्तिष्ठति वै द्विजाः ॥७॥
तां स्नात्वा ह्यग्निहोत्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः। घण्टाधूमगिरेर्मध्ये धूमकेतोः समाश्रयः ।८।
मनोभिलषितां सिद्धि गत्वा सम्प्राप्यते शुभाम्। ततो घण्टागिरिं गत्वा घण्टाकर्णं प्रपूज्य च ॥
भगेश्वरं महादेवं स्फटिकाभं प्रपूजयेत्। तत्र भगवतीतोयैः स्नात्वा सम्पूज्य शङ्करम् ॥१०॥
बृहस्पतिसमो भूत्वा सत्यलोके महीयते। घण्टाद्रेः पूर्वभागे वै शतरुद्रवती सरित् ॥११॥
विद्यते शतमूला सा सर्वपापप्रणाशिनी। तस्याः सर्वेषु मूलेषु जानन्तु शङ्करं प्रभुम् ॥१२॥
शतरुद्राभिषेकस्य तां स्नात्वा लभ्यते फलम्। सरयूसङ्गमे यान्तीं तां स्नात्वा मुनिसत्तमाः ॥
जाह्नवीस्नानसदृशं फलं संप्राप्नुयान्नरः। तस्माच्च पूर्वभागे वै पुण्यः शिवगिरिः स्मृतः ।१४।
शिवाख्या येन संलब्ध्वा समभ्यर्च्य महेश्वरम्। तमारुह्य महादेवीं वैष्णवीं गरुडासनाम् ॥१५॥
समभ्यर्च्य विधानेन विष्णुलोकं व्रजेन्नरः। तस्माद् भगवतीनामा पीलुकाख्या महानदी ॥१६॥

वर्णन सम्भव नहीं, अतः सङ्क्षेप में उनका परिचय दे रहा हूँ। जहाँ 'सरयू' के बाईं ओर 'पाण्डवी' नदी संगम करती है, उसके भी बाईं ओर एक बड़ा पर्वत 'घण्टागिरि' नाम से विदित है। वह अनेक धातुओं की खानों से संयुक्त हो ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से अभिव्याप्त है। उसकी अधित्यका में 'धुन्धु' नामक पर्वत है। 'जामदग्न्य' सर में स्नान कर 'धुन्धु' पर्वत की ओर जायें। वहाँ 'धुन्धुवती' देवी का पूजन करने से यज्ञ करने का फल मिलता है। वहाँ (उस पर) 'धूमवती' नदी है। उसमें स्नान कर 'अग्निहोत्र' करने का फल प्राप्त होता है। 'घण्टा' और 'धूमगिरि' के मध्य 'धूमकेतु'[1] का आश्रम है। वहाँ जाने से अभीष्ट सिद्धि मिलती है। फिर 'घण्टापर्वत' पर जा 'घण्टाकर्ण'[2] का पूजन कर स्फटिक सदृश 'भगेश्वर' का 'भगवती' के जलों से पूजन कर मनुष्य बृहस्पतिसदृश सत्यलोक में सम्मानित होता है। 'घण्टापर्वत' के पूर्व में 'शतरुद्रवती' नदी है, जिसके शत मूलों में शङ्कर का वास है। उसमें स्नान करने से सौ रुद्राभिषेकों का फल मिलता है। इसका ('शतमूला') मिलन 'सरयू' के साथ होता है[3]। इसमें स्नान करने पर 'जाह्नवी' स्नान का फल मिलता है। उसके पूर्व में 'शिवगिरि' है। उस पर 'शिव' तथा गरुडासना 'वैष्णवी'[4] का पूजन कर विष्णुलोक मिलता है। वहाँ से 'पीलुका' तथा 'भगवती' नदियाँ निकल कर 'शतमूला' में मिलती हैं। 'भगवती'-सङ्गम में चिताभस्म विभूषण 'भूतेश'[5] का पूजन कर शिवलोक मिलता है। तब पर्वत पर आरूढ हो 'कौन्ते-

---

१. 'उल्का' नाम से विदित है। २. पिठौरागढ़ में शिवलिङ्ग है।

३. 'ढुलिगाड़' नाम से यह 'चन्द्रभागा' के साथ संगत होने पर नीचे 'रामेश्वर' के समीप 'सरयू' में मिलती है।

४. 'नायकाना' में है। 'दुर्गासप्तशती' में भी भगवान् विष्णु की 'वैष्णवी' शक्ति को गरुडासना' के रूप में दर्शाया है। देवीकवच में 'धर्मं रक्षतु वैष्णवी' कहा गया है।

५. 'नाइकाना' के शिखर पर 'असुर' है।

समुत्पन्ने महानद्यौ सङ्गते शतमूलकाम । भूतेशं तत्र सम्पूज्य भगवत्यास्तु सङ्गमे ।।१७।।
शिवलोकमवाप्नोति चिताभस्मविभूषणम् । ततो बन्धूकसंज्ञो वै पर्वतोऽस्ति तपोधनाः ।।१८।।
तमारुह्य महादेवं कौन्तेयेशं प्रपूज्य वै । पञ्चगव्यप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ।। १९ ।।
घण्टाद्रिश्च शिवाद्रिश्च तथा बन्धूकपर्वतः । त्रयो ह्येते महापुण्या विद्यन्ते पर्वतोत्तमाः ।।२०।।
घण्टाद्रौ बहवः पुण्याः कन्दराः सन्ति वै द्विजाः । तासु देवगणाः सर्वे निवसन्ति न संशयः ।२१।

।। त्रुटितम् ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पर्वतमाहात्म्ये षट्त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ।।

येश' का पूजन करने से 'पञ्चगव्य'-प्रदान करने का फल मिलता है। इस क्षेत्र में 'घण्टाद्रि', 'शिवाद्रि' तथा 'बन्धूकाद्रि'[1]—ये तीन बड़े पवित्र पर्वत हैं। 'घण्टाद्रि' में अनेक पवित्र गुहायें हैं। इनमें देवताओं का वास है ।। ३-२० ।। (इसके आगे भी कुछ त्रुटित है)।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'पर्वतमाहात्म्य' नामक
एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'बमनथल'—'थलकेदार' के नीचे पट्टी रावल में स्थित है।

१३७

ऋषय ऊचुः—

वेदहीना द्विजा ब्रह्मन् व्रतहीनास्तथा स्त्रियः। यत्र शुध्यन्ति विप्रर्षे तत्क्षेत्रं वद विस्तरात् ॥१॥

व्यास उवाच—

वराटिसरितोर्मध्ये पर्वतो रावलाह्वयः। तत्र शम्भोर्महाक्षेत्रं विद्यते मुनिसत्तमाः ॥२॥
सरय्वा वामभागे वै बन्धूकाख्यो गिरिः स्मृतः। तस्योत्तरे महाभागाः पर्वतो रावलाह्वयः ॥३॥
पर्वतानां महारावः श्रूयते यत्र पर्वते। तत्र मध्ये महाक्षेत्रं केदाराख्यं प्रतिष्ठितम् ॥४॥
वेदहीना द्विजास्तत्र व्रतहीनास्तथा स्त्रियः। केदारं तत्र सम्पूज्य शुद्धं यान्ति न संशयः ॥५॥
व्रतहीनाश्च मनुजास्तपोहीनाश्च योगिनः। कुलच्युतास्तथा नार्यो विद्याहीना द्विजातयः ॥६॥
रावलाद्रौ महादेवं केदाराख्यं प्रपूज्य वै। प्रशुद्धचन्ति न सन्देहो यथा केदारमण्डले ॥७॥
वैद्यनाथाच्च द्विगुणं केदाराच्च तथैव च। अन्येभ्यः सर्वतीर्थेभ्यः सम्यग्दशगुणं फलम् ॥८॥
प्राप्नोति मानवो गत्वा केदारं रावलाह्वयम्। वेदव्रतविहीनानां मानवानां हिताय वै ॥९॥
निवासं रावलाद्रौ च चक्रे देवेश्वरो हरः। न साङ्ख्येन न योगेन हीना वेदव्रतैर्द्विजाः ॥१०॥
न शुद्धचन्ति महादेवमनाराध्य तपोधनाः। स्थिता देवगणा यत्र सान्निध्याच्छूलपाणिनः ।११।
नास्मात्पुण्यतरं स्थानं पुण्यमस्ति महीतले। शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः सुकलो नाम धार्मिकः ॥१२॥
सुमन्तुगोत्रे चोत्पन्नो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणोऽभवत्। तस्यासीन्निषधं नाम पर्वतं च समाश्रयम् ।१३।
चतुर्दशानां विद्यानां पारगोऽभूत्तपोधनाः। अथासीत्तस्य भार्यायां चन्द्रायां रूपवान् सुतः ।१४।

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! वेदविहीन ब्राह्मण तथा व्रतविहीन स्त्रियों को शुद्ध करने वाले क्षेत्र का वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—'वराटी'-'वराही' नदियों के मध्य 'रावल' पर्वत है। मुनियों ! वह शङ्कर का महाक्षेत्र है। 'सरयू' के वामभाग में 'बन्धूक' पर्वत है। उसके उत्तर में 'रावल'[1] पर्वत है। उस पर पर्वतों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। उसके मध्य में 'केदार' महाक्षेत्र है[2]। वेद-विहीन ब्राह्मण और व्रतविहीन स्त्रियाँ 'केदार' के पूजन करने से शुद्ध हो जाते हैं। इसके साथ ही 'कुलच्युत' स्त्रियाँ, 'विद्याविहीन', 'व्रतहीन' और 'तपोविहीन' जन इनका अर्चन करने से निष्कलङ्क हो जाते हैं। केदारखण्डान्तर्गत 'केदारमण्डल' की तरह 'रावलाद्रि' में पापीजन केदार-पूजन से पापमुक्त हो जाते हैं। यहाँ के पूजन से 'वैद्यनाथ' तथा अन्य तीर्थों की अपेक्षा दस गुना अधिक फल मिलता है। वेदविहीन एवं व्रतविहीनों के हितार्थ भगवान् शङ्कर 'रावल' पर्वत पर निवास करते हैं। विप्रवरों ! वेद-व्रत-विहीनों की शुद्धि साङ्ख्य-योग के ज्ञान से सम्भव नहीं है। वह यहाँ 'शिव' की आराधना से ही सम्भव है। साथ ही यहाँ देवगणों का निवास भी है। अतः इससे बढ़कर कोई दूसरा स्थान नहीं है। इस सम्बन्ध में एक आख्यान सुनें। वह इस प्रकार है—"निषध देश में 'सुमन्तु' गोत्र में उत्पन्न 'सुकल' नाम का ब्राह्मण था।

---

१. 'पट्टी रावल' के नाम से विदित है। २. 'थलकेदार'।

तस्य नामाकरोद्विप्राः पिता श्रीबिन्दुरित्यसौ । तं दृष्ट्वा सुकलो विप्राः परं हर्षमवाप्तवान् ।।
दत्तयज्ञोपवीतं च दृष्ट्वा युवसुतं तदा । उद्वाहविधिना तस्य विवाहं च चकार सः ।।१६।।
पिता चाध्यापयामास साङ्गान्वेदांस्तपोधनाः । शिक्षाकल्पान्वितान्दिव्यान् स तस्मै बिन्दुशर्मणे
स बाल्यं समतिक्रम्य यदाऽभूत्प्राप्तयौवनः । पिता तस्य तदा विप्रास्तत्याज निजमन्दिरम् ।१८।
त्यक्त्वा गृहाश्रमं सर्वं वने पञ्चत्वमागतः । मृते पितरि दुःखार्तः कृत्वा प्रेतक्रियां तदा ।।१९।।
पितृवत् सुरकार्यं च यावत्संवत्सरं गतम्[1] । संवत्सरे व्यतीते तु स चासीद्दुरिताशयः ।।२०।।
पत्न्यर्थं विनयं प्राप्य स वेश्यां दुष्टमानसः । तत्याज सोऽखिलान्वेदान्नीतिधर्मांस्तथैव च ।२१।
दुःखिता सुचिरं कालं तस्य भार्याऽपि चञ्चला । सा नाम्ना चञ्चला नाम भर्त्रा त्यक्ता तपोधनाः ।।
भर्तुः सन्दर्शमिच्छन्ती ततो जाररताऽभवत् । जारैर्दत्तं धनं तस्मै प्रददौ सा दिने दिने ।।२३।।
स तेन धनलाभेन मेने तां चातिवल्लभाम् । चकार स महाभागा न रतं वै तया सह ।।२४।।
ततः काले व्यतीते तु दम्पती पापकारिणौ । सत्यमार्गविहीनौ तौ वृद्धौ वै संबभूवतुः ।।२५।।
मुनीनां पुरतो गत्वा कदाचित्तौ तपोधनाः । कथां शुश्रुवतुः पुण्यां पापमार्गप्रणाशिनीम् ।२६।
पुंश्चल्याश्चापि वै पापं तथा वेश्यारतस्य च । कथायां क्रियमाणायां पापं शुश्रुवतुस्ततः ।।२७।।
तत्र वै मुनिशार्दूलाः कथायां हिमपर्वते । पापात्मनां हि लोकानां पावनाय प्रतिष्ठितम् ।।२८।।
हिमालयकथायां वै सरोजायास्तु सम्भवम् । स्थितौ शुश्रुवतुर्विप्रा दम्पती पापकारिणौ ।।२९।।
ततः शुश्रुवतुस्तौ वै सरोजायास्तु वामगम् । बन्धूकगिरिसंलग्नं रावलाख्यं महागिरिम् ।।३०।।
तत्र मध्ये च केदारं संस्थितं पार्वतीप्रियम् । नारीणां व्रतहीनानां द्विजानां वेदविद्विषाम् ।।३१।।
तारकं पर्वताग्रे वै केदारं देवसेवितम् । प्रफुल्लवदनौ तौ तु कथां पापप्रणाशिनीम् ।।

वह चौदहों विद्याओं में निष्णात था । उसकी पत्नी चन्द्रा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । यथा-समय उपनयनादि के अनन्तर युवावस्था प्राप्त होने पर उसका विवाह भी कर दिया । शिक्षा-कल्पसहित साङ्ग वेदाध्यापन कर उस पुत्र को गृहस्थाश्रम के योग्य जानकर सुकल स्वयं घर छोड़ वन में चला गया । वन में अपने पिता की मृत्यु होने पर दुःखार्त पुत्र ने और्ध्वदैहिक कृत्य सम्पन्न कर वर्षपर्यन्त पिता की तरह सदाचरणपूर्वक देवकार्य किया । तत्पश्चात् वह दुराचरी हो गया । वह पत्नी का त्याग कर वेश्याप्रेमी हो गया । इस प्रकार वह स्वधर्म और स्वाध्याय से विमुख हो चला । इसके फलस्वरूप उसने पत्नी का त्याग कर दिया । 'चञ्चला' नाम की वह स्त्री भी परपुरुषरत हो गई । किन्तु पति की दर्शनेच्छु वह जारों से प्राप्त धन पति को दे दिया करती थी। इस कारण उसका पति उससे सन्तुष्ट रहता था । तथापि वह उसमें आसक्ति नहीं रखता था । इस प्रकार समय बीतने पर जब वे दोनों वृद्ध हो गए तो उन्होंने कहीं पर ऋषियों का प्रवचन सुना । इस सन्दर्भ में उन दोनों ने पुँश्चली स्त्री तथा वेश्यागामी जनों के पापों की चर्चा भी सुनी । वहीं 'हिमालय' में पापियों का उद्धार करने के लिए 'सरयू' की उत्पत्ति के बारे में भी ज्ञात किया । 'सरयू' के बाईं ओर 'बन्धूक' पर्वत से सटे हुए 'रावल' पर्वत का वृत्तान्त भी विदित किया । इन दोनों के मध्यस्थ वेद-व्रत-विहीन जनों के पापों को दूर करने वाले 'केदार-मण्डल' की भी कथा सुनी । इन सबसे वे दोनों बड़े प्रभावित हुए । तब उन दोनों ने वहाँ का

---

१. 'वेदाध्ययनं च यजनं देवब्राह्मणपूजनम्'—इत्यधिकः पाठः 'ख' पुस्तके ।

श्रुत्वा पप्रच्छतुर्विप्राः प्रवेशं निर्गमं तथा ॥३२॥

विप्रदम्पती ऊचतुः—

यो वै रावलसंज्ञो हि पर्वतः कथितो द्विजाः। पुण्यः स पर्वतः कुत्र विद्यते तद् ब्रुवन्तु वै ॥३३॥
प्रवेशो निर्गमश्चापि कस्मात्तत्र प्रवर्तते ॥ ३४ ॥
को देवो मुनिशार्दूलाः कस्मिन् क्षेत्रे प्रपूज्यते। कथं यात्राविधानं च विद्यते मुनिसत्तमाः ॥३५॥

व्यास उवाच—

तयोर्वचनमाकर्ण्य मुनयस्ते तपोधनाः। प्रत्यूचुस्तस्य माहात्म्यं तद्यात्राविधिपूर्वकम् ॥३६॥

ऋषय ऊचुः—

हिमालयतटे दिव्या सम्भूता सरयू सरित्। श्यामायाः सङ्गमे यत्र सङ्गता पुण्यवाहिनी ॥३७॥
तत्र वामे महापुण्यो रावलाख्यो गिरिः स्मृतः। विद्यते तत्र केदारो मृडान्या परिसेवितः ॥३८॥
वराटी च वराही च नद्यौ बन्धूकसम्भवे। सङ्गमे सङ्गते पुण्ये शुद्धे चन्द्रस्थलाह्वये ॥३९॥
तयोर्मध्ये महापुण्यो गिरिरस्ति सुशोभनः। तत्र केदारसंज्ञो वै महेशो मुनिसेवितः ॥४०॥
गच्छतं तत्र केदारमर्च्यतां कुसुमैः शुभैः। कुरुतं कौटिलीमध्ये प्रवेशं तत्र मण्डलम् ॥४१॥
स्नात्वा तत्र विधानेन पितॄन् सन्तर्प्य वै तथा।

विप्रदम्पती ऊचतुः—

कौटिली च वराही च भवद्भिर्या वराटिका ॥ ४२ ॥
प्रोक्ता याश्च सरिच्छ्रेष्ठास्तासां वै सम्भवं कुतः। कथं तासां फलं स्नाने विद्यते मुनिसत्तमाः ॥

ऋषय ऊचुः—

वराटी या सरित्प्रोक्ता बन्धूकगिरिसम्भवा। कौटिलीसङ्गमे पुण्या सङ्गता सत्यदर्शिनी ॥४४॥

'प्रवेश' तथा 'निर्गम' जानने के लिये उन ऋषियों से पूछना आरम्भ किया ॥ २ - ३२ ॥

दम्पती बोले—"ऋषिवरों! वह 'रावल पर्वत कहाँ पर है? वहाँ का 'प्रवेश' और 'निर्गम' कहाँ पर है? वहाँ पर किस क्षेत्र में कौन से देव पूजित हैं? वहाँ की यात्रा का विधान किस प्रकार है"? ॥ ३३ - ३५ ॥

व्यासजी ने कहा -मुनिवरों! इस प्रकार उन दोनों की प्रार्थना सुन वहाँ के ऋषियों ने बतलाना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

ऋषियों ने कहा -दम्पती! 'हिमालय' से निकल कर 'श्यामा' नदी जहाँ सरयू से मिलती है[1], उसके बाईं ओर 'रावल' पर्वत है। वहाँ पर पार्वतीसहित शिव 'केदार'[2] नाम से विराजमान हैं। 'बन्धूक' पर्वत[3] से निकल कर 'वराटी' और 'वराही' नदियाँ 'चन्द्रस्थल' नामक स्थान पर मिलती हैं। उसके मध्य यह पुण्य पर्वत है। वहीं 'केदार' भगवान् हैं। उनका पूजन करो। 'कौटिली' के मध्य वहाँ का प्रवेश मार्ग है। उसमें स्नान-तर्पणादि कर यात्रा करो ॥ ३७ - ४१ ॥

दम्पती बोले—मुनिश्रेष्ठों! अब आप कृपया 'कोटिली'[4], 'वराही'[5] और 'वराटिका' के उद्‌भव तथा उनमें स्नान करने का माहात्म्य बतलायें ॥ ४२ - ४३ ॥

---

१. 'पञ्चेश्वर'। २. 'थलकेदार' के नाम से विदित हैं। ३. प्रचलित नाम—'बमनथल'।
४. 'कोटि' गाँव से निकलने वाली छोटी नदी। ५. 'बमनथल' से निकलने वाली नदी।

सापि बन्धूकसम्भूता शिवायनसरे शुभे । वराहीसङ्गमे पुण्या सङ्गता सेव्यते द्विजैः ॥४५॥
एतास्तिस्रो महापुण्या विद्यन्ते सरितां वराः । गङ्गासागरयोर्मध्ये संस्नात्वा यत्फलं लभेत् ॥
तदत्र स्नानमात्रेण प्राप्यते नात्र संशयः । कौटिली च वराही च सङ्गमे यत्र सङ्गते ॥४७॥
तत्र स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा । कुलत्रयं समुत्तार्य मानवो याति शाश्वतीम् ॥
प्रवेशस्तत्र विज्ञेयो युवाभ्यां नान्यथा क्वचित् । शिवायनसरं गत्वा तदूर्ध्वं देवसेवितम् ॥४९॥
कौटिलीमध्यगे पुण्ये स्नात्वा सन्तर्पयेत्पितॄन् । कोटिलिङ्गान्वितं देवं शङ्करं ह्रदमध्यगम् ।५०।
समभ्यर्च्य विधानेन कोटिपूजाफलं नरः । प्राप्य शिवपुरं रम्यं प्राप्नुते नात्र संशयः ॥५१॥
ततो गोदावरीसङ्गे गत्वा स्नात्वा च यत्फलम् । प्राप्नुते च तदूर्ध्वं वै सत्यशैलह्रदं व्रजेत् ॥
सत्यशैलह्रदे गत्वा स्नात्वा वामे हरप्रियाम् । समर्च्य सत्यलोकाप्तिर्जायते च ततः परम् ॥५३॥
वराटीमध्यगे पुण्ये ह्रदे टोपकसंज्ञके । निमज्य टोपकं पूज्यं शिवं तं ह्रदमध्यगम् ॥५४॥
तदूर्ध्वं चन्द्रभागायां गत्वा स्नात्वा च मानवः । चन्द्रलोकमवाप्नोति मोदते देववच्चिरम् ।५५।
वराटी च वराही च सङ्गमे यत्र सङ्गते । तत्र मध्ये निमज्याशु चन्द्रेशं पूज्य शङ्करम् ॥५६॥
मुण्डनं चोपवासं च तत्र सम्यग्विधाय वै । पितृकृत्यं विधायाशु पर्वताग्रे ततो व्रजेत् ॥५७॥
सम्भाव्य धर्मदां पुण्यां शिलां सम्यक् तथैव च । सन्निधौ देवदेवस्य गत्वा सम्पूजयेच्छिवम् ।५८।
शतरुद्राभिषेकेण स्नात्वा चन्द्रह्रदे शुभे । चन्द्रस्थलं ततो गत्वा शतावृत्त्याभिषिञ्च्य वै ॥५९॥
विच्युतिस्तत्र पापानां जायते नात्र संशयः । तत्र केदारतोयेन स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ॥६०॥
कैदारीं शाङ्करीं पूज्य जले तत्र समाहिताम् । ततोऽस्य पूर्वभागे वै गत्वा सिद्धगुहां शुभाम् ।६१।
सिद्धान् सम्भाव्य तत्रस्थान् पुनश्चन्द्रस्थलं व्रजेत् । तत्र स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ॥

ऋषियों ने कहा—दम्पती ! 'बन्धूक' पर्वत से निकलने वाली 'वराटी' नदी 'कौटिली' में जा मिलती हैं। वह भी 'बन्धूक' पर्वत से निकल कर 'शिवायनसर' में 'वराही' में सङ्गम करती है। ये तीनों नदियाँ परम पवित्र हैं। इनमें स्नान करने पर 'गङ्गासागर' स्नान का फल मिलता है। है। जहाँ पर 'कौटिली'[1] और 'वराही' मिलती हैं, वहाँ पर स्नान तथा श्राद्धादि करने पर तीन कुलों का उद्धार हो परम गति प्राप्त होती है। वहाँ तुम दोनों प्रवेश करो। 'शिवायनसर' के ऊपरी मार्ग में वह है। 'कौटिली' में स्नान तथा पितृतर्पण कर ह्रद-मध्यवर्ती कोटि लिङ्गों से युक्त 'शङ्कर' का पूजन कर कोटिपूजा का फल प्राप्त होता है। तब गोदावरी-संगम में स्नान कर 'सत्यशैल' ह्रद में जायें। वहाँ वामभाग में 'हरप्रिया' का पूजन कर सत्यलोक प्राप्त होता है। 'वराटी' के मध्यस्थ 'टोपक' नामक ह्रद में स्नान तथा शिव[2] की पूजा करने के साथ ही ऊपर 'चन्द्रभागा'[3] में स्नान करने से चन्द्रलोक मिलता है। 'वराटी' और 'वराही' के सङ्गम पर स्नान तथा 'चन्द्रेश' की पूजा, मुण्डन, उपवास, पितृकृत्य आदि कर पर्वताग्र-स्थित 'धर्मशिला' का दर्शन कर देवाधिदेव के समीप जा शिवार्चन करें। 'चन्द्र-ह्रद' में स्नान कर 'रुद्राभिषेक' की शतावृत्ति करने से सब पाप नष्ट होते हैं। वहाँ पर 'केदारजलों' से स्नान एवं पितृ-तर्पण कर 'कैदारकी' देवी का जलमध्य पूजन कर उसके पूर्व की ओर 'सिद्ध-गुहा' में जा सिद्धों का सम्मान कर पुनः 'चन्द्रस्थल' में आ जायें। वहाँ विधि-

---

१. 'कोट्यूली' नाम से विदित है। २. मन्दिर 'शिव' का 'शिराद्योल'। ३. 'पिठोरागढ़' में है।

कृत्वा निष्क्रमणं तत्र कौटिलीं स्नाप्य तर्पयेत् । ततस्तु कौटिलीमूले गत्वा सम्पूज्य शङ्करम् ॥
पर्वताग्रे महादेवं नरो याति परां गतिम् । एवं यः कुरुते यस्तु यात्रां तस्येश्वरस्य च ॥६४॥
त्रयस्त्रिंशत्पितृगणान्कुलानुत्तार्य मानवः । शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६५॥

व्यास उवाच—

ततस्तान् सम्प्रणम्याशु श्रुत्वा तेषां तथोदितम् । सपत्नीकं ययौ तत्र क्षेत्रं केदारसंज्ञकम् ॥६६॥
सरयूसङ्गमे तत्र वराटी सङ्गता शुभा । सपत्नीको निमज्याशु ययौ भावनसंज्ञकम् ॥६७॥
तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् । पितृकृत्यं विधायाशु ययौ देवस्य सन्निधौ ॥६८॥
सपत्नीकोऽर्चयामास केदारं तत्र पर्वते । शतरुद्राभिषेकेण चाभिषिञ्च्य पुनः पुनः ॥६९॥
समर्च्य तत्र देवेशं प्राप्यानुज्ञां तथैव च । स्नात्वा केदारतोयेन तत्रस्थां पूज्य शाङ्करीम् ॥७०॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सपत्नीको बभूव ह । प्रसादाद्देवदेवस्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।७१।
ततः कालेन पञ्चत्वं श्रीबिन्दुः प्रययौ द्विजाः । भर्त्रा सह ययौ तत्र चितां कृत्वातिदारुणाम् ॥
मृतौ तौ दम्पती पुण्यं रुद्रकन्याशतैर्वृतम् । सेवितं सुरगन्धर्वैः प्रापतुः शिवमन्दिरम् ॥७३॥
शङ्करस्य च माहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमाः । सर्वपापान्तकं दिव्यं श्रुत्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥७४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे केदारमाहात्म्ये सप्तत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

पूर्वक स्नान और पितृतर्पण कर निष्क्रमण करें। तत्पश्चात् 'कौटिली' में स्नान और तर्पण करना चाहिये । फिर 'कौटिली' के मूल में जाकर शङ्कर की पूजा करने से परम गति प्राप्त होती है । इस प्रकार भगवान् शिव की जो यात्रा करता है, वह तेंतीस कुलों का उद्धार कर 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित होता है ॥ ४४ – ६५ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनियों ! तब उन दोनों ने उन ऋषियों को प्रणाम कर 'केदार' क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया । प्रथम वे दोनों 'वराटी-सरयू' सङ्गम पर गये । वहाँ पहुँच ब्राह्मणदम्पती स्नान कर 'भावन' नामक क्षेत्र में पहुँचे । वहाँ के सब तीर्थों में स्नान-तर्पण कर 'देव' के निकट पहुँचे । फिर विधिपूर्वक 'केदार' का पूजन किया । तब 'शत रुद्राभिषेक' द्वारा भगवान् का अभिषेक कर उनसे पुनः पुनः अनुज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् 'केदार-जल' में स्नान कर 'शाङ्करी' की अर्चना की । इस प्रकार वे सब पापों से विमुक्त हो सांसारिक सुखभोग कर अन्त में यथासमय पतिका देहावसान होने पर उसकी पत्नी उसके साथ सहगामिनी (सती) हो गई । इस तरह वे दोनों अनेक रुद्रकन्याओं से परिसेवित 'शिवधाम' प्राप्त कर सके ॥६६–७४॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'केदार-माहात्म्य' नामक
एक सौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥

१३८

ऋषय ऊचुः—

गणाद्रिः कथितो ब्रह्मन् क्षेत्रैः सह सुशोभनः । चन्दनाद्रीति यः ख्यातस्त्वया सम्यङ्महागिरिः ।
तस्माद्याः सरितो दिव्याः सम्भूता मुनिसत्तम । वयं ताः श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सत्यवतीसुत ॥

व्यास उवाच—

गणाद्रेर्दक्षिणे भागे पुण्यश्चन्दनपर्वतः । नानाधातुशतैर्युक्तो नानाऽऽकरसमन्वितः ॥३॥
विद्यते शिखराकारः शिखरैर्बहुभिर्वृतः । त्रयस्त्रिंशद्देवगणास्तत्र चन्दनपर्वते ॥४॥
महेन्द्रप्रमुखास्तत्र निवसन्ति तपोधनाः । ततः पश्चिमभागे वै पुण्यो नन्दासरः स्मृतः ॥५॥
तत्र नन्दा महादेवी विद्यते देवसेविता । नन्दासरसमं पुण्यं नान्यं पश्यामि भूतले ॥६॥
सरांस्यन्यानि पुण्यानि तावत्सङ्कीर्तितानि वै । यावन्नन्दासरः पुण्यो न गीतो मुनिसत्तमाः ॥७॥
महेन्द्रप्रमुखा देवा यत्र नन्दां महेश्वरीम् । समर्चन्ति महाभागास्तस्मात्कोऽन्यतमो वरः ॥८॥
तत्र नन्दां महादेवीं समभ्यर्च्य महेश्वरीम् । पुरा कृतयुगस्यादौ नाम्ना माणवको द्विजः ॥९॥
कालीं सम्प्रार्थयामास नद्या उत्पत्तिहेतवे । ततः प्रसन्नवरदा काली तस्मै ददौ नदीम् ॥१०॥
नन्दा तस्मान्महाभागा नन्दाख्या देवसेविता । यत्र गत्वा च मनुजः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥११॥
समुत्तार्य ब्रह्मभुवं प्राप्नोति नहि संशयः । तत्र कलावती नामा मरीचिदुहिता शुभा ॥१२॥
ब्रह्मणा प्रेषिता साध्वी नन्दाख्ये ह्रदनायके । पावनाय द्विजातीनां सा नदी सम्बभूव ह ॥१३॥
तामेव दर्शयामास तस्मै माणवकाय वै । काली सम्पूजिता तेन वरदा देवसेविता ॥१४॥

ऋषियों ने कहा—तपोनिधे ! आपने क्षेत्रों सहित 'गणपर्वत'[1] का वर्णन कर दिया । इसके साथ ही 'चन्दनाद्रि' का भी संकेत कर दिया है । अब हम उससे निकलने वाली नदियों के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं ॥ १–२ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों । 'गणाद्रि' के दक्षिण में पवित्र 'चन्दन' पर्वत है । अनेक धातुओं की खानों से संयुत हो वह अनेक शृङ्गों से सुशोभित है । वहाँ महेन्द्रादि देवगणों का वास है । उसके पश्चिम में पवित्र 'नन्दासर' है । उसमें 'नन्दादेवी' स्थित हैं । 'नन्दासर' के माहात्म्य-वर्णन के पहले तक ही अन्य तीर्थों का माहात्म्य प्रशस्त है । जहाँ 'नन्दादेवी' की सेवा में महेन्द्रादि देवगण समुपस्थित हों, उससे बढ़कर और दूसरा स्थान कौन हो सकता है ? 'सत्य-युग' के आदि में 'माणवक' नामक ब्राह्मण ने 'नन्दा' की पूजा कर 'काली' से एक नदी प्रवाहित करने के लिए प्रार्थना की थी । इसके फलस्वरूप वरदात्री 'काली' ने उसे 'नदी' दे दी । अतः देवसेविता 'नन्दा' के समक्ष जाकर मनुष्य एक सौ एक कुलों का उद्धार करता है । वहाँ 'मरीचि' की पुत्री[2] 'कलावती'[3] ने आकर ब्रह्माजी की आज्ञानुसार द्विजातियों को पवित्र करने

---

१. 'शिव' के गणों का निवासस्थान । अन्यत्र पुराणों में 'कैलास' पर्वत के नाम के वैकल्पिक रूप में इसकी गणना की है ।

२. भागवत (४-१-१३) में इनकी पत्नी का नाम 'कला' बताया है—'पत्नी मरीचेस्तु 'कला' सुषुवे कर्दमात्मजा । कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥'

३. 'काशीखण्ड' के अनुसार 'गङ्गा' का एक नाम 'कलावती' भी है ।

नदीं तां समनुप्राप्य महादेव्याः प्रसादतः । मन्दिराद्रिं स निर्भेद्य दण्डेन स्वेन चारुणा ॥१५॥
शाण्डिल्यस्याश्रमं पुण्यं प्रापयामास सत्पथाम् । तत्रागत्य स्वगुरवे शाण्डिल्याय महात्मने ॥
नदीं प्रदर्शयामास दिव्यां नन्दासरोद्भवाम् । स तस्या वारिभिर्दिव्यैः पितॄन् सन्तर्प्य यत्नतः ॥
तर्पिताः पितरस्तेन वकुण्ठभवनं ययुः । वैकुण्ठभवने प्राप्तान् मत्वा सन्तर्पितान्पितॄन् ॥१८॥
स तस्मै प्रददौ विद्यां दिव्यामान्वीक्षिकीं ततः । वेदानध्यापयामास तुष्टः क्रमसमन्वितान् ॥
अधीतविद्यो विप्रर्षिश्चचार वसुधातलम् । येन पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा भतले सम्प्रकाशिता ॥२०॥

ऋषय ऊचुः—

शाण्डिल्यस्तेन शिष्येण कथमाराधितोऽभवत् । स्थले कस्मिन् महाभाग चक्रे पुण्याश्रमं सुधीः ॥
नदीं तां प्रार्थयामास स शिष्यात्केन हेतुना । न्यवसत्स कथं तत्र निर्जले विपिने द्विजः ॥२२॥

व्यास उवाच—

हिमालयतटे पुण्यं क्षेत्रेभ्योऽप्यधिकं मुनिः । मन्द-मन्दिरयोर्मध्ये आश्रमं स चकार ह ॥२३॥
तत्र मध्याह्नसमये शिष्यं माणवकं मुनिः । जलार्थं प्रेषयामास पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥२४॥
ततो माणवको विप्रा निर्जले विपिने भ्रमन् । चन्दनाद्रिं ययौ पूर्वं विन्ध्याचलमिवापरम् ।२५।
तत्र नन्दासरं पुण्यं पूरितं विश्वकर्मणा । ददर्श तत्र मध्ये वै नन्दां देवीं महेश्वरीम् ॥२६॥
तस्याग्रे कालिकादेवीं संस्थितां तां प्रतुष्टुवत् ॥ २७ ॥

माणवक उवाच—

नमः काल्यै महादेव्यै मायायै सततं नमः । कल्याण्यै योगनिद्रायै महाकाल्यै नमो नमः ॥२८॥

हेतु नदी का रूप धारण किया था । 'काली' ने माणवक को उसे दिखलाया था । वह 'माणवक' डंडे की चोट से 'मन्दिराद्रि' का भेदन कर 'शाण्डिल्य' के आश्रम की ओर उस नदी को बहा ले गया तथा अपने गुरु 'शाण्डिल्य' ऋषि को उसे दिखाया । उस नदी के दिव्य जल से पितृ-तर्पण कर 'शाण्डिल्य' के पितृगण तृप्त हो गये । यह देख सन्तुष्ट 'शाण्डिल्य' ऋषि ने उस शिष्य को 'आन्वीक्षिकी'[१] तथा यथाक्रम (अथवा क्रमपाठसहित) वेदों को पढ़ाया । इस प्रकार अध्ययन कर नदी का प्रकाशक 'माणवक' भ्रमणार्थ चल पड़ा ॥ ३-२० ॥

ऋषियों ने पूछा—महाभाग ! उस शिष्य से शाण्डिल्य किस प्रकार अर्चित हुए और उसने उनकी आराधना कहाँ पर की ? उन्होंने आश्रम कहाँ बनाया ? उन्होंने किस कारण उस नदी को वहाँ बुलवाया ? उन्होंने निर्जन वन में निवास क्यों किया ? ॥ २१-२२ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! हिमालय के तट पर 'मन्द' और 'मन्दिर'-पर्वतों के मध्य 'शाण्डिल्य' ऋषि ने अपना आश्रम बनाया । उनका वह शिष्य निर्जन वन में फिरता हुआ सर्वप्रथम 'चन्दन' पर्वत पर पहुँचा । वहाँ 'विश्वकर्मा' से पूरित 'नन्दासर' एवं उसके मध्य विराजमान 'नन्दा' देवी को देखा । वह 'नन्दा के आगे विराजमान 'कालिका' को देख उनकी स्तुति करने लगा ॥ २३-२७ ॥

---

१. 'आन्वीक्षिकी' को 'तर्कशास्त्र' तथा 'आत्मविद्या'—दोनों रूपों में लिया जाता है । 'कामन्दकीय नीतिसार' (२०-११) में इसका विवरण इस प्रकार दिया है—'आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यात् ईक्षणात्सुख-दुःखयोः । ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यतः' ॥

सत्यायै सत्यकारिण्यै सिद्धयै तस्यै नमो नमः । नन्दायै नन्दभद्रायै महाकाल्यै नमो नमः ।२९।
शक्त्यै चैवातितृप्तायै शिवायै सततं नमः । भैरव्यै कालरूपायै महाकाल्यै नमो नमः ॥३०॥
कराल्यै घोरदंष्ट्रायै कपालिन्यै नमो नमः । काल्यै विकटरूपिण्यै महाकाल्यै नमो नमः॥३१॥

व्यास उवाच—

एवं स्तुता महाकाली ब्राह्मणाय तपोधनाः । तस्मै प्रदर्शयामास शुभां नन्दासरोद्भवाम् ॥३२॥
कलावतीं सरिच्छ्रेष्ठां ब्रह्मणा प्रेषितां शुभाम् । मरीचितनयां दिव्यां नानापापप्रणाशिनीम् ॥
तां दृष्ट्वा स तदोत्थाय नत्वा कालीं हरप्रियाम् । मन्दिराद्रितटे रम्ये वाहयामास तां नदीम् ।
स नीत्वा तां सरिच्छ्रेष्ठां भित्वा मन्दिरपर्वतम् । सत्यधर्मपरो दान्तो गुरोः पुण्याश्रमं ययौ ॥
नदीं निवेदयामास गुरवे गुरुवत्सलः । नत्वा नन्दासरोत्थां तां धन्यो माणवको मुनिः ॥३६॥
ततः कलावतीं पुण्यां दृष्ट्वा स्नात्वा च वै तथा । पितॄन्सन्तर्पयामास शाण्डिल्यः स तपोनिधिः ।
तस्यास्तोयैर्महाभागा वैकुण्ठपथदर्शकैः । ततो माणवकः शिष्यं शाण्डिल्यः स तपोनिधिः ।३८।
वरेण च्छन्दयामास वेदानध्याप्य वै तथा । स्पृष्ट्वा दृष्ट्वापि सा पुण्या समुद्धृत्य यमालयात् ॥
सम्प्रेषयति वैकुण्ठं कुलमेकोत्तरं शतम् । संस्नाता तर्पिता सा तु मानवैः किं ब्रवीम्यहम् ।४०।
दृष्ट्वा कुलत्रयं पुण्यं स्पृष्ट्वा च कुलसप्तकम् । पीत्वा चैकोत्तरशतं स्नात्वा कुलसहस्रकम् ॥
तर्पिता कुलकोटिं वै समुद्धरति सा सरित् । तस्यां सन्तर्पिता येन पितरो मुनिसत्तमाः ॥४२॥
प्रेतसम्भवनात्तेन उद्धृताः कुलकोटयः । कलावत्याः समुत्पत्तिः कथिता पुण्यलक्षणा ॥
तीर्थानि चापि क्षेत्राणि शृण्वन्तु कथितानि वै ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कलावतीमाहात्म्ये अष्टत्रिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

माणवक बोला—'मैं—महादेवी, महामाया आदि नामों से सम्बोधित—'काली' को बार-बार नमस्कार करता हूँ। जो 'कल्याणी', 'योगनिद्रा', 'सत्या', 'सिद्धि', 'नन्दा', 'नन्दभद्रा', 'शक्ति', 'अतितृप्ता', 'शिवा', 'भैरवी' 'कालरूपा' 'कराली', 'घोरदंष्ट्रा', 'कपालिनी', 'विकट-रूपिणी' और 'सत्यकारिणी' आदि नामों से स्तुति की गई है। उसको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ' ॥ २८-३१ ॥

व्यासजी ने बोले—मुनिवरों ! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर 'काली' ने उसे 'नन्दा-सर' से उद्भूत 'कलावती' नदी को दिखाया। वह 'कलावती' 'मरीचि ऋषि' की पुत्री ब्रह्मा की आज्ञानुसार पापप्रणाशिनी 'नदी' के रूप में परिणत हो गई है। नदी को देख 'हरप्रिया काली' को नमस्कार कर 'मन्दिराद्रि' को भेदन कर उसे आगे प्रवाहित करते हुए अपने गुरु 'शाण्डिल्य' के आश्रम[1] तक पहुँचा दिया। गुरुदेव को नदी समर्पित कर 'माणवक' धन्य हुआ। ऋषि ने उसमें स्नान एवं पितृतर्पण कर पितरों को 'वैकुण्ठ' में प्रतिष्ठित देख आनन्दित होकर 'माणवक' को 'वरदान' के फलस्वरूप वेदाध्ययन करा यह बतलाया कि 'कलावती' का दर्शन और स्पर्श करने से इक्कीस कुलों का उद्धार होते हुए 'पितृगण' यमलोक से उठकर

---

१. जहाँ 'गणपर्वत' से उत्पन्न 'शाङ्करी' नदी 'कलावती' में संगम करती है, वहाँ शाण्डिल्याश्रम है। वेत्रवती' के सङ्गम में तारकेश्वर हैं।

१३९

व्यास उवाच—

नन्दासरे च संस्नात्वा नन्दां तां सरमध्यगाम् । समभ्यर्च्य महादेवीमभीष्टफलमश्नुते ॥१॥
सरकोणे स्थितां देवीं समभ्यर्च्य जयप्रदाम् । विजयं प्राप्नुते मर्त्यः सर्वदा निजशत्रुषु ॥२॥
कलावत्या महामूले तत्रस्थां हरवल्लभाम् । नरः कालीं समभ्यर्च्य कालभीतिं न पश्यति ॥३॥
कलावत्या महामूले स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् । यमालयाच्छतकुलं समुद्धृत्य नरो दिवम् ॥४॥
सम्प्राप्य देवनारीणां संसेव्यो जायते चिरम् । ततश्चन्द्रोदये तीर्थे चन्द्रवत्यास्तु सङ्गमे ॥५॥
स्नात्वा चन्द्रोदये देवीं समभ्यर्च्य सुरूपताम् । प्राप्य शिवपुरं याति शिवेन सह मोदते ॥६॥
ततस्तु दक्षिणे भागे क्षेत्रं वामनसंज्ञकम् । विद्यते देवदेवस्य वामन्याः सङ्गमध्यगम् ॥७॥
वामनीसरितोर्मध्ये स्नात्वा देवं प्रपूजयेत् । वामनेशं समभ्यर्च्य तत्रैव शाङ्करीं तथा ॥८॥
गवां कोटिप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः । ततस्तु दक्षिणे भागे कलावत्यास्तपोधनाः ॥९॥
माण्डव्यस्याश्रमं गत्वा माण्डवीं भाव्य मानवः । ब्राह्मण्यं समवाप्नोति मुनेस्तस्य प्रभावतः ॥१०॥
तत्रैव माण्डवेशं च समभ्यर्च्य तपोधनाः । ससुवर्णजलं दत्त्वा नरो जातिस्मरो भवेत् ॥११॥

'वैकुण्ठ' प्राप्त करते हैं। मुनिवरों ! जो स्नान कर इसके जल से तर्पण करते हैं, उनके असंख्य कुलों का उद्धार होता है। कहाँ तक कहें ? इसके दर्शन से तीन कुल, स्पर्श से सात कुल, जल-पान से एकोत्तरशत, स्नान से सहस्र तथा तर्पण से मरणोत्तर कोटि कुलों का उद्धार होता है। ऋषिवरों ! मैंने 'कलावती' के 'उद्भव' को बतला दिया है। अब मैं तत्सम्बद्ध 'तीर्थ' और 'क्षेत्रों' के विषय में बतलाता हूँ ॥ ३२-४३ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कलावती-माहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! 'नन्दासर' में स्नान एवं सरोमध्यस्थ 'नन्दादेवी' का पूजन करने से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। 'सरोवर' के कोने में 'जयप्रदा' देवी की पूजा करने से विजय मिलती है। 'कलावती' के मूल में 'काली' का पूजन करने से 'कालभय' नहीं रहता। वहीं स्नान तथा तर्पण करने पर सौ कुलों का उद्धार होता है। तदनन्तर 'चन्द्रोदय-तीर्थ' में चन्द्रोदय के समय 'चन्द्रवती' के सङ्गम में स्नान करने पर 'रूपसम्पत्' मिलती है। उसके दक्षिण भाग में 'वामनी' नदी के सङ्गम में वामन क्षेत्र है। 'वामनी' में स्नान, 'वामनेश' तथा 'शाङ्करी' का पूजन करने पर कोटि गोदान का फल मिलता है। फिर कलावती के दक्षिण में 'माण्डव्य'[1] के आश्रम में जाकर 'माण्डवी' के पूजन से 'ब्राह्मण्य' प्राप्त होता है। वहीं सुवर्णयुक्त जलदान कर 'माण्डव्येश' का पूजन करने पर 'जातिस्मर' होता है। तदनन्तर

---

१. एक प्राचीन ऋषि का नाम जो एक भार्गव गोत्रकार थे (मत्स्य० १९५-२१)।

मन्दिरासङ्गमे गत्वा स्नात्वा वै मन्दिरेश्वरम् । समभ्यर्च्य महाभागाश्रिताभस्म विभूषणम् ।।
वाक्पटुत्वं महेशस्य प्रसादाज्जायते ध्रुवम् ।।१३।।
वामे तत्र कलावत्या नाम्ना भूतेश्वरी गुहा । भूतेश्वरं गुहावासं तत्र सम्पूज्य मानवः ।।१४।।
भूतप्रेतादिकानां च न पश्यति महद्भयम् । क्रान्त्याः सुसङ्गमे गत्वा स्नात्वा क्रव्यादनायकम् ।१५।
समभ्यर्च्य महादेवमात्मनः पदमश्नुते । तत्र वामे च गिरिजां वाराहीं पूज्य मानवः ।।१६।।
श्रियमेवातुलां प्राप्य[1] शिवं याति परत्र च । दक्षिणे मन्दिराद्रौ वै कैलासेशं महेश्वरम् ।।१७।
धनं धान्यं धरां धर्मं नरः प्राप्नोति पूज्य वै[2] । ब्राह्मणो लभते विद्यामितरस्तु महार्थताम् ।।
ततो वेत्रवतीसङ्गे स्नात्वा ऋक्षवतीं शुभाम् । तारकेशं समभ्यर्च्य ह्रदमध्यगतं हरम् ।।१९।।
यावदृक्षगणाः सर्वे निवसन्ति तपोधनाः । तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिर्नात्र संशयः ।।२०।।
ततस्तु शाङ्करी पुण्या गणपर्वतसम्भवा । सङ्गमे सङ्गता पुण्या कलावत्यास्तपोधनाः ।।२१।।
तयोर्मध्ये महापुण्यं शाण्डिल्यस्याश्रमं स्मृतम् । यत्र गत्वा च शूद्रोऽपि द्विजत्व प्राप्यते शुभम् ।।
तयोर्मध्ये महाक्षेत्रं दिव्यं शाण्डिल्यसंज्ञकम् । क्षेत्रे तत्र महादेवः शाण्डिल्येशेति गीयते ।।२३।।
शाङ्करीसरितोर्मध्ये तीर्थं माणवकाह्वयम् । विद्यते सुरगन्धर्वैः सेवितं पुण्यसंज्ञकम् ।।२४।।
मुण्डनं चोपवासं च विधायाशु प्रतर्प्य वै । स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीत फल्गुतीर्थाच्छताधिकम् ।।
विद्यते तत्र सत्कृत्य पितॄन् सर्वांस्तपोधनाः । तीर्थे माणवके स्नात्वा सन्तर्प्य च पितॄन्नरः ।।
शाण्डिल्येशं समभ्यर्च्य विधानेन महेश्वरम् । कुलायुतं समुत्तार्य प्राप्नुते शिवमन्दिरम् ।।२७।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कलावती-माहात्म्ये एकोनत्रिंशच्छततमोऽध्यायः ।।

'मन्दिरा' नदी के सङ्गम में स्नान कर 'मन्दिरेश्वर' का पूजन करने से 'वाणी' की पटुता प्राप्त होती है। कलावती' के वाम भाग में 'भूतेश्वरी' तथा गुहा में 'भूतेश्वर' का पूजन कर भूत-प्रेतादि की बाधा नहीं होती । 'क्रान्ति' के सङ्गम में स्नान तथा 'क्रव्यादनाथ' का पूजन कर 'आत्मतत्त्व' में विलय हो जाता है। वहीं वामभाग में 'वाराही तथा गिरिजा' का पूजन कर इस लोक में अतुल सम्पत्ति प्राप्त कर परलोक में 'शिवधाम' मिलता है। फिर दक्षिण की ओर 'मन्दिराचल' में 'कैलासेश' का पूजन कर धन, धान्य, धरा और धर्म का लाभ होता है। (तब 'ऋष्य'[3] सरोवर में स्नान कर 'ऋष्यशङ्ग'[4] की अर्चना करने से) ब्राह्मण को विद्या और अन्य जनों को धनलाभ होता है। तब 'वेत्रवती' के सगम में स्नान एवं 'ऋक्षवती'[5] तथा 'ह्रद' में विराजमान 'तारकेश'[6] का पूजन करने से नक्षत्रों की स्थितिपर्यन्त सन्तति विद्यमान रहती है। तत्पश्चात् 'गण'पर्वत[7] से निकलने वाली 'शाङ्करी' नदी 'कलावती' से मिलती है। उन

१. 'श्रियं स चातुलां प्राप्य' 'ख' ।
२. 'ततो ऋष्यसरे स्नात्वा ऋष्यश्रृङ्गं प्रपूज्य वै' । 'ख' पुस्तके अधिकः वर्तत ।
३. भागवत (९, २२-२१) में इन्हें 'देवातिथि' का पुत्र तथा 'दिलीप' का पिता कहा है।
४. प्रसिद्ध ऋषि—विभाण्डक के पुत्र तथा दशरथ की पोष्य पुत्री 'शान्ता' के पति।
५. 'ऋक्षेश्वर'-मन्दिर तो है (लोहाघाट)। ६. तारकेश्वर' । ७. 'गणधुरा' नाम से जाना जाता है।

१४०

ऋषय ऊचुः—

शाङ्कर्याश्च समुत्पत्ति कथयस्व तपोधन। यथा सा शाङ्करी ख्याता यथा भूमौ प्रतिष्ठिता ।१।

व्यास उवाच—

शाङ्कर्याश्च समुत्पत्ति शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः। यथा सा शाङ्करी ख्याता तथा भूमौ प्रतिष्ठिता ॥

अशेषतः शङ्करपूजने रतो बभूव विप्रो नगरे चषाह्वये।
स वै कदाचिद्धिमपर्वतं शुभं ययौ विहायाशु गृहाश्रमं गृही ॥ ३ ॥
व्रजन्स मार्गे गणपर्वतं द्विजो दृष्ट्वा ददर्शाथ महेश्वरं प्रभुम्।
तस्याद्रिकुक्षौ विनिषेवितं गणैः सहस्ररश्मिप्रतिमं महाप्रभुम् ॥ ४ ॥
स तत्र चाङ्गुष्ठसमं महेश्वरं ज्ञात्वा सुरेशैर्विनिषेवितं हरम्।
स कन्दराग्रे विनिवेश्य तं तदा समर्चयामास महेन्द्रपूजितम् ॥ ५ ॥
ततः कदाचित्तृषितो महेश्वरात्तोयं स दिव्यं गणदर्शितं शुभम्।
सम्प्राप्य प्रीत्या समवाप्य तज्जलं पीत्वा मुहुः शङ्करपादसम्भवम् ॥ ६ ॥
त तेन तोयेन च शाङ्करीं शुभां नदीं प्रकल्प्याशु सुमार्गवाहिनीम्।
नीत्वा स शाण्डिल्यमुनेः शुभाश्रमं ययौ वसिष्ठः सरयूं यथा नदीम् ॥ ७ ॥

दोनों नदियों के मध्य 'शाण्डिल्य-आश्रम' है। वहाँ जाकर 'शूद्र' भी 'द्विजत्व' प्राप्त करते हैं। वहीं शाण्डिल्य-क्षेत्र मे 'शाण्डिल्येश' का पूजन करने से सिद्धि प्राप्त होती है। 'शाङ्करी'–'कलावती' के मध्य 'माणवक-तीर्थ' है। वहाँ मुण्डन, उपवास, स्नान और श्राद्ध करने पर 'फल्गु' तीर्थ से भी अधिक फल मिलता है। इस तरह 'माणवकतीर्थ' में स्नान और 'पितृ'तर्पण एवं 'शाण्डिल्येश' का पूजन करने से अयुत कुलों का उद्धार होने के साथ मानव शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है।

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कलावतीमाहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—तपोधन ! 'शाङ्करी' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम लोग सुनने के इच्छुक हैं। कृपया उसका वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! शाङ्करी की उत्पत्ति और उसकी ख्याति के बारे में सुनें। 'चष' नगर का एक ब्राह्मण जन्म भर शङ्कर की तपस्या में रत रहा। वह गृहस्थ अपने घर को छोड़ कर हिमालय पर्वत पर आया। मार्ग में 'गणपर्वत' के ऊपर महेन्द्रादि से पूजित एक गुफा के अग्रभाग में स्थापित सूर्य के समान कान्तिशाली अँगूठे के बराबर शङ्कर की 'प्रतिमा' को देख उसने भी पूजा की। एक दिन प्यास लगने पर गणों की आज्ञा से उसने शिवचरणामृत का पान किया। जिस प्रकार वसिष्ठ ने सरयू प्रवाहित की उसी तरह उस ब्राह्मण ने उस जल

स वाहयित्वा सुमहानदीं शुभां पितॄन्स सन्तर्प्य समर्च्य शंकरम् ।
ययौ महेशस्य पदं महामतिः शेषव्रतो देववरैर्निषेवितम् ॥ ८ ॥
मूले च तस्याः किल शंकरः स्वयं समर्च्यते देवगणैर्महाबलैः ।
समर्च्य तं याति नरो महेश्वरं पदं महेशस्य सुरैर्निषेवितम् ॥ ९ ॥
ततो नदीनां कलभा महानदी समागता सिद्धगणैर्निषेविता ।
ऐरावणस्य कलभो निमज्य वै यत्र प्रभोः शान्तपदं गतः शुभम् ॥ १० ॥
स्नात्वा च वामे गिरिमध्यगां शिवां करालवक्त्रां विधिवत्प्रपूज्य वै ।
धनं च धान्यं च धरां सुशोभनां प्राप्नोति देव्या मनुजो हि रञ्जनात् ॥ ११ ॥
ततस्तु सा शाकवती महानदी समागमद्धर्मवती ततो नदी ।
शेषा सुभद्रा सुभगा सुवेगा ह्येताः सुपुण्याः किल शाङ्करीं गताः ॥ १२ ॥
वामे स शृङ्गालगिरिर्महाप्रभोर्विराजते देवशतैर्निषेवितः ।
प्रभावतीं तत्र महेश्वरप्रियां समर्च्य संयाति नरो हरेः पदम् ॥ १३ ॥
ततस्तुषाख्या गणपर्वतोद्भवा सरित्सुपुण्या किल शाङ्करीं गता ।
तस्यास्तु नद्याश्च हि रक्षणे स्थितां महेश्वरीं देवगिरेश्च वामगाम् ॥ १४ ॥
भोगाननेकान्समवाप्य भूतले समर्च्य देवेन्द्रपदं प्रयान्ति वै ।
विहाय तस्याः शुभसङ्गमात्ततो नदीं व्रजेद्वाजरसंज्ञकां शुभाम् ॥ १५ ॥
तस्यास्तटस्थं च समर्च्य शंकरं व्रजेच्च तस्माच्छुभसङ्गमे शुभे ।
स्नात्वा तयोर्मध्यगते बलाह्वये तार्थे नरो याति हरेः पदं शुभम् ॥ १६ ॥
ततस्तु सा पुण्यतमा हि शाङ्करी कलावतीं पुण्यतमां नदीं गता ।
स्नात्वा च सन्तर्प्य च शाण्डिलयेश्वरं समर्च्य शम्भोः पदवीं नरो व्रजेत् ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कलावतीमाहात्म्ये चत्वारिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

की ओर बहाया। इस तरह 'शेषव्रत' नामक ब्राह्मण ने 'शाङ्करी' नदी को प्रवाहित कर उसके जल से, जो देवगणों से सेवित था, पितृ-तर्पण किया तथा शङ्कर की पूजा की। इसके फलस्वरूप उसने अन्त में 'शिवलोक' प्राप्त किया। इस नदी के मूल में देवगण भी शङ्कर की अर्चना करते हैं। उनके पूजन से मानव को शङ्कर के चरण प्राप्त होते हैं। तदनन्तर 'कलभा' नदी वहाँ आ पहुँची, जिसमें स्नान कर 'ऐरावत' हाथी के बच्चे ने प्रभु के शान्त चरण प्राप्त किये। वहाँ स्नान कर उसके बाईं ओर 'करालवदना' देवी का पूजन कर मनुष्य धन, धान्य एवं धरा से सम्पन्न हो जाता है। तब 'शाकवती', 'धर्मवती', 'शेषा', 'सुभद्रा', 'सुभगा' तथा 'सुवेगा' नाम की नदियाँ शाङ्करी में आकर मिलती हैं। उससे बाईं ओर सैकड़ों देवताओं से सेवित 'श्रृङ्गाल'[1] पर्वत है। वहाँ 'प्रभावती'[2] का पूजन कर 'विष्णु-लोक' प्राप्त होता है। तब 'गणपर्वत' से उत्पन्न 'तुषा' नदी का 'शाङ्करी' के साथ सङ्गम होता है। उस नदी की रक्षा हेतु 'देवगिरि'[3] के वाम भाग में स्थित 'महेश्वरी' का पूजन कर

१. महाभारत के अनुसार एक स्त्रीराज्य के स्वामी का नाम था। 'मेरु' के दक्षिण एक पर्वत भी।
२. सूर्य की पत्नी का नाम (महाभारत उद्योग पर्व ११०।८)। ३. भागवत (५, १९-१६) के अनुसार भारतवर्ष का एक पर्वत है। वहाँ पर भागवत में अनेक पर्वत गिनाये गए है।

१४१

व्यास उवाच—

ततः कलावतीमध्ये तीर्थे शाङ्करसंज्ञके । स्नात्वा च शिवलोकाप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥१॥
ततस्तु नृगतीर्थे वै यत्र राजा नृगो द्विजाः । पितॄन् सन्तारयामास प्रतर्प्य च जलैः शुभैः ॥२॥
स्नात्वा तत्र च सन्तर्प्य पितरो यान्ति सत्पदम् । ततो हिमाद्रिसंज्ञा वै कलावत्यास्तु सङ्गमे ॥
सङ्गता सिद्धपार्श्वस्था सम्भूता गोपिपर्वते । तत्र सङ्गममध्ये वै स्नात्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥४॥
ततस्तु बहवो नद्यः कलावत्यास्तु सङ्गमे । सङ्गता बहुपुण्यास्ता ज्ञेयाः सर्वास्तपोधनाः ॥५॥
सङ्गमे स्वर्णसोमाख्यं तीर्थमस्ति तपोधनाः । स्वर्णसीमह्रदे स्नात्वा मानवो याति शाश्वतीम् ।
कलावत्या महाभागा दक्षिणे परमेश्वरी । आधारशक्तिभूता या गीयते परमेश्वरी[1] ॥७॥
निर्झरस्य प्रपाते सा राजते परमेश्वरी । आधारशक्त्या या देवी महीरूपेण संस्थिता ॥८॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्द्रव्यैरर्चिता निर्झरे स्थिता । प्रयच्छति वरं भद्रं सा शक्तिर्मुनिसत्तमाः ॥९॥

मनुष्य ऐहिक सुख भोग कर अन्त में 'महेन्द्रभुवन' प्राप्त करता है। तदनन्तर 'वाजर' नदी के सङ्गम में जाना चाहिये। उसके तटवर्ती 'शङ्कर' का पूजन कर उन दोनों नदियों के मध्य संगम में स्नान करने पर 'हरिपद' प्राप्त होते हैं। तब 'कलावती' नदी 'शाङ्करी' से मिलती है। वहाँ स्नान, पितृकृत्य तथा शिव का पूजन करने पर मानव शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है॥ २ – १७॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कलावतीमाहात्म्य'-विषयक
एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

व्यासजी कहते रहे—तब 'कलावती' के मध्यवर्ती 'शङ्कर' तीर्थ में स्नान कर 'शिवलोक' मिलता है। तत्पश्चात् राजा 'नृग'[2] के द्वारा तर्पण किये गए स्थान पर 'नृग' तीर्थ है, वहाँ स्नान, तर्पणादि करने से पितर तर जाते हैं। तत्पश्चात् 'हिमाद्रि' नदी तथा 'कलावती' के सङ्गम में स्नान करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है। 'हिमाद्रि' नदी का उद्भव 'गोपी' पर्वत है। तदनन्तर अनेक पवित्र नदियाँ 'कलावती' में आकर मिलती हैं। उस महासङ्गम में ह्रद के रूप में 'स्वर्णसोमतीर्थ' है। वहाँ स्नान करने पर 'शाश्वत पद' (नित्य मुक्ति) प्राप्त होता है। 'कलावती' के दाहिनी ओर एक झरना गिरता है, वहाँ पर पृथ्वी के रूप में स्थित 'आधारशक्ति' का पूजन करने से अभीष्ट 'वर' मिलता है। वह आधारशक्ति समागत जनों को

---

१. 'सा माहेश्वरी'—इत्यपरः पाठः।

२. 'इक्ष्वाकु' के पुत्र एक प्राचीन राजा जो बड़े दानी थे। एक बार इन्होंने भूल से दान की गई गो दुबारा दान में दे दी। इसके फलस्वरूप इन्हें 'गिरगिट' की योनि में १००० वर्ष-पर्यन्त कुएँ में रहना पड़ा। कृष्णावतार के समय भगवान् 'श्रीकृष्ण' ने इन का उद्धार किया (भागवत १०, ६४, १०–३०)।

कृपाम्बुवर्षैः किल निर्झरोत्थैरभिषेचयित्वा मनुजान्समागतान् ।
स्वर्गं स सम्प्रेषयते महेन्द्रमाज्ञापयित्वा च ददाति भोगान् ॥ १० ॥
यो निर्झरोत्थैर्जलबिन्दुभिर्नरः संस्पृष्टमात्रो गिरिजां महेश्वरीम् ।
समर्चयेत्तत्र जलानुकारिणीमाधारशक्तिं स च याति वै शिवम् ॥ ११ ॥
ततस्तु निर्झरोत्थेन तोयेनाशु विधाय वै । स्नानं तत्र महाभागा नरो याति परां गतिम् ॥१२॥
निर्झरो यः कलावत्याः सङ्गमे सङ्गतस्ततः । तत्र स्नात्वा महादेवं चिताभस्मविभूषणम् ॥१३॥
आधारेशं समभ्यर्च्य किल्विषं नाप्नुते नरः । [1]ततस्तत्र सरिच्छ्रेष्ठा विश्वपर्वतसम्भवाः ॥१४॥
सङ्गमे ताः कलावत्याः सङ्गता मुनिसत्तमाः । समर्च्य चीरवसनां तस्या मूले महेश्वरीम् ॥
समर्च्य सङ्गमे स्नात्वा नरः शिवपुरं व्रजेत् ॥१५॥
ततः कलावती पुण्या सीतानद्यास्तु सङ्गमे । यत्र हंसबकाख्यानं सङ्गता तत्र वै द्विजाः ॥१६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे पर्वताख्याने एकचत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

---

१४२ (क)

ऋषय ऊचुः—

प्रसादतो हंसबकाख्यमुत्तमं संश्रोतुमिच्छाम तवानुकम्पया ।
तस्यानु नद्यापि हि सम्भवादनु कथाप्रसङ्गेन वदस्व विस्तरम् ॥ १ ॥

व्यास उवाच—

हिमालयस्योदरिति स्म सर्वतो व्याख्यायते देवगणैः सुशोभनैः ।
सा यत्र पुण्याऽपि हि सम्भवा सरित् सीता शुभा ब्रह्मपदप्रदर्शिनी ॥ २ ॥

'शाङ्करी' के रूप में समझ 'शाण्डिल्य' ऋषि के आश्रमस्थ झरने के जलबिन्दुओं से अभिषेक करती हुई देवलोक भेजती है तथा इन्द्र को आदेश दे उन मानवों के सुखभोग की व्यवस्था करवाती है। जो महानुभाव वहाँ जल-बिन्दुओं से सम्पृक्त हो 'गिरिजा' का पूजन करते हैं, उनका कल्याण होता है। वहाँ स्नान करने से सद्गति प्राप्त होती है। 'झरने' का जल एवं 'कलावती' के मिलनस्थल पर 'चिताभस्मधारी' 'आधारेश' शिव का अर्चन करने पर पाप दूर भाग जाते हैं। तदनन्तर 'विश्वपर्वत' से समुद्भूत तीनों नदियाँ आकर 'कलावती' से मिलती हैं। उसके मूल में स्नान तथा चीर धारण करने वाली 'महेश्वरी' की पूजा करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है। तदनन्तर 'कलावती' नदी सीता के साथ सङ्गमित होती है। उससे सम्बद्ध 'हंस'-'बक' की कथा है॥ १ – १६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कलावती-माहात्म्य' सम्बन्धी
एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—महर्षे ! अब हम लोग आप की वाणी से हंस-बकाख्यान सुनना चाहते हैं, कृपया वर्णन करें ॥ १ ॥

---

१. 'ततस्तास्त्रिसरिच्छ्रेष्ठाः'—'ख'।

तत्रोरुमध्ये पुलहस्तपोनिधिर्घातारमभ्यर्च्य च मानसाच्छुभाम्।
आहूय शुक्लां सरयूसमां शुभां प्रकाशयामास भुवस्तले[1] नदीम्॥ ३॥
प्रकाशितां तां दितिजाश्च दानवा निषेवयामासु महोपकारिणीम्।
देवाः पुरस्कृत्य च धैनुकं गणं विजिग्यिरे तान् किल छद्मकारिणः॥ ४॥
जित्वा च तान् देवगणा महाबलास्तस्यास्तटे पूज्य महेश्वरं[2] प्रभुम्।
समर्चयन्तः खलु शेषसंस्थितं[3] महर्षिविद्याधरसिद्धसेवितम्॥ ५॥
स्नात्वा च तां श्वेतनदीं शुभप्रदां नरो दिवं प्राप्य महेन्द्रसत्कृतः।
चिरं विचिक्रीडति देवपूजितो देवाप्सरोभिः सह संमतः स्वयम्॥ ६॥
दृष्ट्वाऽपि तां पुण्यनदीं सितप्रभां पापा विलीयन्ति यथा हि जाह्नवीम्।
सा तर्पिता स्नानव्रता महानदी ददाति विष्णोः पदमेव दुर्लभम्॥ ७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे उरुपर्वतमाहात्म्ये द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः॥

व्यासजी ने समाहित किया—तपोधनों! हिमालय के जंघारूप शिखरस्थ 'ऊरु'[4] नामक पर्वत से 'ब्रह्मपद' का दर्शन कराने वाली 'सीता' नदी उद्भूत हुई। वहाँ 'ऊरु' के मध्य महर्षि 'पुलह' ने 'ब्रह्मा' का पूजन कर 'मानसरोवर' से सरयू के समान स्वच्छ 'सीता' नदी का आह्वान कर भूमण्डल में प्रकाशित किया। तब 'दैत्य' और 'दानवों' के गणों ने उसका उपयोग करना आरम्भ कर दिया। इसे देख कपटवेषधारी देवों ने [5]'धैनुक'गण को आगे कर उसे अपने अधिकार में ले लिया, क्योंकि 'सीता' नदी बड़ी उपकारिणी रही। तब देवों ने उसके तट पर 'महेश्वर' का पूजन किया। अतः शुभदायिनी इस नदी में स्नान कर मानव स्वर्ग में इन्द्र से सत्कार पाकर अप्सराओं से सेवित हो सुख भोगते हैं। 'सीता' नदी के दर्शन करने से जाह्नवी के दर्शन के समान पाप विलीन हो जाते हैं। वहाँ 'तर्पण' करने पर दुर्लभ 'वैकुण्ठ' धाम मिलता है॥ २ – ७॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'ऊरुपर्वत' माहात्म्य नामक
एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

---

१. 'भुवः स्थले'—'ख'। २. 'तस्यास्तटे तस्थुरहो महेश्वरम्'—'ख' पुस्तके परिष्कृतः पाठः।

३. 'शेषवेष्टितम्' इति परिष्कृतः पाठः।

४. श्रीमद्भागवत (५.२०.२६) में 'ऊरुशृङ्ग' नाम से 'शाकद्वीप' की सीमा निर्धारित करने वाला एक 'पर्वत' कहा गया है—"एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव–ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति"।

५. वायुपुराण (६८, १५) के अनुसार 'दनु' और 'कश्यप' के विप्रचित्ति-प्रधान १०० दानव-पुत्रों में से एक दानव-पुत्र।

१४२ (ख)

व्यास उवाच—

हिमालयोरुसंज्ञो वै गिरिर्यत्र स विद्यते । ये तत्र मनुजाः सन्ति ते मुक्ताः सन्ति भूतले ॥१॥

। त्रुटितम् ।

तत्र पर्वतमध्ये वै पुलहं ब्रह्मणा सह । समभ्यर्च्य ब्रह्मलोकं प्राप्नुते नात्र संशयः ॥२॥

देवतानां दानवानां तत्र शुद्धस्थलं महत् । दृष्ट्वा शत्रुभयं घोरं प्रणश्यति न संशयः ॥३॥

तस्या मूले निमज्याशु गङ्गास्नानफलं लभेत् । ततो धारानदीं प्राप्य धारायाः सङ्गमे शुभे ॥

स्नात्वा धारामये तीर्थे धारारूपं प्रदृश्यते । मृतास्तत्र नरा यान्ति शम्भोः सायुज्यतां पुनः ।५।

तस्या दक्षिणभागे वै दिव्यः कल्पगिरिः स्मृतः । त्रयस्त्रिंशायुतगणास्ताराणां सन्ति तत्र वै ॥६॥

तारागणं तमारुह्य समभ्यर्च्य तपोधनाः । जीवेद्वर्षशतं साग्रं मानवो नात्र संशयः ॥७॥

तस्मान्नवग्रहा-नाम-सम्भूता सा सरिद्वरा । दृष्ट्वा तां मुनिशार्दूलाः सीतानद्यास्तु सङ्गमे ॥

मध्ये नवग्रहाः सन्ति स्थापिता विश्वकर्मणा ॥ ८ ॥

आदित्यचन्द्रौ च महीसुतश्च बुधो गुरुश्चापि स भार्गवश्च ।

शनिश्च राहुश्च स केतुसंज्ञस्तत्र स्थिताः सन्ति ग्रहा वरिष्ठाः ॥ ९ ॥

स्वभागमश्नन्ति ग्रहाश्च तत्र हिमालयस्था मनुजैः प्रदत्तम् ।

संस्थापिताः पद्मजयोनिना वै शिवाज्ञया रत्नमयाश्च सर्वे ॥ १० ॥

तत्र ग्रहान्समभ्यर्च्य ग्रहजासङ्गमे शुभे । निमज्य तत्र चोपोष्य ग्रहपूजाविधिं शुभाम् ॥११॥

व्यासजी ने कहा—विप्रवरों ! हिमालयस्थ 'ऊरु' पर्वत पर जो मनुष्य निवास करते हैं, वे भूतल पर मुक्त हैं ॥ १ ॥* (यहाँ कुछ 'त्रुटित' है)* । इस पर्वत पर 'पुलह' के साथ 'ब्रह्मा' का पूजन करने से 'ब्रह्मपद' प्राप्त होता है । यह देवों और दानवों का परम पवित्र स्थल है । यहाँ के दर्शन से शत्रुभय दूर हो जाता है । 'सीता' के मूल में स्नान करने पर 'गङ्गा' स्नान का फल मिलता है । तत्पश्चात् 'धारा' नदी के सङ्गमस्थ 'धारातीर्थ' में स्नान कर 'धारा' रूप दृष्टिगोचर होता है । वहाँ देहान्त होने पर 'शिवलोक' प्राप्त होता है । उसके दक्षिण में 'कल्पगिरि' है । जिसमें 'तेंतीस अयुत' (३३००००) तारागण हैं । उस पर चढ़ कर तारागण का पूजन करने से सौ वर्षों से भी अधिक आयुष्य मिलता है । वहीं से 'नवग्रहा' नदी निकल कर 'सीता' के साथ सङ्गत होती है । वहीं पर मध्य में 'सूर्य-चन्द्रादि' नव ग्रहों की स्थापना 'विश्वकर्मा' ने की है । यहाँ पर मानवों द्वारा अर्पित 'हवि' को हिमालय में नव ग्रह ग्रहण करते हैं । शिवजी की आज्ञा से ब्रह्मदेव ने यहाँ पर रत्नमय नव ग्रहों को स्थापित किया है । यहाँ 'ग्रहजा' नदी

... 'ख' पुस्तके 'त्रुटितम्' इति पदं न विद्यते ।*....* 'भागवत' के अनुसार 'उरु' पर्वत के पुरुषों ने प्राणायाम द्वारा 'रजोगुण' एवं 'तमोगुण' को हटा कर सत्त्वप्रधान हो समाधि से भगवान् 'वायु' की उपासना की थी । तदनुसार इसकी पूर्ति की जा रही है—''अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः । अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम्'' ॥

विधायावाह्य तान् सर्वान्समभ्यर्च्यानुपूर्वकम् । जीवेद्वर्षशतं साग्रं मानवो द्विजसत्तमाः ।।१२।।
यावज्जीवति मेदिन्यां ग्रहभीतिं न पश्यति । ततो वामे महापुण्य ईशाख्यः पर्वतोऽस्ति वै ।१३।
ईश्वरं तं समारुह्य पूज्य शम्भोः पदं व्रजेत् । तस्य दक्षिणभागे वै तस्माद् गव्यूतिमात्रतः ।१४।
स्रोत उत्तीर्य कन्याख्यं पर्वतं चातिविस्तृतम् । गत्वा कोटीश्वरं देवं कन्दरायां तपोधनाः ।१५।
कोटियज्ञफलं पूज्य प्राप्नुते तत्र मानवः । ततस्तु ईश्वरी नामा सीतानद्यास्तु सङ्गमे ।।१६।।
समागता महापुण्या तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् । ततस्तु तन्त्रिका नामा गुहा परमशोभना ।।१७।।
नाम्ना धवलसंज्ञो वै गणस्तत्र प्रपूज्यते । तत्र शेषाद्रिसम्भूता अम्बिकाख्या महानदी ।।१८।।
सीतायाः सङ्गमे पुण्या संययौ मुनिसत्तमाः । यस्मिञ्छेषगिरौ पुण्ये चाण्डालोऽपि महत्पदम् ।।
प्राप्नुते तत्र गत्वा च शेषेशं पूज्य शङ्करम् । तत्र वै अम्बिकाख्यं हि पुरमस्ति सुशोभनम् ।।
अगम्यं मानवैरन्यैः सुरगन्धर्वसेवितम् । यस्मिन्पुरे महापुण्यैर्गत्वा सम्पूज्य चाम्बिकाम् ।।२१।।
कुष्ठरोगव्रणाङ्गोऽपि दिव्यदेहः प्रजायते । राक्षसा दानवाश्चैव तस्मिन्पर्वतनायके ।।२२।।
निवसन्ति महाघोरा मानवानां भयावहाः । शेषाद्रेर्दक्षिणे कोणे देवो विश्वेश्वरो हरः ।।२३।।
यस्य स्मरणमात्रेण सस्यवृद्धिः प्रजायते । तस्याश्चोत्तरे कोणे अम्बिकानगरः स्मृतः ।।२४।।
तस्मात्सा अम्बिका नामा पुण्यतोयवहा नदी । सम्भूता सङ्गमे दिव्ये सीतायाः संययौ शुभा ।।

के सङ्गम में स्नान और उपवास एवं विधिपूर्वक यथाक्रम ग्रहपूजन कर मनुष्य शताधिक आयु पाता है। जीवनपर्यन्त उसे ग्रहबाधा नहीं होती। इसके वामभाग में 'ईश'पर्वत है। वहाँ भी मानव शिवपद प्राप्त करता है। इसके दक्षिण भाग में प्रवाह को पार कर चार कोस की दूरी पर 'कन्या' पर्वत है। उसकी गुहा में 'कोटीश्वर' का पूजन करने पर कोटि यज्ञफल मिलता है। तदनन्तर 'ईश्वरी' नदी 'सीता' में सङ्गम करती है। वहाँ पर स्नान करने से स्वर्ग-लोक प्राप्त होता है। तब 'तन्त्रिका' नाम की गुहा में 'धवल' नामक गण की पूजा की जाती है। वहाँ पर 'शेष' पर्वत से उत्पन्न 'अम्बिका' महानदी है, जो 'सीता'[1] में मिलती है। इस शेष पर्वत पर चाण्डाल भी महत्त्व प्राप्त करते हैं। वहाँ पर 'शेषेश' नामक शङ्कर का पूजन कर तत्रस्थ अगम्य स्थान 'अम्बिकापुर' में 'अम्बिका' का पूजन करने से 'कुष्ठ' रोग एवं 'व्रण' आदि दूर हो मानव दिव्य देह-सम्पन्न हो जाता है। उस पर्वत पर 'दानवों' और 'राक्षसों' का निवास है। 'शेषाद्रि' के दक्षिण में 'विश्वेश्वर' हैं। जिनके स्मरण मात्र से धान्यवृद्धि होती है। उस पर्वत के उत्तर-कोण में 'अम्बिकानगर'[2] है। वहाँ से पवित्र-सलिला 'अम्बिका'

१. यह 'सीता' नदी वर्तमान में पश्चिम नेपाल में 'सेती' के नाम से जानी जाती है। सन् १८१६ ई० के पूर्व भारत की ओर से काली नदी के पार 'काली' नदी का वाम पार्श्व 'डोटी' राज्य के नाम से प्रसिद्ध था। जिस पर कई बार 'कूमायूं (कूर्माचल) का आधिपत्य हो गया था।

२. (क) 'पार्वती' और 'योगमाया' की उपाधि 'अम्बिका' है (भागवत १०, २-१२)। इन्होंने वामन को भिक्षा दी थी (भाग० ८, १६-१७)। इनकी प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में एक पर्व मनाया गया था, उस स्थान का नाम भागवत (१०, ३४, १-२) में 'अम्बिकावन' बतलाया गया है—"एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः। अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्। आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥" (ख) ब्रह्माण्डपुराण' (२, १६, ८१) में

तत्र सङ्गममध्ये वै स्नात्वा धर्मेश्वरं हरम् । समभ्यर्च्य महापापं प्रणश्यति शतोद्भवम् ॥२६॥
अम्बिकायां च संस्नात्वा योऽपसर्पति[1] शङ्करम् । तेन सन्तर्पिताः सर्वे पितरो नात्र संशयः ।२७।
धर्मद्वारं विलङ्घ्याशु यो याति हिमपर्वतम् । जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा ॥
ततस्तु गोमती नाम तस्याः सङ्गमसङ्गता । विद्यते चापि तां स्नात्वा सद्यो निष्कल्मषो भवेत्॥
ततस्तु धूमसंज्ञो वै पर्वतोऽस्ति तपोधनाः । धूम्रवर्णा महादेवी धूम्रलोचननाशिनी ॥३०॥
विद्यते तां च संस्मृत्वा कालमृत्युर्विनश्यति । तस्या वामे महापुण्यो दक्षिणे हरिसंज्ञकम् ॥३१॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गकौमोदकीधरं हरिम् । समभ्यर्च्य महाभागाः सुपुण्ये हरिताचले ॥३२॥
स्नात्वा सीतासरिन्मध्ये वासुदेवं समर्च्य वै । जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥३३॥
परत्र च महाभागा विष्णुलोकं प्रयाति वै । धर्त्तूरासङ्गमे पुण्ये स्नात्वा धेनुकसंज्ञके ॥३४॥
तीर्थे धेनुप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः । ततो धूम्रवतीसङ्गे धूमकेतुर्महेश्वरः[2] ॥३५॥
विद्यते स्मरणात्तस्य दुःस्वप्नं च प्रणश्यति । बाणतीर्थे ततः स्नात्वा काकतीर्थे ततः परम् ।३६।
लक्ष्मीतीर्थे ततो गत्वा लक्ष्मीसङ्गममध्यगे । अचलां श्रियमाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः ॥
ततस्तौर्यत्रिकासङ्गे स्नात्वा सम्पूज्य तां नदीम् । सङ्गीतविद्यानिपुणो जायते मानवो द्विजाः ॥

नदी प्रवाहित हुई है । वह आगे चल कर 'सीता' के साथ मिलती है । वहाँ सङ्गम में स्नान एवं 'धर्मेश्वर' शिव का पूजन करने से पितरों की तृप्ति होती हैं । जो मनुष्य 'धर्मद्वार'[3] का उल्लङ्घन कर 'हिमालय' पर चढते हैं, वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं । तब 'गोमती' नदी 'सीता' के साथ मिलती है । वहाँ स्नान करने से पाप विनष्ट हो जाते हैं । उसके आगे बाईं ओर 'धूम-पर्वत'[4] है और धूम्रलोचन[5] को नाश करने वाली 'धूम्राक्षी' देवी हैं । उनके दाहिनी ओर भगवान् 'विष्णु' प्रतिष्ठित हैं । उनका स्मरण करने से अकाल मृत्यु का भय नहीं रहता । इसके साथ ही वहाँ पर शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग धारी 'विष्णु' का पूजन तथा 'सीता' में स्नान कर पवित्र 'हरिताचल' पर जा जन्म, मृत्यु तथा जराव्याधि से निर्मुक्त हो मानव विष्णुलोक में जाता है । तब 'धर्त्तूरा' नदी के संगम में 'धेनुक' तीर्थ में स्नान कर 'धेनुदान' का फल मिलता है। फिर 'धूम्रवती'-सङ्गम में स्थित 'धूमकेतु' शङ्कर का स्मरण करने से दुःस्वप्न नहीं दिखाई पड़ते । तत्पश्चात् 'बाणतीर्थ', 'काकतीर्थ' तथा 'लक्ष्मी' नदी के सङ्गम में 'लक्ष्मीतीर्थ' में स्नान कर स्थिर लक्ष्मी (सम्पत्ति) का लाभ होता है । फिर 'तौर्यत्रिका' के सङ्गम में स्नान एवं पूजन

'शाकद्वीप' के एक पहाड़ी किले का नाम 'अम्बिकेय' कहा गया है । (ग) अन्यत्र पुराणों में 'अम्बिकावन' को 'इलावृत्तखण्ड' में स्थित माना है, जहाँ जाने से पुरुष स्त्रीरूप में परिवर्तित हो जाते हैं ।

१. 'यः समर्चति'—इति पाठः अपेक्षितः । २. 'धूम्रकेतुर्महेश्वरः'—'ख' ।

३. 'तिथिलाकोट' के समीप ('सिउडांग' और 'सोसा' के मध्य) ।

४. 'ब्रह्माण्डपुराण' (२, १८-७५) के अनुसार पूर्व की ओर ढालू तथा 'लवणसागर' में घुसे भारत के तीन पर्वतों में से एक 'पर्वत' का नाम 'धूमपर्वत' है । 'मत्स्यपुराण' (१६३-१८८) के अनुसार 'हिरण्यकशिपु' ने 'नृसिंह' के साथ युद्ध के समय इसे कंपा दिया था ।

५. 'शुम्भ' दानव का सेनापति । देवी को पकड़ लाने के लिए शुम्भ ने इसे भेजा था, पर यह अपनी ६०००० सेना के साथ देवी के हाथों मारा गया था (ब्रह्माण्ड० ४, २९-७५) ।

ततो भद्राद्रिसम्भूता चन्द्रभागा महानदी । सीतायाः सङ्गमे तत्र स्नात्वा याति परं पदम् ।३९।
तौर्यत्रिकाचन्द्रभागा-मध्ये भद्राख्यपर्वतः । तस्य चोत्तरभागे वै मालिकां पूज्य शाङ्करीम् ।४०।
शतजन्मसु साम्राज्यमश्नुते मानवः शुभम् । ततो धात्रीमहापुण्या स्नात्वा सम्यग्विधाय वै ।।
धातृपूजाफलं पूर्णं प्राप्नुते मानवो द्विजाः । ततः सीता नदी पुण्या वह्नितीर्थं विलङ्घ्य वै ।।
दुर्वाससाश्रमं पुण्यं ययौ ब्रह्मर्षिसेवितम् ।। ४३ ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सीतानदीमाहात्म्ये *द्विचत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः* ।।

१४३

ऋषय ऊचुः—

सीतानद्याः प्रसङ्गेन वह्नितीर्थं त्वयोदितम् । तच्च कौतुहलं श्रोतुं प्रसादाद्भवतां मुने ।।१।।
तत्कस्मिन्पर्वतवरे तीर्थं तत्कथय प्रभो । कस्मिन्क्षेत्रे विलङ्घ्याशु सा सरित्तं गता द्विज ।।२।।

व्यास उवाच—

वह्नितीर्थस्य माहात्म्यं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः । पुण्ये सीतानदीतीरे धराद्रेरधित्यका शुभा ।।३।।
विद्यते सुरगन्धर्वैः सेविता शुभलक्षणा । और्वस्तत्र तपस्तेपे दशवर्षाणि पञ्च च ।।४।।

करने पर मानव सङ्गीत-विद्या में निपुण होता है। तब 'भद्र' पर्वत से निकलने वाली 'चन्द्रभागा' का 'सीता' के साथ संगम है। वहाँ स्नान करने से सद्गति होती है। 'तौर्यत्रिका' और 'चन्द्रभागा' के मध्य में 'भद्र' पर्वत हैं। उसके उत्तर में 'मालिका' का पूजन करने से मानव सौ जन्म पर्यन्त साम्राज्य-सुख भोगता है। तब 'धात्री' के सङ्गम में पूजन करने से 'धातृपूजा' का फल प्राप्त होता है। फिर 'सीता' नदी 'वह्नि' तीर्थ को लाँघ कर 'दुर्वासा' के आश्रम पर पहुँचती है ।। २ -४३ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सीता'-माहात्म्य नामक
एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! 'सीता' नदी के प्रसङ्ग में आपने 'वह्नितीर्थ' का उल्लेख किया है। उसके सम्बन्ध में जानने की उत्कट इच्छा है। यह बतलायें कि उसकी स्थिति किस पर्वत पर है ? तथा 'सीता' नदी किस क्षेत्र को पार कर वहाँ प्रविष्ट हुई है ? ।। १-२ ।।

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! आप लोग 'वह्नि'तीर्थ का माहात्म्य सुनें। 'सीता' नदी के तटवर्ती 'धराद्रि'[1] की शिखर-भूमि पर 'और्व'[2] ने लगातार पन्द्रह वर्षों तक तप किया था।

---

* 'सीतानदीगङ्गामाहात्म्ये'—'ख' पुस्तके ।* इसी अध्याय की संख्या दो बार दी गई है।

१. अन्यत्र पुराणानुसार पृथ्वी को चारों पहाड़ 'धरणीकीलक' के रूप में दबाये हुए हैं।

२. 'ऋची' के गर्भ से उत्पन्न 'अप्रवान' का पुत्र, जो माता की जङ्घा से उत्पन्न हुआ था। यह 'ऋचीक' के पिता तथा 'जमदग्नि' के दादा थे। 'बाहुक' की गर्भवती पत्नी को इन्होंने 'सती' होने से

समाराध्य विधातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारकम् । तपस्यन्तं च तं दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
आविर्भूय ददौ तस्मै मनोऽभिलषितं वरम् । ब्रह्मणः स वरं प्राप्य तीर्थत्वं च जगाम ह ॥६॥
सुरगन्धर्वसिद्धैश्च सेवितं सुमनोहरम् । वह्निना हि पुनस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥७॥
प्रसादितः प्रसन्नश्च प्राप्तं सम्प्रार्थितं वरम् । मत्तीर्थस्नानहीनानां यात्रादर्शनमेव च ॥८॥
कृतं तु निष्फलं तस्य प्रसादात्तव वै प्रभो । तथेत्युक्तो जगद्धात्रा वह्निस्तत्र तपोधनाः ॥९॥
विधाय तीर्थं तप्तोदं सुष्वाप सुचिरं ततः । तपोवनमिति प्राहुः क्षेत्रं तं मुनयस्ततः ॥१०॥
सेवितं सुरगन्धर्वैर्वह्निना चापि शोभितम् । किरीटं चोत्तरं कृत्वा पादौ पूर्वे निधाय च ॥११॥
सुष्वाप तत्र वै वह्निर्ज्वालाशतविराजितः । पुलहेन समाहूता प्रसुप्तं तं विलङ्घ्य वै ॥१२॥
दुर्वाससाश्रमं पुण्यं ययौ सा सरितां वरा । वह्नितीर्थे च यः स्नाति यश्च तर्पयति द्विजाः ॥१३॥
स याति कुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते । वह्नितीर्थं समासाद्य तिलोदकं प्रतर्पयेत् ॥१४॥
पितॄन्वै पितरस्तस्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः । तपोवने च यो गत्वा धराद्रेरधित्यगे शुभे ॥१५॥
समर्चति महावह्निं स याति हरिमन्दिरम् । वह्निक्षेत्रसमं क्षेत्रं नान्यं पश्यामि भूतले ॥१६॥
पुण्यं गव्यूतिविस्तीर्णं सीतातोयनिषेवितम् । चन्द्रभागां समारभ्य यावत्सा ऋणमोचिनी ।१७।
तावत्तत्र महाक्षेत्रं विज्ञेयं नान्यथा क्वचित् । धरावाजिरयोर्मध्ये गत्वा तत्र तपोवनम् ॥१८॥
यः किरीटं च पादौ च समर्चति महामतिः । स याति विष्णुभवनं कुलायुतसमन्वितः ॥१९॥
चन्द्रभागां समारभ्य यावत्सा ऋणमोचिनी । तावत्तीर्थान्यनेकानि सन्ति तत्र स्थले द्विजाः ॥
वह्निपूजारताः सर्वे तत्र देवापि संस्थिताः । विद्यन्ते नात्र सन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२१॥

प्रविश्य तत्राशु तपोवनं वनं समर्च्य देवं च हुताशनाह्वयम् ।
सर्वेषु तीर्थेषु निमज्य मानवः शिवं प्रयात्येव शिवेन सोदितः ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वह्नितीर्थमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

ब्रह्मा की उपासना करते हुए उन्हें देख ब्रह्मा ने मनोभिलषित वर प्रदान किया। तब से वह स्थान तीर्थ बन गया। वह तीर्थ गन्धर्वों से सेवित एवं सुमनोहर है। वहाँ अग्निदेव ने ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर वर माँगा कि इस तीर्थ में स्नान न करने वालों की यात्रा एवं दर्शन सब व्यर्थ हो जायें। तब ब्रह्माजी ने वहाँ उष्णोदक युक्त 'वह्नितीर्थ' बना चिरकाल तक विश्राम किया। मुनियों ने उस क्षेत्र को 'तपोवन' की सज्ञा दी है। देवों तथा गन्धर्वों से सेवित उस क्षेत्र को वह्नि ने शोभित किया। वहाँ अपने मुकुट को उत्तर तथा दोनों चरणों को पूर्व की ओर रख अग्निदेव ने वहाँ पर सैकड़ों वर्ष तक शयन किया। महर्षि पुलह से आहूत वह नदी निद्रित अग्निदेव को लाँघ कर 'दुर्वासा' ऋषि के पवित्र आश्रम में जा पहुँची। वह्नितीर्थ में स्नान एवं तर्पण करने वाले व्यक्ति अपने कुल का उद्धार कर 'विष्णुलोक' प्राप्त करते हैं। वह्नितीर्थ में तिलोदक-युत तर्पण करने से पितृगण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। तदनन्तर 'धराद्रि' की अधित्यका पर अधिष्ठित 'तपोवन' में जाकर 'महावह्नि' का पूजन करने से 'विष्णुभुवन' प्राप्त होता है। 'वह्निक्षेत्र' से बढ़ कर मुझे और कोई

रोका था। तब 'सगर', जो अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न हुए थे, उन्हें अपने आश्रम में रख उनके सारे संस्कार किए—"सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् । वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनु मरिष्यती ॥ और्वेण जानताऽऽत्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥"—(भागवत ९.८.२-३)।

व्यास उवाच—

वह्नितीर्थादधोभागे तीर्थे कौशिकसंज्ञके। स्नात्वा सन्तर्प्य सत्कृत्य अग्निदग्धा नराः शुभाः ।१।
तृप्यन्ति पितरो घोरास्तपिताः कुलजेन वै। तस्माददूरे संज्ञाख्ये तीर्थे स्नात्वा च मानवः ।।२।।
संज्ञाहीनोऽपि सत्सञ्ज्ञां प्राप्नुते नान्यथा क्वचित्। ततः सुऋणमोचिन्याः संस्नात्वा सङ्गमे शुभे।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो जायते मानवो ध्रुवम्। ततः सूष्मासरोत्था वै सूष्मजा पापनाशिनी ।।४।।
सेविता पक्षिमुख्यैश्च सीतायाः सङ्गमं गता। तत्र स्नात्वा सूक्ष्मपापान्महापापादपि द्विजाः ।।५।।
मुच्यते स्नातकः सम्यग्विष्णुलोकं स गच्छति। ततस्तु बहुला नामा कालिन्दीसरसम्भवा।६।
संययौ सा सरिच्छ्रेष्ठा सीतानद्यास्तु सङ्गमे। यः स्नानं कुरुते तत्र सन्तर्प्य पितृमानवान् ।।७।।
समर्चति महादेवं बहुलां तत्र संस्थितम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यः स मुक्तिं प्राप्नुते नरः ।।८।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सीतामाहात्म्ये चतुश्चत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः ।।

दूसरा क्षेत्र नहीं दिखाई पड़ता। 'सीता' नदी के जल से सेवित यह क्षेत्र दो कोस लम्बा है। 'चन्द्रभागा' नदी से 'ऋणमोचनी' नदी तक यह क्षेत्र फैला हुआ है। 'धरा' और 'वाजिरा' के मध्य स्थित तपोवन में जाकर जो मनुष्य अग्निदेव के 'मुकुट' और 'चरणों' का पूजन करता है, वह अपने अयुत कुलों के साथ विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है। 'चन्द्रभागा' और 'ऋण-मोचिनी' के मध्य अनेक तीर्थ हैं। तथा देवगण निःसन्देह 'वह्नि' पूजा में लगे रहते हैं। वहाँ 'तपोवन' में प्रविष्ट हो 'अग्नीश्वर'देव का पूजन तथा सब तीर्थों में स्नान करने वाला मानव 'शिव' की कृपा से 'शिव' को प्राप्त करता है ।। ३ – २२ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वह्नितीर्थं' माहात्म्य सम्बधी
एक सौ तेतालीसवां अध्याय समाप्त ।।

व्यासजी बोले—'वह्नितीर्थ' से नीचे की ओर 'कौशिक' तीर्थ में स्नान एवं पितृकार्य कर उनका सत्कार किया जाता है। यहाँ अग्निदग्ध जीवों को भी शुभ स्थान मिलता है तथा वे तृप्त होते हैं। उसके समीप ही 'संज्ञा' नामक तीर्थ में स्नान तथा पितृकार्य करने पर नरकस्थ पितृगण भी तर जाते हैं। इसके साथ ही यहाँ स्नान करने से चेतनाहीन प्राणी भी सचेत हो जाते हैं। तब 'ऋणमोचिनी' के सङ्गम में स्नान कर मनुष्य ऋणमुक्त हो जाता है। तदनन्तर 'सूष्मा' सर से निकली हुई 'सूष्मजा' नदी पापों को नाश करने वाली है। 'सीता' के संगम में प्राप्त वह पक्षियों से संकुलित है। वहाँ स्नान करने पर मानव पापमुक्त हो विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। तब 'कालिन्दी-सर' से निकली हुई 'बहुला' नदी 'सीता' से सङ्गत होती है। वहाँ स्नान-तर्पणादि कर 'बहुला' के समीप में स्थित जो लोग 'शिव' का पूजन करते हैं, वे पापरहित हो मुक्त हो जाते है ।। १ – ८ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सीतामाहात्म्य' नामक
एक सौ चवालीसवां अध्याय समाप्त ।।

१४५

जनमेजय उवाच—

पर्वतस्थानि तीर्थानि त्वया निगदितानि वै । संश्रुतानि सुपुण्यानि प्रसादाद्भवतो मुने ॥१॥
सरोवरस्य माहात्म्यं संश्रुतं कथितं त्वया । यस्मात्तु सरितः सर्वाः सम्भूताः पुण्यदाः शुभाः ।२।
न श्रुतानि सुपुण्यानि सरांस्यन्यानि साम्प्रतम् । यदि सन्ति सुपुण्यानि तादृशानि वदस्व वै ।३।

सूत उवाच—

व्यासदेवेन प्रोक्तानि सरांस्यन्यानि साम्प्रतम् । कथितानि सुपुण्यानि शृणुध्व त्वं समाहितः ॥४
यथा पप्रच्छुर्धर्मज्ञा व्यासं सत्यवतीसुतम् । तथा ते सम्प्रवक्ष्यामि मुनयो नृपसत्तम ॥५॥
श्रुत्वा तीर्थान्यशेषेण शौनकाद्यास्तपोधनाः । व्यासं धर्मार्थतत्त्वज्ञं प्रष्टुमारेभिरे ततः ॥६॥

ऋषय ऊचुः—

सरोवरस्य माहात्म्यं कथितं मुनिसत्तम । न चान्येषां सराणां च त्वया निगदितं शुभम् ॥७॥
दयासिन्धो महाविद्वन् सर्वलोकहितेच्छया । वक्तुमर्हसि सम्प्रीत्यै सरांस्यन्यानि साम्प्रतम् ॥८॥
सूष्मजायाः प्रसङ्गेन त्वया सूष्मासरोदितम् । तद्वै कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद्भवतो मुने ॥९॥

व्यास उवाच—

साधु साधु महाभागा धर्मं पृच्छथ शोभनम् । सर्वभूतहितायैव धन्या यूयं स्वतो यतः ॥१०॥
यत्प्रोक्तं[1] कृष्णदेवेन नारदाय महात्मने । तदद्य सम्प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ॥
सूष्मासरस्य माहात्म्यं श्रवणादशुभापहम् ॥११॥

जनमेजय ने कहा—मुनिवर ! आप के द्वारा वर्णित पर्वतस्थ तीर्थों का माहात्म्य तो हम लोगों ने सुन लिया है । आप ने जो नदियों के उद्भव-स्थान 'मानसरोवर' का माहात्म्य वर्णन किया उसे भी हम ज्ञात कर चुके हैं । किन्तु अन्य विचित्र सरोवरों के सम्बन्ध में हम अब भी अज्ञात हैं । कृपया उनका वर्णन करें ॥ १ – ३ ॥

सूतजी बोले—ऋषिवरों ! महर्षि वेदव्यास ने अन्य सरोवरों का भी वर्णन किया है । उनके बारे में आप लोग सुनें । जिस प्रकार सत्यवती के पुत्र वेदव्यास से 'शौनकादि' ऋषियों ने सब बातों को जानने के बाद धर्मतत्त्व के सम्बन्ध में जैसा पूछा था वैसा ही मैं कहता हूँ । तदनुसार शौनकादि तपस्वियों ने तीर्थों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन सुन धर्मज्ञ ऋषि से पूछना आरम्भ किया था ॥ ४ – ६ ॥

ऋषियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! आपने 'मानसरोवर' का माहात्म्य तो बतला दिया, किन्तु अन्य सरोवरों को नहीं बतलाया । दयासिन्धो ! अब आप लोकोपकारार्थ अन्य सरोवरों का माहात्म्य भी बतलायें । आपने 'सूष्मजा' के प्रसङ्ग में 'सूष्मा' सरोवर का उल्लेख किया । आप की कृपा से हम अन्य सरोवरों को भी जानना चाहते हैं ॥ ७ – ९ ॥

व्यासजी ने कहा—हे महाभागों ! आप लोगों ने धर्मसम्बन्धी जिज्ञासा समुचित ही

---

१. 'यच्चोक्तम्'—'ख' ।

ऋषय ऊचु:—

यदुक्तं कृष्णदेवेन नारदाय महात्मने। तद्वदस्व महाभाग कृपया करुणात्मना ॥१२॥

व्यास उवाच—

ब्रह्मलोकात्समागत्य नारदो भगवान्मुनिः। यादवानां समाजे वै विवेश कृष्णपूजितः ॥१३॥
स तत्र सुखमासीनं कृष्णं विश्वेश्वरं हरिम्। पप्रच्छ परया भक्त्या प्रणम्य च पुनः पुनः ॥१४॥
कानि क्षेत्राणि तीर्थानि भूतले यदुनन्दन। पर्वताः के महापुण्या विद्यन्ते भवतां मते ॥१५॥

श्रीकृष्ण उवाच—

सन्ति सर्वाणि क्षेत्राणि तावत्पुण्यानि वै द्विजाः। यावन्न कथ्यते लोके सुपुण्यो मानसः सरः ।१६।
तावद्धि भूधराः सर्वे सन्ति पुण्या महोन्नताः। यावन्न हिमवान्पुण्यो भूतले न प्रकाशितः[१] ।१७।
यथा भागीरथी गङ्गा सर्वत्र दुर्लभा स्मृता। तथा स हिमवान्पुण्यो विद्यते मुनिसत्तम ॥१८॥
मूर्धन्यः सर्वक्षेत्राणां मानसो यत्र राजते। तस्मात्कोऽन्यतमः पुण्यः पर्वतोऽस्ति तपोधन ।१९।
हिमवन्तं विलङ्घ्याशु मानवा ये तपोधन। निमज्य हि सरे यान्ति पापिष्ठा अपि सद्गतिम्।

नारद उवाच—

न शक्नुवन्ति शिखरं ये विलङ्घयितुं गिरेः। कथं पुण्यं भवेत्तेषां मानसस्नानजं विना[२] ॥२१॥
कथं मुक्तिः सुदुर्ज्ञेया विना स्नात्वा च मानसे। ब्रूहि नः परमेशान लोकानामनुकम्पया ॥२२॥

की है। लोकोपकारार्थ इस जिज्ञासा के लिए आप लोग धन्य हैं। मुनिवरों! इस सम्बन्ध में जो बातें श्रीकृष्ण ने महर्षि नारद से कही थीं, उसी प्रकार मैं भी पापविनाशक सूष्मासर का माहात्म्य आप लोगों को वतला रहा हूँ॥ १०–११॥

ऋषि बोले—हे महाभाग! भगवान् कृष्ण द्वारा नारद को कही गई बातों को विस्तृत रूप में कृपया आप बतलायें॥ १२॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! (एक बार) महर्षि नारद ब्रह्मलोक से आकर श्रीकृष्ण द्वारा पूजित हो यादवों के समाज में सम्मिलित हो गए। सुखपूर्वक बैठे हुए भगवान् कृष्ण को बारबार भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनसे पूछने लगे कि पृथ्वी स्थल पर किन क्षेत्रों में कौन से तीर्थस्थान हैं? तथा आपके मत में कौन से पर्वत पुण्यप्रद हैं?॥ १३–१५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—द्विजवर! सभी स्थान तब तक पवित्र हैं, जब तक 'मानसरोवर' का परिचय प्राप्त न हो। उसी प्रकार तब तक सब पर्वत पुण्यप्रद जाने जाते हैं जब तक 'हिमालय' के विषय में ज्ञात न हो जाय। जैसे भागीरथी गङ्गा सर्वत्र दुर्लभ है। वैसे ही पुण्यप्रद हिमालय भी सर्वत्र दुर्लभ है। हे तपोधन! जहाँ सब क्षेत्रों में श्रेष्ठ 'मानसरोवर' सुशोभित है, उस 'हिमालय' से बढ़ कर और कौन सा क्षेत्र हो सकता है? मुनिवर! जो लोग हिमालय पर चढ़ कर 'मानसरोवर' में स्नान करते हैं, वे पापिष्ठ भी सद्गति को प्राप्त होते हैं॥ १६–२०॥

नारदजी ने पूछा—भगवन्! हिमालय पर आरूढ़ होने में असमर्थ व्यक्तियों को बिना

---

१. 'विद्यते मुनिसत्तम'—इत्यपरः पाठः।

२. 'विभो'—इति परिष्कृतः पाठः। 'मानसस्नानतो विना'—इत्यन्यः पाठः।

व्यास उवाच—

एतच्छ्रुत्वा च भगवान् देवर्षिं तमुवाच ह । मेघगम्भीरया वाचा जलदोपमनिःस्वनः ॥२३॥

श्रीकृष्ण उवाच—

शृणुष्व मुनिशार्दूल सर्वपापहरं नृणाम् । स्मरणाद्दर्शनादेव तद्ध्यानादथ किं पुनः ॥२४॥
सीताकलावतीमध्ये हिमालयमुखे शुभे । नानाविधैर्महावृक्षैर्गहनीकृतदिङ्मुखे ॥२५॥
सेवार्थमागतैः सर्वैः सिद्धर्षिगणसेविते । चन्दनाद्रिरिति ख्यातो विद्यते पर्वतोत्तमः ॥२६॥
सेवितः सिद्धगन्धर्वैर्नानाधातुविराजितः । नानामृगगणाकीर्णो नानापक्षिविराजितः ॥२७॥
सुराङ्गनाभिः सर्वाभिः सर्वतः परिवारितः । यत्र गत्वा च मनुजो दृष्ट्वा वै पर्वतोत्तमम् ॥२८॥
चान्द्रायणफलं प्राप्य भुक्त्वा भोगान् सुदुर्लभान् । तत्र पर्वतमध्ये वै क्षेत्रं सूष्मासराह्वयम् ॥२९॥
तत्र गत्वा महाभाग प्रणश्यन्त्यघकोटयः । हिमालयस्य शिखरं ये न लङ्घयितुं द्विज ॥३०॥
शक्नुवन्ति सुदुर्गम्यं यान्ति सूष्मासरोवरे । नरैः सरोवरे पुण्ये यैर्न स्नातं तपोधन ॥३१॥
अघकोटिविनाशाय कल्पिते ब्रह्मयोनिना[1] । ते नरा[2] मुनिशार्दूला यान्तु सूष्मासरोवरे ॥३२॥
गङ्गास्नानाद्दशगुणं मानसादधिकं तथा । प्राप्नुते मानवः स्नाने पुण्ये सूष्मासरोवरे ॥३३॥
तर्पिताः पितरो यत्र पिण्डदानेन नारद । कुलायुतशतैर्युक्ताः प्राप्नुवन्ति हि मद्गृहम् ॥३४॥
सूष्मा-सूष्मेति यो ब्रूयाद् दूरतोऽपि हि नारद । शतजन्मसु साम्राज्यमश्नुते नान्यथा क्वचित् ।
यत्र सूष्मा महादेवी सूष्मरूपेण शोभने । प्रविष्टा दितिजान् हत्वा मानवानां हिताय वै ॥३६॥

मानसरोवर में स्नान किये कैसे 'मुक्ति' मिलती है ? हे परमेश्वर ! अतः ऐसे व्यक्तियों के गर्जन के हितार्थ आप हमें उपाय बतलाने की कृपा करें ॥ २१ – २२ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! नारद की वाणी को सुन शान्त भगवान् कृष्ण ने मेघ-समान गम्भीर वाणी से बोलना आरम्भ किया ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा—मुनिश्रेष्ठ नारद ! जिसके दर्शन, स्मरण और ध्यानमात्र से मानवों का पाप दूर हो जाय, उससे बढकर और क्या हो सकता है ? हिमालय के अग्रभाग में 'सीता' और 'कलावती' नदियों के मध्य विभिन्न प्रकार के वृक्षों से आच्छादित एवं सेवार्थ आये हुए ऋषियों से अभिव्याप्त एक उन्नत पर्वत 'चन्दन' नाम से विख्यात है। वह सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित, विभिन्न धातुओं से समायुक्त तथा पशु-पक्षियों से संकुलित विद्यमान है। देवाङ्गनाओं से परि-वारित उस पर्वत पर जाने वाले दर्शकों को सुखभोगों के उपरान्त 'चान्द्रायण' का फल मिलता है। उस पर्वत पर 'सूष्मा' नाम का 'सरोवर' है। वहाँ जाने पर हिमालय पर चढने में असमर्थ जनों के पापों का विनाश होता है। जिन्होंने 'मानसरोवर' में स्नान नहीं किया है, वे अवश्य 'सूष्मासरोवर' में जायँ। ब्रह्मा ने उस सरोवर को लोगों के पापों का नाश करने के लिए ही बनाया है। अतः लोग वहाँ अवश्य जायें। वहाँ स्नान करने पर गङ्गास्नान से दस गुना तथा 'मानसरोवर' से भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है। हे नारद ! जिन्होंने वहाँ स्नान कर पिण्डदान किया है, वे असंख्य कुलों का उद्धार कर मेरे धाम को प्राप्त करते हैं। दूर से ही 'सूष्मा' 'सूष्मा' शब्द का उच्चारण करने वाले मानव सात जन्म पर्यन्त राज्य-सुख भोग करते हैं। वहाँ 'सूष्मा'

---

१. 'पद्मयोनिना'—इति परिष्कृतः पाठः। २. जनाः'—'ख'।

तस्मिन्सरोवरे दिव्ये सिद्धगन्धर्वसेविते। हिमालयसुता देवी देवानां विजयावहा ॥३७॥
यः समर्चति तां तत्र सरस्थां चारुहासिनीम्। श्रावणस्य त्रयोदश्यां बलिपूजोपहारकैः ॥३८॥
स च जातिस्मरो भूत्वा अश्नुते शतजन्मसु। साम्राज्यं नात्र सन्देहः शत्रुद्वेषविवर्जितम् ॥३९॥

नारद उवाच—

सूष्मा तत्र महादेवी प्रविवेश कथं सरे। मानससदृशः केन सरोऽसौ रचितः प्रभो ॥४०॥
फलं कीदृग्विधं तस्याः केन मर्त्ये प्रकाशिता। कीदृशो महिमा तस्याः कथं पूजाविधिः प्रभो ॥
कथं तत्र महादेवी संस्थिता सा वरेश्वरी। के समर्चन्ति पूर्णाब्दं तां वदस्व यदूत्तम ॥४२॥

व्यास उवाच—

एतन्निशम्य तद्वाक्यं भगवान् यदुनन्दनः। देवर्षि नारदं प्राह मेघगम्भीरया गिरा ॥४३॥

भगवानुवाच—[1]

महर्षिर्भगवानत्रिः समागत्य हिमालयम्। चन्दनाद्रि समाश्रित्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥४४॥
तपस्तप्त्वा स भगवान् द्वादशाब्दं चतुर्गुणम्। तत्र चक्रे महापुण्यं द्वितीयमिव मानसम् ॥४५॥
सरोवरं सुगम्भीरं पूरितं जाह्नवीजलैः। सततं ददृशुः सिद्धा रचितं चात्रिणा शुभम् ॥४६॥

नाम की देवी भी हैं। वे वहाँ मनुष्यों के कल्याणार्थ राक्षसों का विनाश कर तेजोरूप में विद्यमान हैं। इसके साथ ही सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित देवताओं को विजय दिलाने वाली हिमाचल-सुता पार्वती के रूप में सुशोभित हैं। वहाँ श्रावण मास की त्रयोदशी को 'स्मितहासिनी' देवी का जो लोग बलि-उपहार चढ़ा पूजन करते हैं, वे सौ जन्मों में अपने कुल में श्रेष्ठ बन शत्रुओं से रहित हो निःसन्देह साम्राज्य-भोग करते हैं ॥ २४ – ३९ ॥

नारदजी बोले—भगवन्! उस सरोवर में 'सूष्मा' नाम की देवी कैसे प्रविष्ट हुईं? और वह सरोवर 'मानसरोवर' के तुल्य क्यों माना गया? उसका क्या फल है? वह देवी मृत्युलोक में कैसे विदित हुईं? उनकी महिमा और पूजाविधि कैसे जानी जाय? वे वहाँ कैसे प्रतिष्ठित हुईं? वर्षपर्यन्त उनका पूजन कौन करते हैं? ॥ ४० – ४२ ॥

व्यासजी ने कहा—नारदजी की बातें सुन भगवान् कृष्ण ने मेघ के समान गम्भीर वाणी में उत्तर दिया ॥ ४३ ॥

भगवान् कृष्ण बोले—ऋषिवर! महर्षि अत्रि[2] हिमालय-प्रदेश में आकर 'चन्दनाद्रि' में ठहरे और वहाँ कठोर तप किया। वहाँ उन्होंने ४८ वर्ष तक तपस्या की। उन्होंने वहाँ जाह्नवी के जल से भरे हुए दूसरे 'मानसरोवर' की तरह एक 'सरोवर' की सृष्टि की। समागत

---

१. 'श्रीकृष्ण उवाच'—'ख'। प्रकरणवशाद् अयमेव युक्तः पाठः। पूर्वस्मिन् प्रसङ्गेऽपि तथैव प्रयुक्तः।

२. महर्षि अत्रि 'ब्रह्मा' के पुत्र थे। इनके तीन पुत्र प्रसिद्ध थे—दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा सोम। अनसूया इनकी पत्नी थीं। रामचन्द्र ने वनवास के समय 'दण्डकारण्य' स्थित इनके आश्रम में पदार्पण किया था। भागवत (११.७.७) के अनुसार महर्षि अत्रि ने शरशय्या पर पड़े भीष्म से भेंट की थी। इनकी एक पुत्री ब्रह्मवादिनी थीं। मत्स्यपुराण (१३२, ६७) के अनुसार इनके हिमालयस्थ आश्रम में पुरूरवा गए थे—"अविरुद्धान् वने दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ। तच्चाश्रमपदं पुण्यं बभूवात्रेः पुरा नृप"॥ श्रीमद्भागवत (११.१.१२) में इनकी 'पिण्डारका' यात्रा का भी उल्लेख है।

पूरितं जाह्नवीतोयैर्द्वितीयमिव मानसम् । सरोवरवरं दृष्ट्वा ऊचुः सिद्धाः समागताः ॥४७॥
द्वितीयो मानसो जातो विना लिङ्गं न शोभते । इति सिद्धैः समुदितां वाणीं श्रुत्वा तपोनिधिः ॥
सस्मार विश्वकर्माणं ध्यात्वा च सुचिरं ततः । ध्यानमात्रात्ततस्त्वष्टा अत्रेः प्रमुखतः स्थितः ॥
किं करोमीत्युवाचैनं महर्षि मुनिसत्तम । ततोऽत्रिर्विश्वकर्माणमुवाच वदतां वरः ॥५०॥
कुरुष्व प्रतिमां शुद्धां महादेव्यास्तु काञ्चनीम् । तामहं स्थापयिष्यामि सरेऽस्मिन् सिद्धसेविते ॥
ततस्त्वष्टा ऋषेस्तस्य वचनं प्रतिगृह्य वै । चकार प्रतिमां सूष्मां महादेव्यास्तपोधन ॥५२॥
चतुर्भुजां वरां दिव्यां शूलमुद्गरधारिणीम् । विरच्य प्रतिमां दिव्यां महादेव्या रविप्रभाम् ॥
तस्मै निवेदयामास स त्वष्टा शिल्पिनायकः । ततस्तां प्रतिमां दिव्यामावाह्य स मुनिः पुनः ॥
यावत्समर्चयामास तावत्सा त्वष्टृकल्पिता । तस्मिन्सरोवरे दिव्ये विवेश परमेश्वरी ॥५५॥
तस्मिन् सरसि संविष्टां ततस्तां मुनिसत्तम । समर्च्य प्रययावत्रिर्ब्रह्मलोकं महातपाः ॥५६॥
यस्मात् सूष्मा महादेवी प्रविष्टा सरसि शुभे । तस्मात्सरोवरं सिद्धाः प्राहुः सूष्मासरोवरम् ॥
तमाश्रित्य तपस्तेपुः सिद्धाः सर्वे ततः परम् । तथा नागाश्च यक्षाश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥५८॥
सुरभी च महाभागा तमाश्रित्य सरोवरम् । सिषेवे तां महादेवीं सूष्मासरसि संस्थिताम् ॥
सूष्मासरसमुत्पत्तिर्यथावत्कथिता मया ॥ ५९ ॥

शृणु स्नानफलं चापि प्रवेशो निर्गमस्तथा । अस्मिन्सरोवरे दिव्ये गत्वा यः स्नाति मानवः ॥
भुक्त्वा भोगान् स विपुलान् जन्मन्यस्मिंस्तपोधन । शतजन्मसु साम्राज्यमश्नुते नान्यथा क्वचित् ।
स्नात्वा तत्र महाभाग सूकराद्यापि निश्चितम् । शतजन्मसु साम्राज्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं तपोधन । शृण्वतां पठतां चापि सर्वकामसमृद्धिदम् ॥६३॥

सिद्धजनों ने उसको देख यह कहा कि बिना किसी प्रतीक के सरोवर की शोभा नहीं है । सिद्धों की यह वाणी सुन तपस्वी 'अत्रि' ने 'विश्वकर्मा' का स्मरण किया । ध्यान करते ही 'ब्रह्मा' उनके समक्ष उपस्थित हो गये । उन्होंने 'अत्रि' से पूछा कि 'मैं क्या करूँ' ? तब श्रेष्ठ वक्ता अत्रि ने ब्रह्मा से कहा कि 'आप कृपया एक सुवर्णमयी देवी की प्रतिमा बना दें' । मैं सरोवर में उसको स्थापित करूँगा । तपोधन ! तब उन्होंने 'सूष्मा' देवी की प्रतिमा बना दी । वह चतुर्भुजा[1] प्रतिमा सूर्य के सदृश कान्तिवाली एवं शूल तथा मुद्गर धारण किये हुए थी । तदनन्तर वहाँ सिद्धजनों ने चारों ओर बैठकर तपश्चर्या की । तब नाग, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस (दैत्य) एवं सुरभि आदि भी वहाँ तप कर देवी की अर्चना में संलग्न हो गए । इस प्रकार मैंने आप लोगों को 'सूष्मासरोवर' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बतला दिया है । अब मैं स्नान एवं उसका फल तथा प्रवेश एवं निर्गम के सम्बन्ध में कहता हूँ । तपोधन ! इस सरोवर में स्नान करने वाला मानव इस लोक में सुख भोग करता हुआ अन्त में पुनर्जन्म होने पर भी सुख भोगता है । कहाँ तक बतलायें ? सैकड़ों जन्मपर्यन्त उसे साम्राज्य-सुख भोगने का अवसर मिलता है । केवल मानव ही नहीं, 'सूअर' आदि निम्न कोटि के पशु भी वहाँ स्नान कर सम्मानपूर्वक सुख भोगते हैं । इस सम्बन्ध में एक आख्यान प्रसिद्ध है । उस आख्यान को सुनने

---

१. वह देवी गायत्रीस्वरूप 'मायाशक्ति' के रूप में मानी गई है ।

ककुत्स्थो नाम राजर्षिर्बभूव रविवंशजः। रघवो येन जातेन काकुत्स्थाख्यां गता मुने ॥६४॥
स राजा नीतिधर्मज्ञः सर्वदाऽतिथिपूजकः। शशास सकलां पृथ्वीमेकचक्रां ससागराम् ॥६५॥
ककुत्स्थे नृपशार्दूले राज्यं शासति भूपतौ। न चासीद्विमुखः कश्चिज्जरारोगप्रपीडितः ॥६६॥
न दुष्टदोषनिरतो न च विप्रियकारकः। न तत्यजुर्निजां वृत्तिं वर्णाः सर्वे तपोधन ॥६७॥
ब्राह्मणा वेदवृत्तिस्थाः क्षत्रियाक्षतवृत्तयः[1]। वैश्यास्तु पण्यवृत्तिस्थाः शूद्राः सेवारता-भवन् ॥
ककुत्स्थेति प्रजानाथे महीं शासति भूपतौ। बभूवुर्निजवृत्तिस्था वन्या-पि मुनिसत्तम ॥६९॥
तस्य राज्ञी बभूवाथ देवी कान्तिमती शुभा। रूपेण सा रतिसमा शीलेन पार्वतीसमा ॥७०॥
सौभाग्येन यथा लक्ष्मीः लावण्येन यथा शची। भर्तुः प्रिया बभूवाथ सा कान्तिर्मुनिसत्तम ।७१।
ये तदा तां प्रपश्यन्ति कान्तिं बिल्वोपमस्तनाम्। ते न स्तुवन्ति कमलां कमलायतलोचनाम् ॥
मानिनीभ्यः स तां राजा मेने चाधिकवल्लभाम्। तस्या विप्रियं चक्रे न कदाचिदपि भूपतिः ॥
कदाचिच्छयने देवीं त्रिकालज्ञः स भूपतिः। परिहासकथां कुर्वन् प्रोवाच 'सूकरी'ति ताम् ॥
सूकरीति समुदितं वचनं तस्य भूपतेः। श्रुत्वा सा मानिनीमध्ये माननीया तपोधन ॥७५॥
पदा वै विलिखद्भूमिं रुरोद वरवर्णिनी। विनिःश्वस्य च सा साध्वी निमग्ना शोकसागरे ।७६।
ततस्तां मुनिशार्दूल स राजा चारुभाषिणीम्। किं रोदिषीति प्रोवाच वाणीं कृत्वा सगद्गदाम् ॥
प्रत्युवाच ततः कान्तिः कान्त्या सा पूरयन्गृहम्। विमर्दन्ती स्तनाब्जौ च निःश्वस्य च पुनः पुनः ॥

राज्ञी उवाच—

जीवनेन न मे कार्यं मानुषी सूकरीकृता। त्वयाहं मानिनीमध्ये अनायासं नरेश्वर ॥७९॥
वैवस्वतपदं यामि चाद्याहं नृपतीश्वर। सपत्नीनां हसन्तीनां मध्येऽहं सूकरीरिता ॥८०॥

तथा पढ़ने से इच्छा-पूर्ति होती है। आख्यान इस प्रकार है—"सूर्यवंश में सुप्रसिद्ध राजर्षि 'ककुत्स्थ' था। अतः उस वंश के सभी रघुवंशी 'काकुत्स्थ' कहलाये। 'ककुत्स्थ' बड़ा धर्मज्ञ, नीतिमान् तथा अतिथि-सत्कार-परायण था। समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी का वह शासक रहा। उसके राज्य में कोई भी जरा-रोग तथा व्याधिग्रस्त नहीं रहा। सभी वर्ण के लोग अपने-अपने कार्यों में रत थे। दुष्टों का सङ्ग कोई भी नहीं करता था। इनकी रानी 'कान्तिमती' अपने नाम को चरितार्थ करती रही। रूप में वह 'रति' के समान, शीलादि गुणों में 'पार्वती' के सदृश, सौभाग्य में 'लक्ष्मी' की तरह तथा सौन्दर्य में 'इन्द्राणी' की समता रखती थीं। वह पति को अति प्रिय रहीं। जो भी 'कमलनयनी' एवं 'बिल्व के समान उरोजों' से युक्त उन्हें देखता, वह उनकी प्रशंसा करता। अतः राजा उन्हें सब रानियों से अधिक मानते थे। 'ककुत्स्थ' ने उनसे कभी कोई अप्रिय बात नहीं कही। फिर भी त्रिकालज्ञ राजा ने एक बार शयन के समय हँसी में उन्हें 'सूकरी' कह दिया। उसे सुन पैर से भूमि कुरेदती हुई वे बहुत देर तक निःश्वास ले रोती रहीं। चिरकाल तक दुःखी हो पड़ी रहीं। फिर राजा ने गद्गद वाणी में पूछा 'तुम्हारे रोने का क्या कारण है'? यह सुन वह बहुत देर बाद अपनी छाती पर हाथ रख कर बोलीं" ।४४-७८।

रानी ने कहा—राजन्! मनुष्य होकर आपने मुझे 'सूकरी' कह कर पशु बना दिया। अब मुझे मानव-जीवन से क्या प्रयोजन है? बिना किसी दोष के आपने मुझे इस प्रकार 'अप-

---

१. 'क्षत्रियास्त्राणवृत्तयः'—इति परिष्कृतः पाठः।

श्रीकृष्ण उवाच—

एवं तयोदितां वाणीं श्रुत्वा राजा तपोधन। प्रत्युवाच प्रियां साध्वीं मुखं तस्या विमृज्य वै ।।

राजोवाच—

परिहासप्रसङ्गेन प्रोक्ता किं बहु मन्यसे। केनचिद्धेतुना साध्वी मया तत्त्वं विजानता ।।८२।।

राज्ञ्युवाच—

हेतुः कोऽत्र महाभाग तत्त्वं किं कथ्यते ध्रुवम्। अवज्ञाकरणायैव सूकरीति त्वयोदितम् ।।८३।।
तदत्र हेतुवचनं प्रकल्पयसि नान्यथा। जुगुप्सितं न चरितं हेतुः कोऽत्रेति तद्वद ।।८४।।

श्रीकृष्ण उवाच—

तयोदितं समाकर्ण्य स राजा मुनिसत्तम। उवाच वचनं धीमान्पाकशासनविक्रमः ।।८५।।

राजोवाच—

नेर्ष्यायोगान्मया प्रोक्तं सूकरीवचनं शुभे। सपत्नीमध्ये न द्वेष्यान्न मोहान्न च मत्सरात् ।।८६।।
कस्यचित्तीर्थमुख्यस्य प्रसादाद्दिष्टपत्रयम्। जानामि सत्यमेतत्ते कथिता नान्यथा क्वचित् ।।
त्रिकालज्ञेन मे साध्वी वचनं समुदाहृतम्। मया त्वयि न सन्देहो जुगुप्सितमपि ध्रुवम् ।।८८।।
सोहं जन्मशतानां वै कथां जानामि ते ध्रुवम्। तथात्मसम्भवानां च अन्येषामपि सुव्रते ।।८९।।
स्त्रीभावेन न त्वं वेत्सि स्मारिता त्वं स्मरिष्यसि। पुण्येनेह च सञ्जाता प्रिया प्रियतरा मम ।।

मानित' किया है। अतः हे राजन्! अब मैं यमलोक चली जाऊँगी, क्योंकि मेरी सौतों के हँसते हुए आपने मुझे 'सूकरी' कह दिया ।। ७९ – ८० ।।

श्रीकृष्ण बोले—तपोधन! इस प्रकार 'ककुत्स्थ' ने कान्तिमती की बातें सुन अपने हाथों उसके आँसू पोछ इस प्रकार कहना आरम्भ किया ।। ८१ ।।

राजा ने कहा—मानिनि! तुम्हें साध्वी जानते हुए भी मैंने हँसी-हँसी में इस शब्द का प्रयोग कर दिया था। तुम इस पर इतना महत्त्व क्यों दे रही हो? ।। ८२ ।।

रानी बोली—महाभाग! इसमें क्या कारण है कि आपने ही मेरा अनादर करते हुए 'सूकरी' शब्द का प्रयोग किया? ऐसा कहने में आपने मन में क्या सोचा? यदि ऐसा कुछ नहीं है तो मेरे चरित्र को इस प्रकार कलङ्कित क्यों किया? यह मुझे बतलायें ।। ८३ – ८४ ।।

श्रीकृष्ण बोले—मुनिवर! रानी की बातें सुन कर इन्द्र के समान पराक्रमी राजा ककुत्स्थ ने पुनः कहा ।। ८५ ।।

राजा ने उत्तर दिया—मानिनि! मैंने 'सूकरी' शब्द निष्प्रयोजन नहीं कहा है। सौतों के मध्य द्वेष, कपट तथा अभिमान को अभिलक्षित करना मेरा उद्देश्य नहीं था। मैं सत्य कहता हूँ कि किसी तीर्थ-विशेष की कृपा से प्राप्त ऐसा शब्द मुझसे उच्चरित हो गया। मैं कोई बात छिपा नहीं रहा हूँ। अतः तुम्हें किसी प्रकार सन्देह करना उचित नहीं। त्रिलोकज्ञ होने के नाते मैं सौ जन्मों की बातें जानता हूँ। केवल अपने वंशजों की ही नहीं, परन्तु दूसरों के वंश की पूर्व जन्म की बातें भी जानता हूँ। स्त्री-स्वभाव से तुम उन्हें नहीं जानती हो। याद दिलाने पर जान जाओगी। उसी पूर्व पुण्य से तुम मेरी प्रिय पत्नी हुई हो ।। ८६–९० ।।

राज्ञ्युवाच—

किं मया चरितं राजन् पुण्यं प्राक्तनजन्मसु । केनेह तव सम्भूता वल्लभा मञ्जुभाषिणी ॥९१॥
किमात्मचरितं वेत्सि तथान्येषां फलामपि । भवता केन पुण्येन भुज्यते वसुधातलम् ॥९२॥

राजोवाच—

शृणु जन्मशतादौ वै सम्भूतोऽरण्यसूकरः । त्वया सह सु-सूकर्या चचार वसुधातलम् ॥९३॥
हिमवन्तं च विन्ध्यं च सुसूकर्या त्वया सह ॥९४॥
गतोस्मि भद्रे भद्राद्रौ कन्दमूलफलाशनः । चक्रवाकोपमा तत्र बभूव प्रीतिरावयोः ॥९५॥
न च मे त्वां विना भद्रे क्षणार्धमपि संययौ । तथा तवापि तत्रैव मां विना न क्षणं ययौ ॥९६॥
तत्र त्वं सुषुवे पुत्रान् दश सूकरनायकान् । ऋतुदानं च सम्प्राप्य मत्तो वै वरवर्णिनि ॥९७॥
एवं प्रीतिं प्रकुर्वतोरावयोर्विपिने वयः । संययौ मृगशावाक्षि भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥९८॥
ततः काले व्यतीते तु हिमवन्तं त्वया सह । गतवानस्मि शोभाढ्यं नानाधातुविराजितम् ।९९।
हिमवन्तं गिरिं प्राप्य वीररूपेण भामिनि । त्वया सह विचरितं हिमालयतटे शुभे ॥१००॥
तत्र मां मनुजाः सर्वे चरन्तं वीरसन्निभम् । ददृशुर्दीर्घदंष्ट्रं च हिमालयनिवासिनः ॥१०१॥
ततः कदाचित्तुहिने गोमन्तं सुविलङ्घ्य वै । कालिन्दीह्लदसंज्ञं वै संस्नातं तत्र जन्मनि ।१०२।
ह्लदे चापि प्रसुप्तोऽस्मि रात्रौ तत्र त्वया सह । ततः प्रातः समायान्तीं वाराहीं ददृशे शुभाम् ॥
स्नातुं तत्र ह्लदे दिव्ये अवतीर्णां हि पर्वतात् । स्नात्वा तत्र पुनर्यान्तीं चन्दनाद्रौ सुशोभने ॥
तां दृष्ट्वा चातिशोभाढ्यां वाराहीं पर्वतोपमाम् । मन्मथस्य व्यथां प्राप्य रन्तुमिच्छँस्त्वया सह ।
तस्यानुप्रययौ हृष्टौ ह्यविज्ञाय महेश्वरीम् । यत्र यत्र महादेवी वाराही सा त्वया सह ॥१०६॥

रानी बोली—राजन् ! मैंने पूर्व जन्म में कौन से ऐसे पुण्य किए ? जिस कारण मैं मृदुभाषिणी ही आपकी रानी बनी । आप अपने व दूसरों के पूर्व चरित्र को कैसे जानते हैं ? किस पुण्य-प्रभाव से आप पृथ्वीतल पर राज्य का उपभोग कर रहे हैं ? ॥ ९१ – ९२ ॥

राजा ने उत्तर दिया—राज्ञि ! सुनो । तुम सौ जन्म पहले जंगल में 'सूकरी' के रूप में रहीं । मैं तुम्हारे साथ 'सूअर' के रूप में पर्वतों पर विचरण करता था । मैं तुम्हारे साथ 'हिमालय' एवं 'विन्ध्याचल' सदृश पर्वतों पर कन्द-मूल खाता हुआ किसी तरह 'भद्र'[1] पर्वत पर पहुँच गया । वहाँ हम दोनों में चकवा-चकवी की तरह प्रेम हो गया । तुम मेरे विना एक पल भी नहीं रह सकती थीं । और न मैं तुम्हारे विना घड़ी भर रह सकता था । वहाँ तुमने दस बच्चों को जन्म दिया । मानिनि ! मैं वीररूप से 'हिमालय' पर्वत पर स्थित हो तुम्हारे साथ घूमता रहा । वहाँ मुझे सब लोग घुमक्कड़ 'लम्बे दाँतवाला' कह कर देखते रहे । तब हिमपात होने पर उस जन्म में 'गोमन्त' पर्वत को लांघ 'कालिन्दी-ह्लद' में जाकर स्नान किया । और वहीं तुम्हारे साथ रात बिताई । प्रातःकाल होने पर वहाँ 'वाराही' को हिमालय से उतर कर स्नानार्थ आते हुए देखा । वह स्नान कर 'चन्दनपर्वत' को चली गई । पर्वत की तरह उस 'वाराही' को देखकर कामवासना से पीड़ित हो मुझे तुमसे रमण करने की इच्छा हुई । भ्रमवश मैं उस 'वाराही' के पीछे-पीछे चल पड़ा । जहाँ-

---

१. 'ब्रह्माण्डपुराण' (२, १६-४८ तथा १८-४६) के अनुसार के उत्तर का एक जनपद 'भद्र' था ।

तत्र तत्राहमतुलं रूपं प्राप्य ययौ शुभे । समीपस्थां च दूरस्थां दृष्ट्वा तां वै पुनः पुनः ॥१०७॥
तस्याद्रेः शिखरं यान्तीं ददृशे तां ततः परम् । ततस्तु शिखरं गत्वा प्रविष्टा सा सरोवरे ।१०८।
दृष्ट्वा मोहादहमपि प्रविवेश त्वया सह । प्रविष्टं तत्र मां दृष्ट्वा वाराही सा महेश्वरी ।१०९।
तस्मिन्सरोवरे दिव्ये सूक्ष्माख्ये सूक्ष्मरूपिणी । बभूव पूजिता साध्वी सुरविद्याधरोरगैः ॥११०॥
तत्र विद्याधरः कश्चिद्विनिःसृत्य सरोवरात् । प्रदुद्राव च मां तत्र प्रविष्टं सरसीं शुभाम् ।१११।
ततः प्रत्याजगामाशु त्वया सह धृतव्रते । निराशो दुःखसन्तप्तो विलिखद्वसुधातलम् ॥११२॥
भित्त्वा तत्र महाभीमं विषाणाग्रेण भूधरम् । जलं निःसारयित्वा च कालिन्दीं पुनराययौ ।११३।
ततः काले व्यतीते तु तत्रैव वरवर्णिनि । पञ्चत्वं प्राप्य राजाऽभून्निषधे पृथिवीश्वरः ॥११४॥
तेन पुण्येन दिव्येन त्वं राज्ञी सम्बभूव ह । त्वां राज्ञीं समनुप्राप्य शासिता वसुधा मया ।११५।
शैलसागरसंयुक्ता सरित्काननशोभिता । तथा चात्र महाभागे शास्यते वसुधा मया ॥११६॥
त्वया सह समग्रा वै सागराकरशोभिता । तथा शासति[1] सर्वाणि मया पूर्वेषु जन्मसु ॥११७॥
त्वया सह महाभागे तेन पुण्येन नान्यथा । शतजन्मसु साम्राज्यं कृतं भूमण्डले मया ॥११८॥
तेन पुण्येन महता त्वया सह हतद्विषम् ॥११९॥
अतः परं गमिष्यामि त्वया सह परं पदम् । वैकुण्ठाख्यं महाभागे यत्र गत्वा न शोचति ।१२०।
एतत्संस्मरणार्थाय 'सूकरी' कथिता ह्यसि । चारुसर्वाङ्गशोभाढ्ये स्मरन्पुण्यं पुरा कृतम् ।१२१।

जहाँ वह 'वाराही' देवी गईं, वहाँ-वहाँ मैंने तुम्हारे साथ अतुल रूप धारण किया। कभी दूर, कभी समीप हो वह जाते-जाते उस पर्वत के शिखर पर पहुँचीं और तत्रस्थ 'सरोवर' में प्रवेश कर गईं। मैं भी तुम्हारे साथ सरोवर में प्रविष्ट हो गया। उस महेश्वरी 'वाराही' ने सूक्ष्मा-सरोवर में मुझे प्रविष्ट हुआ देख सूक्ष्मरूप धारण कर लिया। तब वहां मैंने, देवगणों तथा विद्याधरों एवं नागों ने उनकी पूजा की। फिर उस सरोवर से कोई विद्याधर बाहर निकला। वह मेरे पीछे पड़ गया। धृतव्रते ! तब मैं तुम्हारे साथ निराश एवं दुःखी हो, पृथ्वी को खोदता हुआ अपने सींगों की नोक से पर्वत को तोड़ कर उस सरोवर से बाहर हुआ। इस तरह उससे कुछ पानी बाहर निकाल कर वहाँ से 'कालिन्दी-ह्रद' को वापस आ गया। हे सुन्दरि ! तब वहीं मेरा देहान्त हो गया और उस पूर्व जन्म के पुण्य से ही आज मैं 'पृथ्वीपति' हुआ हूँ और तुम दिव्य रूप धारण कर मेरी रानी हुई हो। तुमको रानी के रूप में पाकर मैंने पृथ्वी पर शासन किया। यह पृथ्वी—पर्वत, सागर, नदी, जंगल आदि से घिरी हुई-सुशोभित है। जिस तरह मैं इस समय तुम्हारे साथ पृथ्वी पर शासन कर रहा हूँ, उसी प्रकार मैंने अनेकों बार उसी पुण्य के फलस्वरूप तुम्हारे साथ पहले भी राज्य किया है। महाभागे ! मैं सौ जन्मों तक पृथ्वीपाल रहा तथा उसी पूर्व पुण्य से शत्रुओं को पराजित करता रहा। अब इस जन्म के अन्त में तुम्हारे साथ ही 'परमपद' प्राप्त करूँगा। महाभागे ! वैकुण्ठ में जाकर कोई दुःख नहीं होता। चार्वङ्गि ! इस सुन्दर कथानक की शोभा को याद दिलाने के लिए मैंने 'सूकरी' शब्द का प्रयोग किया॥ ९३ – १२१॥

---

१. 'शंसति'—'ख'।

राज्ञ्युवाच—

त्वत्प्रसादान्महाभाग संस्मृतं नान्यथा क्वचित्। मूढया न स्मरन्पूर्वं मया सूष्मासरोवरम्॥
धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि भवता स्मारितास्म्यहम्। सूष्मासरोवरगुणैः कथागीतैः सुविस्तरैः॥

श्रीकृष्ण उवाच—

इत्युक्ता मुनिशार्दूल राजानं सा समर्चयत्। सुकृतं प्राक्तनं स्मृत्वा राज्ञा संस्मारितं शुभम्॥
ततः काले व्यतीते तु स राजा भार्यया सह। पदेऽभिषिच्य काकुत्स्थं वनवासाथ संययौ॥१२५॥
वने गत्वा तपस्तप्त्वा स राजा मुनिसत्तम। वैकुण्ठं प्रययौ हृष्टस्तया सह महामतिः॥१२६॥
एवं स राजा देवर्षे सूष्मासरकथां शुभाम्। प्रियायै प्रययौ हृष्टः प्रोक्त्वा वैकुण्ठमन्दिरम्॥

स सूकरोऽपि विनिमज्य ऋष्यया कृत्वा च राज्यं शतजन्मसु शुभम्।
निबोधितां कान्तिमतीं ययौ वनं गृहं विहायाशु पदं पुरोपमम्॥ १२८॥
तत्रापि मां पूज्य ययौ प्रहृष्टो वैकुण्ठलोकं मनुजैर्दुरापम्।
स जन्म सम्प्राप्य विवस्वतान्वये भुक्त्वा च भोगानखिलांस्तदैव॥ १२९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सूष्मासरोवरमाहात्म्ये पञ्चचत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः॥

रानी ने फिर कहा—हे महाभाग ! आप की कृपा से मैंने इन बातों का स्मरण किया। अन्यथा मेरे लिये यह दुर्लभ था। मैं मूर्खतावश 'सूष्मासरोवर' का स्मरण नहीं कर सकी। मैं अपने को धन्य मानती हूँ कि आपने इस आकर्षक आख्यान के माध्यम से सूष्मासरोवर के गुणों का स्मरण दिलाया॥ १२२ – १२३॥

श्रीकृष्ण बोले—प्राक्तन पुण्य का स्मरण कराने पर रानीद्वारा पूजित ककुत्स्थ ने पुत्र काकुत्स्थ (अनेना) को राज्यभार सौंपा। वे पत्नीसहित वन को चले गए। वन में जा तपश्चर्या करते हुए वे अपनी रानीसहित वैकुण्ठधाम चले गये। महर्षे नारद ! इस प्रकार राजा ककुत्स्थ ने अपनी पत्नी को 'सूष्मासर' की कथा सुनाई तथा अन्त में वैकुण्ठलोक प्राप्त किया। तदनुसार उस पूर्वजन्म के 'सूअर' ने सपत्नीक सरोवर में स्नान किये हुए अपनी पत्नी (सूकरी) कान्तिमती को उसका बोध करा गृहस्थाश्रम छोड़ वनवास करते हुए परम पद प्राप्त किया। केवल मेरी अर्चना से सूकर ने कठिनाई से प्राप्त होने वाले राजा ककुत्स्थ के रूप में मनुष्य जन्म पाकर इस लोक में सुख भोग अन्त में वैकुण्ठधाम प्राप्त किया॥ १२४ – १२९॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सूष्मासरोवर'-माहात्म्य सम्बन्धी एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

१४९

श्रीकृष्ण उवाच—

प्रवेशो निर्गमश्चापि शृणुष्व मुनिसत्तम। गोमन्तपर्वतं हित्वा चन्दनाद्रेरधित्यकाम् ॥१॥
एकादश्या दिनं प्राप्य उपोष्य विधिपूर्वकम्। गन्तव्यं मुनिशार्दूल ह्रदं कालिन्दिसंज्ञकम् ॥२॥
त्रिकोणं नातिविस्तीर्णं चतुर्भिर्विनिषेवितम्। तत्र कान्तस्थले दिव्ये गत्वा कालीं प्रपूज्य वै ।३।
बहुलासरितो मूले निमज्य विधिपूर्वकम्। यत्र सा बहुला नामा ब्रह्मणा प्रेषिता शुभा ॥४॥
लोकानां पापलिप्तानां पापनाशाय शोभना। चन्दनाख्यगिरेरारादाविर्भूता सरिद्वरा ॥५॥
तत्र स्नात्वा विधानेन व्रजेत्काकाद्रिसंज्ञकम्। ह्रदे तस्मिन्निमज्याशु शतगोदानजं फलम् ॥६॥
प्राप्य जन्मान्तरे विप्रा नरः साम्राज्यमश्नुते। ततो वीरजले गत्वा चन्दनाद्रेरधिस्थले ॥७॥
यत्र दन्तेन वाराहो वीररूपं विधाय वै। भूधरस्य तटं भित्वा जलं निस्सारयत् शुभम् ॥८॥
तत्र स्नात्वा च मनुजः सन्तर्प्य च पितृंस्तथा। शतजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः ।९।
ततः पर्वतमारुह्य तुङ्गेशं गणनायकम्। समर्च्य च महाभाग ततो जलमयं स्थलम् ॥१०॥
स्थले तस्मिन्महादेवी वाराही पूज्यते शिवा। निमज्य विधिवत्तत्र जले पङ्काङ्किते शुभे ।११।
समभ्यर्च्य विधानेन देवीं जलजसंज्ञकाम्। पदार्धमपि यो भूमिं गत्वा तत्र प्रयच्छति ॥१२॥
ब्राह्मणाय महाभाग वसुधादानसम्मितम्। फलं प्राप्य शिवगृहं प्राप्नुते नान्यथा क्वचित् ।१३।
ततस्तु शिखरे गत्वा देवीं शिखरवासिनीम्। सम्भाव्य शिखरे चैव शिखरस्थं नमेच्छिवम् ॥
स्वर्गद्वारं ततो गच्छेत्तत्र मामर्च्य वै सुधीः। शतजन्मसु साम्राज्यं भुक्त्वा मां प्राप्नुते नरः ॥

श्रीकृष्ण पुनः बोले—मुनिश्रेष्ठ नारद! 'सूष्मासर' के प्रवेश और निर्गम के सन्दर्भ में भी आप सुनें। 'गोमन्त'पर्वत को छोड़कर 'चन्दनपर्वत' की अधित्यका में एकादशी के दिन विधिपूर्वक उपवास कर 'कालिन्दीह्रद' में जाना चाहिये। त्रिकोणात्मक होते हुए भी वह वहुत वड़ा नहीं है, किन्तु चारों वर्णों से सेवित है। उस रमणीय स्थल में जा 'काली' का पूजन कर 'वहुला' नदी के मूल में स्नान करें। उसे व्रह्माजी ने पापी जनों के पापों को दूर करने के लिये भेजा है। वह 'चन्दनाद्रि' के समीप से ही निकली है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान कर 'काकाद्रि-ह्रद' पर जायें। उस कुण्ड में स्नान करने से सौ गोदान करने का फल मिलता है। तथा देहान्त होने पर दूसरे जन्म में मनुष्य साम्राज्य-भोग करता है। तत्पश्चात् 'चन्दन'पर्वत की अधित्यका में 'वीर' जल के पास जाये। उस वीर जल का प्रादुर्भाव 'सूकर' द्वारा अपने दाँतों से पर्वत-तल को भेदन कर हुआ था। वहाँ स्नान तथा पितृतर्पण कर मानव अपने शत पूर्वजन्म-कृत पापों से मुक्त हो जाता है। तब पर्वत पर आरूढ़ हो 'तुङ्गेश' नामक 'गणनायक' की पूजा कर 'जलमय' स्थल में प्रवेश कर 'वाराही' देवी का पूजन करें। उस मटमैले जल में स्नान कर 'जलजा देवी' की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। वहाँ एक 'पग' भी जो भूमि का दान कर व्राह्मण को देता है, उसे समग्र पृथ्वीदान का फल मिलता है। अन्त में उसे 'शिवलोक' प्राप्त होता है। फिर शिखर पर जाकर 'शिखरवासिनी' (दुर्गा) का पूजन कर भगवान् शंकर को

ब्रह्माणं शङ्करं चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः। महर्षिमत्रिं सम्पूज्य गत्वा सूष्मासरोवरम् ॥१६॥
मुण्डनं चोपवासं च तीर्थश्राद्धं विधाय वै। सूष्मासरेऽभिसंस्नात्वा सूष्मां तां सरमध्यगाम् ॥
समर्चयन्महाभाग नानापुष्पोपहारकैः। त्रिरात्रं तत्र संपूज्य सूष्मासरसि संस्थिताम् ॥१८॥
तृतीये कन्दरावासां सुरभीमर्चयेत्सुधीः। यावत्समर्चति तां देवीं तत्रस्थां दैवतैः सह ॥१९॥
समभ्यर्च्य महाभागां सुरभीं तामभीष्टदाम्। पूर्वभागे महाक्षेत्रं देव्या देवनिषेवितम् ॥२०॥
विद्यते तत्र गत्वा च पार्वतीं पूजयेच्छिवाम्। ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्थानानि विविधानि च ॥
तत्र स्थितानि सम्पूज्य चार्चयेद् गिरिजां ततः। त्रिभिर्दिनैर्व्यतीते तु वरमेकं प्रयच्छति ॥२२॥
धनं ददाति विपुलमर्चिता पञ्चभिर्दिनैः। प्रत्यागत्य महाभाग दिव्यं सूष्मासरोवरम् ॥२३॥
प्राप्यानुज्ञां च संस्नात्वा प्रत्यागच्छेत्स्वमन्दिरम्। एवं वै कुरुते यस्तु शृणु तस्यापि वै फलम् ॥
पूर्णमब्दशतं स्नानं गङ्गासागरसङ्गमे। यत्फलं प्राप्नुते मर्त्यस्तदत्राशु दिनेन हि ॥२५॥
शतजन्मसु साम्राज्यं प्राप्नुते नान्यथा भवेत्। शतेषु मुनिशार्दूल भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥
अन्ते मम पुरं प्राप्य मम सायुज्यमश्नुते ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सूष्मासरोवर-माहात्म्ये षट्चत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

प्रणाम करना चाहिये। फिर 'स्वर्गद्वार' जाकर मेरा (विष्णु का) पूजन करने वाला व्यक्ति सौ जन्मों तक साम्राज्य-सुख भोग कर अन्त में मुझे (विष्णुको) प्राप्त करता है। बार-बार 'ब्रह्मा' और 'शिव' को प्रणाम करते हुए महर्षि 'अत्रि' का पूजन कर 'सूष्मा-सरोवर' में जाना चाहिये। वहाँ मुण्डन, उपवास, तीर्थश्राद्ध आदि सम्पन्न कर 'सूष्मासर' में स्नान कर सरोवर के मध्य में स्थित 'सूष्मा' देवी की विविध पुष्पादि से तीन दिनों तक अर्चना करना विहित है। उसके वाद कन्दरा में स्थित 'सुरभी' की पूजा करनी चाहिये। इसके साथ ही तत्रस्थ अन्य देवों का भी पूजन करें। उसके पूर्वभाग में देवों से सेवित 'भगवती' का महाक्षेत्र है। वहाँ जाकर कल्याणप्रदा 'पार्वती' का पूजन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वहाँ 'ब्रह्मा', 'विष्णु' तथा 'शिव' के बहुत स्थान हैं। उन सबकी पूजा करने के बाद 'गिरिजा' (पार्वती) का पूजन करें। तीन दिनों की पूजा के पश्चात् 'पार्वती' से 'वर' मिलता है। पाँच दिनों तक पूजन करने पर विपुल धन प्राप्त होता है। महाभाग ! फिर उसी सरोवर पर वापस आ जाना चाहिये। वहाँ पूजन तथा अनुज्ञा प्राप्त कर स्नान करने के पश्चात् घर वापस हो जायें। नारद ! अब इस विधान का फल भी सुनो। यहाँ स्नान करने पर केवल एक दिन में वह पुण्य प्राप्त होता है, जो 'गङ्गा-सागर-सङ्गम' में सौ वर्षों तक स्नान करने पर प्राप्त होता है। यहाँ स्नान करते वाला व्यक्ति अनेक जन्म-पर्यन्त साम्राज्य-सुख भोगता है। अन्त में मेरे धाम (वैकुण्ठ धाम) में पहुँच वह 'विष्णुसायुज्य' प्राप्त करता है ॥ १-२७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सूष्मासरोवर'-माहात्म्य नामक
एक सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

१४७

व्यास उवाच—

एवमुक्त्वा ततः कृष्णः सत्यभामागृहं ययौ । स चापि तं नमस्कृत्य मुनीनां प्रवरो मुनिः ॥१॥
सूष्मासरोवरस्यापि माहात्म्यं हरिणोदितम् । ययौ हृष्टमना भूयो ब्रह्मलोकं तपोधनाः ॥२॥

ऋषय ऊचुः—

गोमन्ताद्रेस्तु माहात्म्यं कथयस्व तपोधन । पिबन्नपि न तृप्यामो ह्यमृतं त्वन्मुखोद्भवम् ॥

व्यास उवाच—

गोमन्तेति च यः ख्यातः पर्वतोस्ति तपोधनाः । शृण्वन्तु तस्य माहात्म्यं यथा च सूदितं मया ॥
गोमन्तमारुह्य महानुभावं सीतासरिन्मध्यगतं हिमाद्रेः ।
कटिप्रलग्नं कटिसन्निभं च नरा दिवं यान्ति समर्च्य देवान् ॥ ५ ॥
चन्दनाद्रेर्महाभागाः पश्चिमे संस्थितो गिरिः । गोमन्तेति च विख्यातः सुरसिद्धनिषेवितः ॥६।
षट्षष्टीति च पुण्याख्याः कन्दराः सन्ति तत्र वै । तासु देवगणाः सर्वे निवसन्ति न संशयः ।७।
तस्मात्तु बहवो नद्यः सम्भूतास्तान् ब्रवीम्यहम् । गण्डकी यक्षगा चैव वाराही तारिणी ततः ॥
पुण्या पाशवती चैव सन्त्येता बहवः शुभाः । तासु स्नात्वा च मनुजः प्राप्नुते परमं पदम् ॥९॥
गण्डकी या मया प्रोक्ता कलावत्यास्तु सङ्गमे । सङ्गता दक्षिणे तस्याः खड्गाख्यः शिखरः स्मृतः।
खड्गेशं तत्र देवेशं समभ्यर्च्य तपोधनाः । खड्गप्रहाराभिमुखान् शत्रून् जित्वा महारणे ॥११॥
प्राप्नोति विपुलान् भोगान् मानुषे पूज्यते नरः । ततस्तु यक्षा या प्रोक्ता तस्याः सङ्गमसङ्गता ॥
पर्वताग्रे महाभागा दृष्टिकेदारसंज्ञकम् । यः समर्चति देवेशं प्राप्नुते शिवमन्दिरम् ॥१३॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! ये सब बातें बतला कर भगवान् कृष्ण सत्यभामा के घर चले गये । तत्पश्चात् नारद भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर उनके द्वारा श्रावित 'सूष्मासर' के माहात्म्य को जानकर प्रसन्न मन से ब्रह्मलोक की ओर प्रस्थित हुए ॥ १-२ ॥

ऋषियों ने कहा—हे तपोधन ! अब आप 'गोमन्त' पर्वत का माहात्म्य बतलायें । आपके मुख से निकली हुई अमृतमयी वाणी से अभी हम लोग तृप्त नहीं हुए हैं ॥ ३ ॥

व्यासजी बोले—ऋषियों ! मैं गोमन्त पर्वत का माहात्म्य बतलाता हूँ । आप लोग सुनें । हिमालय से सटे हुए 'सीता' के मध्यस्थित 'गोमन्त' पर्वत पर आरूढ़ हो देवपूजा कर मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर लेता है । महाभाग ऋषियों ! चन्दन पर्वत के पश्चिम में देवों और ऋषियों से सेवित प्रसिद्ध 'गोमन्त' पर्वत है । उसमें ६६ बड़ी पवित्र गुहायें हैं । उनमें देवों का वास है । उससे अनेक नदियाँ निकली हैं । अब मैं उनके विषय में बतलाता हूँ । वहाँ 'गण्डकी', 'यक्षगा', 'वाराही', 'तारिणी', पवित्र 'पाशवती' नाम की अनेक नदियाँ हैं । इनमें स्नान कर मनुष्य 'परम पद' प्राप्त करता है । 'गण्डकी' का सङ्गम 'कलावती' में है । उसके दक्षिण में 'खड्ग' नामक शिखर है । वहाँ 'खड्गेश' शङ्कर का पूजन कर युद्ध में खड्ग-प्रहार करने के लिए आए हुए शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर मानव विपुल ऐश्वर्य प्राप्त करता है । साथ ही उसे

तस्याधि संस्थितां देवीं लवङ्गाख्यां तपोधनाः । यः समर्चति तां देवीं लवङ्गां शङ्करप्रियाम् ॥
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते । वाराहीति च या प्रोक्ता तत्र चन्द्रवती स्मृता ॥१५॥
तत्र स्नात्वा च मनुजश्चन्द्रलोकं प्रयाति वै । चन्द्रायक्षगयोर्मध्ये शिखराग्रे महेश्वरम् ॥१६॥
कोटीश्वरं समभ्यर्च्य कोटियज्ञफलं लभेत् । ततस्तु दक्षिणे कोणे पार्श्वामूले निमज्य वै ॥१७॥
फलं सम्प्राप्नुते मर्त्यः गङ्गादर्शनसंमितम् । ततस्तु दक्षिणे विप्रा दिव्यं खर्जूरसंज्ञकम् ॥१८॥
क्षेत्रमस्ति महापुण्यं देवदेवस्य शूलिनः । क्षेत्रस्य तस्य सम्यग्वै फलं शृण्वन्तु भूसुराः ॥१९॥
त्रिसप्तकृत्वा यो यात्रां केदारस्य करोति वै । क्षेत्रस्य तस्य यस्त्वेकः कुरुते तत्समो भवेत् ।२०।
तत्र खर्जूरक्षेत्रे वै देवो विश्वेश्वरो हरः । कन्दरायां महाभागा राजते पार्वतीप्रियः ॥२१॥
विश्वेश्वरं च सम्पूज्य उषित्वा काशिमण्डले । यत्पुण्यं प्राप्नुते मर्त्यस्तदत्र मुनिसत्तमाः ॥२२॥
गुहाद्वारे समुत्पन्नैस्तोयैः पूर्वोन्मुखैः शुभैः । संस्नात्वा तत्र देवेशं क्षेत्रे खर्जूरसंज्ञके ॥२३॥
यः समर्चति देवेशं सुरसिद्धनिषेवितम् । स याति भवनं शम्भोः कुलत्रयसमन्वितः ॥२४॥
वामे गुहा सिद्धनिषेविता शुभा तस्याः सुपुण्या किल दक्षिणे तथा ॥
तदूर्ध्वभागे मुनिसेविता तथा शिवं प्रपूज्याऽऽसु च प्राप्यते शुभम् ॥ २५ ॥
तत्रैव तारिणी नामा समुत्पन्ना महानदी । दशकोटचब्दसंजाताः प्रणश्यन्त्यघकोटयः ॥२६॥
तां स्नात्वा मुनिशार्दूलाः सत्यमेतन्मयोदितम् । सन्ति तीर्थान्यनेकानि तारिण्यां मुनिसत्तमाः ।

मानवसमाज में सम्मान मिलता है। तदनन्तर 'यक्षगा' के सङ्गम में पर्वत के अग्रभाग पर 'दृष्टिकेदार' नामक देव का पूजन कर शिवलोक प्राप्त होता है। उसके अग्रभाग में जो व्यक्ति 'लवङ्गा' का पूजन करता है, उसकी गद्य-पद्यमयी वाणी सभा में प्रशंसित होती है। जिन 'वाराही' देवी का वर्णन ऊपर किया जा चुका है, वहाँ 'चन्द्रावती' नदी भी है। उसमें स्नान करने से 'चन्द्रलोक' प्राप्त होता है। 'चन्द्रा' और 'यक्षगा' के मध्य शिखर के अग्रभाग में 'कोटीश्वर' का पूजन करने से कोटि यज्ञ फल प्राप्त होता है। वहाँ से दक्षिण कोण में 'पार्श्वा' के मूल में स्नान करने से मनुष्य को 'गङ्गा' दर्शन का पुण्यलाभ होता है। विप्रवरों! उसके भी दक्षिण की ओर देवाधिदेव महादेव का 'खर्ज्जूर' नामक पुण्य क्षेत्र है। उस क्षेत्र की यात्रा का फल 'केदार' की यात्रा की अपेक्षा २१ गुना अधिक मिलता है। उस क्षेत्र की एक बार भी यात्रा करने से दोनों यात्राएँ समान फलदायक समझी जाती है। उस 'खर्ज्जूर' क्षेत्र में 'विश्वेश्वर' महादेव हैं। वहीं गुफा में 'पार्वती' विराजमान हैं। 'काशी' मण्डल में वास करते हुए 'विश्वेश्वर' का दर्शन करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल गुहा के द्वार से उत्पन्न पूर्वाभिमुख 'जलधाराओं' में स्नान कर सुर एवं सिद्धादि से सेवित तत्रस्थ 'देवेश' का पूजन करने पर मिलता है। इसके अतिरिक्त तीन कुलों सहित उद्धारपूर्वक 'शिव'-सदन प्राप्त होता है। उसके वाम भाग में सिद्धों से सेवित 'शुभा' नाम की गुहा है। दक्षिण भाग में 'पुण्या' नाम की गुहा है। ऊर्ध्व भाग में 'मुनिसेविता' गुहा है। इनमें 'शिव' का पूजन करने से शुभ फल प्राप्त होता है। वहीं से 'तारिणी' नदी निकली है। उसमें स्नान करने पर दस करोड़ वर्षों के पाप नष्ट हो जाते हैं। मुनिवरों! 'तारिणी' के तटवर्ती तीर्थों में स्नान करने से पूर्ववर्णित फल अवश्य मिलता है। इस प्रकार 'तारिणी' नदी अनेक नदियों को अपने में

सङ्गमे बहुभिः पूर्णा ययौ सीतां महानदीम् । तारिणीसङ्गमे दिव्या पार्श्वाख्या सरितां वरा ॥
सङ्गता तत्र मध्ये वै स्नात्वा पार्श्वासरे शुभे । पार्श्वाख्यां तारिणीं पूज्य नरो याति परां गतिम्
तारिणीपार्श्वयोर्मध्ये पुङ्गवी स्थलवासिनी । वर्वर्ति दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी पर्वतात्मजा ॥३०॥
अर्चिता पुङ्गवी दुर्गा दिव्यस्थलनिवासिनी । धनं धान्यं च विपुलं प्रयच्छति न संशयः ॥३१॥
एता देव्यश्च गोमन्ते देवा विश्वेश्वरादयः । पूज्यन्ते मुनिशार्दूला वरदाः कामदास्तथा ॥३२॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे गोमन्तपर्वतमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

१४८

ऋषय ऊचुः—

सूष्मासरोद्भवा याश्चानन्तरं मुनिसत्तम । सीतानद्यां महापुण्यां प्रविष्टास्ताः सरिद्वराः ॥१॥
तासां तीर्थानि मुख्यानि यानि सन्ति वदस्व नः[1] ॥ २ ॥

व्यास उवाच—

सूष्मासरोद्भवा याश्च संगमित्वा तपोधनाः । दिव्यतत्राद्रिसम्भूताः स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ॥
तत्र सङ्गममध्ये वै आश्रमस्थं तपोनिधिम् । दुर्वाससं समभ्यर्च्य नरः प्राप्नोति शाश्वतीम् ।४।

समाविष्ट कर 'सीता' के साथ मिल जाती है। इन दोनों के सङ्गम पर 'पार्श्वा' नदी आती है। इन सबके सङ्गम पर 'पार्श्वासर' तीर्थ है। उसमें स्नान तथा 'पार्श्वा' एवं 'तारिणी' का पूजन करने से मानव की सद्गति होती है। 'तारिणी' और 'पार्श्वा' के मध्यस्थल में विराजमान होती हुई 'दुर्गा' के रूप में 'पुङ्गवी' नाम की देवी हैं। उनका अर्चन करने से 'धन'-'धान्य' की प्राप्ति होती है। मुनिश्रेष्ठों ! 'गोमन्त' पर्वत में ये देवियाँ तथा 'विश्वेश्वर' आदि देव पूजित हैं। ये सभी वरद तथा मनोऽभिलाष की पूर्ति करते हैं ॥ ४-३२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'गोमन्तपर्वत'-माहात्म्य नामक
एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने 'सूष्मासर' से निकलने वाली नदियों के 'सीता' में सङ्गमित होने का वर्णन कर दिया है। अब हम लोग उनसे सम्बद्ध 'तीर्थों' के विषय में जानना चाहते हैं। कृपया हमें बतलायें ॥ १-२ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! 'सूष्मासर' से निकलने वाली एवं 'दिव्य' पर्वत से निकलने वाली नदियों के संगम में स्नान तथा तर्पण कर 'दुर्वासा' के आश्रम में महर्षि का

---

१. अयमंशः 'ख' पुस्तके न विद्यते ।

तत्र सङ्गममध्ये वै ह्रदे दुर्वाससाह्वये। स्नात्वा दुर्गेश्वरं देवं पूजयेद् ह्रदमध्यगम् ॥५॥
ततस्तु लाङ्गलीतीर्थे स्नात्वा लाङ्गलिसंज्ञकम्। समर्च्य भूमिदानस्य प्राप्यते फलमुत्तमम् ॥६॥
ततो गोदावरीं गत्वा स्नात्वा सङ्गममध्यगम्। गोविन्दं च समभ्यर्च्य विष्णुलोके महीयते ॥७॥
ततो भागीरथीं गत्वा[1] स्नात्वा सङ्गमसंस्थितः। नरः प्रतर्प्य सत्कृत्य गान्धर्वपदमश्नुते ॥८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सूक्ष्मजासरोवरमाहात्म्ये अष्टचत्वारिंशच्छततमोऽध्यायः ॥

१४९

ऋषय ऊचुः—

धर्मक्षेत्रं महाक्षेत्रं प्रब्रूहि मुनिसत्तम। यत्र गत्वा न शोचन्ते अल्पभाग्या हि मानवाः ॥१॥

व्यास उवाच—

अल्पायुषोऽल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ नराः। मनोरथैरहोरात्रं नेष्यन्ति न हि संशयः ॥२॥
यावद्ध्रुवेश्वर देवं न पश्यन्ति समाहिताः। यावन्नार्चन्ति तं देवं तावच्छोचन्ति मानवाः ॥३॥

पूजन करने से सद्गति प्राप्त होती है। वहीं संगम पर 'दुर्वासाह्रद' में स्नान तथा ह्रदस्थ 'दुर्गेश्वर' का पूजन करें। तदनन्तर 'लाङ्गली'[2] तीर्थ में स्नान कर 'लाङ्गल' देव[3] का पूजन करने से भूमिदान का फल मिलता है। तत्पश्चात् 'गोदावरी' नदी में जाकर सङ्गमस्थ 'गोविन्द' का पूजन करने पर 'विष्णुलोक' प्राप्त होता है। तब 'भागीरथी' में जाकर सङ्गम में स्नान तथा 'तर्पण' करने से मानव 'गन्धर्व'-लोक में जाता है ॥ ३–८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सूक्ष्मासरोवर'-माहात्म्य नामक
एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—मुनिवर! अब आप ऐसे श्रेष्ठ 'धर्मक्षेत्र' का वर्णन करें, जहाँ जाने पर कम भाग्यशाली लोगों को दुःख न मिले ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों! कलियुग में लोग प्रायः मन्द भाग्यशाली एवं अल्पायुष्य होंगे। इसके साथ ही वे लोग मनोरथों में ही अपना समय बितायेंगे। यह स्थिति 'ध्रुवेश्वर' के दर्शन करने के पूर्व तक ही रहेगी ॥ २–३ ॥

---

१. 'गङ्गाम्'—'ख'।

२. मार्कण्डेय-पुराण (५७·२९) में 'लाङ्गली' नदी का उल्लेख मिलता है।

३. 'शिवपुराण', 'काशीखण्ड' तथा 'सौरपुराण' (अ० ६) में 'लाङ्गलीश' नामक शिवलिङ्ग का उल्लेख है।

ऋषय ऊचुः—

ध्रुवेशेति च यः ख्यातस्त्वया देवो महेश्वरः। कस्मिन्क्षेत्रे स देवेशो विद्यते मुनिसत्तम॥
कथमाराध्यते देवः केन मर्त्ये प्रकाशितः॥४॥

व्यास उवाच—

सीताया वामभागे वै पर्वतो नवकः स्मृतः। यस्मिन्सुबहवः पुण्या गुहाः सन्ति सुशोभनाः॥५॥
तस्माच्चोत्तरभागे वै दिलीपाख्या गुहा स्मृता। तत्र ध्रुवेश्वरो देवो राजते मुनिसत्तमाः॥६॥
गुर्वाज्ञया महादेवं ध्रुवो यत्र तपोधनाः। समाराध्य महेशानं ययौ ध्रुवपुरीं शुभाम्॥७॥
यस्याख्यया स देवेशो ध्रुवेशेति प्रगीयते। स तमाराध्य देवेशं प्राप मुक्तिमनुत्तमाम्॥८॥
समाराध्य च तत्रस्थं महादेवं गणप्रियम्। अल्पभाग्योऽपि मनुजो महाभाग्यो भविष्यति॥९॥
इतिहासकथां रम्यां शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः। संसर्गेणापि या पुण्या श्रुता लोके मलापहा॥१०॥
यथा प्रकीर्तिता पुण्या काकुत्स्थेन महात्मना। दिलीपाख्या दिलीपेन कामधेन्वा निषेविता॥
दिलीपो नाम राजर्षिः कोशलायां तपोधनाः। बभूव नयधर्मज्ञो दुलीद्रुहसुतो बली॥१२॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—मुनिश्रेष्ठ! आपने जिन 'ध्रुवेश्वर' की चर्चा की है, वे किस क्षेत्र में प्रतिष्ठित हैं तथा उनकी आराधना का विधान एवं उनको प्रकाश में लाने का वर्णन भी करें॥ ४॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों! 'सीता' नदी के वाम भाग में 'नवक' नाम का पर्वत है। वहाँ अनेक गुहायें हैं। 'नवक' पर्वत से उत्तर की ओर 'दिलीप' नाम की गुफा है। वहीं 'ध्रुवेश्वर' भगवान् स्थित हैं। हे तपस्वियों! यह वह स्थान है, जहाँ पर 'ध्रुव' अपने गुरु की आज्ञानुसार भगवान् शङ्कर की आराधना कर 'ध्रुवलोक'[1] को प्रस्थित हुए। इस आख्यान के अनुसार यह 'शिवलिङ्ग' ध्रुवेश्वर के नाम से विदित है। यहाँ पर शिव की आराधना से ध्रुव को मुक्ति प्राप्त होने पर यह स्थान इस नाम से सुविदित हुआ। अतः 'गणों' के प्रिय 'ध्रुवेश' की आराधना करने पर मन्दभागी भी भाग्यशाली हो जायेंगे। मुनियों! अब आप लोग दूसरे आख्यान को सुनें। जिसके कानों में पड़ते ही पापों का नाश हो जाता है। इस आख्यान को राजा दिलीप ने वर्णित किया है। उन्होंने 'कामधेनु' की सेवा भी की थी। कथा-नक इस प्रकार है—"तपोधनों! कोसल देश में राजा 'दिलीप' हुए हैं। वह नीतिज्ञ थे। उनके पिता महाशक्तिशाली 'दुलीद्रुह' थे। वह धार्मिक शासक थे। अनेक यज्ञों के सम्पादित करने

---

१. पुराणानुसार एक लोक का नाम 'ध्रुवलोक' है। वहाँ पर 'ध्रुव' की स्थिति बतलाई गई है। कुछ पुराणों के अनुसार 'ध्रुव' ने 'विष्णु' की कृपा से विशिष्ट लोक प्राप्त किया था। यह लोक 'काशीखण्ड' के अनुसार सत्यलोक के अन्तर्गत है। भागवत के अनुसार 'ध्रुव' राजा उत्तानपाद के पुत्र थे। इनके वैमा-तृक भाई 'उत्तम' थे। ध्रुव ने विमाता की झड़प सुन 'नारद' से दीक्षा ले पाँच वर्ष की अवस्था में ही तप करना आरम्भ किया। इसके फलस्वरूप इन्हें 'ध्रुवलोक' मिला। फिर राज्योपभोग कर पुनः ये वन चले गए। इनको अपने सौतेले भाई के हन्ता यक्षों का वध करना पड़ा। फिर ३६००० वर्ष पर्यन्त राज्य भोगकर बदरिकाश्रम को प्रस्थित हुए। तब वहाँ तपश्चर्या कर 'ध्रुवलोक' गए (भागवत ५।१७-२; २०. ३६; २१,१४; २३·१)।

शासयामास वसुधां ससमुद्रां सपर्वताम् । स चकार महापुण्यां राजा परमधार्मिकः ॥१३॥
क्रतून्बहुविधांश्चक्रे वाजिमेधांस्तथैव च । शतयज्ञोऽपि यस्याशु यज्ञान्दृष्ट्वा चकम्प ह ॥१४॥
स राजा गृहमायान्तं कदाचिन्मुनिसत्तमाः । पप्रच्छ प्रतिपूज्याशु अर्घ्याद्यैर्विधिपूर्वकम् ॥१५॥

राजोवाच—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि तपोधन । अद्य मे सफलं जन्म गृहं च पावितं त्वया ॥
किं करोमि तवाभीष्टां सपर्यां मुनिसत्तम । मामाज्ञापय भद्रं ते अनुगृह्य पुनः पुनः ॥१७॥

व्यास उवाच—

स तस्य नृपतेर्वाक्यं श्रुत्वा तस्यानुभाववित् । सपर्यां याचयामास जनाभिलषितां शुभाम् ।१८।

ब्राह्मण उवाच—

दुर्भगं मां महाभाग सपर्यां किं प्रदास्यसि । सुभगाय प्रदातव्या सपर्या नान्यथा क्वचित् ॥१९॥
यदि तेऽस्ति महच्छक्तिः कुरु मां सुभगं प्रभो । ततः सपर्यां गृह्णामि भवतोऽहं न संशयः ॥२०॥

व्यास उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं मुनेस्तस्य तपोधनाः । अवाप महतीं चिन्तां राजा परमधार्मिकः ॥२१॥
विचिन्त्य सुचिरं तत्र पुनस्तं समुवाच ह ॥ २२ ॥

राजोवाच—

विधेर्विलिखितां ब्रह्मँल्ललाटे जाग्रतीं लिपिम् । विना शूलधरं देवं कोन्यथाकर्तुमुत्सहेत् ॥२३॥
गृहाणान्यां सपर्यां त्वं मान्यथाकर्तुमर्हसि । अदेयामपि दास्यामि याचितां साम्प्रतं त्वया ॥२४॥

के अतिरिक्त इन्होंने अश्वमेध-यज्ञ भी किये थे। इनके यज्ञ करने से इन्द्र भी घबरा गए। कभी दिलीप ने अपने यहाँ आते हुए किसी व्यक्ति को देखा। अर्घ्यादि से सम्मानित कर उनसे पूछा ॥ ५-१५ ॥

राजा ने कहा—तपोधन! मैं आज धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ और कृतार्थ हो गया हूँ। आज मेरा जन्म सफल हुआ, क्योंकि आप के पदार्पण से मेरा घर पवित्र हुआ है। मुनिश्रेष्ठ! मैं आप का क्या अभीष्ट सिद्ध करूँ? आप मुझे आज्ञा दें ॥ १६-१७ ॥

व्यासजी बोले—राजा की बातें सुनकर अभ्यागत महोदय ने प्रभावशाली राजा से अपना अभीष्ट कहना आरम्भ किया ॥ १८ ॥

ब्राह्मण ने कहा—महाभाग! मेरे ऐसे अभागे को आप क्यों सम्मानित कर रहे हैं? किसी सौभाग्यशाली व्यक्ति को सम्मानित करने से तो अच्छा फल मिलता है। यदि आप में शक्ति है तो प्रथम मुझे सौभाग्यशाली बनायें, तदनन्तर मैं आपकी पूजा स्वीकार करूँगा ॥ १९-२० ॥

व्यासजी बोले—ऋषिवरों! तथाकथित वचनों को सुनकर राजा दिलीप बड़ी चिन्ता में पड़ गए और सोचने के बाद वे कहने लगे ॥ २१-२२ ॥

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! ब्रह्मा के द्वारा ललाटपट्ट पर लिखी हुई भाग्यरेखा को भगवान् शंकर के सिवा और कौन उलट सकता है? इसके अतिरिक्त आप जो चाहें वह माँगें। वह वस्तु अगर अदेय भी हो तो मैं आपको प्रदान कर सकता हूँ ॥ २३-२४ ॥

ब्राह्मण उवाच—

सपर्यया न मे कार्यं धनेनापि नरेश्वर। यदि ते शक्तिरस्तीह तर्हि मां सुभगं कुरु ॥२५॥
नो चेच्छापं प्रदास्यामि अपूर्णार्थो नरेश्वर ॥ २६ ॥

व्यास उवाच—

पुनरेवमृषेस्तस्य वाचमाकर्ण्य भूपतिः। जगाम महतीं चिन्तां न किञ्चित्तमुवाच ह ॥२७॥
विमृश्य सुचिरं तत्र तथेत्युक्त्वा गृहं ययौ। प्रातरेव करिष्यामि हितं ते तु तपोधनाः ॥२८॥
ततो रात्रौ महादेवं शापभीतो नरेश्वरः। स्वपन्स्वप्नागतं देवं ददर्श शूलपाणिनम् ॥२९॥
हिमालयतटे रम्ये नवको नाम पर्वतः। तस्मादुत्तरभागे वै गुहायां स ध्रुवेश्वरम् ॥३०॥
तस्योपरि स्रवन्तीं च कामधेनुं ददर्श ह। पुनस्तु कञ्चिदायान्तं भाषमाणं द्विजोत्तमम् ॥३२॥
ददर्श मा भैषीरिति तत्रैव च तपोधनाः। ततः प्रातः समुत्थाय स्मृत्वा स्वप्नोदितं वचः ॥३३॥
समुपास्य महाभागाः स सन्ध्यां सरयूतटे। सह तेन द्विजेनापि हिमवन्तं गिरिं ययौ ॥३३॥
नवकाद्रिं समारुह्य हित्वा खेचरपर्वतम्। ततो ददर्श काकुत्स्थः सवत्सां सुरभीं शुभाम् ॥३४॥
यान्तीं गुहायां पुण्यायां स्रवन्तीं पुण्यगामिनीम्। गुहायां स यथादृष्टं स्वप्ने पूर्वं तथा हरम् ॥
ददर्श सुरगन्धर्वैः सेवितं च ध्रुवेश्वरम् ॥ ३६ ॥

ध्रुवेश्वरं सिद्धसहस्रसेवितमुपास्य राजा मुनये ददौ शुभाम्।
पूजां सपर्यां विधिना महामतिर्गृह्णन् द्विजोऽभूत् सुभगस्ततः परम् ॥ ३७ ॥
ततो जगामाशु विधाय कुण्डं दत्त्वाशिषं वै मनुजेश्वराय।
स्वमाश्रमं देवपतिं स्तुवन्वै यथागतस्तेन सहेश्वरेण ॥ ३८ ॥

गते तस्मिन्महाभागे गुहां तेन प्रदर्शिताम्। दिलीपाख्यां ततो वत्राः समर्चन्ते शिवं नराः ॥३९॥
तत्रैव ऋषिकुण्डे वै स्नात्वा तां योऽपसर्पति। प्राक्तनेभ्योऽपि पापेभ्यो विमुच्यते सुभगो भवेत् ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे ध्रुवेश्वरमाहात्म्ये ऊनपञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—राजन्! मुझे पूजा एवं धन से कोई प्रयोजन नहीं है। यदि आप में शक्ति है तो मुझे सौभाग्यशाली बना दें। अपना मनोरथ पूर्ण न होने पर मैं आपको शाप दे दूँगा ॥ २५-२६ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों! ब्राह्मण की उस बात को सुनकर राजा बहुत चिन्तित हुए। कुछ देर तक वे चुप रहे। सोच कर ठीक है कहते हुए घर को प्रस्थित हुए। फिर इस बीच राजा ने ब्राह्मण से यह कहा कि मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगा। शाप से भयभीत हो राजा ने रात्रि को भगवान् शिव की प्रार्थना की। निद्रित अवस्था में 'शूलपाणि' को स्वप्न में इस प्रकार देखा—'हिमालय के रमणीय स्थल में 'नवक' नामक पर्वत है। उसके उत्तर में गुहा में स्थित 'ध्रुवेश्वर' के ऊपर दूध की धारा बहाती हुई कामधेनु को भी देखा। वहीं आते हुए किसी ब्राह्मण को 'डरो मत' यह कहते हुए देखा'। प्रातः उठकर स्वप्न की बात याद करते हुए सरयू-तट पर सन्ध्योपासन कर राजा उस ब्राह्मण के साथ हिमालय-पर्वत पर पहुँच गए। वहाँ 'खेचर-पर्वत' को त्याग नवकाद्रि' पर आरूढ हो राजा ने सवत्सा

१५०

व्यास उवाच—

तत्रव ऋषिगन्धर्वा निवसन्ति तपोधनाः । अभिषिञ्चति देवेशं सुरभी तत्र संस्थिता ॥१॥
भागीरथीं च संस्नात्वा सीतासङ्गमितां शुभाम् । ऋषिकुण्डे च संस्नात्वा मुनिना तेन कल्पिते ।
सुरभीं च समभ्यर्च्य यश्चैवं पूजयेद्धरम् । भूतले सुभगो भोगान् भुक्त्वा स्वर्गे महीयते ॥३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे ध्रुवेश्वरमाहात्म्ये पञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

कामधेनु को देखा। कामधेनु पवित्र गुफा में प्रवेश कर रही थी। साथ ही वह दूध की धारा बहा रही थी। जिस प्रकार राजा ने गुहा-विषयक स्वप्न देखा था उसी स्थिति में 'ध्रुवेश्वर' के दर्शन किए। सहस्रों सिद्धगणों से सेवित 'ध्रुवेश्वर' की उपासना कर राजा ने उस मुनि के लिए विधिपूर्वक सब पूजासामग्री दी, जिसे लेते ही वह ब्राह्मण 'सौभाग्यशाली' हो गया। तब वहाँ 'ह्रद' निर्माण करा राजा को आशीर्वाद देकर भगवान् शङ्कर की स्तुति करते हुए राजा के साथ ही वह ब्राह्मण भी यथागत अपने आश्रम की ओर चल पड़ा। उसके चले जाने पर उसके द्वारा प्रदर्शित गुहा को 'दिलीप' के नाम से प्रसिद्ध कर जनता उसकी पूजा करने लगी"। वहाँ 'ऋषिकुण्ड' में स्नान कर गुफा में जाने वाले मनुष्य पूर्वजन्मकृत पापों से मुक्त हो सौभाग्यशाली हो जाते हैं॥ २७-४०॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'ध्रुवेश्वर-माहात्म्य' नामक
एक सौ उनचासवाँ अध्याय समाप्त॥

व्यासजी बोले—तपोधनों! वहाँ पर ऋषियों और गन्धर्वों के आवास हैं। 'सुरभी' भी वहाँ शिव के ऊपर दुग्धाभिषेक करती है। 'सीता'-भागीरथी' के संगमस्थल पर 'भागीरथी' एवं 'ऋषिकुण्ड' में स्नान करते हुए 'सुरभी' तथा 'शिव' के पूजकों को पृथ्वी पर सुखभोग करने का वर मिलता है और अन्त में वे स्वर्गलोक में सम्मानित होते हैं॥ १-३॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'ध्रुवेश्वर'-माहात्म्य नामक
एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त॥

१५१

व्यास उवाच—

ततः सीतासरिन्मध्ये कचगा-सङ्गमं स्मृतम् । तत्र च ॐसरे दिव्ये स्नात्वास द्गतिमाप्नुयात् ।।
ततस्तु यक्षगां गत्वा स्नात्वा निष्कलमषो भवेत् । खेचराद्रिसमुद्भूता सीतायाः सङ्गमं गता ।।
तस्या वामे खेचरो नाम देवो मूले देवीं वैजयन्तीं च मालाम् ।
धत्तूराख्यां सङ्गमे चापि तस्याः शुद्धासीतासङ्गमे संययौ सा ।। ३ ।।
ततो देवनदीं स्नात्वा सीतासङ्गमसङ्गताम् । देवलोकमवाप्नोति मानवो मुनिसत्तमाः ।।४।।
ततस्तस्मान्महातीर्थे तारिणीसङ्गमध्यगे । जीवदाख्ये नरः स्नात्वा प्राप्नुते परमां गतिम् ।।
ततस्तु राक्षसीसङ्गं धारानद्यास्ततः परम् । धारामूले महादेवी देवपर्वतवासिनी ।।६।।
विद्यते तां समभ्यर्च्याशु तां स्नात्वा याति शाश्वतीम् । यूपायाः सङ्गमे पुण्ये यूपतीर्थे तपोधनाः ।।
स्नात्वा यत्र नृपो बाहुर्यज्ञयूपा निरोप्य वै । वैकुण्ठभवनं प्राप्तस्तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।।८।।
ततो दृष्टिसरिच्छ्रेष्ठा खेचराद्रिसमुद्भवा । सङ्गमैर्बहुभिः पूर्णा पुण्यां सीतानदीं ययौ ।।९।।
तस्यास्तु निर्झरे दिव्ये शङ्खे शाख्योऽस्ति वै द्विजाः । यस्य स्मरणमात्रेण गङ्गास्नानफलं लभेत्।।
दृष्टिपत्रासरिन्मध्ये स्नात्वा दिग्विजयी भवेत् ।
दृष्टिसीतानदीमध्ये स्नात्वा च बलवान् भवेत् ।। ११ ।।
मालिकापादसम्भूतां सुदिव्यां मालिकानदीम् । गत्वा स्नात्वा च मनुजो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

व्यासजी कहते रहे – तब 'सीता' के साथ 'कचगा' का संगम होता है । तत्रस्थ 'ओम्-सर' में स्नान करने से सद्गति प्राप्त होती है । तत्पश्चात् 'खेचर' पर्वत से उत्पन्न 'यक्षगा' नदी 'सीता' में मिलती है । उसमें स्नान करने पर पापों से छुटकारा मिलता है । उसके बाईं ओर 'खेचर' नामक शिव हैं[1] और उसके मूल में 'वैजयन्ती' तथा 'माला' देवी हैं । 'धत्तूरा' देवी उनके सङ्गम में स्थित हैं । आगे चल कर वह 'सीता' नदी में मिलती है । तब 'देवनदी' आकर सीता में मिलती है । वहाँ स्नान करने से 'देवलोक' प्राप्त होता है । तदनन्तर 'तारिणी' के सङ्गम में 'जीवद' नामक महातीर्थ है । वहाँ स्नान करने से 'परमगति' (नित्य मुक्ति) प्राप्त होती है । तत्पश्चात् 'राक्षसी' नदी का 'धारा' के साथ सङ्गम है । 'धारा' के मूल में देवपर्वत-वासिनी' देवी हैं । उनकी पूजा कर 'धारा' नदी में स्नान करने से 'नित्य मुक्ति' मिलती है । ऋषिवरों ! 'यूपा' के सङ्गम में पवित्र 'यूप' तीर्थ में स्नान करने से ('बाहुराज' की यज्ञशाला-सम्बन्धी स्तूप के समीप) वैकुण्ठ-धाम मिलता है । तत्पश्चात् 'खेचर' पर्वत से उद्भूत 'दृष्टि' नाम की नदी अनेक छोटी नदियों को अपने में समेटती हुई 'सीता' के साथ मिल जाती है । उसके झरने में 'शंखेश' नामक शिव हैं, जिनके स्मरण मात्र से गङ्गास्नान का फल मिलता है । तत्पश्चात् 'दृष्टि' और 'पत्रा' नदी के मध्य स्नान कर मानव दिग्विजयी होता है । इसके साथ ही वह शक्तिशाली भी हो जाता है । फिर 'मालिका' के चरणों से निकलने वाली 'मालिका' नदी है । उसमें स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मत्व प्राप्त करता है । 'मालिका' देवी का

---

१. 'खेचरनाथ' नाम से प्रसिद्ध हैं ।

स्मृत्वाऽपि मालिकां देवीं वाङ्मयं प्राप्नुयान्नरः । ततः सीतासरिन्मध्ये देवतीर्थमिति स्मृतम् ॥
तत्र स्नात्वा च वेतालान्कूष्माण्डान्ग्रहनायकान् । सम्भाव्य पूजयेद्देवं ह्रदमध्यगतं हरम् ॥१४॥
समर्च्य ब्रह्मलोकाप्तिर्जायते मुनिसत्तमाः । ततो ब्रह्मकुशाख्ये वै तीर्थे स्नात्वा महाकुशे ॥१५॥
गत्वा गदाधरे तीर्थे स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् । पिण्डदानं विधायाशु गयाश्राद्धफलं स्मृतम् ॥
सीताकलावतीपुण्ये सङ्गे हि विधिपूर्वकम् । निमज्य पिण्डदानं च कृत्वा तत्र तपोधनाः ॥१७॥
कालीशं पूजयेद्देवं सुदिव्यं ह्रदमध्यगम् । समुत्तार्य पितृकुलान्मानवो याति शाश्वतीम् ॥१८॥
यत्र हंसबकौ पुण्यौ दृष्ट्वा सीतां महानदीम् । महेन्द्रभवनं दिव्यं प्रापतुर्देवसेवितम् ॥१९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवतीर्थमाहात्म्ये एकपञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

१५२

ऋषय ऊचुः—

केन पुण्येन तौ विप्र प्रापतुस्त्रिदशालयम् । इष्टापूर्तादिकं यज्ञं ताभ्यां किं चरितं वद ॥१॥

व्यास उवाच—

इष्टापूर्तादिकं वापि न ताभ्यां मुनिसत्तमाः । न पुण्यं न च यज्ञं च चक्रतुस्तौ महाबलौ ॥२॥

स्मरण करने पर वाक्सिद्धि प्राप्त होती है । तदनन्तर 'सीता' के मध्य में 'देवतीर्थ' है । वहाँ स्नान कर 'वेताल', 'कूष्माण्ड' तथा 'ग्रहप्रमुखों' का पूजन कर 'ह्रद' के मध्यस्थ 'शिव' के पूजन करने का फल 'ब्रह्मलोक' की प्राप्ति है । तदनन्तर 'ब्रह्मकुश' तीर्थ में स्नान कर 'महा-कुश' तीर्थ की ओर आते हुए 'गदाधर'-तीर्थ में पहुँच जाये । वहाँ 'स्नान', 'तर्पण' तथा 'पितृ-कार्य' सम्पादित करने से 'गयाश्राद्ध' का फल मिलता है । ऋषिवरों ! सीता-कलावती के सङ्गम में विधिपूर्वक स्नान, तर्पण एवं पिण्डदान कर 'ह्रद'मध्यस्थ 'कालीश' देव का पूजन करना आवश्यक है । इस विधान को करने से मानव पितरों का उद्धार कर शाश्वत मुक्ति प्राप्त करता है । यहाँ सीता' महानदी के दर्शन कर पुण्यचरित 'हंस' और 'बगुला' देवों से सेवित 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित हुए हैं ॥ १-१९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'देवतीर्थ'-माहात्म्य नामक
एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मर्षे ! कृपया यह बतलायें कि वे दोनों पक्षी—'हंस' और 'बक'—किस पुण्य के कारण स्वर्ग पहुँचे ? अथवा पूर्वजन्म में किये हुए किन्हीं यज्ञादि के फल से वे स्वर्ग को गए ? ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! उन पक्षियों ने कोई यज्ञानुष्ठान तो सम्पादित नहीं

निवसन्तौ कूर्मपुरं तपहीनौ तपोधनाः । कदाचित्तौ महाभागौ प्राप्य सीतानदीतटम् ॥३॥
विविशतुर्महापुण्यौ बकहंसौ तपोधनाः । हंसस्तु दक्षिणे तीरे बको वामे विवेश ह ॥४॥
ब्रुवतुस्तौ[1] कथां दिव्यां सीतासीकरसेवितौ । कथां कुर्वंस्ततो हंसो बकं पप्रच्छ धर्मवित् ॥५॥

हंस उवाच—

कमाराध्य च मे मुक्तिर्भविष्यति वदस्व वै । ध्यातः स्मृतः स्तुतश्चापि कः प्रयच्छति सद्गतिम् ॥

बक उवाच—

स्मर विष्णुं महाभाग स ते मुक्तिं विधास्यति । न चात्मतरणं सम्यक् जानामि तद्वदस्व वै ॥

हंस उवाच—

तरिष्यसि महाभाग स्मर कालीश्वरं हरम् । लोकानां तारणार्थाय सैव जागर्ति भूतले ॥८॥

व्यास उवाच—

एवं सम्भाषमाणौ तौ सीतासीकरसेवितौ । मुक्तौ बभूवतुः पुण्यौ हित्वा सिद्धकलेवरौ ॥९॥
तयोः शरीरं तत्रैव दृश्यतेऽद्यापि भूधरे[2] । यत्र हंसबकौ पुण्यौ सीतासीकरसेवितौ ॥१०॥
मुक्तौ बभूवतुर्धन्यौ स्मृत्वा तौ हरिशङ्करौ । तस्मात्तीर्थं न पश्यामि सरय्वामपि सुव्रताः ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवतीर्थमाहात्म्ये द्विपञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

किया । तपोधनों ! तपोहीन होते हुए भी दोनों पक्षियों ने 'कूर्मपुर' में निवास किया । किन्तु वे किसी समय अनायास 'सीता' नदी के तट पर पहुँच गए । उन दोनों में से 'हंस' तो नदी के दाहिने किनारे तथा 'बक' वायें किनारे बैठ गया । वहाँ 'सीता' नदी के जलकणों से आनन्दित हो परस्पर कथा-वार्ता करते हुए 'हंस' ने 'बक' से पूछना आरम्भ किया ॥ २-५ ॥

हंस बोला—मित्र ! तुम यह वतलाओ कि किसकी आराधना करने से मुझे मुक्ति मिल सकती है ? किसका ध्यान, स्तुति तथा स्मरण करने से मेरी सद्गति होगी ? ॥ ६ ॥

बगुले ने कहा—महाभाग ! 'विष्णु' का स्मरण करो, वे तुम्हें मुक्ति प्रदान करेंगे । मुझे अपनी मुक्ति का उपाय विदित नहीं है । उसे तुम वतलाओ ॥ ७ ॥

हंस बोला—महाभाग ! तुम 'कालीश्वर' शिव का स्मरण करो । ऐसा करने से तुम तर जाओगे । संसार का उद्धार करने हेतु ही उनका पृथ्वी पर अवतार हुआ है ॥ ८ ॥

व्यासजी ने ऋषियों से कहा—ऋषिवरों ! इस प्रकार 'सीता' नदी के जलकणों के स्पर्श से प्रफुल्लित हो परस्पर भाषण करते हुए वे दोनों-'हंस' और 'बगुला'-क्रमशः 'विष्णु' और 'शिव' का स्मरण करते-करते मुक्त हो गए । उनका शरीर अब भी वहाँ दृष्टिगोचर होता है । व्रतधारियों ! जहाँ 'सीता' के जलस्पर्श से सेवित 'विष्णु' एवं 'शिव' का स्मरण कर 'हंस' और 'बगुले' भी मुक्त हो जायँ, उससे बढ़कर मुझे 'सरयू' में भी कोई तीर्थ नहीं दिखाई पड़ता ॥ ९-११ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'देवतीर्थ'-माहात्म्य नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'ऊचतुस्तौ'—इति परिष्कृतः पाठः 'ख' पुस्तके । २. तयोः शरीरे तत्रैव दृश्येतेऽद्यापि भूसुराः'—'ख' ।

१५३

व्यास उवाच—

तस्माद्धंसबकाख्यं च काकोलूकं ततः परम् । एतेषु स्नानमात्रेण प्राप्यते शिवमन्दिरम् ॥१॥
ततः शैलवतीनामा खेचराद्रिसमुद्भवा । सीतायाः सङ्गमे पुण्या संययौ सा तपोधनाः ॥२॥
खेचराद्रेर्निपतिता यस्यां धारा प्रदृश्यते । तस्यां स्नात्वा च मनुजो ब्रह्मलोके महीयते ॥३॥
धाराशैलवतीमध्ये राजते भुवनेश्वरी । तत्र स्नात्वा च तां पूज्य मानवः सत्पथं व्रजेत् ॥४॥
तस्या वामे महापुण्यो नाम्ना मधुगिरिः स्मृतः । महाकालाभिधानेन संज्ञितं माणवेश्वरम् ॥
समर्च्यामोप्सितान् कामान् प्राप्नुते नान्यथा क्वचित् ॥ ६ ॥
सीता-शैलवती-मध्ये पूर्ववत्संविधाय वै । कुलत्रयं समुत्तार्य शिवलोके महीयते ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शैलवतीमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—उसके बाद 'हंस-बक' नामक तीर्थ है। तदनन्तर 'काकोलूक' तीर्थ है। इन तीर्थों में स्नान करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है। तपोधनों! तत्पश्चात् 'खेचराद्रि' से निकलने वाली 'शैलवती' नदी 'सीता' से मिलती है। 'खेचराद्रि' से गिरती हुई 'धारा' जहाँ दिखाई देती है, उसमें स्नान कर मानव 'ब्रह्मलोक' में प्रतिष्ठित होता है। 'धारा' और 'शैलवती' के मध्य 'भुवनेश्वरी' सुशोभित हैं। वहाँ स्नान तथा 'भुवनेश्वरी' का पूजन करने से मनुष्य सन्मार्गगामी होता है। उसके बाईं ओर 'मधुगिरि' है। वहाँ 'महाकाल' के नाम से 'माणवेश्वर' की पूजा कर मानव की मनोभिलाषपूर्ति होती है। 'सीता-शैलवती' के सङ्गम में उपर्युक्त विधान के अनुसार आचरण कर मरने पर तीनों कुलों का उद्धार होने के साथ ही मानव 'शिवलोक' प्राप्त करता है ॥ १-७ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शैलवती'-माहात्म्य नामक
एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥

१५४

व्यास उवाच—

खेचराद्रीति यो ख्यातस्तस्मात्पश्चिमसंस्थितः । शैलेति विद्यते पुण्यः शैलः शैलोपमः शुभः ।।१।।
तस्योद्देशे महापुण्या गुहा देवर्षिसेविता । विद्यते सुरगन्धर्वैः सेविता सुमनोहरा ।।२।।
तत्रार्बुदेश्वरो देवो जागर्ति मुनिसत्तमाः । दर्शनात्तस्य देवस्य ब्रह्महाऽपि च शुध्यति ।।३।।
तत्रैवार्बुदलिङ्गानि सन्ति देवस्य शूलिनः । अर्बुदाख्यगुहायां वै देवमर्बुदनायकम् ।।४।।
देवदानवयक्षाश्च समर्चन्ति न संशयः । पातालभुवनेशाद्याः केदाराद्याश्च मूर्तयः ।।५।।
सन्ति तत्रार्बुदाख्ये तु विवरे मुनिसत्तमाः । महर्षयो महाभागाः समाहूय वरेश्वरीम् ।।६।।
समर्चन्ति महादेवं सुरभीं वै तया सह । महर्षिभिः समाहूता सुरभी तत्र शङ्करम् ।।७।।
अभिषिञ्चति देवेशं नीलमेघसमोपमम् । सुस्मरा च सुमेधा च सुभगा च तथा गुहाः ।।८।।
एतास्तिस्रो महापुण्या गुहास्तत्र विनिर्मिताः । सन्ति तत्र महाभागा देवदेवस्य शूलिनः ।।९।।
स्नात्वा शैलवतीमध्ये ध्रुवतीर्थे तथैव च । अर्बुदेश समभ्यर्च्य नरः पापैः प्रमुच्यते ।।१०।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे अर्बुदेश्वरमाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशतमोऽध्यायः ।।

व्यासजी कहते रहे—'खेचराद्रि' के पश्चिम भाग में शैल के समान 'शैल' नामक पर्वत स्थित है। उसके एक ओर देवों और ऋषियों से सेवित एक गुफा है। वह अत्यन्त मनोहर है। वहाँ 'अर्बुदेश्वर' शिव विराजमान हैं। उनके दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या करने वाला भी पाप-रहित हो जाता है। वहाँ पर शिवजी के असंख्य लिङ्ग हैं। किन्तु वहाँ गुफा में प्रमुख 'अर्बुद' की पूजा करने में देव, दानव, यक्ष आदि लगे रहते हैं। वहीं गुफा में 'पाताल-भुवनेश्वर' 'केदार' आदि के विग्रह भी हैं। वहाँ पर महाभागो! महर्षिगण 'वरेश्वरी' का आवाहन कर 'सुरभी' के साथ अर्बुदेश्वर' का पूजन करते हैं। महर्षियों से आवाहित सुरभी भी वहाँ नील मेघ की जलवर्षा के समान दुग्धवर्षा करती है। 'सुस्मरा', 'सुमेधा', 'सुभगा' नाम की तीन पवित्र गुफाएँ भी वहाँ हैं। 'शैलवती' के मध्य एवं 'ध्रुवतीर्थ' में स्नान कर 'अर्बुदेश्वर'[1] का पूजन करने से मानव पापमुक्त हो जाता है ।। १-१० ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'अर्बुदेश्वर-माहात्म्य'-नामक
एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'महाभारत' (वनपर्व अ० ८२) में 'अर्बुदतीर्थ' का उल्लेख मिलता है। तदनुसार 'भद्रवट'-क्षेत्र व 'चर्मण्वती' में स्नान के पश्चात् वहाँ से चल कर हिमवत्पर्वत से निकले 'अर्बुदतीर्थ' में जाना कहा गया है। पहले यहाँ पृथ्वी का छिद्र था। 'अर्बुदतीर्थ' के समीप सुप्रसिद्ध 'वसिष्ठाश्रम' की स्थिति भी कही गई है। पुनः वहाँ से 'पिङ्ग' तीर्थ की ओर प्रस्थान करने का उल्लेख है।'

व्यास उवाच—

सीताया दक्षिणे भागे शाकल्यस्याश्रमः स्मृतः । महर्षिणा समाहूता शाकल्या सरितां वरा ।१।
तस्माद्विनिःसृता पुण्या सीतां पुण्यनदीं ययौ । मूले तस्या महादेवी शाकल्या रतिदायिनी ।२।
तां सुपूज्य च स्वाभीष्टं कामं प्राप्य ततो व्रजेत् । तीर्थे रोपणकाख्ये वै वृन्दाया मध्यगे शुभे ।।
स्नात्वा मण्डलसंज्ञं वै नागं सम्पूज्य मानवः । कौपीं चापि महादेवीं समर्च्य मुनिसत्तमाः ।।४।।
समुद्धृत्य कुलशतमश्नुते सत्फलं नरः । शाकल्याः सङ्गमे स्नात्वा बाणायाः सङ्गमं व्रजेत् ।५।
बाणगङ्गां समुत्तार्य केशवत्यास्तु सङ्गमे । केशवत्या महत्सङ्गं त्यक्त्वा शेषवतीं व्रजेत् ।।६।।
स्नात्वा चैतेषु पुण्येषु सङ्गमेषु तपोधनाः । सत्यलोकमवाप्नोति मानवो नान्यथा क्वचित् ।७।
ततः पुण्यैर्महातीर्थैर्नदी गुल्मशतैर्युता । सीतायां संययौ पुण्या तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।।८।।
गुल्मावतीसङ्गममध्यगां शिवां महेश्वरं सङ्गममध्यपूजितम् ।
ह्रदे ह्यदृश्यं पुरुषैस्तथेतरैर्नरः शिवं याति समर्च्य शङ्करम् ।। ९ ।।
ततो यन्त्रतटो नाम तस्या दक्षिणसंस्थितः । गिरिर्घण्टाद्रिसंलग्नो नानाधातुविराजितः ।।१०।।
तमारुह्य सत्यतटं गणं सम्पूज्य मानवः । भुक्त्वा च निखिलान्भोगाञ्छतं जीवति मानवः ।११।

व्यासजी ने कहा—'सीता' के दक्षिण में 'शाकल्य'[१] का आश्रम है। इनके द्वारा आहूत 'शाकल्या' नदी आश्रम से जाकर 'सीता' नदी में मिलती है। उसके मूल में 'शाकल्या' देवी का पूजन कर मानव अपने कार्य को सिद्ध कर लेता है। तदनन्तर 'वृन्दा' नदी के मध्य 'रोपणक' नामक तीर्थ है। वहां स्नान कर 'मण्डल'[२] नामक नाग का पूजन करना चाहिये। फिर 'कौपी' देवी की पूजा करने से सातकुलों का उद्धार होता है। तदनन्तर 'शाकल्या' नदी के सङ्गम में स्नान कर 'बाणा' के संगम की ओर बढ़े। फिर 'बाणगङ्गा'[३] को पार कर 'केशवती' के संगम में जाना चाहिए। 'बाणगङ्गा' को पार कर फिर 'शेषवती' के सङ्गम में जाकर स्नान करें। मुनिवरों ! इन सङ्गमों में स्नान करने से 'सत्यलोक' मिलता है। तब महातीर्थों से सम्बद्ध सैकड़ों झाड़ियों से बाहर आती हुई 'गुल्मावती' नदी 'सीता' में मिलती है। वहां स्नान करने से 'स्वर्ग' मिलता है। 'गुल्मावती' के सङ्गम के मध्य ह्रद में अदृश्य रूप से स्थित 'शिवा' (पार्वती) तथा 'शिव' का पूजन करने से मानव 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित होता है। तब उसके

---

१. एक प्राचीन ऋषि जो जाङ्गल के पिता थे। इन्होंने 'ऋग्वेद' का पदपाठ पहले-पहल ठीक किया था। 'स्कन्दपुराणान्तर्गत' 'ब्राह्मखण्ड' के 'सेतुमाहात्म्य' के अनुसार पाण्डय-नरेश 'शङ्कर' के हाथों व्याघ्र के भ्रम से सपत्नीक इनकी मृत्यु हो गई थी।

२. 'मत्स्यपुराण' (११३·५६) में एक पहाड़ी जनपद या राज्य का नाम 'मण्डल' बतलाया है—"कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्वासमुद्गकाः । त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरैः सह ।।"

३. 'रामायण' में 'हिमालय' के 'सोमगिरि' से निकली नदी को 'बाणगङ्गा' कहा है। वह 'रावण' के बाण चलाने से निकली थी।

तस्मात्पिङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निःसृता मुनिसत्तमाः । तथा सत्या महापुण्या निःसृता पुण्यदायिनी ।
तयोः सङ्गममध्ये वै कल्माषेशं प्रपूजयेत् । पीता-सीतासरिन्मध्ये तत्र स्नानं विधाय वै ॥१३॥
मन्मथं पूजयेद्देवं समर्च्य च ततः परम् । बालायाः सङ्गमे स्नात्वा बालां सम्पूज्य शाङ्करीम् ॥
पणवासङ्गमे गच्छेद्धरीतक्यास्तु सङ्गमे । स्नात्वा ब्रह्मसरं दिव्यं गत्वा स्नात्वा विधाय वै ॥
दिननाथह्रदे स्नात्वा दिननाथं प्रपूज्य वै । ततो दिलीपह्लदे स्नात्वा दिलीपेशं महेश्वरम् ।१६।
वामे तत्र महाभागाः पूज्य पापात्प्रमुच्यते । दिलीपो यत्र राजर्षिः सूर्यान्वयविवर्धनः ॥१७॥
मुक्तोऽभूद्देवदेवेशं समाराध्य तपोधनाः । तत्र स्नात्वा च देवेशं यः समर्चति मानवः ॥१८॥
सायुज्यं देवदेवस्य प्राप्नुते नहि संशयः । ततः सरस्वतीदिव्यसङ्गमे विनिमज्य वै ॥१९॥
अन्नपूर्णां महादेवीमर्चयेद् ह्रदमध्यगाम् । ददात्यन्नं समृद्धि सा[1] पूजिता परमेश्वरी ॥२०॥
ततस्तु गण्डकीं गत्वा शेषाद्रिं संविलङ्घ्य वै । गङ्गायां स्नानसदृशं स्नात्वा पुण्यमवाप्यते ।२१।
दिव्या पत्राद्रिसम्भूता गण्डकी मुनिसत्तमाः । सीतायाः सङ्गमे पुण्या आययौ पथि पूरिता ॥
तत्र सङ्गममध्ये च चिताभस्मविभूषणम् । प्रतर्प्य च पितॄन् सर्वान् गण्डकीशं समर्चयेत् ॥२३॥
गोदानशतजं पुण्यं प्राप्य सर्वं नरो दिवम् । प्राप्नुते नात्र सन्देहः सत्यमेव मयोदितम् ॥२४॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सीतामाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

दक्षिण में अनेक धातुओं से युक्त 'सत्यतट' नामक पर्वत है । उस पर आरूढ हो 'सत्यतट'गण का पूजन कर मानव सुख भोगता हुआ सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । उस पर्वत से 'पिङ्गा' तथा 'सत्या' नदियाँ निकलती हैं । इनके संगम के मध्य 'कल्माषेश' का पूजन करें । फिर 'पिङ्गा' और 'सीता' के मध्य स्नान कर 'मन्मथ' का पूजन कर 'बाला' के संगम में स्नान करना चाहिये । वहाँ 'बाला' देवी का पूजन कर 'पणवा' तथा हरीतकी' के संगम में जायँ । पुनः दिव्य 'ब्रह्मसर' में स्नान कर 'दिननाथ' सर में स्नान करें । वहाँ 'दिननाथ' का पूजन विहित है । तत्पश्चात् 'दिलीप-ह्लद' के वाम भाग में 'दिलीपेश' का पूजन कर मानव पाप-निर्मुक्त होजाता है । तपोधनों ! सूर्य-कुल में उत्पन्न राजा दिलीप भगवान् शंकर की आराधना करने से मुक्त हो गए । अतः यहां 'शङ्कर' का पूजन करने से मानव को 'शिवसायुज्य' लाभ होता है । तव 'सरस्वती' के दिव्य संगम में स्नान कर 'ह्लद' के मध्य में विराजमान 'अन्नपूर्णा' का पूजन कर अन्न-लाभ होता है । फिर 'शेषाद्रि' को पार कर 'गण्डकी' के समीप जा स्नान करने से 'गंगा-स्नान' का फल मिलता है । मुनिवरों ! 'पंत्राद्रि' से पवित्र 'गण्डकी' निकलकर 'सीता' के साथ मिलती है । उस 'संगम' के मध्य चिताभस्मविभूषित 'गण्डकीश' हैं । वहां संगम में स्नान तथा पितृतर्पण कर 'गण्डकीश' का पूजन करना चाहिये । ऐसा करने से निःसन्देह सौ गोदान करने का फल मिलता है ॥ १-२४ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सीतामाहात्म्य'-नामक
एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'ददात्यन्नसङ्ग्रहं सा'—'ख' ।

ऋषय ऊचुः—

गण्डक्याश्च समुत्पत्तिं कथयस्व तपोधन। कुत्र सा गण्डकी नाम्ना बभूव वरर्वाणनी[1] ॥१॥

व्यास उवाच—

खेचराद्रीति यः ख्यातस्तस्मात्पत्राख्यपर्वतः। पश्चिमे विद्यते पुण्यस्तत्रैवाभूत्सरिद्वरा ॥२॥
गण्डकी सा कपोतेन समाहूता तपस्विना। कपोतः कश्चिदारण्ये तपस्वी सम्बभूव ह ॥३॥
स कदाचिन्महादेवं प्रार्थयित्वा तु गण्डकीम्। स्नानार्थं याचयामास भक्त्या सन्तुष्य शङ्करम् ॥
ततस्तस्मै महादेवो गण्डकीं पत्रपर्वतात्। समुद्धृत्य ददौ तस्मै सुप्रभां चारुगामिनीम् ॥५॥
कपोतस्तामनुप्राप्य स्नात्वा संवाहयत्ततः। पुण्यतोयां महाभागां सुपुण्यां पुण्यदायिनीम् ॥६॥
शालग्रामवने गत्वा स्नात्वा वाऽपि हि गण्डकीम्। यत्पुण्यं प्राप्यते सम्यक् स्नात्वा तां प्राप्नुयान्नरः।
क्रान्तिः पुण्यवती चैव तथा मधुमती सरित्। एतास्तिस्रो महापुण्यास्तया सङ्गम्य संगताः ।८।
सीतानदीं महापुण्यां सर्वाः पश्चिमवाहगाः। गण्डकीसीतयोर्मध्ये चिताभस्मविलेपनम् ॥९॥
हरं श्मशाननिलयं स्नात्वा सम्पूज्य भूसुराः। प्रतर्प्य च पितृन्देवान्वल्लभो जायते नरः ॥१०॥
तदूर्ध्वं गोमती पुण्या यज्ञशलसमुद्भवा। वनं गोविन्दसंज्ञं वै पुण्या दक्षिणवाहिनी ॥११॥
स्नात्वा तां मुनिशार्दूलाः सीतासङ्गमसङ्गताम्। समर्च्य श्रीधरं देवं सङ्गमे शाश्वतीं व्रजेत् ॥

ऋषियों ने पूछा—हे तपोधन! आप कृपया सुन्दर 'गण्डकी' की उत्पत्तिं तथा उसके नाम के सम्बन्ध में वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने कहा—मैं 'खेचर' पर्वत का वर्णन कर चुका हूँ। उससे पश्चिम की ओर 'पत्र' नामक पर्वत है। वही 'गण्डकी' का उत्पत्तिस्थल है। उस पर्वत पर किसी तपस्वी 'कपोत' ने 'गण्डकी' का आवाहन किया था। वह तपस्वी वहीं अरण्य में निवास करता था। उसने भगवान् शिव को प्रसन्न कर अपने स्नानार्थ 'गण्डकी' को माँगा। भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर कलकल निनाद करने वाली एवं कान्तिसम्पन्न गण्डकी नदी कपोत ऋषि को अर्पित कर दी। ऋषि ने उस नदी को प्राप्त कर उसमें स्नान कर उसे आगे प्रवाहित किया। 'शालग्राम'[2] वन में प्रविष्ट हो 'गण्डकी' में स्नान करने से जो पुण्यलाभ होता है, वही फल केवल गण्डकी में स्नान करने पर भी मिलता है। 'क्रान्ति', 'पुण्यवती' तथा 'मधुमती' नदियाँ भी उसमें आकर मिलती हैं। उपर्युक्त सभी पश्चिमवाहिनी नदियाँ 'सीता' नदी में समाविष्ट हो जाती है। इस प्रकार 'सीता-गण्डकी' के मध्य श्मशानवासी 'चिताभस्मधारी' शङ्कर का पूजन, स्नान, तर्पणादि कर मानव सर्वप्रिय हो जाता है। उसके ऊर्ध्व-भाग में 'यज्ञ' पर्वत से निकलने वाली 'गोमती' दक्षिणवाहिनी होकर गोविन्दवन में प्रविष्ट

---

१. 'बहुर्वाणता'—'ख'। २. 'भागवत' तथा 'विष्णुपुराण' में 'शालग्रामगिरि' का उल्लेख मिलता है। यहाँ 'काले' और 'गोल' पत्थर मिलते हैं। 'शालग्रामशिला' में विष्णु का वास माना जाता है। अतः यह नदी 'कृष्णगण्डकी' कहलाती है।

तत आमर्दकी पुण्या दक्षशैलसमुद्भवा। सीतायाः सङ्गमे पुण्या सङ्गता मुनिसत्तमाः ॥१३॥
आमर्दकीदिने तत्र स्नात्वा सम्पूजयेद्धरिम्। आमल्या सहसजस्तत्र सूर्यकोटिसमो भवेत् ॥१४॥
ततस्तु बहुभिः पूर्णा सङ्गमे सा सरिद्वरा। वैतालाद्रेः कटिं भित्त्वा ययौ सा खुरपर्वतम् ॥१५॥
तत्रापि तं विलङ्घ्याशु ययौ मध्यभुवं शुभम्*। कर्णालीसङ्गमं प्राप्य पूज्यते सा सुरैरपि ॥१६॥
सीताकर्णालिमध्ये वै यूपकेतुं महेश्वरम्। समर्च्य शिवलोकाप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥१७॥
सीतानद्यास्तु माहात्म्यं यः शृणोति समाहितः। कुलत्रयं समुत्तार्य स याति शिवमन्दिरम् ॥१८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सीतानदीमाहात्म्ये षट्पञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

होती हुई 'सीता' के साथ मिल जाती है। उस 'सङ्गम' में स्नान एवं 'श्रीधर' (विष्णु) का पूजन कर मानव सद्गति प्राप्त करता है। तब दक्षशैल से उत्पन्न 'आमर्दकी' नदी सीता से मिल जाती है। 'आमर्दकी' में स्नान एवं विष्णु पूजा करने से मानव कोटि सूर्य के समान कान्तियुक्त हो जाता है। तदनन्तर अपने में अनेक नदियों को समाविष्ट करती हुई वह नदी 'वैताल'[1] पर्वत के मध्य को भेद कर 'खुर' पर्वत में प्रविष्ट होती है। उसे पार कर फिर 'मध्यभूमि' (मैदानी भाग) की ओर बढ़ती है।* आगे चलकर 'कर्णाली' के साथ इसका सङ्गम होता है। वहाँ वह देवों से भी पूजित हुई है। 'सीता' और 'कर्णाली' के मध्य 'यूपकेतु' नाम शङ्कर का पूजन करने से 'शिव'लोक प्राप्त होता है। जो व्यक्ति सावधानी के साथ 'सीता' नदी का माहात्म्य सुनता है, वह अपने तीनों कुलों का उद्धार कर 'विष्णुलोक' प्राप्त करता है॥ १ – १८॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सीतामाहात्म्य'-नामक
एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त॥

---

* आदर्शपुस्तके अत्र 'त्रुटिः' इति लिखितं वर्तते। 'ख' पुस्तके तु नैव लिखितम्।

१. सामान्यतः 'वेताल' शब्द एक भूतयोनिविशेष के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन भूतों को पुराणों में कुछ श्रेष्ठ बतलाया गया है। ये श्मशानवासी कहे गए हैं।

* यहाँ पर भी आदर्श पुस्तक के अनुसार कुछ अंश त्रुटित है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'कर्णाली' के साथ मिलने के पूर्व कुछ स्थानों का वर्णन नहीं किया गया हो।

१५७

ऋषय ऊचुः—

घण्टापर्वतसंलग्नो यज्ञाद्रिर्यस्त्वयेरितः। तस्मिन्क्षेत्राणि पुण्यानि कानि सन्ति तपोधन ॥१॥
तत्र के पर्वता लग्नाः सन्ति पुण्यास्तपोधन। का नद्यः कानि पुण्यानि लिङ्गानि वद विस्तरात्।

व्यास उवाच—

घण्टापर्वतसंलग्नो यः पुण्यो यज्ञपर्वतः। तस्मात्तु पूर्वभागे वै पुण्यो बन्धूकपर्वतः ॥३॥
तस्मिन् पुण्ये महादेवी स्थाने स्थाने प्रपूज्यते। तस्मात्तु भार्गवी नामा भार्गवाश्रमसम्भवा ॥४॥
सम्भूता सरयूं पुण्यां सङ्गता मुनिसत्तमाः। तां स्नात्वा च मनुजः कविवज्जायते भुवि ॥५॥
तस्मात्सङ्गमसम्भूता सूत्रा नामास्ति वै सरित्। तत्र मध्ये सुरवरं शिलायां पूजयेद् गणम् ॥
तत्र यज्ञगिरिः पुण्यो मध्ये यज्ञं प्रजापतिः। कृत्वा सन्तर्पयामास सप्तर्षीन्सप्तमानवान् ॥७॥
तत्रैव यूपा दृश्यन्ते प्रजापतिविरोपिताः। यथा जलमयं पुण्यं स्थलं तत्र तपोधनाः ॥८॥
तत्र स्नात्वा मृता वापि यान्ति विष्णोः परं पदम्। ततस्तस्मान्महाभागाः पश्चिमे फलपर्वतः।
यत्र कृष्णस्य पादाङ्कौ शिलायां विद्येते शुभौ। यौ दृष्ट्वा भीमसेनस्य यशो गायन्ति मानवाः।

ऋषय ऊचुः—

कथं हि भीमसेनस्य हरेश्चरणपङ्कजौ। दृष्ट्वा भूमण्डले विप्राः कीर्ति कुर्वन्ति मानवाः ॥११॥

व्यास उवाच—

युधिष्ठिरस्य राजर्षे राजसूय उपस्थिते। जराऽसुरं तु राजानं ज्ञात्वा राजगृहेश्वरम् ॥१२॥

ऋषियों ने पूछा—तपोधन ! आपने 'घण्टा-पर्वत' से मिले हुए 'यज्ञ-पर्वत' का उल्लेख किया है। उस पर्वत पर कौन से पवित्र क्षेत्र हैं ? उससे संलग्न और कौन से पर्वत, नदियाँ तथा शिवलिङ्ग हैं ? इन सबका वर्णन करें ॥ १ – २ ॥

व्यासजी बोले—तपस्वियों ! 'घण्टापर्वत' से सटे हुए 'यज्ञ'-पर्वत' के पूर्वभाग में 'बन्धूक' पर्वत है। उसमें स्थान-स्थान पर 'महादेवी' का पूजन होता है। वहाँ 'भार्गवाश्रम' से उत्पन्न भार्गवी नदी भी है। वह 'सरयू' में जाकर मिली है। उसमें स्नान कर मानव 'कवि' के समान (प्रतिभासम्पन्न) हो जाता है। उस सङ्गम से 'सूत्रा' नाम की नदी निकली है। उसके मध्य शिला के ऊर्ध्व भाग में देवगणों का पूजन विहित है। वहीं पवित्र 'यज्ञपर्वत' के मध्य प्रजापति ने यज्ञ किया था। उस यज्ञ के समय रोपित 'यूप' (यज्ञस्तम्भ) अभी तक दृष्टिगोचर होते हैं। वहीं पवित्र 'जलमय-स्थल' भी है। उसमें स्नान कर अथवा वहाँ शरीर छोड़ने पर 'विष्णुलोक' मिलता है। तपोधनों ! उससे पश्चिम की ओर 'फल' नामक पर्वत है। वहाँ 'शिला' पर श्रीकृष्ण के चरण चिह्नित हैं। जिनका दर्शनकर लोग भीमसेन के यश का गान करते हैं।३-१०।

ऋषियों ने फिर पूछा—तपोधन ! भगवान् कृष्ण के चरण-चिह्नों के दर्शन कर लोग भीमसेन का गुणगान क्यों किया करते हैं ? ॥ ११ ॥

व्यासजी बोले—ऋषिवरों ! युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के समय 'जरासुर' को उपस्थित

कृष्णश्च भीमसेनश्च तथान्यैर्बलिभिः सह। योद्धुं तेऽतिथिरूपेण ययुर्मागधपालिताम् ॥१३॥
नगरीं मगधेशस्य गत्वा युद्धं ययाचिरे। भीमसेनं पुरस्कृत्य पाण्डवं भीमविक्रमम् ॥१४॥
ततस्तु प्रददौ राजा भीमसेनाय भीमवत्। गदायुद्धं महाघोरं भीरूणां भयवर्धनम् ॥१५॥
स तेन युयुधे विप्रा भीमो भीमपराक्रमः। नियुद्धकुशलो युद्धे नानागतिविशारदः ॥१६॥
युध्यमानं ततो भीमं प्रोवाच भगवान् हरिः। दारयित्वाऽस्य देहं वै श्रेयस्ते सम्भविष्यति ॥
दारयित्वा न चैवात्र कर्तव्यं चिन्तयन्त्वयम्। प्रहृष्य भीमसेनस्तु प्रतिगृह्य च तद्वचः ॥१८॥
युध्यतस्तस्य देहं वै विदार्य च ततो युधि। भीमो हिमाद्रौ चिक्षेप गदावेगं विधाय वै ॥१९॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः साधु साध्विति तं ब्रुवन्। ऊर्ध्वं हिमाद्रौ भीमेन जरासन्धस्य दक्षिणम् ॥
समुत्पाट्य विनिक्षिप्तं देहं सर्वे समागताः। तं न श्रद्दधिरे लोकाः कथितं दैवतैरपि ॥२१॥
जानन्नपि महाभागा हरिः संसारभाववित्। कौतूहलेन महता हिमवन्तं गिरिं ययौ ॥२२॥
व्रजन्मध्याह्नसमये स्नात्वा गोदावरीं शुभाम्। फलाद्रिप्रान्तसम्भूतां सिद्धगन्धर्वसेविताम् ॥
तस्या नद्या महाभागाः स वामे यदुनन्दनः। देवीं स्वर्णाख्यरौप्याख्यां व्रजंस्तत्र ददर्श ह ॥२४॥
तत्र स्वर्णमयीं देवीं सम्भाव्य जगदीश्वरः। व्रजन्ददर्श कालिन्दीं समाहूतां महर्षिभिः ॥२५॥
फलपर्वतसम्भूतां सिद्धगन्धर्वसेविताम्। तत्र सिद्धगणाः सर्वे तस्यास्तेटनिवासिनः ॥२६॥
शङ्खचक्रगदापाणिं ददृशुर्यदुनन्दनम्। समर्चितः सिद्धगणैर्भगवान् जगदीश्वरः ॥
प्रोवाच सिद्धान् धर्मज्ञः कालिन्दीतटसंस्थितान् ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

किमप्यत्र महच्चित्रं भवद्भिः कारणं शुभम्। दृष्टं वा किं न दृष्टं हि तद् ब्रुवन्तु तपोधनाः ।२८।

जानकर कृष्ण, भीमसेन तथा अन्य बलवान् पुरुषों के साथ मगध-नरेश की नगरी में सबने भीसेमन को आगे कर युद्धार्थ घोषणा की। वहाँ राजा ने भीम को त्रस्त करने के लिये गदायुद्ध आरम्भ कर दिया। भीम उसके साथ लड़े। भीम भी बाहुयुद्ध में कुशल था। साथ ही युद्ध के रहस्य को भी जानता था। युद्ध में संलग्न भीम से भगवान् कृष्ण ने कहा कि इसके शरीर को विदीर्ण करने से ही लाभ हो सकता है। बिना विदारण किये कोई दूसरा उपाय नहीं है। यह सुन भीम ने हर्षित होकर कृष्ण के वचन शिरोधार्य कर युद्ध करते हुए उस असुर के देह को विदीर्ण कर गदा के वेग से हिमालय पर फेंक दिया। तदनन्तर देवों, गन्धर्वों आदि ने साधुवाद किया। भीम ने उसका दाहिना अङ्ग फाड़ डाला था। इसे देख देवगणों ने भीम की वाह-वाह की, किन्तु लोगों को विश्वास नहीं हुआ। महाभागों! सबके अन्तर्यामी भगवान् भी कुतूहलवश हिमालय में प्रवेश कर गए। मध्याह्न के समय पवित्र 'फलाद्रि' के एक छोर से निकली हुई एवं गन्धर्वों से सेवित गोदावरी में स्नान कर उस नदी के वाम भाग में 'स्वर्णा' और 'रौप्या' नाम की देवियों को देखा। वहाँ कृष्ण भगवान् ने 'स्वर्णेश्वरी' का पूजन किया। फिर मुनियों से आहूत 'कालिन्दी' का दर्शन किया। यह नदी 'फल-पर्वत' से उत्पन्न होकर महर्षियों द्वारा आवाहित की गई थी। उसके तटवर्ती समस्त सिद्धगणों ने शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग-धनुर्धारी भगवान् कृष्ण का पूजन किया। उनसे पूजित होने पर धर्मज्ञ भगवान् कृष्ण ने कालिन्दीतट पर स्थित सिद्धगणों से कहना आरम्भ किया ॥ १२ – २७ ॥

सिद्धा ऊचुः—

न चास्माभिर्महच्चित्रं प्रदृष्टं यदुनन्दन। एकमेव महच्चित्रं दृष्टमत्र सुशोभनम् ॥२९॥
यमाश्रित्य वयं सर्वे तिष्ठामोऽत्र नदीं शुभाम्। अस्या मूले महादेवः फलाद्रेः कन्दरां शुभाम् ॥
समाश्रित्य महच्चित्रं करोति जगदीश्वरः। करोति ताण्डवं नित्यं पश्यन्ति त्रिदिवालयाः ॥
इदमेव महच्चित्रं प्रदृष्टं यदुनन्दन। द्वितीयं ये समर्चन्ति स्नात्वा चैतां सरिद्वराम् ॥३२॥
भूत्वा ताण्डवनीतिज्ञा यान्ति शिवपुरं प्रति। तृतीयं च महच्चित्रं दृष्टमत्र जगत्पते ॥३३॥
जरासन्धस्य देहं वै भीमेन च विदारितम्। यान्तं फलाद्रिमुल्लङ्घ्य प्रसादात्तव यादव ॥३४॥

श्रीकृष्ण उवाच—

फलाद्रिरिति यः ख्यातो भवद्भिः पर्वतोत्तमः। कथं पर्वतमुख्योऽस्ति कथ्यतां तत्तपोधनाः ।३५।

सिद्धा ऊचुः—

योऽस्मानवति वैकुण्ठ घण्टापर्वतसम्भवः। गुहासु चातिरम्यासु सुरसिद्धनिषेवितः ॥३६॥
स एष फलसंज्ञो वै तवाग्रे मधुसूदन। पर्वतोऽस्ति सुविस्तीर्णः पश्यतां यदि रोचते ॥३७॥

भगवान् कृष्ण बोले—तपस्वियों ! क्या आपने यहाँ कोई आश्चर्यजनक अनुभव किया है अथवा नहीं ? यदि कोई विचित्र अनुभव किया हो तो कहें ॥ २८ ॥

सिद्धों ने उत्तर दिया—यदुनन्दन ! हमने यहाँ कोई विचित्रता तो नहीं देखी। केवल एक ही कारण है, जिस हेतु हम इस पवित्र नदी के तट पर निवास कर रहे हैं। वह यह है कि इसके मूल में महादेव विराजमान हैं, जो 'फलाद्रि' की कन्दरा में निवास करते हुए कुछ विचित्रता दिखाते हैं। वे 'ताण्डवनृत्य' करते है और समस्त देवगण उसे देखते हैं। यही आश्चर्यजनक बात हमने देखी है। दूसरी विशेषता यह है कि इस नदी में स्नानोपरान्त शिव-पूजा करने वाले व्यक्ति भी ताण्डव-नृत्य में निपुण हो अन्त में शिवलोक में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। तीसरा महान् आश्चर्य यह है कि यहाँ 'भीम' द्वारा 'जरासन्ध'[1] का विदीर्ण किया हुआ देह 'फलाद्रि' को लाँघकर जाता हुआ देखा गया है ॥ २९-३४ ॥

(इसे सुन) श्रीकृष्ण बोले—तपोधनों ! आपने जिस 'फलाद्रि' का उल्लेख किया है, उसकी स्थिति कहाँ पर है ? ॥ ३५ ॥

सिद्धगणों ने उत्तर दिया—वैकुण्ठवासिन् ! 'घण्टापर्वत' से सटा हुआ जो पर्वत हमारी

---

१. महाभारत के अनुसार यह बृहद्रथ का पुत्र मगधदेशाधिपति था। यह दो खण्डों में उत्पन्न हुआ था, अतः इसे फेंकवा दिया गया। 'जरा' नामक राक्षसी ने इसे जोड़कर, पुनः जीवित कर दिया था। अतः यह 'जरासन्ध' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी राजधानी गिरिव्रज में थी, जहाँ अनेक राजा बन्दी पड़े थे (भागवत १०, ६०, १८।७०, २३-२४, २८)। मथुराधिपति 'कंस' को इसकी दो पुत्रियाँ 'अस्ति' और 'प्राप्ति' ब्याही थीं। इसके आक्रमण से तंग आकर मथुराधिपति द्वारका आ बसे थे। युधिष्ठिर के 'राजसूय' यज्ञ में अर्जुन और भीम को साथ लेकर श्रीकृष्ण इसके यहाँ गए थे। जब भीम से इसका २७ दिनों तक युद्ध होता रहा तब श्रीकृष्ण की दुरभिसन्धि से इसके जुड़े स्थान से इसे चीर कर इसका वध कर डाला था (भाग० १०. ७२. १५-४७) (इसके अतिरिक्त देखें वायु पु० ८९-२८४)।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स भगवान् आरुरोहाद्रिमुत्तमम्[1] । सिद्धैः सह महापुण्यैः कृष्णो दारुकसारथिः ।३८।
स विलङ्घ्य फलाद्रिं तं तस्याभ्यासे तपोधनाः । जरासन्धार्धदेहं हि पतितं प्रददर्श ह ।।३९।।
फलाद्रि-यज्ञयोर्मध्ये दृष्ट्वा तं मधुसूदनः । देहार्धं तस्य नृपतेः पादलक्ष्मेण वै शिलाम् ।।४०।।
विधाय चिह्नितां तत्र इन्द्रप्रस्थं समाययौ । विसर्ज्य सिद्धांस्तत्रैव तत्रस्थान्नृषिसत्तमाः ।।४१।।
फलाद्रौ कृष्णदेवस्य पद्भ्यां चिह्नविनिर्मिता । दृश्यतेऽद्यापि पुण्याख्या सुरसिद्धनिषेविता ।४२।
ततः परं सिद्धगणास्तुष्टुवुः पाण्डुनन्दनम् । यस्य प्रसादात्कृष्णस्य ददृशुश्चरणोत्तमौ ।।४३।।
यथा स्तुवन्ति मनुजा भीमसेनं महाबलम् । दृष्ट्वा कृष्णस्य चरणौ तथा सर्वं मयोदितम् ।४४।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे फलपर्वतमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ।।

रक्षा करता है तथा जिसमें देवों और सिद्धों से सेवित रमणीय गुहायें हैं, वही 'फलाद्रि' आप के सम्मुख विद्यमान है । वह विस्तीर्ण है । आप इच्छुक हों तो देखें ।। ३६-३७ ।।

व्यासजी बोले—तपोधनों ! सिद्धों की वाणी सुनकर भगवान् कृष्ण 'तथास्तु' कहकर सिद्धों के साथ 'फलाद्रि' पर आरूढ़ हो गए । फिर उसको पार कर उन्होंने 'फलाद्रि' तथा 'यज्ञ' पर्वत के मध्य गिरे हुए 'जरासन्ध' के आधे शरीर को देखा । वहाँ उन्होंने एक शिला को अपने पदचिह्नों से अङ्कित कर दिया । फिर वे इन्द्रप्रस्थ चले गए । वहाँ के निवासी सिद्ध पुरुषों को उन्होंने वहीं बिदाई भी दी । उस 'फलाद्रि' पर भगवान् कृष्ण के चरणों से चिह्नित 'पुण्यशिला' अब भी दिखाई देती है । तत्पश्चात् सिद्धगणों ने भगवान् कृष्ण की स्तुति की, जिनकी कृपा से उन्होंने भगवान् के पदकमलों का दर्शन किया । तपस्वियों ! जिस प्रकार लोग भगवान् कृष्ण के चरणचिह्नों का दर्शन कर महाबली भीम की स्तुति किया करते हैं, उसका वर्णन मैंने कर दिया है ।। ३८ – ४५ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'फलाद्रि-वर्णन'-नामक
एक सौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'रुरोह पर्वतोत्तमम्'—'ख' ।

व्यास उवाच—

तत्र ये कृष्णचरणौ समर्चन्ति शुभप्रदौ। दर्शनादेव लक्षाणां पातकानां विनाशकौ ॥१॥
कुलानां कोटिमुत्तार्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्। प्राप्नुवन्ति महाभागाः श्वेतद्वीपपतेर्गृहम्।
यः कृष्णचरणौ दिव्यौ फलाद्रौ गव्यपञ्चकैः। जलैः शुद्धैश्च पुष्पैश्च समर्चति वरप्रदौ ॥३॥
तावत्तिष्ठति वैकुण्ठे यावदाहूतसंप्लवम्[1]। ततो वीर्यवती नामा तेभ्यः पूर्वे तपोधनाः ॥४॥
विद्यते सा सरिच्छ्रेष्ठा तां स्नात्वा याति शाश्वतीम्। जरासन्धस्योरुमध्ये ततो यज्ञाद्रिसम्भवा।
विद्यते यज्ञगा नामा सर्वपापप्रणाशिनी। मूले तस्या विधातव्यं स्नानदानादिकं तथा ॥६॥
ततस्तु न विधातव्यं स्नानं तस्यां तपोधनाः। कर्मनाशां यथा पीत्वा नरः पापं समश्नुते ॥७॥
तथा तस्योरुमध्ये वै तां स्नात्वा नात्र संशयः। जरासन्धोरुमध्ये वै जरां देवीं प्रपूजयेत् ॥८॥
जरा-यज्ञवतीमध्ये श्मशाननिलयं शुभम्। तस्यास्तु स्नानजं पापं तं समर्च्य प्रणश्यति ॥९॥
फलाद्रि-यज्ञयोः पुण्यं माहात्म्यं कथितं मया। यः शृणोति समग्रं हि प्राप्नोति परमां गतिम्।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे फलयज्ञाद्रिमाहात्म्येऽष्टपञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥

व्यासजी ने कहा—तपोधनों ! वहाँ पर जो लोग असङ्ख्य पापों के नाशक श्रीकृष्ण के चरणों का दर्शन करते हैं, वे अपने करोड़ों कुलों को तार कर अभीष्ट फल भोग कर भगवान् शङ्कर का लोक प्राप्त करते हैं। जो मानव फलाद्रि में प्रतिष्ठित भगवान् कृष्ण के चरणों की पूजा 'पञ्चगव्य', 'शुद्धजल' तथा 'पुष्पों' से करते हैं, वे महाप्रलयपर्यन्त वैकुण्ठ-धाम में सुस्थिर रहते हैं। तदनन्तर उन चरणों से पूर्व की ओर 'वीर्यवती' नदी है। उसमें स्नान करने से मानव को सद्गति मिलती है। जरासन्ध की जंघा के मध्य में 'यज्ञपर्वत' से निकली 'यज्ञगा' नदी है। उसके उद्गम स्थल पर स्नानादि विहित है। तपोधनों ! उसके अतिरिक्त किसी अन्य स्थान में उस नदी में स्नान करने का निषेध है। जिस प्रकार 'कर्मनाशा' नदी[2] का जल पीना निषिद्ध है, वैसे ही 'जरासन्ध' की जाँघ के मध्य उस नदी में स्नान करना पाप-ग्राही है। किन्तु 'जरासन्ध' की जंघा के मध्य में स्थित 'जरादेवी' का पूजन करने के पश्चात् उसमें स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं। ऋषिवरों ! मैंने 'फलाद्रि' एवं 'यज्ञाद्रि' का माहात्म्य आप लोगों को बतला दिया है। इस माहात्म्य के श्रोतागण परमगति प्राप्त करते हैं ॥ १-१० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'फल-यज्ञाद्रि'-माहात्म्य नामक
एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'यावदाहूतविप्लवम्'—'ख'।

२. गङ्गा की एक सहायक नदी जो शाहाबाद जिले के 'कैमूर' पहाड़ से निकल कर 'चौसा' के निकट गङ्गा में गिरती है। लोगों का विश्वास है कि इसके जल-स्पर्श से लोगों के अर्जित पुण्यों का नाश हो जाता है। पुराणों में इसे त्रिशङ्कु की लार से उत्पन्न बतलाया गया है। लोग इसे इसलिए भी अपवित्र मानते थे कि प्राचीन काल के तपस्वी आर्य इस नदी को पार कर मगध या बंगाल जाना निषिद्ध समझते थे।

सूत उवाच—

सीतानद्यास्तु माहात्म्यं श्रुत्वा ते नृपसत्तम। व्यासं पप्रच्छुर्धर्मज्ञा मुनयः शौनकादयः ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

सीतानद्यास्तु माहात्म्यं त्वत्प्रसात्तपोधन। श्रुतं विचित्रचरितं तीर्थवर्णनसंयुतम् ॥२॥
खेचराद्रीति यः ख्यातो भवता मुनिसत्तम। कथयस्व प्रसादेन तस्याख्यानं सुविस्तृतम्[1] ॥३॥
यानि तत्र च लिङ्गानि तथा क्षेत्राणि सुव्रत। प्रब्रूहि तानि सर्वाणि प्रसादेन विनिश्चितम् ॥४॥

व्यास उवाच—

खेचराद्रेः कथा दिव्या शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः। रोगार्तो मुच्यते रोगाद्यां श्रुत्वा तां वदाम्यहम् ॥
सीतानद्या वामभागे खेचरो नाम पर्वतः। नानाधातुशतैर्युक्तो नानापर्वतभूषितः ॥६॥
रौप्यस्वर्णाकरैर्युक्तः सुरसिद्धनिषेवितः। नृत्यद्बर्हिकदम्बेन सर्वतः परिशोभितः[2] ॥७॥
कोकिलानां महानादैः शब्दितो धातुमण्डितः। सुरवृक्षादिवृक्षाणामुद्यानैरुपशोभितः ॥८॥
राजते सिद्धमुख्यैश्च सर्वतः परिवारितः। सूकरैर्महिषैश्चैव वन्याश्वैरपि संवृतः ॥९॥

सूत जी बोले—जनमेजय! 'सीता' नदी के माहात्म्य को सुनकर शौनकादि ऋषियों ने व्यास जी से पूछा ॥ १ ॥

ऋषियों ने कहा—तपोधन! 'सीता' नदी एवं उसके तीर्थों के माहात्म्य को तो हम लोगों ने अवगत कर लिया है। प्रसङ्गवश आपने जो 'खेचर' पर्वत[3] का उल्लेख किया है, उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कर आप हमें अनुगृहीत करें। हे सुव्रत! वहाँ के तीर्थस्थान, शिवलिङ्ग तथा प्रसिद्ध क्षेत्रों के विषय में भी हम लोगों को ज्ञात करायें ॥ २ – ४ ॥

व्यासजी कहने लगे—मुनिवरों! खेचराद्रि[4] का वर्णन सुनें। इसका माहात्म्य सुनकर रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं। 'सीता'[5] नदी के वामभाग में 'खेचर' पर्वत है। वह अनेक प्रकार की धातुओं और पर्वतमालाओं से सुशोभित हो सोने-चाँदी की खानों से युक्त है। वह पर्वतमाला देवों और सिद्धों से सेवित होने के साथ ही नृत्य करने में संलग्न मयूर-समुदाय, कोयलों की कूज तथा कल्पवृक्षों के उपवनों से सुशोभित हो विराजमान है। वह पर्वत सिद्धों से परिवेष्टित हो—सूअर, भैंसे और जंगली घोड़ों से व्याप्त है। उसमें आकाशचारी देवगण वरुणादि देवों,

---

१. 'सविस्तृतम्'—इति अपरः पाठः।

२. "इतस्ततः प्रधावद्भिर्मृगयूथैरलङ्कृतः। हंसकारण्डवाकीर्णश्चक्रवाकैश्च शोभितः"—इत्यधिकः पाठः 'ख' पुस्तके वर्तते।

३. 'खेचर' पद का शाब्दिक अर्थ 'आकाशचारी' है। तदनुसार यह शब्द पक्षी एवं सूर्य, नक्षत्र, देवयोनिविशेष आकाशचारी, भूत-प्रेत-राक्षसादि अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ पर्वत के अर्थ में लाक्षणिक प्रयोग (आकाश को स्पर्श करने वाला अर्थात् ऊँचे शृङ्गवाला पर्वत) किया गया है।

४. 'खोचरनाथ' के नाम से विदित है। ५. 'सेती' नदी के नाम से प्रसिद्ध है।

यस्मिन्वै खेचरा देवा वरुणेन महात्मना । सह सन्निवसन्ति स्म कुबेराद्याश्च भूसुराः ॥१०॥
तटे तस्य विराजन्ते सचन्द्रग्रहनायकाः । तथैवासुरगन्धर्वा देवास्तु मृच्छिलामयाः ॥११॥
पुण्य।पः सरितो यस्मिन् सप्ततीति उदाहृताः[1] । सिद्धगन्धर्वमुनिभिः समाहूय भुवः स्थले ।१२।
यस्मिन्सरांसि दिव्यानि रचितानि शुभानि च । सन्ति देवर्षिदैत्यानां षट्त्रिंशादधिकानि च ॥
तमारुहन्ति ये धन्याः पर्वतं सिद्धसेवितम् । नानावृक्षशताकीर्णं गुहाद्वादशशोभितम् ॥१४॥
स्थलैश्च पञ्चभिर्दिव्यै राजद्भिः सुविराजितम् । समुद्धृत्य कुलशतं प्राप्नुवन्ति हरेर्गृहम् ॥१५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे खेचराद्रिमाहात्म्ये एकोनषष्टिशततमोऽध्यायः ॥

कुबेर एवं भूस्थानीय देवों के साथ निवास करते हैं। उनके इर्दगिर्द चन्द्रसहित प्रमुख ग्रह, देवगण, असुर एवं गन्धर्व आदि भी रहते हैं। देवगण 'मृत्तिका' तथा 'शिला'ओं के रूप में विद्यमान हैं। इसमें से मुनियों द्वारा आवाहित ७० पवित्र नदियाँ पृथ्वी पर प्रवाहित हुई हैं। इसके साथ ही देवर्षियों और दैत्यों द्वारा विनिर्मित ३६ से अधिक सरोवर है। सिद्धों से सेवित एवं वृक्षों से संकुलित १२ गुफाओं तथा ५ पवित्र स्थलों से युक्त इस पर्वत पर जो लोग चढ़ते हैं वे अपने सौ कुलों का उद्धार कर विष्णुलोक में सुप्रतिष्ठित होते हैं॥ ५ – १५ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'खेचराद्रि-माहात्म्य' नामक
एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. "पुण्याश्च सरितो यस्मिन् सप्ततिः समुदाहृताः"—इति परिष्कृतः पाठः ।

१६०

सूत उवाच—

तस्माद्रेर्वर्णनं श्रुत्वा मुनयो नृपसत्तम। कृष्णद्वैपायनं व्यासं प्रष्टुमारेभिरे ततः ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

महद्विचित्रचरितः पर्वतोऽयमुदाहृतः। सन्त्यस्मिन्कानि क्षेत्राणि प्रब्रूहि मुनिसत्तम ॥२॥

व्यास उवाच—

अस्मिन्क्षेत्राणि दिव्यानि बहूनि सन्ति भूसुराः। श्रृण्वन्तु तानि सर्वाणि कथितानि मयाऽधुना।
सर्वेभ्यो गिरिमुख्येभ्यः सुपुण्यः खेचरो गिरिः। वर्तते नान्यथा किञ्चित्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥
मध्ये तस्य स्थलं दिव्यं चन्द्रस्थलमिति स्मृतम्। सेवितं सुरगन्धर्वैस्तथा हंसबकैरपि ॥५॥
तत्र मध्ये महापुण्यो नाम्ना बकसरः स्मृतः। यस्मिन् सरसि चाणक्यो बकः परमधार्मिकः ॥
स्नात्वा तप्त्वा महाभागाः प्राप ब्रह्मपदं शुभम्। तस्मिन्सरसि संस्नात्वा तप्त्वा वापि तपोधनाः।
नरो ब्रह्मपदं याति ब्रह्मणा सह मोदते। सरसश्चोत्तरे भागे महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥८॥
निवसन्ति यताचाराः सत्यमार्गप्रदर्शकाः। सहस्रेश्वरं महादेवं शिलापृष्ठे तपोधनाः ॥
समर्च्य तत्र तिष्ठन्ति सिद्धा देवगणैः सह ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे खेचराद्रिमाहात्म्ये षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

सूतजी ने कहा—जनमेजय! उस पर्वत के वर्णन को सुनकर ऋषियों ने पुनः महर्षि व्यास से पूछना आरम्भ किया ॥ १ ॥

ऋषियों ने पूछा—महर्षे व्यास! आपने जिस विचित्र चरित्रशाली 'खेचर' पर्वत का वर्णन किया है, उसमें कौन-कौन से क्षेत्र हैं? ॥ २ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—ऋषियों! इस पर अधिष्ठित अनेक दिव्य क्षेत्र हैं। मैं अब उन्हें बतलाता हूँ। पर्वतों में 'खेचर' की गणना श्रेष्ठ रूप में की गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उसके मध्य में 'चन्द्रस्थल' है, जो सुर-गन्धर्वों से सेवित होता हुआ 'हंस' तथा 'बगुलों' से अभिव्याप्त है। उसके मध्य में एक बड़ा पवित्र 'बकसर' है। उसमें परम धार्मिक 'चाणक्य' नाम का 'बगुला' स्नान तथा तपस्या करने के उपरान्त 'ब्रह्मपद' प्राप्त कर सका। उसमें स्नान एवं तप करने का फल यह है कि मानव 'सत्यलोक' में जाकर ब्रह्माजी के साथ रह आनन्द प्राप्त करता है। सरोवर के उत्तर की ओर सत्यमार्गदर्शक महेन्द्रादि देव व्रतानुष्ठानपूर्वक शिलापृष्ठ पर 'सहस्रेश्वर' का पूजन कर देवों के साथ वहाँ सिद्धगण भी रहते हैं ॥ ४ - ९ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'खेचराद्रि'-माहात्म्य नामक
एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥

सूत उवाच—

ततस्तु तीर्थपृच्छायां मुनयः शौनकादयः । प्रणिपत्य यथान्यायं व्यासं धर्मार्थकोविदम् ॥१॥
सहस्रेश्वरमाहात्म्यं प्रपच्छुर्मुनिसत्तमाः ।

ऋषय ऊचुः—

सहस्रेश्वरमाहात्म्यं कथयस्व तपोधन ॥ २ ॥
कथं तं सिद्धगन्धर्वाः शिलापृष्ठे महेश्वरम् । समर्चन्ति महाभागाः कीदृशी सा शिला स्मृता ॥
कानि क्षेत्राणि तीर्थानि सन्ति देवस्य सन्निधौ ।

व्यास उवाच—

दक्षिणे वृद्धगङ्गायाः खेचराख्यो गिरिः स्मृतः ॥ ४ ॥
सप्तयोजनविस्तीर्णो योजनैकादशायतः । तत्र मध्ये महापुण्या रचिता विश्वकर्मणा ॥५॥
विराजन्ते शिलाः पञ्च पञ्चवक्त्रस्य शूलिनः । तासां मध्ये महापुण्या शङ्कराख्या शिला स्मृता ॥
तस्यां तु शिवलिङ्गानां सहस्रं विश्वकर्मणा । रचितं सुरगन्धर्वैः पूजितं भासुरं शुभम् ॥७॥
तेषां मध्ये शिलापृष्ठे रचितो विश्वकर्मणा । सहस्रेशो महादेवो विद्यते मुनिसत्तमाः ॥८॥
न तस्य सदृशं क्षेत्रं प्रपश्यामि महीतले । विश्वेशो भगवान् रुद्रः शिलायां यत्र राजते ॥९॥
त्रयस्त्रिंशद्देवगणाः यं समाराध्य संस्थिताः । तस्मात्क्षेत्रान्नान्यतमं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१०॥
काश्यां विश्वेश्वरो देवो यथा देवैः प्रपूज्यते । तथा पर्वतमध्ये वै सहस्रेशो महेश्वरः ॥११॥
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः । दर्शनादस्य देवस्य प्रणश्यन्त्यघकोटयः ॥१२॥

सूतजी ने पुनः बतलाया—(राजन् !) शौनकादि ऋषियों के द्वारा वहाँ के तीर्थों के सम्बन्ध में जिज्ञासा किये जाते हुए यथायोग्य प्रणामादि करने के उपरान्त 'सहस्रेश्वर' का माहात्म्य वर्णन करने के लिये निवेदन किया ॥ १ ॥

ऋषियों ने कहा—हे तपोधन ! आप कृपया 'सहस्रेश्वर' का माहात्म्य बतलायें। वहाँ शिलापृष्ठ पर सिद्ध आदि किस प्रकार महादेव का पूजन करते हैं ? वह शिला कैसी है ? समीप में वहाँ कौन से तीर्थ एवं क्षेत्र हैं ? ॥ २ – ३ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—तपोधनों ! 'वृद्धगङ्गा' के दक्षिण में 'खेचर' पर्वत है। वह सात योजन चौड़ा तथा ग्यारह योजन लम्बा है। उसके मध्य में विश्वकर्मा द्वारा रचित महती शिला है। इसके साथ ही वहाँ भगवान् शिव की 'पाँच' शिलायें और सुशोभित हैं। उनके बीच में पवित्र 'शङ्करशिला' है। उसमें विश्वकर्मा द्वारा देव-गन्धर्वादि से सेवित हजार लिङ्ग रचे गए हैं। उनके मध्य में शिलापृष्ठ पर 'सहस्रेश' महादेव हैं। शिवपरिवार-संयुत ऐसे महा शिवक्षेत्र से बढ़कर दूसरा क्षेत्र कौन हो सकता है ? वहाँ 'तेंतीस करोड़' देवता नित्य 'सहस्रेश्वर' की आराधना कर निवास करते हैं। इस कारण उसे सर्वोत्तम क्षेत्र कहा गया है। जिस प्रकार काशी में भगवान् 'विश्वेश्वर' देवगणों से पूजित हैं, उसी तरह 'खेचर' पर्वत पर

अधीत्य साङ्ख्यं समुपास्य शङ्करं केदारभूमौ यदवाप्यते फलम् ।
शतेश्वरं पर्वतवासिनं प्रभुं समर्च्य चैकेन दिनेन तद्भवेत् ॥ १३ ॥
दर्शनादस्य देवस्य योगभ्रष्टाश्च योगिनः । विशुद्ध्यन्ति न सन्देहो मणिग्रीवादयो यथा ॥१४॥

ऋषय ऊचुः—

मणिग्रीवादयो ब्रह्मन् कस्य वंशसमुद्भवाः । सन्ति ते योगिनो धन्याः कथयस्व समाहितः ॥१५॥
कथमासन्महाभाग योगभ्रष्टास्तपोधनाः । कमाराध्य पुनर्योगं प्रापुः सत्यप्रदर्शकम् ॥१६॥

व्यास उवाच—

विद्याधरान्वये पुण्ये बभूवुर्योगिनः शुभाः । मणिग्रीवो हयग्रीवः सिन्धुग्रीवस्तथाऽपरः ॥१७॥
शिवार्चनरताः सर्वे शिवध्यानपरायणाः । बभूवुर्मुनिशार्दूलास्तपोभिर्वीतकल्मषाः ॥१८॥
कदाचित्ते महात्मानो मेरुपृष्ठे तपोनिधिम् । समागतं महर्षिं वै नारदं देववल्लभम् ॥१९॥
ददृशुस्ते न योगिनं ध्यानस्तिमितलोचनाः । अविज्ञाय महर्षिं तं मणिग्रीवादयो द्विजाः ॥२०॥
समर्चयामासुर्देवेशं महादेवं तपःप्रियाः । नारदो रुषितः प्राह ततस्तान्मुनिसत्तमाः ॥२१॥
ममावज्ञा स्थिता यस्मात्सर्वे विद्याधराधमाः । तस्माद्यूयं च विपिने योगभ्रष्टा भवन्त्विति ॥

'सहस्रेश' भी पूजित हैं। उनके दर्शन से असंख्य पाप तथा अगम्यागमन सदृश पातक भी दूर हो जाते हैं। साङ्ख्य-दर्शन के तत्त्वज्ञान से तथा 'केदार-भूमि' पर रहकर जो फल मिलता है वही फल 'शतेश्वर' (सहस्रेश्वर) का एक दिन पूजन करने पर मिलता है। इनका दर्शन करने से 'मणिग्रीवादि' योगियों के समान योगभ्रष्ट योगी भी शुद्ध हो गए हैं ॥ ४-१४ ॥

ऋषियों ने (फिर) पूछा—ब्रह्मर्षे ! आप यह बतलायें कि 'मणिग्रीव' आदि योगी किस वंश में उत्पन्न हुए और वे क्यों प्रशंसित हुए ? वे तपस्वी किस प्रकार योगभ्रष्ट हुए ? किसकी आराधना कर वे पुनः योगसिद्धि प्राप्त कर सके ? ॥ १५ – १६ ॥

व्यासजी ने कहा – ऋषिवरों ! पवित्र विद्याधर-वंश में 'मणिग्रीव', 'हयग्रीव' और 'सिन्धुग्रीव' नामक तीन व्यक्ति हुए हैं। वे योगाभ्यासी हो गए। वे सभी शिव की आराधना करते रहे। साथ ही ध्यानमग्न हो तपश्चर्या में लीन रहते हुए पापमुक्त हो गए। किसी समय 'सुवर्णाचल'[1] में महर्षि नारद इनके पास आए। ये ध्यानमुद्रा में आँखें बन्द कर बैठे हुए थे। उन्होंने नारदजी को नहीं देखा, अतः वे प्रणामादि से वञ्चित रहे। किन्तु वे विद्याधर शिवपूजन में लगे रहे। नारदजी ने रुष्ट हो उनसे कहना आरम्भ किया। वे कहने लगे कि तुम (विद्याधर)

---

१. पुराणों में 'सुवर्णाचल' के पर्यायवाची 'हेमकूट' पर्वत का उल्लेख है। (क) तदनुसार 'किम्पुरुषवर्ष' और 'भारतवर्ष' की सीमा पर स्थित 'हिमालय' के उत्तर में एक पर्वत का नाम 'हेमकूट' है। अर्जुन ने अपनी सेना का शिविर वहाँ पर डाला था। वहाँ से वे 'हरिवर्ष' में गए थे। (ख) 'नन्दा' नदी के तट पर एक पर्वत का नाम भी 'हेमकूट' है। इस पर्वत पर युधिष्ठिर भी तीर्थयात्रार्थ आए थे। इसे 'ऋषभकूट' भी कहते हैं। युधिष्ठिर ने यहाँ अनेक अद्भुत बातें देखी थीं। यहाँ बिना वायु के बादल उत्पन्न होते और वे ओले बरसाते थे। वेदों के स्वाध्याय की ध्वनि सुनाई देती थी। पर कोई दिखाई नहीं देता था (महाभारत वन० ११०, २-१८)। (ग) कालिदास ने भी अपने नाटकों में 'हेमकूट' का उल्लेख किया है।

शशाप नारदः सर्वानप्रणामगतानृषिः । ते ऊचुर्नारदं विप्रं प्रणम्य च पुनः पुनः ॥२३॥
अनपराधे किं शापं प्रदत्तं भवता मुने । त्वामवज्ञाय चास्माभिः कृतं तत्क्षम्यतां ध्रुवम् ॥२४॥
ततस्तान्मुनिशार्दूलान्नारदो वदतां वरः । प्रोवाच वाक्यं धर्मज्ञो विमृश्य च पुनः पुनः ॥२५॥
द्वादशाब्दं ततो वत्रे न मेऽसत्यं वचो भवेत् । समाराध्य शिवं शान्तं हिमाद्रौ सिद्धसेवितम् ॥
ततः कालेन महता योगसिद्धिमवाप्स्यथ । ततो नारदशापेन योगभ्रष्टास्तु योगिनः ॥२७॥
विचेरुर्विपिनं घोरं हिमालयतटं द्विजाः । पर्णमूलाशनाहारा वारस्त्रीरतिलालसाः ॥२८॥
बभूवुर्योगविभ्रष्टाः प्राणिहिंसारतास्तथा । द्वादशाब्दे व्यतीते तु त्रयस्ते मुनिसत्तमाः ॥२९॥
हिमाद्रिं प्रययुः खिन्नाः स्मरन्तो नारदोदितम्[1] । हिमालयतटे प्राप्य ददृशुः सिद्धनायकान् ॥
पप्रच्छुर्योगविभ्रष्टाः कुत्र सिध्यन्ति ताँस्तथा । ऊचुस्ते खेचरतटं प्राप्य पातकिनोऽपि हि ।३१।
विशुध्यन्ति न सन्देहस्तथा ब्रह्मवधादपि । पुनः सिद्धैः समुदितां वाणीं श्रुत्वा तु योगिनः ।३२।
प्रोचुः शैलः कथं ज्ञेयः कथं शुध्यन्ति मानवाः । योगभ्रष्टा योगसिद्धिं किं कृत्वा प्राप्नुवन्ति[2] वै ॥
क उपदेष्टा योगस्य पूजा कस्य विधीयते । कथं विद्मो वयं सर्वे योगभ्रष्टाः सतां गतिम् ।३४।

लोगों ने मेरा अपमान किया है, अतः तुम योगभ्रष्ट हो जाओगे । जङ्गलों में भटकोगे । शापोपरान्त नारदजी को देख उन्होंने बार-बार प्रणाम किया । यह भी कहा कि निरपराधी हम लोगों को आपने शाप क्यों दिया ? यह भूल हमसे अनजाने हुई है । अतः आप क्षमा करें । इस पर नारदजी ने विचार किया । तदुपरान्त उन्होंने मणिग्रीवादि[3] विद्याधरों से कहा कि इस शाप की अवधि बारह वर्ष की है । तब तक तुम्हें भोगना होगा । मेरा वचन व्यर्थ नहीं हो सकता । तदुपरान्त शिवाराधन कर योगसिद्धि प्राप्त कर लोगे । तपस्वियों ! नारद के शाप से ही वे तीनों योगभ्रष्ट हो गए थे । इसके फलस्वरूप हिमालय के घोर जङ्गलों में फिरते हुए पत्ते एवं कन्द-मूलादि खाते हुए वे वेश्याप्रेम के इच्छुक हो योगभ्रष्ट हो गए । इस तरह उनके योगभ्रष्ट हो जाने पर जीवों की हिंसा करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए । तब नारदजी के वचनों का स्मरण कर हिमालय में सिद्धों के पास गए । सिद्धों से पूछने लगे कि योगभ्रष्टों को पुनः 'योगसिद्धि' कहाँ प्राप्त हा सकती है ? उन सिद्धों ने 'खेचर' पर्वत पर जाने के लिये कहा और यह भी बतलाया कि वहाँ जाने पर ब्रह्महत्यादि पापों की शुद्धि सम्भव है । सिद्धों की यह वाणी सुन उन विद्याधरों ने पुनः यह जिज्ञासा की कि 'उस पर्वत की क्या पहचान है ? तथा क्या करने पर वहाँ योगभ्रष्ट जन पुनः यथास्थिति को कैसे प्राप्त होते हैं ? वहाँ योग के उपदेशक कौन हैं ? वहाँ किस देवता की पूजा विहित है ? हम योगभ्रष्ट जन वहाँ किस प्रकार सद्गति या सत्समागम प्राप्त कर सकेंगे ?' ॥ १७ – ३४ ॥

---

१. 'संस्मरन्नारदोदितम्'—'ख' ।

२. 'प्राप्नुवन्ति च किं कृते'—'ख' ।

३. भागवत (१०, ६. २३ तथा १० पूरा) के अनुसार 'कुबेर' का एक पुत्र जो 'नलकूबर' से छोटा था । नारदजी के शापवश दो भाई तो वृन्दावन में यमलार्जुन वृक्ष के रूप में पैदा हुए । तब ये दोनों श्रीकृष्ण के स्पर्श से शापमुक्त हुए थे—"पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् । नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ" ॥

व्यास उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं तेषां तत्र तपोधनाः । प्रोचुः सिद्धा महाभागा देशकालोचितं वचः ॥३५॥

सिद्धा ऊचुः—

एषा सीता नदी पुण्या या याति सिद्धसेविता । अस्या वामे महाक्षेत्रं दिलीपाख्यं वदन्ति हि ॥
तस्माद्वामे महापुण्यः खेचराद्रिः प्रतिष्ठितः । पर्वतं तं महाभागा दर्शयामो व्रजन्त्वति ॥३७॥
सिद्धोदितेन मार्गेण ततस्ते योगिनो द्विजाः । खेचराद्रि महापुण्यं ययुः पश्यन्महावनम् ॥३८॥
ततोऽधिरूढैस्तैः सिद्धैर्दर्शिता मालिका शुभा । तस्येशानाख्यकोणे वै सुरगन्धर्वपूजिता ॥३९॥
तां समर्च्य ततः सर्वे सिद्धैः सह तपोधनाः । ददृशुस्तस्य कोणे वै वैतालाख्यं सुशोभितम् ॥४०॥
वैतालीं तत्र तां देवीं सम्पूज्य पञ्चकं वनम् । ददृशुः पञ्च केदारान् पञ्चकाख्ये तपोवने ॥४१॥
ततः सरसि संस्नात्वा बकाख्ये मुनिसत्तमाः । तत्र मध्ये शिलाः पञ्च ददृशुर्दर्शिताः शुभाः ॥
ततस्तु भैरवीं पुण्यां शिलां दृष्ट्वा तपोधनाः । विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥
सहस्रेश्वरं च देवेशं शिलापृष्ठे ततः परम् । ददृशुः सिद्धमुख्यैश्च दर्शितं सुरसेवितम् ॥४४॥
ततस्तु देवदेवस्य सान्निध्यं प्राप्य योगिनः । देवेशमर्चयामासुः सहस्रेशं सुतण्डुलैः ॥४५॥
तिलैश्च तण्डुलैरेवं कमलैरर्कपुष्पकैः । त्रिभिर्दिवसैस्ततो देवं समर्च्य ते तपोधनाः ॥४६॥
प्रापुः प्रसादाद्देवस्य योगसिद्धिमनुत्तमाम् । योगसिद्धिमनुप्राप्य मणिग्रीवादयस्ततः ॥४७॥
मेरुपृष्ठं ययुर्नाकं विमानमधिरुह्य वै ॥
इत्येतत्कथितं पुण्यं माहात्म्यं मुनिसत्तमाः । सहस्रेश्वरदेवस्य खेचराद्रेस्तथैव च ॥४८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे सहस्रेश्वर-माहात्म्ये एकषष्टयुत्तरशततमोऽध्याय ॥

व्यासजी कहते रहे—महाभागों ! इस प्रकार उनकी दीन वाणी को सुन कर सिद्धजनों ने विद्याधरों से समयानुकूल बातें कही ॥ ३५ ॥

सिद्धजन बोले—विद्याधरों ! सामने बहती हुई सीता नदी के बाईं ओर 'दिलीपक्षेत्र'[1] है । उसके वामभाग में 'खेचर' पर्वत है । चलो, तुम्हें उस पर्वत को दिखलाते हैं । सिद्धों के दिखलाये गए मार्ग से वे योगी लोग 'खेचराद्रि' (पर्वत) पर पहुँच गए । तब उस पर चढ़ कर सिद्धों ने 'मालिका' को दिखलाया । सिद्धों के साथ वहाँ जाकर उन विद्याधरों ने 'मालिका' देवी की पूजा की । तदनुसार खेचराद्रि के ईशान कोण में स्थित 'मालिका' का पूजन कर, हे

---

१. सुप्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा दिलीप की वंशावली के सम्बन्ध में 'रघुवंश' एवं 'पुराणों' के अनुसार कुछ वैषम्य है । वाल्मीकि के अनुसार ये राजा सगर के प्रपौत्र तथा महाराजा रघु के परदादा (प्रपितामह) थे । इन्होंने गङ्गाजी को पृथ्वी पर लाने की चेष्टा की थी, पर सफल न हुए । राजा भगीरथ, जो तपोबल से गङ्गाजी को स्वर्ग से लाए, इनके पुत्र थे । 'रघुवंश' के अनुसार 'रघु' इनके पुत्र हुए । 'हरिवंश' के अनुसार भी यह राजा 'सगर' के प्रपौत्र थे । मत्स्यपुराण (१२-४८) के अनुसार भी 'रघु' के पुत्र 'दिलीप' और 'दिलीप' के पुत्र 'अजक' तथा अजक के पुत्र का नाम 'दीर्घबाहु' था । 'दीर्घबाहु' के 'अजपाल' तथा 'अजपाल' के दशरथ हुए ।

व्यास उवाच—

सहस्रेशं समभ्यर्च्य कालाख्यां स्फाटिकां शिलाम् । शिलोपरि समारूढां यः पश्यति तपोधनाः ॥
स न मृत्योर्मुखं भीमं प्रपश्यति तपोधनाः ॥ १ ॥
ततस्तु दक्षिणे कोणे पञ्चवक्त्रशिलां शुभाम् । तत्रास्ते पञ्चवक्त्रेशस्तपःस्फूर्जितमानसः ॥२॥
नन्दिना पूज्यते तत्र नित्यं खलु मुनीश्वराः । पञ्चवक्त्रशिलां दृष्ट्वा त्रिभिर्मासैः प्रपूज्य वै ॥
मौक्तिकैः कुसुमैश्चापि अमरो जायते नरः । कैदारीं च शिलां तत्र पश्चिमे कोणके स्थिताम् ॥
त्रिभिर्दिनैः प्रपूज्याशु दिव्यदेहः प्रजायते । केदाराद्दक्षिणे कोणे स्नात्वा सरसि कामदे ॥५॥
मनोऽभिलषितान्कामान् प्राप्नुते मानवः शुभान् । सत्ये सरसि संस्नात्वा तथा सरसि पुण्यदे ॥

तपोधनों ! तब विद्याधरों ने कोने में 'वैताल'[1] तीर्थ को देखा । वहाँ 'वैताली' का पूजन कर 'चम्पकवन'[2] को देखा । वहाँ चम्पकवन में 'पाँच केदारों'[3] को देखा । तब 'बक सर' में स्नान कर 'पांच शिलाओं' को भी सिद्धों ने उन्हें दिखलाया । तत्पश्चात् 'भैरवी' शिला को देखकर उन्हें पापों से मुक्ति मिली । तदनन्तर सिद्धों के आदेशानुसार उन्होंने 'सहस्रेश्वर' का दर्शन किया । तब देवदेवेश के निकट जाकर योगियों ने सर्वप्रथम तण्डुलों से उनका पूजन किया । फिर तीन दिनों तक तिल, कमल तथा आँक के फूलों से पूजन किया । इस प्रकार देवेश की कृपा से उन्हें योगसिद्धि प्राप्त हो गई । योगसिद्धि प्राप्त कर वे मणिग्रीवादि विमान पर आरूढ हो स्वर्गलोक को प्रस्थित हुए । मुनिश्रेष्ठों ! इस प्रकार मैंने आप लोगों को 'खेचराद्रि' तथा 'सहस्रेश्वर' का माहात्म्य सुना दिया है ॥ ३६ – ४८ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सहस्रेश्वर'-माहात्म्य नामक
एक सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी बोले—तपोधनों ! 'सहस्रेश्वर' का पूजन कर 'काल' नामक स्फटिकशिला पर आरुढ हो जो देखता है, उसे 'मृत्यु' का मुख नहीं देखना पड़ता । वह पत्थर के ऊपर है । उसके दक्षिण कोण में 'पञ्चवक्त्र' शिला है । वहाँ तपस्या में लीन नन्दी के द्वारा वे प्रतिदिन पूजित होते हैं । 'पञ्चवक्त्र' शिला को देख जो तीन मास तक मोती और फूलों से वहाँ अर्चना करते हैं, वे अमर हो जाते हैं । वहीं पश्चिम कोण में 'कैदारी' शिला है । वहाँ तीन दिन पूजन करने पर मानव दिव्य-देह-सम्पन्न हो जाता है । फिर 'केदार' के दक्षिण-कोण में 'कामद' सर में स्नान

---

१. महाभारत (शल्यपर्व ४५-६७) में कार्तिकेय के एक सैनिक अनुचर का नाम वैतालिन् (वैताली) मिलता है ।

२. स्थानीय नाम 'चम्बा' जाना जाता है ।

३. स्कन्दपुराणान्तर्गत 'केदारखण्ड' (अध्याय ४७ श्लोक ७८) में पांच केदारों के नाम इस प्रकार हैं—"मम क्षेत्राणि पञ्चैव भक्तप्रीतिकराणि वै । 'केदारं', 'मध्यमं', 'तुङ्गं' तथा 'रुद्रालयं' प्रियम् । 'कल्पकं' च महादेवि सर्वपापप्रणाशनम् । कथितं ते महाभागे केदारेश्वरमण्डलम्" ॥

मैनाके सरसि स्नात्वा नरो याति परां गतिम् । दत्तात्रेयेन मुनिना स्थापितां शाङ्करीं शिलाम् ॥
बकह्लदस्य कोणे वै यः समर्चति मानवः । कल्पकोटिकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शिलावर्णनं नाम द्विषष्टयुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

१६३

व्यास उवाच—

सीतावृद्धासरिन्मध्ये तपस्विविनिषेवितः[1] । सङ्गराख्यो गिरिः पुण्यो विद्यते मुनिसत्तमाः ।१।
सङ्गरां तत्र गिरिजां सङ्गरातीरगां शुभाम् । पूज्य दुःसङ्गसञ्जातपातकाद्विप्रमुच्यते ॥२॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'सङ्गर' पर्वतमाहात्म्यं नाम त्रिषष्टयुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

कर मनुष्य को मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। फिर 'सत्य' और 'पुण्यद' सरोवरों में स्नान करने के उपरान्त 'मैनाक'[2] सर में स्नान करना विहित है। इससे सद्गति प्राप्त होती है। 'बकह्लद' के कोने पर 'दत्तात्रेय'[3] मुनि के द्वारा स्थापित 'शाङ्करी' शिला है। उसका पूजन करने से मानव अनेक कल्पों में किये हुए पांपों से विमुक्त हो जाता है॥ १ - ८॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शिलावर्णन' नामक
एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—ऋषियों ! 'सीता' और 'वृद्धा' के मध्य तपस्वियों से सेवित 'सङ्गर' पर्वत है। वहाँ पर 'सङ्गरा' नदी के 'तट' पर 'सङ्गरा' देवी का पूजन करने से 'सांसर्गिक' पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १ - २॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'सङ्गरपर्वत'-माहात्म्य नामक
एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'तस्मात्तपसि संस्थितः'—'ख'।

२. पुराणानुसार भारतवर्ष का एक पर्वत। 'इन्द्र' ने पर्वतों के पंख काट डाले थे, इससे डर कर 'मैनाक' समुद्र में जा छिपा था। यह 'मेना' के गर्भ से हिमालय का पुत्र कहा जाता है। 'क्रौञ्च' पर्वत इसका पुत्र है। श्राद्धादि के लिए अति पवित्र समझा गया है—"भारतेऽस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटो ऋषभः कामगिरिरिति" (श्रीमद्भागवत ५, १९-१६)।

३. एक सुप्रसिद्ध प्राचीन ऋषि, जो पुराणानुसार विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं। यह परम योगी तथा सिद्ध थे। ब्रह्मवादिनी 'अवला' के यह भाई थे। 'अत्रि' इनके पिता एवं माता 'अनसूया' थीं। इनकी माता अनसूया की इच्छानुसार देवताओं से वर मिला था कि उसके गर्भ से—'ब्रह्मा', 'विष्णु' एवं 'महेश'—तीनों देव जन्म ग्रहण करेंगे। तदनुसार 'ब्रह्मा' ने 'सोम' बन कर, 'विष्णु' ने 'दत्तात्रेय' बन कर और 'शिव' ने 'दुर्वासा' बन कर जन्म लिया—"सोमो ब्रह्माऽभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत। दुर्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम्" ॥—(मार्कण्डेय० १७-११)।

ऋषय ऊचुः—

वृद्धसञ्ज्ञा नदी प्रोक्ता या त्वया मुनिसत्तम। तस्या वद समुत्पत्तिं विस्तरेण शुभप्रदाम् ॥१॥

व्यास उवाच—

वृद्धगङ्गासमुत्पत्तिं शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः। दुष्कर्मफलबीजानां भर्जनीं पावनीं तथा ॥२॥
वृद्धशर्मा नरपतिर्यामाहूय वरप्रदाम्। यज्ञैः सन्तर्पयद्देवान् दानैः सन्तर्प्य भूसुरान् ॥३॥
प्रवाहैः पूरयामास वृद्धगङ्गां नरेश्वरः। दिव्येन पयसा पूर्णां[1] पितुः प्रियचिकीर्षया ॥४॥

ऋषय ऊचुः—

वृद्धशर्मा नरपतिः कस्मात्तामुत्तमां नदीम्। प्रवाहैः पूरयामास पावनीं जनतारिणीम् ॥५॥
कथं प्रियं पितुस्तत्र[2] चकार नृपसत्तमः।

व्यास उवाच—

वृद्धशर्मा नरपतिर्बभूव पृथिवीश्वरः ॥ ६ ॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः सर्वा निरामयाः। बभूवुर्निर्व्यलीकाश्च निरातङ्का महोत्सवाः ॥
तस्य राज्ये प्रजाः सर्वाः सुखमापुर्महाबलाः। न कश्चित्तस्य नृपतेर्देशे रोगप्रपीडितः ॥८॥
न जराशोकदुःकार्तो बभूव च तपोधनाः। तं प्राप्य नृपतिं सर्वाः प्रजा हर्षमुपाययुः ॥९॥
हर्षगीतस्तुतियुता महेन्द्रमिव देवताः। ततस्तं नृपतिं धन्या वागुवाचाशरीरिणी ॥
द्विजार्चनरतं शान्तं महेन्द्रसमविक्रमम् ॥ १० ॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—मुनिश्रेष्ठ ! आप ने जो 'वृद्धा' नदी का उल्लेख किया है, उसकी उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने समाधान किया—ऋषिवरों ! 'वृद्धगङ्गा' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आप लोग सुनें। 'वृद्धशर्मा' नामक राजा ने अपने पिता को प्रसन्न करने की इच्छा से नदी को आवाहित कर, यज्ञों से देवगण तथा दान से विप्रवर्ग को सन्तुष्ट कर, लोक में प्रवाहित किया।२-४।

ऋषियों ने (पुनः) पूछा—मुनिवर ! राजा वृद्धशर्मा ने लोकपावनी वृद्धा नदी को किस हेतु प्रवाहित किया ? और किस प्रकार अपने पिता को सन्तुष्ट किया ? ॥ ५ ॥

व्यासजी बोले—'वृद्धशर्मा' राजा के राज्यारोहण होने पर उसकी प्रजा रोगरहित हो गई। इसके साथ ही लोग सत्यप्रेमी होते हुए बिना किसी भय के उत्सवों में लगे रहते थे। इस प्रकार उसकी जनता बलशाली होते हुए हर्ष के साथ दिन बिताने लगी। देवों द्वारा संस्तुत महेन्द्र की तरह वृद्धशर्मा[3] भी प्रजा से संमानित था। एक दिन ब्राह्मणों की पूजा करते हुए इस राजा को आकाशवाणी सुनाई दी ॥ ६ - १० ॥

---

१. 'दिव्यसलिलसम्पूर्णाम्'—'ख'। २. 'कथं पितुः प्रियं तत्र'—'ख'।
३. 'आयु' का पुत्र (महा० आदि० ७५-२५-२६)।

वागुवाच—

शृणु राजन् महाभाग वचनं मे उदाहृतम् । तर्पयस्व पितॄन् सर्वान् व्रजस्व हिमपर्वतम् ।।११।।

व्यास उवाच—

कोऽयमित्येव सम्भाव्य स राजा प्रश्रयान्वितः । प्रत्युवाचाऽशरीरां तां सत्यधर्मार्थवादिनीम् ।।

राजोवाच—

को भवानशरीरा वै वदन्तीह समागता । कथयस्व हि ते दास्यं करवाणि न संशयः ।।१३।।

अशरीरा उवाच—

अहं हि विष्णुर्देवानामस्मि सत्यं वदामि ते ।। १४ ।।

हिताय तव लोकस्य अशरीरा मयोदिता । श्रेयस्ते भविता सद्यो हिमाद्रिं याहि मा चिरम् ।।

शङ्खाद्रौ प्राप्स्यसि श्रेष्ठां जाह्नवीं वृद्धरूपिणीम् । विरच्य तस्या संवाहं जगतो हितकाम्यया ।।

तर्पयाशु स्वपितरं देवानपि तथा नृप ।

व्यास उवाच—

तथेत्युक्त्वा स राजर्षिः पृच्छन् शङ्खाचलं बली ।। १७ ।।

हिमाद्रौ प्रययौ हृष्टः ससैन्यबलवाहनः । दृष्ट्वा देवतटं राजा स पश्यन्युग्मपर्वतम् ।।१८।।

तथा नन्दागिरिं पश्यन् ययौ शङ्खाचलं बली । ददर्श जाह्नवीं वृद्धां युग्मपर्वतमध्यगाम् ।।१९।।

भैरवीं भैरवावासां नागैश्च परिवारिताम् । ततो ददर्श तां राजा गङ्गां मकरवाहिनीम् ।।२०।।

शुक्लाम्बरधरां वृद्धां शङ्खे सरसि संस्थिताम् । ततस्तुष्टाव तां गङ्गां स राजा मुनिसत्तमाः ।।

वाणी ने यह घोषित किया—राजन् ! मेरी बात मानो । 'तुम अपने पितरों की तृप्ति करने हेतु 'हिमालय' की ओर जाओ' ।। ११ ।।

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! यह घोषणा किसने की है ? यह जानने के लिए राजा ने उस अशरीरिणी वाणी को यह उत्तर दिया ।। १२ ।।

राजा ने कहा—शरीर धारण न करते हुए भी बोलने वाली आप कौन हैं ? मैं आपकी सेवा करने के लिए उद्यत हूँ ।। १३ ।।

वाणी ने घोषित किया – राजन् ! मैं विष्णु भगवान् (की वाणी) हूँ । इसे सत्य मानो । तुम्हारे और जन-हित के लिए मैंने यह घोषित किया है । तुम शीघ्र 'हिमालय' की ओर प्रस्थान करो । इससे तुम्हारा कल्याण होगा । वहाँ 'शङ्ख' पर्वत पर 'वृद्धजाह्नवी' (बूढ़ी गङ्गा) नदी है । लोक-कल्याणार्थ उसे प्रवाहित कर देव-पितृ-तर्पण करो ।। १४ – १६ ।।

व्यासजी ने कहा—'तथाऽस्तु' कह कर प्रसन्नचित्त हो वह राजा अपनी सेना और वाहनों समेत 'शङ्खाचल' को पूछते पूछते हिमालय की ओर बढ़ा । मार्ग में 'देवतट' को देखते उनकी दृष्टि 'युग्मपर्वत' (दो पर्वतों का साहचर्य) पर पड़ी । तब वह 'नन्दागिरि' को देखते हुए 'शङ्ख' पर्वत पर पहुँच गया । दो पर्वतों के मध्य से बहती हुई 'वृद्धगङ्गा' (बूढ़ी गङ्गा) को देखा । वह भैरव से आवासित भैरवी का रूप धारण किये हुए नागों से परि-वेष्टित हो मानो धवलवस्त्र धारण कर मगरों के वाहन पर आरूढ हो 'शङ्ख'-सरोवर में विराजमान थी । राजा ने 'वृद्धगङ्गा' की स्तुति आरम्भ की ।। १७ – २१ ।।

राजोवाच—

नमामि शुक्लाम्बरधारिणीं शिवां वैकुण्ठपादाब्जविनिःसृतां पराम्।
शङ्खाचलस्थां त्रिपथाभिगामिनीं चन्द्रार्धमौलेः शिरसि प्रभूषिताम्॥ २२॥
नमामि जह्नोस्तनयां सुशीतलां गन्धर्वविद्याधरसिद्धसेविताम्।
मन्दाकिनीं देवपतेः प्रियाशतैर्निषेवितां देवसमाधिशोधिताम्॥ २३॥

व्यास उवाच—

इति स्तुत्वा स तां गङ्गां शङ्खे सरसि संस्थिताम्। युग्माद्रिं गदया भित्त्वा वाहयामास तां नदीम्।
तेन सा वाहिता गङ्गा युग्मपर्वतमध्यगा। बभूव मकरावासा दिव्या सागरगामिनी॥२५॥
स्मर्तॄणां सम्प्रकुरुते यस्याः संस्मरणं शुभम्। भस्मसाच्छतजन्मोत्थं क्रोधहिंसादिसम्भवम्॥
तोयं यस्याः प्रपिबतां सोमपानफलं शुभम्। कुरुते भस्मसात्पापं मज्जनं जन्मकोटिजम्॥२७॥
तर्पिता चापि संस्नाता मृता च सा नदी शुभा। मुक्त्यै भवति लोकानां यथा भागीरथी शुभा॥
तर्पिताः पितरो येन स्नात्वा तोयैः सुशोभनैः। उद्धृतास्तेन पितरो वैवस्वतवशङ्गताः॥२९॥
येन सन्तर्पितास्तत्र अणुमात्रैर्जलैरपि। भवेयुस्तर्पिताः सर्वे पितरो नान्यथा क्वचित्॥३०॥
दत्तं येनाणुमात्रं वै स्वर्णं तस्यास्तटे शुभे। भूखण्डं तेन दत्तं स्यात् सशैलवनकाननम्॥३१॥
येन स्नाता सरिच्छ्रेष्ठा मासमात्रं तपोधनाः। तेन सर्वाणि चीर्णानि व्रतान्याचरितानि वै।३२।
एवं पुण्यतमां राजा गङ्गां प्राप्य महाबलः। गदया पर्वतं भित्त्वा वाहयित्वा च तां नदीम्।३३।
स सङ्गमं पयोवत्याः प्राप्य राजा महाबलम्। पितरं तर्पयामास ततश्चान्यान्पितॄंस्तथा॥३४॥
तर्पितास्तेन पितरो दत्त्वा च वरमाशिषम्। ययुर्वैकुण्ठभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥३५॥
यथा तेन नरेन्द्रेण भूतले सा प्रकाशिता। वृद्धगङ्गा महापुण्या तथा सर्वं मयोदितम्॥३६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वृद्धगङ्गामाहात्म्ये चतुःषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः॥

राजा बोले—वृद्धगङ्गे! तुम शुक्लवस्त्रधारिणी, विष्णु के चरणों से निकलने पर शङ्खपर्वत पर स्थित हो। इसके साथ ही तुम भगवान् शङ्कर का शिरोभूषण होती हुई त्रिपथगा (तीनों लोकों में विचरण करने वाली) भी हो। अतः मैं आप को नमस्कार करता हूँ। जह्नुसुते! आप शीतलजल से समायुक्त हो—सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरों से सेवित हैं। एवम् इन्द्र की प्रियाओं से सेवित तथा देवों की तपस्या से शोधित 'मन्दाकिनी' के रूप में विद्यमान होती हुई 'वृद्धगङ्गा' नाम को धारण किये हैं। अतः मैं प्रणाम करता हूँ॥ २२–२३॥

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने के बाद राजा ने गदा से दोनों पर्वतों की मध्यसन्धि को तोड़ कर 'वृद्धगङ्गा' को आगे बहाया। इस प्रकार युग्मपर्वत के मध्य रुकी हुई उस गङ्गा को बहाकर मगरों की शरणदात्री तथा सागरगामिनी बना दिया। उसके स्मरण करने वालों के सैकड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं! साथ ही उन्हें शुभ फल भी मिलता है। उसका जल पीने से सोमपान का फल मिलता है। उसमें स्नान करने पर असंख्य जन्मों के सञ्चित पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि वहाँ स्नान, तर्पण तथा देहत्याग हो जाय तो भागीरथी में स्नानादि की तरह मुक्तिलाभ होता है। वृद्धगङ्गा के जल में

१६५

ऋषय ऊचुः—

यानि तस्यां सुतीर्थानि यानि क्षेत्राणि सन्ति वै । प्रब्रूहि तानि सर्वाणि कृपया मुनिसत्तम ।।१।।

व्यास उवाच—

शृण्वन्त्वस्याः सुतीर्थानि संस्थितानि पदे पदे । कथितानि पुरा सम्यक् शङ्करेण महात्मना ।२।
येनेयं सकला पृथ्वी पाविता विधृता तथा । भवान्यै तेन यत्प्रोक्तं महादेवेन धीमता ।।३।।
तथा गन्धर्वमुख्येभ्यो देवेभ्योऽपि तथैव च । महर्षिसिद्धगुह्येभ्यो यक्षेभ्यश्च तथैव च ।।४।।
देवताः पितरश्चैव गन्धर्वोरगराक्षसाः । महर्षयः पिशाचाश्च तथा देवर्षयोऽपरे ।।५।।
महादेवीं पुरस्कृत्य ययुर्देवस्य मन्दिरम् । तत्र देवगणाः सर्वे नमस्कृत्य महेश्वरम् ।।६।।
तस्थुः प्राञ्जलयो विप्रा देवदेवस्य सन्निधौ । ततस्तु सुखमासीनं महादेवं जगद्गुरुम् ।।७।।
प्रणम्य शिरसा देवी पप्रच्छैकान्तिनं प्रियम् ।

स्नान तथा तर्पणादि करने से पितरों का नरक से उद्धार होता है। केवल थोड़े से जल से भी यदि पितृतर्पण किया जाय तो भी पितरों की तृप्ति हो जाती है। इसके तट पर थोड़ा सा भी सुवर्णदान करने वाले व्यक्ति को समग्र भूदान का पुण्य मिलता है। 'वृद्धगङ्गा' में एक मास स्नान करने से सब व्रतों की पूर्णता हो जाती है। फिर उस राजा की गदा से पहाड़ को तोड़ आगे बढी हुई 'वृद्धगङ्गा' का 'पयोवती' के साथ सङ्गम हुआ। वहाँ राजा ने पितृतर्पण किया। उन पितरों से आशीर्वाद प्राप्त कर पुनर्जन्म की व्याधि से रहित हो वह 'वैकुण्ठलोक' में प्रतिष्ठित हो गया। मुनिवरों! उस वृद्धशर्मा राजा के द्वारा इस भूलोक में प्रकाशित वृद्धगङ्गा' का यथार्थ वर्णन मैंने कर दिया है।। २४ - ३५ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वृद्धगङ्गा'-माहात्म्य नामक
एक सौ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।

ऋषियों ने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! वृद्धगङ्गा के सब तीर्थों तथा उससे सम्बद्ध क्षेत्रों के विषय में भी बतलायें ।। १ ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! वृद्धगङ्गा के पग पग पर स्थित अनेक पुण्यप्रद तीर्थ भगवान् शङ्कर ने पार्वती को विदित कराये थे। मैं उन्हें बतलाता हूँ। आप सुनें। समग्र भूमण्डल को पवित्र करने वाले तथा पृथ्वी को धारण करने वाले भगवान् शङ्कर ने इस सम्बन्ध में पार्वती जी को जो बतलाया था—उसे मैं कहता हूँ। एक बार प्रमुख गन्धर्व, देवगण, महर्षिगण, सिद्धगण, गुह्यक, यक्ष, पितृगण, राक्षस तथा पिशाच आदि 'पार्वती' को अग्रसर कर शिवजी के स्थान पर गए। उन सब ने भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया। आनन्दपूर्वक एकान्त में बैठे हुए जगद्गुरु शङ्कर से पार्वती ने विनयपूर्वक पूछना आरम्भ किया ।। २-७ ।।

देव्युवाच—

कस्मिन् क्षेत्रे च तीर्थे च तर्पितास्तृप्तिमानवाः ॥ ८ ॥
तृप्तिमायान्ति देवेश प्रब्रूहि यदि मन्यसे । कस्यां स्नाताश्च मनुजाः प्राप्नुवन्ति हरेः पदम् ॥९॥

व्यास उवाच—

एतच्छ्रुत्वा च वचनं महादेव्या महेश्वरः । उवाच सस्मयं कृत्वा महादेवीं तपोधनाः ॥१०॥

ईश्वर उवाच—

शृणु भद्रे मम वचस्तर्पिताः पितरो ध्रुवम् । यस्यां तृप्यन्ति तामाशु वदिष्यामि न संशयः ॥११
हिमालयाद्रिसंलग्नः शङ्खाख्यः पर्वतः स्मृतः । तस्माद्विष्णोरनुज्ञां च प्राप्य आयुसुतो बली ॥
गङ्गां निष्कासयामास राजा राजगृहेश्वरः । वृद्धशर्मा स वृद्धाख्यां विष्णोश्चरणसम्भवाम् ।१३।
तस्यां सन्तर्पिताः सर्वे पितरो यान्ति शाश्वतीम् । विशेषेण च तीर्थेषु यान्ति चात्र न संशयः ॥

देव्युवाच—

अस्यास्तीर्थानि दिव्यानि कथयस्व महेश्वर । येषु सन्तर्पिताः सर्वे पितरो यान्ति शाश्वतीम् ॥

ईश्वर उवाच—

मूले विश्वम्भराख्यं वै शृणुष्व परमेश्वरि । तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य पितरो यान्ति शाश्वतीम् ।
विश्वेश्वरं समभ्यर्च्य कन्दरायां महेश्वरि । कोटिजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥१७॥
ततस्तु विश्वनाथाख्ये तीर्थे स्नानं विधाय वै । प्रतर्पयेत् पितृन्सर्वान् विश्वनाथं प्रपूज्य वै ॥
क्षुधिताः पितरः सर्वे तृप्ताः स्युर्नान्यथा भवेत् । सत्ये शेषह्रदे चापि तथा कनखलाह्वये ।१९।
कुशावर्ते ततः शुद्धे तर्पिताः पितरो गतिम् । प्राप्नुवन्ति महाभागे यावदाहूतसंप्लवम् ॥२०॥
गङ्गाद्वारं ततो ज्ञेयं तस्या नद्यास्तपोधनाः । यत्र नन्दगिरिं भित्त्वा गता सुसरितां वरा ॥२१॥

पार्वती ने निवेदन किया – देवेश ! किस क्षेत्र और तीर्थ में तर्पण करने से पितरों की तृप्ति होती है ? कहाँ पर स्नान करने से मानव 'विष्णुपद' प्राप्त करते हैं ? ॥ ८ – ९ ॥

व्यासजी बोले—तपोधनों ! इस प्रकार देवी की बातें सुनकर मुस्कराते हुए शिवजी ने पार्वती से कहना आरम्भ किया ॥ १० ॥

शिवजी ने कहा—भद्रे ! सुनो । मैं अब तुम्हें उसके सम्बन्ध में बतलाता हूँ, जहाँ तर्पण करने पर पितरों की शीघ्र तृप्ति होती है । हिमालय पर्वत से संलग्न 'शङ्ख' पर्वत है । वहाँ 'विष्णु' की आज्ञा से 'आयु' के पुत्र बली वृद्धशर्मा (राजगृह के राजा) ने विष्णुपदी 'वृद्धगङ्गा' को वहाँ से बाहर निकाला । उसमें तर्पण करने से पितृगण मुक्त हो जाते हैं । इस तीर्थ के विषय में विशेष कर यह सुनिश्चित है ॥ ११ – १४ ॥

देवी ने कहा—महादेव ! 'वृद्धगङ्गा' के उन सब तीर्थों के सम्बन्ध में बतलायें, जहाँ तर्पण करने से सब पितर नित्य मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ १५ ॥

भगवान् शङ्कर बोले—देवि ! इस नदी के मूल में विश्वम्भर तीर्थ है । वहाँ स्नान और तर्पण करने से पितरों की सद्गति होती है । कन्दरा में स्थित 'विश्वम्भर' का पूजन करने पर कोटिजन्मकृत पापों से छुटकारा मिल जाता है । तदनन्तर 'विश्वनाथ' तीर्थ में विश्वनाथ का पूजन कर पितृतर्पण करने पर पिपासु पितृगण तृप्त हो जाते हैं । फिर 'सत्य', 'शेष', 'कनखल' और 'कुशावर्त' तीर्थों में तर्पण करने पर पितृगण सदा के लिए तृप्त हो जाते हैं ।

गङ्गाद्वारे नरः स्नात्वा वाजपेयसमं फलम् । प्राप्य विष्णपुरं याति कुलकोटिसमन्वितः ॥२२॥
ततस्तु वृद्धगङ्गायां नन्दासङ्गममध्यगम् । हंसतीर्थमिति ज्ञेयं यत्र स्नात्वा वरेश्वरि ॥२३॥
पिपीलिकाऽपि स्वां योनिं हित्वा साम्राज्यमश्नुते । तर्पिताः पितरस्तत्र ब्रह्मलोकं प्रयान्ति वै ।
ततो युग्माद्रिमध्यस्था गुहा तस्यास्तटे शुभे । विद्यते मृगशावाक्षि शृणु तस्याः फलं महत् ॥
त्रिरात्रं मामुपास्याशु तत्र तिष्ठति मानवः । त्रिकालज्ञं भवेत्सद्यः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥
लग्नाविव प्रदृश्येते तत्र तौ युग्मपर्वतौ । यत्र सा पुण्यनिचया गुहा वामे प्रतिष्ठिता ॥२७॥
तदूर्ध्वं पुण्यनिचया नाम्ना मन्दोदरी नदी । वृद्धासङ्गमसम्भूता विद्यते वरवर्णिनि ॥२८॥
घण्टाकर्णेश्वरं पूज्य विद्यावाञ्जायते नरः । ततः सीमन्तिनी नाम सङ्गमेऽस्ति महेश्वरी ।२९।
सर्वसीमन्तिनीमध्ये मूलसीमन्तिनी शुभा । त्वमेवासि महादेवि नान्यथास्ति कदाचन ॥३०॥
ततस्त्वयोवती नाम मार्तण्डसदृशी शुभा । परिघात्पर्वताज्जाता सङ्गमेऽस्ति वरेश्वरि ॥३१॥
यस्यां गोविन्दसंज्ञं वै तीर्थमस्ति न संशयः । दिव्यं मार्तण्डसंज्ञं वै ततो लोके प्रगीयते ॥३२॥
मृदुगासङ्गमध्यस्था सर्वपापप्रणाशिनी । ततस्त्वयोवती पुण्या तीर्थे विमलसंज्ञके ।३३।
सम्मिलेल्लोकपापघ्नी यत्र स्नात्वा न शोचति । विमलं तत्र सम्पूज्य तर्पयेच्च पितॄंस्ततः ॥
कुलानां कोटिसंज्ञं वै तार्य संयाति शाश्वतीम् । सन्त्यनेकानि तीर्थानि वृद्धनद्यां वरेश्वरि ॥
सङ्गमानि विचित्राणि बहुसङ्ख्यानि सन्ति वै । कुन्दवत्या महासङ्गे ततो दृष्टिसरः स्मृतम् ।

तपोधनों ! तब 'वृद्धगङ्गा' के द्वार को जानें। 'नन्दपर्वत' को विदीर्ण कर जहाँ नीचे की ओर 'वृद्धा' बढ़ी है, वही 'गङ्गाद्वार' है। वहाँ स्नान करने से 'वाजपेय-यज्ञ'[1] का फल मिलता है। इसके साथ ही असंख्य कुलों से समन्वित हो 'विष्णुलोक' प्राप्त होता है। तव 'वृद्धगङ्गा' में 'नन्दा' सङ्गम के मध्य 'हंसतीर्थ' है। उसमें स्नान करने से चींटी भी अपनी उस योनि को छोड़ कर राज्यैश्वर्य का लाभ प्राप्त करती है। वहाँ तर्पण करने पर पितृगण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। तव 'युग्मादि' के मध्य में 'वृद्धा' के तट पर एक गुफा है। मृगशावाक्षि ! उसका माहात्म्य सुनो। वहाँ त्रिरात्र वास कर 'शिव' की पूजा करने से मनुष्य निःसन्देह त्रिकालज्ञ हो जाता है। वहाँ दोनों पर्वतों का सन्धिस्थल हैं। उस सन्धिस्थल के वामभग में यह गुहा स्थित है। गुहा के ऊपर 'मन्दोदरी' और 'वृद्धा' का सङ्गम है। वहाँ 'घण्टाकर्णेश्वर' का पूजन करने से मनुष्य विद्वान् हो जाता है। फिर सङ्गम में 'सीमन्तिनी' है। देवि ! वस्तुतः सीमन्तिनियों (स्त्रियों) में तुम्हीं सबकी मूलरूपा (आदि शक्ति) हो। तब 'परिघ' पर्वत से निकलने वाली सूर्यसदृश कान्तिमती 'अयोवती' नदी वृद्धा' के साथ मिलती है। वहाँ 'मार्तण्ड' तथा 'गोविन्द' नाम से ज्ञात तीर्थ है। आगे चलकर 'मृदुगा' के साथ 'विमल' तीर्थ में 'अयोवती' मिलती है। वहाँ स्नान-तर्पणादि करने पर पितृगण शोकरहित हो सद्गति प्राप्त करते हैं। कहाँ तक कहें ? वृद्धा में अनेक तीर्थ और विचित्र सङ्गम हैं। 'वृद्धा-कुन्दवती' के विशाल सङ्गम स्थल पर 'दृष्टिसर'

---

१. 'सोमयाग' की सात संस्थाओं में से पाँचवीं संस्था 'वाजपेय-याग' है। यह वाजपेय याग 'षोडशी' नामक चतुर्थ संस्था की विकृति है। कारण यह है कि इस याग में विहित समस्त क्रियाकलाप का अतिदेश उपर्युक्त सोमयाग की चौथी संस्था से प्राप्त होता है। 'शतपथ ब्राह्मण' (५, १, १, १४) के अनुसार 'साम्राज्य' की कामना से यह यज्ञ किया जाता है ('वाजपेयेन इष्ट्वा सम्राट् भवति')। शरद् ऋतु में इस याग का अनुष्ठान किया जा सकता है (कात्यायन श्रौतसूत्र १४, १, १)।

तत्र पद्मशिला नाम पूजितास्ति वरेश्वरि । तत्र स्नात्वा च तां पूज्य मम सायुज्यमश्नुते ।।३७।।
ततः पुंसवती नाम बाणाख्या च ततो नदी । ततः शेषा सुभद्रा च गोमती गौतमी तथा ।।३८।।
एताः पुण्या महानद्यस्तस्यां सङ्गमिताः शुभे । एतासां सङ्गमे स्नात्वा नरो मुच्येत किल्विषात् ।
सर्वेष्वेतेषु तीर्थेषु सङ्गमेषु विशेषतः । तर्पणं पिण्डदानं च पितॄणां याति चाक्षयम् ।। ४०।।
ततः पुञ्जवती नाम देव्याः पूतपुरोद्भवा । सङ्गमे वृद्धगङ्गायाः संयाता वरवर्णिनि ।।४१।।
त्वमेव नन्दनाख्या वै पूज्यसे नात्र संशयः । ततो दोग्ध्री सरिच्छ्रेष्ठा धेन्वाश्चरणसम्भवा ।।४२।।
सङ्गमे वृद्धगङ्गायाः सङ्गता नात्र संशयः । तत्र मध्ये महातीर्थे धेनुसञ्ज्ञे महेश्वरि ।।४३।।
स्नात्वा धेनुप्रदानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् । ततस्तु मालिकाख्या वै मालिकाचरणोद्भवा ।
सङ्गमे सङ्गता दिव्ये तत्र स्नात्वा न शोचति । मालिकेशं समभ्यर्च्य तत्र सङ्गममध्यगम् ।।
तर्पयित्वा पितॄंस्तत्र अङ्काख्ये तीर्थनायके । नरः पितॄन्समुद्धृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४६।।
ततो वेत्रवती नाम शशिवर्णा शुभा नदी । ततस्तु पुत्रदा नाम चन्द्रभागा ततो नदी ।।४७।।
ततस्तु वर्णवाहा च वर्णतीर्थं ततो नदी । मञ्जुभागा ततः पुण्या पद्मपत्रा ततो नदी ।।४८।।
वैताली च महापुण्या ततस्तु सरितां वरा । एताः सर्वा महानद्यो वृद्धगङ्गां समागताः ।।४९।।
एतासां सङ्गमे पुण्ये स्नात्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् । सन्तर्प्य पितृलोकाप्तिर्जायते वरवर्णिनि ।५०।
यस्त्वस्यां वृद्धगङ्गायां स्नानं कृत्वा प्रतर्पयेत् । पितॄन्वै पितरस्तस्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ।।५१।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वृद्धगङ्गामाहात्म्ये पञ्चषष्टयुत्तरशततमोऽध्यायः ।।

है । तब 'पद्मशिला' की पूजा होती है । उसमें स्नान करने से 'शिवसायुज्य' प्राप्त होता है । फिर 'पुंसवती', 'बाणा', 'शेषा', 'सुभद्रा', 'गोमती' और 'गौतमी' नदियाँ 'वृद्धा' के साथ सङ्गमित होती है । इन सबके सङ्गमों में स्नान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं । देवि ! इन सब तीर्थों और संङ्गमस्थलों पर तर्पण और पिण्डदान करने का अक्षय्य फल है । तब देवी के 'पूत' (पवित्र) पुर से उत्पन्न 'पुञ्जवती' नदी वृद्धा से मिलती है । तुम्हीं वहाँ 'नन्दना' नाम से पूजित हो । फिर 'धेनु' के चरणों से उत्पन्न 'दोग्ध्री' नदी का 'वृद्धा' के साथ सङ्गम है । महेश्वरि ! उसके मध्य 'धेनु' महातीर्थ में स्नान करने से धेनुदान का फल मिलता है । तब 'मालिका' के चरण से उत्पन्न 'मालिका' नदी का वृद्धा के साथ सङ्गम है । वहाँ 'मालिका' का पूजन कर 'अङ्क' तीर्थ में तर्पण करने से पितरों का उद्धार होता है । फिर 'क्रान्ति' पर्वत से उत्पन्न 'क्रौञ्चवती' और 'वृद्धा' के सङ्गम में स्नान विहित है । उससे पाप नष्ट हो जाते हैं । तदनन्तर चन्द्रमा के समान शुक्लवर्णा 'वेत्रवती', 'पुत्रदा', 'चन्द्रभागा', 'वर्णवाहा' 'वर्णतीर्थ', 'मञ्जुभागा', 'पद्मपत्रा' और 'वैताली' नामकी नदियां 'वृद्धगङ्गा' में समाविष्ट हो जाती हैं । वरवर्णिनि ! इनके सङ्गमों में स्नान तथा तर्पण करने पर 'पितृलोक' प्राप्त होता है । 'वृद्धगङ्गा' में स्नान-तर्पणादि करने वाले व्यक्ति के पितृगण ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाते हैं ।। १६ – ५१ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वृद्धगङ्गा'-माहात्म्य नामक
एक सौ पेंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।

व्यास उवाच

श्रुत्वा तीर्थानि भवतो विलसन् मुखपङ्कजात् । प्रियमेकान्तिनं देवं पप्रच्छ पर्वतात्मजा ॥१॥

श्रीदेव्युवाच—

देवाधिदेव देवेश सर्वप्राणहिते रत । केन कर्मविपाकेन नानारोगाद्युपद्रवाः ॥२॥
न भवन्ति नृणां देव यथावद्वद विस्तरात् । कमाराध्य पुनर्लोकाः सुखिनः सम्भवन्ति हि ॥३॥

ईश्वर उवाच—

व्रतोपवासैर्येनाऽहं नान्यजन्मनि तोषितः । ते नरा दुःखसन्तप्ता भवन्ति वरवर्णिनि ॥४॥
तेषामेव महाभागे पितरो नरके ध्रुवम् । निवसन्ति महाघोरे रौरवे घोरदर्शने ॥ ५ ॥
येषां वै पितरो घोरे नरके निवसन्ति हि । विषग्रहज्वरैश्चापि पीडिताः सम्भवन्ति ते ॥६॥
आरोग्यं परमां वृद्धि मामनाराध्य सुव्रते । न भवन्ति नृणां सत्यं कथितं नान्यथा भवेत् ॥७॥

श्रीदेव्युवाच—

कीदृशी तव पूजास्ति तव सन्तुष्टिकारिका । कस्मिन् क्षेत्रे विधातव्या पूजा तव महेश्वर ॥
दुःखरोगविनाशाय कस्मिन्क्षेत्रे भवान् स्थितः । प्रियं तव महत्क्षेत्रमस्ति कुत्र महेश्वर ॥९॥

ईश्वर उवाच—

वृद्धगङ्गा महापुण्या यत्र पुण्या सरस्वती । महर्षिभिः समाहूता मम प्रियचिकीर्षया ॥१०॥
यत्र सङ्गमिते नद्यौ विद्येते वरवर्णिनि । तत्र मध्ये महाक्षेत्रं मम प्रीतिकरं शुभम् ॥११॥
विद्यते वैद्यनाथाख्यं सुरसिद्धनिषेवितम् । वैद्यनाथस्वरूपेण तत्रास्मि वरवर्णिनि ॥१२॥

व्यासजी ने कहा—भगवान् शङ्कर के श्रीमुख से तीर्थों का वर्णन सुनकर एकान्त में बैठे हुए भगवान् शिव से पार्वती ने पुनः जिज्ञासा की । १ ॥

पार्वती बोलीं—सब प्राणियों के हितकारी देवाधिदेव ! आप कृपया इस सम्बन्ध में अवगत कराने का कष्ट करें कि "किन कर्मों के विपाक से मानव को रोगादि उपद्रव कष्ट देते हैं ? तथा किसकी आराधना करने से मानव सुखी हो सकते हैं" ? ॥ २ - ३ ॥

भगवान् शङ्कर ने कहा—सुन्दरि ! जिसने पूर्वजन्म में मेरी आराधना नहीं की है, वह दुःखों से सन्तप्त होता है । ऐसे चरित्र के व्यक्तियों के पितृगण घोर रौरव नरक में वास करते हैं । उन पितरों की सन्तति वर्तमान जन्म में विष, ग्रहबाधा एवं ज्वरादि रोगों से पीड़ित रहती है । सुव्रते ! मेरी आराधना किये बिना लोगों को निःसन्देह आरोग्य और सुख नहीं मिलता ॥ ४-७ ॥

पार्वती ने पुनः पूछना आरम्भ किया—महेश्वर ! आप को सन्तुष्ट करने वाली पूजा का क्या विधान है ? दुःख एवं पापादि का नाश करने के लिये किस क्षेत्र में वह पूजा विहित है ? ॥ ८ - ९ ॥

भगवान् शङ्कर ने उत्तर दिया—हे वरवर्णिनि ! मेरे सन्तुष्ट करने की इच्छा से महर्षियों द्वारा 'वृद्धगङ्गा' और 'सरस्वती' नदियाँ जहाँ आहूत की गई थीं, उनके सङ्गमस्थ

सहैवानेन कुमारेण तथैव च त्वया सह। तन्मे प्रियतमं क्षेत्रं जानीहि वरदप्रिये ॥१३॥
यादृशं वैद्यनाथाख्यं क्षेत्रं प्रियतमं मम। तादृशो न च कैलासो न विन्ध्यो विद्यते प्रियः ॥१४॥
न तादृशानि क्षेत्राणि मम प्रियकराणि च। सन्ति भूमण्डले क्वापि कैलासेऽपि तथेश्वरि ॥
दुष्टग्रहोपघातैश्च विषरोगाद्युपद्रवैः। प्राणिनो ये समायान्ति सर्वकालमुपद्रुताः ॥१६॥
वैद्यनाथाह्वये क्षेत्रे मम प्रियकरे शुभे। ते नराः पूजिता लोके भवन्ति हि परत्र च ॥१७॥
ये तत्र दर्शनं सम्यङ् मम लिङ्गस्य शोभनम्। कुर्वन्ति दुःखशोकार्तास्ते न शोचन्ति वै पुनः ॥
ये तत्र मम लिङ्गस्य पूजां सम्यक् चरन्ति हि। कुष्ठरोगव्रणार्ताश्च दिव्यदेहा भवन्ति ते ॥
गङ्गासरस्वतीमध्ये स्नात्वा यो मां प्रपूजति। स न शोचति भूलोके भूमौ देवोपमो हि सः ॥
तावद् भ्रमन्ति संसारे दुःखरोगग्रहातुराः। यावन्मे वैद्यनाथाख्यं लिङ्गं नार्चन्ति मानवाः ॥
यत्राहं करुणानाथो वसामि करुणेश्वरि। तत्र मे वैद्यनाथाख्यं किं न पूजन्ति मानवाः ॥२२॥
मत्तः सिद्धिमनुप्राप्य बहवस्तत्र शाङ्करि। लेभिरे परमैश्वर्यं महेन्द्राद्याः सुशोभनम् ॥२३॥
यां यां सिद्धिं विचिन्त्याशु तत्रायान्ति नराः शुभे। देवैरपि च दुष्प्राप्यां तां तां तत्र ददामि वै।
तत्रैव बहुभिर्भक्तैः पूजितोऽस्मि वरार्थिभिः। बाणेन कुम्भकर्णेन रावणेन च रक्षसा ॥२५॥
विभीषणेन पुण्येन यमेन धनदेन च। महेन्द्रेणापि बलिना वरुणेनापि सुव्रते ॥२६॥
तथान्यैर्बहुभिर्भक्तैः पूजितोऽस्मि वरार्थिभिः। य विचिन्त्य ते सर्वे समायाता मनोरथम् ।२७।
तत्तत्प्रपूरितं सर्वं मया तत्र महेश्वरि। न कश्चिद्वैद्यनाथाख्यं क्षेत्रमागत्य मे प्रियम् ।२८।
विमुखो याति वै देवि सत्यमेतन्मयोदितम्। फेरवोऽपि मया देवि भीतस्तत्रागतः पुरा ॥२९॥

कृतोऽभिलाषपूर्णो वै किमन्यस्य ब्रवीम्यहम्।

मध्यक्षेत्र मेरा प्रीतिकर क्षेत्र है। वह 'वैद्यनाथ क्षेत्र' के नाम से विख्यात है। मैं वहाँ 'वैद्यनाथ' के रूप में रहता हूँ। तुम भी वहाँ कुमार कार्तिकेय के साथ रहती हो। उससे अधिक प्रिय क्षेत्र मेरा और कोई नहीं है। यहाँ तक कि 'कैलास' और 'विन्ध्यपर्वत' भी उतने प्रिय नहीं हैं। समग्र भूमण्डल और कैलास में भी कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है। अतः दुर्ग्रह और विषव्याधि आदि उपद्रवों से दुःखी जन जो वहाँ आते हैं, वे इस लोक और परलोक—दोनों में ही पूजित होते हैं। उस शिवलिङ्ग का दर्शन करने वालों को सब प्रकार के दुःखों से मुक्ति मिलती है। कहा तक कहा जाय ? विधिपूर्वक पूजा करने वालों के 'कुष्ठ' एवं 'व्रणादि' रोग भी दूर हो जाते हैं। 'वृद्ध-गङ्गा-सरस्वती' के सङ्गम में स्नान कर जो मेरी अर्चना करते हैं, वे इस पृथ्वी पर देवलोक की तरह संमानित होते हैं। हे परमेश्वरि ! जिस स्थान में मैं रहता हूँ, वहाँ पर स्थित 'वैद्यनाथे-श्वर' की पूजा लोग क्यों नहीं करते ? पार्वति ! वहाँ महेन्द्र आदि अनेक लोगों ने मुझसे ऐश्वर्य-सिद्धि प्राप्त की है। शुभे ! वहाँ जिस इच्छा को लेकर मानव आते हैं, भले ही देवों से वह दुष्प्राप्य हो, मैं उस सिद्धि को सहज ही दे देता हूँ। वहाँ पर 'रावण', 'कुम्भकर्ण' तथा 'बाणासुर' आदि भक्तों ने मेरा पूजन किया है। इनके अतिरिक्त 'विभीषण', 'यम', 'कुबेर', 'महेन्द्र', 'बलि' आदि से भी मैं पूजित हुआ हूँ। यहाँ आने वालों का मनोरथ मैंने पूरा कर दिया है। कोई इस क्षेत्र में आकर विमुख हो नहीं गया। हे देवि ! किसी समय यहाँ एक गीदड़

श्रीदेव्युवाच—

स कस्मात्फेरवो भीतो वैद्यनाथाश्रमं ययौ ॥ ३० ॥
किं कृते स्वाभिलषितैः पूरितोऽभून्मनोरथैः । तोषितोऽसि कथं तेन भवान् भूतपतिः प्रभुः ।३१।
कथमपि वरं त्वत्तो दुरापं योगिनामपि ।।३२।।

ईश्वर उवाच—

फेरवोऽभूत् पुरा देवि गिरौ देवतटाह्वये । नाम्ना कालिङ्जो नाम मन्दमन्दस्वरूपधृक् ।३३।
तस्याभूत्प्रथमः पुत्रः शृगालो दीर्घदर्शनः ॥ ३४ ॥
पिता तस्याकरोन्नाम नाम्ना चाणवकेति सः । ववृधे स दुराचारः शृगालः पितृवेश्मनि ।।३५।।
ततो बाल्यं विलङ्घ्याशु स युवाऽभूत्पितुर्गृहे । ततस्तं पाठयामास विद्यां कालिङ्जो हरिः ।।
नानाशास्त्रार्थतत्वज्ञो नानाशास्त्रविशारदः । अध्यापयित्वा तं पुत्रं कृत्वा धर्मं स धर्मवित् ।।
ततः स दैवयोगेन पञ्चत्वं वृद्धफेरवः । प्राप्य धर्मार्थतत्त्वज्ञस्तत्र देवतटे शुभे ।।३८।।
मृते पितरि दुःखार्तस्ततश्चाणवको बली । चचार विपिने घोरे यूथहीनो यथा मृगः ।।३९।।
ततः कदाचिद्विपिने वरं सिंहं ददर्श ह । यावद्ददर्श तं सिंहं तावत्सिंहो महाबली ।।४०।।
तमन्वधावदुत्थाय हन्तुं कृतमतिर्वने । तेन वित्रासितो दुष्टः फेरवो वरवर्णिनि ।।४१।।
स्मरन्पलायमानोऽसौ प्रभुत्वं प्रययौ हरेः । धावन्तं तं च व्याघ्रोऽपि तस्यान्वेषी महाबलः ।४२।
न प्राप तस्य मार्गं वैऽधीतविद्यस्य शोभनम् । ततस्तु फेरवो दुष्टः शार्दूलेन निराकृतः ।।४३।।
प्राप स्रोतः समुत्तीर्य वैद्यनाथस्य मन्दिरम् । तत्र मे मन्दिरं प्राप्य शवार्थी फेरवाधमः ।।४४।।
अहोरात्रं वसंस्तस्थौ मन्दिरे तत्र शोभने । स्मरंस्तस्य हरेः पुण्यं शौर्यं चापि बलं तथा ।।४५।।

भयभीत हो पहुँच गया था । उसकी भी कामना पूरी हो गई । औरों के बारे में तो कहना ही क्या है ? ।। १०-२९ ।।

पार्वती ने (प्रसङ्गवश) फिर पूछा—देव ! वह 'गीदड़' 'वैद्यनाथाश्रम' में किस हेतु पहुँचा ? किस प्रकार उसने अपना अभीष्ट मनोरथ पूर्ण किया ? भूतेश्वर भगवान् को उसने कैसे सन्तुष्ट किया ? योगियों को भी दुष्प्राप्य वर वह 'फेरव' (गीदड़) कैसे प्राप्त कर सका ।। ३० - ३२ ।।

भगवान् शङ्कर बोले—देवि ! सुनो प्राचीन काल में 'देवतट' पर्वत पर 'कालिञ्ज' नाम का गीदड़ (फेरव) रहा । उसका पहला पुत्र 'दीर्घदर्शन' देखने में लम्बा-चौड़ा था । पिता ने उसका नाम 'चाणवक' रखा । वह दुराचारी पिता के घर में बड़ा होता गया । युवावस्था में सर्वशास्त्रज्ञ उसके पिता ने उसे पढ़ाया । पुत्र को पढाने के साथ वह धर्माचरण भी करता रहा । दैवयोग से वह वृद्ध शृगाल देवतट पर मर गया । पिता की मृत्यु के अनन्तर वह युवा 'चाणवक' दुःखी होकर अपने समाज से पृथक् हो मृगों की तरह घने वनों में घूमने लगा । एक दिन वन में सिंह दिखाई पड़ा । वह शक्तिशाली सिंह 'चाणवक' को मारने के लिए आगे बढा । उससे भयभीत हो वह दुष्ट गीदड़ भागता जा रहा था और सिंह उसे ढूंढ़ने के लिए पीछा कर रहा था । वह चाणवक शिक्षित था, अतः सिंह उसके मार्ग को जान नहीं सका ।

न मे लिङ्गं च तत्रस्थं ज्ञातवान् फेरवोऽधमः । न तत्र वैद्यनाथाख्यं लिङ्गं शुश्राव कर्हिचित् ॥
ततः प्रातः समुत्थाय शवान् पश्यन्नितस्ततः । तत्र प्रक्रमणं चक्रे दैवयोगेन सुव्रत ॥४७॥
प्रकुर्वन्महतीं शङ्कां तस्य सिंहस्य फेरवः । ततो गङ्गां समुत्तीर्य दैवं कृत्वाऽथ कारणम् ॥४८॥
विनाशस्य समुत्पत्तेर्हर्षस्य विजयस्य च । ततः क्षेत्रप्रभावेण फेरवो वरवर्णिनि ॥४९॥
स प्राप्यैश्वर्यदं रूपं तेजोबलविवर्धनम् । भयदं सर्वभूतानां शत्रूणां च विशेषतः ॥५०॥
प्राप्य रूपं स लिङ्गस्य प्रसादान्मे स्थलस्य च । निश्शङ्को विपिने घोरे चचार मृगराडिव ॥५१॥
ततः सिंहादयः सर्वे मृगा वै वनचारिणः । ददृशुश्चातिविक्रान्ता फेरवं भीमदर्शनम् ॥५२॥
विशङ्कमानास्ते सर्वे सिंहाद्या वनचारिणः । चक्रुस्तमेव राजानं शार्दूलस्य पदे शुभे ॥५३॥
प्रसादान्मे महाभागस्ततस्तु फेरवोत्तमः । स शिवानायको भूत्वा सिंहानपि शशास ह ॥५४॥
मृगाधिपत्यं सम्प्राप्य स शिवानायको बली । चचार विपिने रम्ये मृगयूथैर्निषेवितः ॥५५॥
नदीषु चातिरम्यासु वनेषूपवनेषु च । क्रीडन् शिवाभिः कान्ताभिर्वृद्धत्वं प्रययौ वने ॥५६॥
ततश्चाणवको देवि पञ्चत्वं प्राप्य सन्मतिः । मृगस्तु दैवयोगेन कुले महति भूभुजाम् ॥५७॥
ब्रह्मदत्तेति विख्यातः काम्पिल्ये नगरोत्तमे । बभूव राजा मतिमान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥५८॥
जातिस्मरोऽभवद्राजा ब्रह्मदत्तो महाबलः । संस्मरन्प्राग्भवं तत्र प्रभावेण महेश्वरि ॥५९॥
न द्वेष्यो नाहितस्तस्य द्वेष्योऽपि सम्बभूव ह । न च तस्येतरे भूपा महाबलपराक्रमाः ॥६०॥
प्रापुर्विजयशीलस्य विक्रमं बलभूषणम् । न तं विजयिनं भूपं सङ्ग्रामे दृष्टिगोचरे ॥६१॥
न शेकुश्चेक्षितं सर्वे महेन्द्रमिव दानवाः । एवं स राजा मतिमान् स्मरन्प्राक्तनसम्भवान् ॥६२॥

किसी प्रकार वह 'फेरव' प्रवाह को पार कर 'वैद्यनाथ'-मन्दिर में पहुंच गया । सिंह के भय से शवार्थी रात भर वहीं मन्दिर में पड़ा रहा । उसे वहाँ 'शिवलिङ्ग' का ज्ञान नहीं था । प्रातः उठ कर मुर्दों की खोज में इधर-उधर घूमने लगा । उस सिंह की चिन्ता करते हुए वह 'वृद्धगङ्गा' को पार कर अपने विनाश की उत्पत्ति और विजयजन्य हर्ष के कारणस्वरूप भाग्य को सराहता हुआ उस महाक्षेत्र के प्रभाव से तेजःसम्पन्न तथा शत्रुओं के लिए भयप्रद ऐश्वर्यंयुक्त रूप को प्राप्त कर भगवान् शिव तथा उस महाक्षेत्र की महिमा से सिंह के समान वन में विचरण करने लगा। नये रूप से सम्पन्न उस 'फेरव' को सशक्त सिंह, मृग आदि वन्य जन्तुओं ने वहाँ देखा । शङ्कित होकर वन्य-प्राणियों ने उसे वन का राजा बना दिया। मेरी कृपा से वह 'फेरव', शिवाओं का प्रमुख (नायक) बन कर, सिंहों पर भी शासन करने लगा। मृगाधिपत्य पाकर बली 'फेरव' मृगों के समुदाय से सेवित हो रमणीय वन में विचरण करने लगा । नदियों, वनों, उपवनों में वह सुन्दर शृगालियों के साथ क्रीड़ा करता हुआ वृद्ध हो गया । मरणोपरान्त उसने राजकुल में जन्म लिया । उसका जन्म 'काम्पिल्य' नगर में सर्व-शास्त्रवेत्ता एवं बुद्धिमान् राजा 'ब्रह्मदत्त' के रूप में हुआ । उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण (जातिस्मर) हो गया । इस प्रभाव से ब्रह्मदत्त के पराक्रमी द्वेषी भी उसके अद्वेष्य तथा हित-कारी हो गए । इस विजयी राजा के पराक्रम को कोई नहीं पाता था । जिस प्रकार इन्द्र को दानव देख नहीं सकते थे, उसी तरह उसके शत्रु भी उसे देख नहीं सकते थे । इस प्रकार वह

स चान्ते मम सायुज्यं देवैरपि सुदुर्लभम् । शृगालोऽपि स दुष्टात्मा प्रसादेन वरेश्वरि ।।६३।।
प्राप्य जन्मद्वये राज्यं मृगभूमीन्द्रसञ्ज्ञकम् । फेरवोऽपि स दुष्टात्मा तत्र मे दर्शनं विना ।।६४।।
वासमात्रेण दुष्टात्मा स्थले प्रियतटे मम । कृत्वा जन्मद्वये राज्यमन्ते सायुज्यतां गतः ।।६५।।
कुष्ठरोगग्रहार्ताश्च समायान्ति महेश्वरि । तेषामार्तिहरः सोऽहं तत्र तिष्ठामि नान्यथा ।।६६।।
दुःखरोगग्रहार्ताश्च दारिद्र्येण हतास्तथा । नष्टराज्याश्च भूपाला नानाशोकग्रहातुराः ।।६७।।
अभिलष्याभिलाषान् ये क्षेत्रे तस्मिन्समागताः । मनोरथैः प्रपूर्णास्ते कृतार्थान् करवाम्यहम् ।।
इत्येतत्कथितं क्षेत्रं नानारोगार्तिनाशनम् । सर्वः सर्वप्रदं धन्यमायुरारोग्यवर्धनम् ।।६९।।
इत्येतत्कथितं क्षेत्रं नानारोगार्तिनाशनम् । शर्वसर्वप्रदं धन्यमायुरारोग्यवर्धनम् ।।
मम प्रियकरं पुण्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ।। ७० ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वैद्यनाथमाहात्म्ये षट्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

१६७

व्यास उवाच—

वैद्यनाथस्य माहात्म्यं शिवेन समुदाहृतम् । सम्पूज्य तं शिवं शान्तं[1] पप्रच्छ पुनरेव सा ।।१।।

श्रीदेव्युवाच—

वैद्यनाथस्य माहात्म्यं त्वत्प्रसादान्महेश्वर । श्रुतं निगदितं सर्वं भवता हितकारिणा ।।२।।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि क्षेत्रस्य बहुविस्तृतम् । विद्यते सुरगन्धर्वैः सेवितं चातिशोभनम् ।।३।।
कीदृशो महिमा तस्य[2] तीर्थस्य परमेश्वर । यानि तत्र च तीर्थानि वैद्यनाथस्य सन्निधौ ।।४।।
तेषामुपासा सर्वेषां कृपया कथयस्व मे ।

बुद्धिमान् राजा अपने प्राक्तन जन्म के प्रभाव से अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त कर सका। 'वैद्यनाथ-स्थल' के माहात्म्य से ही उस दुष्टात्मा सियार ने केवल मन्दिर में वास करने से, मेरा दर्शन न करते हुए भी, शिवसायुज्य प्राप्त किया। कुष्ठरोगी, ग्रहबाधाबाधित, दरिद्री, राज्यभ्रष्ट एवं शोकातुर जन वैद्यनाथ-क्षेत्र में आकर मेरी कृपा से सफल-मनोरथ हो जाते हैं। पार्वति ! मैंने तुम्हें अपने इस रोगनाशक, सर्वसिद्धिप्रद, धन-धान्य-आयुष्य-आरोग्यप्रद एवम् अपने अत्यन्त प्रिय क्षेत्र को बतला दिया है। इसके अतिरिक्त अब तुम क्या पूछना चाहती हो ? ।।३३-७०।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वैद्यनाथ'-माहात्म्य नामक
एक सौ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ।।

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों ! भगवान् शङ्कर के द्वारा कथित 'वैद्यनाथ-माहात्म्य' को सुनकर पार्वती ने पुनः जिज्ञासा की ।। १ ।।

पार्वती बोलीं—भगवन् ! आप की कृपा से वैद्यनाथ-माहात्म्य को तो मैं जान गई हूँ। अब आप कृपा कर उस क्षेत्र का प्रमाण और माहात्म्य बतलायें। साथ ही उसके समीपस्थ तीर्थों और उपासना की विधि भी बतलायें ।। २ – ४ ।।

---

१. 'कान्तम्'—'ख'। २. 'तत्र—'ख'।

ईश्वर उवाच—

वैद्यनाथस्थलं रम्यं शृणुष्व परमेश्वरि ॥ ५ ॥
परिक्रम्य शृगालोऽपि यत्र प्राप परां गतिम् । प्रमाणं तस्य क्षेत्रस्य दश-गव्यूति-विस्तृतम् ॥६॥
विद्यते सुरगन्धर्वैः सेवितं चातिशोभितम् । यत्र देवास्त्रयस्त्रिंशद् गङ्गायास्तटमुत्तमम् ॥७॥
निवस्य वैद्यनाथाख्यं लिङ्गं मे पूजयन्ति हि । यत्रोपाधिसहस्राणां रोगाणामपि सुव्रते ॥८॥
भेषजश्चाहमप्येको वैद्योप्यस्मि शुभस्थले । नानाव्याधिसहस्राणां भेषजं प्राप्य देवताः ॥९॥
स्तुवन्ति वैद्यनाथेति[1] विमुक्ताः सम्भवन्ति हि । यत्र मामोषधीशं च स्मृत्वापि क्षेत्रनायकम् ॥
नाना रोगविमुक्ताः स्युर्धन्यं तत्क्षेत्रनायकम् । सरस्वती च वृद्धा च सङ्गमे यत्र सङ्गते ॥११॥
तत्र मध्ये प्रियं देवि प्रियं मम स्थलं विदुः । वामे त्वमसि शोभाढ्या दक्षिणेऽस्ति षडाननः ॥
तत्र दर्शनमात्रेण भवद्भ्यां सह मे शुभे । पापिष्ठा अपि ऐश्वर्यं विन्दन्ति किमु वै शुभाः ।१३।
ये स्नात्वा तत्र मध्ये वै भवद्भ्यां सह पूजनम् । प्रकुर्वन्ति महाभागास्तेषां किं वच्मि वर्णनम् ॥
महिम्नं च मया प्रोक्तं क्षेत्रस्य वरवर्णिनि । गोदावरीं समारभ्य यावत्सीता महानदी[2] ॥१५॥
एतास्तिस्रो महापुण्याः सङ्गमे यत्र संस्थिताः । तत्र स्नात्वा च सन्तर्प्य गोविन्दं वेणिमध्यगम् ।

भगवान् शङ्कर बोले—परमेश्वरि ! सुनो । वह स्थल परम रमणीय है । जिसकी परिक्रमा कर 'शृगाल' भी सद्गति प्राप्त कर सका, उस क्षेत्र का प्रमाण बीस कोस है । वह सुशोभित क्षेत्र 'सुर' और 'गन्धर्वों' से सेवित है । वहाँ तेतीस करोड़ देवता 'गङ्गा' के तट पर वास कर' वैद्यनाथ' (शिवलिङ्ग) की अर्चना करते हैं । वहीं असंख्य रोगों की चिकित्सा करने में मैं सतत लगा रहता हूँ । मैं ओषधिस्वरूप भी हूँ । वहाँ विभिन्न ओषधियों को प्राप्त कर देवों ने मुझे गुणानुसार यथानाम 'वैद्यनाथ' सज्ञा दी है । जहाँ पर मुझे ओषधीश तथा क्षेत्रप्रमुख के रूप में स्मरण कर लोग रोगनिर्मुक्त हो जाते हों, वह क्षेत्र धन्य है । 'वृद्धा' और 'सरस्वती' के सङ्गमस्थल का मध्यवर्ती क्षेत्र मेरा प्रिय 'देवस्थल' है । वहीं वामभाग में तुम्हारी स्थिति है, दक्षिण में कुमार कार्तिकेय हैं । उस परिसर में तुम दोनों के साथ मेरा दर्शन कर पापी भी ऐश्वर्यशाली हो जाते हैं । स्नानोपरान्त तुम दोनों के सहित मेरी पूजा करने वाले लोगों का तो कहना ही क्या है ? देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें उस क्षेत्र के सम्बन्ध में बतला दिया है । 'गोदावरी' से लेकर 'सीता' सङ्गम पर्यन्त अनेक तीर्थ हैं । वे सब प्रमुख देवों, गन्धर्वों, नागों तथा राक्षसों (दानवों) से सम्बद्ध हैं । अब मैं उनके सम्बन्ध में बतलाता हूँ । तुम सुनो । 'गोदावरी', 'वृद्धगङ्गा' तथा 'पर्णा'– इन तीनों नदियों का सङ्गमस्थल परम

---

१. यत्र मामोषधीश्वरम् । नानारोगाविदुःखाताः स्मृत्वापि क्षेत्रनायकम् ।
"...... प्रियं मे वैद्यनाथाख्यं विमुक्ताः सम्भवन्ति हि ॥"
—इत्याकारकः पाठः–'ख' पुस्तके ।

२. "सम्भूता सङ्गमे दिव्या तावत्सन्ति पदे पदे । तीर्थानि देवमुख्यानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ मयोदितानि दिव्यानि शृणुष्व गिरिकन्यके । गोदावरी वृद्धगङ्गा तथा पर्णा महानदी ॥'—इत्यधिकः पाठः 'ख' पुस्तके । प्रसङ्गानुसारेण एते श्लोका अपेक्षिताः सन्ति ।

पूजयेत् पूज्य सायुज्यं हरेर्याति नरोत्तमः । ततो गच्छेन्महादेवि तीर्थे कालिन्दिमध्यगे ॥१९॥
स्नात्वा सूर्याह्वये कुण्डे नरः सूर्यप्रभो भवेत् । ततस्तु शाङ्करे तीर्थे गत्वा स्नात्वा च शङ्करम् ।
पूजयेद् ह्रदमध्ये वै विधानेन नरः शुचिः । पितृकृत्यं विधायाशु मम लोके महीयते ॥२१॥
ततस्तु वृद्धगङ्गायामीशानं लोकपूजितम् । मध्ये स्नात्वा विधानेन पूजयित्वा जलान्तगम् ॥२२॥
मानवस्तारयेत्तत्र दश पूर्वान् दशोत्तरान् । ततस्तु ब्रह्मकुण्डे वै विमलायास्तु मध्यगे ॥२३॥
स्नात्वा* सन्तर्प्य च श्राद्धं पितॄणां च सुतर्पणम् । कृत्वा ममास्पदं पुण्यं प्राप्नुते मानवः शुभम् ॥
ततस्तु वृद्धगङ्गायां सरस्वत्यास्तु मध्यगे । स्नात्वा सम्पूजयेद्देवं वैद्यनाथं त्वया सह ॥२५॥
मुण्डनं चोपवासं च स्नात्वा तत्र महाह्रदे । पूजयेद्वैद्यनाथाख्यं लिङ्गं मे वरवर्णिनि ॥२६॥
कुमारं चापि सम्पूज्य त्वां चापि वरवर्णिनि । कुलानां शतमुत्तार्य सायुज्यं प्राप्नुते नरः ॥२७॥
ततो बाणाख्यके तीर्थे तीर्थे गोमध्यगे शुभे । स्नात्वा नरो मम गृहं प्राप्नुते नान्यथा क्वचित् ॥
ततस्तु पद्मनाभाख्ये पद्मजामध्यसङ्गमे । स्नात्वा* सम्पूजयेद्देवं पद्मनाभं वरेश्वरि ॥२९॥
कृत्वा श्राद्धं ह्रदोपान्ते कुलानां तारयेच्छतम् । ततः कैलासगङ्गायाः सङ्गमे स्नानमाचरेत् ॥
तत्र मध्ये महादेवं कैलासेशं प्रपूजयेत् । शतरुद्राभिषेकेण अभिषिञ्च्य महेश्वरम् ॥
गवां कोटिप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥३१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वैद्यनाथमाहात्म्ये सप्तषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

पुनीत है। वहाँ स्नान तर्पणादि कर त्रिवेणीस्थल पर गोविन्द (विष्णु) का पूजन करने से विष्णुसायुज्य प्राप्त हो जाता है। महादेवि ! तब 'कालिन्दी' के मध्य 'सूर्यकुण्ड' में स्नान करने से मानव अत्यधिक तेजस्वी हो जाता है। फिर 'शाङ्कर' तीर्थ में जा स्नान और शङ्कर का पूजन करने पर विद्या की प्राप्ति होती है। वहाँ पितृकृत्य करने से शिवलोक में आनन्द प्राप्त होता है। तब 'वृद्धगङ्गा' में स्नान तथा जल के भीतर 'ईशान' की पूजा करने से पितरों का उद्धार होता है। तदनन्तर 'विमला' के मध्य 'ब्रह्मकुण्ड' में स्नान-तर्पणादि करने पर शिवलोक प्राप्त होता है। तब 'वृद्धगङ्गा' में सरस्वती के मध्य स्नान एवं पार्वती (तुम्हारे) सहित 'वैद्यनाथ' का पूजन, 'महाह्रद' में स्नान, मुण्डन, उपवास करने के पश्चात् कार्तिकेय सहित तुम्हारा तथा 'शिव' का पूजन करना चाहिये। इस विधि को सम्पादन करने से कुलों के उद्धार-सहित शिवसायुज्य मिलता है। तत्पश्चात् 'बाण' एवं 'गोमध्यग तीर्थों' में स्नान कर मानव शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर 'पद्मजा' में स्नान, तर्पण, श्राद्ध तथा 'पद्मनाभ' का पूजन करने पर कुल का उद्धार होता है। सर्वान्त में 'कैलासगङ्गा' में स्नान विहित है। स्नानोपरान्त 'कैलासेश' का पूजन एवं शतरुद्राभिषेक कर कोटि गोदान का फल प्राप्त करें ॥ ४ – ३१ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वैद्यनाथ' माहात्म्य नामक
एक सौ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥

... 'स्नात्वे'त्यनन्तरम् एतच्चिह्नयोरन्तर्गतः पाठः 'ख' पुस्तके नास्ति ।

१६८

श्रीदेव्युवाच—

कैलासगङ्गामाहात्म्यं समुत्पत्तिं विशेषतः। श्रोतुमिच्छामि देवेश प्रसादात्तव निश्चितम् ॥१॥

ईश्वर उवाच—

कैलासगङ्गा या पुण्या मयोक्ता वरवर्णिनि। महर्षिभिः समाहूता तव क्षेत्रनिवासिभिः ॥२॥
यज्ञार्थे भृगुपुत्रस्य सोमयागरतस्य च। आविरासीन्महापुण्या गिरौ पञ्चपुराह्वये ॥३॥
यस्यां स्नात्वा च पीत्वा च मानवाश्चाधमा अपि। मम सालोक्यतां यान्ति यथा गङ्गातटे मृताः।
मूले त्वमसि शोभाढ्ये पञ्चपर्वतवासिनी। गिरिजेति समाख्याता पूजिता दैवतैरपि ॥५॥
ततः साङ्ख्यह्रदे दिव्ये गणेशोऽस्ति महेश्वरि। गणेशं सुरभी देवीं महेशं चाभिषिञ्चति ॥६॥
तस्याः पयोऽमृतैर्दिव्यैस्तां नदीं पूरितां शुभाम्। धर्मात्मानोऽत्र पश्यन्ति पापिष्ठा न कदाचन।
रुद्रा च वसुरुद्रा च मञ्जा वेत्रवती तथा। एतासां सङ्गमैः पूर्णा वृद्धायाः सङ्गमे गताः ॥८॥
वामे तु शिखरारूढा कामदा त्वं प्रपूज्यते। दक्षिणे कामभद्रायाः सङ्गमे मां महेश्वरि ॥९॥
पूज्य सायुज्यतां यान्ति यत्र मां कामनाशनम्। वृद्धा कैलासगङ्गा च यत्र सङ्गम्य सङ्गते ।१०।
तत्र स्नात्वा महादेवि गच्छेद्वेण्यास्तु सङ्गमे। तत्र स्नात्वा ततो गच्छेच्छायायाः सङ्गमे शुभे ॥

देवी ने फिर पूछा—देवेश ! मैं 'कैलासगङ्गा' की उत्पत्ति और उसका माहात्म्य सुनने की इच्छुक हूँ ॥ १ ॥

भगवान् शङ्कर बोले—ईश्वरि ! तुम्हारे क्षेत्र में रहने वाले महर्षियों ने 'भृगुपुत्र' के यज्ञ करने पर 'सोमयाग'[1] करने का उपक्रम होने के समय 'पञ्चपुर' पर्वत पर 'कैलासगङ्गा' का आह्वान किया था। उसमें स्नान और उसका जलपान करने से अधम मनुष्यों का भी मेरा सालोक्य प्राप्त होता है। उसके रमणीय मूल में 'पञ्चपर्वतवासिनी' गिरिजा की पूजा की जाती है। तब दिव्य 'साङ्ख्यह्रद' में 'गणेश' और 'सुरभि' का पूजन किया जाता है। वहाँ 'सुरभि', 'गणेश', 'देवी' तथा 'शिव' के ऊपर अभिषेक करती है। 'सुरभी' के दुग्धामृत से युक्त उस नदी को पुण्यात्मा ही देख पाते हैं। 'रुद्रा', 'वसुरुद्रा', 'मञ्जा' तथा 'वेत्रवती' के जलों से परिपूरित हो वह नदी 'वृद्धा' के साथ संगत हो जाती है। वहाँ वामभाग में शिखरारूढ 'कामदा' कीपूजा की जाती है। वहीं दक्षिण में 'कामभद्रा' के सङ्गम में मेरा पूजन करने पर 'सायुज्य' मुक्ति प्राप्त होती है। वहीं कामदेव का विनाश हुआ था। 'कैलासगङ्गा' और 'वृद्ध-गङ्गा' के सङ्गम पर स्नान कर क्रमशः 'छाया', 'शेषा' तथा 'मञ्जिष्ठा' के सङ्गमों पर

---

१. स्वर्ग की कामना के लिये 'सोमयाग' किया जाता है। 'सोमयाग' की सात संस्थायें कही गई हैं। इनमें से 'अग्निष्टोम याग' प्रथम संस्था है। अन्य सोमसंस्थाओं की यह प्रकृति है। सोमयाग में 'सोम' नामक लता का उपयोग होता है। आजकल यह दुर्लभ है। इसके अभाव में प्रतिनिधिरूप में 'पूतीका' नामक लता से काम चलाया जाता है। लता का रस निकाल कर उससे याग सम्पादित किया जाता है। अवशिष्ट रस 'ऋत्विज' लोग पान करते हैं। यज्ञशाला में 'सोमलता' को लाकर 'आसन्दी' पर रखा जाता है। मधुपर्क से इसकी अर्चना होती है। इसके स्वागत में 'आतिथ्येष्टि' की जाती है। धुले हुए सुवर्णयुक्त पवित्र हाथों से इसका स्पर्श किया जाता है।

शेषायाः सङ्गमे गत्वा मञ्जिष्ठायाश्च सङ्गमे । स्नात्वा ह्येतेषु पुण्येषु सङ्गमेषु वरेश्वरि ।१२।
सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते वाऽधमोऽपि हि । तीर्थेष्वेतेषु पुण्येषु पितरो येन तर्पिताः ॥१३॥
सर्वे समुद्धृतास्तेन पितरो नरकालयात् । वृद्धगङ्गा महापुण्या पुंसवाख्ये ह्रदे शुभे ।।१४।।
सीतायाः सङ्गमे दिव्ये सम्मिलद्वरवर्णिनि । यत्र पुंसवनं नाम यज्ञं चक्रे प्रजापतिः ।।१५।।
तत्र सङ्गममध्ये वै स्नात्वा सम्पूजयेद्धरम् । चिताभस्मविभूषाङ्गं मां तत्र कनकेश्वरम् ।।१६।।
श्राद्धं सन्तर्पणं तत्र कृत्वा मां प्राप्नुते नरः । तीर्थानि वृद्धगङ्गाया मयोक्तानि महेश्वरि ।।
येषां फलं महापुण्यं कालेनाऽपि न जीर्यते ।। १७ ।।

व्यास उवाच—

इति श्रुत्वा महादेवी शिवस्य वचनं शुभम् । समर्च्य देवदेवेशं ततः स्वस्थमनाभवत् ।।१८।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे कैलासगङ्गामाहात्म्येऽष्टषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

१६९

व्यास उवाच—

क्षेत्रः कैलाससंज्ञो वै वैध्याख्यः पर्वतः स्मृतः । केदारं चापि कैदारीं पूज्य प्राप्नोति मानवः ।१।
दिव्यं हरगृहं रम्यं रुद्रकन्यानिषेवितम् । सीता चापि च कर्णाली सङ्गमे यत्र सङ्गते ।।२।।
मध्ये लोकगिरिः पुण्यो विद्यते मुनिसत्तमाः । लवङ्गां शाङ्करीं तत्र पूजयित्वा दिवं व्रजेत् ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे वैध्यपर्वतमाहात्म्ये एकोनसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

स्नान तथा पितृतर्पण करना चाहिए। 'वृद्धगङ्गा' और 'सीता' के सङ्गम पर प्रजापति ने 'पुंसवन' यज्ञ किया था । अतः वहां 'पुंसवह्लद' है। वहीं संगम-मध्य में स्नान कर चिताभस्म-विभूषित 'कनकेश्वर' का दर्शन, अर्चन, तर्पण और श्राद्ध करने से मेरी प्राप्ति होती है। पार्वति ! तुम्हारे कथनानुसार मैंने 'वृद्धगङ्गा' के तीर्थों का वर्णन कर दिया है। उनका पुण्यफल काल के प्रभाव से भी जीर्ण नहीं होता ।। २–१७ ।।

व्यासजी ने कहा—इस प्रकार शिवजी की बातें सुनने के उपरान्त शिवजी का अर्चन कर पार्वती स्वस्थचित्त हो गईं ।। १८ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'कैलासगङ्गा' माहात्म्य नामक
एक सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।।

व्यासजी ने फिर कहा— 'वैध्यपर्वत' में 'कैलासक्षेत्र' है। वहाँ 'केदार' और 'कैदारी' का पूजन कर मनुष्य शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है । 'सीता' और 'कर्णाली' के संगम के मध्य 'लोकपर्वत' है । वहाँ 'लवङ्गा' और 'शाङ्करी' का पूजन कर स्वर्ग प्राप्त होता है ।।१–३।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'वैध्यपर्वत' माहात्म्य नामक
एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

१७०

व्यास उवाच—

तत्र काकाद्रिमारुह्य कर्णालीमध्यगं शुभम् । काकेश्वरीं महादेवीं कौशिकीजलसेविताम् ।।१।।
यां काकाः पूज्य गिरिजामजरामरतां गताः । संस्नात्वा कौशिकीं पुण्यां समारुह्य च पर्वतम् ।।
काकेश्वरीं महादेवीं क्रान्तिक्रान्तेश्वरं तथा । यः समर्चति तत्रस्थः स याति शिवमन्दिरम् ।।३।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे काकाद्रिमाहात्म्ये सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

१७१

ऋषय ऊचुः—

सर्वेष्वेतेषु गिरिषु पर्वतः कोऽस्ति ह्युत्तमः । कुत्र पुण्यं समधिकं प्राप्यते मुनिसत्तम ।।१।।

व्यास उवाच—

सर्वेभ्यो गिरिमुख्येभ्योऽधिको देवतटः स्मृतः । तस्मादप्याधिकः पुण्यो गिरिः पञ्चपुरोऽस्ति वै ।
तयोर्मध्ये महादेवी मालिका पूज्यते शिवा । देवगन्धर्वसिद्धैश्च पूजिता वरदेश्वरी ।।३।।
तयोः पर्वतयोर्दिव्यं माहात्म्यं मुनिसत्तमाः । न शक्यते महापुण्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ।।४।।
यत्र पुरेषु दिव्येषु पञ्चसु मुनिसत्तमाः । उषित्वा देवताः सर्वाः सेवन्ते परमेश्वरीम् ।।५।।
गिरिः पञ्चपुरो नाम गीयते पर्वतोत्तमः । तत्र दिव्यानि पुण्यानि देव्याः पञ्चपुराणि वै ।।६।।
देवर्षिसिद्धगन्धर्वैः सन्ति संसेवितानि वै । तमारुह्य गिरिश्रेष्ठं पुराणां दर्शनं शुभम् ।।७।।
यः करोति नरः सम्यक् स धन्यो भूतले स्थितः ।
तत्र पुराणि दिव्यानि दृष्ट्वा यो याति मालिकाम् ।। ८ ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! वहाँ पर 'कर्णाली' के मध्यवर्ती 'काकपर्वत' पर आरूढ़ हो 'कौशिकी' (कोसी) के जलों से सेवित 'काकेश्वरी' का पूजन विहित है । उनका पूजन करने से कौवे भी अजर एवं अमर हो गए । अतः 'कौशिकी' में स्नान, पर्वत पर चढ़ना एवं 'काकेश्वरी' तथा 'क्रान्तक्रान्तेश्वर' का दर्शन-पूजन करने से 'शिवलोक' प्राप्त होता है ।। १-३ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'काकाद्रि'-माहात्म्य नामक
एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

ऋषियों ने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! इन पर्वतों में कौन-सा पर्वत सबसे बढ़कर है ? कहाँ पर सबसे अधिक पुण्यलाभ होता है ? ।। १ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों ! यद्यपि इन पर्वतों में 'देवतट'-नामक पर्वत अधिक महत्त्वपूर्ण है, तथापि 'पञ्चपुर' पर्वत सर्वाधिक पुण्यप्रद है । इन दोनों पर्वतों के मध्य में देव-गन्धर्वादि से पूजित 'मालिका' देवी विराजमान हैं । उन पर्वतों का माहात्म्य वर्णनातीत है ।

न तस्य वर्णनं शक्यं वक्तुं वर्षशतैरपि । 'अहो कथं न कुर्वन्ति संसारे मग्नमानसाः ॥९॥
यात्रामात्रं महादेव्याः क्षेत्रे नारायणीप्रिये । मालिकाख्ये महापुण्ये श्रावण्यां सिद्धसेविते ॥१०॥
इति देवा महेन्द्राद्याः प्रब्रुवन्ति पुनः पुनः' । 'पर्वतस्य स्वरूपेण यत्र जागर्ति शाङ्करी ॥११॥
संसारसारनिर्दग्धाः किं न यान्ति नराधमाः । तत्रस्था देवताः सर्वा ब्रुवन्तीति न संशयः' ॥१२॥
पवित्राः शिवलिङ्गैर्वै अन्याः सन्ति नगोत्तमाः । एष पर्वतमुख्यो वै देव्या देहोऽस्ति नान्यथा ॥
देहभूतं महादेव्या गिरिं ये यान्ति मानवाः । नैव शोचन्ति ते धन्याः संसारे मुनिसत्तमाः ॥१४॥
अपि कीटपतङ्गाद्याः समारूढा नगोत्तमे । देवेभ्योऽप्यधिका ज्ञेया मानवाः किमुतः शुभाः ॥१५॥
यो वै देवतटं ब्रूते गच्छामि पञ्चपर्वतम् । पुरन्दरस्तस्य सम्यक् पादौ मूर्ध्ना नमस्यति ॥१६॥
तयोः पर्वतयोः सम्यक् वासशुद्धान् दिवौकसः । कुर्वन्ति सिद्धगन्धर्वैः सह विद्याधरोरगैः ॥१७॥
तयोर्यात्रा न ये मूढाः प्रकुर्वन्त्यतिदुर्गयोः । नियतं नरके वासस्तेषामस्ति न संशयः ॥१८॥
देवतटोपरि स्थातुं दिव्ये मुक्तिद्वारमपावृताम् । तत्र मुक्तार्थिनां देहपतनं प्राप्यमेव हि ॥१९॥
बहुभिर्भाषितैः पुण्यैः किमत्र मुनिसत्तमाः । विदधन्तु महाशक्तिं मालिकायां विनिश्चितम् ॥२०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मालिकामाहात्म्ये एकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

सौ वर्षों का समय भी वर्णन के लिए पर्याप्त नहीं है। वहाँ पांच दिव्य पुरों में देवगणों तथा सिद्धों का वास है। वे सब 'मालिका' की उपासना में संलग्न रहते हैं। अत एव उसका नाम यथार्थ (पञ्चपुर) है। इस हेतु पर्वत पर आरूढ़ हो पांचों पुरों का दर्शन श्रेयस्कर है। साथ ही वह दर्शक भी धन्य है। जो व्यक्ति पाँचों पुरों को देख 'मालिका' देवी के समीप जाता है उसका पुण्यलाभ वर्णनातीत है और वे धन्य हैं। अतः सांसारिक जन विशेषतः श्रावणी पूर्णिमा के दिन इस देवी के क्षेत्र की यात्रा क्यों नहीं करते ? इस आश्चर्य को अभिलक्षित कर महेन्द्रादि देव भी 'मालिका' देवी की बार-बार स्तुति करते रहते हैं। यहाँ पर देवी 'पर्वतरूप' में जागरूक हैं। देवताओं को इस बात पर बड़ा आश्चर्य है कि संसार-सार से दग्ध जन ऐसी वरदा देवी के पास क्यों नहीं जाते ? यद्यपि अन्य पर्वत-मालायें भी वहाँ शिवलिङ्गों से संयुत हैं, तथापि यह पर्वत तो 'देवी' का प्रत्यक्ष विग्रह है। देवी के 'विग्रह-स्वरूप' इस पर्वत पर जाने वालों का जीवन सफल है। वे शोकविमुक्त रहते हैं। जब इस पर आरूढ़ होने वाले कीड़े-मकोड़े भी देवों की अपेक्षा अधिक सम्मानित समझे जाते हैं तो मनुष्यों की बात ही क्या है ? 'देवतट' पर चढ़ कर 'पञ्चपुरपर्वत' पर जाने के इच्छुक व्यक्ति को इन्द्र भी प्रणाम करते हैं। उपर्युक्त दोनों पर्वतों पर वास करने से शुद्ध देहधारियों को सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधरों सहित देवगण—ये सभी प्रणाम करते हैं। जो अधम इन पर्वतों पर आरूढ़ नहीं होते वे नरकगामी होते हैं। दिव्य 'देवतट' पर्वत पर स्थित होने से 'मुक्तिद्वार' खुल जाता है। वहाँ पर देहावसान होने से जीव को अवश्य मुक्ति मिलती है। मुनिवरों ! अधिक पुण्य-वर्णन से क्या लाभ है ? 'मालिका' की महाशक्ति को आप लोग निश्चित रूप में समझ लें॥ २–२० ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'मालिकामाहात्म्य' नामक
एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

१७२

सूत उवाच—

पर्वतानां महापुण्यं मार्गं श्रुत्वा सुविस्तरम् । व्यासदेवाय धर्मज्ञाः पप्रच्छुः पुनरेव हि ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

दयासिन्धो महाविद्वन् सर्वलोकहिते रत । मालिकायाश्च माहात्म्यं सर्वं ब्रूहि हिताय वै ॥२॥
कुत्र नारायणी देवी जागर्ति गिरिकन्यका । क्षेमवित्तत्त्वलोकानामस्ति सेव्याऽमरान्विता ॥३॥
अर्चिता येन सा देवी येन मर्त्ये प्रकाशिता । यादृशानि सुपुण्यानि पुराणि सन्ति वै द्विज ॥४॥
निवासं यादृशं तेषु चक्रे तत्र नगेन्द्रजा । कीदृशी महिमा तस्या स क्षेत्रः कीदृशः स्मृतः ॥५॥
कस्मात्प्रवेशः क्षेत्रेऽस्मिन् निर्गमो वापि कुत्रतः । यादृशं च फलं तस्याः यात्राया मुनिसत्तम ॥
यानि तत्र च क्षेत्राणि सन्ति देव्याः सुसन्निधौ । प्रब्रूहि मुनिशार्दूल सर्वलोकहिताय वै ॥७॥

व्यास उवाच—

साधु साधु महाभागा धन्या यूयं न संशयः । भवद्विर्धैर्द्विजश्रेष्ठैर्धार्यिते सकला मही ॥८॥
मालिकाक्षेत्रमाहात्म्यं श्रवणादशुभापहम् । शृण्वन्तु सर्वलोकानां हिताय परमौषधम् ॥९॥
वामे देवतटो यस्या दक्षिणे पुरपर्वतः । कर्णाली चाग्रतो यस्या वृद्धाख्यास्ति हि पृष्ठतः ।१०।
तयोर्मध्ये महाभागा गिरिः पञ्चपुराह्वयः । विद्यते सुरमुख्यानां पुरैर्बहुविचित्रितः ॥११॥
शिखरे तस्य सा देवी जागर्ति गिरिकन्यका । येषां हि पश्चिमं जन्म भक्त्या संक्षालितं भवेत् ॥
ते गच्छन्ति नरा देवीं मालिकां शङ्करप्रियाम् । संसारलोहपाशेन तावद् बद्धा नरा भुवि ॥१३॥

सूत जी ने (जनमेजय) कहा—पर्वतों का माहात्म्य एवं विस्तृत मार्ग जानने के बाद भी ऋषियों ने पुनः महर्षि वेदव्यास से पूछना आरम्भ किया ॥ १ ॥

ऋषियों ने जिज्ञासा की—दयासिन्धो ! आप मूर्धन्य विद्वान् हैं । साथ ही जन-हितकारी भी हैं । अतः आप 'मालिका' का माहात्म्य निम्न निर्दिष्ट विषयों को अभिलक्षित कर अधिक विस्तार के साथ कहें । वह 'नारायणी' कहाँ जागरूक हैं ? वे समस्त देवों सहित कहाँ विराजमान हैं ? सर्वप्रथम 'मालिका' का अर्चन किसने किया है ? इस मृत्युलोक में किसने इन्हें विदित कराया है ? उन पाँच पुरों की क्या विशेषता है ? पर्वतकन्या पार्वती इन पाँच पुरों में कैसे वास करती हैं ? तत्रस्थ देवी की क्या विशेषता है ? मालिकाक्षेत्र कैसा है ? वहाँ का 'प्रवेश' एवं 'निर्गम' कहाँ पर है ? वहाँ की यात्रा का क्या फल है ? इसके साथ ही वहाँ और प्रसिद्ध देवी के कौन से क्षेत्र हैं ? ॥ २-७ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—महाभागों ! आपने बड़ी महत्त्वपूर्ण जिज्ञासा की है । आप धन्य हैं । आप लोगों के सदृश श्रेष्ठ ब्राह्मणों से यह पृथ्वी आधारित है । मालिका-क्षेत्र का माहात्म्यश्रवण करने से ही अशुभों का निवारण होता है । वह तो संसार की व्याधिनाश के लिए परम औषध है । अतः आप लोग सावधान हो सुनें । 'मालिका' के वामभाग में 'देवतट' है तथा दक्षिणभाग में 'पुर'पर्वत है । उनके सम्मुख 'कर्णाली' और पृष्ठभाग में 'वृद्धा' नदियां बहती हैं । इन दोनों के बीच में 'पञ्चपुर' पर्वत है । वह अनेक विचित्र देवनगरों के रूप में प्रति-

सन्ति यावन्न तां देवीं पश्यन्ति हि नगात्मजाम्।
स्वर्णस्तेयादिभिः पापैर्विलिप्तोऽपि हि मालिकाम् ॥ १४ ॥

गतः कृतार्थो विज्ञेयः स गच्छेद्धरिमन्दिरम्। न या साङ्ख्येन योगेन न च पुण्यैस्तथेतरैः ।१५।
प्राप्यते तां गतिमाशु यात्रामात्रेण प्राप्नुते। अन्येभ्यः सर्वक्षेत्रेभ्यः क्षेत्रं देव्याः प्रियं स्मृतम् ॥
सर्वथा देववद्गेयस्तस्मिन् क्षेत्रे गतो नरः। देवगन्धर्वयक्षाश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ॥१७॥
त्रयस्त्रिंशद्देवगणा ये स्वर्गे निवसन्ति हि। सर्वे निवस्य सान्निध्यान्महादेव्यास्तपोधनाः ॥१८॥
समर्चन्ति महादेवीं शिखरस्थां नगात्मजाम्। नास्मात्परतरं स्थानं त्रिदिवेऽपि न विद्यते ।१९।
प्रियं भवान्या लोकानां शिवदं मोक्षदं तथा। गच्छन्तं मालिकाक्षेत्रे यत्र देव्याः प्रिये शुभे ।२०।
स्तुवन्ति देवगन्धर्वा मानवा मुनिसत्तमाः। महेन्द्रप्रमुखा देवा यात्रायां तं नरं शुभम् ॥२१॥
महेन्द्रोद्यानसम्भूतैः पुष्पैः सम्पूजयन्ति हि। तत्र सम्पूज्य गिरिजामीप्सितं फलमश्नुते ॥२२॥
नरः सम्यग्विधानेन गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः। धर्ममर्थं च कामं च मुक्तिं भुक्तिं च पञ्चमीम् ॥२३॥
देवस्य मालिकाया वै दयया विन्दते नरः। मालिकाशिखरारूढो मालिका-मालिकेति यः ।२४।
वदेत्तस्याभिलाषं सा प्रपूरयति मालिका। मालिकाध्यानसंयुक्तो यत्र तत्रापि मानवः ॥२५॥
न विनश्यति सम्पद्भ्यः शत्रुतो वा न राजतः। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥२६॥
देव्या भक्तिप्रदं पुण्यं सर्वसम्पत्प्रदं शुभम्। बभूव ब्राह्मणी काचिद्देशे निषधसञ्ज्ञके ॥२७॥
अत्रिगोत्रसमुत्पन्ना धर्मशीला विचक्षणा। सुशीला सुमती नामा पिता तस्या भवत्सुधीः ॥२८॥

ष्ठित है। उसके शिखर पर 'मालिका' देवी जागरूक हैं। जिनका पूर्व जन्म देवी की भक्ति से ओतप्रोत रहा है—वे ही 'मालिका' का दर्शन करने जाते हैं। 'मालिका' के दर्शन के पहले तक ही मानव संसार की लोहशृङ्खला से जकड़ा रहता है। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी एवं सुवर्णस्तेय आदि पातकों से लिप्त मनुष्य भी वहाँ जाकर धन्य हो जाता है। अन्त में उसे विष्णुलोक मिल जाता है। साङ्ख्य-योग के ज्ञान एवं अन्य पुण्य-जनक कार्यों से जो सद्गति सम्भव नहीं है, वह मालिका-क्षेत्र की यात्रा से ही सुलभ है। यह क्षेत्र भगवती को अन्य देवीपीठों की अपेक्षा अधिक प्रिय है। 'मालिका' के दर्शन से मानव देवतुल्य पूजनीय हो जाता है। तपोधनों ! देव, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, तेंतीस करोड़ देवता, विद्याधर आदि स्वर्ग के निवासी भी वहाँ देवी के समीप विद्यमान रहते हैं। वे सब शिखरवासिनी 'मालिका' का अर्चन करते हैं। स्वर्ग में भी इससे बढ़कर जनहितकारी तथा मोक्षप्रद दूसरा स्थान नहीं है। यहाँ तक कि देवगण, ऋषिगण एवं गन्धर्वजन—ये सभी यहाँ के यात्रियों की स्तुति करते हैं। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि महेन्द्रादि देवता यात्रार्थ जाने वाले व्यक्तियों का नन्दनवन के पुष्पों से अभिनन्दन करते हैं। वहाँ पर गन्धाक्षत-पुष्पादि से पूजन करने वाले मानव अभीष्ट फल (मनोरथ) प्राप्त कर लेते हैं। चारों पुरुषार्थों के साथ ही 'भुक्ति'—ये पाँचों 'मलिका' की पूजा से सुलभ हैं। उस पर्वतशिखर पर आरूढ़ हो जो 'मालिका' नाम का बार-बार उच्चारण करता है, 'मालिका' की कृपा से उसकी सब इच्छायें पूरी हो जाती हैं। 'मालिका' का ध्यान करते हुए मनुष्य कहीं भी रहे तो भी उसकी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। उसे शत्रु एवं राजभय भी व्याप्त नहीं होता। इस सम्बन्ध में यह आख्यान सुविदित है—'निषध देश में 'अत्रि'गोत्र में

शालिहोतेति विख्यातो धर्मात्मा वेदवल्लभः। स समाहूय वेदज्ञं ब्राह्मणं शक्तिगोत्रजम् ॥२९॥
वसुवर्णं ददौ तस्मै कन्यां च सुमतीं ततः। सुमतीं चारुसर्वाङ्गीं प्राप्य षोडशहायनाम् ॥३०॥
वसुवर्णः समुद्वाह्य विवाहविधिना शुभाम्। तस्थौ सर्वाधिकं प्रीत्या तत्रैव श्वशुरालये ॥३१॥
विरेमे स तया सार्धं कृतविद्यो महामतिः। ततः सा सुमती बाला वसुवर्णं वसूपमम् ॥३२॥
प्रियं प्राप्यातिचित्राङ्गं शुशुभे चाधिकं सती। निवस्य वसुवर्णोऽपि मासान् स श्वशुरालये।३३।
कदाचित्तत्र धर्मात्मा तया सह गृहं ययौ। स मार्गे राक्षसैर्घोरैर्व्रजन्दुष्टैस्तपोधनाः ॥३४॥
निहतः प्राप पञ्चत्वं व्याघ्रेणेव महागजः। निहतं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्वकान्तं नवयौवनम् ॥३५॥
चकम्पे चातिशोकार्ता वायुना कदली यथा। दृष्ट्वा निपतितं कान्तं विलप्य सुचिरं ततः॥
चितां तस्य विरच्याशु बहुभिः काष्ठसञ्चयैः। सह गन्तुं मनश्चक्रे सा तेन पतिना सह ॥३७॥
चितायां तं प्रियं क्षिप्त्वा सह गन्तुं मनो दधे। यावत् सा सुमती बाला पूर्णेन्दुसदृशानना।३८।
तावदागत्य तां साध्वीं कश्चित्तत्रागतो मुनिः। सह यान्तीं निषिध्याशु करुणामृतभूषणः॥
प्रोवाच सोऽनवद्याङ्गीं वचसाऽमृतवर्षिणा ॥३९॥

ब्राह्मण उवाच—

मा शुच त्वं महाभागे मत्वा दैवं हि कारणम्। संयोगस्य वियोगस्य सैकः कर्ता न संशयः।४०।
तवान्तर्विद्यते गर्भो ब्राह्मणेन समाहितः। सूर्यरश्मिप्रतीकाशो जानीहि वरवर्णिनि ॥४१॥
बालापत्याऽथ गर्भिण्यः अदृष्टरजसस्तथा। रोगिण्यो वर्णहीनाश्च नारोहन्ति चितां स्त्रियः।४२।
इति शास्त्रमतं सम्यग् या विलङ्घ्य प्रयाति वै। नियतं नरके वासस्तस्याः स्यान्नात्र संशयः।४३।
तस्मान्नीतिमतं सम्यक् पुरस्कृत्य कुरुष्व मे। वचनं लोकधर्मस्य ज्ञात्वा ज्ञानं विनिश्चितम्।४४।

उत्पन्न 'शालिहोता' नाम का सदाचारी, धर्मात्मा तथा वेदशास्त्रसम्पन्न ब्राह्मण था। उसकी 'सुमति' नाम की कन्या बड़ी सुशीला, सुन्दरी तथा धर्मशीला थी। उसके पिता ने 'शक्ति' गोत्र में उत्पन्न किसी वेदज्ञ 'वसुवर्ण' नामक ब्राह्मण को बुलाकर सुवर्णलङ्कारादि से युक्त अपनी कन्या का विवाह कर दिया। वह भी उस सोलह वर्ष की कन्या को प्राप्त कर विद्याध्ययन करते हुए बड़े आनन्द के साथ प्रेमपूर्वक वहीं ससुराल में रहने लगा। युवावस्था प्राप्त होने पर वे दोनों परस्पर शोभित हुए। बहुत दिनों बाद वह पत्नी को लेकर अपने घर को चला। तपोधनों! मार्ग में जाते हुए उसे दुष्ट राक्षसों ने, सिंह द्वारा वध किये जाते हुए हाथी के समान, मार डाला। अपने नवयुवा पति को मृत देखकर 'शोकार्त' सुमति हवा से झँकझोरे हुए केले के पत्ते की तरह विदीर्ण हो गई। पतिको भूमि पर पड़ा देख चिरकाल तक विलाप करती रही। फिर काष्ठ-सञ्चय कर चिता बनाने के बाद पति की सहगामिनी होने को उद्यत हुई। इतने ही में उस चन्द्रमुखी के समक्ष प्रकट हो सहगमन का निषेध करते हुए कोई मुनि अमृतमयी वाणी से बोले॥ ८-३९॥

ब्राह्मण बोला—महाभागे! शोक मत करो। 'संयोग' और 'वियोग' में एक मात्र भाग्य ही कारण है। 'तू गर्भवती है और गर्भस्थ जीव सूर्य के समान तेजस्वी है। शास्त्र का यह मत है कि पति के मरने पर छोटे शिशुओं की मातायें, गर्भिणी स्त्रियाँ तथा अप्राप्तरजस्का स्त्रियाँ सहगामिनी न हों। इस नियम का उल्लङ्घन करने वाली स्त्रियाँ नरक-गामिनी होती हैं। इस

व्यास उवाच—

इति तस्य ऋषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रणताञ्जलिः। प्रत्युवाच द्विजं साध्वी विलपन्सा पुनः पुनः॥

ब्राह्मणी उवाच—

सहधर्मचरी धात्रा पत्युर्जायात्मयोनिना। रचिता तस्य रचनां कोऽन्यथाकर्तुमुत्सहेत्॥४६॥
पतिर्देवो हि नारीणां पतिरेव परा गतिः। पतिर्बन्धुः पतिमतीनां पुरोक्तं पद्मयोनिना॥४७॥
पद्मयोनेस्तु वचनं पुरस्कृत्य तपोधन। सहधर्मचरी भूत्वा गच्छामि पतिना सह॥४८॥

व्यास उवाच—

इति तस्याः समुदितं वचनं मुनिसत्तमाः। श्रुत्वा प्रबोधयन्साध्वीं पुनः प्रोवाच धर्मवित्॥४९॥

ब्राह्मण उवाच—

सत्यमुक्तं त्वया साध्वि यदुक्तं तत्तथैव हि। ममापि वचनं सम्यक् शृणुष्व प्रब्रवीमि ते॥५०॥
तावत्प्रोक्तो हि नारीणां पतिर्देवो मनीषिभिः। बालापत्याः सगर्भिण्यो यावत्ता न भवन्ति हि।
गृहमेधमपत्यार्थे कुर्वन्ति पण्डिता नराः। अपत्यार्थे महद्यागं दानानि विविधानि च॥५२॥
पुत्रं विना न पुरुषाः प्रतरन्ति यमालयात्। मृता भवन्ति मनुजा लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥५३॥
यावत्प्रसूते[1] न तनुजं भूतले वरवर्णिनि। वैवस्वतवशं याति सा याति नरकं ध्रुवम्॥५४॥
यस्या नास्तीह सत्पुत्रो भूतले वरवर्णिनि। स्वर्गं न याति सा पुण्यैरपि जन्मशतोद्भवैः॥५५॥

प्रकार शास्त्र का वचन अनुसरण करते हुए तुम मेरे वचन के अनुसार नीतिसंगत कार्य करो। इस संसार में धर्मज्ञ जन शास्त्र-सम्मत निश्चित बात को जान कर ही कार्य करते हैं' ।४०-४४।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! इस प्रकार उस ऋषि के उपदेश को सुनकर विलाप करती हुई वह साध्वी नम्रता के साथ कहने लगी ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणी बोली—ब्राह्मणश्रेष्ठ! विधाता ने स्त्री को पतिमार्गगामिनी बनाया है। उसके विरुद्ध आचरण करने को कौन उत्साहित करेगा? स्त्रियों के लिए पति ही देवता है। वही परम गति है। वही बन्धु है। अतः ब्रह्मा की बाणी के अनुसार मैं पति की सहगामिनी होना चाहती हूँ ॥ ४६-४८ ॥

व्यासजी ने कहा—ऋषिवरों! इस प्रकार उस साध्वी के वचन सुनकर वह ब्राह्मण उसे समझाने लगा ॥ ४९ ॥

ब्राह्मण बोला—साध्वि! तुमने सच कहा है। जरा मेरी बातें भी ध्यानपूर्वक सुनो। पति की सहगामिनी होने की व्याख्या उन्हीं के लिये बतलाई है, जो 'छोटे बच्चों की माता' तथा 'गर्भिणी' न हों। विद्वज्जन सन्तति के लिये ही गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते हैं। सन्तति न होने पर उसके उपायस्वरूप 'पुत्रेष्टि' यज्ञादि भी सम्पादित करते हैं। पुत्र के बिना नरक से भी उद्धार नहीं होता। पुत्र ही मृत पितरों का पिण्डदानादि करता है। हे वरवर्णिनि! पुत्रोत्पत्ति के बिना स्त्रियाँ यमराज के वशीभूत हो नरक को प्राप्त होती है। केवल पुत्र का होना ही पर्याप्तनहीं है, किन्तु सत्पुत्र होना आवश्यक है। सत्पुत्र के बिना प्राक्तन पुण्यों से भी परमगति नहीं मिलती ॥ ५०-५५ ॥

---

१. 'प्रसूय'—'ख'।

व्यास उवाच—

एवं स वाग्भिः पुण्याभिर्बोधयित्वा द्विजात्मजाम् । सहयान्तीं निषिध्याशु आश्रमं पुनराययौ ॥
साऽपि तं निजभर्तारं दाहयित्वा शुभव्रता । ऋषेस्तस्याश्रमं साध्वी प्रययौ शंसितव्रता ॥५७॥
मुनेस्तस्याश्रमं प्राप्य कृत्वा भर्त्रौर्ध्वदेहिकम् । ततः शुश्रूषणरता साऽभवद्वरवर्णिनी ॥५८॥
संशुश्रूषन्महर्षि तं ततः सा व्रतकर्शिता । प्रासूत दशमे मासि पुत्रं देवसुतोपमम् ॥५९॥
तं दृष्ट्वा स मुनिः सा च परं हर्षमवापतुः । जातकर्मादिकं कृत्वा तस्य नामाकरोत्सुधीः ।६०।
नाम्ना वेदनिधिरिति मुनिः परमधार्मिकः । स बाल्यं समतिक्रम्य वर्धमानो दिने दिने ॥६१॥
मुनिना कृतसंस्कारोऽधीतविद्यस्तपोधनः । बभूव यूनो धर्मात्मा मुनिशुश्रूषणे रतः ॥६२॥
ततस्तां मातरं साध्वीं स कदाचित्तपोधनाः । पप्रच्छ संशयाविष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणीसुतः ।६३।

वेदनिधिरुवाच—

मातस्त्वां न पिता सम्यग्भार्यात्वेनानुवर्तते । न मां पुत्रेति प्रब्रूते कथमस्तीह कारणम् ॥६४॥

व्यास उवाच—

विमृश्य सुचिरं तत्र सा साध्वी शुभलक्षणा । प्रोवाच वचनं धर्मज्ञा विहस्य चारुभाषिणी ।६५।

ब्राह्मणी उवाच—

तव नास्ति पिता पुत्र मुनिरेष तपोनिधिः । पिता ते निहतो मार्गे राक्षसैर्वनगोचरैः ॥६६॥

व्यास उवाच—

इति मात्रा समुदितां वज्रनिष्पातनिष्ठुराम् । श्रुत्वा वाणीं महातेजाः प्रोवाच वदतां वरः ।६७।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! इस प्रकार वह ब्राह्मण 'सुमति' को सहगामिनी होने की अयुक्तता का बोध कराते हुए अपने आश्रम को चला गया । तब वह ब्राह्मणी भी अपने पति की दाहक्रिया पूर्ण कर उसी ऋषि के आश्रम में चली गई । वहाँ और्ध्वदैहिक कृत्य से निवृत्त हो वह साध्वी आश्रम में सेवा-शुश्रूषा कार्य करने लगी । व्रतनियमादि के कारण वह कृश हो गई । समय बीतने पर दसवें महीने उसने देवतुल्य पुत्र को जन्म दिया । उसे देखकर 'सुमति' तथा आश्रमस्थ मुनि बड़े प्रसन्न हुए । 'जातकर्म' संस्कार के बाद 'नामकरण' संस्कार द्वारा उसका नाम 'वेदनिधि' रखा गया । दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए उस बालक ने बाल्यावस्था बिता दी । मुनि ने उसके संस्कार किए तथा विद्याध्ययन कराया । वह बालक धर्माचरण करता हुआ मुनि की सेवा-शुश्रूषा करने में लग गया । तपोधनों ! तब किसी समय उस बालक ने सन्देह में पड़ कर अपनी माता से यह पूछा ॥ ५६-६३ ॥

वेदनिधि बोला—मातः ! यह मुनि (पिता) तुम्हें भार्या के सदृश मानते दिखाई नहीं पड़ते । मुझे भी 'पुत्र' शब्द से सम्बोधित नहीं करते हैं । इसका क्या कारण है ? ॥ ६४ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! बहुत देर तक सोचने के बाद उस सुभाषिणी महिला ने अपने पुत्र को इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणी बोली—पुत्र ! यह मुनि तुम्हारे पिता नहीं हैं । तुम्हारे पिता को दुष्ट राक्षसों ने मार्ग में मार दिया था ॥ ६६ ॥

व्यासजी ने पुनः कहा—ऋषियों ! इस प्रकार माता की कठोर वाणी को सुन वह तेजस्वी बालक माता से फिर पूछने लगा ॥ ६७ ॥

वेदनिधिरुवाच—

को नाम मेऽभवत्तातः कथं त्वमिह संस्थिता। कथं स राक्षसैर्घोरैर्निहतोऽस्ति पिता वने ॥६८॥

ब्राह्मणी उवाच—

ब्राह्मणस्ते पिता पुत्र वसुवर्णेति विश्रुतः। विद्यते सर्वधर्मज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ॥६९॥
मम पित्रा समाहूतो मामुद्वाह्य स सद्व्रतीम्। निनाय सुचिरं कालं श्वश्रूर्वोर्गेहे मया सह ।७०।
प्रत्यागच्छन्निजगृहं निहतोऽस्ति वने बली। शक्तिगोत्रसमुत्पन्नः पिता तेऽस्ति तपोधन ॥७१॥
सहयान्तीं च मां ज्ञात्वा मुनिरेष तपोधनः। अन्तर्वत्नीं निषिध्याशु नीत्वा मामिह आययौ ॥
अत्रैव त्वं प्रसूतोऽसि पोषितोऽसि महर्षिणा। अनेनाध्यापिता विद्या तुभ्यं सर्वा न संशयः ।७३।

व्यास उवाच—

स मात्रा कथितां वाणीं श्रुत्वा वेदनिधिस्ततः। मातरं तां नमस्कृत्य मुनेस्तस्याश्रमं ययौ ।७४।
किं करोमीति सञ्चिन्त्य प्रणम्य च पुनः पुनः। पप्रच्छ तस्मै धर्मात्मा गिरा सूनृतया ततः ।७५।

वेदनिधिरुवाच—

पितरो नरके येषां निवसन्ति तपोधन। प्रायश्चित्तं च किं प्रोक्तं तेषामत्र कथं हिते ॥
उद्धृता निरयावासात् सद्गतिं प्राप्नुवन्ति वै ॥ ७६ ॥

ऋषिरुवाच—

येषां हि पितरो घोरे नरके निवसन्ति हि। तेषां वेणुजले स्नानं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ॥७७॥
कथितं तर्पितास्तत्र यान्ति ब्रह्मपदं हि ते। वेणुरुद्रासरिन्मध्ये स्नात्वा गत्वा च मालिकाम् ।७८।
तत्र कोटयब्दजातानां पातकानां च निष्कृतिः। जायते नात्र सन्देहः सत्यमेतन्मयोदितम् ।७९।

वेदनिधि बोला—मातः! मेरे पिता कौन रहे? तुम यहाँ कैसे रह रही हो? मेरे पिता को वन में राक्षसों ने कैसे मारा? ॥ ६८ ॥

ब्राह्मणी ने उत्तर दिया—पुत्र! तुम्हारे पिता का नाम 'वसुवर्ण' रहा। वह धर्मज्ञ एवं वेदवेदाङ्गों के ज्ञाता रहे। मेरे पिता के द्वारा बुलाये जाने पर उनके साथ मेरा विवाह हो गया। उन्होंने विवाहोपरान्त भी अपने ससुराल में ही निवास किया। तुम्हारे पिता 'शक्ति' गोत्र में उत्पन्न हुए थे। बाद में मेरे साथ अपने घर को जाते हुए रास्ते में ही वन में उनकी मृत्यु हुई। उनके साथ सती होती हुई जानकर मुनिवर ने उसका निषेध किया और मैं यहाँ आश्रम में आ गई। यहीं तुम्हारा जन्म हुआ है। इन्हीं महर्षि ने तुम्हारा पालन-पोषण किया है। ये ही तुम्हारे विद्यागुरु हैं ॥ ६९-७३ ॥

व्यासजी बोले—तपोधनों! माता की बातें सुनकर उसे प्रणाम करने के पश्चात् वह ब्राह्मण आश्रम में जा प्रणाम कर, क्या करूँ—यह सोचकर मधुर वाणी से पूछने लगा ।७४-७५।

वेदनिधि ने कहा—तपोनिधे! जिसके पितृगण नरक में वास करते हों, उनके प्रायश्चित्त का क्या विधान है? साथ ही उनका नरक से उद्धार हो सद्गति कैसे प्राप्त होती है? ॥७६॥

ऋषि बोले—जिनके पितृगण नरक में वास करते हैं, उनका 'वेणु' जल में स्नान करना ही प्रायश्चित्त है। उसी से पितरों का तर्पण करने पर पितर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। 'वेणु-रुद्रा' नदी में स्नान कर 'मालिका' के निकट जाने पर ही करोड़ों वर्षों के पाप नष्ट हो जाते हैं। यह सर्वथा सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ७७-७९ ॥

व्यास उवाच—

एतच्छ्रुत्वा मुनेस्तस्य ततो वेदनिधिर्मुनिम् । पुनराह कथं जाने वेणुतोयं सुशोभनम् ।।८०।।
पितुर्मे राक्षसैर्घोरैर्निहतस्य तपोधन । प्रणश्यति महत्पापं तर्पितः कुत्र सद्गतिम् ।।८१।।
प्राप्स्यति तन्महाभाग प्रब्रूहि यदि रोचते । कथमानृण्यतां सम्यक् हत्वा तान् राक्षसाधमान् ।।
प्राप्स्यामि कं समभ्यर्च्य समाराध्य च सुव्रत । या सा समुदिता देवी मालिकाख्या त्वयेश्वरी ।।
तस्या यात्राविधिं चापि प्रब्रूहि मुनिसत्तम । तथा तीर्थानि चान्यानि तस्योपासनगानि च ।।
प्रदेशो निर्गमश्चापि क्षेत्रं चापि तपोधन ।।८४ ।।

ऋषिरुवाच—

पितुस्तव महाभाग महद्दुर्मरणं स्मृतम् । भुक्त्वा युगशतं चापि तस्य याति न दुष्कृतम् ।।८५।।
यत्कल्पशतभोज्यं वै दुष्कृतं हि पितुस्तव । येनोपायेन नश्येत कथयिष्यामि साम्प्रतम् ।।८६।।
हिमालयतटे रम्ये याहि सिद्धनिषेविते । कर्णाली वृद्धगङ्गा च यत्र दिव्ये सरिद्वरे ।।८७।।
तत्र मध्ये महापुण्यो गिरिः पञ्चपुराह्वयः । प्रविश्य वेणुरुद्राख्यं यत्र ते सङ्गते शुभम् ।।८८।।
प्रतर्प्य मालिकां गच्छेत्तत्र पूज्य महेश्वरीम् । गत्वा देवतटं दिव्यं यत्र क्षीरस्थलं स्मृतम् ।।८९।।
तत्र निष्क्रमणं कृत्वा तर्प्य क्षीरजलैः शुभैः । गमिष्यति पिता स्वर्गं तव ब्राह्मणसत्तम ।।९०।।
दृष्ट्वा तत्र महादेव्याः सेवितानि पुराणि वै । विजेष्यसि महाभाग राक्षसान् घोरदर्शनान् ।।
तत्र गत्वा च ते मृत्युः शत्रुतो न भवेत्किल ।।९१।।

व्यास उवाच—

श्रुत्वा पुराणि दिव्यानि महादेव्यास्तपोधनाः । प्रोवाच तानि धर्मज्ञः प्रब्रूहीति तपोधनम् ।९२।

व्यासजी ने कहा—तपोधनों ! मुनि के इस कथन को सुन वेदनिधि ने पुनः जिज्ञासा की कि मैं 'वेणुरुद्रा' को कैसे जानूँ ? राक्षसों द्वारा निहत मेरे पिता के पाप किस स्थान पर तर्पण करने से विनष्ट होंगे ? उन्हें सद्गति कैसे प्राप्त होगी ? मैं अधम राक्षसों को किस प्रकार मार कर अपने 'पितृऋण' से मुक्त होऊँ ? किस देवता की आराधना कर अपना मनोरथ पूर्ण करूँगा ? आपके द्वारा वर्णित 'मालिका' देवी की यात्रा का विधान क्या है ? उनके निकटवर्ती कौन से अन्य तीर्थ हैं ? उस क्षेत्र का प्रवेश और निर्गम कहाँ है ? ।। ८०-८४ ।।

ऋषि ने (वेदनिधि को) उत्तर दिया—महाभाग ! तुम्हारे पिता का दुर्मरण हुआ है। सैकड़ों युगों तक भी वह पाप दूर नहीं हो सकता। वह अनेक कल्प पर्यन्त भोगने के योग्य है। तथापि उस पापमोचन का उपाय मैं तुम्हें बतलाता हूँ। तुम सुनो। सिद्धों से सेवित 'हिमालय' के रमणीय तट पर 'कर्णाली' तथा 'वृद्धा' नदियों के मध्यवर्ती पवित्र 'पञ्चपुर' पर्वत है। उनके सङ्गम पर प्रविष्ट हो 'वेणुरुद्रा' में तर्पण कर 'मालिका' देवी के पास जा पूजा करना विहित है। फिर वहाँ से 'देवतट' पर्वतस्थ 'क्षीरस्थल' नामक स्थान से निष्क्रमण कर 'क्षीर-जलों' से तर्पण करने के उपरान्त तुम्हारे पिता को 'स्वर्गलोक' प्राप्त हो सकेगा। वहाँ पर महादेवी से सेवित 'पाँच पुरों' का दर्शन कर तुम घोर राक्षसों पर विजय प्राप्त करोगे। उस क्षेत्र में जाकर तुम शत्रुओं से पराजित नहीं हो सकते ।। ८५-९१ ।।

व्यासजी बोले—तपोधनों ! उस तपस्वी से वेदनिधि ने देवी के पाँच पुरों के बारे में

कथं जाने सुदिव्यानि पुराणि हि तपोधन[1]। निवस्य तेषु के देवीं सेवन्ते परमेश्वरीम् ॥९३॥
विस्तरेण महाभाग श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ९४ ॥

ऋषिरुवाच—

वैद्यनाथस्थलं हित्वा[2] प्रान्ते पञ्चपुरस्य च। पर्वतोऽस्ति हि कैलासः कैलासशिखरोपमः॥
तत्र मध्ये स्थलं रम्यं विद्यते सुरसेवितम्। स्थले तस्मिन् सुदिव्यानि सन्ति देव्याः पुराणि वै।
तेषां यात्राफलं सम्यक् शृणुष्व गदितं मया। पुरेभ्यो दक्षिणे भागे गिरिजाख्या हरप्रिया ।९७।
राजते सुरगन्धर्वैः सेविता वरदेश्वरी। तां समर्च्य महाभाग कुबेरस्य स्थलं व्रजेत् ॥९८॥
धनदस्य स्थलं रम्यं यक्षगुह्यनिषेवितम्। दृष्ट्वा समर्चयेत्तत्र धनदं सर्वकामदम् ॥९९॥
तस्याग्रे धनराशिस्थां पूजयित्वाऽथ मालिकाम्। प्रसादं मानवः सम्यक् प्राप्नोति धनसम्पदम्।
मानवो मुनिशार्दूल धनाध्यक्षो महीतले। कुबेरस्य प्रसादेन पुनर्जन्मनि जन्मनि[3] ॥१०१॥
तस्माददूरे नागानां पुरं गत्वा समर्चयेत्। नागान्नागपतिं शेषं नागेशं चापि शङ्करम् ॥१०२॥
दिव्यमौक्तिकराशिस्थां रत्नवैदूर्यपूरिताम्। अर्चयित्वा महादेवीं महादेवेन चान्विताम् ।१०३।
दिव्यमौक्तिकरत्नानां प्राप्नोति सर्वदा नरः। तस्माच्च पूर्वकोणस्थं महेन्द्रस्य पुरं व्रजेत् ॥
महेन्द्रसरसि स्नात्वा अर्चयित्वा दिवेश्वरम्। तस्याग्रे धान्यराशिस्थामर्चयेन्मालिकां शिवाम् ॥
अर्चयित्वा महाबाहो भूकुण्डस्थं महेश्वरम्। सर्वशस्यसमृद्धिं च प्रसादात्प्राप्नुते नरः ॥१०६॥
यत्र विद्याधरगणाः सिद्धगन्धर्वचारणाः। पुरे चापि निवस्याशु समर्चन्ति महेश्वरीम् ॥१०७॥
तत्र गत्वा नमस्कृत्य तान् सर्वान् द्विजसत्तम। अर्चयित्वा महादेवीं प्रवालसदृशाम्बराम्[4] ॥
क्षौमादिवस्त्रराशिस्थां स्वर्णधातुप्रपूरिताम्। वस्त्रराशिं महादेव्याः प्रसादात्प्राप्नुते नरः ॥

सुनकर विशेष बातें बतलाने की प्रार्थना की, क्योंकि वह उन पुरियों को नहीं जानता था। उसने यह पूछा कि 'वहाँ कौन लोग निवास करते हुए परमेश्वरी की सेवा में रत रहते हैं? मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ' ॥ ९२–९४ ॥

ऋषि ने उत्तर दिया—'वैद्यनाथ' से आगे बढ़कर 'पञ्चपुर' पर्वत के प्रान्त में 'कैलास'-शिखर के समान 'कैलास' पर्वत है। उसके मध्य रमणीय स्थल देवी के 'पुरों' के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी यात्रा करने से मिलने वाले फल को अब मैं बतलाता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो। पाँचों पुरों के दक्षिण भाग में 'सुर' और 'गन्धर्वों' से सेवित हरप्रिया 'गिरिजा' वरदेश्वरी के रूप में विद्यमान हैं। उनका पूजन कर आगे 'कुबेर' के स्थल की ओर जाना चाहिये। वह रमणीय स्थल 'यक्षों' और 'गुह्यकों' से सेवित है। उसका दर्शन कर सब इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है। अतः वहाँ 'कुबेर' का दर्शन अवश्य करना चाहिए। उसके अग्रभाग में धनभण्डार में स्थित 'मालिका' का पूजन करने पर मानव को उनकी कृपा से अपार सम्पत्ति मिलती है। मुनिवर! उस व्यक्ति को कुबेर की कृपा से जन्मान्तर में इस पृथ्वी पर 'धनाधिप' का स्थान मिलता है। वहीं 'नाग', नागपति 'शेष' तथा 'नागेश' शङ्कर को 'मौक्तिक' तथा वैदूर्य मणियों में विराजमान महादेव सहित 'मालिका' देवी की पूजा करने से मानव को मोती और रत्न प्राप्त

---

१. 'जाने तानि सुदिव्यानि कथं तत्र प्रबोधनम्'—इति 'ख' पुस्तके। १. 'तत्र' इत्यपरः पाठः।
३. 'व्रजन् जन्मनि जन्मनि'—'ख'। ४. 'प्रवालसदृशाधराम्'—इत्यपरः पाठः।

तस्माद्दक्षिणकोणस्थं पुरं राक्षससञ्ज्ञकम् । गत्वा तां फलराशिस्थामर्चयित्वा महेश्वरीम् ॥
प्राप्नोति मानवः सम्यग्वरमेकं सुदुर्लभम् । यं यं चिन्तयते कामं तत्र गत्वा च मानवः ।१११।
तं तं प्राप्नोति निखिलं महादेव्याः प्रसादतः । दृष्ट्वा पुराणि रम्याणि तथैव धनराशयः ॥
कैलासशिखरारूढं पूजयित्वा महेश्वरम् । स्नात्वा ह्रदे शुभे दिव्ये व्रजेद्वेणुसरिद्वराम् ॥११३॥
रुद्रवेणुसरिन्मध्ये यत्र क्षीरनदी शुभा । सङ्गमे सा समायाता समाहूता दिवौकसैः ॥११४॥
मुण्डनं चोपवासं च तीर्थश्राद्धं तथैव च । विधाय शतरुद्रेशं वेणुसङ्गममध्यगम् ॥११५॥
अर्चयित्वा महादेवं मानवो नृपसत्तम । कुलानां कोटिमुत्तार्य विष्णुलोके महीयते ॥११६॥
तत्र सङ्गममध्ये वै रुद्रकुण्डे निमज्य वै । सम्प्रतर्प्य कुलशतं समुद्धरति मानवः ॥११७॥
ततस्तु शिखरे रम्ये गन्तव्यं द्विजसत्तम । वसुधारां ततो गत्वा कन्दरायां महेश्वरीम् ॥११८॥
अर्चयित्वा विधानेन जलग्रहणमाचरेत् । यावत्पतन्ति देहेऽस्मिस्तत्रस्था जलबिन्दवः ॥११९॥
तावद्विष्णुगृहे वासो जायते नात्र संशयः । वसुधारासमं तीर्थं नास्ति प्रत्ययकारकम् ॥१२०॥
तत्र पातकिनां देहे न पतन्त्यम्बुबिन्दवः । तत्राचम्य विधानेन गच्छेद्देवीस्थलं शुभम् ॥१२१॥
पूजयेत्पर्वतं तत्र शिवादेहमयं शुभम् । प्रतिमां मालिकाख्यां च त्वष्ट्रा विरचितां शुभाम् ।१२२।
स्थले तस्मिन्नहोरात्रं स्थित्वा ध्यात्वा च मालिकाम् । तस्मात्पश्चिमभागे वै अवतीर्य जले शुभे ।

होते हैं। महाबाहो ! उसके पूर्व कोण में स्थित 'महेन्द्रपुर' में जाकर 'महेन्द्रसर' में स्नान करें। वहीं 'स्वर्गाधिपति' का पूजन कर 'भूकुण्ड' में स्थित 'महेश्वर' की पूजा की जाय। इसके फलस्वरूप मानव धान्य-समृद्धि से परिपूर्ण हो जाता है। तब उस 'पुर' पर जाय, जहाँ 'विद्याधर', 'सिद्ध', 'गन्धर्व', 'चारण' आदि से 'देवी' सेव्यमान हैं। उस स्थानविशेष में सब देवों को प्रणाम कर 'प्रवाल' सदृश (मूँगे की तरह) वस्त्र वाली 'महेश्वरी' का पूजन विहित है। तदुपरान्त 'रेशमी'-वस्त्रराशि में स्थित 'स्वर्णादि' धातुओं से पूरित 'महादेवी' की अर्चना की जाय। उनकी कृपा से मानव को वस्त्रादि का लाभ होता है। उसके दक्षिण में 'राक्षसपुर' है। वहाँ 'फलराशि' में स्थित 'महेश्वरी' का पूजन करने से मनुष्य को दुर्लभ 'वर' प्राप्त होता है। यहाँ जिस भावना को लेकर मानव जाता है, तदनुसार उसे फल मिलता है। इन सब रमणीय 'पुरों' तथा 'धनराशियों' का दर्शन कर 'कैलास' के शिखर पर आरूढ़ हो 'महेश्वर' का पूजन एवं 'ह्रदों' में स्नान कर 'वेणु' नदी के समीप पहुँच जाय। वही 'रुद्रवेणु' के मध्य 'क्षीर'नदी सङ्गम करती है। उसे वहाँ देवों ने आवाहित किया था। वहाँ मुण्डन, उपवास, तीर्थश्राद्धादि कर 'वेणु-सङ्गम'स्थ 'शतरुद्र' का पूजन करने से मानव अपने कोटिकुलों का उद्धार कर विष्णु-लोक प्राप्त करता है। वहीं सङ्गम के मध्य 'रुद्रकुण्ड' है। उसमें स्नान-तर्पणादि करने पर सैकड़ों कुलों का उद्धार होता है। विप्रश्रेष्ठ ! फिर रम्य शिखर प्राप्त कर 'वसुधारा' की ओर जाय। वहाँ गुफा में 'महेश्वरी' का विधिपूर्वक पूजन कर जल-ग्रहण करे। वहाँ जितने जलबिन्दु देह में स्पर्श करते हैं, उतने समय तक मानव 'वैकुण्ठ' में वास करता है। 'वसुधारा' के समान कोई दूसरा विश्वासदायक तीर्थस्थान नहीं है। वहाँ पापियों के देह में जलबिन्दु स्पर्श नहीं करते। वहाँ पर आचमन करने के उपरान्त 'देवीस्थल' में प्रवेश किया जाय। वहीं पर्वत के रूप में स्थित देवी की पूजा विहित है। तदनुसार ब्रह्मा द्वारा गढ़ी हुई प्रतिमा में देवी का

विष्णुतीर्थे च संस्नात्वा विष्णुर्वामनरूपधृक् । यत्र प्राप महामायां सर्वदेवविमोहिनीम् ।१२४।
प्रतुष्य मालिकां देवीं वरदां सिद्धसेविताम् । वामनं गरुडारूढं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।१२५।।
ध्यात्वा तत्र जगद्धात्रीं वामे शिखरवासिनीम् । अर्चयित्वा महादेव्याः प्रियो भवति मानवः ।।
तस्मादधो वृद्धसञ्ज्ञा कन्दरास्ति तपोधन । सपुत्रां सुकुमाराङ्गीं पूज्य वै तत्र मालिकाम् ।।
वरमेकं महादेव्याः प्रसादात्प्राप्नुते नरः । ततोऽधः सरसि स्नात्वा ब्रह्मसञ्ज्ञे तथेश्वरीम् ।।
नमस्कृत्य महाभाग अधोभागे अधिष्ठिताम् । महादेवान्वितां देवीं नृत्यस्थलनिवासिनीम् ।।
क्रौञ्चीं नागेश्वरीं चैव नागहारविभूषिताम् । सम्भाव्य पर्वतारूढां पुनरेव गिरिं व्रजेत् ।।१३०।।
तत्रानुज्ञां महादेव्या अधिगत्य तपोधन । गच्छेद्देवतटं शुद्धं शुद्धं देवगृहोपमम् ।।१३१।।
तत्र क्षीरस्थले दिव्ये तिसृभिर्देवकोटिभिः । पूजितां पूज्य गिरिजां नरः सूर्यप्रभो भवेत् ।१३२।
तत्र निष्क्रमणं कृत्वा पुण्यं दीपस्थलं व्रजेत् । त्रयस्त्रिंशद्देवगणांस्तत्र सम्भाव्य मानवः ।।
पूर्णयात्राफलं सम्यक् प्राप्नुते नान्यथा क्वचित् ।।१३४।।

व्यास उवाच—

इति तस्य ऋषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रणताञ्जलिम् । प्रसार्य प्रत्युवाचेनं महर्षि मुनिसत्तमाः ।।१३५।।

वेदनिधिरुवाच—

ब्रह्मन् ते राशयः सम्यग्रचिताः केन हेतुना । कीदृशाः सन्ति ते सर्वे वक्तुमर्हसि नान्यथा ।१३६।

पूजन करना चाहिये । उस स्थल में अहोरात्र वास कर दूसरे दिन स्नान करने के पश्चात् 'मालिका' का ध्यान कर उसके पश्चिम भाग में उतर कर 'विष्णुतीर्थ' के शुभ जल में स्नान अपेक्षित है। वहां वामन-रूपधारी विष्णु ने 'देवविमोहिनी' महामाया को प्राप्त किया है। वरदा तथा सिद्धसेविता 'मालिका' को सन्तुष्ट कर गरुड़ पर आरूढ़ शङ्ख-चक्र-गदा-धारी 'वामन' का ध्यान करते हुए वाम-भाग में 'शिखरवासिनी' जगद्धात्री का पूजन करने से मानव देवी का स्नेहभाजन हो जाता है। उसके निम्न भाग में 'वृद्धकन्दरा' है। उसमें पुत्रसहित (कार्तिकेय सहित) 'मालिका' की पूजा कर मनुष्य को देवी से वरदान मिलता है। उसके निम्नभाग में स्थित 'ब्रह्मसर' में स्नान कर ईश्वर को नमन करे। फिर अधोभाग में स्थित महादेवसहित नृत्यस्थलनिवासिनी 'क्रौञ्ची' देवी को प्रणाम करे। तब नागहार से विभूषित पर्वतारूढ़ 'नागेश्वरी' को प्रणाम कर पर्वत पर वापस आ जाय। वहाँ महादेवी की आज्ञा प्राप्त कर 'देवताओं के भवनों के समान 'देवतट' पर पहुँच कर तीस (करोड़) देवताओं से पूजित 'क्षीरस्थल' पर 'गिरिजा' की पूजा कर मनुष्य सूर्य के सदृश कान्ति-सम्पन्न होकर स्थिर रहता है। वहाँ से निकलकर पवित्र 'दीपस्थल' में पहुँच जाय। वहाँ 'तैंतीस' (करोड़) देवगणों का पूजन करने से समग्र यात्रा का पूरा फल मिल जाता है ।। ९५-१३४ ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिश्रेष्ठों ! इस प्रकार 'वेदनिधि' ने ऋषि की बातें सुनकर विनयपूर्वक पुनः पूछना आरम्भ किया ।। १३५ ।।

वेदनिधि बोला—ब्रह्मन् ! कृपया यह बतलायें कि उपर्युक्त सब प्रकार की राशियाँ किसने प्रतिष्ठित की हैं ? तथा किस कारण उन्हें वहाँ रखा गया है ? ।। १३६ ।।

मुनिरुवाच—

दक्षप्रजापतेर्यज्ञे कुपिता परमेश्वरी। पश्चात्त्वं प्रययौ तत्र पित्रे कोपं प्रदर्शयत् ।।१३७।।
चिक्षेप भूतले देवी मृतं स्वर्गात्तपोधन । देवगन्धर्वयक्षाश्च सिद्धविद्याधरादयः ।।१३८।।
निक्षिप्तं च महादेव्या देहं भूमण्डले शुभे। पतन् हिमाद्रिमासाद्य शुशुभे चाधिकं द्विज ।१३९।
तया विना ततो लोकाः शून्यतां ययुरर्णवैः। सह गन्धर्वनागाश्च चुक्रुशुः सिद्धचारणाः ।१४०।
ततो देवाः सगन्धर्वाः स्वर्लोके शून्यतां गते। तया विना जगद्धात्र्या बृहस्पतिपुरोगमाः ।१४१।
धातारं शरणं जग्मुः सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्। तत्र तं प्रणिपत्याशु विज्ञप्तिमुपचक्रिरे ।।१४२।।

देवा ऊचुः—

नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे विश्वयोनये। कमलासन नमस्तेऽस्तु त्राह्यस्माद्भवसागरात् ।१४३।
योगनिद्रा भगवती विष्णोरतुलतेजसः। दक्षप्रजापतेर्गेहे अवतीर्णा महेश्वरी ।।१४४।।
न शोभाम वयं सर्वे[1] विना कालीं हरप्रियाम्। प्राप्स्यामः कुत्र तां ब्रह्मन् प्रब्रूहि कमलासन ।।
कारणेन मृतां देवीं सर्वदाप्यजरामराम्। साम्प्रतं सा महादेवी वरदा क्व गता प्रभो ।।१४६।।

ऋषिरुवाच—

इति विज्ञापितो ब्रह्मा प्रत्युवाच दिवौकसान्। सा चेदानीं हिमगिरौ गूढाऽस्ति त्रिदिवेश्वरी ।।
आदिमध्यान्तरहिता सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। पतिता यत्र सा देवी तेन देहेन देवताः ।१४८।

मुनि ने उत्तर दिया—दक्ष-प्रजापति के यज्ञ में अपने पिता के निमित्त कोप प्रदर्शित कर सती ने देह त्याग कर दिया। तपोधन ! देवी ने उस मृत शरीर को स्वर्ग से नीचे गिरा दिया। देव, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, विद्याधर आदि ने सती के निष्प्राण शरीर को पृथ्वी पर गिरा देखा। वह शरीर हिमालय पर गिर कर बड़ा शोभित हुआ। भगवती के विना सर्वत्र शून्यता छा गई। इसके फलस्वरूप गन्धर्व, सिद्ध, नाग, चारण आदि सभी विलाप करने लगे। यहाँ तक कि स्वर्ग में भी जगन्माता के विना शोक व्याप्त हो गया। तब देवगुरु 'बृहस्पति' को अग्रसर करते हुए देवगण—जन्म, मरण और प्रलय के कारणस्वरूप—ब्रह्मा' के पास पहुँच कर निवेदन करने लगे। उन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम कर कहना आरम्भ किया।। १३७-१४२ ।।

देवगण बोले—संसार के स्रष्टा देवाधिदेव ब्रह्मा को हम लोग नमस्कार करते हैं। कमलासन ! आप इस भवसागर से हमारी रक्षा करें। अतुल पराक्रमी विष्णु भगवान् की मायास्वरूपिणी भगवती ने दक्ष प्रजापति के घर जन्म लिया था। भगवान् शङ्कर की 'काली' के विना हमारी शोभा नहीं है। कृपया आप बतलायें कि हम उन्हें कहाँ प्राप्त करेंगे ? वे तो वस्तुतः अजर-अमर हैं। कारणविशेष से उनका देहत्याग करना समझ में नहीं आता। इस समय वे कहाँ गई हैं ? ।। १४३-१४६ ।।

ऋषि ने कहा—देवों से निवेदन किये जाने पर ब्रह्मा ने इस प्रकार उत्तर दिया। इस समय वे हिमालय में कहीं अज्ञातवास कर रही हैं। देवगणों ! आदि, मध्य और अन्त से रहित होते हुए भी सृष्टि, स्थिति और प्रलयकारिणी वे देवी जहाँ-जहाँ अपने विग्रह को गिरायें उन

---

१. 'अस्माकं नैव शोभास्ति'—इति परिष्कृतः पाठः।

तत्र साऽस्ति महादेवी सुगुहा हिमसीकरैः। हिमालयतटे रम्ये गम्यतां विश्वकर्मणा ॥१४९॥
सह यागं प्रकुर्वतां विरच्य विपुलं धनम्। तत्र यागैश्च विविधैः परितुष्टा महेश्वरी ॥१५०॥
हिमालयगृहे साक्षाद्भविष्यति[1] महेश्वरी। आविर्भूतां च तां तत्र दर्शिष्यथ च नान्यथा ॥१५१॥

ऋषिरुवाच—

तथेत्युक्त्वा ततो देवा नमस्कृत्य प्रजापतिम्। हिमालयतटे जग्मुर्बृहस्पतिपुरोगमाः ॥१५२॥
प्राप्य पञ्चपुरं दिव्यं पर्वतं सिद्धसेवितम्। समाहूय सरिच्छ्रेष्ठां क्षीरसागरगामिनीम् ॥१५३॥
महेन्द्रप्रमुखाः सर्वे यज्ञारम्भं प्रचक्रमुः। तत्र पर्वतमध्ये वै विश्वकर्मा महाबलः ॥१५४॥
कैलासाख्यं समाश्रित्य पर्वतं सुरसेवितम्। पुराणि चातिदिव्यानि विरच्य मुनिसत्तम ॥१५५॥
धनधान्यादिधातूनां फलवस्त्रादीनामपि। स राशीन्कल्पयामास विश्वकर्मा तपोधन ॥१५६॥
दृष्ट्वा पुराणि दिव्यानि त्वष्ट्रा विरचितानि च। गन्धर्वनगराकारैः प्राकारैः शोभितानि च ॥
देवगन्धर्वयक्षाश्च सिद्धविद्याधरोरगाः। प्रविश्य ते सुरम्येषु राक्षसाश्च महाबलाः ॥१५८॥

स्थानों पर हिमकणों से आच्छादित हो विद्यमान हैं। देववृन्द ! उनका जन्म 'हिमालय' के घर होगा। वहीं वे देखी जा सकती है। अन्यत्र नहीं। आप लोग हिमालय के तट पर पहुँच जायँ। वहाँ जाकर विपुल धनराशि सञ्चित कर विश्वकर्मा द्वारा यज्ञमण्डप बनवायें। यज्ञ करने से भगवती प्रसन्न होंगी। अवतीर्ण देवी का दर्शन वही करें ॥ १४७-१५१ ॥

ऋषि ने पुनः कहा—तदनन्तर सब देवों ने ब्रह्माजी का अनुमोदन कर उन्हें प्रणाम किया। वहाँ से प्रस्थित हो देवगुरु बृहस्पति को अग्रसर कर सिद्धों से सेवित 'पञ्चपुर' पर्वत पर पहुँच गए। वहाँ 'क्षीरसागर'-गामिनी श्रेष्ठ नदी का आवाहन कर 'यज्ञ' आरम्भ कर दिया। तपोधनों ! पराक्रमी विश्वकर्मा ने देवों से सेवित 'कैलास' का आश्रय ले 'पांच पुरों' की रचना की। वहीं धन, धान्य, फल, वस्त्र तथा धातुओं की राशि सम्पादित की। विश्वकर्मा द्वारा विरचित गन्धर्व नगर[2] के समान आकार-प्रकार वाली उस पुरी को देखकर देव,

---

१. 'जनिष्यति'—'ख'।

२. महाभारत (आदि पर्व १२५·३५) के अनुसार नगर अथवा ग्राम आदि के ऐसे भाग को 'गन्धर्व-नगर' कहा जाता है, जो गगन या भूमि में दृष्टिदोष से दीख पड़ता है। गरमी के मौसम में जब मरुस्थल या समुद्र में वायु की तह का घनत्व उष्णता के कारण असमान हो जाता है, तब प्रकाश की गति के विच्छेद से अन्य नगर, ग्राम, वृक्ष आदि का प्रतिबिम्ब आकाश में पड़ता है और कभी-कभी उस आकाशीय प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब उलट कर पृथ्वी पर पड़ता है, जिससे कभी दूर के ग्राम अथवा नगर या तो आकाश में उलटे टँगे या समीपस्थ दिखाई देते हैं। भागवत (४.१२, १५) में क्रमशः 'ध्रुव' तथा अवधूत मुनि ने इसका वर्णन करते हुए इसकी तुलना स्वप्नजगर तथा मायारचित पुर से की है—

'मन्यमानमिदं विश्वं मायारचितमात्मनि। अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥'

'प्रभूतविरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः।
क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥'
(भाग० ५०. १३, ३)।

नगरेषु महाभागा यज्ञांश्चक्रुः शिवाप्रियान् । तेषां यज्ञेषु दिव्येषु आविर्भूता महेश्वरी ॥१५९॥
स्वभागं जगृहे देवी धन्या पद्मोपमानना । ततो देवाः सगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगाः ॥१६०॥
लेभिरे परमं हर्षं निःस्वः प्राप्य यथा धनम् । प्रहर्षोत्पादनार्थाय तेषां तत्र दिवौकसाम् ।१६१।
अशरीरा ततो वाणी अन्तरिक्षादजायत । हिमालयगृहे देवी जनिष्यति न संशयः ॥१६२॥
तावद्यागं प्रकुर्वन्तु तस्मिन्क्षेत्रे दिवेश्वराः । ततः कालेन महता कुर्वन्यागाः सुदक्षिणाः ।१६३।
हिमालयगृहे देवीं सम्भूतां ददृशुः शुभाम् । एतत्ते कथितं विप्र देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१६४॥
तस्याः सन्तोषणार्थाय कल्पिता धान्यराशयः । तत्र गच्छ महाभाग पश्यतां मालिकां शिवाम्।
तर्पय स्वपितृगणान्वेणुतोयं सुशोभनम् । गमिष्यति पिता स्वर्गं तत्र ते पितरो ध्रुवम् ॥१६६॥
तत्रस्थै राक्षसंघोरैर्निहतोऽस्ति पिता तव । निहनिष्यसि तान् सर्वान् त्वमेकः पूज्य मालिकाम् ॥

व्यास उवाच—

ततो वेदनिधिर्वाक्यं श्रुत्वा तस्य महात्मनः । नमस्कृत्य महर्षि तं हिमवन्तं गिरिं ययौ ।१६८।
व्रजन्स वैद्यनाथाख्यं दृष्ट्वा क्षेत्रं तपोनिधिः । आरुरोह गिरिं पुण्यं स पञ्चपुरसञ्ज्ञकम् ।१६९।
कैलासाख्यं गिरिं दृष्ट्वा तथा पञ्चपुराणि वै । मुनिना कथितं सर्वं कृत्वा तत्र तपोनिधिः ॥
तर्पयामास पितरं वेणुरुद्रासुसङ्गमे । तर्पितस्तेन मुनिना पिता तस्य यमालयम् ॥१७१॥
हित्वा विष्णुगृहं रम्यं ययौ मुनिनिषेवितम् । सम्प्राप्य पितरं तत्र वसुधारां ततः परम् ।१७२।

दृष्ट्वा तां मालिकां देवीं ययौ शिखरवासिनीम् ।
अहोरात्रं स्थले तस्मिन् स्थित्वा सम्पूज्य मालिकाम् ॥ १७३ ॥

गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, राक्षस नाग आदि वहाँ प्रविष्ट हो गए। सभी ने अपने-अपने घरों में देवी को यज्ञभाग दिया। भगवती ने प्रकट होकर उसे स्वीकार किया। तदनन्तर गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधरादि सहित समस्त देवगण, निर्धन व्यक्ति के धन पाने के समान, प्रसन्न हुए। उनके हर्ष को प्रकट करने के लिए वहां आकाशवाणी हुई कि 'हिमालय के घर में देवी के जन्म लेने तक आप यहाँ यज्ञ करें'। तदनन्तर बहुत समय तक अच्छी दक्षिणा से सम्पन्न यज्ञ वे करते रहे। उस बीच उन्होंने 'हिमालय' के घर देवी को जन्म लेते हुए देखा। विप्रवर! मैंने तुमसे देवी की उत्पत्ति होने का उत्तम माहात्म्य सुना दिया है। साथ ही यह भी बतला दिया कि उनकी प्रसन्नता के लिए यह धन-धान्यराशि संकलित की गई थी। मुनि उससे कहते रहे—महाभाग! अतः तुम वहां जाकर 'मालिका' का दर्शन करो। वहां 'वेणुजल' में अपने पितरों का तर्पण करो। वहीं के राक्षसों' ने तुम्हारे पिता का वध किया है। 'मालिका' के पूजन करने के बाद तुम अकेले ही उन राक्षसों का वध कर सकोगे ॥ १५२-१६७ ॥

व्यासजी बोले—तपोधनों! तत्पश्चात् उस ऋषि की वाणी सुन कर 'वेदनिधि' ने मुनि को प्रणाम किया और हिमालय की ओर प्रस्थान किया। पहुँचने के मार्ग में 'वैद्यनाथ क्षेत्र' को देखकर उस पवित्र 'पञ्चपुर' पर्वत पर आरूढ़ हो गया। वहां 'कैलास'-गिरि तथा 'पांच-पुरों में पहुँच कर 'मुनि' के कथनानुसार सब कृत्य किए। 'वेणुरुद्रा' के सङ्गम में अपने पिता का तर्पण किया। इस प्रकार तर्पित होकर उसके पितर यमलोक से छुटकारा पाकर सुरसेवित वैकुण्ठधाम में पहुँच गए। अपने पिता को इस प्रकार तृप्त कर 'बसुधारा' का दर्शन कर शिखर-

स्नात्वा विष्णुजले पुण्ये ययौ देवतटं ततः । त्रयस्त्रिंशद्देवगणान् सम्भाव्य स महामतिः ।१७४।
प्राप्यानुज्ञां महादेव्या राक्षसाख्यं पुरं ययौ । ननाद सुमहानादं तत्र गत्वा महाबलः ।।१७५।।
तत्र नादं विनिश्रुत्वा राक्षसाः पुरवासिनः । सशङ्काः प्रययुस्तत्र यत्र वेदनिधिः स्थितः ।१७६।
ततो वेदनिधिः सर्वान्प्रोवाच राक्षसाधमान् । युष्माभिर्निहतोऽरण्ये पिता मम निशाचराः ।।
फलं तस्य समस्तं तु मया विनिहता रणे । इत्युक्त्वा ब्राह्मणीपुत्रः खड्गमुत्थाय वेगवान् ।१७८।
जघान राक्षसान् घोरान्नानायुद्धविशारदान् । हतेषु सर्वसैन्येषु ब्राह्मणेन महात्मना ।।१७९।।
ततस्तु राक्षसो घोरः कुम्भकर्णात्मजात्मजः । गदामादाय वेगेन ययौ सङ्ग्राममलालसः ।।१८०।।
ततोऽभूत्तुमुलं युद्धं द्विजराक्षसमुख्ययोः । न तयोरन्तरं कश्चिद्ददृशे भीमवेगयोः ।।१८१।।
व्याघ्राविव विनर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् । कदाचिद्युध्यतस्तत्र ब्राह्मणो महतीं गदाम् ।१८२।
खड्गेन शितधारेण चिच्छेद सुमहाबलः । विसृज्य स गदां छिन्नां मायामाश्रित्य राक्षसीम् ।।
बद्ध्वा तं ब्राह्मणीपुत्रं चिक्षेप धरणीतले । बद्धोऽपि मालिकां देवीं संस्मरन् प्रियसत्वरः।१८४।
युयुधे तेन घोरेण राक्षसेन महाबलः । पुनरेवासुरीं मायां कृत्वा बद्ध्वा च तं द्विजम् ।।१८५।।
चिक्षेप शारदामध्ये यावत्तं स महाबलः । तावत्तमसिमुद्यम्य स्मृत्वा तां मालिकां द्विजः ।१८६।
जहार तच्छिरः कायात् सकिरीटं सकुण्डलम् । तं निहत्य महावेगं तथान्यान् राक्षसाधमान् ।।
मालिकायाः प्रभावेण प्रययौ निजमन्दिरम् । तत्र लेभे सुविपुल धनं देव्याः प्रभावतः ।।१८८।।
दारां तथात्मतुल्यां वै तथैव तुरगान् गजान् । एवं देव्याः प्रभावेण स द्विजो मुनिसत्तमाः ।१८९।
ऐश्वर्यमतुलं लेभे हत्वा तान् राक्षसान् बलात् ।।१९०।।
यश्चैनां कथयेन्मर्त्यः शृणुयाद्वाप्यभीष्टदाम् । महादेव्या विचित्रार्थां स पापेभ्योऽपि मुच्यते ।१९१।

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मालिकामाहात्म्ये द्वासप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

वासिनी 'मालिका' के समीप पहुँच गया । देवी के स्थल में एक दिन-रात व्यतीत कर 'मालिका' की यथाविधि पूजा एवं पवित्र 'विष्णुजल' में स्नान करने के उपरान्त वह 'देवतट' की ओर बढ़ा । वहां तेतीस करोड़ देवों को प्रणाम कर 'महादेवी' की अनुज्ञा प्राप्त कर 'राक्षसपुर' पहुँच गया । वहां जाकर घोर शब्द करने लगा । राक्षसों ने उस कोलाहल को सुना । वे पुरवासियों समेत वेदनिधि के समीप आ गए । तब उन राक्षसों को सम्बोधित करते हुए उसने बतलाया कि तुम लोगों ने मेरे पिता का वध किया है, अतः रण में तुम्हारा विनाश होगा । यह कहते हुए ब्राह्मणपुत्र ने खड्ग उठाकर प्रहार करते हुए युद्ध में निपुण उन राक्षसों का अन्त कर दिया । राक्षस-सेना को नष्ट होता देखकर कुम्भकर्ण का पौत्र गदा लेकर युद्ध करने वहाँ आया । उनके परस्पर युद्ध में कोई दूसरा व्यक्ति उनके समान नहीं दिखाई दिया । परिणामतः ब्राह्मण ने अपने खड्ग की धार से राक्षस की गदा काट दी । दो व्याघ्रों की तरह लड़ते हुए इनके युद्ध में एक बार राक्षस ने वेदनिधि को बाँध कर जमीन पर गिरा दिया । किन्तु वह 'मालिका' देवी का ध्यान कर पुनः खड्ग उठाकर युद्ध करने लगा । फिर राक्षस ने मायावश उसे 'शारदा' में फेंक दिया । पुनः वेदनिधि ने तलवार उठाकर देवी की कृपा से किरीट-कुण्डल सहित उसकी गर्दन काट दी । उसे तथा सब राक्षसों को नष्ट कर वह ब्राह्मण देवी की कृपा से अपने घर

१७३

ऋषय ऊचुः—

शारदायाः समुत्पत्तिं कथयस्व तपोधन। राक्षसस्य महायुद्धे या त्वया कथिता शुभा ॥१॥

व्यास उवाच—

या पुण्या शारदा नामा सरिच्छ्रेष्ठा मयोदिता। अघकोटिविनाशाय प्रादुर्भूता महानदी ॥२॥
दिव्ये सरसि लङ्काख्ये पौलस्त्यजनसेविता। ब्रह्मलोकात्समाहूता रावणस्य हितार्थिना ॥३॥
महर्षिणा पुलस्त्येन शारदा पुण्यवाहिनी। कैलासस्य तटे रम्ये आविर्भूता सरिद्वरा ॥४॥
रावणाख्यं ह्रदं पुण्यं प्रविवेश सुपुण्यदा। तस्याभि रावणो रक्षश्चक्रे दिव्यं सरोवरम् ॥
प्रपूर्य तत्र मध्ये वै लिङ्गं स्थाप्य महाबलः। अर्चयित्वा शिवं शान्तं पुलस्त्यं च महामतिः॥६॥
चक्रे सरोवरं दिव्यं पौलस्त्यजनसेवितम्। दशयोजनविस्तीर्णं योजनं द्वादशायतम् ॥७॥
निवस्य सरसि दिव्ये रावणाद्या महाबलाः। शिवं समर्चयामासुर्वरदं लोकपूजितम् ॥८॥
वेदमाता जगद्धात्री सावित्री लोकपावनी। ब्राह्मणानामनुज्ञां सा प्राप्य चाभूत् सरिद्वरा ॥९॥
महर्षिणा पुलस्त्येन प्रार्थिता सत्यदर्शिनी। यत्र दिव्ये सरसि सा प्रविष्टाऽस्ति तपोधनाः ।१०।
तस्मान्निष्कासयामास गुप्तमार्गेण शारदाम्। विभीषणो महाभागो लोकानां पावनाय वै ॥

को वापस हो गया। वहाँ उसे भगवती की कृपा से अपार सम्पत्ति मिली। अपने अनुरूप पत्नी तथा घोड़े एवं गायें मिलीं। इस प्रकार देवी के प्रसाद से वह ऐश्वर्यवान् हो गया। उसने अपने बल से राक्षसों का विनाश किया। तपोधनों! जो कोई इस विचित्र कथा को सुनेगा या पढ़ेगा वह ऐश्वर्यशाली हो पापों से विमुक्त हो जायगा ॥ १६८-१९१ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'मालिका'-माहात्म्य नामक
एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

ऋषियों ने पूछा—तपोधन! आपने राक्षस-युद्ध के सन्दर्भ में 'शारदा' नदी का उल्लेख किया है। उसका भी वर्णन करें ॥ १ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों! मैंने जिस पवित्र 'शारदा' नदी का उल्लेख किया है, वह 'पुलस्त्य' वंश द्वारा सेवित 'लंकासर' से पापों के विनाश करने के लिये ही प्रादुर्भूत हुई है। महर्षि 'पुलस्त्य' ने उसका आवाहन किया था। 'कैलास' की रमणीय तलहटी पर इसका प्रादुर्भाव हुआ है। तत्पश्चात् यह 'रावणह्रद' में प्रवेश कर गई। इसके जल से ही 'रावणह्रद' भरा गया। भरने पर उसके मध्य बली रावण ने 'शिवलिङ्ग' स्थापित किया। तदनन्तर रावण ने भगवान् 'शङ्कर' तथा महर्षि 'पुलस्त्य' की पूजा की। वह सरोवर दस योजन चौड़ा और बारह योजन लम्बा है। इस पवित्र 'सरोवर' के समीप निवास कर 'रावण' आदि बलशाली राक्षसों ने वरद शङ्कर की अभ्यर्थना की। तब वेदमाता जगद्धात्री 'सावित्री' ने नदी का रूप धारण किया। तपोधनों! महर्षि पुलस्त्य से प्राथित होकर वही उस ह्रद में

निःसृतां शारदां ज्ञात्वा रावणोऽपि महामनाः । लङ्कानिवासिभी रक्षैः सह स्नात्वा महाबलः ।
स तस्मिन्निजनामाख्ये सरसि मुनिसत्तमाः । राक्षसाँल्लाङ्गलिं पुण्यं शिवपार्षदमग्रणीम् ।।१३।।
संस्थाप्य रक्षणे तस्य विभीषणात्मजात्मजम् । स लङ्कां प्रययौ हृष्टस्तत्राराध्य महेश्वरम् ।।
यतः स लाङ्गलिस्तेन सरसस्तस्य रक्षणे । विरोपितो ह्रदे लोकाः प्रोचुर्लाङ्गलिसञ्ज्ञकम् ।१५।
यस्माल्लङ्केश्वरस्तत्र सह लङ्कानिवासिभिः । स्नानं चक्रे महातेजा लङ्काख्येति च गीयते ।१६।
लङ्काख्ये सरसि स्नानं यः करोति हि मानवः । स सावित्र्याः प्रसादेन प्राप्नुयाद् ब्रह्ममन्दिरम् ।
यो लङ्कासरसि स्नात्वा मानसं याति मानवः । स्वर्गस्थाः पितरस्तस्य च्यवन्ते नात्र संशयः ।
मानसे सरसि स्नात्वा दृष्ट्वा शूलगुहां शुभाम् । सावित्र्याश्च महामूले स्नात्वा दृष्ट्वा च पर्वतम् ।
कैलासं रुद्रकन्याभिः सेवितं सुमनोहरम् । लङ्काख्ये सरसि स्नानं कर्तव्यं धर्मनिश्चये ।।२०।।
मानसे सरसि स्नात्वा यो लङ्कासरसान्तरे । निमज्जति महाभागाः स याति शिवमन्दिरम् ।।
मुण्डनं चोपवासं च कृत्वा तत्र पितृक्रियाम् । विधाय यो महादेवमुपसर्पति मानवः ।।२२।।
देवं तं ह्रदमध्यस्थं शङ्करं रावणेश्वरम् । कुलानां शतमुत्तार्य स याति हरिमन्दिरम् ।।२३।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे लङ्कासरमाहात्म्ये त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

प्रविष्ट हो गई। वहाँ से संसार को पवित्र करने के हेतु विभीषण ने गुप्त मार्ग से 'शारदा' को बाहर निकाल दिया। 'शारदा' को बाहर निकला हुआ जानकर 'रावण' ने सब लङ्कावासियों के साथ स्नान किया। फिर उसने अपने नाम से अङ्कित उस सरोवर की रक्षा के लिए राक्षसों को तथा शिव पार्षदों के अग्रणी विभीषण के पौत्र 'लाङ्गलि' को वहाँ प्रतिष्ठित कर दिया। फिर वह शिव की स्तुति कर लङ्का वापस चला गया। 'लाङ्गलि' के रक्षक होने के कारण उस सरोवर को लोग 'लाङ्गलिह्रद' भी कहने लगे। इसके साथ ही लङ्का-निवासियों के स्नान करने के कारण उसे 'लङ्कासर' भी कहा गया। मुनिवरो! 'लङ्कासर' में स्नान करने के पश्चात् 'मानसरोवर' में स्नान करना विहित नहीं है। ऐसा करने से स्वर्गस्थ पितरों का नरक-वास हो जाता है। 'मानसरोवर' में स्नान करने के बाद 'शूलगुहा' में स्नान तथा रुद्रकन्याओं से सेवित 'कैलासपर्वत' का दर्शन कर 'लङ्काह्रद' में स्नान करना उचित है। 'मानसरोवर' में स्नान करने के बाद 'लङ्कासर' में स्नान करने वाला व्यक्ति 'शिवलोक' में प्रतिष्ठित होता है। वहाँ पर जो मुण्डन, उपवास तथा श्राद्धादि कर भगवान् 'शङ्कर' के पास जा ह्रदमध्यस्थ 'रावणेश्वर' का दर्शन करता है, वह अपने सैकड़ों कुलों का उद्धार कर 'वैकुण्ठ-धाम' में चला जाता है।। २-२३ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'लंकासर'-माहात्म्य नामक
एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

१७४

व्यास उवाच—

लङ्कामानसयोर्मध्ये विभीषणह्रदं स्मृतम् । तत्र स्नात्वा च मनुजः प्रतर्प्य च पितृंस्तथा ।।१।।
विभीषणेश्वरं देवं पूज्य याति हरेर्गृहम् । कैलासाधित्यगां तत्र प्राप्य शाकुन्तलेश्वरम् ।।२।।
तत्र[1] बिन्दुचयं दिव्यं मानसे सरनायकम् । ह्रदं योजनविस्तीर्णं दिव्यं गव्यूतिविस्तृतम् ।।३।।
मानसाद् गूढमार्गेण समानीतैर्जलैः शुभैः । पूरितं चक्रवाकैश्च सेवितं सुमनोहरम् ।।४।।
तत्र स्नात्वा च मनुजो ह्रदे शाकुन्तलाह्वये । विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।५।।
लङ्कामानसयोर्मध्ये षड्विंशद्ह्रदनायकाः । सन्ति देवविमुख्यानां पुण्यदाः पापकर्मणाम् ।।६।।
गूढमार्गैः समानीतैः पूरिता मानसोद्भवैः । कैलासाभिमुखो भूत्वा तेषु स्नात्वा च मानवाः ।।
ध्रुवस्य पदवीं दिव्यां प्राप्नुवन्ति न संशयः । तेभ्यस्तु शारदा दिव्या तोयवाहा समाययौ[2] ।८।
प्रवाहैर्बहुभिः पूर्णा शारदा सुविशारदा । शिखरेभ्योत्तरे भागे बभूव सरितोत्तमा ।।९।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे (शारदावर्णने) चतुःसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! 'लङ्काह्रद' और 'मानसह्रद' के बीच में 'विभीषण-ह्रद' है । वहां स्नान एवं तर्पण कर तथा 'विभीषणेश्वर' का पूजन करने से 'विष्णुलोक' प्राप्त होता है । फिर वहीं 'कैलास' की 'अधित्यका' में 'शाकुन्तलेश्वर' में जाकर उसके समीपस्थ 'बिन्दुसर' नामक सरोवर में जाना चाहिये । वह सरोवर एक योजन चौड़ा तथा दो कोस लम्बा है । उसमें गुप्त मार्ग द्वारा 'मानसरोवर' से जल आता है । वहाँ चक्रवाक पक्षी दिखाई पड़ते हैं तथा वे देखने में सुन्दर भी है । फिर 'शाकुन्तलसर' में स्नान करने पर 'वैकुण्ठधाम' मिलता है । 'लङ्का' और 'मानसरोवर' के मध्य परम पवित्र एवं पापनाशक छब्बीस (२६) 'ह्रद' हैं । उन सब में भीतर से ही मानसरोवर से जलमार्गों द्वारा पानी भरा जाता है । जो मनुष्य 'कैलास' की ओर मुख कर इन सरोवरों में स्नान करते हैं, उन्हें 'ध्रुव'लोक में स्थान मिल जाता है । इन सरोवरों से जल ग्रहण कर शिखरों के (नीचे) उत्तरी भाग में 'शारदा' एक बड़ी नदी का रूप धारण कर लेती है ।। १-९ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शारदामाहात्म्य' नामक
एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'चक्रे बिन्दुचयम्'—'ख' । २. 'समागता' इति पाठान्तरम् ।

व्यास उवाच—

शंकरं शारदामूले स्नात्वा सम्पूजयेत्सुधीः । यत्र तीर्थे स वरदो ददाति वरमुत्तमम् ॥१॥
तत्र सन्तर्प्य मनुजः अभीष्टफलमश्नुते । तस्माददूरे चक्राख्ये तीर्थे स्नात्वा च मानवः ॥२॥
यत्र चक्रेश्वरं दृष्ट्वा दत्तात्रेयो महातपाः । ह्लदं चक्रे सुगम्भीरं दिव्यं क्रोशायतं शुभम् ॥३॥
तत्र सम्पूज्य चरणौ दत्तात्रेयस्य शोभनौ । विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥४॥
ततः कुमुद्वती नाम कुमुदपर्वतसम्भवा । शारदासङ्गमे दिव्ये संमिलन्मुनिसत्तमाः ॥५॥
पपात कौमुदी यत्र सङ्ग्रामे तारकामये । पक्षे पक्षे समुद्धृत्य यस्मात्तां कौमुदीं शुभाम् ॥६॥
समं स्नानं प्रकुर्वन्ति महेन्द्राद्या दिवौकसः । तत्र स्नात्वा च मनुजश्चन्द्रलोके महीयते ॥७॥
दक्षिणे शारदायास्तु गिरिः पञ्चपुरोऽस्ति वै । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि यत्र सन्ति गुहाः शुभाः ॥
गणगन्धर्वमुख्यानां निवासाय प्रकल्पिताः । महात्मना विश्वसृजा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणा ॥९॥
निवस्य तासु सर्वासु सिद्धविद्याधरोरगाः । सेवन्ते मानसं दिव्यं सुरगन्धर्वसेवितम् ॥१०॥
ये तस्मिन् पर्वतवरे यान्ति ते शाश्वतीं गतिम् । तस्मात्पम्पा सरिच्छ्रेष्ठा सिद्धानां सुखवर्धिनी ।
ययौ शारदां पुण्यां तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् । सावित्रीसङ्गमे पुण्ये कर्णाली सरितां वरा ।१२।
कर्णेन कुरुमुख्येन समाहूताऽलिपर्वतात् । आययौ तीर्थसाहस्रैः पूरिता शारदा नदी ॥१३॥

ऋषय ऊचुः—

कर्णः कुरूणां प्रवरः कस्मात्तामुत्तमां नदीम् । शारदासङ्गमे दिव्ये समाहूय चकार ह ॥१४॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! 'शारदा' के मूल में स्नान कर उसी तीर्थ में वरद शिव का पूजन करने पर मनोवाञ्छित फल मिलता है । उसके समीप ही 'चक्रतीर्थ' है । वहाँ स्नान कर 'चक्रेश्वर' का दर्शन करना चाहिए । यहीं पर 'दत्तात्रेय' ने एक कोस की परिधि में एक 'ह्लद' का निर्माण किया था । वहाँ दत्तात्रेय के चरणों का पूजन करने से मानव जन्मबन्धन से छूट कर विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है । तदनन्तर 'कुमुद-पर्वत' से उत्पन्न 'कुमुद्वती' नाम की नदी 'शारदा' से मिलती है । सत्ययुग में 'तारकामय' युद्ध हुआ था और जहाँ कौमुदी गिरी थी, वहीं महेन्द्रादि देवों ने आह्वान किया था । देवों के नहाने से पवित्र स्थान पर स्नान करने से मानव को 'चन्द्रलोक' मिलता है । 'शारदा' के दक्षिण में 'पञ्चपुर' पर्वत है । उसमें ३३ हजार गुफायें हैं । उसकी रचना विश्वकर्मा ने प्रमुख गणों तथा 'गन्धर्वों के निवास हेतु की थी । उन सब गुहाओं में सिद्ध, विद्याधर तथा नाग आदि रह कर 'मानसरोवर' की सेवा करते हैं । जो उस श्रेष्ठ पर्वत पर आरूढ़ होते हैं, उन्हें परमगति प्राप्त होती है । यहाँ से 'पम्पा' नदी निकल कर 'शारदा' में मिलती है । उसमें स्नान करने से स्वर्ग मिलता है । आगे चलकर 'शारदा' में 'कर्णाली' नदी सङ्गमित होती है । उसे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ 'कर्ण' ने आवाहित किया था । असंख्य तीर्थों से सेवित होती हुई वह नदी 'शारदा' में आकर मिल जाती है ॥ १-१३ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—तपोधन ! कुरुश्रेष्ठ 'कर्ण' ने 'शारदा' के सङ्गम में किस कारण 'कर्णाली' का आह्वान किया था ? ॥ १४ ॥

व्यास उवाच—

पर्वतीयान्नृपान्सर्वान् विजित्य सूतनन्दनः। मुरूंश्च मुरलांश्चापि तथा हूणान्महाबलान् ॥१५॥
गौरीगिरिं समागत्य दृष्ट्वा पुण्यं सरोवरम्। दिननाथं स पितरमुपतस्थे समाहितः ॥१६॥
ततः सूर्यो जगच्चक्षुरनुकम्प्याथ भूसुराः। मत्तश्चाभीप्सितं कामं याचयस्वेति भूयशः ॥१७॥
उवाच कर्णं कर्णान्तिमायतायतलोचनम्। सोवाच मानसात्तोयं मह्यं चात्र प्रदर्शय ॥१८॥
निःसार्य गूढमार्गेण यदि तेऽनुग्रहोऽस्ति वै। गौरीपर्वतसंलग्नात् स तत्रैवालिपर्वतात् ॥१९॥
तथेत्युक्त्वा स भगवान् मानसोत्थां महानदीम्। तस्मै प्रदर्शयामास दिननाथो जगत्पतिः ॥२०॥
प्रसादाद्दिननाथस्य प्राप्य तामुत्तमां नदीम्। स्नात्वा च प्रययौ हृष्टो नगरं गजसाह्वयम् ॥२१॥
कर्णेन प्रार्थितां दिव्यामलिपर्वतसम्भवाम्। ततः सिद्धगणाः प्राहुः कर्णालीं ते सरिद्वराम् ॥२२॥
शारदासङ्गमे दिव्ये प्रययौ सा सरिद्वरा। मूले तस्यालिसंज्ञो वै पर्वतोऽस्ति सुशोभनः ॥२३॥
स्वर्णेन रजतेनापि खचितो मेरुसन्निभः। अर्चयित्वा महादेवं तमारुह्य महेश्वरम् ॥२४॥
निमज्य तत्र कर्णाल्यां नरः प्राप्नोति शाश्वतीम्। गौरीपर्वतसम्भूता गौरी नामा सरिद्वरा ॥
विद्यते तां च संस्नात्वा शिवलोकमवाप्यते। गौरी चापि कर्णाली सङ्गमे यत्र सङ्गते ॥२६॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च देवो भवति मानवः। मुण्डनं चोपवासं च तीर्थश्राद्धं तथैव च ॥२७॥
दक्षिणे कन्दरावासां पूजयित्वा महेश्वरीम्। गौरीगुरुगिरेः पार्श्वे दत्त्वा दानं द्विजेषु वै ॥२८॥
यो याति मानसं रम्यं कुलकोटिशतान्वितः। स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२९॥
कर्णाली शारदा चैव सङ्गमैर्यत्र सङ्गते। जीवेद्वर्षशतं साग्रं तत्र स्नात्वा च मानवः ॥३०॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों! पर्वतीय राजाओं, मुरु, मुरल तथा हूणों को जीत कर कर्ण 'गौरीपर्वत' पर पहुँचे। तब उन्होंने पवित्र सरोवर को देखकर 'सूर्य' का ध्यान तथा उपस्थान किया। तदनन्तर 'सूर्य' ने कृपा कर कहा कि मुझ से अभीष्ट वर माँगो। तब कर्ण ने सूर्य भगवान् से यह कहा कि यदि आप मुझ पर कृपालु हैं तो 'मानसरोवर' से गुप्तमार्ग द्वारा जल निकाल कर दिखा दें। तब 'सूर्य' ने 'तथास्तु' कहकर 'गौरी-पर्वत' से संलग्न 'अलिपर्वत' से नदी को निकाल कर दिखा दिया। इस प्रकार सूर्य भगवान् की कृपा से कर्ण ने उत्तम नदी को प्राप्त किया। उसमें स्नान कर प्रसन्नमना कर्ण इन्द्रप्रस्थ को वापस हो गए। 'कर्ण' के द्वारा प्रार्थित 'अलिपर्वत' से प्रादुर्भूत नदी को 'सिद्ध' लोगों ने 'कर्णाली' नाम से प्रसिद्ध किया। वह श्रेष्ठ नदी 'शारदा' नदी में संगमित होती है। इसका मूल स्थान 'अलिपर्वत' है। वह सोने और चांदी से मढे हुए 'सुवर्णाचल' की तरह सुशोभित है। इस पर आरूढ़ होकर मनुष्य परमगति को प्राप्त होता है। फिर 'गौरी' पर्वत से निकलने वाली 'गौरी' नदी है। उसमें स्नान कर मानव शिवलोक में प्रतिष्ठित होती है। 'गौरी-कर्णाली' के संगम में स्नान तथा जलपान करने पर मानव देवत्व प्राप्त कर लेता है। वहाँ निवास कर स्नान, उपवास तथा तीर्थश्राद्ध करने का अक्षय्य फल है। 'गौरी' के दाहिनी ओर गुहा में स्थित 'महेश्वरी' का पूजन कर 'हिमालय' के समीप ब्राह्मणों को दान देकर जो 'मानसरोवर' जाता है, वह अपने असंख्य कुलों से युक्त हो 'विष्णुलोक' पहुँच जाता है। 'कर्णाली'-शारदा' के सङ्गम में स्नान कर मानव शतायु होता है। मुनिवरों! तदनन्तर नल पर्वत से 'लम्बसीमा' नदी

ततस्तु लम्बसीमाख्यानलपर्वतसम्भवा। शारदासङ्गमं दिव्यं प्रययौ मुनिसत्तमाः ॥३१॥
यस्यास्तटं च सम्पूज्य ब्रह्महत्यादिकोटयः। विलीयन्ते न सन्देहो हिमानीव दिनोदये ॥३२॥
यत्र प्रजापतिर्दक्षः सीमां दृष्ट्वा सुशोभनाम्। लम्बाख्यां[1] वर्तुलां दिव्यां वाजिमेधं चकार ह ॥
तत्र पुण्यस्थले गत्वा सीमां दृष्ट्वा च शोभनाम्। मुण्डनं चोपवासं च तीर्थश्राद्धं करोति यः ॥
लम्बसीमासरिन्मध्ये अर्चयित्वा महेश्वरम्। स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥३५॥
शारदा लम्बसीमा च सङ्गमे यत्र सङ्गते। तत्र स्नात्वा ततो गच्छेद्दिव्यां सत्यनदीं शुभाम् ॥
स्नात्वा सत्यनदीं पुण्यां गच्छेत्त्रेतानदीं शुभाम्। शारदासङ्गमगतां द्वापराख्यां नदीं ततः ।३७।
ततः कलियुगाख्यां च नदीं गत्वाऽथ मानवः। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो जायते नात्र संशयः ॥३८॥
एतासु स्नानमात्रेण नरः सत्यपदं व्रजेत्। नदी च सत्यसञ्ज्ञा वै विद्यते मुनिसत्तमाः ॥३९॥
मध्ये तस्या महापुण्यो विद्यते वसुपर्वतः। तस्मिन् सन्ति गुहाः पुण्याः षड्विंशादधिकाः शुभाः ॥
तासु सिद्धगणाः सर्वे निवसन्ति यतव्रताः। तमारुह्य गिरिश्रेष्ठं सिद्धान् यो भावयेच्छुभान् ।४१।
स सिद्धिं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा। एतासां सङ्गमान् हित्वा यत्रोमा सरितां वरा ॥
संमिलच्छारदां दिव्यां सर्वलोकमलापहाम्। तत्र मध्ये महातीर्थं बिन्दुमाधवसञ्ज्ञकम् ॥४३॥

'शारदा' में मिलती है। उसके तीर-स्पर्श करने पर भी सूर्योदय होने पर हिम के पिघलने की तरह करोड़ों पापों से छुटकारा मिल जाता है। जहाँ दक्षप्रजापति ने 'लम्बसीमा' और 'वर्तुला' का दर्शन कर 'अश्वमेध'[2] यज्ञ किया था। उस पुण्य-स्थान पर जाकर 'सीमा' को दृष्टिगोचर करते हुए मुण्डन, व्रत, तीर्थश्राद्ध एवं 'लम्बसीमा' तथा 'वर्तुला' नदियों में भगवान् 'शङ्कर' की पूजा करने वाले व्यक्ति करोड़ों कुलों का उद्धार कर विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। 'शारदा-लम्बसीमा' के सङ्गमस्थल पर स्नान करने के बाद 'शारदा' के साथ 'सत्य', 'त्रेता', 'द्वापर' तथा 'कलि' नदियों के सङ्गम स्थलों पर स्नान करने से 'सत्यलोक' प्राप्त होता है। वहीं 'सत्य' नदी के मध्य पवित्र 'वसु' पर्वत है। उसमें ३६ से अधिक गुहायें हैं। उनमें व्रताचरण करने वाले सिद्धजनों का आवास है। वहाँ रहने वाले सिद्धों का पूजन करने से सिद्धि प्राप्त होती है। इन सङ्गमों से हट कर 'उमा' नदी 'शारदा' के साथ सङ्गमित होती है। उसके मध्य

---

१. कुमार कार्तिकेय की एक अनुचरी मातृका का नाम भी महाभारत (शल्य० ४६·१८) के अनुसार 'लम्बा' विदित होता है।

२. यह एक विशिष्ट यज्ञ है। इस याग को सार्वभौम क्षत्रिय राजा किया करते थे। अतः 'अश्वमेध' का दूसरा सार्थक नाम 'राजयज्ञ' भी है। यह प्रायः एक वर्ष में समाप्त होता था। इस यज्ञ में घोड़े के मस्तक पर 'जयपत्र' बाँध कर संसार में घूमने के लिए छोड़ दिया जाता है। उसकी रक्षा के लिए पीछे से चार सौ शूरवीर योद्धा उसका अनुसरण करते थे। मार्ग में घोड़े के अधिष्ठाता का आधिपत्य जिसे स्वीकार नहीं होता था, वह उसे बाँध लेता था और युद्ध करता था। अश्व बाँधने वाले को युद्ध में हरा कर सेना घोड़ा वापस ले आगे बढ़ती थी। सारे भूमण्डल से घोड़े के वापस होने पर यज्ञ सम्पादित किया जाता था। राम तथा युधिष्ठिर के यज्ञ प्रसिद्ध हैं। वाराणसी का 'दशाश्वमेध घाट' इसी यज्ञ के कारण प्रसिद्ध है। अश्वमेध यज्ञ—वाराणसी, कुरुक्षेत्र, पुष्कर प्रभृति-तीर्थ स्थानों में करना प्रशस्त माना गया है। सर्वप्रथम इस याग को प्रजापति ने किया था।

स्नात्वा तत्र पितॄन् तर्प्य सूर्यकोटिप्रभो भवेत् । समर्च्य तत्र देवेशं बिन्दुमाधवसञ्ज्ञकम् ।।४४।।
गच्छेत्सीतापदे दिव्ये स्नात्वा रम्यां महापुरीम् । खेचराणां महापुण्यां रचितां विश्वकर्मणा ।।
खेचराख्ये महातीर्थे स्नात्वा सन्तर्पयेत् पितॄन् । तर्पयित्वा पितृगणान् देवं पशुपतिं व्रजेत् ।४६।
विरच्य यस्य प्रतिमां विश्वकर्मा तपोधनाः । कर्तव्यमपरं लोके न मेने शिल्पिभूषणः ।।४७।।

ऋषय ऊचुः—

खेचराणां पुरी रम्या त्वयोक्ता द्विजसत्तम । सा केन हेतुना तत्र रचिता विश्वकर्मणा ।।४८।।
निवासं वाऽकरोत्तत्र कथं देवो महेश्वरः ।।

व्यास उवाच—

विश्वकर्मा महाभागाः शिल्पिदेवपतेः खलु । कारुनीतिविशेषज्ञः[1] कदाचित्त्रिदिवेश्वरम् ।४९।
पप्रच्छ किं करोमीति प्रीतिमान् प्रियदर्शनः । सोवाच देवदेवस्य गृहं मे प्रियवर्धनम् ।।५०।।
कुरुष्व वचनान्मेऽद्य समाश्रित्य सरोवरम् । खेचराणां च देवानां कर्तव्या तत्र शोभना ।।५१।।

'बिन्दुमाधव' तीर्थ है। वहाँ केवल स्नान तर्पणादि करने पर मनुष्य सूर्य के समान कान्तियुक्त हो जाता है। वहीं पर 'बिन्दुमाधव' का पूजन कर दिव्य 'सीता' नदी के निचली ओर पहुँच जायें। तब 'विश्वकर्मा' द्वारा रचित आकाशचारी देवताओं की रमणीय महापुरी के 'खेचर' नामक महातीर्थ में स्नान एवं पितृ-तर्पण कर 'पशुपति'[2] भगवान् के समीप चला जाय। वहाँ विश्वकर्मा ने उनकी प्रतिमा बनाकर यह माना कि अब मुझे कोई दूसरी प्रतिमा नहीं बनानी है।१५-४७।

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मर्षे ! आपने 'खेचरपुरी' के बारे में कहा है। उसे विश्वकर्मा ने किस हेतु बनाया है ? भगवान् शङ्कर ने वहां किस कारण निवास किया है ? ।। ४८ ।।

व्यासजी ने उत्तर दिया—महाभागों ! किसी समय शिल्पविशेषज्ञ 'विश्वकर्मा' देवराज 'इन्द्र' के पास गए और पूछा कि मैं किसकी प्रतिमा गढ़ूँ ? इसके उत्तर में इन्द्र ने कहा कि मेरी आज्ञा से 'सरोवर' की कल्पना कर देवाधिदेव के सुन्दर घर की रचना करो। तुम्हारे द्वारा निर्मित नगरी को देखने के लिए मैं देवों सहित वहाँ आऊँगा। इस प्रकार कह कर देवराज

---

१. 'चारुनीतिविशेषज्ञः'—इति पाठान्तरम् ।

२. 'शैव'दर्शन और 'पाशुपत'दर्शन में जीवमात्र 'पशु' कहे गए हैं। सब जीवों के अधिपति 'शिव' ही हैं। 'पशुपति' की पाँचवी मूर्ति (तनु) 'अग्नि' है। इसलिए उसमें अपवित्र वस्तु नहीं डालनी चाहिए। अपने पैर भी नहीं तपाने चाहियें। अग्निरूपा इस मूर्ति की पत्नी 'स्वाहा' है और 'स्कन्द' इसके पुत्र हैं। 'पशुपतिनाथ' का सुप्रसिद्ध मन्दिर 'काठमाडौ' (नेपाल) में है। वहाँ शिवरात्रि के दिन बड़ा मेला लगता है। समग्र भारत से यात्री उस दिन वहाँ पहुँचते हैं। 'नेपाल-माहात्म्य' (अध्याय १-१६) में उनकी स्थिति तथा नाम के सम्बन्ध में यह कहा गया है—'स्थितोऽहं पशुरूपेण श्लेष्मान्तकवने यतः । अतः पशुपतिर्लोके मम नाम भविष्यति ।।' इस सन्दर्भ में 'जाबाल्युपनिषद्' में वर्णित 'पशु' शब्दार्थ भी स्मरणीय है—'अहङ्काराविष्टः संसारी जीवः स एव पशुः। सर्वज्ञः पञ्चकृत्य-सम्पन्नः सर्वेश्वर ईशः पशुपतिः । के पशव इति ? पुनः स तमुवाच—जीवाः पशव उक्ताः । तत्पतित्वात् पशुपतिः । स पुनस्तं होवाच-कथं जीवाः पशव इति । कथं तत्पतिरिति । स तमुवाच—यथा तृणाशिनो विवेकहीनाः परप्रेष्याः कृष्यादिकर्मसु नियुक्ताः सकलदुःखसहाः स्वस्वामिबध्यमानाः गवादयः पशवः तथा तत्स्वामिन इव सर्वज्ञ ईशः पशुपतिः' ।

पुरी चाधिकशोभाढ्या रत्नैर्वैदूर्यपूरिता । त्वया विरचितां ज्ञात्वा पुरीं देवस्य शूलिनः ॥५२॥
देवैः सहागमिष्यामि अहं तत्र महाबलः । इत्युक्त्वा देवराजोऽसौ विवेश निजमन्दिरम् ॥५३॥
त्वष्टाऽपि प्रययौ तत्र यत्रास्ति मानसः सरः । यावत्स देवदेवस्य मापयद् भूगृहं शुभम् ॥५४॥
तावदाहाशरीरा वै सर्वलोकहिते रता । विश्वकर्मन् व्रज सौम्य इन्द्राख्यं पर्वतोत्तमम् ॥५५॥
हिमालयस्य सततं वहन्तं प्रीतिमुत्तमम् । तस्योद्देशे पुरीं रम्यां कुरु मे वचनाच्छुभात् ॥५६॥
इत्युक्त्वा विश्वकर्माणमशरीरा पुनर्ययौ । तथेत्युक्त्वा ततस्त्वष्टा गत्वेन्द्रपर्वतोत्तमम् ॥५७॥
तस्योद्देशे शिवगृहं चक्रे तोरणशोभितम् । कृत्वा शिवगृहं दिव्यं व्यरचत्पुरमुत्तमम् ॥५८॥
वैदूर्यस्तम्भविलसत्प्रतोलिभिरलङ्कृतम् । विचित्रोद्यानशोभाढ्यं नानायन्त्रोपशोभितम् ॥५९॥
ततः पशुपतेर्दिव्यां विरच्य नगरीं शुभाम् । चकार प्रतिमां त्वष्टा महापुरुषलक्षणाम् ॥६०॥
कर्तव्यमपरं किञ्चिन्न मेने तां विरच्य वै । महाकालस्य प्रतिमां महाकालोपमां ततः ॥६१॥
चक्रे देवपतेः प्रीतिं वर्धयञ्छिल्पिभूषणः । देवगन्धर्वयक्षाणां चकार प्रतिमाः शुभाः ॥६२॥
स विष्णोः प्रतिमां दिव्यां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । व्यरचत्प्रतिमे दिव्ये सर्वभूषणभूषिते ॥६३॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् । तद्वदेव विरच्याशु प्रतिमां प्रययौ गृहम् ॥६४॥
गते त्वष्टरि स्वर्लोके महेन्द्राद्या दिवौकसः । शङ्कराराधनार्थाय ययुस्तां खेचरां पुरीम् ॥६५॥
महाकालं च देवेशं समाराध्य दिवौकसः । तथा तुष्टिं महादेवीं तस्थुस्तं पुरसत्तमम्[1] ॥६६॥

अपने भवन में प्रविष्ट हो गए। तब 'विश्वकर्मा' भी मानसरोवर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर ज्यों ही उन्होंने नाप-जोख करना आरम्भ किया त्यों ही अशरीरा वाणी ने यह कहा कि 'तुम यहां से 'इन्द्र' पर्वत की ओर जाओ। वह पर्वत हिमालय का महान् प्रीतिकर है। उसके उन्नत प्रदेश में मेरे वचन से रमणीय पुरी का निर्माण करो'। यह घोषणा कर उस वाणी ने विराम लिया। इसके उत्तरस्वरूप 'तथास्तु' कह कर 'विश्वकर्मा' 'इन्द्र' पर्वत पर पहुँचे। उसके उन्नत प्रदेश में तोरणों से शोभित 'शिवसदन' की रचना की। फिर 'नगरी' (खेचरपुरी) का निर्माण किया। वह नगर 'वैदूर्यमणि के खम्भों पर आधारित वीथियों से समायुक्त हो फब्बारे छूटते हुए सुन्दर उपवनों से समाकुलित कर सब प्रकार से कलापूर्ण बना दिया गया। वहाँ सब प्रकार के लक्षणों से युक्त एक अद्भुत 'प्रतिमा' को गढ़ कर 'विश्वकर्मा' ने अपने कर्तव्य की इति श्री समझ ली। तब विश्वकर्मा ने 'महाकाल', 'देव', 'गन्धर्व' और 'यक्षों' की प्रतिमाओं को भी गढ़ा। साथ ही समस्त प्रतिमाओं को दिव्य भूषणों से विभूषित किया। जिस देवता का जैसा 'स्वरूप' और 'वाहन' होना चाहिये तदनुरूप भावों का निवेश कर विश्वकर्मा स्वर्गस्थ अपने भवन को चले गए। उनके जाने पर 'महेन्द्रादि' देव भगवान् शङ्कर की आराधना करने के लिए उस पुरी में पहुँचे। देवेश 'महाकाल' तथा 'तुष्टि' देवी की आराधना कर वे उस पुरी में वास करने लगे। विप्रवरों ! महेन्द्र को सन्तुष्ट करने की इच्छा से शिल्पि-कुशल 'विश्वकर्मा' ने जिस प्रकार इस 'खेचरपुरी' की रचना की—मैंने उसका यथार्थ वर्णन कर दिया है। 'इन्द्र-पर्वत' के निकट 'खेचरपुरी' में प्रविष्ट हो जो मानव देवदेवेश 'महाकाल' का पूजन करता

---

१. 'तस्थुस्तं पुरमुत्तमम्'—'ख'।

इत्येतत्कथितं विप्रा यथा सा खेचरा पुरी। रचिता शिल्पविज्ञेन महेन्द्रप्रियमिच्छता ॥६७॥
इन्द्रपर्वतपार्श्वे वै खेचरपुरशोभने। गत्वा यो देवदेवेशं महाकालं समर्चति ॥६८॥
न समर्थोऽस्मि माहात्म्यं वक्तुं तस्य तपोधनाः। यः स्नात्वा श्येनतीर्थे वै सावित्रीतोयमध्यगे॥
तर्पयित्वा पितृगणान् श्राद्धं कृत्वाऽथ मानवः। देवं पशुपतिं तस्या वामे देवैर्निषेवितम् ॥७०॥
समर्चति विधानेन स धन्योऽस्ति न संशयः। तीर्थे चन्द्रह्रदे दिव्ये शारदायास्तु मध्यगे ॥७१॥
खेचराणां पुरीं रम्यां पश्येद्यो मानवोत्तमः। स याति भवनं विष्णोः पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥७२॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे 'खेचरपुरी'-माहात्म्ये पञ्चसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

१७६

व्यास उवाच—

ततस्तु शारदानद्या दक्षिणेऽस्ति बलो गिरिः। दिव्य इन्द्राद्रिसंलग्नः सुरसिद्धानिषेवितः ॥१॥
तमारुह्य बलं देवं योऽर्चयेत्सप्तभिर्दिनैः। वाङ्मनःकर्मजेभ्योऽपि पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥२॥
बलकुण्डेऽपि संस्नानं यस्तत्र कुरुते नरः। तं न स्पृशेत्कलेः पापं कोपं कलुषसम्भवम् ॥३॥
तस्माद्वेत्रवती नाम नदी पुण्यजलाशया। सम्भूय शारदादिव्ये सङ्गमे प्रययौ शुभा ॥४॥
तत्र सङ्गममध्ये वै देवं वेत्रेश्वरं हरम्। योऽर्चयेद्भक्तिमान् भक्त्या स याति शिवमन्दिरम् ।५।
वामे इन्द्रगिरिस्तस्माद्विद्यते सुरसेवितः। अस्ति पर्वतमुख्यो वै स्वर्णगूढो महागिरिः ॥६॥
त्रयस्त्रिंशद्देवगणास्तस्मिन् वै पर्वतोत्तमे। समागत्य शिवं शान्तं सेवन्ते वरभूषणम् ॥७॥

है, वह धन्य है। जो व्यक्ति 'शारदा' के जलमध्य 'श्येनतीर्थ' में स्नान कर पितृकृत्य करता है तथा उसके वामभाग में 'पशुपति' का पूजन करता है, उसका जन्म सफल है। कहाँ तक कहा जाय ? 'शारदा' के मध्यस्थ दिव्य 'चन्द्रह्लद' में स्नानोपरान्त रमणीय 'खेचरपुरी' के दर्शन करने वाले मानव को बार-बार जन्म लेना नहीं पड़ता। इसके साथ ही वह 'वैकुण्ठ' लोक में वास करता है ॥ ४९-७२ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'खेचरपुरी-माहात्म्य' नामक
एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! तब 'शारदा' के दक्षिण में 'इन्द्रपर्वत' से संलग्न 'बल' पर्वत है। उस पर आरूढ़ हो सात दिनों तक 'बलदेव' का पूजन करने वाला मानव-मन, वचन तथा कर्म-जन्य-पापों से विमुक्त हो जाता है। वहाँ पर 'बलकुण्ड' में स्नान करने वाले व्यक्ति के कुल में कोप-कलुष-जन्य पाप स्पर्श नहीं कर सकते। वहाँ से 'वेत्रवती' नदी निकल कर 'शारदा' में सङ्गम करती है। सङ्गमस्थ 'वेत्रेश्वर' का पूजन करने से शिवलोक मिलता है। फिर उसके वामभाग में 'इन्द्र' पर्वत है। उसमें 'स्वर्ण' छिपा हुआ है। तेंतीसों (करोड़) देवता उस पर्वत

तत्रागत्य च पौलोमी लोकानां पावनाय वै । सरिद्रूपां विधायाशु चक्रे क्रीडामनुत्तमाम् ॥८॥
तां प्राप्य ये समर्चन्ति महेन्द्रकरपल्लवैः । महेन्द्रभवनं यान्ति मोदन्ते सह तेन वै ॥९॥
पुलोमजा इन्द्रनदी च यत्र सङ्गम्य संवाहपथं गते ते ।
तत्र ह्रदे स्नानविधिं विधाय पुलोमजां योऽर्चति पूज्यते सः ॥ १० ॥
तटे तस्यास्ति संलग्ना गुहास्ति मुनिसत्तमाः । कपिलाख्या मुनिगणैः सेविता गिरिवासिभिः ॥
ये विशन्ति च तां पुण्यां गुहां कपिलसञ्ज्ञिताम् । न ते मृत्युपथं यान्ति अब्दकोटिशतैरपि ॥
कर्मकारणसञ्ज्ञं च गुहामध्ये ह्रदं स्मृतम् । ह्रदे तस्मिन्निमज्याशु प्रविश्य च गुहां शुभाम् ।१३।
अर्चयित्वा च कपिलां न मृत्युभयभाग्भवेत् । यत्र इन्द्राद्रिसम्भूता कर्णालीसङ्गमे गता ॥१४॥
तत्र इन्द्रसरो नाम सरोऽस्ति मुनिसत्तमाः । महेन्द्रे सरसि स्नात्वा कर्णालीसङ्गमे स्थिते ।१५।
न कदाचिद्भयं घोरं प्राप्यते देवसम्भवम् । तस्माददूरे वैण्याख्ये तीर्थे स्नात्वा च मानवः ।१६।
पृथुर्वैण्यो महाभागः कल्पयित्वा ह्रदोत्तमम् । यत्र चक्रे धरा वासं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥१७॥
ह्रदे तस्मिन्प्रविष्टो यः कर्णालीं स्नाति मानवः । स भूदानफलं प्राप्य समुद्धृत्य कुलत्रयम् ॥
प्राप्नोति वासुदेवस्य लोकं ध्रुवनिषेवितम् । अङ्गाराख्यो गिरिः पुण्यस्तस्माद्वामेऽस्ति वै द्विजाः ।
अङ्गारकं महीपुत्रं तमारुह्य नगोत्तमम् । यः समर्चति भूगोलं सञ्जानाति न संशयः ॥२०॥

पर आकर शान्त शङ्कर की उपासना करते हैं। इन्द्राणी भी वहाँ आकर लोगों को पवित्र करने के लिए नदी का रूप धारण कर लहराती हुई क्रीड़ा करती हैं। 'नदी' के रूप में 'इन्द्राणी' का पूजन करने पर मानवों को इन्द्र अपने करकमलों से 'इन्द्रलोक' पहुँचाते हैं। वे लोग इन्द्र के साथ अमरावती में आनन्द करते हैं। जहाँ पर 'पुलोमजा' और 'इन्द्रा' नदी आपस में मिलती हैं, वहाँ ह्रद में स्नान करने एवं 'पुलोमजा' के पूजन करने से 'महेन्द्रभवन' में वास होता है। वहीं तट पर 'पर्वत' से संलग्न मुनिगणों एवम् इन्द्रपर्वतवासियों से सेवित 'कपिला' नाम की गुफा है। उस गुहा में प्रवेश करने वाले अमर हो जाते हैं। गुहा के मध्य 'कर्मकारण' नामक ह्रद है। उसमें स्नान कर 'गुहा' में प्रविष्ट हो 'कपिला' का पूजन कर मृत्युभय से रहित हो जायें। इन्द्रपर्वत से निकलने वाली नदी जहाँ पर 'कर्णाली' में सङ्गम करती है, मुनिवरों! वहाँ पर स्नान करने से दैवी-आपत्तिजन्य भय नहीं रह जाता। उसके समीप ही 'वैण्य' नामक तीर्थ में स्नान करें। वहाँ पर 'वेन' के पुत्र 'पृथु'[1] ने सरोवर बनवाया था। वहीं पृथ्वी का वास भी स्थिर (निर्धारित) किया था। उस जलाशय में प्रविष्ट हो 'कर्णाली' में स्नान करने वाले व्यक्ति को भूमिदान का फल मिलता है। वह अपने तीन कुलों का उद्धार कर 'ध्रुव'सेवित 'विष्णुलोक' में प्रतिष्ठित होता है। उसके बाईं ओर 'अङ्गार' पर्वत है। उस पर आरूढ़ हो जो

---

१. इक्ष्वाकु-वंश के पाँचवें राजा का नाम पृथु था। ये 'वेन' के पुत्र थे। अपने पिता के हाथ मथने से इनकी उत्पत्ति हुई। इनके नाम से ही 'पृथ्वी' का नामकरण हुआ। ये प्रथम शासक रहे, अतः इन्हें 'आदिराज' कहा गया है। इन्होंने पृथ्वी को समतल बनाया। नगर, ग्राम आदि बसा कर कृषि को आरम्भ किया। इनका राज्य उदयाचल तक था। द्रष्टव्य—'अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः। पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः' ॥—(भाग० ४. १५-४)। तथा 'अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः। आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ॥'—(भाग० ४.१६, २०)।

तस्माद्भौमनदी पुण्या सम्भूय शारदां गता। शारदाभौमयोर्मध्ये देवं भौमेश्वरं हरम् ॥२१॥
स्नात्वा योऽर्चति धर्मात्मा महीदानफलं लभेत्। ततस्तु दक्षिणे तीरे तस्या नद्यास्तपोधनाः॥
नाम्ना चन्द्रगिरिः पुण्यो लग्नः शेषाचले शुभे। राजते दैत्यमुख्यानां निवासो वासवोपमः॥
तस्मिन्पर्वतमुख्ये वै नाम्ना सिंहवनं स्मृतम्। सेवितं सुरगन्धर्वैस्तथा विद्याधरोरगैः॥२४॥
तत्र मध्येऽस्ति दिव्यो वै सरः सिद्धनिषेवितः। नृसिंहं तनुमास्थाय कल्पितं प्रभविष्णुना ॥२५॥
तस्मिन्सरसि मध्ये वै नृसिंहोऽस्ति महाबलः। दंष्ट्रामयूखैर्भुवनं दीपयन्निव संस्थितः॥२६॥
तस्मिन्सरसि दिव्ये वै नृसिंहं योऽर्चयेत्प्रभुम्। स याति भुवनं[1] विष्णोः पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
श्रीनृसिंहं महाविष्णुं शिलात्मानं महाबलम्। अर्चयित्वा विधानेन न पुनः शोचते नरः॥२८॥
तस्मिंश्चन्द्रा सरिच्छ्रेष्ठा सम्भूय शारदां ययौ। तत्र सङ्गममध्ये वै तीर्थे काकह्रदाह्वये॥२९॥
स्नात्वा सङ्गममध्यस्था वाराहस्य शिला शुभा। यस्य दृष्टिपथं याति स धन्यो नात्र संशयः॥
वाराहस्य शिलायां वै वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः। आस्ते वै देवकार्यार्थं स्वयं वाराहरूपधृक् ॥३१॥
तत्र पूजां प्रकुर्वाणो वाराहस्य शिलोपरि। नरः संस्तूयते देवैःकिमुतान्यैस्तु मानवैः॥३२॥
तत्र मध्ये महातीर्थं वाराहाख्यमिति स्मृतम्। तत्र स्नातो भवेद्यस्मात् सर्वतीर्थेष्वभिप्लुतः॥

पृथ्वीपुत्र 'अङ्गारक'[2] (मङ्गल ग्रह) का पूजन करता है, वह 'भूलोक'[3] वेत्ता हो जाता है। वह पर्वत 'भौमा' नदी का उद्गमस्थल है। 'भौमा' नदी 'शारदा' के साथ सङ्गमित होती है। इन दोनों के मध्य स्नान तथा 'भौमेश्वर' शिव का पूजन करने से भूमिदान का फल मिलता है। तब नदी के दाहिने किनारे पर 'शङ्ख' पर्वत से मिला हुआ पवित्र 'चन्द्रगिरि' है। इसमें प्रमुख 'दैत्यों' के आवास भी हैं। इस पर्वत से संलग्न देव-गन्धर्वों से सेवित 'सिंहवन' है। वन के मध्य सिद्धों से सेवित 'दिव्यसर' है। उसमें 'नृसिंह' का रूप धारण कर भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वे 'नृसिंह' अपने दांतों की चमक से मानों लोक को प्रकाशित कर रहे हों। वहाँ 'नृसिंह' की पूजा करने से मानव विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है। वहाँ पर 'शिला' ही वस्तुतः नृसिंह रूप में पूजित है। उसकी पूजा से मनुष्य दुःखी नहीं होता। 'चन्द्रपर्वत' से 'चन्द्रा' नदी निकल कर 'शारदा' में मिल जाती है। उस सङ्गम के मध्य 'काकह्रद' है। उसमें स्नान तथा सङ्गममध्यस्थ 'वाराहशिला' का दर्शन कर मानव अपने जीवन को कृतार्थ करें। उस वाराह-शिला में वैकुण्ठवासी पुरुषोत्तम ने देवकार्यहेतु वास किया है। अतः देव भी वहाँ उनके अर्चकों की स्तुति करते हैं। मनुष्यों के विषय में क्या कहा जाय? 'चन्द्रा'

---

१. 'भवनम्'—इति 'ख' पुस्तके।

२. इसका दूसरा नाम 'भौम' (भूमिपुत्र) है। यह नव ग्रहों में से एक ग्रह है। इसका रंग लाल है—'संस्मरेद्रक्तमादित्यम् 'अङ्गारक'-समन्वितम्। सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ॥ मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः॥'—(मत्स्य० ९२· १७)। 'सौरजगत्' का यह ग्रह 'पृथ्वी' के उपरान्त पहला पड़ता है, जो सूर्य से १४ करोड़ १५ लाख मील दूर है।

३. यहाँ 'भूगोल' से 'भुवन'=लोक अर्थ लिया गया है। पुराणानुसार १४ लोक हैं—सात स्वर्ग तथा सात पाताल। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सात स्वर्गलोक हैं। अतल, सुतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल—ये सात पाताललोक हैं।

(तस्माद् भूता नदी पुण्या कृमिसञ्ज्ञा सरिद्वरा । कृमिपर्वतसम्भूता शारदासङ्गमं ययौ ।।३४।।
तत्र मध्ये महातीर्थे कृमिसञ्ज्ञे सुपुण्यदे । स्नात्वा च कृमियोनौ वै न कदाचित्प्रभूयते ।।३५।।
तस्माददूरे पुण्याख्यं वह्नितीर्थमिति स्मृतम् । मुनिभिः सेवितं रम्यं तपोवननिवासिभिः ।३६।
तस्या वामे महापुण्ये वह्नितीर्थे निमज्य वै । कल्पकोटिकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।३७।।
ततस्तु दक्षिणे तस्याः खलशासनपर्वतः । खलोऽपि वाक्पटुत्वं च प्राप्नुते यत्र पर्वते ।।३८।।
तस्मिन्खलानां मूकत्व-नाशिनी खलतारिणी । सरिद्वरा बभूवाऽथ सुरसिद्धनिषेविता ।।३९।।
तां स्नात्वा मानवानां च मूकत्वं क्षिप्रमेव हि । विनश्यति न सन्देहो यथा सूर्योदये तमः ।।४०।।
तस्या दक्षिणभागस्थां देवीं शिखरवासिनीम् । जानन्तु देवगन्धर्वैः पूजितां परमेश्वरीम् ।४१।
तामर्च्य गिरिमुख्यस्य कन्यकां गिरिवासिनीम् । मार्गशीर्षे द्वितीयायां दिने देवो भवेन्नरः ।४२।
सङ्गमे खलतारिण्याः शारदायास्तथैव च । स्नात्वा सुग्रीवसचिवं हनूमन्तं प्रपूजयेत् ।।४३।।
वाक्पटुत्वं सभायां च जायते पूज्य वानरम् । यो मया कृमिसञ्ज्ञो वै वामे तस्य मयोदितः ।।
तत्र बुद्बुदसञ्ज्ञो वै सरोऽस्ति मुनिसत्तमाः । तपस्यता[1] पुरा सम्यक् कल्पितो बलिसुनुना ।।
तेन प्रकल्पितं दृष्ट्वा प्रतुष्टः पार्वतीप्रियः । जलानां बुद्बुदशतैः पूरयामास तं ह्रदम् ।।४६।।
बुद्बुदसरसि स्नानं विधाय कृमिपर्वते । बाणेश्वरं महादेवमर्चयेत् कार्यसिद्धये ।।४७।।
बाणेश्वरं महादेवं कृमिपर्वतसंस्थितम् । स्मृत्वा योऽभिमुखं याति शत्रूणां स जयी भवेत्[2] ।।
तुषाराद्रिस्ततः पुण्यस्तस्माद्दक्षिणसंस्थितः । सुरगन्धर्वकन्याभिः पुत्रकैश्च विचित्रितः ।।४९।।

और 'शारदा' की मध्यभूमि 'वाराह' तीर्थ के रूप में मानी गई है। वहाँ स्नान करने पर समस्त तीर्थों के स्नान का फल मिल जाता है। फिर 'कृमि' पर्वत से निकलने वाली 'कृमि' नदी का 'शारदा' के साथ मिलन होता है। उसके मध्य 'कृमि' नामक महातीर्थ है। उसमें स्नान करने पर कृमियोनि में जन्म की सम्भावना नहीं रहती। उसी के बाईं ओर तपोवनवासी मुनियों से सेवित 'वह्नि'तीर्थ है। उसमें स्नान करने से असंख्य कल्पों में किये हुए पापों से छुटकारा मिलता है। तदनन्तर उसके दक्षिण में 'खलशासन' पर्वत है। उस पर्वत पर दुष्टों की मूकता को नाश करने वाली 'खलतारिणी' नदी है। उसमें स्नान करने पर मानव का गूँगापन दूर हो जाता है। उसके दक्षिण भाग में देव-गन्धर्वादि से पूजित 'शिखरवासिनी' परमेश्वरी हैं। वह साक्षात् हिमालय-कन्यका हैं। 'मार्गशीर्ष' मास की द्वितीया के दिन उनका पूजन करने से मानव देवतुल्य हो जाता है। तदनन्तर 'खलतारिणी' और 'शारदा' के सङ्गम में स्नान कर 'सुग्रीव' के मन्त्री 'हनुमान्' का दर्शन कर मानव को सभा के योग्य वाक्पटुता प्राप्त हो जाती है। पूर्वोक्त 'कृमि' नामक तीर्थ में बलिपुत्र द्वारा निर्मित 'बुद्बुद'[3] नाम का सर है। उसे देख शिव बड़े प्रसन्न हुए। 'कृमि'पर्वत पर स्थित इस 'सरोवर' में बुलबुले उठते रहते हैं। वहाँ स्नान कर 'बाणेश्वर' का पूजन करें। उनका पूजन करने से अभिमुख शत्रु पराजित हो जाता है। तदनन्तर उसके दक्षिण भाग में देवों की तथा गन्धर्वों की कन्याओं एवं उनके पुत्रों से अर्चित

---

१. 'पश्यता' हि—इति 'ख' पुस्तके। २. 'जयं लभेत्'—इति पाठान्तरम्।

३. 'ब्रह्माण्डपुराण (२·१६-२६) के अनुसार हिमालय से निकली २२ पुण्यसलिला 'गङ्गा' आदि नदियों में से एक नदी का नाम 'बुद्बुदा' भी है।

तस्मिन्नद्यस्तु बहवः सम्भूताः शारदां गताः । तस्य कोणे महादेवी तुषारकणसेविता ॥५०॥
मृणालतन्तुसदृशी सुरजाभिः प्रपूज्यते । सुरजापूजितां देवीं कमलाभाननां शिवाम् ॥५१॥
समर्च्य सुरकन्यानां वल्लभः स भवेन्नरः । तस्मात्तुषारवर्णाभा नदी तुहिनपूरिता ॥५२॥
सम्भूय शारदादिव्ये सङ्गमे प्रययौ शुभा । तां स्नात्वा मानवः सम्यग् विष्णुलोके महीयते ॥
तुषारा शारदा चैव सङ्गमे यत्र संस्थिते । तत्र स्नात्वा च मनुजः पितॄन्सन्तारयेद्दश[1] ॥५४॥
तस्मात्परं सुरप्राहा नदी सङ्गमसंस्थिता । तत्र तर्पणमात्रेण पितॄणां तारयेच्छतम् ॥५५॥
तस्या दक्षिणभागे वै सम्भूताऽनलपर्वते । अनला सङ्गमे चास्या बभूव सकलार्थदा ॥५६॥
अनलां स्नानविधिना स्नात्वा सन्तर्पयेत्पितॄन् । गलगण्डग्रहा रोगाः संक्षयं यान्ति नित्यशः ॥
ततः परं महाभागाः शारदायां सरिद्वरा । कावेरी लोकपापघ्नी सङ्गमे यत्र सङ्गता ॥५८॥
तत्र मज्जनमात्रेण धनाध्यक्षो भवेन्नरः । दारुपर्वतसम्भूता मनुना सम्प्रदर्शिता ॥५९॥
मेनका सरितां श्रेष्ठा शारदासङ्गमे गता । मेनकासरितोर्मध्ये मेनाकीशं महेश्वरम् ॥६०॥
समर्च्य धनमारोग्यं प्राप्नुयान्मानवोत्तमः । ततो वलह्रदं पुण्यं वलायाः सङ्गमध्यगम् ॥६१॥
सुरसिद्धगणैर्दिव्यैः सेवितं सत्यमार्गदम् । तत्र स्नात्वा वलह्रदे वलं वै ह्रदमध्यगम् ॥६२॥
अर्चयित्वा ततस्तस्माच्छिप्रायाः सङ्गमे व्रजेत् । योऽर्चयेत्तत्र मध्यस्थां शिप्रां देवीं हरप्रियाम् ।
मुक्ताफलैश्च मुकुलैरुत्पलानां सुशोभनैः । प्राप्नोति परमां सिद्धिं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥
अन्ते शिवपुरं याति शिवेन सह मोदते । ततस्तु दक्षिणे तस्याः शारदायाः सुशोभनः ॥६५॥
दिव्यो मुनिगिरिः पुण्यः तथा चन्द्रगिरिः स्मृतः । मुनिशिष्यसहस्रैस्तु सेवितो धातुभूषितः ।६६।
पारावारविरावैश्च सर्वतः प्रतिनादितः । मृगाणां विपुलैर्घोषैर्घोषितो वृक्षभूषणः ॥६७॥

'तुषाराद्रि' है। उससे अनेक नदियाँ निकल कर 'शारदा' में मिल जाती है। उसके कोने में हिमकणों से पूरित कमलनाल के समान 'महादेवी' का पूजन देवकन्यायें किया करती हैं। उनका पूजन करने से मानव भी देवकन्याओं के प्रिय हो जाते हैं। आगे बढ़ते हुए वे तुषारकण हिमकान्ति से पूरित नदी के रूप में (तुषारा) परिवर्तित हो जाते हैं। वह 'हिमनदी' फिर 'शारदा' के साथ सङ्गम करती है। उसमें स्नान कर मानव विष्णुलोक प्राप्त करता है। उस सङ्गम में स्नानोपरान्त तर्पण करने से मानव अपने दस कुलों का उद्धार करता है। उसके आगे 'सुरप्राहा'-'शारदा' का सङ्गम है। उसमें तर्पण करने से ही सैकड़ों पितरों की तृप्ति हो जाती है। उसके दक्षिण भाग में 'अनल'पर्वत से निकल कर 'अनला' नदी 'शारदा' से मिलती है। उसके सङ्गम में स्नान करने पर गलगण्डग्रहादि (घेंघा रोग) रोग दूर हो जाते हैं। महाभागो ! तत्पश्चात् लोगों के पापों को दूर करने वाली 'कावेरी' नदी शारदा में आकर मिल जाती है। धन की प्रचुरता होना ही उसमें स्नान करने का फल है। तदनन्तर 'दारुपर्वत' से उत्पन्न 'मनु' द्वारा प्रदर्शित 'मेनका' का 'शारदा' के साथ सङ्गम है। 'मेनका' और 'शारदा' के मध्य 'मेनाकीश' का पूजन कर 'आरोग्य' लाभ होता है। तब 'वला' सङ्गम के मध्य 'वलह्रद' सत्यमार्गप्रद है। फिर 'शारदा' के दक्षिण में दो पर्वत-'मुनिगिरि' तथा 'चन्द्रगिरि'-हैं। 'मुनिपर्वत' हजारों मुनियों से सेवित एवं धातुओं से विभूषित है। वह कबूतर आदि पक्षियों से निनादित होता

---

१. 'पितॄणां तारयेद्दश'—'ख'।

तथा चन्द्रगिरिः पुण्यश्चन्द्रमासदृशान्तरः । आस्ते कैलाससङ्काशः कैलासेश्वरसंमतः ॥६८॥
चन्द्रपर्वतयोर्मध्ये चन्द्रमासदृशी शुभा । गुहास्ति सुरगन्धर्वैः सेविता शिववल्लभा ॥६९॥
तस्यां देवेश्वरो देवो राजते मुनिसेवितः । यो यजेद्वाजिमेधेन कृत्वा गोशतमुत्तमम् ॥७०॥
यश्चैकां तत्र यात्रां वै कुरुते मानवोत्तमः । तुल्यं फलं भवेत्सद्यस्तस्य तस्य च निश्चितम् ॥
मुनिचन्द्राद्रिमध्यस्थां गुहां दृष्ट्वा सुशोभनाम् ॥ ७१ ॥
मुनीश्वरं महादेवं नागमालाविभूषितम् । अर्चयित्वा शिवपुरं प्राप्नुते चाधमोऽपि हि ॥७२॥
मुनिपर्वतयोर्मध्ये शिखराग्रे ह्रदः स्मृतः । मुनिसञ्ज्ञो मुनिगणैरर्चितो मानसोपमः ॥७३॥
न दृष्टिपथमायाति अतिपातकिनां नृणाम् । यस्य दृष्टिपथं याति मुनिसञ्ज्ञो ह्रदोत्तमः ॥७४॥
तेनैव वपुषा शम्भोर्गृहं प्राप्नोति निश्चितम् । ततस्तस्मात्समुत्पन्ना गालवी सा सरिद्वरा ।७५।
गालवस्याश्रमं पुण्यं निषेव्य प्रययौ शिवाम् । कर्णालीं देहजातानां पातकानां प्रणाशिनीम् ॥
तत्र मध्ये महापुण्यं गालवस्याश्रमं स्मृतम् । महर्षिजनसङ्घानां ध्वनिभिर्मुखरीकृतम् ॥७७॥
स्नानार्थमागतैः सिद्धैः सेवितं तटवासिभिः । तत्र गालवसंज्ञे वै तीर्थे स्नात्वा यथाविधि ।७८।
अर्चयित्वा विधानेन चिताभस्मविभूषणम् । गालवेशं महाभागाः शिवसायुज्यमश्नुते ॥७९॥
स यत्र गालवो विप्रः स्नात्वा वेदान्तगोऽभवत् । तत्रैव स्नानमात्रेण सायुज्यं याति मानवः ॥

हुआ मृगों के घोष से अभिव्याप्त है । अनेक वृक्षों से संकुलित दूसरा पर्वत अन्तःस्थित चन्द्रमा की तरह—'चन्द्रगिरि' भी शोभायमान है । वह 'कैलासेश्वर' सहित 'कैलास' के समान कीर्तिमान् है । इन दोनों पर्वतों के मध्य सुर-गन्धर्वों से सेवित चन्द्रमा के समान शुभ्रकान्ति वाली 'शिव-वल्लभा' गुहा है । वहीं सुर, गन्धर्व, सिद्ध आदि से सेवित भगवान् शङ्कर विराजमान हैं । वहाँ पर दर्शनादि करने से सौ गोदान कर अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है । एक दिन की यात्राकरने का फल भी यहाँ तदनुसार ही है । 'मुनि' तथा 'चन्द्र' पर्वतों के मध्य गुहास्थ नागमालाविभूषित भगवान् शङ्कर का दर्शन करने से शिवलोक प्राप्त होता है । इसके साथ ही वहाँ शिखर के अग्रभाग पर 'मानसरोवर' के समान ही 'मुनिह्रद' है । पापियों से यह अदृश्य है । सरोवर को दृष्टिगत करने वाले व्यक्ति कान्तिसम्पन्न हो सशरीर शिवलोक में प्रतिष्ठित होते हैं । उस सरोवर से 'गालवी' नाम की नदी निकली है । वह 'गालव' के आश्रम से होती हुई 'कर्णाली' में मिल जाती है । वहाँ स्नान करने पर दैहिक दोष दूर हो जाते हैं । उन दोनों नदियों के मध्य 'गालव' ऋषि का आश्रम है । वह अनेक मुनियों की ध्वनि से मुखरित है । तटवासी स्नानार्थियों की परिचर्या से वह आश्रम सञ्चालित है । वहाँ 'गालवतीर्थ' में विधिपूर्वक स्नान तथा चिताभस्मविभूषित 'गालवेश्वर' का पूजन करने से 'सायुज्य' मुक्ति मिलती है । वहीं 'गालव'[1] ने स्नान कर 'वेदान्त' का ज्ञान प्राप्त किया था । फिर महर्षि

---

१. पुराणों में इस नाम के अनेक ऋषियों का वर्णन है । 'महाभारत' के अनुसार यह विश्वामित्र के हठी शिष्य थे । इनके दुराग्रह से विश्वामित्र ने इनसे ८०० श्यामकर्ण घोड़े गुरुदक्षिणा में माँगे । इन्होंने 'ययाति' की कन्या 'माधवी' की सहायता से यह कार्य सम्पादित किया तथा गुरु-ऋण से मुक्त हुए ।

विष्कम्भगिरिसम्भूता जटागङ्गा शिवार्थदा। मुद्गलेन समाहूता मौद्गलीया प्रगीयते ॥८१॥
सा ययौ शारदां दिव्यां क्षेत्रे सूकरसञ्ज्ञके। शारदा च जटागङ्गा सङ्गमे यत्र सङ्गते ॥८२॥
कोटिजन्मप्रजातानां पातकानां विनाशनम्। तत्रैव तीर्थदेवस्य योगीशस्य प्रतिष्ठितम् ॥८३॥
यत्र स्नात्वा विधानेन क्षेत्रे सूकरसञ्ज्ञके। संस्नाति शारदां दिव्यां जटासङ्गमसङ्गताम् ॥८४॥
स धन्यः सर्वधर्मज्ञः सम्पूज्यो भवति ध्रुवम्। परत्र च विष्णुगृहं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
प्राप्नोति सुरमुख्यानां यमाहुर्दुर्लभं पदम् ॥८५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे शारदामाहात्म्यं नाम षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

'मुद्गल'[1] द्वारा आवाहित 'विष्कम्भ' पर्वत से उद्भूत 'जटागङ्गा' आती है। उसे 'मौद्गलीया' भी कहा जाता है। वह 'सूकर-क्षेत्र'[2] में आकर 'शारदा' से मिल जाती है। उसमें स्नान करने पर कोटि जन्म के पातक धुल जाते हैं। वहीं 'योगीश' तीर्थ भी है। 'शारदा-जटागङ्गा' के सङ्गमस्थल 'सूकरक्षेत्र' में विधिपूर्वक स्नान कर मानव अपने जन्म को सफल बनाता है। इसके साथ ही वह सर्व धर्मज्ञ होकर अन्त में देवों के प्रमुख लोक 'वैकुण्ठ' धाम में पहुँच जाता है ॥ १-८५ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'शारदा'[3] माहात्म्य नामक
एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

---

१. 'भर्म्याश्व' के पाँच पुत्रों में से एक पुत्र का नाम 'मुद्गल' था। इनसे ब्राह्मणों का मौद्गल्य वंश उत्पन्न हुआ। यह दिवोदास और अहल्या यमज के पिता थे। 'शाकल्य' के शिष्य तथा मन्त्रकृत् ऋषि थे—'भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन् मुद्गलादयः। यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः सञ्जयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि। विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद् ब्रह्म—निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसञ्ज्ञितम्। मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद् दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥'—(भागवत ९. २१, ३१-३४)।

२. वर्तमान समय में 'एटा' जनपद के अन्तर्गत 'सोरों' नामक स्थान भी 'सूकरक्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् 'विष्णु' ने वाराह अवतार धारण करने पर 'हिरण्याक्ष' को यहीं मारा था—'जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ। हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा। हिरण्याक्षो धरोद्धारं बिभ्रता सौकरं वपुः ॥'—भाग० ७. १. ३९-४०।

३. 'शारदा' नदी अनेक नामों को स्थान-स्थान पर ग्रहण करती है। आधुनिक भौगोलिक मानचित्रों में उसे कहीं-कहीं पर 'शारदा' के नाम से दिखाया गया है। 'काली' के साथ सङ्गमित होने पर उसे 'काली' की संज्ञा दे दी गई है। 'बरमदेव' (ब्रह्मदेव) के पास उसे 'शारदा' नाम प्राप्त हो जाता है। आगे वह 'घाघरा' ('सरयू' का नामान्तरण) बन कर गङ्गा में मिल अपना अस्तित्व समाप्त कर देती है।

सूत उवाच—

एतन्निशम्य धर्मज्ञाः शौनकाद्या यतव्रताः। द्वैपायनं समर्च्याशु पप्रच्छुः पुनरेव हि ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

इतिहासपुराणेषु नानाशास्त्रेषु मुद्गलः। मुक्तः प्रगीयते विप्रस्तपस्वी शंसितव्रतः ॥२॥
समाहूय जटागङ्गां स किं चक्रे तपोनिधिः। शङ्करेण जटामूला गिरौ सम्प्रेषिता नदी ॥३॥
कथं प्रवाहिता तेन पुण्यं तस्यास्ति कीदृशम्। प्रब्रूहि सर्वधर्मज्ञ यथोत्पन्ना महानदी ॥४॥

व्यास उवाच—

यदुक्तं तत्तथैवास्ति भवद्भिर्मुनिसत्तमाः। मुक्तः स मुद्गलो विप्रः प्रभविष्णोः प्रसादतः ॥५॥
शृण्वन्तु मुनिशार्दूलास्तस्याख्यानं तथापि हि। मुद्गलः सर्वधर्मज्ञः सर्वातिथिप्रपूजकः ॥६॥
वेदवेदान्ततत्त्वज्ञः कदाचिद्धिमपर्वतम्। समाश्रित्य तपस्तेपे चक्रेऽविष्कम्भपर्वते ॥७॥
तपस्यन्तं मुनिं ज्ञात्वा छायाक्षेत्रेश्वरो हरः। प्रययौ तत्र यत्रास्ते महर्षिः शंसितव्रतः ॥८॥
तस्य भावपरीक्षार्थं तत्रागत्य महेश्वरः। तृषितो बटुरूपेण जलं देहीत्युवाच ह ॥९॥
ततस्तु मुद्गलो विप्रो निवेश्यास्तरणे शुभे। दास्यामि तावत्तिष्ठ त्वं यावदागमनं मम ॥१०॥
इत्युक्त्वा प्रययौ हृष्टो गिरिं दाडिमसंज्ञकम्। विलङ्घ्य विष्कम्भगिरिं गत्वा तुष्टाव शङ्करम्।

सूत पौराणिक बोले—यह सब सुनकर व्रतपरायण शौनकादि ऋषियों ने कृष्ण द्वैपायन व्यास महर्षि से पुनः पूछना आरम्भ किया ॥ १ ॥

ऋषियों ने पूछा—महर्षे ! इतिहास, पुराण तथा शास्त्रों में तपस्वी मुद्गल को मुक्त कहा गया है। अतः मुद्गल ऋषि ने शङ्कर की जटा से निकली उस नदी (जटागङ्गा) को किस हेतु आमन्त्रित कर प्रवाहित कराया ? हे सर्वधर्मज्ञ ! इसके साथ ही उस नदी की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? कृपया इन सब बातों पर प्रकाश डालें ॥ २-४ ॥

व्यासजी ने कहा—ब्रह्मबन्धुओं ! आप लोगों ने जो कहा है वह सब ठीक है। 'विष्णु' की कृपा से ही वह विद्वान् एवं मुक्त हुआ है। तथापि आप लोग सुनें। 'मुद्गल' सब धर्मों एवं वेद-वेदान्त का ज्ञाता था। इसके साथ ही वह अतिथि-सम्मान भी करता था। किसी समय 'हिमालय' पर्वत पर उसके हृदयस्थ भाव को जानने की इच्छा से 'विष्कम्भ' गिरि पर तपश्चर्या करते हुए सिद्ध तथा ऋषियों से सेवित 'छायाक्षेत्रेश्वर' शिव उस स्थान पर बटु के वेष में गये। उसकी परीक्षार्थ शिव ने तृषित हो 'मुद्गल' से जल की याचना की। ठीक है—कहते हुए शिव को आसन पर बैठा कर उसने शिवजी से यह कहा कि मेरे वापस आने तक अभीष्ट वस्तु मिल जायगी। यह कहते हुए प्रसन्नमना वह 'दाडिम' पर्वत को पार कर वहाँ से विष्कम्भ पर्वत की ओर चले गए। वहाँ उन्होंने शङ्कर की प्रार्थना की ॥ ५-११ ॥

मुद्‌गल उवाच—

नमो नमः कारणकारणाय नागेन्द्रचर्माम्बरशोभिताय।
नागेन्द्रहाराय वृषध्वजाय गौरीकलत्राय नमो नमस्ते॥ १२॥
पिनाकहस्ताय सुरेश्वराय शिवाय तस्मै वृषवाहनाय।
किरीटमालासुविभूषिताय नमो नमस्ते त्रिपुरान्तकाय॥ १३॥

व्यास उवाच

इति सम्प्रार्थ्य देवेशं मुद्‌गलो मुनिसत्तमाः। जटागङ्गां महापुण्यां प्राप्य शम्भोरनुग्रहात्॥१४॥
कपर्दिमण्डलां दिव्यां शङ्करस्य सुशोभनाम्। विष्कम्भपर्वतोद्देशे पतितां जह्नुजामिव॥१५॥
यत्रास्ते भगवान् साक्षाच्छायाक्षेत्रेश्वरो हरः। स तस्मात्पूर्वभागे वै प्रयातामुत्तमां[1] नदीम्॥
स गङ्गां प्राप्य धर्मात्मा प्रवाहैर्वाहयन्नदीम्। प्रययावाश्रमं दिव्यं महर्षिः शंसितव्रतः॥१७॥
तत्र गत्वा ददौ तस्मै जटागङ्गाजलं शुभम्। तृषितं च सुतोयेन पितरं तर्पयन्निव॥१८॥
ततः पीत्वा जलं तेन समानीय समर्पितम्। अतितृप्त्यैव देवशः किञ्चिच्छेषं चकार ह॥१९॥
ततस्तुष्टो महादेवः प्रोवाच मुनिसत्तमाः। वरं वरय भद्रं ते जानीहि शङ्करं हि माम्॥२०॥
तव भावपरीक्षार्थं समायातोऽस्मि साम्प्रतम्। प्रोवाच तं ततो देवं वरदं देवसेवितम्॥२१॥
मुक्तिमेकं वरं याचे न चान्यं वृषभध्वज। मुक्तिस्ते भविता साधो कालेनेति वृषध्वजः॥२२॥
उक्त्वा स देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत। सोऽपि तां प्राप्य पापघ्नीं जटागङ्गां वृषध्वजात्॥२३॥
तपश्चक्रे महाभागो मुद्‌गलः शंसितव्रतः। हरेराराधनार्थायाऽधीतविद्यस्तपोनिधिः॥२४॥
स कालेनातिथिं तर्प्य मुद्‌गलः शंसितव्रतः। ययौ विष्णोः प्रसादेन वैकुण्ठं मुनिसत्तमाः॥२५॥
कथितं मुद्‌गलाख्यानं मया सर्वं तपोधनाः। सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्॥
संश्रुत्य सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ २६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे मुद्‌गलाख्यानं (नाम) सप्तसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः॥

मुद्‌गल कहने लगे—समस्त कारणों के भी कारण, गजचर्म धारण करने से सुशोभित, नागेन्द्रहार, वृषध्वज एवं गौरीपति नामों से सम्बोधित किये जाने वाले शिव को मेरा नमस्कार है। पिनाकधारी, वृष पर सवारी करने वाले, किरीट तथा माला से विभूषित एवं त्रिपुरासुर के विनाशक भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ॥ १२-१३॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों! इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने शिवजी की जटा से निकली 'जटागङ्गा' को प्राप्त किया। वह 'जाह्नवी' की तरह पवित्र 'विष्कम्भ' पर्वत पर गिरीं। वहाँ पर साक्षात् 'छायाछत्रेश्वर' शिव विद्यमान हैं। उस पर्वत के पूर्वभाग को बढ़ती हुई उस नदी को आगे प्रवाहित कर दिया। फिर आश्रम में जाकर तृषित भगवान् शंकर को नदी के जल से पितरों की तरह तृप्त कर दिया। तृप्त शंकर ने उसका कुछ जल बचा लिया। मुनिवरों! तब प्रसन्न शङ्कर जी ने उससे कहा 'तुम वर माँगो। मैं शङ्कर हूँ। इस समय मैं तुम्हारे भाव

---

१. 'प्रणताम्'—'ख'।

१७८

ऋषय ऊचुः—

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं सर्वकामदम्। हस्त्यश्वरथसङ्कीर्णं दासीदासविवर्धनम् ॥१॥
पापच्छायाभिभूतानां मानवानां विमुक्तिदम्। नानारोग जरा-व्याधिभयविह्वलकारकम् ॥
क्षेत्रं प्रब्रूहि सर्वज्ञ सर्वलोकहिताय वै ॥२॥

व्यास उवाच—

आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनधान्यप्रवर्धनम्। हस्त्यश्वरथसङ्कीर्णं दासीदासविवर्धनम् ॥३॥
पापच्छायाभिभूतानां मानवानां दुरात्मनाम्। मुक्तिमार्गप्रदं दिव्यं नानारोगभयापहम् ॥४॥

को जानने के लिए यहाँ आया था।' तब उस ब्राह्मण ने देवों से सेवित शङ्कर से यह निवेदन किया कि मैं केवल मुक्ति की याचना करता हूँ। भगवान् शंकर ने भी उसे यथासमय मुक्त होने के लिये कह दिया। फिर वे वहीं अन्तर्हित हो गए। उस ब्राह्मण ने भी शङ्कर से पापघ्नी 'जटागङ्गा' को प्राप्त कर पुनः तपस्या की। वह विद्वान् विष्णु भगवान् की आराधना करते हुए समयानुसार अतिथि परिचर्या में संलग्न हो विष्णु भगवान् की कृपा से वैकुण्ठ-धाम चला गया। तपोधनों! मैंने 'मुद्गल' का इतिहास बतला दिया है। इस पापनाशक एवम् उपद्रवशामक आख्यान को सुनकर मानव सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ १४-२६ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'मुद्गलाख्यान' नामक
एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त* ॥

ऋषियों ने कहा—महर्षे! अब आप कृपा कर मानद, यशोवर्धक, आयुष्यप्रद, पुत्रद, मनोभिलाषपूरक, हस्ती-अश्व-रथादि प्रापक एवं दासी-दासादिवृद्धिप्रद तथा पापों की छाया से मुक्ति देने वाले, अनेक रोग, वार्धक्य और व्यधियों को भगाने वाले सबके हितकारी क्षेत्र का निर्वचन करें ॥ १-२ ॥

व्यासजी ने उत्तर दिया—मुनिवरों! आयुष्य एवम् आरोग्यप्रद, धन-धान्यवर्धक तथा उपर्युक्त गुणों से युक्त सब क्षेत्रों में उत्तम 'छायाक्षेत्र' है। वह शूलधारी महादेव का अति-

---

* इस अध्याय के पूर्व 'गण्डकी' नदी तथा 'शालग्राम' वन का उल्लेख हुआ है। उससे सम्बद्ध 'मुक्तिनाथ' क्षेत्र है। यह काठमांडो से लगभग १४० मील की दूरी पर है। 'दानभंसार' से 'गण्डकी' के पुलिन पर और मार्ग के समीपस्थ पर्वत पर शालग्राम शिला का मिलना आरम्भ हो जाता है। 'गण्डकी' का उद्गम 'दामोदर-कुण्ड' के नाम से विदित है। जो मुक्तिनाथ से १६ मील की दूरी पर है। 'गण्डकी' नदी को 'नारायणी' या 'शालग्रामी' भी कहते हैं। मुक्तिनाथ के अन्तर्गत नारायणी नदी में गरम पानी के ७ झरने हैं। इनमें से अग्निकुण्ड नामक झरना एक कुण्ड से निकलता है। उसके उद्गम के पास पर्वत में अग्नि ज्वालाएँ दिखाई पड़ती हैं। 'मुक्तिनाथ' में अनेकों देवमन्दिर हैं। यह ५१ शक्तिपीठों में से एक पीठ है। यहाँ सती का दाहिना 'गण्डस्थल' गिरा था। दामोदर कुण्ड का रास्ता बीहड़ है। 'मुक्तिनाथ' से वहाँ जाने में ३ दिन लग जाते हैं।

सर्वक्षेत्रोत्तमं क्षेत्रं छायाक्षेत्रमिति स्मृतम् । प्रियं हि देवदेवस्य महादेवस्य शूलिनः ॥५॥
छायाक्षेत्रमिति ख्यातं विद्यते मुनिसत्तमाः । कैलासस्य भुवं त्यक्त्वा तथा विन्ध्यभुवं शुभम् ॥
चक्रे स भगवान् देवो वासो विष्कम्भपर्वते । हित्वा विन्ध्याचलं दिव्यं तथा कैलासमन्दिरम् ॥
चकार तत्र देवेशो निवासं प्रियया सह । यत्र पर्वतमध्ये वै सुरसिद्धगणैः सह ॥८॥
तत्र गत्वा च दृष्ट्वा च छायाक्षेत्रं शुभप्रदम् । दिनेनैकेन वै विप्रास्तथा क्षेत्रेश्वरं नरः ॥
वर्षकोटिप्रजातानां पापानां कुरुते क्षयम् ॥ ९ ॥

ऋषय ऊचुः—

त्वया हि मुनिशार्दूल ! छायाक्षेत्रमुदीरितम् । कथं जानीमहे क्षेत्रं तं दिव्यं क्षेत्रनायकम् ॥१०॥
यत्त्वया पर्वतवरो विष्कम्भेति तथोदितः । ज्ञातव्यः स कथं दिव्यः पर्वतः पर्वतोत्तमः ॥११॥
छायाक्षेत्रमिति क्षेत्रं कथमाहुर्मनीषिणः । एतत्सर्वमशेषेण प्रब्रूहि मुनिसत्तम ॥१२॥

व्यास उवाच—

वामे यः शारदानद्या दाडिमाख्यो गिरिः स्मृतः । स तस्मात्पूर्वभागे वै विष्कम्भाख्योऽस्ति पर्वतः॥
मौद्गलीया नदी पुण्या तथा दोहवली नदी । सङ्गमे सङ्गते यत्र ते दिव्ये सरितां वरे ॥१४॥
तत्र महागिरिः पुण्यो विष्कम्भाख्यो हि पर्वतः । एकवक्त्रैर्द्विवक्त्रैश्च बहुवक्त्रैस्तथा गणैः ॥१५॥
लम्बाक्षैर्लम्बवक्त्रैश्च मीनवक्त्रैर्गणैस्तथा । सेवितोऽस्ति गिरिः पुण्यो विष्कम्भाचलवासिभिः ॥
तस्याचलस्य पार्श्वे वै छायाक्षेत्रमिति स्मृतम् । तत्र मध्ये च देवेशः छाययाच्छादितः प्रभुः ॥
विद्यते शङ्करो देवः सुरासुरनिषेवितः । यस्य च्छायां समाश्रित्य महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥१८॥

प्रिय क्षेत्र है । 'कैलास' तथा 'विन्ध्य' क्षेत्र को छोड़कर भगवान् ने वहाँ पर्वत के मध्य देवों तथा सिद्धगणों सहित पार्वती के साथ अपना वास-स्थान 'विष्कम्भ' पर्वत पर बनाया । वहाँ जाकर जो व्यक्ति एक दिन भी रहता हुआ दर्शन करता है, वह अनेक जन्मों के पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ ३-९ ॥

ऋषियों ने फिर पूछा—महर्षे ! आपने जिस 'छायाक्षेत्र' के बारे में कहा है, उसे हम कैसे जानेंगे ? आपने जिस विष्कम्भ पर्वत की चर्चा की है, उस श्रेष्ठ पर्वत को हम लोग कैसे समझें ? मनीषियों ने उस क्षेत्र का नाम 'छायाक्षेत्र' क्यों रखा ? मुनिश्रेष्ठ ! इन सब बातों को आप विस्तार के साथ कहें ॥ १०-१२ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवरों ! 'शारदा' नदी के बाईं ओर 'दाड़िम' पर्वत है । उसके बाईं ओर विष्कम्भ पर्वत है । पवित्र 'मौद्गलीया' तथा 'दोहवली' नदी जहाँ पर मिली हैं—वहीं पवित्र 'विष्कम्भ'[1] पर्वत है । वह पर्वत एकमुख, द्विमुख तथा बहुमुख वाले गणों से एवं लम्बी आँख, लम्बे मुख तथा मछलियों की तरह मुख वाले गणों से तथा पर्वतवासी जनों से सेवित है । उस पर्वत के पास 'छायाक्षेत्र' है । वहाँ छाया के मध्य शंकर भगवान् छाया से आच्छादित हैं । जिनकी छाया का आश्रय लेकर महेन्द्र से अनुमति प्राप्त कर देवगण उस देवलोक में रहते हैं । वहीं 'बाण' आदि एवं 'विकुम्भ' आदि दैत्य भी उनकी छाया से रक्षित हो भूमण्डल पर विचरण करते हैं । 'विकुम्भ' से निर्मित उस छाया में लोगों के हित के लिये अब भी भगवान्

---

१. 'विष्कम्भ' पर्वत का उल्लेख 'वराह'पुराण में भी है ।

तिष्ठन्ति देवलोके वै महेन्द्रेणानुमोदिताः । तथा बाणादयो दैत्या विकुम्भाद्यास्तथाऽपरे ॥
छायया रक्षिता यस्य विचरन्ति महीतले । विकुम्भविहितां छायामाश्रित्य जगदीश्वरः ॥२०॥
राजतेऽद्यापि लोकानां हिताय भुवनेश्वरः । तत्र देवा निषेवन्ते सततं पार्वतीप्रियम् ॥२१॥
ब्रह्माद्या मुनयश्चैव तथा देवर्षयोऽपरे । अधोर्ध्वात्परदिग्भ्योऽपि समागत्य महेश्वरम् ॥
निषेवन्ते शिवं शान्तं पार्वतीप्रियकारकम् ॥ २२ ॥

ऋषय ऊचुः—

विकुम्भरचिता छाया कथं तत्राऽभवद्द्विज । देवैः सह महादेवः कस्माच्छायां ययौ कथम् ॥२३॥

व्यास उवाच—

विकुम्भो नाम दैत्यो यो बभूव पार्षदाग्रणीः । स कदाचिद्धिमगिरेः शिखरं प्राप्य शोभनम् ॥
हिमाद्रेर्दक्षिणाशायां संस्थितं सुरसेवितम् । दाडिमाख्यस्य शिखरं गत्वा देवं समर्चयत् ॥२५॥
अर्चयित्वा महादेवं तस्थौ तत्र स दैत्यराट् । तस्य नाम्ना गिरेर्नाम विष्कम्भेति चकार ह ।२६।
शिवपार्षदमुख्यो वै स्कन्दिर्देवानुभाववित् । स्कन्दिना कृतनामोऽसौ पर्वतोऽभूत्ततः परम् ।२७।
हिमालयनिभः कान्तो हिमसीकरपूरितः । विकुम्भोऽपि महाभागाः स तस्मिन् पर्वतोत्तमे ॥
तस्थौ समर्च्य देवेशं शङ्करं पार्षदाग्रणीः । कदाचिद्देवदेवस्य नीत्वा वर्षत्रयं बली ॥२९॥
लिङ्गं संस्थापयामास शैलोद्देशे सुशोभने । उपपातकलिप्तोऽपि महापापैरपि ध्रुवम् ॥३०॥
यं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलाः सद्यः पूतात्मना व्रजेत् । स शङ्करं लिङ्गमयं स्थापयित्वा शिवान्विम् ।
तुष्टाव चाञ्जलिं बद्ध्वा शङ्करं पार्षदाग्रणीः । नमः शिवाय शान्ताय पार्वतीवल्लभाय च ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुभूताय ते नमः । वृषध्वजाय देवाय विषमाख्याय शूलिने ॥३३॥

शंकर विराजमान हैं। वहाँ पर पार्वतीनाथ शंकर की सेवा में देवगण सतत लगे रहते हैं। चारों दिशाओं एवम् ऊर्ध्व तथा अधो दिशा से ब्रह्मादि देव, मुनिगण तथा ऋषिगण तथा अन्य जन भी वहाँ आकर 'शान्त शिव' 'पार्वतीनाथ' की सेवा में लगे रहते हैं ॥ १३-२२ ॥

ऋषियों ने कहा—'विकुम्भ' ने वहाँ छाया कैसे बनाई? और उस छाया में देवों सहित महादेव किस तरह आये? ॥ २३ ॥

व्यासजी बोले—'विकुम्भ' नामक दैत्य 'शिव' के पार्षदों में अग्रणी हुआ है। किसी समय वह 'हिमालय' के शिखरों पर विचरता हुआ उसके दक्षिण की ओर 'दाड़िम' पर्वत पर पहुँच गया। वहाँ शिवजी की पूजा करने लगा। पूजनोपरान्त उसने अपना निवास भी बना लिया। उसने उस शिखर का नाम 'विष्कम्भ' रख दिया। तत्पश्चात् शिवजी के प्रमुख पार्षद 'स्कन्दी' ने भी उसी नाम से प्रसिद्ध कर दिया। वह पर्वत हिमकणों से पूरित है। 'विकुम्भ' के निवास करते हुए जब तीन वर्ष व्यतीत हो गए तब उसने वहाँ 'शिवलिङ्ग' स्थापित किया। उसका दर्शन कर उपपातकों तथा महापातकों से लिप्त नर भी पवित्र हो जाते हैं। इस प्रकार 'पार्वती-सहित शिवलिङ्ग' की स्थापना कर वह हाथ जोड़ कर भगवान् की स्तुति करने लगा— ''सृष्टि-स्थिति-प्रलय के हेतुरूप एवं पार्वतीप्रिय शान्त शिव को मैं प्रणाम करता हूँ। हे वृषध्वज, विरूपाक्ष, कलाधर, जटाजूटधारी देव! आप मेरे कोटिशः नमस्कार स्वीकार करें। हे पिनाकपाणे, त्रिपुरान्तक, भव, जगद्बीजरूप, सृष्टिस्थित्यन्तकारी, जनहितकारी पशुपति

कलाधराय देवाय नमस्तुभ्यं कपर्दिने । तुभ्यं पिनाकहस्ताय त्रिपुरान्तकराय च ॥३४॥
भवाय भवबीजाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे । जगद्धिताय देवाय पशूनां पतये नमः ॥३५॥
नमोग्राय च भीमाय नमः केयूरधारिणे । महादेवाय देवाय अन्धकघ्नाय ते नमः ॥३६॥

व्यास उवाच—

इति स्तुत्वा महादेवं विकुम्भो दानवेश्वरः । अर्चयामास विधिवत् कुसुमैस्तं सिताऽसितैः ।३७।
अर्चयित्वा महादेवं ननाम स दिने दिने । प्रणामं दण्डवच्चाष्टौ विधाय च पुनः पुनः ।।३८॥
ततः काले व्यतीते तु विकुम्भो दानवेश्वरः । वर्षवातातपहिमैः पीडितं परमेश्वरम् ॥३९॥
दृष्ट्वा चायोमयीं छायां चक्रे लिङ्गोपरि स्वयम् । न तच्छ्रद्दधिरे देवा महेन्द्राद्यास्तपोधनाः ॥
कर्म बलवतस्तस्य गर्हयन् बलदर्पिताः ॥ ४१ ॥

ऋषय ऊचुः—

देवाः सर्वे महाभागा विकुम्भेन पराजिताः । श्रूयते तस्य तत्कर्म गर्हयामासुस्तत्कथम् ॥४२॥

व्यास उवाच—

जितापि तेन बलिना महेन्द्राद्या दिवौकसः । कृतास्तेन महाभागा न ते स्वर्गान्निराकृताः ।४३।
स्वर्गस्था देवताः सर्वा व्रतस्थास्तु द्विजातयः । गर्हितापि न निन्द्यन्ते[1] गावः क्षीरान्विता यथा ।
जितापि तेन बलिना पदस्थास्त्रिदिवौकसः । गरिष्ठां पदवीं मत्वा विनिन्दन्प्रोचुर्दानवम्[2] ॥

देवा ऊचुः—

प्रस्तरो माऽस्तु वै मूढ[3] लिङ्गोपरि सदैव हि । नास्ति पीडाब्दकोटीनां वृष्टिभिश्चापि शङ्करे ॥

देव ! मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ । उग्र, भीमरूपधारी, केयूरभूषित एवं अन्धकासुरनाशक महादेव को मेरा प्रणाम स्वीकार हो ॥ ३४-३६ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार दानवेश्वर 'विकुम्भ' ने भगवान् शङ्कर की स्तुति करने के पश्चात् श्वेत व काले पुष्पों से शिव की यथाविधि पूजा की । वह प्रतिदिन शङ्कर की पूजा कर आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करता रहा । तत्पश्चात् समय व्यतीत होने पर वर्षा, वायु तथा धूप से उन्हें दुःखी जान कर वह उनके ऊपर लोहे की छत्री लगाने लगा । उसका यह कार्य महेन्द्रादि देवगणों को अनुचित प्रतीत हुआ । उन्होंने विकुम्भ के इस कार्य की निन्दा की ॥ ३७-४१ ॥

ऋषियों ने कहा—महर्षे ! यह सुना जाता है कि एक बार सब देवगण 'विकुम्भ' से पराजित हुए थे । तब उसके इस कार्य की निन्दा क्यों की गई ? ॥ ४२ ॥

व्यासजी बोले—यद्यपि 'विकुम्भ' ने देवगणों को पराजित किया है, तो भी उन्हें स्वर्ग से नहीं निकाला । गर्हित होने पर भी स्वर्गस्थ समस्त देवगण तथा व्रतपरायण द्विजातिवर्ग दुधारू गाय की तरह निन्दित नहीं होते । बली विकुम्भ के जीतने पर भी देवगण अपनी महिमा से मण्डित होने के कारण 'दानव' से इस तरह कहने लगे ॥ ४३-४५ ॥

देवों ने कहा—अरे मूढ़ ! 'शिवलिङ्ग' के ऊपर लिपटे हुए लोहे को रख कर छाया

---

१. 'अपि निन्द्या न निन्द्यन्ते'—इति परिष्कृतः पाठः ।
२. 'व्यनिन्दन् दानवं सुराः'—इति परिष्कृतः पाठः ।
३. 'मा भूदयोमयी छाया'—इति परिष्कृतः पाठः ।

वर्षवातातपहिमैर्यद्यस्ति पीडितो हरः। तर्ह्यन्यां कुरु वै छायां न च तां श्रद्धयामहे ॥४७॥

व्यास उवाच—

देवानां वचनं श्रुत्वा विकुम्भः क्रोधमूर्छितः। आरुह्य पर्वतं छत्रं चक्रे तत्र शिरोपरि ॥४८॥
पर्वतस्यैव बलवान् पर्वतस्थः स दानवः। वितानितं महाछत्रं दृष्ट्वा तेन महात्मना ॥४९॥
साधु साध्विति ते प्रोचुर्महेन्द्राद्या दिवौकसः। पर्वताग्रे महाछत्रं लिङ्गोपरि वितानितम् ॥५०॥
आविर्बभूव देवेशः प्रोवाच दानवेश्वरम्। वरं वरय भद्रं ते तुष्टोऽस्मि तव कर्मणा ॥५१॥

व्यास उवाच—

इत्थं निशम्य धर्मात्मा वाणीं देवस्य शूलिनः। प्रोवाच वासस्ते भूयात् क्षेत्रेऽस्मिन् पार्वतीप्रियः॥
प्रत्युवाच स तं देवो विकुम्भं दानवेश्वरम्। हित्वा विन्ध्यं च कैलासं वसाम्यत्र महामते ।५३।
त्वया विनिर्मितं छत्रं[1] यावत्पश्यन्ति मानवाः। तावत्तिष्ठामि क्षेत्रेऽस्मिन् पार्वत्या सह नान्यथा॥
यत्त्वया प्रस्तरवरश्छत्रार्थं मच्छिरोपरि। स्थापितस्तमहं नित्यं धारयामि न संशयः ॥५५॥
कीर्तिस्ते विपुला दैत्य भूमौ स्थास्यति शाश्वती। विधृते प्रस्तरवरे यावदाहूतसम्प्लवम् ॥५६॥
न ते पराजयो युद्धे महेन्द्रस्यापि संयुगे। भविष्यति महाभाग निश्चलो भव सर्वथा ॥५७॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत। ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगाः ॥५८॥

नहीं की जाती। कोटि वर्षों तक वृष्टि होने पर भी वे जलधारा से पीड़ित नहीं होते। वर्षा, हवा तथा धूप से पीड़ित होने की यदि तुम्हें आशङ्का हो तो तुम किसी दूसरे प्रकार से छाया करो। इस तरह की छाया पर हमारी आस्था नहीं है ॥ ४६–४७ ॥

व्यासजी ने (फिर) कहा—मुनिवरों! देवों की बात सुनकर 'विकुम्भ' क्रोधवश उतावला हो पर्वत पर चढ़ गया। फिर उसने पर्वत को ही छत्र का रूप दे दिया। विकुम्भ द्वारा निर्मित वितान-सहित उस छत्र को देखकर महेन्द्रादि देवगण उसकी प्रशंसा करने लगे। उस पर्वत के मध्य में 'शिवलिङ्ग' के ऊपर विशाल छत्र को देखकर भगवान् शङ्कर वहीं प्रकट हो गए। उन्होंने दानवेश्वर की कल्याण-कामना की। शङ्कर ने उससे इच्छित 'वर' माँगने को कहा। यह भी कहा कि मैं तुमसे प्रसन्न हूँ ॥ ४८–५१ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शिवजी के वचन सुनकर उसने शङ्कर से वहाँ वास करने को निवेदन किया। उसकी बात सुनकर भगवान् ने कहा कि "मैं कैलास' और 'विन्ध्याचल' को छोड़ कर यहीं वास करूँगा। तुम्हारे द्वारा आरोपित इस छत्र को लोग जब तक देखेंगे तब तक मैं पार्वतीसहित यहीं वास करूँगा। जिस पत्थर को 'छत्र' के रूप में तुमने मेरे सिर के ऊपर रखा है, मैं उसे प्रतिदिन लगाए रहूँगा। "दैत्यवर! इस छत्री के रहते हुए तुम्हारी विपुल कीर्ति इस पृथ्वी पर प्रलयपर्यन्त रहेगी। महेन्द्र के साथ युद्ध करने पर भी तुम पराजित नहीं होगे। इस हेतु सदा निश्चिन्त रहो" ॥ ५२–५७ ॥

व्यासजी कहते रहे—यह कहकर भगवान् 'शङ्कर' अन्तर्धान हो गए। तदनन्तर देव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नाग आदि भगवान् की सेवा करने के लिए वहाँ वास करने

---

१ 'क्षेत्रम्'—'ख'।

निषेवणार्थं देवस्य तत्र वासं प्रचक्रमुः। देवदानवयक्षाश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ॥५९॥
तत्रस्थं छाययाक्रान्तं सेवन्ते परमेश्वरम्। निवस्य तत्र काष्ठासु सेवन्ते पार्वतीप्रियम् ॥६०॥
मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। भृगुर्वसिष्ठो भगवान् ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ॥६१॥
पूर्वद्वारे समाश्रित्य शिवं ते तत्र शङ्करम्। कश्यपाद्याश्च मुनयस्तथा नारायणो हरिः ॥६२॥
रुद्रा एकादशाः प्रोक्ता आदित्या द्वादशैव तु। वसवोऽष्टावश्विनौ द्वौ प्राणाद्या वायवस्तथा ॥
दक्षिणं द्वारमाश्रित्य सेवन्ते गिरिजापतिम्। स्कन्दः सनत्कुमारश्च महेन्द्रो वरुणस्तथा ॥६४॥
धनदश्च यमश्चापि तथा नारदपर्वतौ। पितरः कारणं कार्यं तथागस्त्यो महत्तपाः ॥६५॥
गालवो गार्ग्य एवाथ शक्तिधौम्यः पराशरः। बृहस्पतिः कविश्चैव मार्कण्डेयः श्रुतश्रवाः ॥६६॥
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैर्ग्रहैः सह तथा रविः। जमदग्निर्महातेजा जामदग्न्यस्तथैव च ॥६७॥
पुरन्दरसुतो विद्वान् जयन्तो बलिनां वरः। पुष्पदन्तश्चित्ररथो गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥६८॥
सह विद्याधरगणैर्हाहाहूहूसमन्वितैः। पश्चिमं द्वारमाश्रित्य च्छायाक्षेत्रेश्वरं हरम् ॥६९॥
निषेवन्ते महाभागास्तथा सिद्धगणाः शुभाः। शेषाद्या नागमुख्याश्च गङ्गाद्याः सरितां वराः ॥
एकाक्षा एककर्णाश्च बिडालाक्षास्तथा गणाः। तथोष्ट्रवक्त्रा ये चान्ये वाराहमहिषाननाः ॥७१॥

लगे। इस प्रकार वहाँ देव, सिद्ध, गन्धर्वादि सभी छाया से आच्छादित 'शङ्कर' की सेवा में संलग्न रहते हैं। वे सभी अपनी-अपनी दिशाओं से सम्बद्ध स्थानों पर शिवजी की सेवा करते हैं। 'मरीचि', 'अङ्गिरा', 'अत्रि', 'पुलस्त्य', 'पुलह', 'क्रतु', 'भृगु', 'वसिष्ठ' आदि महर्षि पूर्वद्वार में आश्रित होकर 'शंकर' की सेवा करने लगे। 'कश्यपादि' सप्तर्षि, नारायण, एकादश रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु तथा दो अश्विनी कुमार, प्राणादिक पाँच वायु—ये सब दक्षिण द्वार में निवास कर गिरिजापति की सेवा में रत रहते हैं। स्कन्द, सनत्कुमार, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, नारद, पर्वत, पितर, कारण, कार्य, अगस्त्य, गालव, भार्गव, शक्ति, धौम्य[1], पराशर, बृहस्पति, शुक्राचार्य, मार्कण्डेय, श्रुतश्रवा, नक्षत्रसहित चन्द्र, ग्रहसहित सूर्य, जमदग्नि, जामदग्न्य, इन्द्रपुत्र जयन्त, पुष्पदन्त तथा अप्सराओं के साथ 'हाहा', 'हूहू' आदि गन्धर्वों से युक्त विद्याधर गण—ये सब पश्चिम द्वार में स्थित होकर 'छायाक्षेत्रेश' की सेवा करते हैं। इनके अतिरिक्त सिद्धगण, शेषादि नागनायक, गङ्गादि नदियाँ, एकाक्ष[2], एककर्ण[3] विशालाक्ष, उष्ट्रवक्त्र, वराहमुख आदि गण उत्तर द्वार में निवास कर भगवान् शङ्कर की परिचर्या करते

---

१. 'उत्कोच' नामक तीर्थ में रहने वाले एक ऋषि, जो देवल के भाई तथा पाण्डवों के पुरोहित थे (भागवत १-६-२)। महाभारत के अनुसार ये 'व्याघ्रपद' ऋषि के पुत्र एवं शिवभक्त थे। अपने तपोबल से दिव्य ज्ञानी हो गए थे (अनु० १४-४५)।

२. मानवधर्म का पालन करने वाले मनुष्यों से अवध्य दानवों में से एक प्रकार के दानवविशेष (ब्रह्माण्ड० ३-६-१५)।

३. 'मत्स्यपुराण' (१२०.५२-५३) में देशविशेष का नाम भी 'एककर्ण' कहा गया है। जिससे होती हुई पवित्रा ह्लादिनी नदी पूर्व की ओर बहती है—"ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ। प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानपि सर्वशः ॥ धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि। केकरानेककर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥"

उत्तरं द्वारमाश्रित्य सेवन्ते तत्र शङ्करम्। बाणश्च बलिनां श्रेष्ठो विकुम्भो दानवोत्तमः ।७२।
विस्तार्य देवं छत्रस्य पर्वताग्रान्महेश्वरम्। सेवन्ते तत्र देवेशं छायेश्वरमहेश्वरम् ।।७३।।
उपरिष्टात्तु देवेशं छायादेवी यशस्विनी। कृत्वा छायां महेशस्य शिरोपरि समर्चति ।।७४।।
अधस्था राक्षसा घोरा निषेवन्ते महेश्वरम्। एतैश्चान्यैश्च बहुभिः सेवितोऽस्ति महेश्वरः ।७५।
धनं धान्यं च विपुलं लक्ष्मीमायुर्यशः श्रियम्। तुरङ्गान्दन्तिनः पुत्रान् ये वाञ्छन्ति समाहिताः।।
ते सम्यग् यान्तु क्षेत्रेऽस्मिन् छायया विनिषेविते। यस्माच्छायाऽपतत्तत्र छत्रस्य मुनिसत्तमाः ।।
छायाक्षेत्रमिति प्राहुस्तस्मात्तत्क्षेत्रमुत्तमम्। इत्येतत्कथितं विप्राश्छायाक्षेत्रस्य वर्णनम् ।।७८।।
अथान्यदपि वक्ष्यामि शृण्वन्तु सुसमाहिताः ।। ७९ ।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे छायाक्षेत्रमाहात्म्येऽष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।।

हैं। 'विष्कम्भ' पर्वत के अग्र भाग से छत्र को तान कर 'बाणासुर' तथा 'विष्कम्भ अपने हाथों 'शिव' के मस्तक पर छत्र लगाये रहते हैं। 'छायादेवी'[1] महेश के सिर पर छाया करती हैं। निम्न भाग में 'राक्षस'गण 'महेश' की सेवा करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य जनों से भी महेश्वर सेवित हैं। अतः धन, धान्य, सम्पत्ति, आयु लक्ष्मी, यश, हस्ति, अश्व, पुत्र आदि की कामनापूर्ति के इच्छुक जन 'छाया' से सेवित 'क्षेत्र'[2] (छायाक्षेत्र) में आकर भगवान् की प्रार्थना करें। मुनिवरों! 'छत्र' की छाया पड़ने के कारण ही इसे 'छायाक्षेत्र' कहा गया है। अतः यह क्षेत्र बड़ा श्रेष्ठ है। विप्रवरों! मैंने यह 'छायाक्षेत्र' का वर्णन कर दिया है। अब मैं और कुछ कहना चाहता हूँ। उसे भी आप लोग सावधानी के साथ सुनें ।। ५८ - ७९ ।।

।। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'छायाक्षेत्र'माहात्म्य नामक
एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

---

१. 'छायां छत्रेश्वरी तथा'—'दुर्गाकवच'—श्लोक ३६।

२. 'देवीभागवत के अन्त में देवी का स्थान 'मणिद्वीप' बताया गया है। जगत् के लिए उसे छत्ररूप कहा गया है। समग्र देव, गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, सिद्धादि का भी वहाँ वास बतलाया गया है—'ब्रह्मलोका-दूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः। मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते ।। कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः। गोलोकादपि सर्वस्मात् सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः ।। छत्रीभूतं त्रिजगतां भवसन्तापनाश-कम्। छायाभूतं तदेवास्ति ब्रह्माण्डानां तु सत्तमः ।।' 'क्षीरसागर' में भी इसे स्थित कहा गया है। 'ब्रह्माण्डपुराण' (४-४४-१००) के अनुसार 'ललितापीठ' का एक प्रसिद्ध स्थान 'छायाक्षेत्र' है।

अथान्यदपि माहात्म्यं छायाक्षेत्रस्य वै द्विजाः । उद्दालकेन मुनिना गीतं शृण्वन्तु साम्प्रतम् ।।
रहस्यमपि वक्ष्यामि जगतो हितकाम्यया । उद्दालको नाम ऋषिर्बभूव स तपोनिधिः ।।२।।
वक्ता साङ्ख्यस्य योगस्य कर्मयोगे अधिष्ठितः । स तपोवनवासस्थो भार्यया सह वेदवित् ।।३।।
स चकार महापुण्यं ब्राह्मणो वेदवल्लभः । क्रतूंश्च सोमयागस्य तत्रस्थः स चकार ह ।।४।।
आतिथेयांश्च अतिथीन् पूजयन् शंसितव्रतः । भुञ्जापयन्द्विजांस्तत्र[1] प्रत्यहं चातिथीनपि ।।५।।
व्रतं चान्द्रायणं नाम कुर्वन्नुद्दालको मुनिः । कदाचिद्दुर्दिनाकारं मेघगम्भीरनिःस्वनम् ।।६।।
नीलाभ्रघनसङ्काशं ददर्श पुरुषोत्तमम् । भावविज्ञापनार्थाय समायान्तं जगत्पतिम् ।।७।।
मार्कण्डेयादिभिर्भक्तैः सर्वतः परिवारितम् । शङ्खचक्रगदापद्मैः करस्थैरुपशोभितम् ।।८।।
श्रिया जुष्टं चतुर्बाहुं पीतकौशेयवाससी । परिधाय जगत्सर्वं भासयन्निव संस्थितम् ।।९।।
पुराणपुरुषं विष्णुं दृष्ट्वा चोद्दालको मुनिः । प्रणम्य परया भक्त्या सम्पूज्य च पुनः पुनः ।१०।
सभार्यः ससुतस्तत्र तुष्टाव पुरुषोत्तमम् । नारायणं निराकारं[2] निरीहं विश्वयोनिनम् ।।११।।
अजं यज्ञेश्वरं पुण्यं पुराणपुरुषं हरिम् । अनादिमध्यनिधनं रहितं पुरुषोत्तमम् ।।१२।।
वैकुण्ठनिलयावासं दुर्ज्ञेयं योगिनामपि । नमामि त्वां जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारकम् ।।१३।।
भवसागरमग्नस्य प्लवो भव जगत्पते । पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।।१४।।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष निमग्नो भवसागरे ।। १५ ।।

व्यासजी ने कहा—विप्रवरों! अब मैं दूसरे रूप में 'उद्दालक' द्वारा संकीर्तित 'छायाक्षेत्र' का माहात्म्य वर्णन करता हूँ। उसे आप लोग अवगत करें। लोकमङ्गल की कामना से मैं उस सम्बन्ध में वास्तविकता को बतलाता हूँ। प्राचीन काल में एक तपस्वी 'उद्दालक' नाम के ऋषि थे। साङ्ख्य-योग का निर्वचन करने पर भी वे 'कर्मयोगी' थे। वेदमर्मज्ञ उद्दालक अपनी पत्नी के साथ तपोवन में वास करने के लिए गए। उन्होंने 'सोमयाग' सम्बन्धी अनेक यज्ञ किए। साथ ही वे प्रतिदिन ब्राह्मणों का पूजन तथा अतिथि-सत्कार बराबर किया करते थे। 'चान्द्रायण' व्रत करते हुए एक दिन उन्होंने मेघाच्छन्न आकाश में नील मेघों की गर्जना के समान अपने समक्ष घनश्याम पुरुषोत्तम भगवान् को देखा। पुरुषोत्तम भगवान् उनके आन्तरिक भाव को जानने की इच्छा से वहाँ आए थे। शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी वे (विष्णुभगवान्) मार्कण्डेयादि ऋषियों से परिवेष्टित, लक्ष्मी से सेवित, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज स्वरूप धारण कर समग्र संसार को अपनी दीप्ति से भासित करते हुए से प्रतीत हो रहे थे। उन्हें देखते ही उद्दालक ने भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम करते हुए उनकी अभ्यर्चना की। फिर अपनी पत्नी एवं पुत्र के सहित उनका स्तवन करना आरम्भ किया। उद्दालक कहने लगे—नारायण! आप निर्विकार, निरीह, संसार के आदि कारण, अज, यज्ञाधिष्ठाता, आदि-मध्य-अन्त-रहित, वैकुण्ठवासी तथा योगियों से भी दुर्ज्ञेय हैं। आप ही सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कारणरूप हैं। मैं आप को प्रणाम करता हूँ। प्रभुवर! आप इस भवसागर से पार लगाने के लिए नौका के समान

---

१. 'भोजयामास विप्रान् स'—इति परिष्कृतः पाठः। २. 'निर्विकारम्' इत्यभिलक्ष्य प्रयुक्तः।

व्यास उवाच—

इति स्तुत्वा जगन्नाथं पुराणपुरुषं हरिम्[1] । पप्रच्छ मुनिशार्दूलाः सर्वयोगपथान्तवित् ॥१६॥

उद्दालक उवाच—

अच्युतानन्त गोविन्द प्रभविष्णो भवाव्यय । त्वामहं शरणं प्राप्तः पापदावाग्निपीडितः ॥१७॥
प्रष्टुं जनानां सर्वेषामुपायं पापनाशनम् । केनोपायेन लोकानां जायते पापविच्युतिः ॥१८॥
कमाराध्य कलौ सम्यग्वितरिष्यन्ति मानवाः । ऋणत्रयविनिर्मुक्ताः कमाराध्य कलौ नराः ॥
गत्वा चैव भविष्यन्ति किं वा पुण्यतमं भुवि । दरिद्राः कृपणा दीना ये भवन्ति महीतले ।२०।
तेषामपि उपायं वै ब्रूहि सत्यं विधानतः । कथयस्व जगन्नाथ पुण्यं क्षेत्रमनुत्तमम् ॥२१॥
नानारोगजराव्याधि दर्शनाद्यस्य नश्यति ॥ २२ ॥

व्यास उवाच—

इति श्रुत्वा स भगवान् उवाच मुनिसत्तमम् । मेघगम्भीरया वाचा पूरयन्निव भूतलम् ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच—

जागर्ति शङ्करे देवे छायाक्षेत्रनिवासिनि । नास्ति भीतिर्मनुष्येषु भवसागरसम्भवा ॥२४॥
हिमालयस्य कोणे वै शृणुष्व मुनिसत्तम । छायाक्षेत्रमिति ख्यातं सर्वक्षेत्रोत्तमं स्मृतम् ॥२५॥
सुप्रियं देवदेवस्य कैलासभवनोपमम् । गता यत्र न शोचन्ति मानवा मुनिसत्तम ॥२६॥

हैं। मैं—पापी, पापकर्मा, पापात्मा तथा पापों का कारण भी हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष ! आप मुझे क्षमा करें। मैं भवसागर में डगमगा रहा हूँ ॥ १ – १५ ॥

व्यासजी (शौनकादि ऋषियों को सम्बोधित कर) बोले—मुनिश्रेष्ठों ! पुराणपुरुषोत्तम संसार के स्वामी भगवान् 'विष्णु' की इस प्रकार स्तुति करने के बाद योगिश्रेष्ठ उद्दालक ने यह जिज्ञासा की ॥ १६ ॥

उद्दालक ने कहा—हे अच्युत, अनन्त, गोविन्द, प्रभविष्णो, नित्यरूप, पुरुषोत्तम ! मैं इस संसाररूपी दावाग्नि से दुःखी हो आपकी शरण में आया हूँ। मैं आप से यही जानना चाहता हूँ कि सर्वसाधारण जनों के पापविमोचन का क्या उपाय है ? लोग क्या करने से पापविमुक्त हो सकते हैं ? किस देवता की आराधना करने से कलियुग में पापियों का उद्धार हो सकेगा ? देव, ऋषि तथा पितृऋण से लोग किस प्रकार मुक्त हो सकेंगे ? इस भूमण्डल के दरिद्र लोग, दीनजन तथा कृपणता से दुःखी मनुष्य कहाँ जाने पर पुण्य अर्जन करेंगे ? आप कृपया इन लोगों के योग्य उपाय का निर्वचन करने के साथ ही उस सर्वोत्तम क्षेत्र के सम्बन्ध में भी निर्देश दें, जिसका दर्शन करने से अनेक रोग जरा एवं व्याधियाँ दूर हो जायँ ॥ १७ – २२ ॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों ! उद्दालक की बातें सुनकर भगवान् संसार को निनादित करती हुई मेघ के समान गम्भीर वाणी से 'उद्दालक' को सम्बोधित करने लगे ॥ २३ ॥

भगवान् ने बोलना आरम्भ किया—मुनिवर ! छायाक्षेत्र में सुप्रतिष्ठित भगवान् शङ्कर के जागरूक रहते हुए लोग भवसागर की भीति से उत्पीड़ित नहीं हो सकते। हिमालय के एक

---

१. 'पुराणपुरुषोत्तमम्'—इत्यपरः पाठः ।

अस्मात्परतरं स्थानं शंभोर्नैव हि विद्यते । स्थलमेनं हि[1] विप्रर्षे ! शृणुष्व मदुदाहृतम् ॥२७॥
हिमालयस्य कोणे यो दाडिमाद्रिरिति श्रुतः । स तस्मात्पूर्वभागे वै विष्कम्भो नाम पर्वतः ।२८।
जटासरिन्मध्यगतो नानाधातुविराजितः । नदीभिः सेवितो रम्यो देवगन्धर्वपूजितः ॥२९॥
पर्वतोऽस्ति महाभाग साक्षान्मेरुरिव स्वयम् । यमारुह्य गिरिं पुण्यं विकुम्भो दानवेश्वरः ॥३०॥
छायां चक्रे महेशस्य शिरोपरि सुशोभनाम् । तस्याधि पूर्वभागे वै स्थलमस्ति सुशोभनम् ।३१।
छायाक्षेत्रमिति क्षेत्रं तमाहुस्त्रिदिवौकसः । तत्रास्ते भगवान् साक्षात् पार्वत्या सह शङ्करः ॥
विकुम्भरचितां छायामाश्रित्य त्रिपुरान्तकः । यथा कैलासशिखरे यथा मन्दरमूर्धनि ॥३३॥
यथा हिमाद्रिशिखरे यथा केदारमण्डले । जागर्ति यत्र देवेशश्छायाक्षेत्रे तथैव हि ॥३४॥
तत्र क्षेत्रं महापुण्यं दृष्ट्वा देवो महेश्वरः । कैलासादपि विप्रर्षे ! परां प्रीतिमवाप ह ॥३५॥
तत्र गत्वा न शोचन्ते मानवा न पुनर्भवात् । कोटिजन्मार्जितैः पापैः प्रलिप्तोऽपि न संशयः ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिसंसारभयनाशनम् । न पुनर्विन्दते मर्त्यश्छायाक्षेत्रं प्रदृश्य वै ॥३७॥
दृष्टमात्रं प्रदहति मानवानां दुरात्मनाम् । छायाक्षेत्रेश्वरो देवः पातकं मुनिसत्तम ॥३८॥
येनार्चितोऽस्ति भूलोके छायाक्षेत्रेश्वरो हरः । तेनार्चितानि लिङ्गानि सकलानि महेश्वरः ।३९।
छायाक्षेत्रं समुत्सृज्य क्षेत्रान्तरयियासुना । जन्मान्तरसहस्रेभ्यः कृतं पुण्यं विनश्यति ॥४०॥
गत्वान्यत्र कृतं सर्वं प्रणश्यति न संशयः । अतिपापोपपापानि महापापानि चैव हि ॥४१॥
बुद्धयाऽबुद्धया कृतान्यङ्ग छायाक्षेत्रं विशन् दहेत् । छायाक्षेत्रं प्रविश्याशु क्षेत्रेशं चापि शङ्करम्॥

छोर पर देवप्रिय 'कैलास' क्षेत्र के समान ही 'छायाक्षेत्र'[2] है। वहाँ पहुचने पर लोग दुःखी नहीं रहते। इससे बढ़कर और कोई दूसरा 'शिवक्षेत्र' नहीं है। मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ। तुम सुनो। हिमालय के एक कोने पर 'दाडिम पर्वत' है। उसके पूर्व की ओर 'विष्कम्भ' पर्वत स्थित है। वह पर्वत 'जटागङ्गा' के मध्य अनेक धातुओं की खानों को छिपाये हुए, बहुत सी नदियों को समेटते हुए—देव, गन्धर्व तथा सिद्धजनों से आवासित हो साक्षात् मेरु की तरह शोभायमान है। जिस पावन पर्वत पर आरूढ हो दानवेश्वर विकुम्भ ने भगवान् शङ्कर के ऊपर छाया की है। उसकी अधित्यका के पूर्वभाग में स्थित रमणीय स्थल-विशेष को देवों ने 'छायाक्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध किया है। वहीं पर पार्वती-सहित भगवान् त्रिपुरान्तक शङ्कर 'विकुम्भ' द्वारा रचित उस छाया का समाश्रयण ले विराजमान हैं। जिस प्रकार भगवान् शङ्कर कैलास-शिखर पर, 'मन्दराचल' पर, हिमालय' के शिखर पर तथा 'केदारमण्डल' में जागरूक रहते हैं, वैसे ही वे 'छायाक्षेत्र' में भी सदैव जागरूक रहते हैं। ब्रह्मर्षे! उस पावन क्षेत्र को देखकर उसके प्रति भगवान् शङ्कर को 'कैलास' से भी अधिक आसक्ति हो गयी है। वहाँ जाकर विविध प्रकार के पापों से लिप्त मानव भी पुनर्जन्मजन्य दुःख की अनुभूति नहीं करते। जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधिजन्य भय के विनाशक 'छायाक्षेत्र' का दर्शन होते ही मानव दुःखरहित हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! (कहां तक कहें) 'छायाक्षेत्र' का दर्शन होते ही दुर्जनों के पाप भी दूर हो जाते हैं। जिसने इस

---

१. स्थलं नष्टं हि—इत्यपरः पाठः।

२. 'छकाड़' नाम से सुविदित है।

समभ्यर्च्य सर्वदुःखेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः। स्वदरिद्रादिरोगाणां भीतिस्तावद्बलीयसी ॥४३॥
अस्ति यावन्न सत्क्षेत्रं छायाक्षेत्रं विशेन्नरः। प्रविश्य तत्र सत्क्षेत्रे नानादुःखादिकोटयः ॥४४॥
विलीय यान्ति चात्यर्थं सत्यमेतन्मयोदितम्। दुःखसागरमग्नोऽपि छायाक्षेत्रं न याति यः ॥४५॥
स न विन्दति भूलोके सुखं मुनिवरोत्तम। संसर्गादपि ये तत्र यान्ति क्षेत्रोत्तमं शुभम् ॥४६॥
तेऽपि दुःखादिरोगाणां न भयं प्राप्नुवन्ति हि। शृणु ब्रह्मन् पुरा राजा सुबलाश्वेति विश्रुतः ॥
जम्बूद्वीपपतिः श्रीमान् पाकशासनविक्रमः। बभूव मतिमान् राजा वैवस्वतकुलोद्भवः ॥४८॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्। बभूव मृगयाशीलः सर्वदा स धनुर्धरः ॥४९॥
कदाचित् स नृपो ब्रह्मन् मृगं हत्वा महावने। उपविष्टः प्रहारेण प्रहसन् शिवयोगिनम् ॥५०॥
स सत्यविमुखो मन्दो दैवयोगेन सत्यहा। तस्य तेनाऽभवद्युद्धं बलिना सह योगिना ॥५१॥
स मन्यमानस्तं योगिं राक्षसं वनगोचरम्। प्रहाराभिमुखं राजा निजघान महाबलम् ॥५२॥
हते तस्मिन्महाकाये स राजा दुर्मना इव। ययौ निजगृहं यावत्तावत्तस्य महात्मनः ॥५३॥
सञ्चिता राजभिः पूर्वं राज्यलक्ष्मीः क्षयं ययौ। अमात्यामात्यमुख्याश्च राजपत्न्यस्तथैव च ॥
तथा जानपदाः सर्वे क्षयं ययुर्जरां विना। तस्य पापेन महता स्वाम्यं तस्य विनिर्ययौ ॥५५॥

पृथ्वी पर 'छायाक्षेत्रेश्वर' का पूजन कर लिया हैं, उसे समग्र शिवलिङ्गों के पूजन का फल प्राप्त हो जाता है। छायाक्षेत्र को छोड़ कोई व्यक्ति यदि किसी दूसरे क्षेत्र में जाने का इच्छुक है तो उसके जन्मान्तरों में किये हुए पुण्य विनष्ट हो जाते हैं। अङ्ग! इसके विपरीत 'छायाक्षेत्र' में प्रवेश करते ही ज्ञात और अज्ञात पाप भस्म हो जाते हैं। 'छायाक्षेत्र' में प्रविष्ट हो भगवान् शङ्कर का पूजन करने से सब (त्रिविध) दुःखों से मुक्ति मिल जाती है। 'छायाक्षेत्र' में प्रविष्ट होने के पूर्व तक ही दारिद्रय तथा रोगजन्य भय विद्यमान रहते हैं। उस श्रेष्ठ क्षेत्र में प्रवेश करते ही दुःखसमुदाय निःसन्देह विलीन हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! संसार के दुःखों से उद्विग्न मानव यदि छायाक्षेत्र की यात्रा नहीं करता तो यह समझो कि उसके भाग्य में सुख नहीं लिखा है। छायाक्षेत्र के संसर्ग में आने वाले लोगों को भी दुःख-रोगादि का भय व्याप्त नहीं होता। ब्रह्मन्! कुछ और सुनो। प्राचीन काल में 'जम्बूद्वीप' में इन्द्र के समान पराक्रमी 'सुबलाश्व'[1] नाम का एक राजा था। वह सूर्यवंशी राजा बड़ा बुद्धिमान् था। वह औरस पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करता रहा[2]। मृगया में आसक्त हो जाने से वह अपने हाथों सदा धनुष-बाण लिए रहता था। ब्रह्मन्! एक बार ऐसा हुआ कि उसके द्वारा घोर जङ्गल में मृग का शिकार किये जाते हुए एक 'शिवयोगी' मिल गया। मृग को मार-कर बैठे हुए उसने हँसी-हँसी में कुछ झूठ बोल दिया। उस योगी को वनचारी राक्षस जान झूठ-मूठ उस मूर्ख राजा ने योगी के साथ युद्ध छेड़ दिया। प्रहार करते हुए योगी के सम्मुख उस राजा ने शक्तिशाली योगी की हत्या कर दी। उस भीमकाय योगी को हत्या के पश्चात् दुःखी हो

---

१. 'महाभारत' (वन० २५६·८) में 'सुबल' नाम मिलता है। इनका पुत्र 'जयद्रथ' का साथी था।

२. तुलना करें—"स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः। सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षिति-मण्डले॥ तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥"—दुर्गासप्तशती अ० १, श्लो० ४-५।

ततः स मतिमान् राजा भूरिश्रीको महावनम् । ययौ च हयमारुह्य पदातीनां शतैः सह ।५६।
अटन् वनान्तरे दिव्ये यत्र यत्र नरेश्वरः । ददर्श तत्र तत्रैव समायान्तं स योगिनम् ।।५७।।
दिव्यं शूलधरं भीमं प्रहरन्तं पुनः पुनः । ततः सञ्चिन्तयामास स राजा नयकोविदः ।।५८।।
कोऽयमायाति मां भीमः प्रहरन्नेव नित्यशः । इति सञ्चिन्त्यमानस्य नृपतेर्मुनिसत्तम ।।५९।।
अशरीरा महद्वाणी विपिने सम्बभूव ह । उपदेशकरी दिव्या जगत्त्रयहिते रता ।।६०।।
नृप मा भैषीर्माभैषीः स्मर पापं स्वमर्जितम् । शिवयोगिवधोद्भूतं विपिने ज्ञानसम्भवम् ।६१।
निहतोऽस्ति त्वयाऽरण्ये शिवयोगी महातपाः । तेन पापेन ते सर्वा राज्यलक्ष्मीः क्षयं गता ।।
निष्कृतिस्तस्य पापस्य अचिरात्वं प्रलप्स्यसि । हिमालयस्य कोणे वै याहि याहीति मा चिरम् ।।
जटा-दोग्ध्री-सरिन्मध्ये विष्कम्भाद्रौ महेश्वरम् । समर्चय महादेवं छायाक्षेत्रेश्वरं नृप ।।६४।।
तत्र स्नात्वा च कुण्डेषु त्रिषु पुण्येषु शोभनम् । स्वल्पैरहोभिर्नृपते समर्च्य तत्र शङ्करम् ।।६५।।
निष्कृतिं प्राप्य पापस्य स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् । मृतः शिवपुरीं रम्यां यास्यसि त्वं न संशयः ।।

श्रीभगवानुवाच—

अशरीरया समुदितां वाणीं श्रुत्वा नरेश्वरः । ययौ पदातिभिः सार्धं प्रहृष्टो हिमपर्वतम् ।६७।
स शारदातटं रम्यं पश्यन् परमधार्मिकः । गन्धर्वांश्चैव यक्षांश्च तथैव च मरुद्गणान् ।।६८।।

वह अपने घर चला गया । घर जाकर उसने देखा कि पूर्व पुरुषोपार्जित राज्यलक्ष्मी सब विनष्ट हो चुकी है । उसकी पत्नी, अमात्य, मुख्य अमात्य—यहाँ तक कि प्रजा भी—विना वार्धक्य के विनष्ट हो चुके हैं । उस महान् पाप से उसकी सब प्रभुता जाती रही । तदनन्तर निर्धन होते हुए भी वह बुद्धिमान् राजा अपने सैकड़ों पैदल सिपाहियों के साथ स्वयम् घोड़े पर सवार हो उस घोर जङ्गल में पहुँचा । जङ्गल में घूमते-घूमते जिधर वह जाता उधर ही उसे योगी भी आते हुए दिखाई पड़ जाता । केवल यही नहीं, अपि तु वह शूलधारी योगी उसकी ओर प्रहार करता हुआ-सा भासित होता है। उसे देख राजा ने मन में सोचा कि प्रतिदिन यह कौन मेरी ओर अभिमुख हो प्रहार करता हुआ चला आता है ? मुनिवर ! सुबलाश्व के इस प्रकार विचार करते हुए उस वन में अचानक हितकारिणी आकाशवाणी हुई । वाणी ने राजा से भयभीत न होने की घोषणा की । साथ ही वन में ज्ञानतः शिवयोगी के वधजन्य स्वयम् उपार्जित पाप का स्मरण करने को भी कहा । यह भी बतलाया कि उसी पाप के कारण तुम्हारी राज्यलक्ष्मी विनष्ट हुई है । उस पाप का निराकरण बहुत शीघ्र ही होने वाला है। अतः तुम हिमालय के कोने पर अविलम्ब जाओ, शीघ्र जाओ । 'जटागङ्गा' और 'दोग्ध्री' नदियों के मध्य 'विष्कम्भ' पर्वत पर 'छायाछत्रेश्वर' भगवान् शङ्कर की आराधना करो। राजन् ! वहाँ तीनों पवित्र कुण्डों में स्नान कर कुछ ही दिनों के पूजनोपरान्त तुम अपने पापों का निरसन कर पुनः राज्य प्राप्त कर लोगे[1] । तथा देहावसान होने पर तुम्हें शिवलोक प्राप्त हो जायगा ।। २४ – ६६ ।।

पुनः भगवान् बोले—इस प्रकार आकाशवाणी की घोषणा को सुनकर वह राजा प्रसन्न होते हुए अपनी पैदल सेना सहित हिमालय पर्वत की ओर प्रस्थित हुआ । परम धार्मिक वह राजा

---

१. तुलना करें—"तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् । आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥"—दुर्गासप्तशती अध्याय १३, श्लोक ५ ।

नागांश्चानेकशिरसः साध्यान्वै पन्नगांस्तथा । गन्धर्वान्पन्नगान्यक्षान् सुपर्णांश्च तथापरान् ।६९।
पश्यन् स प्रययौ राजा मुद्गलस्याश्रमं शुभम् ।
तत्र स्नात्वा च विधिवत् स किञ्चिन्निष्क्रीति शुभाम् ।। ७० ।।
प्राप्य दाडिमसञ्ज्ञं वै विलङ्घ्य पर्वतोत्तमम् । विष्कम्भाद्रिं समारुह्य स पश्यन्स्थलमनुत्तमम् ।।
तत्र मध्ये महादेवं छायाक्षेत्रेश्वरं हरम् । प्रपश्यन् स विमुक्तोऽभूत्[1] हत्यया मुनिसत्तम ।।७२।।
विमुच्य पातकात्तत्र स राजा नयकोविदः । अर्चयामास देवेशं शिलयाच्छादितं हरम् ।।७३।।
त्रिरात्रं समुपोष्याशु ब्रह्माणं कमलासनम् । नानाफलैश्च पुष्पैश्च तथैव स्वर्णपङ्कजैः ।।७४।।
तदूर्ध्वस्थं च मां तत्र समर्च्य स नृपेश्वरः । चक्रे उपासां देवस्य स नृपो मुनिसत्तम ।।७५।।
पूर्णमासत्रयं तत्र सह तैश्चारुवारिभिः । अर्चयंस्तत्र देवेशं स राजा प्राप शोभनम् ।।७६।।

'शारदा' के तटवर्ती रम्य प्रदेश एवं मार्गस्थ यक्ष, गन्धर्व, मरुद्गण[2], नाग, साध्य[3] ऋषिगण, अनेक सिर वाले नागों, सुपर्णों[4] आदि को देखते हुए 'मुद्गल'[5] ऋषि के आश्रम में पहुँच गया। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करने के बाद आगे चलकर 'दाड़िम' पर्वत को डाँकता हुआ वह विष्कम्भ पर्वत पर आरुढ हो सुरम्य स्थल को देखने लगा। मुनिवर! वहाँ पर्वत के मध्य शिला से ढँके हुए 'छायाक्षेत्रेश्वर' का दर्शन कर वह राजा ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा पा सका। फिर तीन रात उपवास कर विविध स्वर्ण-कमलों के पुष्पों से कमल पर आसीन 'ब्रह्मा' की पूजा की। वहीं ऊपरी भाग में मेरी (विष्णु) भी पूजा कर भगवान् शङ्कर के समीप बैठ उपासना करने लगा। इस प्रकार तीन मासपर्यन्त पूजा सहित वह अभिषेक करता रहा। तीन मास बीतने पर भगवान् की कृपा से वह देवोपम रूप प्राप्त कर सका। उसके सभी पराक्रमी साथी भी अनुपम

---

१. 'स विमुक्तोऽसौ'–इति पाठान्तरम्।

२. एक देवगण का नाम, जो वेदों के अनुसार 'रुद्र' और 'वृष्णि' के पुत्र थे। किन्तु पुराणों में इन्हें 'कश्यप' और 'दिति' का पुत्र बतलाया है। इन्हे गर्भ में ही इन्द्र ने ४९ टुकड़ों में विभक्त कर दिया था। तब ये रोये। इन्द्र ने कहा मत रोओ—'मा रुदिहि'। ये ही ४९ 'मरुत्' हुए। वेदों में ये अन्तरिक्ष स्थानीय देवता कहे गए हैं, पर वायुपुराणानुसार ये 'आवह', 'प्रवह' आदि सात स्कन्धों के निवासी कहे गए हैं—(वायुपुराण १०१।२९)।

३. एक प्रकार के देवता जो 'गणदेवता' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या २२ कही गई है। कुछ ग्रन्थों में इनकी संख्या १७ भी बतलाई गई है। विष्णुपुराणानुसार यह दक्ष-प्रजापति की पुत्री 'सन्ध्या' के गर्भ से 'धर्म' के पुत्र हैं। देखें भागवत (६।६।७)—"विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान् प्रचक्षते। साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥"

४. भगवान् 'विष्णु' के वाहन 'तार्क्ष्य' और 'विनता' के पुत्र 'गरुड' का नाम 'सुपर्ण' है—"उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान्। गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥"–(भागवत १०।५९।१८)।

५. देखें भागवत (९, २१, ३१-३४)–"शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत्। भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ मुद्गलाद् ब्रह्मनिर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसञ्ज्ञितम् ॥"

रूपं देवोपमं दिव्यं प्रसादात्पार्वतीप्रियात् । ते सर्वेऽपि महाभागा नरास्तस्यानुवर्तिनः ॥७७॥
प्रापू रूपं समधिकं देवेभ्योऽपि महाबलाः । प्राप्य रूपं स राजर्षिस्तथा पापस्य निष्कृतिम् ॥७८॥
तथाऽनुज्ञां हि देवस्य स्नात्वा तीर्थेषु त्रिष्वपि । अनेककोटिकल्पानां पाथेयं स विरच्य वै ॥७९॥
सहानुयायिभिर्ब्रह्मन् ययौ निजपुरं पुनः ॥ ८० ॥

स तोरणोद्यानसहस्रशोभितं प्रवालमुक्ताफलरत्नचित्रितम् ।
ददर्श देवेन्द्रपुरं यथा श्रिया महोज्ज्वलं चारु विचित्रवर्चसम् ॥ ८१ ॥
स तप्तचामीकरचारुवर्चसं गृहं प्रविश्याथ[1] शशास भूतलम् ।
ततो महेन्द्रस्त्रिदिवालयं यथा प्रसादतो देवपतेस्तथा नृपः ॥ ८२ ॥

तस्यानुचारिणो लोकाः प्रसङ्गेनाऽपि ये हरम् । छायाक्षेत्रेश्वरं ब्रह्मन् ददृशुस्तेऽपि मानवाः ॥
गजवाजिसहस्राणामैश्वर्यं प्रापुर्नान्यथा । प्रसादाद्देवदेवस्य किमुतो भक्तिभावुकाः ॥८४॥
सह तेन नरेन्द्रेण मृतास्ते शिवमन्दिरम् । प्रापुर्देवर्षिसिद्धानां दुष्प्राप्यं योगिनामपि ॥८५॥
अनेककोटितीर्थेषु स्नानदानादिकं तथा । कृत्वाऽपि क्रियते सम्यक् तस्य[2] पुण्यायते द्विजाः ॥
तत्र स्नात्वापि विप्रर्षे श्रद्धया परया युतः । छायाक्षेत्रे व्रजन् सम्यक् यत्रास्ते भगवान् हरः ॥८७॥

व्यास उवाच—

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत । उद्दालकोऽपि वैकुण्ठं नमस्कृत्य तपोधनः ॥८८॥
सभार्यः ससुतो विप्रश्छायाक्षेत्रं समाययौ । तत्रार्चयत्[3] शिवं शान्तं सभार्यः ससुतो बली ॥८९॥
अर्चयित्वा शिवं तत्र कुण्डं चोद्दालको मुनिः । तस्याग्रे चातिविस्तीर्णं[4] ददर्श मुनिसत्तमाः ॥

रूप-सम्पन्न हो गए। इस प्रकार राजा की पापनिष्कृति तथा उन सबका रूपसम्पन्न होना—यह सब भगवान् की कृपा ही समझें। भगवान् देवेश से आज्ञा प्राप्त कर उसने तीनों तीर्थों में स्नान किया। इस विधान द्वारा 'सुबल' ने अपने असंख्य पापों को धो डाला। ब्रह्मन्! तदनन्तर कल्पान्तरों के लिए पाथेय सञ्चित कर वह राजा अपने नगर को वापस हो गया। नगर में प्रवेश करते ही उसने मूँगे और मोतियों से खचित एवं 'तोरणों' और 'उद्यानों' से सुशोभित अमरावती की तरह समुद्भासित अपने नगर को देखा। आगे बढ़कर तप्तकाञ्चन के समान देदीप्यमान अपने राजमहल में प्रविष्ट हो स्वर्गस्थ देवपति इन्द्र की तरह पृथ्वी पर राज्य-शासन में संलग्न हो गया। ब्रह्मन्! संसर्गवश उसका अनुयायिवर्ग भी उसके साथ 'छाया-क्षेत्रेश्वर' का दर्शन-लाभ प्राप्त कर हाथी-घोड़ों सहित ऐश्वर्यवान् हो गया। देहावसान होने पर देवेश की कृपा से वे सब योगियों को भी दुष्प्राप्य शिवलोक में प्रतिष्ठित हो गए। ब्रह्मर्षे! 'शङ्कर' के वासस्थान 'छायाक्षेत्र' में स्नान कर श्रद्धापूर्वक पूजन करने वालों की तुलना में असङ्ख्य तीर्थों में जाकर स्नान-दानादि करने का पुण्य कुछ भी नहीं है॥ ६६–८७॥

व्यासजी ने कहा—मुनिवरों! इस प्रकार कहते हुए विष्णु भगवान् अन्तर्निहित हो गए।

---

१. 'प्रविश्याद्'–'ख'।
२. 'नास्य पुण्यायते द्विजाः'–'ख'।
३. 'तत्रार्चयन्'—'ख'।
४. 'नातिविस्तीर्णम्'—'ख'।

गोभिर्विरचितं सम्यक् तपोवासं च कामदैः। ब्रह्मवृद्धैस्तपोवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सेवितम् ॥९१॥
ब्रह्मज्ञानमयो देवो विद्यया तत्र[1] संस्थितः। राजा वैवस्वतो नाम मरुद्भिः सहितस्तदा[2] ॥९२॥
होमद्रव्यं समुत्तार्य[3] तोयं नीत्वा पुनः पुनः। ददौ वैवस्वतो राजा समाहूय पितामहम् ॥९३॥
ब्रह्मा जुहोति तां तस्मात् मरुद्भिः सहितस्तथा। मानसं सरसां श्रेष्ठं यः शृणोति समाहितः ॥
वाजिमेधसहस्रस्य तस्य तीर्थेष्वनेकशः। इति लोकश्रितं विप्रा[4] मानसं खण्डमुत्तमम् ॥९५॥
य एतन्मानसं खण्डं शृणोति श्रावयति वा। स याति शिवलोकं हि कुलकोटिसमन्वितः ॥९६॥
विश्रुतं सर्वतीर्थेषु सर्वकामफलप्रदम्। अतः परं महाभाग किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥९७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे छायाक्षेत्रमाहात्म्ये एकोनाशीतिशततमोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

साथ ही उद्दालक[5] भी उन्हें प्रणाम कर अपने पुत्र तथा पत्नी के साथ छायाक्षेत्र को चले गये। उस पराक्रमी ब्राह्मण ने अपने परिवारसहित भगवान् शङ्कर की अर्चना की। मुनिवरों! वहीं उसने आगे की ओर एक विस्तीर्ण (बड़ा) कुण्ड देखा। उसके आगे गोमय से लिपा पुता (अथवा गोपों द्वारा विरचित) 'तपोवास' (तपस्वियों का आश्रम) भी दिखाई पड़ा। वह आश्रम मनोभिलषित फल को देने वाले ब्रह्मज्ञानियों, तपोवृद्ध ऋषियों तथा वयोवृद्ध सिद्धों से अभिव्याप्त था। वहाँ 'विद्या' के साथ ब्रह्मज्ञानमय 'देव' (ब्रह्मा) निवास करते हैं। राजा वैवस्वत देवों के साथ वहाँ बैठे। तब 'ब्रह्मा' ने वहाँ देवों के साथ यज्ञ प्रारम्भ किया। राजा वैवस्वत ने होमद्रव्य (आज्यादि) को हटा ब्रह्मा को आवाहित करते हुए वहाँ से जल लेकर उन्हें अर्पित किया। इस तरह श्रेष्ठ मानसरोवर सुविदित हुआ। विप्रवरों! तत्पश्चात् यह 'मानसखण्ड' लोक में प्रसिद्ध हुआ। उसके तीर्थों में जाने से अनेक अश्वमेध-यज्ञों का फल

---

१. 'यत्र'—'ख'। २. 'यं विरच्य तपोधनाः'—'ख'।
३. 'समुत्सार्य'—'क' 'ख'। ४. 'इत्येतत्कथितं विप्राः'—'क' 'ख'।

५. (क) 'वायुपुराण' (४१।४२–४६) के अनुसार 'उद्दालक' ऋषि का आश्रम हिमालय के पूर्वी तट पर था, जिसे 'कलाप' ग्राम कहते हैं। इनके पुत्र 'श्वेतकेतु' बड़े प्रसिद्ध रहे हैं—'नानाभूतगणाकीर्णे पृष्ठे हिमवतः शुभे। तस्य पूर्वे तटे रम्ये सिद्धावासमुदाहृतम्। कलापग्राममित्येवं नाम्ना ख्यातं मनीषिभिः ॥ मृकण्डस्य वसिष्ठस्य भरतस्य नलस्य च। विश्वामित्रस्य विप्रर्षेस्तथैवोद्दालकस्य च ॥ अन्येषां चोग्रतपसामृषीणां भावितात्मनाम्। हिमवत्याश्रमाणां च सहस्राणि शतानि ॥' (ख) इसके अतिरिक्त महाभारत में वर्णित आयोद धौम्य के तीन शिष्यों में से एक शिष्य 'उद्दालक' नामक थे। इन्होंने गुरु की आज्ञा से 'जल'प्रवाह को रोकने के लिये अपने शरीर को 'मेंड़' (खेत की छोटी दीवार) के रूप में स्थापित कर दिया था। इनका पता न चलने पर अन्य दो शिष्यों—'उपमन्यु' तथा 'वेद'—ने जब इस बात की सूचना दी तो वे उस स्थान पर गए और 'आरुणि' (इनका पूर्व नाम) को आवाज दी। तब वे उस मेंड़ को तोड़ कर बाहर निकले। तदनुसार गुरु ने इनका नाम 'उद्दालक' रख दिया।—(महाभारत आदि पर्व, पौष्योपाख्यान अध्याय ३, श्लोक २३–३४)।

प्राप्त होता है। इस 'मानसखण्ड' के आख्यान को सुनने वाला या सुनाने वाला व्यक्ति अपने असंख्य कुलों सहित शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। सब तीर्थों में निवास (आश्रय) करने से भी अधिक फल इस कथा का श्रवण और वाचन करने से मिल जाता है। मुनिवरों! इसके बाद अब आप लोग और क्या पूछना चाहते हैं? ॥ ८८-९७ ॥

बाणवेदखनेत्राब्दे वैक्रमे वत्सरे शुभे।
मार्गे सिते पूर्णिमायां विवृतिः पूर्णतां गता ॥ १ ॥
मया गोपालदत्तेन भाषामाश्रित्य प्रस्तुता।
मानसस्थो राजहंसस्तेन तुष्यतु सर्वथा ॥ २ ॥

॥ स्कन्दपुराणान्तर्गत मानसखण्ड में 'छायाक्षेत्र'-माहात्म्य नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ मानसखण्ड की व्याख्या समाप्त ॥